JIGYASA

As the name reflects itself Jigyasa is a Research Journal focused on gathering knowledge on the different issues of Arts, Linguistics and Social Sciences. It is a journal which generates appetite for knowledge amongst the social scientists, educationists, linguists, policy makers and the politicians and at the same time it also evolves the solutions. Our international and national experts of the subjects will be regularly guiding the society with their thought provoking papers and articles.

Centuries of human thought have pored over, why is there evil when there's also God. Why does God kill innocent children in an atrocious crime that they haven't had the slightest idea about? Above all, why does God scare us with his wrath.... and many more questions about our thoughts and society.

Our effort is to gather the knowledge from all nooks and corners of the society and at the same time to disseminate the same back to the society for its benefit. Let the knowledge be not the slave of a hard cover bound book or a journal. Let's come out with new ideas and theories to improve our society and the political system. We welcome all of you with this edition of our Journal and thank those who have contributed.



Annual Subscription:

Institution	Rs. 1600.00
Individual	Rs. 1400.00
Students & Retired Teachers	Rs. 1000.00
Life Membership	Rs. 12000.00

For any information, please contact :

Executive Editor
JIGYASA
Tara Nagar Colony, Chhittupur, (BHU),
Varanasi-221005, (U.P.) INDIA
Cell No. : 09415390515, 09336473737
E-mail : jigyasabhu@gmail.com
shashi.jigyasa.poddar78@gmail.com

ISSN 0974 - 7648

JIGYASA Vol. 13 No. III March, 2020

UGC Approved Journal No - 40957
ISSN 0974 - 7648

JIGYASA

An Interdisciplinary Peer Reviewed Refereed Research Journal

जिज्ञासा

Chief Editor :
Indukant Dixit

Executive Editor :
Shashi Bhushan Poddar

Editor :
Reeta Yadav

(IIJIF) Impact Factor- 4.172

Regd. No. : 1687-2006-2007 **ISSN 0974 - 7648**

J I G Y A S A

AN INTERDISCIPLINARY PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL

Chief Editor : ***Indukant Dixit***

Executive Editor : ***Shashi Bhushan Poddar***

Editor
Reeta Yadav

Volume 13 **March 2020** **No. III**

Published by
PODDAR FOUNDATION
Taranagar Colony
Chhittupur, BHU, Varanasi
www.jigyasabhu.blogspot.com
www.jigyasabhu.com
E-mail : jigyasabhu@gmail.com
Mob. 9415390515, 0542 2366370

JIGYASA, ISSN 0974-7648, Vol. 13, No. III, March 2020

Contents

- **कुमाऊँ में खादी वस्त्र उद्योग का विकास : जनपद नैनताल व अल्मोड़ा के विशेष सन्दर्भ में** **1-10**
  अलका कोली, शोध छात्रा, डी. एस. बी. परिसर, कुमाऊँ विश्वविद्यालय (नैनीताल)
  प्रो. एम. सी. पन्त, डी. एस. बी. परिसर, कुमाऊँ विश्वविद्यालय (नैनीताल)
  प्रो. पदम एस. बिष्ट, डी. एस. बी. परिसर, कुमाऊँ विश्वविद्यालय (नैनीताल)
- **शिक्षा तंत्र और नौकरशाही का बदलता स्वरूप** **11-15**
  डॉ. दीप्ति, सहायक हिन्दी प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, हिन्दू कॉलेज, अमृतसर, पंजाब।
- **भारत में महिलाओं की खेलों में सहभागिता का एक अध्ययन** **16-25**
  डॉ. संजय कुमार, सहायक प्रोफेसर (शारीरिक शिक्षा), श्री महंथ रामाश्रय दास पी.जी. कालेज, भुड़कुड़ा, गाजीपुर
- **भारत की विदेश नीति के बदलते आयाम** **26-30**
  सुमन कुमारी, सहा. प्रोफेसर (राजनीति विज्ञान) डॉ. अम्बेडकर राजकीय पी.जी., कॉलेज ऊचॉहार रायबरेली
- **हिन्दी साहित्य में रहस्यवाद** **31-34**
  राजू कुमार, नेट (यू.जी.सी.), शोध छात्र (हिन्दी), बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर
- **बदलते वैश्विक परिदृश्य में कश्मीर : विशेष संदर्भ 'आतंकवाद'** **35-40**
  प्रियंका विश्नोई, शोधार्थी, राजस्थान विश्वविद्यालय, राजस्थान
- **मनुस्मृति और धर्म** **41-44**
  सारिका सिंह, शोध छात्रा (नेट, जे.आर.एफ.), प्राचीन इतिहास विभाग, राजा मोहन गर्ल्स पी.जी. कालेज, फैजाबाद।
- **नागार्जुन के उपन्यासों में दलित-विमर्श** **45-50**
  दिव्या यादव, शोध-छात्रा, हिन्दी, शहीद स्मारक राजकीय महाविद्यालय, यूसुफपुर, मुहम्मदाबाद, गाजीपुर (उ.प्र.)
- **अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम में विद्यालय इंटरशीप** **51-52**
  शिव कुमार दाँगी, शोधकर्ता
  डॉ. रीना जैन, शोध निर्देशिका

- **बच्चे पर माता-पिता का प्रभाव** **53-57**
  गायत्री कुमारी, शोधार्थी (शिक्षा शास्त्र), जयपुर नेशनल यूनिवर्सिटी, जयपुर, राजस्थान
  शुभा व्यास, प्रोफेसर, (शिक्षा शास्त्र), जयपुर नेशनल यूनिवर्सिटी, जयपुर, राजस्थान
- **कश्मीरी विस्थापितों की त्रासदी : हिंदी उपन्यासों के सन्दर्भ में** **58-61**
  पूजा सिंह, शोध छात्रा
- **हिंदी साहित्येतिहास की परम्परा में मौलाना दाऊद और चंदायन** **62-66**
  प्रवीण नाथ यादव, शोध छात्र, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।
- **भारत-कश्मीर समस्या में अमेरिकी चौधराहट** **67-70**
  फरहीन बानों, शोध छात्रा, राजनीति विज्ञान विभाग, हण्डिया पोस्ट ग्रेजुएट कॉलेज हण्डिया, प्रयागराज, उत्तर प्रदेश
  डॉ. अर्चना सिन्हा, असिस्टेन्ट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, हण्डिया पोस्ट ग्रेजुएट कॉलेज, हण्डिया, प्रयागराज, उत्तर प्रदेश
- **औषधीय वनस्पतियों के प्रति जागरूकता का अध्ययन** **71-77**
  (स्नातक छात्राओं के सम्बन्ध में)
  डॉ. त्रिवेणी सिंह, प्राचार्य, आर.आर.पी.जी. कालेज, अमेठी
- **भारतीय धर्म एवं दर्शन (वैदिक व अन्य) में अहिंसा : एक अध्ययन** **78-83**
  राजीव कुमार खत्री, शोधार्थी, इतिहास विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना [UGC NET-2014, ICHR JRF-2017]
- **भारतीय समकालीन कला और बाजारवाद (एक संक्षिप्त परिचय)** **84-90**
  प्रियंका सिंह, शोधार्थी चित्रकला, महात्मा ज्योतिबाफुले रूहेलखण्ड विश्वविद्यालय, बरेली, उत्तर प्रदेश
- **अकाल, बिहार के विशेष संदर्भ में (1866-67)** **91-94**
  डॉ. राजेश कुमार, अतिथि शिक्षक, इतिहास विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना
- **कलात्मक अभिव्यक्ति का नया पहलू-शारीरिक कला** **95-101**
  हेमलता, शोधार्थी चित्रकला, महात्मा ज्योतिबाफुले रूहेलखण्ड विश्वविद्यालय, बरेली, उत्तर प्रदेश
- **कुरान और गीता में तौहीद और ईश्वर के गुण** **102-112**
  डॉ. वाहिद नसरू, वरिष्ठ सहायक प्रवक्ता संस्कृत, मध्य एशिया अध्ययन केन्द्र, कश्मीर विश्वविद्यालय, श्रीनगर- 190006

JIGYASA, ISSN 0974-7648, Vol. 13, No. III, March 2020

- **डॉ. भीमराव अम्बेडकर : राष्ट्रवाद के प्रति दृष्टिकोण** **113-116**
  डॉ. मयंक कुशवाहा, समाजशास्त्र विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
- **शैवाल की कहानियों में प्रतिरोध के स्वर** **117-119**
  नलिनी रंजन, शोध छात्र (हिन्दी), बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर
- **मानव जीवन में प्राण विद्या का महत्व** **120-123**
  अंकित कुमार, (शोध छात्र योग विभाग), जे.जे.टी.यू. झूनझून, राजस्थान
- **राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2019 का प्रारूप : समग्र विश्लेषण** **124-136**
  अनुराग तिवारी, शोधार्थी, मालवीय शांति अनुसंधान केंद्र, सामाजिक विज्ञान संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
- **पटना नगर में प्रदूषण : एक अध्ययन** **137-142**
  दीपक रंजन, शोध-छात्र, पटना विश्वविद्यालय, यू.जी.सी. नेट, भूगोल विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना
- **बिहार में पाश्चात्य शिक्षा का विकास : एक अवलोकन** **143-146**
  डॉ. आलोक कुमार सिन्हा, नेट-जे.आर.एफ. (इतिहास), इतिहास विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना
- **भारतीय बौद्ध धर्म में स्त्रियों की अवस्था : एक अध्ययन** **147-152**
  डॉ. उपेन्द्र कुमार, नेट (इतिहास एवं शिक्षा), पीएच.डी. (इतिहास), इतिहास विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना
- **स्वतंत्रता आंदोलन में बिहार की महिलाओं का योगदान : एक अवलोकन** **153-155**
  डॉ. सुशील कुमार साह, नेट-जे.आर.एफ. (इतिहास), इतिहास विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना
- **गोस्वामी तुलसीदास जी और उनका सामाजिक जीवन** **156-158**
  डॉ. संजय तिवारी, एम.ए., एल.बी.एल., पीएच.डी., एसो विभाग, समाजशास्त्र विभागाध्यक्ष एवं प्रो. डी.ए.वी.पी.जी. कॉलेज, लखनऊ
- **खासी साहित्य और संस्कृति : एक मूल्यांकन** **159-162**
  चिन्मय डेका बैरागी मोठ, डिब्रूगढ़, आसाम

JIGYASA, ISSN 0974-7648, Vol. 13, No. III, March 2020

- **समकालीन कविता का संवेदना पक्ष** **163-168**
  डॉ. अविनाश कुमार, एम.ए., पीएच.डी. (हिन्दी), बी.आर.ए.बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर
- **दलित साहित्य की विकास यात्रा एवं जयप्रकाश नवेन्दु महर्षि की रचनात्मक उपलब्धियाँ** **169-175**
  डॉ. गायत्री सिंह, एम.ए., पीएच.डी. (हिन्दी), बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर
- **समकालीन उपन्यासों में पर्यावरण-विमर्श** **176-181**
  सोना बाबू, शोध-छात्र (हिन्दी-विभाग), बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर
- **पत्रकार शशि शेखर : व्यक्तित्व एवं कृतित्व** **182-185**
  अंजली कुमारी, शोध-छात्रा (हिन्दी-विभाग), बी. आर. ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर
- **हिंदी उपन्यासों में ग्रामीण जनजीवन का चित्रण** **186-191**
  संतोष कुमार, शोधार्थी (हिन्दी विभाग), एम.ए. (हिंदी), यूजीसी नेट, बी.आर. ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर
- **बुद्ध काल में कृषि एवं वनों से प्राप्त वस्तुओं का व्यवसाय** **192-198**
  डॉ. अविनाश कुमार, पीएच. डी. (प्राचीन भारतीय इतिहास एवं संस्कृति), बी. आर. ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर
- **गर्भवती महिलाओं में आहार एवं पोषण की समस्याएँ : एक विशेलषणात्मक अध्ययन** **199-204**
  डॉ. मेहा कृष्णा, ग्राम- महुआ मुकुन्दपुर, पो.+ थाना- महुआ, जिला-वैशाली, पिन- 844122
- **संगीतनायक स्वामी विवेकानन्द** **205-208**
  डॉ. ब्रजेश कुमार प्रसाद, सहायक प्राध्यापक, इतिहास विभाग, सामाजिक विज्ञान संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
- **भारतीय स्वतंत्रता संग्राम म वामपंथी राजनीति का उदयः एक अवलोकन** **209-211**
  डॉ. नीरज कुमार, नेट-जे.आर.एफ.(इतिहास), इतिहास विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना
- **महिला सशक्तिकरण में डॉ. अम्बेडकर का योगदान** **212-216**
  पवन कुमार यादव, शोध छात्र- राजनीति विज्ञान विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

JIGYASA, ISSN 0974-7648, Vol. 13, No. III, March 2020

- भारत में जनसंख्या एवं विकास **217-220**
  डॉ. मनोज कुमार, उच्चत्तर माध्यमिक शिक्षक (समाजशास्त्र), अनुग्रह नारायण सर्वोदय उच्चतर माध्यमिक विद्यालय उसफा, पटना
- भारत के विदेश नीति सिद्धांत एवं उद्देश्य : एक विश्लेषण **221-227**
  डॉ. पद्माकर झा, पी-एच.डी. राजनीति विज्ञान, जयप्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा
- भारतीय लोकतन्त्र में सूचना के अधिकार की चुनौतियां **228-236**
  डॉ. प्रदीप कुमार जायसवाल, पोस्ट डॉक्टोरल फेलो, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, नई दिल्ली
- ऋग्वैदिक अथवा पूर्व-वैदिक काल में सामाजिक जीवन **237-240**
  मंदीप कुमार चौरसिया, यू.जी.सी.-नेट, शोधार्थी सह अतिथि सहायक प्राध्यापक, प्राचीन भारतीय इतिहास एवं पुरातत्व विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना
- मिथिला में तंत्रवाद का ऐतिहासिक पृष्ठभूमि **241-245**
  डॉ. सोनी शर्मा, पी-एच. डी. (इतिहास), तिलकामाँझी विश्वविद्यालय, भागलपुर
- भारत-अमेरिका संबंध : पनपती प्रगाढ़ता **246-250**
  डॉ. उपेन्द्र कुमार सिंह, स्नातकोत्तर, राजनीति विज्ञान विभाग, जय प्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा
- स्त्री प्रश्न . इतिहासकार की नजर से **251-259**
  डॉ. उपमा श्री, (आई.सी.एच.आर.), जेट, नेट पीएच. डी., इतिहास विभाग, पटना विश्वविद्यालय जे.आर.एफ.
- स्वच्छ भारत अभियानः एक गाँधीवादी सोच **260-262**
  डॉ. आनन्द कुमार
- मानवीय जीवन पर प्रदूषण का प्रभाव **263-265**
  डॉ. लालजी
- वैश्वीकरण का प्रभाव **266-273**
  डॉ. नरेश राम, इतिहास विभाग, ल.ना.मि.वि., दरभंगा, ग्राम+पो. - जाले, जिला- दरभंगा, बिहार।
- तबले में प्रयुक्त वर्तमान वर्ण **274-275**
  डॉ. अमित कुमार ईश्वर, तबला संगतकार, वसन्त कन्या महाविद्यालय, कमच्छा, वाराणसी

- **राजनीति व प्रशासनिक क्षेत्रों में भ्रष्टाचार की समस्या** **276-278**
  डॉ. अनिष कुमार सोनकर, UGC-NET पूर्व शोधछात्र, राजनीति विभाग, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी
- **बाबासाहब डा. अम्बेडकर के शिक्षा नीति एवं प्रतिबद्ध लोक सेवा** **279-286**
  डॉ. सुनिल कुमार, पीएच. डी. (इतिहास), बी. आर. ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर
- **यजमानी ब्राह्मणों के बीच स्वार्थ संघर्ष और विभेदन** **287-294**
  डॉ. अवध पटेल, पीएच. डी. (इतिहास), बी. आर. ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर
- **चम्पारण में नील की खेती का इतिहास** **295-300**
  डॉ. रवि कुमार, पीएच. डी. (इतिहास), बी. आर. ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर
- **बिहार में नक्सलवाद के कारण : एक अध्ययन** **301-307**
  डॉ. पंकज कुमार, पीएच. डी. (इतिहास), बी. आर ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर
- **संगीत की दृष्टि से 'प्रबन्ध'** **308-313**
  डॉ. स्वरवन्दना शर्मा, एसोसिएट प्रोफेसर, संगीत गायन, वसन्त कन्या महाविद्यालय, वाराणसी
- **पटना जिले में वायु-प्रदूषण की पर्यावरणीय समस्या : एक भौगोलिक विश्लेषण** **314-320**
  साधना कुमारी, सहायक प्राध्यापिका, एस.डी. कॉलेज, परैया, गया (बिहार)
- **अस्मिता उड़ान और आक्रोश का वितान : 'उठाता है कोई एक मुट्ठी ऐश्वर्य'** **321-325**
  रणधीर कुमार सिंह, पुरा परास्नातक छात्र, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।
- **धर्मेत्तर दाम्पत्य जीवन की खुशहाल सम्बन्धों की दास्तां 'सुनहरी धूप'** **326-331**
  संजय कुमार प्रजापति, शोध छात्र काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
- **बिहार की प्राचीन भौगोलिक स्थिति एवं संस्कृतियाँ** **332-336**
  नीरज कुमार, शोधार्थी, भा. इ. एवं पु. विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना

- **प्रवासी हिन्दी साहित्य और अभिमन्यु अनत** **337-341**
  अभिषेक कुमार तिवारी, शोधार्थी, डॉ. भीमराव आम्बेदकर विश्वविद्यालय, आगरा, उ.प्र.
- **डॉ. धर्मवीर का प्रेमचन्द विषयक विचार** **342-347**
  बबिता कुमारी W/o जय कुमार सिंह क्वार्टर नं. G/106/F, रेलवे कॉलोनी, ईमली रोड, मुजफ्फरपुर।
- **पूर्वोत्तर भारत के पर्व, उत्सव एवं त्योहार** **348-352**
  डॉ. सुनील कुमार साव, हिंदी विभाग, नेहू, शिलांग-793022
- **निर्मला जैन एवं समकालीन हिन्दी आलोचना** **353-358**
  डॉ. अभिलाषा कुमारी, ग्राम-बैगना, पो.- पिंडौली, भाया- कटना, जिला- मुजफ्फरपुर
- **महिला लेखिका एवं हिन्दी उपन्यास में स्त्री विमर्श** **359-366**
  डॉ. अन्तिमा कुमारी, एम.ए., पीएच.डी. (हिन्दी), बी.आर.ए.बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर
- **प्रयोजनमूलक हिन्दी में तकनीकी का प्रयोग** **367-371**
  डॉ. ममता कुमारी, एम.ए., पीएच.डी. (हिन्दी), पंखाटोली, मुजफ्फरपुर
- **कथाकार राजेन्द्र यादव** **372-376**
  डॉ. प्रिया आनन्द, द्वारा पूनम मिश्रा, रामदयालु नगर, हाजीपुर रोड, नियर जेनिथ पेट्रोल पम्प, मुजफ्फरपुर- 842002
- **स्त्री-विमर्श एवं मृणाल पाण्डेय** **377-381**
  डॉ. रश्मि रेखा, कल्याणी कॉम्पलेक्स, एक्जिविसन रोड, पटना
- **नयी कहानी आंदोलन में राजेन्द्र यादव का योगदान** **382-387**
  डॉ. सुप्रिता शालिनी, एम.ए., पीएच.डी.(हिन्दी), यूजीसी-नेट, बी. आर.ए.बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर
- **हिन्दी आलोचना का क्रमिक विकास** **388-393**
  डॉ. विवेक रंजन, यादव नगर लेन नं. 01, भगवानपुर चौक रेवा रोड, मुजफ्फरपुर
- **संस्मरण साहित्य : एक आलोचनात्मक अध्ययन** **394-399**
  लक्की कुमारी, शोध-छात्रा, हिन्दी, बी.आर.ए.बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

- **मीडिया का बदलता स्वरूप** **400-403**
  पल्लवी कुमारी, यूजीसी-नेट, शोध छात्रा, हिन्दी, बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर
- **भिखारी ठाकुर के नाट्य साहित्य में दलित-विमर्श** **404-408**
  डॉ. राम दुलार साहनी, एम.ए.(हिन्दी), यू.जी.सी नेट(हिन्दी) पी-एच.डी.(हिन्दी), बी.आर.ए.बी.यू., मुजफ्फरपुर
- **दलित साहित्य एवं गैर दलित लेखकों का योगदान** **409-415**
  रश्मि प्रिया, शोध-छात्रा, हिन्दी, बी.आर.ए.बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर
- **उपेक्षित स्त्री का साहित्यक विवचन** **416-419**
  शालिनी कुमारी, ग्राम+पोस्ट- चिंतामनपुर, जिला- पूर्वी चम्पारण (बिहार)
- **हिन्दी साहित्य में भारतेन्दु का योगदान** **420-425**
  शशि कुमार पासवान, यूजीसी-नेट, गाँव- चन्दवारा घाट हरपुर, पोस्ट- प्रधान डाकघर (मुज.), पुलिस स्टेशन- अहियापुर, जिला-मुजफ्फरपुर, पिन कोड- 842001
- **काव्य साधनामोहनलाल महतो 'वियोगी' की कविताएँ** **426-431**
  श्वेता कुमारी, शोध-छात्रा, हिन्दी, बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर
- **त्रिलोचन के काव्य का जनपदीय आधार** **432-437**
  सुमित कुमार, ग्राम+पो.- हरपुर पूसा, थाना- पूसा, जला- समस्तीपुर, पिन-848125
- **मुजफ्फरपुर नगर की चुनौतियाँ एवं समस्याएँ** **438-442**
  सुनील कुमार, शोध-छात्र, भूगोल-विभाग, एल.एन.एम.यू., दरभंगा
- **हिन्दी आलोचना का क्रमिक उद्विकास** **443-447**
  सुरजीत बिहारी, एम. ए. (हिन्दी), शोध छात्र, यू.जी.सी., नेट, बी. आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर
- **प्रेमचंद की दृष्टि में दलित स्त्री** **448-453**
  वेद प्रकाश ओझा, शोध-छात्र, हिन्दी, बी.आर.ए.बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

- **कोरोना काल एवं लॉकडाउन का मानसिक स्वास्थ्य पर प्रभाव : एक मनोवैज्ञानिक अध्ययन** **454-458**
  डॉ. अमर कुमार, पी-एच. डी. मनोविज्ञान विभाग, ल.ना.मि.वि.वि., कामेश्वरनगर, दरभंगा (बिहार)
- **वैश्वीकरण काल में बिहार की महिलाओं के लिए साक्षरता अभियान** **459-462**
  कुन्दन कुमार पासवान, यू.जी.सी. -नेट (इतिहास)
- **20वीं सदी का किसान आन्दोलन : एक अवलोकन** **463-467**
  शशिकान्त कुमार, यू.जी.सी. नेट (जे.आर.एफ.), विश्वविद्यालय इतिहास विभाग, तिलकामाँझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर
- **हिन्दी में नाट्यानुवाद की परंपरा** **468-471**
  डॉ. मनोज 'विद्यासागर', ग्राम+पो. गम्हरिया, जिला- मधेपुरा।
- **शैलीमापक्रमिकी विश्लेषण : उत्तरकांड के संदर्भ में** **472-498**
  डॉ. समदर्शी कुमार, भारतीय नगर वाड नं. 26, निकट, सलहेश स्थान सहरसा
- **मध्यकालीन भारत में अमीर वर्ग की भूमिका** **499-503**
  दीपक कुमार ठाकुर, शोध छात्र (UGC NET) इतिहास विभाग, दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर
- **जल संसाधनों का उपयोग और महत्व : एक अवलोकन** **504-509**
  अनूप कुमार तिवारी, एम.ए. भूगोल, पी.जी. विभाग, बी.आर.ए.बी. यू. मुजफ्फरपुर, बिहार
- **वैश्वीकरण का प्रभाव** **510-517**
  नरेश राम, इतिहास विभाग, ल.ना.मि.वि., दरभंगा, ग्राम+पो. जाले, जिला - दरभंगा, बिहार
- **गांधी की चिंतन शैली और सत्याग्रह - एक अवलोकन** **518-525**
  सरिता कुमारी, असिस्टेन्ट प्रोफेसर (अंशकालिक), वसन्ता कॉलेज फॉर वोमेन
- **स्कूली छात्रों का मनोविज्ञान एवं चिन्तन** **526-532**
  अनुराधा कुमारी, शोधार्थी, शिक्षा विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया
- **किशोरावस्था और उसकी विशेषताएँ** **533-537**
  विभा, शोधार्थी, शिक्षा विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया

- **बिहार में महिला सशक्तिकरण एवं चुनौतियाँ : कैमूर जिले के मोहनडरवान ग्राम पंचायत के संदर्भ में एक विशेष अध्ययन** **538-543**
  पंकज कुमार, शोध छात्र, लोक प्रशासन विभाग, मगध विश्वविद्याल, बोधगया
- **विद्यालय छात्रों की अभियोजना क्षमता : एक मनोसामाजिक अध्ययन** **544-549**
  वीणा कुमारी, शोधार्थी, शिक्षा विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया
- **वसुधैव कुटुंबकम : शांति एवं सामंजस्य का दर्शन** **550-552**
  दुमरेन्द्र राजन, शोध छात्र, पटना विश्वविद्यालय
- **स्वामी शिवानन्द जी तीर्थ और याग की महत्ता** **553-555**
  सत्या सुमन सोनी, शोध छात्रा, इतिहास विभाग, वीर कुवँर सिंह विश्वविद्यालय, आरा, बिहार।
- **कोविड-19 एवं मनरेगा** **556-562**
  डॉ. मुहम्मद जावेद, एसोसिएट प्रोफेसर, वाणिज्य विभाग, शिब्ली नेशनल कालेज, आज़मगढ़ उ.प्र.
- **आधुनिक विज्ञानस्य कृते वेदनिष्ठसंस्कारविज्ञानस्योपयोगित्वम्** **563-571**
  कृष्ण मुरारी त्रिपाठी. शोधच्छात्रः. वेदविभागः. संस्कृतविद्याधर्मविज्ञानसंकायः. काशीहिन्दूविशविद्यालयः
- ***ज्ञानमीमांसा के आलोक में अन्य मन की समस्या*** **572-579**
  फूलहसन अंसारी, शोध छात्र, दर्शन एवं धर्म विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
- **डॉ. भीमराव अम्बेडकर : अछूत आन्दोलन में महत्वपूर्ण योगदान** **580-584**
  ताहीद आफताब, राजनीति विज्ञान विभाग, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
- **नारी सशक्तिकरण की मिशाल दलित बौद्ध भिक्षुणी -'पूर्णिका'** **585-590**
  डॉ. रणधीर कुमार, सहायक प्राध्यापक, प्राचीन इतिहास विभाग, एस. एम.आर.सी.के. कॉलेज, समस्तीपुर
- **किसान एव नारो विमश को सशक्त अभिव्यक्ति - हत्या** **591-594**
  प्रा.डॉ. राजश्री भामरे, अध्यक्ष एवं सहयोगी अध्यापिका, महात्मा गांधी महाविद्यालय, अहमदपूर जि.लातूर, महाराष्ट्र

- **प्राचीन भारत में भू-स्वामित्व** **595-597**
  पवन कुमार सिंह, शोध छात्र, इतिहास विभाग, वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा (बिहार)
- **दक्षिण भारतीय कृषि का स्वरूप तथा विकास** **598-600**
  डॉ. कुश कुमार, इतिहास विभाग, वीर कुंवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा (बिहार)
- **वर्तमान परिपेक्ष में गाँधी दर्शन की प्रासंगिकता** **601-604**
  सुप्रिया कश्यप, शोध छात्रा, राँची विश्वविद्यालय, राँची
- **शब्दार्थ सम्बन्ध : एक विश्लेषणात्मक विवेचना** **605-608**
  अर्चना कुमारी, शोध छात्रा, दर्शन एवं धर्म विभाग, कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
- **भारतीय दर्शन में पर्यावरणीय नैतिकता और वर्तमान में इसकी प्रासंगिकता** **609-614**
  नन्दिनी, शोध छात्रा, धर्म एवं दर्शन विभाग, कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
- **विकासशील देशों में मानव संसाधन विकास एक अध्ययन** **615-619**
  डॉ. आशुतोष कुमार भारती, भूगोल विभाग, बी.एन. मण्डल विश्वविद्यालय, लालू नगर, मधेपुरा
- **विज्ञानमयकोशसन्दर्भे बुद्धेः स्वरूपम्** **620-626**
  अनिल कुमार अवस्थी, शोधच्छात्रः (शिक्षाशास्त्र विभागः), केन्द्रीयसंस्कृतविश्वविद्यालयस्य, लखनऊ परिसरः
- **वेदेषु राष्ट्रियमानवासामञ्जस्य महत्त्वञ्च** **627-630**
  आनन्द कुमार झा, शोधच्छात्रः वेद विभागः, संस्कृतविद्याधर्मविज्ञानसंकायः, काशीहिन्दूविश्वविद्यालयः, वाराणसी।
- **गढ़वाल के वन गुजर समुदाय पर आधुनिकता का प्रभाव** **631-638**
  वन्दना कोठारी, शोध छात्र, एन्थ्रोलॉजी विभाग, एच.एन.बी.जी.यू. श्रीनगर गढ़वाल, उत्तराखण्ड
  प्रो. एच.बी.एस. चौहान, विभागाध्यक्ष, एन्थ्रोपोलॉजी, एच.एन.बी.जी. यू. श्रीनगर गढ़वाल, उत्तराखण्ड
- **शारीरिक शिक्षा के विविध क्षेत्र** **639-645**
  रामधारी राम, असिस्टेन्ट प्रोफेसर, शारीरिक शिक्षा, स्वामी स. स्ना. महाविद्यालय, गाजीपुर

- **केदारनाथ सिंह की कविताओं में लोक सौन्दर्य** **646-651**
  उमेश कुमार पर्वत, शोध छात्र, भोजपुरी अध्ययन केन्द्र, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
- **गम्भीर विषादी रोगियों के अवसाद और उनके चक्रों पर मनोप्राण चिकित्सा, प्राणायाम एवं ध्यान का पड़ने वाले सम्मिलित प्रभाव का अध्ययन** **652-659**
  दुर्गेश चन्द्र द्विवेदी, शोधार्थी, योग एवं स्वास्थ्य विभाग, देव संस्कृति विश्वविद्यालय, हरिद्वार, उत्तराखण्ड, भारत।
  डॉ. अमृत लाल गुर्वेन्द्र, निर्देशक, पी.एच.डी. एसोसिएट प्रोफेसर, मानव चेतना एवं योग विभाग, देव संस्कृति विश्वविद्यालय, हरिद्वार, उत्तराखण्ड, भारत।
  डॉ. संतोष विश्वकर्मा, सह निर्देशक, असिस्टन्ट प्रोफेसर, नैदानिक मनोविज्ञान विभाग, देव संस्कृति विश्वविद्यालय, हरिद्वार, उत्तराखण्ड, भारत
- **माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों में मातृभाषा के प्रति अभिरूचि व अभिवृत्ति का अध्ययन** **660-676**
  प्रदीप कुमार पंकज, व्याख्यता, हितकारी सहकारी महिला शिक्षा महाविद्यालय, आरामपुरा, धाकड़खेड़ी, कोटा, राजस्थान
- **मोदी युग में भारत-चीन सम्बन्ध : एक समीक्षा** **677-683**
  सरिता वर्मा, शोध छात्रा, का.सु. साकेत स्नातकोत्तर महाविद्यालय, अयोध्या (डॉ. राम मनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय, अयोध्या)
- **ढलान से उतरते हुए : एक संक्षिप्त आयाम** **684-689**
  आशुतोष कुमार मिश्रा, शोधछात्र, जयप्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा पिन-841301 (बिहार)
- **मध्यकाल में हिन्दू महिलाओं की सामाजिक स्थिति** **690-692**
  डॉ. किरण कुमारी, इतिहास विभाग, वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा (बिहार)
- **दलित इतिहास के नये आयाम** **693-697**
  जितेन्द्र कुमार, शोध छात्र, राजनीतिशास्त्र विभाग, वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा (बिहार)
- **पशुयाग का संक्षिप्त परिचय** **698-703**
  पंकज पाण्डेय, शोध छात्र, वेद विभाग, सं.सं.वि.वि., वाराणसी।
- **भारत-मालद्वीव संबंधों का एक सुक्ष्मावलोकन** **704-712**
  डॉ. एन.के. सोमानी, असिस्टेंट प्रोफेसर, राजनीति-विज्ञान विभाग, एम.जे.जे. गर्ल्स कॉलेज, सूरतगढ

- **वर्तमान समय में गांधी जी के राजनैतिक सिद्धान्त की प्रासंगिकता** **713-722**
  डॉ. कान्तेश कुमार
- **रॉल्स का न्यायिक सिद्धांत : एक विश्लेषण** **723-726**
  उमेश चन्द्र दीक्षित, अनुप्रयुक्त दर्शनशास्त्र विभाग, महात्मा ज्योतिबा फुले रूहेलखण्ड विश्वविद्यालय परिसर, बरेली, उ.प्र.
  डॉ. रज्जन कुमार, विभागाध्यक्ष, अनुप्रयुक्त दर्शनशास्त्र विभाग, महात्मा ज्योतिबा फुले रूहेलखण्ड विश्वविद्यालय परिसर, बरेली, उ.प्र.
- **इक्कीसवीं सदी का लोक और भोजपुरी सिनेमा** **727-734**
  डॉ. अमरेन्द्र कुमार श्रीवास्तव, असिस्टेंट प्रोफेसर, अमिटी लॉ स्कूल, अमिटी विश्वविद्यालय, उ.प्र.
  डॉ. अर्पिता कपूर, असिस्टेंट प्रोफेसर, अमिटी लॉ स्कूल, अमिटी विश्वविद्यालय, उ.प्र.
- **राष्ट्रीयता के प्रतीक एवं समाज के पथ प्रदर्शक : प्रेमचंद** **735-738**
  डॉ. बंकटेश्वर नाथ, पूर्णियाँ
- **प्रेमचन्द-साहित्य में औद्योगीकरण का संदर्भ** **739-748**
  डॉ. कविता राजन, एसोसिएट प्रोफेसर, सत्यवती महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
- **किशोरावस्था में छात्र-छात्राओं की समायोजन संबंधी समस्या का अध्ययन** **749-754**
  जया सिंह, हितकारी सहकारी महिला शिक्षा प्रशिक्षण महाविद्यालय, धाकड़खेड़ी, आरामपुरा, कोटा-324009 (राज.)
- **प्रसन्न मन-स्वस्थ्य तन** **755-756**
  डॉ. हरिपति सहाय कौशिक, प्रधानाचार्य, संस्कृत विद्यापीठ बमनुवां, टहरौली, झांसी (उ.प्र.)
- **भारत में कृषक आत्महत्या** **757-761**
  डॉ. दयाशंकर सिंह यादव, सहायक प्रोफेसर, समाजशास्त्र, सकलडीहा पी. जी. कालेज, सकलडीहा, चंदौली
- **कनिष्ठ के देवत्त्व की अवधारणा** **762-771**
  डॉ. स्वस्तिक सिंह, असिस्टेंट प्रोफेसर, प्राचीन इतिहास, जी.एस.एस. पी.जी. कॉलेज, कोयलसा, आजमगढ़
  डॉ. मीनाक्षी सिंह, एसोशिएट प्रोफेसर, प्रा.भा.इ. संस्कृति एवं पुरातत्त्व, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

- **मुगल कालीन भारतीय सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन की संश्लेषणात्मक प्रवृत्ति** **772-777**
  डा. सुरेश कुमार महतो, पूर्व शोध छत्र (इतिहास), ल. ना. मि. वि. वि., दरभंगा
- **समकालीन पर्यावर्णीय समस्याओं के निदान में बौद्ध दर्शन की प्रासंगिकता** **778-781**
  संजय सिंह, नेट, जे.आर.एफ., शोध छात्र, प्राचीन इतिहास, वीर, बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर
- **विद्यार्थी जीवन में प्रबन्धन का महत्व** **782-788**
  डॉ. रवि प्रकाश गुप्ता, एसोसिएट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान, पं. दीनदयाल उपाध्याय राजकीय महिला बालिका विद्यालय, सेवापुरी, वाराणसी
- **डॉ. श्रीरंजन सूरिदेव का अनुवाद साहित्य** **789-794**
  वर्षा रानी, शोधार्थी, हिन्दी विभाग, मगध विश्वविद्यालय
- **भारतीय संस्कृति एवं उसकी विशेषताएँ** **795-803**
  डॉ. उमेश कुमार सिंह, असिस्टेन्ट प्रोफेसर, प्राचीन इतिहास, पुरातत्व एवं संस्कृति विभाग, देवेन्द्र पी.जी. कॉलेज, बिल्थरा रोड, बलिया
- **वेश्यावृत्ति : एक अवधारणा** **804-806**
  मीनाक्षी शुक्ला, शोध छात्रा, सिद्धांत दर्शन आयुर्वेद संकाय, आई.एम. एस., काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी
  प्रोफेसर चंद्रशेखर पांडेय, प्रोफेसर, सिद्धांत दर्शन आयुर्वेद संकाय, आई.एम.एस., काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी
- **भारतीय योग दर्शन का महत्वपूर्ण स्वरूप** **807-816**
  डॉ. प्रशांत कुमार उपाध्याय, सहा. प्राध्यापक, शिक्षा संकाय, महर्षि यूनिवर्सिटी ऑफ मैनेजमेंट एड टेक्नोलॉजी, मंगला बिलासपुर (छ.ग.)
- **सीमान्त बांग्ला का सामान्य परिचय : एक अध्ययन** **817-822**
  नीलू कुमारी, शोधार्थी, जनजातीय एवं क्षेत्रीय भाषा विभाग, राँची विश्वविद्यालय, राँची
- **महादेवी महीयसी का स्त्री-विमर्श : भारतीय परिप्रेक्ष्य में विशेष** **823-829**
  डॉ. शिखा तिवारी, एसोसिएट प्रोफेसर (हिन्दी), डी.सी.एस.के.पी.जी. कालेज, मऊ
- **संगीत एवं धर्म : एक विश्लेषण** **830-833**
  डॉ. शशि शुक्ला, एसोसिएट प्रोफेसर, सा.रा.म. महाविद्यालय, बरेली

- **भारत एवं इस्लामिक आतंकवाद** **834-837**
  डॉ. अशोक कुमार सिंह, रीडर, रक्षा एवं स्त्राित्जक अध्ययन विभाग, आर.आर.पी.जी. कालेज अमेठी, जनपद-अमेठी।

- **भोटांतिक पशुचारकं (उत्तराखण्ड) एवं डोकपा पशुचारकों (तिब्बत) के मध्य प्राचीन व्यापार पद्धति - 'गमग्या'** **838-843**
  डॉ. विनोद सिंह फरस्वान, संविदा प्राध्यापक, इतिहास विभाग, राजकीय महाविद्यालय, गैरसैंण, चमोली, उत्तराखण्ड

- **मुरिया जनजाति बस्तर अंचल में गोटुल प्रथा के इतिहास का एक अध्ययन** **844-847**
  डॉ. भावना खरे, प्रभारी अध्ययन केन्द्र 484, छपारा, अटल बिहारी वाजपेयी हि.वि.वि. भोपाल।
  शोभाराम डेहरिया, सहायक प्राध्यापक एवं पूर्व विभागाध्यक्ष (समाज कार्य), बस्तर विश्वविद्यालय जगदलपुर, छत्तीसगढ़

- **प्रतिज्ञायौगन्धरायण में भावाभिव्यक्तियाँ : एक संक्षिप्त अध्ययन** **848-850**
  डॉ. नमिता अग्रवाल, एसोसियेट प्रोफेसर, संस्कृत, अतर्रा पी.जी. कालेज, अतर्रा बाँदा (उ.प्र.)

- **लैंगिक असमानता के पर्यावरणीय प्रभाव : जनपद लखीमपुर खीरी विशेष सन्दर्भ में** **851-857**
  डॉ. विष्णु कुमार शुक्ल, असि.प्रो. (अर्थशास्त्र), सो.जी.एन. (पी.जी.) कॉलेज, गोला गोकर्णनाथ-खीरी।

- **श्री अरविन्द का आध्यात्मिक राष्ट्रवाद** **858-862**
  डॉ. अर्चना सिंह, एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, राजनीति विज्ञान विभाग, श्री अग्रसेन कन्या पी.जी. कॉलेज, वाराणसी।

- **सुरेन्द्र वर्मा के नाटकों में मिथकीय परिवेश** **863-866**
  सारिका यादव, शोधकत्री, लालबहादुर शास्त्री स्नातकोत्तर महाविद्यालय, पं. दीनदयाल उपाध्याय नगर, चंदौली से सम्बद्ध मानविकी संकाय, हिन्दी तथा आधुनिक भारतीय भाषा विभाग, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी

कुमाऊँ में खादी वस्त्र उद्योग का विकास : जनपद नैनताल व अल्मोड़ा के विशेष सन्दर्भ में

अलका कोली *
प्रो. एम. सी. पन्त **
प्रो. पदम एस. बिष्ट ***

स्वाधीनता आन्दोलन में खादी का महत्वपूर्ण योगदान ही नहीं था, बल्कि खादी भारतीय संस्कृति की परिचायक भी रही। अवश्य ही आज भी यह देश की बेरोजगार हताश पड़ी जनसंख्या को सफलता का मार्ग दिखा सकती है तथा आर्थिक आजादी से लड़ने में सहायक हो सकती है। इस प्रकार खादी वस्त्र केवल कपड़े का टुकड़ा न रहकर ग्रामीण अर्थव्यवस्था के जीवन का अग्रदूत और उनकी गरीबी से स्वतंत्रता एवं उनके अस्तित्व का प्रतीक बनकर उभर सकता है। कुमाऊँ में भी खादी वस्त्र निर्माण इकाईयां अपनी इसी कला और संस्कृति को बचाएं हुए तो है ही, साथ ही हजारो हाथों को रोजगार भी प्रदान कर रही है किन्तु वर्तमान में इन्हें कई समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है, जिस कारण ये इकाईयां अपना विस्तार नहीं कर पा रही है। प्रस्तुत शोध पत्र में कुमाऊँ में खादी वस्त्र उद्योग का विकास तथा इनके विकास में आने वाली समस्याओं पर चर्चा की गयी है।

कुंजी– खादी, तकनीकी ज्ञान, आर्थिक स्वतंत्रता

भारत में कपास, रेशम या ऊन के रेशे अथवा कते इस सूत से हथकरघे पर काता गया कोई भी वस्त्र खादी हैा खादी से तात्पर्य हाथ से कता एवं हाथ से बुना वस्त्र है।[1] स्वाधीनता आन्दोलन में खादी का महत्वपूर्ण योगदान ही नहीं था, बल्कि खादी भारतीय संस्कृति की परिचायक भी रही। जब भी हस्तशिल्प और हथकरघा की बात आती है, तो भारत का शायद ही कोई हिस्सा ऐसा है, जो अपनी विशेष रूप से निर्मित और बुनी गई वस्तुओं के लिए नहीं जाना जाता हो। चाहे असम की रेशम हो, बंगाल की कपास, कश्मीर की पश्मीना, दक्षिण भारत की कांजीवरम, या फिर घारचूला, मुनस्यारी के दन व कालीन इन सबकी अपनी–अपनी कहानी है और बाजार में अपना विशेष स्थान भी रखते है। तकनीकी चाहे कितनी भी उन्नत हो जाए, लोगों के हस्त–कौशल का अपना ही सौष्ठव हैं। ऐसी बहुत सी परंपराएं है, जो पीढ़ियों से चली आ रही है और ये कुशल हाथों के एक जादू से कम नहीं है।[2]

---

* शोध छात्रा, डी. एस. बी. परिसर, कुमाऊँ विश्वविद्यालय (नैनीताल)
** डी. एस. बी. परिसर, कुमाऊँ विश्वविद्यालय (नैनीताल)
*** डी. एस. बी. परिसर, कुमाऊँ विश्वविद्यालय (नैनीताल)

शोध समस्या का चयन : कुमाऊँ में वस्त्र निर्माण की अपनी अलग–अलग परंपराएं रही है, जिनमें इन उद्योगों में प्रयुक्त सामग्री स्थानीय स्तर पर उपलब्ध हो जाती है। यह पूरा क्षेत्र श्रम आधारित है, इसलिए इसके जरिये सैकड़ो श्रमिकों के लिए रोजगार उपलब्ध कराया जाता है और आगे भी कराया जा सकता है। एक ओर जहां कई श्रमिकों के लिए वस्त्र निर्माण का काम आजीविका का पूर्णकालिक साधन है, वही दूसरी ओर खेतिहर मजदूरों के लिए यह आय का वैकल्पिक साधन भी है। यह क्षेत्र विदेशी मुद्रा के लिहाज से भी महत्वपूर्ण है। दरअसल इसमें निर्यात की संभावना है इसका कारण भारतीय वस्त्रों की विदेशों में मांग बढ़ना है। अपने अनोखे रंग एवं डिजाइन के कारण इनकी लोकप्रियता काफी ज्यादा रहती है।[3]

शोध के उद्वेश्य

1. न्यादर्श क्षेत्रों में रोजगार सृजन व ग्रामीण क्षेत्र में व्यर्थ पड़ी श्रम शक्ति को व्यवस्थापित करने में खादी वस्त्र उद्योग की भूमिका का अध्ययन करना।
2. न्यादर्श क्षेत्रों में खादी उद्योगों के विकास में आने वाली समस्याओं का अध्ययन करना।

शोध अध्ययन का महत्व : कुमाऊँ मण्डल में खादी वस्त्र उद्योग के विकास में प्रायः देखा जा रहा है कि वर्तमान में पाश्चात्य संस्कृति का दबदबा अपने पैर पसारता जा रहा है। ऐसे में खादीं ग्रामोद्योग इन ग्रामीण जनता की प्राणदेय शक्ति बनकर उभर सकता हैं।[4]

शोध सम्बन्धी परिकल्पनाएं:

1. विभिन्न इकाईयों द्वारा उत्पादित उत्पाद को विदेशी वस्त्रों के सामने प्रतिस्पर्द्वा का सामना करना पड़ रहा है, जिससे रोजगार प्रभावित हो रहा है।
2. तकनीकी ज्ञान, कुशल प्रशिक्षण व सही मार्गदर्शन न होने के कारण खादी का समुचित विकास नहीं हो पा रहा है।

शोध संबंधी अध्ययन की सीमाएं : समय की बाध्यता के कारण कुमाऊँ मण्डल के केवल दो ही जनपदों को लिया गया है। शोध अध्ययन के लिए प्राथमिक एवं द्वितीयक समंको को लिया गया है एवं कतगरो व बुनकरों की केवल खादी ग्रामोद्योग के अन्तर्गत आने वाली समस्याओं को ही अपने कार्य में सम्मिलत तथा प्रस्तुत किया गया है, जो कि खादी ग्रामोद्योग के विकास में बाधक है।

शोध प्रविधि एवं न्यादर्श का चयन : शोध के लिए उद्वेश्यपूर्ण चयन का प्रयोग करते हुए चयनित जनपदों में कार्य कर रही खादी वस्त्र निर्माण इकाई क्षेत्रीय श्री गाँधी आश्रम, चनौदा (अल्मोड़ा) तथा क्षेत्रीय श्री गाँधी आश्रम, कलावती कॉलोनी हल्द्वानी (नैनीताल) को लिया गया है, जो खादी ग्रामोद्योग आयोग/बोर्ड के नियन्त्रण क्षेत्र में आती हैं। अध्ययन मुख्यतया द्वितीयक समंको पर आधारित है एवं द्वितीयक समंको का संग्रह खादी वस्त्र निर्माण इकाईयों, खादी ग्रामोद्योग आयोग/बोर्ड से प्राप्त जानकारी तथा अन्य प्रकाशित तथा अप्रकाशित अभिलेखो से किया गया है। प्राथमिक

आकड़ों के एकत्रीकरण के लिए जिससे उनकी वास्तविक स्थिति तक पहुँचा जा सके, प्रतिदर्श की आनुपातिक विधि का प्रयोग कर श्रमिकों का प्रतिशत लिया गया है।

न्यादर्श चयन का आधारः

कुल समग्र= 424+600=1024 श्रमिक

चनौदा 424 का 1024 से अनुपात= 424X100 / 1024=41.4 अथवा 41%

हल्द्वानी 600 का 1024 से अनुपात= 600X100 / 1024=58.5 अथवा 59%

500 का न्यादर्श चयन किये जाने पर श्रमिकों का अनुपातः

424 का 1024 से अनुपात= 500 का 41% = 164

600 का 1024 से अनुपात=500 का 59% = 236

कुमाऊँ मण्डल में खादी वस्त्र उद्योग का विकासः

क्षेत्रीय श्री गाँधी आश्रम चनौदा (अल्मोड़ा)



स्त्रोतः क्षेत्रीय श्री गाँधी आश्रम चनौदा, 12 अप्रैल 2017

कुमाऊँ में खादी वस्त्रों के उत्पादन का कार्य काफी पहले से ही होता आया है किन्तु बताया जाता है कि जब गाँधी जी कौसानी यात्रा पर आये थे तो कुछ समय के लिए वह चनौदा में भी रूके। यह वही स्थान था जहां गाँधी जी ने जनता से विदेशी कपड़े त्यागकर स्वयं के बनाये वस्त्र धारण करने का आह्वान किया था, इसी स्थान पर आश्रम बनाकर वस्त्र तैयार करने की गाँधी जी ने प्रेरणा दी थी। महात्मा गाँधी की प्रेरणा से प्रभावित होकर उनके सहयोगी शान्ती लाल त्रिवेदी ने 1937 में यहां आकर आश्रम की स्थापना की थी, इस कार्य के लिए जनता द्वारा स्वेच्छा से 30 नाली जमीन उन्हें दान में दी ताकि गाँधी जी के विचारों को कार्यरूप दिया जा सकें।[5] वर्तमान में चनौदा में कार्य का विस्तार किया गया है, तथा कई क्षेत्रों में खादी ग्रामोद्योग की उपइकाईयाँ स्थापित की गई है जिनका विवरण निम्न प्रकार है–1.अल्मोड़ा केन्द्र (107), 2.बनलेख केन्द्र (57), 3.चकरपुर

केन्द्र (67), 4.बागेश्वर (25), 5.चनौदा (63), 6.धरमघर (38)। वर्तमान में इन केन्द्रों में कुल मिलाकर 424 श्रमिकों को रोजगार प्राप्त है।

क्षेत्रीय श्री गाँधी आश्रम, कलावती कॉलोनी हल्द्वानी (नैनीताल)



स्त्रोतः क्षेत्रीय श्री गाँधी आश्रम, कलावती कॉलोनी हल्द्वानी,25 सितम्बर 2019

कताई–बुनाई का कार्य करना एक ऐसा माध्यम है जो मनुष्य में त्याग, परिश्रम, स्नेह, प्रकृति के प्रति प्रेम, शान्ति, सादगी से मनुष्य का रिश्ता कायम करता है। और इसी परिवेश को बनाये रखने के लिए हल्द्वानी में भी खादी ग्रामोद्योग इकाई सन् 1978 से खादी वस्त्र निर्माण का कार्य कर रही है तथा सबसे अधिक मात्रा में बेरोजगारी को खत्म करने में सक्षम हुई है। वर्तमान में इसकी कई उप इकाईयां स्थापित की गई है जो निम्न प्रकार है–1.जसपुर केन्द्र (376), 2. काशीपुर (194), 3. फतेहपुर (30) । वर्तमान में इन केन्द्रों में कुल मिलाकर 600 श्रमिकों को रोजगार प्राप्त है।

न्यादर्श इकाईयों में उत्पादन की किस्मः

न्यादर्श इकाई चनौदा में वस्त्र उत्पादन का विवरण

(रूपये में)

वर्ष	ऊनी	सूती	पौली वस्त्र
2010–11	3079265	873752	1089
2011–12	3577215	1578203	–
2012–13	3110159	815275	20257
2013–14	3292079	2195859	–
2014–15	2547911	2048288	26186
2015–16	2659546	1941825	41280
2016–17	1141989	306814	–
2017–18	1232552	327532	48123
कुल	**20640716**	**10087548**	**136935**

स्त्रोतः क्षेत्रीय श्री गाँधी आश्रम चनौदा, 12 अप्रैल 2019

चनौदा में कुल वस्त्र उत्पादन का विवरण

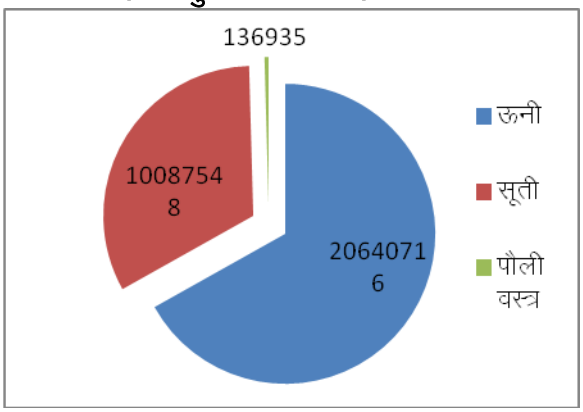

न्यादर्श इकाई चनौदा में उपरोक्त वर्षो में कुल उत्पादन में सबसे अधिक उत्पादन ऊनी खादी (66.87%) का हुआ है, (32.6%) सूती खादी व (0.44%) पौली खादी का उत्पादन हुआ जो कुल उत्पादन का बहुत कम है। ऊनी खादी का उत्पादन अधिक होने का मुख्य कारण है कि कच्चा माल स्थानीय क्षेत्रों से आसानी से प्राप्त हो जाता है और ये इकाईयां लगभग इन्हीं क्षेत्रों के नजदीक स्थापित है, व कपास आसानी से उपलब्ध नहीं हो पाना भी इसका मुख्य कारण है।

न्यादर्श इकाई हल्द्वानी में वस्त्र उत्पादन का विवरण

(रूपये में)

वर्ष	ऊनी	सूती	पौली
2010–11	4437277	13582687	1666045
2011–12	6801084	16187966	1600588
2012–13	6259096	15744437	2110197
2013–14	–	–	–
2014–15	5476605	16201953	2762971
2015–16	–	–	–
2016–17	5556614	11675207	2359694
2017–18	4249510	8222897	1457317
कुल	**32780186**	**81615147**	**11956812**

स्त्रोतः क्षेत्रीय श्री गाँधी आश्रम, कलावती कॉलोनी हल्द्वानी,25 सितम्बर 2019

हल्द्वानी में कुल वस्त्र उत्पादन का विवरण

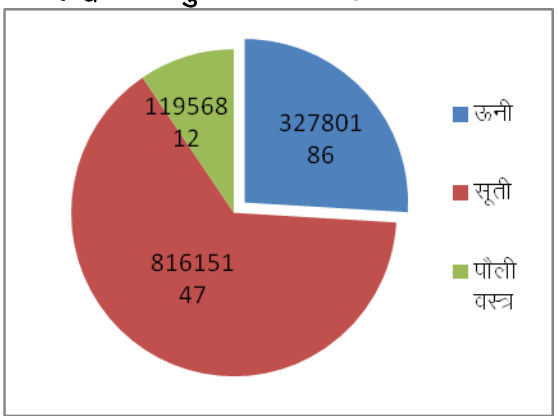

न्यादर्श इकाई हल्द्वानी में उपरोक्त वर्षो में कुल उत्पादन में सबसे अधिक उत्पादन ऊनी खादी (25.94%) का हुआ है तथा (64.5%) सूती खादी व (9.46%) पौली खादी का उत्पादन हुआ। सूती खादी का अधिक उत्पादन होने का मुख्य कारण है कि कच्चा माल आसानी से प्राप्त हो जाता है दूसरा इकाईयां शहरी क्षेत्रो में स्थापित होने के कारण यही सूती वस्त्र की मांग अधिक है।

न्यादर्श ईकाईयों में बिक्री का विवरण

(करोड़ में)

वर्ष	चनौदा	हल्द्वानी
2010–11	29932184	46371577
2011–12	43396930	48557605
2012–13	43003193	63395930
2013–14	60718123	80744584
2014–15	48430859	76232134
2015–16	58580402	76161064
2016–17	37610705	62442240
2017–18	38420307	70211865
कुल बिक्री	360092703	524116999

स्त्रोतः क्षेत्रीय श्री गाँधी आश्रम चनौदा एवं हल्द्वानी, 12 अप्रैल 2019

बिक्री का विवरण

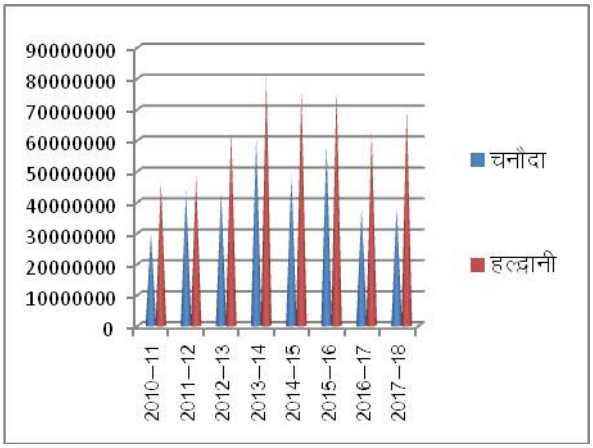

न्यादर्श इकाई चनौदा की तुलना में हल्द्वानी में 164024296रू. की अधिक बिक्री हुई है जिसका प्रतिशत 31.2% है। दोंनों की इकाईयों में यदि सूती, ऊनी व पौली खादी को देखा जाएं तो दोनों में ही प्रत्येक वर्ष सूती खादी की ब्रिक्री अधिक हुई, तत्पश्चात् ऊनी की बिक्री हुई है। बिक्री के विपरित चनौदा में ऊनी का उत्पादन अधिक व सूती का कम, जो उपभोक्ताओं द्वारा सूती खादी की मांग की पूर्ति अपने द्वारा उत्पादित सामान से नहीं कर पा रहा है, किन्तु हल्द्वानी की स्थिति थोड़ी बेहतर नजर आती है। हल्द्वानी में सूती खादी का उत्पादन अधिक है एवं बिक्री भी।

प्राथमिक समंको के आधार पर प्राप्त जानकारी : इस क्षेत्र में महिलाओं का वर्चस्व अधिक दिखाई देता है, खासकर कताई के कार्य में संलग्न महिलाओं की संख्या। हल्द्वानी इकाई में 67% महिलाएं व 30% पुरूष कार्यरत है, चनौदा में 71% महिलाए व 29% पुरूष है, दोनों इकाईयों में सबसे अधिक संख्या 40–50 आयु वर्ग की हैं।

शिक्षा का स्तर देखे तो चनौदा के अधिकतर श्रमिक माध्यमिक व हाईस्कूल तक शिक्षा प्राप्त हैं, वही हल्द्वानी के लगभग 28, 29% श्रमिक हाईस्कूल व इण्टर पास हैं। सभी इकाईयों में रोजगार का स्वरूप अंशकालीन है। चनौदा में 84% श्रमिक अंशकालीन तथा 16% पूर्णकालीन रोजगार प्राप्त है। पूर्णकालीन रोजगार में कगतरो की तुलना में बुनकरो की संख्या अधिक है। कलावती कॉलोनी हल्द्वानी में 29% श्रमिक पूर्णकालीन जबकि 71% अंशकालीन रोजगार प्राप्त है।

खादी वस्त्र उद्योग में उद्यमिता एवं कौशल विकास के सम्बन्ध मे सरकार के रूझान के बारें में चनौदा के 68% श्रमिकों का कहना था सरकार का रूझान तटस्थ है, 24% का निष्क्रिय तथा केवल 9% का कहना था कि रूझान सक्रिय है। हल्द्वानी में कार्यरत श्रमिकों में से 50 प्रतिशत श्रमिक ने

तटस्थ, 36% श्रमिकों ने निष्क्रिय एवं केवल 14% सरकार के रूझान को सक्रिय बताते है। अतः यह सिद्व होता है कि कुमाऊँ मण्डल में उद्यमिता एवं कौशल विकास के सम्बन्ध में सरकार का रूझान अधिकत्तर तटस्थ है एवं साथ ही कही ना कही निष्क्रिय होता जा रहा है।

खादी ग्रामोद्योग इकाई चनौदा इकाई के श्रमिकों में से 71 प्रतिशत लोगों ने इस बात को स्वीकारा है कि उत्पादित वस्तुओं में मांग के अनुरूप परिवर्तन नहीं किया जा रहा है तथा 26.6 प्रतिशत श्रमिकों का मानना है कि परिवर्तन किया जा रहा है। कलावती कॉलोनी हल्द्वानी में उत्तर में हाँ कहने वालों का प्रतिशत 21% था एवं इस बात को अस्वीकार करने वालों का प्रतिशत 78.6% था। जबकि वर्तमान में लोग फैशन की ओर अधिक भाग रहे है। खादी में जिस प्रकार के वस्त्र और डिजाइन 20 साल पहले आया करते थे आज भी वे वैसे ही है, समय के साथ कोई नया परिवर्तन देखने को नही मिला है। कुमाऊँ के पर्वतीय क्षेत्र में आयोग द्वारा बनायी योजनाओं का लाभ पहुँच पा रहा है या नहीं इससे सम्बन्धित न्यादर्श क्षेत्रों से कई उत्तर प्राप्त हुए जिनमें चनौदा के श्रमिकों में से 29 प्रतिशत श्रमिकों का जवाब हाँ में, 50 प्रतिशत का नहीं तथा 21 प्रतिशत का उत्तर स्पष्ट नहीं था। हल्द्वानी में कार्यरत कामगारों से उत्तर में नहीं कहने वालों का 31% तथा हाँ कहने वालों का प्रतिशत 43% था।

परिकल्पना का परिक्षणः

1. खादी ग्रामोद्योग इकाई चनौदा में 71% श्रमिकों ने इस बात को स्वीकारा है कि उनके द्वारा उत्पादित वस्तुओं को विदेशी वस्त्रों के सामने प्रतिस्पर्द्वा का सामना करना पड़ रहा है तथा 29% श्रमिकों का मानना है कि सामना नहीं करना पड़ रहा है वही क्षेत्रीय श्री गाँधी आश्रम कलावती कॉलोनी हल्द्वानी में कार्यरत श्रमिकों में से 67% का भी यही मानना था कि अवश्य ही प्रतिस्पर्द्वा का सामना करना पड़ रहा है तथा 33% इस बात को अस्वीकार करने वालों का हैं। इसका कारण वस्तुओं की उच्च गुणवत्ता, सही साइज, डिजाइन, पैकेजिंग, कोमलता व वर्तमान फैशन व मांग के अनुरूप ना होना बताया गया। अतः प्रथम परिकल्पना सत्य सिद्व होती है।
2. न्यादर्श क्षेत्र के श्रमिकों से प्रश्न किया गया कि तकनीकी ज्ञान, कुशल प्रशिक्षण व सही मार्गदर्शन न होने के कारण खादी ग्रामोद्योग का समुचित विकास नहीं हो पा रहा है? इस समबन्ध में चनौदा इकाई के श्रमिकों में से 81% लोग इस बात से सहमत है केवल 13% असमत दिखे। कलावती कॉलोनी हल्द्वानी में कार्यरत श्रमिकों में से 78% श्रमिकों ने सहमती में जताई व 23% श्रमिक इस बात से असहमत थे। सभी इस बात से सहमत है। अतः द्वितीय परिकल्पना भी सत्य सिद्व होती है।

निष्कर्ष : इस क्षेत्र में सबसे बड़ी समस्या जानकारी एवं गुणवत्ता सुधारने के साथ उत्पादकता में वृद्वि की है एवं पर्याप्त वित के अभाव तथा छूट की राशि समय पर प्राप्त ना होने के कारण कोई भी उद्योग अपना सुचारू संचालन एवं विकास कार्य नहीं कर पा रहा है। यहां पर वस्त्र निर्माण में अधिकत्तर हर्षिल ऊन का प्रयोग किया जाता है जिससे निर्मित वस्त्र बहुत खुरदुरे होते है जो वर्तमान में उपभोक्तओं को आकर्षित नहीं कर पा रहे है। न्यादर्श क्षेत्र के अन्तर्गत कार्यरत खादी ग्रामोद्योग इकाईयों में कच्चे माल की प्राप्ति की समस्या है। चयनित इकाईयों में कार्यरत श्रमिक विशेष प्रशिक्षण प्राप्त नहीं है जिससे वर्तमान मांग के अनुरूप वे वस्तुओं का निर्माण नही कर पा रहे है और इसका स्पष्ट प्रभाव उनके कार्यो में देखा जा सकता है, इसमें बदलाव की आवश्यकता है।

सुझावः

1. वर्तमान में कामगारों को अपने हुनर में कुछ अनोखी कलात्मकता लाने की आवश्यकता है, वस्त्रों पर नये पैटर्न बुनने की जरूरत है जिससे उनका व्यवसाय अपनी विशेष छाप छोड़ सके।
2. कंप्यूटर की मदद से इस कार्य को किया जा सकता है, इसके द्वारा वस्त्रों पर अनेक डिजाइन बनाये जा रहे है।
3. नई प्रौद्योगिकी को अपनाकर जलविहिन रंगाई को बढ़ावा दिया जाना चाहिए। इससे जल की भी बचत होगी और यदि वैश्विक स्तर पर कारोबार का विस्तार करना है तो हमें नवीन और विशेष उत्पाद के साथ आना ही होगा।
4. ग्राम्य सेवाओं से जुड़े अधिकारी कर्मचारियों तथा स्थानीय विद्यालयों की वर्दी आदि में स्थानीय स्तर पर बुने कपड़े का उपयोग अनिवार्य करके भी ब्रिक्री सुनिश्चित की जा सकती है।
5. सभी कार्यरत खादी वस्त्र उद्योग इकाईयों को समय पर वित व छूट की राशि उपलब्ध करायी जाये ताकि वे बिना अवरोध अपना कार्य सुचारू रूप से कर सकें।
6. विज्ञापन मनुष्य के मस्तिष्क में गहरा प्रभाव डालते है खासकर दृश्य श्रव्य साधन अतः यदि खादी वस्त्रों के विज्ञापन किए जाये तो वे अवश्य ही इससे खादी वस्त्रों की बिक्री तो बढ़ेगी ही साथ ही इस क्षेत्र में उद्यमिता एवं रोजगार में भी वृद्वि होगी।
7. हस्तशिल्प व परंपरागत हस्तकलाओं की इसी महत्ता को देखते हुए स्कूलों में 'नई तालीम की वकालत की जानी चाहिए जिसमें बच्चों को, पर्यावरण को ध्यान में रखते हुए हस्तशिल्प या उत्पादक कार्य पर केन्द्रित शिक्षा को निःशुल्क व अनिवार्य शिक्षा बनाने का प्रस्ताव मंजूर किया जा सकें, साथ ही इसे आजीविका का सहायक स्त्रोत बनाने हेतु 'नई तालीम' के उक्त प्रस्ताव को अनिवार्य रूप से भी सभी सरकारी, गैर–सरकारी ग्रामीण प्राथमिक विद्यालयों में लागू किया जाना चाहिए क्योंकि किसी भी

क्षेत्र के विकास के लिए सरकार के सहयोग की अत्यन्त आवश्यकता होती है।

वर्तमान में खादी का स्वरूप बदल रहा है, आजादी से पहले खादी को खादी फॉर नेशन कहा जाता था किन्तु अब खादी फॉर फैशन के रूप में देखा जा रहा है, जिसमें उपभोक्ताओं की मांग के अनुरूप परिवर्तन की आवश्यकता है। ग्रामीण जनता काफी मेहनती होती है तथा उन्हें कार्य की इच्छा भी होती है किन्तु उन्हें समुचित सुविधाएं एवं सरकार का प्रोत्साहन नहीं मिल पाता है। यदि सरकार इस सम्बन्ध में थोड़ी तेजी दिखाए तो अवश्य ही वह दिन दूर नहीं जब खादी वस्त्र उद्योग को फिर से आर्थिक आजादी की वर्दी कहा जायेगा।

सन्दर्भ :

1. http://www.upkvib.gov.in,7/04/2020
2. कपूर, गौरव, (अप्रैल 2019), कौशल से निखरती कारीगरी, योजना, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, सूचना भवन, सी. जी. ओ. परिसर, लोधी रोड, नई दिल्ली–110003, पृ. 9.
3. जागृति, (सितम्बर 2015), गरीबी से लड़ने में हथियार बनेगी खादी, खादी और ग्रामोद्योग आयुक्त कार्यालय, ग्रामोद्योग, 3 इर्ला रोड, विले पार्ले, ;पश्चिम), मुम्बई–40056, पृ. 3.
4. प्रो. आराधना, (2015), महात्मा गॉधी के विचार और वर्तमान विश्व, राहुल पब्लिशिंग हाउस 348/6, शास्त्री नगर, मेरठ (यू.पी.), पृ. 315.
5. नेगी, सुनील, (2 अक्टूबर 2018), बागेश्वरी चरखे से काफी प्रभावित हुए थे बापू, ले गए थे अपने साथ वर्धा आश्रम, https://www.jagran.com, उत्तरांचल, बागेश्वर

***

शिक्षा तंत्र और नौकरशाही का बदलता स्वरूप

डॉ. दीप्ति *

व्यक्ति के सर्वोमुखी विकास के लिए शिक्षा सबसे सक्षम उपाय है। शिक्षा मानव की बुद्धि को प्रखर बनाने के साथ–साथ आंतरिक शक्तियों का भी स्वाभाविक विकास करती है। मानव के भीतर और बाहर को उज्जवल बनाने का श्रेय भी शिक्षा को ही जाता है। शिक्षा मानव के शारीरिक विकास के साथ–साथ मानसिक तथा बौद्धिक विकास में भी सहायक सिद्ध होती है। शिक्षा के माध्यम से ही व्यक्ति जीवन संघर्ष में सफलता पा सकता है, परंतु आज 21वीं सदी के परिप्रेक्ष्य में शिक्षा आर्थिक रूप से स्थायित्व का पर्याय बनकर रह गई है। आधुनिक युग में शिक्षा प्राप्ति को केवल नौकरी प्राप्त करने का साधन माना जा रहा है। आज मानव शिक्षा ग्रहण करने तथा नौकरी प्राप्त करने व उसके पश्चात् पग–पग पर प्रमोशन पाने हेतु धर्म, नीति, सत्य, ईमानदारी का संबल छोड़ सिफारिश, चाटुकारिता व रिश्वत का आश्रय ले रहा है। प्रस्तुत शोध–पत्र में लघु कहानियों के द्वारा शिक्षा और नौकरशाही के बदलते स्वरूप को चिन्हित करने का प्रयास है।

संकेताक्षर : शिक्षा तंत्र, नौकरशाही, चाटुकारिता, उच्च आकांक्षाएं, लोभ, मिथ्याडंबर, आत्मगौरव।

समाज की अभिरुचियों व प्रवृत्तियों का साहित्य द्योतक होता है। अपने समकालीन समाज के यथार्थ का अंकन कृतियों में करना साहित्यकार का दायित्व होता है। प्रत्येक मानव को सुसभ्य व सुसंस्कृत बनाने का कार्य शिक्षा के माध्यम से ही आरंभ किया जाता है। शिक्षा आज जीवन में आर्थिक रूप में स्थायित्व होने का पर्याय बन चुकी है। भूमंडलीकरण के दौर में शिक्षा ग्रहण करने के पश्चात् नौकरी प्राप्त करने व सफल होने के लिए सिफारिश, चाटुकारिता व रिश्वत मानव की आधारभूत आवश्यकता बन चुकी है, क्योंकि आज भ्रष्टाचार हमारे समाज की जड़ों में रच बस चुका है। इस कटु यथार्थ पर कई साहित्यकारों ने अपनी लेखनी चलाई है। प्रस्तुत शोध–पत्र में डॉ. मधु संधु की लघु कहानियों–परीक्षा और साक्षात्कार, ब्रीफकेस, पैकेज, अनुशासन, असिस्टैंट, ब्रह्मराक्षस का वरदान द्वारा इस कटु यथार्थ को रेखांकित करने का प्रयास है। हिंदी साहित्य विशेषतया कहानियों के अध्येताओं के लिए डॉ. मधु संधु ने अपनी रचनाओं द्वारा एक नई लीक का निर्माण किया है। डॉ. मधु संधु ने वर्तमान समय को मानसिक रूप से जीते हुए कहानियों के पात्रों को इस प्रकार सृजित किया है कि उनका यथार्थ आज के समाज के यथार्थ की हूबहू अभिव्यक्ति करता है।

'परीक्षा और साक्षात्कार' लघु कहानी के द्वारा होनहार छात्रों के साक्षात्कार में असफल रहने के रहस्य को प्रकट किया गया है। "ऐन्टरेंस

* सहायक हिन्दी प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, हिन्दू कॉलेज, अमतसर, पंजाब।

टेस्ट, हाउस टैस्ट, फाइनल एग्ज़ाम–वह त्रस्त नहीं, व्यस्त होता था। टैस्ट भी हुए, प्रमाण पत्र भी मिल गए। लगता, संघर्ष के दिन चुक गए हैं।..... इन सब के बाद नौकरी के लिए ऐन्टरेंस टैस्ट देते उसे लगा मानों वह वैतरणी पार कर रहा हो।"[1] परंतु विनीत की वास्तविक परीक्षा तो मानों अब शुरू होती है। जो विनीत परीक्षाओं में हमेशा फर्स्ट क्लास फर्स्ट रहता है और गोल्ड मेडलिस्ट बनकर अपनी योग्यता बखूबी सिद्ध करता है, वही विनीत अब निरंतर साक्षात्कारों में असफलता का सामना करता है। "उसकी बौखलाहट का कारण यह भी था कि उससे कहीं कम अंक लेने वाले सहपाठी अच्छे अच्छे पदों पर थे। यह परीक्षाओं और साक्षात्कारों के बीच की सच्चाई थी।"[2] प्रस्तुत लघु कहानी आधुनिक संदर्भ में नौकरी पाने हेतु योग्यता व प्रतिभा की अपेक्षा सिफारिश, भाई भतीजावाद या धन के महत्व को दर्शाती है। ऐसी ही विसंगतियां प्रतिभावान हताश नवयुवकों को उदासी व निराशा के गर्त में धकेल देती है। प्रायः समाचार पत्रों में भी ऐसे कितने ही प्रतिभाशाली गोल्ड मेडलिस्ट बेरोजगार नवयुवकों के आत्महत्या की इक्का–दुक्का खबर पढ़ने को मिल ही जाती है।

'ब्रीफकेस' लघु कहानी 21 वीं सदी के दौर की एक कुप्रवृत्ति 'चाटुकारिता' को चिन्हित करती है। प्रस्तुत लघु कहानी का पुरुष पात्र बचपन से ही ओवरटेक के द्वारा साध्य पाने में निपुण है। बचपन में गली के मोड़ पर समय पर खड़े होकर पिता के हाथ का थैला पकड़कर अपने भाई–बहनों से अधिक प्रेम का हकदार बनता है। बड़े होकर "स्कूल, कॉलेज, विश्वविद्यालय की पढ़ाई के दौरान भी उन्होंने थैले वाले फार्मूले को नहीं भुलाया।"[3] इस प्रकार प्रस्तुत लघु कहानी का पात्र चाटुकारिता का दामन कभी नही छोड़ता है। "थैला और थैले पकड़–पकड़ कर ही उनकी नियुक्ति हुई, प्रोन्नति हुई और आज वे सिंहासनारूढ़ हैं, भले ही थैले का कालांतर में हैंड बैग और फिर ब्रीफ केस में रूपांतर हो गया था।"[4] आज के दौर में चाटुकारिता के बल पर सफलता पाने वाले बेशुमार व्यक्ति हैं, जो भली–भांति जानते हैं कि अकेले परिश्रम व ईमानदारी सफलता पाने के लिए पर्याप्त नहीं है, इनके साथ चाटुकारिता का संबल साध्य पाने के लिए अति आवश्यक है।

'पैकेज' लघु कहानी आधुनिक युग में शिक्षित वर्ग की उच्च आकांक्षाओं के प्रति आकर्षण को व्यक्त करती है। प्रस्तुत लघु कहानी उच्च आकांक्षाओं के पीछे भागते हुए कभी–कभी विपरीत परिस्थितियों में उलझने की सच्चाई व्यक्त करती है जिससे चाह कर भी निकलना नामुमकिन सा लगता है। प्रस्तुत लघु कहानी में गांव में नौकरी के लिए साक्षात्कार देने युवती पहुंचती है। गांव के परंपरागत परिधानों के बीच जीन, कुर्ता, स्पोर्ट्स शूज़, बायोडाटा प्रोफाइल के साथ युवती सबकी नज़रों का आकर्षण बन जाती है। "जिस अट्रेक्टिव पैकेज के लिए वह पक्की नौकरी छोड़ एक प्रायवेट इंस्टीच्यूट में आई थी, उसके पैरामीटर पर खरा न उतरने के कारण कंट्रेक्ट पूरा होते ही उसे मिनटों–सैकंडों में निकाल बाहर किया गया।"[5] अब

प्रायवेट इंस्टीच्यूट में कार्य करने का अभिजात्य, आकर्षक पैकेज और गलत अफवाहे अच्छी नौकरी पाने की राह में बाधा बन जाते है। "बोर्ड ने उसे सप्ताह में दो बार के कंट्रेक्ट पर एक लाख के वार्षिक वेतन पर नियुक्त किया और उसने अपने सर्कल में यह घुमाया कि वह एक लाख महीने के पैकेज पर आई है और एक साल का एडवांस लिया है।"[6] कुछ लोग अधिक पाने की लालसा में अपनी वर्तमान स्थिति से कभी भी संतुष्ट नहीं होते हैं। ऐसे में अधिक पाने की लालसा उन पर बहुत भारी पड़ती है और उच्च आकांक्षाओं व बेहतर भविष्य की तलाश में वे औंधे मुंह जमीन पर गिरते हैं। प्रस्तुत लघु कहानी में लोभ, मिथ्याडंबर व प्रदर्शनप्रियता की यथार्थ कुप्रवृत्तियों पर प्रकाश डाला गया है।

'अनुशासन' लघु कहानी आधुनिक परिप्रेक्ष्य में शिक्षा तंत्र में क्लर्कों की प्रमुख भूमिका को रेखांकित करती है जो दफ्तरों में बैठकर सुबह से शाम तक तीन पांच करते रहते हैं। स्थाई पदों पर आसीन प्राध्यापक भी इन स्थितियों का मज़ा लेने से नहीं चूकते हैं। 'अनुशासन' लघु कहानी का क्लर्क अपनी उपेक्षा से व्यथित प्रतीत होता है। "न कनिष्ठ कर्मचारी उसका सम्मान करते थे, न वरिष्ठ अधिकारी/प्राध्यापक उसकी कद्र करते थे। विद्यार्थियों की अनुशासहीनता का रोना अलग था।"[7] अपनी इस छटपटाहट से कुछ समय के लिए निजात पाने के लिए एक नवागुंतक विद्यार्थी के एडमिशन डेट्स पूछने पर क्लर्क उसे सीनियर प्रोफेसर का नाम व कमरा बताता हुआ उनसे पूछने के लिए कहता है। क्लर्क उसे सही सूचना न देकर भटकाने की कोशिश करता है। स्थाई पदों पर आसीन जूनियर व सीनियर प्राध्यापक भी इस स्थिति का चटकारा लेते हैं। शिक्षा तंत्र से जुड़े कनिष्ठ कर्मचारी अपने मान सम्मान के प्रति अति सजग हैं किंतु कर्तव्यबोध (सही सूचना) देने से आंखें चुराते हुए अपनी हीन भावना को ही हवा देते हैं।

शिक्षा प्राप्ति के पश्चात् प्रत्येक व्यक्ति के मन में अच्छी नौकरी की ख्वाहिश होती है, क्योंकि प्रत्येक शिक्षित व्यक्ति कुर्सी की शक्ति व सामर्थ्य से भलीभांति परिचित होता है। प्रस्तुत 'असिस्टैंट' लघु कहानी कुर्सी के महत्व, असिस्टैंट के आत्मगौरव और साहब की ऐंठी हुई गर्दन को रेखांकित करती है। "कुर्सी पर बैठते ही रीढ़ तन गई। साहब साहब के अनवरत संबोधन से चेहरे पर रुआब आ गया। —— वे सचमुच संतुष्ट थे। आकाश की ऊंचाइयों को छू लेने का आत्मगौरव उन्हें बांध रहा था।"[8] कुर्सी पर बैठकर जो नशा साहब पर चढ़ता है, वह नशीली दवाईयों के सेवन से कहीं अधिक होता है। साहब द्वारा अपने अधीनस्थ को अंगुली पर नचाना बाएं हाथ का खेल होता है। प्रस्तुत लघु कहानी में ऐसे 'साहब' के असिटैंट के महत्व पर प्रकाश डाला गया है जो इन साहबों को आरंभ में काम सिखाते हैं और आजीवन इनका रुआब सहन करने पर विवश होते है। प्रस्तुत लघु कहानी में भी साहब को साहबी की पढ़ाई असिस्टैंट ही सिखाता है। "असिस्टैंट नित्य फाइलों का ढेर लाता, अनेकों पत्र लाता। अदब से खड़ा

होकर एक एक पृष्ठ पलटता। किसी सुलझे हुए गाइड की तरह बोलता जाता– सर! इस पर नोटिस बोर्ड लिख दें। – यह मुझे मार्क कर दें। – इसे फाइल कर दें।..... यह आपके काम का है, फुरसत में देख लें।"[9] प्रस्तुत लघु कहानी साहब की कुर्सी के पीछे के मार्गदर्शक व गुरु असिस्टैंट के महत्व को रेखांकित करती है।

भारतीय परंपरा में गुरु और शिष्य का रिश्ता अत्यंत पवित्र एवं अभिजात माना गया है। कहते हैं कि जब तक गुरु अपना ज्ञान अपने शिष्य तक नहीं पहुंचा देता, तब तक उसकी मुक्ति नहीं हो पाती है। ऐसी स्थिति में वह ब्रह्मराक्षस बनकर रह जाता है। 'ब्रह्मराक्षस का वरदान' लघु कहानी में गुरु के अभिजात रूप का मिथकीय वर्णन है। ब्रह्मराक्षस अपने शिष्य को नीति का ज्ञान देकर मुक्ति प्राप्त करता है। ब्रह्मराक्षस कहता है, "अब तुम न मीटिंग में हारोगे न चीटिंग में, न स्टेज पर हारोगे न इमेज पर, न अर्थ में हारोगे न स्वार्थ में, न तर्क में हारोगे न टरक (टरकाना) में...।"[10] ब्रह्मराक्षस का शिष्य शक्तिशाली और तेजस्वी आचार्य बनता है किंतु कहानी का व्यंग्य उसके नीति ज्ञान पर ही है। ब्रह्मराक्षस के बताए शॉर्टकट मार्ग से उसकी योग्यता की सर्वत्र प्रशंसा होने लगती है। "वाक्युद्ध में बड़ों–बड़ों की बोलती बंद कर देता। नीति पटु होने के कारण वह पल–पल अपनी स्टेटमेंट बदल सबको अपने वश में रखता। उसकी विद्वता, पटुता, कूटता, बौद्धिकता, प्रतिष्ठा, पापुलैरिटी से सज्जन घबराने लगे।"[11] कहते हैं कि सच छिपाए नहीं छिपता है। कुछ देर के लिए सच को अंधेरे में अवश्य रखा जा सकता है, लेकिन एक न एक दिन सत्य सभी के सामने आ ही जाता है। अतः एक दिन शिष्य की भी पोल खुल ही जाती है।

प्रस्तुत शोध–पत्र में शिक्षा प्राप्ति के पश्चात् नौकरी पाने व पग–पग पर प्रमोशन पाकर सफल होने के पीछे के रहस्यों को परत दर परत खोला गया है। फर्स्ट क्लास एवं गोल्ड मेडलिस्ट वाले छात्र शिक्षा प्राप्ति के पश्चात् नौकरी पाने में असफल रहते हैं। कुछ छात्र रिश्वत, सिफारिश एवं चाटुकारिता के बल पर इन योग्य छात्रों को पछाड़कर उच्च पदों पर आसीन हो जाते हैं। प्रस्तुत लघु कहानियों में नौकरी तंत्र की वास्तविकता– जैसे दूसरे की टांग खींचना, नंबर गेम, प्रायवेट इंस्टीच्यूट का पैरामीटर इत्यादि की भी यथार्थ अभिव्यक्ति है। 'ब्रह्मराक्षस का वरदान' लघु कहानी में वर्तमान जीवन की इस विडंबना का चित्रण करने के लिए लेखिका ने कहीं–कहीं मिथकीय संदर्भों को भी चिन्हित किया है। अर्थ, यश, उन्नति ही ध्येय बनकर रह गया है। धर्म और नीति का अवमूल्यन हो गया है। वर्तमान समय में धर्म, नीति, सत्य, ईमानदारी का अतिक्रमण करते हुए इस तंत्र में केवल अर्थ और प्रोन्नति के प्रत्येक अवैध शस्त्र को प्राथमिकता दी जा रही है। प्रस्तुत लघु कहानियां शिक्षा तंत्र और नौकरशाही के बदलते स्वरूप को चिन्हित करने में निसंदेह सार्थक रही हैं।

सन्दर्भ :

1. डॉ. मधु संधु, 'दीपावली @ अस्पताल.कॉम', परीक्षा और साक्षात्कार (नई दिल्ली : अयन प्रकाशन, 2015) पृ. 125.
2. डॉ. मधु संधु, 'दीपावली @ अस्पताल.कॉम', परीक्षा और साक्षात्कार (नई दिल्ली : अयन प्रकाशन, 2015) पृ. 125.
3. डॉ. मधु संधु, 'दीपावली @ अस्पताल.कॉम', ब्रीफकेस (नई दिल्ली : अयन प्रकाशन, 2015) पृ. 117.
4. डॉ. मधु संधु, 'दीपावली @ अस्पताल.कॉम', ब्रीफकेस (नई दिल्ली : अयन प्रकाशन, 2015) पृ. 117.
5. डॉ. मधु संधु, 'दीपावली @ अस्पताल.कॉम', पैकेज (नई दिल्ली : अयन प्रकाशन, 2015) पृ. 126.
6. डॉ. मधु संधु, 'दीपावली @ अस्पताल.कॉम', पैकेज (नई दिल्ली : अयन प्रकाशन, 2015) पृ.126.
7. डॉ. मधु संधु, 'दीपावली @ अस्पताल.कॉम', अनुशासन (नई दिल्ली : अयन प्रकाशन, 2015) पृ. 105.
8. डॉ. मधु संधु, 'दीपावली @ अस्पताल.कॉम', असिस्टैंट (नई दिल्ली : अयन प्रकाशन, 2015) पृ. 127.
9. डॉ. मधु संधु, 'दीपावली @ अस्पताल.कॉम', असिस्टैंट (नई दिल्ली : अयन प्रकाशन, 2015) पृ. 127.
10. डॉ. मधु संधु, 'दीपावली @ अस्पताल.कॉम', ब्रह्मराक्षस का वरदान (नई दिल्ली : अयन प्रकाशन, 2015) पृ. 118.
11. डॉ. मधु संधु, 'दीपावली @ अस्पताल.कॉम', ब्रह्मराक्षस का वरदान (नई दिल्ली : अयन प्रकाशन, 2015) पृ. 118.

***

भारत में महिलाओं की खेलों में सहभागिता का एक अध्ययन

*डॉ. संजय कुमार**

भारत में महिलाओं की स्थिति सदैव एक समाह नहीं रही है। महिलाओं की स्थिति युगानुरुप परिवर्तन होती रही है। भारत में महिलाओं की स्थिति पिछले कुछ सदियों में कई बड़े बदलावों का सामना किया है वहीं खेलों में भी महिलाओं की स्थिति एक सा नहीं रही है। दुनिया के सबसे बड़े खेलों के समारोह में जैसे प्राचीन ओलंम्पिक खेलों में सिर्फ पुरुष खिलाड़ियों को खेलों में हिस्सा लेने की इजाजत थी। महिलाएं सिर्फ उन घोड़ों को अपना नाम दे सकती थी, जो ओलंम्पिक खेल में हिस्सा लेते थे। आधुनिक ओलंम्पिक के जन्मदाता बैरन पियर डी. कुर्बटीन का भी मानना था कि खेलों में महिलाओं को शामिल करना अव्यावहारिक, गलत और बोरिंग होगा। लेकिन सन् 1900 के पेरिस ओलंम्पिक में प्रथम बार महिलाओं को खेलों में भागीदारी की इजाजत मिली, जिसमें 19 विभिन्न खेलों में 1330 खिलाड़ी प्रतिभाग कियें, साथ ही साथ 11 महिलाएं खिलाड़ी भी प्रतिभाग की। जिसमें दो खेलों जैसे टेनिस और गोल्फ में भाग लिया, सन् 1900 में पेरिस (फ्रांस) ओलंम्पिक में महिलाओं की सहभागिता केवल 2.2% थी, आज वहीं 2016 के ब्राजील ओलंम्पिक में 45% महिलाओं की सहभागिता हो गयी है, समय बीतने के साथ–साथ ओलंम्पिक खेलों में महिलाओं की सहभागिता निरन्तर रुप से बढ़ी, और 100 वर्ष के पश्चात् अर्थात् 2000 सिडनी ओलंम्पिक खेलों में महिलाओं की सहभागिता की संख्या 4069 तक बढ़ गई। इन ओलंम्पिक खेलों में 199 देशों से आये कुल 10500 खिलाड़ियों ने भाग लिया, जिसमें से 38.2% महिलाएं थी। महिलाओं की इतनी संख्या उस समय का किर्तिमान था। 2008 में बीजिंग ओलंम्पिक खेलों में 205 देशों के कुल 10700 खिलाड़ियों ने प्रतिभाग किया, जिसमें से 4637 महिलाएं थी जिनकी प्रतिशतता 42.4% थी, जबकि भारत की केवल 23 महिलाओं ने लन्दन ओलंम्पिक (2012) भाग लिया। सन् 2012 के लंदन ओलंम्पिक खेलों में 10960 खिलाड़ियों ने 205 देशों से भाग लिया और उसमें से 4862 महिलाएं थीं। जिनका प्रतिभाग करने की प्रतिशत पहले के अपेक्षाकृत बढ़कर 44.36% हो गयी। प्रथम बार ओलंम्पिक खेलों में महिला मुक्केबाजी को शामिल किया गया। सन् 2008 के बीजिंग ओलंम्पिक खेलों में भारत से 26 महिलाएं प्रतिभाग किया। सन् 1952 के हेलसिकी ओलंम्पिक खेलों में पहली भारतीय महिला ने भाग लिया और पुरुषों की स्थिति कुश्ती में एक कांस्य पदक तथा हॉकी में स्वर्ण पदक से संतोष करना पड़ा। सन् 2000 के सिडनी ओलंम्पिक में भारोत्तोलन में कास्य पदक जीतने वाली कर्णम

* सहायक प्रोफेसर (शारीरिक शिक्षा), श्री महंथ रामाश्रय दास पी.जी. कालेज, भुड़कुड़ा, गाजीपुर

मल्लेश्वरी पहली भारतीय महिला बनी। भारत की आइरन लेडी कर्णम मल्लेश्वरी ने सिडनी ओलंम्पिक 2000 में स्नेच में 110 किलो और क्लीन में 130 किलो वजन उठाया। लगभग डेढ दशक के अपने कैरियर में कर्णम मल्लेश्वरी ने एक ओलंपिक कास्य पदक तथा 6 राष्ट्रीय रिकार्डो सहित 41 स्वर्ण पदक, 15 रजत पदक तथा 08 कांस्य पदक जीते है। वर्ष 2012 के लंदन ओलम्पिक खेलों में साइना नेहवाल तथा एम0सी0 मेरीकॉम, प्रत्येक ने एक–एक कांस्य पदक जीतकर भारत वर्ष के ताज में रंगीन पँख लगा दियें।

आज भारत के महिला खिलाड़ियों को प्रोत्साहित करने के लिए भारत सरकार (भारतीय खेल मंत्रालय) द्वारा ग्रामीण स्तर से विश्व स्तरी तक महिला खेलों का उत्थान किया जा रहा है। इंडिया स्पेंड द्वारा संकलित किए गये आकड़ों के अनुसार भारत भर में, इस तरह का समर्थन बढ़ रहा है। और ग्रामीण स्तर से लेकर ब्लाक स्तर, जिला स्तर, राज्य स्तर और राष्ट्रीय स्तर के खेल प्रतियोगिताओं में महिलाओं की भागीदारी निरंतर बढ़ रही है पिछले चार सालों में यही महिला प्रतिभागी लगभग 32.8% तक बढ़ कर हो चुकी है। खेल और शिक्षा का यह समन्यवय भागीदारी बढ़ाने का मुख्य कारण है, सन् 2009 के Right to Education Acts (शिक्षा का अधिकार अधिनियम) द्वारा हर स्कूल में खेल सुविधाओं का होना अतिआवश्यश्क किया गया है, और सरकारी शिक्षा प्रणाली और केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड (CBSE) के अन्तर्गत खेलों को अनिवार्य बनाया गया है। यही जमीनी स्तर का प्रोत्साहन महिलाओं में खेल–कूद के प्रति उत्साह को बढ़ावा दे रही है। पंचायत युवा क्रीड़ा एवं खेल अभियान (PYKKA) योजना जो खेल मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा संचालित की जाती है, के अन्तर्गत प्रतियोगिताओं में राज्यवार प्रतिभागी 2013–14 में बजट में गिरावट के बावजूद, खेलों में ग्रामीण महिला भागीदारी वर्ष 2008–09 में 249190 से बढ़कर 2013–14 में 1.07 मिलियन तक हो गई है। पंचायत युवा क्रीड़ा एवं खेल अभियान (PYKKA) के अनुसार प्रत्येक पंचायत में एक लाख रु0 तथा प्रत्येक ब्लाक में 5 लाख रुपये खेल मैदान, उपकरण, और सुविधाओं पर खर्च करने के लिए प्राविधान था, जिसमें भारतीय केन्द्र सरकार द्वारा 90% तथा राज्य सरकार द्वारा 10% राशि खर्च करती है। इसी कारण पंचायत युवा क्रीड़ा एवं खेल अभियान–योजना के प्रोत्साहन से ही खेलों में महिलाओं की प्रतिभागी प्रतिशतता लगभग 53% रही है। बाढ़ में पंचायत युवा क्रीड़ा एवं खेल अभियान को ही राजीव गांधी खेल आन्दोलन/अभियान (RGKA) कहा गया। यही RGKA गांवों में खेल अवसंरचना के लिए पूंजी देता है और ब्लाक, जिला, राज्य और राष्ट्रीय स्तर पर होने वाली वार्षिक प्रतियोगिता को बढ़ावा देता है। लेकिन महिला खिलाड़ियों के लिए अलग से बजट नहीं है लेकिन भारत सरकार द्वारा तटस्थ कार्यक्रमों के तहत 30% तक का न्यूनतम व्यय महिलाओं के लिए आवंटित किया गया है। अब महिलाओं के बीच खेलों को बढ़ावा देने के लिए 1975 में शुरु की गयी

राष्ट्रीय महिला चैम्पियनशीप को अब राजीव गांधी खेल संघ के साथ एकीकृत कर दिया गया है और यह निम्नलिखित सहायता प्रदान करती है–

जिला स्तरीय पर 2.4 लाख प्रति जिला (20000 रु0/आइटम, 12 आइटम के लिए) राज्य स्तरीय पर 1 लाख/प्रति जिला, 12 आइटम के लिए तथा राष्ट्रीय स्तर पर – 10 लाख रु0 प्रति आइटम के लिए राशि प्रदान करती है।

सत्र 2013–14 में पंचायती युवा क्रीड़ा एवं खेल अभियान और राजीव गॉधी खेल अभियान कार्यक्रम के तहत कर्नाटक 163520 महिलाएं प्रतिभागियों के साथ शीर्ष स्थान पर रही, वहीं 158836 महिला प्रतिभागिओं के साथ महाराष्ट्र दूसरे स्थान पर, तमिलनाडु 134790 तथा गुजरात 101497 और मघ्य प्रदेश 88116 महिला प्रतिभागियों के साथ पाँचवें स्थान पर रही है। वर्तमान में (2018) PYKKA निम्नलिखित राष्ट्रीय खेल संघों को संचालित करती है– Amateur Soft Tennis Federation of India, Atheletic Federation of India, Atya - Patya Federation of India, Badminton Association of India, Ball Badminton Federation of India, Amateur Baseball Federation of India, Basketball Federation of Indian Billiards and Snookers Federation of India, Indian Body Builders Federation of India, Boxing Federation of India, Bridge Federation of India, All India Chess Federation Hall No. 70, Jawaharlal Nehru Stadium, Periamet, Chennai, Cycling Federation of India, All India Sports Council of the Deaf, New Delhi, Equestrian Federation of India, Fencing Association of India, All India Football Federation, New Delhi, Handball Federation of India, Hockey India, Mohan Co-operative Industrial Estate New Delhi, Judo Federation of India, Amateur Kabaddi Federation of India, Indian Kayaking and Canoeing Association, Kerolbag, New Delhi, Karate Association of India, Kho-Kho Federation of India, Net ball Federation of India, Mallakhamb Federation of India, The Federation of Motor Sports Clubs of India, All India Tennis Association R. K. Khanna Stadium New Delhi, Panalympic Committee of India , Bangalore, Indian Polo Association New Delhi,, Roll Ball Federation of India, Maharastra, Roller Skating Federation of of India, Kolkata, Rowing Federation of India, Mumbai, Indian Rugby Football Union Mumbai, Maharastra, School Games Federaiton of India Agra, Sepaktakraw Federation of India, New Delhi, National Rifle Association of India, New Delhi, Shoftball Association of India, Indore, Special Olympics Bharat, New Delhi, Squash Racket Federation of India, Chennai, Tamilnadu, Swimming Federation of India, Ahmedabad Gujrat, Table Tennis Federation of India New Delhi, Tenni-Koit, Federation of India, Rajasthan, Ten-Pin Bowling Federation of India Chennai, Tamil

Nadu, Indian Triathlon Federation, Chennai, Tamil Nadu, Tug of War Federation of India, New Delhi, Volleyball Federation of India, Chennai, Tamil Nadu, Indian Weightlifting Federation New Delhi, Wrestling Federation of India, Ndw Delhi, Wushu Association of India, Lucknow, Yachting Association of India, New Delhi, Indian Pencak Silat Federation of Jammu and Kashmir, Cycle Polo Federation of India, Rajasthan.

इसके अतिरिक्त राष्ट्रीय स्तर के खेल उन्नयन के लिए निम्नलिखित राष्ट्रीय खेल उन्नयन संघ (National Sports Promotion Organisation) बढ़ावा दे रही है जो निम्नलिखित है। 1- "Jawaharlal Nehru Hockey Tournament Society, New Delhi 2- Subroto Mukherjee Sports Education Society, New Delhi, 3.-Ice Hockey Association of India, New Delhi, 4- Association of Indian Universities, New Delhi, 5- Central Board of Secondary Education Delhi, इत्यादि।

पीछले चार सालों में पंचायती युवा क्रीड़ा एवं खेल अभियान (PYKKA)/ राजीव गाँधी खेल अभियान (RGKA) के अर्न्तगत 148 करोड़, रुपये प्रतियोगिताओं के लिए खर्च किये है इसमें से 10% खर्च केवल महिलाओं के लिए खर्च किये हैं। और 357 करोड़ रुपये ग्रामीण खेलकूद की बुनियादी सुविधाओं के लिए भारत सरकार खर्च किये। खेल–कूद के बुनियादी ढाँचे, जो अब भारत के खेलों को स्वरुप देने के लिए जरुरी होता जा रहा है, विशेष रुप से महिलाओं के लिए खेल–कूद की महत्ता को स्वीकारते हुए भारतीय केन्द्र सरकार ने मणिपुर में एक खेल विश्वविद्यालय स्थापित करने के लिए सत्र 2014–15 के बजट में 100 करोड़ रुपये निर्धारित किए है। जिसके फलस्वरुप भारत की महिलाएं ओलंम्पिक खेलाो, विभिन्न खेलों के विश्वकप प्रतियोगिता, राष्ट्रमण्डल खेलों, एशियाई खेलों, सैफ (SAF) खेलों और राष्ट्रीय स्तर के खेलों में अपना परचम लहराने का कार्य किया है। हमारे देश की कुछ विशिष्ठ महिला खिलाड़ी अपने देश से बाहर जाकर देश का नाम रौशन किया और मेडल प्राप्त किये है, सन् 1984 के लॉस एन्जल्स ओलंम्पिक में पी.टी. ऊषा (उड़नपरी/स्वर्ण वालिका) 400 मीटर बाघा दौड़ के फॉइनल में पहुँच कर अपनी श्रेष्ठता सिद्ध कर दिया। इन्होंने राष्ट्रीय स्तर के स्कूली खेलों में लमबी कूद, ऊँची कूद, 100 मीटर, 200 मीटर तथा 60 मीटर बाघा दौड़ में पुरस्कार प्राप्त किया, सन् 1983 में एशियन एमेच्योर चैम्पियनशीप प्रतियोगिता (कुबैत) में 400 मी0 दौड़ में स्वर्ण पदक तथा 400 मी0 बाघा दौड़ में रजत पदक जीता। 1986 में (सियोल) में आयोजित 10वें एशियाड में 4 स्वर्ण पदक तथा 1 रजत पदक जीता। इसके अतिरिक्त ये एशिया की ऐसी प्रथम धाविका बनी जिन्होंने 200 मी0, 400 मी. एवं 400 मी0 बाघा दौड़ में अकेले तीन स्वर्ण पदक जीते है। और जर्काता में आयोजित छठवीं एशियन ट्रेक एण्ड फिल्ड चैम्पियनशीप प्रतियोगिता में 100

मी0, 200 मी0, 400 मी0 बाघा दौड़, 4x400 मी0 रिले दौड़ में स्वर्ण पदक अर्जित किये। पुसरला वेंकट सिंधु – शटलर ने अपने खेल को उस समय ग्लोबल लीग तक पहुंचाया जब आप 2016 ओलंम्पिक के बैडमिंटन खेल में रजत पदक जीतने वाली पहली भारतीय महिला खिलाड़ी बनीं, और 2016 में ओलम्पिक के फाइनल में पहुंची। फाइनल में सिंधु ने स्पेन की नम्बर 1 खिलाड़ी कैरोलीना मैरिन को कड़ी टक्कर दी। आप इस समय बीडब्ल्यूएफ की विश्व रैंकिंग में नम्बर 2 पर हैं। इन्होनें 08 साल की छोटी सी उम्र में बैडमिंटन खेलना प्रारंभ किया और 2001 में आल इंडिया ओपन बैडमिंटन चैम्पियनशीप जीती। इसके बाद 02 अप्रैल 2017 को आयोजित इंडिया ओपन सुपर सीरिज में जीत हासिल करने के बाद आपने अपने कैरियर की सबसे अच्छी रैंक हासिल की।

हीना सिद्धू– अभी तक अजेय रिकॉर्ड के साथ पूर्व में विश्व की नम्बर 1 (2014) में खिलाड़ी, अर्जुन पुरस्कार विजेता (2014) दो बार ओलम्पियन, लंदन ओलम्पिक (2012), और रियो ओलम्पिक (2016) की प्रतिभागी और रीनिंग एशियन चैम्पियन हैं। आपने 2015 में कुवैत में एशियाई शूटिंग चैम्पियनशीप में स्वर्ण पदक जीता। आपने 2010 में नई दिल्ली में आयोजित राष्ट्र मंडल खेल में स्वर्ण एवं रजत पदक जीता। आप 2010 और 2014 के दो लगातार एशियाई खेल की कांस्य पदक विजेता भी हैं तथा आपने विश्व कप में अनेक पदक जीते हैं, जिसमें वर्ल्डकप फाइनल म्यूनिख में 2013 में वर्ल्ड रिकॉर्ड के साथ स्वर्ण पदक शामिल है।

सुनील डबास– इनका जन्म मोहम्मदपुर माजरा, जिला झज्जर, हरियाणा में हुआ। आपने द्रोणाचार्य पुरस्कार, 2012 जीता, जो स्पोर्ट्स में कोचिंग के क्षेत्र में उत्कृष्टता के लिए माननीय राष्ट्रपति द्वारा दिया जाने वाला सर्वोच्च पुरस्कार है। आप भारतीय कबड्डी में द्रोणाचार्य पुरस्कार 2012 प्राप्त करने वाली महिला महिला कोच बनीं। 2014 में हरियाणा सरकार ने आपको स्पोर्ट्स वूमन अचीवर्स पुरस्कार से नवाजा। आपको 2014 में पद्मश्री पुरस्कार प्रदान किया गया। इस प्रकार, आप अब तक की भारत की पहली और एकमात्र महिला हैं, जिनको भारत के माननीय राष्ट्रपति से द्रोणाचार्य पुरस्कार और पद्मश्री पुरस्कार दोनों प्राप्त हुए हैं। इसके लिए आपका नाम प्रतिष्ठित लिम्का बुक ऑफ रिकार्ड्स 2016 में शामिल किया गया।

भाग्यश्री थिप्से– इन्हें 5 बार राष्ट्रीय महिला शतरंज चैम्पियनशिप जीती है। आपने 1991 में एशियाई महिला शतरंज में स्वर्णपदक और 1996 में रजत पदक जीता। आपने राष्ट्रमंडल महिला शतरंज में 1999 में स्वर्ण पदक और 1991, 1994 एवं 2001 में रजत पदक जीता। आपने 1993 और 1995 में एशियाई क्षेत्रीय शतरंज में भी स्वर्ण पदक जीता। भाग्यश्री ने 09 बार चेस ओलंम्पियाड में भारत का प्रतिनिधित्व किया है। आप 1986 में महिला ग्रैंड मास्टर का नाम बनाने वाली पहली महिला हैं। आपने 1986 में एफआईडीई द्वारा इंटरनेशनल वूमन मास्टर की पदवी जीती। थिप्से को 1987 में पद्मश्री

एवं अर्जुन पुरस्कार और 1990 में महाराष्ट्र गौरव पुरस्कार से भी पुरस्कृत किया गया है।

बुला चौधरी चक्रवर्ती– इनका जन्म 02 जनवरी, 1970 में पश्चिम बंगाल में हुआ। जब इनकी आयु 2 साल थी तभी आपने तालाब में तैराकी शुरू कर दी। 09 साल की आयु में आपने जूनियर नेशनल चैम्पियनशिप में 06 स्वर्ण पदक जीते। 12 साल की आयु में आपने 1982 में एशियाई खेल में भाग लिया और राष्ट्रीय रिकॉर्ड के साथ चौथा स्थान हासिल किया। आपने दो एशियाई खेलों, दो एशियाई तैराकी चैम्पियनशिप, एशिया प्रशांत मीट, मिनी ओलम्पिक, सैफ गेम्स, राष्ट्रीय चैम्पियनशिप (जूनियर एवं सीनियर में भाग लिया तथा राष्ट्रीय चैम्पियनशिप में आपके रिकार्ड 21 साल तक नहीं टूटे। आपने दो सैफ गेम्स में 10 स्वर्णपदक जीते। आप विश्व में एकमात्र ऐसी महिला हैं जिन्होंने 5 महाद्वीपों के 7 समुद्रों में तैराकी की है।

गीता फोगाट– गीता हरियाणा के भिवानी जिले के बलाली गांव की हैं। आपके पिता महावीर सिंह फोगाट जो स्वयं पूर्व पहलवान और द्रोणाचार्य पुरस्कार विजेता हैं, आपके कोच भी हैं। गीता फोगाट ओलंम्पिक समर गेम्स के लिए क्वालिफाई करने वाली पहली भारतीय महिला पहलवान हैं। आप 2010 में राष्ट्रमंडल खेलों में कुश्ती में स्वर्ण पदक जीतने वाली पहली भारतीय महिला हैं। गीता फोगाट चर्चा में पहली बार उस समय आई जब आपने दिल्ली में आयोजित राष्ट्रमंडल खेल, 2010 में स्वर्णपदक जीता और फिर 2012 में ओलम्पिक के लिए क्वालिफाई करने वाली पहली भारतीय महिला पहलवान बनीं। आपने विश्व चैम्पियनशिप 2012 में कांस्य पदक भी जीता है।

साक्षी मलिक– भारतीय फ्री स्टाइल पहलवान साक्षी मलिक समर ओलंम्पिक 2016 में 58 किलो वर्ग में कांस्य पदक जीत कर और ओलंम्पिक में पदक जीतने वाली पहली भारतीय महिला बनीं। आप ओलंम्पिक पदक जीतने वाली चौथी भारतीय महिला एथलिट भी हैं। रियो में कांस्य पदक से पहले आपकी सबसे बड़ी उपलब्धि ग्लासगो, स्कॉटलैंड में राष्ट्रमंडल खेल 2014 में थी, जहां आपने 58 किलो वर्ग में रजत पदक जीता था। आपने 9 माह बाद दोहा में 60 किलो वर्ग में वरिष्ठ एशियाई कुश्ती चैम्पियनशिप में कांस्य पदक भी जीता। 2017 में साक्षी ने नई दिल्ली में वरिष्ठ एशियाई कुश्ती चैम्पियनशिप में महिलाओं के 60 किलो वर्ग में रजत पदक जीता।

दीपा कर्माकर – 22 वर्ष की उम्र में वर्ष 2016 में रियो ओलंम्पिक के लिए क्वालिफाई करने वाली पहली महिला जिमनास्ट बन गईं। विगत में, आज से 52 वर्ष पूर्व ग्रीष्मकालीन खेलों में भारतीय जिम्नास्ट ने अपना प्रदर्शन दिखाया था। आप वर्ल्ड जिमनास्टिक चैम्पियनशिप 2015 के फाइनल के लिए क्वालिफाई करने वाली पहली भारतीय महिला भी बनी। वर्ष 2014 में आयोजित ग्लासगो कॉमनवेल्थ गेम्स में आपकी पहली बार प्रशंसा की गई जब आपने कांस्य पदक जीत कर इतिहास में पहली भारतीय महिला के तौर

पर अपना नाम दर्ज किया है। आपने उसी वर्ष, जापान के हिरोशिमा में एशियाई चैम्पियनशिप में कांस्य पदक जीता है।

भक्ति शर्मा – राजस्थान की यह तैराकी की खिलाड़ी है इन्होंने अंटार्कटिका के बहुत ठंडे जल ($1^{o}C$) में 2015 में सबसे अधिक दूरी (2.28 Km) की तैराकी करके विश्व रिकार्ड बनाया है।

लद्दाख की महिलाएं अब तक की पहली भारतीय राष्ट्रीय महिला आईस हॉकी टीम है जो IIHF आईस हॉकी चैलेंज कप ऑफ एशिया 2016 में देश का प्रतिनिधित्व किया। तथा बैंकॉक में आयोजित चैलेंज कप ऑफ एशिया 2017 में फिलिपिन्स को मात देकर इतिहास रच दिया।

ममता देवी – पहली महिला है जिन्होंने बॉडी बिल्डिंग के क्षेत्र में अर्न्तराष्ट्रीय पदक जीते है। इन्होंने उजबेगिस्तान (2015) में 49वें एशियाई वॉडी विल्डिंग चैम्पियनशीप में स्वर्ण पदक, सीओल, दक्षिण कोरिया में 51वीं एशियाई बॉडी विल्डिंग चैम्पियनशीप में रजत पदक, और 2012 में चौथी डब्ल्सूबीपीएफ विश्व चैम्पियनशीप, बैंकॉक में भी कांस्य पदक जीतकर अपने देश का गौरव बढ़ाया है।

डायना इदुलजी – भारतीय महिला क्रिकेट टीम की पहली O.D.I. कैप्टन थी इन्होंने 1975 से 1995 तक की क्रिकेट कैरियर में 1978, 1982 और 1993 के विश्वकप खेला और 1978 और 1993 के विश्वकप में क्रिकेट टीम की कैप्टन रही है। ये पहली महिला क्रिकेटर है जिनकों पुरुष रेलवें रणजी टीम के लिए भारतीय रेलवे चयन समिति के सदस्य होने के साथ–साथ भारतीय क्रिकेट कन्ट्रोल बोर्ड (BCCI) के चयन पैनल में नामित किया गया था। इन्हें 1983 में अर्जुन पुरस्कार तथा 2002 में पद्मश्री पुरस्कार से नवाजा गया है।

अलिशा अब्दुल्ला – अलिशा अब्दुल्ला भारत की पहली एफ1 महिला रेसर और भारत की पहली महिला राष्ट्रीय रेसिंग चैम्पियन, एक सुपर बाइक रेसर और सबसे तेज भारतीय कार रेसर हैं। जब इनकी आयु 8 साल थी तभी से अपना रेसिंग कैरियर आरम्भ किया। परन्तु जब वह 18 साल की थी, तो इनके पिता ने इन्हें 600सीसी सुपर बाइक दी तथा अब्दुल्ला का कैरियर शुरु हो गया। 25 साल की आयु में रेसिंग ट्रैक पर 13 साल बिताने के बाद अब्दुल्ला 80–90 ट्रॉफिया जीती जिसमें एमआरएफ राष्ट्रीय गो–कार्टिंग चैम्पियनशीप तथा खुली श्रेणी में राष्ट्रीय स्तर की फार्मूला कार रेसिंग में बेस्ट नोविस अवार्ड शामिल है। आगे चलकर अलिशा ने फार्मूला कार रेसिंग शुरु की तथा जेके टायर नेशनल चैम्पियनशिप, 2004 में पांचवां स्थान प्राप्त किया।

साइना नेहवाल – साइना भारत से पेशेवर बैडमिंटन खिलाड़ी है। ये एकमात्र ऐसी भारतीय हैं, जिन्होंने बीडब्लूएफ के प्रत्येक प्रमुख व्यक्तिगत् टूर्नामेंट में कम से कम एक पदक जीता है। आप एकमात्र भारतीय खिलाड़ी है जिन्होंने बीडब्ल्यूएफ वर्ल्ड जूनियर चैम्पियनशिप जीती है। वर्ष 2006 में नेहवाल

4–स्टान टूर्नामेंट जीतने वाली पहली भारतीय महिला तथा सबसे युवा एशियाई बनीं। इन्हें सुपर सीरीज टाइटल जीतने वाला पहला भारतीय होने का भी गौरव प्राप्त है। 2016 में भारत सरकार ने इन्हें पद्मभूषण पुरस्कार से सम्मानित किया। इससे पूर्व राष्ट्र के दो शीर्ष खेल सम्मान राजीव गांधी खेल रत्न और अर्जुन पुरस्कार भी भारत सरकार द्वारा आपको प्रदान किया गया है।

एमसी मैरी कॉम – 14 नवम्बर, 1982 को जन्मी युंगनेजेंग मैरी कॉम 5 बार विश्व अमेचर बॉक्सिंग चैम्पियनशीप जीत चुकीं है, तथा 6 विश्व चैम्पियनशीप में से प्रत्येक में पदक जीतने वाली एकमात्र महिला मुक्केबाज है। ''मैग्निफिशेंट मैरी'' के रूप में विख्यात मैरीकॉम लाइटवेट (51 किलो) श्रेणी में समर ओलंम्पिक 2012 के लिये क्वालीफाई करने और कांस्य पदक जीतने वाली एकमात्र भारतीय महिला मुक्केबाज हैं। एआईबीए की विश्व महिला रैकिंग लाइटवेट श्रेणी में इन्हें चौथा स्थान भी प्राप्त है। इन्होंने इनचियान, दक्षिण कोरिया में 2014 में एशियाई खेलों में स्वर्ण पदक प्राप्त करने वाली पहली भारतीय महिला मुक्केबाज है।

सुनीता शर्मा – सुनीता शर्मा वर्ष 2004–05 में प्रतिष्ठित द्रोणाचार्य पुरस्कार से सम्मानित की जाने वाली प्रथम महिला हैं इन्होनें राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर कई श्रेष्ठ क्रिकेटर तैयार किए हैं जिन्होंने देश के लिए ख्याति अर्जित की है।

आपने भारतीय खेल प्राधिकरण के क्रिकेट कोच के रूप में 35 वर्षो तक अपनी सेवाएं प्रदान की है। इसके अलावा टी 20 वर्ल्ड कप 2016 के दौरान भारतीय महिला क्रिकेट टीम की प्रबंधक, श्रीलंका सीरीज–एशिया कप 2016, ऑस्ट्रेलिया में आयोजित 'ऑस्ट्रेलिया सीरीज' और प्रबंधक के तौर पर और एशिया कप में 'टी–20 चैम्पियंस में' कोच एवं मैनेजर के तौर पर भारतीय महिला टीम के साथ रहीं। श्रीलंका में आयोजित विश्व कप क्वॉलिफाई 2017 के लिए भारत महिला क्रिकेट टीम के प्रबंधक के रूप में कार्य किया और उन्होंने मैच जीता।

मिताली राज – भारतीय महिला क्रिकेट टीम की कप्तान मिताली राज महिला एक दिवसीय क्रिकेट में 6000 से अधिक रन बनाने वाली पहली खिलाड़ी बन गई है। आपने आस्ट्रेलिया के विरूद्ध भारत के आईसीसी महिला विश्व कप 2017 में उपलब्धि हासिल की है। अब इन्होनें ने इंग्लैंड की चार्ली एडवर्ड्स के पिछले रिकार्ड को तोड़कर महिला क्रिकेट में उच्च स्कोर प्राप्त करने वाली पहली भारतीय महिला खिलाड़ी बन गई हैं।

सानिया मिर्जा – सानिया भारत की टेनिस खिलाड़ी है, जो महिला डबल रैकिंग में प्रथम रैंक पर रही है। आप का भारत में महिला खिलाड़ियों में सबसे ऊपर स्थान है और आप वर्ष 2007 के मध्य एकल कैरियर में विश्व में 27वॉ रैंक प्राप्त करने में सफल रहीं। आपने डबल क्षेत्र में मेहनत की जहां आप विश्व में प्रथम रैंक प्राप्त करने में सफल रहीं। आपने सिंगल प्रो–लेवल

टाईटल जीतने के साथ–साथ, छह बड़े खिताब जीते (महिला डबल और मिक्सड डबल प्रत्येक में तीन) तथा स्वदेश में महिला टेनिस में प्रथम बार प्राप्त किया।

विजयलक्ष्मी सुब्बारमण – विजयलक्ष्मी सुब्बारमण भारत की ऐसी प्रथम महिला है जिनके पास वूमन ग्रांड मास्टर तथा इन्टरनेशनल मास्टर के फाइड टाइटल्स हैं। इन्होंने चैस ओलंम्पियाड्स में भारत के लिए किसी अन्य खिलाड़ी की तुलना में सबसे ज्यादा मैडल जीते। इनको वर्ष 1996 में चेन्नई में आयोजित फाइड जोनल टूर्नामेंट में महिला इन्टरनेशनल मास्टर का टाइटल से नवाजा गया था। विजयलक्ष्मी वर्ष 2001 में महिला ग्रांड–मास्टर (WGM) का तमगा हासिल करने वाली प्रथम भारतीय महिला बनी। आपने वर्ष 2000 में आयोजित चैस ओलम्पियाड में इन्टरनेशनल मास्टर का टाइटल भी जीती है। वर्ष 2001 में भारत सरकार ने आपको अर्जुन पुरस्कार से सम्मानित किया।

अंजुम चोपड़ा – पद्मश्री और अर्जुन पदक विजेता अंजुम चोपड़ा ने 2002 में दक्षिण अफ्रीका में अपनी पहली टेस्ट सिरीज़ में भारत का नेतृत्व किया और जीत भी हासिल की। वे देश की पहली खिलाड़ी हैं जिन्होंने एक दिवसीय इन्टरनेशनल शतक बनाया है और भारत के लिए 100 से ज्यादा एकदिवसीय अन्तर्राष्ट्रीय मैचों में खेली हैं। ये एशिया से पहली महिला खिलाड़ी होंगी जिन्हें प्रतिष्ठित मार्लेबॉन क्रिकेट क्लब (एमसीसी) लॉडर्स क्रिकेट ग्राउंड, लंदन द्वारा मानद आजीवन सदस्यता प्रदान की गई है। अंजुम ने दिल्ली पब्लिक स्कूल, आर.के.पुरम., स्टीफन कालेज, दिल्ली विश्वविद्यालय तथा फॉर स्कूल ऑफ मैनेजमेंट, दिल्ली से एमबीए किया है। विख्यात खिलाड़ी, सलाहकार, प्रेरणादायक प्रवक्ता, लेखिका और अभिलेत्री रही अंजुम ने अभिव्यक्ति के कई क्षेत्रों में अपनी प्रतिभा का लोहा मनवाया हैं उन्हें महिला क्रिकेट की चेहरे के रूप में ज्यादा माना जाता है।

कविता देवी – एक जानी मानी पावर लिफ्टर है इन्होंने 2016 दक्षिण एशियाई खेलों में भारत का प्रतिनिधित्व किया था।

मिशेल काकडे – स्वर्णिम चतुर्भुज को सबसे तेज गति से पद यात्रा करने वाली पहली भारतीय महिला हैं वर्ष 2010 में सहारा मरूस्थल में 254 किलोमीटर की मैराथन को 6 दिन में पूरा करने वाली पहली भारतीय महिला हैं। लिम्का बुक रिकार्ड्स ने उनकी उपलब्धियों को मान्यता प्रदान की। किसी भी भारतीय द्वारा सबसे अधिक मरूस्थलीय अल्ट्रा मैराथन, स्वर्णिम चतुर्भुज की सबसे कम समय में पैदल यात्रा पूरी करने वाली भारतीय महिला के रुप में इनका नाम दर्ज है। वर्ष 2016 में ही भारतीय स्वर्णिम चतुर्भुज की 5968.4 किलोमीटर की दूरी को पैदल 193 दिन एक घंटा, नै मिनट में पूरी करके गिनिज बुक ऑफ वर्ल्ड रिकार्ड में अपना नाम दर्ज करायी।

खेलो की दुनिया में अब हरियाणा, पंजाब, केरल ही नहीं बल्कि उत्तर प्रदेश की बेटिया भी नये–नये कीर्तिमान स्थापित कर रही है। उत्तर

प्रदेश की महिला खिलाड़ियों ने देश–दुनियां में भारत का नाम रोशन कर रही है, बात चाहे क्रिकेट की हो, एथलेटिक्स की हो या फिर किसी दूसरे खेल की। जैसे हरिओम द्विवेदी (क्रिकेट), आलराउन्डर दीप्ति शर्मा (क्रिकेट), ऑफ ब्रेक बालर पूनम यादव, लेफ्ट–आर्म स्पिनर–एकता विष्ट, महिला हैमर थ्रोवर–सरिता सिंह, जैवलिन थ्रोवर–सुमन देवी इत्यादि।

प्राचीन काल से ही महिलाओं को पुरुषों के साथ बराबरी का दर्जा हासिल था लेकिन महिलाओं में व्यक्तिगत विभिन्नताओं के कारण प्राचीन युग में खेलों में सिरकत कम करती थी और बदलते हुए परिवेश में महिलाएं खेलों में सहभागिता का प्रतिशतता कम होते हुए भी भारत की महिला खिलाड़ी भारत को पदक तालिका में पुरुषों के अपेक्षा अपने को ऊँचा रखा। या यह कह सकते है कि यह युग विशेष रूप से भारतीय समाज में महिलाओं की स्थितिमें बहुत बड़े परिवर्तन का युग है जिन्होंने सारी बाधाओं और विषादजनक धारणाओं केा पार करके खेल क्षेत्र में विन्दास उत्कृष्ट प्रदर्शन करके भारत की बेटी बनी है जो उनके लिए असम्भव माना जाता है।

सन्दर्भ :

1. शर्मा व्यास देव, ''शारीरिक एवं स्वास्थ्य शिक्षा का परिचय'', अविचल पब्लिशिंग कम्पनी, 8, इंडस्ट्रियल एरिया, तिलोकपुर रोड, काला अम्ब,, जिला–सिरमौर, नई दिल्ली, वर्ष 2013 सप्तम संस्करण, पृ. 38–39.
2. शर्मा, डॉ. वी.के. : ''स्वास्थ्य एवं शारीरिक शिक्षा'', सरस्वती हाउस प्रा. लि. प्रकाशन, 9, दरियागंज, नई दिल्ली, वर्ष 1950, पृ. 17–22 व 118–119.
3. जैन महेन्द्र : ''प्रतियोगिता दर्पण (खेल–कूद)'', वर्ष 1999, पृ. 59–62.
4. राजकुमार डॉ., ''नारी के बदले आयाम,'' अर्जुन पब्लिकेशन हाऊस, वर्ष 2005
5. भारतीय संविधान, अनुच्छेद 14,15,16
6. गुप्ता कमलेश कुमार, ''महिला सशक्तिकरण,'' बुक उनक्लेव, जयपुर
7. डेविड वल्ली चिस्की और जैम लकी, ''दी कम्पलीट बुक आफ दी बिन्टर ओलंपिक्स'', आयूरूम प्रेस प्रकाशन, वर्ष 2014, एडिशन
8. गांधी श्रीमती मनेका संजय, ''फर्स्ट लेडीज'', मिनिस्टर, मिनिस्ट्री ऑफ वूमेन एण्ड चाइल्ड डेवलपमेंट ऑफ इण्डिया, नई दिल्ली पृ. 19–109.

***

भारत की विदेश नीति के बदलते आयाम

सुमन कुमारी *

किसी भी देश की विदेश नीति उसके अर्न्तराष्ट्रीय सम्बन्धो का प्रमुख आधार होता है। आजाद भारत की विदेश नीति भी आजाद भारत की तरह अपने आप में अनोखी है। भारत के प्रथम प्रधानमंत्री पंडित जवाहर लाल नेहरू से लेकर वर्तमान समय के प्रधान मंत्री नरेन्द्र मोदी तक भारत की विदेश नीति में कई परिवर्तन देखने को किलते है। लेकिन इतने परिवर्तन होने के बावजूद इन सबका सारांश एक ही है– 'विश्वशांन्ति एवं बन्धुत्व'।

भारत की विदेश नीति वसुंधैव कुटुम्बकं की भावना पर आधारित हैं जीयो और जीने दो के सिद्धान्त पर विश्वास करते है। चीन की तरह हमारे कथनी और करनी में अंतर नहीं है। गुटनिरपेक्षता, शान्तिपूर्ण सहअस्तित्व, पंचशील साम्राज्यवाद एवं उपनिवेशवाद का विरोध, मॉनवाधिकार का समर्थन भारत की विदशे नीति का प्रमुख आधार रही है। पंडित जवाहर लाल नेहरू ने कहा था– ''भारत की विदेश नीति वही है जो कि वे स्वंत्रत्रता संग्राम के समय सोचा करते थे''।[1]

भारत सैदव हर प्रकार के शोषण का विरोधी रहा है। नेहरू जी ने कहा था ''अपनी ईष्याओ, घृणा और आंतरिक विरोधों के बावजूद यह विश्व आवश्यक तौर से घनिष्ट सहयोग की ओर अग्रसर हो रहा है और विश्व के राष्ट्रमंडल की ओर बढ़ रहा है। स्वतंत्र भारत इसी एक विश्व के लिए कार्य करेगा, यह ऐसा विश्व होगा जिसमें आजाद भारत लोगों का निर्वाघ सहयोग होगा और कोई वर्ग या समूह किसी अन्य वर्ग या समूह का शोषण नहीं करेगा।''[2]

द्वितिय विश्व युद्ध के पश्चात सम्पूर्ण विश्व दो गुटो में बॅट गया था– पूॅजीवाद और साम्यवाद। पूॅजीवादी गुटो का नेतृत्व अमेरिका कर रहा था और भारत ने यह निश्चय किया कि वह किसी भी गुट में शामिल नहीं होगा, और स्वतंत्र रूप से अपनी विदेश नीति का संचालन करेगा। भारत स्वतंत्र रूप से अपनी विदेश नीति का संचालन करेगा। भारत ने गुटनिरपेक्षता की नीति अपनायी। भारत गुटनिरपेक्ष आंदोलन के संस्थापक सदस्यो में से एक है।

जार्ज लिस्का ने कहा है– ''किसी विवाद में यह जानते हए कि कौन सही है और कौन गलत है? किसी का पक्ष न लेना तटस्थता है, किन्तु गटनिरपेक्षता का अर्थ है– सही और गलत में भेद करके सदैव सही नीति का समर्थन करना।''[3]

---

* सहा. प्रोफेसर (राजनीति विज्ञान) डॉ. अम्बेडकर राजकीय पी.जी., कॉलेज ऊचॉहार रायबरेली

कम्पुचिया के नरेश नीरोदेश सिहांनुक ने बेलग्रेड शिखर सम्मेलन में कहा था– ''गुटनिरपेक्षता में अर्न्तराष्ट्रीय जीवन का एक गतिशील स्वरूप परिलक्षित होता है, वह अस्वस्थ और निष्क्रिय अर्न्तमुखी प्रवृति नहीं है।''[4]

प्रथम गुटनिरपेक्ष शिखर सम्मेलन (1961 बेलग्रेड) से लेकर अब तक हुए 18 वे शिखर सम्मेलन में भारत ने अपनी महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। 25–26 अक्टूबर 2019 को अजर बैजान के बाकू में 18 वे गुटनिरपेक्ष शिखर सम्मेलन का आयोजन हुआ। यहाँ पर भारत ने दुनियाँ के सामने बेहद मजबूती से अपनी बात रखी, सम्मेलन में भारत का प्रतिनिधित्व कर रहे हमारे उपराष्ट्रपति बैंकेया नायडू ने साफ शब्दों में दुनिया को आंतकवाद के खिलाफ कड़ी कारवाई को वक्त की जरूरत बताया। उपराष्ट्रपति ने गुटनिरपेक्ष देशो के संगठन को अपनी प्रासंगिकेता बनाए रखने के लिए बदलती चुनौति के अनुसार अपनी समझ भी बदलने की बात कही।

1954 के भारत और चीन के बीच पंचशील समझौता हुआ था। पंचशील समझौता भारत की विदेश नीति का प्रमुख आधार है। इसमें 5 सिद्धान्तो की बात कही गयी है।

1. ''एक दूसरे की प्रादेशिक अखण्डता और सर्वोत्तम सत्ता के लिए पारस्परिक सबंध।
2. अनाक्रमण
3. एक दूसरे के आन्तरिक मामलो में अहस्तक्षेप।
4. समानता और पारस्परिक लाभ
5. शान्तिपूर्ण सहअस्तित्व तथा आर्थिक सहयोग।''[5]

1962 में चीन ने भारत पर आक्रमण करके इस पंचशील समझौते का उल्लंघन किया। इस विश्वास घात के बाद भारत की विदेश नीति में व्यापक परिवर्तन हुए। भारत ने ऑख बंद कर किसी भी देश पर भरोसा करना छोड़ दिया। भारत की विदेश नीति सैद्धान्तिक से वास्तविक धरातल पर आने लगी। भारत और चीन के सम्बंधो में उतार–चढ़ाव हमें निरंतर देखने को मिलता है। वैश्वीकरण के इस युग में एक नये आयाम की शुरूआत देखने को मिलती है।

2018–19 में भारत और चीन के बीच द्विपक्षीय व्यापार करीब 88 अरब डॉलर रहा। यह बात महत्वपूर्ण है कि पहली बार भारत चीन के साथ व्यापार घटाकर 10 अरब डॉलर तक करने में सफल रहा। चीन वर्तमान में भारतीय उत्पादों का तीसरा बड़ा निर्यात बाजार हैं वही चीन से भारत सबसे ज्यादा आयात करता है और भारत चीन के लिए उभरता हुआ बाजार है। चीन अपने इस बाजार को खोना नहीं चाहता। हाल ही में भारत के प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने कहा था कि ''भारत और चीन दो हजार साल में ज्यादातर वैश्विक आर्थिक रहे है। इस शताब्दी में हम धीरे–धीरे उस दौर में लौट रहे है। हमने मतभेदो को विवेकपूर्ण ढंग से सुलझाने और विवाद का रूप नहीं लेने देने का निर्णय किया है।''

चीन भी भारत के साथ संबंध सुधारना चाहता हैं चीन के राष्ट्रपति शी जिनपिंग ने कहा कि ड्रेगन (चीन) और हाथी (भारत) की कदम ताल सही होनी चाहिए। लेकिन आगे क्या होगा यह तो भविष्य के गर्भ में छुपा हुआ है।

भारत ने साम्राज्यवाद, उपनिवेशवाद, तथा नव उपनिवेशवाद का सदैव विरोध किया है। ब्रुसेल्स में एक कान्फ्रेस में बोलते हुए नेहरू जी ने यह स्पष्ट किया था– ''साम्राज्यवाद के विरूद्ध भारत का संर्घष मात्र एक राष्ट्रीय समस्या नहीं है, इसका सीधा प्रभाव कई राष्ट्रो पर पड़ता है। विश्व के किसी भी भाग में साम्राज्यवाद का अस्तित्व भारत को अस्वीकार्य है। भारत के लिए साम्राज्यवाद के विरूद्ध सर्घष जीवन मृत्यु का प्रश्न है।''[6]

वर्तमान समय में साम्राज्यवाद एवं उपनिवेशवाद के स्थान पर कुछ नये मुद्दे उभर आये है जैसे– परमाणु शस्त्रों का भय, सीमापारीय आतंकवाद, का संकट, पर्यावरण प्रदुषण इत्यादी।

ऐसी परिस्थिति में यह अनिवार्य हो गया कि भारत अपनी विदेश नीति बनाए रखे, साथ ही नए परिदृश्य के अनुसार उसमे अनिवार्य संशोधन भी करे। पी.वी. नरसिंह राव के समय भारत की विदेश नीति में काफी परिवर्तन किये गये। भारत ने विश्व के अधिक से अधिक देशों के साथ निकट सबंध स्थापित किए ताकि अमेरिका के दबाव को कम किया जा सके। पी.वी. नरसिंह राव ने कहा कि– ''भारत अपनी मिश्रित अर्थव्यवस्था बनाए रखेगा। वह न निपट उदारवार को अपनाएगा न समाजवादी प्रतिबद्धताओं का पूर्ण त्याग करेगा। भारत अपनी पूरानी परम्पराओं का आदर करेगा, साथ ही नई तकनीकी के प्रयोग का स्वागत करेगा।

आज सम्पूर्ण विश्व जानता है कि भारत परमाणु शक्ति सम्पन्न देश है। भारत की परमाणु नीति के निर्धारण में प्रधानमंत्री इन्दिरा गॉधी व अटल बिहारी बाजपेयी का विशेष योगदान है। यदि पोखरन में पहले सफल परमाणु परीक्षण ने भारत को परमाणु सम्पन्न बिरादरी में शामिल किया तो दूसरे परीक्षण ने भारत को इतना सक्षम बना दिया कि वह परमाणु शस्त्र बना सके तथा अपने पड़ोसी शत्रुओं के किसी सम्भावित प्रहार से देश को बचा सके।

अगर हम रूस की बात करे तो रूस भारत का एक अच्छा दोस्त साबित हुआ है। राजीव गॉधी के शासन में अन्य देशों के साथ–साथ रूस से भी हमारे सम्बंध मजबूत हुए। राजीव गॉधी ने प्रधानमंत्री बनने पर कहा कि ''हम समय की कसौटी पर परखी हुई बहुविधि सोवियत संघ की मित्रता का अत्यधिक सम्मान करते है जिसका आधार मित्रता एवं सहयोग है तथा जिससे आवश्यकता पड़ने पर उचित समर्थन प्राप्त किया जा सकता है''[7]

रूस जम्मु कश्मीर को भारत का अटूट अंग मानता है, संविधान के अनु. 370 को हटाना रूस भारत का अंदरूनी मामला मानता है जो भारत ने अपनी संवैधानिक व्यवस्था के तहत ही किया है। भारत और रूस के बीच

आपसी भरोसे और विश्वास का एक सदाबहार रिश्ता है। भारत और रूस का साझा बयान कई अहम मुद्दों पर दोनो देशों की एक राय को जाहिर करता है।

अमेरिका के साथ भारत के सबंध उतार–चढ़ाव जैसे रहे है। अमेरिका दक्षिण एशिया में तथा हिन्दु प्रशांत क्षेत्र की व्यापक संरचना के भीतर भारत को लगातार अपने प्रमुख साझेदार के तौर पर देखता है और भारत को चीन को संतुलित करने वाले एक लोकतांत्रिक देश के रूप में देखता है। भारत और पाक्स्तिान में संबध हमेशा से ही ऐतिहासिक राजनीतिक मुद्दों की वजह से तनाव में रहे हैं इन देशों में इस रिश्ते का मूल वजह भारत के विभाजन को देखा जाता है। कश्मीर विवाद इन दोनो देशो के बीच तनाव का मुख्य कारण है।

पाक्स्तिान के तत्कालिन प्रधानमंत्री इमरान खान ने कहा है कि ''यदि सम्बधो को सुधारने के लिए भारत एक कदम बढ़ाता है तो पाक्स्तिान दो कदम बढ़ायेगा।'' लेकिन यह प्रस्ताव एक कूटनीति शिष्टाचार से अधिक कुछ भी नहीं।

मोदी पाक्स्तिान के साथ संम्बधों को सुधारना चाहते है पर अपनी देश की सुरक्षा को सवोच्च स्थान पर रखते हुए, भारत द्वारा किया गया संर्जिकल स्ट्राईक इस बात का उदाहरण है कि वह अब पाक्स्तिान की गलत हरकतों को बर्दाशत नहीं करेगा। ईट का जवाब पत्थर से देगा।

आर्थिक क्षेत्र में भी आज भारत की स्थिति अन्य राष्ट्रो की अपेक्षा सुदृढ़ है। 2008 की वैश्विक मंदी में विश्व के तमाम देशों की अर्थव्यवस्था लड़खडाने लगी थी वही भारत की स्थिति में कोई विपरीत प्रभाव स्पष्ट नहीं हुई। इस मंदी ने अमेरिका जैसे देश का दिवाला निकाल दिया। मंदी के कारण कुछ देशों की विकास दर घटकर 2 से 3 प्रतिशत रह गयी वही चीन के बाद केवल भारत ही ऐसा देश रहा जिसकी विकास दर 6.50 से 8 प्रतिशत के बीच रही। यदपि देश में महगाई और बेरोजगारी बढ़ी परन्तु भारत उस तरह नहीं टूटा जैसे जापान टूट गया। उसकी विकास दर घटकर 2 प्रतिशत रह गयी थी। भारत में बड़े पैमान पर पूँजी निवेश हुआ और अब विश्व की 10 बड़ी आर्थिक शक्तियों में भारत एक है।

भारत संयुक्त राष्ट्र संघ के संस्थापक सदस्यों में से एक है। सुरक्षा परिषद संयुक्त राष्ट्र का सर्वाधिक शक्ति सम्पन्न अंग हैं भारत सुरक्षा परिषद का स्थायी बनना चाहता है। वर्तमान समय में सुरक्षा परिषद में अपनी दावेदारी को मजबुत करना भारत की विदेश नीति का प्रमुख उद्देश्यो में से एक है। संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा किये जाने वाले शांति अभियानों में भारतीय सेना ने बढ़ चढ़ कर भाग लिया है।

सुरक्षा परिषद में भारत की स्थायी सदस्यता की दावेदारी का सर्मथन विश्व के अनेक देशो ने किया है। फ्रांस और ब्रिटेन भारतीय दावेदारी का समर्थन करते हैं परन्तु चीन कभी नहीं चाहेगा कि उसका

पड़ोसी (भारत) उसके बगल में बैठे। विचारणीय प्रश्न यह कि जब छोटे से महाद्वीप यूरोप से तीन देश (रूस, ब्रिटेन, फ्रांस) स्थायी सदस्य हो सकते है तो एशिया महाद्वीप से दो देश (चीन के साथ भारत) स्थायी सदस्य क्यो नहीं हो सकते? जबकि भारत स्थाई सदस्य बनने के योग्य है। निष्र्कषतः हम कह सकते है कि आज भारत की विदेश नीति में काफी बदलाव देखने को मिल रहा है। आज की विदेश नीति में विश्व हित एव राष्ट्रीय हीत का उचित समन्वय है। सिद्धान्त से ज्यादा हम व्यवहारिक बातो पर ध्यान दे रहे है।

सन्दर्भ :

1. डॉ. एन.के. श्रीवास्तव : ''भारत की विदेश नीति''
2. डॉ. जे.सी. जौहरी : ''अर्न्तराष्ट्रीय राजनीति''
3. डॉ. पुष्पेश पन्त एवं श्रीपाल जैन, डॉ. राखी पंचौला : ''अन्तर्राष्ट्रीय सबंध सिद्धान्त और व्यवहार''
4. वही
5. डॉ. अमरेश्वर अवस्थी एवं डॉ. रामकुमार अवस्थी : ''आधुनिक भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक चिन्तन''
6. यू.आर. घई. एवं के.के. घई : ''अर्न्तराष्ट्रीय राजनीति सिद्धान्त और व्यवहार''
7. सुषमा गर्ग : ''अर्न्तराष्ट्रीय राजनीति''

***

हिन्दी साहित्य में रहस्यवाद

राजू कुमार *

रहस्यवाद एक भावनात्मक मनोदशा है, जिसकी चर्चा दुनिया के सभी धर्मों में की गई है। जब कोई मनुष्य किसी अज्ञात या अज्ञेय सत्ता के प्रति विशेषतः ईश्वर के प्रति तीव्र भावनात्मक संबंध महसूस करता है, और द्वैत भाव को मिटाकर अद्वैत भाव की अनुभूति करना चाहता है तो इस स्थिति विशेष को रहस्यवाद या रहस्यात्मकता का अनुभव कहते हैं।

आचार्य शुक्ल जी इसे सूत्ररूप में प्रस्तुत करते हुए लिखते हैं– ''साधना के क्षेत्र में जो अद्वैतवाद है, काव्य के क्षेत्र में वही रहस्यवाद है।''[1] हिन्दी साहित्य में रहस्यवाद हर युग के साहित्य में विद्यमान है। आदिकाल के सिद्ध–नाथ साहित्य में, भक्तिकाल की सूफी व सन्त काव्य धाराओं में और सीमित रूप से कृष्ण भक्ति काव्य धारा में रहस्यवाद को स्पष्टतः देखा जा सकता है। आदिकालीन सिद्ध 'तंतिपा' की अटपटी बानी तो बिल्कुल स्पष्ट है–

''बेंग संसार बाड़हिल जाअ। दुहिल दूध के बेटे समाअ।
बलद बिआएल गविआ बाँझे। पिटा दुहिए एतिना साँझे।''[2]

आगे चलकर छायावाद के अंतर्गत महादेवी, सुमित्रानंदन पंत आदि कवियों में, तो वहीं अज्ञेय की 'असाध्यवीणा' जैसी कविताओं में रहस्यवाद अपने विभिन्न रूपों में व्यक्त हुआ है। इस रहस्यवाद को हम कुछ विशेषताओं के आधार पर अलग–अलग वर्गों में बाँट कर भी देख सकते हैं।

रहस्यवाद का पहला वर्गीकरण भावनात्मक व साधनात्मक रहस्यवाद के रूप में किया गया है। भावनात्मक रहस्यवाद आत्मा और परमात्मा के मिलन की तीव्र भावनात्मक प्रक्रिया है। जबकि साधनात्मक रहस्यवाद में शरीर के भीतर निहित कुंडलिनी को हठयोग साधना के माध्यम से महाकुंडलिनी अथवा परमतत्त्व से मिलाने का प्रयास किया जाता है। वस्तुतः यदि रहस्यवाद की मूल परिभाषा पर ध्यान दिया जाये तो साधनात्मक रहस्यवाद को रहस्यवाद कहना युक्तिसंगत नहीं लगता। इसलिए आचार्य शुक्ल ने एक संदर्भ में साधनात्मक रहस्यवाद को झूठा या छद्म रहस्यवाद कहा है। साधनात्मक रहस्यवाद सिद्धों तथा नाथों के अतिरिक्त कबीर में पर्याप्त मात्रा में दिखाई पड़ता है किन्तु जायसी में अत्यंत सीमित मात्रा में। इसका एक बेहद संक्षिप्त उल्लेख निराला की 'राम की शक्ति पूजा' में भी देखी जा सकती है। तीसरे स्थल पर राम शक्ति को पाने के लिए योग–साधना में प्रवृर्त्त (लीन) होते हैं–

''चढ़ षष्ठ दिवस आज्ञा पर हुआ समाहित मन,

---

* नेट (यू.जी.सी.), शोध छात्र (हिन्दी), बी. आर. ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

प्रति जप से खिंच–खिंच होने लगा महाकर्षण,
संचित त्रिकुटी पर ध्यान द्विदल देवी–पद पर,
जप के स्वर लगा काँपने थर–थर अम्बर,
दो दिन निष्पन्द एक आसन पर रहे राम,
अर्पित करते इन्दीवर जपते हुए नाम।''[3]

इसके विपरीत भावनात्मक रहस्यवाद मूलतः जायसी व सूफी कवियों में दिखना आरंभ होता है। कबीर के यहाँ आगे चलकर इसका अत्यंत सुन्दर प्रयोग हुआ है, साथ ही छायावाद तथा अज्ञेय के यहाँ भी भावनात्मक रहस्यवाद का विकसित रूप उजागर होने लगता है। भावनात्मक रहस्यवाद को पुनः दो वर्गों में बाँटा जा सकता है– बहिर्मुखी रहस्यवाद तथा अंतर्मुखी रहस्यवाद। बहिर्मुखी रहस्यवाद वह है जिसमें साधक सम्पूर्ण बाह्य प्रकृति में ईश्वर की ही छवियाँ देखने लगता है, जबकि अंतर्मुखी रहस्यवाद वह है जहाँ साधक बाह्य जगत को निरर्थक मानकर अपने ही भीतर ईश्वर का साक्षात्कार करता है। यह वर्गीकरण डब्लू स्लेष द्वारा किया गया है, जिसके अनुसार अन्तर्मुखी रहस्यवाद उच्च अवस्था है जबकि बहिर्मुखी रहस्यवाद निम्न अवस्था है। यहाँ साहित्य के दृष्टिकोण से यह विचार करें तो यह बात विपरीत दिखाई पड़ता है।

आचार्य शुक्ल ने जायसी व पंत के रहस्यवाद को अत्यन्त श्रेष्ठ रहस्यवाद माना, क्योंकि इन दोनों का हस्यवाद बहिर्मुखी है। यहाँ यह भी स्पष्ट है कि शुक्ल जी कबीर के रहस्यवाद को 'शुष्क' मानते हैं, क्योंकि शंकर के अद्वैतवाद के प्रभाव के कारण कबीर जगत् को मिथ्या मानते हुए केवल आत्मा व परमात्मा के ही मिलन की बात करते हैं–

''जल में कुंभ, कुंभ में जल है, बाहिर भीतर पानी।
फूटा कुम्भ जल जलहिं समाना, यहु तत कथ्यौ गियानी।।''[4]

साथ ही कहा जाता है कि ''कबीर में रहस्य भावना भी है और राम में अनन्य भक्ति तो उनकी मूल–भावभूमि ही है। नाद बिन्दु, कुंडलिनी, षड्चक्रभेदन आदि का बारंबार वर्णन कबीर के काव्य का रहस्यवादी पक्ष है। कबीर में स्वाभाविक रहस्य भावना बहुत मार्मिक रूप में व्यक्त हुआ है। ऐसे अवसरों पर वे प्रायः जिज्ञासु होते हैं– कहो भइया अंबर कासौ लागा।''[5]

यहाँ यह ध्यान रखना जरूरी है कि कबीर के रहस्यवाद को केवल अंतर्मुखी कहना आंशिक सत्य है, क्योंकि कबीर के कई पद बहिर्मुखी रहस्यवाद को भी व्यक्त करते हैं। शुक्ल जी कबीर के रहस्यवाद पर कहते भी हैं– ''उन्होंने भारतीय ब्रह्मवाद के साथ सूफियों के भावात्मक रहस्यवाद, हठयोगियों के साधनात्मक रहस्यवाद और वैष्णवों के अहिंसावाद तथा प्रपत्तिवाद का मेल करके अपना पंथ खड़ा किया।''[6]

तीसरी दृष्टि से रहस्यवाद का वर्गीकरण मध्यकालीन तथा आधुनिक रहस्यवाद में किया जाता है। मध्यकालीन रहस्यवाद न केवल अलौकिक सत्ता के प्रति होता है, बल्कि सामान्यतः इसमें रहस्यवादी साधक किसी निश्चित दर्शन को स्वीकार करता है, और प्रायः लघुता की भावना के साथ प्रस्तुत होता है। इसके विपरीत आधुनिक रहस्यवाद को हम दो भागों में देख सकते हैं– लौकिक तथा अलौकिक। यहाँ रहस्यवाद अलौकिक ईश्वर के प्रति नहीं बल्कि लौकिक मनुष्य के प्रति पैदा होता है, किन्तु सामाजिक दबावों के कारण अभिव्यक्ति की सहजता के अभाव में रहस्यवाद प्रकट होता है। महादेवी के साहित्य का काफी बड़ा हिस्सा ऐसा ही हैं।

''इनकी रहस्यात्मक अभिव्यक्ति कहीं भी नीरस नहीं होने पाई है। इनका प्रियतम अलौकिक है, चिरंतन है–

प्रिय चिरंतन है सजनि
क्षण–क्षण नवीन सुहागिनी मैं।''[7]

महादेवी के रहस्यवाद में प्रेम और वेदना यह दोनों पक्ष काफी महत्त्वपूर्ण है साथ ही भावात्मक रहस्यवाद का पूर्ण विकास भी इनके यहाँ स्पष्टतः दृष्टिगोचर होता है। भक्ति–भावना की प्रधानता भी महादेवी के काव्य में देखने को मिलता है, जो भक्त कवियों व निर्गुण संतों की देन कहा जा सकता है।

आधुनिक रहस्यवाद में कुछ अंश अलौकिक रहस्यवाद का भी है। जिसमें कवि आध्यात्मिक परम तत्त्व के प्रति तीव्र आकर्षण महसूस करता है, किन्तु संप्रदायनिरपेक्षता तथा वैयक्तिकता के उपस्थिति के कारण इसे भी मध्यकालीन रहस्यवाद से अलग माना जाता है। महादेवी ने दुःख को कवि का मोक्ष मानकर लिखा है– ''विश्व–जीवन में अपने जीवन को, विश्व–वेदना में अपनी वेदना को इस प्रकार मिला देना जिस प्रकार एक जल–बिन्दु समुद्र में मिल जाता है, कवि का मोक्ष है।''[8]

इन सभी के अतिरिक्त रहस्यवाद का एक विशेष प्रकार सृजनात्मक रहस्यवाद है। जो नई कविता के दौरान अज्ञेय के साहित्य में दिखाई पड़ता है। अज्ञेय पहले विनिश्वरवादी थे पर आगे उन्होंने कलात्मक सृजन के मूल्य में ईश्वरीय सत्ता की अनुभूति को स्वीकार किया है। 'असाध्यवीणा' इसी रहस्यवाद की प्रमुख अभिव्यक्ति है, जिसका भाव यह है कि रचना प्रक्रिया में संगीत और वीणा, केवल सृजन ब्रह्म के दो प्रतीक है। सृजन की सम्पूर्ण प्रक्रिया ब्रह्म के माध्यम से होती है। अज्ञेय के असाध्यवीणा का यह अंश स्पष्ट है–

''वह तो सब कुछ की तथ्यता थी–
महाशून्य
वह महामौन

अविभाज्य, अनाप्त, अद्रवित, अप्रमेय
जो शब्दहीन
सब में गाता है।''[9]

कुल मिलाकर हिन्दी साहित्य के लगभग सभी आलोचक रहस्यवाद में मानवीय तथा ईश्वरीय प्रेम को व्यक्त करने में विशेष भूमिका निभाई है। कुछ आधुनिक विद्वानों विशेषतः प्रगतिवादी समीक्षकों ने अलौकिक रहस्यवाद की काल्पनिकता तथा लौकिक रहस्यवाद की प्रतीकात्मकता की कठोर आलोचना की है। यह बात ठीक भी है, कि रहस्यवाद कविता में प्रतीकों के कारण दुरूहता पैदा करता है। किन्तु इन आक्षेपों में यहाँ यह मानना संभव नहीं है, कि रहस्यवाद कविता के सौंदर्य में योगदान नहीं देता। यदि हम रहस्यवादी कवियों के परिस्थितियों के आलोक में विचार करें तो रहस्यवाद का महत्त्व और अधिक समझ में आता है। इस तरह हिन्दी साहित्य में रहस्यवाद के शुरुआती रूप से लेकर विकास क्रम में बढ़ते हुए उसके सभी पक्षों को स्पष्टतः देखा जा सकता है।

सन्दर्भ :

1. डॉ. चौथीराम यादव : सांस्कृतिक पुनर्जागरण और छायावादी काव्य, प्रथम संस्करण 2016, अनामिका पब्लि. एण्ड डिस्ट्री. प्रा.लि., पृ. 235.
2. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, कमल प्रकाशन, दरियागंज नई दिल्ली, पृ. 22.
3. महाकवि निराला एवं उनकी कालजयी कविताएँ, समीक्षा एवं व्याख्या डॉ0 अनुपम माथुर, कला मंदिर दिल्ली, संस्करण 2003, पृ0–51
4. हिन्दी भाषा और साहित्य का इतिहास, एम.एच.डी. 06, इग्नू, पृ0–33
5. विश्वनाथ त्रिपाठी : हिन्दी साहित्य का इतिहास, सामान्य परिचय, कक्षा–12 रा. शै. अनु. और प्रशि. परिषद्, पृ.18.
6. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, कमल प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, पृ. 64.
7. डॉ. चौथीराम यादव : सांस्कृतिक पुनर्जागरण और छायावादी काव्य, प्रथम संस्करण 2016, अनामिका पब्लि. एण्ड डिस्ट्री. प्रा. लि., पृ. 237.
8. वही, पृ. 226.
9. रामस्वरूप चतुर्वेदी : हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास, लोकभारती प्रकाशन, पृ. 202.

***

बदलते वैश्विक परिदृश्य में कश्मीर : विशेष संदर्भ 'आतंकवाद'

प्रियंका विश्नोई *

जम्मू व कश्मीर के विशेषाधिकार को समाप्त करने के भारत के फैसले के खिलाफ अंतरराष्ट्रीय मंच पर कोई खास हलचल होती अभी तक नहीं दिखी है। पड़ोसी देश पाकिस्तान में निश्चित तौर पर इस फैसले को लेकर काफी ज्यादा शोर–शराबा हो रहा है लेकिन पाकिस्तान के हुक्मरानों को इस बात से झटका लगेगा कि जिस अमेरिका से उन्होंने कश्मीर में हस्तक्षेप करने की उम्मीद लगाई है उसने ''भारत सरकार के फैसले को आंतरिक प्रक्रिया करार दिया है।''[1] हालांकि पाकिस्तानी प्रधानमंत्री इमरान खान के हालिया अमेरिकी दौरे में अमेरिकी राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप ने कश्मीर मुद्दे पर मध्यस्थता का शिगूफा रूपी नाटक छेड़ा था। इससे भारतीय नीति निर्माता यह समझ गए कि कश्मीर पर अब आर–पार का समय आ गया है। अगर कश्मीर को लेकर अमेरिका और पाकिस्तान एक हो जाएं और भारतीय हितों की अनदेखी का संदेह उभर आए तब भारत के पास हाथ–पर–हाथ धरे बैठे रहने की गुंजाइश नहीं रह जाती। लेकिन जल्द ही अमेरिका ने अपनी भारत के प्रति प्रतिक्रिया देने में सुधार कर लिया जो कि भारत और अमेरिका के स्वस्थ संबंधों का प्रमाण है। अमेरिका ने पाकिस्तान की मदद करने से अपना कदम पीछे खींच लिया जो की पाकिस्तान के लिए किसी झटके से कम नहीं हैं।

इसी तरह से भारत के पड़ोसी श्रीलंका के प्रधानमंत्री रानिल विक्रमसिंघे ने भारतीय पक्ष का समथन करते हुए कहा है कि–**''पता चला है कि लद्दाख केन्द्र शासित प्रदेश बनने जा रहा है। 70 प्रतिशत से अधिक बौद्ध आबादी वाला लद्दाख भारत का पहला बौद्ध बहुल राज्य होगा। लद्दाख का गठन और इसके लिए होने वाला पुनर्गठन भारत का आन्तरिक मामला है। मैं लद्दाख जा चुका हूँ, यह घूमने लायक जगह है।''**[2] जम्मू–कश्मीर का 70 फीसद क्षेत्र लद्दाख में है। यह क्षेत्र दो देशों पाक और चीन की सीमाएँ साझा करता है। 70 वर्षों से कश्मीर केन्द्रित सरकारों की सियासत में लद्दाख पिस रहा था। मात्र 4 सीट होने के कारण दिल्ली से लेकर जम्मू कश्मीर की सरकारों ने लद्दाख को तरजीह नहीं दी। आजादी के बाद लद्दाख को यूनियन टेरिटरी बनाने की चिंगारी सुलगने लगी, जिसे अंजाम तक पहुँचाने में लंबा समय लगा। यह मांग लगभग आजादी के बाद से ही की जा रही है कि लद्दाख को कश्मीर से अलग कर केंद्रशासित क्षेत्रा बनाया जाय। 1889 में लद्दाख बुद्धिस्ट एसोसिएसन ने अपने गठन के साथ ही इस मांग को लेकर आंदोलन छेड़ा था। वर्ष 2002 में लद्दाख यूनियन टेरिटरी फ्रंट के

* शोधार्थी, राजस्थान विश्वविद्यालय, राजस्थान

गठन के साथ मांग और तेज हो गयी थी और सफलता अब जाकर 5 अगस्त 2019 को मिली है।

कश्मीर के संदर्भ में बांग्लादेश ने कहा है कि ''अनुच्छेद 370 को हटाना भारत का आंतरिक मामला है, ऐसे में उसके पास किसी और के अंदरूनी मामलों पर बोलने का अधिकार नहीं है, सड़क यातायात और पुल मंत्री एवं सत्ताधारी अवामी लीग के महासचिव ओबैदुल कादर ने कहा कि बांग्लादेश पड़ोसियों के आंतरिक मामलों पर टिप्पणी नहीं करता।''[3] बांग्लादेश ही नहीं बल्कि पाकिस्तान अपने पड़ोसी विकासशील सभी देशों में आतंकवाद की जड़ है। जिसके कारण बांग्लादेश भी पाकिस्तान के साथ खड़ा नहीं हुआ।

पाकिस्तान कुछ भी कहे, सच यही है कि कश्मीर भारत का आंतरिक मामला है। वैसे इस मामले पर पाकिस्तान की प्रतिक्रिया क्या होगी, यह सर्वविदित थी, लेकिन उसके संभावित कदमों को लेकर सतर्क रहना होगा। वह बौखलाहट में आकर ऐसा कोई कदम उठा सकता है जो सीमा पर तनाव बढ़ाने वाला हो सकता है। यह सही है कि अफगानिस्तान से अपनी सेनाओं की वापसी के लिए अमेरिका को पाकिस्तान की जरूरत है, लेकिन पाकिस्तान की समस्या यह है कि अमेरिका सेना की वापसी की शर्तें पहले ही इमरान खान और डोनाल्ड ट्रंप के बीच तय हो चुकी हैं। यदि पाकिस्तान को यह लगता है कि वह अमेरिका के साथ 'कश्मीर बनाम अफगानिस्तान' कार्ड खेल सकता है तो शायद वह भ्रम में है। उसे यह समझ में आना चाहिए कि अफगानिस्तान से निकलने की चाहत के बाद भी अमेरिका भारत के हितों की अनदेखी नहीं कर सकता। आमतौर पर विदेश नीति के मामले में पश्चिमी देशों का रूख अमेरिकी सोच से प्रेरित रहता है, लेकिन कुछ मामलों में वे अलग स्वर में भी बोलते है।

''कश्मीर के मामले में पश्चिमी देशों की प्रतिक्रिया सकारात्मक होगी, इसका अंदाजा उसे तब लग गया था जब बीते दिनों भारत सरकार द्वारा जारी दिशा–निर्देश के आधार पर अमेरिका, ब्रिटेन, जर्मनी, ऑस्ट्रेलिया और इजराइल ने कश्मीर में पर्यटन कर रहे अपने नागरिकों को कश्मीर से निकल जाने की अपील की थी। शायद ये देश इससे अवगत थे कि कश्मीर में क्या होने वाला है।''[4] फिर भी किसी देश ने विरोध स्वरूप प्रतिक्रिया दर्ज नहीं की। इससे भारत की विदेश नीति की मजबूती का पता चलता है।

पाकिस्तान के अभिन्न मित्र देश चीन ने भारत के फैसले (370, 35A) पर तल्ख प्रतिक्रिया व्यक्त की है लेकिन उसकी प्रतिक्रिया कश्मीर से ज्यादा लद्दाख को लेकर है जो इस प्रकार है–''भारत लगातार चीन की भौगोलिक संप्रभुता का उल्लंघन कर रहा है। यह स्वीकार्य नहीं है और इसका कोई असर नहीं होगा। हम भारत को आगाह करते हैं कि वह सीमा से जुड़े मुद्दे को लेकर सतर्क रहे और इस बारे में दोनों के समझौते का पालन करे ताकि ये मुद्दे और आगे नहीं उलझें।''[5] चीन ने अवश्य लद्दाख

को जम्मू कश्मीर से अलग करके केन्द्र शासित प्रदेश बनाए जाने पर असहमति जाहिर की है, लेकिन इसके आसार कम हैं कि वह जम्मू–कश्मीर पर पाकिस्तान के सुर में बोलेगा ऐसा इसलिए, क्योंकि हांगकांग पर उसे भी विश्व समुदाय से नरम रवैये की उम्मीद है।

भारत ने चीन की प्रतिक्रिया का जवाब उसी की भाषा में देते हुए सीख भी दी है कि वह दूसरे देशों के आंतरिक मामलों में नहीं बोलता और उम्मीद करता है की चीन भी ऐसा नहीं करेगा। केन्द्र शासित प्रदेश लद्दाख भारत का आंतरिक मामला है। रही बात भारत–चीन के सीमा से जुड़े मुद्दों की तो दोनों देश वहाँ शान्ति बनाए रखने के लिए पहले ही समझौता कर चुके है और भारत उनका पालन करता है। कुल मिलाकर अनुच्छेद 370 हटाने के मामलें में अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर ज्यादा चिंतित होने की जरूरत नहीं लगती है।

अनुच्छेद 370 और 35–ए के संबंध में मालदीव का मानना है कि– ''यह भारत का अंदरूनी मामला है। मालदीव सरकार के बयान के अनुसार सभी संप्रभु राष्ट्रों को जरूरत के अनुसार अपने कानून बदलने का अधिकार है।''[6] अतः मालदीव के इस बयान से भारत की पक्षधरता साफ झलक रही है।

कुछ देशों ने भारत के इस कदम की आलोचना की है तो कुछ ने सुझाव दिए हैं कि देशों को संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद के प्रस्तावों पर आगे बढ़ना चाहिए। भारत के इस काम का विरोध करते हुए तुर्की के राष्ट्रपति तैयब अर्दोआन ने दावा किया था– ''वह (तुर्की) इस मामले में पाकिस्तान के साथ है। बाद में अर्दोआन ने कहा था कि मंगलवार को उनकी पाकिस्तान के प्रधानमंत्री इमरान खान से 'सफल' बातचीत हुई थी। उन्होंने यह भी कहा था कि वह क्षेत्र से तनाव कम करने के लिए भारत के प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी से संपर्क करेंगे।''[7] तुर्की के राष्ट्रपति का, 'भारत के प्रधानमंत्री से संपर्क करेंगे' वाला बाद का बयान इस बात का द्योतक है कि तुर्की भी, उभरते हुए शक्ति के रूप में भारत को देख रहा है। इसीलिए आना–कानी नहीं कर रहा है मतलब अपने बयान में बदलाव कर रहा है।

370 और 35–ए के संबंध में मलेशिया के प्रधानमंत्री महातीर बिन मोहम्मद के कार्यालय का बयान आया है कि– ''मलेशिया चाहता है कि इस मामले के सभी पक्ष संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद के प्रस्तावों का पालन करें ताकि अन्तर्राष्ट्रीय सुरक्षा और शान्ति बनी रहे।''[8] भारत और पाकिस्तान दोनों को अपना सहयोगी बताते हुए मलेशिया ने उम्मीद जताई है कि दोनों संवाद के माध्यम से इस पुराने मसले को हल करें। हालाँकि मलेशिया कई बार कुछ मामलों में आंतरिक रूप से पाकिस्तान का समर्थन करता नजर आता था उसी तरह इसने कश्मीर के मसले पर भी भारत का विरोध अप्रत्यक्ष रूप से करते हुए संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद के पास पहुँचने की अपील कर दी। जबकि कश्मीर का मामला सुरक्षा परिषद का नहीं है यह

भारत का आतंकित मामला है। कश्मीर के मसले पर भारत अपनी राय अपने निर्णय कर सकता है और किया भी। कश्मीर से 370 और 35–ए का हटना भारत और भारत के पड़ोसी देशों से आतंकवाद की कमर टूटने जैसा है। आतंकवाद के प्रति वर्तमान भारत सरकार की मंशा के बारे में संजय गुप्त का कहना है कि– ''मोदी ने बांग्लादेश और श्रीलंका जैसे पड़ोसी देशों में बढ़ रही आतंकी गतिविधियों का हवाला देकर विश्व समुदाय को भी आश्वस्त किया कि भारत आतंकवाद के खात्मे के लिए प्रतिबद्ध होने के साथ ही इस क्षेत्र में शान्ति एवं स्थायित्व के लिए अपनी भूमिका को लेकर गंभीर है।''[9]

जम्मू–कश्मीर में अनुच्छेद 370 को निष्क्रिय करने और राज्य को दो केन्द्र शासित प्रदेशों में विभाजित करने के भारत के इस कदम का रूस ने समर्थन किया है और कहा कि– ''यह भारतीय संविधान के दायरे में बताया है। साथ ही रूस ने उम्मीद जताई है कि भारत और पाकिस्तान शिमला समझौते और लाहौर घोषणा के आधार पर द्विपक्षीय तरीके से अपने मतभेद दूर कर लेंगे।''[10] आगे फिर इसी संदर्भ में रूसी विदेश मंत्रालय के प्रवक्ता ने कहा कि– ''मॉस्को को उम्मीद है कि दिल्ली द्वारा जम्मू–कश्मीर के दर्जे में बदलाव से भारत और पाक क्षेत्र में हालात को बिगड़ने नहीं देंगे। हम इस तथ्य के आधार पर आगे बढ़ रहे हैं कि जम्मू–कश्मीर के दर्जे में बदलाव और उसका दो केन्द्रशासित प्रदेशों में विभाजन भारतीय संविधान के दायरे में रहकर किया गया है।''[11] भारत और रूस से बीच हाल ही में हथियारों के बड़े सौदे हुए हैं और द्विपक्षीय व्यापार में भी वृद्धि हुई है। इसलिए यह संभावना पहले से ही लगायी जा रही थी कि रूस के राष्ट्रपति पुतिन भारत की कश्मीर नीति का पक्ष लेंगे और वैसा ही हुआ।

कश्मीर विवाद पर कुछ और देशों ने भी अपनी प्रतिक्रिया दी है वे निम्नलिखित हैं–

1. ईरान
2. ब्रिटेन
3. संयुक्त अरब अमीरात
4. सऊदी अरब

कश्मीर के संदर्भ में ईरान की प्रतिक्रिया इस प्रकार है– ''ईरान ने भारत और पाकिस्तान दोनों के पक्षों को सुना है वह चाहते हैं कि वे लोगों के हितों की रक्षा और शान्ति के लिए आपस में संवाद करें।''[12]

कश्मीर के संबंध में प्रतिक्रिया ब्रिटेन ने भी दी है– ''मैंने भारतीय विदेश मंत्री से बात की है। हमने स्थिति को लेकर अपनी कुछ चिंताएं जाहिर की है और शान्ति की अपील की है। लेकिन हमने भारत के नजरिए से स्थिति को भी समझा है।''[13] ब्रिटेन की इस प्रतिक्रिया से तो यही लग रहा है कि यदि भारत की जगह वह होता तो वह भी कुछ ऐसा ही सख्त कदम उठाता जैसाकि भारत ने उठाया है। अर्थात् प्रत्येक देश अपने राज्य

की सलामती के लिए कोई सख्त कदम उठाएँ तो वह कहीं से भी गलत नहीं होताः जैसा कि भारत ने किया है।

370 और 35–ए हटने पर संयुक्त अरब अमीरात की प्रतिक्रिया कुछ इस प्रकार से है– शान्ति बनाए रखने के लिए दोनों पक्षों को वार्ता का सहारा लेना चाहिए।''[14] ऐसी ही कुछ सधी हुई प्रतिक्रिया सऊदी अरब ने भी दी है जो कि इस प्रकार है– ''सऊदी अरब मसले का समाधान शान्तिपूर्ण ढंग से चाहता है।''[15]

जब दुनिया के तमाम प्रभावशाली देश इसे भारत का आंतरिक मामला मान रहे हैं, तब पाकिस्तान इस मसले को संयुक्त राष्ट्र में ले जाने की बेताबी दिखा रहा था लेकिन संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद में भी उसे नाकामयाबी ही हाथ लगी। इससे यह समझा जा सकता है कि अनुच्छेद 370 से चाहे कश्मीर का हित भले न हुआ हो, लेकिन पाकिस्तान ने इसका भरपूर फायदा उठाया है। यह दुर्भाग्यपूर्ण रहा कि सब कुछ समझते हुए भी भारत इससे पहले कश्मीर से अनुच्छेद 370 हटाने का निर्णय नहीं ले पाया। भारत की इस नाकामी से पाकिस्तान को दुःसाहसिक कारगिल घुसपैठ करने का अवसर मिला। भारत पर होने वाले पाक प्रेरित भीषण आतंकी हमले इसी अनुच्छेद 370 की देन थे।

अनुच्छेद 370 ओर 35–ए को खत्म करने से पहले घरेलू स्तर पर जितनी तैयारी की जरूरत थी उतनी ही कूटनीतिक मोर्चे पर भी ताकि अंतरराष्ट्रीय प्रतिक्रिया का रूख अनुकूल रहे। भारत के राजनयिक समय रहते दुनिया के प्रमुख देशों के राजदूतों और अंतरराष्ट्रीय मंचों पर सक्रिय हो गए थे। अब यह साफ है कि वे अनुच्छेद 370 ओर 35–ए के उन्मूलन के कारणों एवं परिस्थितियों पर विश्व समुदाय को सकारात्मक संदेश देने में सफल रहे। माना जाता है कि मोदी ने दोबारा सत्ता में आने के साथ ही कश्मीर की संवैधानिक स्थिति में बदलाव की तैयारी शुरु कर दी थी और अपने संभावित कदम को लेकर वैश्विक समुदाय को टटोलना भी शुरु कर दिया था। शायद इसी कोशिश के चलते विश्व समुदाय की प्रतिक्रिया सकारात्मक नजर आयी। अंतरराष्ट्रीय मोर्चा सध जाने के बाद सरकार के लिए यह आवश्यक है कि वह सुरक्षा और वहाँ के विकास की चुनौतियों से पार पाने में जुटे।

अनुच्छेद 370 अगर कश्मीरियत का पर्याय रहा तो जनता के अनादर का सबब भी बना। देश के किसी भी हिस्से में कमाई करने, जमीन खरीदने, शादी करने या फिर अपने मत से प्रतिनिधि चुनने को लेकर कोई पाबंदी नहीं है। कोई भी व्यक्ति कहीं भी केन्द्र सरकार की कल्याणकारी योजनाओं का लाभ उठा सकता है। यही असली लोकतंत्र है। अनुच्छेद 370 के रहते जम्मू–कश्मीर में देश के शेष हिस्से के लोग ऐसा नहीं कर पाते थे।

अनुच्छेद 370 को निरस्त करने के साथ, भारत ने अब साफ कर दिया है कि कश्मीर अब विवादित क्षेत्र नहीं रहा। अब यह भारत का अभिन्न

अंग है। इसलिए पाकिस्तान पोषित आतंकी समूहों द्वारा कश्मीर में किसी भी तरह की हिंसा अब युद्ध छेड़ने के बराबर होगी।उपरोक्त प्रतिक्रियाओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भारत की पहचान और पकड़ दोनों पहले की अपेक्षा अब ज्यादा मजबूत हुई है। विश्व के कई देश भारत से अपने संबंधों को प्रगाढ़ बनाने के लिए उत्सुक हैं। रही बात कश्मीर की तो आतंकवाद के मसले पर तो इसने अपने आपको 370 और 35–ए के हटने के बाद और सशक्त बनाया है। आतंकवादी गतिविधियों से विश्व के कई देश परेशान रहे हैं और आज भी पूरी तरह से मुक्त नहीं हो पाएं हैं, ऐसे समय में कश्मीर आतंकवाद से अपने–आपको मुक्त करने की सफलतम कोशिश कर रहा है। समय–समय पर अन्य देशों ने भी आतंकवाद के खिलाफ मुहिम छेड़ी। अब भारत भी कश्मीर से 370 हटाकर इसी मुहिम में शामिल हो गया है। अतः अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर कश्मीर आतंकवाद को रोकने की मुहिम में शामिल है।

सन्दर्भ :

1. हर्ष वी. पंत, दैनिक जागरण (राष्ट्रीय संस्करण), 7 अगस्त 2019, दिल्ली, पृ. 8
2. दैनिक जागरण (राष्ट्रीय संस्करण), दिल्ली, 7 अगस्त 2019, पृ. 7
3. from bbc.com
4. राजीव मिश्रा, दैनिक जागरण (राष्ट्रीय संस्करण), दिल्ली, 8 अगस्त 2019, पृ. 8
5. दैनिक जागरण (राष्ट्रीय संस्करण), दिल्ली, 7 अगस्त 2019, पृ. 7
6. bbc.com
7. वही
8. वही
9. संजय गुप्त, दैनिक जागरण (राष्ट्रीय संस्करण), दिल्ली, 18 अगस्त 2019, पृ. 8
10. दैनिक जागरण (राष्ट्रीय संस्करण), दिल्ली, 11 अगस्त 2019, पृ. 1
11. वही
12. bbc.com
13. वही
14. वही
15. वही

***

मनुस्मृति और धर्म

सारिका सिंह *

हजारों वर्ष पूर्व मनु द्वारा विरचित एक ऐसा स्मृति ग्रंथ जिसने भारतीय सभ्य समाज की आधार शिला रखी। मानव जीवन में आस्था और विश्वास का महत्वपूर्ण स्थान है और यही दोनों मानव को धर्म की ओर प्रेरित करते है। भारतीय संस्कृति में धर्म ही जीवन का आधार है। धर्म एक मानसिक अभिव्यक्ति है, जिसमें मनुष्य की बुद्धि, भावना तथा शक्ति प्रकट होती है। भारत एक धर्म प्रधान देश है यहां पर धर्म में विशेष ध्यान दिया जाता है।

"धर्मों रक्षति रक्षिते"

धर्म एक ऐसा जीवन्त तत्व है जिसके आधार पर मनुष्य एवं पशु की परख होती है।

"धमेणहीना पशुभि समाना"

प्राचीन भारतीय हिन्दू विधि शास्त्र मनुस्मृति जो सृष्टि में नीति और धर्म (कानून) का निर्धारण करने वाला सबसे पहला ग्रंथ माना गया है। मनुस्मृति में धर्म शब्द का प्रयोग विधि और न्याय के संदर्भ में किया गया है। धर्म एक सद्गुण है और विधि, न्याय और न्यायिक प्रक्रिया का सम्मान और उसका अनुपालन धर्म का सम्मान और अनुपालन है।

धर्म का अर्थ : ऋग्वेद के मंत्रों में धर्म शब्द का प्रयोग होता है, परन्तु धर्म शब्द में कौन से अर्थ निश्चित है यह कहना कठिन है।

सायणाचार्य ने विभिन्न स्थलों में इसका अर्थ किया है,

त्रीणि पदा वि चक्रमे विष्णु र्गोपा अदाम्य।
अतो धर्माणि धारयन्।।

यहां 'धर्माणि' पद का अर्थ 'अग्निहोत्रा दीनि' के अर्थ में किया गया है।[1]

धर्म शब्द की व्युत्पत्ति 'धृ' धातु से हुई है जिसका अर्थ होता है, 'धरण' अर्थात् जिसे धारण किया जा सके।[2] धर्म कर्म प्रधान है, गुणों को प्रदर्शित करे वह धर्म है। धर्म को गुण भी कह सकते है।

मनु ने धर्म का विश्लेषण करते हुए लिखा है कि वेद, स्मृति, सदाचार और वह जो अपनी आत्मा को प्रिय हों, यह चार प्रकार के धर्म के साक्षात् लक्षण कहे गये हैं।[3]

समस्त वेद ही धर्म का मूल है।[4]

---

* शाध छात्रा (नेट, जे.आर.एफ.), प्राचीन इतिहास विभाग, राजा मोहन गर्ल्स पी.जी. कालेज, फैजाबाद।

जो अर्थ और काम में अनासक्ता हैं, वह पुरूष ही धर्म का ज्ञान प्राप्त करता है। धर्म का प्रमाण 'श्रुति' है।[5] जो व्यक्ति धर्मों का सेवन करते हैं, वे परगति को पाते है।[6]

मनुस्मृति में धर्म शब्द का अर्थ पूजा पाठ ही नहीं वरन् जो इस जीवन में मनुष्य के लिए आवश्यक है। समाज के वे सभी विधान जिसे हम कानून कहते है धर्म के अन्तर्गत आते है।[7] धर्म एक सार्वभौमिक गुण है, क्योंकि वह मृत्यु के बाद भी साथ देता है।[8]

धर्म का उद्देश्य

समाज में संतुलन रखना है और इस संतुलन को बनाए रहने के लिए मनुष्य प्राणी मात्र को ईश्वर की सृष्टि समझकर समानता का व्यवहार करें। मनुष्य के जीवन को निम्नतर से उठाकर उच्चतर जीवन में संवर्धित करना है।

धर्म की परिभाषा : प्राचीन भारतीय धर्म ग्रंथों के अनुसार धर्म संसार की स्थिति एवं मर्यादा को बनाये रखने वाली नीति है, जिसके द्वारा विश्व की प्रगति होती है। धर्म मौलिकता है, मानवता है, नैतिक नियम समाज व्यवस्था से उत्पन्न विधान है, जिनके निर्वाह द्वारा ही व्यक्ति स्वर्ग जैसे सुख भोग सकता है। मनु के अनुसार, "धर्म वह है जिसका राग–द्वेष से रहित विद्धज्जन नित्य अनुसरण करते है तथा जिसकी हृदय स्वीकृति देता है।[9]

आधुनिक विचारक डॉ0 राधाकृष्णन् के अनुसार– "धर्म वह अनुशासन है, जो अन्तरात्मा को स्पर्श करता है और हमे बुराई और कुत्सितता से संघर्ष करने में सहायता देता है। काम, क्रोध और लोभ से हमारी रक्षा करता है। नैतिक बल को उन्नत करता है, संसार को बचाने के महान कार्य के लिए साहस प्रदान करता है।[10]

महात्मा गाँधी के अनुसार, "जो मनुष्य धर्म को अस्वीकार करता है, वह भी धर्म के बिना न तो जी सकता है और न जीता है।[11]

इस प्रकार विद्वानों ने धर्म की अनेक परिभाषाएं दी है। अतः जो तत्व मनुष्य को इस लोक और परलोक में सुख प्रदान करें, मनुष्य को सन्मार्ग पर ले चले, मानव के अन्तःकरण को 'सत्य' के प्रकाश से प्रकाशित कर दें, शान्ति प्रदान करें और जिससे देश एवं समाज में सुव्यवस्था बनीं रहे वही धर्म है। स्मृतियों एवं धर्मशास्त्रों में धर्म के मानवीय पक्ष को विस्तारपूर्वक विधान किया गया है।

धर्म का स्वरूप : मनुस्मृति के व्याख्याकार मेधातिथि ने बताया है कि सभी स्मृतियों में धर्म का स्वरूप कुछ इस प्रकार प्रकट होता है।

1. वर्ण धर्म, 2. आश्रम धर्म, 3. वर्णाश्रम धर्म, 4. नैमित्तिक धर्म, 5. गुण धर्म

ब्राह्मणादि वर्णों का पालन करने योग्य भिन्न–2 धर्म वर्ण धर्म और ब्रह्मचर्यादि आश्रमों के पालन करने योग्य धर्म, आश्रम धर्म कहलाते है। वर्ण एक अवस्था है, शास्त्रों के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति शूद्र पैदा होता है और प्रयत्न और विकास से अन्य वर्ण अवस्थाओं में पहुँचता है। वास्तव में प्रत्येक

में चारो वर्ण स्थापित है। इस व्यवस्था को वर्णाश्रम धर्म कहते है। नैमित्तिक धर्म, जिन्हें विशिष्ट निमित्त या पर्व को ध्यान में रखकर किया जाता है।
गुण धर्म वह है; जो किसी पदार्थ में विशेष रूप में पाया जाता है।[12]

सृष्टि में तीन गुण विद्यमान है। सत्व, रज और तम। सृष्टि की उत्पत्ति रजो गुण से होती है। सत्वगुण से उसका परिवर्धन होता है। तमोगुण से सृष्टि का संहार होता है। जन्म, विकास एवं मृत्यु में सृष्टि के ये गुण कार्य करते हैं। जिस कर्म रजोगुण एवं निमोगुण से निवृत्ति हो और सत्व गुण की वृद्धि हो वही धर्म है। जो व्यक्ति धर्म की रक्षा करता है, धर्म उसकी रक्षा करता है।[13]

धर्म के लक्षण : मनु महाराज ने धर्म के दस लक्षणों पर विचार किया है।

धृति, क्षमा, दम, अरत्तेय, शौच, इन्द्रिय–निग्रह, घी, विधा, सत्य और अक्रोध ये दस धर्म के लक्षण है।[14]

इन्हें आचरण में उतारने वाला धार्मिक व्यक्ति कहलाता है। ये ऐसे धर्म है कि जिनमें किसी भी जाति या सम्प्रदाय को आपत्ति नहीं हो सकती। मनुष्य में मनुष्यतत्व का विकास इन्हीं धर्मों के आचरण से हो सकता है। जिस समय मनुष्य अपने स्वभाव के विरूद्ध इन धर्मों का पालन करना छोड़ देता है उसी समय उसकी अधोगति होती है।

निष्कर्ष : आज धर्म एक ऐसा व्यापक शब्द है जो किसी जाति या समाज का इतिहास और उसके जीवन की भूमिका प्रस्तुत करने में समर्थ होता है। विशेषकर धर्म शब्द में जाति विशेष की सभ्यता, संस्कृति, आचार–विचार, रहन–सहन, रीति रिवाज तथा जीवन प्रणाली की प्रक्रिया और निदर्शन प्रस्तुत होता है।[15] धर्म आदर्श सम्भावनाओं की खोज का एक प्रयास है। धर्म का वास्तविक सम्बन्ध व्यक्ति के व्यक्तिगत जीवन से ही लगाया जाता है। यही जीवन की पूर्णता तथा जीवन का लक्ष्य है। मनु द्वारा दिये गये दस लक्षणों को अपने आचरण में उतारना तथा वेदों को मानना मनुष्य का सबसे महत्वपूर्ण धर्म है। धार्मिक जीवन व्यतीत करने से एक साथ कई लाभ होते हैं। व्यक्ति जिस समाज में रहता है, उसमें सम्मान मिलता है और मरणोनन्तर स्वर्ग प्राप्ति होती है।[16]

लोकेप्रेत्य च स्वर्ग लोकं समश्नुते।

सन्दर्भ :

1. ऋग्वेद, 1.22.18.
2. ऋग्वेद, 1.159.3.
3. मनुस्मृति, 2.12.
4. मनुस्मृति, 2.6.
5. मनुस्मृति, 2.13.
6. मनुस्मृति, 6.93.
7. मनुस्मृति, 2.10.

8. मनुस्मृति, 8.17.
9. सुरेन्द्रनाथ दास गुप्ता, भारतीय दर्शन का इतिहास (भाग–4), पृ. 6.
10. राधाकृष्णन, धर्म और समाज, पृ. 49.
11. राम किशन सिंह, वेदान्त के समाज दर्शक का समीक्षात्मक अध्ययन, पृ. 63.
12. मनुस्मृति 2.25 के व्याख्याता गोविन्द राज।
13. श्रीमद्भगवत गीता, अध्याय 14, श्लोक संख्या 5–23, पृ. 200–207.
14. मनुस्मृति, 6.12.
15. अभिनव सत्यदेव, भारतीय धर्म एवं दर्शन की रूपरेखा, पृ. 01.
16. 20 स्मृतियाँ, खण्ड–1, वशिष्ठ स्मृति, 2 श्लोक, पृ. 247.

***

नागार्जुन के उपन्यासों में दलित-विमर्श

दिव्या यादव *

उपन्यास गद्य–लेखन की एक महत्वपूर्ण विधा है। 'उपन्यास' शब्द दो शब्दों के योग से बना है– 'उप' और 'न्यास'। 'उप' का अर्थ है 'समीप' तथा 'न्यास' का अर्थ है 'रखना'। इस प्रकार 'उपन्यास' शब्द का अर्थ हुआ 'पास में रखना' अर्थात् उपन्यास वह विधा है जिसमें जीवन को समीप रखकर उसका अध्ययन एवं व्याख्या की जाती है। अतः उपन्यास से तात्पर्य उस दीर्घाकार गद्यात्मक कथा–प्रबंध से है जिसमें जीवन की परिस्थितियों, प्रसंगों व घटनाओं का यथासंभव सजीव, कथात्मक व रोचक वर्णन किया जाता है। युग की गतिशील पृष्ठभूमि पर सहज शैली में स्वाभाविक जीवन की एक पूर्ण व्यापक झाँकी को प्रस्तुत करने वाला गद्यकाव्य उपन्यास कहलाता है। उपन्यास को मानव–जीवन का यथार्थ प्रतिबिम्ब कहा जा सकता है। जीवन का जितना व्यापक व सर्वांगीण चित्रण उपन्यास में मिलता है, उतना साहित्य की अन्य किसी भी विधा में उपलब्ध नहीं है। समाज की वास्तविक स्थितियों और समस्याओं को अपने अंदर समेटने की क्षमता केवल उपन्यास में ही होती है। आधुनिक उपन्यास सामाजिक जीवन की विशद व्याख्या प्रस्तुत करने के साथ ही वैयक्तिक चरित्र का भी सूक्ष्म अध्ययन करता है। उपन्यास को केन्द्र में रखकर मुंशी प्रेमचन्द ने उसे मानव चरित्र का चित्र कहा है।[1]

डॉ. श्यामसुन्दर दास ने उपन्यास को मनुष्य के वास्तविक जीवन की काल्पनिक कथा कहा है।[2] उपन्यास साहित्य की वह विधा है जिसका विकास अपेक्षाकृत आधुनिक काल में हुआ है। हिन्दी में 'उपन्यास' नामक विधा का जन्म पाश्चात्य उपन्यास, हिन्दीत्तर भाषाओं – बंगला, मराठी आदि के उपन्यासों तथा प्राचीन भारतीय कथा–साहित्य की सम्मिलित प्रेरणा के परिणामस्वरूप हुआ। हिन्दी के उद्‌भव तथा आधुनिक युग तक की उसकी विकास–यात्रा के सम्बन्ध में सम्यक् धारणा बनाने के लिए उसके आज तक के कालखण्डों में विभाजित करके देखना उचित होगा– 1. प्रेमचन्द–पूर्व हिन्दी उपन्यास, 2. प्रेमचन्दयुगीन हिन्दी उपन्यास तथा 3. प्रेमचन्दोत्तर हिन्दी उपन्यास।

भारतीय समाज में आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टि से शोषितों–पददलितों का बहुत बड़ा वर्ग रहा है। प्राचीन काल में विभिन्न बाहरी आक्रमणों, विदेशी सत्ता, दरिद्रता एवं अज्ञानता आदि विभिन्न कारणों से धर्म, समाज और संस्कृति की ओट में वर्ग–विभाजन, जातिगत विभिन्नता और वर्ण–संकोच की भावना को बल मिला और समाज विषमता की

* शोध-छात्रा, हिन्दी, शहीद स्मारक राजकीय महाविद्यालय, यूसुफपुर, मुहम्मदाबाद, गाजीपुर (उ.प्र.)

पराकाष्ठा पर पहुँच गया, जिसका एक बड़ा हिस्सा मनुष्य की संज्ञा पाने योग्य भी नहीं रहा, जिसे सदा से समाज ने दुत्कारा–धिक्कारा ही है; ऐसे मनुष्य कहे जाने वाले जीवों का एक वृहद् वर्ग तब से आज तक विद्यमान है।

एक व्यक्ति द्वारा ही नहीं बल्कि पूरे समाज, और खासकर समाज के तथाकथित उच्च वर्णियों द्वारा स्थापित–स्वीकृत परम्परा और व्यवस्था ने उन्हें नित्य ही नकारा, मानवीय मूलभूत अधिकारों से वंचित रखा। कृषकों, मजदूरों और गरीबों का यह बहुजन वर्ग वर्षों से पददलित जीवन भुगत रहा है। धर्म, नीति, संस्कृति आदि के आवरण में राजनीतिक साधन और सामाजिक विषमता के दुष्चक्र में निरन्तर शोषित रहा है। हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में इस वर्ग की संवेदनाओं को सर्वप्रथम मुंशी प्रेमचन्द ने वाणी दी। हिन्दी उपन्यास के क्षेत्र में सर्वाधिक देन प्रेमचन्द की है। हाँलाकि प्रेमचन्द के जमाने में दलित शब्द प्रचलन में नहीं था। पर उनकी यह आत्मस्वीकृति बहुत कुछ कहती है– ''हम स्वीकार करते हैं कि शूद्रों के साथ हमने अन्याय किया है। हमने उन्हें जी भर रौंदा, कुचला और छला।'' इस प्रकार प्रेमचन्द ने सर्वप्रथम अपने उपन्यासों के माध्यम से समाज के शोषित–पीड़ित समाज की बात सामने लाकर एक सार्थक पहल की। स्वतंत्रता पश्चात नागार्जुन इसके मात्र पक्षधर ही नहीं, वरन् उपेक्षितों पीड़ितों के सहयात्री व सहभागी के रूप में रचनाकर्म में प्रवृत्त होते हैं। वे तात्कालिक ज्वलंत समस्याओं के द्रष्टा और भोक्ता ही नहीं, वरन् उससे निजात पाने वाले रास्तों की खोज में जुटे रहने वाले सर्जक थे। दीनता–विपन्नता से उनमें करुणा के उत्स फूटते हैं।

परम्परानुसार शोषित जिन्दगी जीने वाले, यथा दुःख दैन्य, अन्याय और दरिद्रता के शिकार दलित व्यक्तियों का वर्ग और उसका जीवन वस्तुतः समाज के द्वारा उपेक्षित एवं तिरस्कृत मानव–जीवन की दुःख गाथा है। यह मानव प्रगति में सबसे पिछड़ा हुआ, सामाजिक वर्ग है जो अनुसूचित जाति, जनजाति, नव बुद्ध, विमुक्त जाति, आदिवासी आदि कितने ही रूपों में हजारों वर्षों से शोषण के कारण सड़ता रहा है। चातुर्वर्ण की कल्पना के आधार पर समाज के मुट्ठीभर शासकों के हाथों से बहुसंख्यक दलितों के अपरिमित शोषण की कहानी भारतीय परम्परा में कलंक है। वस्तुतः ''दलित'' वर्णवाचक या जातिवाचक ही नहीं अपितु एक विशिष्ट सामाजिक स्थिति का अनुभव करने वाला समूह या समाज है। स्वातन्त्र्य एवं सभ्यता के मूलभूत मानवीय अधिकारों से पूर्णतः वंचित मनुष्य की जाति अछूत कहलाई। इसमें हरिजन, चमार, खटिक, चाण्डाल, भंगी, पासी, आदि तथा तत्सम अन्य अछूत कही गई पीड़ित जातियों का समावेश है, जिनका शोषण पीढ़ियों से वर्ण या वर्ण–व्यवस्था की आड़ में होता आया है और मानसिक तथा आत्मिक शोषण धर्म और आध्यात्मिकता की आड़ में। परिणामतः वे अज्ञान, विवशता, दरिद्रता, अस्पृश्यता, विषमता, दासता और दुःख का शिकार रहे हैं।

धार्मिक अंधविश्वासों द्वारा पोषित छुआछूत की भावनाएँ हिन्दू–समाज में अधिकांशतः व्याप्त हैं। इसमें अपढ़ ग्रामीण स्त्री–पुरुष और नगरीय पढ़े–लिखे नागरिक दोनों अपने को इस सामाजिक कुरीति से मुक्त नहीं कर सके हैं। नागार्जुन ने इस अमानवीय भाव को दूर करने और अछूत–वर्ग के स्वाभिमान को जागृत करने का पूरा प्रयत्न किया है। स्वतंत्रता पूर्व भारतीय जन–जागरण और पुनर्जागरण काल में ज्योतिबा फूले एवं महर्षि दयानन्द ने आर्य समाज के माध्यम से धार्मिक संकीर्णता, भेद–भाव, अन्याय, अत्याचार को दूर कर समान भूमि पर मानवीयता को प्रतिस्थापित करने का प्रशंसनीय कार्य किया था और बाद में गांधी जी के सत्याग्रह, पूर्ण स्वतंत्रता आन्दोलन और राष्ट्र–उत्थान की जनवादी धारा की प्रेरणा से युक्त कार्य प्रभावी रूप से जारी रखा।

लेखकीय दायित्व से सम्पन्न प्रेमचन्द इस सम्पूर्ण युगप्रवाह के घनिष्ठ सम्पर्क में प्रामाणिक रूप से आए थे। भारत के इस सजग साहित्यकार तथा जनवादी कथाकार ने व्यापक जनाकांक्षाओं को वाणी दी और निम्न मध्यवर्ग तथा सर्वहारा के पीढ़ियों से जारी शोषण का सार्थक, प्रेरणाप्रद एवं सकारात्मक रूप में चित्रण किया। वे साहित्यकार का कर्तव्य मानते हैं कि जो दलित है, पीड़ित है, वंचित है, चाहे वह व्यक्ति हो या समूह उसकी गरीबी और पीड़ा को स्वयं भोगा था। देहातों में घूम–फिर कर निम्नवर्ग के घृणित जीवन की विडम्बना को जाना था। परिणामतः युगबोध से संपृक्त उनकी अनुभूति आदर्शवादी धरातल पर उदात्त भारतीय मूल्यों के प्रति आस्था में अभिव्यक्त हुई। उनका साहित्य युगों–युगों से पीड़ित, उपेक्षित, दीन–दुःखी, दलित जीवन के सारे शोषण की विडम्बना का दस्तावेज बना जिसमें दलितों की असहाय मूक व्यथा, घनीभूत पीड़ा और कठोर शोषण का अंकन है।

भारतीय कथा–साहित्य में यथार्थवाद की सर्वोत्तम अभिव्यक्ति हरिजनों और शूद्रों के चरित्र के संदर्भ में सर्वप्रथम प्रेमचन्द के साहित्य में मिलती है। उनके ''रंगभूमि'' उपन्यास का प्रधान चरित्र तथा शक्ति सम्पन्न व्यक्तित्व ''सूरदास'' चमार जाति का है। डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी प्रेमचन्द को ''दीन–दलितों का जबरदस्त वकील'' कहा करते थे।[3] यह उनके साहित्य को पढ़ते हुए सही प्रतीत होता है। अपने समकालीन जीवन में ऐसे कतिपय दलितों की त्रासद जीवन स्थितियों का उन्होंने नजदीक से अनुभव किया था। दलित जीवन को नितान्त मानवीय स्तर पर चित्रित करते हुए उनकी दयनीय स्थिति, उन पर होने वाले अपरिमित अत्याचार आदि का चित्रण उनके साहित्य में हुआ है। दलित जीवन का यह अंकन राष्ट्रीयता के एक आयाम के रूप में आता है। प्रेमचन्द ने पूँजीवादी तथा सामन्तवादी सभ्यता से त्रस्त शोषणयुक्त गरीबी की विडम्बना के व्यापक फलक पर दलित जीवन की पीड़ा को वाणी दी।

प्रेमचन्द की ही भांति नागार्जुन ने अपने कथा साहित्य में जिन सामाजिक दशाओं का चित्रण किया है, उसे देखकर लगता है कि तात्कालीन समाज अनेक सामाजिक विसंगतियों से ग्रस्त था। नागार्जुन यह मानते थे कि भारतीय जन–जीवन में सबसे बड़ी विसंगतियाँ जाति–प्रथा और छूआछूत हैं।

उस समय देश में निम्न जाति समझे जाने वाले हरिजनों के प्रति भेदभाव के परिणामस्वरूप देश की एकता समाप्त होती जा रही थी। उच्च जाति वालों के द्वारा हरिजनों को निम्न समझना उनमें एक प्रकार के असंतोष को जन्म देने के लिए उत्तरदायी था। वे धर्म–परिवर्तन करके क्यों न बौद्ध व ईसाई बनें और समाज में अपना खोया हुआ सम्मान प्राप्त करें? यह एक ऐसा गंभीर प्रश्न है, जिसे नागार्जुन ने अपने उपन्यास 'इमरतिया' में उठाया है।[4] इस प्रश्न का समाधान उन्होंने इस रूप में दिया है कि अछूत कोई नहीं है। स्नान आदि से स्वच्छ होने के बाद सब अच्छे हैं। इस बारे में मस्तराम(इमरतिया) का कथन है– ''इसी तरह मेहतर भी सफाई का काम कर चुकने पर नहा–धोले, कपड़े बदल ले, तो फिर हमारे साथ बैठकर वह पूजापाठ में क्यों नहीं शामिल होगा? आत्मा तो एक है, शरीर का चोला अलग–अलग हो सकता है।''[5] नागार्जुन का यह कथन सिद्ध करता है कि वह जाति–पांति के संकीर्ण भेदभाव को समाप्त करने के प्रबल समर्थक थे।

नागार्जुन ने अपने उपन्यासों में मैथिली ब्राह्मणों का जो चित्र प्रस्तुत किया है उसमें एक बात स्पष्ट हो जाती है कि यह वर्ग जिसके हाथ में धर्म की बोगडोर है और जो अपने को धर्म का ठेकेदार समझता है, भ्रष्ट हो गया है। नागार्जुन इस वर्ग को पतित मानते हैं। उनके अनुसार इस वर्ग का धर्म मात्र दिखावा और स्वार्थ–सिद्धि से बढ़कर कुछ नहीं है। यह वर्ग सामाजिक विषमता एवं विकृतियों को प्रश्रय देकर अपने निहित स्वार्थों की अबाध पूर्ति में रत है।

'रतिनाथ की चाची' के जयनाथ, भोला पंडित और बच्चन पाठक, 'नई पौध' के रुढ़िवादी ब्राह्मण समाज के प्रतिनिधि पात्र हैं। 'रतिनाथ की चाची' का कुल्ली राउत निम्न जाति का है। वह चुपके से कुछ मंत्र सीख लेता है। जब इस बात का पता रतिनाथ के पिता जयनाथ को चलता है तो वह फुफकार उठता है, ''साले की चमड़ी उधेड़ दूँगा। शूद्र है तो शूद्र की भाँति रहे।[6] स्पष्ट है कि इस वर्ग की नजर में निम्न जाति के लोगों को धर्ममंत्र के पठन–पाठन का कोई अधिकार नहीं। इस उपन्यास का नायक रतिनाथ तरकुलवा जाते हुए मार्ग में तालाब के किनारे बैठ जल्दी–जल्दी संध्या करता है। इस पर कुली राउत ने रतिनाथ से मुस्कराकर कहा– ''लो बाप के गुण सीख गये न।''[7] रतिनाथ को कुल्ली राउत की इस बात में सत्य के दर्शन होने लगते हैं और वह विचार करने लगता है कि उच्च जाति के ब्राह्मण और निम्न जाति के कुल्ली राउत की विषम सामाजिक स्थिति का कारण वस्तुतः धर्म और जाति के आरोपित विधि–विधान ही हैं।

'नई पौध' के खोंखा पंडित भी ऐसे ही चरित्रों का प्रतिनिधित्व करते हैं। वे भी भोले–भाले लोगों को धर्म के नाम पर ठगते हैं और लड़कियों को बेचने जैसा जघन्य अपराध करते हैं। नगार्जुन ने भारतीय समाज में व्याप्त छुआछूत का चित्रण किया है। प्राचीन काल में वर्ण–व्यवस्था, हिन्दू समाज की आधारशिला रही है, लेकिन उसका नतीजा यह हुआ कि समाज की सर्वाधिक सेवा करने वाला वर्ग पिसता रहा तथा उसे अछूत समझा जाने लगा। कालांतर में उसे सामाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक अधिकारों से वंचित कर दिया गया, उसका मंदिरों में प्रवेश निषिद्ध हो गया।

समाजशास्त्रियों के अनुसार अछूत–भावना या अस्पृश्यता मुख्यतः तीन रुढ़िवादी मान्यताओं पर आधारित है। खान–पान संबंधी नियम, शादी का संबंध तथा धार्मिक उत्सव। अछूत के साथ बैठकर भोजन करना तो दूर रहा, उसके छूने मात्र से सवर्ण हिन्दू शरीर को अशुद्ध मानते हैं। मंदिर प्रवेश तथा धार्मिक उत्सवों में अछूत का सहयोग तो दूर रहा, वह मन्दिर में रखी भगवान की मूर्ति के दर्शन भी नहीं कर सकता।''[8]

नागार्जुन अपने परिवेश में व्याप्त अछूत–समस्या के दारुण रूप से पूरी तरह वाकिफ थे। उन्होंने इस समस्या का चित्रण यथार्थ स्तर पर किया है। 'रतिनाथ की चाची' के रतिनाथ का कुल्ली राउत के बारे में यह सोचना है। ''अगर यह भी ब्राह्मण के घर पैदा हुआ होता, तो निश्चित ही इसके बदन पर फटे पुराने कपड़े न होते। हमारी जूठन खाकर, हमारी पहिरन पहनकर इसके बच्चे न पलते। इन्हें कभी स्कूल–पाठशाला जाने का अवसर नहीं मिलता। क्या मर्द, क्या औरत– इन लोगों का जीवन बड़ी जाति वालों की मेहरबानी पर निर्भर है? सोचते–सोचते रतिनाथ का माथा चकराने लगा।''[9] नागार्जुन ने इस उपन्यास में छूआछूत एवं उसके बाद जन्मी विभिन्न समस्याओं को रेखांकित किया है।

'बलचनमा' उपन्यास में भी नागार्जुन ने यह चित्रित किया है कि मैथिली ब्राह्मण छोटी जाति वालों का छुआ भोजन नहीं करते। ''तिरहुतिया बाँभन बड़े खटकर्मी होते हैं। छोटी जाति वालों का छुआ नहीं खायेंगे।''[10] नागार्जुन के हृदय में अछूत(दलित) कही जाने वाली जाति के लिए असीम सहानुभूति है। उन्होंने अपने उपन्यासों में उनके सामाजिक उद्धार का रचनात्मक कार्यक्रम प्रस्तुत किया है। उन्होंने इन सारी मूर्खताओं को ''समाज में ठौर–ठौर इकट्ठा कूड़ा'' बतलाया है।

नागार्जुन के उपन्यासों में दलित जीवन के संदर्भ में चिंतन व्यक्त हुआ है और यह चिन्तन तब व्यक्त हुआ है, जब दलित साहित्य की कोई चर्चा हिन्दी में नहीं थी। इस दृष्टि से नागार्जुन की दूरदृष्टि और प्रगतिशील साहित्य चिंतन की प्रतिबद्धता स्पष्ट होती है। इतना ही नहीं उन्होंने दलित जीवन का मात्र दयनीय चित्रण नहीं किया है। वे दलित जीवन की दुरावस्था का शास्त्रीय विश्लेषण भी करते हैं। शिक्षा का अभाव दलित जीवन की दुरावस्था का कारण है, यह निष्कर्ष नागार्जुन के उपन्यासों में प्रस्तुत हुआ

है। अन्य उपन्यासों में संकेत रूप से और 'गरीबदास' उपन्यास में प्रमुख कथानक के रूप में उन्होंने दलित चिंतन रखा है। उपन्यास का प्रमुख पात्र 'गरीबदास' डॉ. भीमराव अम्बेडकर को ही दलितों का उन्नायक मानता है। दलित बच्चों की शिक्षा की समस्या को समझते हुए वह दलित के लिए अलग पाठशाला खोलता है। गरीबदास को यह करना पड़ता है क्योंकि सवर्ण बच्चे दलित बच्चों को पाठशाला में त्रस्त करते हैं।

नागार्जुन के उपन्यासों का समीक्षात्मक अध्ययन करने से स्पष्ट होता है कि दलित साहित्य के दृष्टिकोण से दलित आलोचकों ने प्रायः गैर–दलित लेखकों की दलित–विषयक रचनाओं को असंतोषजनक पाया है। उनकी मुख्य आपत्ति यह है कि इन रचनाओं में दलितों के लिए वैचारिक सहानुभूति तो है परन्तु स्वानुभूति के अभाव के चलते उनके उल्लिखित जीवन के अच्छे स्वाभिमान चित्र नहीं हैं। दलितों की क्रान्तिकारी आकांक्षायें, उनका मुक्ति संघर्ष और उनका विद्रोही आत्मगौरव भी नहीं है। इस दलित आलोचना में महत्वपूर्ण सत्यांश है, लेकिन अनेक स्थलों पर भावात्मक अतिरेक से पैदा होने वाली तार्किक शिथिलता भी है। दलित जीवन के संदर्भ में गैर दलित लेखकों की सीमाएं स्पष्ट हैं। लेकिन जिन रचनाओं में इन सीमाओं को तोड़ा गया है, वहाँ छुआछूत, सामंतवाद एवं ब्राह्मणवाद की गम्भीर आलोचना भी सम्भव हुई है, जिसे अनदेखा नहीं किया जा सकता और नागार्जुन भी इसके एक दृढ़स्तम्भ हैं।

सन्दर्भ :

1. प्रेमचन्द : कुछ विचार, पृ. 53.
2. डॉ. श्यामसुन्दर दास : साहित्यालोचन, पृ. 180.
3. दीक्षित, आनन्द प्रकाश : प्रेमचन्द : एक सिंहावलोकन, पृ. 73.
4. नागार्जुन, इमरतिया, पृ. 34.
5. वही, पृ. 34.
6. नागार्जुन : रतिनाथ की चाची, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1998, पृ. 50.
7. वही, पृ. 50.
8. डॉ. चण्डी प्रसाद जोशी : हिन्दी उपन्यास, समाजशास्त्रीय विवेचन, अनुसंधान प्रकाशन, कानपुर, 1992, पृ. 144.
9. वही, पृ. 51.
10. नागार्जुन : बलचनमा, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1997, पृ. 39.

***

अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम में विद्यालय इंटरशीप

शिव कुमार दाँगी *
डॉ. रीना जैन **

प्राचीन काल में शिक्षा को एक विशेष वर्ग तक ही सीमित रखा गया था जिसके कारण शिक्षको की आवश्यकता बहुत कम थी। यह एक अवधारणा बना हुआ था कि शिक्षक जन्म जात होते है इनका सृजन व निर्माण नही किया जा सकता जिसके कारण उस समय शिक्षण कार्य वंशानुगत होती चली जाती थी। समय के साथ शिष्यो की संख्या मे वृद्वि होता चला गया जिससे शिक्षको की माग भी बढने लगी तब गुरूकुल मे कुशाग्र बुद्धि के बालक या उच्च कक्षा के विद्यार्थी अपने नीचे के कक्षाओ मे शिक्षण कार्य को सम्पादित करते लगे।

वर्त्तमान काल में वैज्ञानिक ने यह सिद्ध किया है कि किसी भी व्यक्ति मे शिक्षामनोविज्ञान व बाल मनोविज्ञान के सिद्धान्तों को समाविष्ट करके शिक्षण के गुणो का सृजन किया जा सकता है। इसी संदर्भ को ध्यान मे रखते हुए भारत मे अनेक प्रकार के अध्यापक शिक्षा कार्यक्रमो का संचालन किया जा रहा है बी.एड. कार्यक्रम को एक वर्ष से बढाकर दो वर्ष कर दिया गया है अब इसे चार वर्षीय करने कि तैयारी किया जा रहा है। वर्त्तमान मे समाज कि आवश्यकता व विद्यार्थियो की क्षमताओ मे आये परिवर्तन विज्ञान के शोध शैक्षिक तकनीकी मे परिवर्तनो को ध्यान मे रखते हुए शिक्षको की योग्यता व क्षमता मे भी उत्तरोतर वृद्धि करने कि आवश्यकता महसुस होती है।

इसी आवश्यकता को पुरा करने व छात्राध्यापको का वास्तविक परिवेश मे प्रशिक्षण प्राप्त करने हेतु विद्यालय इंटरशीप की अवधि तथा रूप रेखा मे आवश्यक परिवर्तन किया गया है।

अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम मे विद्यालय इंटरशीप की भूमिका पूर्व के आयोगो ने अपने सुझाव मे एक महत्वपूर्ण कटाक्ष किया कि शिक्षक शिक्षा कार्यक्रम शिक्षको को वर्त्तमान शिक्षा व्यवस्था के अनुरूप तैयार करने मे सक्षम नही है अर्थात् शिक्षको कि शिक्षण क्षमता का अभाव है। अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम से व्यवसायिक अधिकाधिक प्रयोगिक विषयवस्तुओ को सम्मलित किया गया।

विद्यालय इंटरशीप का स्वरूप –

प्रथम वर्ष / द्वितीय समेस्टर मे – 4 सप्ताह का विद्यालय अवलोकन
द्वितीय वर्ष / तृतीय समेस्टर मे – 16 सप्ताह का अभ्यास शिक्षण

---

* शोधकर्ता
** शोध निर्देशिका

इसके अन्तर्गत पाठ्य वस्तुओं के योजनाबद्ध शिक्षण के साथ–साथ पर्यात अवसरो की उपलब्धता द्वारा शिक्षण व्यवसायिक क्षमता को विकसित किया जाता है। विद्यालय इंटरशीप के विषय वस्तुओ मे वर्त्तमान शिक्षा व्यवस्था के सुदृढीकरण हेतु एक शिक्षक की उन सभी आवश्यकताओ एवं क्षमताओ को समावेशित करने का सफल प्रयास किया गया है। शिक्षको मे पठन व लेखन के साथ–साथ आधुनिक शैक्षिक तकनीकी का सफल उपयोग करने की क्षमता का भी विकास करना आवश्यक है। इंटरशीप के दौरान इनको अपनी क्षमताओ व कमजोरियो को पहचानने का अवसर मिलता है साथ ही इन कमजोरियो को दूर करने का भी मौका मिलता है।

चुनौतियां : वर्त्तमान समय मे शिक्षको की व्यवसायिक दक्षता की वृद्वि हेतु विद्यालय इंटरशीप पर विशेष ध्यान देते हुए इसके स्वरूप मे परिवर्तन किया गया है। परंतु इनको विभिन्न चुनौतियो का भी सामना करना पड रहा है। विभिन्न विश्वविद्यालयो के पाठ्यक्रम मे इंटरशीप अलग–अलग संरचना अर्थात् एकरूपता मे कमी इसे पाठ्यक्रम मे शामिल तो कर लिया गया है परन्तु व्यवहारिक प्रतिपादन शिक्षक शिक्षा संस्थानो मे नही किया जा रहा है। इंटरशीप के पूर्व छात्राध्यापको के लिए प्रशिक्षण की व्यवस्था सही ढंग से नही किया जा रहा है। इंटरशीप के लिए विद्यालय का चयन सही ढंग से करने मे समस्या हो रही है। विद्यालयो मे पर्याप्त संसाधनो व समय की कमी। छात्राध्यापको को अपने विषय के शिक्षण का अवसर नही मिल पाता है। विद्यालयों में पृष्टपोषण हेतु अवलोकन कर्त्ता की कमी देखने को मिलता है।

उपाय : सभी विश्वविद्यालय की पाठ्यक्रम मे एक रूपता लाने का प्रयास किया जाना चाहिए। अध्यापक शिक्षको को कार्यशाला के माध्यम से प्रशिक्षित किया जाय। वैसे विद्यालयो का चयन किया जाय जो इंटरशीप के लिए उपयुक्त हो। छात्राध्यापको को अपने विषय के शिक्षण का अवसर मिले। पृष्ट पोषण के लिए एक अवलोकनकर्त्ता छात्राध्यापको के साथ हो। इंटरशीप मे जाने के पूर्व छात्राध्यापको को सूक्ष्म शिक्षण व पाठ् योजना का अच्छे से जानकारी प्रदान किया जाय।

निष्कर्ष : अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम मे विद्यालय इंटरशीप महत्वपूर्ण अंग है इसके प्रभावशीलता पर ही शिक्षको की व्यवसायिक व शिक्षण क्षमता व कुशलता निर्भर करती है। इसको जितना ही प्रभावी ढंग से क्रियान्वयन किया जायेगा समाज मे उतना ही योग्य व कुशल शिक्षको का निर्माण हो पायेगा।

***

बच्चे पर माता-पिता का प्रभाव

गायत्री कुमारी *
शुभा व्यास **

माता-पिता बच्चे का सम्पूर्ण, संतुलित और सर्वांगीण विकास कर उसे सभ्य, परिपक्व एवं जिम्मेदार सामाजिक सदस्य बनाने का कार्य करती है| माता-पिता बच्चे के व्यक्तित्व निर्माण की पहली पाठशाला है| वो कैसा व्यवहार करते है, यह उनके बच्चे के व्यवहार को अत्यधिक प्रभावित करता है| बच्चे नरम मिट्टी की तरह होते है| माता-पिता जिस प्रकार का व्यवहार करते है, बच्चे खुद को उसी अनुसार ढालते है |बच्चे हर समय माता-पिता से सीखते रहते है| बच्चो में अनुभव, कल्पना, अभिव्यक्ति, उनकी ज्ञानेन्द्रियों, बुद्धि भावों का विकास पर माता-पिता का गहरा प्रभाव पड़ता है| एक बच्चे को जितना उसके माता-पिता समझते है, उतना कोई नही समझ सकता| माता-पिता की छोटी-से-छोटी आदतें भी बच्चों पर बहुत गहरा प्रभाव डालती है| साइकोलॉजी की इमिटेशन थ्योरी से ये साबित भी होता है कि बच्चे सामाजिक व्यवहार अपने माता-पिता से ही सीखते है|

बच्चे के जीवन पर माता-पिता के जीवन का बहुत गहरा प्रभाव पड़ता है| बच्चे फूलों-से नाजुक और सागर की लहरों से चंचल होते है| उनके दिल में अनगिनत आकांक्षाएं और अनेक स्वप्न मचलते है| अनेक स्वप्नों को पूरा करने की जिम्मेदारी व्यक्तिगत रूप से माता-पिता की है| बच्चे अपने चारो और फैली परिस्थितियों को चुपके-चुपके अपने अंदर समेटते-सहेजते रहते है| जैसा बच्चे बड़ो को करते देखते है, वैसा ही स्वयं करने लगते है| किसी भी काम को करते समय उसकी अच्छाई-बुराई के बारे में सोचना उनकी समझ से बाहर होता है| बच्चे की प्राथमिक पाठशाला उसका घर होता है| बच्चे अपने माता-पिता को आदर्श मानते है| यदि माता-पिता अनैतिक व्यवहार या कोई गलत काम करते है तो बच्चे भी उसे सहज व्यवहार मानकर वैसा ही करने लगते है| अधिकांश माता-पिता इस बात की चिंता नही करते कि बच्चा कहाँ खेलता है, किसके पास बैठता है, कहाँ जाता है और क्या करता है| माता-पिता कि यह उपेक्षा ही अक्सर बच्चो के बिगड़ने का कारण बन जाती है| अधिकांश माता-पिता यह भूल जाते है कि बच्चे को भोजन से अधिक प्यार,ममता,अपनत्व और सही मार्गदर्शन की आवश्यकता होती है| इसके अभाव में बच्चे स्वयं को असुरक्षित महसूस करने लगते है| बच्चो के विकास में पढ़ाई-लिखाई अपने आप में बहुत महत्वपूर्ण है|अधिकांश माता-पिता की यह कमजोरी होती है कि वे संतान को या तो अपने पैतृक व्यवसाय की ओर मोड़ना

* शोधार्थी (शिक्षा शास्त्र), जयपुर नेशनल यूनिवर्सिटी, जयपुर, राजस्थान
** प्रोफेसर, (शिक्षा शास्त्र), जयपुर नेशनल यूनिवर्सिटी, जयपुर, राजस्थान

या फिर डॉक्टर या इंजीनियर बनाना चाहते है| डॉक्टर या इंजीनियर वही बन सकता है जिसकी इस कार्य में रूचि हो| यदि बच्चा कोई गलती करे तो उसकी आलोचना न करके उस गलती को सुधारने की कोशिश करनी चाहिए| बच्चे के पढाई में पिछड़ जाने पर या औरों से कम नंबर आने पर गुस्सा होकर उसे डाटते-फटकारते रहना स्वयं उनके रास्तें में रुकावट डालना है| बच्चों को प्यार से समझाना चाहिए | डांटने एवं मारपीट से बच्चा सुधरने की बजाय बिगड़ता अधिक है| अपने बच्चों की रिश्तेदारों और पड़ोसियों के बीच उनके बच्चो से तुलना करना भी एक भूल है| इससे बच्चे स्वयं को हीन समझने लगते है| बच्चे में प्रतियोगिता की भावना जाग्रत करना अच्छी बात है लेकिन इस भावना को अन्य तरीकों से बढ़ावा मिलना चाहिए|

अनुशासन का आधार प्रेम तथा कोमलता होना चाहिए न कि कठोरता, क्रूरता, क्रोध एवं अहंकार| माता-पिता उन्हें सतर्क एवं सूक्ष्म दृष्टि के विकास करने में सहायता कर सकते है| बच्चे प्रेम और प्रोत्साहन से जीवन में सफल होते है न कि मारपीट से| बच्चों को बुरी आदतों से बचाने के लिए स्वयं आदर्श बने| यदि उनके पालन-पोषण एवं विकास पर माता-पिता ध्यान देंगे तो उनका समुचित विकास तो होगा ही, राष्ट्र की भावी पीढ़ी भी समृद्ध होगी| माता-पिता द्वारा अनौपचारिक शिक्षा घर पर दिए जाने से बच्चो के विकास में अधिक तीव्रता आती है| बच्चो के लिए माता-पिता महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकते है-

- माता-पिता को घर में बच्चों के सामने ऐसी समस्यात्मक परिस्थिति उपस्थित करनी चाहिए जो उनके उम्र के अनुकूल हो तथा जिससे उनमे सूझ और समझ की शक्ति का विकास हो|
- माता-पिता को चाहिए कि वे दुलार-प्यार से बच्चों द्वारा पूछे गए प्रश्नों के जवाब दे| इससे उनमे आत्मसंतोष होता है तथा साथ-ही -साथ उनके विकास का स्तर ऊँचा होता है|
- माता-पिता को बच्चों की बौद्धिक क्षमता के अनुकूल ही कार्यों की उम्मीद करनी चाहिए| कुछ माता-पिता ऐसा नही करते और वे बच्चों की बौद्धिक क्षमता से अधिक उच्च स्तर के कार्यों की उम्मीद करते है जिसे बच्चे पूरा नही कर पाते| इससे वे क्रोधित हो जाते है और बच्चों को डाटना -फटकारना प्रारम्भ कर देते है| इससे बच्चों में कुंठा उत्पन्न होती है तथा उनके विकास पर बुरा असर पड़ता है|
- माता-पिता को बच्चों की उपलब्धियों की अधिक-से-अधिक प्रशंसा करनी चाहिए इससे उनमे आत्म-सम्मान एवं आत्म-विश्वास बढ़ता है जो मानसिक विकास के लिए एक अच्छा अनुकूल वातावरण तैयार करता है|
- माता-पिता को अपने बच्चों में उचित प्रतिस्पर्धा का भाव भी उत्पन्न करना चाहिए|

उपर्युक्त तथ्यों से यह पता चलता है कि बच्चे माता-पिता से प्रभावित होते है| जब बच्चे के साथ उचित एवं स्नेहपूर्ण व्यवहार होता है तो वे अपने माता-पिता को आदर्श मानते है| माता-पिता का बच्चे पर प्रभावों को हम कई भागो में बाँट सकते है|

1. माता-पिता के रहन-सहन का प्रभाव:- माता-पिता जिस ढंग से अपना जीवनयापन करते है| उसका गहरा प्रभाव बच्चे पर पड़ता है| वह प्रभाव बहुत गहरा और अमिट होता है| स्वच्छ और पवित्र जीवन बिताने वाले माता-पिता के बच्चे स्वच्छ और पवित्र होते है| इसके विपरीत जो माता-पिता बात-बात पर आपस में लड़ते-झगड़ते है, अभद्र शब्द बोलते है, उनके बच्चे पर भी इसका प्रभाव पड़ता है| जो बात-बात में गलत शब्दों, वाक्यों का प्रयोग करते ,यह उनके माता-पिता का प्रभाव ही तो है| माता-पिता की वेश-भूषा एवं खान-पान का प्रभाव भी उनके बच्चों पर होता है| जैसे एक अंग्रेज के बच्चे का खाने पीने का ढंग अपने माता-पिता की तरह हो जाता है| वे वस्तुएँ उसे स्वभावतः रुचिकर लगने लगेंगी जो उसके माता-पिता को रुचिकर है| पंजाबी बच्चे का प्रेम रोटी से रहेगा परन्तु बंगाली बच्चे का प्रेम चावल से होगा| जिसके माता-पिता जैसा भोजन जिस ढंग से करते है वैसा ही बच्चा भी करने लगता है| वस्त्र-जिन बच्चों के माता-पिता जिस ढंग का कपड़ा पहनते है उनके बच्चे भी धीरे-धीरे उसी का अनुसरण करने लगते है|
2. माता-पिता के स्वभाव का प्रभाव:- प्रत्येक व्यक्ति का स्वभाव एक-दूसरे से भिन्न होता है| कोई सहनशील और शांत स्वभाव का होता है तो इसके विपरीत ऐसे भी व्यक्ति होते है जो हवा से लड़ा करते है| हर मिलने वाला उनका शत्रु बन जाता है| इन दोनों स्वभाव वालो के बच्चों में इनके माता-पिता के गुण मिल जाते है|

बच्चे अपने माता-पिता के स्वभाव को धारण करते है| चिड़चिड़े और झगड़ालू स्वभाव वाले के बच्चे भी चिड़चिड़े और झगड़ालू हो जाते है| क्रोधी, स्वार्थी, कंजूस लोगो के बच्चे भी बात-बात में आँख लाल-पिली करने लगते है|

3. माता-पिता के आचरण का प्रभाव:- आचरण का अनुकरण बच्चा बहुत सूक्ष्मता से करता है| सदाचारी, चरित्रवान का बच्चा भी सदाचारी एवं चरित्रवान होता है| मनोवैज्ञानिको ने इसकी बड़ी खोज की है| इंग्लैंड की रॉयल सोसाइटी के अधिकांश सदस्य उच्च वंश के थे| सदाचार और चरित्र की छाप बच्चे पर उपदेश से नही वरन आचरण से पड़ती है| चरित्रवान माता-पिता अपनी मूक भाषा से बच्चे पर इतना गहरा प्रभाव डाल देते है कि वह भीष्म कि तरह दृढ़ बन जाता है कठिन से कठिन पारिस्थितियो में भी उनका मन परधन, परस्त्री, परसम्पति की ओर नहीं जाता| दुराचारी, झूठे और बात-बात में बोलने वाले माता-पिता के बच्चे कभी सत्यवादी और सदाचारी कैसे बन सकेंगे? माता-पिता बच्चे में अच्छे-बुरे जिस आचरण की नींव डाल देते है, जिन गुण और अवगुणों को उनमें समावेशित कर देते है उसी आधार पर बच्चे

का जीवन रूपी भवन निर्मित होता रहता है| इसलिए बच्चे को जन्म देने के साथ ही माता-पिता का यह कर्तव्य हो जाता है कि वे अपने बच्चों को जिस स्वभाव और आचरण का बनाना चाहते है ,स्वयं वैसा करने लगे| माता-पिता बच्चे के लिए दर्पण का काम करते है| वह अपना स्वरूप इन्ही में देखता रहता है| जैसा इनका स्वभाव, रहन सहन और आचरण होता है उसी की सूक्ष्म छाप बच्चे पर पड़ती रहती है| बचपन के ये प्रभाव जीवन पर्यन्त नष्ट नही होते|

निष्कर्ष:- माता-पिता को अपने बच्चों के लिए सही उदहारण निर्धारित करना महत्वपूर्ण है| नकारात्मक उदहारण बच्चे के विकास के लिए असरदार हो सकते है और खराब व्यवहार को जन्म दे सकते है| असामाजिक बच्चे अपने व्यवहार को अपने माता-पिता के उदाहरणों से सीखते है| यदि माता-पिता अपने बच्चों से दुर्व्यवहार करते है तो वे आक्रामक और हिंसक हो जाते है| वे सीखने की समस्याओं का अनुभव करते है| दुर्व्यवहार स्वस्थ तरह से बढ़ने के लिए बच्चे को जो चाहिए इसके विपरीत प्रदान करता है| यह बच्चे के अंदर और बाहर की दुनिया को नष्ट करता है|

बच्चे को बड़ा करना एक प्रशिक्षण है और इसे पारित करने का सबसे अच्छा तरीका सकारात्मक होना, बिना शर्त प्यार देना और अपने बच्चे के लिए उत्कृष्ट भूमिका मॉडल के रूप में काम करना है| बच्चे को सही माहौल देने के लिए माता-पिता को स्वयं भी बदलना चाहिए| बच्चा कोरा कागज होता है जो भी उसके सामने आएगा,उसकी अमिट छाप उसके चित्त पर पड़ेगी और वह आजीवन के लिए उसकी हो जाएगी| बच्चों पर कभी अपनी इच्छाएँ नही थोपनी चाहिए|

माता-पिता को वह आदर्श प्रस्तुत करना चाहिए जिसकी उम्मीद उन्हें बच्चों से होती है| बच्चे के पहले मित्र उनके माता-पिता है जो उन्हें बड़ा करने की पूरी प्रक्रिया के माध्यम से मार्गदर्शन करते है, तो वे कैसे व्यवहार करते है यह उनके बच्चे के व्यवहार को बहुत प्रभावित करता है|

सन्दर्भ:-

- मंगल, एस. के., मंगल, शुभ्रा. (2016). *अधिगम एवं विकास का मनोविज्ञान*. नई दिल्ली : पी.एच.आई. प्राइवेट लिमिटेड,पृ.सं.96-48.
- मिश्र, ब्रज, कुमार. (2016). *मनोविज्ञान: मानव व्यवहार का अध्ययन*. नई दिल्ली : पी.एच.आई. प्राइवेट लिमिटेड,पृ.सं.17-18.
- चेरी, के. (2015). पेरेंटिंग स्टाइल्स: वाट दे आर एंड व्हाई दे मैटर्स. Retrieved from http://psychologyabout.com/od/developmentalpsychology/a/parenting-style.htm

- कास्ट, बी. (2015). पॉजिटिव पेरेंटिंग:प्रेक्टिकल एडवाइस एंड डीप इनसाइट. Retrieved from http://www.positive-parenting-ally.com/3-parenting-styles.html
- गनिबन, जे. एम., उल्ब्रिचट, जे., सौदिनो, के. जे., रिस, डी., एंड निदेरिसर, जे. एम. (2011). अंडरस्टैंडिंग चाइल्ड-बेस्ड इफेक्ट्स ऑन पेरेंटिंग: टेम्परामेंट एस अ मॉडरेटर ऑफ जेनेटिक एंड एनवायरनमेंटल कंट्रीब्युसन टू पेरेंटिंग. *डेवलपमेंटल. साइकोलॉजी*, *47*, 676-692. doi:10.1037/a0021812.
- गुप्ता, एस. पी., एंड गुप्ता अलका. (2008). *उच्चतर शिक्षा मनोविज्ञान*. इलाहाबाद: शारदा पुस्तक भवन ,
- मक्की, एल., कोल्लेटी, सी., राको, ए ., जोंस, डी. जे., फोरहैंड, आर. (2008). पेरेंटिंग एंड चाइल्ड एक्सटरनेलिज़िंग बिहेवियर्स: आर द एसोसिएशन्स स्पेसिफिक और डिफ्यूज?.*अग्रेस वायलेंट बिहेवियर्स*, *13*, 201-215. doi:10.1016/j.avb.2008.03.005
- पैरी, टी.एस. (2005). असेसमेंट ऑफ डेवलपमेंटल लर्निंग एंड बिहेवियरल प्रॉब्लम इन चिल्ड्रेन एंड यंग पीपल. *मेडिकल जर्नल असेसमेंट*, *183*, 43-48.

***

कश्मीरी विस्थापितों की त्रासदी : हिंदी उपन्यासों के सन्दर्भ में

पूजा सिंह *

"लोग टूट जाते हैं, एक घर बनाने में,
तुम तरस नहीं खाते, बस्तियाँ जलाने में।"

'विस्थापन' त्रासद होता है, खासतौर पर अपने ही देश में हुआ विस्थापन। वह मानवीय यातना और मनुष्य के मूल अधिकारों से जुड़े बेचैन करने वाले प्रश्नों को जन्म देता है। कल्हण पंडित ने जिस कश्मीर को 'धरती का स्वर्ग' कहा, वह कश्मीर बम–बारूद से लगातार ध्वस्त हो रहा है। वहाँ के बाशिंदे साझी–संस्कृति को बनाये रखने की जितनी भी कोशिश करें, उन्हें नाकाम कर दिया जाता है। कश्मीर में धर्म की आड. में क्रूर धार्मिक कट्टरपंथियों ने अपने आतंक से के लोगों को विस्थापित होने के लिए मजबूर किया। 1389 ई. से 1990 ई. के बीच कश्मीर घाटी से कश्मीरी पंडितों का सात–बार विस्थापन हुआ जिसमें 1990 ई. का विस्थापन अत्यंत अमानवीय और भयावह था। इसमें तीन से सात लाख के करीब पंडित कश्मीर से बेघर हुए। इन विस्थापितों की यथास्थिति से परिचित कश्मीरी इतिहास तथा समाज के अध्येता वॉल्टर लॉरेंस ने लिखा है कि '(कश्मीर) एक शानदार फ्रेम में जड़ी बदसूरत तस्वीर है।'

दरअसल, कश्मीर का 'विस्थापन साहित्य' कट्टर, क्रूर और गैर–राष्ट्रवादी ताकतों की राष्ट्रवादी ताकतों के साथ सीधी–सीधी जंग का प्रतिफलन है। बर्बर बहु–संख्याबल के सामने मासूम अल्पसंख्या–बल को झुकना पड़ा जिसके कारण 'पंडित–समुदाय' भारी संख्या में कश्मीर घाटी से विस्थापित हुआ और पिछले लगभग तीन दशका से अपनी अस्मिता और इज्जत की रक्षा के लिए संघर्षरत है। ःकश्मीर' जमीन का एक ऐसा खूबसूरत हिस्सा जहाँ सब एक बार जाना चाहते हैं मगर जिसकी कहानी कोई नहीं सुनना चाहता। एक ऐसा भू–भाग जिसे पाकिस्तान अपना अभिन्न हिस्सा कहता है और हिंदुस्तान अपना। कश्मीरी आवाम चौबीस घंटे आतंक के साये में जीते हैं।

सूर्य की नगरी कश्मीर में जब अँधेरे ने अपना साम्राज्य स्थापित किया तो सोमदेव की कथाओं की कंदीलें भी एक समय तक रौशनी कर न सकीं। सतीसर के दानव का पुर्नजन्म हो गया था और ऋषि–परंपरा हताहत हो गयी थी। कश्मीर आधुनिक विश्व की सबसे अभद्र साम्प्रदायिक हिंसा का शिकार हो गया था। कश्यप ऋषि के वंशजों को देश से निकाला गया जो अभी तक तीस वर्ष से निर्वासन का जीवन जी रहे हैं। सोमदेव के उत्तराधिकारी के मनों में हजारों त्रासद कहानियों ने जन्म लिया, परन्तु एक

---

* शोध छात्रा, हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

लम्बे अंतराल के बाद ही यह कहानियाँ मन से कागज तक आयीं। परन्तु यह कहानियाँ कहते हुए हम उस हिंसा की सभ्यता के विरोधी अधिक लगे जिसने हमें यह त्रासद और भयावह कथाएँ कहने पर विवश कर दिया था। विरोध में हमारे कथावाचकों के स्वर सामान्य से अधिक ऊंचे हो गये। इससे पाठक को एक आभास हो गया कि कथावाचक अपने ही चरित्रों के रोल के आगे हार गया है और उसी का एलान कर रहा है। कथाओं में बन्दूक और चाकू लेकर घूमने वाले चरित्रों के विरुद्ध ही कथावाचक खड़ा दिखा और इस तरह अधिकतर कथाओं में चरित्रों की मारकाट का प्रभाव कम अपितु कथावाचक के भीतर की टूटन की गूंज अधिक प्रखर हो उठी।

आतंकवाद प्रभावित क्षेत्रों में चेहरों की पहचान करना बहुत कठिन काम होता है। विशेषतः उन चेहरों की जिनके खद–ओ–खाल स्पष्ट न हो और यही चेहरे इन हालात में हीरों होते हैं। अज्ञेय की 'हीरों' कविता इन हालात में सार्थक हो जाती है। बड़े से बड़े काफिया–शनास भी इन चेहरों के भ्रम में फंस जाते है। ऐसा ही हमारे उपन्यासकारों के साथ भी हुआ हैं। तभी अधिकतर उपन्यासकार अपनी तिलमिलाहट बाँटते नजर आते हैं। 'मैंने देखा था कि गोली पर मेरा नाम लिखा है, मैं इससे परेशान नहीं हुआ 'मैंने सुना की वह कह रहे थे कि जो जद में आये वह .....' 1991 में लन्दन गार्डियन में बेलफ़ॉस्ट के किसी अज्ञात निवासी का यह वक्तव्य मेरी बात के हक में खड़ा दिखाई दे रहा है।

दो ऐसे उपन्यास हैं जिन्हें इन दो दशकों के दौरान कश्मीरी रचनाकारों की हिंदी की प्रतिनिधि रचनाएँ मान सकते हैं। यह दोनों उपन्यास नारी लेखकों की साधना हैं जिन्हें स्वयं रचनाकार अपनी श्रेष्ठ रचनाएँ मानती हैं। हिंदी कथा–साहित्य में अपना नाम कमाने वाली चंद्रकांता के साथ खड़ी हैं क्षमा कौल। इन उपन्यासों के प्लाटों में कश्मीर है –एक शापित घाटी जहाँ सब कुछ ठीक नहीं है। प्लाट की समानता के बावजूद इन दोनों उपन्यसों में बात अलग–अलग ही है। इन रचनाकारों ने विस्थापितों के दर्द को जीवंत रूप में प्रस्तुत किया हैं।

चंद्रकांता ने 'कथा सतीसर' से पहले भी अपनी कहानियों के माध्यम से कश्मीर घाटी में व्याप्त राजनीतिक असमंजस का चित्रण किया था। उन्हीं अभिव्यक्तियों का एक वृहद् पृष्ठभूमि में विस्तार है 'कथा सतीसर' जिसे निःसंदेह इन दोनों प्रतिनिधि उपन्यासों में श्रेष्ठ माना जा सकता है। चंद्रकांता सोमदेव की पारम्परिक कथा–शैली से प्रभावित दिखतो है। 'कथा सतीसर' कई कथाओं और उपकथाओं का समावेश है। परन्तु यदि वह इस पारम्परिक कथा–शैली का ही निर्वहन करतीं तो यह उपन्यास अधिक मनोहारी हो पाता। 'कथा सतीसर' कश्मीर में व्याप्त मौजूदा परिस्थितियों में मूल खोजने का प्रयास करता है। तभी चंद्रकांता हमें सत्तर साल पुराने कश्मीर ले जाती हैं और धार्मिक आधारों पर कश्मीर के राजा हरी सिंह के विरोध से बात को आरम्भ करती हैं। वह हमें स्पष्ट रूप से बताना चाहती हैं

कि कश्मीर में तानाशाही से जनतंत्र की ओर का सफर धार्मिक संकीर्णता की बुनियाद पर हुआ। चंद्रकांता को भाषा सरल होते हुए भी काव्यात्मक है। 1990 ई. के धार्मिक उन्माद के चलते कश्मीर में पंडितों की जला–ए–वतनी से पहले की 70 वर्षों की घटनाओं को बड़े विस्तार से दर्शाया गया है, परन्तु निर्वासन और उससे जुड़े अहम हिस्से पर एक सरसरी दृष्टि डाली गई है। ऐसा करके पूरे उपन्यास के दौरान अर्जित की गई उम्मीदें एकाएक पाठकों को निराश कर देती हैं। एक कश्मीरी के लिए 'कथा सतीसर' एक डायरी है, ऐतिहासिक घटनाओं को मार्मिक अंदाज से क्रमबद्ध किया हुआ दस्तावेज। परन्तु गैर–कश्मीरी पाठकों के लिए इस उपन्यास में जानने और समझने के लिए बहुत कुछ हैं। जहाँ 'कथा सतीसर' में उम्मीद पर नाउम्मीदी का वर्चस्व है, वहीं चंद्रकांता रह–रह कर कश्मीर की उज्ज्वल धरोहर की याद दिलाकर उम्मीद के दीपक जलाने का भी प्रयास निरंतर करती दिख रही है। चंद्रकांता एक कुशल लेखिका हैं, उनके समक्ष काली रात ने कुछ सवाल खड़े कर दिये हैं। यह वही प्रश्न हैं जो हर बुद्धिमान और सचेत कश्मीरी के सामने इस विशिष्ट कालखंड में खड़े है परन्तु चंद्रकांता ने इन प्रश्नों के उत्तर सभ्यता से पूछे न की इतिहास से, तभी वह निरपेक्ष बन कर उभरी हैं।

हिंदी की जानी मानी कवियत्री क्षमा कौल का उपन्यास 'दर्दपुर' भो इसी श्रृंखला की एक कड़ी है। 'दर्दपुर' कश्मीर का पर्याय है जो अँधेरे की भेंट चढ़ा। क्षमा कौल भी उन लाखों कश्मीरी हिन्दुओं में एक थीं, जिसे घर परिवेश त्याग कर जम्मू में जा बसना पड़ा। 'दर्दपुर' क्षमा कौल का तीक्ष्णतम प्रतिरोध है। एक बड़े पटल पर बात करते हुए क्षमा के भीतर का रचनाकार हांफते–हांफते बात करता है, गुस्से में गालियाँ देता है और जिस कश्मीरियत को आतंकवादियों ने तार–तार कर दिया था, उसे अपने प्रतिक्रियात्मक आवेश से आहत करता है। वह स्वयं 'दर्दपुर' की नायिका है जिसे 'सुधा' का नाम दिया गया है। 'दर्दपुर' म निर्वासित हिन्दू स्त्री की प्रतिक्रिया बिलकुल आतंकवाद की क्रिया सी है जिसे पूरे उपन्यास में औचित्य प्रदान करने का प्रयास किया गया है। क्षमा कौल द्वारा रचित 'दर्दपुर' उपन्यास धार्मिक उन्माद और आतंक के चलते कश्मीर के संस्कृतिमूलक समाज के भयावह विखंडन तथा कश्मीरी हिन्दुओं और मुसलमानों के आपसी रिश्तों के संवेदन, द्वन्द और जटिलता को एक संवेगी रूप से उद्घाटित करने वाला सशक्त उपन्यास है। क्षमा कौल ने अपनी विशिष्ट कथावस्तु, पात्रों के गठन तथा मार्मिक वर्णन शैली से कश्मीर की त्रासदी को प्रत्यक्ष कर दिया है। यह उपन्यास सचमुच में दर्द को घाटी का यथार्थपूर्ण, मर्मस्पर्शी आख्यान है।

कश्मीर भारत के सुन्दरतम स्थानों में से एक है जो अपने प्राकृतिक सौंदर्य के लिए प्रसिद्ध है परन्तु यह निरंतर धार्मिक कट्टरता से उपजे आतंकी और मजहबी झगड़ों का शिकार होता रहा है। परिणाम स्वरूप लोग विस्थापन का दंश झेलने को मजबूर होते रहे हैं। आतंकवाद और हिंसा पर कलम उठाते हुए रचनाकार का धर्म बनता है कि वह साहित्यिक क्रूरता के

आतंक से रचना को बचाए। कश्मीरी विस्थापितों की दारुण कथा एक ऐसी यथार्थ कथा है जो किसी को भी सोचने पर मजबूर कर देती हैं और रचनाकारों को लिखने के लिए बाध्य होना पड़ता है, फलस्वरूप वे लेखनी उठाने के लिए विवश हो जाते हैं।

सन्दर्भ :

1. अशोक कुमार पांडेय : कश्मीरनामा
2. आदित्य आर्य : कश्मीरी पंडितों का विस्थापन
3. शिषन कृष्ण, रैणा : कश्मीरी कवित्रियाँ और उनका रचना संसार
4. राजकिशोर : कश्मीर का भविष्य

***

हिंदी साहित्येतिहास की परम्परा में मौलाना दाऊद और चंदायन

प्रवीन नाथ यादव *

मौलाना दाऊद ने अपने बारे में बहुत कम लिखा है। बाहरी स्रोतों से भी उनके बारे में जानकारी कम ही मिलती है। उन्होंने अपने ग्रंथ चंदायन में अपना संक्षिप्त परिचय दिया है। अब्दुर कादिर बदायूंनी कृत मुंतखब–उत–तवारीख, शेख अब्दुल हक कृत अखबार उल अखयार, डिस्ट्रिक गजेटियर रायबरेली और अवध के प्रांतीय गजेटियर में मौलाना दाऊद और चंदायन के बारे में संक्षिप्त जानकारियां प्राप्त होती है।

हिन्दी के साहित्येतिहासकारों में सबसे पहले गार्सा द तासी ने अपने ग्रंथ में चंदायन के एक हस्तलिखित प्रति की सूचना दी है। परमेश्वरी लाल गुप्त के अनुसार तासी ने अपने ग्रंथ में यह लिखा है – 'चंदा और हुरक की प्रेम कथा अथवा परी झील का महल'– एक चौपर्ता हस्तलिखित ग्रंथ, जिसमें अनेक रंगीन अलंकरण है। यह हस्तलिखित ग्रंथ विचित्र ढंग के फारसी लिपि में लिखा हुआ है। यह ब्रिटेन की महारानी के चाचा ड्यूक आफ ससेक्स के मूल्यवान संग्रह में है।' (1964: 11) किन्तु हिन्दी के साहित्येतिहासकारों और अध्येताओं का इस सूचना की ओर ध्यान नहीं गया। परमेश्वरी लाल गुप्त जब चंदायन के संपादन हेतु सामग्री इकट्ठा कर रहे थे तब उन्होंने इस सूचना के आधार पर चंदायन की मैनचेस्टर स्थित रीलैण्ड्स लाइब्रेरी वाली प्रति प्राप्त की। उन दिनों यह प्रति ड्यूक आफ ससेक्स के संग्रहालय से निकलकर रीलैण्ड्स लाइब्रेरी में पहुँच गयी थी।

हिन्दी साहित्येतिहास की परंपरा में मिश्रबंधुओं ने अपने ग्रंथ 'मिश्रबंधु–विनोद' भाग एक में मौलाना दाऊद और चंदायन के संदर्भ में यह सूचना दी है – ''मुल्ला दाऊद अमीर खुसरों का समकालीन था। उसका कविता काल संवत् 1385 के लगभग था। इसने नूरक और चन्दा के प्रेम की कथा हिन्दी में रची। यह ग्रंथ हमारे देखने में नहीं आया।'' (1971: 249) मिश्रबंधुओं ने अपनी इस सूचना का कोई श्रोत नहीं दिया है। मौलाना दाऊद अमीर खुसरो के समकालीन नहीं थे और उनकी उपाधि भी 'मुल्ला' नहीं थी। उनकी कवता का समय भी संवत् 1385 के लगभग नहीं था।

इसके बाद अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' ने अपने 'हिन्दी भाषा ओर उसके साहित्य का विकास' नामक ग्रंथ में मौलाना दाऊद के बारे में यह सूचना दी है –

''अमीर खुसरो का समकालीन एक और मुल्ला दाऊद नामक ब्रजभाषा का कवि हुआ।

---

* शोध छात्र, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

कहा जाता है कि उसने नूरक एवं चन्दा की प्रेमकथा नामक दो हिन्दी पद्य ग्रंथों की रचना की। किन्तु ये दोनों ग्रंथ अप्राप्य हैं। इसलिए इसकी रचना की भाषा के विषय में कुछ लिखना असंभव है'' (संवत् 1997: 147) मिश्रबंधुओं की तरह हरिऔध ने भी अपने इस विवरण के श्रोत का उल्लेख नहीं किया है। इन्होंने मिश्रबंधुओं की कही बात को दोहराते हुए दो नई सूचनाएं दी हैं – पहली दाऊद ने नूरक और चंदा नामक दो ग्रंथों की रचना की। दूसरी दाऊद ब्रजभाषा के कवि थे। ये दोनों सूचनाएं भी भ्रामक हैं। दाऊद ब्रजभाषा के कवि नहीं थे। हालाँकि स्वयं हरिऔध ने लिखा है कि दाऊद के दोनों ग्रंथ अप्राप्य हैं। इसलिए उनकी भाषा के विषय में कुछ लिखना असंभव है। फिर न जाने किस आधार पर वह दाऊद ब्रजभाषा का कवि बता रहे थे।

डॉ. पीताम्बर दत्त बर्थवाल ने अपने ग्रंथ 'हिन्दी काव्य में निगुण्र संप्रदाय' में दाऊद के बारे में यह बातें लिखी है – ''सबसे पुराना ज्ञात प्रेमाख्यानक कवि मुल्ला दाऊद मालूम होता है जो अलाउद्दीन के राजत्वकाल संवत् 1497 (1439ई.) के आसपास विद्यमान था। परन्तु मुल्ला दाऊद भी आदि प्रेमाख्यानक कवि था या नहीं, कह नहीं सकते। उसकी नूरक–चंदा की कहानी का हमें नाम ही मालूम है।'' (संवत् 2007: 20–21) दाऊद हिन्दी के सबसे पुराने प्रेमाख्यानक कवि हैं ऐसा अनुमान बर्थवाल का है, इस सूचना के अतिरिक्त बर्थवाल की और सूचनाएं सही नहीं है।

रामकुमार वर्मा ने अपने साहित्येतिहास 'हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास' में दाऊद के विषय में यह सूचना दी है – ''खुसरों का नाम जब समस्त उत्तरी भारत में एक महान कवि के रूप में फैल रहा था, उसी समय मुल्ला दाऊद का नाम भी हिन्दी साहित्य के इतिहास में आता है। मुल्ला दाऊद की एक प्रेम कहानी प्रसिद्ध है, उसका नाम है चन्दावन या चन्दावत।'' (1954: 131) रामकुमार वर्मा ने भी अपनी इन सूचनाओं के श्रोत का उल्लेख नहीं किया है। मिश्रबंधुओं की तरह वे भी दाऊद को अमीर खुसरों का समकालीन मानते हैं। वह एक नई सूचना देते हैं– दाऊद की रचना का नाम चन्दावन या चन्दावत है। हिन्दी साहित्येतिहास की परंपरा में चंदायन के का नाम पहली बार उल्लेख हुआ है।

हिन्दी साहित्येतिहास की परंपरा में सबसे पहले ब्रजरत्नदास ने बदायूंनी के 'मुंतखब–उत–तवारीख' के हवाले से अपनी पुस्तक 'खड़ी बोली हिन्दी साहित्य का इतिहास' में यह सूचना दी कि फिरोज शाह तुगलक के दौर में दाऊद ने अपने काव्य चन्दायन की रचना की (संवत् 1998: 94–95)। लेकिन उनके इस काम की नोटिस बहुत कम ली गयी, क्योंकि उनके बाद भी हिन्दी साहित्य के अध्येता और शोधार्थी मिश्रबंधुओं और रामकुमार वर्मा की बातों को आगे बढ़ाते रहे। परशुराम चतुर्वेदी ने 'सूफी काव्य–संग्रह' नामक अपनी पुस्तक में दाऊद और उनकी रचना के विषय में लिखा है – ''सूफी प्रेमगाथा की कोटि में रखी जाने योग्य सबसे पहली

रचना अब तक मुल्ला दाऊद की पुस्तक 'चन्दावन' मानी जाती है जिसका उल्लेख अब्दुल कादिर बदायूंनी ने अपने इतिहास ग्रंथ 'मुंतखब–उत–तवारीख' में किया है और जिसके विषय में वह लिखता है कि उसमें हिन्दवी की मसनवी द्वारा नूरक व चन्दा के प्रेम का वर्णन है। इस रचना का वह इसलिए विशेष परिचय नहीं देना चाहता क्योंकि उसके समय में वह 'अत्यंत प्रसिद्ध' है। इसे वह दैवी सत्यता से भरी भी कहता है। इस रचना का सर्वप्रथम उल्लेख हिजरी सन 772 (संवत् 1427) में अर्थात फीरोजशाह तुगलक के शासन काल (संवत् 1408–1445) में हुआ है। डॉ. रामकुमार वर्मा ने दाऊद को अलाउद्दीन खिलजी (संवत् 1353–1373) का समकालीन समझा है और कविता काल संवत् 1375 ठहराया है जो अनुचित नहीं कहा जा सकता। जान पड़ता है कि मुल्ला दाऊद इस प्रकार अमीर खुसरो (सवंत् 1312–1381) का भी समकालीन था। मुल्ला दाऊद के संबंध में यह पता नहीं चलता है कि उसकी 'हिन्दवी' का रूप क्या था और उसमें किन छंदों का प्रयोग हुआ था।'' (1951: 62–63) इस विवरण को पढ़ने से साफ पता चलता है कि परशुराम चतुर्वेदी बदायूंनी के मुंतखव–उत–तवारीख की सूचना से ज्यादा भरोसा रामकुमार वर्मा की सूचना पर करते हैं। रामकुमार वर्मा की सूचना को दोहराते हुए दाऊद को अमीर खुसरो का समकालीन ठहराते हैं। यह सूचना ठीक नहीं है। ब्रजरत्नदास इसके पहले मुंतखव–उत–तवारीख का विवरण दे चुके थे, जिसमें दाऊद को फीरोजशाह तुगलक का समकालीन बताया गया है। लेकिन इस विवरण का हवाला देने के बावजूद परशुराम चतुर्वेदी रामकुमार वर्मा की ही सूचना पर अपनी मुहर लगाते हैं।

गणपतिचन्द्र गुप्त ने अपने साहित्येतिहास में चंदायन को अवधी उपलब्ध कथा काव्यों की पहली रचना कहा है। इसका रचनाकाल सन 1379 ई. माना है। इन्होंने लिखा है – ''मुल्ला दाऊद की चंदायन के दो पाठों का संपादन एवं प्रकाशन डॉ. माता प्रसाद गुप्त एवं डॉ. विश्वनाथ प्रसाद द्वारा एक ही साथ हाल ही में प्रकाशित हुआ है। इसका रचनाकाल अन्तर्साक्ष्य एवं बाह्य प्रमाणों के आधार पर सन 1379 ई. प्रमाणित होता है। कवि ने अपने समय के बादशाह फीरोजशाह तुगलक एवं अपने आश्रयदाता जूनाशाह और उसके पिता की भी प्रशंसा की हैं। उसमें पाँच–पाँच अर्धालियों के पश्चात एक–एक दोहा प्रयुक्त किया गया है। इस दृष्टि से यह अवधी में उपलब्ध कथा–काव्यों में सर्वप्रथम रचना कही जा सकती है। (2013: 121–122) डॉ. विश्वनाथ प्रसाद और डॉ. माताप्रसाद गुप्त दोनों विद्वानों ने दाऊद को मौलाना दाऊद कहा है। इसके बावजूद लगता है कि गणपतिचन्द्र गुप्त ने हिन्दी की साहित्येतिहास की परम्परा को दोहराते हुए मुल्ला दाऊद कहा है। गणपतिचन्द्र गुप्त के इस विवरण से पता चलता है कि वह हिन्दी के सूफी काव्यों को कथा–काव्य मानते हैं।

डॉ. नगेन्द्र द्वारा संपादित 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' ग्रंथ में 'चंदायन' का रचनाकाल सन1379 ई. माना गया है। इसमें माताप्रसाद गुप्त द्वारा नियत किये गये 'चांदायन' शीर्षक को अपनाया गया है, किन्तु माता प्रसाद गुप्त के द्वारा लिखी गयी दाऊद की उपाधि मौलाना की जगह ये मुल्ला उपडी लिखते हैं। लेखक ने माता प्रसाद गुप्त के हवाले से चंदायन को भारतीय परंपरा का आख्यान कहा है। ''विषय–वस्तु की दृष्टि से भी इसमें भारतीय प्रेमाख्यानों की विभिन्न प्रवृत्तियों की व्यंजना सफलतापूर्वक हुई है, जैसे – नायक लोर (लोरिक) एवं चंदा का उन्मुक्त प्रणय, प्रथम दर्शन में प्रेमोत्पत्ति, विभिन्न व्यक्तियों द्वारा उनके प्रेम में बाधा, नायक का योगी होकर घर से निकलना, नाग द्वारा नायिका को डसा जाना, गारुड़ी द्वारा उसका ठीक हो जाना आदि। इसकी भाषा अवधी है। (1973: 153–154)

हिन्दी साहित्येतिहास के लेखन की परम्परा में मौलाना दाऊद और उनके चंदायन के बारे में सही और मुकम्मल जानकारी 1996 ई. में लिखे गये बच्चन सिंह के इतिहास 'हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास' में मिलती है। इस ग्रंथ के अनुसार मौलाना दाऊद ने 1379 ई. में चंदायन की रचना की। यह लोरिक–चंदा की लोक प्रचलित कहानी पर आधारित है। हिन्दी भाषा–भाषी जनता में इस प्रेमगाथा का गायन लोरिकी, चनैनी, लोरिकायन आदि के नाम से आज भी होता है। यह लोकगीत नहीं लोकगाथा है। लोरिक–चंदा की कहानी का उपयोग दाऊद ने ही नहीं किया है, दक्षिणी हिन्दी के कवि गवासी ने 'मैना सतवन्ती', बांगला के कवि दौलत काजी ने 'सती मैना ओ लोर चनद्रानी और फारसी के कवि हमीदी ने 'अस्मतनामा' में किया है। हजारी प्रसाद द्विवेदी के 'पुनर्नवा' की नींव भी इसी पर रखी गयी है। (1996: 67) इन सूचनाओं के अतिरिक्त बच्चन सिंह ने चंदायन पर एक महत्त्वपूर्ण टिप्पणी इस प्रकार की है दृ "अभी तक रासों काव्यों में राजपूतों के जातीय शौर्य का चित्रण किया जाता है। उनमें स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषों का पराक्रम अधिक है। थोड़ी बहुत स्वतंत्रता स्त्रियों ने प्राप्त कर ली है, पर चंदायन में तो पति क्लीव और अल्पवयस्क है। समस्या यह है कि ऐसी स्थिति में स्त्री क्या करें? ब्राह्मण धर्म के अनुसार पति चाहे जैसा हो, पत्नी को उसका अनुगामी होना ही चाहिए। यद्यपि इसके अपवाद भी मिलते हैं, फिर भी उसकी नियति अनुगामी होने में ही है। लोरिक विवाहित है। लेकिन चंदा उसके साथ समाज को चुनौती देती हुई भाग खड़ी होती है। पहल चंदा ही करती है। सामंती जकड में फंसी हुई स्त्री की यह चुनौती समाज की तथाकथित मर्यादाओं को कच्चे धागे की तरह तोड़ देती है। अन्य प्रेमाख्यानों की तरह इसकी भाषा अवधी है। इससे एक बात और भी स्पष्ट हो जाती है कि चौदहवीं शताब्दी के अंत में देश्य भाषाओं का उदय हो चुका था और उनमें काव्य–सृजन भी होने लगा था। (1996: 68)

सन्दर्भ :

1. गुप्त, परमेश्वरी लाल (संपा.) (1964) : 'चंदायन', हिन्दी ग्रंथ रत्नाकर, बंबई
2. मिश्रबंधु, (1971) : 'मिश्रबंधु विनोद भाग एक, गंगा पुस्तक माला, लखनऊ
3. हरिऔध, अयोध्या सिंह उपाध्याय, (संवत् 1997) : 'हिन्दी भाषा और उसके साहित्य का विकास', पटना विश्वविद्यालय, पटना
4. बर्थवाल, पीताम्बरदत्त, (संवत् 2007) : 'हिन्दी काव्य में निगुर्ण संप्रदाय', अवध पब्लिशिंग हाउस
5. वर्मा, रामकुमार, (1954) : 'हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास', रामनारायण लाल प्रकाशन, इलाहबाद
6. दास, ब्रजरत्न, संवत् (1998) : 'खड़ी बोली हिन्दी साहित्य का इतिहास', हिन्दी साहित्य कुटीर, काशी
7. चतुर्वेदी, परशुराम, (1951) : 'सूफी काव्य संग्रह', हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग
8. गुप्त, गणपति चन्द्र, (2013) : 'हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास', लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
9. नगेन्द्र (संपा.), (1973) : 'हिन्दी साहित्य का इतिहास', नेशनल पब्लिर्शिग हाउस, नयी दिल्ली
10. सिंह, बच्चन, (1996) : 'हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास', राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली

***

भारत-कश्मीर समस्या में अमेरिकी चौधराहट

फरहीन बानों *
डॉ अर्चना सिन्हा **

कश्मीर समस्या भारत–पाकिस्तान के मध्य एक ज्वालामुखी की तरह है जो समय–समय पर लावा उगलती है। अलाप माइकल के अनुसार, ''कश्मीर समस्या अनिवार्यता भूमि या पानी की समस्या नही यह लोगों और प्रतिष्ठा की समस्या है।''

कश्मीर समस्या भारत और पाकिस्तान के मध्य सबसे बड़ी समस्या है। कश्मीर भारत के उत्तर–पश्चिम पर स्थित ऐसा राज्य है जो भारत और पाकिस्तान को जोड़ता है। 1947 बंटवारे के बाद पाकिस्तानी कबायली सेना ने कश्मीर पर हमला कर दिया कश्मीर के महाराजा ने भारत के साथ विलय की सन्धि की। इस सन्धि पर दोनों देशों के मध्य युद्ध शुरु हो गया। 1948 में भारत ने कश्मीर का मुद्दा संयुक्त राष्ट्र में उठाया। संयुक्त राष्ट्र ने प्रस्ताव 47 पास किया जिसमें पूरे इलाके में जनमत संग्रह कराने की बात कही गयी। लेकिन प्रस्ताव के मुताबिक पाकिस्तान ने कश्मीर से सैनिक हटाने से इन्कार कर दिया तथा कश्मीर को दो हिस्सों में बाँट दिया गया। 1951 में भारतीय कश्मीर में चुनाव हुए और भारत में विलय का समर्थन किया गया। भारत ने कहा, अब जनमत संग्रह की जरुरत नहीं बची। पर संयुक्त राष्ट्र और पाकिस्तान ने कहा, जनमत संग्रह तो होना चाहिए। 1953 में जनमत संग्रह समर्थक और भारत में विलय को लटका रहे कश्मीर के प्रधानमंत्री शेख अब्दुल्ला को गिरफ्तार कर लिया गया। जम्मू कश्मीर की नई सरकार ने भारत में कश्मीर के विलय पर मुहर लगाई। तत्पश्चात् भारतीय संविधान में जम्मू कश्मीर को भारत के हिस्से के तौर पर परिभाषित किया गया। 1965 में कश्मीर को लेकर भारत और पाकिस्तान का युद्ध हुआ। आखिर में दोनों देश अपने पुरानी स्थिति पर लौट गए। 1971–1972 में दोनों देशों के मध्य फिर युद्ध हुआ। जिसमें पाकिस्तान हारा और 1972 में शिमला समझौता हुआ। युद्ध विराम रेखा को नियंत्रण रेखा बनाया गया और बात चीत से विवाद सुलझाने पर सहमति हुई।[(1)]

शीत युद्ध के बाद भारत–अमेरिका को प्रभावित करने वाले मुद्दों में से कश्मीर मुद्दा एवं आतंकवाद से सम्बन्धित मुद्दे मुख्य रहे। कश्मीर के प्रति अमेरिका की सरकार ने विशेष रुचि लेना प्रारम्भ किया। परम्परागत रुप से अमेरिका सदैव पाकिस्तान का समर्थक रहा है। क्लिंटन प्रशासन ने अपने प्रथम कार्यकाल में भारत–अमेरिका सम्बन्ध को एक बार फिर नकारात्मक

* राजनीति विज्ञान विभाग, हण्डिया पोस्ट ग्रेजुएट कॉलेज हण्डिया प्रयागराज उत्तर प्रदेश
** राजनीति विज्ञान विभाग, हण्डिया पोस्ट ग्रेजुएट कॉलेज हण्डिया प्रयागराज उत्तर प्रदेश

दिशा निर्देश दिए। एक ओर तो कश्मीरी आतंकवादियों को पाकिस्तानी समर्थन के साक्ष्यों के बाद भी अमेरिका ने पाकिस्तान को आतंकवादी राष्ट्र घोषित नही किया और वही दूसरी ओर 27 सितम्बर, 1993 को अमेरिकी राष्ट्रपति क्लिंटन ने संयुक्त राष्ट्र के अभिभाषण में कश्मीर की समस्या को जातीय संघर्ष की उन घटनाओं से सम्बद्ध किया जिनके प्रति अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय का सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण रहा है। उनके शब्दो में, ''अंगोला से काकेशस एवं काकेशस से कश्मीर तक खूनी जातीय एवं धार्मिक गृह युद्ध चल रहा है।''(2)

यह एक महत्वपर्ण संकेत था कि शीत युद्ध काल में जहाँ पाकिस्तानी समर्थन के बाद भी अमेरिका कश्मीर को भारत–पाकिस्तान के मध्य का एक मुद्दा मानता रहा वहीं शीतयुद्धोत्तर काल में कश्मीर समस्या को एक ऐसा जातीय गृह युद्ध मानने लगा जिसके प्रति मानवाधिकार के परिपेक्ष्य में अमेरिका अपनी विशेष जिम्मेदारी समझता है।(3)

जिस समय कश्मीर के हजरत बल दरगाह (श्रीनगर) पर आतंकवादियों ने हमला किया उस समय क्लिंटन प्रशासन ने अपना झुकाव भारत विरोधी करते हुए कश्मीर को भारत का अभिन्न अंग होने से मना कर दिया। 28 अक्टूबर, 1993 एक वरिष्ठ प्रशासनिक अधिकारी ने कहा ''हम कश्मीर को एक विवादित क्षेत्र मानते है इसका मतलब हम उस विलयीकरण करार को जो महाराजा हरि सिहं द्वारा हस्ताक्षरित है, स्वीकृति नही देते, जिसके अनुसार कश्मीर हमेशा भारत का एक अभिन्न अंग है।''(4) इस तरह पहली बार अमेरिका ने 1972 के शिमला समझौते पर प्रश्नचिन्ह् लगा दिया। अमेरिकी विदेश विभाग के प्रवक्ता ने अमेरिकी विदेश नीति में किसी भी प्रकार के परिवर्तन से इन्कार कर दिया तथा कहा कि वह भारत की अखण्डता का सम्मान करता है एवं कश्मीर समस्या का हल शिमला समझौते तथा कश्मीर की जनता के दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर ही किया जा सकता है।(5)

अमेरिका में भारतीय राजदूत आबिद हुसैन ने 9 नवम्बर 1993 को दूरदर्शन के साथ अपने साक्षात्कार में अमेरिकी वक्तव्य के विरोध में विचार व्यक्त करते हुए कहा कि, ''यह वक्तव्य पूर्ण रुप से नावाजिब एवं बेबुनियाद है। इसे में पूरी तरह से अमेरिकी साजिश तो नही कहुँगा किन्तु इसमें साजिश के बीज अवश्य है। अगर अभी खत्म नहीं किया गया तो इसके दरख्त पर भविष्य में कांटे ही कांटे दिखाई देगे।''(6)

मई 1999 में पाकिस्तानी घुसपैठिये जिसमें से अनेक पाकिस्तानी सेना के नियमित सैनिक थे ने कश्मीर के नियंत्रण रेखा के पार भारतीय सैनिको द्वारा बर्फ पड़ जाने के कारण खाली कि गयी चौकियों पर अधिकार कर लिया। भारतीय सेना ने अदम्य साहस का प्रदर्शन करते हुए एक के बाद एक चौकियाँ खाली करा ली, साथ ही विपरीत परिस्थितियों के बावजुद नियन्त्रण रेखा को पार नही किया। कश्मीर समस्या पर भारत को पहली बार

अमेरिका का समर्थन प्राप्त हुआ। अमेरिका ने 8 जून को दृढ़तापूर्वक पाकिस्तान के इस मत को मानने से इंकार कर दिया कि कश्मीर में नियन्त्रण रेखा स्पष्ट नही है।[7] लगभग 50 वर्षों के इतिहास में यह पहला अवसर था जब अमेरिका ने इतने स्पष्ट रुप से और खुले आम कश्मीर के प्रश्न पर न केवल भारतीय दृष्टिकोण का समर्थन किया अपितु कश्मीर के सन्दर्भ में पाकिस्तानी नीति की स्पष्ट रुप से भर्त्सना को।

जम्मू कश्मीर से अनुच्छेद 370 हटाए जाने के बाद अमेरिका की नजर भारत और पाकिस्तान के अगले कदम पर है। अमेरिका ने कहा कि वह भारत सरकार द्वारा अनुच्छेद 370 हटाए जाने के बाद जम्मू कश्मीर के घटनाक्रम पर करीब से नजर रख रहा है।साथ ही उसने सभी पक्षों से नियन्त्रण रेखा (एलओसी) पर शांति और स्थिरता बनाए रखने की अपील की है। अमेरिकी विदेश मंत्रालय के प्रवक्ता मोर्गन ओर्टागस ने पाकिस्तान का नाम लिए बिना कहा कि हम नियन्त्रण रेखा पर सभी पक्षों से शांति और स्थिरता बनाए रखने की अपील करते हैं।जम्मू कश्मीर के विशेष राज्य के दर्जे को समाप्त किये जाने के सम्बन्ध में पूछे जाने पर उन्होंने कहा कि हम जम्मू कश्मीर की घटनाओं पर करीब से नजर रख रहे हैं। हमने जम्मू कश्मीर के संवैधानिक दर्जे में तबदीली की भारत की घोषणा और राज्य को दो केन्द्रशासित प्रदेशों में बांटने की योजना को संज्ञान में लिया है।[8]

अमेरिकी राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप और पाकिस्तान के प्रधानमन्त्री इमरान खान की हाल में हुई मुलाकात के दौरान कश्मीर का मामला उठा। डोनाल्ड ट्रंप ने कहा कि हम भारत और पाकिस्तान के संबंध में कश्मीर को लेकर सोच रहे हैं और अगर हम मदद कर सकते है तो निश्चित रुप से ऐसा करेंगें। अमेरिकी राष्ट्रपति को भारत ने जवाब दिया। विदेश मंत्रालय के प्रवक्ता रवीश कुमार ने कहा कि कश्मीर मुद्दे पर तीसरे पक्ष की कोई भूमिका नही है। उन्होंने प्रेस कॉन्फ्रेंस करते हुए कहा कि कश्मीर मुद्दे व उसकी मध्यस्थता को लेकर हमारा स्टैंड पूरी तरह से स्पष्ट है मै एक बार फिर दोहराता हूँ कि इस मामले में किसी भी तीसरे पक्ष की भूमिका की कोई जरुरत नही है। विदेश मन्त्रालय के प्रवक्ता रवीश कुमार ने कहा, यदि भारत और पाकिस्तान में कोई द्विपक्षीय मुद्दा है जिसपर चर्चा करने की जरुरत है तो इसे शिमला समझौता के तहत दोनों देशों के मध्य किया जाना चाहिए, लेकिन इसके लिए पाकिस्तान को आतंक, शत्रुता और हिंसा से मुक्त माहौल पैदा करना होगा। दोनों देश अपने बीच के मुद्दे कैसे सुलझा सकते है, इस सवाल के जवाब में रवीश कुमार ने कहा कि गेंद पाकिस्तान के पाले में है उसे आतंकवाद खत्म करना होगा और शांति का माहौल बनाना होगा शांति बहाली होने पर दोनों देश द्वपक्षीय तौर पर अपने मुद्दे निपटा सकते है। पिछले वर्ष अगस्त 2019 में भी डोनाल्ड ट्रंप ने कहा था कि अगर भारत चाहेगा तो वे कश्मीर मामले में मध्यस्थता करने के लिए

तैयार है। लेकिन बाद में उन्होनें कहा कि इस मसले को भारत और पाकिस्तान के द्विपक्षीय स्तर पर सुलझाना चाहिए।(9)

अमेरिका अब भी कश्मीर मुद्दे पर अपनी पुरानी चौधराहट को वापस पाना चाहता है। अमेरिका फिर से चाहता है कि उसे कश्मीर के मसले पर मध्यस्थ मान लिया जाए ताकि वो भारत–पाकिस्तान की द्वन्द का लाभ उठा सके जैसे वह अब तक करता आया है। लेकिन अमेरिका को यह समझना होगा कि दुनिया बदल चुकी है तथा भारत भी बदल चुका है ये नया भारत है जो समस्याओ के समाधान निकालने में विश्वास रखता है चाहे रास्ता कितना जटिल क्यों न हो भारत लगातार अमेरिका के इस प्रस्ताव का कि वह कश्मीर मसले पर भारत–पाकिस्तान के मध्य मध्यस्थता करेगा को खारिज करता आया है और बार–बार अमेरिका को यह संदेश देता रहा है कि अगर अमेरिका कुछ करना चाहता है तो वह पाकिस्तान को सुधारने का प्रयास करे।(10)

इस तरह स्पष्ट होता है कि अमेरिका कश्मीर मामले पर अपनी रुचि दिखाकर विश्व में अपनी चौधराहट बरकरार रखना चाहता है। वह दक्षिण एशिया में अपनी स्थिति बनाए रखना चाहता है। अब स्थिति परिवर्तित हो गयी है 1947 के भारत और वर्तमान भारत में विभिन्न अन्तर दिखाई देता है। भारत यह कदापि नही चाहता कि कश्मीर मुद्दे पर कोई तीसरा देश अपनी रुचि दिखाए भारत द्वारा यह स्पष्ट कर दिया गया है कि यह द्विपक्षीय मामला है इस मसले को भारत–पाकिस्तान के द्विपक्षीय वार्ता के द्वारा ही सुलझाया जाएगा तथा अमेरिका हस्तक्षेप न करे।

सन्दर्भ :

(1) https:hi.m.wikipedia.org.
(2) The Times of Inidia-28 Sept.1993.
(3) See James C.Clad-Kashmir and the U.S. Policy-Options testimony efore the sub committee on asia and pacific Affairs. House of Representaive- 28 April.1993.
(4) The Times of India-29 Oct.1993.
(5) The Times of India-8 Nov.1993.
(6) The Times of India-7 Nov.1993.
(7) Hindustan-9 June.1999.
(8) Amarujala-6 August. 2019.
(9) https://m.aajtak.in/news/national 23 January 2020.
(10) https ://www.prabhasakshi.com 22 August 2019.

***

औषधीय वनस्पतियों के प्रति जागरूकता का अध्ययन (स्नातक छात्राओं के सम्बन्ध में)

डॉ. त्रिवेणी सिंह *

प्रकृति विश्व बसुधा की सर्वोत्तम चिकित्सक है। विश्व के मूर्धन्य शरीर शास्त्रियों ने इस तथ्य को स्वीकार किया है। प्रकृति के आंगन में मौजूद अनेक प्राकृतिक वनस्पतियाँ अत्यन्त गुणकारी हैं जिनकी रोग नाशक शक्ति प्रसिद्ध है। भारतीय प्राकृतिक चिकित्सकों ने इनकी पहचान कर इन पर शोध करके मानव के लिए जीवनोपयोगी व हितकारी बताया है। इनमें प्रमुख हैं हींग, रसौत, पान, सुपाड़ी, कालीमिर्च, अतीस, बास, बरगद, कपूर, कालाजीरा, बड़ी इलायची, चाकसू, कोयला, दालचिनी, धनिया, जीरा, शीतल चीनी, वायविडंग सौफ, बबूल, मेंहदी, तुलसी, ईसवगोल, अलसी, पीपल, अडूस, गेंदा, नीम, अजवाइन, पिपरमेन्ट, खसखस, कलौची, गुलाब, केसर, चन्दन, हल्दी, वनफसा, मदार, अडूसा, गिलोय, बेल मुलेठी, आवला, हरण, अर्जुन, पुनर्नवा, भारंगी, शंखपुष्पी, ब्राम्ही, निर्गुण्डी, सौठ, सारिवा, अशोक, गोक्षुर, चिरायता, श्तावर, अश्वगन्धा आदि।

चोट लगने पर उस स्थान पर सूजन के अतिरिक्त पूरे संस्थान में 'स्ट्रेस इफेक्ट' के कारण रक्त में 'कैकाल अमीन' नामक हार्मोन्स का स्तर बढ़ जाता है। इसके प्रभाव से जहां रक्त नलिकायें सिकुड़ती हैं वहाँ दूसरी ओर रक्त सरकरा का स्तर बढ़ जाता है। परिणामतः मन वेचैन और उत्तेजित हो उठता है। हल्दी अत्यन्त गुणकारी, सूजन उतारने व रक्त में ग्लूकोज का स्तर कम करती है ताकि प्रवेश पाये रोगाणुओं को फलने–फूलने का मौका न मिलें। हल्दी मानसिक उत्तेजना को घटाती है।

वनस्पतियाँ जो औषधीय गुणों से युक्त है। इनकी जानकारी प्रत्येक मनुष्य के लिए कल्याणकारी है। इनकी जानकारी देने का औपचारिक प्रयास कभी विवशता से कभी शौकवश दिखता है। मा0 सर्वोच्च न्यायालय नयी दिल्ली के आदेश से स्नातक स्तर पर पर्यावरण के प्रति जागरूकता उत्पन्न करने हेतु अनिवार्य पाठ्यक्रम देश के विश्वविद्यालयों में संचालित हैं। पर प्रमाणपत्रों से वास्तविक ज्ञान कही दूर और उनका व्यवहारिक प्रयोग और ही दूर लगता है। मानव स्वास्थ के लिए अत्यन्त उपयोगी वनस्पतियाँ जो कि औषधीय गुणों से भरपूर है, की जानकारी का प्रयास प्रस्तुत शोध में किया गया है। इस दृष्टि से यह और भी उपयोगी है कि भारत के नागरिकों उनमे भी मातृशक्ति को औषधीय गुणों से युक्त वनस्पतियों का ज्ञान व उपचार की

* प्राचार्य, आर.आर.पी.जी. कालेज, अमेठी

विधि का अध्ययन किया जाय जिनकी कोख से श्रेष्ठ सन्तानों का जन्म व पालन पोषण तथा स्वास्थ्य रक्षा होती है।

उद्देश्य

1. छात्राओं की औषधीय वनस्पतियों के प्रति जागरूकता का अध्ययन।
2. साहित्य व विज्ञान वर्ग की छात्राओं के मध्य औषधीय वनस्पतियों के प्रति जागरूकता का तुलनात्मक अध्ययन करना।
3. विज्ञान एवं सामाजिक विज्ञान वर्ग की छात्राओं के मध्य औषधीय वनस्पतियों के प्रति जागरूकता का तुलनात्मक अध्ययन करना।
4. विज्ञान व वाणिज्य वर्ग के मध्य छात्राओं की औषधीय वनस्पतियों के प्रति जागरूकता का तुलनात्मक अध्ययन।

परिकल्पना : इस हेतु किसी परिकल्पना का निर्माण नही किया गया है।

शोध विधि : प्रस्तुत शोध अध्ययन में सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है।

न्यादर्श : प्रस्तुत शोध अध्ययन में 200 स्नातक तृतीय वर्ष की छात्राओं का चयन अमेठी तहसील के तीन महाविद्यालयों से सोद्देश्य यादृच्छिक विधि से किया गया। न्यादर्श की रूपरेखा को निम्नवत सारणीवद्ध किया गया हैः–

सारणी संख्या – 01 (न्यादर्श की रूपरेखा)

स्नातक छात्राओं के वर्ग	संख्या
विज्ञान वर्ग	50
साहित्यिक वर्ग	50
सामाजिक विज्ञान वर्ग	50
वाणिज्य वर्ग	50
योग	200

उपकरण : प्रस्तुत शोध अध्ययन में स्नातक छात्राओं की औषधीय वनस्पतियों के प्रति जागरूकता का अध्ययन करने हेतु एक ''औषधीय वनस्पति अभिज्ञान प्रश्नावली'' का निर्माण शोधकर्ता द्वारा किया गया जिसमें कुल 10 प्रश्नों का समावेश है। प्रश्न संख्या 01, 02, 06, 07, एवं 09 खुला प्रकार (Open Anded) तथा 04, 08 एवं 10 वस्तुनिष्ठ प्रकार और प्रश्न संख्या 03 और 05 बन्द प्रकार के प्रश्न हैं।

सांख्यिकीय गणना : प्रस्तुत शोध अध्ययन में केवल प्रतिशत तथा मध्यमान का प्रयोग किया गया है।

विश्लेषण एवं व्याख्या : प्रस्तुत शोध अध्ययन में प्रश्नों के माध्यम से स्नातक की छात्राओं की प्राकृतिक वनस्पतियों के प्रति जागरूकता का अध्ययन किया गया है।

प्रथमतः यह जाना गया है कि 'आप के आवास के आस–पास किन–किन वृक्षों का रहना हितकर है? इसके अन्तर्गत सामान्य रूप से सभी वर्गों– विज्ञान, साहित्य, सामाजिक विज्ञान एवं वाणिज्य वर्ग की छात्राओं ने सामान्य पौधों यथा आम, नीम, अमरूद, तुलसी, बरगद एवं पीपल को बताया।

पर्यावरण संरक्षण के प्रति छात्राओं की अभिरूचि को देखने का प्रयास किया गया। विज्ञान वर्ग के 10 प्रतिशत, साहित्य के 15 प्रतिशत, सामाजिक विज्ञान के 08 प्रतिशत एवं वाणिज्य वर्ग के 05 प्रतिशत छात्राओं ने स्वयं द्वारा वृक्ष आरोपित करने को स्वीकार किया जो सभी वर्गों के मध्य लगभग समान स्थिति को दर्शाता है। आरोपित वृक्षों मे से 40 प्रतिशत जीवित होने की जानकारी प्राप्त हो गयी। साथ ही यह भी जानकारी प्राप्त हुई कि इनमें औषधीय गुणों से युक्त पौधों की संख्या बहुत कम है।

औषधीय गुणों से युक्त केवल 21 पौधों (1. तुलसी, 2. हरिद्रा (हल्दी), 3. घृतकुमारी (एलोवेरा), 4. नीम, 5. लहसुन, 6. अपामार्ग (एकीरेन्थिस रग्स्पेरा) 7. मुलहठी, 8. ऑवला, 9. हरीतिका हरड (टर्मिनेलिया चेब्यूला), 10. बेल, 11. अडूसा या वासा (एडेटोडा बेसायिका), 12. भारंगी (बेलेरोडेण्ड्रान सेरेटम), 13. अर्जुन, 14. पुनर्नवा (बोअरहविया डिफ्यूजा), 15. ब्राम्ही, 16. शंखपुष्पी, 17. सौठ, 18. चिरायता (सुआर्शिया चिरायता), 19. गिलोय (टीनोस्पोरा कार्डीफोलिया), 20. अशोक, 21. अश्वगंधा (विदेनिया सामिनीफेरा) की पचहान के बारे में जानकारी चाही गयी। प्राप्त आंकड़े से ज्ञात होता है कि तुलसी, हल्दी, लहसुन, नीम, ऑवला, बेल, सौठ, अशोक को लगभग सभी वर्गों के 95 प्रतिशत छात्राएं परिचित हैं। जबकि घृतकुमारी, मुलहठी, ब्राम्ही, शंखपुष्पी, अश्वगंधा, अर्जुन से 60 प्रतिशत छात्राएं परिचित मिले। अपामार्ग, हरीतिका हरड़, अडूसा या वासा, भारंगी, पुनर्नवा, गिलोय के नाम से ही लगभग सभी वर्गों की छात्राएं अपरिचित मिली। विज्ञान में यह अपरिचय 40 प्रतिशत, सामाजिक विज्ञान में 60 प्रतिशत, वाणिज्य वर्ग में 70 प्रतिशत एवं साहित्य वर्ग में 75 प्रतिशत मिला।

छात्राओं से यह जानने का प्रयास किया गया कि प्रश्नावली में अंकित 21 वनस्पतियों में से कितने में औषधीय गुण मिलते हैं। परिणाम अधोलिखित सारिणी से स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है।

सारणी संख्या – 02

21 वनस्पतियों में से औषधीय गुण वाली वनस्पतियों की पहचना (प्रतिशत में)

वनस्पतियों की वास्तविक संख्या	विज्ञान वर्ग	सामाजिक विज्ञान वर्ग	साहित्यिक वर्ग	वाणिज्य वर्ग
05	-	-	-	-
10	10%	10%	20%	-
15	30%	50%	40%	100%
21	60%	40%	40%	-

उपरोक्त सारिणी से स्पष्ट है कि विज्ञान वर्ग के 60 प्रतिशत, सामाजिक विज्ञान वर्ग एवं साहित्यिक वर्ग दोनों के 40–40 प्रतिशत छात्राएं

ही सभी 21 वनस्पतियों को औषधीय गुण वाली बताया है। जबकि वाणिज्य वर्ग की छात्राएं औषधीय गुण वाला मानती हैं।

सभी छात्राओं से 21 वनस्पतियों के अंगों– जड़, तना, पत्ती, पुष्प, बीज/फल और छिलका के औषधि के रूप में प्रयुक्त होने की जानकारी प्राप्त करने से प्राप्त परिणाम सारिणी संख्या 03 में द्रष्टब्य हैं–

सारणी संख्या – 03

औषधि के रूप में प्रयोग की जानकारी (प्रतिशत में)

वनस्पति	जड़				तना				पत्ती				पुष्प				फल/बीज				छिलका			
	वि0	सा0 वि0	सा0	वा0	वि0	सा0 वि0	सा0	वा0	वि0	सा0 वि0	सा0	वा0	वि0	सा0 वि0	सा0	वा0	वि0	सा0 वि0	सा0	वा0	वि0	सा0 वि0	सा0	वा0
तुलसी	6	–	10	–	12	–	10	–	100	100	100	100	18	–	10	–	12	–	–	–	–	–	–	–
हल्दी	95	90	95	80	12	10	–	10	6	–	–	–	–	–	–	–	6	–	–	–	–	–	–	–
घृतकुमारी	7	–	–	15	8	20	–	20	40	35	50	20	18	–	–	–	3	–	–	–	–	–	–	–
नीम	12	10	10	10	20	25	20	20	100	100	100	100	6	–	10	–	11	20	10	25	15	25	10	20
लहसुन	35	25	60	20	20	50	20	30	25	20	20	20	–	–	–	–	35	25	–	20	–	–	–	–
अपामार्ग	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–
मुलहठी	12	50	10	40	–	40	50	50	–	–	–	–	–	–	–	–	3	–	–	–	10	10	–	–
आँवला	–	–	–	–	40	–	–	–	10	10	–	–	–	–	–	–	100	100	100	100	–	–	–	–
हरीतिका हरड़	06	–	–	–	3	–	–	–	3	–	–	–	3	–	–	–	75	65	30	60	–	–	–	–
बेल	3	10		10					3	15		20					100	100	100	100				
अडूसा या वासा	3	–	–	–	–	–	–	–	16	20	–	15	–	–	–	–	6	10	–	–	–	–	–	–
भारंगी																								
अर्जुन	–	–	–	–	–	–	–	–	–	25	10	–	–	–	–	–	10	50	–	50	40	–	30	–
पुनर्नवा	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–
ब्राम्ही	–	–	–	–	–	–	10	–	–	–	30	–	–	–	–	–	20	15	–	15	–	–	–	–
शंखपुष्पी	20	15	–	10	–	–	10	–	–	–	–	–	–	10	–	15	–	–	10	–	–	–	–	–
सोंठ	70	50	40	45	75	–	30	–	–	–	–	–	–	–	–	–	10	–	10	–	–	–	–	–
विदारीकन्द	–	10	–	10	15	–	–	–	–	–	–	–	–	25	–	25	20	–	–	–	–	–	–	–
गिलोय	15	10	–	8	15	–	10	–	15	10	10	15	–	–	–	–	20	–	10	–	20	20	20	20
अशोक	–	–	–	–	–	–	–	10	20	–	10	–	–	–	–	–	–	15	10	15	30	–	60	–
अश्वगंधा	10	–	10	–	–	–	–	–	10	–	–	–	–	–	10	–	10	–	10	–	–	–	–	–

वि0– विज्ञान, सा0वि0 – सामाजिक विज्ञान, सा0–साहित्यिक, वा0–वाणिज्य वर्ग

सारिणी संख्या 03 से स्पष्ट है कि अधिकांश वनस्पतियों के अंगों के औषधीय प्रयोग से अपरिचित हैं। तुलसी जैसे चमत्कारी गुण के पौधे के प्रयोग से भी अपरिचित हैं। स्वास्थ्य शिक्षा का पाठ्यक्रम, पर्यावरण अध्ययन की अनिवार्यता उत्तीर्णता स्वयं के जीवन में उपयोगी नही दिखाई दे रही है। तुलसी की जड़, तना, पत्ती, पुष्प, बीज सभी गुणकारी व विभिन्न रोगों के निदान में लाभदायक हैं। जड़ के सन्दर्भ में विज्ञान वर्ग के 6 प्रतिशत साहित्य के 10 प्रतिशत विद्यार्थी इसे रोग के निवारण में उपयोगी मानते हैं जबकि सामाजिक विज्ञान व वाणिज्य के विद्यार्थी इसे महत्वहीन मानते हैं। वास्तविक स्थिति यह है कि तुलसी की जड़ बवासीर, पेट में तिल्ली बढ़ जाने पर, मूत्र रोग, गुप्त रोग के निदान में उपयोगी है। तुलसी के बीज के सन्दर्भ में केवल विज्ञान के 12 प्रतिशत प्रशिक्षणार्थी रोग निदान हेतु उपयोगी मानते हैं। शेष इसके महत्व से अपरिचित हैं। जबकि तुलसी बीज एलर्जी कम करने, आँख, नाक, कान के दर्द निवारण में, खाँसी में, पुरुषत्व शक्ति प्रदान करने में, स्त्री रोग निदान में यहाँ तक कि सुजाक रोग खत्म करने में अत्यन्त गुणकारी है।

हल्दी जैसी अत्यन्त लाभकारी घरेलू वनौषधि के अंगों के प्रयोग के ज्ञान से प्रशिक्षणार्थी अनभिज्ञ दिखे विज्ञान, सामाजिक विज्ञान, वाणिज्य,

साहित्य वर्ग के क्रमशः 95, 90, 85, 95 प्रतिशत विद्यार्थी जड़ के उपयोग को जानते हैं। परन्तु हल्दी पौधे के जिन अंगों का औषधीय उपयोग नही है उसे भी रोगों में प्रयोग करने की जानकारी देना उनकी गैर जागरूकता का परिचायक है।

घृतकुमारी (एलोवेरा) घी के समान हितकारी है। इसकी गूदेदार पत्ती ही गुणकारी है। सुन्दर निरोग काया सभी चाहते हैं। पर किस अंग का उपयोग होगा इसे सभी नही जानते। साहित्य के 50, विज्ञान के 40, सामाजिक विज्ञान के 35, वाणिज्य के 20 प्रतिशत छात्राएं ही इसके प्रयोग से परिचित हैं।

नीम जैसे गुणकारी, सभी स्थानों पर मिलने वाले पौधे के अंगों के उपयोग में भी अधिकांश छात्राएं अपरिचित मिलीं। जहाँ पत्ती को सभी ने उपयोगी माना वहीं जड़, तना, छिलका, फल, फूल के औषधीय गुणों के प्रति जागरूकता बहुत कम मिली।

अपामार्ग, भारंगी, पुनर्नवा आदि के प्रयोग की दृष्टि से सभी छात्राओं में जागरूकता शून्य मिली। अन्य अनेक वनस्पतियों के औषधीय उपयोग की जागरूकता सभी में सामान्य से कम प्राप्त हुई है।

ये सभी 21 वनस्पतियाँ किन रोगों के निदान में उपयोगी हैं। इसके आंकड़े स्पष्ट करते हैं कि कुछ वनस्पतियों को सभी ने सर्दी, जुखाम, बुखार के निदान में उपयोगी, कुछ को सिरदर्द, पाचन शक्ति को बढ़ान में मद्दगार कुछ को चेचक, पेटकृमिनाशक माना। सभी समुचित जानकारी दे पाने में असमर्थ रहे जबकि शरीर रचना की दृष्टि से यदि शरीर को विभाजित किया जाय जो एक अत्यन्त जटिल है क्योंकि शरीर के हर अंग एक दूसरे से कार्य प्रणाली की समग्रता हेतु अविछिन्न रूप से जुड़े हैं। फिर भी एक स्थूल विभाजन अधोलिखित अनुसार करके उनमें उत्पन्न रोग के निदान में काम आने वाली वनस्पतियों को देखा जा सकता है।

औषधीय गुण वाली वनस्पतियों मे से नीम, तुलसी, लहसुन, बेल आदि को सभी ने तथा 40 प्रतिशत ने इनके साथ ही ऑवला, घृतकुमारी को अपने आस–पास होना स्वीकार किया।

90 प्रतिशत छात्राओं ने औषधीय गुण वाले पौधो को अपने आस–पास आरोपित करने को स्वीकार किाय।

स्वयं के उपचार में प्रयोग के सन्दर्भ में 95 प्रतिशत ने तुलसी, लहसुन, नीम, ऑवला, हल्दी, सौठ के उपयोग को स्वीकार किया।

प्राकृतिक वनस्पतियों के औषधीय गुणों एवं उनके प्रयोग को जानने की इच्छा सभी वर्ग के 95 प्रतिशत छात्राओं में पायी गयी जो शुभ लक्षण है।

सारणी संख्या – 04

क्रमांक	भारीर का स्थूल विभाजन	रोग में उपयोगी वनस्पतियाँ
1.	पाचान संस्थान का पूर्वाद्ध (अपरजीआईटी) (मुह से लेकर छोटी आत के अन्तिम सिरे तक)	गुलेठी, ऑवला
2.	पाचन संस्थान का उत्तरार्द्ध (लोअरजीआईटी) (बडी आत से लेकर गुदा द्वार तक)	हरीतिका एवं बेल
3.	श्वांस संस्थान (रेस्पीरेटरी सिस्टम) (वायुवाहिनी नलिकाएं व फेफड़े)	अडूसा, भारंगी
4.	हृदय एवं रक्तावाही संस्थान (कार्डियो वास्कुलर सिस्टम) (सारे शरीर में प्रवाहमान उसे धारण करने वाली नलिकायें एवं हृदय रूपी पम्प)	अर्जुन और पुनर्नवा
5.	केन्द्रीय स्नायु संस्थान (सेन्ट्रल नर्वश सिस्टम) (मूलत: मांस्तिष्क व सुषुम्ना)	शंखपुष्पी, ब्राम्ही
6.	बात नाडी संस्थान (पेरीफेरल नर्वश सिस्टम) (सुषुम्ना को सन्देश ले जाने वाली नलिकाएं, संधियां, मांसपेशियां)	निरगण्डी, सोठ
7.	रक्त के सूक्ष्म घटक को उत्पादन करने वाले अंग तथा संस्थान (ब्लीहाबोनमेरो) (रिकन एवं हीमेटालोजिकल सिस्टम)	नीम, सारीवां
8.	मूत्रवाही तथा प्रजनन संस्थान (जेनीटो यूरीनरी सिस्टम)	अशोक, गोक्षुर
9.	शरीर पर विषाणु, जीवाणु का हमला होने की स्थिति में सक्रिय होने वाला संस्थान	गिलोय, अश्वगंधा, घृतकुमारी
10.	काया को परिपुष्ट सगर्थ बनाने हेतु उत्तरदायी सस्थान	सतावर, अश्वगंधा, घृतकुमारी

निष्कर्ष : प्रस्तुत शोध अध्ययन का निष्कर्ष उद्देश्य के अनुसार निम्नलिखित है–

1. स्नातक छात्राओं में औषधीय वनस्पतियों के प्रति समुचित जागरूकता नहीं है।
2. साहित्य एवं विज्ञान वर्ग की छात्राओं के मध्य औषधीय वनस्पतियों की जागरूकता लगभग समान है।
3. विज्ञान एवं वाणिज्य वर्ग की छात्राओं के मध्य औषधीय वनस्पतियों की जागरूकता में अन्तर है।
4. सामाजिक विज्ञान एवं विज्ञान की छात्राओं के मध्य औषधीय वनस्पतियों की जागरूकता में भी अन्तर है।

शैक्षिक निहितार्थ : प्रस्तुत शोध अध्ययन के उद्देश्यों के निष्पादन के आधार पर यह स्वीकार करने योग्य है कि अनिवार्य पर्यावरण का अध्ययन स्नातक तृतीय वर्ष के विद्यार्थियों को स्वास्थ्यगत दृष्टि से औषधीय वनस्पतियों की

जानकारी नही दे पा रहा है। वर्तमान पाठ्यक्रम से उत्तीर्ण होने के निकट किसी भी वर्ग यथा विज्ञान, साहित्य, वाणिज्य के विद्यार्थियों में अपने व अपने परिवार तथा समाज के लिए उपयोगी वनौषधियों के प्रति समुचित जागरूकता नही आ पा रही है। परन्तु सबमें इनको जानने, पहचानने उपयोग को सीखने की लालसा इन्हें जागरूक बना सकती है। इसकी व्यवस्था प्रत्येक उच्च शिक्षण संस्थान में की जानी चाहिए।

सन्दर्भ :

- आचार्य, श्रीराम शर्मा : जीवेम शरदः शत्म, अखण्ड ज्योति संस्थान, मथुरा – 1998
- आचार्य, श्रीराम शर्मा : तुलसी के चमत्कारी गुण, युग निर्माण योजना, मथुरा–2006
- आचार्य, श्रीराम शर्मा : स्वास्थ्य रक्षा प्रकृति के अनुशरण से ही सम्भव, ब्रम्हवर्चस्, युग निर्माण योजना, मथुरा
- आचार्य, श्रीराम शर्मा : द्रव्य गुण विज्ञान, भाग–1 से 4 चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी–1977
- सिंह, डॉ0 राम सुशील : वनौषधि निर्देशिका, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी, प्रकाशक हिन्दी साहित्य सूचना विभाग उ0प्र0 1991
- हैण्डबुक ऑफ डोमेस्टिक 1978 सेन्ट्रल काउंसिल फार रिसर्च इन इण्डियन मेडिसिन,
- मेडिसिन एण्ड कामन एण्ड होमियोपैथी, भारत सरकार नई दिल्ली,
- आयुर्वेदिक रेमेडीज

***

भारतीय धर्म एवं दर्शन (वैदिक व अन्य) में अहिंसा : एक अध्ययन

राजीव कुमार खत्री *

अहिंसा परमो धर्मः धर्म हिंसा तथैव च[1]

भारतीय धर्म एवं दर्शन में अहिंसा को सबसे बड़ा धर्म माना गया है। यह बहुत ही स्वीकार्य एवं महान सोच है। यह ऐसा कर्त्तव्य है जो सभी कर्त्तव्यों/आदर्शों से ऊपर है। यह हर परिस्थिति में हर समय माना जाने वाला आदर्श है। अर्थात् यह बिना तय शर्त्त के एक तरफा स्वयं के द्वारा किसी भी परिस्थति में किया गया त्याग है (जैसा कि बौद्ध दर्शन और जैन दर्शन में)। इसी दृष्टिकोण में इसे महात्मा गाँधी ने भी समझा और भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन में सत्याग्रह के कारगर अस्त्र के रूप में प्रयोग किया जिसमें जनता की पूर्ण भागीदारी भी रही।

परन्तु सनातन वैदिक धर्म पूर्ण अहिंसा की बात नहीं करता। अहिंसा परम धर्म है किन्तु यह सामान्य धर्म है; लेकिन धर्म रक्षार्थ हिंसा करना पाप नहीं है।[2] अपने धर्म की रक्षा (राष्ट्रधर्म, मानवता, प्रकृति, कर्त्तव्य रक्षा, समाज रक्षा गृहस्थ रक्षा यानि जितने धार्मिक कर्त्तव्य है) के आड़े आने वाली हर बाधा को समाप्त करने के लिए किया गया आवश्यक हिंसा उतना ही श्रेष्ठ है। अपने बंधू-बांधवों की रक्षा राष्ट्र रक्षा का एक भाग है, जिससे यदि हिंसा आवश्यक है, तो करना श्रेष्ठ है। दुष्कर्मों के लिए अनिवार्य मृत्यु का विधान है जिससे समाज को भयमुक्त किया जा सके।[3] भारतीय सनातन धर्म में, अहिंसा,00000 सापेक्षिक रूप से हिंसा रहित होना ही है अर्थात् वैसी हिंसा अहिंसा की श्रेणी में आता है जो बड़ी जघन्य हिंसा को रोकने के लिए हो। जैसे यदि कोई राजा किसी अपराधी को दण्ड न दें तो वह न्याय के उद्देश्य में असफल हो जाएगा और यह अराजकता उत्पन्न करेगा। अतः किसी हत्यारे को फाँसी की सजा देना राजा के लिए अहिंसा ही है। इसी प्रकार वर्त्तमान में इंडियन पेनल कोड के सेक्शन 96 और 97 में राइट टू प्राईवेट डिफेंस दिया गया है, जिसमें जन और धन की क्षति के किसी भी प्रयास से स्वयं एवं अन्य की रक्षा का अधिकार दिया गया है।

परन्तु एक सन्यासी के लिए आत्मरक्षा में भी हिंसा की मनाही है, क्योंकि वह स्वयं को शरीर न समझ कर आत्म समझता है।[4] जबकि क्षत्रिय वर्ण का परम धर्म है धर्म की रक्षा में शस्त्र उठाना।[5]

---

* शोधार्थी, इतिहास विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना [UGC NET-2014, ICHR JRF-2017]

क्षत्रिय वही, भरी हो जिसमें निर्भयता की आग,
सबसे श्रेष्ठ वही ब्राह्मण है, हो जिसमें तप-त्याग।[6]

भगवतगीता में भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को धर्म के युद्ध में शस्त्र नहीं उठाने पर पाप में डूबने और कर्त्तव्यविमुख होने के साथ ही रणभूमि में क्षत्रिय के रूप में महत्ता भी खो जाने की बात कही।[7]

अतः अहिंसा परमो धर्मः सिर्फ सन्यासियों के लिए ही सर्वोचित कहा गया जो निवृत्ति मार्ग का अनुसरण करते हैं। यदि कोई अपराधी किसी के घर में घुसकर नारी का अपमान करे तो हाथ पर हाथ धरे नहीं रह सकते हैं। उसी तरह देश की सीमा पर घुसपैठियों को छोड़ा नहीं जा सकता, युद्ध में सैनिक हथियार नहीं डाल सकता। इन स्थितियों में अहिंसा अधर्म ही होगा।[8] इसी तरह राजा को अपनी प्रजा की रक्षा करने के लिए अपराधियों को सजा देने के लिए हिंसा जरूरो है तथा पड़ोसी राज्यों के आक्रमण होने पर युद्ध में हिंसा करना सबसे बड़ा धर्म है। हाँ, युद्ध के बाद शत्रु सैनिकों और नागरिकों के साथ सम्मानजनक व्यवहार जरूरी है।[9] यही आज जिनेवा कन्वेंशन में भी उद्धत है।

भगवतगीता में श्री कृष्ण भगवान कहते हैं-

परित्राणाय साध्नाम् विनाशाय च दुष्कृताम
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे[10]

अतः श्रीकृष्ण कहते हैं कि यद्यपि अहिंसा परम धर्म है किंतु यह सभी लोगों के लिए हर परिस्थिति में परम धर्म नहीं कहलाएगा।

अत्याचार सहन करने का कुफल यही होता है,
पौरूष का आतंक मनुज कोमल होकर खोता है।[11]

''वैदिक हिंसा हिंसा न भवती'' इस वक्तव्य से विद्वानों ने आक्षेप लगाया है कि वैदिक यज्ञों में हिंसा का प्राबल्य था जिससे पालतू पशुधनों की क्षति होने लगी। उत्तरवैदिक काल में कर्मकांडों के महत्व बढ़ जाने से यह यज्ञ जटिल एवं विविध प्रकार के हुए। इससे यज्ञीय हिंसा की आवृति बढ़ती चली गई। जैसे पुरूषमेध, नरमेध, अश्वमेध आदि। किंतु वैदिक युग में यज्ञों में माँस की आहूति के संबंध में पं॰ श्रीराम शर्मा आचार्य ने 'ऋग्वेद संहिता' में स्पष्ट करने का प्रयास किया कि यज्ञ अहिंसक होते थे। यज्ञ का प्रयोजन देवों की मंत्रों द्वारा स्तुतियाँ, समाज में उल्लासपूर्ण वातावरण तैयार करना तथा पर्यावरण का स्थूल-सूक्ष्म परिष्कार था। विराट यज्ञ द्वारा ही सृष्टि का निर्माण हुआ और उसी से पोषण भी हो रहा है। इसी यज्ञीय प्रक्रिया से ज्ञान-वेद का प्रकटीकरण हुआ।

उन्होंने स्पष्ट किया कि लोग मेध का अर्थ हिंसा समझते हैं, किंतु निघण्टु में यज्ञ का नाम ''अध्वर'' (हिंसा रहित कर्म) भी है। अस्तु हिंसा रहित कर्म में मेध का अर्थ हिंसापरक करना अनुचित है। 'मेध' का व्याकरणपरक

अर्थ होता है-(मेधा हिंसनयोः संगमे च) मेधा संवर्धन, हिंसा एवं एकीकरण-संगतिकरण। लेकिन अध्वर होने के नाते हिंसापरक अर्थ अमान्य कर देने पर मेधा संवर्धन तथा एकीकरण-संगतिकरण ही रह गया जो यज्ञ एवं वेद की गरिमा के अनुरूप है। बलि शब्द बल्-इन से बना है जिसके कई अर्थ होते हैं- जैसे- (1) आहूति, भेंट, चढ़ावा, (2) भोज्य पदार्थ अर्पित करना। श्राद्ध कर्म में गोबलि, कुक्कुर बलि, काक बलि, पीपीलिकादि बलि का विधान है। इसके अंतर्गत संबंधित प्राणियों का वध नहीं किया जाता, उनके लिए भोज्य पदार्थ ही भेंट किया जाता है।[12]

पुरातन धर्म में पशुबलि चढ़ाने का विश्वास आम था। इसका वास्तविक प्रारंभ तभी हुआ जब मनुष्य ने जंगली जानवरों का शिकार करके अपना पेट पालना शुरू किया। पशुपालकों ने जब तक दूध दही का प्रयोग नहीं जाना अथवा खेती और गाड़ी चलाने में पशुओं को लगाना नहीं सीखा वे तब तक पालतू पशुओं को मारकर खाते रहे। जनजातियाँ अपने विश्वास के कारण भी दूध नहीं पीती हैं। मध्य भारत और दक्कन की कुछ जनजातियाँ जानवरों का खून पीती हैं पर दूध नहीं पीती हैं क्योंकि उनका विश्वास है कि दूध केवल जानवरों के बछड़ों के लिए है, उनके लिए नहीं। ऐसा ही उत्तर-पूर्व की जनजातियाँ भी सोचती हैं। वे अपने देवता को माँस चढ़ाते हैं और बदले में उनसे पशुधन माँगते हैं ताकि उनके खाने और चढ़ाने का चक्र चलता रहे। यह भी विचारणीय है कि दूध से पेट नहीं भरता पर माँस से भरता है।[13]

सिंधु सभ्यता के स्थलों कालीबंगा, लोथल, बनावली से सामूहिक अग्निवेदी की पंक्तियाँ मिली है, जो सिंधु सभ्यता के युग में हवन तथा यज्ञ-बलि जैसी प्रथा प्रचलित होने का संकेत देती है।[14] कालीबंगा के गढ़ी में एक चबूतरे पर एक कुआँ, अग्निवेदियाँ और एक आयताकार गर्त मिला है, जिसमें पालतू पशु की हड्डियाँ और हिरण के सींग मिले हैं। यह पशुबलि दिए जाने का संकेत है। इसे कुछ विद्वान वैदिक बलि-प्रथा से जोड़ने का प्रयास किया है।[15] कालीबंगा के एक सील पर सींगवाले देवता के समक्ष एक पशु को खींचकर ले जाते दिखलाया गया है। यह पशुबलि का संकेत माना गया। कालीबंगा के ही एक अन्य सील में एक स्त्री को दो पुरूष बलपूर्वक खींच रहे हैं जिनके हाथ में तलवार है। कुछ विद्वानों के अनुसार यह नरबलि की प्रथा का द्योतक हो सकता है।[16]

ऋग्वेद में, यज्ञ के उद्देश्य से माँस काटना, 1/161/10 में वर्णित है। ऋग्वेद में ही 5/29/7, 8 /12/8 और 8/66/10 में देवों द्वारा भैंसो को पकाने या खाने का वर्णन है, जिससे अनुमान लगता है कि माँस मनुष्यों के भोजन का भी अंग था। वैदिक युग में पंचपशु यज्ञ में भेंड़, बकरा, घोड़ा और सांड के

अतिरिक्त एक मनुष्य भी होता था। पुरूषमेध में मनुष्य की बलि दी जाती थी। नरमेध में युद्ध में विद्युत या तीर से मरे व्यक्ति का सिर वेदी पर रखा जाता था, ऐसा कुछ विद्वान का मत है।

उत्तरवैदिक काल के अंतिम चरण से वैदिकोत्तर काल में धीरे-धीरे यज्ञों के प्रति उदासीनता उत्पन्न होने लगी। याज्ञिक कर्मकांडों-अनुष्ठानों का विरोध किया जाने लगा। मुण्डकोपनिषद में तो यज्ञ की तुलना फूटी नाव से की जाने लगी। मोक्ष, कर्मवाद और पुनर्जन्म पर विशेष बल दिया जाने लगा। स्वाभाविक रूप से यज्ञीय हिंसा कर यजमानों के लाभप्राप्ति की याचना की जगह अपने कर्मों को सुधार शांति प्राप्ति अथवा दु:ख निवृत्ति या मोक्ष परम लक्ष्य हुआ। इसमें अहिंसा प्रमुख साधन बना। कर्म को पाप-पुण्य से जोड़ा गया। जीव हत्या को पाप या जघन्य अपराध माना गया। जैव संसाधन को विनाश से बचाने के लिए भारतीय धर्म एवं दर्शन में अहिंसा का अवलंबन किया गया।

जैन धर्म में अहिंसा एक महाव्रत था। इस धर्म का प्रमुख सिद्धान्त निवृत्ति मार्ग है। इसमें सांसारिक लिप्साओं-तृष्णाओं से अलग होकर परिव्राजक की स्थिति में शांति प्राप्त होती है। जैनधर्म में सम्यक चरित्र के अन्तर्गत पंच महाव्रत की व्यवस्था की गई है। पंचमहाव्रतों में सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह एवं ब्रह्मचर्य आते हैं। अहिंसा महाव्रत का इसमें अत्यधिक कठोरता से पालन किया जाता था। इसके लिए पाँच समितियों का निर्देश किया गया है- ईर्या समिति, ऐसे मार्ग से चलना जहाँ छोटे कीड़े मकोड़े न कुचले जायें। एषणा समिति, भोजन में किसी प्रकार भी छोटे कीड़ों की हिंसा न हो सके। भाषा समिति, कटु भाषा बोलकर किसी को क्लेश न पहुँचाना। व्युत्सर्ग समिति- मूल-मूत्र ऐसे स्थानों पर परित्याग न करना जहाँ कीटाणुओं की हिंसा हो। आदान अपेक्षा समिति- अपने सामानों का उपयोग करते समय भिक्षु द्वारा जीवाणुओं की हिंसा न होने देना। इसी कठोरता का परिणाम है कि जैनधर्म के अनुयायी कृषि एवं युद्ध स्थलों से तटस्थ, विमुख हुए और व्यापार व्यवसाय से जुड़े। वस्तुत: इस धर्म में हिंसा स्वयं के लिए घातक माना गया क्योंकि यह आत्मा के मोक्ष प्राप्ति में अवरोध पैदा करता है।

छठी शताब्दी ई०पू० में बौद्ध धर्म में वैदिक अनुष्ठानों, यज्ञीय कर्मकांडों एवं पशुबलि का घोर विरोध किया गया। बौद्धधर्म व दर्शन में अहिंसा, प्राणियों पर दया, सत्य वचन, माता-पिता, गुरू की सेवा एवं अच्छा व्यवहार प्रमुख लक्षण थे। अहिंसा और प्राणिमात्र के प्रति दया की भावना का भारत एवं भारत के बाहर प्रचार किया गया जो विश्व को बौद्धधर्म की देन है। इसी धर्म ने मौर्य सम्राट अशोक महान को साम्राज्यवाद को जगह अहिंसा एवं करूणा के प्रति संलग्न किया। वैदिक धर्म में जहाँ माँस भक्षण स्वीकार्य था, बौद्धधर्म में इसका

निषेध हुआ। इसके प्रभाव से अधिकांश जनता शाकाहारी हुई। विदेशों में भी बौद्धधर्म के प्रभाव से हिंसा का परित्याग किया गया और निरामिष आहार को उत्तम माना गया। मांसाहार को तामसी भोजन कहा गया जिससे मनुष्य में आपराधिक प्रवृत्ति बढ़ती है।

भागवत धर्म अपनी उदारता और सहिष्णुता के लिए प्रख्यात है। भगवान वासुदेव के प्रति प्रेम रखनेवाला प्रत्येक जीव इस धर्म में आ सकता है, चाहे वह किसी जाति का हो तथा गुण में कितना भी नीच हो। भागवत मत में अहिंसा का साम्राज्य है। भागवत मत वैदिक यज्ञों का विरोधी नहीं है परंतु वैदिक यज्ञों में यह हिंसा का प्रबल विरोधी है।

गीता में, भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं अर्पण ही ब्रह्म है, हवि ब्रह्म है, अग्नि ब्रह्म हे, आहूति है, कर्म रूपी समाधि भी ब्रह्म है और जिसे प्राप्त करना है वह भी ब्रह्म है, अतः यज्ञ ही ब्रह्म है।[17]

मा हिंस्यात सर्वा भूतानि का अनुगमन भागवत धर्म में सर्वप्रथम मिलता है।

वैष्णव धर्म में अहिंसा प्रेम एवं प्रपत्ति के महान गुण थे।

सिक्ख धर्म के संस्थापक गुरू नानकदेव की सारी शिक्षाएँ मानव-प्रेम, एकता, भाईचारे और धार्मिक समन्वय पर आधारित है; ये सभी शिक्षाएँ अहिंसा की परिधि में है। भारतीय धर्म एंव दर्शन (वैदिक व अन्य) परपीड़ा को स्वयं अनुभव करके ही दैनिक उत्तम व्यवहारों, सहिष्णुता और सहनशीलता को सर्वोच्च मानकर आगे बढ़ने का संदेश देता रहा है। हजारों वर्षों से भारतीय जन वैदिक व्यवस्था और दर्शन से निर्देशित होते रहे हैं। भारतीय अहिंसा की भावना पूर्णतः धार्मिकता से प्रभावित है। भारतवासी ''अहिंसा परमोधर्मः'' के संदेश को स्वीकार करते हुए रक्त बहाने से बचते हैं। पशुओं तक के जीवन के अधिकार को व्यवहारिक मान्यता देते हुए शाकाहार को अपनाते हैं। मानव विश्व के प्रमुख मानवीय मूल्य, अहिंसा साथ ही शांति का संदेश देने वाले युगपुरूष और महामानव जैसे, महावीर, बुद्ध, नानक, गाँधी इसी देश में उत्पन्न हुए। अहिंसा का भारतीय दृष्टिकोण मन, वचन, कर्म से किसी की भी हिंसा न करने की है। यह प्राणिमात्र के लिए है केवल मानव के लिए नहीं। ऋषि दधीचि ने जीते जी अपनी अस्थियों का दान कर दिया। महावीर स्वामी के द्वारा स्वयं अपने शरीर में ही चीटियों को घर बनाने देना, बुद्ध द्वारा घायल हंस का उपचार एवं करूणा दिखाना, युद्ध में राजाओं द्वारा पराजित राजाओं को अभयदान, पराजित राज्य के जनता के साथ सद्व्यवहार आदि भारतीय अहिंसा का सर्वोत्तम उदाहरण है।

मनुस्मृति में धर्म के दस लक्षणों में क्षमा और अक्रोध बताया है। यह अहिंसा ही है। याज्ञवल्क्य ने धर्म के लक्षणों में अहिंसा भी बताया है-

अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।

दान दमो दया शांतिः सर्वेषां धर्मसाधनम्।।[18]

श्रीमद्भागवत में सप्तम स्कंध में सनातन धर्म के तीस लक्षण बताए गए हैं उनमें से एक अहिंसा भी है।[19] पद्मपुराण में क्षमा, अहिंसा, शांति आदि दस अंगों से युक्त होने पर धर्म की वृद्धि की बात कही गई है।

स्वयं गाँधी जी पर सनातन धर्म एवं दर्शन का व्यापक प्रभाव था। वह सत्य और अहिंसा के मार्ग पर अडिग थे। उनके अनुसार मन, कर्म, वचन से तकलीफ नहीं पहुँचाना अहिंसा है। अहिंसा ईर्ष्या, घृणा, राग-द्वेष व परनिंदा से परहेज है। उनके अनुसार सत्य साध्य है तो अहिंसा साधन। अहिंसा के बिना सत्य की खोज करना, उस पर अडिग रहना संभव नहीं है और जो सत्य पर टिका है वह अनिवार्यतः अहिंसक होगा।

सन्दर्भ :

1. महाभारत.
2. पूज्य श्री चन्द्रशेखर सरस्वती, 'हिन्दूधर्म', पृ॰ 796
3. स्वामी चिन्मयानंद, 'धर्म हिंसा तथैव च'
4. भगवतगीता
5. महाभारत-1.11.12-16
6. रामधारो सिंह 'दिनकर'-'रश्मिरथी'/प्रथम सर्ग/भाग-1
7. भगवतगीता-2.33.
8. श्री स्वामी शिवानंद 'प्रैक्टिस ऑफ कर्म योग', अध्याय-3, डिवाइन लाईफ सोसायटी.
9. 'महाभारत', भीष्म पर्व-12.58.
10. भगवतगीता-4.22
11. रामधारी सिंह -'दिनकर', 'शक्ति और क्षमा'.
12. पं॰ श्रीराम शर्मा 'आचार्य', 'ऋग्वेद संहिता', शांतिकुंज, देव संस्कृति विश्वविद्यालय, हरिद्वार.
13. सहाय, 'प्राचीन भारतीय धर्म एवं दर्शन', मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2001, पृ॰ 2.
14. माइकेल विट्जेल, 'आर्यों के भारतीय मूल की कल्पना', ग्रंथ शिल्पी (अनुवादक-डॉ॰ नरेन्द्र व्यास), नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2004, पृ॰ 136.
15. वही.
16. वही, पृ॰ 125.
17. श्रीमद्भागवतगीता, 4.24.
18. याज्ञवल्क्य स्मृति, 1.22.
19. श्रीमद्भागवतगीता, 7.11.8 से 12.

***

भारतीय समकालीन कला और बाजारवाद
(एक संक्षिप्त परिचय)

प्रियंका सिंह *

कला विषय के लिए माना जाता है कि कला समझने की वस्तु न होकर महसूस करने की विषयवस्तु है तथा प्रत्येक व्यक्ति अपनी भावना के अनुसार उसकी व्याख्या करता है। परन्तु अब हमारी भारतीय कला में पश्चिम का बाजारवाद पूरी तरह से हावी हो गया है। कोई भी नया या पुराना कलाकार इस प्रवृत्ति से छूटा नहीं है। इसके कारण कला के बाह्य रूप में परिवर्तन देखने को मिलता है कलाकार अपने मन की अभिव्यक्ति न करके मांग के अनुरूप चित्रण कार्य करता है जिससे कलाकार का मूल नष्ट होता नजर आता है। आज कला की बोलियां लगने लगी है जिसकी कलाकार कभी कल्पना भी नहीं कर सकता था। वह अपने भविष्य को लेकर निरन्तर चिन्तित रहता क्योंकि उसे अपनी कृति का उचित मेहनताना नहीं मिल पाता था। रंगों का अभाव होता था एक रचना को पूर्ण करने के लिए वह बहुत समय ले लेता था क्योंकि उसे अपनी कृति (रचना) सम्पूर्ण रूप से पूरी करनी होती थी। परन्तु आधुनिक समय में ऐसा नहीं है। नवीन कलाकार बिना किसी परेशानी के कला दलालो के जरिए कला के अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में सीधे प्रवेश कर जाते हैं इस प्रकार कलाकार, कला दलालों व कला ग्राहकों के साथ–साथ खरीददारों पर बाजारवाद का मायाजाल छाया हुआ है। कला दलाल, आर्ट गैलरी, कलाकारो की कृतियों व सामान्य जनता के बीच दीवार का कार्य कर रहे हैं।

मुख्य शब्द– भारतीय समकालीन कला, कलाकार, बाजारवाद।

प्रस्तावना– हमारे आस–पास के सभी विषयों हमारी समस्याओं, जिज्ञासाओं तथा प्रेरणाओं का स्त्रोत जीवन है। किसी भी सृजनात्मक रचना के पीछे हम जीवन के अनुभव, भाव–अभाव, पीड़ा, हर्ष–उल्लास तथा शोर आदि को देख सकते हैं। सृजन कार्य में लगाा कलाकार वस्तुतः जीवन की अनेक चुनौतियों को स्वीकार करता हुआ अपनी रचना को पूर्ण रूप देता है, तब जाकर वह दर्शकों के सामने अपनी कला का प्रदर्शन कर पाता है।

प्राचीन काल से ही मानव ने चित्रों का निर्माण किया है। प्रागैतिहासिक काल का आदिमानव अपने दुःख, भय, क्रोध, प्रेम आदि भावों को कला के माध्यम द्वारा दीवारों पर चित्र बनाकर अभिव्यक्त करता था। समय परिवर्तित हुआ और मानव सामाजिक होने लगा जिससे कला गुफाओं और कन्दराओं से बाहर निकलकर आयी और उसने एक पूर्ण सभ्यता का रूप ले लिया जिसे हम सभी सिन्धु घाटी की सभ्यता कहते हैं। उस समय

* शोधार्थी चित्रकला, महात्मा ज्योतिबाफुले रूहेलखण्ड विश्वविद्यालय, बरेली, उत्तर प्रदेश

के कलाकारों ने गहना, कपड़े, बर्तन, मोहरें, सिक्कों आदि पर अपनी कला को प्रदर्शित किया जिसके अवशेष आज भी देखने को मिलते हैं। सभ्यता के विकास के साथ कला का भी निरन्तर विकास होता रहा और कला जैन, पाल, राजस्थानी, पहाड़ी शैली आदि के रूप में जानी जाने लगी। मुगल काल में कला दरबारी कला के रूप में उभरकर सामने आयी, तब यह दरबारी कला मनोरंजन, प्रशंसा एवं राजा को खुश करने के लिए की जाती थी। उस सयम के चित्रों में आश्रयदाताओं की वीरता, सौन्दर्य उनके रहन–सहन, विलासिता आदि को दर्शाया गया है।

कुछ समय पश्चात् मुगल कालीन राजाओं की उदासीनता एवं अत्याचारों से तंग आकर चित्रकारों ने ब्रिटिश शासन लागू हो जाने पर उनकी इच्छानुसार कार्य शुरू कर दिया। अंग्रेज अधिकारी अपनी रूचि के अनुसार भारतीय चित्रकारों से काम कराने लगे। कलाकारों की भी मजबूरी थी क्योंकि दरबारी कला समाप्त हो जाने के बाद उनकी रोजी–रोटी पर संकट आ गया था। इसलिए वह बंधुआ मजदूर बनकर अंग्रेजों के लिए चित्र बनाते गये और वही चित्र अंग्रेज विदेश भेज देते थे जिसमें की उस समय की भारतीय दयनीय स्थिति का अधिक चित्रण हुआ है। इस तरह इन भारतीय चित्रकारों का काम विदेशों में पहुंचा और वहां ख्याति प्राप्त करने लगा। इस खुली अर्थव्यवस्था ने कलाकारों को एक प्रकार से खुली प्रतियोगिता की कतार में लाकर खड़ा कर दिया और यहीं से शुरू हुआ कला का बाजारीकरण।

धीरे–धीरे कला का महत्व बढ़ा व बाजार में भारतीय चित्रकारों की कृतियों की माँग बढ़ने लगी। कला शिक्षा संस्थाएं स्थापित की जाने लगी। जिनका उद्देश्य विद्यार्थीयों को बाजार की मांग के अनुरूप प्रशिक्षित करना था। इस तरह कला का बाजार पनपने लगा और बाजारीकरण कला पर हावी होने लगा। कला के इस बाजारीकरण के कारण ही आज कला ने भौगोलिक सीमाएं पार कर ली हैं और कलाकार विदेशों में अपनी प्रतिभा का लोहा मनवा रहे हैं। आज भारत की इस कला बाजार की स्थिति को सुदृढ़ बनाने में परम्पराओं के संरक्षकों, समाज एवं सम्बद्ध व्यापारियों का विशेष योगदान रहा है इस तरह स्पष्ट है कि भारतीय कला की परम्परा या कला के बाजार में बहुत से बाह्य तत्त्वों का योगदान रहा है।

भारतीय समकालीन कलाः– इक्कसवी शताब्दी की शुरूआत से कला के रूप पूरी तरह बदल गये हैं। जब कला के मान एवं मूल्य बदले तब उसकी नैतिकता भी बदल गयी। जिसकी वजह से कला के प्रति लोगों के नजरिए में बदलाव आया है और उसको जांचने–परखने की दृष्टि भी प्रभावित हुई है ऐसे में कला जनता से दूर होती सी नजर आने लगी। ऐसी कला एक वर्ग विशेष तक सीमित हो गई है। हमारे अधिकांश कला रूप जैसे–जैसे अपने को अन्तर्राष्ट्रीय बनाने की ओर उन्मुख है वैसे–वैसे उनसे अपनी जमीन छूटती जा रही है। उनकी प्राथमिकता भी नहीं रह गई है। कि वे अपने

देश–परिवेश को व्यक्त करें और जनता की सांस्कृतिकता की छवियों को प्रस्तुत करें उनका ध्येय अन्तर्राष्ट्रीय होना है और अन्तर्राष्ट्रीय होने की पहली शर्त यही है कि अपनी जमीन को भुला दिया जाये। इस प्रवृत्ति से सबसे ज्यादा नुकसान चित्रकला को हुआ है। क्योंकि कला बाजारीकरण की वजह से कलाकार देश की सभ्यता, संस्कृति कला के तत्वों एवं सिद्धान्तों को भुलाकर मनगढंत कुछ भी चित्र बना देता है।जोकि सामान्य जनमानस की समझ से बहुत परे होते हैं। जिसकी वजह से कला अभिव्यक्ति का साधन न होकर पैसा कमाने का साधन बनती जा रही है। जिसकी वजह से कला का कहीं न कहीं ह्रास होता नजर आ रहा है।

समय के साथ समकालीन कला में परिवर्तन आया है प्रकृति का विधान है कि हर चीज परिवर्तनशील है अतः हमारी संस्कृति रहन–सहन आचार–विचार तथा सम्पूर्ण वातावरण का बदल जाना स्वाभाविक है। बीते समय की कला निस्वार्थ भाव से की गई साधना थी किसी भी आर्थिक लाभ व ख्याति के लालच से परे थी। कला की साधना आत्मा को सुख देने वाली और परमात्मा की आराधना मानी जाती थी। विज्ञान की उन्नति के साथ–साथ भौतिक पदार्थों का लालच और सामाजिक स्थिति (सोशल स्टेटस) पाना ही सफल व सुखी जीवन का उद्देश्य हो गया। अतः अधिक पैसा कमाने की दौड़ में लोागों ने अपनी जीवन दांव पर लगा दिया है। आज के कलाकार भी इस अंधी दौड़ में शामिल हैं।

समकालीन कला को विदेशों में ही नहीं भारत में भी एक नई प्रतिष्ठा और गरिमा मिली है। एक समय ऐसा था जब न्यूयॉर्क में वर्षों से रह रहे चित्रकार फ्रांसिस न्यूटन सूजा को भारत आकर अपने पुराने चित्रों का बेचना पड़ रहा था। पेरिस में बस गये चित्रकार सैयद हैदर रजा को अपने चित्रों का बाजार स्कैडिनेवियाई देशों में खोजना पड़ रहा था। पर आज इन दोनों चित्रकारों की स्थिति बेहतर है। सम्पूर्ण कला परिदृश्य एक अभूतपूर्व आत्मविश्वास का प्रदर्शन कर रहा है।

एक ताजा रिपोर्ट के अनुसार न्यूयॉर्क में अनेक गैलरियां समकालीन भारतीय कला को ध्यान में रखकर खोली गयी हैं जिन्हें उत्साहजनक सफलता भी मिल रही है। हाल ही में दिल्ली की बढेरा गैलरी ने रामकुमार के चित्रों की एक प्रदर्शनी न्यूयॉर्क भेजी तो काफी सफलता मिली लेकिन बढेरा गैलरी के निदेशक अरूण बढेरा ने एक राष्ट्रीय अखबार में पत्र लिखकर विदेशों में भारतीय कला की बिक्री की व्यवहारिक दिक्कतें गिनाई हैं। उनका कहना है कि पश्चिमी देशों की तरह हम भारत में अपनी कला धरोहर को बचाने या बाहर से वापस लाने की कोशिश नहीं करते हैं। कुछ साल पहले न्यूयॉर्क की एक नीलामी में लियोंनार्डो दा विंची की पांडुलिपियाँ हथौड़े की चोट पर बिकने जा रही थी। इटली ने इन पाण्डूलिपियों को वापस अपने देश में लाने की कोशिश में अपने बैंकरों का एक पूरा दल–बल न्यूयॉर्क भेज दिया। यह अलग बात है कि बिल गेट्स के सामने ये बैंकर

असफल साबित हुए। लेकिन इससे यह पता चलता है कि एक देश अपनी धरोहर को वापस लाने के लिए कहां तक जा सकता है। भारत में राजा रविवर्मा, रवीन्द्र नाथ ठाकुर और अमृता शेरगिल की कलाकृतियों को 'राष्ट्रीय सम्पदा' घोषित कर दिया गया। लेकिन जो भारतीय व्यक्ति व संस्थाएं इन कलाकारों के काम को भारत वापस लाना चाहती हैं उन्हें कई बाधाओं का सामना करना पड़ता है। जैसे विदेशी मुद्र की समस्या, कस्टम ड्यूटी और राष्ट्रीय सम्पदा की किसी अधिकृत सूची का अभाव।

कला का क्षेत्र प्रायः दो क्षेत्रों में विभाजित किया जाता है एक ओर तो हम अनुभूति, अभिव्यक्ति, सर्जना, सम्प्रेषण, रस तथा तमाम प्राचीन भारतीय तथा पाश्चात्य सिद्धान्तों की बात करते हैं। दूसरी ओर स्वंय ही कला को उत्पादित वस्तु बनाकर उसका बाजारीकरण करते हैं। यहां हमारा परम्परा से कोई लेना–देना नहीं होता बल्कि परम्परा को हम रूढ़वादी सोच मानने लगते हैं।

डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल के अनुसार– कला किसी विचार या कल्पना को साकार रूप देती है। कला का यही रहस्य है कि उसमें लोक की सांस्कृतिक परम्परा की व्याख्या होती है। भारतीय कला तत्व के अनुसार कला भावों का पृथ्वी पर अवतार है।

भारतीय समकालीन कलाकार– आज कलाकार के पास साधनों की कोई कमी नहीं है वह निरन्तर नये–नये माध्यमों द्वारा कला की अभिव्यक्ति कर रहा है। अपनी सोच को व्यक्त करने के लिए वह किसी भी साधन का प्रयोग करके अपनी सोच को मूर्त रूप दे रहा है। पहले समय में कैनवास कला अभिव्यक्ति का मुख्य माध्यम हुआ करता था। परन्तु समय परिवर्तन एवं बाजार की मांग के अनुसार माध्यमों में भी परिवर्तन आया अब अभिव्यक्ति का माध्यम कैनवास ही न रहकर धातु, कास्ठ, रेत, कपड़ा, रासायनिक प्रक्रिया, कांच, स्प्रे बॉल, आदि हो गये हैं। जिसके कारण कलाकार की कृति रोचक व आकर्षक बन पड़ती है। जो समाज में उसे एक अलग छवि में दर्शाती है। जैसे– **सुबोध गुप्ता** द्वारा बर्तनों का प्रयोग करके बनायी गयी उनकी कृतियां उन्हें विश्व पटल पर पहचान दिलाने में सहायक रही हैं।

अमृता शेरगिल जैसे चित्रकारों ने अपनी कलाकृतियां, सामाजिक जनजीवन पर आधारित बनायी वे चाहती थी कि उनके चित्र आम जनता तक पहुंचे। भारत के पूर्व कलाकार अवनीन्द्र नाथ टैगोर, रवीन्द्रनाथ टैगोर, राजा रविवर्मा, नन्दलाल बोस, यामिनी राय, हैब्बर के चित्र आज कला बाजार में उपलब्ध नहीं है वह तो संग्रहालयों की शोभा बड़ा रहे हैं। जोकि जागरूकता के अभाव में आम जनता से बहुत दूर हैं।

प्रख्यात चित्रकार जय झरोटिया ने भी अपने विचार कुछ इस प्रकार दिये हैं– ''अब चर्चा इस बात की होती है कि किस कलाकार की कीमत कितनी है? यह कोई नहीं देखता कि उसकी पेन्टिंग की एस्थेटिक वैल्यू क्या है? आज कलाकार अपनी कीमत के कारण पहचाना जाता है''।

अनीश कपूर भारतीय कला बाजार में महत्वपूर्ण स्थान रखने वाले कलाकारों में हैं। उनकी सर्वश्रेष्ठ कला कृतियां अधिकांशतया 6 अंकों की बिक्री राशि दर्ज कराती हैं। 5 फरवरी 2009 में सॉदबी लंदन में उनके स्टेनलैस स्टील के एक शीर्षक 'विहीन कार्य' को बहुत ऊंचे मूल्य पर बेचा गया।

टी.वी. संतोष की कलाकृतियों की मांग बाजार में एकदम से बडी सितम्बर 2007 में इनकी एक पेंटिंग एक लाख अस्सी हजार डॉलर में बिकी जोकि इस पेंटिंग के अनुमानित मूल्य से चार गुना था। उस पेंटिंग का शीर्षक था 'एक अनसुलझी कहानी के पार'।

बाजार के नजरिए से कला के क्षेत्र में दो प्रकार के कलाकार होते हैं जो मौलिकता और अपनी सृजनात्मकता को बढ़ावा देने के लिए बाजार में हैं तो दूसरे वे कलाकार भी हैं जो सिर्फ और सिर्फ झूठी लोकप्रियता के चक्कर में अपनी सृजनात्मक दृष्टि को रोक रहे हैं। ऐसे कलाकार बाजार की दृष्टि से भले ही खुद को कामयाब कहें परन्तु अपनें अन्तःकरण के विचारों से वह खुद को कलाकार साबित नहीं कर सकते।

आज नवीन कलाकार ही नहीं अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त चित्रकार भी कला दलालों व बाजार की इच्छानुसार कार्य करने को मजबूर हुए हैं। कहने का आशय है कि पश्चिम के कला बाजार के पीछे एक पूरी दृष्टि मशीनरी और अनुशासन है। प्रसिद्ध चित्रकार तैय्यब मेहता ने कहा था कि ''हमने भारत में पश्चिमी कला बाजार की बुराइयां तो अपना ली हैं पर उनकी अच्छाइयों को हम बहुत कम अनुसरण कर पाते हैं। एक संकल्प और समर्पण भी है। पश्चिमी कला की दुनिया में हमारे यहां इन बातों का जबरदस्त अभाव है।''

बाजारवाद–

प्रसिद्ध महिला चित्रकार अर्पणा कौर एक साक्षात्कार में बाजार और कला पर अपने विचार व्यक्त करते हुए कहती हैं कि **''**बाजार के कारण कलाकारों को सहायता मिलती है आर्थिक रूप से समृद्ध हो रहे हैं पहले जीविकोपार्जन के लिए नौकरीपेशा या अलग कोई धंधा करना पड़ता था इस लिहाज से ठीक है कि अब कलाकार ज्यादा से ज्यादा सृजन कर रहे हैं कोई अलग चिन्ता नहीं है चित्रकारों का मूल्यांकन उसकी कलाकृतियों के मूल्यों या नीलामी के आधार पर हो यह गलत है कला का यह कोई मापदण्ड नहीं है। कलाकार की अपनी कल्पनाशीलता होती है जिसके सहारे वह सृजन करता है उसका मापदण्ड इस रूप में करना उचित नहीं है**''**।

आज की भागदौड़ भरी जिन्दगी में बाजारवाद और इसकी ताकतवर व्यवस्था के प्रभाव से समाज का कोई भी वर्ग अछूता नहीं रहा है। बाजारवाद ने सभी सीमाओं को तोड़ने का काम किया है लेकिन विचार योग्य बात यह है कि देश में बन गये बाजारवाद और अर्थवाद की संस्कृति के इस संक्रमण काल में भी भारतीय संस्कृति, मूल्यों के प्रति समर्पित व कला को संवेदनशील बने रहना बहुत बड़ी चुनौती की बात हो गई है।

यह बाजारवाद की मेहरनबानी है जिसने इक्कसवीं सदी के भारत में ऐसे हजारों लाखों युवा तैयार कर दिये हैं जिस शिक्षण कला से बाजारवाद रोजाना लाखों करोड़ों कमा रहे हैं और उसी कमाई पर दिये गये टैक्स का पैसा खर्च कर राष्ट्र विकास के लिए नित नये आयाम स्थापित कर रहे हैं।

समकालीन भारतीय कला की बढ़ती कीमत के बारे में अरूण बढेरा की टिप्पणी दिलचस्प है– एक खरीददार भले ही एक कलाकृति को खरीदने के लिए 5 लाख रूपये खर्च कर दे पर हमारे यहां इंश्योरेंस कम्पनियां केवल कैनवास के मूल्य पेंट और फ्रेमिंग आदि के खर्च का ही बीमा करने को तैयार होती हैं। एक और कस्टम विभाग कला का बहुत ऊंचा मूल्य लगाता है तो दूसरी ओर फाइनेंस कम्पनियां कलाकृतियों को किसी भी दाम पर मानने को तैयार नहीं है। किसी स्पष्ट सरकारी नीति के अभाव में भारत में कला का बाजार अराजकता का शिकार है।

बाजारवाद के लाभ–

1. भारतीय कला को विश्व कला में उचित सम्मान दिलाना।
2. नवीन कलाकारों को मशहूर कलाकारों के बीच में ला खड़ा करना।
3. कलाकारों की कृतियों का उचित मूल्य दिलाना।
4. राष्ट्र की उन्नति में सहायक।
5. कलाकार को आर्थिक दयनीय स्थिति से बाहर निकालना।

बाजारवाद की हांनियां–

1. कलाकार को उसकी कलाकृतियों का उचित मूल्य बिना दलालों के ना मिल पाना।
2. छोटे कलाकारों का बड़े कलाकारों द्वारा शोषण होना।
3. नकली कलाकृतियों की बाजार में बाढ़ आ जाना।
4. आर्ट गैलरियों द्वारा कलाकार से बंधुआ मजदूर की तरह काम लेना।
5. कला के सिद्धान्तों एवं तत्वों से भटककर कलाकार का मनगढ़न्त चित्रण करना।

उपसंहार– कला बाजार एक ऐसी जगह है जहां कलाकार अपनी कृति का मौल–भाव करता है। जहां से उसकी रोजी चलती है। यही बाजार नित नये कलाकारों को जन्म देकर उनकों प्रसिद्ध बना रहा है। पहले समय में जहां कलाकार को उसकी कृति का उचित मूल्य तक न मिल पाता था वहीं अब इस बाजारीकरण के कारण उसी कृति का उसके मूल खर्चे से कही अधिक मूल्य कलाकार को मिल जाता है। जिसकी वजह से कलाकार दुगने उत्साह से और अधिक कार्य करता है जिसे देख नये कलाकार प्रभावित हो कर नित नये माध्यमों में कला निर्माण कर रहे हैं। जो उन्हें विश्वपटल पर पहचान दिला रहा है। साथ ही भारतीय समकालीन कला को विश्व पटल की कला के बीच अपनी जगह दिला रहा है।

सन्दर्भ :

1. अग्रवाल, डॉ. गिर्राज किशोर (2012) : 'कला निबन्ध', संजय पब्लिकेशन्स, आगरा ।
2. अग्रवाल, डॉ. गिर्राज किशोर (2015) : 'आधुनिक भारतीय चित्रकला', संजय पब्लिकेशन्स, आगरा।
3. वर्मा, डॉ. अविनाश बहादुर (2016) : 'कला एवं तकनीक', प्रकाश बुक डिपो, बरेली।
4. शर्मा, लोकेश चन्द्र (2008) : 'भारत की चित्रकला का संक्षिप्त इतिहास,' कृष्णा प्रकाशन मीडिया प्राइवेट लिमिटेड, मेरठ।
5. शुक्ल, प्रो. रामचन्द्र (2006) : 'आधुनिक चित्रकला', साहित्य संगम, इलाहाबाद।
6. अग्रवाल, डॉ. गिर्राज किशोर (2012) : 'कला और कलम', संजय पब्लिकेशन्स, आगरा।
7. अग्रवाल, डॉ. आर.ए. (2015) : 'कला विलास भारतीय चित्रकला का विवेचन', इण्टरनेशनल पब्लिशिंग हाऊस, मेरठ।
8. साखलकर, र. वि. (2014) : 'आधुनिक चित्रकला का इतिहास', राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर।
9. जोशी, डॉ. ज्योतिश (अंक–44–45), 'समकालीन कला', ललित कला अकादमी, नई दिल्ली।
10. चतुर्वेदी, ममता (2013) : 'समकालीन भारतीय कला', राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर।
11. रानी, डॉ. अर्चना (2012) : 'वैश्वीकृत युग में समकालीन कला–विपणन', रघुनाथ गर्ल्स पी॰ जी॰ कॉलेज, मेरठ।

***

अकाल, बिहार के विशेष संदर्भ में (1866-67)

डॉ. राजेश कुमार *

अकाल का अर्थ है, 'अनाज की कमी, जो कि प्राकृतिक वातावरण के कारण (जैसे : अधिक पानी बरसना या वर्षा की कमी[1], बाढ़ या सुखाड़, फसलों को कीट–मकोड़े द्वारा बर्बाद कर देना आदि) सामान्यतः उत्पन्न होता है'। अनाज की कमी जीवन–यापन को दुश्कर बना देती है। यह किसी भी पशुवर्गीय प्रजाति पर लागू हो सकता है। इस घटना के साथ या इसके बाद आम–तौर पर क्षेत्रीय कुपोषण, भूखमरी, महामारी और मृत्यु दर में वृद्धि हो जाती है। भारत प्राचीन काल से ही किसी–न–किसी समय में अकालों से पीड़ित रहा है[2], परंतु औपनिवेशिक काल में इसके स्वरूप एवं परिणामों में फर्क स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। इस अकाल से बिहार का क्षेत्र भी काफी बुरी तरह प्रभावित हुआ। इसे शोध–पत्र में 1866–67 के अकाल विशेषकर बिहार के संदर्भ में चर्चा की गई है।

बिहार सदियों से कृषि प्रधान क्षेत्र रहा है। मुगल काल में कृषक अपने खेतों में अनेक फसलों का उत्पादन करने थे। राज्य के द्वारा जागीरदारों की नियुक्ति की गई थी। इनका कार्य था, 'पटवारी, कानूनगो एवं अन्य कर्मचारियों के माध्यम से किसानों से भू–राजस्व उगाह कर राजकोष में जमा करना'। यह सच है कि ये कर्मचारी एवं जागीरदार किसानों पर कुछ अतिरिक्त दबाव डालते थे। फिर भी, राज्य इस बात को लेकर चिंतित रहता था, कि किसानों का शोषण न हो। इसके अतिरिक्त किसान अपने जमीन के स्वामी थे और उन्हें इस बात की पूरी छूट थी, कि वे अपनी इच्छानुसार फसलों का उत्पादन करेंगे और इसे बेच सकेंगे। जमींदारों का समय–समय पर तबादला होने के कारण उनका किसी विशेष स्थान पर निहित स्वार्थ विकसित नहीं हो पाता था। किसानों द्वारा शिकायत किये जाने पर इन जागीरदारों को दंड भी दिया जाता था।

परंतु, औपनिवेशिक काल में कृषि नीति में व्यापक परिवर्तन देखने को मिलता है। अब कृषि से अधिक–से–अधिक लाभ प्राप्त करने की कोशिश शासकों के द्वारा की जा रही थी। इस क्षेत्र में अंग्रेजों ने स्थायी बंदोबस्त व्यवस्था को लागू किया था, परंतु लॉर्ड कार्नवालिस ने जिस सोच के तहत् इसे लागू किया था, उस पर पूरी तरह अमल नहीं हो सका। समय के साथ–साथ सरकार की एकमात्र चिंता निश्चित समय पर राजस्व की वसूली ही रह गई। पट्टा के नियमों पर भी अमल नहीं हुआ।[3] इसके परिणामस्वरूप कई किसानों ने अपनी जमीन खो दी और इसके बाद या तो वे श्रमिक बन गए या बटाईदारों के रूप में फिर से जमीनों पर बस गए।[4]

1858 में कंपनी का शासन भारत से समाप्त हुआ और भारत में क्राउन (Crown) का शासन लागू हुआ। 'क्राउन' के शासन में यह आशा

* अतिथि शिक्षक, इतिहास विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना

जागी कि अब भारतीय समस्याओं के प्रति विशेष ध्यान दिया जाएगा, परंतु ऐसा नहीं हो सका। इस काल में अंग्रेजों की आर्थिक नीति में भी परिवर्तन हुआ। वाणिज्यिक पूँजीवाद से मुक्त व्यापार और इसके बाद वित्तीय पूँजीवाद की शुरूआत हुई। ब्रिटिश उपनिवेशवाद का तीसरा चरण 1860 के बाद माना जा सकता है।[5] इस काल में किसान उन फसलों को उगाने के लिए मजबूर हुए, जिसका बाजार में क्रय–विक्रय हो[6] अर्थात्, कृषि की वाणिज्यीकरण की प्रक्रिया की शुरूआत हुई, जिसका प्रभाव अनाजों की कमी अर्थात् अकाल के रूप में सामने आया।

इस शोध–पत्र में 1866–67 के जिस अकाल की चर्चा की जा रही है, उस समय सर जॉन लॉरेंस (1864–1869द्ध भारत के गवर्नर जनरल थे। एक कुशल प्रशासक के रूप में लॉरेंस काफी सफल रहे और उन्होंने कई महत्वपूर्ण आंतरिक सुधार किए। वैदेशिक नीति में भी वे काफी सफल रहे, परंतु 1866–67 के अकालों का सामना करने में वे सर्वथा असफल रहे और यह उनके प्रशासन का सबसे कमजोर पहलू रहा।[7]

1866–67 का अकाल प्रमुख रूप से 'उड़ीसा अकाल' के रूप में जाना जाता है, क्योंकि उड़ीसा का अधिक बड़ा क्षेत्र इस अकाल से प्रभावित रहा था। बिहार और बंगाल का क्षेत्र भी इससे अछूता नहीं रहा। बिहार राज्य का पुराना तिरहुत, सारण और चंपारण का उत्तरी भाग इससे अधिक प्रभावित हुआ। इसके अतिरिक्त शाहाबाद, गया, मुंगेर, भागलपुर इत्यादि क्षेत्र भी इस अकाल से प्रभावित रहा। इन सारे क्षेत्रों को मिलाकर करीब तीन हजार छः सौ छः (3606) वर्ग मील का क्षेत्र अकाल के चपेट में पड़ा।[8]

प्रभावित क्षेत्र में 1864–65 में अच्छे फसल नहीं हुए। तिरहुत के इलाके में 1863 तथा 1864 में फसल की स्थिति दयनीय थी। 1865 में पूरे बिहार में जून महीने के अंत में बहुत ही कम बारिश हुई, जबकि जुलाई महीने में इतनी अधिक बारिश हुई, जिससे बाद की स्थिति उत्पन्न हो गई। इससे चावल की खेती पर बुरा असर पड़ा। पुनः सितंबर महीने के प्रारंभिक दिनों में बिहार में सुखाड़ की स्थिति उत्पन्न हो गई। इसी वर्ष अक्टूबर महीने तक लोग भयभीत हो गए, क्योंकि अनाजों के मूल्य अचानक बढ़ गये और अनाजों की लूट भी कई स्थानों पर हुई।[9]

1866 के बिहार अकाल का कारण सिर्फ सुखाड़ या बाद की स्थिति नहीं थी। इसके लिए बिहार के दयनीय आर्थिक स्थिति और विशेषकर कृषि पर आश्रित किसानों की आर्थिक बदहाली भी थी। इसका मुख्य कारण औपनिवेशिक आर्थिक नीतियों में मौजूद थे। यह समय कृषि के वाणिज्यिकरण के लिए महत्वपूर्ण था। इस समय अंग्रेजों की कृषि नीति के अध्ययन से यह बात स्पष्ट हो जाती है, कि खाद्यान्नों की तुलना में वे वाणिज्यिक फसलों की खेती पर अधिक ध्यान दे रहे थे। बिहार के बड़े भू–भाग में खाद्यान्न फसल के स्थान पर अफीम और नील की खेती अधिक होने लगा। इसके अतिरिक्त कपास की खेती भी बड़े पैमाने पर होने लगा, क्योंकि अमेरिकी गृहयुद्ध के कारण वहाँ के उपनिवेशों से इंगलैंड को कपास

उपलब्ध नहीं हो रहा था, जिसकी भरपाई वह भारत से कर रहे थे। स्वाभाविक था, कि यहाँ अनाजों की कमी होती गई। इस कठिन परिस्थिति में भी बिहार से लगातार चावल, जो कि नेपाल से प्राप्त हो रहा था, बंबई तथा उत्तर–पश्चिमी इलाकों में निर्यात किया जा रहा था।[10] इससे यह बात स्पष्ट होता है, कि 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में बिहार में सिर्फ प्राकृतिक कारणों से ही नहीं अकाल की परिस्थिति उत्पन्न नहीं हुई, बल्कि इसके लिए औपनिवेशिक आर्थिक नीतियाँ भी जिम्मेवार थी।

दुर्भाग्यवश फरवरी, 1866 में भी बिहार में तेज तूफान बारिश के कारण फसलों को काफी नुकसान हुआ। चना तथा अफीम की फसल इससे अधिक प्रभावित हुई। उत्तरी बिहार और विशेषकर तिरहूत से भारी संख्या में लोग दक्षिण बिहार की ओर पलायन कर गये। लगभग गया से 3000 लोग मजदूरी के लिए देश से बाहर चले गए।[11] अनाजों की लूट की संख्या में काफी वृद्धि हुई। रबी फसलों के अच्छे होने के उम्मीद में सरकारी पदाधिकारियों ने स्थिति पर विशेष ध्यान भी नहीं दिया।

दिसंबर, 1866 में चावल की खेती में थोड़ी सुधार के कारण चावल के मूल्यों में कुछ गिरावट आई, परंतु स्थिति में कोई विशेष सुधार नहीं हुआ। जिला पदाधिकारियों की रवैया पहले की तरह बरकरार रही। पटना के कमिश्नर ने तो यहाँ तक घोषणा कर दी, कि अकाल की स्थिति समाप्त हो गई है और राहत कार्यों की कोई आवश्यकता ही नहीं है। यदि यह मान लिया जाए, कि बंगाल सरकार के अधिकारियों को अकाल का कोई अनुभव नहीं था, फिर भी दूरदख्शता की कमी और ऐतिहासिक कदम न उठाया जाना उचित नहीं ठहराया जा सकता।[12]

ब्रिटिश प्रशासकों द्वारा 1866–67 के अकाल के समय एक निश्चित निर्धारित नीति के अनुकूल राहत के कदम उठाये। बिहार में 1866 के अकाल के बाद अंग्रेजों ने भारत सरकार की अनुमति से अपने अकाल नीति की घोषणा की। लोगों को रोजगार के साधन उपलब्ध कराने के लिए राज्य की ओर से कई सार्वजनिक कार्य किए गए, जैसे–सड़क मरम्मत, नहर निर्माण का कार्य इत्यादि। इसके अतिरिक्त राज्य की ओर से राहत के लिए पैसे भी खर्च किए गए, ताकि इलाके के जमींदार भी इससे प्रभावित होकर राहत कार्यों में योगदान दे।[13]

बिहार में राहत कार्यों में सड़कों का मरम्मत तथा प्रभावित क्षेत्रों में छोटे–छोटे तालाब खुदवाये गये, परंतु दुर्भाग्यवश यह काम 1866 के जून महीने में प्रारंभ हुआ, जब बारिश के कारण खुदाई के कार्यों में काफी कठिनाई होने लगी। इसके अतिरिक्त ये सारे राहत कार्य योजनाबद्ध नहीं थे, मजदूरी की दर अत्यंत कम थी और अनाजों की भारी कमी के कारण मजदूर इस कम पैसे से अनाज भी खरीद नहीं पाते थे। इस प्रकार राहत कार्यों से प्रभावित लोगों को पर्याप्त लाभ नहीं मिल पाया। कॉकरेल के विचारानुसार यदि प्रशासन के द्वारा कुछ पहले यह पैसे खर्च किए जाते, तो शायद कुछ अधिक लोगों को भीख माँगने या मरने से रोका जा सकता

था।[14] राहत कार्यों में कुल 98,054 रु॰ खर्च किए गए और प्रभावित क्षेत्र में मात्र 11,660 लोगों को ही राहत मिल पाई।[15]

इस प्रकार, बिहार में अकाल की स्थिति का सामना इस समय अच्छी तरह नहीं की गई और स्थानीय पदाधिकारी भी स्थिति की गंभीरता को अनदेखा कर दिया। कॉकरेल ने ठीक ही लिखा है कि यदि अकाल की स्थिति का सही आकलन होता, ठीक समय पर सार्वजनिक कार्य शुरू किये जाते, तो शायद मृतकों की संख्या इतनी अधिक नहीं होती।

सन्दर्भ :

1. सब्याची भट्टाचार्य : 'आधुनिक भारत का आर्थिक इतिहास, 1850–1947', राजकमल प्रकशन, नई दिल्ली, 1994, पृ. 84.
2. डॉ. बी.एल. गुप्ता : 'भारत का आर्थिक इतिहास', हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकूला, 2001, पृ. 1.
3. गिरीश मिश्र : 'एग्रेरियन प्रोब्लम्स ऑफ परमानेंट सेट्लमेंट', नई दिल्ली, 1978, पृ. 123.
4. सुनील सेन : 'एग्रेरियन रिलेशंस इन इंडिया, 1793–1947', नई दिल्ली, 1979, पृ. 31.
5. डॉ. सत्या एम. राय : 'भारत में उपनिवेशवाद और राष्ट्रवाद', हिन्दी माध्यम कार्यांवयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, 2000, पृ. 27
6. डॉ. सत्या एम॰ राय : पूर्वोक्त, पृ. 52
7. डॉ. धर्मपाल : 'एडमिनिस्ट्रेशन ऑफ सर जॉन लॉरेंस इन इंडिया'
8. अकाल आयोग का प्रतिवेदन, 1880, भाग–3, पृ. 41, 68.
9. जे. सी. गेडस : 'बंगाल क्राप्स ऑफ 1865–67', कलकत्ता, पृ. 70.
10. कॉकरेल रिपोर्ट, पारा 130–31
11. अकाल आयोग का प्रतिवेदन, 1880, भाग–3, पृ. 71.
12. चोपड़ा, पूरी और दास : 'भारत का सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक इतिहास', भाग–3, 1993, पृ. 194.
13. होम डिपार्टमेंट (पब्लिक नं॰ 333, अगस्त–9)
14. कॉकरेल रिपोर्ट, पारा 145
15. फेमिन कमिशन रिपोर्ट, भाग–3, पृ. 71.

अन्य सहायक संदर्भ सूची :

1. बी. एम. भाटिया : 'फिमिनस इन इंडियाःए स्टडी इन सम् एस्पेक्टस ऑफ दी इकोनॉमिक हिस्ट्री ऑफ इंडिया', बंबई, 1967.
2. के. के. दत्त : 'कंप्रीहेंसिव हिस्ट्री ऑफ बिहार', के. पी. जयसवाल रिसर्च इंस्टीच्यूट, पटना
3. अमर्त्य सेन : 'पॉवर्टी एंड फमिनस वर्ड डिपार्टमेंट 8', 1980
4. हरिशंकर श्रीवास्तव : 'द हिस्ट्री ऑफ इंडियन फेमिनस 1858–1919', आगरा, 1971
5. इरफान हबीब : 'एग्रेरियन सिस्टम ऑफ मुगल इंडिया', बंबई, 1963

***

कलात्मक अभिव्यक्ति का नया पहलू–शारीरिक कला

हेमलता *

कला मानव जीवन का अनुपम और अभिन्न अंगहै। कला कल्याण की जननी है। सृष्टि के समस्त पदार्थों का आधार कला ही है। प्रकृति की प्रत्येक रचना तथा जीवन के प्रत्येक क्रियाकलाप में कला दृष्टिगोचर होती है। कला मानव की व्यावहारिक मूल प्रवृत्तियों कला विनोद, क्रीडा, विलास, अनुकरण, निर्माण आदि से मिलकर उदित होती है। कलाकार स्वयं में रचे बसे संसार को ही कला के माध्यम से अभिव्यक्त करते हैं। कलाकारों के नित नये प्रयोगों से ही कला की नवीन धाराएं प्रस्फुटित होने लगी हैं। इस रचनात्मकता तथा भावाभिव्यक्ति की नवधारा के रूप में ही जन्म लेती है ''शारीरिक कला''। रंग, ब्रश व कुछ तकनीकों के द्वारा शरीर पर चित्रों की रचना का यह चलन आजकल अधिक बढ गया है। यह कला मानव शरीर के केश से लेकर पैर के नाखून तक प्रत्येक अंग में की जाती है। किसी के लिये यह माध्यम है अपनी अभिव्यक्ति का, तो कुछ लोग इसे फैशन के लिए अपने शरीर पर बनवाते हैं। उन्नीसवी सदी के बाद इसमें अधिक प्रयोग होते दिखाई पडते हैं। पश्चिम में इसका चलन अधिक है वहां इस कला के प्रचार–प्रसार के लिये 'बॉडी आर्ट फेस्टिवल' का आयोजन किया जाता है, किंतु भारत में इसकी स्थिति बिल्कुल विपरीत है। बॉडी आर्ट के कुछ स्वरूपों को लोग हेय की दृष्टि से देखते हैं। जो लोग बॉडी आर्ट करवाते हैं उनके प्रति समाज की सोच अलग होती है। इस सोच ओर नजरिए में बदलाव के लिये आवश्यक है कि लोग इस कला के बारे में अधिक से अधिक जाने व समझे और कला को केवल कला के रूप में ही स्वीकार करें।

शब्द कुंजी– शारीरिक कला, बॉडी आर्ट, फेस पेंटिंग, टैटू आर्ट।

प्रस्तावना– कला मानव जीवन का सबसे अहम हिस्सा है। जिसका उददेश्य सुंदरता या भावनात्मक शक्ति का प्रसार करना है। इसके अंतर्गत कई कला विधाएं समाविष्ट हैं। यह विधाएं अपने विविध रूपों में व्यक्ति के मनोभावों को व्यक्त करती हैं। इसका एक पक्ष सौंदर्यात्मक है तो दूसरा पक्ष गहन संदेश देता है। समकालीन कला आज की कला है। यह मुख्य रूप से आधुनिक आत्माभिव्यक्ति और कलात्मकता की भाषा को प्रदर्शित करती है। कलाकार कलाकृति के अर्थपूर्ण निमार्ण में जान फूंक देते हैं, यह कलात्मकता उनकी अपनी पहचान है। जिसको नजरंदाज नहीं किया जा सकता। कला वह क्रिया है जो कलाकार द्वारा चित्रकला में किये गए नित

* शोधार्थी चित्रकला, महात्मा ज्योतिबाफुले रूहेलखण्ड विश्वविद्यालय, बरेली, उत्तर प्रदेश

नये प्रयोग से यह अधिक विस्तृत व विकसित होती रहती है। प्राचीन काल में कला का जो स्वरूप था वह आज पूर्णतः बदल चुका है।

चित्रकला, मूर्तिकला, वास्तुकला इन तीनों में ही सौंदर्य, कल्पना, प्रतीक, रूपविधान आदि तत्वों का समायोजन समरूप ही होता है। इन तत्वों का कुशल संयोजन कृतिमें विविध भावों, मानवीय चेष्टाओं आदि को व्यक्त करता है। प्राचीन समय में यह अभिव्यक्ति गुफाओं व शिलाओं की भित्तियों पर की जाती थी। परंतु मानव सभ्यता जैसे जैसे विकसित होती गयी अभिव्यक्ति का स्वरूप बदल गया। मानव शरीर को रंग, छेदना, गोदना, दागना, मेकअप, फेस पेंटिंग, बॉडी पेंटिंग आदि के रूप में उपयोग कर अपनी भावनाओं, अनुभवों और विचारों को समाज में व्यक्त करना शारीरिक कला कहलाता है।

प्रत्येक संस्कृति में मानव अपने शरीर को साज सज्जा के साथसमाज के सामने पेश करता है। वहीं कलाकारों ने तो इस भौतिक समाज में शरीर को ही कैनवास के रूप में उपयोग करना प्रारंभ कर दिया है। जिसमें लोगों के शरीर को पेंट, पियर्सिंग, टैटू, रीशेप आदि के द्वारा श्रंगार किया जाता है। विभिन्न संस्कृतियों में शारीरिक कला का अर्थ विशिष्ट होता है। कहींयह पूर्वजों, देवतओं के रूप में है तो कहीं सौभाग्य और सुन्दरता के रूप में। भारत में यह कला परंपरागत रूप में है लेकिन विदेशों में बॉडी आर्ट के लिए उत्सवों का आयोजन किया जाता है।

अर्थ– शारीरिक कला इसे अंग्रेजी में ''बॉडी आर्ट'' अथवा ''बॉडी पेंटिंग'' भी कहा जाता है। इसमें व्यक्ति का नग्न अथवा अर्धनग्न शरीर कलाकार के लिए कैनवास बनता है। जिस पर की जाने वाली चित्र रचना किसी ना किसी उददेश्य की पूर्ति हेतु निर्मित की जाती है। कुछ लोग इसे अपने शौक के लिए भी करवाते हैं। यह स्त्री व पुरूष दोनों के शरीर के प्रत्येक अंग जैसे– चेहरा, हाथ, कमर, पैर, जंघा, उंगलिया, गर्दन, पीठ, बाल आदि सभी पर की जाती है। इस चित्रकारी के लिए प्राकृतिक या भूमिज रंगों का प्रयोग किया जाता है, जिससे व्यक्ति को किसी भी प्रकार की त्वचा संबंधी समस्या का सामना ना करना पडे.। बॉडी आर्ट का प्रचलन भारत की तुलना में अन्य देशों में अधिक है। वर्तमान में इसका चलन अधिक बढ. गया है। यदि इसके मूल स्रोत पर नजर करें तो संभवतः यह कला आदिवासियों से प्रारंभ हुई, जो अपने शरीर व चेहरे को गोदकर, दागकर वनस्पति या भूमिज रंगो से विशेष प्रकार से सजाते थे। इन आदिवासियों में अलग–अलग कबीले होते थे। अलग–अलग कबीलों की पहचान उनकी शारीरिक साज सज्जा अथवा शरीर पर गोदे गये कुछ विशेष चिन्हों के द्वारा की जाती थी।धीरे धीरे यह आमजन में प्रचलित होने लगी और लोग अपनी कलाई पर अपना नाम या कोई पहचान चिन्ह व कंधे पर देवी देवताओं के चित्र बनवाने लगे। किंतु 19वीं सदी से तो इसने एक फैशन का रूप ले लिया।

आजकल नाटक, सर्कस, फिल्म, विवाहोत्सव या फिर मंच आदि पर इसका प्रदर्शन देखा जा सकता है। लोग अपने चेहरे, हाथ या पूरे शरीर पर भिन्न–भिन्न प्रकार की आकृतियों जैसे–शेर, हाथी, घोडे, मकडी., बाज या अन्य कीट पतंगे, फूल, पत्ती अथवा किसी व्यक्ति विशेष का चित्रण किए हुए रहते हैं। मुख्यत चेहरे और बॉह का प्रयोग लोग अधिक करते हैं। यह कला लोगों के बीच जैस जैसे लोकप्रिय होती जा रही है वैसे ही इसमें नए नए प्रयोग किए जा रहे हैं। जिससे इस कला के प्रति लोगों का आकर्षण बना रहे। कलाकार त्रिमितीय प्रभाव से इस कलाकारी को वृहत स्तर पर ले जा रहे हैं। जिसके अनेक ऐसे उदाहरण देखने को मिलते हैं जो दर्शकों को आश्चर्यचकित कर देते हैं।

किसी के फेस पर ऑखों को बाहर लटकता हुआ बना देना किसी के पेट को रस्सीनुमा बना देना किसी के कंधे को ऐसा बना देना जैसे वह टूटकर अलग गिर रहा हो। किसी की जांघ को लकडी जैसा इफेक्ट देना मानो उस पर वुडकार्विंग की गई हो। रंगों के प्रयोग से शरीर को तोता, मेंढक, छिपकली, गिरगिट आदि जैसा हूबहू बना देना इसके अन्यतम उदाहरण हैं जिसे पहली नजर में देखें तो पता ही नहीं चलता कि यह मानव शरीर है।

भारतीय परिदृश्य में शारीरिक कला– शारीरिक कला का इतिहास हजारों वर्ष पुराना है। प्राचीन काल में लोग अपने सौंदर्य में वृद्धि करने के लिए पुष्प, आभूषण, कुमकुम, हल्दी, मेहंदी आदि का प्रयोग करते थे। यह भारतीय परंपरा में सौंदर्य वृद्धि के लिये प्राकृतिक प्रसाधन हैं। धीरे–धीरे यह शारीरिक साज सज्जा नए कलेवर में भावाभिव्यक्ति का माध्यम बनने लगी। अभिव्यक्ति के इस नवीन माध्यम को विस्तृत रूप से समझने के लिए हम इसे दो भागों में बांट सकते हैं–

1. **स्थायी माध्यम–** इस माध्यम में की जाने वाली चित्रकारी को जल अथवा किसी अन्य पदार्थ द्वारा शरीर से साफ नहीं किया जा सकता यह शरीर पर स्थायी रूप से लंबे समय तक बनी रहती है जैसे–गोदना, दागना, छेदना आदि।

(i) गोदना– यह शरीर पर सूई या मशीन द्वारा किसी आकृति का अंकन है जिसे अंग्रेजी में ''टैटू'' कहते हैं। इसमें त्वचा की प्रथम व द्वितीय परत डर्मिस व एपिडर्मिस पर नुकीले उपकरणो द्वारा घाव या चीरा लगाकर विभिन्न आकृतियों को उकेरा जाता है। जिसमें प्राकृतिक रंग, कोयला, कालिख का प्रयोग किया जाता है।आदिम जनजाति के स्त्री और पुरूष दोनो ही स्याह रंग का गोदना गुदवाते हैं। यह अब जनजातियों तक ही सीमित नहीं है, आमजन भी इसकी ओर आकर्षित हो रहे हैं। वर्तमान में गोदने के लिए रासायनिक रंगो का प्रयोग किया जाने लगा है। अब केवल काले ही नहीं वरन लाल, हरे, नीले, पीले, नारंगी, सफेद जैसे चमक वाले रंगो का प्रयोग किया जाने लगा है।

(ii) **दागना–** बिना दाग धब्बों वाली त्वचा आदर्श सुंदरता को प्रदर्शित करती है। किंतु कुछ समुदाय विशेष में शरीर पर स्थाई दागो को बनाया जाना सुंदरता और प्रतिष्ठा का सूचक माना जाता है। त्वचा पर गहरे घाव करके या किसी उपकरण को गरम करके शरीर पर सजावटी नमूने बनाये जाते हैं। इसके पश्चात इन घावों को राख या मिटटी से भर दिया जाता है। जिससे त्वचा में किसी प्रकार का इन्फेक्शन ना हो। यह एक दर्द पूर्ण प्रक्रिया है जो कुछ हद तक टैटू के समान ही है। जिसके निशान स्थाई रूप से व्यक्ति के शरीर पर बन जाते हैं।

(iii) **छेदना–** आभूषणों को धारण करने के लिए शरीर पर छेदने की प्रक्रिया अपनाई जाती है। जो प्राचीन समय से चली आ रही है।पहले मुख्यतः नाक व कान ही छेदे जाते थे, किंतु आजकल फैशन की तडक–भडक मेंनाक, कान के साथ साथ सीना, होंठ, नाभी, भोंहें आदि को छिदवाकर लोग इसमें छोटे–छोटे आभूषण धारण करते हैं। कुछ लोगों ने तो पूरे शरीर को छिदवाकर उसमें छोटी–छोटी बालियां पहनकर गिनीज वर्ल्ड रिकॉर्ड भी बनाया है।

2. **अस्थायी माध्यम–** मेहंदी, महावर, नाखूनों को सजाना, मेकअप आदि ऐसे अस्थायी माध्यम हैं जिन्हें आसानी से साफ किया जा सकता है। या कुछ दिन बाद यह शरीर से स्वतः ही साफ हो जाते हैं। यह चित्रकारी लंबे समय तक शरीर पर नहीं रहती।

(i) **मेहंदी**– यह हमें एक पौधे से पत्तियों के रूप में प्राप्त होती है। जिसे हिना भी कहा जाता है। मेहंदी सौभाग्य का प्रतीक मानी जाती है। मेहंदी की पत्तियों को पत्थर पर पीसकर एक गाढा घोल बना लिया जाता है, फिर इसे तीली से या प्लास्टिक के कोन में भरकर हाथों व पैरों पर लगाया जाता है। आजकल बाजार में मेहंदी की रेडीमेड कोन भी उपलब्ध है। हाथों, पैरों पर मनचाहा डिजाइन बनाकर इसे सुखा लिया जाता है। एक दो घंटे बाद इसे साफ करने पर यह उस स्थान पर लाल रंग छोड देती है। धीरे–धीरे इसका रंग गहरा होता जाता है। और दूसरे तथा तीसरे सप्ताह तक यह हल्की होकर पूरी तरह साफ हो जाती है।पुरूषों की अपेक्षा यह महिलाओं में अधिक लोकप्रिय है। तीज त्यौहार, रक्षाबंधन, भाई दूज, करवाचौथ, हरियाली–तीज, शादी–विवाह आदि में महिलाएं मेहंदी से अपने हाथ पैरों को सजाती है। मेहंदी से फूल, पत्ती, पशु, पक्षी, मानव आकृतियां व बारीक अलंकरणों को बनाया जाता है।

(ii) महावर– पुराणों में जो देवी–देवताओं की छवि का वर्णन मिलता है, उससे ज्ञात होता है कि महावर का इतिहास भी पुराना है। देवी–देवताओं के हाथ और पैरों को इसी के द्वारा सजाया जाता था। महावर से हथेली के मध्य गोल आकृति बनाकर अंगुलियों के पोरों को रंग दिया जाता था। इसे अस्थायी सज्जा हेतु प्रयोग किया जाता है। महावर को ''आलता'' भी कहा जाता है। यह रानी मजेंटा या लाल रंग की आभा लिये हुए एक तरल

पदार्थ है। यह सुहागिनों का महत्वपूर्ण श्रंगार माना जाता है। शादी विवाह के अवसर पर सुहागिन स्त्रियां पैरों में इसे अवश्य लगाती हैं। इसे अंगुली या लकड़ी की तीली में रूई को लपेट कर लगाया जाता है।

(iii) नाखूनों की सजावट– नाखूनों को सजाने की रूचि विशेष रूप से महिलाओं में ही रही है। पहले मेहंदी व महावर द्वारा ही इन्हें सजाया जाता था, किंतु धीरे–धीरे समय के साथ सौंदर्य प्रसाधनो में भी नई–नई चीजों का प्रयोग होने लगा। छोटी–छोटी शीशियों में उपलब्ध सिंथेटिक रंग जिन्हे नाखून पॉलिश कहा जाता है के द्वारा नाखूनों की सज्जा की जाती है। इन शीशियों के ढक्कन में ही ब्रश लगा होता है जिससे नाखूनों को अपनी इच्छानुसार एक या दो रंगो में रंग लिया जाता है। और थिनर की सहायता से इसे साफ भी कर सकते हैं। किंतु आधुनिक समय में नेल आर्ट की पूरी किटबाजार में उपलब्ध है।जिससे नाखूनों पर तरह तरह की डिजाइन बनाए जाने लगे हैं। डिजाइन वाले रेडीमेड नाखून भी मिल जाते हैं। जिसे नेल ग्लू की सहायता से अंगुलियों पर चिपका लिया जाता है और जब मन चाहे निकाल दिया जाता है।

(iv) **मेकअप–** सुंदर दिखना हर किसी चाहत होती है। मेकअप ने सुंदरता की परिभाषा ही बदल दी है। हर कोई सुंदर दिखने के लिये तरह–तरह के मेकअप का इस्तेमाल करता है। महिलाएं तो इसमें अग्रणी हैं ही, पुरूष भी आजकल इससे अछूते नहीं है। त्यौहार, उत्सव, विवाहोत्सव में तो मेकअप से चेहरे की रंगत ही बदल दी जाती है। एक साधारण से दिखने वाले इंसान को भी मेकअप ट्रांसफॉरमेशन के जरिए प्रभावशाली बना दिया जाता है।कहीं ना कहीं मेकअप से आत्मविश्वास में भी वृद्धि होती है। और एक अच्छे व्यक्तित्व पर सबकी ही नजरें टिक जाती हैं। टीवी, सिनेमा आदि इसके पीछे अहम रोल अदा करते हैं। फिल्मों के निर्माण में भी हीरो, हिरोइन का मेकअप उनके किरदार के अनुसार किया जाता है। लिपस्टिक, काजल, पाउडर, मेकअप–किट, हेयर–कटिंग और तरह–तरह के हेयर स्टाइल जिन्हें आजकल हर कोई अपनी–अपनी पसंद के अनुसार अपना रहा है।

(v) **अस्थायी टैटू–** यह उन लोगों के लिये उपयोगी है जो टैटू बनवाने का शौक रखतें हैं किंतु उसकी दर्द भरी प्रक्रिया से टैटू नहीं बनवा पाते। बाजार में आजकल कागज पर पशु, पक्षी, फूल, पत्ती, ज्यामिती आकार आदि डिजाइन में बने टैटू मिल जाते हैं।जिसे त्वचा पर रखकर हल्का सा रगड़ने से डिजाइन कागज की सतह से त्वचा पर आ जाता है। इसी तरह मेहंदी के डिजाइन भी अस्थायी टैटू के रूप में उपलब्ध हैं। और इन्हें आसानी से साफ भी किया जा सकता है।

इस प्रकार हम समझ सकते हैं कि भारत में शारीरिक कला सिर्फ पारंपरिक रूप में है। यह अपनी संस्कृति व सभ्यता की जड़ो से जुड़ी हुई है। किंतु पश्चिम का प्रभाव पड़ने से यह जड़ें खुलने लगी हैं। भारत में भी कुछ कलाकार हैं जो बॉडी पेंटिंग करते हैं। और विदेशों में होने वाले बॉडी

आर्ट फेस्टिवल में प्रतिभाग करते हैं।आस्ट्रिया, न्यूयॉर्क ऐसे देश हैं जहां शारीरिक कला महोत्सव बहुत बडे स्तर पर आयोजित किया जाता है। आस्ट्रिया के पोएर्टेश ऐ व जापान के चू सान नामक कलाकार बॉडी पेंटिंग में महारत हासिल कर चुके हैं।

शोध उद्देश्य : इतिहास में शारीरिक कला का हजारों वर्ष पुराना वर्णन मिलता है। आदिम जनजाति के लोगों द्वारा अपने शरीर को गुदवाना उनकी आस्था या प्रथा में शामिल होता है। जो आज स्टेटस सिंबल के रूप में आ गया है। जो नई संभावनाओ को जन्म देकर आधुनिक सोच व सौंदर्यात्मक रूप को पेश करने में महत्वपूर्ण है। साहित्य के क्षेत्र में इस विषय पर बहुत ही कम सामग्री मिलती है। यह एक शोध का विषय है। क्योंकि यह ऐसा विषय है जिसके बारे में ज्यातर लोग अनभिज्ञ है यदि कुछ लोग जानते भी है तो पूर्ण जानकारी के अभाव में उनका शरीर कला के संबंध में अलग ही नजरिया होता है। इस कला के लिये अस्वीकारोक्ति क्यों है? और इसका क्या प्रभाव है? इसका निरीक्षण आवश्यक है। आज शरीर कला एक उभरती हुई कला विधा है। जिसमें होने वाले नए प्रयोग इसकी दशा व दिशा को परिवर्तित करते रहते हैं। यह परिवर्तन कला को भविष्य में उन्नत स्तर पर ले जा सकता हैं।

उपसंहार : कला किसी भी रूप में हो उसका उदेश्य सौंदर्यानुभूतिव अपने गूढ़ संदेश को समाज तक पहुंचाना होता है। शारीरिक कला भी अपने आप में गूढ़ रहस्य समाए हुए है। स्वतंत्र विचारों के वातावरण में ही कला पनपती है। तो शारीरिक कला को स्वतंत्र रूप से क्यो नहीं प्रदर्शित किया जा सकता? क्यों उसके लिये वर्जनाए निर्धारित कर दी गई हैं? समय तीव्र गति से आगे बढ़ रहा है। नये माध्यमों व शैलियों के चलन से दुनिया उत्तर आधुनिक में प्रवेश कर चुकी है। और हम अभी आधुनिक कलाओं के पीछे ही भाग रहे हैं। पारंपरिक कलाओं को सामाजिक व सांस्कृतिक रूप में नया अर्थ प्रदान किया जा रहा है। तो शारीरिक कला की भ्रांतियों को दूर कर हमें इसे कला की एक शाखा के रूप में स्वीकार करना चाहिए। यह सिर्फ अभिव्यक्ति का माध्यम है। जिसमें कलाकार अपने शरीर का उपयोग करते हैं, जिससे वह विशेष संदेश दे सकें या यूं कहें कि जहां शब्द विफल हो जाते है तब मानव शरीर कला के रूप में अपनी कहानी बयां करता है।

सन्दर्भ :

- अग्रवाल श्याम बिहारी : भारतीय चित्रकला का इतिहास, रूपशिल्प प्रकाशन, इलाहाबाद
- समकालीन कला, ललित कला अकादमी नई दिल्ली
- शुक्ल रामचंद्र : कला तथा आधुनिक प्रवृत्तियां, लखनउ, 1988
- भारद्वाज विनोद : वृहद आधुनिक कला कोश, दिल्ली, 2015
- Addonizio, K. and Dumesnil, C.eds, (2002) : Dorothy Parker's Elbow-Tattos on writters. Newyork, NY, Warner books.

- Ayers R; (2000) : 'An Interview with Orlon, in M. Featherstone (ed.), Body Modification. London.
- Barker D.J and Barker, M.J. (2002) : 'The body as art' journal of cosmetic Dermatology
- Matt Lodder: Body art: Body Modification as Artistic Practice, Thesis. January 2010.
- Art: Body art: Marks of identity.www.ncbinlm.nih.gov
- www.bella-volen.com
- www.theartstory.org
- www.acaemia.edu
- www.en.m.wikipedia.org
- www.researgatei.net

***

कुरान और गीता में तौहीद और ईश्वर के गुण

*डॉ. वाहिद नसरू**

और हमारा खुदा और तुम्हारा खुदा एक ही है, और हम इसी के फरमानबरदार है। कुरान 37/4

तौहीद को भारतीय दर्शन में एकेश्वरवाद या अद्वैतवाद कहते हैं। एकेश्वरवाद का अर्थ है कि, खुदा एक है और अद्वैतवाद का अर्थ है कि, खुदा दो नहीं है। खुदा और जगत् के सम्बन्ध में इसका अर्थ होता है कि ईश्वर खुदा और जगत् भिन्न नहीं हैं। इस संसार में जो भी है वह ईश्वर का ही अस्तित्व हैं। मुस्लिम फलसफादानों के अनुसार तौहीद की तीन किस्में हैं–

इस्लामिक दर्शन के अनुसार तौहीद (एकेश्वरवाद) की तीन किस्में –

1. तौहीद–ए–रबूबीयतः (रब्बिल आलमीन) से लिया गया है। तौहीद–ए–रबूबीयत यह है कि आकाश और धरती और उन में पाई जाने वाली सभी चिज़ों का पैदा करने वाला, रोजी देने वाला, मालिक और प्रबन्धकर्ता केवल अल्लाह तआ़ला है।
2. तौहीद–ए–उलुहियतः (अल्लाह) शब्द और **इय्या–क नअ़बुदु व इय्य–क–नस्तअ़ीन (कुरान 1/4)** से गृहीत है, और इसका अर्थ यह है कि इबादत की जितनी किस्में हो सकती हैं उन सभी के योग्य केवल अल्लाह तआ़ला है।
3. तौहीद–ए–अस्मा व सिफातः (अल–हम्दु) शब्द से लिया गया है और इस का अर्थ यह है कि, अल्लाह तआ़ला ने कुरान करीम में और रसूल स0 अ0 ने सही हदीसों में अल्लाह के जितने अस्मा और सिफ़ात (नाम और विशेषताएँ) साबित की हैं उनको उसी तरह माना जाए न उनकी मिसाल बयान की जाए, और न ही अल्लाह के सिवा किसी दूसरे के नामों और विशेषताओं के साथ मिसाल दी जाए। सूरेह फातिहा से तौहीद की इस परिभाषा को प्रमाणित किया जा सकता है। सूरेह फातिहा की पहली तीन आयतें अल्लाह तआ़ला की हम्द (प्रशंसा) और उसकी रबूबीयत, उलूहियत और मुलूकियत का एतराफ है, और दूसरा आधा हिस्सा अल्लाह से दुआ का है। इस आयत करीम में सारे कुरान उलूम का जिक्र किया है।

मुस्लिम विद्वानों के नज़दीक तो तौहीद के ये मानी हैं कि एक खुदा के सिवा कोई और खुदा नहीं, न खुदा की ज़ात सिफात में कोई और शरीक है। तौहीद के सम्बन्ध में बहतरीन कौल हज़रत सद्दिक अकबर र0 का है जो फरमाते हैं– ''लायक–ए–हम्द है वह ज़ात जिसने अपने बन्दों पर अपनी

---

* वरिष्ठ सहायक प्रवक्ता संस्कृत, मध्य एशिया अध्ययन केन्द्र, कश्मीर विश्वविद्यालय, श्रीनगर-190006

ज़ात व सिफ़ात के इल्म दिया और उस के सिवा और कोई रास्ता नहीं खोला कि वो अपने अज़ीज–ए–फहम का एत्तराफ कर लें''। जुनैद बगदादी के अनुसार ''तौहीद वो हक़ीक़त है, जिस में तमाम आसार व अलाइम फ़ना हो जाते है और सिर्फ अल्लाह तआ़ला बाकी रह जाता है। (खुदा आज भी वैसा ही है जैसा की वह पहले था) एक मर्तबा कुछ लोगों ने जुनैद बगदादी से तौहीद का अर्थ पूछा तो उन्होंने कहा– ''तौहीद वो माअनी है जिस की तअ़रीफ नहीं हो सकती। हालान्की तौहीद के मानी में मक्कमल इल्म पौशीदा है''[1]।

कुरान और गीता दानों ही धार्मिकशास्त्र तौहीद अर्थात् एकेश्वरवाद के सिद्वान्त की पूर्णतः स्पष्ट शिक्षा देते हैं। कुरान और गीता दोनों का प्रतिपाद्य विषय एकेश्वरवाद, शान्ति, राज्य संचालन, इबादत, और परिवार के अद्वितीय आदर्श, सत्य के लिए युद्व है। पश्चिमी विचारक एच0 जी0 वेल्स का कथन है कि ''इस पृथ्वी पर प्रवचन तो बहुत दिए गए किन्तु उन प्रवचनों के आधार पर एक समाज की रचना पहली बार हज़रत मौहम्मद स0 व0 ने करके दिखाई। कुरान के अनुसार किसी अन्य धर्म का अपमान नहीं करना चाहिए। **कुरान 2/256लआ इक्रा–ह फ़िद्दीनि** ''दीन–ए–इस्लाम में ज़बरदस्ती नहीं है।'' धर्म के विषय में कोई ज़बरदस्ती नही है। अल्लाह सब कुछ सुनने, जानने वाला है। **कुरान 109/6 लकुम् दीनुकम् वलि–य दीन !** तुम्हारा धर्म तुम्हारे लिए और मेरे लिए मेरा धर्म।

तौहीद के अनुसार ईश्वर सवर्ज्ञ, सर्वशक्तिमान, असीम नित्य और पूर्ण है, और वह मानवीय तर्कबुद्वि एवं अनुभव से परे है, अतः इस दृष्टि से वह जगत की प्रत्येक सीमित वस्तु से मूलतः भिन्न है[2]। ईश्वरविश्वातीत और इस सम्पूर्ण सृष्टि का कर्ता अर्थात् ईश्वर ही एकमात्र अन्तिम सत्ता है।
भारतीय दर्शन के अनुसार ईश्वर में मुख्यतः तत्त्वमीमांसीय गुण और नैतिक गुणों दो प्रकार के गुण पाए जाते हैं–सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापकता, सर्वज्ञता, नित्यता, असीमता। ईश्वर के ये गुण तत्त्वमीमांसीय गुण है।

कुरान मजीद व नवी करीम स0व0 की सही हदिसों में अल्लाह के 99 नाम हैं। जिनकों अस्मा व सिफात (शुभ नामों की विशेषता) कहा जाता है। अस्मा व सिफात पर उसी तरह इमान लाना आवश्यक है, जिस तरह साबित हैं। अल्लाह तआ़ला के गुणों के लिए जो अहकाम साबित होते है उन पर भी इमान लाना आवश्यक है, **जैसे ''अर्रहमान''और ''अर्रहीम'' अल–मालिक (अन्नत भगवान) अल–कुद्दूस (सबसे पवित्र) अल–जब्बार (सर्वव्यापी)** आदि अल्लाह की विशेषताएँ हैं, तो यह ईमान रखना होगा कि अल्लाह बड़ा कृपा करने वाला और दया करने वाला है, जिसे हर चीज़ का ज्ञान है।

अल्लाह के अस्मा व सिफात का वर्णन **कुरान 7/180** में भी प्राप्त होता है–**व लिल्लाहिल्– अस्माउल्–हुस्ना फ़द्अूहु बिहा व जरूल्लज़–न युल्हिदू–न फ़ी अस्माइही !** ''और सबसे खूबसूरत नाम अल्लाह के हैं तुम

उन्हीं सुन्दर नामों के द्वारा उसे पुकारो और उन लोगों का साथ छोड़ दो जो उनके नामों के सम्बन्ध में अविश्वास और अस्वीकार करते हैं उसका बदला वह पाकर रहेंगे।

अल्लाह का सर्वश्रेष्ठ सुन्दर नाम है– **ला इल्लाहु ला इल्लाहुवा !** यानी वह बहतरीन सिफात (गुण) का मालिक है।

सर्वशक्तिमान–ब्रह्म जिसको कुरान में अल्लाह, जब्बार व रहीम आदि नामों से जाना जाता है। वह अल्लाह दुनिया के सभी धर्मो व दर्शनों में अत्यिन्त सर्वशक्तिशाली, माना गया है। मनुष्य आदि काल से ही अपने उपास्यव इष्ट देवता को अत्यधिक शक्तिशाली मानता रहा है, और उस की इसी शक्ति के कारण वह उसकी पूजा करता है।[3] इसका कारण सम्भवतः यह हो सकता है, कि भक्त जनों में पहले बहुदेवप्रथा थी। अर्थात् संसार के एक कार्य को करने वाला एक ही देवता होता है और दूसरे कार्य को करने वाला दूसरा देवता होता है। इस प्रकार प्रत्येक कार्य को करने वाला देवता भी भिन्न होता है। जब एक कार्य को एक ही देवता करता है तो, इसलिए उसके लिए अत्यन्त शक्तिशाली होना अनिवार्य नहीं हैं। परन्तु जब बहुदेववाद के स्थान पर एकदेववाद के सिद्धान्त का उदय हुआ तो मनुष्य अनेक देवताओं के स्थान पर एक देवता की पूजा करने लगा और उस को एक ही देवता इष्ट हो गया। इस स्थिती में इस देवता का अत्यिन्त शक्तिशाली होना भी अनिवार्य हो गया था। इस कारण एकेश्वरवाद का ईश्वर अत्यिन्त शक्तिशाली है। कुरान अल्लाह की शक्तियों का वर्णन करते हुए कहता है कि–

कुरान 40/68 वही है जो जीवन और मृत्यु देता है। सारे संसार के रव के उसके आगे नतमस्तक हो जाओ।

ऋग्वेद, प्रजापति सूक्त, मन्त्र 2

य आत्मा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवा।
यस्यच्छायामृतमं यस्य मृत्युः कस्मै देचाय हविष विधेम।।

अनुवाद– जो प्राण का देने वाला तथा बल प्रदान करने वाला है। जिसके आदेश को सभी स्वीकार करते हैं, जिसके आदेश का देवता पालन करते हैं, जिसकी छाया अमृत्व और जिसकी छाया मृत्यु है। ऐसे देवता को छोड़कर किसकी पूजा करोगे।

श्रीमद्भागवत **गीता 11/43** में ईश्वर का अत्यन्त शक्ति शाली होना अर्जुन के इस कथन से प्रमाणित होता है–

पितासि लोकस्य चराचरस्य त्वमस्य पूज्यश्च गुरूर्गरीयान्।
न त्वमसमोऽस्त्यभ्यधिकः कुतोऽन्योलोकत्रयेऽप्यप्रतिमभप्रभाव।।

अनुवाद–आप इस चराचर जगत् के पिता अज्ञेर सबसे बडे गुरू एवं अतिपूजनीय हैं, हे अनुपम प्रभाव वाले तीनों लाके में आपके समान भी दूसरा कोई नहीं है, फिर अधिक तो कैसे हो सकता है। यहॉ पर भगवान की उपमा पिता और गुरू से दी गई है। घर में पिता ही वास्तव में सब से अधिक

शक्तिशाली होता है। वह घर को सभालता है, और घर का कोई भी सदस्य उसकस समकक्ष नहीं होता क्योंकि घर के सभी सदस्यों की याचना व जरूरतों को पिता ही दूर करता है। इस कारण भगवान पिता के रूप में वर्णित किया गया है।

सर्वशक्तिमान अल्लाह का वर्णन **कुरान 40/64** में इस प्रकार प्राप्त होता है– अल्लाह ही है जिसने तुम्हारे लिए धरती को ठहरने का स्थान बनाया और आकाश को एक भवन के रूप में बनाया, और तुम्हें रूप दिया तो क्या ही अच्छे दिए, और तुम्हें अच्छी पाक चिज़ों की रोजी दी। वह है इल्लाह, तुम्हारा रब। वह तो बड़ी बरकत वाला है अल्लाह, सारे संसार का रब। यानी तुम्हारे पैदा करने से पहले तुम्हारे लिए इस कदर सुरक्षित और पूर्ण सन्तुष्टी के सामान को बनाया। फिर तुम्हें पैदा किया तो इस तरह की, एक अति श्रेष्ठ शरीर बनाया, अंग बनाऐ और उत्तम किस्म के भोजन का भी प्रबन्ध किया था। **कुरान 112/1–4 कुल् हुवल्लाहु अ–हद, अल्लाहुस़्स़–मद, लम् यलिद् व लम् यूलद्, व लम् यकल्लहू कुफ़वन् अ–हद!**
के अनुसार वह अल्लाह है जो अल्लाह निरपेक्ष और सर्वाधार है, वह न तो किसी से पैदा हुआ है, और न किसी को पैदा करता है, और कोई उसका समकक्ष नहीं है।

कुरान में खुदा को पिता तो नहीं किया गया है, परन्तु यह अवश्य वर्णित किया गया है कि वह अत्यन्त शक्तिशाली है कोई उसके समकक्ष नहीं है। **गीता 10/3 में** श्रीकृष्ण भी अपने को अजन्मा ही वर्णित करते हुए कहते हैं–

यो मामजमनादिं च वेत्ति लोकमहेश्वरम्।
असम्मूढः स मर्त्येषु सर्वपापैः प्रमुच्यते।।

अनुवाद– जो मुझको अजन्मा अर्थात् वास्तव में जन्मरहित, अनादि और लोकों का महान ईश्वर तत्तव से जानता है, वह मनुष्यों में ज्ञानवान् सम्पूर्ण पापों से मुक्त हो जाता है। कुरान के एक अन्य सूरहे **अल–इमरान आयत संख्या 2 अल्लहु लआ इला–ह इल्ला हु – वल्हय्युल्क्य्यूम !** वर्णन प्राप्त होता है कि– अल्लाह ही पूज्य है, इस के सिवा कोई पूज्य नहीं है। वह जीवन्त है, सबको सम्भालने और कायम रखने वाला है। कुरान के अनुसार ही ऋग्वेद में भी कुछ इसी प्रकार का वर्णन प्राप्त होता है।

ऋग्वेद, प्रजापति सूक्त, मन्त्र 1

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्यजातः पतिरेक आसीत्।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम।।

अनुवाद– सर्वप्रथम रौशनी (नूर) उत्पन्न हुई। वह नूर पैदा होते ही सम्पूर्ण कायनात का स्वामी बन गया। उसने विस्तृत द्युलोक को और इस पृथ्वी को धारण किया ऐसे खुदा को छोड़कर किस खुदा की पूजा करें।
कुरान में अल्लाह के अजन्में

अपनी (वातिन) छुपी हुई शक्ति का वर्णन करते हुए श्रीकृष्ण अजुर्न को उपदेश देते हैं **गीता 11/47**

मया प्रसन्नेन तवार्जुनेदंरूपं परं दर्शितमात्मयोगात्।
तेजोमयं विश्वमनन्तमाद्यंयन्मे त्वदन्येन न दृष्टपूर्वम्।।

अनुवाद– हे अर्जुन अनुग्रह पूर्वक मैनें अपनी योग शक्ति के प्रभाव से यह मेरा परम तेजोमय, सभी का आदि और सीमारहित विराट रूप तुझ को दिखाया है। जिसे तेरे अतिरिक्त दूसरे किसी ने पहले नहीं देखा।

कुरान 13/12 में अल्लाह अपनी शक्ति व्यान करते हुए कहते है कि– **हुवल्लज़ी युरीकुमुल्बर–क़ खौफ़व–व त़–म–अं व–व युन्शिउ्स – सह़ाबस्–सिक़ाल !** ''वही है जो भय और आशा के निमित्त तुम्हें बिजली की चमक दिखाता है, और बोझिल बादलों को उठाता है। और इतना ही नहीं वह इतना शक्तिशाली है कि वह कयामत के दिन का मालिक भी है। **कुरान 1/3 मालिकि यौमिद्दीन !** ''वह इन्साफ (कयामत) के दिन का स्वामी है।

सर्वव्यापकता–ईश्वर जगत् में सवर्त्र व्याप्त है। बहुदेववाद के सिद्धान्त के अनुरूप सभी देवताओं का कार्यक्षेत्र व्यापक नहीं था। क्योंकि सभी देवता किसी एक कार्य विशेष के देवता हुआ करते थे। इस कारण इनका कार्यक्षेत्र भी सीमित ही होता था। परन्तु जब बहुदेववाद के स्थान पर एकदेववाद ने स्थान लिया तो देवता का शक्तिशाली होने के साथ साथ उसका कार्यक्षेत्र भी व्यापक हो गया। इस कारण सम्पूर्ण ब्रह्मांड में यत्र तत्र सर्वत्र ईश्वर का अस्त्तित्व माना जाने लगा। अर्थात् इस सम्पूर्ण सृष्टि में ऐसा कोई स्थान नहीं है, जहा पर ईश्वर उपस्थित नहीं है। प्रकृति के कण कण में शिव विद्यमान है।

श्रीमद्भागवत गीता 6/30 में श्रीकृष्ण अर्जुन को उपदेश देते हुए कहते है कि–

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणष्यामि स च मे न प्रणष्यति।।

अनुवाद– जो पुरूष सम्पूर्ण भूतों में सभी के आत्मरूप मुझ वासुदेव को ही व्यापक देखता है, और सम्पूर्ण भूतों को इस वासुदेव के अन्तर्गत देखता है उसके लिए में अदृश्य नहीं होता।

सर्वभूतस्थितं यो मां भजत्येकत्वमास्थितः।
सर्वथा वर्तमानोऽपि स योगी मयि वर्तते।।

अनुवाद– जो पुरूष एकीभाव में स्थित होकर सम्पूर्ण भूतों में आत्म रूप से स्थित मुझ सच्चिदानन्घन वासुदेव को भजता है, वह यागी यब प्रकार से बरतता हुआ भी मुझ मैं ही बरतता है।

कुरान 19/64 में भी सभी भूतों में स्थित होने का वर्णन प्राप्त होता है– जो कुछ हमारे आगे है और जो कुछ हमारे पिछे है और जो कुछ इस के मध्य में है सब उसी का है, और तुम्हारा रब भूलने वाला नहीं है।

श्रीकृष्ण अपनी सर्वव्यापक शक्ति के सन्दर्भ में **गीता 9/6** में कहते हैं कि

यथाकाशस्थितो नित्यं वायुः सर्वत्रगो महान्।
तथा सर्वाणि भूतानि मत्स्थानीत्युपधरय।।

अनुवाद– जैसे आकाश से उत्पन्न सर्वत्र विचरने वाला महान् वायु आकाश में ही स्थित है। वैसे ही मेरे संकल्पों[4] द्वारा उत्पन्न होने से सम्पूर्ण भूत मुझ में स्थित हैं, ऐसा जान।

श्रीकृष्ण अपने तेज और क्षेत्र का वर्णन करते हुए गीता 15/12 दूसरे श्लोक में कहते हैं कि–

यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलम्।
यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विधिमामकम्।।

अनुवाद– सूर्य में स्थित जो तेज़ सम्पूर्ण जगत् को प्रकाशित करता है, तथा जो चन्द्रमा में है, और जो अग्नि में है, इसको तू मेरा ही तेज़ जान।

अल्लाहुनूरूस्समावाति वल्अर्ज़ि, म सलु नूरिही –– कुरान 24/35 अल्लाह आकाशों और धरती का प्रकाश है। मोमिन के दिल में उस प्रकाश की मिसाल ऐसी है जैसे एक ताक़ है, जिस में एक चिराग है वह चिराग वह चिराग एक फानूस में है मानों चमकता हुआ कोई तारा या चॉद।

श्वेताश्वरोपनिषद् अध्याय 6, मन्त्र 14
तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति।।

अनुवाद–उसके प्रकाशित होने पर ही उसी के प्रकाश से यह सम्पूर्ण जगत् प्रकाशित होता है।

गीता 10/41 में श्रीकृष्ण ने इस सन्दर्भ में बार बार कहा है कि–

यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा।
तत्तदेवाबगच्छ त्वं मम तेजोंऽशसम्भवम्।।

अनुवाद– जो–जो विभूतियुक्त अर्थात् ऐश्वर्ययुक्त, कान्तियुक्त और शक्ति युक्त वस्तु है, उस उस को तू मेरे तेज़ के अंश की ही अभिव्यक्ति जान। हे धनंजय मुझ से भिन्न दूसरा कोई भी परम कारण नहीं है। यह सम्पूर्ण जगत् सूत्र में सूत्र के मुनियों के सदृश मुझ में छुपा हुआ है।

सर्वज्ञ–संसार के सभी धर्मों में ईश्वर को सर्वज्ञ कहा गया है, कि ईश्वर प्रकृति के एक सूक्ष्म कण के अन्दर भी जो छिपा हुआ है, अल्लाह उस सभी को जानता है। ईश्वर की सर्वज्ञता का अर्थ यह है कि उसे सम्पूर्ण जगत् अर्थात् सभी भौतिक वस्तुओं, पेड पौधों तथा प्राणियों और भूत, वर्तमान एवं भविष्य की समस्त घटनाओं का भी पूर्ण ज्ञान है। इस जगत् में ऐसी कोई वस्तु और घटना नहीं है। जिसे ईरूवर पूर्ण रूप से न जानता हो।

मनुष्य के पास सीमित ज्ञान है और ईश्वर असीमित ज्ञान का स्वामी है। मनुष्य अपना ज्ञान ज्ञानेन्द्रियों व तर्क के माध्यम द्वारा प्राप्त करता है, और ईश्वर को किसी माध्यम की आवश्यकता नहीं होती है। ईश्वर ने सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की रचना की और उस में व्याप्त भी है। इस कारण उसे अपने बनाए हुए सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का ज्ञान भी है। इस कारण ईश्वर का सर्वज्ञ होना अनिवार्य है।

अल्लाह ने **कुरान 10/1** में कुरान को अपनी किताब होने का दाबा और स्वयं को सर्वज्ञ होने का वर्णन इस प्रकार किया है–**अलिफ, लाम, मीम, तिल्–क आतुल्–किताबिल्–हकीम !**। ये तत्त्वदर्शितायुक्त किताब की आयते हैं। यहॉ पर अल्लाह अपनी किताब को तत्त्वदर्शी कहने का उद्देश्य यह है कि इस किताब का मालिक स्वयं भी तत्त्वदर्शी है।

श्रीकृष्ण अपने ज्ञान के सन्दर्भ में **गीता 7/26** उपदेश देते हैं कि–

वेदाहं समतीतानि वर्तमानानि चार्जुन।
भविष्याणी च भूतानि मां तु वेद न कश्चन।।

अनुवाद– हे अर्जुन! पूर्व में व्यतीत हुए और वर्तमान में स्थित तथा आगे होने वाले सब भूतों को मैं जानता हूँ , परन्तु मुझ को कोई भी श्रद्धा से नहीं जानता।

''अल्लाह लोगों के लिए उदाहरण प्रस्तुत करता है। अल्लाह तो हर चीज़ को जानता है।'' **कुरान 40/16** जिस दिन वे खुले रूप में उपस्थित होंगे उन की कोई चीज अल्लाह से छिपी नहीं रहेगी। आज किसकी बादशाही है। अल्लाह की जो अकेला सब पर क़ाबू रखने वाला है। **कुरान 6/3** वही अल्लाह है, आकाशों में भी और धरती में भी वह तुम्हारी छिपी और तुम्हारी खुली बातों को जानता है। और जो कुछ तुम कमाते हो वह उस से भी अवगत है।

नित्यता–ईश्वर के गुणों की एक विशेषता यह भी है कि नित्य एवं शाश्वत हैं। ईश्वर की नित्यता का अर्थ यह है कि– ईश्वर शाश्वत, अनश्वर, अपरिवर्तनशील, अनादि तथा अनन्त है। इस जगत् में सभी वस्तुएँ परिवर्तनशील तथा नश्वर हैं। किसी न किसी समय व स्थान से ही उनका आदि और अन्त होता है। परन्तु ईश्वर की सत्ता समस्त सांसारिक वस्तुओं के अस्तित्व से भिन्न है। ईश्वर का न तो आदि है और न अन्त है। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का मूल कारण ईश्वर ही है। इस संसार में ऐसी कोई वस्तु नहीं है जिसका आदि कारण और अन्तिम कारण ईश्वर न हो, इस कारण कहा जाता है कि ईश्वर नित्य है।

ईश्वर की नित्यता का एक दूसरा पक्ष यह भी है कि–ईश्वर को समय की सीमा रेखा से नहीं बान्ध सकते। ईश्वर समय की हदों से बाहर की चीज़ है। यदि ईश्वर को भी इसी काल के अर्न्तगत् मानते हैं तो ईश्वर स्वयं भी किसी से उत्पन्न माना जाएगा। किसी से उत्पन्न होने वाली वस्तु शाश्वत नहीं हो सकती।

अपनी नित्यता का वर्णन **कुरान 40/65** में अल्लाह ने इस प्रकार किया है– वह जीवन्त है। उस के सिवा कोई पूज्य प्रभु नहीं है।

गीता 8/16 में श्रीकृष्ण अपनी नित्यता का वर्णन करते हुए कहते हैं कि–

आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन।
मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते।।

अनुवाद– हे अर्जुन! ब्रह्मलोकपर्यन्त सब लोक पुनरावर्ती हैं, परन्तु हे कुन्ती पुत्र ! तुझ को प्राप्त होकर पुनर्जन्म नहीं होता। क्योंकि मैं काल अतीत हूँ और ये सब ब्रह्मादि के लोक काल के द्वारा सीमित होने से अनित्य हैं।

श्रीकृष्ण **गीता 2/12** में अपनी नित्यता का वर्णन करते हुए कहते हैं कि–

न त्वेवाहं जातु नासं न त्वं नेमे जनाधिपाः ।
न चैव न भविष्यामः सर्वे वयमतः परम् ।।

अनुवाद– न तो ऐसा ही है कि मैं किसी काल में नहीं था, तू नहीं था अथवा ये राजा लोग नहीं थे और न ऐसा ही है कि इससें आगे हम सब नहीं होंगे।

श्रीकृष्ण अपनी प्रकृति का वर्णन करते हुए कहते हैं–

सर्वभूतानि कौन्तेय प्रकृतिं यान्ति मामिकाम्।
कल्पक्षये पुनस्तानि कल्पादौ विसृजाम्यहम्।।

अनुवाद– हे अर्जुन कल्पों के अन्त में सब भूत मेरी प्रकृति को प्राप्त होते हैं अर्थात् प्रकृति में लीन होते हैं, और कल्पों के आदि में इनको मैं फिर रचता हूँ।

इसी सन्दर्भ में **कुरान 55/26–27** का कथन है **कि –कुल्लु मन अ़लैहा फ़ानिंव्, व यब्क़ा वज्हु रब्बि–क जुल्जलाली वल–इक्रामी !** ''हर कोई जो भी ज़मीन पर है, फ़ना होने वाला है। और आप के रब की ज़ात बाकि रहेगी जो साहब–ए–अज़मत व चलाल और इनआ़म व अकरम है।

असीमित–सभी ईश्वरवादी धर्म व दर्शन ईश्वर के स्वरूप को असीमित मानते हैं। क्योंकि ईश्वर को सीमित कर देने से इस के ईश्वरत्व में कमी आ जाएगी। संसार की प्रत्येक वस्तुओं की सीमित सीमाएँ हैं। परन्तु ईश्वर की सिमाएँ सीमित नहीं हैं, यदि ईश्वर की सिमाएँ भी सीमित मान ली जाए तो ईश्वर में अनावस्था दोष हो जाएगा।

ईश्वर की इस असीमता की व्याख्या करते है कि ''हम वस्तुतः ईश्वर के सम्बन्ध में 'अस्तित्व' शब्द का प्रयोग नहीं कर सकते। क्योंकि किसी वस्तु के अस्तित्व की बात करने का अर्थ है कि उसे अनिवार्यतः सीमित करना है।

श्रीकृष्ण अपने स्वरूप का वर्णन करते हुए अर्जुन से कहते है कि **गीता, अध्याय 10/30**

नान्तोऽस्मि मम दिव्यानां विभूतीनां परन्तप।
एष तूद्देशतः प्रोक्तो विभूतेर्विवस्तरो मया।।

अनुवाद– हे परंतप! मेरी दिव्य विभूतियों का अन्त नहीं है, तैनें अपनी विभूतियों का यह विस्तार तो तेरे लिए एक देश से अर्थात् संक्षेप में कहा है।

श्रीकृष्ण अपने असीमित रूप का वर्णन **गीता 2/13** में इस प्रकार करते हैं–

अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः।
अहमादिश्च मध्ं च भूतानामन्त एव च।

अनुवाद– हे अर्जुन! मैं सभी भूतों के हृदय में स्थित सबका आत्मा हूँ तथा सम्पूर्ण भूतों का आदि, मध्य और अन्त भी मैं ही हूँ। एक अन्य श्लोक के अनुसार –**गीता 9/4** में श्रीकृष्ण अपने असीमित अस्तित्व के सम्बन्ध में कथन करते है कि–

मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना।
मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाहं तेष्ववस्थितः।।

अनुवाद– मुझे निराकार परमात्मा से यह सब जगत् जल से बर्फ के सदृश परिपूर्ण है। और सब भूत मेरे अर्न्तगत संकल्प के आधार स्थित हैं, किन्तु वास्तव में मैं उनमें स्थित नहीं हूँ।

अल्लाह असीमित है कुरान में ये जिक्र इस प्रकार है– **कुरान 43/84 व तबार–कल्लज़ी लहू मुल्कुस्समावाती वल्अर्ज़ि व मा बैनाहुमा, व अ़िन्दहू अ़िल्मुस्साअ़ति, व इलैहि तुर्जऊन !** ''वही है जो आकाशों में भी पूज्य है, और धरती में भी पूज्य है। और वह तत्तवदर्शी सर्वज्ञ है।''

कुरान 10/3 ''निसन्देह तुम्हारा रब वही अल्लाह है जिसने आकाशों और धरती को छः दिनों में पैदा किया, फिर सिंहासन पर विराजमान होकर व्यवस्था चला रहा है। उस की अनुज्ञा के बिना कोई सिफारिश करने वाला भी नहीं है। वह अल्लाह है तुम्हारा रब अतः उसकी बन्दगी करो। ईश्वर के असीमित होने का वर्णन एक अन्य आयात में भी इस प्रकार है–**कुरान 10/5 हु–वल्लज़ी ज–अ–लश्शम्–स ज़ियाअंव्वल्क़–म–र नूरंव्–व क़द्–द–रहू मनाज़ि–ल लितुअु–लमू अ़–द–दस्सिनी–न वल्हिसा–ब** ––वही तो है जिसने सूरज को रोशन और चॉद को मुनव्वर (नूर) बनाया और चॉद की मन्ज़िलें मुकर्रर की, ताकी तुम वर्षो की गणना करो ––

गीता 9/6 जैसे आकाश से उत्पन्न सर्वत्र विचरने वाला महान वायु सदा आकाश में ही स्थित है, वैसे ही मेरे संकल्प द्वारा उत्पन्न होने से सम्पूर्ण भूत मुझ में स्थित है ऐसा जान।

श्रीमदभागवतगीता 9/7 मैं अपने जन्म के सन्दर्भ में अर्जुन का कथन ''अर्जुन कल्पों के अन्त में सब भूत मेरी प्रकृति को प्राप्त होते हैं अथार्त् प्रकृति में लीन होते हैं और कल्प के आदि में उनको मैं फिर रचता हूँ।

कुरान 7/54 अल्लाह ने छः दिनों में धरती और आकाश को पैदा किया। अल्लाह की समय सीमा रेखा कुछ अन्य ही है जो हम नहीं जानते। श्रीमदभागवद्बीता में भी इस प्रकार का एक श्लोक वर्णित है। (10/3 में भी इस प्रकार का वर्णन है)

गीता के 8/17 अनुसार ब्रह्मा का जो एक दिन है, उसको एक हज़ार चतुर्युगीतक का अवधि वाला और रात्री भी एक हजार एक हज़ार चतुर्युगीतक अविध वाला जो पुरूष तत्त्व से जानते हैं। वे योगिजन काल के तत्त्व को जानने वाला है।

तत्त्वमीमांसीय गुण के अतिरिक्त ईश्वर के नैतिक गुण भी हैं। ईश्वरवादी दर्शनों में ईश्वर को निर्गुण अर्थात् निराकारी न मानकर सगुण

और व्यक्ति सम्पन्न मानते हैं। इस शोद्यपत्र में इन विषेशताओं पर अतिदीर्घ होने के कारण प्रकाश नहीं डाला जायगा।

आधुनिक सभी आस्तिक और नास्तिक धर्म व दर्शनों में ईश्वर के असित्त्व व गुण के सन्दर्भो में अनेक प्रश्न चिन्ह लगते रहे हैं। जैसे यदि ईश्वर सर्वशक्तिमान मान भी लें तो क्या ईश्वर आत्महत्या का सकता है, क्या वह असत्य को सत्य सावित कर सकता है, क्या वह पाप भी करता है और क्या वह इतना बड़ा पत्थर बना सकता है, जिसे वह स्वयं उठाने में समर्थ्य न हो। सर्वव्यापकता के सन्दर्भ में इस प्रकार के जटिल प्रश्न होते हैं। ईश्वर सर्वव्याप्त है। जैसा की कहा जाता है कि ईश्वर प्रकृति के कण कण में व्याप्त है। इस विचार धारा के अनुसार भक्त (मनुष्य) में भी ईश्वर व्याप्त है, तो ईश्वर और भक्त अभिन्न होते हैं। ईश्वर और भक्त को अभिन्न मान लिया जाए तो ईरूवर की उपासना भी नहीं की जा सकती है, क्योंकि उपसना करने के कारण ईश्वर के साथ साथ ईश्वर भी उपास्य होकर सर्वशक्तिमान हो जाएगा। ईश्वर को सर्वव्याप्य मान लेने पर भक्त और ईश्वर का भेद समाप्त हो जाता है।एक अन्य कारण भी है कि क्या ईश्वर निकृष्ट, कुरूप, निन्दनीय तथा घृणास्पद वस्तुओं में भी विद्यमान है। ईश्वरवादी दर्शनों में ईश्वर को नित्य, शाश्वत और असीमित भी माना जाता है। संसार की प्रत्येक वस्तु में ईश्वर व्याप्त है, और प्रत्येक वस्तु परिवर्तनशील है तो ईश्वर भी परिवर्तनशील ही माना जायगा। परन्तु जो न्त्यि औा शाश्वत है तो वह परिवर्तनशीन कैसे हो सकता है, और यदि ईश्वर अपरिवर्तनशील है तो वह तो वह संसार की परिवर्तनशील सत्ताओं में कैसे व्याप्त हो सकता है। इस प्रकार के प्रश्नों का युक्तिसंगत एवं सन्तोषप्रद समाधान सम्भव प्रतीत नहीं हो सकता।

इस प्रकार के प्रश्न दार्शनिको के ही नहीं अपितु हज़रत मौहम्मद स0 व0 के समय में भी मुश्रिक किया करते थे। जैसे **सूरहे यासीन की आयत 47** में कुरान का कथन है कि '' और जब उन से कहा जाता है, कि अल्लाह ने तुम्हें जो राजी दी है उसमें से खर्च करो, तो अहले कुफ्र ईमान वालों से कहते है कि क्या हम उन्हें खिलायें कजसे यदि अल्लाह चाहता तो अवश्य खिलाता तुम लो तो खुली गुमराही में पडे और तक्का के काफिर मुसल्मानों से कहते हैं, कि यदि तुम लोग सच्चे हो तो, बताओं कि कयामत का वादा तुम्हारा अल्लाह कब पूरा करेगा।

इस सन्दर्भ में हसन वसरी कहते हैं कि[5] **यासीन, आयत 47** में **लिल्लज़ी–न आमनू अ–नुत्अिमु मल्लौ यशाउल्लाहु––**से मुराद यहूदी हैं, जिन्हें अल्लाह ने माल व दौलत दी थी जब उन से कहा जाता था कि मदीने के गरीबों व मौताजों पर खर्च (ज़कात) किया करो तो वह कहते हैं कि क्या हम उन्हें खिलायें जिन्हे अल्लाह चाहता तो खिलाता यह तो स्पष्ट गुमराही में हम से अल्लाह की ईच्छा के विरूद्व करने को कहा जा रहा ळे ।

उपर्युक्त प्रश्नों के उत्तर में के सन्दर्भ में मुफ़स्सिरीन (टीकाकार) लिखते हैं कि सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापक, सर्वज्ञ और असीमित अल्लाह कि सिफात के बारे में इस प्रकार के प्रश्न आधुनिक नहीं हैं, इस प्रकार के प्रश्न हज़रत मौहम्मद स0 व0 के समय में भी मुश्रिक मुसल्मानों का मज़ाक उडाने के लिए किया करते थे। मदिने के मुश्रिक कहा करते थे कि ''तुम लो जो कयामत, जन्नत और दोजख की बात किया करते हो हम को धमकियॉ देते हो, वह कयामत कब आऐगी।

सन्दर्भ :

1. चिश्ती, सलीम,, तारीख–ए–तसव्वुफ़, पृ. 214.
2. वर्मा, वेद प्रकाश, धर्म दर्शन की मूल समस्याऍ, पृ. 145.
3. वर्मा, वेद प्रकाश, धर्म दर्शन की मूल समस्याऍ, पृ. 145.
4. कुरान में भी सूरेह यासीन आयात 83 में भी अल्लाह की इच्छा शक्ति से इस कायनात के बनने का जिक्र प्राप्त होता है। ''उस का मामला तो बस यह है कि ज बवह किसी चिज़ के पैदा करने का इरादा रखता है तो दस से कहता है, हो जा ! और वह हो जाती है।
5. कुरान, अनुवादक, फतह मुहम्मद खा जालन्दरी, पृ. 1324.

***

डॉ. भीमराव अम्बेडकर : राष्ट्रवाद के प्रति दृष्टिकोण

*डॉ. मयंक कुशवाहा**

प्रस्तावना – डॉ. भीमराव रामजी अम्बेडकर का जन्म 1890 ईसवी में एक अत्यन्त गरीब परिवार में महाराष्ट्र में हुआ था। वह स्वतन्त्र भारत के संविधान क॓जनक व सामाजिक न्याय की स्थापना में अपना अभूतपूर्व योगदान देने वाले एक मानवतावादी विचारक थे। वह एक दलित नेता या भारत के शोषित लोगों के ही नेता नही थें, वरन् उनकी विद्वता, उनका जन–आन्दोलन, सरकार और उसके सरकार और उसके बाहर उनकी भूमिका उनके राष्ट्रीय व्यक्तित्व से हमारा परिचय कराती है। वास्तव में उनके विचार सैद्धांतिक कम व्यवहारिक अधिक थे। डा. अम्बेडकर ने राष्ट्र को सबल बनाने एवं हिन्दू समाज को सुधारने के लिए राजनितिक प्रयासो को आवश्यक माना था। वह भारत को एक सेकुलर राजनीतिक व्यवस्था के तौर पर स्थापित करना चाहते थे और यही कारण था की भारत में हिन्दू – मुस्लिम की साम्प्रदायिकता की समस्या का समाधान चाहते थें। परन्तु अक्सर उनके राष्ट्रवादी उठने पर सवाल नजर आते है। उनपर यह आरोप लगाया जाता है कि स्वतंत्रता आन्दोलनों की असफलता पर वह प्रसन्नता जताते थे। अम्बेडकर ने 1942 के भारत छोड़ो आन्दोलन मे हिस्सा नही लिया और न ही वे गांधी, नेहरू व अन्य स्वतन्त्रता सेनानियों के समान जेल ही गये, लेकिन उनके आलोचक इस बात से अवश्य ही सहमत होने चाहिए कि स्वतन्त्रता एक बहु आयामी विचार हैः जिसमें आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक व सामाजिक सभी प्रकार की स्वतंन्त्रतायें विद्यमान है। डा. भीमराव अम्बेडकर न कभी भी भारत की राजनीतिक आजादी का विरोध नही किया। वह भी अन्य लोगों की भाँति स्वतंन्त्र राष्ट्र का स्वतंत्र नागरिक बनना चाहते थे, परन्तु राजनीतिक स्वतंत्रता के साथ वह सामाजिक स्वतन्त्रता का भी आहवान करते थे और सदियों से हिन्दू धर्म की जंजीरों से जकड़े शोषित वर्ग को आजादी दिलाना चाहते थे। अम्बेडकर ने गोलमेज सम्मेलन 1931–32 के दौरान कहा था ''हमारा उद्देश्य व्यावहारिक तौर पर आजाद होना है, हमारा राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक हर पथ पर एक मानव एक मूल्य का है।''

डॉ. अम्बेडकर व स्वतन्त्रता आन्दोलन : यह सत्य है कि अम्बेडकर ने गांधी, नेहरू व कांग्रेस के साथ मिलकर स्वतन्त्रता आन्दोलन मे अपनी प्रतिभागी नही दर्ज करायी। परन्तु यह भी सत्य है कि ऐसे कई लोग थे जिन्होनें अपनी विचारधारा या समूह से जुडें ही अपने–अपने स्तर पर स्वतंत्रता आन्दोलन में अपना योगदान सुनिश्चित किया था, डॉ. अम्बेडकर उन्ही में से एक थें। डॉ. अम्बेडकर और गांधी जी व कांग्रेस के विरोधियों मे गिने जाते है यही कारण था कि इन आन्दोलन में वह उनके विरूद्ध रहे। वह कांग्रेस को सवर्णो के समूह के तौर पर मान्यता देते थें और स्व–शासित भारत को

* समाजशास्त्र विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

जातिवाद से बचाना चाहते थे इसलिए अपने आप को शोषित वर्गों के आन्दोलन तक सिमित रखा व स्वतन्त्रता आन्दोलन में भाग नही लिया। लेकिन यह भी सत्य है कि स्वतंन्त्रता के आन्दोलन में उन्होने व्यक्तिगत स्वतंत्रता व समानता के विचार को महत्वपूर्ण व आवश्यक माना, और साथ ही पारम्परिक हिन्दू समाज की सामाजिक व धार्मिक व्यवस्था का घोर विरोध किया। उनके अनुसार राजनीतिक जीवन व राष्ट्रीय आन्दोलन जिस स्वतन्त्रता व समानता को महत्व देने पर बल दे रहा था वहीं सामाजिक व आर्थिक व्यवस्था उस आदर्श को एक बहुत बड़े वर्ग के लिए वंचित करती दिखाई देती थी। राजनीतिक गतिविधियो व कार्यक्रमों के बढ़ जाने से सामाजिक कुरितियों को समाप्त करने, अस्पृश्यता के निवारण, महिलाओं की स्थिति को सुधारने के प्रत्यक्ष प्रयास धीमे हो गये थे।ब्रिटिश सरकार के सामने राजनीतिक दल अपनी मांगे प्रस्तुत करने लगे थे। हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख और अन्य सम्बन्धित समूहों द्वारा ब्रिटिश सरकार के समक्ष अपनी समस्याओं को प्रस्तुत करने की प्रवृत्ति बढ़नें लगी थी। हिन्दू समाज में शूद्रों की दशा हर प्रकार से दयनीय थी तब डा. अम्बेडकर का सामाजिक सुधार आन्दोलन सभी अस्पृश्यों, शूद्रों व दलित समाज को जागृत करने में सफल होता गया। उन्होने सामाजिक न्याय के स्थापना के लिए सामाजिक आन्दोलन के जरिये राजनीतिक प्रभाव छोड़ा। इन्ही कारणों से राष्ट्रीय स्वयं सेवक के नेता व विचारक दत्तोपन्त ठेंगड़ी ने भी डॉ. आम्बेडकर को देशभक्त कहा था।''

डॉ. अम्बेडकर को राष्ट्र के उदय व उज्जवल भविष्य में अत्यधिक विश्वास था। वह जब भी भारत की स्वतंत्रता की बात करते थे, तब उनका लक्ष्य लोगों में एकता की स्थापना करना होता था। उन्ही के शब्दों में ''अपने परम लक्ष्य की प्राप्ति के सम्बन्ध में हम में किसी को भी कोई भय या सन्देह नही है। हमारी वास्तविक समस्या परम लक्ष्य की प्राप्ति से सम्बन्धित नहीं, वरन् यह है कि कैसे विजातीय समूहों के मध्य एकता स्थापित की जाय, ताकि हम सभी सामान्य निर्णय लें व सहयोग के पथ पर कदम ताल करते हुए एकता की स्थापना करें।

डॉ. अम्बेडकर ने अपने 55वें जन्म दिवस के बधाई समारोह के अवसर पर स्पष्ट कहा था, ''मैं अपने राष्ट्र में रहने वाले लोगों के प्रति निष्ठा की भावना रखता हूँ। मुझे कोई सन्देह नहीं कि आप भी ऐसा ही सोचते होंगे। हम सभी इस देश की स्वतन्त्रता चाहते है। इस लक्ष्य के सम्बन्ध में मेरा यह विचार है ि कइस देश को स्वतन्त्रता प्राप्ति में कोई बड़ी मुश्किल नहीं आयेगी।'' अम्बेडकर के उपरोक्त विचारों के से स्पष्ट है कि वह राष्ट्र की स्वतन्त्रता या राष्ट्रवाद के विरूद्ध नहीं थे, वरन् कांग्रेस के राष्ट्रवादी संस्करण के विरूद्ध थे। उनके अनुसार कांग्रेस भारत को ब्रिटेन के उपनिवेश को नहीं बनाये रखना चाहती थी और भारत की स्वतन्त्रता के लिए तत्पर नहीं था, जो सैकड़ो वर्षो से ब्राह्मणवादी साम्राज्यवाद का शिकार थे। कांग्रेस उनकी उनकी स्वतन्त्रता के लिए तत्पर नहीं थी। डॉ0 अम्बेडकर का यह आरोप कांग्रेस के लिए एक राजनीतिक चुनौती थी, इसी कारण कांग्रेस ने जातिवाद की समस्या को राष्ट्रीय महत्व के साथ जोड़कर देखा और भारतीय राष्ट्रवाद का सामाजिक आधार पर विस्तार एवं प्रसार किया।

उन्होंने राष्ट्र की स्वतन्त्रता व व्यक्ति की स्वतन्त्रता में भी भेद किया। उन्होनें इस बात पर जोर दिया कि लोगों की आजादी के बिना राष्ट्रवाद गरीबों, दलितों एवं शोषित लोगों के लिए आन्तरिक व घरेलु दासता का जरिया बन जायेगा। डॉ0 अम्बेडकर के अनुसार ''यह पूर्णतः गलत है कि हमारा पूरा ध्यान हमारे राज्य को राजनीतिक स्वतन्त्रता को प्राप्त करने में प्राप्त करने में लगा है और जबकि हम उससे भी अधिक जटिल व आवश्यक सामाजिक व आर्थिक स्वतन्त्रता को भूल गये है। यह सोचना आत्महतया करने जैसा है कि राजनीतिक स्वतन्त्रता आवश्यक रूप से अन्य स्वतन्त्रताएं प्रदान करेगी।''

डॉ. अम्बेडकर व राष्ट्रवाद : एक राष्ट्रवादी के रूप में डॉ. अम्बेडकर के विचार जानने के पूर्व राष्ट्रवाद की अवधारणा का सामान्य परिचय आवश्यक है। सामान्य तौर पर राष्ट्रवाद व्यक्ति का या तो जन्म से या विकल्प से देश के प्रति प्रेम या भक्ति–भावना है। वास्तव में जितने से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित है। राष्ट्रवाद एक ऐसा विश्वास है जो यह मानता है कि लोगों का वह समूह जिसमें सभी लोग समान इतिहास, परम्परा, भाषा और संस्कृति के आधार पर एक–दूसरे से जुड़े हुए है, तो उन्हें अपना एक प्रभुसत्ता–सम्पन्न राजनीतिक समुदाय ही राष्ट्र है। इसलिए राष्ट्र शब्द से तात्पर्य एक ऐसे राजनीतिक समुदाय से है, जिसके सदस्य नजदीकी रूप से एक–दूसरे से जुड़े हुए हों। साथ ही, इस राजनितिक समुदाय के सदस्यों का इतिहास भी एक ही होता है। अर्थात राष्ट्रवाद इस अवधारणा से सम्बन्धित है कि खुद को राष्ट्र के रूप में मानने वाले हर समुदाय के पास उसका राज्य होना चाहिये। हैन्स कोन के शब्दों में ''राष्ट्रवाद राष्ट्र राज्य की माँग करता है। राष्ट्र राज्य का निर्माण राष्ट्रवाद को मजबूत करता है।''

भारतीय अवधारणा राष्ट्रवाद का पश्चिमी शब्द 'नेशनलिज्म' का समानार्थी माना जाता है, लेकिन दोनों के अर्थ में अन्तर है। 'राष्ट्रवाद' शब्द नैतिकता व आध्यात्मिकता की अवधारणा पर आधारित है जबकि 'नेशनलिज्म' एक सांस्कृतिक अवधारणा है।'' कई भारतीय नेताओं गांधी, नेहरू, अरविन्दो, टैगोर, तिलक व दीनदयाल उपाध्याय ने भारतीय राष्ट्र वा राष्ट्रवाद के विचार की अपने तरीके से व्याख्या की। इसी प्रकार डॉ भीमराव अम्बेडकर को विकसित किया। वह भाषावाद, जातिवाद व सम्प्रदायवाद को भारत की मुख्य समस्याओं के तौर पर देखते थे एवं उनके विरूद्ध लड़ाई को आवश्यक मानते थे। डॉ. अम्बेडकर के अनुसार, ''जातिवाद, राष्ट्रवाद विरोधी विचार है। जातिवाद की भावना मानव की आत्मा को मार देती है, यह मानव को मानव के विरूद्ध करने वाली विचारधारा है तथा जनमत को बनने से रोकती है, यह नैतिकता के विरूद्ध है।

डॉ. अम्बेडकर भौगोलिक व राजनीतिक दृष्टि से भारत को एक इकाई समझते थे और वे स्वयं भी एक राष्ट्रवादी के समान ही सोचते थे। भारत में सन् 1922 के बाद जिस प्रकार स्वतन्त्रता आन्दोलन के साथ साथ हिन्दू–मुस्लिम साम्प्रदायिक तनाव, संघर्ष तनाव, भी बढ़ती जा रही थी और जब 1940 में मुस्लिम लीग के अधिवेशन में मुहम्मद अली जिन्ना ने मुसलमानों के लिए एक स्वतन्त्र राष्ट्र की मांग

प्रस्तुत की तब सभी भारतवासी को स्थायी व दूरगामी हितों को ध्यान मे रखकर डा. अम्बेडकर देश का विभाजन करने को पाकिस्तान व भारत दोनों के लिए एक व्यवहारिक तथा अपरिहार्य समाधान मानने लगे। इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि वह मुस्लिम लीग के समर्थक थे, पर वे उस समय की वास्तविक, राजनीतिक, सामाजिक व साम्प्रदायिक स्थितियों में मुस्लिम लीग से एक व्यावहारिक समझौता कर लेना, लम्बे समय तक अस्थिरता, अनिश्चित्ता और साम्प्रदायिक तनाव जारी रखने से बेहतर मानने लगे थे। उन्होनें अपनी अपनी पुस्तक में लिख था कि यदि भारत का विभाजन नहीं होता और भारत की सेना में मुस्लमानों की संख्या उतनी ही बनी रहती है तो भारत पर किसी मुस्लिम देश द्वारा भविष्य में संम्भावित आक्रमण होने पर भारत की सेना पूरी निष्ठा से काम नही करेगी। उनका मानना था कि यदि भारत में कोई आन्तरिक संघर्ष या साम्प्रदायिक दंगे होगें तो भारत स्वयं भी असाम्प्रदायिक व निष्ठावान नहीं रह पाएगी। डॉ. अम्बेडकर को यह भी लगता था कि भारत और पाकिस्तान ने दो अलग अलग राष्ट्र बन जाने से दोनों का विकास भी अधिक हो सकेगा। डॉ. अम्बेडकर को भारत की राष्ट्रीय व सामाजिक सुव्यवस्था और शान्ति को बनाये रखने के लिए भारत का विभाजन ही सबसे कम नुकसान पहुचाने वाला दिखाई देता था।

निष्कर्ष – डॉ. अम्बेडकर के उपरोक्त विचारो से स्पष्ट है कि न तो वे राष्ट्र विरोधी थे और न ही सिर्फ दलितों व शोषित वर्ग के नेता थे वरन् वह एक राष्ट्रीय नेता थे जो राष्ट्र के सर्वाधिक शोषित वर्ग की समस्याओं को न सिर्फ समझते थे, बल्कि उन्हें मुख्यधारा में लाना चाहते थे। उन्होंने भारतीय राष्ट्रवाद के विचार का सामाजिक आधार पर विस्तार करके न सिर्फ व्यक्तियों की स्वतन्त्रता प्राप्ति में योगदान दिया एवं इस विचार के आधार पर राष्ट्र के विकास का मार्ग भी प्रशस्त किया।

सन्दर्भ :

- अम्बेडकर, डॉ. भीमराव : ''राईटिंग्स एण्ड स्पीचिज'', वाल्यूम–2, 1982, पृ. 598–599.
- जाटव, डी.आर., : ''राष्ट्रीय आन्दोलन में डॉ. अम्बेडकर की भूमिका'', 1996
- पाण्डे, प्रीति : ''डॉ. अम्बेडकर और पं. दिनदयाल'', ए.बी.डी. पब्लिशर्स, जयपुर, 2006, पृ. 190–200
- अम्बेडकर, डॉ. भीमराव : ''थॉट्स ऑन लिंगुइस्टिक्स स्टेट्स'', 1955, पृ. 11.
- किर, धनन्जय : ''डा. अम्बेडकर्स लाइफ एण्ड मिशन'', पृ. 329.

***

शैवाल की कहानियों में प्रतिरोध के स्वर

नलिनी रंजन *

शैवाल आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य के एक प्रतिनिधि कथाकार हैं। वैसे तो इन्होंने हिन्दी साहित्य की सभी विधाओं को पल्लवित एवं पुण्यित किया है और इसमें उन्हें अद्‌भूत सफलता भी मिली है। किन्तु सच कहा जाए तो शैवाल मुख्य रूप से कहानीकार हैं, लेकिन सम्यक समय पर लिखी गई आलोचनाए, फिल्म समीक्षाएँ एवं व्यंग्य लेखन भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। कहानीकार अपनी कहानियों में व्यक्ति, समाज, देश और काल की ही चित्र खींचता है तथा चारो ओर फैले झूठ, फरेब और भ्रष्टाचार से परदा उठाकर समाज के उस हिस्से को पेश करते हैं जिसे लोग या तो स्वीकार करने से कतराते हैं या फिर ऐसा तो होता ही रहता है के अंदाज में नजरअंदाज कर देते हैं। यही कारण है कि सामाजिक अस्थिरता से जुड़ी इनकी कहानियाँ एक से बढ़कर एक कहानी महत्वपूर्ण हो उठी है।

शैवाल की कहानियों की यह सामान्य पृष्ठभूमि हैं यह और बात है कि इस वृहत्तर पृष्ठभूमियों में शैवाल का अपना संसार भी झांकता है। शैवाल अपनी शैली के निजत्व के कारण ही अपने समकालीनों के बीच विशिष्ट हो पाते हैं। प्रेमचंद के इस कथन में उनकी गहरी आस्था है कि कहानी वहीं अच्छी होती है जिसका आधार मनोवैज्ञानिक होता है। कहना न होगा कि भाषा, शिल्प, संवेदना और कथ्य सारे ही स्तरों पर शैवाल की कहानियाँ बहुआयामी है। लोक से गहरी संप्तक्ति का सबूत कहानियों की बुनावट और बनावट से भी मिलता है। शैवाल का भला–विधान कहे जगह रेणु की याद दिलाता हैं और हिन्दी के मानक मुहावरे के अभ्यस्त पाठकों के लिए कई जगह दिक्कतें भी पैदा करता है। सचमुच शैवाल का पढ़ना बिहारी के यथार्थ को जानना है। सभी कहानियाँ एक–से–एक विशिष्ट कथा भूमि पर अवस्थित हैं। उदाहरण के लिए इनकी पहली कहानी पुरधरपुर – 2003 यानी नई दुनिया में चलो एकदम उत्तर आधुनिक शैली में बिहार का यथार्थ उकेरती है। अपहरण जहाँ मंत्रालय की देखरेख से चलता है। पत्रकार नरेन्द्र किशोर जी सकते में हैं और धर्मराज प्रभुदित स्वर में टिप्पणी करता है। देखा यह पुरंधरपुर की व्यवस्था है और राज्यों में यह कारोबार छिप–छिप कर और व्यक्तिगत फायदे के लिए होता है। हम नियम बनाकर राज्यहित में करते हैं। उपुयक्त पंक्तियाँ पढ़ने से ऐसी लगती है कि शैवाल ठेठ फिल्मी शैली में यथार्थ की नई भाषा गढ़ते दिखते हैं।

कदाचित शैवाल अपनी कहानी 'दामूल' और उस पर बनी फिल्म चर्चा में आए। उनकी यह लोक प्रिय कहानी 'अरण्य–गाथा' में भी संकलित है। उनकी पंद्रह कहानियों का यह संकलन आश्वस्त करता है कि शैवाल सिर्फ हिन्दी की गांठ के बूते पर पंसारी नहीं बने है। 'दामूल' के अतिरिक्त

---

* शोध छात्र (हिन्दी), बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

इस संकलन में 'अरण्य में अकेले', 'गोर्की को पढ़ा है तुमने', 'टेकरू', 'सच्ची–सच्ची बात', 'अयोध्या किधर है', 'अरण्य–गाथा' आदि कहानियाँ भी अपराध को चरितार्थ करती हैं।

शैवाल की उपर्युक्त कहानियों में मुख्यतः गरीबी की रेखा से नीचे का जीवन जी रहे मेहनतकश जन समस्या का जीवन संघर्ष ही केन्द्रस्थ है। आजादी के 68 वर्ष पूरे होने पर भी क्या हम सही अर्थों में आजाद हैं।

समकालीन साहित्य के लिए सबसे बड़ी चुनौती अर्थहीन लगने वाले मानव जीवन में नये अर्थ संदर्भों के निर्माण की भी है। ये अर्थ संदर्भ सर्वथा नए हो परंपरागत मान्यताओं से बिल्कुल अलग से। सत्य को पकड़ने और समझने की उत्कृष्ट लालसा इन कहानियों का प्रेरक तत्व है। संग्रह की हर कहानी समानांतर सिनेमा के दिनों की एक नई फिल्म की तहत खुलती है। आजादी मिली। विकास के नाम पर कई तरह के निर्माण कार्य हुए। इमारतें बनाई गई – संसद भवन, विकास भवन, प्रखण्ड भवन आदि। जमींदारी जाने के तुरंत बाद नई योजना की तुरही बन गई। विकास की धारा बहने लगी, जो साथ हुए धारा के वे सज गए, जिनकी जमीनें गई उनमें सबसे कुछ समझदार थे, वे एजेंट बन गए। ठेकेदारी प्रथा शुरू हुई। दस अफसर के दस दलाल के। बाद में दलाल बराबरी के औकात पा गए और जनप्रतिनिधि बन गए। कई बार प्रश्न यह उठता है कि विकास की इस पोल को जान लेने के बाद भी हम क्यों नहीं रोक पा रहे हैं इस विनाश को।

ऐसी स्थिति में शैवाल की कहानियाँ चुपके से उन खतरनाक स्थितियों पर उंगली रख रही है। यहीं कम बड़ी बात नहीं है। कहानियों के शीर्षक तक में कौलिक देशजता हैं – 'पानीदारों का कुनबा', 'लाटो बाबू का नाच घर', 'कुंज बिहारी बाबू का कूलर', 'जंगली बाबू की हिंदी' आदि। निःसंदेह ऐसी कथाएँ देने वाला कोई एकांत में रहने वाला साधक ही हो सकता है।

शैवाल की कहानियाँ गवाह हैं कि लेखक दृष्टि संपन्न हो और देश में भूमंडलीकरण भ्रष्टाचार के सोच में पनप रहे उपनिवेशवाद की चिंताओं से सरोकार रखता हो, तो ऐसी साफ सुथरी कहानियों का असर और ज्यादा होता है। दरअसल, शैवाल की कहानियों की सबसे बड़ी विशेषता है कहानी के बने–बनाये ढ़ांचे को तोड़कर कुछ नया बनाने और रखने की चाह किन्तु यह भी सच है कि कभी–कभी वे ऐसा करने में जबरदस्त रूप से असफल होते हुए भी दिखे हैं। उदाहरण के लिए 'हलु भाई आपकी बंदूक कहाँ है ?, जैसी कहानियाँ इसके कतिपय उदाहरण हैं। परन्तु ऐसा कम ही हुआ है। शैवाल की कहानियों में प्रतिरोध का स्वरूप मनुष्य होने के एहसास और उसे बचाए रखने की जदोजहद में अपना आकार ग्रहण करता है। इसलिए कहानी इनके लिए खाने–कमाने और व्यक्तित्व चमकाने की चीज न होकर एक संघर्ष है, जो मानव मूल्यों और आस्था को बचाए रखने की जिद में अपने समय की तमाम विद्रपताओं और विडम्बनाओं से सीधे टकराती है। बिहार में घट रहे वर्तमान के अत्याचारों के पीछे पूँजीवाद और सामंतवाद का सम्मिलित चेहरा है।

अब तक 300 से अधिक कहानियाँ लिख चुके शैवाल ने बताया कि नयी पीढ़ी के रचनाकार हड़बड़ी में हैं जबकि साहित्य लेखन सब्र की मांग करती है। जमीन से जुड़ाव जरूरी है। अनुभूति के बाद अभिव्यक्ति के धरातल पर आने के लिए कथा को पकने देने के संयम की जरूरत होती है। आज की पीढ़ी के लोग पिछली पीढ़ी को नहीं पढ़ रही या कम पढ़ रही है। हम कहते हैं कि 'वो हैं तो हम हैं', वे कहते हैं 'सिर्फ हम हैं'। युवाओं में समुदायबोध की कमी है। उपभोक्ता संस्कृति ने ऐसा असर डाला है कि उनका ध्यान इन बातों से विचलित हो गया है। उनमें अभिव्यक्ति की हड़बड़ी और यर्थाथ फिसलता जा रहा है। शैवाल ने स्वंय कहा कि रचनाकार के लिए यह जरूरी है कि वह जिंदगी में कमी को महसूस करे, नहीं तो वह जानेगा कैसे कि लोग अभाव में जीते कैसें हैं। स्वर्णरेखा प्रोजेक्ट पर एक फिल्म के लिए रिसर्च करते हुए कई दिनों तक आर्थिक तंगी के कारण हड़िया और सत्तू का सेवन कर झारखण्ड के गाँवों की खाक छानते हुए जिंदा रहने के लिए मजबूर शैवाल की जिन्दगी पर फिल्मी दुनिया का कोई भी चकाचौंध हावी नहीं हो सका।

शैवाल अल्प समय में अपनी पहचान कायम करने वाले सशक्त कहानीकार हैं। अब तक उनके 'समुद्रगाथा', मरुयात्रा' (1999 ई.), 'दामुल और अन्य कहानियाँ', 'अरण्यगाथा' (2000 ई.), 'यहाँ कोई गुलमोहर नहीं है' (2004 ई.), आदि कई कहानी संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। शैवाल नक्सल आंदोलन से प्रेरित और दीप्त निम्नवर्गीय पीड़ित जनता के दर्द को मुखर करने वाले सशक्त रचनाकार हैं। उनकी कथा–भूमि मुख्यतः बिहार के गांवों से जुड़ी है। ग्रामीण जीवन के अंतर्विरोधों से उनका गहरा परिचय है। रेणु की तरह मार्क्सवादी आंदोलन की स्तर पर ग्रामीण जीवन की सारी विद्रूपताओं की तह में विद्यमान मानवीय मूल्यों की तरलता का अहसास भी उनको है, किन्तु न तो किसी तरह के हृदय परिवर्तन में उनका विश्वास है, न गाँवों की सांस्कृतिक समृद्धि के रंगीन आवरण पर रीझकर सामान्य जन के शोषण और दोहन की पीड़ा करके आँकने की मानसिकता। आज की मंदिर–मस्जिद की गंदी राजनीति और उपभोक्तावादी अपसंस्कृति के दबाव के प्रतिरोध में भी उन्होंने कहानियाँ लिखी हैं। सब मिलाकर उनका कथा–लेखन प्रासंगिक और सार्थक है। नाटकीय दृश्य–संकेतों से समृद्ध जीवंत भाषा उनके लेखन की निजी विशेषता है।

सन्दर्भ :

1. नवल, नन्दकिशोर; हिन्दी आलोचना का विकास, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, सप्तम संस्करण, 2019.
2. पाण्डेय, मनोज; हिन्दी आलोचना : दृष्टि और प्रवृत्तियाँ, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, 2018.
3. त्रिपाठी, विश्वनाथ; हिन्दी अलोचना, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, अद्यतन एवं परिवर्धित संस्करण, 2019.

***

मानव जीवन में प्राण विद्या का महत्व

अंकित कुमार *

प्राण एक जीवनी शक्ति है। यह विश्वव्यापिनी है। प्राण औरआयाम इन दो शब्दों से मिलकर प्राणायाम बनता है। प्राण का अर्थ है–''शरीर के अन्दर स्थित जीवनी शक्ति'' औरआयाम का अर्थ ''संयम'' अर्थात् प्राण का संयम, यह ही प्राणि जगत में जीवनशक्ति देती है। इसकी सत्ता जीवन है। अभाव मृत्यु है। जहां जीवन है। वहां प्राण है। इसके दो रूप बताये हैं। समष्टि, व्यष्टि – समष्टि प्राण को ही विश्वव्यापी ऊर्जा, महासत्ता कहते हैं। यही चराचर जगत का धारण करती है। व्यष्टि प्राण, मनुष्य, जीव कीट पतंग में व्याप्त है इसके कारण ही व्यक्ति सांस लेताहै। औरसभी क्रिया करताहै। अथर्ववेद में कहा गया है कि यह सारी प्रजा का पालन करता है। जैसे पिता पुत्र की। यह चर अचर जगत् का स्वामी है।[1] ''सारा संसार उसके वश में है, वही सारे संसार का स्वामी है, उसमें ही सारा जगत् स्थित है।[2]प्राण जीवन शक्ति देता है। यह औषधि के तुल्य है। वह हमें जीवन शक्ति देता है।[3]

शरीर में प्राण का महत्त्व 'कौशतिकी उपनिषद्' में बताते हुए कहा है कि जब तक शरीर में प्राण है तभी तक जीवन है।[4] प्राण के लिएकहा गया है कि **'विश्वजन्मन'** अर्थात् संसार को जन्म देने वाला है। अर्थात् प्राण महासत्ता के रूप में सृष्टिकर्ता है। यदि प्राण शक्ति न हो तो जीवननहीं होगा प्राण ही गतिदाताहै। अतः इसे क्षिप्रधन्वन् शीघ्र बाण फेंकने वाला धनुष कहा गया है।[5] अन्यत्र मिलताहै कि प्राण कभी आलस्य नहीं करता है। अर्थात् कभी नहीं रूकता। ब्रह्मणा धीरः के द्वारा निर्देश है कि प्राण में जो भी शक्ति है, वह आत्मिक शक्ति है, इसकी शक्ति अक्षय है।[6] भक्ति सागर में कहा गया है कि हमारे शरीर में जो प्राण स्थित है। वह एक है। लेकिन मानव शरीर में प्राण के दस भेद हैं। उसमें से 5 मुख्य प्राण, और 5 उपप्राण में,प्राण, अपान, समान उदान, व्यान, मुख्य प्राणहै नाग, कूर्म, कृकल देवदत्त, धनञ्जय[7]ये उपप्राण है। छन्दोग्योपनिषद् में कहा गया है कि सभी भूत प्राण से उत्पन्न हुए है। औरबाद में प्राण में ही लीन हो जाते हैं।[8] तैत्तिरीयोपनिषद् में कहा है कि प्राण से सभी भूतों की उत्पत्ति होती है। और प्राण को ब्रंह्म कहा गया है।[9] प्राण वह तत्व है जिसके होने पर ही सबकी सत्ता है।[10] प्राण के वश में ही सम्पूर्ण जगत है[11] प्राण के वश में सम्पूर्ण सजीव पदार्थ है।[12] परमपिता परमेश्वर ने ही प्राण का सृजन किया है। जो सभी प्राणियों का आधार बना है।[13] प्राणियों का जीवन धार यह प्राण है। जो ज्येष्ट एवं श्रेष्ठ है।[14] उपनिषदों में प्राण को ब्रह्म भी कहा गया है यह प्राण शरीर के रोम

---

* (शोध छात्र योग विभाग), जे.जे.टी.यू. झूनझूनू, राजस्थान

रोम में स्थित है। शरीर की कमेन्द्रियादि तो विश्राम भी कर लेते है परन्तु यह प्राण कभी भी विश्राम नहीं करता है।

यह दिन रात हमारे सम्पूर्ण शरीर में चलता रहता है ''चरैवेति चरैवेति'' यही इसकामन्त्रहै। जब तक शरीर में प्राण वायु चलती रहती है। तब तक प्राणियों का जीवनचलता रहता है। जब यह प्राण चलना बन्द हो जाता है। तो मनुष्य का जीवन भी समाप्त हो जाता है। शरीर प्राण ही सब कुछ है। प्राण के कारण ही पिण्ड (देह) तथा ब्रह्माण्ड की सत्ता है हठ प्रदीपिका में कहा गया है कि प्राण के चलायमान होने पर चित्त भी चलायमान रहता, प्राण के निश्चल हो जाने पर मन भी निश्चल हो जाता हैं।[15]

प्रश्नोपनिषद् में कहा है कि पृथ्वी, द्यौ तथा अन्तरिक्ष इन तीनों लोकों में जो कुछ भी है। वह सब प्राण के वश में है। हे प्राण् जिस तरह माँ स्नेहभाव से पुत्रों की रक्षा करती है। उसी तरह तू हमारी रक्षा कर हमें भौतिक सम्पदा, मानसिक व आत्मिक ऐश्वर्य प्रदान कर[16] सबके सोने पर भी यह प्राण खड़ा रहकर जागता है कभी तिरछा गिरता नहीं सबके सो जाने पर इसका सोना किसी ने भी सुना नहीं है[17] अर्थात्

प्राण मा मत्पर्यावृतो न मदन्यो भविष्यसि।
अपांगर्भमिव जीव से प्राण बध्नामि त्वा मयि।।

प्राणों का कार्य प्राणमय कोश से सम्बन्धित है। और प्राणायाम इन्हीं प्राणों और प्राणमय कोश को स्वच्छ निरोगी और स्वस्थ रखने का मुख्य काम करता है। इसीलिए प्राणायाम सर्वाधिक जरूरी है मानव को स्वस्थ रखने के लिए प्राण का प्रमुख द्वार नाक है। यह प्राण नासिका के छिद्रो के द्वारा अन्दर शरीर में प्रवेश करताहै और शरीर से बाहर निकलता है। श्वास प्रश्वास जीवन तथा प्राणायाम का आधार है। श्वास–प्रश्वास–रूपी रज्जु का आश्रय लेकर यह मन देहगत आन्तरिक जगत में प्रविष्ट होकर साधक को वहां की दिव्यता का अनुभव करा दे, इसलिए ऋषि मुनियों ने प्राणायाम विधि को खोजा। योग ग्रन्थों में 'प्राणायाम' योग का चतुर्थ अंग माना गया है। विद्वानों ने कहा है कि आसनकी सिद्धि होने पर मनुष्यको प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिए,[18] महर्षि पतंजलि ने प्राणायाम के विषय में कहा है कि आसन की सिद्धि हो जाने जो प्राण की गति का अवरोध होता है उसे प्राणायाम कहा गया है।[19]

वायु को बाहर से भीतर की ओर खींचना श्वास कहलाता है। पेट के अन्दर गई हुई वायु को बाहर निकालना प्रश्वास कहलाता है। इन दोनों की गति का निरोध प्राणायाम कहलाता है महर्षि पतंजलि ने प्राणायाम के चार भेद बताये हैं।[20] (1) बाह्मवृति प्राणायाम (2) आभ्यन्तर वृत्ति प्राणायाम (3) स्तम्भवृति प्राणायाम (4) बाह्माभ्यन्तरस्तम्भवृत्ति प्राणायाम, बाह्म प्राणायाम – इसमें श्वास को बाहर निकाल कर रोकते हैं, आभ्यन्तर प्राणायाम – वायु को बाहर से अन्दर खींच कर रोका जाता है। स्तम्भवृत्ति प्राणायाम – जहाँ श्वास, भरने और निकालने दोनों का अभाव हो, योगदर्शन में प्राणायाम का

चौथा भेद इस तरह है। जिसमें बाहर और भीतर के विषयों का त्याग किया गया हो वह चौथा प्राणायाम है।[21]

हठयोग प्रदीपिका में आठ प्रकार के प्राणायाम का वर्णन मिलताहै, सूर्य भेदी, उज्जायी, सीत्कारी, शीतली, भस्त्रिका, भ्रामरी, मूर्च्छा, प्लाविनी।[22] प्राणायाम करने के लिए (पूरक) श्वास अन्दर लेना (कुम्भक) श्वास रोकना (रेचक) श्वास बाहर छोड़ना ''प्राणायाम का प्रतिदिन अभ्यास करने ज्ञानरूपी, प्रकाश को ढकने वाला अज्ञानका आवरण हट जाता हैं।[23] और ''प्राणायाम की सिद्धी होने पर, मन में धारणा की योग्यता आ जाती है अर्थात् मन को किसी जगह अनायास ही स्थिर किया जा सकता है। यथा– धारणासु च योग्यता मनस[24] हठयोग प्रदीपिका में प्राणायाम का अभ्यास करने वाले हठयोगी के लक्षण बताते हुए कहा है कि प्राणायाम का अभ्यास करने वाले का शरीर पतला हो जाता है। चेहरे पर प्रसन्नता, स्वर मधुर, शरीर निरोगी होता है, आँखों की रोशनी बढ़ती है। शत्रुओं पर विजय प्राप्त होती है। जठराग्नि प्रदीप्त होती है। नाड़ियों की शुद्धि होती है[25] सामवेद में कहा गया है। प्राणायाम के करने से प्राण सयंमी योगी शरीर रथ द्वारा भवसागर तैरने का ज्ञान प्राप्त करता है।[26] जब श्वास शरीर में आता है। तब शरीर में आक्सीजन ही नहीं आती है। तब एक अखण्ड दिव्य शक्ति अन्दर आती है। जो शरीर में जीवनी शक्ति को बनाये रखने में सहायक होती है। प्रत्येक मानव को प्राणायाम का अभ्यास अति आवश्यक करना चाहिए। इसी से मानव के सभी दोष नष्ट हो जाते हैं।

सन्दर्भ :

- तिवारी, ओमप्रकाश 1971, यौगिक चिकित्सा, कैवल्यधाम स्वामी कुवलयानन्द मार्ग लोनावला पुणे महाराष्ट्र
- दयानन्द महर्षि, सत्यार्थ प्रकाश, वैदिक यन्त्राालय, अजमेर।
- दयानन्द स्वामी उणादिकोष–पाणिनि, कृत तथा आचार्य सत्यव्रत शास्त्री कृत वृत्ति सहित, प्रकाशिका श्रीमती मिभिलेश कुमारी, सत्यसदन, चित्तौड़गढ़ (राजस्थान)
- दयानन्द स्वामी, 2003, ऋग्वेद संहिता, सार्वदेशिक सभा, नई दिल्ली
- दयानन्द स्वामी, 2004, यजुर्वेद संहिता, सार्वदेशिक सभा, आर्य प्रतिनिधि सभा, नई दिल्ली
- दास स्वामी रामसुख, स. 2074, चौरानबेवां पुनर्मुद्रण गीताप्रेस, गोरखपुर, गोबिन्दभवन कार्यालय, कोलकाता का संस्थान
- धातुपाठ, 1992 ई., रामलाल कपूर ट्रस्ट, बहालगढ़, सोनीपत।
- धातुप्रदीप 1982 ई., रामलाल कपूर ट्रस्ट बहालगढ़, सोनीपत।
- परिव्राजक स्वामी विष्वङ्, 2011, अष्टांग योग, वैदिक पुस्तकालय केसरगंज, अजमेर राजस्थान
- परिव्राजक स्वामी सत्यपति, 2012, योगदर्शनम्, वानप्रस्थ साधक आश्रम, साबरकांठा (गुजरात)
- पोद्दार हनुमानप्रसाद जी, स. 2063 तेरहवां पुनमुद्रण, गीताप्रेस, गोरखपुर

- पोद्यार श्री हनुमान, स. 2075, सोलहवाँ पुनर्मुद्रण उपनिषद अंक, गीता प्रेस, गोरखपुर, (उ.प्र.)
- प्रभुपाद, स्वामी 1983, श्रीमद्भगवद्गीता यथारूप, भक्तिवेदान्त बुक ट्रस्ट हरे कृष्ण धाम, जुहू, मुम्बई
- बिश्नोई मनोज, 2019, उपनिषद् सार संग्रह, किताब महल, 8 हरि सदन, ग्राउंड फ्लोर, 20 अंसारी रोड़, दरियागंज, नई दिल्ली

---

1. प्राणः प्रजा अनु वस्ते।। अथर्व.वे., 11.4.10
2. प्राणाय नमा यस्य सर्वमिदं वशे।। अथर्वव. 11.4.1
3. अथो यद् भे षजं तव।। अ. 11.4.9
4. यावदस्मिन् शरीर प्राणो वसति तावदायुः। कौ.उ.
5. यो अस्य विश्वजन्मनः। आ. 11.4.23
6. अतन्द्रो ब्रह्मणा धीरः।। अ.11.4.24
7. प्राण अपान समानहीं, और व्यान उ़द्यान।
   नाग धनञ्जय देवदत्त, कूरम किरकल, जान।। (भ.सा.)
8. सर्वाणि ह वा इमानि भूतानि प्राणमेवाभिसंविशन्ति।। छा.उप. 1.11.5
9. प्राणो ब्रह्मोति व्यजानत्।। तेति.उप. भू.व., 3
10. प्राणो वा इदं सर्वं भूतं यद किञ्च।। छा.उ.
11. प्राणे सर्वम प्रतिष्ठितम्।। प्र.उप. 2.6
12. प्राणस्वेदं वशे सर्वम वही, 2.13
13. सू प्राण सृजत।। प्रश्नो.उप., 6/4
14. प्राणो वै ज्येष्ठश्च श्रेष्ठश्च।। बृहदा.उ. 6.1
15. चल वाते चल चितं निश्चले निश्चलं भवेत। ह.प्र. 2/2
16. प्राणस्येदं वशे सर्वं त्रिदिवे यत्प्रतिष्ठितम्
17. अ. 11.4.26
18. अथासने दृढ़े योगी वशी हितमिताशनः।
    गुरुपदिष्ट मार्गेण प्राणायामान्समभ्यसेत्।। छ.प्र. 2/1
19. तस्मिन् सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः।। यो.द. 249
20. बाह्याभ्यन्तरस्तम्भवृत्तिर्देशकालसंख्याभिः परिदृष्टो दीर्घसूक्ष्मः।। 2.50
21. बाह्याभ्यन्तरविषयाक्षेपी चतुर्थः।। 2.51
22. सूर्यभेदनमुज्जायी सीत्कारी, शीतली तथा।
    भास्त्रिका, भ्रामरी, मूर्च्छा प्लाविनीत्यष्ठ कुम्भकाः।। ह.प्र., 2.44
23. ततः क्षीयते प्रकाशावरणम्।। यो.द. 2.52
24. यो.द. 2/53
25. वपुः कृशत्वं वदने प्रसन्नता, नादस्फुटत्वं नयने सुनिर्मले। अरोगता
    बिन्दुजयोऽग्नि दीपनं, नाडीशुद्धि हठयोग लक्षणम् ह.प्र. 2/78
26. सा.वे. 599.

***

राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2019 का प्रारूप : समग्र विश्लेषण

अनुराग तिवारी *

भारत के समग्र शिक्षा का एक लम्बा और शानदार इतिहास रहा है। प्राचीन भारत में शिक्षा का उद्देश्य केवल ज्ञान प्राप्त करना ही नहीं था, जैसे इस दुनिया के जीवन या स्कूल के बाहर के जीवन के लिए तैयारी करना, अपितु स्वयं का पूर्ण बोध और मुक्ति भी एक अहम् उद्देश्य था। भारतीय शिक्षा प्रणाली ने चरक, सुश्रुत, आर्यभट्ट, पतंजलि, चाणक्य, पाणिनि और भास्कराचार्य जैसे कई विद्वानों को जन्म दिया है। इन विद्वानों ने विभिन्न क्षेत्रों में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया था, जैसे– गणित, खगोल विज्ञान, धातु विज्ञान, सिविल इंजीनियरिंग और वास्तु कला, जहाज निर्माण और नेविगेशन, चिकित्सा विज्ञान और सर्जरी, योग, ललित कला और अन्य।

आजादी के बाद के दशकों में हमारे देश में बड़े पैमाने पर सबके लिए शिक्षा की पहुँच बनाने में हमारे सरकारी तंत्र के नीति–निर्माता व्यस्त रहे है और इस वजह से शिक्षा की गुणवत्ता पर ज्यादा ध्यान नही दिया गया है। पिछली दो शिक्षा नीतियों (राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1968 और राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986) का कार्यान्वयन अभी भी अधूरा है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 (जो 1992 में संशोधित हुआ) के बनने के बाद एक बड़ा विकास सार्वभौमिक प्राथमिक शिक्षा प्राप्त करने के लिए संवैधानिक और कानूनी आधार का स्थापित होना है। 86वें संविधान संशोधन, 2002 के द्वारा, जो भारत के संविधान में अनुच्छेद 21 (अ) को सम्मिलित करता है, 6 से 14 वर्ष की आयु के सभी बच्चों के लिए मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा के मौलिक अधिकार को स्थापित करता है। बच्चों के मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 जो अप्रैल, 2010 में लागु हुआ, वह प्रारंभिक शिक्षा पूरी होने तक 6 से 14 वर्ष की आयु के प्रत्येक बच्चे को पड़ोस के स्कूल में मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार प्रदान करता है। हालाँकि, कुछ पहलुओं में तरक्की के बावजूद शिक्षा प्रणाली में आज एक नीरसता, उबाऊपन और बोरियत बनी हुई है जिससे हमारी प्राचीन परम्पराओं के बिल्कुल उलट, विद्यार्थियों को उनकी व्यक्तिगत क्षमता के दृष्टिकोण से विकसित नही किया जा सका है। वर्तमान भारतीय शिक्षा व्यवस्था 3 दशक पुरानी भारतीय शिक्षा नीति, 1986 (1992 में संशोधित) से परिसंचालित है। इन तीन दशकों में विश्व की अधिकांश प्रणाली में बदलाव हुए है। हम सामान्य कंप्यूटर प्रणाली के दौर से स्मार्ट कंप्यूटर प्रणाली के दौर में प्रवेश कर चुके है। यह एंड्रॉइड, माइक्रोकम्प्यूटिंग, नैनो कंप्यूटिंग और क्वाण्टम कंप्यूटिंग का दौर है जिसमे पहले की अपेक्षा हजारों गुना अधिक संभावनाए

* शोधार्थी, मालवीय शांति अनुसंधान केंद्र, सामाजिक विज्ञान संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

है। हम स्वचालन के सिद्धांत पर आधारित चौथी औधौगिक क्रांति के मुहाने पर खड़े है जिसके प्रमुख उपकरण अर्टिफिशियल इंटेलिजेंस, इंटरनेट ऑफ थिंग्स, मशीन लर्निंग तथा 5G आदि होंगे। हम आज उत्तर संरचनावाद और उत्तर आधुनिकवाद के दौर में है जहाँ मूल्यों के मायनों में परिवर्तन हो चूका है। इन 3 दशकों के दौरान अधिकांश विमर्श एवं सिद्धांतों तथा तकनीकों के स्वरुप में परिवर्तन हो चूका है जो कि आज विश्व को एक नया स्वरुप प्रदान करते है, जबकि हमारी शिक्षा पद्धत्ति अभी भी 3 दशक पुरानी प्रणाली से संचालित हो रही है। ऐसे में बदलते ' नए भारत ' के लिए निश्चित तौर पर यह जरुरी है कि हम अपनी शिक्षा व्यवस्था में वैश्विक मानकों के अनुसार जरुरी परिवर्तन की नीति निर्धारित करें। इस उद्देश्य से 2017 में मानव संसाधन विकास मंत्रालय द्वारा भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन (ISRO) के पूर्व प्रमुख डॉ. कृष्णस्वामी कस्तूरीरंगन की अध्यक्षता में एक नई समिति गठित की गई। नई सरकार बनते ही समिति की ओर से तैयार नई शिक्षा नीति का मसौदा मानव संसाधन विकास मंत्री रमेश पोखरियाल निशंक को 31 मई, 2019 को सौंप दिया गया। हालाँकि इससे पहले भी नई शिक्षा नीति के निर्माण हेतु कई समितियाँ बनीं थी जिनकी सिफारिशें लागू नहीं हो पाई। अब जबकि हम शिक्षा नीति के मामले में पहले से ही तीन दशक पीछे हैं और केंद्र में पूर्ण बहुमत की सरकार भी है इसीलिए यह अपेक्षा है कि जरुरी संशोधनों के साथ इन सिफारिशों को लागू किया जाये। इस लेख में नई शिक्षा नीति, 2019 के मसौदे के महत्वपूर्ण प्रावधानों के साथ–साथ वर्तमान में इन नीतियों की कितनी आवश्यकता है, इनसे सम्बन्धित महत्वपूर्ण चुनौतियां क्या हैं तथा इनमे कौन से सुधार किये जा सकते है, पर चर्चा की गई है।

नई शिक्षा नीति की आवश्यकता

युवा शिक्षार्थी आज एक ऐसी पीढ़ी से संबंध रखते है जो तकनीक समृद्ध वातावरण में जन्मी और पली बढ़ी है। वे उन तकनीकों के प्रयोग में रूचि रखते है जिनका अविष्कार किया जाये और आने वाले समय में वे उन नौकरियों में जाएंगे जो वर्तमान में मौजूद नही है। वर्तमान समय के वैश्वीकरण के इस युग में एक नॉलेज इकॉनमी (अर्थव्यवस्था का ज्ञान) और नॉलेज सोसायटी (ज्ञानवान समाज) की मांग इस बात पर जोर देती है कि शिक्षार्थियों द्वारा नए कौशल के अधिग्रहण की नियमित रूप से आवश्यकता है और उन्हें यह सीखना की सीखते कैसे है, ताकि वह आजीवन सिखने वाले बन सके। ज्ञान की इस नई पीढ़ी और उसके प्रयोग के बीच संकीर्ण समय अंतराल को देखते हुए, खासकर विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में एवं शिक्षार्थियों के बदलते सामाजिक व व्यक्तिगत आवश्यकताओं और उभरते राष्ट्रीय विकास लक्ष्यों की प्रासंगिकता बनाये रखने के लिए स्कूल और उच्च शिक्षा के पाठ्यचर्या का समय–समय पर नवीनीकरण करना आवश्यक होता है। इसीलिए वैश्वीकरण की इस दुनिया में यह जरुरी है कि देश में बच्चे

और युवा ज्ञान, कौशल, मनोभाव और मूल्यों के साथ–साथ रोजगार योग्य कौशल से लैस हो, जो आने वाले समय में उन्हें भारत के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक बदलाव में योगदान करने में सक्षम बनाएगा।

वर्तमान समय में हमारे पाठ्यक्रम, पठन–पाठन के तरीके एवं कौशल इतने पुराने हो चुके हैं कि वे वर्तमान मानकों के अनुसार लोगों को रोजगार प्रदान करने में सक्षम नहीं है। उच्च शिक्षा में शोध एवं नवाचार की स्थिति अत्यंत दयनीय है। जटिल संरचना तथा पर्याप्त एवं गुणवत्तायुक्त उच्च शिक्षण संस्थानों की कमी इसका एक प्रमुख कारण है। उच्च शिक्षा के क्षेत्र में अखिल भारतीय सर्वेक्षण (AISHE 2017-18) के आंकड़ों के अनुसार, उच्च शिक्षा में नामांकन अनुपात केवल 25.8 प्रतिशत है। ये 25.8 प्रतिशत भी जिन विश्वविद्यालयों में पढ़ रहे है इनमे से केवल एक–दो संस्थान ही विश्व के सर्वश्रेष्ठ संस्थानों में आते है। द टाइम्स हायर एजुकेशन वर्ल्ड यूनिवर्सिटी रैंकिंग, 2020 के अनुसार विश्व के सर्वश्रेष्ठ 500 उच्च शिक्षण संस्थानों में से भारत के केवल 6 संस्थान शामिल है। प्राथमिक शिक्षा पर असर, 2018 (ASER- 2018) की रिपोर्ट में यह उल्लिखित है कि कक्षा–3 में पढ़ने वाले केवल 27.2 प्रतिशत बच्चे ही कक्षा–2 के स्तर की पुस्तक पढ़ पाने में सक्षम है, कक्षा–5 में पढ़ने वाले 50.3 प्रतिशत विद्यार्थी कक्षा–2 की पुस्तक पढ़ पाने में सक्षम है तथा कक्षा–8 में पढ़ने वाले केवल 73 प्रतिशत विद्यार्थी कक्षा–2 के स्तर की पुस्तक पढ़ पाने में सक्षम है। बुनियादी अंकगणित के स्तर पर देखें तो कक्षा–3 के केवल 28.1 प्रतिशत विद्यार्थी (सरकारी विद्यालयों के केवल 20.9 प्रतिशत विद्यार्थी) 2 अंको का सामान्य घटाव करने में सक्षम है, कक्षा–5 के केवल 27.8 प्रतिशत विद्यार्थी सामान्य भाग करने में सक्षम हैं तथा कक्षा–8 के केवल 44 प्रतिशत विद्यार्थी 3 अंको की संख्या को 1 अंक से भाग देने में सक्षम हैं। निश्चित तौर पर ये आंकड़े भारतीय प्राथमिक शिक्षा कि गंभीर स्थिति को प्रदर्शित करती है। इसके अलावा, शिक्षा व्यवस्था के मामले में भारत वैश्विक स्तर पर चीन के बाद दूसरे स्थान पर है। यहाँ 35 मिलियन से भी अधिक विद्यार्थी है तथा 50,000 से अधिक शिक्षण संस्थान हैं। अगर इन शिक्षण संस्थानों को वैश्विक मानकों के अनुसार बेहतर बनाया जाए तथा विद्यार्थियों को उच्च गुणवत्ता युक्त शिक्षा मुहैया कराई जाए तो भारत उच्च तकनीकी तथा कौशल के मामले में विश्व का नेतृत्वकर्ता देश बन सकता है। लेकिन इसके लिए देश में शिक्षा की व्यवस्था में बड़े पैमाने पर सुधार की आवश्यकता है। भारत आज उन देशों में हैं जहाँ कार्यशील जनसंख्या सर्वाधिक तेजी से बढ़ रही है, जो आर्थिक संवृद्धि के अवसरों को तेज करता है। 2050 तक देश की जनसांख्यिकीय संवृद्धि सबसे उच्च स्तर पर होगी एवं इसके समग्र लाभ के लिए युवाओं की शिक्षा व स्वास्थ्य दोनों पर विशेष रूप से निवेश करना होगा। विश्व विकास

रिपोर्ट, 2019 के अनुसार भारत को अपनी सबसे महत्वपूर्ण पूंजी– अपने नागरिकों की शिक्षा की गुणवत्ता पर ज्यादा ध्यान देने की जरुरत है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2019 की प्रमुख सिफारिशें

नई शिक्षा नीति का उद्देश्य वर्तमान भारतीय शिक्षा प्रणाली की प्रमुख चुनौतियों का समाधान सुझाना है जिनमे प्राथमिक से लेकर उच्च शिक्षा के सभी स्तर शामिल है। इस नीति की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें प्राथमिक एवं उच्च शिक्षा के साथ–साथ कृषि शिक्षा, कानूनी शिक्षा, चिकित्सा शिक्षा और तकनीकी शिक्षा जैसी व्यावसायिक शिक्षाओं को भी इसके दायरे में लाया गया है। नीति द्वारा चिन्हित भारतीय शिक्षा कि प्रमुख चुनौतियों के क्षेत्र हैं– शिक्षा की पहुँच, समानता, गुणवत्ता, वहनीयता तथा जवाबदेहिता। समिति द्वारा प्रस्तावित शिक्षा प्रणाली में सुधार के लिए सुझाई गई प्रमुख सिफारिशें निम्न है–

विद्यालयी शिक्षा के लिए प्रावधान

प्रारंभिक बाल्यावस्था में देखभाल और शिक्षा (Early Childhood Care and Education- ECCE): बच्चे के सिखने की प्रक्रिया जन्म से ही शुरू हो जाती है। न्यूरोसाइंस के साक्ष्य बताते है कि बच्चे के मस्तिष्क का 85 प्रतिशत विकास 6 वर्ष की आयु से पहले हो जाता है। आरम्भिक वर्षों में बच्चे के मस्तिष्क के सतत विकास तथा वृद्धि को प्रेरित करने के लिए विकासात्मक स्तर के अनुरूप देखभाल और प्रोत्साहन बहुत महत्वपूर्ण है। वर्तमान समय में भारत में सीखने की गंभीर चुनौती विधमान है, यहां बच्चे प्राथमिक विद्यालओं में नामांकित तो है लेकिन बुनियादी साक्षरता और गणना जैसे मूलभूत कौशलों को सिखने में भी असफल हो रहे है। ECCE में निवेश सभी बच्चों के लिए शिक्षा व्यवस्था में संपूर्णता के साथ भाग लेने और आगे बढ़ने कि संभावनाएँ खोलता है। वर्तमान समय में प्रारंभिक बाल्यावस्था से सम्बन्धित शिक्षण के प्रमुख केंद्र आंगनवाड़ी और निजी–पूर्व प्राथमिक विद्यालय है जिसमे प्रारंभिक बाल्यावस्था के दौरान शैक्षिक व्यवस्था पर काम ध्यान दिया जाता है। इसलिए समिति ने नीति में प्रारंभिक बाल्यावस्था में देखभाल और शिक्षा के लिए दो भागों में कार्यक्रम की अनुशंसा की है–

- अभिभावकों तथा शिक्षकों के लिए तीन वर्ष तक के बच्चों हेतु दिशा–निर्देश, और
- तीन से आठ वर्ष तक के बच्चों के लिए शैक्षिक रुपरेखा से सम्बन्धित। इसका कार्यान्वयन वर्तमान आंगनवाड़ी व्यवस्था में सुधार तथा उनका विस्तार कर और प्राथमिक विद्यालयों के साथ उनकी सहस्थापना द्वारा किया जाएगा।

शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 का विस्तार : नीति के अंतर्गत वर्तमान में मौजूद शिक्षा के अधिकार अधिनियम के दायरे को बढ़ाकर इसमें बचपन की शिक्षा को भी (3–6 वर्ष के उम्र के बच्चों को भी) इसमें शामिल करने का प्रावधान किया गया है। नीति के अंतर्गत प्राथमिक पूर्व शिक्षा के महत्व

को स्वीकारते हुए इस कानून का दायरा प्राथमिक पूर्व शिक्षा से लेकर 12 वीं कक्षा तक की शिक्षा (18 वर्ष की उम्र तक) के लिए लागू करने की सिफारिश की गई है। गौरतलब है कि शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 के अंतर्गत 6–14 वर्ष की उम्र के बच्चों के लिए मुफ्त एवं अनिवार्य शिक्षा का प्रावधान है तथा वर्तमान में 3–6 वर्ष की उम्र के बच्चों की देखभाल और शिक्षा महिला एवं बाल विकास मंत्रालय के आंगनवाड़ी कार्यक्रम के अंतर्गत आती है। इसके अलावा समिति शिक्षा के अधिकार अधिनियम के अंतर्गत समग्र एवं सतत मूल्यांकन पद्धत्ति तथा नो डिटेंशन पॉलिसी (बाधामुक्त कक्षा बढ़ाने की नीति) की समीक्षा की सिफारिश भी करती है। इसके अनुसार, कक्षा 8 तक बच्चों के लिए नो डिटेंशन पॉलिसी की बजाय विद्यालय को बच्चों की उम्र के अनुसार लर्निंग लेवल सुनिश्चित करना चाहिए।

5+3+3+4 का पाठ्यक्रम ढांचा : नई शिक्षा नीति में प्री–प्राइमरी से 12वीं कक्षा तक की पढाई को एक नए फॉर्मूले के तहत चार चरणों में बाँटने की बात कही गई है। पाँच साल का पहला चरण 3 से 8 वर्ष की आयु के बच्चों के लिये है, इसे बुनियादी अवस्था (Foundation Stage) कहा गया है, जिसमें 3 वर्ष प्री–प्राइमरी स्कूल के और कक्षा 1 तथा 2 शामिल है। दूसरा चरण, कक्षा 3 से 5 तक 8 से 11 वर्ष के बच्चों के लिये है, इसे प्राथमिक अवस्था (Preparatory or Latter Primary Stage) कहा गया है। तीसरा चरण, कक्षा 6 से 8 तक 11 से 14 वर्ष के बच्चों के लिये है, इसे माध्यमिक या उच्च प्राथमिक अवस्था (Middle or Upper Primary) कहा गया है। चौथा और अंतिम चरण कक्षा 9 से 12 तक 14 से 18 वर्ष के बच्चों के लिये है, इसे उच्च या माध्यमिक अवस्था (High or Secondary Stage) कहा गया है।

स्कूल कॉम्प्लेक्स का निर्माण : समिति के अनुसार छोटे आकर के विद्यालयों में शिक्षकों की नियुक्ति तथा जरुरी संसाधनों का परिचालन जटिल होता है। इसके लिये समिति कई सरकारी स्कूलों को एक साथ लेकर एक व्यापक स्कूल कॉम्प्लेक्स निर्माण की सिफारिश करती है जिसमें एक माध्यमिक विद्यालय होगा तथा सभी अन्य नजदीकी प्राथमिक पूर्व से कक्षा 8 तक के सरकारी विद्यालय होंगे। इस विद्यालय कॉम्प्लेक्स में आंगनवाड़ी, व्यावसायिक शिक्षा सुविधा तथा एक व्यस्क शिक्षा केंद्र भी होगा। साथ ही शिक्षकों के प्रबंधन के लिये समिति किसी विद्यालय कॉम्प्लेक्स में एक शिक्षक के लिये कम–से–कम 5–7 वर्षों की नियुक्ति की सिफारिश करती है। इसके अतिरिक्त, शिक्षक विद्यालयी समय के दौरान ऐसे किन्हीं गैर–शिक्षकीय क्रियाकलापों में हिस्सा नही लेंगे जो उनकी शिक्षण क्षमता को प्रभावित करती हो। शिक्षकों के प्रशिक्षण के लिये समिति वर्तमान 2 वर्षीय बी.एड कार्यक्रम को 4 वर्षीय समन्वीकृत कार्यक्रम के रूप में करने की सिफारिश भी करती है।

विद्यालयी परीक्षा पद्धत्ति में सुधार :– समिति ने इस बात को रेखांकित किया है कि वर्तमान बोर्ड परीक्षाओं का ढांचा कुछ ऐसा है कि ये बच्चों पर दबाव बनती है कि वे केवल कुछ विषयों पर अपना ध्यान केंद्रित करें। इसके चलते उनका समग्र विकास बाधित होता है। इसके अलावा ये बोर्ड परीक्षाएं केवल दो बार आयोजित होती है– कक्षा 10 और 12 के दौरान, तो इससे स्पष्ट है कि ये परीक्षाएं अधिकांशतः योगात्मक (Summative) होती है न कि रचनात्मक (Formative), जो अपने आप में एक अवसर को गंवाने जैसा है। विद्यालय की परीक्षा में सुधार के लिये समिति कक्षा 3, 5 तथा 8 में स्टेट सेन्सस परीक्षा आयोजित करने की सिफारिश करती है। ये सभी परीक्षाएं भी बच्चों की स्तर के अनुसार मूल अवधारणाओं के बारे में उनकी स्पष्टता, उच्च स्तरीय कौशल और जीवन में इनके प्रयोग का आंकलन करेगी। इसके अलावा बोर्ड परीक्षाओं के पुनर्गठन की बात भी कही गई है। बोर्ड परीक्षाएं विद्यार्थियों के बुनियादी अधिगम, कौशल और विश्लेषण की क्षमता को जांचने के लिये होंगी।

नवोन्मेषी शिक्षण उपायों को अपनाना : इसके तहत पहली व दूसरी कक्षा में भाषा व गणित पर जोर देने की बात कही गई है। चौथी व पाँचवी कक्षा के बच्चों के साथ लेखन कौशल पर जोर देने के अलावा भाषा सप्ताह, गणित सप्ताह व भाषा मेला, गणित मेला जैसे आयोजन करने की बात भी कही गई है। पढ़ने और संवाद करने की संस्कृति को प्रोत्साहित करने के लिये पुस्तकालयों के महत्व को पुनः स्थापित करने के अलावा कहानी सुनने, रंगमंच, समूह में पठन–पाठन, लेखन व बच्चों द्वारा बनाये हुए चित्रों व लिखी हुई सामग्री इत्यादि का प्रदर्शन करने जैसी गतिविधियों को आयोजित करने की बात भी की गई है। इसके अतिरिक्त, कमजोर विद्यार्थियों को पढ़ाने हेतु स्कूलों में रेमेडियल क्लास (उपचारी शिक्षण) के लिये भी प्रस्ताव रखा गया है। कक्षा 9वीं से 12वीं तक के कमजोर विद्यार्थियों के लिये यह व्यवस्था नियमित तौर पर होंगी। रेमेडियल कक्षाएँ मुख्यतः त्रैमाशिक परीक्षाओं में डी और इ ग्रेड पाने वाले विद्यार्थियों के लिये होंगी और यह विद्यालय के नियमित शिक्षकों द्वारा ली जाएंगी।

त्रिभाषा सूत्र : नीति के प्रारूप में इस बात को रेखांकित किया गया है कि प्राथमिक और माध्यमिक चरण में क्षेत्रीय भाषा का इस्तेमाल पहले से ही होता आया है। इस सन्दर्भ में नीति में यह उल्लिखित है कि राज्य सरकार माध्यमिक या उच्च प्राथमिक शिक्षा के दौरान से ही त्रिभाषा नीति का अनुसरण करें। जिसके तहत हिन्दी भाषी क्षेत्रों में हिंदी और अंग्रेजी भाषा के अलावा कोई एक आधुनिक भारतीय भाषा, मुख्यतः दक्षिण के राज्यों की भाषा का अध्ययन किया जाए और गैर–हिन्दी भाषित क्षेत्रों में क्षेत्रीय भाषा और अंग्रेजी के अलावा हिन्दी भाषा का अध्ययन किया जाए। इसके अलावा सरकार ने अपने मसौदे में यह स्पष्टीकरण भी दिया है कि जो विद्यार्थी पढाई जाने वाली तीन भाषाओं में से एक या अधिक भाषा बदलना चाहते है,

वे कक्षा 6 या 7 में ऐसा कर सकते है। इसके अतिरिक्त, बहुभाषा को प्राथमिकता के साथ शामिल करने और ऐसे भाषा–शिक्षकों की उपलब्धता की बात भी कही गई है जो बच्चों की मातृभाषा समझते हो। चूँकि यह समस्या राष्ट्रीय स्तर पर विभिन्न राज्यों में दिखाई देती है, इसीलिये पहली से पाँचवी कक्षा तक जहाँ तक संभव हो सके बतौर शिक्षण माध्यम मातृभाषा का इस्तेमाल किया जाए। जहाँ घर और स्कूल की भाषा अलग–अलग है वहाँ दो भाषाओं के इस्तेमाल का सुझाव दिया गया है।

राज्य विद्यालय नियामक प्राधिकरण का गठन : विद्यालयी शिक्षा के लिये शासन स्तर में बदलाव भी सुझाया गया है। नई शिक्षा नीति के प्रारूप में राज्य विद्यालय नियामक प्राधिकरण (The State School Regulatory Authority- SSRA) बनाने का सुझाव दिया गया है ताकि शिक्षा को समग्र रूप में पर्यावरण हितैषी व इसके द्वारा ज्ञानवान समाज बनाने के उद्देश्यों को हासिल किया जा सके। यह प्राधिकरण सार्वजनिक व निजी, दोनों प्रकार के स्कूलों के लिये बुनियादी और एक समान मानकों का निर्धारण करेगा। निजी विद्यालयों को समर्थन देने की बात भी इस नीति में की गई है एवं निजी विद्यालयों के नाम से "पब्लिक" शब्द का इस्तेमाल नही करने का सुझाव भी दिया गया है।

उच्च–शिक्षा के लिए प्रावधान : एक राष्ट्र के आर्थिक विकास एवं लोगों की आजीविका के सतत उपार्जन में उच्च शिक्षा का महत्वपूर्ण योगदान है और मानव कल्याण में भी यह एक बड़ी तथा सामान रूप से महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। नीति के प्रारूप में उच्च शिक्षा का लक्ष्य विचारों और नवाचारों के विकास के लिए एक केंद्र की स्थापना करना है जो व्यक्तियों को प्रबुद्ध करने के साथ ही देश को भी सामाजिक, सांस्कृतिक, वैज्ञानिक, तकनीकी, आर्थिक और कलात्मक रूप से आगे बढ़ने में मदद कर सकें।

नीति के प्रारूप में उच्च–शिक्षा को सुदृढ़ करने हेतु सुझाये गए प्रमुख बिंदु इस प्रकार है–

लिब्रल (उदार) शिक्षा का दृष्टिकोण : प्राचीन भारतीय विश्वविद्यालयों में तक्षशिला और नालंदा दुनिया के सबसे पुराने और बेहतरीन विश्वविद्यालय थे। इन विश्वविद्यालयों ने 'लिब्रल कलाओं' और 'लिब्रल शिक्षाओं' की परंपरा पर ही विशेष जोर दिया था। जहाँ दुनिया भर से विद्यार्थी व्याकरण, दर्शन, चिकित्सा, राजनीति, गणित, संगीत, खगोलशास्त्र आदि अन्य कई विषयों का अध्ययन करने यहाँ आते थे। एक लिब्रल शिक्षा की सार्थकता इस बात में निहित होती है कि वह एक इंसान में सभी काबिलियतों यथा–बौद्धिक, सामाजिक, भावनात्मक, शारीरिक, नैतिक, सौंदर्यबोध को एक संतुलित और समन्वित रूप में विकसित करती है। लिब्रल शिक्षा का महत्व और उद्देश्य इस बात में निहित है कि यह विद्यार्थियों को विज्ञान और मानविकी, गणित और कला, चिकित्सा और भौतिकी आदि के बीच महत्वपूर्ण रिश्तों को समझने और तमाम ज्ञान के क्षेत्रों में अन्तर्निहित एकात्मकता के प्रति

जागरूकता विकसित करने के काबिल बनाये। लिब्रल शिक्षा का यह दृष्टिकोण स्नातक स्तर के अध्ययन के समय से ही शुरू किया जाए। ये विद्यार्थियों को भविष्य में विभिन्न रोजगार परिदृश्यों के लिए अपनी राह तैयार करने के साथ ही अपने पेशे में दूसरी भूमिकाएँ निभाने में भी सक्षम बनाएगा।

उच्च शिक्षा के लिए नई संस्थागत वास्तुकला : नीति में यह उल्लिखित है कि, गुणवत्तापूर्ण उच्च शिक्षा को सभी की पहुँच तक सुलभ बनाने के लिए तथा शोध को बढ़ावा देने के लिए एक नए संस्थागत ढांचे को निर्मित करने की जरुरत है जिसमे तीन प्रकार के संस्थानों को विकसित किया जाएगा। ये तीनों प्रकार के संस्थान लक्ष्य और कार्य में तो भिन्न–भिन्न होंगे, लेकिन उच्च गुणवत्ता सुनिश्चित करने के लिए तीनों के मध्य समान प्रतिबद्धता होगी। ये तीन प्रकार के संस्थान होंगे–

- टाइप 1– शोध विश्वविद्यालय। ये अनुसंधान और शिक्षण पर समान रूप से ध्यान केंद्रित करेंगे तथा नए ज्ञान सृजन के लिए एवं अत्याधुनिक शोध के लिए प्रतिबद्ध होंगे।
- टाइप 2– शिक्षण विश्वविद्यालय। ये मुख्य रूप से स्नातक, परास्नातक और डॉक्टरेट, पेशेवर, व्यवसायिक, सर्टिफिकेट और डिप्लोमा कार्यक्रमों में उच्च गुणवत्तापूर्ण शिक्षण पर ध्यान केंद्रित करेंगे।
- टाइप 3– कॉलेज। ये संस्थान उच्च गुणवत्तापूर्ण शिक्षण के लक्ष्यों पर विशेष रूप से ध्यान केंद्रित करेंगे।

राष्ट्रीय अनुसंधान संस्थान : यह नीति भारत में अनुसंधान की गुणवत्ता और मात्रा को रूपांतरित करने के लिए देश भर में अनुसंधान और नवाचार को उल्लेखनीय रूप से बढ़ावा देने के लिए राष्ट्रीय अनुसंधान संस्थान (National Research Foundation) की स्थापना की बात करती है जो कि एक स्वायत निकाय होगा। NRF के गठन के द्वारा देश के शिक्षा संस्थानों में, प्रमुखतः विश्वविद्यालयों और महाविद्यालयों के हर संकाय में अनुसंधान हेतु अनुदान और मार्गदर्शन देने, अनुसंधान को प्रोत्साहित करने और साथ–ही–साथ गुणवत्तापूर्ण अनुसंधान के लिए शोधार्थियों की क्षमता बढ़ने का कार्य किया जाएगा। इस संस्थान के 4 प्रमुख विभाग होंगे– विज्ञान, तकनीकी, सामाजिक विज्ञान तथा कला और मानविकी। इसके अतिरिक्त, इस संस्थान की शासन परिषद् को यदि ऐसा लगेगा कि समाज के लाभार्थ हेतु इसमें और भी विभागों (जैसे– स्वास्थय, कृषि, पर्यावरणीय मुद्दे आदि) को जोड़ा जाना चाहिए, तो ऐसा करने का प्रावधान भी इसमें मौजूद होगा। इस संस्थान को 20,000 करोड़ (जी.डी.पी. का लगभग 1 प्रतिशत) वार्षिक अनुदान दिया जाएगा और इसे अपनी वित्त व्यवस्था स्वयं संचालित करने की, नियम बनाने की और क्रियान्वयन की विधियाँ तय करने की स्वतंत्रता प्रदान की जाएगी।

उच्च शिक्षा के समन्वय और विकास के लिए विनियमन : नीति के प्रारूप के अंतर्गत सभी उच्चतर शिक्षा के लिए राष्ट्रीय उच्चत्तर शिक्षा नियामक प्राधिकरण (National Higher Education Regulatory Authority-NHERA) की स्थापना की बात कही गई है। यह एक स्वतंत्र निकाय होगा जो उच्च शिक्षा के लिए कार्य कर रहे सभी नियामकों के स्थान पर, प्रोफेशनल शिक्षा सहित उच्च शिक्षा के लिए एकमात्र नियामक होगा। राष्ट्रीय मूल्यांकन एवं प्रत्यायन परिषद् (NAAC) में बदलाव करते हुए इसे पुनर्निर्मित किया जाएगा और इसको युजीसी (UGC) से अलग करके पूरी तरह से स्वतंत्र और एक स्वायत्त निकाय में बदला जाएगा और सभी विषयों और क्षेत्र में उच्च शिक्षा के सभी संस्थानों की मान्यता या प्रत्यायन की देखरेख की जिम्मेदारी दी जाएगी। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग को उच्च शिक्षा अनुसंधान परिषद् (HEGC) में बदल जाएगा। यह संस्थान प्रोफेशनल शिक्षा सहित पुरे उच्च शिक्षा के क्षेत्र में विकासात्मक अनुदान और फेलोशिप के वित्तीय पोषण के लिए जिम्मेदार रहेगा। इसके अतिरिक्त, वर्तमान में स्थित सभी उच्च शिक्षण संस्थान जैसे कि सामान्य, प्रोफेशनल और व्यावसायिक जो किसी भी अध्ययन के माध्यम से छात्रों को डिग्री या डिप्लोमा प्रदान करते है, को 2030 तक स्वायत्त कर दिया जाएगा।

अन्य महत्वपूर्ण सिफारिशें–

शिक्षण में तकनीक का इस्तेमाल : शिक्षा प्रणाली में उन्नत तकनीकों के प्रयोग हेतु नीति में सुचना एवं संचार के जरिये राष्ट्रीय शिक्षा मिशन की संकल्पना की गई है। शिक्षकों की सुविधा के लिए तकनीक के इस्तेमाल को प्रोत्साहित करने की बात भी नई शिक्षा नीति करती है। इसके लिए कंप्यूटर, लैपटॉप व मोबाइल फोन इत्यादि के जरिये विभिन्न एप्स का इस्तेमाल करके शिक्षण को रोचक बनाया जा सकता है। नीति के अंतर्गत तकनीक को शिक्षकों के विकल्प के रूप में देखने के बजाय सहायक शिक्षण सामग्री के रूप में देखने का सुझाव दिया गया है। इसके अलावा शिक्षण, मूल्यांकन, नियोजन, प्रशासन आदि में सुधार हेतु प्रौद्योगिकी के उपयोग पर विचारों के मुक्त आदान–प्रदान को एक मंच प्रदान करने के लिए एक स्वायत्त निकाय के रूप में राष्ट्रीय शैक्षिक तकनीकी मंच (National Education Technology Forum- NETF) का निर्माण किया जाएगा। इसका उद्देश्य प्रौद्योगिकी को अपनाये जाने और किसी क्षेत्र विशेष में उसके उपयोग से सम्बंधित निर्णयों को सुगम बनाना होगा।

व्यावसायिक शिक्षा : समित्ति द्वारा आंकलित आंकड़ों के अनुसार भारत में 19–24 आयु वर्ग की श्रमशक्ति में से 5 प्रतिशत से भी काम लोगों ने व्यावसायिक शिक्षा प्राप्त की है। जबकि संयुक्त राज्य अमेरिका में यह संख्या 52 प्रतिशत, जर्मनी में 75 प्रतिशत तथा दक्षिण कोरिया में 96 प्रतिशत है। इस स्थिति को देखते हुए नीति के अंतर्गत व्यावसायिक शिक्षा को सभी शैक्षिक संस्थानों– स्कूल, कॉलेज और विश्वविद्यालय के साथ एकीकृत करने

की बात की गई है। व्यावसायिक शिक्षा का शैक्षिक संस्थानों के साथ एकीकरण करने से यह सुनिश्चित होगा कि प्रत्येक छात्र को कम–से–कम एक व्यवसाय में प्रशिक्षण प्राप्त हो। इसके अतिरिक्त, नीति में यह भी उल्लिखित है कि वर्ष 2025 तक उच्च शिक्षण संस्थानों में नामांकित 50 प्रतिशत विद्यार्थियों तक व्यावसायिक शिक्षा का विस्तार किया जाएगा जो कि वर्तमान में 10 प्रतिशत से भी कम है।

वयस्क शिक्षा : जनगणना 2011 के आंकड़ों के अनुसार भारत में 3.26 करोड़ युवा (15–24 आयु वर्ग के) और कुल मिलाकर 26.5 करोड़ वयस्क (15 वर्ष से अधिक आयु के) अशिक्षित है। इस सन्दर्भ में, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् (NCERT) के एक घटक के रूप में एक स्वायत्त केंद्रीय वयस्क शिक्षा संस्थान (Central Institute of Adult Education-CIAE) की स्थापना की जाएगी जिसमे वयस्क शिक्षा के विशेषज्ञ शामिल होंगे। यह संस्थान वयस्क शिक्षा के लिए एक राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रुपरेखा (National Curriculum Framework for Adult Education- NCFAE) विकसित करेगा। वयस्क शिक्षा के लिए सीखने–सीखने की प्रभावी सामग्री तैयार करना और इस शिक्षा हेतु कार्यक्रमों के नियोजन, क्रियान्वयन और निरीक्षण में सहयोग देना इस संस्थान की जिम्मेदारी होगी। केंद्रीय वयस्क शिक्षा संस्थान द्वारा वयस्क शिक्षा के लिए पांच व्यापक क्षेत्र हेतु रुपरेखा तैयार की जाएगी–

- बुनियादी साक्षरता और संख्या ज्ञान,
- महत्वपूर्ण जीवन कौशल,
- व्यावसायिक कौशल,
- बुनियादी शिक्षा, एवं
- सतत शिक्षा।

शिक्षा प्रशासन : शिक्षा के सहज प्रशासन के लिए समिति शिक्षा के लिए एक सर्वोच्च निकाय राष्ट्रीय शिक्षा आयोग (NEC/RSA) के गठन की सिफारिश करती है जिसमे 20–30 सदस्य शामिल होंगे और जिसके अध्यक्ष भारत के प्रधानमंत्री होंगे एवं केंद्रीय शिक्षा मंत्री इस आयोग के उपाध्यक्ष होंगे। इसके अलावा, मानव संसाधन एवं विकास मंत्रालय (MHRD) का नाम बदलकर शिक्षा मंत्रालय (MoE) करने की भी सिफारिश की गई है जिससे मंत्रालय का मूल ध्यान शिक्षा पर केंद्रित हो सके। राष्ट्रीय शिक्षा आयोग देश में शिक्षा के विजन को विकसित करने, इसके क्रियान्वयन, मूल्यांकन और संशोधन के लिए जिम्मेदार रहेगा तथा यह आयोग उस संस्थागत ढांचे का निर्माण और देखरेख भी करेगा जो शिक्षा के विजन को साकार करने में मददगार होंगे।

शिक्षा का वित्तीयन : नई शिक्षा नीति के मसौदे के अंतर्गत सार्वजनिक निवेश के रूप में शिक्षा पर खर्च को 6 प्रतिशत करने की सिफारिश की गई है। ध्यातव्य है कि शिक्षा के लिए सरकारी खर्च कभी भी कुल सकल घरेलु

उत्पाद के 6 प्रतिशत तक नहीं पहुंच पाया है जिसकी अनुशंसा प्रथम शिक्षा नीति (1968) में की गयी थी और जिसे बाद में दूसरी शिक्षा नीति (1986) और 1992 के कार्ययोजना (प्रोग्राम ऑफ एक्शन) में भी दोहराया गया था। इकनॉमिक सर्वे 2017–18 के अनुसार, वर्ष 2017–18 में भारत में शिक्षा पर सरकारी खर्च कुल सकल घरेलु उत्पाद का 2.7 प्रतिशत था जो केंद्र तथा राज्य सरकारों के कुल सरकारी खर्च का 10 प्रतिशत था। प्रस्तावित नीति के अंतर्गत शिक्षा में निवेश को पर्याप्त रूप से बढ़ाने की बात कही गई है। इसके अंतर्गत सालाना 10 प्रतिशत सरकारी खर्च को अगले 10 वर्षों में बढ़ाकर 20 प्रतिशत करने की बात की गई है। इस अतिरिक्त 10 प्रतिशत राशि में से 5 प्रतिशत राशि उच्च शिक्षा में, अनुसंधान हेतु 0.4 प्रतिशत, प्रारंभिक बाल्यावस्था में देखभाल और शिक्षा में 1.4 प्रतिशत करने की बात की गई है।

नीति से संबंधित विवाद तथा चुनौतियां

समिति में किसी भी शिक्षक को शामिल न करना : शिक्षा के सभी स्तरों पर सुधार हेतु बनी समिति में प्राथमिक तथा माध्यमिक स्तर के एक भी शिक्षक को समिति में शामिल नहीं करने से यह सवाल उठना स्वाभाविक ही है कि यह समिति नीति–निर्माण में किस तरह से प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा की जमीनी हकीकत और चुनौतियों को सही रूप में सम्बोधित करेगी। वर्तमान समय में देश में लगभग 80 लाख शिक्षक कार्यरत है जो इस नीति के प्रस्तावों द्वारा सुझाये गए बदलाव की एक बड़ी इकाई साबित होंगे। ऐसे में मूल नीति–निर्माण के दौरान उनकी भागीदारी की उपेक्षा करने से कई ऐसी निहित समस्याएँ सामने नहीं आ पाएंगी जिनका एक शिक्षक को विद्यालय में प्रतिदिन सामना करना पड़ता है। उनकी सक्रिय भागीदारी के बिना विद्यालयी शिक्षा की बुनियादी चुनौतियों के समाधान की अपेक्षा नहीं की जा सकती।

निजी विद्यालयों से विविधता के प्रावधान को कमजोर करना : शिक्षा के अधिकार अधिनियम, 2009 के अंतर्गत निजी विद्यालयों एवं विशेषीकृत विद्यालयों में नजदीकी कमजोर वर्ग (नेबरहुड) और सुविधाहीन समूह के बच्चों के लिए मुफ्त शिक्षा हेतु न्यूनतम 25 प्रतिशत सीटें आरक्षित करने का प्रावधान किया गया था। प्रस्तावित नीति के अंतर्गत इस प्रावधान को प्रभावी नहीं बताते हुए इसे विद्यालयों के लिए बाध्यकारी न रखकर स्वैच्छिक बनाने की बात की गई है। नीति के अंतर्गत यह उल्लिखित है कि, ''निजी विद्यालयों को यह निर्णय करना चाहिए कि वे इसे चाहते है या नहीं। शिक्षा के अधिकार अधिनियम के प्रावधान 12 (1) जैसे बाध्यकारी उपायों के जरिये विद्यालयों पर इसे थोपने की वजह से यह उस रूप में प्रभावी नहीं हो पाया जैसा इससे आशा की गई थी। सही तरीके से कार्य करने और नवाचारों के लिए विद्यालयों को स्वायत्तता प्रदान करने से विद्यालय बेहतर कार्य करने को प्रोत्साहित होंगे।'' मसौदा नीति की यह सिफारिश एक तरह से शिक्षा के

अधिकार अधिनियम के इस प्रावधान के मूल स्वरुप को ही प्रभावित करती है। वर्तमान समय में जब 25 प्रतिशत न्यूनतम सीटों के बाध्यकारी होने के बावजूद भी अधिकांश विद्यालय इसे प्रभावी तरीके से लागु नहीं कर पा रहे हैं तो फिर इसके स्वैच्छिक हो जाने के बाद इसका बेहतर कार्यान्वयन कैसे होगा और शिक्षा में समानता की राह कैसे विकसित होगी यह सोचनीय है।

त्रि–भाषी सूत्र : प्रस्तावित नीति विद्यार्थियों के लिए तीन भाषा को सीखने की बात करती है। इसके अनुसार, राज्य सरकार को एक आधुनिक भारतीय भाषा के अध्ययन की नीति बनानी चाहिए जिसके अंतर्गत हिंदीभाषी राज्यों में हिंदी और अंग्रेजी के अलावा एक दक्षिण भारतीय भाषा को सीखने की तथा गैर–हिंदीभाषी राज्यों में क्षेत्रीय भाषा तथा अंग्रेजी के अतिरिक्त हिंदी के अध्ययन को प्राथमिकता दी जानी चाहिये। स्वाभाविक है कि इससे भाषा की अस्मिता को लेकर प्रश्न उठेंगे।चूँकि भाषा संस्कृति का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है और भाषा के साथ अस्मिता और अस्तित्व का सवाल भी जुड़ा होता है इसलिये स्वाभाविक तौर पर भाषायी रूप से अल्पसंख्यक वर्ग के लोग इससे खतरा महसूस करेंगे। बहरहाल, यदि इन सब मुद्दों को छोड़ भी दिया जाए तो यहाँ यह प्रश्न भी उठता है कि एक सामान्य विद्यार्थी को तीन भाषाओं को सिखने के लिए क्यों बाध्य किया जाना चाहिये जबकि विद्यालय से निकलने के बाद उसकी कोई विशेष उपयोगिता नहीं रह जाएगी। इतनी ऊर्जा नई तकनीक और कौशल को सीखने में खर्च करने की बजाय भाषा जो कि मूल रूप में तो किसी भी विषय को समझने और स्वयं को अभिव्यक्त कर पाने का एक माध्यम भर है, को सीखने में तीन गुना अधिक ऊर्जा क्यों खर्च की जाए ?

निष्कर्ष : शिक्षा जैसे व्यापक विषय पर एक समग्र नीति के अंतर्गत कुछ सीमाओं और चुनौतियों का होना स्वाभाविक ही है। जरुरी यह है कि इस पर एक व्यापक चर्चा आयोजित हो जिसमे इन चुनौतियों से निपटने के रास्ते तलाशे जा सकें। शिक्षा से संबंधित सभी प्रमुख हितधारकों को इस चर्चा में प्रमुखता से शामिल किया जाए जिससे तमाम ऐसे विचार सामने आ सके जिनसे निहित चुनौतियों को दूर किया जा सकें। साथ ही जिस प्रकार नीति–निर्माण के क्रम में प्राथमिक तथा माध्यमिक शिक्षकों को शामिल न करके उनके अनुभवों की अनदेखी की गई है, अब उन्हें इससे संबंधित परिचर्चा में प्रमुखता दी जाए एवं देश–विदेश के प्रमुख शिक्षाविदों और विद्वानों के परामर्श को भी महत्व दिया जाए। अंतिम रूप में तैयार नीति के अंतर्गत किसी भी ऐसे प्रावधान को सम्मिलित करने से बचा जाए जो शिक्षा में समनता और समावेशन जैसी महत्वपूर्ण अवधारणाओं को कमजोर करते हो। भारत जैसे विविधतापूर्ण देश में त्रि–भाषा जैसे फॉर्मूले का विरोध स्वाभाविक ही है। अतः ऐसे किसी भी व्यापक बदलाव से बचना चाहिये जिसे किसी बड़े नागरिक समूह पर बाध्यकारी रूप से थोपना पड़े तथा जिससे उसे अपनी अस्मिता पर ही खतरा महसूस होने लगे।

हालाँकि अभी यह केवल नीति का प्रारूप है जिसे अंतिम स्वरुप लेने में अभी कई प्रक्रियाओं से गुजरना बाकी है। जरुरी यह है कि इन सभी प्रक्रियाओं से गुजरकर नई शिक्षा नीति जल्द ही एक औपचारिक नीतिगत स्वरुप धारण करे जो नए भारत के विकास में एक महत्वपूर्ण कुंजी साबित हो। सहस्राब्दि विकास लक्ष्य संख्या 4 के अनुसार भारत को 2030 तक सार्वभौमिक गुणवत्तायुक्त और आजीवन शिक्षा के लक्ष्य को हासिल करना है। निश्चित तौर पर नई शिक्षा नीति इस दिशा में मील का पत्थर साबित होगी।

सन्दर्भ :

1. प्रारूप राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2019. https://mhrd.gov.in/sites/upload_files/mhrd/files/Draft_NEP_2019_HI.pdf
2. Government of India. *All India Survey on Higher Education 2017-18.* Ministry of Human Resource Development, Department of Higher Education. New Delhi. 2018. https://mhrd.gov.in/sites/upload_files/mhrd/files/statistics-new/AISHE2017-18.pdf
3. 13वीं एन्युअल स्टेटस ऑफ एजुकेशन रिपोर्ट (असर 2018) http://img.asercentre.org/docs/ASER%202018/Release%20Material/aser2018pressreleasehindi.pdf
4. Basu, Sreeradha D. "Overall representation up but India drops out of top 300 in global rankings." The Economic Times, September 12, 2019. Accessed October 21, 2019. https://economictimes.indiatimes.com/industry/services/education/indian-universities-out-of-top- 300-in-global-rankings/articleshow/71092191.cms?from=mdr
5. Draft National Education Policy 2019. PRS Legislative Research. https://www.prsindia.org/report-summaries/draft-national-education-policy-2019
6. Jebaraj, Priscilla. "Draft National Education Policy proposes formal education from age of three." The Hindu, June 09, 2019. Accessed October 17, 2019. https://www.thehindu.com/education/draft-national-education-policy-proposes-formal-education-from-age-of-three/article27706234.ece
7. Chopra, Ritika. "Explained: How education can be flexible." The Indian Express, June 11, 2019. Accessed October 17, 2019. https://indianexpress.com/article/explained/simply-put-how-education-can-be-flexible-national-education-policy-5774128/

***

पटना नगर में प्रदूषण : एक अध्ययन

दीपक रंजन *

वर्तमान युग में प्रदूषण एक विश्वव्यापी समस्या बनकर उभरा है। यद्यपि पारिस्थितिकी तंत्र में संतुलन कायम करने की क्षमता एक स्तर तक स्वतः होती है। तथापि प्राकृतिक एवं मानवीय कारकों के अनुचित हस्तक्षेप से जब पर्यावरण के भौतिक, रासायनिक एवं जैविक गुणों में अवांछनीय परिवर्तन होता है तो उसे पर्यावरण प्रदूषण कहा जाता है। प्रदूषण के प्रसार पर गौर किया जाय तो नगरीय क्षेत्र में इसे व्यापक एवं गंभीर समस्या के रूप में स्वीकार किया जाता है। भारत की प्राचीन नगरों में एक पटना भी आज प्रदूषण के इसी समस्या से दो–चार होता नजर आ रहा है, जिसका त्वरित समाधान वर्तमान समय की अपरिहार्यता है।

भूमिका : पारिस्थितिकी तंत्र में संतुलन कायम करने की क्षमता एक स्तर तक स्वतः होती है तथापि प्राकृतिक एवं मानवीय कारकों के अनुचित हस्तक्षेप से जब पर्यावरण के भौतिक, रासायनिक एवं जैविक गुणों में अवांछनीय परिवर्तन होता है तो उसे पर्यावरण प्रदूषण कहा जाता है। 2011 के जनगणना के अनुसार पटना नगर की जनसंख्या 25 लाख थी। यहाँ जनसंख्या वृद्धि के कारणों में अपकर्ष तथा अवकर्ष कारकों का महत्वपूर्ण स्थान है। जनसंख्या की वृद्धि जिस गति से यहाँ हुई है, उस अनुपात में संरचनात्मक सुविधाओं का विकास नहीं हो सका है। जिस कारण से यह नगर वायु प्रदूषण, जल–प्रदूषण, ध्वनि प्रदूषण तथा भूमि प्रदूषण जैसे समस्याओं से ग्रस्त हो चुका है। यह समस्या यहाँ निवास करने वाले मानवों एवं अन्य प्राणियों के लिए घातक साबित हो रहा है।

अध्ययन क्षेत्र : पटना जो बिहार की राजधानी है, पूर्वी भारत का दूसरा सबसे बड़ा नगर भी है। वर्तमान में पटना नगर 72 वार्डों में बंटा हुआ है। पटना भारत के प्राचीनतम नगरों में से एक है तथा गंगा नदी के किनारे अवस्थित है। यह प्राचीन समय से ही प्रशासनिक, शैक्षणिक, दार्शनिक, वाणिज्यिक एवं औद्योगिक गतिविधियों का केन्द्र रहा है। इन कारणों से जनसंख्या का विस्तार तीव्र गति से हो रहा है। फलस्वरूप गतिशीलता भी तेजी से बढ़ी है। जिसके कारण नगर का अनियोजित विस्तार हो रहा है। लेकिन पर्यावरणीय मानकों का उचित ढंग से पालन नहीं किया जा रहा है। जिसके कारण विभिन्न प्रकार के प्रदूषण जैसे–वायु प्रदूषण, जल प्रदूषण, ध्वनि प्रदूषण तथा भूमि प्रदूषण जैसे समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। जनसंख्या बढ़ने के साथ–साथ यहाँ वाहनों की संख्या काफी तीव्र गति

* शोध-छात्र, पटना विश्वविद्यालय, यू.जी.सी. नेट, भूगोल विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना

से बढ़ी है। जिससे दिनों–दिन ट्रैफिक गहनता, व्यस्तता और जाम के कारण वायु एवं ध्वनि प्रदूषण की समस्या गंभीर होती जा रही है।

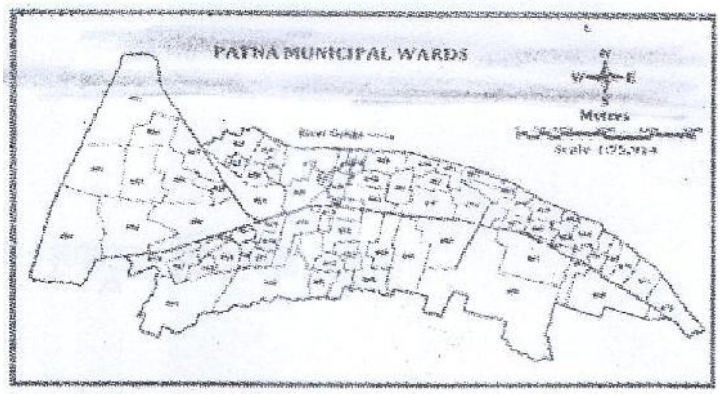

विधि तंत्र : प्रस्तुत अध्ययन स्व सर्वेक्षण तथा अनुभवाश्रित विधि का उपयोग किया गया है। इस अध्ययन में उपलब्ध में ऑकड़े प्राथमिक स्रोतों से लिया गया है। अध्ययन क्षेत्र के विभिन्न भागों का चयन यादृच्छिक विधि द्वारा किया गया है। तथा प्रदूषण मापक द्वारा प्रदूषण के स्तर को मापा गया है।

ध्वनि प्रदूषण : मनुष्य के लिए आदर्श क्षमता 70 डेसीबल मानी जाती है। इस सीमा से अधिक ध्वनि मनुष्य के लिए हानिकारक है। इस मानक से अधिक मानव के लिए अशांति और बेचैनी उत्पन्न करता है। इस प्रकार 70 डेसीबल से अधिक उत्पन्न ध्वनि को ध्वनि प्रदूषण के नाम से जाना जाता है। पटना नगर में ध्वनि प्रदूषण का सबसे बड़ा कारण वाहनों से उत्पन्न तथा हार्न, एवं भीड़ है।

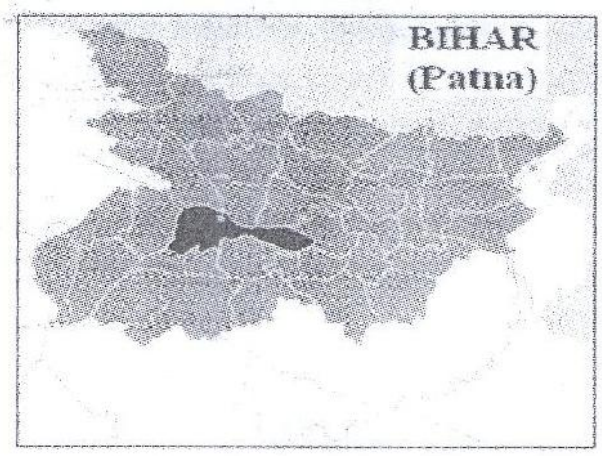

पटना नगर में ध्वनि प्रदूषण के प्रमुख क्षेत्र :

क) मीठापुर बस स्टैंड–यह एक अंतर्राजीय बस पड़ाव है। यहाँ बिहार के प्रायः सभी जिलों एवं दूसरे राज्यों से प्रतिदिन सैकड़ों बसें आती–जाती रहती है। यहाँ बसों का रखरखाव व्यवस्थित ढंग से न होने के कारण जाम का सामना करना पड़ता है। जिससे ध्वनि प्रदूषण के साथ–साथ वायु प्रदूषण अधिक होती है। वाहन चालकों में जागरूकता एवं सही प्रशिक्षण के नहीं होने से अनावश्यक हार्न का उपयोग भी ध्वनि प्रदूषण को बढ़ाने में मदद करता है। मीठापुर बस स्टैंड से लेकर महात्मा गाँधी सेतु तक वाहनों का जाम अक्सर लगा रहता है। यह स्थिति भी इस क्षेत्र में ध्वनि प्रदूषण को बढ़ाने में मदद करता है। इस क्षेत्र में ध्वनि प्रदूषण का स्तर 90 से 100 डेसीबल रहता है।

ख) स्टेशन जंक्शन गोलंबर– रेलवे स्टेशन के सामने वाला रोड पर वाहनों की लंबी कतार आटो रिक्शा का अव्यवस्थित ठहराव एवं फुटपाथी दुकानदारों द्वारा अनावश्यक रूप से सड़कों का अतिक्रमण ध्वनि प्रदूषण एवं वायु प्रदूषण को बढ़ावा देता है। इस क्षेत्र में ध्वनि प्रदूषण की मात्रा सुबह 10 बजे से शाम 8 बजे रात्रि तक 80 से 90 डेसीबल के बीच रहता है। यह स्थिति ध्वनि प्रदूषण की ओर संकेतित करता है। जिसके कारण मनुष्यों में रक्तचाप, तनाव, बहरेपन जैसे रोगों को उत्पन्न करता है।

ग) अशोक राजपथ–इस राजपथ के किनारे पटना मेडिकल कॉलेज अस्पताल, पटना कॉलेज, साईंस कॉलेज, बी॰ एन॰ कॉलेज जैसे प्रमुख संस्थान स्थित हैं। यह राजपथ अत्यंत संकरा है व अतिक्रमण का शिकार है जिसके कारण वाहनों का जाम हमेशा लगा रहता है। वाहनों के जाम से वाहनों के अतिरिक्त आवाज एवं धुँआं जिसमें कार्बन मोनोऑक्साइड तथा कार्बन डायऑक्साइड जैसे हानिकारक गैस उत्सर्जित होते रहते हैं। यह गैस स्वास्थ्य के लिए काफी खतरनाक होती है। इस क्षेत्र में ध्वनि प्रदूषण का स्तर सुबह 9 बजे से 8 बजे रात्री तक 80 डेसीबल से अधिक रहता है।

घ) डाक बंगला चौराहा–यह चौराहा क्षेत्र पटना नगर का हृदय–स्थली के नाम से जाना जाता है। इस चौराहे से पटना के विभिन्न क्षेत्रों में वाहनों एवं भीड़ का आना–जाना लगा रहता है। पुनः इस क्षेत्र से विभिन्न संगठनों द्वारा आयोजित जुलूस अक्सर गुजरते रहते हैं। जिनके साथ लाउडस्पीकर होते हैं। इस लाउडस्पीकर से तीव्र गति से ध्वनि निकलता रहता है, यह आवाज मानक सीमा से अधिक होता है। इसके अतिरिक्त जुलूस के निकलने से वाहनों की लंबी कतार लग जाती है, जो ध्वनि प्रदूषण को बढ़ावा देता है। यहाँ ध्वनि प्रदूषण का स्तर औसत 100 डेसीबल रहता है।

ड़) पटना सिटी क्षेत्र –यह पटना का पुराना व्यापारिक एवं धार्मिक गतिविधियों का क्षेत्र है। लेकिन इस क्षेत्र से गुजरनेवाले सड़क अत्यंत ही संकरे हैं। सड़क के संकीर्ण एवं अतिक्रमण होने से जाम की समस्या प्रायः बनी रहती है। यह क्षेत्र भी ध्वनि प्रदूषण का शिकार रहता है।

च) राजा बाजार क्षेत्र –इंदिरा गाँधी आयुर्विज्ञान संस्थान से लेकर जगदेव पथ तक का क्षेत्र इसमें शामिल है। इस क्षेत्र के अंतर्गत कई रिहायशी कॉलोनियाँ स्थित है, जिसमें प्रायः उच्च आय वर्ग के लोग रहते हैं। इनके पास चार पहिया व अन्य वाहन होते हैं। कार्यालय आने–जाने के समय में अर्थात सुबह 9 से 11 बजे तक एवं शाम के 4 से 7 बजे के बीच वाहनों के अत्यधिक भीड़ तथा जाम के कारण ध्वनि तथा वायु प्रदूषण की समस्या बन जाती है। यहाँ ध्वनि प्रदूषण का स्तर 70 से 90 डेसीबल के बीच रहता है।

वायु प्रदूषण : वायु के भौतिक, जैविक एवं रासायनिक गुणों में अवांछनीय परिवर्तन ही वायु प्रदूषण कहलाता है। दूसरे शब्दों में वायु के निश्चित संघटन में हानिकारक तत्वों के द्वारा किया गया परिवर्तन वायु प्रदूषण कहलाता है। प्रत्येक व्यक्ति प्रतिदिन बाईस हजार बार साँस लेता है। वायु में उपस्थित ऑक्सीजन मनुष्य के रक्त के संवहन के लिए उत्तरदायी होता है। इसे प्राण–वायु भी कहा जाता है। वायु में प्रदूषक तत्वों की मात्रा बढ़ने से समुची जैविक प्राणियों के स्वास्थ्य पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

पटना शहर के सड़कों पर दौड़ते हुए वाहनों एवं औद्योगिक कारखानों से निकले विषैले गैस जैसे– कार्बन डाईऑक्साइड, नाइट्रस ऑक्साइड, सल्फर डाईऑक्साइड, कार्बन मोनोऑक्साइड आदि से वायु कही गुणवत्ता पर हानिकारक प्रभाव पड़ता है। यह गैस जैविक प्रक्रिया का हिस्सा बनकर जीवों के शरीर में प्रवेश करता है तथा शरीर के अंदर हानिकारक प्रभाव डालता है। परिणामस्वरूप कई प्रकार की बीमारियाँ उत्पन्न होती है। जैसे– साईनोसाइटिस– इसमें सिर के नस में संक्रमण होता है। कंजेक्टिवाइटिस– इस रोग में आँखों में जलन होती है एवं आँख अत्यधिक लाल हो जाता है। अस्थमा– इसमें खाँसी होती है एवं सांस लेने में तकलीफ होती है। डर्मेटाईटिस– इस रोग में चर्म से संबंधित समस्या उत्पन्न होती है। भारी धातु और खतरनाक रसायनों से निकलने वाले प्रदूषक पी॰ एम॰ 0.25 से मानव भ्रूण का विकास रूक जाता है, गर्भावस्था के पहले माह में गर्भ गिरने का डर रहता है, इसके घातक प्रभाव से कम–वनज के बच्चे भी पैदा होते हैं।

डॉक्टर दिवाकर तेजस्वी के अनुसार– वायु में कार्बन मोनोऑक्साइड तथा धूलकण बढ़ने से पटना नगर के स्कूली बच्चे तथा बूढ़े सबसे अधिक प्रभातिव होते रहे हैं। बच्चे तथा बूढ़ों में नाक से हमेशा पानी आना, अस्थमा, टी॰ बी॰, एलर्जी, अनिद्रा, चिड़चिड़ापन जैसी समस्याएं आम होने लगी है। ऑटो रिक्शा से जानेवाले बच्चे इससे अधिक प्रभावित हो रहे हैं।

परिवहन विभाग के अनुसार सामान्यतः मोटर वाहन की आयु 15 वर्ष होती है, अर्थात् 15 वर्ष तक मोटर वाहन वायु में प्रदूषक तत्व प्रायः नहीं फैलाते हैं। लेकिन वास्तविकता यह है कि पटना के सड़कों पर हजारों ऐसे वाहन हैं, जो 15 वर्ष के अपने निर्धारित आयु को पूरा कर चुके हैं, और सड़कों पर अभी भी बेरोकटोक दौड़ रहे हैं। ये वाहन ही निर्धारित मानक से अधिक प्रदूषण फैलाते हैं।

पटना नगर और उससे सटे औद्योगिक क्षेत्र में निर्मित कारखानों में अधिकांशतः पुराने तकनीक पर आधारित हैं, ये कारखने पर्यावरणीय मानकों का पालन नहीं करते हैं। उदाहरणस्वरूप फतुहा औद्योगिक क्षेत्र। पुनः पटना सिटी से सटे गंगा किनारे बड़ी संख्या में ईंट भट्टा उद्योग विकसित है। इस उद्योग के द्वारा पर्यावरणीय मानकों का पालन नहीं किया जाता है। चिमनियों से निकलनेवाले धुआँ से वायुमंडल का निचला भाग सबसे अधिक प्रभावित होता है। फलतः पटना वासियों के स्वास्थ्य पर इसका बुरा प्रभाव पड़ता है।

जल प्रदूषण : विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार– जब जल में प्राकृतिक एवं मानवीय कारणों से कोई बाहरी सामग्री मिलकर जल के स्वाभाविक व नैसर्गिक गुणों में परिवर्तन लाती है, जिसका नकारात्मक प्रभाव प्राणियों के स्वास्थ्य पर पड़ता है, उसे जल प्रदूषण कहा जाता है। पटना नगर के जल प्रदूषण के प्रमुख कारणों में शहर के गंदे पानी, कचरे आदि को नाले के माध्यम से गंदा पानी में बिना उपचारित किए गिराया जाना है। इसके अलावे अधजले शवों का गंगा नदी में बिना उपचारित किए गिराया जाना है। इसके अलावे अधजले शवों का गंगा नदी में निपटान, गंदे कपड़ों की सफाई से निकले दूषित पानी, पशुजनित विशिष्ट पदार्थों का प्रवाह भी इस नगर के जल प्रदूषण का कारण है। पटना नगर में समुचित अपवाह तंत्र का घोर अभाव है। फलस्वरूप वर्षा)तु में अक्सर पटना नगर के विभिन्न गलियों में गंदगी का ढेर लग जाता है। एशिया के सबसे बड़े कॉलोनियों में एक कंकड़बाग भी थोड़े से वर्षा होने पर जलमग्न हो जाता है। जल प्रदूषण के समस्या के कारण पटना वासियों को जल जनित बीमारियों जैसे– पीलिया, टाईफाइड, गैस्ट्रोइंटर्राइटिस आदि गंभीर स्वास्थ्य समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है।

भूमि प्रदूषण : विभिन्न शहरों की तरह पटना नगर की भूमि प्रदूषण से अछूता नहीं है। पटना शहर में भूमि प्रदूषण का मूल कारण कचरों के निपटान का उचित व्यवस्था का नहीं होना है। यहाँ कचरों के अंबार को विभिन्न कॉलोनियों में आसानी से देखा जा सकता है। जैसे– जमाल रोड में साकेत प्लाजा के सामने, ट्रांसपोर्ट नगर, मीठापुर सब्जी मार्केट तथा बस स्टैंड क्षेत्र आदि। जागरूकता की कमी के कारण लोगों द्वारा प्लास्टिक व पोलिथीन का इस्तेमाल कर यत्र–तत्र छोड़ देने से भी भूमि प्रदूषण बढ़ता जा रहा है।

प्रदूषण को रोकने व इससे बचने के उपाय :

- सड़कों का चौड़ीकरण तथा अतिक्रमण को हटाकर,
- ट्रैफिक नियमों का सख्ती से पालन,
- सड़क पर निकलने से पहले मास्क का उपयोग,
- पार्किंग स्थल का समुचित विकास,
- सड़क के किनारे व बीच में हरित पेटी को विकसित करना,
- प्रदूषण फैला रहे वाहनों को हटाने की समुचित व्यवस्था करना,

- अपवाह तंत्र को दुरूस्त करना,
- गंदे जल को विभिन्न प्रक्रियाओं, जैसे– यांत्रिक, रासायनिक एवं जैविक विधियों का प्रयोग,
- पर्यावरणीय प्रभाव मूल्यांकन कार्यक्रम का समुचित कार्यान्वयन कर,
- अधिक से अधिक लाईऑवर का निर्माण,
- प्रदूषण के खतरे के प्रति जागरूकता फैलाकर, आदि।

निष्कर्ष : पटना नगर का विकास बिहार के राजधानी, प्रशासनिक, शैक्षणिक, दार्शनिक, वाणिज्यिक एवं औद्योगिक गतिविधियों के केन्द्र के रूप में हुआ है। इस कारण से इसकी जनसंख्या तीव्र गति से बढ़ी है। लेकिन जनसंख्या वृद्धि की तुलना में आधारभूत संरचनाओं का विकास नहीं हो पाया है। संरचनात्मक सुविधाओं के विकास नहीं होने के कारण पटना नगर को प्रदूषण जैसे गंभीर पर्यावरणीय समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। प्रस्तुत शोधपत्र में बताए गए उपायों के आलोक में इस समस्या पर काफी हद तक नियंत्रण पाया जा सकता है। हाल में वर्तमान सरकार द्वारा अनेक लाईऑवर के निर्माण एवं हरित पेटी के विकास में उठाए गए कदम इस दिशा में सराहनीय कदम हैं। प्रदूषण जैसे समस्याओं के समाधान में जागरूकता एवं स्वयंसेवी संस्थाओं का सहयोग काफी कारगर साबित हो सकता है।

सन्दर्भ :

1. पंडित बाढू एवं गुप्ता, अनिल कुमार, ''बिहार का भौगोलिक अध्ययन'' बिहार में पर्यावरण अवनयन, आगरा : साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, 2006, पेज : 203–210
2. वर्णवाल कुमार महेश : ''भूगोल एक समग्र अध्ययन'', कोस्मोस पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 2012, पेज : 207
3. झा एवं श्रीमाली : ''प्राचीन भारत का इतिहास'', हिन्दी मा॰ कार्या॰ निदेशालय, दिल्ली : 1996, पेज : 164
4. ज्योग्राफिकल प्रॉस्पेक्टिव, 2012: द एसोसिएसन ऑफ ज्योग्रर्फस, बिहार एण्ड झारखंड, पी॰यू॰, पटना, पेजः 200–204
5. ''जागो पटना'' हिन्दुस्तान, पटना, 22 दिसंबर 2013, पेज : 1
6. ''दमा, टी.बी. बांट रहा ट्रैफिक जाम'', हिन्दुस्तान, पटना, 24 दिसंबर 2013, पेज : 9
7. ''यातायात और शिक्षा के प्रति जागरूकता'', प्रभात खबर, पटना, 30 दिसंबर 2013, पेज : 5
8. जीव विज्ञान, एन. सी. आई. टी., नई दिल्ली, 2003, कक्षा 12, भाग 2, पेज : 308
9. भारत 2009, प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, पेज : 322

***

बिहार में पाश्चात्य शिक्षा का विकास : एक अवलोकन

डॉ. आलोक कुमार सिन्हा *

प्राचीन काल से ही बिहार शिक्षा के विश्व प्रसिद्ध केन्द्र के रूप में विख्यात रहा है। इस काल में बिहार के नालंदा, ओदंतपुरी तथा विक्रमशिला शिक्षा के प्रमुख केन्द्र रहे हैं। मध्यकाल में बिहार के पटना, बिहारशरीफ तथा भागलपुर क्षेत्र शिक्षा के केन्द्र के रूप में प्रसिद्ध रहा है। इस काल में फारसी में उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए भी विद्यालयों की स्थापना की गई थी।

इस काल में शिक्षा का विकास मूलतः राजाओं, जमींदारों तथा समाज के धनाढ्य वर्ग के लोग द्वारा दिये गय व्यक्तिगत दान के ऊपर निर्भर करता था।

अंग्रेजों के भारत आगमन के साथ ही भारत में पाश्चात्य शिक्षा की शुरुआत हुई। आधुनिक भारत में शिक्षा के विकास में 1813 का वर्ष महत्त्वपूर्ण रहा। 1813 के चार्टर्ड एक्ट के तहत गवर्नर जनरल को भारत में शिक्षा के विकास पर एक लाख रुपये खर्च करने का अधिकार दिया गया। किन्तु इस योजना पर अमल नहीं किया जा सका।

बिहार में आधुनिक शिक्षा का प्रारंभ 1835 ई० में हुआ। मैकाले प्रस्ताव के आधार पर पटना में एक अंग्रेजी स्कूल की स्थापना की गई। आगे 1835 ई० में ही पूर्णिया, बिहारशरीफ, भागलपुर, आरा, छपना आदि जिलों में जिला स्कूल की स्थापना की गई तथा 1863 ई० में देवघर, मोतिहारी, हजारीबाग तथा चाईबासा में भी जिला स्कूल की स्थापना की मंजूरी प्राप्त हुई।

1854 ई० में चार्ल्स वुड की सिफारिश के आधार पर जनवरी 1858 में कलकत्ता विश्वविद्यालय की स्थापना की गई। वुड डिस्पैच में व्यावसायिक तथा तकनीकी शिक्षा के महत्तव को ध्यान में रखकर बिहार में भी अनेक कॉलेजों की स्थापना की गई।

इसी क्रम में 9जनवरी, 1863 ई० को पटना कॉलेज की स्थापना की गई तथा इसके कुछ समय पश्चात् मुजफ्फरपुर, मुंगेर, रांची तथा हजारीबाग आदि नगरों में भी कॉलेज स्थापित किए गए।

बिहार में उच्च शिक्षा के विकास में 1917 ई० में स्थापित पटना विश्वविद्याालय का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। फिर विज्ञान संबंधी शिक्षा देने के उद्येश्य से 1928 ई० में पटना सायंस कॉलेज तथा 1925 ई० में पटना मेडिकल कॉलेज (प्रिंस ऑफ वेल्स कॉलेज) एवं 1947 ई० में दरभंगा मेडिकल कॉलेज की स्थापना की गई।

---

* नेट-जे.आर.एफ. (इतिहास), इतिहास विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना

1917 ई० में गहित सेडलर आयोग ने विज्ञान प्रौद्योगिकी से संबंधित व्यावसायिक कॉलेज खोलने की सिफारिश की। हालांकि बिहार में इस आयोग की सिफारिश की पूर्व ही 1902 ई० में बिहार के समस्तीपुर मे एक अमेरिकी नागरिक हेनरो फिलिप्स के अनुदान से एग्रीकल्चरल रिसर्च उद्येश्य कृषि के क्षेत्र में अनुसंधानों को बढ़ावा देना था।

पशुओं के विकास के लिए 1930 ई० में पटना में वेटनरी कॉलेज तथा खनिज संसाधनों के उचित दोहन का प्रबंधन करने के उद्देश्य से धनबाद में इंडियन स्कूल ऑफ माइन्स' की स्थापना हुई। साथ ही इंजीनियरिंग की शिक्षा के लिए पटना इंजीनियरिंग कॉलेज की स्थापना की गई। आधुनिक भारत में शिक्षा के विकास में ब्रिटिश सरकार के अतिरिक्त स्वयंसेवी संस्थाओं तथा प्रमुख व्यक्तियों ने भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। ब्रह्म समाज के तत्वाधान में पटना में राममोहन राय सेमेनरी तथा आर्य समाज द्वारा वैदिक शिक्षा के पुनरूत्थान हेतु बिहार के अनेक क्षेत्रों में डी.ए. वी. स्कूलों की स्थापना की गई।

मुसलमानों में शिक्षा के प्रसार के लिए बिहार के मुजफ्फपुर में 1872 ई. में साइंटिफिक सोसाइटी की स्थापना इमदाद अली खां द्वारा की गई तथा पटना में मोहम्मडन एजुकेशनल सोसाइटी का गहन किया गया। जिसके तत्त्वाधन में पटना सिटी में 1886 ई. में मोहम्मडन एंग्लो–अरेबिक स्कूल की स्थापन की गई। नारी शिक्षा के विकास के लिए भी बिहार में कई स्तर पर प्रयास किए जा रहे थे। नारी शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए 1847 ई० में पटना में संत जोसेफ स्कूल की स्थापना की गई। 1867 ई. तक दो अन्य बालिका स्कूलों की भी स्थापना हुई।

1914 ई. में बिहार एवं उडीसा की सरकार के संयुक्त प्रयास से नारी शिक्षा की वास्तविक स्थिति की पड़ताल करने के उद्येश्य से एक समिति गहित की गई। इस समिति ने बिहार में महिलाओं की उच्च शिक्षा की स्थिति को मजबूत हेतु बांकीपुर तथा कटक के कन्या विद्यालयों में ही इंटरमीडिएट की कक्षाएँ चलाने की सिफारिश की। इस समिति के अनुसार प्रत्येक कमिश्नरी में कम से कम एक कन्या महाविद्यालय खोलने की सिफारिश की गई।

1929 ई. में गठित हार्टोग आयोग ने बिहार में स्त्रियों की शिक्षा के विषय में निम्न विचार व्यक्त किए –

- 25 लाख लड़कियों की आबादी में से शिक्षा पाने वाली लड़कियों की संख्या महज एक लाख सोलह हजार थी।
- कुल एक लाख सोलह हजार शिक्षा प्राप्त करने वाली लड़कियों में भी एक लाख दस हजार प्राथमिक स्तर की शिक्षा से संबद्ध हैं तथा माध्यमिक स्तर की शिक्षा में कुछ गिनी–चुनी हिन्दू एवं ईसाई महिलाएँ है, जबकि अगर उच्च शिक्षा की बात की जाए तो प्रांत की हालत काफी दयनीय है।

किंतु अब स्थितियाँ बदल रही थी तथा सांस्कृतिक जागरण के कुछ तत्त्व नजर आने लगे थे। बदलते समय के साथ इसी शिक्षा पद्धति ने बिहार में नवीन विचारों तथा वैज्ञानिक प्रवृत्तियों के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

आधुनिक काल में बिहार में तकनीकी शिक्षा का विकास : बिहार में तकनीकी शिक्षा के विकास में सरकारी तथा व्यक्तिगत स्तर पर प्रयास किये गये। राज्य में तकनीकी शिक्षा का विकास पाश्चात्य शिक्षा के विकास के परिणामस्वरूप संभव हुआ। राज्य के पहले तकनीकी संस्थान की स्थापना 1872 ई० में मुजफ्फरपुर में 'बिहार साइंटिफिक सोसाइटी' के रूप में हुई। इस संस्थान की स्थापना का उद्देश्य मुस्लिम समाज को पश्चिमी प्रौद्योगिकी से परिचित कराकर उन्हें समाज की मुख्यधारा में लाना था। इन्हीं प्रयासों को आगे बढ़ाते हुए 1873 ई. में इसी संस्थान की एक शाखा पटना में भी खोली गई।

बिहार में तकनीकी शिक्षा के विकास में राज्य के समस्तीपुर जिले के पूसा में स्थापित 'अनुसंधान फार्म' एक प्रस्थान बिन्दु था। प्रारंभ में इसकी स्थापना का उद्देश्य अच्छी नस्ल के घोड़ों को तैयार करना था। आगे चलकर लार्ड कर्जन के शासनकाल में 1904 ई. में यह 'पूसा कृषि विश्वविद्यालय' के नाम से जाना गया। यहाँ कृषि क्षेत्र में शोध एवं उत्पादन क्षमता में विकास के लिए अनुसंधान कार्य किया जाता है।

राज्य में प्रौद्योगिकी शिक्षा के विकास में 1886 ई. का वर्ष उल्लेख की गई है। इसी वर्ष पटना में सर्वे ट्रेनिंग स्कूल की स्थापना हुई, जिसका उद्देश्य भूमि सर्वेक्षण के लिए योग्य व्यक्तियों को तैयार करना था।

1886 ई. के पश्चात् इस स्कूल में इंजीनियरिंग से संबंधित पाठ्यक्रम जोड़ दिया गया तथा इसका नाम बदलकर 'बिहार स्कूल ऑफ इंजीनियरिंग' कर दिया गया। वर्त्तमान में यह संस्था NIT संस्थान के रूप में कार्यरत है। 1924 ई. से यहाँ स्नातक स्तर की इंजीनियरिंग की शिक्षा दी जाने लगी। फिर आगे भागलपुर के सबौर तथा मुजफ्फरपुर में भी इंजीनियरिंग कॉलेज की स्थापना की गई।

इस समय तक बिहार में तकनीकी शिक्षा के महत्त्व को स्वीकार करने लगे फलस्वरूप 1917 में पटना विश्वविद्यालय की स्थापना के पश्चात् इसी विश्वविद्यालय के विज्ञान विभाग को 15 नवंबर 1928 ई० को नाम बदल कर सायंस कॉलेज कर दिया। आगे इससे संबद्ध भौतिकी, रसायन, जन्तुविज्ञान, भूविज्ञान तथा सांख्यिकी विभाग की स्थापना की गई। इस कॉलेज में सभी विषयों में संबंधित प्रयोगशालाएँ काफी उच्च स्तर की थी, तो कई मामलों में राष्ट्रीय स्तर की थी।

कृषि क्षेत्र से संबंधित अन्य विश्वविद्यालयों में तिरहुत कॉलेज ऑफ एग्रीकल्चर, बिहार एग्रीकल्चर कॉलेज (सबौर), बिहार वेटनरी कॉलेज आदि का नाम उल्लेखनीय है।

देश की आजादी के बाद समस्तीपुर स्थित कृषि विश्वविद्यालय का नाम बदलकर राजेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय कर दिया गया तथा वर्त्तमान समय में यह भारत के अग्रणी विश्वविद्यालय के रूप में विख्यात है।

बिहार का भागलुपर क्षेत्र टसर सिल्क के उत्पादन के लिए प्रसिद्ध है। इसीलिए इसे बढ़ावा देने के उद्देश्य से यहाँ 'बिहार इंस्टीट्यूट ऑफ सिल्क एंड टेक्सटाइल्स' की स्थापना की गई।

चिकित्सा क्षेत्र में अनुसंधान को बढ़ावा देने के उद्देश्य से कई मेडिकल कॉलेजों की स्थापना की गई–इनमें पटना मेडिकल कॉलेज, दरभंगा मेडिकल कॉलेज तथा गया मेडिकल कॉलेज महत्त्वपूर्ण है। हाल ही में अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान की स्थापना पटना में की गई है।

उपरोक्त तथ्यों के विश्लेषण से यह पता चलता है कि ब्रिटिश सरकार द्वारा दी जा रही शिक्षा वस्तुतः औपनिवेशिक हितों से परिचालित थी। जिसका उद्देश्य अपने लिए सस्ते फल्के की प्राप्ति, साथ ही भारत के लोगों को यह महसूस कराना था कि वे सांस्कृतिक दृष्टि से पश्चिमी लोगों से पीछे है। फिर भी भारतीय जनजीवन पर इसके सीमित सकारात्मक प्रभाव अवश्य देखने को मिला। अंग्रेजी भाषा के ज्ञान के कारण पश्चिम के ज्ञान–विज्ञान को पढ़ने को मौका मिला जिससे इनमें एक अतर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण का विकास हुआ।

सन्दर्भ :

1. सुमित सरकार : *आधुनिक भारत*, राजकमल प्रकाशन
2. दत्त, के.के. : *काम्प्रीहेन्सिव हिस्ट्री ऑफ बिहार*, काशी प्रसाद जायसवाल रिसर्च इंस्टीट्यूट, पटना
3. झा, जे.एस., *एजुकेशन इन बिहार*
4. नुरूल्ला, एस. एवं नाईक, जे.पी. : *हिस्ट्री ऑफ एजुकेशन इन बिहार (1800–1965)*, मैकमिलन, कलकत्ता, 1971
5. ओझा, पी.एन. : काम्प्रीहेन्सिव हिस्ट्री ऑफ बिहार, वाल्यूम–II, काशी प्रसाद जायसवाल इंस्टीट्यूट, पटना, 1987
6. पांडेय, एस.एन. : *एजुकेशन एण्ड सोशल चेंजेज इन बिहार,* मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, 1975
7. चौधरी, वी.सी.पी. : द क्रियशन ऑफ मॉडर्न बिहार, 1965
8. बुकानन, फ्रांसिस : एन एकाउंट ऑफ द डिस्ट्रिक्ट ऑफ बिहार एण्ड पटना इन 1811–1812, बिहार एण्ड उड़ीसा रिसर्च सोसाइटी, पटना

***

भारतीय बौद्ध धर्म में स्त्रियों की अवस्था : एक अध्ययन

डॉ. उपेन्द्र कुमार *

परम्परागत स्त्री असमानता के प्रतिकुल भगवान बुद्ध ने जो समानता, मानवोचित एवं न्यायोचित गरीमा प्रतिष्ठापित किया वह एक असाधारण प्रयास था। बौद्ध संघ में स्त्रियाँ कर्त्ता, शिक्षक, उपदेशक, ज्ञानी, मातृत्वशील, सृजनात्मक, भद्र एवं सहिष्णु के रूप में प्रतिष्ठित थीं। यह कदम निश्चित रूप से परम्परागत वैदिक परम्परा के विरुद्ध क्रांतिकारी कदम था। इस कदम एवं असाधारण प्रयास का विरोध कुछ परम्परावादी आलोचकों ने किया था, परन्तु महात्मा बुद्ध के प्रभावी एवं शक्तिशाली व्यक्तित्व के सामने किसी की आलोचना ठहर नहीं सकी। लेकिन, भगवान बुद्ध के महापरिनिर्वाण के पश्चात् आलोचक अधिक मुखर हो गये। कालान्तर में बौद्ध संघ ने ब्राह्मणवाद के स्त्री विरोधी रूख को गले लगाया, जिसने लगातार स्त्रियों को अपूर्ण, दुष्ट, नीच, कपट, विध्वंसक, विस्त्रासघाती, नमकहराम, अविश्वासी, चरित्रहीन, कामुक, ईर्ष्यालु, लालची, बेलगाम, फिजुलखर्ची जैसे विश्लेषणों से विभूषित किया था। इस प्रकार की मानसिकता ने भिक्षुणी संघ के अस्तित्व को प्रत्यक्षतः जड़ से उखाड़ फेंका और स्त्रियों के अस्तित्व को पुनः हाशिये पर ला खड़ा कर दिया।

शब्द कुंजी– बौद्व संघ, वैदिक परम्परा, भिक्षु–भिक्षुणी, गैर वैदिक परम्परा

ईसा पूर्व की छठी शताब्दी में अनेक धार्मिक सम्प्रदायों का उदय हुआ, जिनमें महात्मा बुद्ध द्वारा स्थापित बौद्ध धर्म की भूमिका भारतीय समाज मेंअग्रगन्य रही। प्रारंभ में इस धर्म में प्रवेश निषेध के कारण महिलाओं की स्थिति उल्लेखपूर्ण नहीं था। कालान्तर में शिष्यों के आग्रह पर बुद्ध ने महिलाओं को प्रवेश की अनुमति प्रदान कर दी। अनेक श्रोतों के आधार पर ज्ञात है कि बौद्ध धर्म में पुरुषों के समान स्त्रियों ने भी महत्वपूर्ण भूमिका की निर्वहन की। इस धर्म में पुरुष भिक्षु एवं स्त्रियाँ भिक्षुणी के रूप में विख्यात थे।

बौद्ध काल में स्त्रियाँ प्रायः शिक्षित और विद्वान हुआ करती थी। धर्म, विद्या एवं दर्शन के प्रति उनकी बेहद रूचि थी। उनमें से अनेक बौद्ध आगमों की शिक्षिकाओं के रूप में प्रसिद्धि प्राप्त की थी। थेरीगाथा की कवयित्रियों में 32 आजीवन ब्रह्मचारिणी और 18 विवाहित भिक्षुणियाँ थीं। उनमें शुभरा, अनुपमा और सुमेधा उच्च वंश की कन्याएँ थीं। इन कन्याओं से विवाह करने के लिए राजकुमार और शक्तिशाली मठों के पुत्र उत्सुक सहते थे।[1] भिक्षुणी खेमा उस युग की उच्च शिक्षा प्राप्त की थी, जिनकी विद्वता

* नेट (इतिहास एवं शिक्षा), पीएच.डी. (इतिहास), इतिहास विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना

दूर–दूर तक फैली थी। संयुक्त निकाय से ज्ञात होता है कि स्त्रियाँ भिक्षुणी बनती थीं और बौद्ध भिक्षुओं के साथ स्वतंत्र रूप से समाज में भिक्षाटन करती थीं। बौद्ध मठों में भिक्षुओं के साथ शिक्षा भी प्राप्त करती थीं। जातक कथाओं में कहीं भी पर्दा के विषय में जानकारी नहीं मिलती है। फिर भी, इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता है कि बौद्ध धर्म में महिलाओं की स्थिति पुरुषों की तुलना में असमान थी।[2] बुद्ध के समय तक पुरुष प्रधान अथवा पितृसत्तात्मक भारतीय समाज के मुख्य अंग बन चुके थे। इनमें परिवार जैसे एक सामाजिक ढाँचे के माध्यम से महिलाओं को नियंत्रित एवं सुरक्षित रखना आवश्यक माना जाने लगा था। लड़की के जन्म को अनिच्छित एवं दुर्भाग्यपूर्ण समझा जाता था। वेश्यावृत्ति, हरम, बहुपत्नी प्रथा समाज में परम्परा बन गयी थी। सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक एवं राजनीतिक अधिकार पुरुषों के समतुल्य नहीं थे। पत्नी की प्रताड़ना आम बात थी। वैसी स्त्री आदर्श मानी जाती थी, जो पति के प्रति अपने को पूर्णतः समर्पण कर देती थी। पत्नी का काम पति को पूजना एवं उसके चरणों में गिरकर (पाद परिचारिका) खुद को धन्य समझती थी। ऐसी ही स्त्री आदर्श मानी जाती थी। महिलाएँ यदा–कदा वस्तुओं की तरह बेची जाती थी। बौद्ध काल में ऐसे अनेक कुलीन जन थे जो प्रवजित भिक्षु संघ में सम्मिलित हो गये थे, उनकी पत्नियों ने भी प्रवजित होकर भिक्षुणियाँ बनने की इच्छा प्रकट की। गौतम बुद्ध की मौसी और उनकी दाई प्रजापति गौतमी के नेतृत्व में उन्होंने भगवान बुद्ध से याचना की कि उन्हें भी भिक्षुणी संघ में प्रविष्ट होने की अनुमति दी जाय। अपनी मान्यताओं के अनुसार भगवान बुद्ध उनके प्रवेश को रोक नहीं सके। परन्तु, उन्हें डर था कि यदि उन्होंने स्त्रियों को प्रवेश दिया तो तैर्थिक लोग उनकी संस्थाओं की बदनामी करने लग सकते हैं। इसलिए उन्होंने प्रजापति गौतमी को परामर्श दिया कि वह श्वेत वस्त्र धारिणी उपासिका बन जाय और शुद्ध पवित्र जीवन व्यतीत करें।[3] उस परामर्श से गौतम संतुष्ट नहीं हुई। उसने अपने साथ आई स्त्रियों को परामर्श दिया कि वे स्वयं अपने सिर के बाल मुण्डा ले और मिट्टी के भिक्षापात्र ले बुद्ध के पास चलें। सभी ने वैसा ही किया। उनकी निष्ठा ने भगवान बुद्ध के निकट रहने वाले महास्थवर आनंद को प्रभावित किया। अपने प्रिय शिष्य आनंद के विशेष आग्रह पर महात्मा बुद्ध ने इस बात को स्वीकार करते हुए कि तथागतों का आविर्भाव केवल पुरुषों के लिए नहीं होता, विशाखा और दूसरी बहुत सी स्त्रियाँ धर्म–पथ आरुढ़ हो गयी थी, उन्हें पुरुषों के समान प्रवेश की स्वीकृत प्रदान की।

इस प्रकार महात्मा बुद्ध ने स्त्रियों के स्वतंत्र सत्ता को स्वीकार किया और उन्हें पुरुषों के समान बराबरी का दर्जा प्रदान किया। यद्यपि धर्म से किसी भी तरह यह बात बेमेल नहीं थी, क्योंकि धर्म आदमी और आदमी में किसी भी तरह का भेद स्वीकार नहीं करता। एक आदमी गुणों की दृष्टि से विशिष्ट हो सकता है। अन्य किसी तरह का विभेद नहीं होना चाहिए।

प्राचीन भारत में स्त्रियों की जो गिरी हुई सामाजिक स्थिति थी और जिस ओछी नजर से स्त्रियों की ओर उस समय देखा जाता था, उसको ध्यान में रखते हुए यह निर्णय एक बड़ा ही साहसिक निर्णय था। प्राचीन भारत शील संबंधी शिथिलता के लिए बदनाम था। वैदिक, पूजा–पाठ में इन्द्रिय लोलुपता को विशेष स्थान प्राप्त था। वैदिक देवता इन्द्र न केवल नशीले सोम का बड़ा पियक्कड़ था, बल्कि बड़ा व्यभिचारी भी था। पौण्ड्रीक नाम का एक यज्ञ था और जिसने आगे चलकर महादेव–पूजा के नाम लिंग की पूजा को मान्यता दी। पुरोहितों पर यह प्रतिबंध था कि वह एक खास धार्मिक संस्कार संपन्न होते समय किसी दूसरे के पत्नी के साथ दुराचार नहीं कर सकता था। यह बात सैद्धान्तिक मात्र थी, लेकिन व्यवहारिक दृष्टि कुछ और ही था। स्त्रियों को नीची नजर से देखा जाता था।[4]

अनिभारती जातक में एक पुरानी गाथा उद्धृत है, जिसका भावार्थ है स्त्रियाँ पानी की प्याऊ की तरह सभी की उपभोग की वस्तु है। बुद्धिमान आदमी उन्हें लेकर क्रोधित नहीं होते। महाभारत के आदि पर्व में लिखा है–"पुराने समय में स्त्रियाँ घरों में कैद नहीं थी। वे अपने पति और दूसरे रिश्तेदारों पर भी निर्भर नहीं होती थी। वे स्वेच्छानुकूल स्वछन्द जीवन व्यतीत करती थीं। वे अपने पतियों के प्रति भी वफादार नहीं रहती थी। यही उस समय का रिवाज था। आज बिना किसी ईर्ष्या–द्वेष के पशु–पक्षी उसी तरह के जीवन का अनुसरण करते हैं। महान ऋिषियों ने इस प्रकार के जीवन को अनुकरणीय माना है। उत्तर कुरु के लोगों में आज भी यह रिवाज प्रतिष्ठापित है।"[5] इसमें कुछ संदेह नहीं कि स्त्रियों की इस आचारहीनता पर प्राचीनता की मुहर लगी हुई थी। फिर भी महाभारत के उद्योग पर्व में भी है–"जो उच्च कुलोत्पन्न है, जो शीलसंपन्न है, उनके घरों में भी किसी लड़की का जन्म ग्रहण करना दुभाग्यपूर्ण ही है। लड़कियाँ जब किन्हीं मान्य कुलों में भी जन्म ग्रहण करती है, तो उनके दुर्भाग्य का कारण बनती है, पितृकुल का, मातृकुल का और जिस कुल में वे विवाहित बनकर जाती है।" अनुशासन पर्व में स्त्रियों के बारे में इससे भी अधिक भद्दी बातें लिखी गई है। विदेह नरेश जनक की पौत्रि सुकृति का कहना है कि "धर्मग्रंथों का यह फतवा प्रसिद्ध ही है कि जीवन के किसी भाग में भी स्त्रियाँ स्वतंत्रता का उपयोग करने के योग्य नहीं हैं। उच्च कुलोत्पन्न भी हों और सौन्दर्ययुक्त भी हो और उनके संरक्षक भी हों तो भी स्त्रियाँ अपनी मर्यादा का उल्लंघन करने के लिए उत्सुक रहती हैं। एक स्त्री से बढ़कर पापिन कोई नहीं है। स्त्रियाँ किसी भी दूसरे व्यक्ति से उतना प्रेम नहीं करती या उसे उतना पसन्द नहीं करती जितना उस व्यक्ति को जो उनके साथ संभोग करता है। स्त्रियाँ उन यंत्रों की तरह हैं जो जीवन को ही नष्ट कर डालती है। किसी के साथ संगिनी बनने के बजाय दूसरों के साथ रमन करने के लिए भी तैयार रहती है।"[6] बौद्ध संघ में भिक्षुणियों की उपस्थिति से एक नई समस्या उत्पन्न हो गयी। अनेक गृहिणियों ने उस अवस्था में प्रवज्या की दीक्षा ली

थी, जब वह गर्भवती हो चुकी थी, जिसका उन्हें प्रवेश के समय ज्ञान नहीं था। भिक्षुणी बन जाने के कुछ काल बाद जब उन्हें गर्भ के लक्षण प्रकट होने लगे तो संघ के अधिकारों के लिए यह एक विकट समस्या बन गयी। अंत में संघ ने उनकी चिन्ता दूर कर दी। उस भिक्षुणी को अपनी संतान को शैशवकाल पर्यन्त साथ रखने की अनुमति दे दी गयी और शिशु की देखभाल में सहयोग प्रदान करने के लिए एक अन्य भिक्षुणी को साथ कर दिया गया।[7] निग्रोधमिक जातक में भी इसी प्रकार के एक अन्य प्रसंग का विवरण दिया गया है–राजगृह के एक धनाढ़य श्रेष्ठि की कन्या के मन में वैराग्य उत्पन्न हो गया तो उसने अपने माता–पिता से प्रवज्या लेने की इच्छा प्रकट की। परन्तु, उस कुल की एकमात्र संतान होने के कारण उसके माता–पिता ने वैराग्य होने की अनुमति प्रदान नहीं की। अतएव उसने अपने मन में विवाहोपरान्त पति से ही वैराग्य की अनुमति प्राप्त करने का निश्चय किया। यथा समय उसका विवाह सम्पन्न हो गया और वह अन्यन्त पतिपरायण भार्या बन गयी।[8]

महात्मा बुद्ध ने संघ की दरवाजे को पुरुषों एवं महिलाओं के लिए समान रूप से खोल दिया था। उस समय यह असाधारण कदम था। बुद्ध के आलोचकों ने इस कदम को उग्र एवं खतरनाक बताया। बुद्ध और आनंद द्वारा ऐसे रूख को अपनाया जाना परम्परागत लिंगीय विकृति पर प्रहार था। यह प्रयास परम्परा के विरुद्ध महिलाओं के लिए बराबरी का दर्जा एवं समाज में न्यायोचित एवं मानवोचित प्रतिष्ठा दिलाने का प्रयास था।[9] बड़ी संख्या में महिलाओं ने इस अवसर का लाभ उठाया। महात्मा बुद्ध नारी को ज्ञानी, मातृत्वशील, सृजनात्मक, भद्र व सहिष्णु रूप में स्वीकार किया। बुद्ध की शिष्याओं में अनेक स्त्रियाँ थीं, जो धम्म के प्रतिपादन के साथ–साथ बिना किसी भिक्षु की मध्यस्थता से दूसरी प्रतिभागियों को मुक्ति भी दिलायी। मठ में महिलाओं को कर्ता एवं शिक्षक के रूप में सम्मानजनक स्थान प्राप्त था। इस बात को स्वीकार किया जा सकता है कि महात्मा बुद्ध ने भिक्षुणी संघ की स्थापना करके स्त्रियों के लिए नये क्षितिजों को खोला।[10] महिलाओं के लिए यह सामाजिक और आध्यात्मिक उन्नति उस समय के दृष्टि से काफी आगे थी। संभव है, इस पर पुरुषों (भिक्षुओं) ने गंभीर आपत्ति भी किये होंगे। लेकिन बुद्ध के प्रभाव एवं शक्तिशाली व्यक्तित्व ने ऐसी आपत्तियों को नजरअंदाज कर दिया होगा। जैसा कि लगता है कि महाप्रजापति गौतमी से संबंधित आठ नियमों सहित कई प्रतिबंध एवं प्रतिकुल परिस्थितियाँ जिनका उल्लेख आरंभिक बौद्ध साहित्यों में मिलता है, बुद्ध की मृत्यु के बाद स्त्रियों पर थोपी गई थी। यह महापरिनिर्वाण के बाद के काल के क्षेपक थे। कई प्रकार के प्रतिकुल परिस्थितियों एवं उत्पीड़नों के होते हुए भी विहारों में शिक्षा एवं नैतिक सर्वोच्चता की भावा ने अनेक स्त्रियों को एक संगठित जीवन एवं अज्ञात संभावनाओं को प्रेरित किया होगा।[11] बौद्ध विहारों में महिलाएँ घर से बाहर की गतिविधियों में सक्रिय हो सकती थीं। जैसे–धर्म

प्रचार, संगठनात्मक कौशलों का विकास एवं ऐसा वातावरण जिसमें वे अपनी उपलब्धियों का अनुभव कर सकती थी।

भगवान बुद्ध के मृत्यु के बाद स्त्रियों के प्रश्न पर एक शुन्य की अवस्था आई। बौद्ध संघ में स्त्रियों के प्रति आलोचनाएँ बढ़ने लगी। महात्मा बुद्ध जैसा प्रभावशाली व्यक्तित्व के अभाव में आलोचनाओं को दबाना मुश्किल होने लगा। राजगृह में संपन्न प्रथम बौद्ध संगति में यह विशेष रूप से मुखर हुआ और स्त्रियों के प्रवेश के लिए आनंद को उत्तरदायी ठहराकर उनकी आलोचना की गई।[12]

उपसंहार : इस प्रकार परम्परागत स्त्री असमानता के प्रतिकुल भगवान बुद्ध ने जो समानता, मानवोचित एवं न्यायोचित गरीमा प्रतिष्ठापित किया वह एक असाधारण प्रयास था। बौद्ध संघ में स्त्रियाँ कर्त्ता, शिक्षक, उपदेशक, ज्ञानी, मातृत्वशील, सृजनात्मक, भद्र एवं सहिष्णु के रूप में प्रतिष्ठित थीं। यह कदम निश्चित रूप से परम्परागत वैदिक परम्परा के विरुद्ध क्रांतिकारी कदम था। इस कदम एवं असाधारण प्रयास का विरोध कुछ परम्परावादी आलोचकों ने किया था, परन्तु महात्मा बुद्ध के प्रभावी एवं शक्तिशाली व्यक्तित्व के सामने किसी की आलोचना ठहर नहीं सकी। लेकिन, भगवान बुद्ध के महापरिनिर्वाण के पश्चात् आलोचक अधिक मुखर हो गये। कालान्तर में बौद्ध संघ ने ब्राह्मणवाद के स्त्री विरोधी रूख को गले लगाया, जिसने लगातार स्त्रियों को अपूर्ण, दुष्ट, नीच, कपट, विध्वंसक, विस्त्रासघाती, नमकहराम, अविश्वासी, चरित्रहीन, कामुक, ईर्ष्यालु, लालची, बेलगाम, फिजुलखर्ची जैसे विश्लेषणों से विभूषित किया था। इस प्रकार की मानसिकता ने भिक्षुणी संघ के अस्तित्व को प्रत्यक्षतः जड़ से उखाड़ फेंका और स्त्रियों के अस्तित्व को पुनः हाशिये पर ला खड़ा कर दिया।

सन्दर्भ :

1. द विनय पिटक, संपादन–एच० ओल्डनवर्थ, वॉल्यूम–2, लंदन, 1938–66.
2. लक्ष्मी, पी. नरसू, दी इसेन्स ऑफ बुद्धिज्म, थैकर एक कंपनी, लि. बम्बई, 1948, हिन्दी अनुवाद भदन्त आनंद कौशल्यान, सिद्धार्थ गौतम शिक्षण व संस्कृति (अलीगढ़), तीसरा संस्करण, पृ. 40–50.
3. सिंह, रतन, बुद्धिज्म फिलॉस्फी, कल्चर एण्ड रिलीजन, ओमेगा पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2011, पृ. 105–08.
4. गौतम, ए.एस., भारतीय संस्कृति का बौद्ध धर्म की देन, गौतम बुक सेन्टर, नई दिल्ली, 2012, पृ. 10–11.
5. संघ रक्षित, उर्गेन, बौद्ध धर्म के दश आधार स्तंभ, गौतम बुद्ध सेन्टर, नई दिल्ली, 2011, पृष्ठ–भूमिका
6. डायना, पॉल, वुमेन इन बुद्धिज्म, इमेज्स ऑफ द फेमिनीज इन महायान, यूनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया प्रेस, 1979, पृ. 115–117.

7. अल्तेकर, ए.एस., द पोजिसन ऑफ वुमेन इन हिन्दू सिविलाइजेशन, तृतीय संस्करण, दिल्ली, 1974, पृ०–55–56
8. उपाध्या, बी., द सोसियो–रिलिजियस कंडीशन ऑफ नॉर्थ इंडिया, वाराणसी, 1970, पृ. 44–45.
9. फिक, आर. : सोसल ऑर्गेनाइजेशन ऑफ नॉर्थ ईस्टर्न इंडिया इन बुद्धाज टाईम, 1920, पृ. –इन्ट्रोडक्टशन
10. दिवाकर, आर.आर., 'स्त्री शिक्षा', जेनरल एडीटर, प्रकाशन गवर्नमेन्ट ऑफ बिहार, प्रथम संस्करण, 1959, पृ. 730.
11. नरेन्द्र देव, आचार्य, 'बौद्ध धर्म दर्शन', प्रथम संस्करण, 1956, पटना प्रकाशन, मोतीलाल बनारसीदास, सार्वभौमिक, पृ०–16–17
12. सिंह, आनंद, 'प्राचीन भारतीय धर्म उद्‌भव एवं विकास', 2010, पृ. 20–25.

***

स्वतंत्रता आंदोलन में बिहार की महिलाओं का योगदान : एक अवलोकन

डॉ. सुशील कुमार साह *

भारतीय महिलाएँ अपने सामाजिक व पारिवारिक कर्त्तव्यों का बखूबी पालन करते हुए एक मजबूती साथी, सश्रम नेता व प्रबल समर्थक अनुयायी के रूप में आंदोलन का हिस्सा बनी। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना के पश्चात् भारतीय राजनीति में महिलाओं की सशक्त एवं स्पष्ट भागीदारी देखने को मिलती है।

बिहार की महिलाओं की स्वतंत्रता संग्राम में महत्त्वपूर्ण भूमिका देखी जा सकती है। बिहार में गाँधीजी के नेतृत्व में चले चंपारण सत्याग्रह के दौरान महिलाओं की स्पष्ट भागीदारी में वृद्धि हुई तथा असहयोग आंदोलन के शुरू होने तक कस्तूरबा गाँधी, श्रीमती सरला देवी, राधिका देवी, सुनीति देवी आदि के प्रेरणा ने बिहार की महिलाओं को भी प्रेरित किया।

असहयोग आंदोलन में बिहार की महिलाओं की स्पष्ट भागीदारी देखने को मिलता है। इस आंदोलन के दौरान सरला देवी ने बिहार के छात्रों से सरकारी स्कूल–कॉलेज छोड़ने का आह्वान किया तथा सावित्री देवी ने प्रिंस ऑफ वेल्स के सम्मान में होने वाले समारोहों के बहिष्कार कार्यक्रम का नेतृत्व किया था। पटना निवासी सी०सी० दास तथा श्रीमती उर्मिला देवी ने असहयोग आंदोलन के दौरान स्वदेशी वस्तुओं के प्रचार–प्रसार में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई तथा गाँधीजी के देशबंध स्मारक कोष में धन–संग्रह की अपील पर बिहार की महिलाओं ने अपने आभूषण तक दान में दे दिये।

धन–संग्रह हेतु गाँधीजी की इस बिहार यात्रा में जयप्रकाश नारायण की पत्नी प्रभावती देवी की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही।

सविनय अवज्ञा आंदोलन के दौरान सहजानंद सरस्वती के अपील पर 1930 के नमक आंदोलन में बिहार की महिलाओं ने पूरे जोश–खरोश के साथ भाग लिया। इस आंदोलन के दौरान संभ्रांत घर की भी महिलाएँ जिनकी भागीदारी अब तक के आंदोलनों में नगण्य थी, पर्दे से बाहर आई।

इन आंदोलन के दौरान शाहाबाद जिले में रामबहादुर कुमार ने सासाराम थाने के सामने नमक कानून का उल्लंघन किया जबकि संथाल परगना की श्रीमती शैल बाला राय ने प्रभावशाली भाषणों से सैकड़ों महिलाएँ, नमक कानून भंग करने के लिए आगे आई। इस आंदोलन के दौरान बिहार से सबसे पहले गिरफ्तार होने वाली महिला हजारीबाग जिला कांग्रेस कमिटी की अध्यक्ष श्रीमती सरस्वती देवी तथा श्रीमती साधना देवी थी।

---

* नेट–जे.आर.एफ. (इतिहास), इतिहास विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना

सविनय अवज्ञा आंदोलन के दौरान पटना में विदेशी वस्त्रों के बहिष्कार का नेतृत्व श्रीमती हसन इमाम तथा विंध्यवासिनी देवी ने किया। बिहार में बहिष्कार आंदोलन इतना लोकप्रिय हुआ कि तत्कालीन जिलाधीश को इसे निपटने के लिए भारी संख्या में महिला पुलिस बल की नियुक्ति करनी पड़ी। पटना में बहिष्कार कार्यक्रम हेतु आयोजित एक सभा में लगभग तीन हजार से अधिक महिलाओं ने भाग लिया।

इस आंदोलन के दैरान चन्द्रावती देवी ने गया में चौकीदारी कर न अदा करने संबंधी कार्यक्रम का नेतृत्व किया। जिसके पश्चात् इन्हें गिरफ्तार कर लिया गया। 23 मार्च, 1931 को भगत सिंह, सुखदेव तथा राजगुरु को फांसी देने के विरोध में आरा में कुसुम देवी के नेतृत्व में एक विशाल सभा का आयोजन किया गया। इसी बीच 4 जनवरी, 1932 में गाँधीजी की गिरफ्तारी के विरोध में राज्यभर में हड़ताल एवं प्रदर्शन का आयोजन किया गया। 1941 में महात्मा गाँधी द्वारा साम्प्रदायिक तत्त्वों को प्रश्रय देने के खिलाफ जब सत्याग्रह किया गया तब इसके समर्थन में बिहार की महिलाओं ने भी सत्याग्रह का आयोजन किया। इस सत्याग्रह के दौरान गया में जगरानी देवी, जानकी देवी तथा प्रयंवदा देवी को गिरफ्तार कर 4–4 महीने की सजा सुनाई गई।

1942 के भारत छोड़ो आंदोलन में भी बिहार की महिलाओं का योगदान मत्त्वपूर्ण रहा है। चरखा समिति से जुड़ी महिलाओं ने इस आंदोलन को राज्यभर में लोकप्रिय बनाने हेतु महत्त्वपूर्ण कार्य किये। 9 अगस्त, 1942 को डॉ० राजेन्द्र प्रसाद की बहन श्रीमती भगवली देवी के नेतृत्व में पटना में महिलाओं के एक विशाल जुलूस का आयोजन किया गया जिसके पश्चात् उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया। फिर 19 अगस्त, 1942 को शांति देवी की अध्यक्षता में छपरा में एक विशाल जनसभा को आयोजन किया गया तथा छपरा के दिघवारा प्रखंड में तिरंगा फहराने के आरोप में शारदा एवं सरस्वती को क्रमशः 14 एवं 11 वर्ष की सजा हुई। पलामू में इस आंदोलन का नेतृत्व कुमारी आर.सी. दास ने संभाला। उन्होंने जपला सीमेंट कारखानों के मजदूरों को संगठित कर आंदोलन को आगे बढ़ाया। वैशाली में सुनीति देवी एवं राधिका देवी ने पुरुषों के वेश में साइकिल की सवारी कर जनजागृति फैलाई।

1942 के भारत छोड़ो आंदोलन के दौरान अनेक महिलाएँ पुलिस की गोली की शिकार हुई जिसमें मुंगेर की धतूरी देवी, पटना जिले की सुधा शर्मा तथा घोरमरा गाँव की श्रीमती विराजी मधियाइन प्रमुख है।

उपरोक्त तथ्यों के वर्णन से स्पष्ट हो जाता है कि स्वतंत्रता आंदोलन के सभी चरणों में बिहार के महिलाओं की भूमिका निर्णायक रही। चाहे वह भूमिका परोक्ष रूप में रही हो या प्रत्यक्ष रूप में। हर रूप में इनकी भूमिका महत्त्वपूर्ण रही है। ब्रिटिश सत्ता को उखाड़ फेंकने के उद्देश्य से चलाए गए हर आंदोलन में ये पुरुषों से कंधा मिलाकर उनके साथ चलीं तथा देश को गुलामी की जंजीरों से मुक्त कराया।

सन्दर्भ :

1. दत्त, के.के., *काम्प्रीहेन्सिव हिस्ट्री ऑफ बिहार*, वाल्यूम I, II, III, काशी प्रसाद जायसवाल रिसर्च इंस्टीट्यूट, पटना
2. दत्त, के.के., *बिहार में स्वतंत्रता आंदोलन का इतिहास*, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना
3. सिन्हा, अनुग्रह नारायण, *मेरे संस्मरण*, बिहार राज्य अभिलेखागार निदेशालय, पटना, 2012
4. देसाई, ए०आर०, *भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि*, 1977
5. श्रीवास्तव, एम०एन०पी०, *बिहार में राष्ट्रीयता का विकास*, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना, 1998
6. प्रसाद, ओमप्रकाश, *बिहार एक ऐतिहासिक अध्ययन*
7. दास, प्रमोदानंद, *बिहार, इतिहास एवं संस्कृति*
8. दिवाकर, आर०आर०, *बिहार थ्रू द एजेज*
9. ओझा, पी०एन०, *काम्प्रीहेन्सिव हिस्ट्री ऑफ बिहार*, वाल्यूम–II, काशी प्रसाद जायसवाल इंस्टीट्यूट, पटना, 1987
10. प्रसाद, राजेन्द्र, *आत्मकथा*
11. सहाय, शिवपुजन, *बिहार की महिलाएँ*
12. राय, मनीन्द्र नारायण, 'दी अवेकेंड शॉल ऑफ बिहार', *इंडियन नेशन*, 18 सितम्बर, 1964

***

गोस्वामी तुलसीदास जी और उनका सामाजिक जीवन

डॉ. संजय तिवारी *

यदि संसार में ऐसा कोई देश है जिसमें सभ्यता के सूर्य का सर्वप्रथम उदय हुआ, जिसमें ज्ञान रूपी महासमुद्र की तरंगे अनादि काल से विश्व के सुदूर स्थलों को प्रभावित करती रही और जिस राष्ट्र में विश्व को ज्ञान सागर की गागर से भर दिया वह पुण्य भूमि हमारा देश भारत ही है यहीं श्री रामचरितमानस के रचयिता गोस्वामी तुलसीदास जी का जन्म हुआ था।

गोस्वामी तुलसीदास जी (रामबोला) का जन्म हमेशा विवादों में रहा है। जन्म को लेकर कुछ लोगों का मानना है कि इनका जन्म सोरों शूकर क्षेत्र, वर्तमान में कासगंज एटा, उत्तर प्रदेश में हुआ था, जबकि कुछ विद्वान इनका जन्म राजापुर जिला बांदा वर्तमान में चित्रकूट में संवत 1589 में हुआ मानते हैं। जब इनका जन्म हुआ तो इनके दाँत निकल चुके थे और उन्होंने जन्म लेने के साथ ही राम नाम का उच्चारण किया जिससे इनका नाम बचपन में ही रामबोला पड़ गया। आत्माराम दुबे की पत्नी तुलसी के पुत्र राम बोला के जन्म के अगले ही दिन इनकी माता का निधन हो गया इसलिए इनके पिता ने इन्हें चुनिया नाम की एक दासी को पालन पोषण के लिए सौंप दिया। अनंतानंद जी के प्रिय शिष्य श्रीनरहर्यानन्द जी (नरहरि बाबा) ने इस रामबोला के नाम से विख्यात हो चुके बालक का नाम तुलसीदास रखा और इन्हें अयोध्या ले आए वहां आपका यज्ञोपवित संस्कार किया गया जहां बिना सिखाएं ही इन्होंने गायत्री मंत्र का स्पष्ट मंत्रोच्चारण किया। इसके पश्चात बालक के पंच संस्कारों के पश्चात राम मंत्र की दीक्षा दी गई और अयोध्या में रहकर उसे विद्यार्जन कराया गया। बालक राम बोला की बुद्धि बाल्यावस्था से ही बड़ी प्रखर थी वह एक बार में गुरु मुख से जो सुन लेते वह उन्हें कंठस्थ हो जाता था। इनका विवाह पंडित दीनबंधु पाठक की अति सुंदर कन्या रत्नावली से हुआ था, ये अपनी पत्नी को बहुत अधिक स्नेह करते थे। एक बार रत्नावली किसी बात पर इन से खिन्न होकर बोली कि जितना ध्यान आप मुझ पर देते हैं उतना यदि आप प्रभु श्री राम की भक्ति में देते तो आपको प्रभु श्री राम के दर्शन हो जाते यह शब्द इनके हृदय में आघात कर गए और अपनी पत्नी की बातों से वैराग्य होने के साथ-साथ वे प्रभु श्री राम की भक्ति की ओर उन्मुख हो गए। कहा तो यह जाता है कि स्वयं हनुमान जी ने श्रीरामचरितमानस को लिखने के लिए तुलसीदास जी की मदद की थी और इन्हें भगवान श्री राम के बारे में संपूर्ण कथा सुनाई थी। तुलसीदास जी का सबसे प्रसिद्ध ग्रंथ श्री रामचरितमानस है। इस ग्रंथ में उन्होंने विस्तार पूर्वक श्री राम जी के चरित्र का वर्णन किया है। इस ग्रंथ में श्री राम की शक्ति, शील और सौंदर्य तीनों गुणों का समावेश मिलता है, यह रचना अवधी भाषा में लिखित है।

---

* एम.ए., एल.बी.एल., पीएच.डी., एसो विभाग, समाजशास्त्र विभागाध्यक्ष एवं प्रो. डी.ए.वी. पी.जी. कॉलेज, लखनऊ

"नहिं कलि करम न भगति बिबेकू। राम नाम अवलंबन एकू।।
कालनेमि कलि कपट निधानू। नाम सुमति समरथ हनुमानू।।"

" कलयुग के इस समय में न धर्म के प्रति समर्पित कर्म है, न भक्ति है और न ज्ञान ही है, केवल रामनाम ही एक ऐसा आधार है जो कि कपट से परिपूर्ण इस कलयुग रुपी समय में जीवन धर्म के अनुरूप व्यतीत करने का आधार है 'रामनाम' ही बुद्धिमान और समर्थ श्री हनुमानजी का शाश्वत स्वरूप हैं। "

बालकांड: दोहा: 27 (श्री राम नाम गुण महिमा)

तुलसी दास जी विरक्ति के पश्चात चित्रकूट के रामघाट पर एक आश्रम में रहने लगे और उन्होंने श्री हनुमान जी से श्री रघुनाथ जी के दर्शन कराने की प्रार्थना की इस पर श्री हनुमान जी ने तुलसीदास जी से कहा कि कि उन्हें श्री राम के दर्शन अवश्य होंगे। एक दिन उन्होंने देखा कि दो बहुत ही खूबसूरत राजकुमार घोड़ों पर सवार होकर धनुष बाण कंधे में लगाए हुए जा रहे हैं तुलसीदास जी उन्हें देखकर अभिभूत हुए परंतु पहचान न सके तब श्री हनुमान जी ने उन्हें आकर जब बताया कि यह राजकुमार और कोई नहीं भगवान श्री राम और श्री लक्ष्मण जी थे तो उन्हें बहुत पश्चाताप हुआ और वे रोने लगे इस पर श्री हनुमान जी ने उन्हें दिलासा दी और कहा कि उन्हें श्री रघुनाथ जी के दर्शन पुन: अवश्य होंगे। एक दिन मोनी अमावस्या को संवत 1607 के दिन जब तुलसीदास जी चंदन घिस रहे थे तब भगवान श्री राम प्रकट हुए और उन्होंने बालक रूप में आकर तुलसीदास जी से कहा कि क्या आप हमें चंदन दे सकते हैं। उसी समय श्री हनुमान जी ने सोचा कहीं इस बार भी वे श्री रघुनाथ जी की बाल्यावस्था के रूप को देखकर धोखा न खा जाए इसलिए उन्होंने तोते का रूप धरकर एक दोहा कहा,

चित्रकूट के घाट पर, भइ सन्तन की भीर।
तुलसिदास चन्दन घिसें, तिलक देत रघुबीर॥

तुलसीदास जी भगवान श्री राम जी की उस अद्‌भुत छवि को निहार कर अपना सुध-बुध ही भूल गये। अन्ततोगत्वा भगवान ने स्वयं अपने हाथ से चन्दन लेकर अपने तथा तुलसीदास जी के मस्तक पर लगाया और अन्तर्ध्यान हो गये। इन सभी घटनाओं का उल्लेख तुलसीदास जी ने गीतावली में किया है। तुलसीदास जी के जन्म-स्थान राजापुर के एक मन्दिर में आज भी श्री रामचरितमानस के अयोध्याकाण्ड की एक प्रति सुरक्षित रखी हुई है।

संवत् 1631 में दैवयोग से उस वर्ष रामनवमी के दिन वैसा ही योग आया जैसा त्रेतायुग में राम-जन्म के दिन था। उस दिन प्रातःकाल तुलसीदास जी ने श्री रामचरितमानस की रचना प्रारम्भ की। दो वर्ष, सात महीने और छ्ब्बीस दिन में यह अद्‌भुत ग्रन्थ सम्पन्न हुआ।।

उन्होंने अपनी अंतिम कृति विनयपत्रिका लिखी और अपने जीवन-काल में तुलसीदास जी ने 14 कालजयी ग्रन्थों की रचनाएँ कीं और श्रावण मास तृतीया को राम-राम कहते हुए संवत 1680 ई. में अपने शरीर का परित्याग कर दिया और परमात्मा में लीन हो गए।

सन्दर्भ :

- श्रीरामचरित मानस, गीता प्रेस, गोरखपुर
- शास्त्री, आचार्य वेदव्रत, तुलसी : जीवन वृत्त तर्क और तथ्य, ISBN 81-85309-19-1 तुलसीपीठ, नदरई द्वार, कासगंज, एटा, उ.प.
- दीक्षित, डॉ. राधाकृष्ण, तुलसीदास : जन्म स्थान, विवेचन, नमन प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012
- मिश्र, कृष्णमोहन, तुलसी–जीवनवृत्त : एक सिंहावलोकन, ISBN: 978-81-7323-238-1,सुलभ प्रकाशन, लखनऊ, 2016
- तिवारी, डॉ. संजय : समाजशास्त्रीय सिद्धान्त तथा विभिन्नता, ISBN 978-93-83980-93-2 शिवांक प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2018

***

खासी साहित्य और संस्कृति : एक मूल्यांकन

*चिन्मय डेका**

खासी मेघालय राज्य की एक प्रमुख जनजाति है, जो भारत के उत्तर पूर्वी हिस्से में रहते हैं, इसके अलावा बांग्लादेश के कुछ भागों में भी खासी लोग निवास करते हैं। वे खुद को khun u hynniewtrep कहते हैं, जो उनकी भाषा में 'सात सोपाड़ियों के बच्चे' हैं। उनकी भाषा को खासी कहा जाता है, उनकी भाषा Austroasiatic परिवार के तहत आती है। खासी भाषा ईसाई मिशनरियों के आने तक अनिवार्य रूप से मौखिक थी। विशेष रूप से संबंध में एक वेल्श मिशनरी थांमस जोन्स, जिन्होंने रोमन लिपि में खासी भाषा को लिखित रूप दिया था। खासी जनजाति के लोग मेघालय के पूर्वी हिस्सों में पाए जाते हैं। इनकी कुल आबादी लगभग 16 लाख के करीब है। इसके अलावा असम में 30 हजार और बांगलादेश में 42 हजार खासी लोग पाए जाते हैं। खासी मेघालय की सबसे बड़ी जनजाति है।

सामाजिक संरचना– खासी, जनजातिया और गारो मातृवंशीय समाज को मानते हैं। परिवार में किसी भी सदस्य की पहचान माँ द्वारा होती है, लेकिन परिवार में पिता भी एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। खासी एवं जयंतिया लोगों पर प्रख्यात लेखक डेविड रॉय ने कहा "a man is the defender of the woman,but the woman is the keeper of his trust"; ह मेघालय मातृवंशीय समाज का एक अनोखा उदहारण है। खासी समाज व्यवस्था में स्त्री ही घर का ख्याल रखती है। पुरुष भी बाहर काम कर के घर की आर्थिक रूप से सहायता करता है, और घर के बुजुर्ग एवं मामा सामाजिक संरचना तथा धार्मिक गतिविधियों का ख्याल रखते हैं।

विरासत– खासी समाज व्यवस्था में संपति की अधिकारी सबसे छोटी या ka khadduh होती है, अगर छोटी बेटी बिना किसी संतान के मर जाती है तो उसका अधिकार उस घर की बड़ी बेटी या उसकी छोटी बेटी को मिल जाता है, अगर संपति का कोई निर्णय नहीं हो पाता है तो वह संपति माँ की बहन, या बहन की संतान के पास चली जाती है। और यह परंपरा ऐसे ही चलती रहती है। अगर छोटी बेटी को अपनी जमीन के साथ कुछ करना है तो उसे अपने मामा चाचा, बुजुर्गों एवं भाइयों की अनुमति की आवश्यकता होती है।

विवाह– खासी लोक विश्वास के अनुसार एक ही कबीले के अंदर विवाह वर्जित है। पारंपरिक खासी विवाह में अँगूठी या सुपारी का आदान–प्रदान दूल्हा एवं दुल्हन के बीच में होता हैं, जिससे विवाह सम्पन्न होता है। दूसरी ओर ईसाई विवाह पद्धति में संपूर्णतः आधुनिक तथा पाश्चात्य नियमों का पालन किया जाता है।

---

* बैरागी मोठ, डिब्रूगढ़, आसाम

धर्म– लगभग 80 प्रतिशत खासी ईसाई धर्म को मानते हैं। ईसाई मिशनरियों के आगमन से पूर्व वे लोग 'ka niem khasi' के नाम से जाना जाता है। खासी लोक मानस में मुर्गों को पवित्र जीव माना जाता है। मांगलिक कार्यों में भी मुर्गों की बलि दी जाती है। वर्तमान समय में खासी समुदाय का एक बड़ा हिस्सा ईसाई बन गए है– roman catholic, Unitarian, Presbyterian आदि अनेक भागों में खासी समाज विभक्त है।

संगीत, शिल्प और वेषभूषा : खासी लोगों का संगीत के प्रति बहुत जुड़ाव है। अपने संगीतों के द्वारा वह प्राकृतिक सौंदर्य जैसे झील, झरना, पहाड़ियों आदि। का वर्णन करते हैं। साथ ही में वे अपने गीत के माध्यम से देश के प्रति अपना प्रेम व्यक्त करते हैं। वे ड्रम, duitara, गिटार, बांसुरी, पाइपा और झाँझ जैसे तरह–तरह के संगीत उपकरणों का प्रयोग करते हैं।

बुनाई मेघालय के आदिवासियों की एक प्राचीन कला है। खासी लोग बुनाई, चटाई, दस्त एवं टोकरी के लिए प्रसिद्ध है। ये वस्तुएं कम से कम 20–30 सालों अच्छी उपयोगिता की गारंटी देता है। खासी समुदाय के लोग लोहा बनाने के कार्य में भी माहिर है, जैसे घरेलू चाकू, बर्तन, बंदूके तथा अन्य खुद के हथियारों का भी निर्माण करते हैं।

वेषभूषा– पारंपरिक खासी पुरुष पोशाक को "jymphong" या कॉलर के बिना एक दीर्घाकार बागे, सामने चमड़े की पट्टी से बाधा जाता है। वर्तमान समय में खासी पुरुष पश्चिमी पोषकों को अपनाया है। फिर भी कुछ–कुछ औपचारिक अवसरों पर, वे "jymphong" और धोती में दिखाई देते हैं। साथ ही कुछ गहने भी धारण करते हैं।

पुरुष की तुलना में महिलाएं अधिक पारंपरिक पोषकों में नजर आती है, इस वस्त्र को "Jainism" कहा जाता है। इसके अलावा गहने भी परिधान करती है। औपचारिक अवसरों में वे सोने या चाँदी का मुकुट सर पर धारण करती है।

खाद्य और पेय– चावल खासी लोगों का प्रमुख भोजन हैं। उन्हें मांस एवं मछली भी प्रिय है। उत्तर–पूर्वी राज्यों के अन्य जनजातियों की तरह खासी लोग चावल का शराब बनाते हैं। धार्मिक या किसी औपचारिक अवसर पर यह पिया जाता है।

त्योहार– 'Nongkrem' नृत्य खासी जनजाति का प्रमुख त्योहार है। यह त्योहार अच्छे फसल, शांति तथा समुदाय की समृद्धि के लिए सर्वशक्तिमान ईश्वर को धन्यबाद करने के लिए मनाया जाता है। यह त्योहार हर वर्ष अक्टूबर–नवंबर के दौरान मनाया जाता है। यह त्योहार शिलांग से कुछ दूर स्मित नामक स्थान पर होता है।

यह नृत्य कुँवारी स्त्री एवं पुरुष करते हैं। लड़कियाँ भारी सोने चाँदी और गहनों के साथ मूंगा रेशम के पोशाक पहनती हैं। साथ ही मैदान के भीतर वाले गोले की तरह नृत्य करती है। और पुरुष बाहरी चक्र में बांसुरी और ड्रम (ढ़ोल) लेकर नृत्य करते हैं। इस त्योहार की प्रमुख विशेषता है बकरे की बलि चढ़ाना जिसे 'Pomblang' कहा जाता है जो ीलतपद के लपबउ द्वारा होती है। शाद सुक Mynsiem खासी जनजाति

का अन्य एक प्रमुख त्योहार है जो अप्रैल के महीने में मनाया जाता है यह उत्सव वार्षिक धन्यवाद ज्ञापन हेतु मनाया जाता है। इस त्योहार में स्त्री एवं पुरुष अच्छे वस्त्र धारण करके तीन दिनों तक नृत्य करते हैं।

साहित्य– खासी लिखित साहित्य का प्रमाणिक रूप सन् 1841 ई. से मिलता है। हालांकि की मौखिक और लोक साहित्य खासी समाज में पहले से ही चला आ रहा है। पुराने मिथक तथा लोक कथाओं का प्रचलन खासी जनजाति में बहुत पहले से चला आ रहा हैं। बुजुर्ग लोग शाम के समय काम से या खेत से थक हार के वापस आते थे तो वे लोक कथाओं, को 'duitara' बजाकर जीवन की सीख देते थे, साथ ही नैतिक तथा सामाजिक शिक्षा भी देते थे जिसे (ki jingsneng tymmen) कहा जाता है अर्थात् बड़े–बूढ़ों की सीख। लेकिन लिखित रूप न होने के कारण इस प्रकार की अन्य दंत कथाएँ बाद में विलुप्त हो गई।

मौखिक साहित्य के कुछ रूप कविता, गीतों तथा विभिन्न सभाओं में भजन, ईसाई, गैर–ईसाई, अनुष्ठान के भी गए जाते हैं। कुछ शोक गीत भी मौखिक रूप में प्राप्त होते हैं। प्रेम, माता, पिता, प्रकृति, भगवान एवं लोरियाँ अभी भी कुछ मौखिक साहित्य के रूप में विद्यमान है, लेकिन समय बीतने के साथ–साथ यह कलाएँ खो जाती हैं।

लिखित साहित्य के रूप में हम सन् 1844 में वैल्स मिशनरी थॉमस जोन्स की अनुदित पुस्तक "ka gospel of u matti" साहित्य के रूप में गिन सकते हैं। उन्होंने खासी साहित्य के लिखित रूप को प्रारम्भ किया।

स्वर्गीय R.S.Lyngdoh के अनुसार सन् 1888–1910 के बीच अनेक खासी प्रतिभाशाली लेखकों का उदय हुआ। इनमे से कुछ प्रमुख इस प्रकार है– jeebon roy mairom (1838–1903), Rabon singh kharsuka, Revo morkha chynes एक कवि और धर्म प्रचारक के रूप में जाने जाते थे। उनकी समय–सीमा 1888–1816 तक मानी जाती है। उनकी प्रमुख रचना है–u sierlapalang'। उन्होंने सन् 1897 के भूकम्प पर आधारित कविता 'u janai beh ka ri khasi" लिखी थी।

Rabon singh खरसुका– खासी धर्म पर आधारित उल्लेखनीय ग्रंथ 'ka niam khasi' सन् 1894 में लिखा था। बाद में ka kitab niam khaein ki khasi; ki kitab jingphawar, jingiathuh khana puriskam (लोक कथा) 1908 में प्रकाशित हुई।

Hormu rai diengdohos ज्यादातर पत्रकारिता से जुड़े थे। उन्होंने 'u khasi mynta' पत्रिका के जरिए कई खासी लेखकों को प्रोत्साहित किया।

Jeebon rai mairom (1838–1903) के लेखन की शुरुआत अनुवाद साहित्य से की। उन्होंने संस्कृत ग्रंथ– 'mit upodesa' भाग–1 और 2, 1898, भाग तीन 1899, ka remayan' (1900), ka kitab chaitanya 1900 ई. में ऐसी कई किताबों का अनुवाद किया। उनसे से संबन्धित अनेक कहानियाँ और कविताएं भी लिखी– 'ka kot pule nyngkong' 1899 और अन्य कितबे भी लिखी। उन्होंने इतिहास और धर्म संबन्धित पुस्तके भी

लिखी, वे कुछ इस प्रकार है– 'ka history jong ka lndia'–1900, 'ka niam jong khasi' 1897 लिखा।

Hari Charan Roy Dkhar ने पहली बार नाटक (ka savitri–1910) सृजन किया, जो महाभारत पर आधारित है। खासी का पहला उपन्यास भी Hari Charan Roy Dkhar ने लिखा, जिसका नाम (u kavsik) जो 1915 में प्रकाशित हुआ। यह उपन्यास भी महाभारत पर आधारित है।

'Sib charan Ray' ने ज्यादातर भारतीय साहित्य का अनुवाद खासी भाषा में किया, जिसमें 'ka bhagavad gita' का अनुवाद उन्होंने 1903 में किया, उन्होंने कई लेख एवं धार्मिक पुस्तके भी लिखी, इनमें से कुछ इस प्रकार है– 'u nongapphira; 'kot tohkit tirtir shaphang ka niam tip blei ki khasi'–1913 उल्लेखनीय है।

खासी लेखक और कवियों में 'सोसो थाम' का नाम सबसे प्रमुख है। उन्होंने खासी साहित्य को नई दिशा प्रदान की। वे स्कूल शिक्षक थे। उन्होंने (1910–1920) तक 'u lurshai' पत्रिका की सम्पादन की। 'सोसो थाम' ने उनखबरों और पत्रिकाओं में अपनी कविता लिखनी शुरू की। सन् 1920 में उनकी कहानी संग्रह–'ki phawer u aesop' प्रकाशित हुई। 'ईसप' के दंतकथाओं से प्रेरित होकर 'सोसो थाम' ने ki phaweru aesop' खासी मुहावरों और रूपक रूप में खासी जनता के लिए लिखा गया। उनकी प्रमुख कविता संकलन 'ki poetry khasi'–1925, बाद में 'ka duitara ksiar'–1931, "ki sngi barim u hynniewtrep"– 1936 में प्रकाशित हुई।

अन्य प्रमुख खासी लेखकों में victor G. Bareh'ki jingrwai khasi' (1960), D. S. lyngdoh ka thymmei longbriew manbriew (1961), s.s lyngdoh "ki riti kyndew ba la buh u longshuwa manshuwa ha rib hoi"(1965)] h.w sten "ka miet bad um kyngah" (1966)] m. Bareh "ka drawa u mishsngi"(1966) आदि।

मूलतः इस प्रकार हम खासी संस्कृति और साहित्य पर प्रकाश डाल सकते हैं। भले ही खासी साहित्य का इतिहास डेढ़ सौ साल से अधिक पुराना हो फिर भी अभी तक खासी साहित्य उतना अधिक बिकसित रूप प्राप्त नहीं कर पाया है। उत्तर–पूर्व की अन्य जनजातियों की तुलना में खासी साहित्य अभी भी पीछे है। सांस्कृतिक दृष्टि से खासी समाज में भले ही पाश्चात्य प्रभाव है फिर भी लोक प्रचलित मान्यताएं अभी भी जीवित हैं।

सन्दर्भ :

1. Hari Charan Roy Dkhar] ka savitri, 1910
2. Sib Charan Ray, U nongapphira; kot tohkit tirtir shaphang ka niam tip blei ki khasi, 1913
3. U Sosotham, ki poetry khasi, 1925
4. U Sosotham, ka duitara ksiar, 1913
5. Rabon Singh, ka niam khasi, 1894

***

समकालीन कविता का संवेदना पक्ष

डॉ. अविनाश कुमार *

युगबोध एक ऐसा शब्द–युग्म है जो अर्थ और अभिप्राय की दृष्टि से व्यापक है। युग–परिवर्तन होता रहता है। उसका सम्यक निरीक्षण कवि को प्रबोधन का अवसर देता है। कवि का काम है सोयी हुई मनुष्यता को जगाना वह मानव जाति को यथार्थ के अंधेरे से निकालकर स्वप्न के उजाले में ले जाता है। हमारी संस्कृति में जो कहा गया है–

''तमसो मा ज्योतिर्गमय
मृत्योर्मा अमृतं गमय
असतो मा सद्गमय।''

साहित्य का कार्य अँधेरे से प्रकाश की ओर, असत्य से सत्य की ओर और मृत्यु से अमृत की ओर ले जाना है। यह एक ऐसा कार्य है जो सबसे उत्तम रूप में एक महान् साहित्यकार ही कर पाता है। समकालीन कविता वर्तमान को बेहतर और भविष्य को सुन्दर बनाने की कोशिश करती है। प्रेमरंजन अनिमेष ने समकालीन कविता और कवियों के विषय में लिखा है:– ''कहते हैं, किसी अच्छे कवि में अपने समय के स्वरों के अलावा आनेवाले कल की चाप होती है। आज रखा हुआ कविता का आईना अपने दोनों ओर के कल को देखता है। वैसे भी, वर्तमान को बेहतर और भविष्य को सुन्दर बनाने की कोशिश ही समकालीन साहित्य की धड़कन है, और यही उसे सर्वकालीन भी बनाती है।''[1]

चंद्रकान्त देवताले हिन्दी के समकालीन कवियों में एक ऐसे कवि हैं जिनकी कविताओं में एक आत्मपरकता है। पर अपने आत्मपरक वर्णनों में, अपने बारे में कहते हुए भी किसी न किसी रूप अपने वर्तमान परिवेश की अभिव्यक्ति जरूर करते हैं। प्रभात त्रिपाठी के शब्दों में– ''उपभोग और उन्माद की सभ्यता के बेरोक प्रसार, राजनैतिक, संस्कृति में लगातार जारी गिरावट, शोषण, दमन और अन्याय को पालने पोसनेवाली बाजारू रफ्तार के विरूद्ध खालिस देशी संदर्भों के धधकते अनुभवों में वाग्मिता और बेबाकी से विन्यस्त, चन्द्रकान्त की कविता कवि की पक्षधरता का एक मार्मिक और अविस्मरणीय दस्तावेज है।''[2]

समकालीन साहित्य अपने समय का सचेत बोध तथा मनुष्य के भविष्य के प्रति पक्षधर–सजग मानव चेतना है, जो वर्तमान समाज–व्यवस्था के अन्तर्विरोधों को व्यक्त करती है। दलित लेखक ओम प्रकाश वाल्मीकि कहते हैं– ''साहित्य के संदर्भ में समकालीनता का सीधा संबंध नये संदर्भों

---

* एम.ए., पीएच.डी. (हिन्दी), बी.आर.ए.बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

और नये भावबोध से जुड़ना है। नए संदर्भों से जुड़े बिना लेखन तो हो सकता है लेकिन समकालीन प्रश्नों से जूझने की प्रवृत्ति दिखाई नहीं देगी तो उस सृजन में जो भी उपस्थित होगा उसे समय की गतिविधियों से बचना ही कहा जाएगा।''[3]

'समकालीन कविता' समाज में व्याप्त अन्याय, अत्याचार शोषण, असमानता, जाति–वर्ण भेद और विषमता के खिलाफ विद्रोह और क्रांति की सशक्त चेतना जागृत की है। डॉ. रामनरेश कुमार के शब्दों में– ''समकालीन कविता में जनतंत्र, समाजवाद, जनता, चुनाव, नारेबाजी, आन्दोलन, धर्म–निरपेक्षता, देश–भक्ति, शांति और अहिंसा, न्यायालय, कानून, न्याय, संसद और सरकार आदि विविध जनतांत्रिक शब्दों एवं प्रतीकों का सार्थक प्रयोग हुआ है क्योंकि समसामयिक जीवन की विषमता तथा विसंगतियों का निरूपण करने में ऐसी शब्दावली का सटीक और सार्थक प्रयोग करना आवश्यक था।''[4]

'समकालीन कविता' की परम्परा और इतिहास के संबंध में डॉ. सुधा बालकृष्णन लिखती है– ''समकालीन कविता मानव जीवन की समग्रता की कविता है। उसका आभ्यन्तर पक्ष इतना गहन और गम्भीर है कि वह जीवन के विविध आयामों को दीप्त करता है। इसलिए समकालीन कविता विविध आयामी भी है। विविधता की दृष्टि से यह अपने पूर्ववर्ती काल की कविता से कहीं ज्यादा विस्तृत एवं व्यापक है फिर भी वह अपने विरासत को विस्तृत नहीं करती। समकालीन हिन्दी कविता विरासत से जुड़ी कविता तो है ही पर गतिवान दिशा भी है। अतः समकालीन कविता की संपृक्ति स्थापित होती है तो मात्र उन गतिवान दिशाओं के साथ। इस प्रकार समकालीन कविता की अपनी वृहद् परम्परा है और उसका इतिहास भी।''[5]

'समकालीन कविता' को किसी अलग आन्दोलन की संज्ञा देने की अपेक्षा उसे हिन्दी के सभी साठोत्तरी आन्दोलनों का समुच्चय मानना उचित होगा। 'समकालीन कविता के संदर्भ में डॉ. विशम्भरनाथ उपाध्याय का मत द्रष्टव्य है– ''हिन्दी कविता का नवीनतम आन्दोलन 'समकालीन कविता' का है। इसका प्रवर्त्तन डॉ. विशम्भरनाथ उपाध्याय ने सन् 1976 में अपनी पुस्तक 'समकालीन कविता की भूमिका' के माध्यम से किया। इसके पहले खण्ड में जहाँ लगभग सवा सौ पृष्ठों में समकालीनता के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए उससे सम्बन्धित कवियों की काव्य–रचना के वैशिष्ट्य पर प्रकाश डाला गया है, वहाँ दूसरे खण्ड में तीस कवियों की रचनाओं को भी संकलित किया गया है।''[6]

'समकालीन कविता' अन्तर्वस्तु को महत्व देती है तथा नये कथ्य और फार्म में समकालीन वैयक्तिक' सामाजिक तथा राजनैतिक सरोकारों को सार्थक ढंग से अभिव्यक्त करती है। समकालीन कविता के स्वरूप का विश्लेषण करते हुए डॉ. विशम्भरनाथ उपाध्याय ने लिखा है– ''समकालीन कविता में, जो हो रहा है' (बिकमिंग) का सीधा खुलासा है। इसे पढ़कर

वर्तमान काल का बोध हो सकता है क्योंकि उसमें जीते, संघर्ष करते, लड़ते, बौखलाते, तड़पते–गरजते तथा ठोकर खाकर सोचते वास्तविक आदमी का परिदृश्य है।''[7]

आज के कवि निर्भय है निडर है, वह छोटी से छोटी घटना, स्थिति, वस्तु आदि पर नजर रखते है और उसे अर्थ देने की कोशिश करते है। डॉ. नामवर सिंह ने हिन्दी कविता के बदलते स्वरूप को लेकर कुछ बाते कहीं है– ''आज कवि को न तो अपने अन्दर झाँककर देखने में संकोच है, न बाहर के यथार्थ का सामना करने में कोई हिचक। अन्दर न तो किसी असंदिग्ध विश्वदृष्टि का खूँटा गाड़ने की जिद है और न बाहर व्यवस्था को एक विराट् पहाड़ के रूप में आँकने की हवस। बाहर छोटी से छोटी घटना, स्थिति, वस्तु आदि पर नजर है और कोशिश है उसे अर्थ देने की। इसी बाहर के प्रतिक्रिया स्वरूप अंदर उठनेवाली छोटी लहर को भी पकड़कर उसे शब्दों में बाँध लेने का उत्साह है। अब यह स्पष्ट दिखाई दे रहा है कि न रोमैंटिक ढंग का व्यक्तिवादी विद्रोह संभव है और न अपने अन्दर सिमटकर मानसिक जुगाली करने में ही निष्कृति है। गरज यह है कि एक नये स्तर पर कवि व्यक्ति अपने और समाज के बीच के रिश्तों को साधने की कोशिश कर रहा है और इस प्रक्रिया में जो व्यक्तित्व बनता दिखाई दे रहा है, वह निश्चय ही एक नये ढ़ंग की प्रगीतात्मकता के उभार का संकेत है।''[8]

समकालीन कविता हमें हमारे समय से पहचान करवाती है तथा इसका मुख्य आधार यथार्थ है। डॉ. वेद प्रकाश अभिताभ के शब्दों में– ''समकालीन कविता नई कविता के विविध आन्दोलनों में एक प्रमुख आन्दोलन है। कविता में इसका प्रारंभ छठे दशक से माना जाता है। समकालीन कविता की निश्चित परिभाषा दे पाना संभव नहीं है– पर इस कविता का आधार यथार्थ है। जीवन की विसंगतियों को विशेष महत्व दिया जाता है। समकालीन कवि की चौकन्नी दृष्टि समसामयिक सत्य पर टिकी है। वह जीवन जगत से प्राप्त अनुभवों को ही पकड़कर किसी वैचारिक सत्य तक पहुँचता है।''[9]

'समकालीन कविता' के माध्यम से साठोत्तरी युग ने उन सभी आन्दोलनों को समर्थन प्रदान किया जो कि नयी कविता के विरोध में स्थापित हुए थे। समकालीन कविता से तात्पर्य है जो लिखा जा रहा है। वह अपने समय के सत्यों को उद्घाटित करनेवाला दास्तावेज है। डॉ. व्यासमणि त्रिपाठी ने इसे स्पष्ट करते हुए लिखा हैः– ''समकालीन कविता नई कविता के विरोध में आयी थी। नई कविता तीव्र वैचारिक अन्तर्विरोधों की कविता थी जिसके प्रति असंतोष और विद्रोह की भावना भरकर नई पीढ़ी ने समकालीन कविता की शुरूआत की। सन् 60 के बाद की सामाजिक, राजनैतिक एवं आर्थिक परिस्थितियों ने जो वातावरण बनाया उसमें हिन्दी कविता के कई आन्दोलनों को मुखरित होने का अवसर मिला किन्तु समकालीन कविता की तरह उनकी जड़ों में उतनी ताकत नहीं थी

जिसके कारण वे समय के थपेड़ों को अधिक दिन तक सह नहीं सके। समकालीन कविता अपनी युगीन चेतना एवं अन्तर्द्वन्द्वों से जूझती हुई अग्रगामी रही है तो इसका कारण उसकी जड़ों का जीवन–जगत के यथार्थ की मिट्टी में गहराई तक धँसा होना है।''[10]

मनुष्य की नियति है सपने देखना, वैसे सपने जो अंधकार को भेदकर प्रकाश लाएगी। समकालीन कवि समाज में फैली निराशा–हताशा को आशा का रूप देने की कल्पना करते हैं। डॉ. अनिल राय के शब्दों में– ''मनुष्य, इतिहास, संस्कृति और कविता में भरोसा करनेवालों की एक लम्बी अपराजेय परंपरा है। समकालीन कविता भी इसी परम्परा में है। इसे मानवीय संस्कृति के ऐतिहासिक निष्कर्षों पर पूरा भरोसा है इसलिए यह आज की अनेक निराश–हताश दार्शनिक उपपत्तियों से आक्रान्त नहीं है। अंधकार के बावजूद इसे विश्वास है कि सुबह होगी, जरूर होगी। समकालीन कविता में सपनों का संदर्भ आता है, बार–बार। अलग–अलग तरह से, सपने टूट रहे हैं, सपने बिखर रहे हैं। फिर भी हैं कि देखें जा रहे हैं अविराम। आँखे हैं कि सपना देखना बन्द नहीं करती। यह उद्दाम आशावाद है। इतिहास के भरोसे के बिना यह आशावाद सम्भव नहीं। जीवन के भरोसे के बिना कविता भी संभव नहीं।''[11]

युगबोध से गीत तथा कविता में यथार्थता आती है तथा उसमें साहित्य के इतिहास को बदलने की शक्ति है तभी तो डॉ. रश्मि जैन लिखती है– ''जीवन दर्शन संवेदना का वह धरातल है जिसका ज्ञानात्मक पक्ष अध्यात्म पर और भावात्मक पक्ष सामाजिकता पर टिका होता है। स्वानुभूति जीवन दर्शन का मूल तत्व है। अनुभूति जीवन दर्शन से प्रभावित होती है। युगबोध गीत को विश्वस्त बनाता हैं उसमें साहित्य के इतिहास को बदलने की शक्ति होती है। युगबोध से गीत में यथार्थता आती है, गीत युगबोध की असुन्दरता को सुन्दरता में बदल देती है। युगबोध में शोषण, पूँजीवाद, बालश्रम, बेगार आदि भी समाहित हो जाते हैं। संवेदना के अन्य आयामों में सम्बन्धों की संवेदना, अंतर्राष्ट्रीय संवेदना एवं आध्यात्मिक संवेदना के रूप में प्रमुख है।''[12]

समकालीन कविता के संदर्भ में जाने–माने आलोचक जयप्रकाश ने यथार्थ को उद्घाटित करते हुए लिखा है– ''आज की कविता में ज्यादातर वैश्वीकरण के यथार्थ के विवरण हैं और उसका प्रतिवाद एक सुपरिचित काव्य–मुद्रा में बदल गया है। प्रतिवाद का केन्द्र वैश्वीकरण में स्थिर है। हिन्दी में दलित स्त्री और आदिवासी पर केन्द्रित कविताओं के उभार में जीवनानुभव के खरेपन से ज्यादा अस्मिता की राजनीति के दबाव को साफ तौर पर देखा जा सकता है।''[13]

आज की कविता मनुष्य को सामाजिकता का अध्ययन कराती है ताकि वह अपने देश के मानव मूल्यों को बनाये रखें डॉ. बाबू जोसफ ने समकालीन कविता पर अपने विचार व्यक्त करते हुए लिखा है– ''मानव

जीवन के यथार्थ की अभिव्यक्ति करना ही समकालीन कवियों का मूलभूत प्रयास रहा है। कविता मानव की आत्मिक–सांस्कृतिक अभिव्यक्ति है, वह जन–मन की वाणी है, मनोरंजन और उपभोग से लेकर विद्रोह और बदलाव के लिए उपयोग में आनेवाली वस्तु है। जीवंत कविता हमेशा मानवीय और संभावनापूर्ण होती है। मनुष्यता का संरक्षण–संवर्द्धन करना कविता का मुख्य सरोकार है। मनुष्यता सामाजिकता के लिए प्रेरित कर सकती है तो समाज व्यक्ति को मनुष्यता के पक्ष में खड़ा होने के लिए प्रेरित कर सकता है। समय के साथ–साथ कविता में अभिव्यक्त भारतीयता की अवधारणा में परिवर्तन दिखाई पड़ते हैं। इसलिए आज समकालीन कविता का एक मुद्दा यह भी है कि यह कविता मनुष्य को सामाजिकता का पहला पाठ पढ़ाती है क्योंकि इसी के द्वारा कवि भारतीयता के जीवन मूल्यों को बनाये रखना चाहते हैं। सामाजिकता मनुष्य की स्वभाविक वृत्ति भी हो सकती है और उसकी अनिवार्य विवशता भी है।''[14]

निष्कर्शतः समकालीन कविता अपनी वैचारिक प्रतिबद्धता, युग–धर्म सापेक्षता, प्रचलित मूल्यों के विचलनता, सामाजिक पक्षधरता आदि विविध आयामी पक्षों को समेटे हुये विकसनशील है। संवेदना के विविध रंग समकालीन कविता की पहचान हैं, जान है एवं प्राण तत्व भी है। परम्परा एवं आधुनिकता की सामंजस्य स्थापित करते हुये समकालीन कवि रचना प्रेरणा दे रहे हैं।

संदर्भ :

1. अरूण कमल, प्रतिनिधि कविताएँ, सम्पादक– प्रेमरंजन अनिमेष, पृ. 15, राजकमल प्रकाशन, प्रा. लि., नई दिल्ली, 2013
2. चन्द्रकान्त देवताले, प्रतिनिधि कविताएँ, सम्पादक– प्रभात त्रिपाठी, राजकमल प्रकाशन, पृ. 12, प्रा.लि., नई दिल्ली, 2013
3. ओमप्रकाश वाल्मीकि, मुख्यधारा और दलित साहित्य, पृ. 162, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009
4. रामनरेश कुमार, दलीत चेतना और समकालीन कविता, पृ. 74
5. डॉ. सुधा बालकृष्णन, पंचशक्ति शोध समीक्षा, अंक 19, पृ. 20, डॉ. हेतु भारद्वाज, पंचशक्ति प्रकाशन, जयपुर, 2013
6. डॉ. गणपति चन्द्र गुप्त, हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास, पृ. 307, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1999
7. वही पृ. 308
8. डॉ. रेवती रमण, परम्परा का पुनरीक्षण, पृ. 268, समीक्षा प्रकाशन, मुजफ्फरपुर, 2016
9. डॉ. वेदप्रकाश अमिताभ, अभिनव प्रसंगवश (त्रैमासिक), पृ. 54, अक्टूबर–दिसम्बर, 2009

10. डॉ. व्यासमणि त्रिपाठी, शोधश्री, पृ. 13, सम्पादक– प्रो. शर्मिला सक्सेना, हिन्दी विभाग, दयालबाग, आगरा (उ.प्र.), 2011
11. डॉ. अनीत राय, शोध मनीषा, पृ. 72, सम्पादक– डॉ. सतीश कुमार राय, विश्विद्यालय हिन्दी विभाग, मुजफ्फरपुर, 2015
12. डॉ. रश्मि जैन, शोधश्री, पृ. 30, सम्पादक– प्रो. शर्मिला सक्सेना, हिन्दी विभाग, दयालबाग, आगरा (उ0 प्र0), 2011
13. जयप्रकाश, वागर्थ अंक–235, पृ. 47, सम्पादक– एकान्त श्रीवास्तव, भारतीय भाषा परिषद्, कलकत्ता, फरवरी, 2015
14. डॉ. बाबू जोसफ, शोधश्री, पृ. 60, सम्पादक– प्रो. शर्मिला सक्सेना, हिन्दी विभाग, दयालबाग, आगरा (उ.प्र.), 2011

***

दलित साहित्य की विकास यात्रा एवं जयप्रकाश नवेन्दु महर्षि की रचनात्मक उपलब्धियाँ

*डॉ. गायत्री सिंह**

हिन्दी दलित साहित्य निरंतर विकसनशील रही है। अनेक दलित साहित्यकारों ने अपनी रचनात्मक क्षमता से दलित साहित्य को समृद्ध किया है। जयप्रकाश नवेन्दु महर्षि एक वैसे ही रचनात्मकता के धनी दलित साहित्यकार हैं। जिन्होंने कहानी, कविता, उपन्यास, नाटक, आत्मकथा एवं अनेक दस्तावेजों के माध्यम से दलित साहित्य के विकास–यात्रा में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

दलित समाज सदियों से शोषित रहा है। दबा–कुचला और वंचित रहा है। उसके मान और सम्मान को हमेशा से तोड़ा–मरोड़ा और कुचला जाता रहा है। धूल–धूसरित किया जाता रहा है। यहॉ तक कि उसकी अस्मिता अैर उसके मनुष्य मात्र होने तक को भी सवर्णों द्वारा नकारा जाता रहा है। यह स्थिति लगभग आज भी जस की तस ही बनी हुई है। आज हम जिस लोकतंत्र में रहते हैं, यह भी सही मायनों में एक सच्चा लोकतंत्र नहीं है बल्कि इसके ऊपर भी इसी तथाकथित मनुवाद का ही साया विद्यमान है और इसकी रगों में भी ब्राह्मणवादी खून ही दौड़ रहा है, जिसके चलते ही आज हिन्दुस्तान दो भागों में बॅट चुका है। एक तरफ सुख–वैभव से परिपूर्ण सवर्ण हिन्दुस्तान है तो दूसरी तरफ दुःख–दैन्य और अभावग्रस्त दलित–पिछड़ा, आदिवासी हिन्दुस्तान है। एक तरफ सेंसेक्स और निफ्टी की रोज बढ़त दर्शाता हिन्दुस्तान है तो दूसरी ओर दिन ब दिन और अधिक हल्कान–परेशान और अभावों के बोझ से दबता जाता हिन्दुस्तान है। एक ओर जहाँ आधुनिक मॉल संस्कृति और एटीएम वाला हिन्दुस्तान है, तो दूसरी ओर वही आजादी से पहले हाट और पींठ में जीने वाला और पल्लू की गॉठ में मुड़े–तुड़े नोट निकालने वाला हिन्दुस्तान है। यह अंतराल दिन पर दिन बढ़ता ही जा रहा है। इस स्थिति को उलटने की जरूरत है, इस स्थिति को पलटने की जरूरत है और इस स्थिति से निपटने की जरूरत है।

नवेन्दु महर्षि ने कहानी के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। उनकी दो कहानी–संग्रह 'अपनी–अपनी जाति' तथा 'ब्राह्मण की बेटी' नाम से सन् 2011 में प्रखर प्रकाशन दिल्ली से प्रकाशित हुआ। जहाँ 'अपनी–अपनी जाति' कहानी संग्रह में कुल बारह कहानियाँ है वहीं 'ब्राह्मण की बेटी' कहानी संग्रह में कुल दस कहानियाँ संगृहीत है। नवेन्दु महर्षि की सभी कहानियाँ किसी न किसी यथार्थ घटना पर आधारित है। इन दोनों

* एम.ए., पीएच.डी. (हिन्दी), बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

कहानी–संग्रहों की कहानियाँ दबे–कुचले वंचित समाज के सामने एक नयी राह खोलेगी और दलित समाज में साहित्य द्वारा विकसित हो रही चेतना को और अधिक गतिशील बनाएगी।

नवेंदु महर्षि की कहानी 'कत्थई कप में चाय' में सवर्ण महिला द्वारा दलित का स्वागत कितनी बेरूखी से की गयी है इस उदाहरण में देखा जा सकता हैः– ''अरे गुप्ता जी, अब तुमसे क्या छुपाना, दरअसल भाई हम तो ब्राह्मण है और धर्म मान–मर्यादाओं में भी आस्था रखते हैं। इसलिए सच बात यह है कि मेरे घर में जब भी कोई छोटी जाति का व्यक्ति आता है तो उसे दूसरों से अलग कपों में ही चाय देती हूँ। यही वजह थी कि मैं तुम्हारे उस दोस्त के लिए अलग कप में चाय लाई थी।''[1]

नवेन्दु महर्षि की एक कहानी 'मिड–डे मील' में विद्यालय में दलित महिला से मिड–डे मिल योजना के तहद भोजन बनवाने से सवर्णों के बच्चों के अभिभावक की नाराजगी इस उदाहरण में देखी जा सकती है– ''अरे मास्टर जी, गॉधी की बात गॉधी जाने! हम तो अपनी बात जानै हैं। हम तो आज से नहीं मानते आ रहे, बहुत पहले से मानते आ रहे हैं हमने आपसे कह दिया कि हमारे बच्चे एक दलित महिला के हाथ का पका खाना नहीं खावेंगे।''[2]

एक दलित युवक ब्राह्मण की बेटी से प्रेम विवाह कर लेता है इसके परिणामस्वरूप सवर्णों की पंचायत में एक मत से दलित युवक के माँ–बहन के साथ बदसलूकी करने का फैसला सुनाता है। नवेन्दु महर्षि की कहानी 'ब्राह्मण की बेटी' में देखी जा सकती है– ''भाइयों, मंगलू के लड़के ने सत्यनारायण मिश्र की लड़की पर हाथ डाला है। उसकी इज्जत से खिलवाड़ किया है तो सत्यनारायण मिश्र के लड़कों को भी हक है कि वे मंगलू की बेटी के साथ जैसा चाहें सलूक करें। इस पंचायत का यही फैसला है।''[3]

नवेन्दु महर्षि की कहानी 'जिहाद' गढ़वाल में घटित एक दलित स्त्री के साथ मंदिर में पुजारी और गाँव के कुछ आवारा लड़कों द्वारा हवस का शिकार बनाया गया, जो वास्तविक घटना पर आधारित है। प्रस्तुत है इस कहानी के कुछ अंश – ''यारों, ये गिलास की शराब तो कुछ भी नहीं छैः, असली नशा तो ये छैः। और इस तरह नशे में पूरी तरह धुत होने के बाद उन चारों ने पार्वती को अपनी हवस का शिकार बनाया और लगभग आधी रात तक अपनी मनमानी कर चुकने के बाद पुजारी ने फिर से मंदिर का दरवाजा बाहर से बन्द कर ताला लगाया और बाकी साथियों के साथ वहॉ से चला गया।''[4]

नवेन्दु महर्षि ने हिन्दी दलित कविता को अपनी रचनात्मकता के माध्यम से समृद्ध किया है। हिन्दी दलित चेतना को रेखांकित करनेवाली दर्जनों कविताएँ 'नवेंदु महर्षि' ने लिखी हैं। नवेंदु महर्षि की काव्य रचनाओं में दलित, पिछड़ेपन और दलितों पर हो रहे अत्याचार का विरोध है। नवेंदु

महर्षि की कविताओं में जहाँ एक ओर सम्पूर्ण मानवता के प्रति प्रेम, करूणा, सहानुभूति, विश्वबंधुत्व और विश्व शांति की धारा उमड़–उमड़ कर बह निकली है तो दूसरी ओर संघर्ष पथ में इनका अन्याय, शोषण और दमन के खिलाफ आक्रोशित और वीर रूप भी सामने आया है।उनकी कविता 'भाग्योदय' में दलितों के द्वारा सवर्णों को हाथ दिखाने नहीं बल्कि मुक्का दिखाने की बात इस तरह कही गई है–

''क्योंकि दलितों का भाग्य
उस दिन बदलेगा
जिस दिन वे
ब्राह्मण को
हथेली की जगह
मुक्का दिखलाएँगे।''[5]

नवेंदु महर्षिकी कविता 'खेल' में सवर्णों की दबंगता को उजागर किया गया है। दलितों पर जुल्म और आत्याचार को इस पंक्ति में व्यक्त किया गया है–

''ब्राह्मण
दिमाग से खेलता है
क्षत्रिय
शक्ति से खेलता है
वैश्य
दौलत से खेलता है
तीनों ही
मिलकर उसकी
अस्मिता से खेलते हैं।''[6]

इस तरह नवेन्दु महर्षि ने दलित कविता के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान दिया। इतना ही नहीं हजारों सालों से गुलामी की जंजीरों में जकड़े दलित समाज की मुक्ति में इनकी कविता सहायक बनी है।

दलित साहित्य में आत्मकथाओं की एक अलग ही महत्ता है। दलित आत्मकथाओं ने समाज और इतिहास के कुछ ऐसे अनचिन्हें पृष्ठों को उघाड़ा है, जहॉ सामाजिकता और धार्मिकता की ओट में शोषण और दमन का वीभत्स खेल खेला जा रहा था। आज भी भारत में जाति–व्यवस्था का अमानवीय रूप अनेक प्रतिभाओं के विनाश का कारण बनता है। लेकिन भारतीय मनीषा की महानता पर कोई फर्क नहीं पड़ता। आज भी दलितों को पीने के पानी तक के लिए संघर्ष करना पड़ता है। दलित आत्मकथाएँ इन सबको पूरी ईमानदारी से बेनकाव करती है। दलित आत्म–कथाओं ने भारतीय समाज के दोहरे जीवन–मूल्यों के यथार्थ को साहित्य में अभिव्यक्त किया है।

नवेन्दु महर्षि ने अपनी आत्मकथा को पॉच भागों में विभक्त किया है– पहला भाग– 'इंसान से ईश्वर तक', दूसरा भाग– 'मेरे मन की बाइबिल', तीसरा भाग– 'रूकी हुई रोशनी', चौथा भाग–'कुछ काँटे कुछ फूल', तथा पॉचवा भाग– 'मेरा बचपन मेरा संघर्ष।' नवेन्दु महर्शि ने इन पॉचों भागों में अपनी सभी जीवन संघर्षो के अनुभवों को अलग–अलग व्यक्त किया है। नवेन्दु महर्शि की आत्मकथा के पहले भाग– 'इंसान से ईश्वर तक' में मुम्बई प्रवास के बाद हुए विद्यालय प्रबंधन द्वारा उनकी उत्पीड़न और ज्वांनिंग में अड़चन डालने के अनुभव को व्यक्त किया है। नवेन्दु महर्शि की जब से विद्यालय में नौकरी लगी उसी दिन से उनका उन जातिवादी शक्तियों से सामना शुरू हो गया था जिसका एक मात्र कारण था इनका दलित होना। प्रस्तुत है उनकी आत्मकथा का एक अंश– ''जिस दिन से उस विद्यालय में मेरी नौकरी लगी थी उस दिन से ही मेरा उन जातिवादी शक्तियों से सामना होना शुरू हो गया था। इसके पहले उस विद्यालय में जो प्रिंसिपल था वह जाति से गुप्ता था। जिसके कार्यकाल में मैंने लगभग पंद्रह वर्षो तक नौकरी की थी। लेकिन उन पंद्रह वर्षो में एक भी दिन ऐसा नहीं गुजरा था जिस दिन प्रिंसिपल का मेरे साथ झगड़ा नहीं हुआ था। वह मामूली सी बात पर मुझे अपमानित कर दिया करता था। काफी लंबे अर्से तक ऐसे ही लड़ाई–झगड़े की स्थिति से आखिर मैं तंग आ गया था और मैंने कुछ दिन की लंबी छुट्टी ले ली थी। इस बीच मैं कहीं दूसरी जगह नौकरी पाने की कोशिश भी करता रहा था। लेकिन सफलता न मिल पाने के कारण मुझे पुनः उसी विद्यालय में लौटकर ज्वाइनिंग की अर्जी देनी पड़ी थी। लेकिन अब दूसरा प्रिसिंपल उससे भी कहीं अधिक जातिवादी प्रवृत्ति का था। क्योंकि वह ब्राह्मण था और मुझे छः महीने से परेशान कर रहा था।''[7]

नवेंदु महर्षि ने अपनी आत्मकथा 'मेरे मन की बाइबिल' में पिता की समस्याओं को उजागर किया है। नवेंदु महर्षि के पिता गॉव छोड़कर जिस शहर में गये वहॉ पहचान के लोग कम थे जिस कारण उन्हें मजदूरी में दिक्कत आ रही थी उन्हें कभी काम मिलता था कभी नहीं। पिता को काम नहीं मिलने से घर की हालत और भी खराब होती जा रही थी। प्रधानाचार्य बहुत खुश नजर आ रहे हैं। वे मुस्काराते हुए नजदीक आए और अपने खड़े होने का सही जगह तलाशने लगे हैं। इसी बीच उनकी नजर कतार में खड़े मुझ पर पड़ी है, जिसके बाद उनका चेहरा अचानक कठोर–सा हो गया है। चेहरे की मुस्कान गायब हो चुकी है। उन्होंने कुछ तीखी और सख्त आवाज में मुझसे कहा है– 'आप बाहर निकल जाइए।'

मैं अचानक उनकी बात का आशय नहीं समझ सका हूँ। मैं चुपचाप उनके इस बदले हुए व्यवहार को देख रहा हूँ। मुझे अपने भीतर बहुत ग्लानि हो रहा है। मैं अपने को बहुत अपमानित महसूस कर रहा हूँ। मुझे अपने बाहर निकाले जाने का कोई कारण समझ में नहीं आ रहा है। सहसा मेरे भीतर अनुभूति जगी है और मैं सब–कुछ पूरी तरह समझ गया हूँ। मेरे बाहर

निकाले जाने का कारण मेरी जाति है। वह नहीं चाहते कि विद्यालय के ग्रुप–फोटों में किसी अवर्ण जाति के अध्यापक की उपस्थिति नजर आए।''[8]

आत्मकथा यथार्थ से यथार्थ तक पहुॅचाने की प्रक्रिया है। नवेंदु महर्षि ने भी अपने भोगे हुए यथार्थ और संघर्षों को अपनी आत्मकथा के पॉच भागों में लिखकर दलित आत्मकथा के रूप में प्रस्तुत कर दलित साहित्य में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

नवेन्दु महर्षि का पहला नाटक 'आर्य' है जिसमें आर्यो के भारत आगमन और द्रविड़ों की खो गई पहचान को रेखांकित करने का प्रयास किया गया है और द्रविड़ संस्कृति को पुर्नपरिभाषित और पुर्नस्थापित करने की कोशिश की गई है। इसके अलावा दूसरा नाटक 'देव–चरित' नाम से है। जिसमे देवी देवताओं के नैतिकीय और मानवीय पक्ष की समीक्षा की गई है और दया, प्रेम, करूणा जैसे जीवन मूल्यों के आधार पर चरित्रगत विवेचना प्रस्तुत की गई है। जबकि तीसरा नाटक 'नयी रामायण' नाम से है। जिसके अन्तर्गत रामायण के प्रमुख पात्रों को नये और दलित विमर्श के परिप्रेक्ष्य में मूल्यांकित किया गया है एवं चौथे नाटक 'पूरब में अंधेरा' नाम से है जो कि एक प्रतीकात्मक और एक चिंतन प्रधान नाटक है। जिसमें कि आर्य संस्कृति की सर्वथा एक नए धरातल पर छानबीन की गई है। इस तरह कुल मिलाकर यदि संक्षेप में कहा जाए तो नवेंदु महर्षिके इन नाटकों में आर्य संस्कृति की सांस्कृतिक समीक्षा दलित दृष्टिकोण से करना और शताब्दियों पूर्व की दलितों की द्रविड़ मूलवंशीय भारतीय पहचान को उद्घाटित और उद्भाषित करना तथा उसे अन्तराष्ट्रीय फलक पर चिन्हित करना ही नवेंदु महर्षिका मुख्य उद्देश्य था। ताकि इस पतनशील, परंपरावादी, प्रगति विमुख आर्य संस्कृति से दबे–कुचले वंचित समाज को मुक्त करने के खातिर उसे शिक्षित जागरूक बनाया जा सके। नवेंदु महर्षिके ये नाटक इस दिशा में कारगर और सहायक सिद्ध होंगे।

नवेन्दु महर्षि की एक मात्र उपन्यास है 'दोहन'। इस उपन्यास में इन्होंने ग्राम जीवन के मुक्त वातावरण की खिलखिलाहट के साथ वहॉ की विवशता को कुछ इस तरह उजागर किया है–

''यदि बस यह कहा जाए कि यह है 'दोहन'। ग्राम्य जीवन पर आधारित एक उपन्यास। जिसमें वहॉ के मुक्त वातावरण की खिलखिलाहटें है तो विवशता के बोझ मे दबी सिसिकियाँ भी। अतीत के प्रति संस्कारबद्ध प्रेम है तो वर्त्तमान के प्रति उभरता आक्रोश भी। संध्या बेला में मुखरित पक्षियों का स्वर संगीत है तो सूर्योदय की ओस भीगी मिट्टी का सोंधापन भी तो काफी होगा।''[9]

नवेंदु महर्षि की अगली कृति 'भारत में ब्राह्मणवाद, राष्ट्रवाद और दलित' नाम से प्रकाशित एक वैचारिक ग्रन्थ है। जिसे नवेंदु महर्षिने चार खण्डों में विभाजित किया है। जिसके खण्ड एक में 'भारत में दलित राष्ट्रवाद' खण्ड दो में 'भारत में स्वातन्त्रयोत्तर ब्राह्मणवाद' खण्ड तीन में

'भारत में दलित जागरण' तथा खण्ड चार में 'भारत में संस्कृति संघर्ष' को प्रस्तुत किया है। उसका महत्वपूर्ण अंष द्रश्टव्य है–''ऐ बन्धुओ! जब दलित देश के मूल निवासी हैं तो फिर उनकी स्थिति बाहरवालों की सी क्यों है? दोयम नागरिकों की सी क्यों है? किरायेदारों की सी क्यों है? जब दलित देश के मूल निवासी हैं। तो फिर उनकी स्थिति गुलामों की सी क्यों हैं? सेवाकों की सी क्यों हैं? बंधुओं की सी क्यो हैं? जब दलित देश के मूल निवासी हैं। तो फिर उनकी स्थिति कैदियों की सी क्यों है? नजरबन्दियों की सी क्यों है? कर्फ्यूग्रस्तों की सी क्यों है? जब दलित देश के मूल निवासी है। तो फिर उनकी स्थिति वंचितों की सी क्यों है? उपेक्षितों की सी क्यों है? बेबसों की सी क्यों है? जब दलित देश के मूल निवासी हैं। तो फिर उनकी स्थिति अर्धनंगों की सी क्यों है? बेघरों की सी क्यों है? जब दलित देश के मूल निवासी हैं। तो फिर उनकी स्थिति दबे हुओं की सी क्यों है? पिछड़ों की सी क्यों है? हाशिये वालों की सी क्यों है? इस स्थिति पर सोंचने की जरूरत है!''[10]

नवेन्दु महर्षि की अगली पुस्तक 'भारत दलित क्रांति'दलित क्रांति परमहत्वपूर्ण पुस्तक है। इस पुस्तक में नवेंदु महर्षि ने दबे–कुचले दलितों को एकजुट होने के साथ–साथ विचार कर संघर्ष से सफलता अर्जित करने की बात की है। महर्षि के इस पुस्तक के कुछ अंश इस प्रकार हैं–''बिना विचार के संघर्ष से कभी भी सफलता अर्जित नहीं होती है और बिना विचार के कोई भी कौम जागरूक नहीं बनती है। बिना विचार का संघर्ष सवार विहीन घोड़े के समान होता है जो किसी भी मंजिल तक नहीं पहुॅचता। दलित साहित्य ने दलित समाज में विचार पैदा करने का काम किया है। जिससे सदियों से सुप्त दलित समाज में चेतना लौटी है। उसमें स्वाभिमान जगा है। हिम्मत और हौसला बढ़ा है। दलित समाज में धीरे–धीरे एकजुट होना शुरू हो चुका है। दलित समाज इन दिनों विचार क्रांति के संक्रमण काल से गुजर रहा है। लेकिन समग्र क्रांति का लक्ष्य अभी दूर है जिसे हासिल करना और जिसके लिए संघर्ष निरन्तर जारी रहना चाहिए।''[11]

निश्कर्शतः यह कहा जा सकता है कि नवेन्दु महर्षि का दलित साहित्य में बहुत बडा योगदान है। इन्होंने अपनी रचनात्मक पहल से दलित साहित्य रूपी सम्पदा को समृद्ध किया है। नवेन्दु महर्शि की प्रकाषित पुस्तकों में एक उपन्यास, दो कहानी संग्रह, आठ कविता संग्रह, पांच खण्डों में आत्मकथा, चार नाटक, एक वैचारिक ग्रंथ एवं आलोचनात्मक पुस्तक तीन दस्तावेज आदि महत्वपूर्ण हैं। निश्चित रूप से हिन्दी दलित साहित्य की विकास यात्रा में जयप्रकाष नवेन्दु महर्षि का रचनात्मक योगदान अद्वितीय है।

सन्दर्भ :

1. 'कत्थई कप में चाय', अपनी–अपनी जाति, नवेन्दु महर्षि, प्रखर प्रकाशन दिल्ली, 2011, पृ. 75–76
2. 'मीड–डे मील', ब्राह्मण की बेटी, नवेन्दु महर्षि, प्रखर प्रकाशन दिल्ली, 2011, पृ. 16
3. 'ब्राह्मण की बेटी', ब्राह्ममण की बेटी, नवेन्दु महर्षि, प्रखर प्रकाशन दिल्ली, 2011, पृ. 52
4. 'जिहाद' वहीं, पृ. 69
5. भाग्योदय–3, संस्पद तो सवर्ण है, नवेन्दु महर्षि, मेधा बुक्स दिल्ली, 2003, पृ. 92
6. 'खेल', दलित जाग गए हैं, नवेन्दु महर्षि, प्रखर प्रकाशन दिल्ली 2011 पृ. 15
7. इंसान से ईश्वर तक, नवेन्दु महर्षि, मेधा बुक्स, दिल्ली, 2006, पृ. 71
8. मेरे मन की बाइबिल, नवेन्दु महर्षि, मेधा बुक्स, दिल्ली, 2007, पृ. 67
9. दोहन, नवेन्दु महर्षि, प्रियदर्शिनी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1984, अपनी बात से
10. भारत में ब्राह्मणवाद, राष्ट्रवाद और दलित, नवेन्दु महर्षि, प्रखर प्रकाशन, दिल्ली 2012, पृ. 7–8त्र
11. भारत दलित क्रांति, नवेन्दु महर्षि, प्रखर प्रकाशन दिल्ली, 2013, पृ. 7त्र

***

समकालीन उपन्यासों में पर्यावरण-विमर्श

सोना बाबू *

वर्तमान समय में पर्यावरण एक स्वतंत्र विषय के रूप में स्थापित हो चुका है। मानव–पर्यावरण संबंध सभ्यता के प्रारंभ से है। मानव द्वारा अपने विकास के लिए समय के साथ पर्यावरण में हस्तक्षेप किया जाने लगा। यह हस्तक्षेप आधुनिक युग में अप्रत्याशित रूप से बढ़ गया। मानव ने विकास के लालच में पर्यावरण को बेहद निर्दयता पूर्वक नुकसान पहुँचाना प्रारंभ किया। परिणामस्वरूप मानव–पर्यावरण संबंध में सामंजस्य कम होने लगा। तरह–तरह की समस्याएँ उत्पन्न होने लगी। जलवायु परिवर्तन जैसे गंभीर खतरे उत्पन्न होने लगी। जलवायु परिवर्तन जैसे गंभीर खतरे उत्पन्न होने लगे। प्राकृतिक आपदा की आवृति बढ़ गई। विश्व समुदाय का ध्यान पर्यावरण अवनयन ने खींचा। सरकार स्तर पर विचार–विमर्श प्रारंभ हुआ। इसके समाधन हेतु विश्व समुदाय मिलकर कार्य करने हेतु 'सतत विकास' की अवधरणा को स्वीकार किया। वर्तमान में पर्यावरण संबंधी जागरूकता बढ़ने का ही परिणाम है कि साहित्य में भी पर्यावरण–विमर्श प्रमुखता से तो नहीं परन्तु गौणताः ही स्थान ग्रहण करने लगा है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है– ''सत्तर के दशक से अस्सी के दशक तक आते–आते भारत के वनों का विस्तारण 16.9 प्रतिशत से घटकर 14.1 प्रतिशत रह गया, यानि हर बरस औसत 10 लाख 30 हजार हेक्टेयर बनों का नुकसान हुआ। बाद में यह घटकर केवल 10 प्रतिशत रह गया। आदिवासी मुख्यतः जंगलों पर ही निर्भर रहता है। इनकी आबादी 5.38 करोड़ है और यह बरसों से प्रकृति के साथ मिलकर रहता रहा है। इनके जीविकार्जन के साधन जंगल ही हैं, इसलिए जंगलों के ह्रास के चलते भी आदिवासियों के रोजगार घटे। जंगल और आदिवासियों की संस्कृति तथा जीवन का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध रहा है। इध्र, इस सहजीवी आत्मीयता में कमी आई है। ट्राइबल रिसर्च एंड ट्रेनिंग सेंटर चाईबासा के मैथ्यू अरीपरमपिल ने इस कमी को दूर करने के लिए सुझाव दिया है, ''यह तभी सम्भव होगा जब आदिवासी वन–प्रबंधन में आर्थिक रूप से साझेदार तथा जंगल के उत्पादकों में भागीदार बन पाएँगे।''[1]

लोक कल्याणकारी राज्य की अवधरणा के पश्चात प्राकृतिक संसाधनों का दोहण तीव्र गति से बढ़ गया। फलस्वरूप पर्यावरण का अवनयन तीव्र गति से जारी रहा। ब्रिटिश शासन काल में संसाधनों के दोहन का एक उदाहरण जो आदिवासी विस्थापन से संबंधित है। इस प्रकार है– ''ब्रिटिश शासन काल के आरम्भ में भारतीय वनों पर सरकार की कोई रूचि नहीं थी। इस उदासीन रूख ने उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तर्रा में अचानक चोला बदला, जब देश में रेलवे विस्तार लेने लगा। 1857 के गदर में द्रुत सैनिक आवागमन की तथा अंग्रेजों के बढ़ते व्यापार ने देश–व्यापी रेलवे

* शोध-छात्र (हिन्दी-विभाग), बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

विस्तार की आवश्यकता को लेकर शासकों के सामने एक समस्या खड़ी कर दी। भारत की वन सम्पदा उपनिवेशवादियों की परियोजना के लिए सामरिक महत्त्व का प्रमुख कच्चा माल बन गई। रेलवे विस्तार के अग्र–चरण में आसान जंगलों पर ही सीधे धवा बोल दिया गया। रेल पटरियों की विशाल मांग की आपूर्ति के लिए वृहत् पैमाने पर वन नष्ट कर डाले गए। इस तरह 1890–91 में बंगाल–नागपुर रेलवे के लिए जो सिंहभूम के वक्षस्थल को ही चीरता है, सिंहभूम जिले के ही बड़े–बड़े साल के भव्य जंगल नष्ट कर डाले गए। इन जंगलों की लूट की हद इसी से आंकी जा सकती है कि बंगाल–नागपुर रेलवे के खुल जाने के वित्तीय वर्ष में जंगल पदार्थों से प्राप्त राजस्व अशातीत रूप में बढ़ गया।''[2]

भारत ही नहीं पूरे विश्व में जनजातियों एवं जंगल के मध्य सर्वाधिक घनिष्ट संबंध होते हैं। यहाँ तक की जनजातियों का संपूर्ण जीवन पद्धति ही पर्यावरणीय नियमों के अनुकूल होते हैं। आधुनिक विकास की प्रक्रिया ने इन संबंधों पर कड़ा प्रहार किया है। इसे इस प्रकार समझा जा सकता है– ''जनजातियों की अर्थव्यवस्था और जंगल के बीच घनिष्ठता है। हम देख चुके हैं कि जंगल में उपलब्ध साधनों तथा जनजातियों की सामाजिक व्यवस्था के मध्य सहजीवी सम्बन्ध है और यह हमारे देश के इतिहास से जुड़ा हुआ है। इस सम्बन्ध को विभिन्न विशेषज्ञों से मान्यता भी मिल चुकी है, जिसमें सभी मानव विज्ञानी, समाजशास्त्री तथा सरकार स्थापित आयोग शामिल है। इनके द्वारा इस सम्बन्ध को वन नीतियों में सम्मिलित करने की स्पष्ट सिफारिश की गई है।''[3]

प्रमुख आदिवासी लेखिका महुआ माजी पर्यावरण–विमर्श को उंचाई देने का प्रयास कर रही हैं। उन्होंने इसे मिशन की तरह अपनी रचना में स्थान दिया है। उनके उपन्यास का एक उदाहरण इस प्रकार से है– ''बरसात खत्म होने के साथ ही आकाश का रंग बदलने लगा। जेठ के मध्य से लगातार रोते रहने के बाद इस आश्विन में आकर आकाश मानो दिल खोलकर हँस पड़ा। स्वच्छ भारहीन बादलों के कुछ झुंड आकाश के हँसते नील चेहरे पर सफेद दाँतों की तरह चमकने लगै। झूटकलि, मोहनचुड़ा, हरियाल, हल्दिमना, टूनि, बाँगाई जैसे तरह–तरह के रंग–बिरंगे पक्षी, जो बारिश के कारण ज्यादा नजर नहीं आते थे, झुंड–के–झुंड पंख पसारकर खुले आकाश में मंडराने लगे। ग्राम–बांग्ला के घर–आँगन की ऊँची जमीन पर स्थित गीचों और कुछ कच्ची सड़कों से तो जल उतर गया, मगर मैदान, खेत, तालाब और खाल अभी भी एकाकार होकर समुद्र–सा ही दिख रहे थे। खुले मैदान में जहाँ लम्बे–लम्बे धन के पौधे नहीं थे, पानी के ऊपर दूर दिगन्त तक मानों फूलों का साम्राज्य बिछा हुआ था। लाल–लाल कुमुद फूलों का, जलकुम्भी के नीले–नीले मनभावन फूलों का और बड़े–बड़े थाल से बिछ हरे पत्तों के बीच नाज से सर उठाए खड़े सफेद–गुलाबी कमल फूलों का साम्राज्य।''[4]

प्रमुख उपन्यासकार संजीव मानव–पर्यावरण संबंधों का पड़ताल करते हैं। पर्यावरण एवं प्रकृति को रचना का केन्द्र बनाते हैं। वे मानव–जानित हस्तक्षेप से चिंतित भी है और आने वाली पीढ़ी को सतर्क भी करते हैं। उनका पुरा जोर समस्याओं को जन–समुदाय के समक्ष उपस्थित करना एवं उसके समाधन हेतु विमर्श के लिए आमंत्रण है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है– ''बासन्ती हवाओं का बेजार–सा मौसम। पेड़–पेड़ नंगे हैं, टहनी–टहनी काँटा बनी हुई हैं, जैसे सारे कंकाल मलबे से चुपके–चुपके उठकर पेड़ों की जगह जा खड़े हुए हैं। बसन्त की हवा में खड़खड़ाते रहते हैं देर तक और इनके अंग के लाल टह–टह माँस छिटककर जा लगे हैं सेमल की नंगी शाखों पर। हवा छिटकती है और 'भद्द–भद्द' गिरते हैं मांस के ये लोथड़े गांव की गलियों में, छतों पर। इस साल कौतुकप्रिय लड़के तक छूने से डरते हैं इन्हें। सेमल की कलियों का आचार बनाने वाले शालिगराम पंडित और हनीफ दोनों डूब मरे हैं। ओझा, महतो, गोराई, बाउरी, माझी या मुसलमान घरानों में नहीं जनता अब बाघ–बन्दी का खेल। न! यह भावुकता का समय नहीं अभी भी गजाधर सिंह की पत्नी को मुआबजा नहीं मिला है और मंगतू की पत्नी?...उफ, कितने ह्रदयहीन हैं ये अधिकारी? इतनी जगह नाक रगड़ी, मगर कोई नहीं पसीजा अभी तक! आशीष ने सोचा, 'क्या करे वह? जुलूस! चन्दनपुर की उपेक्षित विधवाओं का जुलूस?''[5]

मैं गोमती की धरा के विलोम नकटा चिरइयों के शिकार के लिए जाती हुई कश्तियों को अचकचाकर देखने लगता हूँ– कहाँ? एक भी तो नहीं दिखती। तो क्या नकटा चिरइयाँ इस साल आई ही नहीं या अहेर की परम्परा बदल गई? अर्से से देखता–सुनता और महससू करता आया हूँ उन साइबेरियन काली बत्तखों, नकटों के शिकार को। रात के किसी पिछले पहर में इनके परों की सरसराहट और कंठों की 'कों–कों' की आवाज सुनकर अहेरियों के कान खड़े हो जाते, दिशा अनुमान कर ली जाती– कहाँ गई होंगी, ताल में या गोमती की ओर? और भेर के धुँधलके या रूपई, खरभान, चन्दर, अम्मर, फोन्नन सिंह कारतूस और छर्रे लेकर टोपीधरी या छर्रे वाली बन्दूकें लेकर चल पड़ते। सौ से पाँच सौ के झुंड की नकटा और अलग–अलग दूरी और चौड़ाई की मार करने वाली बन्दूकें।

संजीव गोमती तट पर पक्षियों के आगमन एवं पुनः अपने वतन वापस चले जाने को ही उपन्यास में लाते हैं। उसके प्रत्येक पक्ष पर अनूठे अंदाज में अभिव्यक्ति प्रदान करते है। यह सत्य है कि सजीव एवं महुआ माजी ने उपन्यासों में पर्यावरण को केन्द्रीय तत्व बनाने का भरसक प्रयास किया है। उनके उपन्यास का एक अंश द्रष्टव्य है– ''पता नहीं, किस ठंडे मुल्क के बर्फ गिरने के मौसम में अपने अंडों की बर्फ में गाड़कर अपना अस्तित्व बचाने के लिए उड़ान भरती थीं काली बतखें! कितनी लौट पाती होंगी वापस अपने वतन, अपने परिवार में? इधर गोमती की रेत में मादा घड़ियाल भी साहियों–लोमड़ियों से बचाने के लिए अंडों को गाड़कर चल देती हैं शिकार के लिए। घड़ियालों के लिए शायद जीव–हत्या एक मजबूरी

हो सकती है, लेकिन फोन्न्न सिंह जैसे अहेरियों के लिए क्या जिह्वा–लिप्सा की एकमात्र मजबूरी थी? नवासा बनकर पच्चीस मील दूर से आए, गांव भर के फूफा फोन्नन सिंह अपने बुढ़ापे के सिकुड़े, ढीले चाम में घड़ियाल की तरह उस नरई के ताल में अपनी सफेद घोड़ी के पीछे–पीछे दुबक कर चलते। उस समय वह युद्ध के सैनिक की तरह सिर पर नरई बाँधे, नरई के ताल में एकाकार हो जाते। हारिल, कौआसारी, सारस, जाँघिल और नकटा पक्षियों को आहट तक न होती। यहाँ से नहीं दिखता नरई का ताल। कगारों के आगे ढेरवहिया की झरमुट में सिमटा पड़ा है कहीं?''[6]

'अहेर' में सजीव की पर्यावरणीय दृष्टिकोण का स्पष्ट पता चलता है। वे अपने उपन्यासों में कविता को भी स्थान देते हैं। शायद पर्यावरणीय दृष्टिकोण की संपूर्ण अभिव्यक्ति के लिए वे उपन्यास में भी कविता को महत्वपूर्ण समझते होंगे। एक उदाहरण प्रस्तुत है–

कितना–सभा की मड़ई में उस दिन भगत सिंह के बयान के साथ दो–दो कविता पोस्टर चिपका रहे थे गोसाई और हरिय। रूपई कब आकर खड़े हो गए, कुछ पता ही न चला। पता तब चला जब वे कविताएँ पढ़ने लगे–

पौ फटने की सुनगुन पाकर सोच रही है अपना हस्र
ढलते अँधियारों से लिपटी फिरती है बौराई रात
धरती के कोने–कोने में ढूँढ़ रही है अपनी कब्र
सदियों से गहरे कुहरे की चादर में कफनाई रात
वाह!वाह!

और दूसरी–

चिड़िया उड़ रही है।
अपने नन्हें–नन्हें परों से आकाश को बुहारती।
चिड़िया उड़ रही है।
कितना अच्छा लगता है नीले आकाश में
नन्हीं चिड़िया का इस तरह उड़ना
का आकाश में उड़ना
प्रत्यंचा की तनी हुई डोर के पीछे से।''[7]

भरसक वे कंगाल हों लेकिन उनके नीचे खनिज और वन–सम्पदा के कुबेर के खजाने हैं। उनके जीवन, यौवन और खजाने पर लार टपकाते टिकुओं से लेकर मल्टीनेशनल और उनके दलालों तक की नजर है और वे उद्वास्त होने और लुटने को अशिप्त हैं। पहले बिहार और अब झारखंड का ऐसा ही एक क्षेत्रा है संताल परगना। संजीव ने इस उपन्यास के माध्यम से इस आदिवासी अंचल के खनन–दोहन और उसके प्रतिरोध में उठती आदिवासी चेतना, लूट की सरकारी और निजी योजनाओं के विरूद्ध 'जनखदान' जैसे वैकल्पिक मॉडलों की तलाश तब शुरू की थी जब इस विषवृक्ष का अंकुर मात्रा फूटा था, जो आज पूरे देश के आदिवासी–अस्तित्व के लिए विकराल दानव बन चुका है। विकास के नाम पर विनाश, उद्‌भव के

नाम पर पराभव और शौर्य की परम्परा को दलाल–परम्परा में रेड्यूस करने के विरूद्ध एक समक्ष प्रतिवाद है 'धर'। 'धर' आदमी की भोथरी होती हुई 'धार' का संधन है।

झारखंड राज्य के संथान परगना के संदर्भ में संजीव अपने उपन्यास 'धर' में अत्यंत ही सजगता से पर्यावरणीय समस्याओं को उकेरते हैं। साथ ही, पूंजीपतियों के लूट एवं आदिवासियों की दुर्दशा को भी साथ–साथ पाठक तक पहुँचाते हैं। एक उदाहरण द्रष्टव्य है– ''ऊपर–नीचे जाजिमों की तरह पीली मिट्टी के खेत फैले हुए थे जिनके बीच धनी पैबन्द–सी धन की जरई। आकाश अभी निरभ्र था और सूरज की किरणों की तेज बौछार में पूरा पठार नहा रहा था। आगे अरहर, ज्वार की मरियल फसल थी जिसके बगल निहायत गन्दी भेंडें और बकरियाँ चर रहीं थीं।''[8]

'धार' उपन्यास में संजीव जंगल के आदिवासियों को जगाते नजर आ रहे हैं। उन्हें सिधो–कान्हों बनकर जल–जंगल–जमीन अर्थात पर्यावरण के लिए लड़ने के लिए प्रेरित कर रहे हैं। उदाहरण प्रस्तुत है– ''देखों जगन, तुम मैना को बाकी बाँसगड़ा के साथ नहीं रख सकते। मैना बिल्कुल ठीक कहती है, तुम लोग ऐसे गन्दे टिकुओं को गन्दगी से बचे हो तो इसलिए कि उनके पूरे सम्पर्क में नहीं आए। बच पाना सम्भव भी नहीं, सो दोष देना उचित नहीं। तुम दोनों के अन्दर हम टिकुओं (हिन्दुओं), भुसला (मुसलमान) और साहेब (ईसाई या अंग्रेज) के प्रति नफरत है, क्योंकि इन्होंने तुम्हारी आजाद और आदिम जंगल की सभ्यता को अपने ढंग से मोड़ा, तुम्हें बेदखल किया, तुम्हें सामन्ती और बनियागीरी के प्रपंचों से लूटा, यूँ मेरा मानना है कि सभी गलत न थे, फिर भी अगर हैं तो तुम्हारी नफरत में वो तेज कहाँ कि सिधू–कानू की तरह आगे बढ़कर इनके जुल्म का जवाब दे?'' शर्मा एक क्षण को रूके फिर बोले, ''मैं गाँव–गाँव यही सारी बातें सभी से कहता हूँ कि तुम भोले हो, अपने आदिम संस्कारों से जकड़े हुए हो। सभ्यता के फैलाव से डरकर कोने में सिकुड़ते जाने से क्या होगा? तुम्हें समय के बदलाव को समझते हुए, कुछ जड़–संस्कार छोड़ने होंगे और अपना छीना हुआ हक वापस लेना होगा।''[9]

संजीव 'धार' में खनिजों के अत्यध्कि दोहन एवं लूट के लिए पूंजीपतियों, सरकारों एवं नौकरशाहों के अपवित्र गठबंध्न को दोष देते हैं। इस पूरे लूटतंत्र का कड़ा प्रहार करते हैं। वास्तव में संजीव समस्या के जड़ में पहुँचते हैं। खनिजों के दोहन के लिए इस तंत्र को घेरते हैं। 'धार' में वे लिखते हैं कि– ''खट–खट! छर्र–छर्र! इस जंगल में कुंजों की आड़ में अब सौंकल, कुल्हाड़ी और गैंते चल रहे हैं। पहले पीली मिट्टी, फिर स्लेटी, फिर पत्थर। मगर यह कोयला नहीं है, कोयले का कवच है। इस पत्थर को हुमचकर हटाते, तोड़ते ही कोयले का खजाना। शर्मा होते तो कहते इस खजाने पर अमेरिका की तरह पंडित सीताराम एक बड़े खनन–क्षेत्र पर काबिज हैं और लैटिन अमेरिका के एक छोटे राष्ट्र की तरह मैना। पंडत सरकार के सपने बड़े हैं, मैना के छोटे। ज्यादा उगाही और बड़े मुनाफे के

लिए पंडित के 'राष्ट्रीयकृत कोयला निगम' में हाल ही में 'बहुराष्ट्रीय निगमों' और 'ज्वाइंट सेक्टरों' से सन्धि की है। उसी के तहत पश्चिम में हुसैन साहब और पूरब में महेन्दर बाबा भी आ गए हैं। तेजाब की फैक्टरी के बन्द होने के बाद अपने किसिम–किसिम के ठेकों से अर्जित चौर विद्या के उपयोग का इससे अच्छा कोई विकल्प था भी नहीं, मगर वे खुद अपना कारोबार कम ही देखते हैं, इसके लिए नियुक्त है फोकल। केंचुल छोड़ दी है उसने। अब उसके बदन पर फुटपाथ की ही अच्छे किस्म की उतरन आ विराजी है। मैना से जब–जब वह दावे के साथ पूछ लिया करता है, ''कोई जरूरत हो तो बोलना।'' अफसोस मैना बोलने को कौन कहे, ताकती भी नहीं एक बार। इस उपेक्षा को अपने चारमीनार के धुएँ से वह ओझल कर देता है वह फिर आकर अपने कुंज में धूनी रमाता है। बोरे के आसन पर रईस की मुद्रा अख्तियार कर जब वह होठों से कानों पर चारमीरार दबाए आठ आने की डॉन पेन से सवा रूपए की डायरी में लिखते–लिखते रूककर, सिगरेट हटाकर दारू के ग्लास को मुँह से लगाकर देखता है तो दलाल नहीं, माफिया सरदार ही लगता है।''[10]

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि सामाजिक विज्ञान के अन्य विषयों को भाँति साहित्य विशेषकर हिन्दी उपन्यासों में भी पर्यावरण–समस्या प्रमुखता से बनाता हुआ दिख रहा है। वस्तुतः हिन्दी उपन्यासों में पर्यावरण–समस्या को केन्द्र में लाने में संजीव एवं महुआ माजी का महत्वपूर्ण योगदान है। क्षेत्रीय समस्याओं को लेकर वैश्विक समस्या को एड्रेस करने का यह पहल वाकई सुंदर एवं प्रशंसनीय है। सजीव पूरे शिद्दत से पर्यावरणीय अवनयन को मुद्द बनाते हैं तथा इसके कारणों को पड़ताल करते हैं। वहीं महुआ माजी भी प्राकृतिक क्षरण को प्रमुख समस्या मानते हुए उसके निराकरण हेतु समाज को सतर्क करती हैं।

सन्दर्भ :

1. जंगल और आदिवासी : शोषण के शिकार, मैथ्यू अपरीपरपिल, पृ. IV.
2. आदिवासी विकास से विस्थापना, संपादक रमणिका गुप्ता, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण, 2013, पृ. 99.
3. आदिवासी विकास से विस्थापना, संपादक रमणिका गुप्ता, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण, 2013, पृ. 105.
4. बांग्लादेश के अभ्युदय की महागाथा मै बोरिशाइल्ला महुआ माजी, राजकमल पेपरबैक्स, पहला संस्करण, नई दिल्ली, 2007, पृ. 45.
5. सावधन! नीचे आग है, संजीव, राधाकृष्ण प्रकाशन, तीसरा संस्करण, नई दिल्ली, 2018, पृ. 211.
6. अहेर, संजीव राजकमल पेपरबैक्स, पहला संस्करण, नई दिल्ली, 2020, पृ. 22.
7. अहेर, संजीव राजकमल पेपरबैक्स, पहला संस्करण, नई दिल्ली, 2020, पृ. 108.
8. धार, संजीव, राधाकृष्ण प्रकाशन, दूसरा संस्करण, नई दिल्ली, 2011,पृ. 26.
9. धार, संजीव, राधाकृष्ण प्रकाशन, दूसरा संस्करण, नई दिल्ली, 2011,पृ. 34.
10. धार, संजीव, राधकृष्ण प्रकाशन, दूसरा संस्करण, नई दिल्ली, 2011, पृ. 95.

***

पत्रकार शशि शेखर : व्यक्तित्व एवं कृतित्व

अंजली कुमारी *

पत्रकारिता जगत में एक ना मऐसा है जो अपने काम के तेवर और प्रोफेशनल नजरिये के लिए जाने जाते हैं। दैनिक हिन्दुस्तान अखबार के प्रधान संपादक शशि शेखर, जिन्होंने पत्रकारिता में लगभग 40 साल का लम्बा है, अपनी भाषा की गहराई और अथाह आइडिया से उन्होंने अखबार से लेकर मीडिया, ऑडियों विजुअल तक अपनी धाक जमायी। उनकी राजनीतिक समझ के कारण कई पार्टियों के वरिष्ट राजनेता उनसे गंभीर मसलों पर सलाह मशविरा किये बिना कोई ठोस कदम तक नहीं उठाते। उन्होंने हिन्दी पत्रकारिता में इमानदारी को बढ़ावा दिया और पत्रकारिता व पत्रकारों के प्रति खत्म हो रही लोगों की आस्था को वापस लौटने में बड़ी जिम्मेदारी से काम किया।

शशि शेखर ने आगरा के बी.आर.अंबेडकर यूनिवर्सिटी से हिन्दी, संस्कृत, इंग्लिश और इतिहास में ग्रैजुशन करने के बाद बनारस हिंदू यूनिवर्सिटी से प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति और पुरातत्व विभाग से स्नातकोत्तर किया। शशि शेखर ने पत्रकारिता में पोस्ट ग्रेजुएट डिप्लोमा भी हासिल किया है। 1980 में उन्होंने पत्रकारिता में कदम रखा। वर्ष 1984 में उन्होंने यूपी, बिहार और मध्य प्रदेश में आज का विस्तार किया। 24 साल की उम्र में वे आज अखबार के संपादक बने। इसके बाद जनवरी, 2001 से जुलाई, 2002 तक इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के नंबर वन कार्यक्रम 'आजतक' में एक्जिक्यूटिव प्रोफेसर रहे। जुलाई, 2002 से सितंबर, 2009 तक 'अमर उजाला' अखबार में ग्रुप एडीटर रहे। सितम्बर, 2009 में 21 संस्करणों वाले हिन्दुस्तान के साथ नंदन कांदबिनी और लाइव हिन्दुस्तान के संपादक हैं।

''विशाल जनसंख्या और प्रचुर साधनों के बावजूद हिंदी पत्रों की यह कमी खटकती है। हिन्दी पत्रकारिता आज संकट ग्रस्त है, समाचार पत्र एवं पत्रिकाएँ अस्तित्व खो रहे है। वस्तुतः हिन्दी पत्रकारिता में संपादक नाम की संस्था लुप्त हो रही है। समाचार–पत्र एवं पत्रिका की इयत्ता का सार संपादकीयता है। अब ये स्वामी या उद्योग समूह से जाते है। इन पर पूंजीवाद, बाजारवाद, उपभोक्तावाद उपयोगितावाद एवं आधिपत्यवाद प्रभावी है। सत्ता सुख एवम सुविधा भोग की प्रधानता है। इससे पत्रकारिता के स्तर और विश्वसनियता पर प्रभाव पड़ता है। हिन्दी प्रदेश साक्षरता में भी पीछे है, उसकी आर्थिक स्थिति भी अनेक अहिन्दी भाषी प्रदेशों से निम्न है और इसके बाद भी यदि उन पत्रों की स्वस्थ और पत्रकारिता भी उपलब्ध न हो तो स्वाभाविक है कि प्रसार संख्या प्रभावी होगा ही। हिन्दी की प्रसार–शक्ति हिन्दी–पत्रकारिता के लिए चुनौती है।''[1]

साहित्य और पत्रकारिता परस्पर अन्यमनसकता प्रदर्शित करते हुए रघुवीर सहाय, विद्यानिवास मिश्र, धरमवीर भारती, कमलेश्वर, मोहन राकेश,

---

* शोध-छात्रा (हिन्दी-विभाग), बी. आर. ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

मनोहर श्याम जोशी, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, श्रीकांत वर्मा, विष्णु खरे, राजेन्द्र यादव साहित्य एवं पत्रकारिता के धर्म का सम्यक निर्वाह करने में सफल हैं। पत्रकारिता की विश्वसनीयता के लिए मूल्यों को पुनर्जीवित करना अपरिहार्य है। व्यावहार्यता, दक्षता, सर्वग्राह्यता, सह अस्तित्वात्मक पहचान मूल्यों के सार हैं और पत्रकारिता की संजीवनी शक्ति भी कथ्य को सत्य, तथ्य एवं मूल्य से संपृक्त कर प्रस्तुत करना ही पत्रकारिता का धर्म है।

''शशि शेखर हिन्दी के उत्तर आधुनिक काव्य के सर्वाधिक सफल, समर्थ एवं महत्वपूर्ण पत्रकार हैं। उन्होंने पत्रकारिता की शुरूआत 1980 ई. में की है। इलाहाबाद से प्रकाशित दैनिक पत्र 'आज' के स्थानीय संपादक के रूप में उन्होंने महत्वपूर्ण कार्य किया। भारत के प्रमुख निजी टेलविजन चैनल 'आजतक' के एक्सीक्यूटिव प्रोड्यूसर (इनपुट) के दायित्व का निर्वहन किया। यह इनके लिए बिल्कुल नया अनुभव था। प्रिंट मीडिया से इलेक्ट्रानिक मीडिया का दायित्व भिन्न था। एक समय में देश के चोटी के पत्रकार प्रिंट मीडिया से इलेक्ट्रॉनिक मीडिया में गए और फिर उनकी वापसी प्रिंट मीडिया में हुई। इसके बाद शशि शेखर 'अमर उजाला' के ग्रुप एडीटर (समूह संपादक) बनें। पत्रकारिता का यह संस्थान देश का प्रमुख मीडिया हाउस है। यहाँ इनकी लोकप्रियता, कार्यदक्षता और कार्यकुशलता के सकारात्मक पक्षों ने मीडिया के क्षेत्र में मानक स्थापित किया। वर्तमान में देश के प्रमुख हिन्दी पत्र–'हिन्दुस्तान' के प्रधान संपादक हैं। दैनिक हिन्दुस्तान बिहार और उत्तर प्रदेश का अत्यंत ही लोकप्रिय पत्र है। इस अखबार के सम्पादकीय पृष्ठों पर लगभग एक दशक से प्रत्येक रविवार को शशि शेखर के आलेख समसामयिक मुद्दों पर प्रकाशित होते हैं। इसके अतिरिक्त 'मिटता भारत बनाम इण्डिया' 'बनते बिगड़ते भारत का लेखा–जोखा', 'बदलाव की आहटें', 'खण्ड–खण्ड पाखण्ड' एवं 'लीक से हटकर' पुस्तकों की भी रचना की है।''[2]

पत्रकारिता के क्षेत्र में कम्प्यूटर, सेल्यूलर, पोर्टेबल, सेटलाईट, फोन डिजिटल, ऑडियों, फाईबर आप्टिक उपकरण धूम मचा रहे हैं। तकनीकी क्रांति से खबरों की पहुँच बढ़ गयी है। अब हर तरह की खबरे सुलभ हैं। इन खबरों में मनोरंजक और सनसनी–खेज खबरें भी शामिल हैं। पाठक दो खेमें में बंटने लगे हैं। एक वे जो समाचारों में प्रमाणिकता गुणवत्ता और पुख्तापन चाहते हैं, दूसरे वे जो मनोरंजन और सनसनी कायम है। यह एक खतरनाक संकेत है।

डॉ. कल्याण कुमार झा के शब्दों में कहा गया है कि शशि शेखर ने एक पत्रकार के रूप में अपने अनुभव को कुछ इस तरह साझा किया है – ''मुझे आज भी वह दिन याद है, जब 1980 में एक अखबार में काम करता था। उस समय उस अखबार में काम करता था। उस समय उस अखबार में दफ्तर में हिन्दी के जाने–माने बाबूराव विष्णु पराड़कर के साथ काम किये हुए, कई लोग कार्यरत थे। ऐसे में अपने काम–काज के दौरान दिन भर वे लोग कई बार पराडकर जी का नाम लेते थे। ... इस बात पर मैंने उन्हें किसी तरह समझाया कहने का मतलब है कि वे लोग सिर्फ अतीत पर चल

रहे थे जबकि आगे की नहीं सोच रहे थे। जबकि जीवन में हमेशा आगे बढ़ने की सोच रखनी चाहिए।''[3]

समकालीन हिन्दी पत्रकारिता में वर्तनी को लेकर बड़ी अराजकता है। साम्प्रतिक दौर की अनेक पत्र–पत्रिकाएँ भाषा और वर्तनी पर न जागरूक हैं न गंभीर, विभिन्न पत्र–पत्रिकाएँ तक ही शब्द नाना ढंग से लिख रही हैं। इसके फलस्वरूप जहाँ पाठकों में भ्रम बढ़ा है, वही भाषा को चौपट करने में भी उनकी पीड़क भूमिका है। एक ही शब्द नानाढंग से लिखने के चलते शुद्धता और एकरूपता का लोप होता जा रहा है। पत्रकारिता इस सच्चाई से मुँह नहीं मोड़ सकती कि अश्लीलता, उन्माद और हिंसा को उसने मोहक शैली में पेश कर जनता में उसके प्रति रूचि और रस पैदा किया। सम्प्रेषण की दृष्टि से रस रूचि महत्वपूर्ण होता गया और लोकरूचि के परिष्कार की बात गौण। लेकिन यह सच्चाई है कि जीवन में हिंसा का इस कदर कभी प्रवेश नहीं हुआ था।

'इडियट बॉक्स' से 'किलर्स बॉक्स' तक में शशि शेखर ने यह लिखा है कि ''टेलीविजन ने बच्चों को जितना दिया है, उससे कहीं ज्यादा छिन लिया है। यह बहस पहले तो यदाकदा चलती थी, पर सद्दाम हुसैन के फाँसी ने इसे विश्व–व्यापी चिन्ता का विषम बना दिया, उस दृश्य को हममें से कोई भी नहीं भूला है। इस तनाशाह के गले में फाँसी डाले जाते हुए समय की कुछ क्लिप रहस्मय तरीकें से मोबाईल, इंटरनेट, टेलीविजन को जारी कर दी गयी थी। मकसद तो था अमेरिका के ताकत को समूची दुनिया के दिलों दिमाग पर तारी कर देना, पर इससे उनका घर भी अछूता नहीं बचा। टेक्सास में दस साल का एक बच्चा सर्जियों पोलियो इस दृश्य से इतना प्रभावित हो गया कि उसने अपने गले में ही फंदा डाल दिया। उन्हीं दिनों पाकिस्तान में नौ साल के एक बच्चे मुबाशर अलि ने भी फांसी लगा ली थी। जानते हैं, इस कृत्य में उसका सहयोग किसने किया। उससे एक साल बड़े बहन ने भारत भी इस प्रवृति की चपेट में आए बिना नहीं रहा। महाराष्ट्र के एक कस्बे में 15 साल की एक किशोरी मुनमुन इस दृश्य को देखकर इतनी डिप्रेस हो गयी कि उसने अपनी गर्दन फंदे के हवाले कर दी। कछ दिनों में दुनिया के अलग–अलग हिस्सों में हुई इन घटनाओं ने समूची धरती को हिलाकर रख दिया। तमाम बहस–मुबाहिसा हुआ, पर टेलीविजन कार्यक्रम निर्माताओं को शर्म नहीं आई। वे आज भी ऐसे ही प्रोग्राम बना रहे हैं। दिल्ली का मामला इसका ग्वाह है।''[4]

'दिल्ली पत्रकार संध' ने भी 1982 के अपने सम्मेलन में पत्रकारों के लिए एक 15 सूत्रीय अचार–संहिता घोषित की थीः अपने विचारों या समाचारों के प्रकाशन या उनके प्रस्तुतीकरण में सम्पादक संस्थान के अंदर या बाहर किसी से प्रभावित नहीं होगा। समाचार–पत्र सत्तारूढ़ दल, उसकी सरकर या किसी अन्य राजनीतिक दल अथवा व्यक्ति का प्रचार माध्यम नहीं बनेगा। दलों से जुड़े समाचारों को दबाएँगे या तोड़ेंगे–मरोडेंगे नहीं।

इनसानी मशीनों के खिलाफ, शशि शेखर ने यह कहा है कि ''संचार और यातायात क्रांति ने 21वीं शताब्दी के मानव के तन और मन पर

भयंकर असर डालना शुरू कर दिया है। भारतीय सामुद्रिक शास्त्र जिन दूरियों को कभी विदेश कहता था, वे अब कुछ मिनटों या घंटों का सिलसिला नजर आती हैं। मैं खुद इतनी यात्राएँ करता हूँ कि कभी–कभी मेरी पत्नी ही पुछ लेती हैं कि इस वक्त आप किस शहर में है, यह ठीक है कि यह तरक्की की नयी तहजीब है, पर किस लिए, किसके लिए, कभी गालिब ने कहा था, 'आदमी को भी मयस्सर नहीं इन्सं होना।' आप चलते–फिरते मनुष्य का उसके 'स्व' ने साथ छोड़ दिया है। हम सब अपने आसपास बिखरे उपकरणों के बीच खुद कालपुर्जो का जोड़–घटाव बनकर रह गये हैं। यही वजह है कि कहीं कुछ खो जाने की छटपटाहट हममें से हरेक को हरदम खालती हैं। ऊपर से सितम यह कि सवाल हैं पर जबाव नहीं।''[5]

पत्रकार और समाचार–पत्र राज्य और जनता की उन गतिविधियों पर प्रकाश डालने और उनको प्रोत्साहित करने का प्रयास करेंगे जिनसे राष्ट्रीय एकता और सुदृढ़ता, भारत की अखण्डता तथा आर्थिक और सामाजिक प्रगति को बन मिलता है।

डॉ. सिद्धेश्वर कश्यप ने लिखा है कि ''आज व्यावसायिक पत्रकारिता क्लासिकल पत्रकारिता को चुनौती देने में सक्षम है आज पत्रकारिता को चुनौती देने में सक्षम है आज पत्रकारिता और साहित्य का विलगाव व्यावसायिकता का परिणाम है। यह अलग बात है कि परिवर्तित पत्रकारिता के साथ पत्रकार नहीं बदलते। पत्रकारिता की आवधारणा और साहित्यकार दोनों अपरिवर्तित हैं। आज भी साहित्यकार गणेश शंकर विद्यार्थी एवं आ. महावीर प्रसाद द्विवेदी बनने के स्वप्न के साथ भविष्य के प्रति चिंतित है।''[6]

वर्तमान पत्रकारिता संसार में शशि शेखर बहुमुखी प्रतिभा के धनी संपादक है। संपादक होने के साथ–साथ साहित्यिक रचनात्मकता के प्रति समर्पण उनकी विशिष्ट पहचान है। उनका व्यक्तित्व एवं कृतित्व युवा पत्रकारों के लिए अनुकरणीय है।

सन्दर्भ :

1. हिन्दी पत्रकारिता का वर्तमान, डॉ. सिद्धेश्वर काश्यप, जयभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1999, पृ. 48
2. आधुनिक पत्रकारिता की चुनौतियाँ, डॉ. कल्याण कुमार झा, संस्कृति प्रकाशन, मुजफ्फरपुर, 2018, पृ. 116
3. वही, पृ. 117
4. लीक से हटकर, शशि शेखर, सामयिक बुक्स, नई दिल्ली, 2017, पृ. 21–22
5. वही, पृ. 19–20
6. हिन्दी पत्रकारिता का वर्तमान, डॉ. सिद्धेश्वर काश्यप जय भारतीय प्रकाशन, इलाहाबाद, 1999, पृ. 40

***

हिंदी उपन्यासों में ग्रामीण जनजीवन का चित्रण

*संतोष कुमार**

उत्तर आधुनिकता का लबादा ओढ़े आज का आम आदमी नगरीय तौर–तरीके अपनाने को आकुल है। ग्राम्य जीवन में भी शहरीपन समा चुका है। ठेठ देहाती जीवन मूल्यों पर चोट करती अपसंस्कृति का दर्शन खेत–खलिहानों व पगडंडियों तक में हो जाता है। शहरीकरण, औद्योगीकरण, उदारीकरण के कारण ग्रामीण जनजीवन में तेजी से बदलाव हो रहा है। टूटते–बिगड़ते रिश्तों की डोर, सामाजिक सरोकारों से विमुख होकर स्व तक सीमित हो जाना, सहजीवन की वृत्तियों को भुला देना, यह क्या है? प्रगतिशील समाज का द्योतक या समाज का विघटन। समाज में तेजी से हो रहे परिवर्तन प्रगतिवादियों के लिए शुभ हो सकता है, लेकिन एक मजबूत सामाजिक परंपरा के लिए कमजोर करनेवाली प्रक्रिया है। आज का गांव नये रूप में आकार ले रहा है। आधुनिकता की खुली हवा में जवान होती आज की पीढ़ी के खुले विचारों के कारण गांव की आबो–हवा भी बदल रही है। नये विचारों के कारण नयी जीवन पद्धतियां अपनायी जा रही हैं। इसे आप विघटन कह लें अथवा सहज सामाजिक बदलाव। कथा साहित्य इस परिवर्तन को महसूस कर रहा है और इसे अपनी तरह से व्याख्यायित भी करने में पीछे नहीं है। ग्रामीण यथार्थ को साहित्य की अन्य विधाओं ने भी वर्ण्य विषय बनाया है, लेकिन उपन्यास ने ग्रामीण संवेदनाओं को, गांव की माटी में रहकर दुख–दर्द व संत्रास भोगनेवाले दलितों की दयनीय स्थिति को, किसानों की त्रासदी को पूरी ईमानदारी से हूबहू परोसकर महाकाव्यात्मक रूप धारण कर लिया है। प्रेमचंदोत्तर युगीन कथा साहित्य ने खुद को ऐयारी–तिलिस्म, जासूसी व मनोरंजक छवि से खुद को बाहर निकालकर बदलते गांव की छटपटाहट को महसूस कर उसकी कथा–व्यथा को जीवंत तरीके से चित्रित किया है।

हिन्दी उपन्यासों में ग्राम्य जीवन का वृहत् चित्रण सर्वप्रथम प्रेमचंद के उपन्यासों में दिखाई देता है। प्रेमचंद ने उपन्यासों में वैसे तो समाज के विभिन्न वर्गों का चित्रण किया है, लेकिन सबसे अधिक श्रमशील रहनेवाले किसानों पर लिखा है; जिसकी आबादी करीब 85 फीसदी है। प्रेमचंद के साहित्य संसार में प्रविष्ट करने का मतलब है भारतवर्ष के गांवों को सच्चे रूप में देखना। उपन्यास सम्राट का साहित्य ग्राम्य चेतना से ओतप्रोत है। प्रेमचंद का अंतिम उपन्यास 'गोदान' महाकाव्य का स्वर गूंजित करते हुए इसलिए कालजयी कृति बन सका, क्योंकि उन्होंने भारत की आत्मा में प्रेवश कर अपनी कलम चलायी।

---

* शोधार्थी (हिन्दी विभाग), एम.ए. (हिंदी), यूजीसी नेट, बी.आर. ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

गोदान (1936) के प्रकाशन से दस साल पहले शिवपूजन सहाय 'देहाती दुनिया' लिख चुके थे। यह उपन्यास भोजपुर अंचल के ग्राम्य जनजीवन के अनेक प्रसंगों का संकलन है, जो तत्कालीन गांव को यथार्थ रूप में पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करता है। गांव की बोली–बानी, भोजपुरी संस्कृति, आंचलिक मुहावरों–कहावतों व लोकगीतों के कारण इस उपन्यास को आंचलिक उपन्यास की संज्ञा दी गयी। 1934 में जयशंकर प्रसाद ने 'तितली' में ग्राम्य जीवन के चित्र व जटिल समस्याओं का अंकन किया। इस उपन्यास के केंद्र में धामपुर गांव है, जिसकी कथा को आगे बढ़ाता है मुख्य पात्र तितली (बंजो), मधुबन (मधुआ), बाबा रामनाथ, राजकुमारी, इंद्रदेव, शैला आदि। ''किसानों–मजदूरों पर होनेवाले अत्याचारों, तहसीलदारों–महंतों के हथकंडों, कलकत्ता महानगरी के जुआडी–जेबकतरों के कारनामों तथा निम्न वर्ग की दयनीय स्थिति, वेश्याओं की धनलोलुपता, विधवा राजो की अतृप्त कामभावना आदि का तितली में यथार्थ अंकन किया गया है।''[1]

प्रेमचंद के बाद फणीश्वरनाथ रेणु दूसरे बड़े उपन्यासकार हैं, जिन्होंने गांव को केंद्र में रखकर साहित्य साधना की। ग्राम्य चेतना से पूरित आंचलिक उपन्यास का उद्‌भव स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास जगत की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि रही है। आजादी के सात साल बाद 1954 में 'मैला आंचल' के प्रकाशन के साथ ही 'आंचलिकता' ने अपना स्वतंत्र अर्थ ग्रहण करते हुए हिन्दी साहित्य संसार में अपनी पैठ बना ली। ग्रामीण जीवन पर स्वतंत्रता प्राप्ति से पहले भी बहुत कुछ लिखा गया, लेकिन ग्राम्य चेतना को आंचलिक शब्द में पिरोने का काम रेणु ही कर सके। ''इतना तो स्वीकार करना ही पड़ेगा कि अंचल को और उसकी कथा–व्यथा को संपूर्णता में उकेरने वाला यह हिन्दी का पहला उपन्यास है और 'गोदान' की परंपरा में हिन्दी का अगला। रेणु के उपन्यासों की शुरुआत वहां से होती है, जहां से प्रेमचंद के उपन्यासों का अंत होता है अर्थात् जब टूटती सामंती व्यवस्था का स्थान नया पूंजीवाद लेने लगता है। गोदान का मुख्य पात्र है तत्कालीन भारतीय जीवन और वह उसी प्रकार समष्टिमूलक उपन्यास है जिस प्रकार टॉल्सटाय का 'वार एंड पीस', शोलोकोव का 'क्वाइट फ्लोज द डोन' तथा अमरीकी उपन्यासकारों सिन्क्लेयर लीविस और जॉन स्टाइनवेक की रचनाएं। फणीश्वरनाथ रेणु ने भी अपनी इस कृति में व्यष्टि को नहीं समष्टि को प्रधानता दी है; यहां व्यक्ति गौण, प्रासंगिक ही है। इसकी कहानी व्यक्ति की नहीं, पूरे गांव की कहानी है। वह अंचल की जिन्दगी सामने रखता है।''[2]

उपन्यास सम्राट प्रेमचंद व आंचलिक कथाकार फणीश्वरनाथ रेणु के बाद ग्राम्य संवेदनाओं को गहराई से पकड़नेवाले कथाकारों में अररिया जिले के नरपतगंज गांव में किसान परिवार में 1 जनवरी 1945 को जन्मे रामधारी सिंह दिवाकर का नाम सबसे ऊपर आता है। वे ग्राम्य चेतना के कुशल चितेरे कहे जा सकते हैं। रेणु के बाद गांव–अंचल पर उपन्यास लेखन कर्म के दूसरे बड़े सिद्धहस्त शिल्पी माने जाते हैं। उनके लेखन व

चिंतन में गांव की माटी की खुशबू पोर–पोर में समाहित है। दिवाकरजी पर रेणु का प्रभाव साफ–साफ दृष्टिगोचर होता दिखता है, तो इसका पुख्ता कारण भी है। कोसी अंचल के जिस इलाके में रेणुजी का लेखन व जीवन पल्लवित–पुष्पित हुआ, उसी इलाके में दिवाकरजी का भी बचपन बीता, जवानी के दिन बीते और लिखना शुरू किया। रेणु का सानिध्य मिला, तो उनके लेखक मन पर गांव की माटी में साहित्य साधना के बीज अंकुरने लगे, जो आगे चलकर उनके लेखन का आधार बीज बनकर साहित्य जगत में छा गया।

सुपरिचित कथा–शिल्पी रामधारी सिंह दिवाकर ग्रामीण जनजीवन के सशक्त कथाकार हैं। उनके सभी उपन्यास 'क्या घर क्या परदेस', 'काली सुबह का सूरज', 'पंचमी तत्पुरुष', 'आग पानी आकाश', 'टूटते दायरे', 'अकाल संध्या' एवं 'दाखिल खारिज' ग्रामीण जनजीवन के दस्तावेज हैं। दिवाकर अपनी पहली ही औपन्यासिक कृति 'क्या घर क्या परदेस' में गांव की आर्थिक व सामाजिक विसंगतियों को उभारने में सफल दिखते हैं। ''आज की बदली हुई परिस्थिति में गांव की स्थिति यह है कि अपने ही खेत में अपने ही हाथ से खेती करनेवाला व्यक्ति हेयदृष्टि से देखा जाता है। दूसरी ओर ऐन–केन–प्रकारेण पैसा बटोरने वाले भ्रष्ट चरित्र समाज के लिए आदर्श बन गये हैं।''[3] 'अकाल संध्या' उपन्यास की कथा पूर्णिया जिले के दो गांवों मरकसवा व बड़का गांव को केंद्र में रखकर बुनी गयी है। यह उपन्यास जमींदारों, सवर्णों व बबुआन टोलों के पराभव एवं दलित चेतना के निरंतर हो रहे उभार की कहानी कहता है। ''शूद्रों के उदय की यह कैसी काली आंधी चली है? इस काली आंधी ने परंपरा से चली आ रही सवर्ण सत्ता के चमकते सूरज को शाम होने से पहले ही ढंक लिया। बाबू रणविजय सिंह की जमीन खरीद रहा है गांव का खवास झोली मंडर। नौकर–चाकर अब मिलते नहीं हैं। सब भाग रहे हैं–दिल्ली, पंजाब। बाबू–बबुआनों की जमीन खरीद रहे हैं गांव के राड़–सोलकन।''[4]

प्रेमचंदोत्तर युगीन उपन्यासकारों ने गांव को आधार बनाकर दर्जनों बेहतरीन रचनाएं लिखी हैं, उनमें बाबा नागार्जुन का खास स्थान है। इनके सभी उपन्यासों की कथाभूमि मिथिला के गांव हैं। रतिनाथ की चाची, बलचनमा, नई पौध, बाबा बटेसरनाथ, दुखमोचन, वरुण के बेटे में नागार्जुन ने ग्रामीण जीवन की सामाजिक विषमता, किसानों की यातनापूर्ण स्थिति, गरीबी, वर्ग व्यवस्था को उजागर किया है। बलचनमा निम्नवर्गीय किसान का पुत्र है, जो बड़ा होकर किसान जीवन की पीड़ा, त्रासदियों व अभावों को झेलता हुआ जमींदारों के अमानवीय अत्याचार को झेलता रहता है। इसी तरह नई पौध में सौरठ मेले से जुड़ी सड़ी–गली प्रथा, स्वार्थवृत्ति और पुरानी पीढ़ी की शोषक वासना का नंगा चित्र उद्घाटित करता है। इसमें दिखाया गया है कि कैसे नई पौध के लोग पुरातनपंथी सोच को नकारने को आंदोलित हो उठते हैं।

जीवनभर रोजी–रोटी के लिए खेतों में पसीने बहाते किसानों, अभावग्रस्त ग्रामीणों की तबाही और बढ़ जाती है जब बाढ़ कहर बनकर टूटती है। बाढ़ की विभीषिका झेलनेवालों की त्रासद कथा को भी उपन्यास में स्वर मिली है। जगदीशचंद्र माथुर का 'धरती धन न अपना', रामदरश मिश्र का 'टूटता हुआ जल' विवेकी राय का 'सोना माटी', रामदरश मिश्र का 'पानी के प्राचीर' आदि उपन्यासों में हर साल बाढ़ का कहर झेलते गांवों के लोगों की अंतहीन पीड़ा की दास्तां है। इन उपन्यासों में लेखक ने श्वेत पक्ष को भी उद्‌घाटित किया है। बाढ़ आती है तो सिर्फ धन–जन ही बहाकर नहीं ले जाती है। वह आपसी वैमनस्य को भी बहा ले जाती है। ''सोना माटी उपन्यास में हर तरफ फैले हुए बाढ़ के पानी के बावजूद रामपुर, मेहपुर, चटाई टोला, बीरपुर जैसे सबके सब गांव एक–दूसरे के निकट आते हैं और सामाजिकता का पूरा निर्वहन करते हैं। बाढ़ का पानी मानों इन गांवों को, गांवों के मैले मन को जोड़ने का सूत्र हो।''[5]

शिव प्रसाद सिंह ने 'अलग–अलग वैतरणी' में गर्मी–सर्दी की परवाह किये बिना सालों भर मेहनत करनेवाले भारतीय कृषकों में व्याप्त निराशाजनक स्थितियों को रूपायित किया गया है। 'बबूल' उपन्यास में बाढ़नपुर गांव में व्याप्त बेकारी की समस्या को चित्रित किया गया है। काम की तलाश में अधिकतर मजदूर दूसरे प्रांतों में पलायन कर जाते हैं। 'अपनी अपनी कंदील' में हिमांशु श्रीवास्तव ने माली परिवार की सामाजिक व आर्थिक दशा का अनुशीलन किया है। गांव के गरीबों को सूदखोर उसकी जमीन–जायदाद तक हड़प लेते हैं और उसे जीवनभर दर–दर की ठोकरें खाने को विवश कर देते हैं, यही पीड़ा इस उपन्यास में उभरकर आता है।

रामदरश मिश्र का 'सूखता हुआ तालाब' की चेनइया अपने विजिड़ित जीवन को लेकर देव प्रकाश से कहती हैं। ''बाबा, गांव सचमुच रहने लायक नहीं है, मैं गांव से भाग रही हूं। गांव ने मुझे बेस्सा बनाकर छोड़ दिया, अब जान लेने पर उतारू है।''[6] यहां सूखते हुए तालाब के जरिये कथाकार ग्रामीण जीवन से मानवीय संवेदनाओं के लोप होने की बात उकेरता है। तालाब के सूखने का मतलब है गांव में जीनेवाले लोगों की संवेदनाओं का सूखना। ग्रामीण जीवन में तालाब का एक अपना महत्व है। यह जीवन व परंपरा से जुड़ी है। तालाब को पवित्र मानकर गांव के लोग इसके तट पर धार्मिक अनुष्ठान करते हैं। आधुनिकता ने तालाब की समृद्ध परंपरा के स्रोत को ही सूखा दिया है।

सूर्यनाथ सिंह के उपन्यास 'चलती चाकी' में गांव की बदलती हुई समाजार्थिक और राजनीतिक स्थितियों पर विचार किया गया है। वोट–प्रपंच गांव का सबसे बड़ा यथार्थ बनता जा रहा है, वोट की धुरी जातीय समीकरणों पर टिकी हुई है, ''जाति–पांति का भेदभाव मिटाने की जितनी कोशिश हो रही है, वह उतना ही बढ़ता जा रहा है। ये राजनेता हैं, यही लोग इस खाई को बढ़ा रहे हैं। ये जो तीन दिन उधर खर्च करके आए हैं,

हरिजनों व यादवों दोनों को इस तरह पटाने की कोशिश में लगे रहे होंगे कि वे इन्हें अपना आदमी मानने लगे। वोट इन्हीं को दें। दूसरी पार्टियों के नेता भी वहां जाकर वही करके आए होंगे।''[7] समाज में फैले जाति के इस मकड़जाल में उस जाति का नेता अपने को राजनीतिक रूप में स्थापित करने की जुगाड़ में हैं। जाति के इन स्थानीय नेताओं ने पुलिस–तंत्र से अपना जो गठजोड़ बना रखा है, उस पर भी उपन्यास लेखक की नजर दृष्टिपात होती है। विकास के तमाम ढोल पीटने के बावजूद सीमांत किसान अब भी दीन–हीन व दुर्दिन में हैं। किसानी का काम बोझ बनता जा रहा है। प्राकृतिक आपदा के साथ सरकारी कारिंदों और व्यापारियों की मनमानी के चलते फसल की वाजिब कीमत न मिल पाने का दुख किसानी के पेशे को मरे बाप का नाम चलाने की विवशता की स्थिति में ला देते हैं। किसान–पुत्र शिक्षा में अंग्रेजी की कमजोरी के कारण जो पिछड़े रह जाते हैं, उसका भी विवेचन समस्या की जड़ में जाकर किया गया है। ग्राम पंचायतों की कार्यप्रणाली और बदले हुए निजाम में सफाई कर्मचारी के रूप में कार्य करने के लिए 'पंडितों' का भी आना गांव में बेरोजगारी का एक और रूप प्रस्तुत करता है। पश्चिम बंगाल के सिंगूर और नन्दीग्राम में हुए किसान आंदोलन का भी सरसरी दृष्टि से उल्लेख तथा बसपा का राजनीतिक क्षितिज पर प्रभावकारी रूप में उदय, आदि की घटनाओं से गांव में चली आ रही राजनीतिक चेतना का परिचय 'चलती चाकी' में दिया गया है। इस तरह प्रेमचंदोत्तर उपन्यासों में गांव–समाज में हो रहे बदलावों को विभिन्न रूपों में रेखांकित करने का प्रयत्न किया गया है।

वृंदावनलाल वर्मा का 'लगन', अमृतलाल नागर का 'महाकाल', उग्रजी का 'जीजीजी', गोविंदबल्लभ पंत का 'जूनिया', भैरव प्रसाद गुप्त का 'गंगा मैया', राही मासूम रजा का 'आधा गांव', श्रीलाल शुक्ल का 'राग दरबारी', शिवकरण सिंह का 'अस गांव पस गांव', मधुकांत का 'गांव की ओर', एकांत श्रीवास्तव का 'पानी भीतर फूल', मार्कण्डेय का 'अग्निबीज' आदि उपन्यासों में भी ग्रामीण संवेदनाएं खुलकर उभरी हैं। सियारामशरण गुप्त, उदयशंकर भट्ट समेत कई अन्य कथाकारों ने भी उपन्यासों के माध्यम से गांव का कच्चा चिट्ठा खोलकर रख दिया है।

वैसे तो, प्रेमचंद से लेकर विवेकी राय तक ने टूटते–बिखड़ते भारतीय गांव के सत्य से पाठकों को साक्षात्कार कराया है, लेकिन बदलते हुए गांव को बारीकी से पकड़ने में रामधारी सिंह दिवाकर ही सफल हो पाये हैं। समय की मार ने जमींदारों को अपनी जमीन बेचने पर मजबूर किया, तो उधर सदियों से सताये गये दलित वर्ग के लोग उनकी प्लॉट खरीद रहा है। पंचायती राज व्यवस्था लागू होने के बाद सड़ी–गली राजनीति का अड्डा बने गांवों में दम तोड़ते मूल्यों की भयानक चीख व्याप्त हो गयी है। मानवीय संबंधों के बीच से रागात्मकता खत्म हो रही है। पिछले कुछ दशकों में दलितों–पिछड़ों के बीच एक सम्पन्न वर्ग पैदा हुआ है। इस वर्ग की अपनी

विशेषताएं–विद्रुपताएं हैं। गांवों की इन जटिलताओं व विडंबनाओं को दिवाकर जैसे उपन्यास लेखक ही पकड़ पाये हैं।

सन्दर्भ :

1. हिन्दी उपन्यास का इतिहास, गोपाल राय, राजकमल प्रकाशन, सं. 2013, पृष्ठ 151
2. हिन्दी उपन्यास : महाकाव्य के स्वर, डॉ शान्तिस्वरूप गुप्त, अशोक प्रकाशन, सं. 1978, पृष्ठ 83
3. ग्रामीण जीवन का समाजशास्त्र, संपादक : जीतेंद्र वर्मा, राजदीप प्रकाशन, सं. 2010, पृ. 126
4. अकाल संध्या, रामधारी सिंह दिवाकर, भारतीय ज्ञानपीठ, सं. 2006, पृ. 71, 72
5. प्रेमचन्दोत्तर हिन्दी उपन्यासों में ग्राम जीवन, देवगुड़ि हुसेनवली, राका प्रकाशन, सं. 2010, पृ. 68
6. सूखता हुआ तालाब, डॉ रामदरश मिश्र, वाणी प्रकाशन, सं. 2016, पृ. 102
7. चलती चाकी, सूर्यनाथ सिंह, सामयिक प्रकाशन, सं. 2011, पृ. 29

***

बुद्ध काल में कृषि एवं वनों से प्राप्त वस्तुओं का व्यवसाय

डॉ. अविनाश कुमार *

बुद्ध काल की अर्थव्यवस्था भी गौतम बुद्ध के जीवनकाल की प्रमुख विशेषता नगरों की स्थापना थी। ये नगर शिल्पों और उद्योगों के केन्द्र थे। राजगृह में ही शिल्पियों की 18 श्रेणियाँ थी। शिल्पों के विकास का मुख्य कारण लोहे के औजारों का प्रयोग था। व्यापार से भी शिल्पों और उद्योगों के विकास में पर्याप्त सहायता मिली। धौंकनी के प्रयोग से लोहे के औजार बनाना सरल हो गया। प्रारम्भिक जैन ग्रन्थों में अनेक प्रकार के नगरों का उल्लेख है। इस काल में 60 प्रसिद्ध नगर थे जो उत्तर में कपिलवस्तु से दक्षिण में कावेरी पट्टनम तक और पूर्व में चम्पा से पश्चिम में भृगकच्छ तक पूरे भारत में स्थित थे। ये नगर शिल्पों और उद्योगों के केन्द्र थे। इस काल में शिल्पों में विशिष्टीकरण प्रारंभ हो गया। प्रत्येक कार्य विशेषज्ञ करने लगे। इसके निम्नलिखित कारण थे।

1. शिल्पियों को बच्चे माल की पूरी जानकारी हो गई और उन्होंने कुछ नये औजार निकाल लिए जिनके द्वारा कम समय में और अच्छी वस्तुएं बनाना संभव हो गया।
2. श्रेणियों में संगठित होने के कारण शिल्पी के पुत्र पिता से अपने शिल्प को सीखता था और काम सीखने वाले भी शिल्पी के परिवार में रह कर कुशल शिल्पी हो जाते थे।
3. जब वस्तुओं की बाजार में मांग बढ़ी तो शिल्पी में विशिष्टीकरण को प्रोत्साहन मिला। वस्तुओं की मांग बढ़ने के दो कारण थे– यातायात के साधनों का विकास और विदेशों में प्रतियोगिता होने के कारण वस्तुओं में सुधार करना आवश्यक हो गया।
4. जब राज्यों ने शिल्पों को संरक्षण दिया तो शिल्पों की उन्नति हुई और व्यापार को भी प्रोत्साहन मिला। राज्य ने व्यापारियों की सुरक्षा के लिए उचित प्रबन्ध किया और शिल्पियों को आर्थिक सहायता दी। इसका प्रमुख कारण यह था कि शिल्पों की उन्नति से सरकार को शुल्क के रूप में अधिक आय होती थी।

सूत्र ग्रन्थों से ज्ञात होता है कि इस काल मं तांबे और लोहे के बर्तन बनाये जाते थे। सोने के चम्मच और पीतल के घंटे–घड़ियाल बनाये जाते थे। चांदी के बर्तन व आभूषण बनाए जाते थे। गौतम बुद्ध के जीवनकाल में पूर्वी उत्तर प्रदेश और बिहार में लोहे की अनेक बस्तुएं बनाई जाने लगीं। इन औजारों से घने जंगलों को साफ करके खेती के लिए अधिक भूमि उपलब्ध हो गई और अन्न का अधिक उत्पादन होने लगा।

---

* पीएच. डी. (प्राचीन भारतीय इतिहास एवं संस्कृति), बी. आर. ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

अधिशेष के अन्न का उपभोग नगरों के रहने वाले करते थे। इस प्रकार इस काम में दूसरा नगरीकरण प्रारंभ हुआ और महाजनपदों की स्थापना हुई पहला नगरीकरण हड़प्पा सभ्यता में हुआ था। डायोडोरस ने लिखा है कि भारत में सोना, चांदी और लोहे की अनेक खानें हैं तथा टीन और अन्य धातुओं से भी आभूषण और युद्ध के लिए उपयोगी वस्तुएं (कवच, सिर के टोप आदि) और हथियार बनायें जाते हैं। स्ट्रेबों ने भी लिखा है कि भारत में सोने और चांदी की अनेक खानें हैं।

रामशरण शर्मा का मत है किर राज्य की शक्ति का मुख्य स्रोत मौर्यकाल में धातु उद्योग था। इस काल में सोना, चांदी, तांबा, सीसा, टीन, लोहा और डामर धातुओं का प्रयोग किया जाता था। 'लोहाध्यक्ष' का अर्थशास्त्र में स्पष्ट उल्लेख है। नमक की खानों पर सरकार का एकाधिकार था। धातु उद्योग से केवल बहुत आय ही नहीं होती थी इससे राज्य को शक्तिशाली बनाने में भी बहुत सहायता मिली। कृषि के विकास से भूराजस्व अधिक सैनिकों को धातुओं के अस्त्र–शस्त्र मिले। कौटिल्य को धातु उद्योग के महत्त्व को पूरी जानकारी थी। उसे लिखा है कि कोष और दण्ड से ही बढ़ती है।

जब धातुओं के विषय में पूरी जानकारी प्राप्त हो गई तो धातु के काम करने वालों के कार्य का विभाजन होकर विशिष्टीकरण होने लगा। मिलिन्दपंह में सोना, चांदी–सीसा, टीन, तांबा, पीतल और लोहे की वस्तुएं बनाने वालों के अलग–अलग नाम दिए हैं। परन्तु गाँव में सबसे अधिक महत्त्व लुहार का था। लुहारों के अलग गाँव (कुम्हार गाँव) थे। जिनमें गाँव वाले कुठार, फाल, चाबुक का अग्रभाग आदि बनवाते थे। गाँव के किसान लुहार को फसल तैयार होने पर कुछ अन्य गाँव के लुहार को उसके वेतन के रूप में देते थे। जातकों से यह भी स्पष्ट है कि लुहार काफी अच्छे औजार बनाते थे। लुहार किसानों, मालियों, बढ़इयों के लिए औजार तो बनाते ही थे वे युद्ध के लिए कवच, सिर के टोप और हथियार भी बनाते थे। मौर्य काल में लुहारों को आर्थिक सहायता दी जाती थी और यदि कोई व्यक्ति उनकी आँख या हाथ को हानि पहुचाता था तो उसे प्राणदण्ड की सजा दी जाती थी। लोहे के शस्त्रों का इतना महत्त्व था कि अर्थशास्त्र में शस्त्राागार के निरीक्षक के कर्यो का अलग अध्याय में विवेचन किया गया है। इस काल में तीर बनाने वाले (उसुकार), लुहारें से अलग विद्यमान थे इससे स्पष्ट है कि इस काल में शिल्पों में विशिष्टीकरण की प्रक्रिया प्रारंभ हो गयी थी। तक्षशिला के निकट सरकप में लोहे की अनेक वस्तुएं जैसे कि बर्तन, हथियार, कवच, घोड़े की लगाम, हाथी के साज, औजार और सुई आदि मिली है। मार्शल के अनुसार इन वस्तुओं का लोहा बहुत साफ किस्म का था। इसका अर्थ है कि ईसा की प्रारंभिक शबातब्दयों में भारतीय लोहे से इस्पात बनाना भली–भांति जानते थे किन्तु वे इस पर पानी रखना (कड़ा करना) नहीं जानते थे। पेरिप्लस में लिखा है कि भारत से लोहे और इस्पात की बनी बस्तुएं अफ्रीका के बन्दरगाहों को भेजी जाती थी।

सुनार अलग अपने गाँवों में नहीं रहते थे, वे नगरों में रहते थे। अर्थशास्त्र में सोना और चांदी के बर्तन व आभूषण बनाने वालों का अलग अध्याय में विवेचन किया है। उसमें अलंकरण, तार खींचना, व मणि जड़ना आदि का कौटिल्य ने पूरा वर्णन दिया हैं प्राचीन बौद्ध ग्रन्थों में सोने को साफ करने, उस पर पॉलिश करने और चांदी को साफ करने आदि का पूरा वर्णन मिलता है। हेरोडेटस ने लिखा है कि भारत के निवासी ईरान को कर के रूप में 360 टेलेंट सोने का चुर्ण देते थे। कुषाण शासक सोने के सिक्के बनाते थे उसके लिए अवश्यक ही विदेशों से सोना मंगाते होंगे। सुनार सोने और चांदी के सिक्के भी बनाते थे। अर्थशास्त्र में सिक्कों के बनाने की मजदूरी अलग–अलग सिक्कों के अनुसार लिखी है। तक्षशिला के अधिकतर चांदी के आभूषणों पर विदेशी प्रभाव दिखलाई देता है।

उत्तर बिहार में रामपुरर्वा के अशोक के स्तम्भ में एक ताबें का काबला मिला था। विद्वानों के अनुसार इसका समय ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी है। इसे ढ़ालकर बनाया गया था और पीटकर ठीक आकार में लाया गया था। स्ट्रेबों ने भारतीय ताबें का उल्लेख किया है। पेरिप्लस में लिखा है कि तांबा भड़ौच से विदेशों को भेजा जाता था। उसी में लिखा है कि सीसा विदेशों से भारत लाया जाता था। अर्थशास्त्र में जस्त (अरकुट) का भी उल्लेख है। चरकसंहिता और मनुस्मृति में पीतल के लिए रिति शब्द प्रयुक्त किया गया हैं तक्षशिला में तांबे और कांसे के इस काल के औजार, बर्तन, आभूषण, मूर्तियाँ और कुछ अन्य वस्तुएं मिली है। इन वस्तुओं पर विदेशी प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है।

लकड़ी का सब काम करने वाला बड्ढकि (बढ़ई) कहलाते थे किन्तु लकड़ी पर रन्दा करने वालों और खराद पर काम करने वालों के लिए क्रम से तक्षक और भ्रमकार, शब्द प्रयुक्त किये गये है। इससे स्पष्ट है कि लकड़ी के काम में भी विशिष्टीकरण की प्रक्रिया कार्य कर रही थी। बढ़ई मकान बनाने के लिए शहतीर और तख्ते बनाते थे। वे खाट और पीढ़े आदि भी बनाते थे। वे गाड़ियाँ भी बनाते थे। गाँव के किसान बढ़ई को भी फसल तैयार होने पर अन्न उसके वेतन के रूप में देते थे।

हाथीदांत से सुन्दर वस्तुए जैसे कि चुड़ियाँ आदि बनाई जाती थी। अट्सालिनी में हाथी–दांत के शिल्पियों की बहुत प्रशंसा की गई कि राजा भी उनके शिल्प को देखकर बहुत प्रसन्न होते थे। बेग्राम में हाथी–दांत की अनेक सुन्दर वस्तुएं मिली है। जातकों के अनुसार बनारस में हाथी–दांत की सुन्दर वस्तुए बनाई जाती थी।

प्राचीन बौद्ध ग्रंथों से ज्ञात होता है कि इस काल में अनेक प्रकार की दरियाँ और वस्त्र जैसे कि बकरी के बालों के कम्बल, रंग–बिरंगे कपड़े, सफेद कम्बल, दोंनो ओर लोक वाले कम्बल, एक ओर लोक कम्बल, ऐसे पलंगपोश जिन पर शेरों और चीतों की आकृतियाँ बनी होती थीं, या जिन पर मणियों की आकृतियाँ बनी होती थीं, और रेशम के पलंगपोश आदि बनाए जाते थे।

कपास का सबसे प्राचीन उल्लेख पाणिनि में है जिसका समय लगभग ईसा पूर्व पांचवीं शताब्दी है। हेरोडोटस ने लिखा है कि भारतीय रूई के कपड़े पहनते थे और भारत की रूई बहुत सफेद होती थी इरियन के वर्णन से भी इस बात की पुष्टि होती है कि भारत की कपास बहुत ही चमकीली और सफेद होती थी। मनु ने लिखा है कि ब्राह्मण विद्यार्थी का यज्ञोपवीत रूई का, क्षत्रिय का क्षुमा का और वैश्य का ऊन का होना चाहिए।

अर्थशास्त्र से स्पष्ट है कि मौर्य काल में बंगाल में वस्त्र उद्योग का बहुत विकास हो चुका था वहां क्षुमा, रेशम और कपास के बढ़िया किस्म के वस्त्र बनाए जाते थे। पेरिप्लस से हमें मालूम होता है कि बंगाल की मलमल विदेशों को भेजी जाती थी। मौर्योत्तर काल (लगभग 200 ई. पू. 200 ई.) मथुरा अपनी साड़ियों के लिए प्रसिद्ध था।

पाणिनि और अर्थशास्त्र में कम्बलों की जिन किस्मों का उल्लेख है उनसे स्पष्ट है कि ऊनी वस्त्र बनाने का उद्योग बहुत विकसित हो चुका था। महाभारत से ज्ञात होता है कि पश्चिमी देशों से आने वाले शक और रोमन और गुजरात के आमीरों ने पण्डवों को ऊन उपहार रूप में भेंट की थी। अर्थशास्त्र में नेपाल के आठ तह वाले कम्बल का नाम भिंगिसी लिखा है। मनुस्मृति के टीकाकार कुल्लूक ने कुतप का अर्थ नेपाल का मुलायम कम्बल लिखा है। जातकों में उडियान (स्वात) के कम्बलों का उल्लेख है। इसका अर्थ है कि इस काल में नेपाल और अफगानिस्तान से कम्बलों का आयात होता था।

संभवतः रेशमी कपड़ों (कौशेय) का उल्लेख सबसे पहले पाणिनि ने किया है। महावग्ग में एकम भिक्षु को रेशमी वस्त्र धारण करने की अनुमति दी गई है। मौर्यकालीन और परवर्ती साहित्य में रेशम के लिए अनेक शब्द जैसे कि पत्रोर्ण, चीन पट्ट, चीनीशुक, कीटज, पट्टांशुक, चीन–कौशेय आदि प्रयुक्त किया गए है। इसका अर्थ है कि इस काल में रेशमी वस्त्र अधिक पहने जाने लगे। कौटिल्य से हमें ज्ञात होता है कि पत्रोर्ण किस्म का रेशम उत्तरी बंगाल और असम में बनाया जाता था। भारत और चीन का रेशम यहाँ से ईसा की प्रारंभिक शताब्दियों में रोम ले जाया जाता था।

कौटिल्य ने लिखा है कि बुनाई के अध्यक्ष को इस काम में अधिकतर अनाथ स्त्रियों को लगाना चाहिए। मिलिन्दापंह से ज्ञात होता है कि एक स्त्री ने स्वयं रूई धुनी, उसको दबाया, पीटा, टुकड़े किये और उससे कपड़ा बुना।

बौधयान ने उत्तर भारत के निवासियों के जीवन की विशेषताओं में अनेक समुद्रों द्वारा यात्रा करने का उल्लेख किया है। इसका यह अर्थ है कि उत्तर भारत के व्यापारी इस काल में समुद्र द्वारा भी व्यापार करते थे। रामायण में कई स्थानों पर समुद्र के बीच में भी बिक्री की वस्तुओं की लदी लान की उपमा दी गई है। प्राचीन बौद्ध ग्रन्थों में भी व्यापारियों के समुद्र पार जाने का उल्लेख है। जातकों में कई स्थानों पर ऐसे जहाजों का

उल्लेख है जो दूर की यात्रा के लिए पूर्णतया मस्तूल पाल आदि से सुसज्जित होते थे। सिकन्दर के आक्रमण के समय क्षत्रिय नाम के गण–राज्य के निवासियों ने उसकी सेना को 30 पतवार वाले जहाज दिये थे। जातकों से स्पष्ट है कि इस काल में ऐसे भी जहाज थे जिनमें 1000 यात्री या पशुओं सहित 7 काफिले यात्रा कर सकते थे।

कौटिल्य ने लिखा है कि यदि जहाज में किसी खराबी के कारण जहाज डूब जाये तो सरकार को उसका किराया लौटा देना चाहिए और व्यापार की वस्तुओं के मूल्य क्षति–पूर्ति करनी चाहिए। मेगस्थनीज ने लिखा है कि मौर्य सरकार व्यापारियों को जहाज किराये पर देती थी।

मनुस्मृति में स्पष्ट लिखा है कि समुद्र पर जाने वाले जहाजों का कोई निश्चित किराया नहीं है। इसका अर्थ है कि वह कम या अधिक हो सकता था। मिलिन्दपंह में ऐसे जहाजों के व्यवसायियों का उल्लेख है जो अपने जहाज बन्दरगाहों में रखते थे और उन्हे किराये पर व्यापारियों को देते थे। जातकों से ज्ञात होता है कि जहाज चलाने वालों की भी श्रेणियाँ थीं जिनका एक जेट्टक होता था।

जाताक में दिशा बताने वाले कौओं का उल्लेख है। जब नाविक रास्ता भूल जाते थे जो इन कौआ को छोड़कर उस दिशा में चलते थे जिसमें कौए जाते थे। दीघनिकाय और अंगूत्तरनिकाय में भी दिशा बतलाने वाले कौओं का उल्लेख है। प्लिनी के वर्णन से भी इस बात की पुष्टि होती है कि भारतीय नाविक समुद्र की यात्राओं में दिशा सूचक कौओं का प्रयोग करते थे।

पेरिप्लस में लिखा है कि पहली शबाब्दी ईसवी में दक्षिणपथ के पश्चिमी तट पर सबसे महत्त्वपूर्ण भृगुकच्छ था। इसके थोड़ा दक्षिण की ओर शूर्पारक ओर सिन्ध के मुहाने पर बारबेरिकम भी इस काल के प्रसिद्ध बन्दरगाह थे। दीघनिकाय और जातक से ज्ञात होता है कि रोरूक का बन्दरगाह भी काफी महत्त्वपूर्ण था संभवतः यह बन्दरगाह कच्छ की खाड़ी के तट पर स्थित था। दक्षिणपथ के पूर्वी तट पर सबसे महत्त्वपूर्ण बन्दरगाह ताम्रलिप्ति था। जहाँ से गंगा और जमुना के कीतस्तुए पूर्वी देशों को जाती थी। मिलिन्दपन्ह में लिखा है कि भारतीय जहाज यहाँ से ब्रगाल मलयप्रायद्वीप, चीन, गूजरात, काठियावाड़, सिकन्दरिया, कारोमण्डल तट, पूर्वी द्वीप समूह आदि अनेक प्रदेशों को जाते थे और उनके स्वामी बहुत धनी हो गए थे।

भारतीय व्यापारियों को ईसा पूर्व छठी शताब्दी में अवश्य ही बहुत लाभ होता होगा तभी तो सिन्ध और पश्यिमी पंजाब के निवासी ईरान के सम्राट दारा के 360 टेलेंट सोने का चूर्ण कर के रूप में देते थे। 360 टेलेंट आजकल की तोल के हिसाब से 9 टन 5 हंड्रिडवेट हुआ। इतना सोना देना तभी संभव हो सका जबकि इस काल में सिंध और पश्चित पंजाब के निवासी बहुत समृद्ध थे। उनकी समृद्धि का प्रमुख कारण वह व्यापार था जो वे पश्चिमी देशों के साथ कर रहे थे।

भारत का मेसोपोटामिया के साथ व्यापार तीन मार्गों द्वारा होता था। पहला मार्ग सिन्ध, गेड्रेशिया और ईरान के समुद्र तट के सहारे–सहारे जाता था। दूसरा मार्ग कुछ स्थल द्वारा कुछ समुद्र द्वारा था। व्यापारी गन्धार से बैक्ट्रिया पहुंचते थे, वहां से कैस्पियन सागर और काला सागर पार करके पश्चिमी एशिया पहुंचते थे। तीसरा मार्ग पूरास्थल द्वारा सिन्ध से ईरान तक था।

जब हिपेलस को ईसा पूर्व पहली शताब्दी में मानसून का पता लग गया तो व्यापारी पार्थिव जो लाभ इस व्यापार से उठा रहा था उससे बचने के लिए समुद्र सीधे रूमसागरीय प्रदेश पहुंचने लगे।

सामुद्रिक मार्ग द्वारा इस व्यापार में दक्षिण अरब के नाविकों ने प्रमुख भाग लिया और वहा कें निवासी बहुत समृद्ध हो गए। इस बात की पुष्टि पेरिप्लस के वर्णन से भी होती है। पेरिप्लस के वर्णन से यह भी ज्ञात होता है कि भारतीय नाविक दक्षिण अरब और पूर्वी अफ्रीका के बन्दरगाहों को जाते थे और पहली शताब्दी ईसवी में कुछ भारतीय सोकोतरा के टापू में जाकर बस गए थे। भारतीय व्यापारी भारत से विदेशों के लिए चावल, गेहूँ, भारतीय वस्त्र और कुछ दासियाँ ले जाते थे। वे लाल सागर तक जाते थे क्योंकि अरब व्यापारी उन्हें लाल सागर के आगे नहीं जाने देते थे।

जब रोम साम्राज्य ने मिश्र पर अधिकार कर लिया और आगस्टस (ईसा पूर्व 31 से 14 ई.) की सरकार ने रूपमसागरीय प्रदेशों में शान्ति और व्यवस्था स्थापित कर दी और 46 ई. में हिपेलस ने मानसून हवाओं का पता लगा लिया तो समुद्र के द्वारा तो पूर्व और पश्चिम के इस व्यापार को बहुत प्रोत्साहन मिला। भारतीय शासकों ने भी रोम के साम्राज्य के साथ अच्छे संबंध स्थापित करने का प्रयत्न किया। स्ट्रेबो से हमें ज्ञात होता है कि दक्षिण भारत के किसी शासक ने आगस्टन के पास एक शिष्टमण्डल भेजा था। उसी ने लिखा है कि दक्षिण भारत के किसी शासक ने आगस्टस को कुछ उपहार भेजे थे।

दक्षिण भारत से अधिकतर गरम मसाले रोम को भेजे जाते थे। रोम निवासी भारत से मलमल मोतियों और मणियों का भी आयात करते थे। वे भारत से रेशम भी मंगाते थे। जो भारतीय व्यापारी चीन से यहाँ लाते थे। रोम से भारत को बढ़िया किस्म की शराब, चीनी के बर्तनों और सोने और चांदी के सिक्कों का आयात होता था। इसीलिए रोम के इतिहासकार प्लिनी ने लिखा है कि इस समय 5 करोड़ मुद्रा का सोना प्रति वर्ष रोम से भारत लाया जाता था।

दक्षिण भारत में सबसे अधिक सिक्के रोम के सम्राट आगस्टस और टिबेरियस के मिले हैं। उत्तर भारत में रोम सम्राटों के बहुत कम सिक्के मिले हैं। इसका कारण संभवतः यह था कि उत्तर भारत में अधिकतर वे वस्तुएं लाई जाती थीं जो अन्य देशों को भेजी जाती थीं। इसीलिए उत्तर भारत में रोम के सिक्के बहुत कम मिले है।

ईथियोपिया में जो कुषाण शासकों के सिक्के मिले हैं उससे यह निष्कर्ष निकलता है कि भारत और ईथियोपिया के बीच ईसा की प्रारंभिक

शताब्दियों में नियमित रूप से व्यापार हो रहा था। भारतीय व्यापारी ही ईथियोपिया जाने से पहले सोकोतरा में ठहरते थे। आगस्टस के राज्यकाल में पहले से अधिक भारतीय नाविक अरब और अफ्रीका के तट पर जाते थे। परन्तु इस समय भी भारत का अधिकतर व्यापार विदेशियों के हाथ में था।

रोम का भारत और चीन के साथ व्यापार त्राजन के राजयकाल से मार्क्स आरीलियस (161–180 ई.) की मृत्यु तक बहुत अधिक मा होता रहा। परन्तु 190 ई. से रोम राजनीतिक संघर्ष में फंस गया इसलिए भारत का उसके व्यापार चौपट हो गया। इलायची, दाल–चीनी, तेजपात, बालछढ़, काली मिर्च, सौंठ, नीबू, चावल, मसूर, कपास, कटहल, केला, आम और आबनूस। संभवतः पश्चिमी देशों के निवासी तिल के तेल और तिलों से भी परिचित थें। अन्य स्रोतों से ज्ञात होता है कि शक्कर, नील, अनेकों प्रकार की लकड़ियाँ, सूती कपड़े और गोंद भी भारत से इन देशों को जाते थे।

पेरिप्लस और टालमी के वर्णनों से ज्ञात होता है कि भारत से रोम को शेरों, चीतों और तोतों का भी निर्यात होता था। पेरिप्लस में लिखा है कि बारवेरकम से खालों का निर्यात होता था। उसी में लिखा है कि भारत से अफ्रीका को गेहूँ, चावल, घी, तिल का तेल, सूती कपड़े और खांड का निर्यात होता था। प्लिनी ले लिखा है कि भारत से हाथीदांत, कछुए की खोपड़ियाँ और गैंडों के सींग भी विदेशों को भेजे जाते थे। भारत से विदेशों को भेजी जाने वाली वस्तुओं में सबसे अधिक मूल्यवान वस्तु मोती थे।

सन्दर्भ :

1. कुमार, सुजीत : प्राचीन भारत की शासन पद्धति; विश्व भारती पब्लिकेशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2014.
2. झा, द्विजेन्द्रनारायण एवं श्रीमाली कृष्णमोहन : प्राचीन भारत का इतिहास, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, नवीनतम संस्करण, फरवरी 2014.
3. महाजन, वी.डी. : प्राचीन भारत का इतिहास, एस० चाँद एण्ड कम्पनी, नई दिल्ली, नवीनतम संस्करण, 1997.
4. मिश्र, जयशंकर : प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना, नवीनतम संस्करण, 2000.
5. सहाय, गोपी कृष्ण : प्राचीन भारत के महान साम्राज्य, प्रकाशक – साधना एण्ड सन्स, दिल्ली, 2009.
6. श्रीवास्तव, के.सी. : प्राचीन भारत का इतिहास एवं संस्कृति; युनाईटेड बुक डिपो, इलाहाबाद, 1991.
7. Om Prakash, Religion and Society in Ancient India, Bhartiya Vidya Prakashan, Delhi, 1905.

***

गर्भवती महिलाओं में आहार एवं पोषण की समस्याएँ : एक विशेलषणात्मक अध्ययन

डॉ. मेहा कृष्णा *

स्वास्थ्य मनुष्य का मूलभूत अधिकार है और मनुष्य का स्वस्थ रहना समाज के हित में है। स्वास्थ्य एवं व्यक्ति का विकास किसी भी राष्ट्र के सामाजिक व आर्थिक विकास का अभिन्न अंग होता है। स्वास्थ्य का अर्थ केवल यह नहीं है कि मनुष्य को रोग, बीमारी और अपंगता न हो। स्वास्थ्य का अर्थ यह है कि मनुष्य शारीरिक, मानसिक और सामाजिक दृष्टि से पूर्णतः स्वस्थ हो। सृष्टि की रचना के समय पृथ्वी पर स्त्री और पुरूष को साथ रखा गया। यह प्रकृति का नियम है। इसलिए प्रत्येक जीवित प्राणी में नर और मादा पाये जाते है। इन नर व मादा के प्रजनन अंगों की रचना ईश्वर ने इस प्रकार की है कि गर्भाधान की क्रिया द्वारा एक जीव को जन्म दिया जाता है। पुरूष एवं स्त्री के प्रजनन अंगों की संरचना एवं कार्यो में अंतर पाया जाता है। संतानोत्पति का मुख्य आधार शुक्राणु तथा अण्डाणु का संयोग होना है। गर्भाधान के उपरांत भ्रूण के शरीर की अभिवृद्धि माता की रक्त–कोशिकाओं के द्वारा होती है। एक सफल गर्भाधान के साथ हर गर्भवती स्त्री को इस अवस्था में उत्पन्न होने वाली समस्याओं और उसके निदान तथा गर्भस्थ संतान के विकास को पूर्णतः ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है।

परिचय : मातृत्व नारी जीवन की चरम सार्थकता है। प्रत्येक नारी को प्रकृति ने माँ बनने के लिए उत्पन्न किया है। संतान को जन्म देना प्राकृतिक प्रक्रिया है, किंतु उसका पालन–पोषण सीखना आवश्यक है। प्रत्येक युवक–युवती को दांपत्य जीवन में प्रवेश करने से पूर्व पति–पत्नी, माता–पिता बनने की योग्यता प्राप्त करनी चाहिए। दांपत्य जीवन सुखों की सेज नहीं, उत्तरदायित्वों और कर्त्तव्यों का कंटीला ताज है।

गर्भाधान के लगभग नौ माह के बाद बच्चे का जन्म होता है। गर्भकाल में आमतौर पर 280 दिन लगते हैं। स्त्री शरीर में गर्भ का स्थापित होना, माता–पिता के लिए बड़ी महत्वपूर्ण घटना होती है। शिशु प्रकृति द्वारा प्रदत्त उच्च श्रेणी के सौन्दर्य की अनमोल देन है। संसार में आने के पूर्व तथा आने के बाद होनेवाले शिशु के विकास पर सृष्टि की निरंतरता निर्भर करती है। इसलिए इसे एक विशिष्ट महत्व की घटना समझा जाता है। गर्भधारण के लक्षणों का शुरू में ही पता लगाना कुछ कठिन होता है, परन्तु प्रकृति ने इसकी सूचना देने के लिए विशेष व्यवस्था कर रखी है। इन

* ग्राम- महुआ मुकुन्दपुर, पो.+ थाना- महुआ, जिला-वैशाली, पिन- 844122

लक्षणों से सिद्ध होता है कि गर्भ की स्थापना हो चुकी है और अब एक नए जीव का निर्माण आरम्भ हो गया है।

संतान को जन्म देना प्राकृतिक प्रक्रिया है। किंतु उसका पालन–पोषण सीखी जाने वाली वस्तु है। जब तक माता स्वयं प्रशिक्षित नहीं होगी, अपनी संतान को प्रशिक्षित नहीं कर सकती। आज के बच्चे कल देश के नागरिक बनेंगे। बच्चे राष्ट्र की संपत्ति कहे जाते हैं। माता–पिता इस संपत्ति के मालिक नहीं, अमानत की देखभाल करनेवाले होते हैं। इस अमानत को आप संभाल कर रखिए। प्रत्येक युवक–युवती को दांपत्य जीवन में प्रवेश करने से पूर्व पति और पत्नी, पिता और माता बनने की योग्यता प्राप्त करनी चाहिए। दांपत्य जीवन सुखों की सेज नहीं, उत्तरदायित्वों और कर्त्तव्यों का कंटीला ताज भी होता है। एक ओर ऐसी स्त्रियाँ हैं जो माँ तो बन जाती हैं, किंतु संतान का सही ढंग से लालन–पालन करना नहीं जानती हैं। दूसरी ओर आधुनिक स्त्रियाँ हैं, जिन्हें मातृत्व रास नहीं आता। माता बन जाना इनके लिए एक दुर्घटना जैसा अनुभव होता है। संतान पालने में ये बेगार टालने जैसा कार्य करती हैं। बच्चों की देखभाल इनके लिए गले पड़ा ढोल होता है। यदि ये चाहें तो अपनी संतान को देश का सुयोग्य नागरिक बना सकती हैं। इसके लिए इनके पास क्षमता भी है, सुविधा भी है और साधन भी है।

गर्भावस्था मिश्रित फलप्रद होती है। इसमें एक ओर जहाँ कई कष्ट उठाने पड़ते हैं, वहीं दूसरी और बच्चे की किलकारी सुनने को मन व्याकुल रहता है। गर्भावस्था लगभग नौ माह की होती है, जिसे तीन भागों में विभक्त करके हम उन अवधियों की विस्तृत जानकारी यहाँ प्रस्तुत किया जाता है। गर्भावस्था के प्रथम तीन माह बड़े नाजुक होते हैं। उल्टी आना, रक्तस्राव होना, पेट में दर्द, बुखार आदि की शिकायत में विशेषज्ञ से सलाह लें। अधिक उल्टी आने पर शरीर में पानी की कमी हो जाती है। रक्तस्राव का कारण संभावित गर्भपात हो सकता है। इस अवस्था में पेट दर्द होता है। इसके अलावा कभी कभी नलों में दर्द होता है। ऐसे में पेट दर्द बढ़ जाता है। महिला पीली अथवा सफेद पड़ जाती है। कभी–कभी रक्तचाप इतना कम हो जाता है कि वह बेहोश भी हो सकती है। यह एक गंभीर समस्या है। इसका उपचार तुरंत कराने के लिए निकट के अस्पताल या प्रसूतिगृह से सम्पर्क करें।

गर्भपात के समय रक्तस्राव के साथ दर्द होता है और मांस के कुछ टुकड़े भी गिरते हैं। समय से उपचार होने पर खून की कमी, इन्फेक्शन आदि से बचा जा सकता है। गर्भपात के कई कारण होते हैं, लेकिन बार–बार गर्भपात होना एक गंभीर समस्या है। अधिक बुखार, मधुमेह, थायरॉइड ग्रंथि की गड़बड़ी, रूबैला, टोक्सोप्लाज्मा, मलेरिया, पीलिया, भ्रूण में आंतरिक खराबी, मानसिक असंतुलन, फोलिक एसिड एवं विटामिन 'ई' की कमी तथा कुछ दवाईयाँ आदि गर्भपात के कारण हो सकते हैं।

कई बार भ्रूण बढ़ना रूक जाता है। इस अवस्था की जानकारी अल्ट्रासाउण्ड परीक्षण से प्राप्त की जा सकती है। हाइडेटीफॉरमोल नामक रोग होने पर शिशु पनपने की जगह पिंड–सा हो जाता है, जो देखने में अंगूर के गुच्छे की तरह लगता है। यह स्थिति गंभीर रूप ले सकती है। अधिक रक्तस्राव होने पर गर्भिणी की हालत बेहोशी की अवस्था तक पहुँच जाती है। कभी–कभी हाइडेटीफॉरमोल रोग कैंसर की तरह शरीर के अन्य भागों में भी फैल जाता है। ऐसे में तुरंत ही विशेषज्ञ के पास पहुँचे। इनके अलावा शुरू के तीन महीनों में एक्स–रे करवाने से बचें। कोई भी दवा स्वयं न लें। गलत दवा गर्भ में पनप रहे भ्रूण पर असर डाल सकती है। इस कारण उसमें मानसिक और शरीरिक विकलांगता आने की आशंका होती है।

गर्भावस्था के दूसरे तीन माह का चरण अन्य दो तिमाहियों की अपेक्षाकृत अच्छा है। लेकिन इस समय भी कोई संक्रामक रोग होने पर तुरंत सावधान हो जाएं तथा विशेषज्ञ से सपंर्क करें। कभी–कभी अचानक पेट में दर्द अथवा पानी की शिकायत हो सकती है। इसके अलावा रक्तस्राव भी हो सकता है। इस कारण गर्भपात और पहले बताए गए रोग हो सकते हैं। खून की कमी होने से चक्कर आना, घर के कामों में मन न लगना और शारीरिक थकावट हो सकती है। ऐसे में तुरंत परीक्षण द्वारा हीमोग्लोबिन की जाँच करवाएं।

गर्भावस्था के आखिरी तीन माह में खून की कमी, अधिक रक्तचाप, रक्तस्राव, शिशु का असामान्य रूप से बढ़ना, वजन में अचानक बढ़ोतरी, वजन का न बढ़ना, शिशु का स्पंदन नहीं महसूस होना, पैरों व शरीर में सूजन, दौरे पड़ना, अचानक बोहोश हो जाना आदि लक्षण खतरनाक है। इनके होने पर तुरंत विशेषज्ञ से संपर्क करें। इसके अतिरिक्त यदि महिला को गर्भ से पूर्व ह्रदय रोग, मधुमेह, उच्च रक्तचाप, सांस व फेफड़ों के रोगर, टी.बी., गुर्दों की बीमारी या रतिज रोग हो, तो इनका भी सही समय पर उपचार आवश्यक है। इनमें से कुछ रोगों के बारे में थोड़ी जानकारी यहाँ प्रस्तुत है।

यह एक गंभीर समस्या है। इसके कारण कभी–कभी महिलाएँ अपने जीवन से ही हाथ धो बैठती हैं। ओवल की असामान्य स्थिति, समय से पूर्व ओवल का गर्भाशय से अलग होना, पोलिप, बैरीकोस बैन्स या गर्भाशय के मुख का कैंसर होना इसके कारण हो सकते हैं। अतः महिला का पूर्ण परीक्षण तथा पारध्वनि परीक्षण आवश्यक होता है। ऐसी स्थिति में तुरंत निकट के अस्पताल अथवा प्रसूतिगृह से संपर्क करें। जहाँ आवश्यकता पड़ने पर रक्त–आपूर्ति और शल्य चिकित्सा की जा सके।

गर्भावस्था के दौरान स्त्री के शरीर में बहुत से बदलाव आते हैं। ऐसे में गर्भिणी की जरा–सी असावधानी गर्भ में पल रहे भ्रूण के लिए खतरे का कारण बन सकती है। अतः प्रत्येक गर्भवती महिला को अपने स्वास्थ्य के प्रति प्रायः सतर्क रहना चाहिए। इसके अलावा गर्भावस्था के संपूर्ण काल में

संयम, आहार, विहार, संतुलन, साफ–सफाई आदि अत्यंत महत्वपूर्ण मानी गई है। जिसका प्रभाव गर्भवती स्त्री पर ही नहीं, उसके गर्भस्थ शिशु पर भी पड़ता है।

शारीरिक स्वच्छता प्रत्येक जनसामान्य हेतु अनिवार्य है, लेकिन गर्भवती स्त्री के लिए इसका महत्व काफी बढ़ जाता है। गर्भकाल के दौरान स्त्री के कोमल शरीर में अनेक रोगों के संक्रमण की आशंका लगभग तीन गुना बढ़ जाती है। इसी कारण चिकित्सक शरीर की समुचित सफाई के साथ–साथ जनजनेंद्रियों, आखों, त्वचा एवं स्तनों आदि की सफाई पर ज्यादा जोर देते हैं। गर्भवती स्त्री को स्नान की सामान्य प्रक्रिया के दौरान प्रतिदिन गुनगुने पानी से बाथ सोप या शैम्पू द्वारा गुप्तांगों की सफाई करनी चाहिए।

गर्भावस्था के दौरान शरीर के प्रत्येक अंग विशेषकर दांत, नाखून, जांघों एवं बालों की सफाई पर पूरा ध्यान दिया जाना चाहिए। यदि दांतों में किसी प्रकार की बिमारी हो तो समय रहते उसका उपचार करने से सेप्टीसीमिया बीमारी से बचा जा सकता है। कई महिलाओं को लम्बे नाखून रखने का शौक होता है, लेकिन वे उसकी सफाई की और ध्यान नहीं दे पाती है। नाखूनों के बड़े होने पर खाना खाते वक्त उनमें जमा गंदगी मुँह में जाने से इन्फेक्शन का खतरा बना रहता है।

गर्भावस्था में वातावरण का शिशु पर बहुत प्रभाव पड़ता है। इस वातावरण के द्वारा ही अनेक महत्वपूर्ण कारकों का नियमन होता है। जो शिशु–निर्माण की आंतरिक प्रक्रिया में बहुत सहायक होते हैं। यहाँ ओशो गर्भ पर पड़ने वाले वातावरण के प्रभाव का विश्लेषण करते हैं–गर्भावस्था में माँ की मनःस्थिति का शिशु निर्माण की प्रक्रिया पर बहुत प्रभाव पड़ता है। वास्तव में, केवल गर्भ धारण करने से ही कोई स्त्री माँ नहीं हो जाती बल्कि वह माँ बनती है बच्चे की चेतना को एक विशेष दिशा में गति देने के कारण। बच्चे तो कोई मादा पशु भी अपने गर्भ में पालती है, सभी पशु ऐसा करते हैं। आज नहीं तो कल, मशीनें यह काम करेंगी। भविष्य मे बच्चों का मशीनों के द्वारा पालन–पोषण असंभव नहीं है। .... इस जगत में बहुत कम माँएं ऐसी हैं जिन्होंने मातृत्व की सही जिम्मेदारी को निभाया है। माँ होना सर्वाधिक कठिन कार्य है। नौ माह तक शिशु की चेतना को निरंतर एक दिशा देना आसान नहीं है। यदि इन नौ महीनों में, माँ क्रोध करती है....और फिर कल जब वह एक क्रोधपूर्ण बच्चे को जन्म देगी और जब बच्चा क्रोध करेगा तब वह उसमें दोष निकालेगी, उसे डांटेगी और आश्चर्यचकित होगी कि किसने उसे बिगाड़ा है, वह किस बुरी संगत में पड़ गया है। अनेक माँएं मेरे पास अपने बच्चों की यही शिकायतें लेकर आती हैं कि वे बुरी संगति में पड़े हुए हैं लेकिन वे यह बात भूल गई हैं कि उन्होंने स्वयं ही ये बीज अपने बच्चों में डाले हैं। वे स्वयं ही बच्चों के ऐसे विकास की जिम्मेदार हैं। बच्चे तो मात्र उसे प्रकट कर रहे हैं। यह सच है कि बीज बोना और उसमें अंकुर फूटना दो अलग–अलग घटनाएं हैं। हमें दोनों घटनाओं के बीच कोई संबंध

दिखाई नहीं देता क्योंकि दोनों के बीच लम्बा समयांतराल होता है। निम्न उदाहरण में माँ की मनःस्थिति का बच्चे पर पड़ने वाले प्रभाव का विश्लेषण कर रहे हैं।

गर्भावस्था के दौरान कम से कम तीन बार डॉक्टर, नर्स, प्रशिक्षित दाई या स्वास्थ्य कार्यकर्ता से जाँच करवानी चाहिए। अगर हो सके तो जाँच हर महीने करवानी चाहिए। जाँच से पता चलता है कि माँ एवं बच्चे दोनों का स्वास्थ्य कैसा है और उन दोनों का ठीक से विकास हो रहा है या नहीं। जब महिला पहली बार जाँच करवाने स्वास्थ्य केंद्र जाती है तो वहाँ उसका नाम दर्ज होता है और उसे जच्चा–बच्चा रक्षा कार्ड बनाकर दिया जाता है। यह कार्ड गर्भवती महिला और पैदा होने वाले बच्चे दोनों के लिए होता है। गर्भवती महिला जब भी जाँच करवाने जाए तो उसे अपने साथ यह कार्ड लेकर जाना चाहिए। हर बार की जाँच को इस कार्ड में दर्ज किया जाता है जिससे अगली बार जाँच करते समय यह पता रहे कि पिछली बार कौन–कौन सी जाँच हुई थी और पिछली बार से लेकर अब तक महिला और बच्चे में क्या बदलाव आए हैं।

चिकित्सा विज्ञान के अनुसार गभावस्था में भ्रूण के निर्माण के कारण शरीर में तीव्र गति से कई परिवर्तन होते है। उपचय की क्रियाएँ तीव्र गति से होने लगती है, जो माँ के पोषक तत्वों की आवश्यकता को बढ़ा देती है। गर्भावस्था में रक्त के संगठन में भी परिवर्तन आ जाता है। रक्त में प्लज्मा की मात्रा लगभग 50 प्रतिशत तक रह जाती है, परन्तु लाल–रक्त कणों में 20 प्रतिशत की वृद्धि होती है। अतः हीमोग्लोबिन की सान्द्रता उसकी मात्रा में वृद्धि हाने के बाबजूद भी कम हो जाती है। भ्रूण विकास के साथ–साथ गर्भवती स्त्री का भार भी बढ़ता है। एक स्वस्थ्य माता का भार 10–12 किलोग्राम औसतन बढ़ना चाहिए।

संतानोत्पति की अवस्था में प्रोटीन, कैल्सियम, फॉस्फोरस और लौह–लवण की अधिक आवश्यकता पड़ती है। गर्भकाल के सातवें, आठवे और नवे माह में शिशु का विकास अत्यंत तीव्र गति से होता है। वह माँ के रक्त से प्रोटीन, कैल्सियम, फॉस्फोरस, लौह–लवण, विटामिन तथा अन्य खनिज लवण अधिक मात्रा में शोषित करता है। भ्रूण इन्हीं अंतिम तीन महीनों में अपने वजन का 3/4 भाग प्राप्त करता है। फलस्वरूप नये उत्तकों के निर्माण के लिए निर्माणकारी पदार्थ की माँग अधिक हो जाती है। संतानोत्पति तथा संतति रक्षा योजना के अंतर्गत इनको सरकारी स्तर पर पोषक तत्व मुहैया कराया जा रहा है, जिसका प्रभाव गर्भिणी तथा प्रसूति महिलाओं पर अच्छा है। इन कार्यक्रमों के अंतर्गत इन्हें कैलोरीज, प्रोटीन, लौह–लवण, आयोडीन, विटामिन आदि उपलब्ध कराये जा रहे है, जो माता–शिशु दोनों के स्वास्थ्य रक्षा में लाभकारी है।

निष्कर्ष : कुपोषण तथा अपर्याप्त पोषण गर्भधारण की क्षमता को भी प्रभावित करते है। गर्भकाल में शरीर के भार में कमी होने के कारण अनेक

परेशानियाँ होती है, एवं अनेक प्रकार के रोग हो जाते है। जैसे– गर्भावस्था के रोग, अपरिपक्व शिशु का जन्म, गर्भपात एवं मरे हुए शिशु का जन्म आदि। विश्व स्वास्थ्य संगठन के चिकित्सकों ने विभिन्न अनुसंधानों द्वारा यह प्रमाणित किया है कि जिस माता के आहार मे उपयुक्त मात्रा में पोषक तत्वों का समिश्रण होता है, उसे गर्भकाल में अपोषक और अनुपयुक्त भोजन करने वाली माता की अपेक्षा रोगों से ग्रसित होने का भय पूरे समय तक अधिक सुरक्षित तथा स्वस्थ होती है। प्रसव के समय उन्हें अधिक परेशानी नहीं झेलनी पड़ती है तथा उसका शिशु भी स्वस्थ एवं हष्ट–पुष्ट रहता है। अतः हर गर्भवती स्त्री को अपने स्वास्थ्य के प्रति जागरूक होना चाहिए। भारत तथा अन्य विकासशील राष्ट्रों में गर्भवती स्त्री के आहार में पोषक तत्वों की कमी के कारण मातृ एवं शिशु मृत्युदर अधिक होती है।

सन्दर्भ :

1. डॉ. पी.वी.यंग, 1988, एपलीकेशन ऑफ अनभेस्टीगेशन इन प्योर रिसर्च, न्यूयार्क, पृ. 102.
2. प्रो. गुड एण्ड हॉट, 1981, इनफ्लूएन्स ऑफ स्टेटिसटिक्स ऑन रिसर्च, रिसर्चजनरनल, न्यूयार्क, पृ. 17.
3. वहीं, पृ. 29.
4. प्रो. गुड एण्ड हॉट, 1981, इनफ्लूएन्स ऑफ स्टेटिसटिक्स ऑन रिसर्च, रिसर्चजरनल, न्यूयार्क, पृ. 25.
5. प्रो. श्रीमती यंग, 1985, रिसर्च मेथड एण्ड इटस एप्लीकेशन, पृ. 23.
6. भारतीय चिकित्सा शोध परिषद् के विशेषज्ञ दल का प्रतिवेदन, पृ. 157
7. यूनिसेफ, 1984–एन. एनालाइसिस ऑफ दि सिच्युएशन ऑफ दि चिल्ड्रेन इन इंडिया, न्यू देलही, पृ. 156

***

संगीतनायक स्वामी विवेकानन्द

डॉ. ब्रजेश कुमार प्रसाद *

संगीतनायक स्वामी विवेकानन्द आधुनिक भारत के निर्मातओं में सबसे महत्वपूर्ण हैं। वे एक क्रांतिकारी संघ और देशभक्त होने के अलावा विश्व–मानव भी थे।

उन्होंने अपने व्यक्तित्व और कृतित्व से बीसवीं सदी के भारत के इतिहास को बेहद प्रभ वत कया। ववेकानंद भारतिय संस्कृति की व्यापक मानव संवेदना के सबसे शक्तिशाली प्रवक्ता थे। उनके जीवन तथा उपदेशो मे लगातार उनका सत्य- दृष्टा और गुरु रुप उद्घाटित होता रहा। बीसवी सदी के इतिहास को उन्होने आध्यात्मिक, राष्ट्रीय, कलात्मक और सांस्कृतिक स्तरो पर झकझोर कर जगाया और उसे पौरुष के प्रतिमान दिए। ववेकानंद ने पराधीन भारत की डूबती हुई क्रयाशीलता को नई दिशा और अ भनव अर्थ प्रदान कए। उन्होने देश के अंधी खाइयो मे डूबने से बचा लया। डा० राधाकृष्णन के अनुसार ववेकानंद भारतीय पुर्नजागरण के एक महान नेता थे।

लोग इस तथ्य से लगभग अपरि चत ही होंगे क ववेकानंद एक उत्कृष्ट संगीतज्ञ भी थे। स्वामीजी के बारे मे रोमाँ रोलाँ ने लया है; "उनके शब्द महान संगीत है, बीथोवन शैली के टुकडे है, हैंडेल के समवेत गान के छंद - प्रवाह की भाति उद्दीपक लय है। शरीर मे से वद्युतस्पर्श के से आघात की सहरन का अनुभव कए वना मै उनकी वाणी का स्पर्श नही कर सकता, जो तीस वर्षो की दूरी पर पुस्तको के पृष्ठो मे बिखरे पडे है। और जब वे नायक के मुख से ज्वलन्त शब्द के रुप मे निःसृत हुए, उस समय तो न जाने कैसे आघात और आवेश उत्पन्न हुए होंगे।" स्वामी जी न केवल शब्दो के अ पतु संगीत के भी नायक थे।

परिव्राजक के रुप मे अपने भारत-भ्रमण के दौरान स्वामी जी एकनाथ पण्डित नामक एक वरिष्ट संगीतज्ञ के साथ मुलाकात हुई, जो एक ध्रुपद गायक थे। स्वामी जी ने उनका संगीत सुनने की इच्छा व्यक्त की। एकनाथ पंण्डित के गाने के साथ स्वामी जी मृदंग पर संगत करने लगे। स्वामी जी के इस मृदंगवादन से गायक और श्रोता पूर्णत: संतुष्ट हुए। इस कार्यक्रम के पश्चात होने वाले वार्तालाप से पता चला क स्वामी जी एक अच्छे गायक भी है, अत: उन लोंगो ने स्वामी जी से गाने का अनुरोध कया। स्वामी जी तानपुरा उठाकर ध्रुपद का आलाप लेने लगे। फर जब वे

* सहायक प्राध्यापक, इतिहास विभाग, सामाजिक विज्ञान संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

गीत के लय पर आये, तो कोई भी मृदंग पर उनकी संगत नही कर सका। सहसा ही उन्होने तानपुरा एकनाथ पण्डित के हाथ मे सौपते हुए मृदंग उठा लया और स्वयँ ही अपनी संगत करने लगे। इस तरह सबको बिस्मय ए साहर मे डुबाते हुए स्वामी जी ने दोनो भू मकाएँ निभायी। इस अद्भुत घटना पर वस्मित होकर पण्डित जी कह उठे, " स्वामी जी, आप केवल गायक ही नही, नायक भी है।"

नायक की उपा ध एक ऐसे संगीतज्ञ को दी जाती है, जिसमे सफल प्रदर्शन, संगीत-रचना की क्षमता, संगीत शास्त्र का ज्ञान और श्रोताओ को अ भभूत करने की प्रतिभा हो। जिन लोंगो को संगीत का थोडा ज्ञान है, वे इस बात को ठीक- ठीक समझ सकेंगे क धुपद गायन, जिसमे क षट्-प्राण और षट्-संगत लगते है, के साथ मृदंग पर स्वयँ ही संगत कर पाना प्राय: असम्भव-सा है। इन दोनो को एक साथ अकेले ही सफलपूर्वक कर दिखाना एक अतिमानवीय कार्य है।

स्वामी जी ने सुव्यवस्थित ठंग से धुपद, धमार, ख्याल, भजन और टप्पा का अध्ययन कया था। टप्पा के बारे मे उनकी राय अच्छी नही थी। इस वषय में उनके अपने शब्द मैं आगे उद्घृत करुँगा। व भन्न शक्षको से उन्होने मृदंग, तबला और सतार भी सीखा। वेणी उस्ताद (वेणीमाधव अ धकारी) और उस्ताद अहमद खाँ से उन्होने धुपद व ख्याल सीखा ; ब्रहमसमाज के एक सदस्य श्री काशी घोषाल से उन्होने एसराज एवम् मृदंग सीखा। उनके समकालीन बंगाल के संगीतज्ञो में प्रमुख थे रवींद्रनाथ ठाकुर, त्रैलोक्यनाथ सान्याल और द् वजेन्द्रनाथ ठाकुर। कहते है अपनी संगीत-शक्षा के दिनो में स्वामी जी निय मत रुप से कठोर अभ्यास कया करते थे।

स्वामी जी एक रचनाकार भी थे, परवर्तीकाल में उन्होने संस्कृत, बंगला और हिंदी में अनेक रचनाएँ की और उन्हे व भन्न शास्त्रीय रागो एवम् तालो के साथ समायोजित कया। उनमें से कुछ का ववरण निम्न है-

-

1. 'खंडन भव बंधन' - राग-यमन, ताल-चौपाल; रामकृष्ण संघ के सभी केंद्रो में गायी जाने वाली दैनिक प्रार्थना।
2. 'एकरुप अरुप नाम वरण' - राग-बडा हंससारंग , ताल-चौताल;
3. ' नहि सूर्य नहि ज्योति' - राग-बागेश्री , ताल-अडा या इकवी;
4. ' मुझे वारी बनवारी सैंयाँ' - राग-ठुमरी, ताल - कहरवा।

स्वामी जी की एक हस्त ल खत पुस्तक भी मला है, जिसमे तबले पर अनेक रचनाएँ हैं। यदि वे 39 वर्ष की अल्प आयु में देहत्याग न कर देते ,

तो संगीत-जगत सम्भवत: उनकी और भी रचनाएँ पाकर उपकृत होत। संगीत के कसी भी अन्य्प्रकार की तुलना में ध्रुपद के प्रति स्वामी जी का बडा सम्मान का भाव था। वे कहते, " जिन सब गीत-वाद्यो से मनुष्य के हृदय के कोमल भावसमूह उद्दीप्त हो जाते हैं, उन सबको अब थोडे दिनो के लए बंद रखना होगा। वैदिक छंदो के उच्चारण से देश में प्राण संचार कर देना होगा । (1)

परंतु संगीत के आदर्श रुप के में स्वामी जी ने कहा था - " ध्रुपद और खयाल आदि में एक वज्ञान हैं। कंतु कीर्तन अर्थात माथुर और वरह तथा ऐसी रचनाओ में ही सच्चा संगीत हैं, क्योकी वहाँ भाव हैं। भाव ही आत्मा हैं, प्रत्येक वस्तु का रहस्य हैं। ....बहुत से लोग सोचते हैं क भाव मात्र ही संगीत हैं, पर ऐसी बात नही है, दूसरी ओर भाव वहीन परंतु केवल व्याकरण शास्त्र पर आधारित शब्दो की कसरत भी संगीत नही हैं। .....लोकगीतो की मधुरता, शास्त्रीय संगीत का वज्ञान और कीर्तन का भाव इन्हे मलाने से ही आदर्श संगीत की सृष्टि होगी।

स्वर चन्ह और श्रुतियो के बारे में स्वामी जी का कहना था - युगो पूर्व भारत में संगीत को पूर्ण सप्त स्वरो तक वक सत कया गया था, यहाँ तक क अर्ध एवम् चतुर्थांश स्वर तक भी वक सत हुए थे। भारत ने संगीत में और नाटक तथा स्थापत्य कला में भी नेतृत्व कया। जो कुछ अब कया जा रहा है, वह केवल मात्र अनुकृति का एक प्रयास हैं। आज भारत में हर बात इस प्रश्न पर आधारित है क कसी व्यक्ति को जीवन-धारण के लए कतने कम की आव्श्यकता हैं।"[3]

टप्पा के बारे में उन्होने कहा- जो ध्रुपद गाने में दक्ष हैं, उन्हे तो टप्पा कर्कश ही लगता हैं।.... क्या आप सोचते हैं क टप्पा को नाक से गाते हुए, बिजली के समान एक सुर से दूसरे सुर में दौडना कोई उत्कृष्ट संगीत हैं। नही! जब तक प्रत्येक सुर हर एक स्तर पर पूरा नहीं गाया जाता, उत्कृष्ट संगीत की सृष्टि नही हो सकती।.... तुम्हारी समझ में यह नहीं आ रहा हैं क जब एक स्वर के पीछे दूसरा स्वर इतनी द्रुतगती से आता हैं, तो केवल संगीत की सुषमा ही नष्ट नहीं होती , वरन् एक प्रकार का बेसुरापन पैदा हो जाता हैं। 4

पाश्चात्य संगीत में गहराई तक पैठ्ने के बाद स्वामी जी ने उसके बारे में उच्च धारण बना ली थी। उन्होने कहा-" जब मैंने उनके संगीत को ध्यानपूर्वक सुनना शुरु कया और उस शास्त्र का अध्ययन कया , तो प्रशंसा कए बिना नहीं रह सका। सभी कलाओ का यही हाल हैं ।5

पर हमारे संगीत में स्वरो का आरोह-अवरोह बहुत ही सुंदर बन पडता हैं। फ्राँसवालो ने संगीत के इस गुण को पहचाना और अपने संगीत में अपनाने का प्रयत्न कया हैं। उनको देखकर यूरोप भर में इसका अनुकरण होने लगा हैं।[6]

कला, संगीत आदि में उच्च उपलब्धियाँ मन की एकाग्रता के परिणाम हैं।... हम जिन्हे प्यार करते हैं, उन्ही चीजो पर अपना मन एकाग्र करते हैं। जब हम कोई मधुर संगीत सुनते है, तो हमारा मन उसमें अनुरक्त हो जाता हैं और हम उसे वहा से हटा नही सकते।जो लोग अपना मन शास्त्रीय संगीत पर एकाग्र करते हैं, उन्हे लोक – संगीत नहीं रुचता और जो लोग अपना मन लोक – संगीत पर एकाग्र करते हैं, उन्हे शास्त्रीय – संगीत पसंद नही। संगीत में एक स्वर के बाद दूसरा स्वर जल्दी-जल्दी बदलता हैं,| जिसमें मन तत्काल स्थिर हो जाता हैं, बच्चा जीवंत संगीत इस लए पसंद करता हैं। क स्वरो के द्रुत परिवर्तन के कारण उसके मन को इधर-उधर भागने का अवसर नहीं मलता। जिस आदमी को सामान्य संगीत पसंद है, वह शास्त्रीय संगीत को नापसंद करता हैं, क्यो क वह अ धक मूढ हैं ,और उसे सनझने में अ धक मात्रा में अकाग्रता की जरुरत पडती हैं। ... सुरीली तान सुनने या सुंदर चत्र देखने पर हमारा मन उनकी पकड में दृढता पूर्वक आ जाता हैं। हम वहाँ से उसे हटा नही सकते।7

संदर्भ :

1. ववेकानंद साहित्य , खण्ड - 6, पृ. 197.
2. वही, खण्ड - 10, पृ० 39.
3. वही, खण्ड - 9, पृ० 262-63.
4. वही, खण्ड - 8, पृ० 247.
5. वही, खण्ड - 8, पृ० 246.
6. वही, खण्ड - 7, पृ० 247.
7. वही, खण्ड - 4, पृ० 108.

***

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में वामपंथी राजनीति का उदयः एक अवलोकन

डॉ. नीरज कुमार *

बीसवीं शताब्दी में दूसरे दशक के अंतिम वर्षों एवं तीसरे दशक के दौरान राष्ट्रीय आंदोलन पर एक शक्तिशाली वामपंथी प्रभाव दृष्टिगोचर होने लगा। इस प्रभाव ने स्वतंत्रता आंदोलन के चरित्र एवं स्वरूप को अपने तरीके से प्रभावित किया। वामपंथी राजनीति के उदय से पूर्व जहाँ काँग्रेस का लक्ष्य राजनीतिक स्वतंत्रता प्राप्त करना था, वही अब सामाजिक तथा आर्थिक स्वतंत्रता की माँग भी की जाने लगी।[1] राष्ट्रीय आंदोलन को प्रभावित करने में वामपंथ की तीन धाराऐं प्रवाहित हो रही थी। जिसमें एक धारा नेहरू तथा सुभाष चंद्र बोस जैसे नेताओं द्वारा संचालित हो रही थी। इसमें नेहरू की आस्था अहिंसावादी संघर्ष में पर्याप्त रूप से दृढ़ थी तथा वे इसके अंदर ही नीति परिवर्तन को अमलीजामा पहनाना चाहते थे। जबकि सुभाष चंद्र बोस की यद्यपि अहिंसात्मक राजनीति में पर्याप्त आस्था नहीं थी तथापि वे काँग्रेस को उपनिवेशवादी विरोध का सही मंच मानते थे।[2] इस प्रकार हम देखते है कि भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में वामपंथ की जितनी भी धाराएँ प्रस्फुतित हुई, सबका लक्ष्य भारत को विदेशी दासता से मुक्ति दिलाना ही था।

भारत में वामपंथी विचार के उद्‌भव एवं प्रसार की मुख्य प्रेरक शक्ति 1917 के रूसी बोल्शेविक क्रांति को माना जाता है। लेनिन के नेतृत्व में बोल्शेविक पार्टी ने जार के निरंकुश शासक को उखाड़ फेंका तथा विश्व के पहले समाजवादी राज्य की स्थापना रूस में की।[3]

इसी बीच असहयोग आंदोलन के चौरा–चौरी घटना के बाद गाँधी जी द्वारा वापस लेने के फलस्वरूप कांग्रेस के युवा नेता में निराशा का भाव भर गया। फलतः युवा वर्ग को मार्क्सवाद एक वैकल्पिक एवं तीव्र स्वतंत्रता गामी मार्ग लगा। भारत में वामपंथी विचारधारा को लोकप्रिय बनाने में क्रांतिकारी आतंवादी आंदोलन तथा खिलाफत आंदोलन के सर्व–इस्लामवादी अनुयायियों का भी महत्वपूर्ण योगदान रहा। फिर प्रथम विश्वयुद्ध के पश्चात् फैले आर्थिक मंदी ने भी वामपंथी आंदोलन को लोकप्रिय बनाने में अहम योगदान दिया।

काँग्रेस के युवा नेता भी वामपंथी विचारधारा से प्रभावित हुए। जिसमें जवाहर लाल नेहरू, सुभाष चन्द्र बोस, जयप्रकाश नारायण तथा आचार्य नरेन्द्र देव आदि प्रमुख थे। प्रारंभ से ही काँग्रेस समाजवादी विचारधारा के स्तर पर तीन खेमों में बँटे हुए थे यथा–(क) मार्क्सवादी, (ख) फेबियनवादी (ग) गाँधीवादी, जवाहर लाल नेहरू तथा सुभाषचन्द्र बोस को दूसरी विचारधारा के स्तर पर रखा जा सकता है।[4]

---

* नेट–जे.आर.एफ.(इतिहास), इतिहास विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना

जवाहर लाल नेहरू पर पड़े समाजवादी विचारधारा का ही प्रभाव था कि उन्होंने साइमन कमीशन तथा मोतीलाल नेहरू के रिपोर्ट में प्रस्तावित डोमिनियन स्टेट्स को अस्वीकार कर दिया क्योंकि उनके विचार में डोमिनियन स्टेट्स को भारत की स्वतंत्रता के समतुल्य मानना न केवल भारत में अंग्रेजों के अनिवार्य उपस्थित को मान्यता देना है बल्कि पिछले दरवाजे से भारत में ब्रिटिश साम्राज्यवादी शोषण का स्थायीकरण भी है। अतः दिसम्बर, 1927 के काँग्रेस अधिवेशन में उन्होंने पूर्ण स्वराज की मांग रखी। इस प्रकार जवाहर लाल नेहरू ने पूर्ण स्वराज की प्राप्ति की दिशा में स्वतंत्रता के लिए भारतीय संघ गठित करने के लिए सुभाष चन्द्र बोस के साथ सहयोग बढ़ा ताकि संघर्ष को प्रभावी बनाया जा सके।[5]

आगे 1933–36 ई. के मध्य नेहरू के समाजवादी प्रतिबद्धता को और धारदार अभिव्यक्ति मिली। 1936 में उन्हें पुनः लखनऊ अधिवेशन का अध्यक्ष बनाया गया। उन्होंने कहा कि विश्व और भारत की समस्या के समाधान की एकमात्र कुंजी समाजवाद ही है। उन्होंने यह भी कहा कि मैं यहाँ समाजवादी शब्द का प्रयोग किसी अस्पष्ट या मानवतावादी संदर्भ में नहीं बल्कि वैज्ञानिक एवं आर्थिक रूप में कर रहा हूँ। कुल मिलाकर समाजवाद के प्रति नेहरू की प्रतिबद्धता तथा साम्राज्यवादी संघर्ष को तब तक महत्त्वपूर्ण स्थान दिया जाना था, जब तक भारत औपनिवेशिक शासन के प्रभाव में था।[6]

जहाँ तक सुभाषचंद्र बोस का प्रश्न है वह विवेकानंद के विचारों से प्रेरित थे जो कि उत्पीड़ितों तथा प्रताड़ितों क प्रति अपनी सहानुभूति के लिए जाने जाते थे। अतः सुभाष चन्द्र बोस भी उन्हीं चिंताओं के शिकार थे जिससे जवाहर लाल नेहरू तथा अन्य नेता। परंतु उनकी तरह सुभाष को वह मौका नहीं मिला जो जवाहर लाल नेहरू को यूरोप की खुली हवा में समाजवादियों से संपर्क में आने से मिली। अतः सुभाष चन्द्र बोस को निचले स्तर पर किसानों और मजदूरों के साथ काम करने का लाभ प्राप्त नहीं हो सका, इसकी वजह से वे दूर से ही निम्न वर्गों की महत्वाकांक्षा से अवगत रहे। यही कारण है कि वामपंथ की तरफ झुकाव तथा क्रांतिकारी रूख के बावजूद सुभाष के समाजवादी विचारों को उतनी स्पष्टता नहीं मिल सकी।[7]

फिर इस काल में समाजवादी विचारधारा के प्रभावों से क्रांतिकारी आतंकवाद भी प्रभावित हुए। जिसमें प्रमुख क्रांतिकारी भगत सिंह ने साम्यवाद का गहन अध्ययन किया और भारत में सच्चे अर्थों में जनक्रांति लाने के उद्देश्य से उन्होंने उत्तर भारत के अन्य क्रांतिकारी संगठनों का साथ लेकर हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिक आर्मी नामक संगठन की स्थापना की, जिसका लक्ष्य था संपूर्ण व्यवस्था को बदलकर एक ऐसी व्यवस्था की स्थापना करना था जिसमें किसी दूसरे व्यक्ति का शोषण नहीं कर सके।[8]

मूल्यांकन : उपर्युक्त तथ्यों के विश्लेषण से यह ज्ञात होता है कि वामपंथी विचारों के प्रभाव के फलस्वरूप राष्ट्रीय आंदोलन तथा स्वतंत्रता दोनों का अर्थ बदल गया। अब स्वतंत्रता का अर्थ महज राजनीतिक स्वतंत्रता नहीं

वरन् आर्थिक और सामाजिक स्वतंत्रता भी हो गया। अतः कम्युनिस्ट पार्टी ने किसानों तथा श्रमिकों को संगठित कर राजनीति में उसकी भागीदारी को प्रोत्साहन दिया।[9] फिर हम देखते हैं कि समाजवादी प्रभाव के फलस्वरूप पहली बार कराची अधिवेशन में व्यापक स्तर पर आर्थिक मुद्दे उठाये गये। जिसमें मौलिक अधिकार, राजस्व एवं लगान में कमी, किसानों की ऋण समस्या तथा महत्त्वपूर्ण उद्योगों का राष्ट्रीयकरण आदि मुद्दों को उठाया जाने लगा। आगे 1936 के लखनऊ अधिवेशन में पहली बार किसानों की दयनीय स्थिति में सुधार के लिए कुछ प्रगतिशील कृषि कार्यक्रम लाये गये। आगे 1937 के फैजपुर अधिवेशन में भी कृषि कार्यक्रम को विस्तारित किया गया। इस प्रकार यह अधिवेशन लखनऊ अधिवेशन का पूरक था। फिर 1937 में कॉंग्रेस की चुनावी घोषणापत्र में भी समाजवादी विचारधारा का प्रभाव देखा जा सकता है। इस घोषणापत्र का महत्त्वपूर्ण परिणाम यह हुआ कि 1937 के चुनावों में स्वामी सहजानंद के आह्वान पर किसानों ने कॉंग्रेस को पूर्ण समर्थन दिया।[10] आगे समाजवादी प्रभाव का गाँधीजी के दृष्टिकोण पर भी प्रभाव पड़ा फलस्वरूप वे ऐसा मानने लगे कि राष्ट्रीय आंदोलन का संपूर्ण अधिभार किसान तथा श्रमिकों पर डाला नहीं जा सकता है। अतः जनवरी, 1942 के वर्धा बैठक में उन्होंने स्पष्ट कर दिया कि पूंजीपति तथा जमींदार उनसे शक्ति प्राप्त करते हैं, जो क्रमशः फैक्ट्री एवं खेतों में काम करते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि वामपंथी आंदोलन ने कॉंग्रेस को जनवादी स्वरूप प्रदान करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

सन्दर्भ :

1. सिंह, चंद्रिका, *सोशियोलिज्म इन इंडिया (राइज, ग्रोथ एंड प्रॉस्पेक्ट)*, वी. आर. पब्लिशिंग कॉर्पोरेशन
2. शर्मा, अमित कुमार, *भारतीय समाजवाद के प्रमुख सम्प्रदाय*, डी.के. प्रिंट वर्ल्ड लि.
3. चन्द्र, विपिन, *आधुनिक भारत का इतिहास*, ओरियंट ब्लैकस्वॉन प्रा. लि., नई दिल्ली, 2009
4. सरकार, सुमित, *आधुनिक भारत*, राजकमल प्रकाशन
5. बंधोपाध्याय, शेखर, *प्लासी से विभाजन तक और उसके बाद, आधुनिक भारत का इतिहास*, ओरियंट ब्लैकस्वॉन, हैदराबाद
6. राय, डा. सत्या एम., *भारत में औपनिवेशवाद और राष्ट्रवाद*, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
7. सिंह, रणधीर, मार्क्सिज्म, सोशियोलिज्म, *इंडियन पॉलिटिक्स*, आकार बुक, 2008
8. सिंह, अयोध्या, *समाजवाद*
9. ग्रोवर, बी.एल., अलका मेहता, यशपाल, *आधुनिक भारत का इतिहास*, एस. चंद
10. शुक्ल, रामलखन, *आधुनिक भारत का इतिहास*, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

***

महिला सशक्तिकरण में डॉ. अम्बेडकर का योगदान

पवन कुमार यादव *

महिला सशक्तिकरण एक बहुआयामीय प्रक्रिया है जो महिलाओं को शक्ति प्राप्त करने के लिए जागरुक करती है और उनमें सामाजिक, आर्थिक संसाधनों पर नियंत्रण प्राप्त करने की क्षमता का विकास करती है। यह महिलाओं को अपने जीवन को निर्देशित करने की प्रेरणा देती है और घर तथा घर के बाहर के मुद्दों पर निर्णय लेने में उनकी भागीदारी में बढ़ोत्तरी करती है। इस तरह से यह शक्ति के विद्यमान सम्बन्धों अथवा समाज में शक्ति के वितरण की विद्यमान व्यवस्था को चुनौती देती है। यह पुरूष सम्प्रभुता अथवा महिला सम्प्रभुता का स्थान समाज में पुरूष और महिला के मध्य शक्ति और सत्ता के न्यायपूर्ण वितरण या दोनों में समानता के आधार पर सत्ता में सामंजस्यपूर्ण भागीदारी पर बल देती है। इससे यह समाज में भौतिक, वैचारिक और सूचनागत संसाधनों तक महिलाओं की पकड़ को ज्यादा सुगम बनाती है और इन पर उनके नियंत्रण में बढ़ोत्तरी करती है। सशक्तिकरण से तात्पर्य मात्र शक्ति के अधिग्रहण की क्षमता के विकास से नहीं है बल्कि शक्ति को सुरक्षित रखने, प्रयुक्त और उपभोग करने की क्षमता के विकास से भी है। परन्तु इसके लिए महिलाओं में शिक्षा का प्रसार करने उन्हें आत्मनिर्भर बनाने और उनमें निर्णय लेने की क्षमता का विकास करने की जरूरत है। साथ ही उन्हें हीन भावना से आजादी दिलवाना और उनमें आत्म–गरिमा व आत्मसम्मान का विकास करवाना भी आवश्यक है।

आज के समय में महिला समस्या और उनका सशक्तिकरण पूरे विश्व में एक मुख्य मुद्दा है। बाबा साहेब अम्बेडकर का विचार था कि किसी देश का विकास महिलाओं की भागीदारी के बिना संभव नहीं है। उनका मानना था कि हिन्दू समाज जाति व्यवस्था और अस्पृश्यता पर आधारित है, जो समाज में समानता, स्वतंत्रता, बन्धुत्व और न्याय की भावना को रोकने का काम करती थी और साथ ही समान अवसर से वंचित रखने का भी काम करती थी। इस समाज में शूद्र, अछूत ही नहीं अपितु महिलाओं के साथ भी इस तरह व्यवहार किया जाता था, बाबा साहेब इसके घोर विरोधी थे। वे ऐसा समाज चाहते थे, जिसमें समानता, स्वतंत्रता, हर व्यक्ति को चाहे वह स्त्री हो अथवा पुरूष, चाहे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र या अछूत हो उसे समान अवसर देने के पक्ष में थे। बाबा साहेब ने जितना संघर्ष शूद्रों, अछूतों को समान अवसर और न्याय दिलाने का काम किये उतना ही उन्होंने महिलाओं के लिए भी किये।

---

* शोध छात्र- राजनीति विज्ञान विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

महिलाओं के सामाजिक उत्थान– डॉ. भीमराव अम्बेडकर को जब भी अवसर मिला तो वे महिलाओं और विशेष तौर पर दलित महिलाओं को हर तरह की स्वतंत्रता, शिक्षा, समानता व समाज की प्रत्येक गतिविधियों में पुरूषों के समान ही अपनी भागीदारी निभाने का संदेश दिया। भारत में महिला आन्दोलन में सावित्री बाई फुले का नाम सबसे प्रमुख है जिन्होंने पूरे भारत में महिला सशक्तिकरण का बीजारोपण किया। बाबा साहेब सावित्री बाई फुले के विचारों से बहुत प्रभावित थे। बाबा साहेब अम्बेडकर ने 20 जुलाई 1924 को ''बहिष्कृत हितकारिणी सभा'' की स्थापना की और अछूतोद्धार आन्दोलन शुरू किया जिसमें उन्होंने महिलाओं को आगे आने के लिए प्रेरित किया। इस सभा के माध्यम से दलितों के उत्थान के कई कार्य किये गये जिसमें कि महिला शिक्षा प्रमुख था।

27 दिसम्बर 1927 को अस्पृश्य महिलाओं को अलग से भाषण देते हुए डॉ. अम्बेडकर साहेब ने कहा, ''तुम खुद को अस्पृश्य मत मानो। घर में स्वच्छता रखो। स्पृश्य हिन्दू महिलाएँ जिस तरह कपड़े पहनती हैं, उसी तरह तुम पहनो। धोती चाहे फटी ही क्यों न हो पर वह स्वच्छ होनी चाहिये। तुम इस बात पर सोचो कि तुम्हारे पेट में जन्म देना पुण्यप्रद क्यों है? तुम प्रतिज्ञा करो कि इस तरह की कलंकित स्थिति में हम आगे जिन्दगी नहीं बितायेंगे। तुम सबको पुराने और बुरे रीति–रिवाजों को छोड़ देना चाहिये। संप्रति कौन कैसे बर्ताव करे इस पर पाबन्दी नहीं है। पूरे गले भर गलासारियाँ और हाथ में कुहनी तक चाँदी के कड़े तुम्हारी पहचान है। अगर जेवर पहनना है तो सोने का पहनो। घर में किसी भी प्रकार की अमंगल बात न होने दो। मृत जानवरों का माँस भक्षण बन्द करो। दारूबाज पति, भाइयों और बच्चों को भोजन मत दो। लड़कियों को शिक्षा दिलाओ। ज्ञान और विद्या दोनों बातें महिलाओं के लिए भी आवश्यक हैं, ऐसी महत्त्वाकांक्षा मन में रखकर जिन्दगी बिताओ।'' बाबा साहेब का यह भाषण सिद्ध करता है कि सन् 1927 में ही जब सामान्यतः अन्य पढ़े–लिखे देशभक्त आजादी की लड़ाई में अपनी ऊर्जा, शक्ति व समय लगा रहे थे, बाबा साहेब अम्बेडकर अस्पृश्य वर्ग के लोगों में विशेष रूप से अस्पृश्य महिलाओं में सामाजिक परिवर्तन के लिए चेतना जगा रहे थे।

भारतीय संविधान में महिलाओं की सिथति– बाबा साहेब ने संविधान मसौदा समिति के अध्यक्ष के रूप में महिलाओं को संविधान में समान रूप से अनेक प्रकार के अधिकार प्रदान किये हैं जिसमें कि राजनैतिक, सामाजिक, शैक्षणिक, आर्थिक समानता का अधिकार पुरुष के समान ही शामिल है।

1. अनुच्छेद–14 के अन्तर्गत देश के सभी नागरिकों को कानून के समक्ष समानता, किसी भेदभाव के बिना दिया गया है।
2. अनुच्छेद–15 के अन्तर्गत राज्य के द्वारा धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, जन्मस्थान के आधार पर नागरिकों के प्रति जीवन के किसी भी क्षेत्र में कोई भेदभाव नहीं किया जायेगा।

3. अनुच्छेद–15(3) के अन्तर्गत राज्य को महिलाओं व बच्चों की सुरक्षा के लिए विशेष नियम बनाने का अधिकार प्रदान करता है।
4. अनुच्छेद–16 सभी नागरिकों से रोजगार के अवसरों में जाति, लिंग, रंग, रूप जन्म स्थान से रोजगार व किसी कार्यालय में नियुक्ति के लिए समानता का अवसर प्रदान करता है।
5. अनुच्छेद–38(1) राज्य किसी सामाजिक व्यवस्था की जिसमें सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय राष्ट्रीय जीवन की सभी संस्थाओं अनुप्राणित करे, भरसक प्रभावी रूप से स्थापना और संरक्षण करके लोक कल्याण की अभिवृद्धि का प्रयास करेगा।
6. अनुच्छेद–39 के अन्तर्गत राज्य सभी नागरिकों (महिलाओं और पुरुषों) के जीवन–यापन के पर्याप्त साधनों के लिए समानता प्रदान करता है।
7. अनुच्छेद–39(घ) महिलाओं और पुरूषों दोनों को समान कार्य के लिए समान वेतन का अधिकार प्राप्त है।
8. अनुच्छेद–41 राज्य को अपनी आर्थिक सीमाओं के अन्दर सभी नागरिकों को काम करने का अधिकार व निश्चित मामलों में सरकारी सलाह के लिए जिम्मेदारी है।
9. अनुच्छेद–42 राज्य काम की न्यायसंगत और मानवोचित दशाओं को सुनिश्चित करने के लिए और प्रसूति सहायता उपलब्ध कराने हेतु प्रावधान करेगा। इन सभी प्रयत्नों के द्वारा ही वर्तमान में महिलाएँ समाज में पुरुषों के समान अधिकार पाकर देश के विकास में अपना योगदान दे रही है।

स्वाधीन भारत में महिला को भी पुरूषों की तरह समान अधिकार चाहिये। हिन्दू कोड बिल उस दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है। बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर ने हिन्दू कोड बिल को संसद में 5 सितम्बर 1951 में प्रस्तुत किये हिन्दू कोड बिल को बाबा साहेब ने विधिमंत्री की हैसियत से और तत्कालीन भारत के प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू के परामर्श से बड़े ही परिश्रम से तैयार किया था। उसमें 9 भाग, 139 धाराएँ और 7 अनुसूचियाँ थी। इस बिल का प्रमुख उद्देश्य ''हिन्दू परम्परा पर आधारित सामाजिक विषमता, भेदभाव और क्रूरतापूर्ण मान्यताओं, रीतियों और नियमों को नष्ट करना था।'' हिन्दू कोड बिल, जाति और सम्प्रदाय का बिना भेदभाव किये हुए वीर शिवाओं, ब्रह्म समाजियों, प्रार्थना समाजियों, आर्य समाजियों, लिंगायतों, बौद्धों, जैनों तथा सिक्खों सभी पर समान रूप से लागू होता है। इस बिल में विवाह, हिन्दू दत्तक ग्रहण, सम्पत्ति में बेटे के बराबर बेटी को भी हिस्सेदारी और हिन्दू उत्तराधिकार प्रदान किया गया।

विवाह सम्बन्धी प्रावधान– वे दो तरह के विवाह का प्रावधान किये जिसमें प्रथम शास्त्रीय विवाह तथा द्वितीय सिविल विवाह है। विवाह के समय वर की पत्नी और वधू का पति जीवित नहीं रहना चाहिए। वर और वधू का ऐसा सम्बन्ध नहीं होना चाहिये। जो विवाह की निषेधात्मक कोटियों में आता

हो। वर और वधू को परस्पर सपिण्ड नहीं होना चाहिये। दोनों में से कोई भी पागल नहीं होना चाहिए।

हिन्दू दत्तक ग्रहण एवं भरण पोषण अधिनियम 1956

- हिन्दू पुरूष द्वारा गोद लेने से पूर्व पत्नी की स्वीकृति सामान्यतः अनिवार्य होगी।
- माता की सहमति के बिना पिता सामान्यतः दत्तक नही दे सकता है।
- कोई भी हिन्दू स्त्री पुत्र या पुत्री को दत्तक लेने का सामर्थ्य रखती है यदि वह स्वस्थचित्त हो, अप्राप्तवय नही हो, विवाहित नही हो, विवाहित हो तो विवाह विघटित कर दिया गया हो या पति की मृत्यु हो गयी हो।
- हिन्दू पत्नी को पति से भरण–पोषण प्राप्त करने का अधिकार होगा।

सम्पत्ति– हिन्दू कोड बिल में जन्मसिद्ध अधिकार को समाप्त कर दिया गया था तथा उत्तराधिकारी के अनुसार सम्पत्ति की प्राप्ति का उपबंध किया गया। पुत्र को सम्पत्ति का आधा हिस्सा देने का प्रावधान था। महिला के सम्पत्ति सम्बन्धी सीमित अधिकारों को पूर्णाधिकार बना दिया गया। इस बिल के द्वारा विवाह और गोद लेने में जात–पाति के अवरोध को भी समाप्त कर दिया गया था।

हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम 1956

- हिन्दू स्त्री की सम्पत्ति उसकी आत्यंतिक सम्पत्ति होगी।
- संयुक्त हिन्दू परिवार में सहदायिक की पुत्री जन्म से सहदायिक होगी तथा उसे सहदायिकी सम्पत्ति में वही अधिकार प्राप्त होंगे जो उसे पुत्र होने पर मिलते।
- बिना वसीयत किये मरने वाली हिन्दू महिला की सम्पत्ति प्रथमतः उसके पुत्र एवं पुत्रियों (जिसके अन्तर्गत किसी पूर्व मृत पुत्र या पुत्री के बच्चे भी शामिल हैं) और पति को जायेगी।

इस प्रकार कुल मिलाकर डॉ. अम्बेडकर की महिला सशक्तिकरण में एक निर्णायक भूमिका रही है वे महिलाओं के शुभचिंतक थे। उन्होंने महिलाओं की स्थिति में सुधार के लिए लैंगिक समानता पर बल दिया। दलित महिलाओं को उनके अधिकारों के प्रति जागरुक किया व संगठित होकर संघर्ष करने की प्रेरणा दी।

सन्दर्भ :

- राम गोपाल सिंह : डॉ. अम्बेडकर सामाजिक न्याय एवं परिवर्तन, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, जयपुर एवं दरियागंज, नई दिल्ली, 2006.
- सम्पादक– डॉ. शैलेश कुमार राम : डॉ. भीमराव अम्बेडकर व्यक्तित्व एवं दर्शन, संग्रह टाइम्स, बी. 502, अम्बेडकर सेक्टर 5, नई दिल्ली, 2018.
- सम्पादक– डॉ. कमलेश दूबे : डॉ. अम्बेडकर चिंतन के विविध आयाम, कला प्रकाशन, बी. 33/33ए–1, न्यू साकेत कालोनी, बी.एच.यू. वाराणसी–2012.

- प्रीति पाण्डे : डॉ. अम्बेडकर और पं0 दीनदयाल, एबीडी पब्लिशर्स, बी–46, नटराज नगर, इमलीवाला फाटक, जयपुर– 302015 (राजस्थान) भारत, 2006.
- सम्पादक– प्रो. कौशल किशोर मिश्र, डॉ. शिवाली अग्रवाल : डॉ. भीमराव अम्बेडकर और पंडित दीनदयाल उपाध्याय : तुलनात्मक अध्ययन, अनु बुक्स, दिल्ली, मेरठ, ग्लासगो, यू.के., 2018.
- सम्पादक– डॉ. अमरनाथ पासवान : डॉ. अमरनाथ पासवान, हाशिये का समाज एवं डॉ. अम्बेडकर, टाइम्स पब्लिकेशन्स, बी.–502, अम्बेडकर नगर, सेक्टर–5, नई दिल्ली, 2015.

***

भारत में जनसंख्या एवं विकास

डॉ. मनोज कुमार *

किसी देश के राष्ट्र–निर्माण एवं आर्थिक विकास में वहाँ की जनसंख्या महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। भारत में जनसंख्या विस्फोट को अवधारणा वर्तमान युग की देन है। जिसका सीधा सा अर्थ जनसंख्या की अत्याधिक (तीव्र) वृद्धि, जनाधिक्य, जनसंख्या को आर्थिक व्यवस्था पर दबाव आदि से है। जनसंख्या का जनांकिकीय संक्रमण सिद्धांत के माध्यम से इस स्थिति को समझा जा सकता है। सी.पी. ब्लेकर के अनुसार जब जन्मदर उच्च स्तर की, किन्तु ह्रासोन्मुखी होती है और मृत्युदर में भारी गिरावट आती है, तो जनसंख्या वृद्धि विस्फोट की स्थिति में पहुँच जाती है।

विश्व में जनसंख्या की दृष्टि से भारत का स्थान दूसरा है। भारत के पास 1357 लाख वर्ग किलोमीटर भू–भाग है जो विश्व के कुल भू–भाग का मात्र 2.4 प्रतिशत है फिर भी विश्व की लगभग 17 प्रतिशत आबादी का भार बहन करता है। देश की जनसंख के आकार एवं वृद्धि दर अपने जनांकिकीय इतिहास के लिए अभूतपूर्व एवं चिन्ताजनक है। जनसंख्या की उल्लेखनीय वृद्धि 20वीं शताब्दी के तीसरे दशक (1921–31) से प्रारम्भ हुई और इसकी गति स्वतंत्रता के बाद अधिक तीव्र हो गयी। 20वीं शताब्दी (1901) में भारत की जनसंख्या 23.84 करोड़ थी, जो सन् 1991 में भारत की जनसंख्या 84.3 करोड़, 2001 में 102.7 करोड़ और 2011 में 121 करोड़ हो गयी। इस प्रकार स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद देश में जनसंख्या विस्फोट की स्थिति उत्पन्न हो गयी। यह सच है कि स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद विभिनन सरकारी प्रयासों के उपरानत जन्मदर और मृत्युदर दोनों में कमी आयी है, लेकिन जन्मदर की तुलना में मृत्युदर में ज्यादा तीव्र गति से कमी आयी है, जिसके फलस्वरूप जनसंख्या में तीव्र गति से बढोत्तरी हुई है।

जनसंख्या में तीव्र वृद्धि के कारण : भारत जैसे विकासशील देश की जनसंख्या में तीव्र गति से वृद्धि हुई है तथा वर्तमान में जनसंख की औसत वार्षिक वृद्धि–दर 1.63 प्रतिशत है। राज्यानुसार जनसंख्या संबंधी आँकड़ों का विश्लेषण करने से स्पष्ट होता है कि दक्षिण भारत के राज्यों की तुलना में उत्तर भारत के हिन्दी–भाषी राज्यों में जनसंख्या वृद्धि गति अधिक है। जनसंख्या में तीव्र वृद्धि के निम्नलिखित कारण उतरदायी है–

1. **मृत्युदर की तुलना में जन्मदर का ऊँचा होना :** भारत की जनसंख्या में तीव्र वृद्धि का प्रमुख कारण मृत्युदर की तुलना में जन्मदर का ऊँचा होना है। देश में स्वतंत्रता प्राप्ति (1947) के बाद चिकित्सा सुविधा में विस्तार के फलस्वरूप जन्मदर की तुलना में मृत्युदर में तीव्र गति से कमी आयी है; जबकि जन्मदर में उस गति से कमी नहीं आयी है,

* उच्चत्तर माध्यमिक शिक्षक (समाजशास्त्र), अनुग्रह नारायण सर्वोदय उच्चतर माध्यमिक विद्यालय उसफा, पटना

क्योकि कम उम्र में विवाह, विवाह की अनिवार्यता, धार्मिक एवं सामाजिक अन्धविश्वास, संयुक्त परिवार प्रथा, अशिक्षा तथा परिवार नियोजन के प्रति समझ की कमी आदि ऐसे कई कारण हैं, जो जन्मदर को ऊँचा बनाये रखने में अहम भूमिका निभाते हैं। देश में 20वीं शताब्दी के प्रथम दशक (1901–1911) में जन्मदर 48.1 प्रति हजार और मृत्युदर 41.9 प्रति हजार थी, जो (2001–2011) में जन्मदर 17.7 प्रतिशत और मृत्युदर 7.1 प्रतिशत हो गई।

2. **विवाह की अनिवार्यता एवं संतानोत्पादन की इच्छा :** भारत में विवाह एक धार्मिक तथा सामाजिक दृष्टि से अनिवार्य कृत्य है। अतः हर व्यक्ति शादी करके सन्तान उत्पन्न करना अनिवार्य समझता है। हिन्दू धर्म के अनुसार यदि किसी दम्पति को कोई पुत्र नहीं है, तो पिण्ड, श्राद्ध आदि क्रियाओं के न हो सकने के कारण परलोक में उनके आत्माओं को शान्ति प्राप्त नहीं होती। पुत्र विहीन व्यक्ति को लोग भाग्यहीन और सामाजिक दृष्टि से निम्न स्तर का समझते है। यहाँ मुस्लिम समाज में भी विवाह सामाजिक एवं धार्मिक दृष्टि से उचित समझा जाता है।
3. **विवाह की निम्न आयु :** भारत उन देशों में है, जहाँ विवाह की आयु अभी भी बहुत निम्न है। इसका मुख्य कारण समाज में अभी भी बाल–विवाह की प्रथा प्रचलित है। कम उम्र में विवाह होने से स्त्रियों का प्रजनन काल लम्बा हो जाता है और जनसंख्या में वृद्धि होती है। विवाह की आयु कम होने के लिए यहाँ के समाज में व्याप्त सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक परम्पराएँ जिम्मेदार है।
4. **पुत्र सन्तान की अधिक प्राथमिकता :** भारत में लड़कियों की तुलना में लड़कों को अधिक प्राथमिकता दी जाती है। हिन्दू धर्म के अनुसार पितृऋण से मुक्ति हेतु पुत्र का उत्पन्न होता आवश्यक समझा जाता है। ऐसी धारणा व्याप्त है कि पुत्र के जन्म से माता–पिता को मोक्ष प्राप्त होता है। केवल पुत्र से ही परिवार का वंश चलता है। इस प्रकार पुत्र प्राप्ति की इच्छा जनसंख्या वृद्धि में तेजी लाती है।
5. **शिक्षा एंव साक्षरता :** भारत में तीव्र जनसंख्या वृद्धि का एक महत्वपूर्ण कारण साक्षरता खासकर महिला साक्षरता का निम्न होना है। बढ़ती हुई जनसंख्या के कारण शिक्षा के क्षेत्र उपलब्धि बहुत कम है। शिक्षा के आभाव में न तो लोग परिवार नियोजन के साधन अपनाते है और न ही अधिक जनसंख्या के परिणामों के बारे में ही ठीक से समझते है। अशिक्षित लोग अन्धविश्वासी भी बहुत होते है, जिसके कारण जनसंख्या में तीव्र गति से वृद्धि हुई है। जनगणना 2011 के अनुसार देश में 74 प्रतिशत साक्षरता दर है, उसमें पुरूष एवं महिला की साक्षरता दर 82.1 एवं 65.5 प्रतिशत है।
6. **स्त्रियों की निम्न सामाजिक स्थिति :** भारत में स्त्रियों का सम्मान कम होने से परिवार का आकार बड़ा होता है। यहाँ खासकर ग्रामीण क्षेत्रों में स्त्रियों को बच्चे पैदा करने की मशीन समझ लिया जाता है। अतः हमें

इस विचारधारा से भी सहमत होना चाहिए कि यहाँ महिलाओं की प्रतिष्ठा में कमी एवं पुरूषों पर आश्रित भी जनसंख्या वृद्धि होने का एक महत्वपूर्ण कारण है।

7. **गर्भनिरोधक विधि के इस्तेमाल में कमी :** भारत में तीव्र जनसंख्या वृद्धि का कारण गर्भनिरोधक विधि का प्रयोग कम होना है, क्योंकि अशिक्षा, जागरूकता की कमी एंव गर्भनिरोधक साधनों का महँगा होना प्रमुख कारण है। इन उपायों के अभाव में जनसंख्या वृद्धि अधिक है। राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण–III (2005–06) के अनुसार देश में 56.3 प्रतिशत महिलाएँ गर्भनिरोधक की कोई भी विधि इस्तेमाल नहीं करती है, सिर्फ 48.5 प्रतिशत महिलाएँ ही आधुनिक गर्भनिरोधक विधि का इस्तेमाल करती है।

जनसंख्या में तीव्र वृद्धि के परिणाम : भारत में बढ़ती हुई जनसंख्या आर्थिक विकास को कई दृष्टि से प्रभावित करता है। जनसंख्या नियंत्रण का विकास एवं बेहतर जीवन स्तर से गहरा संबंध है। अनियंत्रित रूप से बढ़ रही आबादी हमारी विकासशील अर्थव्यवस्था के लिए सबसे बड़ी चुनौती बनी हुई है। शिक्षा, लिंग–असमानता, खाद्य सुरक्षा तथा मानव विकास सूचकांकों के अति निम्नस्तर के इस समस्या को और अधिक बढ़ावा दिया है। यदि परिवार कल्याण के साथ–साथ मानव संसाधन विकास एवं प्रबंन्धन की ओर अपना ध्यान लगाये तो स्थिति पर काफी हद तक काबू पाया जा सकता है। अति जनसंख्या वृद्धि हमारे सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक जीवन पर विपरीत प्रभाव डालती है और देश की प्रगति में बाधक बनती है। देश में तीव्र गति से जनसंख्या में वृद्धि होने के फलस्वरूप निम्नलिखित परिणाम उभर कर सामने आये हैं, जो निम्न है– (i) भूमि पर जनसंख्या का अत्याधिक दबाव, (ii) निर्धनता, (iii) प्रति व्यक्ति निम्न आय, (iv) बेरोजगारी, (v) अकार्यकारी जनसंख्या, (vi) खाद्यान्न की समस्या, (vii) आवास की समस्या, (viii) पूँजी निर्माण की समस्या, (ix)पर्यावरण एवं पारिस्थितिकी असन्तुलन, (x) सन्तुलित एवं पौष्टिक आहार का अभाव, (xi) निम्न स्वास्थ्य स्तर, (xii) जनसंख्या धनत्व में वृद्धि, (xiii) बालश्रम की समस्या, (xiv) अपराध एवं भ्रष्टाचार में वृद्धि, (xv) विधि व्यवस्था एवं स्वच्छ प्रशासन की समस्या।

जनसंख्या नियंत्रण नीति एवं कार्यक्रम : भारत में जनसंख्या की समस्या ने इतना विकराल रूप धारणा कर लिया है कि जनसंख्या नीति जनसंख्या नियंत्रण नीति का पर्यावाची बना गया है। जनसंख्या नीति से आशय उस नीति से, जिसके माध्यम से देश की जनसंख्या को अनुकूलतम बनाये रखने का प्रयत्न करती है। जनसंख्या नीति जनसंख्या के आकार व गठन से जन्मदर, मृत्युदर, जनसंख्या वृद्धि दर को संतुलित करने तथा उसमें गुणात्मक सुधार करने संबंधि है। भारत विश्व का पहला देश है, जिसने परिवार नियोजन कार्यक्रम को 1952 में राष्ट्रीय कार्यक्रम के रूप में अपनाया गया और जनसंख्या वृद्धि की समस्या के निदान हेतु सीमित परिवार के दर्शन को महत्व प्रदान किया गया।

भारत में जनसंख्या नीति और इससे जुड़े कार्यक्रमों को अपेक्षा के अनुरूप सफलता प्राप्त नहीं हुई। इसकी असफलता इस बात में निहित है कि इन उपलब्धियों, लक्ष्यों से सदैव पीछे रही। इसके साथ यह भी तर्क दिया जाता है कि वास्तव में निरोचित जन्मों का श्रेय केवल परिवार नियोजन कार्यक्रम को नही दिया जा सकता है। इसके लिए अनेक सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक तथा सम्मिलित रूप जिम्मेदार है। परिवार नियोजन कार्यक्रम अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने में असफल रहा। वर्ष 2005–06 के दौरान 56.3 प्रतिशत पुनरूत्पादन योग्य दम्पतियों को परिवार नियोजन के दायरे में लाया गया। इसमें ग्रामीण क्षेत्रों में 53.0 प्रतिशत दम्पतियों ने तथा नगरीय क्षेत्रों में 64.0 प्रतिशत दम्पतियों ने परिवार नियोजन की किसी–न–किसी विधि का प्रयोग किया।

राष्ट्रीय जनसंख्या नीति 2000 : राष्ट्रीय विकास परिषद द्वाराप कृषि विशेसज्ञ एम.एस. स्वामीनाथन की अध्यक्षता में स्वामीनाथन समिति का गठन किया गया जिसका उद्देश्य जनसंख्या नियंत्रण के उपाय खोजना था। राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबन्धन सरकार द्वारा 15 फरवरी 2000 को राष्ट्रीय जनसंख्या नीति की घोषण की गयी। नीवनतम संशोधित जनसंख्या नीति के अनुसार सामाजिक और आर्थिक विकास के लिए जीवन में गुणात्मक सुधार किया जाना अत्यन्त आवश्यक है, जिससे मानव शक्ति राष्ट्र के लिए उत्पादक पूँजी परिवर्तित हो सके। इसमें पहली बार जनसंख्या वृद्धि पर अंकुश लगाने की रणनीति की परिधि में गर्भनिरोधक तरीकों के अतिरिक्त शिशु स्वास्थ्य, गर्भवती स्त्रियों के स्वास्थ्य, उनके व्यवसाय व उनके अधिकार जैसे मसलों की ओर ध्यान केन्द्रित किया गया है। इस बार भी राष्ट्रीय जनसंख्या नीति ने अपने स्थिर स्पष्ट तौर पर तीव्र प्रकार के लक्ष्य निर्धारित कियें हैं, जिन्हें तात्कालिक, मध्यकालीन व दीर्घकालीन लक्ष्यों की संज्ञा दी गयी है। देश के हर नागरिक को हर प्रकार की गर्भ–निरोधक सुविधाओं को घर–घर तक पहुँचाना आदि इस नीति का सर्वप्रथम लक्ष्य है, जिसे तुरन्त प्राप्त करने के लिए विशेष कार्यक्रम तैयार किये गये हैं। इस नीति का मध्यकालीन लक्ष्य है देश की कुल प्रजनन–दर को शीघ्रातिशीघ्र 2001 के स्तर तक लाना। नीति का दीर्घकालीन लक्ष्य सन् 2045 तक देश की जनसंख्या को स्थायी बनाना है। आर्थिक, सामाजिक विकास और पर्यावरण संरक्षण को आवश्यकताओं के अनुरूप स्तर तक।

सन्दर्भ :

1. जे.पी. सिंह : समाजशास्त्रः अवधारणाएँ एवं सिद्धांत
2. जे.पी. सिंह : आधुनिक भारत का समाज
3. सेन्सेस ऑफ इंडिया–2011
4. भारत 2003, प्रकाशन विभाग सूचना एवं प्रसारण मंत्रालन, नई दिल्ली
5. जे.पी. सिंह एवं डी तिवारी : जनसंख्या शोध संस्थान, पटना

***

भारत के विदेश नीति सिद्धांत एवं उद्देश्य : एक विश्लेषण

डॉ. पद्माकर झा *

भारत में फाह्यान, ह्वेनसांग और मैगस्थनीज जैसे विदेशी यात्री आए थे, जिन्होंने भारत की महानता और समृद्धि की तस्वीर दुनिया के दूसरे राष्ट्रों के समक्ष रखकर भारत को अन्तर्राष्ट्रीय महत्व प्रदान किया। सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य ने यूनानी सेनापति सेल्यूकस की पुत्री से विवाह करके अन्तर्राष्ट्रीय वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित कर विदेशों से भारत के सामाजिक सम्बन्धों की नींव डाली। अशोक ने अपने पुत्र और पुत्री को बौद्ध धर्म के प्रसार के लिए श्रीलंका भेजकर धार्मिक सम्बन्धों की नींव डाली। गुप्त काल में भारत का अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार काफी विकसित था। जावा, मलाया, सुमात्रा से हमारे प्राचीन सांस्कृतिक और व्यापारिक सम्बन्ध थे। चोल राजाओं ने जल सेना के महत्व को समझा और समुद्र विजय की नीति का अनुसरण किया। उन्होंने न केवल सुमात्रा और जाबा जैसे सुदूरवर्ती टापुओं पर विजय प्राप्त की बल्कि श्रीलंका पर भी अपना सुदृढ़ शासन स्थापित किया और उसे अपने साम्राज्य का अंग बनाया।

अंग्रेजी शासन काल में भारत का विश्व राजनीति में कोई उल्लेखनीय स्थान नहीं रह गया था। पराधीन देश के रूप में उसकी कोई विदेश नीति अथवा अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में प्रभावक भूमिका नहीं थी। पराधीन भारत की विदेश नीति का निर्धारण लन्दन में 1858 में स्थापित इण्डिया ऑफिस से होता था। अंग्रेज ही विश्व की राजनीतिक घटनाओं में भारत का प्रतिनिधित्व करते थे। भारत की देशी रियासतें भी इस विषय में स्वतंत्र नहीं थी। भारतीय नेता यदि विश्व की राजनीतिक घटनाओं पर कोई प्रतिक्रिया व्यक्त भी करते थे तो वह केवल भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशनों में प्रस्तावों के रूप में व्यक्त होकर रह जाती थी। उदाहरणार्थ, 1892 में कांग्रेस द्वारा साम्राज्यवादी स्वार्थों की रक्षा के लिए बढ़ते हुए सैनिक व्यय की आलोचना की गई थी। अनेक अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं ने भारत के स्वाधीनता संघर्ष को गति प्रदान की। 1892 में अबीसीनिया द्वारा इटली को पराजित करने की घटना से भारतीयों को बड़ा उत्साह प्राप्त हुआ। 1904-05 में जापान के हाथों रूस की पराजय से भारतीयों को संघर्ष की प्रेरणा प्राप्त हुई। 1908 की युवा तुर्क क्रान्ति और 1911 में सन-यात सेन के नेतृत्व में चीनी क्रान्ति ने भारत में राष्ट्रवाद को और तेज किया। दक्षिणी अफ्रीका में गोरी सरकार के विरूद्ध गांधी के सत्याग्रह ने भारतीयों को प्रोत्साहित किया। 1917 की इम्पीरियल कांफ्रेन्स में भारत को प्रतिनिधित्व दिया गया, किन्तु यह प्रतिनिधित्व भारत सरकार को प्राप्त था न कि भारतीय जनता को। कांग्रेस तिलक को शान्ति सम्मेलन में भेजना चाहती थी पर ब्रिटिश सरकार यह पसन्द नहीं करती थी। तिलक को फ्रांस के प्रधानमंत्री क्लेमेन्शों के नाम भारत की ओर से एक पत्र भेजा जिसमें भारत को आत्मनिर्णय का अधिकार देने की मांग रखी। राष्ट्रपति विल्सन ने

* पी-एच.डी. राजनीति विज्ञान, जयप्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा

पेरिस शान्ति सम्मेलन में भारत के आत्मनिर्णय के प्रश्न को नहीं उठाया। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने इस प्रश्न को अमरीका की सीनेट में उठवाने का प्रयत्न किया। 29 अगस्त, 1919 को अमरीका की सीनेट के एक सदस्य डूडले फील्ड मेलोने ने सीनेट की वैदेशिक मामलों की समिति के समक्ष इस प्रश्न को उठाया। उसने कहा कि ''विल्सन के आत्मनिर्णय के अधिकार को भारत पर क्यों लागू नहीं किया गया, अत: इस सन्धि को सीनेट मान्यता न दे।''

सन् 1920 के बाद भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की अभिरूचि विदेश नीति और अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति की ओर बढ़ी। सन् 1920 में उसने अन्तर्राष्ट्रीय व्यवहार के कुछ सिद्धान्त निश्चित किया, जो इस प्रकार हैं :

1. भारत का अन्य राष्टों से सहयोग।
2. भारत सभी पराधीन एवं दलित राष्ट्रों को उनके स्वतंत्रता आन्दोलन में सहायता देगा।
3. भारत प्रजातीय भेदभाव (racial discrimination) की निन्दा करेगा।
4. भारत साम्राज्यवाद एवं उपनिवेशवाद का विरोध करेगा।
5. भारत साम्राज्यवादी युद्धों का विरोध करना तथा विश्व-शान्ति के लिए प्रयत्न करना जारी रखेगा।

कांग्रेस ने 1920 में प्रस्ताव पारित करके आयरलैण्ड के स्वतंत्रता संग्राम का समर्थन किया। 1921 में कांग्रेस ने एक प्रस्ताव पारित करके दुनिया को सूचित किया कि भारत सरकार अपनी विदेश नीति में भारतीय जनता के दृष्टिकोण का कोई प्रतिनिधित्व नहीं करती है। अंग्रेज सरकार ने भारत के पड़ोसी देशों पर जो संधियां थोपी है, कांग्रेस उनका विरोध करती है। भारत सरकार अपना साम्राज्य विस्तार भारतीय सेना और धन की सहायता से कर रही थी। अत: कांग्रेस ने विश्व को यह साफ बता दिया कि भारत सरकार की साम्राज्यवादी नीति, भारतीय भावनाओं के विपरीत है, उसमें भारतीय जनता का कोई सहयोग नहीं। भारत चाहता है कि वह स्वयं स्वतंत्र हो और विश्व के अन्य देशों को भी स्वतंत्र होता देखे। 1922 में डॉ॰ एम॰ए॰ अंसारी ने कांग्रेस के सभापति पद से भाषण देते हुए कहा कि एक एशियाई संघ की स्थापना होनी चाहिए। 1923 में मौलाना आजाद ने अपने अध्यक्षीय भाषण में कहा कि ''पराधीन और शोषित एशियाई देशों की समस्याओं के साथ भारतीय समस्याओं का एकीकरण होना चाहिए। भारत को तत्काल मिस्र, सीरिया, फिलिस्तीन मोरक्को, आदि के राष्ट्रीय आन्दोलनों के प्रति सहानुभूति व्यक्त करनी चाहिए।'' 1926 में एस॰ श्रीनिवास आयंगर ने कहा था कि ''अब समय आ गया है कि भारत सभी एशियाई देशों के कल्याण के लिए एक एशियाई संगठन कायम करने की बात सोचे।'' महाकवि रवीन्द्र नाथ टैगोर ने 1921 में अपने विश्वविद्यालय 'विश्व भारती' में चीन के बारे में अध्ययन करने के लिए भारत-चीन अध्ययन विभाग खोलकर एक प्रशंसनीय कार्य किया। 1923 में महाकवि ने चीन की यात्रा भी की थी। वे जापान, ईरान एवं मिस्र भी गए। इन यात्राओं का बहुत प्रभाव पड़ा आर भारत ने इन देशों के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों की नींव रखी।

नेहरू ने अपने भाषण में यह स्वीकार किया कि ब्रिटिश सरकार ने भारत को बदनाम कर रखा है क्योंकि वह भारतीय साधनों का प्रयोग साम्राज्य बढ़ाने में कर रही है तथा विभिन्न स्थानों में स्वतंत्रता आन्दोलन को कुचलने के लिए भारतीय धन एवं सेना का खुलकर प्रयोग कर रही है। चीन के प्रतिनिधियों का ध्यान आकर्षित करते हुए पं॰ नेहरू ने कहा कि ''हमारे लिए यह बड़े अपमान और शर्म की बात है कि भारतीय सेना का प्रयोग चीन के राष्ट्रवादियों को कुचलने के लिए किया जा रहा है।''[1] ब्रुसेल्स सम्मेलन में पं॰ नेहरू के भाषण से सभी प्रतिनिधि प्रभावित हुए और भारत के प्रति उनकी सहानुभूति उमड़ पड़ी। अत: सम्मेलन में सर्वसम्मति से एक प्रस्ताव पास किया कि ''यह कांग्रेस (सम्मेलन) भारत की पूर्ण स्वतंत्रता के लिए भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन को अपना पूर्ण समर्थन प्रदान करती है और यह विचार व्यक्त करती है कि संसार के पददलित राष्ट्रों की स्वतंत्रता के लिए विदेशी आधिपत्य और सब प्रकार के शोषणों से भारत की मुक्ति एक आवश्यक कदम है।''[2]

1930 में तो कांग्रेस ने विदेश नीति से सम्बन्धित एक पृथक् विभाग हो बना लिया, जिसके संचालक जवाहरलाल नेहरू थे। कांग्रेस ने अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं पर अपनी स्वतंत्र प्रतिक्रियाएं व्यक्त करना प्रारम्भ कर दिया। 1931 में जब जापान ने चीन पर आक्रमण किया तो उसने जापान की निन्दा की। 1930 से ही युद्ध-विरोधी प्रस्ताव पारित किए जाने लगे और यह स्पष्ट कर दिया गया कि किसी भी भावी साम्राज्यवादी युद्ध में भारत सहायता नहीं देगा। 1935 में कांग्रेस ने फासीवाद और नाजीवाद के प्रति विरोध प्रकट किया। 1935 में इटली द्वारा अबीसीनिया पर आक्रमण के विरोध में कांग्रेस के 1936 के लखनऊ अधिवेश में एक प्रस्ताव पारित करके अबीसीनिया के प्रति सहानुभूति प्रकट की गई। जब हिटलर ने 1938 में चैकोस्लोवाकिया पर आक्रमण किया तो कांग्रेस ने आक्रमण की निन्दा करते हुए म्यूनिख समझौते की आलोचना की। कांग्रेस के हरिपुर अधिवेशन में घोषित किया गया कि 'भारतवासी अपने पड़ोसी एवं अन्य देशों के साथ शान्ति और मित्रता से रहना चाहते हैं। अपनी स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करते हुए वे अन्य देशों की स्वतंत्रता का भी सम्मान करते हैं।[3] साथ में वह विश्व के अन्य स्वतंत्रता प्रेमी और शान्तिप्रिय राष्ट्रों के साथ मिलकर अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग और सद्भावनाओं के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहेगा।'

भारत की विदेश नीति का निरन्तर विकास हुआ है। यह एक गतिहीन विदेश नीति न होकर गतिशील विदेश नीति है। जैसे-जैसे भारत के राष्ट्रीय हितों में अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में परिवर्तन आया, विदेश नीति का स्वरूप भी बदलता गया। नेहरू के समय भारत तटस्थता और गुटनिरपेक्षता को अत्यधिक महत्व देता था तो श्रीमती इन्दिरा गांधी के समय भारत ने सोवियत संघ से सन्धि करना उचित समझा। जनता शासन में 'असली गुटनिरपेक्षता' पर जोर दिया जाने लगा तो राजीव गांधी ने श्रीलंका में भारतीय शान्ति सना को भेजकर विदेश नीति को नया आयाम देने की चेष्टा की। 24 वर्ष तक अस्पष्ट रूख के बाद हुए परमाणु शक्ति के प्रदर्शन से

भाजपा गठबन्धन सरकार ने मई 1998 में स्पष्ट कर दिया कि वह देश की प्रतिरक्षा और विदेश नीति के मामले में नया रास्ता अपनाने को तैयार है।

भारतीय विदेश नीति के सिद्धान्त : सितम्बर 1946 में अन्तरिम सरकार की स्थापना के बाद से ही भारतीय विदेश नीति विकसित होने लगी। पं॰ नेहरू ने स्पष्ट किया कि स्वतंत्र भारत अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में एक स्वतंत्र नीति का अवलम्बन करेगा और किसी गुट में सम्मिलित नहीं होगा। भारत संसार के किसी भी भाग में उपनिवेशवाद और प्रजातीय विभेद का विरोध करेगा और विश्व–शान्ति के समर्थक देशों के साथ सहयोग करेगा।

गुटनिरपेक्षता : विश्व राजनीति में भारतीय दृष्टिकोण मुख्यतया असंलग्नता अथवा गुटनिरपेक्षता का रहा है। इसे भारतीय विदेश नीति का सार तत्व कहा जाता है। गुटनिरपेक्षता गुटों की पूर्व उपस्थिति का संकेत कर देती है। जब भारत स्वाधीन हुआ तो उसने पाया कि विश्व की राजनीति दो विरोधी गुटों में बंट चुकी है। एक गुट का नेता संयुक्त राज्य अमेरिका और दूसरे का सोवियत संघ था। विश्व के अधिकांश राष्ट्र दो विरोधी खेमों में विभाजित हो गये और भीषण शीतयुद्ध प्रारम्भ हो गया। शीत–युद्ध का क्षेत्र विस्तृत होने लगा और इसके साथ–साथ एक तीसरे महासमर की तैयारी होने लगी। स्वतंत्र भारत के लिए यह एक विकट समस्या थी कि इस स्थिति में वह क्या करे? ऐसी स्थिति में भारत या तो दोनों में से किसी एक का साथ पकड़ सकता था अथवा दोनों से पृथक रह सकता था। भारत के नीति निर्धारक कहने लगे कि वे संसार के किसी भी गुट में सम्मिलित नहीं होंगे। गुटबन्दी में शामिल होना न तो भारत के हित में था न संसार के। अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के सभी प्रश्नों पर वे गुटनिरपेक्षता की नीति का अवलम्बन करेंगे। भारत ने दोनों गुटों से पृथक रहने की जो नीति अपनायी उसे 'गुटनिरपेक्षता' की नीति के नाम से जाना जाता है।[4]

भारत की गुटनिरपेक्षता एक विधेयात्मक, सक्रिय और रचनात्मक नीति है। इसका ध्येय किसी दूसरे गुट का निर्माण करना नहीं वरन् दो विरोधी गुटों के बीच सन्तुलन का निर्माण करना है। असंलग्नता की यह नीति सैनिक गुटों से अपने आपको दूर रखती है, किन्तु पड़ोसी व अन्य राष्ट्रों के बीच अन्य सब प्रकार के सहयोग को प्रोत्साहन देती है। यह गुटनिरपेक्षता नकारात्मक तटस्थता, अप्रगतिशीलता अथवा उपदेशात्मक नीति नहीं है। इसका अर्थ सकारात्मक है अर्थात् जो सही और न्यायसंगत है उसकी सहायता और समर्थन करना तथा जो अनीतिपूर्ण एवं अन्यायसंगत है उसकी आलोचना एवं निन्दा करना। अमरीकी सीनेट में बोलते हुए नेहरू ने स्पष्ट कहा था, 'यदि स्वतंत्रता का हनन होगा, न्याय की हत्या होगी अथवा कहीं आक्रमण होगा तो वहां हम न तो आज तटस्थ रह सकते हैं और न भविष्य में तटस्थ रहेंगे।'[5] कृष्णमेनन ने भी संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा में भारतीय विदेश नीति का विश्लेषण करते हुए कहा था कि 'हम तटस्थ देश नहीं हैं', हम युद्ध और शान्ति के सन्दर्भ में तटस्थ नहीं है। हम साम्राज्यवादियों अथवा अन्य देशों द्वारा आधिपत्य स्थापित करने के सन्दर्भ में भी तटस्थ नहीं है। हम नैतिक मूल्यों के सम्बन्ध में तटस्थ नहीं हैं। हम उन बड़ी आर्थिक एवं सामाजिक समस्याओं के सन्दर्भ में तटस्थ नहीं है जिनका कभी भी उदय हो सकता है। हमारी स्थिति यह है कि हम शीत–युद्ध के सन्दर्भ में गुटनिरपेक्ष तथा अप्रतिबद्ध है।'[6] इसी सन्दर्भ में अप्पादोराई ने कहा कि 'यह स्वतंत्र विदेश नीति एवं तटस्थता एक ही बात नहीं

है। यदि कभी कहीं युद्ध होता है तो इस नीति की मांग होगी कि अपने स्वतंत्रता एवं शान्ति के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए भारत स्वतंत्र राष्ट्रों का साथ दे। यह एक नकारात्मक नीति नहीं है, यह सकारात्मक है, जिसका उद्देश्य समविचारवादी राष्ट्रों के साथ मिलकर शान्ति, स्वतंत्रता और मैत्री के उद्देश्य प्राप्त करना और अपना तथा अन्य अ(–विकसित राष्ट्रों का आर्थिक विकास करना है।'[7] गुटनिरपेक्षता का अर्थ है विश्व के किसी भी गुट के साथ जुड़ा हुआ न होना, अर्थात् नाटो, सीटो या वारसा संगठनों जैसे किसी सैनिक गठबन्धन में शामिल न होना। यह ऐसी नीति है जो विश्व में स्वतंत्र नीति का अनुसरण करती है और हर समस्या पर अपने विचारों को प्रकट करने और अपने दृष्टिकोण को अपनाने के लिए स्वतंत्र समझती है। यह किन्हीं पूर्वाग्रहों के आधारों पर कार्य नहीं करती। यह समस्याओं पर वस्तुनिष्ठ दृष्टिकोण अपनाती है, व्यक्तिनिष्ठ नहीं।

गुटनिरपेक्ष आन्दोलन का 13वां शिखर सम्मेलन कुआलालम्पुर में 20–25 फरवरी, 2003 तक आयोजित किया गया। प्रधानमंत्री वाजपेयी ने शिखर सम्मेलन के लिए भारतीय शिष्टमण्डल का नेतृत्व किया। सम्मेलन की विषय वस्तु थी, ''नाम को पुनर्जीवित करने की जारी प्रक्रिया।'[8]

वस्तुतः विदेश नीति का क्षेत्र इतना व्यापक है कि उसे गुट निरपेक्षता की परिधि में बांधा नहीं जा सकता। गुट निरपेक्षता का दायरा बहुत सीमित है। सारी नीति गुटों के आसपास घूमती है। महाशक्ति–गुटों की राजनीति पर प्रतिक्रिया करते रहना ही इस नीति का मुख्य लक्ष्य बन जाता है या तो गुटों के आपसी झगड़ों में पंच बनने की कोशिश करना या दोनों से अलग रहते हुए एक के केवल इतने समीप जाने का प्रयत्न करना कि दूसरा बुरा न माने और यदि दूसरे के बुरा मानने का डर हो तो पहले से नापतौल कर हटना या बारी–बारी से पास जाना या दूर हटना– यही गुट निरपेक्षता की शैली रही है।[9]

शान्ति की नीति : भारत की विदेश नीति सदैव ही विश्व–शान्ति की समर्थक रही है। भारत ने प्रारम्भ से ही यह महसूस किया कि युद्ध और संघर्ष नवोदित भारत के आर्थिक और राजनीतिक विकास को अवरूद्ध करने वाला है। अगस्त 1954 में पणिक्कर ने कहा था, 'भारत को इस बात की बड़ी चिन्ता है कि उसकी प्रगति को तथा सामान्य रूप से मानव–जाति की उन्नति को संकट में डालने वाला कोई युद्ध न हो।'[10] 1956 में स्वेज नहर के संकट के कारण भारत की आर्थिक योजनाएं अत्यधिक प्रभावित हुई। 1967 के अरब–इजरायल युद्ध के कारण भारतीय अर्थव्यवस्था बुरी तरह लड़खड़ाने लगी। शान्तिवादी नीति की घोषणा करते हुए पं॰ नेहरू ने कहा था कि 'हमारी पहली नीति तो यह होनी चाहिए कि हम ऐसी भीषण आपत्ति को घटित होने से रोकें, दूसरी नीति इससे बचने की होनी चाहिए और तीसरी नीति भी स्थिति बचाने की होनी चाहिए कि यदि युद्ध छिड़ जाए तो हम उसे रोकने में समर्थ हो सकें।'[11] अतः अन्तर्राष्ट्रीय विवादों के निपटाने के लिए भारत शान्तिमय साधनों, द्विपक्षीय या त्रिपक्षीय वार्ताओं व समझौतों, मध्यस्थता, पंच–निर्णय या विवाचन आदि पर बल देता है।

भारत शुरू से ही विश्व–शान्ति के लिए निःशस्त्रीकरण को परम आवश्यक मानता है। यही कारण है कि जब 1963 में आणविक परीक्षण प्रतिबन्ध सन्धि हुई तो भारत वह पहला देश था जिसने अविलम्ब इस सन्धि पर हस्ताक्षर कर दिये, परन्तु भारत ने

1968 की परमाणु अप्रसार सन्धि पर इसलिए हस्ताक्षर नहीं किये कि महाशक्तियां इस प्रकार की सन्धि द्वारा विश्व में परमाणु शक्ति पर अपना एकाधिकार स्थापित करना चाहती हैं और छोटे और अल्प–विकसित राष्ट्रों को अपनी दया पर निर्भर बनाना चाहती है। निःसन्देह 1974 में भारत ने अणु–शक्ति का परीक्षण कर लिया, परन्तु भारत ने अणु–शक्ति का परीक्षण शान्तिमय कार्यों के लिए किया।

मैत्री और सह–अस्तित्व की नीति : भारत की विदेश नीति मैत्री और सह–अस्तित्व पर जोर देती है। भारत की यह धारणा रही है कि विश्व में परस्पर विरोधी विचारधाराओं में सह–अस्तित्व की भावना पैदा हो। यदि सह–अस्तित्व को स्वीकार नहीं किया जाता तो आणविक शस्त्रों से समूची दुनिया का ही विनाश हो जाएगा। इसी कारण भारत ने अधिक से अधिक देशों के साथ मैत्री सन्धियां और व्यावहारिक समझौते किये। इन सन्धियों में– भारत–नेपाल सन्धि, भारत–इराक मैत्री सन्धि, भारत–जापान शान्ति सन्धि, भारत–मिस्र शान्ति सन्धि, भारत–सोवियत मैत्री सन्धि, भारत–बंगलादेश मैत्री सन्धि उल्लेखनीय है। पं॰ नेहरू ने स्पष्ट कहा था कि 'विश्व में आज अलगाव के लिए कोई स्थन नहीं है।

विरोधी गुटों के बीच सेतुबन्ध बनाने की नीति : भारत अपनी विदेश नीति द्वारा विश्व में परस्पर विरोधी गुटों के मध्य सेतुबन्ध का कार्य करता रहा है। अपनी गुटनिरपेक्ष नीति के कारण भारत दोनों गुटों के बीच उनको मिलाने वाली कड़ी के रूप में कार्य कर सकने की एक विशिष्ट स्थिति में रहा है। दोनों गुटों के मुकाबले में भारत की आर्थिक स्थिति और सैनिक स्थिति काफी कमजोर रही है, किन्तु दोनों गुटों में शक्ति–सन्तुलन होने के कारण उन दोनों के बीच विभिन्न अन्तर्राष्ट्रीय विवादों के समाधान में मध्यस्थ का कार्य करने की दृष्टि से भारत की स्थिति बहुत उपयुक्त रही है। अपनी इस स्थिति के कारण अब तक उसने कोरिया, हिन्दचीन, कांगो आदि समस्याओं के समाधान में महत्वपूर्ण योगदान दिया और दोनों गुटों को समीप लाकर, विश्व–शान्ति का आसन्न खतरा दूर किया है।

पंचशील की नीति : 'पंचशील' के पांच सिद्धान्तों का प्रतिपादन भी भारत की शान्तिप्रियता का द्योतक है। 1954 के बाद से भारत की विदेश नीति को 'पंचशील' के सिद्धान्तों ने एक नयी दिशा प्रदान की। 'पंचशील' से अभिप्राय है– 'आचरण के पांच सिद्धान्त।– जिस प्रकार बौद्ध धर्म में ये व्रत एक व्यक्ति के लिए होते हैं उसी प्रकार आधुनिक पंचशील के सिद्धान्तों द्वारा राष्ट्रों के लिए दूसरे के साथ आचरण के सम्बन्ध निश्चित किये गये।

भारत की विदेश नीति के उद्देश्य : भारत की विदेश नीति की रूपरेखा स्पष्ट करते हुए पं॰ जवाहरलाल नेहरू ने सितम्बर 1996 में एक प्रेस सम्मेलन में कहा था, 'वैदेशिक सम्बन्धों के क्षेत्र में भारत एक स्वतंत्र नीति का अनुसरण करेगा और गुटों की खींचतान से दूर रहते हुए संसार के समस्त पराधीन देशों को आत्म–निर्णय का अधिकार प्रदान कराने तथा जातीय भेदभाव की नीति का दृढ़तापूर्वक उन्मूलन कराने का प्रयत्न करेगा। साथ ही वह दुनिया के शान्तिप्रिय राष्ट्रों के साथ मिलकर अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग और सद्भावना के प्रसार के लिए भी निरन्तर प्रयत्नशील रहेगा।' नेहरू का यह कथन आज भी भारत की विदेश नीति का आधार–स्तम्भ है। भारत की विदेश नीति की मूल बातों का समावेश हमारे संविधान के अनुच्छेद 51 में कर दिया गया है, जिसके अनुसार राज्य अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा को बढ़ावा देगा, राज्य राष्ट्रों के मध्य न्याय और सम्मानपूर्वक सम्बन्धों को

बनाये रखने का प्रयास करेगा, राज्य अन्तर्राष्ट्रीय कानूनों तथा सन्धियों का सम्मान करेगा तथा राज्य अन्तर्राष्ट्रीय झगड़ों को पंच फैसलों द्वारा निपटाने की रीति को बढ़ावा देगा।

उपर्युक्त उद्देश्यों से यह बात स्पष्ट होती है कि भारत की विदेश नीति में मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों, शान्ति एवं समानता के सिद्धान्तों को सर्वाधिक महत्व दिया गया है। भारत ने न्याय के आधार पर सभी के साथ सहयोग एवं सद्भावना की नीति पर चलने का निश्चय किया है। इसी परिप्रेक्ष्य में भारत की विदेश नीति के प्रमुख निर्माता जवाहरलाल नेहरू ने भारत की विदेश नीति के तीन आधार–स्तम्भ बनाये– शान्ति, मित्रता और समानता।

सन्दर्भ :

1. माइकेल बीचर, 1959, नेहरू : ए पोलिटीकल बायोग्राफी, लंदन, पृ॰210
2. वही, पृ॰ 312
3. वही, पृ॰ 531
4. Rehman M.M., The Politics of Non-alignment, p. 168
5. फड़िया बी॰एल॰, 2008, अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति, साहित्य भवन, आगरा, पृ॰ 200
6. वही, पृ॰ 200–201
7. वही, पृ॰ 201
8. वही
9. वही, पृ॰ 202
10. Indian Express, 5 April, 1980
11. Dutt V.P. : India's Foreign policy, Vikas, p. 1.24

***

भारतीय लोकतन्त्र में सूचना के अधिकार की चुनौतियां

डॉ. प्रदीप कुमार जायसवाल *

आधुनिक समय में प्रशासन के विद्वानों में पर्याप्त सहमति है कि आज प्रशासन की प्रमुख समस्या कुशलता प्राप्त करना नहीं अपितु जवाबदेही सुनिश्चित करना है। कुछ विद्वान इसे प्रशासन की उत्कृष्ट समस्या मानते है।[1] प्रशासन की दोहरी मानसिकता एवं गोपनीयता को बनाये रखना सदैव नौकरशाही की प्रवृत्ति रही है। अतः प्रशासन द्वारा भी प्रचार–प्रसार के लिए प्रयास नहीं किया जाता है। मनरेगा तथा सूचना का अधिकार अधिनियम एक दूसरे के पूरक माने जाते है क्योंकि मनरेगा में होने वाले भ्रष्टाचार को उजागर करने के लिए सूचना का अधिकार एक महत्वपूर्ण कदम साबित हो रहा है परन्तु प्रचार–प्रसार एवं जानकारी के अभाव में यह अधिकार अपने लक्ष्य की प्राप्ति नहीं कर पा रहा है। सूचना अधिकार अधिनियम लागू होने के बाद इसकी प्रथम चुनौती शासन–प्रशासन में जनता तक सूचना को व्यवस्थित रूप से उपलब्ध कराने की है, जिसमें उच्च अधिकारियों से लेकर निम्न स्तर के कर्मचारी भी अपने दायित्वों को पहचान सकें। आम नागरिकों को सूचना प्राप्ति करने की सभी औपचारिकताएं पूरी करने के बाद भी सूचना प्राप्ति नहीं होती,उन्हें उपेक्षित होना पड़ता है। अतः जब तक सूचना प्रदान करने की समुचित प्रणाली की विकास नहीं होगा तब तक इसे क्रियान्वित करने में राजनीतिक स्तर पर उदासीनता, परस्पर सांमजस्य का अभाव तथा जड़ता है।[2]

21वीं सदी ने अनेक राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय चुनौतियों को जन्म दिया है। इन चुनौतियों के समाधन के लिए प्रशासनिक तन्त्र, संस्थाओं और समाज के समन्वित प्रयास की आवश्यकता है। इस समन्वय के लिए दोनों में परस्पर अटूट विश्वास का होना जरूरी है। लोगों का अपने निर्वाचित प्रतिनिधियों के प्रति संदेह और अविश्वास का भाव बढ़ता ही जा रहा है। विकास सम्बन्धी सभी आधुनिक सिद्धान्तकारों की यह मान्यता है कि आज के समय में जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सूचना के अधिकार का महत्वपूर्ण स्थान है। वह क्षेत्र चाहे उत्पादन का हो, चाहे शिक्षा का हो, या फिर लोकतन्त्र में प्रत्यक्ष भागीदारी का ही क्षेत्र क्यों न हो। यह अधिकार लोकतन्त्र में लोगों की इच्छा के प्रति सरकारी कर्मचारियों के उत्तरदायित्व एवं अनुक्रियाशीलता को सुनिश्चित करता हैं। सूचना के अधिकार की आवश्यकता इसलिए पड़ी कि ताकि हम शासन को भ्रष्टाचार मुक्त, पारदर्शी बना सकें एवं लोगों में शासन के प्रति उत्तरदायित्व की भावना पैदा कर सके। सूचना तक पहुँच

---

* पोस्ट डॉक्टोरल फेलो, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, नई दिल्ली

होने से आम आदमी विभिन्न स्तरों पर, खासकर सरकारी विभागों में होने वाले निर्णय प्रक्रिया में भाग लेने और भूमिका निभाने में समर्थ होगा। लोगों को सूचनाएं मिलने का एक बहुत बड़ा प्रभाव सार्वजनिक क्षेत्र में फैले भ्रष्टाचार पर पड़ेगा। यह एक वैश्विक सत्य है कि भ्रष्टाचार अज्ञानता से जन्म लेता है। व्यक्ति को सही तथ्य की जानकारी नहीं होती है। आशा है कि यह अधिकार प्रक्रियागत बाधाओं को दूर करेगा और भ्रष्टाचार मुक्त प्रशासन को प्रोत्साहन मिलेगा।

सूचना के अधिकार को लागू करके सरकार ने आम जनता के हाथ में ऐसा अधिकार प्रदान किया है जिसके द्वारा न केवल भ्रष्टाचार समाप्त होगा बल्कि अफसरशाही को भी अपना अड़ियल रवैया छोड़कर जनता के सामने झुकना पड़ेगा और उन्हें वांछित सूचनाएं प्रदान करनी पड़ेगी। इस कानून की उपयोगिता को लेकर कोई सन्देह नहीं फिर भी इस कानून को व्यवहारिक रूप में लागू करने में कुछ कठिनाइयां सामने आई हैं जिनका विवरण निम्न हैं :–

सबसे पहली सम्भावित समस्या यह है कि इस कानून के लागू हो जाने से लोक सूचना अधिकारियों के पास इतनी ज्यादा संख्या में सूचना पाने सम्बन्धी आवेदन दिये जायेंगे कि परिणामस्वरूप प्रशासकीय कार्य प्रतिकूल रूप से प्रभावित हुए बिना नहीं रह पायेगा। यह भी हो सकता है कि कुछ व्यक्ति पूर्णतया अनावश्यक व निरर्थक सूचनाओं की मांग करने लगेंगे। एक और समस्या है कि हमारे देश में जहाँ भ्रष्टाचार का बोलबाला है और सरकारी दफ्तरों में बिना मुट्ठी गर्म किए काम ही नहीं बनते व अधिकारियों में पूरी निष्ठा से, ईमानदारी से व पारदर्शिता के साथ काम करने की कमी पायी जाती है। ऐसी परिस्थिति में इस कानून को व्यवहारिक रूप में लागू करना कठिन ही है। अधिनियम के अन्तर्गत सूचना प्राप्त करने की अधिकतम फीस दस रूपये निर्धारित की गई है। परन्तु कई राज्य सूचना प्रदान करने के लिए पाँच सौ रूपये तक अधिकतम फीस वसूल कर रहे है। उदाहरण के लिए दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा सूचना प्रदान करने पर पाँच सौ रूपये शुल्क निर्धारित किया गया है। हरियाणा मे सूचना शुल्क पचास रूपये निर्धारित किया गया है जो कि एक आम आदमी के लिए अदा करना विचारणीय होता है। कार्यालयों में सूचना के अधिकार में सूचना प्राप्त करने की निर्धारित शुल्क स्पष्ट रूप से अंकित किया जाना चाहिए।[3]इस अधिनियम के अन्तर्गत यह प्रावधान है कि यदि कोई अधिकारी सूचना प्रदान करने में कोई कोताही बरते तो उस पर 250 रूपये प्रतिदिन के हिसाब से जुर्माना किया जाता है, परन्तु कुछ राज्यों में सूचना उपलब्ध न करवाने की दशा में अधिकारियों पर केवल 50 रूपये प्रतिदिन के हिसाब से दण्ड लगाया जाता है, जो इस बात को स्पष्ट करता है कि इन राज्यों की सरकारें इस अधिनियम को प्रभावशाली ढ़ग से लागू करने के बजाय सरकारी अधिकारियों के कल्याण के बारे में ज्यादा चिन्तित हैं। इस अधिनियम की सबसे बड़ी

खामी यह है कि यदि किसी व्यक्ति को किसी विभाग से किसी विषय पर एक से अधिक वर्ष की जानकारी प्राप्त करनी है तो उसे प्रत्येक वर्ष की सूचना प्राप्त करने के लिए प्रत्येक वर्ष के लिए अलग–अलग प्रार्थना पत्र देने पड़ते हैं और प्रत्येक वर्ष के लिए अतिरिक्त फीस अदा करनी पड़ती है, जो कि न्यायोचित् नहीं है। हमारे देश में जहाँ काफी लोगों की आधारभूत आवश्यकताएं पूरी नहीं होती, वे अशिक्षित व गरीब है तो हम कैसे मान लें कि लोग अधिकार के प्रति गम्भीर होकर इसका लाभ उठाएंगे। लोगों को शिक्षित एवं जागरूक किए बिना इस कानून को प्रभावशाली ढ़ग से लागू नहीं किया जा सकता। इस कानून को प्रभावशाली ढ़ग से लागू करने के लिए सर्वप्रथम आवश्यकता यह है कि विभिन्न सरकारी अधिकारियों को नैतिक शिक्षा प्रदान की जाय। जब अधिकारी भौतिकवाद से आध्यात्मवाद की ओर अग्रसर होंगे तो वे स्वतः ही अपने आप को जनता का सेवक समझने लगेंगे और अपने कर्तव्य का पालन पूरी निष्ठा, ईमानदारी व पारदर्शिता के साथ करेंगे। मेरा विचार यह है कि लोक सूचना अधिकारी के अधीन पर्याप्त अधिकारियों की नियुक्ति किया जाय जिससे सूचना पाने सम्बन्धी अधिक आवेदन आने पर भी प्रशासकीय कार्यों पर प्रतिकूल प्रभाव न पड़े। सूचना के अधिकार के बारे में सम्बन्धित अधिकारियों को प्रशिक्षण दिया जाय ताकि वे जनता को समय पर सूचना प्रदान कर पाएं और जिससे यह कानून प्रभावशाली ढ़ग से लागू हो पाये। इस अधिनियम के तहत सूचना प्राप्त करने के लिए फीस अदा करने के तरीके को और सरल बनाने पर जोर दिया जाना चाहिए और इसके साथ ही यदि किसी व्यक्ति को किसी विभाग से एक से अधिक वर्षों की जानकारी प्राप्त करनी है तो उसे केवल एक ही आवेदन पत्र देना पड़े और उसे प्रत्येक वर्ष के लिए अतिरिक्त शुल्क अदा न करनी पड़े। केन्द्र सरकार का भी यह कर्तव्य है कि वह सभी राज्यों को निर्देश दे कि सभी एक समान शुल्क वसूल करें। लोगों को जागरूक बनाने के लिए इस बारे में शिक्षित किया जाना चाहिए। इस कार्य के लिए ग्रामीण क्षेत्रों में सरकार के द्वारा विशेष संगोष्ठियों का आयोजन किया जाना चाहिए और ये संगोष्ठियां गांवों में समूह बनाकर आयोजित किया जाना चाहिए। इस कार्य को और प्रभावशाली बनाने के लिए युवा संगठनों, स्वंयसेवी संगठनों तथा अन्य शिक्षित व्यक्तियों विशेषकर सेवानिवृत लोगों की सेवाएं लेना उचित होगा। जागरूकता की इस प्रक्रिया को निरन्तर आगे बढ़ाने के लिए दूरदर्शन, रेडियो, समाचार पत्रों तथा पत्रिकाओं के माध्यम से सूचना के अधिकार के बारे में जानकारी देने के बारे में विशेष प्रयत्न किये जाने चाहिए। सूचना के अधिकार के विभिन्न प्रावधानों, जो कि कठिन तथा समझ से परे है, उन्हें विशेष तौर पर साधारण भाषा में स्थानीय आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए लोगों के सामने प्रस्तुत किया जाना चाहिए। यदि कोई अधिकारी इस अधिकार के प्रावधानों की अवहेलना करता है, तो उसके विरूद्ध दण्डात्मक कार्यवाही की जानी चाहिए और पारदर्शिता लाने की इस

प्रक्रिया को बिना रोक–टोक के आगे बढ़ाना चाहिए। सरकार को यह सुनिश्चित करना होगा कि उन अभिकरणों, जिन पर इस अधिनियम को लागू करने का दायित्व है, को धन तथा सुविधाओं की कमी न हो ताकि वे पूर्ण क्षमता के साथ कार्य कर सकें। लोक प्राधिकरणों को भी सब कुछ व्यवस्थित करने तथा प्रकाशित करने के लिए कुछ अधिक व्यय करना पड़ेगा। योजना आयोग को इन पर आने वाले व्यय का अनुमान लगाना चाहिए तथा तद्नुसार प्रत्येक वर्ष बजट में इसकी व्यवस्था करनी चाहिए। वर्तमान में सूचना का अधिकार अधिनियम में न्यायिक विवाद अथवा मुकदमा उत्पन्न होने पर निर्णय सम्बन्धी कोई प्रावधान नहीं है।

सूचना अधिकार के अन्तर्गतग नागरिकों को सूचना देने हेतु निर्धारित 30 दिन में लोक सूचना अधिकारियों द्वारा सूचनाएँ प्रदान नहीं की जा रही हैं। प्रथम अपीलीय स्तर में अपीलों का निस्तारण संतोषजनक नहीं हो पा रहा है। यदि प्रथम अपीलीय स्तर पर अपीलों का निस्तारण को सुधारा जाए तो आयोग स्तर पर अपीलों की संख्या में कमी आएगी। प्रथम अपीलीय अधिकारियों को अधिक दक्ष करना आवश्यक है, इसके लिए उनको गहन प्रशिक्षण दिया जाना आवश्यक है। राज्य सूचना आयोग मेंद्वितीय अपील स्तर पर अपीलों के निस्तारण से आम नागरिकों/सूचना आवेदकों की समस्याओं का समाधान नहीं हो रहा है। आयोग द्वारा सरकारी पक्ष के प्रति सद्भावनापूर्ण व्यवहार किया जाना इसका एक कारण है। अतः आयोग को अपने फैसलों में निष्पक्षता कायम रखने का प्रयास किया जाना चाहिए। आयोग सूचना अधिकार अधिनियम के ढाँचे में सर्वोच्च स्तर पर है। आयोग के बाद अपील का अन्य कोई स्तर नहीं है। अतः आयोग के कार्यों में अधिक पारदर्शिता और सक्रियता की आवश्यकता है। सूचना अधिकार अधिनियम का मुख्य उद्देश्य सरकारी कामकाज में पारदर्शिता को कायम करना है। सर्वे से यह ज्ञात होता है कि सूचना अधिकार अधिनियम के आने से सरकारी कामकाज में पारदर्शिता बढ़ी।सरकारी कार्यालयों के वातावरण में परिवर्तन आया है। कर्मचारियों का आम जनता के प्रति व्यवहार में परिवर्तन आया है। सरकारी कार्यालयों के वातावरण में परिवर्तन आया है। कर्मचारियोंका आम जनता के प्रति व्यवहार में परिवर्तन आया है।

आज सूचना का अधिकार अधिनियम लागू हो गया है। सभी अधिकारियों सहित जनता को सूचना के आदान–प्रदान के लिए प्रेरित तथा प्रोत्साहित करना सबसे बड़ी चुनौती है। अतः उनके अन्दर शिक्षा एवं जागृत पैदा करना आवश्यक है। सूचना का अधिकार जनता का अधिकार है, जब तक जनता इस अधिकार का प्रयोग नहीं करेगी तब तक यह कागजी ही बना रहेगा। यह कहा जा सकता है कि सूचना के अधिकार का क्रियान्वयन भारतीय जनतन्त्र की परिपक्वता की सिद्धि में एक सशक्त कदम होगा। यदि सूचना के अधिकार अधिनियम को कारगर ढ़ग से लागू किया जाय तो भारतीय शासन की प्रकृति बदल सकती है। इसके जरिये एक पारदर्शी

शासन प्रक्रिया की शुरूआत हो सकती है, जिसके कारण भारतीय लोकतन्त्र सिर्फ प्रतिनिधिपरक ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण रूप से भागीदारीपरक हो सकता है।

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद अस्तित्व में आये विकासशील देशों के प्रशासन तन्त्र के सम्मुख नई चुनौतियां और दायित्व उपस्थित हुए। देश की एकता और अखण्डता को बनाये रखने, आर्थिक और तकनीकी विकास की प्रक्रिया को आगे बढ़ाने, विभिन्न सामाजिक समूहों में सांमजस्य तथा सन्तुलन स्थापित करने, अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों को विकसित करने तथा देश के आधुनिकीकरण जैसी प्रबल चुनौतियां तथा दायित्व उपस्थित हुए। फ्रेडरिक का मत है कि भ्रष्टाचार तथा नैतिक व्यवहार के प्रति दृष्टिकोण परिस्थितियों द्वारा प्रभावित किये जाते है। वर्तमान में विश्व के सभी देशों में आतंकवादी गतिविधियों के बढ़ते विस्तार के कारण जन–जीवन बुरी तरह से प्रभावित हुआ है। असुरक्षा की भावना से मनोबल प्रभावित होता है। लोकतांत्रिक मूल्यों तथा आदर्शों पर प्रश्न चिन्ह लग जाता है। ऐसी स्थिति में प्रशासन की भूमिका व उत्तरदायित्व चुनौतीपूर्ण बन जाती है।

भारतीय प्रजातांत्रिक शासन प्रणाली की एक अन्य समस्या यह है कि जनता के सभी वर्गों, अधिकारियों व राजनेताओं में अपने कर्तव्यों के प्रति उदासीनता का भाव है। आज हम यह भूल जाते है कि हमारे कर्तव्य क्या है, हमें सिर्फ अपने अधिकार ही याद है, जो निश्चित रूप से हमारी संस्कृति और व्यक्तित्व के खोखलेपन को उजागर करती हैं। कर्तव्य बोध का अभाव एक बड़ी समस्या है। अगर हम कर्तव्य बोध के कारणों की बात करें तो वैचारिक व क्रियात्मक उदासीनता दिखाई देती है। प्रायः यह देखने में आता है कि हम यह सोचकर चुप हो जाते है कि विभिन्न मुद्दों से हमें क्या लेना–देना है। हम ही क्यों आगे बढ़ें, इसी कारण हम लोग अपने कर्तव्यों की अनदेखी करते है।

नौकरशाही व्यवस्था किसी भी व्यवस्था में क्रियान्वयन अभिकरण के रूप में मौजूद रही है। आज भी यह विभिन्न व्यवस्थाओं में दिखाई देती है। मैक्स बेबर ने नौकरशाही की आदर्श अवधारणा प्रस्तुत करके इस प्रणाली को महत्वपूर्ण बना दिया। नौकरशाही प्रणाली की सर्वमान्य कमी लालफीताशाही है जो समान रूप से विकसित व विकासशील समाजों में पायी जाती है। विकास कार्यों में वृद्धि के साथ–साथ विकास कार्यों में नौकरशाही के दखल ने प्रशासनिक अधिकारियों को और अधिक महत्वपूर्ण बना दिया है। आज रोजगार सृजन व निर्धनता उन्मूलन से सम्बन्धित अनेक कार्यक्रम केन्द्र व राज्य सरकारों द्वारा संचालित किए जा रहे है। वर्तमान में नौकरशाही कार्य अतिभार से ग्रसित है। कुछ प्रकृति के कारण तो कुछ कार्य अतिभार के कारण नौकरशाही लालफीताशाही से ग्रसित है। लालफीताशाही नौकरशाही की सर्वव्यापी समस्या है, तो राजनीतिक उत्तरदायित्व भी विकासशील राजनीति का महत्वपूर्ण लक्षण बनता जा रहा है। आज प्रत्येक राजनीतिक

दल व नेतृत्वकर्ता सिर्फ आश्वासन की राजनीति करते है। आश्वासन से समस्याओं का निराकरण नहीं होता है, जरूरत है वास्तविक दायित्व निभाने की।

समाज के निम्न वर्ग विशेषकर मजदूर, कृषक और अशिक्षित नागरिकों में सूचना का अधिकार के प्रति जागरूकता का पूर्णतः अभाव हैं। यहीं वे वर्ग है जो सरकारी कर्मचारियों में भ्रष्टाचार का सबसे अधिक शिकार होते है। सरकार द्वारा निम्न वर्गों के कल्याण के लिए चलायी जा रही योजनाओं का लाभ इन वर्गों तक नहीं पहुँच पाता। इन वर्गों में सूचना के अधिकार अधिनियम के प्रति जागरूकता उत्पन्न करना आवश्यक है। वहीं दूसरी तरफ इस अधिनियम का लाभ समाज के सुविधा–सम्पन्न सम्प्रभु वर्ग को ही मिलेगा, आम जन को नहीं। आम जनता के पास इतना समय नहीं है कि वह सूचनाएं प्राप्त करने के लिए सरकारी विभागों का चक्कर लगाये। ऐसे में सम्प्रभु वर्ग, खासकर संचार माध्यमों से जुड़े लोग ही इस कानून का लाभ उठाएंगे और प्राप्त सूचनाओं को अपने निहित स्वार्थों को साधने का जरिया बना सकता है, जो लोकतन्त्र के लिए घातक होगा।[4]इस प्रकार प्रायः यह देखने को मिलता है कि सूचना के अधिकार को उसी वर्ग के लोग एक संकट के रूप में देखते है, जिनका उनमें निहित स्वार्थ होता है। यही निहित स्वार्थ सूचनाओं को गोपनीय बनाये रखने के लिए उन्हें मजबूर किये रहता है।

ग्रामीण क्षेत्रों में शहरी क्षेत्रों की अपेक्षा सूचना के अधिकार की जानकारी अपेक्षाकृत कम लोगों को है। ग्रामीण स्तर पर सूचना के अधिकार अधिनियम की पहुँच लगभग नाममात्र है। इसकी राह में सबसे बड़ी समस्या है, शिक्षा का निम्न स्तर तथा जागरूकता की कमी। सरकार ने गरीबी रेखा के नीचे के लोगों को इस कानून के प्रयोग हेतु शुल्क मुक्त घोषित तो कर दिया है लेकिन इस अधिनियम के प्रयोग, उपयोगिता सम्बन्धी जानकारी देने हेतु निचले स्तर पर इसके क्रियान्वयन की रूपरेखा तय नहीं की है। सरकार द्वारा ग्रामीण क्षेत्रो हेतु कई योजनाएं चलायी जा रही है, इन योजनाओं में महात्मा गांधी स्वरोजगार योजना, ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन योजना आदि महत्वाकांक्षी योजनाएं है। ग्रामीण क्षेत्रों के नागरिकों तक इन योजनाओं का लाभ पहुँचाने के लिए लोगों को सूचना के अधिकार के माध्यम से जागरूकता पैदा करना आवश्यक है।सूचना अधिकार के लिए चलाये जाने वाले सरकारी कार्यक्रम नागरिकों को अधिकार के प्रति जागरूक करने में विफल रही है। स्वैच्छिक संस्थाएं भी सरकारी धन का दुरूपयोग कर रही है। सरकार को सूचना अधिकार के प्रति जागरूक होने के लिए अधिक प्रयास करने चाहिए। जिससे इस अधिकार का लाभ समाज के सभी वर्गों को मिल पायेगा।

सूचना अधिकार के अन्तर्गत सूचना मांगने वाले आवेदकों को सूचना उस रूप में संतोषजनक प्राप्त नहीं हो रही है, जैसा कि वे अपेक्षा करते है। लोक सूचना अधिकारी स्तर से अपूर्ण सूचना का बड़ी मात्रा में प्रेषण हो रहा है। आम नागरिक को साधारण मामलों से सम्बन्धित सूचनाएं तो आसानी से

प्राप्त हो जाती है परन्तु नीतिगत मसलों, निर्णयों अथवा उन योजनाओं में जिनमें भ्रष्टाचार व्यापक रूप में व्याप्त हो, तो उन मामलों में अधिकारी वर्ग चुप्पी साध लेते हैं। सरकार अपनी ओर से इस कानून के प्रचार–प्रसार में कोई रूचि नहीं ले रही है।सूचना के अधिकार का प्रचार–प्रसार स्वयंसेवी संस्थाओं या कुछ कार्यकर्ताओं द्वारा ही किया जा रहा है। सरकार द्वारा इस अधिकार के व्यापक प्रचार–प्रसार न होने के कारण इस अधिकार के प्रति लोगों की उदासीनता देखने को मिल रही है।

सरकारी कार्यालयों में अभिलेखों का रखरखाव अभी तक दुरूस्त नहीं हो पाया है। अभिलेखों का कम्प्यूटरीकृत नहीं किया जा रहा है। अभिलेखों का लेखांकन सूचना अधिकार अधिनियम के परिप्रेक्ष्यमें नहीं हो पा रहा है। इससे सूचना अधिकार आवेदन से कार्यालयों में अफरा–तफरी का माहौल बना रहता है।अभिलेखों के बेहतर रख–रखाव हेतु प्रशिक्षण कार्यक्रम चलाये जाने आवश्यक है।[5]

आम नागरिकों के द्वारा सूचना अधिकार अधिनियम का दुरूपयोग भी हो रहा है।सरकारी विभागों में कई आवेदन ऐसे मिल रहे है, जो निरर्थक व जानबूझकर परेशान करने के उद्देश्य से आ रहे है। कुछ सूचना अधिकारी मानते है कि कुछ आवेदक सरकारी विभागों में रौब दिखाने हेतु लगातार निरर्थक सूचनाएं मांगकर परेशान करते हैं।[6] अतः इस प्रकार के आवेदकों को रोकना आवश्यक है, ताकि सूचना अधिकार अपने वास्तविक उद्देश्यों से अलग न हो। परेशान करने वाले आवेदकों को रोकने हेतु आवश्यक संशोधन किये जाने चाहिए।

सरकारी अधिकारी व कर्मचारी अभी सूचना अधिकार अधिनियम में कुशल नहीं है। एक्ट के अधूरे ज्ञान के कारण सरकारी स्तर पर एक्ट का दुरूपयोग भी हो रहा है। सरकार और सूचना आयोग को अभी और प्रशिक्षण कार्यशालाएं आयोजित की जानी चाहिए, साथ ही अधिकारियों और कर्मचारियों को अधिनियम में आयोग द्वारा दिये गये स्पष्टीकरणों और नवीन अपडेटों की जानकारी देने हेतु समय–समय पर रिफ्रेशर कोर्स चलाये जाने की आवश्यकता है।प्रभावी संचार प्रणाली किसी भी व्यवस्था के लिए अति आवश्यक मानी जाती है। आज जनता का सरकार से और सरकार का जनता से प्रभावी संचार नहीं हो पा रहा है। आज के कल्याणकारी एवं प्रशासकीय राज्य में प्रशासन के कार्यों एवं उत्तरदायित्वों में तीव्रता से वृद्धि हुई है। उच्च कार्मिक व्यवहार कर्मचारियों के सामान्य मनोबल को बढ़ाते हैं और उसे स्थिर रखते हैं। ये उच्च व्यवहार तभी सम्भव होंगे जब कर्मचारी तथा विभाग के बीच सहयोग होगा। यह बात अनुभव के आधार पर कही जा रही है कि एक केन्द्रीय कार्मिक अभिकरण मात्र से उक्त सहयोग या सहकारिता की भावना नहीं पैदा होगी।

इस अधिनियम का प्रभावी क्रियान्वयन के मार्ग में एक अन्य समस्या यह है कि हमारे यहाँ पारदर्शिता से अब भी परहेज किया जा रहा है। यदि

नागरिककिसी भी कार्यालय में जाकर इस अधिनियम के तहत किसी भी जानकारी की माँग करतेहै या निश्चित शुल्क देकर सूचना की छायाप्रति की माँग करते है, तो इस अधिनियम की धारा 8 व 9 का प्रशासक वर्ग द्वारा गलत प्रयोग किया जाता है। आमतौरपर दिन–प्रतिदिन सरकारी कार्यों के प्रति आम–आदमी के मन मेंउदासीनता रहती है, वस्तुतः भारतीय शासन में आम–आदमी कीपूर्णतः सहभागिता विकसित न हो पाना भी एक चुनौती है।[7]

इस अधिनियम की वास्तविक अनुपालन सरकार के लिए चुनौतीपूर्ण है, क्योंकि केन्द्र, राज्य एवं स्थानीय स्तर पर सरकारी तंत्र के पास उपलब्ध सूचनाओं को आम नागरिक के साथ सार्वजनिक करने के लिए अपनी विचारधारा में परिवर्तन लाना होगा।[6] आवेदक द्वारा माँगी गई सूचना मेंलोकप्राधिकारी द्वारा प्रायः यह कह कर सूचना देने से मना कर दिया जाता है कि आवेदक द्वारा मांगी गयी सूचना का आवेदक द्वारादुरूपयोग किये जाने की सम्भावना है अथवा सूचनाधिकार अधिनियम की धारा 11 द्वाराउपर्युक्त सम्भावना के आधार पर लोकप्राधिकारीयों द्वारा तृतीय पक्ष पर–व्यक्ति सूचना का हवाला देकर आवेदक को सूचना देने से मना कर देते है।

लोक प्राधिकारियों द्वारा आवेदक को दी गयी सूचना के अस्पष्ट होने तथा गलत तरीके से व्याखा करने से अनावश्यक संसाधनों व समय की बर्बादी होती हैं। लोक प्राधिकारियों द्वारा आवेदक को अनावश्यक नियमों से भ्रमित कर अनावश्यक देरी करते हुए उसे हतोत्साहित करने का प्रयास किया जाता है। नागरिकों को जानकारी मांगने पर प्रशासन द्वारा अपमानित एवं उपेक्षित किया जाता है, जब तक सूचना प्रदान करने की समुचित प्रणाली का विकास नहीं किया जायेगा तब तक सूचना अधिकार का प्रावधान कागजी ही बना रहेगा।[9]

सरकार के तीनों अंग विधायिका, कार्यपालिका व न्यायपालिका को इस अधिनियम के अंर्तगत सूचना देने के दायरे में रखा गया है, जब तक ये अपने आपको इस अधिनियम से बाहर बताएगें तब तक यह कानून व्यवहारिकता का रूप धारण नहीं कर सकता तथा यह भ्रष्टाचार समाप्त करना व पारदर्शिता लाना एक कोरी कल्पना के अलावा कुछ नहीं होगा। सूचना के अधिकार की एक चुनौती इसके विस्तार क्षेत्र से सम्बन्धित है। अभी कई निजी क्षेत्र इसके दायरे से बाहर है, जिनकों इस अधिकार के अंतर्गत लाया जाना आवश्यक है।[10] अधिनियम में कई ऐसे प्रावधान हैं जो स्पष्ट नहीं हैं, विशेषकर धारा 22 जो कहती है कि 'इस अधिनियम के प्रावधान शासकीय गुप्त बात अधिनियम, 1923 और तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में या इस अधिनियम से अन्यथा किसी विधि के आधार पर प्रभाव रखने वाली किसी लिखित में, उससे असंगत किसी बात के होते हुए भी प्रभावी होंगे।' कई विभागों के ऐसे नियम हैं जो किसी सूचना को प्रकट करने पर रोक लगाते हैं। ऐसी स्थिति में इन विभागों के अधिकारी इस

प्रकार की सूचनाएँ माँगे जाने पर भ्रम में हैं। अतः सरकार या आयोग को ऐसे प्रावधान को स्पष्ट करना चाहिए ताकि गतिरोध समाप्त हो सके।

हम भारतीय लोकतन्त्र की विकृतियों से मुक्त होकर उसे जीवन्त बनाना चाहते हैं। अपनी समस्याओं का समाधान चाहते हैं। विगत दशकों में भारतीय प्रशासन के सुधार हेतु हम लोगों ने अनेक प्रयास किये है। प्रशासनिक सुधार आयोग, लोकायुक्त एवं लोकपाल का प्रावधान अनेक समितियों का गठन एवं सतर्कता आयुक्त प्रणाली द्वारा निगरानी व्यवस्था आदि को इसी क्रम में देखना चाहिए। सुधारों की इस कड़ी में सूचना का अधिकार एक सशक्त उपाय है। इसे जीवन और व्यवस्था के अंग के रूप में स्वीकारना होगा। व्यवस्था में बुनियादी बदलाव को सम्भव बनाने वाले इस अधिकार को संयुक्त राष्ट्र संघ चार्टर सहित विश्व के कई राष्ट्र अपने संविधान का अंग बना चुके हैं। गोपनीयता के विरूद्ध पारदर्शिता की वकालत करने वाली यह मांग इस सामान्य सूत्र पर आधारित है कि सरकार जनता को सूचना की स्वतन्त्रता दें।

सन्दर्भ :

1. Mukhopadhyay, Ashok, "Administrative Accountability: A Conceptual Analysis", Indian Journal of Public Administration, xxix, No.3, 1983, p.473.
2. सैनी, आर. डी. एवं मंगलानी, रूपा, "सूचना का अधिकार", हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकूला, 2002, पृष्ठ–81.
3. यादव, डॉ. अभय सिंह, सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 सेंट्रल लॉ पब्लिकेशन इलाहाबाद 2010 पृ.110.
4. पाण्डेय, अरूण हमारा लोक तंत्र और जानने का अधिकार–वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, 2005 पृ.112.
5. डॉ. राजकुमार सिवाच, सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 और पारदर्शी शासन तन्त्र, सेन्ट्रल लॉ पब्लिकेशन्स, इलाहाबाद, 2010, पृ. 208.
6. अवस्थी स.के. सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 और मानवाधिकार एवं भ्रष्टाचार, हरी लॉ एजेन्सी लखनऊ 2013, पृ. 56.
7. अवस्थी, एस. के., सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 और मानवाधिकार एवं भ्रष्टाचार, लॉ एजेन्सी लखनऊ, 2013, पृ. 56.
8. जैन, सुरेश व जैन, निमित, सूचना का अधिकार, तुलसी साहित्य पब्लिकेशन्स, मेरठ, 2012, पृ. 131.
9. सैनी, आर. डी. एवं मंगलानी, रूपा, "सूचना का अधिकार", हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकूला, 2002, पृ. 82.
10. यादव, डॉ. अभय सिंह, सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005, सेंट्रल लॉ पब्लिकेशन इलाहाबाद 2010 पृ. 5.

***

ऋग्वैदिक अथवा पूर्व-वैदिक काल में सामाजिक जीवन

मंदीप कुमार चौरसिया *

भारतीय संस्कृति तथा धर्म संसार के सर्वाधिक प्राचीन संस्कृतियों में एक है। यहाँ प्राचीन काल से ही सामाजिक जीवन की अपनी एक विशेषता रही है। जो दृश्य हमें पूर्व वैदिक कालीन सामाजिक जीवन में देखने को मिलती है। वहीं सामाजिक जीवन कुछ अन्तर के साथ आज भी भारतीय समाज में विद्यमान है। वैदिक कालीन समाज का आधार ही परिवार था। परिवार पितृ–सत्तात्मक होता था। पिता ही परिवार के सदस्यो के सुख–दुःख का पूरा ख्याल रखता था तथा संयुक्त परिवार की प्रथा थी। समाज प्रारंभ में वर्ग विभेद से रहित था। ऋग्वेद में 'वर्ण' शब्द रंग के अर्थ में तथा कहीं–कहीं व्यवसाय चयन के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। ऋग्वेद के दसवें मंडल के पुरूषसूक्त में हमें चारों वर्णों की उत्पत्ति एक विराट पुरब के विभिन्न अंगों से बतायी गयी है। इस काल में वर्ण व्यवस्था जन्मजात न होकर व्यवसाय पर आधारित होते थे।

पूर्व वैदिक कालीन समाज में स्त्रियों की दशा काफी अच्छी थी। उनकी शिक्षा–दीक्षा की समुचित व्यवस्था थी। ऋग्वेद में घोषा, लोपा–मुद्रा, विश्ववारा आदि स्त्रियों के नाम मिलते हैं जो पर्याप्त शिक्षित हुआ करती थी तथा इन्होंने कुछ मंत्रों की रचना भी की थी। स्त्रियों के सामाजिक और धार्मिक अधिकार पुरूषों जैसे ही थे।

पूर्व वैदिक कालीन भोजन में दूध, घी, दही, आदि का विशेष महत्व था। ऋग्वेद में एक स्थान पर दूध में पकी हुई खीर (क्षीर पाकौदन) का उल्लेख हुआ है तथा घी में पके हुए मालपूवे (अपूर्व घृतवंतम्) का भी वर्णन हुआ है। भोजन को मीठा बनाने के लिए मधु का भी उपयोग किया जाता था तथा देवता को भी चढ़ाया जाता था। आर्यों के वस्त्र सूत, उन तथा मृगचर्म से बनाये जाते थे। भेड़ के उन का ही प्रायः प्रयोग होता था। रथ–दौड़, घुड़दौड़ तथा पासा खेलना भी पूर्व–वैदिक कालीन आर्यों का आमोद–प्रमोद के साधन थे। वे नृत्य एवं संगीत का भी आनंद लेते थे।

संबोध शब्द – परिवार, समाज, वर्ण, पुरूष, स्त्रियाँ, भोजन, आमोद–प्रमोद आदि।

भारतीय समाज हमारी प्राचीन सामाजिक परम्परा का एक अभिन्न हिस्सा है। आज भी भारतीय समाज में वैदिक कालीन सामाजिक व्यवस्था को ही अपनाया जा रहा है। तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था और परम्परा हमारे प्राचीन मूल परम्परा का ही आधुनिक परिदृश्य है। ऋग्वैदिक काल में

* यू.जी.सी.-नेट, शोधार्थी सह अतिथि सहायक प्राध्यापक, प्राचीन भारतीय इतिहास एवं पुरातत्व विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना

प्रचलित परिवार, वर्ण व्यवस्था, विवाह, स्त्रियों की दशा, भोजन तथा वस्त्र, आमोद–प्रमोद इत्यादि का आज भी कहीं–न–कहीं किसी रूप में प्रचलित या प्रयोग हो रहा है। आज के आधुनिक समाज में जो हम व्यवस्था को अपना रहे हैं वह कहीं–न–कहीं प्राचीन सामाजिक व्यवस्था की ही देन है। ऋग्वैदिक समाज उस समय की बहुत ही अच्छी सामाजिक व्यवस्था रही होगी। क्योंकि इस सामाजिक व्यवस्था में एक तरह से देखा जाए तो स्त्रियों की भूमिका महत्वपूर्ण थी।

परिवार : ऋग्वैदिक सामाजिक अवस्था का ज्ञान हमें तत्कालीन ऋग्वैदिक संहिता से प्राप्त होता है।[1] ऋग्वैदिक समाज का आधार परिवार था। परिवार पितृ–सत्तात्मक होता था, जिसमें पिता अथवा परिवार का बड़ा भाई परिवार का स्वामी होता था। वह परिवार को कठोर से कठोर दंड दे सकता था। पिता परिवार के सदस्यों के सुख–दुख का पूरा ख्याल रखता था। संयुक्त परिवार की प्रथा भी विद्यमान थी। ऋग्वेद में इसका कोई संकेत नहीं है कि परिवार कितना बड़ा होता था। क्योंकि तीन पीढ़ियाँ एक ही घर में रह रही होती थी, इसलिए परिवार काफी बड़ा होता था। उस काल में समाज अधिकतर एक–विवाही था। परिवार में एक मुखिया होता था जिसकी बात सभी लोगों पर मान्य होती थी।

वर्ण व्यवस्था : ऋग्वेदकालीन समाज प्रारंभ में वर्ग–विभेद से रहित था। सभी व्यक्ति 'जन' के सदस्य समझे जाते थे तथा सबकी सामाजिक प्रतिष्ठा थी। ऋग्वेद में 'वर्ण' शब्द रंग के अर्थ में तथा कहीं–कहीं व्यवस्था चयन के अर्थ में प्रयोग हुआ है। आर्यों को गौर वर्ण तथा दासों को कृष्ण वर्ण का कहा गया है। प्रारंभ में हम तीन वर्णों का उल्लेख पाते हैं– ब्रह्म, क्षत्र तथा विशः। ऋग्वेद में क्षत्र शब्द का प्रयोग सैन्य बल तथा राज्य क्षेत्र तथा 'क्षत्रिय' का प्रयोग उसमें निवास करने वालों के लिए हुआ है। नायक तथा योद्धाओं को क्षत्रिय कहा गया है। इसी प्रकार यज्ञों को कराने के लिए जो व्यक्ति चुने गए उन्हें 'ब्रह्म' कहा गया। यह विद्वान तथा गुणवान वर्ग था। शेष जनता को 'विश' नाम से संबोधित किया जाता था। ऋग्वेद में विश शब्द का उल्लेख विविध अर्थों– जैसे जनजातीय समुदाय, सन्निवेश मनुष्यों का समूह, सामान्य प्रजा आदि में किया गया है।

ऐसा प्रतीत होता है कि आर्यों ने अनार्यों को परास्त कर अपने सामाजिक संगठन में उन्हें स्थान दिया और इस प्रकार कालान्तर में एक चौथा वर्ण 'शूद्र' नाम से समाज में उत्पन्न हो गया। ऋग्वेद के दसवें मण्डल के पुरूषसूक्त में सर्वप्रथम 'शूद्र' शब्द मिलता है। यहाँ चारों वर्णों की उत्पत्ति एक विराट पुरूष के विभिन्न अंगों से बनाई गई है। यह कहा गया कि जब देवताओं ने विराट पुरूष की बलि दी तो उसके मुख से ब्राह्मण, भुजाओं से राजन्य (क्षत्रिय), जाँघ से वैश्य तथा पैरों से शूद्र उत्पन्न हुए। उस समय वर्ण जन्मजात न होकर व्यवसाय पर आधारित था। ऋग्वेद में एक स्थान पर एक ऋषि कहता है कि 'मैं कवि हूँ। मेरा पिता वैद्य है तथा मेरी माता अन्न

पीसने वाली है। साधन भिन्न है परन्तु सभी धन की कामना करते हैं।[3] जिससे स्पष्ट है कि व्यवसाय आनुवांशिक नहीं थे। जाति–व्यवस्था के बारे में जटिलता हमें कालान्तर में देखने को मिलता है।

विवाह तथा स्त्रियों की दशा : ऋग्वैदिक समाज में विवाह एक पवित्र बंधन माना जाता था। शतपथ ब्राह्मण में पत्नी को पति की अर्द्धांगिनी कहा गया है। वह पति के साथ यज्ञीय कार्यों में भाग ले सकती थी। पत्नी के बिना व्यक्ति यज्ञ करने का अधिकारी नहीं था। परिवार में एक पत्नीत्व विवाह ही सामान्यतः प्रचलित थे।[4] वैदिक विवाह का विघटन नहीं हो सकता था। विधवाओं के पुनर्विवाह की बात नहीं सोची जाती थी, हालांकि एक ऐसा उल्लेख है जिसमें एक निःसंतान विधवा ने अपने दिवंगत पति के छोटे भाई से विवाह कर लिया था।[5] बाल विवाह एवं विधवा विवाह नहीं होते थे। भाई–बहन एवं पिता–पुत्री का विवाह वर्जित था। पितृसत्तात्मक समाज में पुत्रों की चाह अधिक होना स्वाभाविक ही था। पुत्र ही पिता की अन्त्येष्टि संस्कार सम्पन्न कर सकता था तथा उसी से वंश परंपरा चलती थी। समाज में सती प्रथा के प्रचलित होने का उदाहरण नहीं मिलता है।[6]

समाज में स्त्रियों की दशा काफी अच्छी थी। उन्हें पर्याप्त स्वतंत्रता थी। पर्दा प्रथा का प्रचलन नहीं था। उनकी शिक्षा–दीक्षा की समुचित व्यवस्था थी। ऋग्वेद में घोषा, लोपा, मुद्रा, विश्ववारा आदि स्त्रियों के नाम आते हैं जो पर्याप्त शिक्षित थी। तथा उन्होंने कुछ मंत्रों की रचना भी की थी। स्त्रियों के सामाजिक और धार्मिक अधिकार पुरूषों के समान थे लेकिन उन्हें राजनीति में भाग लेने तथा सम्पत्ति संबंधि अधिकार नहीं होने से उन्हें अयोग्य समझा जाता था।

भोजन तथा वस्त्र : आर्य मांसाहारी तथा शाकाहारी दोनों प्रकार के भोजन करते थे। भोजन में दूध, घी, दही आदि का विशेष महत्व था। ऋग्वेद में एक स्थान पर दूध में पकी हुई खीर (क्षीर पाकौदन) का उल्लेख हुआ है। एक अन्य स्थान पर दही में बनने वाले पनीर का उल्लेख मिलता है। घी में पके हुए मालपूवे (अपूपं घृतवंतम्) का भी वर्णन हुआ है। जौ की सत्तू को दही में मिलाकर (करंभ) नामक खाद्य पदार्थ बनाया जाता था। भोजन को मीठा बनाने के लिए मधु का भी प्रयोग किया जाता था। मधु देवताओं को भी चढ़ाया जाता था। मांसाहार का प्रचलन था। प्रायः भेड़, बकरी, आदि पशुओं का मांस खाया जाता था। गाय के लिए 'अहत्या' (न मारने योग्य) शब्द मिलता है। सोम तथा सुरा आर्यों का मुख्य पेय था। ऋग्वेद के नवें मण्डल में सोम की स्तुति में कई सूक्त मिलते हैं। ऋग्वेद में सुरा के दुष्परिणामों का उल्लेख हुआ है। सुरा की गणना क्रोध, द्यूत, अज्ञान आदि अनिष्टकारी वस्तुओं के साथ की गयी है।[7]

उस समय के लोगों के वस्त्र तीन प्रकार के थे– नीचे पहनने वाले वस्त्र 'नीवि', उसके ऊपर अंग वस्त्र और सबसे ऊपर बाहरी पोशाक पहनते थे। गले के हार, काँटे, कंगन और पायल स्त्री–पुरूष दोनों पहनते थे। बालों

के लिए कंघी और तेल का दोनों प्रयोग करते थे। स्त्रियाँ अपने बाल गुँथ लेती थी। कभी–कभी पुरूष अपने बाल के जुड़े बनाते थे। अविवाहित स्त्रियाँ चार जुड़े बनाती थीं। दाढ़ी रखने की भी प्रथा प्रचलित थी लेकिन दाढ़ी को साफ करने का भी रिवाज था क्योंकि पत्थरों पर उस्तरे तेज करने का उल्लेख भी प्राप्त हुआ है। नाई को 'वाप्त' कहते थे।[8]

आमोद–प्रमोद : ऋग्वैदिक आर्यों को आमोद–प्रमोद के साधनों में रथों और घोड़ों की दौड़ें और नाच तथा चौपट खेला करते थे।[9] जीवन के प्रति उनका दृष्टिकोण पूर्णतया उपयोगितावादी था। वे नृत्य और संगीत में आनंद लेते थे। पासा खेलना भी उनके आमोद–प्रमोद के साधन थे। जुआ (द्युत) भी खेला जाता था। घृतक्रीड़ा के समय लोग हार–जीत के दाँव लगाते थे। एक स्थान पर जुआरी पुत्र को पिता द्वारा डांटे जाने का उल्लेख है। स्त्री तथा पुरूष झांझ–मंजीरे के बाजों के साथ नृत्य में भाग लेते थे। अन्य वाद्यों में दुन्दुर्भि, कर्करि, वीणा, बांसुरी आदि का उल्लेख मिलता है।[10]

निष्कर्ष : हम देखते हैं कि ऋग्वैदिक काल में स्त्रियों की समाज में अच्छी स्थिति थी। भले ही समाज पितृ सत्तात्मक था लेकिन स्त्रियाँ भी अध्ययन तथा यज्ञों में भाग लेती थी। समाज में लोगों ने अपने मनोरंजन साधन के लिए भी तरह–तरह के आमोद–प्रमोद की व्यवस्था कर रखी थी। ऋग्वैदिक कालीन लोग अनेक तरह के पकवान का सेवन किया करते थे। ऋग्वेद में चारों वर्णों के बारे में बताया गया है वह संभवतः व्यवसाय– कर्मों पर आधारित थी। आज भी भारतीय समाज ऋग्वैदिक कालीन वर्ण–व्यवस्था को किसी न किसी रूप में अपनाये हुए है।

संदर्भ :

1. पाण्डे, मिथिला शरण (2007) : *प्राचीन भारत की सामाजिक संस्थाएँ,* नई दिल्ली, ज्ञानदा प्रकाशन, पृ॰ 1
2. श्रीवास्तव, के॰सी॰ (1991) : *प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति,* इलाहाबाद, यूनाइटेड बुक डिपो, पृ॰ 87
3. वही, पृ॰ 87–88
4. वही, पृ॰–88
5. चोपड़ा, पी॰एन॰; पूरी, बी॰ एन॰ एवं दास, एम॰ एन॰ दास (1975), *भारत का सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक इतिहास,* नई दिल्ली, मैकमिलन इंडिया लिमिटेड, पृ॰–42
6. श्रीवास्तव, के॰सी॰, पूर्वोक्त, पृ॰–88
7. वही, पूर्वोक्त, पृ॰–89
8. महाजन, बी॰डी॰ (1962), *प्राचीन भारत का इतिहास,* नई दिल्ली, एस चन्द एण्ड कम्पनी लिमिटेड, पृ॰–65
9. वही, पृ॰–65
10. श्रीवास्तव, के॰सी॰, पूर्वोक्त, पृ॰–90

***

मिथिला में तंत्रवाद का ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

डॉ. सोनी शर्मा *

गुप्तोत्तरकाल से भारतीय समाज में परिवर्त्तन की पृष्ठभूमि तैयार होने लगी थी। चौथी से सातवीं शताब्दी के मध्य भारत की राज व्यवस्था, अर्थव्यवस्था और उसके समाज तथा जीवन के अन्य क्षेत्रों में कुछ बुनिया दी परिवर्तन हुए। कुछ इसके अतिरिक्त अनेक कर्मकाण्डों, वर्णसुधार आन्दोलनों तथा भक्ति आन्दोलन के संबंध में भी समान भाव देखने को मिलती है। सामान्य रूप से तुर्क मुसलमानों के शासन की स्थापना को प्राचीनकाल का अवसान मानाजाता है। अन्ततः जिस वस्तु एवं तथ्य ने प्राचीन भारतीय समाज को मध्यकालीन भारतीय समाज में रूपान्तरित किया, वह थी भूमि अनुदार की प्रथा।इस तथ्य की जानकारी विभिन्न शासकों द्वारा जारी किये गये, अधिकारपत्रों से ज्ञात होता है अनुदान के रूप मे दिये जाते थे।[1] तत्कालीन परिस्थितियो ने भूमिदान की प्रथा को प्रोत्साहन दिया तथा भूमिदानों ने समाज के विभिन्न क्षेत्रों में परिवर्तन का मार्गप्रशस्त किया। वास्तविक रूप में यह सामाजिक भक्तियों की अंतःक्रिया के रूप में परिभाषित करना समीचीन होगा। भूमि अनुदान प्रथा सामंती अर्थव्यवस्था का आधार बनी और इसी ने अंततः प्राचीनभारत को मध्यकालीन भारत का रूप प्रदान किया। भूमि अनुदान पत्रों से स्पष्टहोता है कि दान के द्वारा दानकर्ता पुण्य अर्जित करना चाहते थे। ऐसा प्रतीत होता है कि इस प्रथा का उद्‌भव एवं विकाश प्राचीन समाजिक व्यवस्था के आर्थिक आधार पर हुआ था।[2] तीसरी–चौथी सदियों में सृजित पुराण यह उल्लेख करते है कि विभिन्न वर्गों के स्थान प्राप्त करके अपने–अपने धर्म अर्थात निर्धारित कर्तव्यों से विमुख थे। पुराणों में इसी स्थिति को कलियुग निरूपित किया गया है।अतः यह संभावित जान पड़ता है कि कलियुग की यह स्थिति दक्कन तथा मध्य भारत में पैदा हुई जहाँ अभी ब्राह्मण संस्कृति स्थायित्व प्राप्त नही कर सका था।[3] कालान्तर में कृषि की उन्नति तथा सामाजिक संघर्ष के कारण शुद्रोंके चरित्र में परिवर्तन आया। फलतः वर्ण व्यवस्था में व्यवधान पड़ा और विभिन्न वर्गो के बीच तनाव और अव्यवस्था फेली। इनमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण थी 'भूमि अनुदान' की प्रवृति। राजा और सामंत धार्मिक क्रिया कलापों से सम्बद्ध व्यक्तियों समूहों एवं राजा सता से जुड़े पदाधिकारी को बड़े पैमानेपर भूमि तथा राजस्व के अधिकार प्रदान करने लगे थे। ग्यारहवीं तथा बारहवी सें सताब्दी में उतर भारत के राजपूत राज्यों में इस प्रकार के अनुदान प्रथा व्यापक रूप में पालो, प्रतिहारों तथा राष्ट्रकूटों के पतन के बाद देश अनेक छोटे–छोटे राज्यों में बंट गया था लेकिन भुमिदानों के कारण स्थिति ऐसी बन गई थी कि इन छोटे–छोटे राज्यों में भी राज सत्ता निष्प्रभाव होगई।

---

* पी-एच. डी. (इतिहास), तिलकामाँझी विश्वविद्यालय, भागलपुर

केन्द्रीय, सता नाम मात्र की की रहगई थी।[4] जब कोई गाँव दान दिया जाता था तो वहाँ के निवासियों जिनमें संभावतः शिल्पी भी होते थे उन्हे भी दान भोगियों के स्वामित्व में के अधिन समझा जाता था।[5] किसानों, दस्तकारों और व्यापारियों के अपने–अपने गाँवों से बंध जाने के कारण बंद अर्थव्यवस्था प्रोत्साहित हुआ। पूर्वोतर भारत में इस काल खंड में बौद्ध धर्म का वजयान सम्प्रदाय काफी लोकप्रिय हुआ। इसी प्रशासन से जुड़े विभिन्न भूस्वामियों का उदय हुआ। इस परिवर्तन के कारण यह भी वैश्यो और शूद्रो की पारस्परिक स्थिति में भी परिवर्तन हुआ था।हेनसांग ने स्पष्ट रूप से उल्लेख किया है कि शुद्र किसान है। अलबरूनी को वैश्यों और शुद्रो में कोई विशेष अन्तर नही दिखाई पड़ाता है और, दोनों एक ही मानते थे[6] एक दूसरे के घर आते जाते थे। पूर्व मध्यकाल में जातियों की संख्या में अभूत पूर्व वृद्धि हुइ।जातियों की संख्या में वृद्धि की प्रक्रिया का सबसे प्रबल रूप ब्राह्मणों में दिखाई देता हैं जो ब्राह्मण जिस प्रकार का कर्म कांड करता था या जिस वैदिक विद्या की शाखा का अभ्यास करता थे उसी के नाम पर उसकी अलग जाति बन गई।फलतः काल में धार्मिक सम्प्रदायों की संख्या में वृद्धि जिसके कारण कि हुआ तंत्रवाद का उद्भव था जिसने वर्ण अथवा जातियों की संख्या वृद्धि को सामाजिक व्यवस्था में स्थिर आधार देने की चेष्टा की त्रिक ग्रंथों में मातृ देवी की पूजा को उच्च स्थान प्रदान किया है गया जो मूल रूप से अर्येतर अथवा जाति जन जातियों अथा जाति व्यवस्था की प्रमुख आराध्य देवी थी[7]। यद्यपि तंत्र साधना मुख्य रूप से शैव शाक्त सम्प्रदाय से सम्बद्ध है तथापि वैष्णव, बौद्ध तथा जैन धर्म में भी इस के तत्व स्पष्टरूप से देखे जा सकते है। तंत्र सम्प्रदाय में सामान्यतः शूद्रो और स्त्रियों की दीक्षा की व्यवस्था थी, साथ ही यह तथ्य भी स्पष्टहै कि सिद्ध साधकगणों में जिन चौरासी सिद्ध पुरूषों का उल्लेख है, उनमें ब्राह्मण क्षत्रियों, वैश्य तथा शूद्रोका नाम भी अंकित हैं। तंत्रवाद में समाजिक प्रयोजन की सिद्धी के द्वारा भी खुले खुले मे। तंत्र में सामान्य रोगों के साथ ही सांप, चूहे तथा विषैले कीड़ों के काटने तथा प्रेतबाधाओं के निवारण के लिए अनेक अनुष्ठानों तथा उपचारों का विधान कि गया है।[8] ऐसा माना जाता था कि अनुष्ठानों तथा तंत्र–मंत्र से विष, ग्रहो तथा रोगो के कुप्रभाव का निवारण होता था। औषधियाँ मंत्रोधार के साथ दी जाती थी। मध्यकालीन तांत्रिक वैद्य तथा ज्योतिषी का भी काम करते थे। मिथिला तथा नेपाल में निरंतर ये दृष्टान्त प्राप्त है। इन क्षेत्रों के तांत्रिक भविष्यवाणी करते है और ग्रहणों तथा त्योहारों की मिथियाँ बताते है। वैद्यों तथा ज्योमिषियों के रूप में तांत्रिक आम आदमी की सामाजिक, धार्मिक तथा भावात्मक आवश्यकताओं की पुर्ति करते थे और इस प्रकार वे विभिन्न आर्थिक एवं साम्प्रदायिक समूहों के लोगो के बीच आपसी लगाव पैदा करने में सहायक थे। मिथिला क्षेत्र के प्राचीन मंदियों में स्थापित भैरव, चंडी कली तथा चामुंडा तारा उसे उदाहर हैं तारा अदि प्रतिमा पंत्रवाद को प्रचिनत् समय प्रस्तुत करता है।[9] स्थान जिला खगड़िया में आज भी। व्यवहारतः तंत्र सम्प्रदाय हिंदू धर्म के समान ही था। तांत्रिक समप्रदायों के साहित्य से स्पष्ट होता है कि इसका संबंध समान्य

जानों के दैनिक जीवन से था। फलतः उत्तरोत्तर दुसरा प्रभाव बढ़ता गया। पूर्व मध्यकाल में तांत्रिक समप्रदाय के रूप में विकसित हो चुका था। महानिर्वाण तंत्र में शक्ति को ब्रह्म कहा गया है। प्रत्येक जीव स्त्री के गर्भ से ही उत्पन्न होता है।[10] मूलभूत रूप से सृष्टि का सिद्धान्त स्त्री में है उसे चाहे ब्रह्म की प्रकृति माया कहा जाय या फिर पौराणिक पार्वती, दुर्गा, लक्ष्मी या राधा के नाम से संबोधित किया जाय। वेदाघ्ययन और वेदिक कर्मकाण्ड केवल उच्च वर्गो के लिए था किंतु तांत्रिक साधना स्त्री तथा शुद्र सभी के लिए थी। जब बौद्ध संघ भी अपने द्वार दासों एवं ऋषियों के लिए बंद कर रहा था, तब तांत्रिक चक्र ने वर्ण, लिंग आदि का विचार किये बिना अपना द्वार सभी प्रकार के लोगो के लिए खोल दिये थे। गुप्तोत्तरकाल में बौद्ध धर्म का अत्यन्त परिवर्तित रूप सामने आता है जो तांत्रिक प्रभाव जन साधारण की धार्मिक भावना की तुष्टि के लिए विविध धार्मिक क्रियाओं एवं मंत्रों को सम्मिलित किया गया। जिसके कारण महायान अवलोकितश्वर की पूजा की जाती थी। किंतु आगे चलकर तारा की पूजा की सातवी शताब्दीसे स्तोत्रों में तारा की प्रचुरता दृष्टि गत होती है।बंगाल में पालवंशी राजाओं के राज्य काल में वजयान के मंत्रपाठ तथा कर्मकांडमे के विरोध में एक पृथक तांत्रिक सम्प्रदाय बना।[11] यह सहज यान के नाम से प्रसिद्ध हुआ। सहजी या बौद्ध उच्च विचार, गहन अध्ययन, मूर्ति पूजा इत्यादि से घृणा करते थे। उनके अनुसार सत्य अंतःकरण का विषय है और उसे कृत्रिम उपायो से नहीं जाना जा सकता है और उसे जानने के लिए व्यक्ति को सहज रीति से रहना चाहिये, सहज प्रवृतियों को नहीं त्यागना चाहिए। सत्य ज्ञान के लिए प्रकृति स्वभाव सर्वोतम साधना है। अतः उन्होनें अपना मार्ग सरल और सहज माना है। उन का मार्ग योग क्रिया का है।[12] अब जन जातियों बौद्धधर्म मे तंत्रवाद का विकास बौद्धधर्म को पतन की ओर नम्रसर कर दिया द्वारा बौद्धधर्म मे तारा की पजा शक्ती के रूप में की जाने लगी। तंत्र साहित्य मे शिव को शबर कहते है। लगभग आठवी सदी की रचना गौड़व (लोक 285–347) में विन्ध्यवासिनी को काली या पार्वती बताया गया है[13] और उसे कोलों तथा शबरों से सम्बद्ध दर्शाया गया है।पूर्वमध्यकाल मे मातृदेवी की पूजा पूरे देश में होती थी लेकिन पुराणो तथा अन्य स्त्रोतों से जिस धार्मिक भूगोल की जानकारी मिलती है उससे प्रकट होता है कि नेपाल, असम, बंगाल, उड़ीसा तथा बिहार में स्थित मिथिला शक्ति पूजा के गढ़ थे। यह बात महत्वपूर्ण है क्यों कि छठी सदी के अंत तक इन प्रदेशों में ब्राह्मण संस्कृति का पर्याप्त प्रचार नहीं हो पाया था। यहाँ तक की बिहार में भी अंग, मिथिला तथा मगध के कुछ हिस्से ब्राह्मणों के गढ़ नहीं थे। इस प्रकार तंत्रवाद में मातृदेवी की पुजा का प्रचलन आदिवासियों द्वारा किया गया। अतः यह संभव है कि मातृदेवी के मंदिर बहुत पहले मौजूद रहे होगें जिन्हें छठी सदी में नियमित स्थान दिया गया है।[14] पूर्व मध्यकाल में आंध्र प्रदेश स्थित पद्मावती शक्तिपीठ, बालाजी का प्रसिद्ध वैष्णव मंदिर, मातृदेवी की चौसठ योगिनी के मंदिर जो अधिकंश रूप में पूर्वी मध्य प्रदेश में है,[15] तथा उड़ीसा स्थित कालाहांडी शक्तिपीठ उत्तर–प्रदेश के ललितपुर के दुधई स्थित शक्ति पीठ

सभी जनजातियों को हिंदू धर्म में स्थान देने के लिए में पूर्वमध्यकाल में बनाये गये। घ्यातव्य है कि अधिकांश तांत्रिक ग्रथो कीरचना दुरस्य जनजाती क्षेत्रो में द्वारा मिथिला से संबंधित तांत्रिक पृब्ठभुमि को जानकेमें इस ग्रंथ से मदद मिलती है। उदाहरणार्थ जयाख्य संहिता की पांडुलिपि 1187 ई. में नेपाल में तैयार की गई। सातवीं सदी की उत्तर गुप्त लिपि मे लिखा गया कुब्जिका मत तंत्र नेपाल से प्राप्त हुआ है। बंगाल तथा मिथिला का संबंध प्रचीनकाल से ही प्रगढ़ रहा है। नेपाल से प्राप्त बहुत से अन्य तंत्रो की पांडु लिपियों, राजदरबार के पुस्कालय में संरक्षित है, नेपाल एक एसा देश है जो भारतीय तंत्रवाद से प्रभावित है। मिथिला की लोक संस्कृति एवं गीतों मे पारम्परिक रूप से पुरूषों (पतियों) को मोरंग से वापस आने की विनती स्त्रियों द्वारा की गई है साथ ही उनसे यह भी याचना की गई है[16] कि वे अत्यधिक आर्थिक विपन्नता के कारण काम रूप–कामाख्या का गमन न करें, क्योकि वहाँ तांत्रिक साधिकाएँ पुरूषों को भेड़ बकरी आदि पशुओं में बदलकर अपने अधीन रख लेती हैं ये दृरष्टानतः मिथिला में तांत्रिक लोकप्रियता को प्रदर्शित करती हुई। मिथिला निवासी ज्योतिरीश्वर ठाकुर अनेक ग्रंथो की रचना की, जिसके तंत्रवद की तंत्रवाद झलक देखने को मिलती है। ये कर्णा राजवंश रूप थे तथा संभावित रूप से उनके दरबार में शोभायमान थे। वस्तुतः वर्ण रत्नाकर एक अद्भुत ग्रंथ है[17] तथा किसी भी भाषा में इसके समान अन्य किसी ग्रंथ का उदाहरण नहीं मिलता है।वर्णरत्ना कत्कालीन प्रायः सभी तथ्यो ंको प्रामाणिकता के साथ उद्धृत किया है[18] जो व्यक्ति से आंरभ हो समाज, राज्य, देशतथा नृपतियों के अन्तःपुर से लरकर समरभूमि तक के तथ्यों का वर्णन प्रस्तुत करता हैं इस ग्रंथ,मे सामान्यजनो वन्य जातियों (जनजातियां/आदिवासियों) तथा शासक वर्ग तक का वर्णन मिलता इस ग्रंथ में रचनाकार ने पूर्व मध्यकालीन मिथिला का वास्तविक बिम्बको को दृढ़ता के साथ प्रदर्शित किया है[19] साथ पूर्व मध्यकाल में उद्भूत हिंदू तंत्र वाद तथा बौद्ध तंत्रवाद सहज यान अथवा वज्रयान के उद्भव के कारणों विभिन्न सामाजिक संवर्ग अथर्ग समुदाय की भी चर्चा करते है[20] जोन वोदित धामिक पद्धति के उद्भव का कारण बना सामाजिक प्रतिष्ठा तथ धार्मिक अधिकारो काप अभीष्ठ भी प्राप्त हुआ।ज्योतिश्वर के समय में तंत्र (तंत्रवाद) अत्यन्त प्रचलित रूप से थे तथा राजा भी इसमें निपुण होते थे। तांत्रिक पद्धति में उड़हुल शक्ति का संकेतात्मक अभिव्यक्ति है तथा जिनके संरक्षक पुराणों में कार्तिकेय को माना गया हैं।[21] अतः यह शाक्त तंत्रवाद की अभिव्यक्ति माना जा सकता है जिनमें नारियों के प्रवेश की अनुमति थी।तांत्रिक साधना में रत व्यक्ति 'सिद्ध' कहे जाते थे। तथा इन लोगों सिद्ध साहित्य नाम से लोकप्रिय हुआ।[22] ये 'सिद्ध' साधको ने किसी विशिष्ट सम्प्रदाय का प्रचार–प्रसारन हीं किया बल्कि सिद्धि प्राप्ति हेतु तथा जिज्ञासु साधको के मार्ग दर्शन हेतु सिद्ध साहित्य की रचना की ।इन सिद्ध साहित्य का निरूपण शैव–भक्त तंत्रवाद के अतिसमीप एवं अनुकूल प्रतीत होता है। सिद्ध साधकों ने अपने को किसी मार्ग से बांध कर नही रखा बल्कि मानव अथवा जगत कल्याण की भावना से प्रेरित होकर स्वयं अनुभूत मार्ग का

प्रसार–प्रचार किया।इन सिद्ध साधकों ने गुरू कृपा से प्राप्त रहस्य एवं ज्ञान को व्यक्गिंत साधना अपना कर तंत्रवाद मार्ग का तंत्रवाद मे निम्नजातियों के लोगो का जायजा कि प्रभाव था[23] तथा नारीयो की उपस्थिति आवश्यक समझी जाती है। तंत्रवाद के उद्भव एवं उसके व्यापक स्वरूप के आविर्भाव के साथ सिद्धपीठ का भी दृष्टान्त मिलता है जिनमें प्रमुख नाम कारूप, जालंधर, उडीयान तथा पूर्णगिरि है। ये सभी स्थल मौलिक रूप से तंत्रवाद के प्रचार, प्रसार एवं प्रायोगिक ज्ञान के केन्द्र थे।इनकी महत्ता सर्वोपरि थी। अतिरिक्त तांत्रिक साधना अनेकाअनेक के मिलते है। इस प्रकार मिथिला तंत्रवाद का बहुत बड़ा केन्द्र था। मिथिला में तंत्रवादी सिद्धों की भी चर्चा मिलति है जिन्हो ने तंत्रवाद के मौलिक भाव एवं अेत्रीयता को चरम सीमा तक पहुँचा दिया इसमें हमें निम्न वर्गो की सहयागिता भी देखने को मिलते है।

सन्दर्भ :

1. शूद्राज इन एन शियेन्ट इंडिया, रामशरण शर्मा, पृ. 233.
2. अर्बनडिके इन इंडिया, अध्याय, अध्याय–02 पृ. 51.
3. पूर्व मध्यकालीन भारत का सातंती समाज, आर.एस. शर्मा पू. 74
4. अर्बनडिके इन इंडिया, 1987, परिशिष्ट
5. टीवाटर्स, आन–युआनच्वांग सट्रेवल्स इन इंडिया, पृ. 168.
6. पूर्व मध्यकालीन भारत का सामंती, समाज, आर.एस. शर्मा पृ. 173
7. बौद्ध गान में तांत्रिक सिद्धान्त, श्री जयधारी सिंह, पृ. 6
8. शोधार्थी द्वारा के. पी. जायसवाल शोध संस्थान पटना को प्रेषित प्रतिवेदन
9. पूर्व मध्यकालीन भारत का सामंती और संस्कृति, आर.एस. शर्मा, पृ. 191
10. प्राचीन भारत का इतिहास, डी.एन.झा. श्रीमाली, पृ. 400–401
11. वहीं, पृ. 402
12. वही, पृ. 403
13 वही, पृ. 404
14 वही, पृ. 405
15 डी. सी. सरकार, द शक्ति पीठ, JRAS of Bengal, XIV, पा0
16 मदर राईट इन इंडिया, पृ. 18–35.
17 जे.एन.बनर्जी. पौराणिक एण्ड तांत्रिक रिलीजन, पृ. 130–31
18 विद्या प्रकाश, खजुराहो,
19 हरसासद शास्त्री, उपर्युक्त–1, प्रस्तावना, पृ. 1 XXVII
20 वही, पृ. XXVIII,LXXIV
21 हरप्रसाद शास्त्री उपर्युक्त–1, प्रस्तावना, पृ. 1 XXVII
22 वर्णरत्नाकर, सम्पादक ओव्याख्याकार आनन्द मिश्र / गोविन्द
23 वही, पृ. 10.

***

भारत–अमेरिका संबंध : पनपती प्रगाढ़ता

डॉ. उपेन्द्र कुमार सिंह *

विश्व के महान लोकतांत्रिक देशों में शुमार रखने वाले भारत और अमेरिका वैचारिकी धरातल पर एक दूसरे के सम्बल रहे हैं यद्यपि शुरूआती दिनों में अमेरिका तथा भारत राष्ट्रीय हित, आकांक्षा के चलते एक दूसरे के निकट आने में संकोच तथा अवसरवादिता को महत्व देते रहे हैं। भारत में स्वाधीनता मिलने के बाद से ही भारत अमेरिका सम्बन्ध को दोनों देशों और दोनों प्रजातंत्रों के मिलन और सभ्यतागत समानता ढूँढ़ने के निरन्तर प्रयास के रूप में देखा जा सकता है, जबकि अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर दोनों के हित टकराते रहे हैं आर्थिक और वैश्विक सम्बन्धों के क्षेत्र में भारत और अमेरिका के दृष्टकोण के असमानता के कारण दोनों देशों के सम्बन्धों में लम्बे समय तक कोई प्रगति नहीं हुई। अमेरिका पूंजीवाद अर्थव्यवस्था का समर्थक रहा है जबकि स्वतंत्रता के बाद भारत में विकास के संदर्भ में समाजवादी अर्थव्यवस्था को महत्व दिया। वैश्विक वर्चस्व की लड़ाई में अमेरिका पश्चिम राष्ट्रों को सैनिक गठबन्धों के साथ एकजुट करते हुए पाकिस्तान पर काफी मेहरबान रहा तो वही भारत पिछलग्गू राष्ट्रों की श्रेणी से अलग रहते हुए गुट निरपेक्ष नीति को आत्मसात करते हुए भी अपना झुकाव सोवियत संघ के साथ रखा।

बदली वैश्विक परिदृश्य शीत युद्ध का समापन तथा सोवियत संघ के विघटन ने दोनों जनतांत्रिक देशों को एक दूसरे के निकट तथा दोनों के बीच वास्तविक सम्बन्धों की संभावनाओं को पनपने का एक बड़ा अवसर दिया। भारत–अमेरिकी सम्बन्धों पर रचनात्मक प्रभाव पड़ा तथा द्विपक्षीय सम्बन्धों को मजबूत बनाने के प्रयत्न प्रारम्भ हुआ।

भारत–अमेरीका सम्बन्धों की शुरूआत नेहरू युग से होती है। हालाँकि नेहरू का व्यक्तित्व और दर्शन अमेरीकी नीति निर्माताओं की समझ से परे था। युद्धोत्तर काल में दोनों महाशक्तियाँ एक दूसरे को नीचा दिखाने के उद्देश्य से खेमाबंदी कर रही थी भारत स्वाभाविक रूप से दोनों महाशक्तियों से मैत्री करना चाहता था दोनों से आर्थिक विकास में सहयोग की अपेक्षा रखता था जबकि अमेरिका का मानना या कि जो हमारे साथ नहीं है वह हमारे विरुद्ध है की नीति सम्बन्धों में मधुरपना लाने में बड़ी अड़चन थी। यही नहीं भारत–पाक युद्धों के बीच यू.एस.ए. द्वारा पाकिस्तान को अस्त्र–शस्त्रों की आपूर्ति भी सम्बन्धों को पनपने से रोक रखा था। लेकिन 1962 में चीन के साथ युद्ध में भारत के अनुरोध पर कनेडी प्रशासन

* स्नातकोत्तर, राजनीति विज्ञान विभाग, जय प्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा

द्वारा युद्ध सामग्री पर्याप्त मात्रा में भेजी गयी जो सम्बन्धों में एक सार्थक पहल थी। नेहरू युग में अमेरिका ने भारत के साथ दोहरी नीति अपनायी एक तरफ भारत के साथ दबाव की नीति अपनायी तो दूसरी तरफ भारत के साथ विभिन्न क्षेत्रों में सहयोग भी किया।

श्रीमती इन्दिरा गांधी से लेकर नरसिम्हा राव तक का नेतृत्व भारत अमेरिका सम्बन्ध खट्टे–मीठे अनुभवों से गुजरते रहे सभी प्रधानमंत्री इस प्रक्रिया में अपना–अपना योगदान देते आए हैं। अटल बिहारी वाजपेयी के नेतृत्व में बनी भाजपा सरकार ने जब 11 एवं 13 मई 1998 को जब नाभिकीय परीक्षण किया तो क्लिंटन प्रशासन ने परीक्षणों को खतरनाक गलती बताते हुए अमेरीकी परमाणु अप्रसार कानून के तहत प्रतिबन्धों की घोषणा की जिसमें सभी द्विपक्षीय सैन्य एवं आर्थिक मदद समझौते सम्मिलित थे जिससे भारत–अमेरीका सम्बन्धों में काफी असहजता आयी।

समय के साथ–साथ अमेरीका ने भारत की सुरक्षा चिन्ताओं को नये सन्दर्भ में देखने लगा तथा उसे लगा कि वर्तमान समय में भारत एक उभरती हुई ताकत है इसलिये उसे अब नाभिकीय तकनीक तथा आधुनिक राष्ट्र सम्पन्न देशों की सूची से बाहर रखना सम्भव नहीं है। बदलते वैश्विक परिदृश्य में अधिक परिपक्व होती भारतीय अर्थव्यवस्था के कारण भारत को एक साथी बनाने का आकर्षण तथा अमेरीका के प्रति भारत का झुकाव सम्बन्धों में नयी शुरूआत लेकर आया।

भारत अमेरिका सम्बन्धों में प्रगाढ़ता की शुरूआत राष्ट्रपति क्लिंटन तथा वाजपेयी युग से होती है। क्लिंटन भारतीय व्यापार की विशालता और क्षमता से काफी प्रभावित थे तथा इससे प्रेरित होकर भारत के साथ 1995 में वाणिज्य सचिव रॉन ब्राऊन द्वारा राष्ट्रपति व्यापार विकास मिशन की शुरूआत की गयी।

वर्ष 1999 से भारत अमेरिका सम्बन्धों की गति तथा दिशा में काफी परिवर्तन आया। 9/11 को अमेरिका में आतंकवादियों द्वारा वर्ल्ड ट्रेड पर किये गये हमलों से यू.एस.ए. प्रशासन यह सोचने को मजबूर हुआ कि आतंकवाद के विरूद्ध लड़ाई में भारत को साथ लिये बिना लड़ना सम्भव ही नहीं हैं इससे भारत–अमेरिका का साथ आना स्वाभाविक था। 22 वर्षों बाद किसी अमेरिकी राष्ट्रपति क्लिंटन द्वारा भारत की 5 दिवसीय यात्रा भारत अमेरीका सम्बन्धों में एक नया मोड़ था। इस यात्रा के दौरान विभिन्न क्षेत्रों में आपसी सहयोग बढ़ाये जाने सम्बन्धी दृष्टिकोण 2000 नामक घोषणा पत्र पर हस्ताक्षर किया गया। क्लिंटन की यात्रा के तुरन्त बाद वर्ष 2001 में वाजपेयी द्वारा अमेरिका की यात्रा ने वैश्विक चुनौतियों का सामना करने में अमेरिका भारत को एक महत्वपूर्ण सहयोगी के रूप में देखने लगा। साथ ही अमेरिकी नीति निर्धारक का मानना है कि एशिया में चीन के उभार को रोकने में एक मजबूत भारत की महत्वपूर्ण भूमिका हो सकती है, सम्बन्धों की प्रगाढ़ता को महत्वपूर्ण कारण रहा है।

भारत और अमेरिका के बीच संयुक्त कार्य समूहों की रचना और उच्चस्तरीय आदान–प्रदान का विस्तार होना शुरू हो गया। दिसम्बर 2006 में अमेरिकी राष्ट्रपति जार्जबुश और भारतीय प्रधानमन्त्री मनमोहन सिंह के बीच परमाणु सहयोग समझौते को कार्यान्वित करने के लिये आवश्यक विधेयक को अमेरीकी कांग्रेस ने पारित किया जिससे अमेरीका–भारत असैनिक नाभिकीय करार 10 अक्टूबर 2008 अस्तित्व में आया जो दोनों देशों के द्विपक्षीय सम्बन्धों के नया मोड़, कई मसलों पर नई पहल के दरवाजे खोले हैं। राष्ट्रपति बुश के शब्दों में अब हमारे सम्बन्ध नाटकीय ढंग से बदल गये हैं, हमारे बीच अब रणनीतिक साझीदारी है।

भारत और अमेरिका सम्बन्धों में सुधार की गति धीमी रही क्योंकि अमेरिका अपने वित्तीय और बैंकिंग समस्याओं और यूरो क्षेत्र की समस्याओं से जूझ रहा था और भारत भी आर्थिक मामलों में निर्णयहीनता की अपनी समस्याओं से दो–चार हो रहा था। भारत में प्रधानमंत्री के पद पर नरेन्द्र मोदी ने जब सत्ता संभाली तो भारत–अमेरिका सम्बन्ध एक प्रकार के ठहराव की अवस्था में थें। दोनों देशों में एक बड़े परिदृश्य को सामने रखने की बजाय व्यक्तिगत हितों के प्रभाव में निर्णय लिए जा रहे थे। भारत ने दोहा व्यापार वार्ता में अपने खाद्य–सुरक्षा के मुद्दों को तरजीह नहीं दिये जाने के कारण विरोध प्रकट किया था। भारत द्वारा कड़े परमाणु मुआवजा कानून बनाये जाने से अमेरिका अपमानित महसूस कर रहा था। चाहे अमेरिकी संसद में तथाकथित भारत में बौद्धिक अधिकारों के उल्लंघन पर चर्चा हो या फिर अमेरिका में वीसा नियमों में बदलाव हो अनेक टकराव के मुद्दे पैदा हो रहे थे जो सम्बन्धों में खटास पैदा कर रहे थे। इस गतिरोध को तोड़ने के लिए सितम्बर 2014 में भारतीय प्रधानमंत्री की अमेरिका यात्रा और राष्ट्रपति बराक ओबामा की जनवरी 2015 में भारत यात्रा ने परस्पर सम्बन्धों में गति प्रदान की। ओबामा अपने कार्यकाल में दो बार भारत आने और साथ ही भारत के गणतंत्र दिवस पर मुख्य अतिथि होने वाले पहले अमेरिकी राष्ट्रपति हैं। भारत यात्रा के दौरान दोनों देशों के बीच परस्पर विश्वास एवं सहयोग के विषय बड़े हैं। पिछले वर्षों में भारत–अमेरिका के सम्बन्ध में काफी सुधार आया है व्यापार तथा आर्थिक सहयोग एवं रणनीतिक सभी मुद्दों पर ध्यान दिया गया है। व्यापार के मुद्दों पर सुनिश्चित किया गया कि वस्तु और सेवाओं के द्विपक्षीय व्यापार को पाँच गुना बढ़ाकर 100 अरब डालर किया जाए तथा इसके लिए आधारभूत सुविधाओं के विकास की भी संस्तुति की गयी। भारत अमेरिका अपने सम्बन्धों में प्रगाढ़ता लाने के उद्देश्य से रक्षा और आंतरिक सुरक्षा के मामलों पर पूरा ध्यान दिया है रक्षा–सहयोग, रक्षा तकनीक प्रदान करने और मालाबार सामुद्रिक अभ्यास को जारी रखने जैसे पुराने समझौते का फिर से जारी रखने की घोषणा की गई।

आतंकवाद का सामना करने के मुद्दे पर दोनों देशों ने अपने संकल्प को दोहराया और कहा कि सम्मिलित और ठोस उपाय जिसमें आतंकियों के

सुरक्षित ठिकानों को नष्ट करना सम्मिलित है, किये जाना अत्यन्त आवश्यक है। भारत में पाकिस्तान द्वारा प्रायोजित जिस आतंकवाद पर अमेरिका मुकदर्शक बना रहता था उस पर लगाम कसना शुरू कर दिया लश्कर–ए–तोएबा और हाफिज सईज तथा दाऊद समूह पर प्रतिबन्ध लगाकर एवं 26/11 में मुम्बई में हुए आतंकी घटना पर पाकिस्तान को फटकार लगाकर एवं चेतावनी देकर भारत–अमेरिका सम्बन्धों को सम्बल देने का कार्य किया गया।

उच्च तकनीक, अन्तरिक्ष एवं स्वास्थ्य सहयोग के मुद्दे पर उन क्षेत्रों पर ध्यान दिया जा रहा है जो भारत को विनिर्माण में 21वीं सदी के स्तर का विशेषज्ञता दिला सकता है। रणनीतिक मोर्चे पर भारत अमेरिका समझौता एक्ट ईस्ट नीति एशिया में समन्वय नीति के बीच संतुलन साधता दिखा। मध्य, दक्षिण और पूर्वी एशिया में सम्पर्क की भारत–अमेरिका की नीति चीन के वन बेल्ट, वन रोड, हब एंड स्पोक का उत्तर है।

एशिया प्रशान्त क्षेत्र में शान्ति और सुरक्षा बनाये रखने पर जोर दिया जा रहा है और समुद्री आवागमन विशेषकर दक्षिण चीन सागर में की स्वतंत्रता पर विशेष जोर दिया जा रहा है।

अमेरिका द्वारा भारत में रक्षा के क्षेत्र में सहयोग के उद्देश्य से नई दस वर्षीय रक्षा फ्रेम समझौते के द्वारा अमेरीकी तकनीक को भारत में मेक इन इण्डिया डिजाइन के साथ मिलाना भारतीय रक्षा तकनीक के लिए एक स्वर्णिम अवसर है।

विगत वर्षों में भारत अमेरिका के बीच महत्त्वपूर्ण अहम समझौते हुए हैं–

- अवसंरचना के क्षेत्र में सहयोग को लेकर बनी सहमति।
- 25 जनवरी, 2015 को अमेरिका की व्यापार एवं विकास एजेन्सी और आन्ध्र प्रदेश, उत्तर प्रदेश और राजस्थान की सरकारों के बीच विशाखापत्तनम, इलाहाबाद और अजमेर को स्मार्ट सिटी के तौर पर विकसित करने को लेकर समझौता हुआ। इससे सम्बनिधत एमओयू पर भी हस्ताक्षर किए गए।
- यूएसएआईडी और भारत सरकार के शहरी विकास मंत्रालय और स्वच्छ भारत अभियान जैसी प्रधानमंत्री की महत्वाकांक्षी योजनाओं को साकार करने के लिए एएमओयू पर हस्ताक्षर किए।
- डिजिटल इंडिया प्रोग्राम के क्रियान्वयन में सहयोग की संयुक्त घोषणा।
- यूएसएआईडी ने आईआईटी गांधीनगर के साथ नॉलेज पार्टनरशिप पर जताई सहमति।
- अमेरिका ने अकादमिक विकास की दिशा में भारत के वैश्विक अकादमिक नेटवर्क (ज्ञान) सथापित करने के प्रयासों का किया समर्थन। भारत में शॉर्ट टर्म अध्यापन और रिसर्च प्रोग्राम के लिए 1000 अमेरिकी शिक्षक भारत के विश्वविद्यालयों से जुड़ेंगे।

- वाशिंगटन में भारत–अमेरिका निवेश उपक्रम की स्थापना को लेकर बनी सहमति।
- व्यापार नीति फोरम की मंत्री स्तरीय बैठक पर बनी सहमति।
- भारत में स्वच्छ ऊर्जा की परियोजनाओं के लिए अमेरिका का एक्जिम बैंक देगा एक अरब डॉलर। अमेरिकी निजी कंपनियों ने भी इस सेक्टर में निवेश पर जताई सहमति।
- नवंबर, 2015 में इंडो–यूएस तकनीकी समिट के आयोजन पर सहमति। अमेरिका पहली बार होगा साझीदार देश।
- उच्च तकनीकी उत्पादों के विकास के लिए सहयोग को दोनों देशों में सहमति

भारत का अमेरिका के साथ नजदीकी सम्बन्धों के लिए ढेर सारे संभावनाएँ हैं विशेषकर जब चीन द्वारा एशिया में जब आर्थिक एवं सामारिक साम्राज्यवाद को प्रोत्साहन दिया जा रहा हो। चीन दक्षिण चीन सागर में अपना लगातार नियंत्रण बढ़ा रहा है। इस परिप्रेक्ष्य में भारत अपनी कई दशकों पुरानी निर्गुट से बहुगुट की नीति की ओर अग्रसर हो गया है अब अमेरिका को आगे बढ़ना होगा।

भारत और अमेरिका निस्संदेह हर क्षेत्र में काफी करीब आ रहे हैं लेकिन कुछ क्षेत्र अब भी हैं जिन पर दोनों देशों के बीच सहमति नहीं है। इसके बावजूद सम्बन्धों में अवसर तलाशने होंगे। भारत और अमेरिका के लिए चुनौती होगा कि वे अतीत में गंवा दिये गये मौकों की भरपाई आने वाले दशक में कर लें।

सन्दर्भ :

1. योजना, जुलाई 2015
2. डॉ. बी.एल. फाड़िया : अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध, साहित्य भवन प्रकाशन, आगरा, 2012, पृ. 185.
3. बी.एल. खन्ना, लिपाक्षी अरोड़ा : भारत की विदेश नीति, विकास पब्लिकेशन हाउस प्राइवेट लिमिटेड, नोएडा, 2015, पृ. 332–375.
4. डॉ. एस.सी. सिंघल : अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा, 2014, पृ. 305.
5. डॉ. एस.सी. सिंघल : भारत की विदेश नीति, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा, 2017, पृ. 318.
6. सी.एच. कार : दो विश्व युद्धों के बीच अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा, 2018, पृ. 174.

***

स्त्री प्रश्न - इतिहासकार की नजर से

डॉ. उपमा श्री *

शिशु प्रकृति की देन है परंतु जन्म लेते ही वह भेदभाव का शिकार होने लगता है, यदि उसका लिंग स्त्री है। लिंग आधरित भेदभाव की कहानी स्वयं मानव की देन हैं। शताब्दियों से बालिकाएँ, किशोरियाँ, युवतियों, प्रौढ़ाएँ, वृद्धाएँ केवल इस आधार पर भेदभाव का शिकार होती आई है, क्योंकि उनका जन्म एक स्त्री के रूप में हुआ है। इसी को नारीवाद 'जेन्डरीकरण' कहते हैं यानि सांस्कृतिक रूप से लड़की और लड़के के भेद का निर्माण करना। लड़की के जन्म होने पर उसकी हत्या या फिर माँ की उपेक्षा तथा अपर्याप्त प्रसवोत्तर देखभाल स्त्रियों के प्रति किये जाने वाले भेदभाव में प्रमुख है। कोई भी राष्ट्र तभी उन्नति कर सकता है, जबकि वहाँ की जनता में लिंग, जाति, धर्म के आधार पर किसी भी प्रकार का भेदभाव न हो। परन्तु, हमारे भारतीय इतिहास में लिंग, जाति, वर्ग के आधार पर भेदभाव काफी प्राचीन समय से चला आ रहा है, और इनकी जड़े काफी गहराई तक धँसी हुई है।[1]

जेंडर या नारीवादी आंदोलन का अभिप्राय पुरुषों तथा महिलाओं की भूमिकाओं तथा आचरणों के बारे में सामाजिक अपेक्षाओं से है। जेंडर की परिभाषा पुरुषों और महिलाओं की भूमिकाओं, महिला पुरुष संबंधों तथा आचरणों के जैविक व सामाजिक स्वरूप में अंतर करती है। नारीवादी राजनीति के अंतर्गत पितृसत्ता एक ऐसी सामाजिक सत्ता को अभिव्यक्त करती है जिसका पलड़ा पुरुषों की ओर झुका होता है। कई लोग इसे जेंडर की ऐसी श्रेणी के रूप में देखते हैं जिसके अंतर्गत हालांकि यह आवश्यक तो नहीं होता है पर प्रायः पुरुष महिलाओं का शोषण एवं दमन ही करते हैं।[2] यह आंदोलन नारी पर होने वाले अत्याचारों एवं उसकी पराधीनता पर अपना ध्यान केंद्रित करता है। नारीवाद आंदोलन के प्रारंभिक संकेत 18वीं एवं 19वीं शताब्दी के यूरोपीय चिंतन में देखे जा सकते है। 18वीं शताब्दी की दो रचनाएँ मेरी वाल्स्टोनक्राफ्ट की विंडिकेशन ऑफ दी राइट्स ऑफ वीमेन एवं जान स्टुअर्ट मिल की सब्जेक्शन ऑफ विमेन में नारी अधिकारों के समर्थन में अनेक प्रकार के तर्क एवं स्पष्टीकरण दिए गए हैं, तथा उनकी स्वतंत्रता की बात कही गई है।मेरी स्त्रियों के अधिकारों की तुलना मानव अधिकारों से करती है।वर्जिनिया वुल्फ ने अपनी किताब अपनी किताब। *Room of one's own* में कहा कि स्त्रियों को वित्तीय रूप से आत्मनिर्भर होना चाहिए तथा उनका एक स्वयं का कमरा होना चाहिए, जिसका मतलब आर्थिक सुरक्षा और एकान्तता से है और इन दोनों विषयों को लेकर स्त्रियों

* (आई.सी.एच.आर.), जेट, नेट पीएच. डी., इतिहास विभाग, पटना विश्वविद्यालय जे.आर.एफ.

को पुरुषों की तुलना में परम्परागत रूप से अलग रखा गया है। उनका प्रसिद्ध वाक्य है कि तुम्हारे पास पाँच सौ पौण्ड सालाना हो और साथ में एक अपना निजी कमरा जिसे तुम भीतर से बंद कर सको।[3] वर्जीनिया वुल्फ ने एक जगह लिखा हैं, 'इतिहास में जो कुछ भी अनाम है वह औरतों के नाम हैं'।[4]

नारीवादी चिंतन को परिणति पर पहुँचाया *द सेकेण्ड सेक्स* (1949) की फ्रांसीसी लेखिका सिमोन द बोउवार ने। *'औरत पैदा नहीं होती, बनाई जाती है'* उनकी पुस्तक की सारगर्मित पंक्ति है जो आज भी प्रासंगिक है। उन्होंने अत्यंत सटीकता से इस बात को स्थापित किया है यह दुनिया पुरुषों की है। जिस समय फांस में लेखिका ने यह पुस्तक लिखकर तहलका मचा दिया था, लगभग उसी समय भारत में महादेवी वर्मा में नारी समस्या पर केंद्रित पुस्तक' श्रृँखला की कड़ियाँ' में लिखा था– इस समय हमारे समाज में केवल दो प्रकार की स्त्रियाँ मिलेगीं। एक वे, जिन्हें इसका ज्ञान भी नहीं था कि उनका भी एक स्वतंत्र अस्तित्व है..... दूसरी वे जो पुरुषों की समता करने लिए उन्हीं के दृष्टिकोण से संसार को देखने में, उन्हीं के गुण व अवगुण का अनुकरण करने में जीवन के चरम लक्ष्य की प्राप्ति समझती हैं। सारांश यह है कि एक ओर 'अर्थहीन अंधनुसरण' तो दूसरी ओर 'अनर्थमय अंधनुकरण'।[5] जिसे हम नारीवादी आंदोलन कहते हैं उसकी शुरूआत 1960 के दशक के मध्य में अमेरिका में हुई। कुछ ही समय में संपूर्ण यूरोप में फैल गया। स्त्रियों के सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक अधिकारों पर केंद्रित नारीवाद की प्रमुख धाराएँ हैं– सुधारवादी या उदारवादी, मार्क्सवादी–समाजवादी, उग्र–सुधारवादी या रेडिकल[6] और उत्तर आधुनिकतावादी।[7]

सुधारवादी या उदारवादी धारा इस बात पर बल देती है कि स्त्री–पुरुष का फर्क शारीरिक है और इन दोनों की अस्मिताओं का निर्माण, क्षमता एवं अक्षमता का आधार एवं सांस्कृतिक रूपों की पहचान कर आधार शरीर नहीं है। कोई भी व्यक्ति स्त्री है या पुरुष प्रकृति प्रदत्त है, परंतु उसके लिंग की पहचान सांस्कृतिक कारकों के माध्यम से की जाती है। स्त्री की पहचान जन्मजात न होकर सामाजिक है। 18वीं सदी के प्रारंभ में उदारवादी नारीवाद की शुरूआत हुई। उदारवादी नारीवादी परिप्रेक्ष्य ने आजादी और समानता के जनतांत्रिक मूल्य और औरत की अधीनता के बीच के अंतर्विरोध को रेखांकित किया। [8] किंतु अब भी औरतों के मामले में कोई स्पष्ट विचार सामने नहीं आया। विभिन्न दार्शनिकों का मानना है कि चूँकि औरत स्वभाव से भावुक, शरीर से कोमल और तर्क के मामले में कमजोर होती है, जिसके चलते उन्हें हर क्षेत्र में पुरुषों की सहायता या यूँ कहें कि उन्हें पुरुषों के संरक्षण की आवश्यकता होती है। लेकिन सैद्धांतिक एवं व्यवहारिक रूप में उनके सामाजिक और राजनीतिक स्थिति में बदलाव आया। उदारवादी नारीवादियों में मेरी वाल्स्टोनक्राफ्ट (1759–1797) ने जोरदार ढंग से

उदारवादी विचारधारा की बुनियाद रखी। उन्होंने 1792 ई. में अपनी प्रकाशित पुस्तक *विंडिकेशन ऑफ द राइट्स ऑफ विमेन* में महिला अधिकारों की सशक्त वकालत की। उदारवादी नारीवादियों के आंदोलन के लक्ष्य थे पुरुषों पर महिलाओं के कानूनी, आर्थिक और सामाजिक निर्भरता को समाप्त करना। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि उदारवादी नारीवाद ने समानता और अधिकार के सिद्धांत की वकालत कर महिलाओं को दोयम दर्जे ठहराने वाले धारणाओं का विरोध किया, जिससे पूर्वकाल से चली आ रही नारी से संबंधित धारणाओं में बदलाव आया और नारीवादी आंदोलन को बल भी मिला।

समाजवादी या मार्क्सवादी धारा ने महिलाओं के शोषण के कारणों को ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में ढूँढ़ने का प्रयत्न किया। पितृसत्तात्मक परिवार में देखा गया है कि स्त्रियाँ आर्थिक और सामाजिक तौर पर पुरुषों पर आश्रित रहती है। अधिकांश महिलाओं को घर के अंदर अधीनता, अलगाव और शोषण का सामना करना पड़ता है लेकिन मार्क्सवादी विचारधारा का मानना है कि जो महिलाएँ घर से बाहर काम करती है, आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर रहती है, उनके साथ शोषण की उम्मीद कम रहती है। यह समाजवादी धारा मार्क्सवाद से जुड़ी होने के कारण लिंग आधरित श्रम विभाजन को सारे शोषण का कारण मानती है। समाजवादी महिलाएँ पूंजीवादी व्यवस्था की विरोधी रही है क्योंकि पूंजीवाद पितृसत्ता को मजबूत करता है और इस तरह पूंजीवाद पितृसत्ता को न केवल सर्मथन देता है, बल्कि इसे मजबूत भी करता है।

उग्र सुधरवादी यानी रेडिकल धारा स्त्री शोषण को ही सारे शोषण की जड़ मानती है और इसका नारा था *'द पर्सनल इज पॉलिटिक्स'* यानि वैयक्तिक कुछ भी नहीं है, सभी कुछ राजनीतिक है। रेडिकल नारीवादी सिद्धांत में पुरुषों द्वारा महिलाओं के उत्पीड़न को समाज में व्याप्त सब प्रकार के सत्ता संबंधों की गैर बराबरी की जड़ में देखा जाता है।[10]

उत्तर आधुनिकतावादी या सांस्कृतिक नारीवादी धारा ने स्त्री–विमर्श को चरमोत्कर्ष पर पहुँचाया है। इनका मानना है कि स्त्री का मतलब जैविक विभेद नहीं, बल्कि स्त्री शब्द का एक सुनिश्चित अर्थ है। स्त्रियों का जो चित्रण पितृसत्ता द्वारा किया गया है, वो एक भ्रम है और उनकी यह स्थिति मनुष्यों द्वारा बनाई गई है, न कि प्रकृति प्रदत्त है।

इन धाराओं ने पितृसत्ता को प्रश्नों के घेरे में लाकर खड़ा कर दिया है। पितृसत्ता के समर्थकों का मानना है कि यह परम्परा हमेशा से ही अस्तित्व में रही है और आगे भी जारी रहेगा। उनका यह मानना है कि पुरुषों का जन्म शासन करने के लिए हुआ है तथा प्रकृति के अन्य नियमों की तरह इसमें भी कोई परिवर्तन नहीं हो सकता। वहीं इस धारणा को चुनौती देने वाले दूसरे लोग भी है और उनका मानना है कि यह पुरुषों के द्वारा निर्मित है और इसलिए यह परिवर्तित हो सकता है। प्रसिद्ध भारतीय

नारीवादी लेखिका कमला भसीन के शब्दों में यह हमेशा से ही अस्तित्व में नहीं रहा है, अगर पितृसत्ता की शुरूआत है तो इसका अंत भी हो सकता है। (It has not Always existed, if it has A beginning And therefore it can haveAn end.)[11] गर्डा लर्नर ने पितृसत्ताक के परम्परावादी विचारधारा की व्याख्या करते हुए कहा है कि स्त्रियां बच्चों को जन्म देती है, उनके जीवन का मुख्य लक्ष्य माँ बनना है और उनका मुख्य कार्य बच्चों को वहन करना और उनका लालन–पालन करना है। इस तर्क का सिद्धांत यह है कि पुरुष शारीरिक रूप से मजबूत होते है, शिकारी बन कर भोजन उपलब्ध कराते है, जबकि स्त्रियाँ चूंकि बच्चों को जन्म देती हैं और उन्हीं के परवरिश में व्यस्त रहती है, उन्हें पुरुषों के सुरक्षा की जरूरत है। यह जैविकीय धरणा गर्डा लर्नर के अनुसार बिना किसी खण्डन के पाषण काल से अब तक निरंतर चली आ रही है और यह विचारधारा मानती है कि पुरुष श्रेष्ठ है।[12]

विचार या धारणा जो ये मानते हैं कि पुरुष जैविकीय रूप से श्रेष्ठ है तथा परिवार के मुख्य प्रबंधक तथा खाद्य उपलब्धकर्ता है, धीरे–धीरे खण्डित होती जा रही है। शिकार और कबीलाई समाज पर हो रहे शोधों से यह पता चलता है कि इन सभी समाजों में भोजन कुछ समय के लिए पुरुषों द्वारा उपलब्ध कराये जाते थे जबकि मुख्य एवं रोजमर्रा के भोज्य पदार्थ ;कंदमूल फल स्त्रियाँ और बच्चों के एकत्रित करने की क्रिया के कारण उपलब्ध होते थे। आज भी दक्षिण एशिया के बहुत सारे जनजातीय समाज में स्त्रियों को ज्यादा सम्मान प्राप्त है। बहुत से परम्परावादी यह तर्क देते हैं कि चूंकि स्त्रियाँ बच्चों को जन्म देती हैं तथा मासिक धर्म होती है इसलिए वे अक्षम और अयोग्य हैं। गर्डा लर्नर ने *(क्रियेशन ऑफ पैट्रिआर्की, 1986)* 'पितृसत्ता के तहत स्त्री के अधीनीकरण की प्रक्रिया का सभी सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक संस्थानों में कारगर होने को ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में विश्लेषित किया। ''स्त्री की यौन अधीनता सबसे प्रारंभिक कानूनी व्यवस्थाओं में भी मौजूद थी और उसे राज्य की सम्पूर्ण शक्ति के साथ कार्यान्वित किया जाता था। इतिहास के सबसे प्रारंभिक राज्य भी पितृसत्ता के रूप में ही संगठित थे और पितृसत्तात्मक परिवार व्यवस्था को बनाये रखने के लिए काफी सजग थे।''[13]

अरस्तू ने भी इसी प्रकार के सिद्धांत को प्रस्तुत किया है और कहा कि पुरुष क्रियाशील है, स्त्रियाँ निष्क्रिय। अरस्तू के अनुसार स्त्रियों की जैविक या शारीरिक क्षमता, उनकी क्षमताओं को भी हीन बनाती है। उनमें तर्क वितर्क करने की क्षमता और निर्णय लेने की क्षमता को भी प्रभावित करती है। चूंकि पुरुष श्रेष्ठ हैं और स्त्रियाँ हीन, पुरुषों का जन्म शासन करने के लिए तथा स्त्रियों का शासित होने के लिए हुआ है। पुरुष की बहादुरी या साहस आज्ञा व निर्देशन देने में है तथा स्त्रियों की आज्ञा मानने में। पुरुष वर्चस्वता के इस सिद्धांत को नारीवादियों द्वारा चुनौती दी गई है। उन्होंने यह साबित किया है कि इस तरह के तर्क के पीछे किसी भी प्रकार

के ऐतिहासिक या वैज्ञानिक तथ्य नहीं है। वे पुरुष तथा स्त्री की शारीरिक भिन्नता को मानते है जिस कारण उनकी भूमिका या कार्यों में भी भिन्नताएँ होती है, लेकिन यह भिन्नताएँ लैगिंक श्रेष्ठता का आधार नहीं बन सकती जिसमें पुरुष को श्रेष्ठ माना जाए।

फेडरिक ऐंगिल्स ने अपनी पुस्तक *दी ऑरिजिन ऑफ दी फैमिली, प्राइवेट प्रॉपर्टी एण्ड दी स्टेट,* में कहा है कि पितृसत्ता की शुरूआत व्यक्तिगत संपत्ति के आरंभ के बाद हुई। उनका मानना है कि स्त्रियों की अधीनस्थता निजी संपत्ति के विकास के साथ शुरू हुई। उन्होंने समाज के तीन चरण के बारे में बताया है – 1. जंगलीपन या बर्बरता 2. असभ्यता 3. सभ्यता।[14] जंगलीपन तथा बर्बरता के काल में मानव जानवरों की तरह रहता था, भोजन एकत्रित तथा शिकार करता था। उस समय न विवाह था और न ही संपत्ति की धारणा। संग्रहण तथा शिकार करना असभ्यता के काल में भी कायम रहा और धीरे–धीरे कृषि और पशुपालन का विकास हुआ। पुरुष शिकार के लिए दूर–दूर तक जाने लगे तथा स्त्रियाँ बच्चों को संभालने तथा घर की देखभाल के लिए घर में रहने लगीं। श्रम का लैंगिक विभाजन धीरे–धीरे विकसित हुआ। मनुष्य ने आग का प्रयोग करना शुरू किया और हथियारों का निर्माण भी प्रारंभ हुआ। इनका प्रयोग बड़े शिकार के लिए साथ ही अंतर समूह विवादों में भी किया जाता था। दास प्रथा का विकास हुआ और कबीलों ने पशुओं और दासों को विशेषकर महिला दासों को प्राप्त करना शुरू किया। साफ था कि पूंजिपति जिस तरह अतिरिक्त मूल्य के दोहन के जरिए मजदूरों का शोषण करता है उसी तरह पुरुष महिलाओं के घरेलू श्रम का कुछ भी मुआवजा दिए बिना उससे लाभान्वित होते है। यह सब निजी संपत्ति के निर्माण के कारण हुआ। पुरुष इस शक्ति और सपंत्ति को कायम रखना चाहते थे तथा इसे अपने बच्चों को हस्तांतरित करना चाहते थे। इस परम्परा को सुनिश्चित करने के लिए माँ के अधिकारों को सीमित कर दिया गया, साथ ही उनकी कामवासना को भी नियंत्रित किया गया। इस तरह पितृसत्ता और एकपति विवाह स्थापित हुए।[15]

चूंकि उत्पादन में प्रमुख भागीदारी पुरुषों की होती थी, अतः स्त्रियाँ आर्थिक रूप से उनपर आश्रित हो गई। एंगिल्स के अनुसार सभ्यता के काल में स्त्रियों को चारदीवारी में बंद कर दिया गया ताकि वे उत्तराधिकारी पैदा कर सके और उसमें कोई विशुद्धता न हो। इस प्रकार यह शुरूआत थी, विवाह के क्षेत्र में दोहरे लैंगिक स्तर या मानदंड का जिसमें पुरुष एक से अधिक स्त्रियों से विवाह कर सकता था, जबकि स्त्रियों को एक ही पुरुष से विवाह की अनुमति थी। ऐंगिल्स ने मध्यवर्गीय और कामकाजी स्त्रियों में भेद बताया है। मध्यवर्गीय स्त्रियाँ, पूर्णरूपेण अपने पति पर आश्रित रहती थी, वह एक संपत्ति थीं और उन्हें बच्चे पैदा करना था जबकि कामकाजी स्त्रियों ने उत्पादन के कार्यों में हिस्सा लेकर इस दवाब को अपने उपर हावी नहीं होने दिया। ऐंगिल्स और अन्य मार्क्सवादियों ने तर्क दिया है कि जैसे ही एक बार

निजी संपत्ति का अंत होगा और स्त्रियाँ श्रम शक्ति से जुड़ेगी, पितृसत्ता का लोप हो जाएगा।

जीव विज्ञानियों का मानना है कि स्त्री की शारीरिक बनावट ही उनकी हीनता का कारण है। मासिक धर्म होने, बच्चों को जन्म देने तथा उनहें दूध पिलाने की जैविकीय विशेषताओं के कारण उन्हें घर में रहने तथा संभालने की जिम्मेदारी दी गई। शिकारी युग से ही यह श्रम का विभाजन कायम रहा। पुरुषों ने अपने अर्थोपार्जन की क्रिया को श्रेष्ठ बताया तथा स्त्रियों के घर में रहने को सुरक्षित एवं कम मेहनत वाला बताया। पुरुषों ने अपने काम को वीरता तथा जोखिम भरा बताया। परंतु उन्होंने यह कभी नहीं सोचा कि एक अकेली स्त्री स्वयं की रक्षा जंगली जानवरों से कैसे करती होगी? क्या जंगली जानवर वहीं होते थे, जहाँ पुरुष जाते थे या फिर जानवरों को भी यह पता था कि स्त्रियाँ शारीरिक रूप से कमजोर होती हैं और अपनी रक्षा नहीं कर सकती हैं, इसलिए उनके पास न जाएँ। शारीरिक रूप से कमजोर तथा बनावट के अलावा प्रजनन के आधर पर भी स्त्रियों को हीन माना गया। पुरुष ने शिशु के जन्म को तो बड़े उत्साह के साथ स्वीकार किया मगर उसके जन्म की प्रक्रिया जैसे मासिक स्राव और प्रसव को अशुभ माना। इन दोनों वक्त में पूजा–पाठ तथा प्रसूति गृह में प्रवेश को निषिद्ध कर दिया गया। इन सब धरणाओं के पीछे एक मात्र उद्देश्य उनके महत्त्व को कम करना था। सीमोन बड़े स्पष्ट रूप में कहती हैं कि स्त्री की स्थिति अधीनता की है। यह स्थिति उस आधी दुनिया की है जिसे हम स्त्री कहते है, जो कि सदियों से ठगी गई है और यदि उसने कुछ स्वतंत्रता हासिल की भी है तो बस उतनी ही जितनी कि पुरुष ने उसे अपनी सुविधा के लिए देनी चाहिए।

भारत में नारीवादी इतिहास लेखन की परम्परा बाद में आई, यद्यपि आधुनिक शोधों से नारीवादी प्रतिरोध के स्वर अनेकों रचनाओं में मिले हैं। वर्जिनिया वुल्पफ ने अंग्रेजी में स्त्री लेखन की अनुपस्थिति के बारे में जो शोक प्रकट किया है, उसके ठीक विपरीत भारत में आरंभ से ही स्त्री लेखन मिलता है। बुद्ध के समय से थेरी गाथाओं से लेकर जो थेर भिक्षुणियों की अद्भुत कविताएँ है और भक्ति काल की महान कवयित्रियों से होते हुए आज तक श्रेष्ठ कविता, स्त्री रचित श्रेष्ठ कविता की शानदार धारा मिलती है। यहाँ हम उदाहरण स्वरूप केवल तीन कवयित्रियों के बारे में विचार करे जो तीन भिन्न धर्मिक, सामाजिक परम्पराओं से आती हैं– *लल्लेश्वरी या लल दद, मीरा* और *हबा खातून*। लल दद चौदहवी सदीं की कश्मीर की शैव परम्परा की, मीरा सोलहवीं सदी की राजस्थान की वैष्णव परम्परा की और हबा खातून कश्मीर के मुस्लिम परिवार की है।[16] यद्यपि प्राचीन काल से लेकर अब तक कई प्रमुख स्त्रियों का उल्लेख हुआ है, जो विदुषी, दार्शनिक और सामाज्ञी तक रही है। यूरोप में भी नारीवादी इतिहास लेखन ज्यादा पुराना नहीं है, क्योंकि दुनिया भर में इतिहास लेखन मुख्य रूप से पुरुष

प्रधान रहा है। महिलाएँ इतिहास के पन्नों से लगभग लुप्त ही रही है। अतः प्राचीन तथा मध्यकालीन स्त्रियों की बहुत ज्यादा जानकारी नहीं प्राप्त है। कोई भी इतिहास रहा हो सामाजिक या साहित्यिक, दोनों ही पुरुष केंद्रित रहा है। इतिहास में पुरुषों की सर्वोच्चता रही है तथा स्त्रियों को नगण्य कर दिया गया है। यूरोप में 19वीं शताब्दी में नारीवादी इतिहास लेखन की शुरूआत मानी जाती है। इन लेखकों का यह प्रयास रहा है कि प्राचीन काल से वर्तमान तक के समाज में नारी की भागीदारी का इतिहास लिखा जाए। महिलाओं की जागरूकता और आंदोलन दोनों दृष्टि से 19वीं सदी महत्वपूर्ण और विश्वव्यापी रही है। यूरोप, अमेरिका, एशिया तथा विभिन्न उपनिवेशों में महिला अधिकारों के लिए आंदोलन चले।

भारत में महिला जागरूकता तीन चरणों से होकर गुजरी है।[17] आजादी के पहले हालांकि महिलाओं ने राष्ट्रीय आंदोलन में अपना भरपूर योगदान दिया था, परंतु आजादी के पश्चात् नेहरू के काल 1947-68 में उनकी स्थिति को सुदृढ़ता प्रदान करने के लिए कानून का सहारा लिया गया जिसका उदाहरण हिन्दू कोड बिल है। द्वितीय चरण की शुरूआत 1968–75 में हुई, जिसमें महिलाओं ने अपनी पार्टी की स्थापना की और आंदोलनों तथा एजेंडों में महिला प्रश्न को लेकर आवाज उठाना शुरू किया। तृतीय चरण जिसकी शुरूआत 1975 के पश्चात् हुई जो स्त्री प्रश्न को लेकर एक परिवर्तित बिंदु रहा। स्त्रियाँ अपने हक और अधिकारों की बात करने लगी तथा अपनी निम्न स्थिति का पुर्नमूल्यांकन करना आरंभ किया। कुछ नारीवादी लेखकों जिसमें उमा चक्रवर्ती, कुमकुम राय, कुमकुम संगारी, शर्मिला रेगे, अनुपमा राय आदि जैसे इतिहासकारों ने स्त्रियों की वर्तमान स्थिति के निर्माण के आधार को अतीत में ढूँढ़ने की कोशिश की। इस प्रकार भारत में भी यूरोप के तर्ज पर अतीत के गर्त में छिपी महिलाओं की स्थिति को पुनः एक अलग दृष्टिकोण से देखने की शुरूआत हुई तथा इस क्रम में प्राचीन काल से लेकर वर्तमान काल तक की स्त्रियों की स्थिति का पुर्नमूल्यांकन किया गया और यह पाया गया कि उनकी स्थिति प्राकृतिक या नैसर्गिक नहीं बल्कि पुरुषों की देन है, पितृसत्ता द्वारा निर्मित एवं सृजित है।

जिन स्त्रियों को थोड़ी बहुत स्वतंत्राता प्राप्त हुई वे राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक रूप से सबल रही होगी, परंतु आम स्त्रियों को कहाँ सुरक्षा मिली है? रक्षक के नाम पर पिता है, पुत्र है पति है, यही आम स्त्रियों को सिखाया गया है और ये लोग ही स्त्री के अधिकारों का सबसे ज्यादा हनन करते है। 1980 में एक नारीवाद लेखक अल्माग्राहम ने अपनी पुस्तक *गाइड लाइंस फॉर ईक्वल ट्रीटमेंट आन द सेक्सेज* में यह प्रतिपादित किया था कि समाज द्वारा किस तरह औरतों को अपनी समाज–निर्मित दोयम दर्जे, की स्थिति से बाहर न आने देने के लिए *'सेक्सिस्ट'* भाषा और *'स्त्रियोचित'* परिवरिश का इस्तेमाल होता है और कुदरत के नहीं बल्कि पितृसत्ताक समाज के बनाए नियम ही स्त्रियों की सहज बुद्धि और भावनाओं की

अभिव्यक्ति पर प्रतिबंध लगाते है। जो स्त्रियाँ पारंपरिक छवि से बाहर आकर पुरुषोचित मुँहफटपने और दबंगई से अपना पक्ष सामने रखती है तो उनका लड़का या बालकोचित मानकर उनकी खिल्ली उड़ाई जाती है। स्त्री से, वह पर्दा ना भी करती हो, आंखों में शील का पर्दा और वाणी में संयम रखने की अपेक्षा की जाती है।

आज बदलते परिवेश में जरूरत है इस विचारधारा को बदलने की। स्त्री या नारीवाद आंदोलन के कारण स्त्री विरोधी विचारधारा तथा उनकी समानता एवं स्वतंत्रता से संबंधित सोच में काफी हद तक परिवर्तन भी आया है। भूमंडलीकरण और वैश्वीकरण की उपभोक्तावादी संस्कृति ने जहाँ स्त्री को एक नई पहचान दी है, वहीं दूसरी तरफ स्त्रियों का उनकी यौनिकता एवं श्रम के आधर पर शोषण होना आरंभ हुआ है। अतः जरूरत है कि प्रत्येक स्त्री अपनी आवश्यकताओं एवं जरूरतों को समझे और स्वयं अपने आत्मसम्मान एवं स्वाभिमान के विषय में जागरूक हो तथा अपने अधिकारों एवं हक के लिए स्वंय आवाज उठाएँ।

सन्दर्भ :

1. शशिरानी अग्रवाल : *स्त्रीः वर्तमान संदर्भ में,* विजय प्रकाश मंदिर, वाराणसी 2005– 2006, पृ. 1.
2. तपन विसवाल : *मानवाधिकारी, जेंडर एवम् पर्यावरण,* वीवा बुक्स; प्रा. लिमिटेड, 2008, पृ. 194.
3. अरूण कमल : *रिरीडिंग वर्जिनिया वुल्फ्रस– ए रूम ऑफ वन्स ओन,* एक्सक्लूजन एण्ड रेसिस्टेन्स इन हिस्ट्री, ix रिप्रफेशर कोर्स, डिपार्टमेंट ऑफ हिस्ट्री, पटना यूनिवर्सिटी, फरवरी 2010, पृ. 35.
4. भारती. एस. कुमार : *इतिहास में औरत की जगह,* स्त्रीकाल ;स्त्री का समय और सच, अंक 7, अप्रैल 2010, पृ. 24.
5. दैनिक जागरण – *आधी दुनिया : पंछी बनूं उड़ती फिरूँ,* लेखिका – सरिता स्निग्धा जयोत्सना, 18 जुलाई 2007, पटना, पृ. 11.
6. सुरजिन्ता रे : *नारीवादी सिद्धांत,* आर्य, मेनन, लोकनीता – उपरोक्त, पृ. 49.
7. तरूण कुमार – *नारीवाद और साहित्य,* यू.जी.सी., VII रिप्रफेशर कोर्स इन हिस्ट्री (दिसम्बर 2 से 22, 2005) आन जेंडर एण्ड हिस्ट्री, डिपार्टमेंट ऑफ हिस्ट्री, दरभंगा हाउस पटना यूनिवर्सिटी, पटना।
8. मालती सुब्रह्मण्यम– *उदारवादी नारीवाद*,आर्य, मेनन, लोकनीता – उपरोक्त, पृ. 21.
9. सीमा दास : *रेडिकल नारीवाद,* वही, पृ. 45.
10. वही – पृ. 39.
11. कमला भसीन : *व्हाट इज पैट्रिआर्की,* काली फॉर विमेन, नई दिल्ली, 1993 पृ. 20.

12. गर्डा लर्नर : *द क्रिएशन ऑफ पैट्रिआर्की,* ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1986, पृ. 16.
13. भारती एस. कुमार : उपरोक्त, पृ. 24.
14. फेडरिक ऐंगिल्स : *द ऑरिजिन ऑफ द पफैमिली, प्राइवेट प्रापर्टी एण्ड स्टेट,* रेसिस्टेन्स बुक्स, 2004, पृ. 39–46.
15. फेडरिक ऐंगिल्स : वहीं , इलर्नर बर्क लिआकौक, इंटरनेशनल पब्लिशर्स को. इन. 1972, पृ. 222.
16. अरूण कमल : उपरोक्त, पृ. 36.
17. सूसी थारू एवं के. ललिता – *वीमेन राइटिंग इन इंडिया* – 600 B.C. *टू दी प्रेजेंट,* ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1993, पृ. 45–49. मनोरंजन मोहन्ती– कास्ट, क्लास, जेंडर, सागा पब्लिकेशन्स, न्यू दिल्ली, 2004 पृ. 303.

***

स्वच्छ भारत अभियानः एक गाँधीवादी सोच

डॉ. आनन्द कुमार *

राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी सार्वजनिक और निजी स्वच्छता के प्रतिचिंतित थे। दक्षिण अफ्रीका में बिताए दिनों के बाद से ही यह उनके सत्याग्रह अभियान का हिस्सा था। गाँधीजी के लिए, समाज में स्वच्छता के लिए अभियान एक जाति विहीन और मुक्त समाज बनाने की प्रक्रिया का अभिन्न अंग था। उन्होंने स्वच्छता को व्यक्तिगत जिम्मेदारी बनाने और इसे अस्पृष्यता को दूर करने की कुंजी मानने के अपने विचार को दोहराते हुए कहा था, ''हर कोई अपना स्वयं का मेहतर है''। गाँधीजी जब दक्षिण अफ्रीका में थे तभी से उन्होने अपनी साफ–सफाई का काम स्वयं करना शुरू कर दिया था और भारतीयों को भी सलाह दी थी कि वे अपना शौचालय साफ और सूखा रखें। वे जब भारत लौटे, तो उन्होने दृढ़ता से भारतीयों के लिए स्वच्छता और उन्हें स्वच्छता के प्रतिशिक्षित करने की आवश्यकता पर जोर दिया और कहा कि ''मेहतर का काम भारत में हमारा विशेष कार्य होना चाहिए।'' गाँधीजी ने स्वच्छ पानी तथा हवा और खुले में शौच की समस्या से निपटने के लिए प्रभावी उपायों की आवश्यकता पर जोर दिया। उन्होंने हमेशा कहा, ''स्वराज की शुरूआत हमारी गलियों से होनी चाहिए।''

गाँधीजी ने कहा था, ''स्वच्छता स्वतंत्रता से अधिक महत्वपूर्ण है।'' हमारे माननीय प्रधानमंत्री ने स्वच्छता पर गाँधीजी के विचारों से प्रेरणा ली और उनकी 145वीं जयंती पर, 'स्वच्छ भारत अभियान' या 'स्वच्छ भारत मिशन' शुरू किया। इस अभियान का उद्देश्य महात्मा गाँधी की 150वीं जयंती, 2 अक्टूबर, 2019 तक, 1.96 लाख करोड़ रूपये की अनुमानित लागत से 9 करोड़ शौचालयों का निर्माण करके 4041 वैधानिक शहरों और कस्बों में फैले खुले में शौच को खत्म करना था। इस अभियान को दो उप–मिशनों में वर्गीकृत किया गया है–स्वच्छ भारत अभियान (शहरी), जो आवास और शहरी मामलों के मंत्रालय और स्वच्छ भारतअभियान (ग्रामीण) जो जल शक्तिमंत्रालय (पूर्व में पेयजल और स्वच्छता मंत्रालय) के तहत आता है। यह अभियान एक राष्ट्रीय प्राथमिकता बन गया और प्रधानमंत्री ने प्रत्येक भारतीय से इसमें शामिल होने और अपने आसपास सफाई रखने का आग्रह किया। इस अक्टूबर में, जब हमने गाँधीजी की 150वीं जयंती और स्वच्छ भारत अभियान की पांचवीं वर्षगांठ मनाई, तो प्रधानमंत्री ने कहा कि महात्मा गाँधी के स्वच्छ भारत के सपने को तभी साकार किया जा सकता है जब देश के 125 करोड़ लोग मिलकर इसके लिए प्रयास करें। यह अभियान सीधे राष्ट्र की आर्थिक स्थिति से जुड़ा हुआ है और इसकी कामयाबी न

---

*

केवल देश के सकल घरेलू उत्पाद वृद्धि में योगदान करेगी, बल्कि इससे जुड़े स्वास्थ्य संबंधी मामलों पर होने वाले खर्च में भी कमी आएगी। स्वच्छ भारत अभियान अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रशंसा पाने वाला, देशव्यापी, दूरदर्शी कार्यक्रम है, जिसका उद्देश्य भारत के प्रत्येक घर, गांव और शहर में 'स्वच्छता' का संदेश फैलाना है।

इस राष्ट्रीय आदोलन में योगदान और स्वच्छता की बढ़ती चुनौतियों को दूर करने के लिए, स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्रालय ने एक बहु–आयामी कार्यनीति अपनाई और स्वच्छता तथा स्वास्थ्य में सुधार के लिए कई पहल की। 2015 के बाद से, इसने विशेष रूप से स्वच्छता को अपने नागारिको के स्वास्थ्य और कल्याण में सुधार लाने के अपने प्रयासों का केंद्र बिंदु बनाया है। ये पहल अपने कार्यक्रमों के माध्यम से स्वास्थ्य संस्थानों और लोगों में स्वच्छता और स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता पैदा करती है और अन्य मंत्रालयो के साथ मिलकर इसे समग्रता से कार्यन्वित करती है।

स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्रालय की कायाकल्प पहल 2015 में सभी राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों में केंद्र सरकार के संस्थानों और सार्वजनिक स्वास्थ्य संस्थानों में बुनियादी ढ़ाचे में सुधार स्वच्छता व स्वास्थ्यकारिता और संक्रमण नियंत्रण कार्यों में सुधार लाने के उद्देश्य से शुरू की गई थी। स्वास्थ्य सुविधाओं का आकलन कई मापदंड़ो के आाधार पर किया जाता है, और हर साल प्रत्येक स्तर पर अधिकतम अंक पाने वाले संस्थानों को कायाकल्प पुरस्कार प्रदान कर मान्यता दी जाती है। इस पुरस्कार के तहत धनराशि और प्रशस्ति पत्र दिया जाता है। इस योजना से सार्वजनिक स्वास्थ्य संस्थानों में स्वच्छता, स्वास्थ्यकारिता और संक्रमण–नियंत्रण कार्यो के स्तर में महत्वपूर्ण सुधार हुआ है और इन्हे बढ़ावा देने के लिए आंकलन और समीक्षा की संस्कृति विकसित हुई है। सार्वजनिक स्वास्थ्य सुविधाओं में 'स्वच्छता' का उद्देश्यपूर्ण आंकलन सुनिश्चित करने के लिए, सात विषयगत क्षेत्रों के तहत आंकलन किया जाता है प्रशिक्षण न केवल आंकलन करने के लिए बल्कि सही आचरण और कार्यान्वयन के लिए भी प्रदान किया जाते है। प्रशिक्षित आंकलनकर्ता अन्तिम आंकलन करते हैं और चयनित अस्पतालों के लिए अंक निर्धारित करते हैं। कायाकल्प न केवल सार्वजनिक अस्पतालों तथा स्वास्थ्य संस्थानों को नया रूप देने में सक्षम है, बल्कि इसने लोगो की आदतों को बदलने में भी महत्वपूर्ण योगदान दिया है। यह बदलाव आईसीटी–आधारित रोगी प्रतिक्रिया प्रणाली 'मेरा अस्पताल' के जरिए बताई गई 'संतुष्ट' रोगियों की संख्या से भली–भांति परिलक्षित होता है।

कायाकल्प ने अपने पहले वर्ष में केवल जिला अस्पतालों (डीएच) का आकलन करके एक मामूली शुरूआत की। इसके बाद तीन वर्षो के भीतर सभी उप जिला अस्पतालों सामुदायिक स्वस्थ्य केंद्रो और प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्रो (ग्रामीण और शहरी) को भी इसके दायरे में लाया गया है।

सन्दर्भ :

- C. Suresh Aggarwal and K Surender. (2011). "Industrial Water Demand in India: Challenges and Implications for Water Pricing". *India Infrastructure Report (IIR).*
- Cuttet Philippe, (2009). "New Policy Framework for Rural Drinking Water Supply: Swajaldhara Guidelines". *Economic and Political Weekly.*
- Draft National Water Policy 2012, *Ministry of Water Resources*, GoI
- Indosan, (30 Sep, 2016). Swachhta Action Plans (SAP) of Union Ministries/Drpartments-2018-19
- National Water Policy 1987, *Ministry of Water Resources*, GoI

***

मानवीय जीवन पर प्रदूषण का प्रभाव

डॉ. लालजी *

पर्यावरण के प्रति भारतीय संस्कृति के साथ–साथ भारतीय संविधान के अनुच्छेद– 21, 48ए, 51ए(जी) एवं स्वयं माननीय उच्चतम न्यायालय ने तमाम वादों के माध्यम से स्वच्छ जल एवं शुद्ध वायु को मानव जीवन के लिए आवश्यक बताया है तथा एम.सी. मेहता बनाम यूनियन ऑफ इण्डिया सहित किई वादों के द्वारा पर्यावरण संरक्षण के लिए कई आदेश एवं गाईडलाईन निर्धारित किया है।

भारतीय संविधान के नीति निर्देषक तत्व के अनु. 48(क) यह अपेक्षा करता है कि राज्य देश के पर्यावरण की सुरक्षा तथा उनमें सुधार करने का और वन तथा वन्य जीवों की रक्षा का प्रयास करेगा।

भारतीय संविधान के मूल कर्तव्य क अनु. 51(क) छ में प्राकृतिक पर्यावरण की, जिसके अन्तर्गत वन, झील, नदी और वन जीव भी है, रक्षा करे, उनका संवर्द्धन करे तथा प्राणिमात्र के प्रति दयाभाव रखे, 4 का प्रावधान किया गया है।

पर्यावरण प्रदूषण आज एक विकराल समस्य है। बड़े–बड़े महानगरों में प्रदूषण इस सीमा तक बढ़ गया है कि लोगों के लिए सांस लेना स्वच्छ वायु में जहाँ एक ओर दूभर हो गया है वही प्रदूषण युक्त जल अनाज तथा सब्जी आदि। लेना हमारी मजबूरी हो गयी है। आज आवश्यकता इस बात की है कि पर्यावरण को हम इतने हल्के में न लेवें, इस सम्बन्ध में लोगों को सचेत करें एवं जागरूक करें तथा पर्यावरण को अपने आने वाली पीढ़ी हेतु ऐसे ही बचाये रखें जैसे हमारे पूर्वजों ने इसे सम्मान एवं धरोहर के साथ हमें प्रदान किया।

प्राकृतिक अवयवों के अप्राकृतिक असन्तुलन से प्रदूषण होता है, जिसमें मानव द्वारा हस्तक्षेप से प्रकृति के किसी अवयव की मात्रा एक निष्चित मानक से कम या अधिक हो जाती है, जो पर्यावरण के मूल मानक में असन्तुलन उत्पन्न कर देती है, जिसके कारण प्रदूषण का जन्म या प्रादुर्भाव होता है। धरती पर प्रदूषण के प्रमुख कारणों में सर्वोपरि जनसंख्या विस्फोट है, जिसके कारण मानव रहने तथा इस्तेमाल हेतु जंगल को काटते जा रहा है। जंगल के स्थान पर ईंट–पत्थरों से निर्मित नगर बसते जा रहे है। औद्योगीकरण के विस्तार से उद्योगों द्वारा प्रदूषण का जल, मृदा, वायु तथा विकिरण आदि तमाम प्रकार से प्रदूषण किये जा रहे है। सामान्यतया प्रदूषण जन–जीवन को कई प्रकार से प्रभावित कर रहा है और हर प्रकार का प्रदूषण जीवन मात्र के लिए किसी न किसी न किसी प्रकार से नुकसानदायक है।

---

*

वायु में जब प्राकृतिक गैस के अतिरिक्त अन्य गैसें उसमें मिलकर वायु के मूल स्वरूप को बदल देते हैं तथा उसमें उवांछनीय गैसों को मिश्रित कर देते हैं, चाहे वह उद्योगों द्वारा निकला हो, यातायात साधनों द्वारा या अन्य किसी प्रकार से, तो वह वायु को प्रदूषित करता है। वास्तव में वायु में नाईट्रोजन 78 प्रतिशत, ऑक्सीजन 21 प्रतिशत और 1 प्रतिशत के लगभग नियॉन, हीलियम, मीथेन, क्रिप्टान, ऑर्गन, जल वाष्प, धूल के कण तथा कार्बन डाई ऑक्साईड होते है। किन्तु वायु एवं जल में आज तमाम प्रकार के प्रदूषक तत्व जैसे नाईट्रोजन डाई ऑक्साईड, नाईट्रोजन मोनो ऑक्साईड, सल्फर डाई ऑक्साईड, कार्बन मोनो प्रदूषक तत्व जैसे नाईट्रोजन ऑक्साईड, नाईट्रोजन मोनो ऑक्साईड, सल्फर डाई ऑक्साईड, कार्बन मोना ऑक्साईड, क्लोरीन, ब्रोमीन, आयोडीन, हाईड्रोजन सल्फाईड, बेन्जीन, ईथर, एसिटिक ऐसिड, बेन्जोपाइरीन, सिलिकन टेट्रा लोराईड, नाइट्रिक ऐसिड, सल्यूरिक ऐसिड आदि तमाम पदार्थ शुद्ध वायु एवं स्वच्छ जल को प्रदूषित कर रहे है। ये गैसों के प्राकृतिक संतुलन एवं मूल स्वरूप को नष्ट करते हुए जीवन हेतु घातक सिद्ध हो रहे है। जल एवं वायु के प्राकृतिक संतुलन के नष्ट होने से ये जल एवं वायु जहर के रूप में तमाम रोगो के कारण बन रहे हैं। वायु प्रदूषण होने के तमाम कारण आज बढ़ते जा रहे है। सर्वप्रथम तो यह जो हम वृक्षों को काटते जा रहे है। दूसरा उद्योग धन्धों के विकास के साथ औद्योगिक क्रान्ति जहरीली गैसें वायु एवं जल को प्रदूषित कर रही हैं।

उद्योगों की चिमनियों रोजना शुद्ध वायु में करोड़ो टन कार्बन डाई ऑक्साईड, सल्फर डाई ऑक्साईड आदि हानिकारक तत्वों को वायुमण्डल में डालती जा रही है। इनमें कार्बन मोनो ऑक्साईड जैसी जहरीली गैसें भी शामिल है, जो ऑक्सीजन की अपेक्षा सैकड़ो गुना तेजी से हमारे श्वसन तंत्र में संयुक्त होकर जानलेवा हो सकती हैं। यही सब कारण है कि आज मनुष्य दिन–प्रतिदिन इतनी दवाओं के खोज के बावजूद ज्यादा रोगी होता जा रहा है। सांस फूलने, अस्थमा जैसी तमाम बीमारियों के मरीज बाजार में आय–दिन वायु प्रदूषण से बेहाल है। कारखानों एवं उद्योगो में कोयले के जलने से कार्बन मोनो ऑक्साईड की बहुत अधिक मात्रा निकलती है। यही करण है कि आज हम लगातार अपने ही दुष्मन बनते जा रहे हैं क्योंकि हम बिना तर्क के उन्हीं वृक्षों को काटते जा रहे हैं। जो पर्यावरण प्रदूषण को रोकने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते आये हैं और हमारे वायुमण्डल से कार्बन डाई ऑक्साईड, कार्बन मोनो ऑक्साईड जैसी जानलेवा गैसों को लेकर बदले में हमें ऑक्सीजन जैसी प्राणदायक वायु प्रदान कर रहे है।

इसका तात्पर्य यह है कि जितना अधिक वृक्ष एवं हरा वातावरण बना रहेगा, प्रदूषण उतना ही कम होगा तो यह हमारे लिए आवश्यक है कि हम जंगलों की कटाई बन्द कर घर के चारो ओर वृक्षो को लगायें। जन–जागरण करें तथा प्रत्येक व्यक्ति को वृक्षारोपण के फायदे बताते हुए सबका योगदान करायें। आम आदमी को पर्यावरण के प्रति अपने कर्तव्य को केवल भारतीय संविधान के अनु. 51(क)छ में से साकार स्वरूप में जीवन में अपनायें।

जनजागृति के माध्यम से आप आदमी को पर्यावरण के प्रति शिक्षित करने हेतु हम सरकार के मोहताज ने बनें बल्कि स्वयं सेवी संगठनों, संचार माध्यमों, स्कूलों, महाविद्यालयों तथा छोटे–बड़े को मिलकर इस दिशा में संयुक्त कदम बढ़ाना चाहिए।

आज तेजी से औद्योगीकरण के साथ–साथ यातायात साधनों में जैविक ईंधनों का प्रयोग बढ़ता जा रहा है। छोटे–बड़े सभी प्रकार के वालनों में पेट्रोल–डीजल के द्वारा वायु में निरन्तर जहर उगला जा रहा है। हर सेकेण्ड हम वायु को प्रदूषित करते जा रहे है। समस्या इतनी गंभीर है, जिसे हम समझ नहीं पा रहे हैं। हम सोचते हैं कि इसकी जिम्मेदारी केवल सरकार की है किन्तु हम जितनी सरकार की समझते हैं, उससे कहीं अधिक हम सभी की है।

''जल ही जीवन हैं'' किन्तु आज हम जल में ही जहर घोलते जा रहे हैं। इसका प्रमुख कारण औद्योगीकरण, आधुनिकीकरण एवं विकास की अन्धी दौड़ है। जल प्रदूषण का प्रमुख कारण हैं– नदियों में कारखानों एवं उद्योगों द्वारा उपयोग में लाये गये दूषित, अनट्रीटेड प्रदूषित जल के मिलने से। कानपुर में गंगा नदी में तमाम नालों द्वारा ऐसा गन्दा पानी जो चमड़ो के कारखानों से निकल कर आता है, जिसमें तमाम रासायनिक पदार्थों के अवशेष रहते हैं।

यमुना नदी में मथुरा से जल प्रदूषित हो रहा है, क्योंकि मथुरा में साड़ी छपाई में प्रयुक्त होने वाले रसायन गन्दे पानी के साथ मिलकर नालो के माध्यम से यमुना में समाहित हो रहे हैं। इसके साथ ही साथ सड़े–गले अधजले शव भी नदियों में प्रवाहित कर दिये जाते हैं, जिससे भी जल प्रदूषित हो जाते हैं और यह पेयजल के रूप में प्रयुक्त नहीं किया जा सकता। कभी–कभी तो यह प्रदूषित जल सिंचाई एवं अन्य इस्तेमाल में प्रयुक्त होता है और ये रसायन सब्जी एवं अनाज के माध्यम से मनुष्य के शरीर में पीलिया, हैजा जैसे तमाम रोगों को जन्म देते हैं। जल प्रदूषण एवं वायु प्रदूषण को रोकने के लिए सरकार को कानून बनाकर कड़ाई से उसका अनुपालन कराना चाहिए। सरकार इस दिशा में प्रयत्नशील जरूर है किन्तु कानून अनुपालन की कमी के कारण विषहीन सर्प साबित हो रहा है।

पर्यावरण प्रदूषण की बातों को ध्यान में रखते हुए हम इस नतीजे पर पहुॅचे है कि पर्यावरण संरक्षण ही आज मनुष्य का मुख्य उद्देश्य होना चाहिए मात्र इसके संरक्षण से हम विभिन्न प्रकार के रोग–दोष से मुक्त हो सकते हैं और चतुर्गामी विकास की दिशा में अग्रसर हो सकते हैं। साथ ही साथ इसके लिए कठोर कानून बनाकर इसका सख्ती से पालन करवाना चाहिए तथा दोषियों को कठोर दण्ड से दण्डित किया जाय। पर्यावरण को अनिवार्य विषय के रूप में सभी विद्यालयों तथा महाविद्यालयों में कड़ाई से लागू करने की दिशा में एक सकारात्मक सोंच के साथ कदम बढ़ाना चाहिए। हमें अपनी आने वाली पीढ़ियों को एक स्वच्छ वातावरण में जीवन यापन के वायदा के साथ पर्यावरण संरक्षण का ही सहारा लेना पड़ेगा।

***

वैश्वीकरण का प्रभाव

डॉ. नरेश राम *

वैश्वीकरण का शाब्दिक अर्थ स्थानीय या क्षेत्रीय वस्तुओं या घटनाओं के विश्व स्तर पर रूपान्तरण की प्रक्रिया से है। यह एक ऐसी प्रक्रिया का वर्णन करने कि लिए प्रयुक्त किया जा सकता है, जिसके द्वारा पूरे विश्व के लोग मिलकर समाज बनाते हैं तथा एक साथ कार्य करते हैं। यह प्रक्रिया आर्थिक, तकनीकी, सामाजिक और राजनीतिक ताकतों का एक संयोजन है। वैश्वीकरण में भौगोलिक सीमा की बाध्यता समाप्त हो जाती है।

वैश्वीकरण का उपयोग अक्सर आर्थिक वैष्वीकरण के संदर्भ में किया जाता है, अर्थात् व्यापार, विदेशी प्रत्यक्ष निवेश, पूँजी प्रवाह और प्रौद्योगिकी के प्रसार के माध्यम से राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था का अंतराष्ट्रीय अर्थव्यवस्थाओं में एकीकरण आदि।

टॉम जी. पामर ''के अनुसार सीमाओं के पार विनिमय पर राज्य प्रतिबंधों ह्रास या विलोपन और इसके परिणामस्वरूप उत्पन्न हुआ उत्पादन और विनिमय का तीव्र एकीकृत और जटिल विश्व स्तरीय तंत्र'' भूमण्डलीकरण है।

थॉमस एल फ्राइडमेन के अनुसार वैश्वीकरण ''दुनिया के 'सपाट' होने के प्रभाव की जाँच करता है'' और तर्क देता है कि वैश्वीकृत व्यापार (Globalized Trade), आउटसोर्सिंग (Outsourcing), आपूर्ति के श्रृंखलन (Supply Chaining) और राजनीतिक बलों ने दुनिया को, बेहतर और बदत्तर, दोनों में स्थायी रूप से बदल दिया है। वे यह तर्क भी देते हैं कि वे वैश्वीकरण की गति बढ़ रही है और व्यापार संगठन तथा कार्यप्रणाली पर इसका प्रभाव बढ़ रहा है।

नोअम चोमस्की के अनुसार ''सैद्धांतिक रूप में वैश्वीकरण शब्द का उपयोग, आर्थिक वैश्वीकरण (Economic Globalization) ने नव उदार रूप का वर्णन करने में किया जाता है।''

भूमण्डलीकरण अमेरिका, जापान, चीन, जर्मनी आदि देषों के लिए भले ही अत्यन्त उत्साहवर्द्धक संभावनाएँ पैदा करता है लेकिन यही बात अगर भारत, बंग्लादेश या अन्य एशियाई देश–अफ्रिका, लैटिन अमेरिकी देशों के लिए स्वतंत्रता और उन्नति का पैगाम नहीं, बल्कि ऐसे वातावरण और परिस्थिति का नियम का व्यवस्था करने वाला बन जाता है, जो इन्हें विकसित पूँजीवाद देशों के अनुकूल ऐसे बाजार में तब्दील कर दे, जहाँ हर चीज बिकने योग्य होती है।

गौरतलब है कि वैश्वीकरण का अर्थ पूँजी, श्रम, कौशल, तकनीक, ज्ञान और उपभोक्ता सामग्रियों का ऐसा निर्वाध, बाधा रहित प्रवाह का नाम

---

* इतिहास विभाग, ल.ना.मि.वि., दरभंगा, ग्राम+पो. - जाले, जिला- दरभंगा, बिहार।

है, जिसमें राज्यों की भौगोलिक सीमाएँ बौनी हो जाती है, तो निस्संदेह हम कह सकते है कि वैश्वीकरण विकसित राष्ट्रों पर लागू न होकर विकासशील और पिछड़े राज्यों पर लागू होता है।

भूमण्डलीकरण की प्रक्रिया में देश एक दूसरे पर परस्पर निर्भर हो जाते है और लोगों के बीच की दूरियाँ घट जाती है। एक देश अपने विकास के लिए दूसरे देशों पर निर्भर करता है। जैसे– सूती कपड़े के उद्योग महत्त्वपूर्ण नामों में से एक है, जो जापान, भारत या अन्य देशों में पैदा हुई कपास पर निर्भर करता है। काजू के अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में प्रमुख भारत अफ्रिकी देशों में कच्चे काजू पर निर्भर करता है। जाहिर है अमरिका का सूचना प्रौद्योगिका उद्योग किसी सीमा तक भारत और अन्य विकासशील देशों के इंजीनियरों पर निर्भर करता है। भूमण्डलीकरण में केवल वस्तुओं और पूँजी का ही संचलन नहीं होता है। अपितु लोगों का भी संचलन होता है।

भूमण्डलीकरण एक प्रत्यक्ष राजनीतिक प्रणाली न होकर एक सशक्त आर्थिक हस्तक्षेप है, जिसकी मुख्य प्रेरक शक्ति भी प्रभुत्व और वर्चस्व का विस्तार ही है, ताकि तीसरी दुनियाँ में बाजार की अपार संभावनाओं का दोहन किया जा सके। जाहिर है कि वैश्वीकरण उपनिवेशवाद का नया संस्करण है, जो उससे कहीं अधिक विकट, अधिक विनाशकारी, दैत्य के रूप में प्रकट हुआ है। एक ऐसा विकासशील और पिछड़े राष्ट्र की सामाजिक–सांस्कृतिक अस्मिता को, उनकी पहचान को लगातार दिला रहा है, भले ही उसने चकाचौंध करने वाला मुखौटा धारण किए हुए हो, लेकिन उसके पीछे सारे संसार को निगल जाने की अभिलाषा लहर ले रही है। जाहिर है भूमण्डलीयकरण जितना भी अधिक लोकलुभावन दिख रहा है। इसमें महाविनाश की घटना को भी उतनी ही स्पष्टता के साथ सुना जा सकता है।

भूमण्डलीकरण संपूर्ण विश्व को एक ग्राम में तब्दील करने की अवधारणा है जहाँ कोई सीमा, कोई सरहद, कोई दीवार न हो। भूमण्डलीकरण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसने पूरी दुनिया की तस्वीर बदल दी है। वर्तमान समय बाजारवाद का है। मनुष्य को किसी मिलने वाले वस्तु के बदले में धन या साथ–साथ जीवन का प्रत्येक क्षेत्र बाजारवाद से प्रभावित प्रत्येक गतिविधि व्यावसायिक दृष्टिकोण या तो स्वतः अपना रही है या अपनाने को मजबूर है। साहित्य, संगीत, कला, विज्ञान, दर्शन सभी पर व्यवसायिकता का प्रत्यक्ष प्रभाव दिखाई देता है।

आज के भूमण्डलीकरण विशेषता में से एक है 'प्रतिभा पलायन' अथवा प्रतिभा संपन्न लोगों का पूर्व से पश्चिम की ओर भागना। 14वीं सदी का विश्व इसी प्रकार की घटना का साक्षी है। भूमण्डलीकरण के प्रारंभिक रूपों में भारत का कपड़ा, इंडोनेशिया और पूर्वी अफ्रिका के मसाले, जावा का गलीचे, जिंबाबे का सोना तथा चीन के रेशम और चाय ने यूरोप में प्रवेश

पाया। जिसके बाद यूरोप के लोगों की अपनी स्त्रोतों को ढूढ़ने की उत्सुकता में यूरोप में अन्वेषण के युग का प्रारंभ किया। अतः आधुनिक भूमण्डलीकरण मुख्यतः अतीत में भारतीयों, अरबों और चीनियों द्वारा स्थापित ढाँचे के कारण ही संभव हुआ है। आधुनिक भूमण्डलीकरण की ओर कदम प्रौद्योगिक परिर्वतनों ने एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई हैं। अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं जैसे संयुक्त राष्ट्र, विश्व बैंक और विश्व व्यापार संगठन की स्थापना इस प्रक्रिया में सहयोग देने वाला एक अन्य कारक है। अपने देश से बाहर बाजार मिलने और उपभोक्तावाद ने विश्व के विभिन्न भागों में भूमण्डलीकरण के विस्तार की ओर प्रेरित किया।

भूमण्डलीकरण के कारण जहाँ पूरा विश्व 'एक गाँव' में तब्दील हो चुका है वहीं अंतर्मन की दूरियाँ भी बढ़ रही है। विकास के नाम पर अंग्रेजों की मुँहजोड़ी और उधारी ने शेष दुनिया के जमीन अंतर्विकास और देशज संवेदना के सम्मुख लगातार संकट खड़ा किया है। भाषाई साम्राज्यवाद केवल भाषा साम्राज्यवाद नहीं होता वह आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक साम्राज्यवाद से अभिन्न रूप से जुदा होता है। अतः अंग्रेजी का प्रसार केवल भाषा का ही नहीं अपितु सामाज्यवाद का प्रसार भी है।

वैश्वीकरण के कारण दक्षिण–पूर्व एशिया और मध्य एशिया के बीच समुद्री मार्ग का विस्तार हुआ। केवल वस्तुओं और लोगों ने ही नहीं बल्कि प्रौद्योगिकी ने भी विश्व के एक छोर से दूसरे छोर तक की यात्रा की। इस अवधि में भारत न केवल शिक्षा एवं आध्यात्म का केंद्र था बल्कि धन–दौलत का भी अपार भंडार था। इसे 'सोने की चिड़ियाँ' कहा जाता था, जिससे आकर्षित होकर विश्व के अन्य भागों से व्यापारी और यात्री यहाँ आए। चीन में मंगोल शासन के दौरान कई चीनी आविष्कार जैसे बारूद, छपाई, धमन भट्टी, रेशम की मशीने, कागज की मुद्रा और ताश यूरोप में पहुँचे। वास्तव में इन्हीं व्यापारिक संबंधों ने आधुनिक भूमण्डलीकरण का बीज बोया।

वास्तव में भूमण्डलीय दो क्षेत्रों पर बल देता है– उदारीकरण और नीजिकरण। उदारीकरण का अर्थ है औद्योगिक और सेवा क्षेत्र की विभिन्न गतिविधियों से संबंधित नियमों में ढील देना और विदेशी कंपनियों को घरेलू क्षेत्र में व्यापारिक और उत्पादन इकाईयाँ लगाने हेतु प्रोत्साहित करना। नीजिकरण के माध्यम से निजी क्षेत्र की कंपनियों को उन वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन की अनुमति प्रदान की जाती है, जिनकी पहले अनुमति नहीं थी। इसमें सरकारी क्षेत्र की कंपनियों की संपत्ति को निजि क्षेत्र के हाथों बेचना भी सम्मिलित है। भूमण्डलीकरण के आधुनिक रूपों का प्रारंभ दूसरे विश्व युद्ध से हुआ है। आधुनिक भूमण्डलीकरण मुख्यतः विकसित देशों के इर्द–गिर्द केंद्रित है। ये देश विश्व के प्राकृतिक संसाधनों का मुख्य भाग खर्च करते हैं। विष्व के विभिन्न भूभाग में रहने वाले लोग प्राकृतिक संसाधनो के 80 प्रतिशत से अधिक भाग का उपभोग करते हैं। उनका नवीनतम

प्रौद्योगिकी पर नियंत्रण है। विकासशील देश प्रौद्योगिकी, पूँजी, कौषल और हथियारों के लिए इन देशों पर निर्भर है।

भूमण्डलीकरण का स्वरूप प्रकृति और इतिहास : भूमण्डलीकरण का इतिहास बहुत पुराना नहीं है। 20वीं सदी के अंतिम दो दशकों से ही इसके लक्षण साफ तौर पर दिखाई देने लगता है। गौरतलब है जब विश्व के दो शक्तिशाली देशों में से एक सेवियत संघ का विघटन हो गया तो इस विघटन के बाद अमेरिका को चुनौती देने वाला कोई भी देश नहीं बचा। इसलिए अमेरिका पूरी आजादी के साथ भूमण्डलीकरण को प्रचारित करने में लग गया, जहाँ घी सीधी उंगली से नहीं निकला तो वहाँ उसने टेढ़ी भी की। जिससे पूरी दुनिया के पास भूमण्डलीकरण के स्वागत के अलावा कोई रास्ता नहीं बचा।

इस प्रकार भूमण्डलीकरण के तीन चरण है :–

1. भूमण्डलीकरण का पहला चरण 1870–1914 के बीच का माना गया है। इस समय रेलवे, टेलीग्राफ व्यवस्था और अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय व्यवस्था के आदान–प्रदान के लिए नये तौर–तरीकों और तकनीकी के साधनों का उपयोग हुआ। हस्तशिल्प और कुटीर उद्योगों को फैक्ट्रियों तक पहुँचाया जाना अपने आप में वैज्ञानिक प्रबंध समझा गया तथा फैक्ट्रियों के संरक्षण के लिए कानून बनाया गया। पहली बार श्रम–क्षेत्र में ट्रेड यूनियन का प्रभाव बढ़ा। एक प्रकार से यह अन्तर्राष्ट्रीयकरण का दौर था। दुनिया नये तरीके से अग्रसर हो रही थी। तभी प्रथम विश्वयुद्ध ने सब किये–कराये पर पानी फेर दिया। इस प्रकार विश्व में एक नई भूमण्डलीय संरचना बनते–बनते रह गई यही भूमण्डलीकरण का पहला चरण था।

2. दूसरा चरण था बहुराष्ट्रीयकरण का जिसका समय था (1950–1960)। 1914 से 1950 के बीच में बहुत सारी छोटी–छोटी घटनाएँ हुई। जैसे प्रथम विश्वयुद्ध, महामंदी और फिर द्वितीय विश्वयुद्ध। यह एक प्रकार से विश्व के इतिहास में यह सबसे बड़ी त्रासदी का समय था। जिसके परिणामस्वरूप नव–राष्ट्रवाद का उदय हुआ और उन्नत देशों को फिर से अपने–अपने राष्ट्र निर्माण की आवश्यकता पड़ी। जिसके कारण पश्चिमी देशों में अकथनीय आर्थिक प्रगति और समृद्धि आयी। इस बीच में अमेरिका न एक शक्ति के रूप में उभरा बल्कि राष्ट्र के बाहर जाकर पूँजी का निवेश भी किया। और विदेशों में अपनी दफ्तर और फैक्ट्रियाँ खोली। लेकिन उसका मुख्यालय अमेरिका में ही रखा। जिससे सभी जगह निगरानी कर सके एवं विदेशों में अपनी फैक्ट्री स्थापित कर सके। क्योंकि वहाँ मजदूरी कम थी और मजदूरों को सामाजिक सुरक्षा देने की बाध्यता नहीं थी। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद अनेक देशों की आर्थिक स्थिति खराब हो चुकी थी ढाँचागत सुविधाओं के आधार क्षतिग्रस्त हो गए। प्राकृतिक तंत्र और खाद्य सामग्री का अभाव हो गया। बमबारी में अनेक देशों के अनेक संस्थान नष्ट हो गए। महँगाई आसमान छूने लगी तथा कर्मचारियों को वेतन देने के पैसे सरकार के

खजाने में नहीं थी। उन दिनों अमेरिकी ही एक ऐसा देश था। जो आर्थिक रूप से मजबूत था। इसलिए अन्य पश्चिमी देशों के साथ मिलकर उसने आर्थिक पुनःर्निर्माण और व्यापारिक बाधाओं को समाप्त करने के उद्देश्य से प्रमुख अन्तर्राष्ट्रीय संस्थानों का गठन किया। जिससे बिना किसी अवरोध के विश्व में मुक्त व्यापार का मार्ग प्रशस्त हुआ।

इस प्रकार से अमेरिका के नेतृत्व में बनी इन अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं के माध्यम से भूमण्डलीकरण की रूपरेखा तैयार की गई, जिससे विश्व के अनेक देशों को जो, अपने पैरों पर खड़ा हो सकने की हालत में नहीं थे, उन्हें आशिंक सहारा मिला। वे न केवल विश्वयुद्ध में हुए आर्थिक तबाही से बाहर निकले बल्कि विश्व में उनका आर्थिक सिक्का भी जमने लगा। इस तरह आर्थिक जगत में एक ऐसी व्यवस्था पनपने लगी जिससे तीसरी दुनिया के देशों के बाजार पर अमीर और शक्तिशाली देशों का कब्जा होने लगा। इसी विस्तार को अमीर और शक्तिशाली देशों द्वारा भूमण्डलीकरण का नाम दिया गया।

3. आज हम भूमण्डलीकरण के तीसरे दौर से गुजर रहे है, जो 20वीं शताब्दी के उत्तर्राद्ध से अब तक चल रहा है, लेकिन सही मायने में भूमण्डलीकरण सोवियत संघ के विघटन के बाद से ही माना जाता है, क्योंकि उससे पहले विश्व दो ध्रुवों में बँटा था। एक तरफा पूँजीवादी ताकते थीं तो दूसरी तरफ समाजवादी ताकतें। जहाँ पूँजीवादी देशों का प्रतिनिधित्व अमेरिका कर रहा था वहीं समाजवादी देशों का प्रतिनिधित्व अमेरिका के हाथों में ही था।

भूमण्डलीकरण के प्रभाव : भूमण्डलीकरण प्रत्येक देश को भिन्न–भिन्न ढंग से प्रभावित करता है। इसका प्रभाव एक देश से दूसरे देशों में भी बदल जाता है। भूमण्डलीकरण का विकसित देशों पर प्रभाव विकासशील देशों से अलग था। विकसित देशों में भूमंडलीकरण से नौकरियाँ कम हुई, क्योंकि कई कंपनियाँ उत्पादन खर्च को कम करने के लिए उत्पादन इकाईयों को विकासशील देशों में ले गई। यूरोप के कई देशों में बेरोजगारी एक सामान्य बात हो गई। विकासशील देशों में भूमण्डलीकरण खाद्यानों एवं अन्य कई निर्मित वस्तुओं के उत्पादकों को प्रभावित करता है। भूमण्डलीकरण ने कई विकासशील देशों के लिए दूसरे देशों से कुछ मात्रा में वस्तुएँ खरीदना अनिवार्य किया, भले ही उन वस्तुओं का उनके अपने देश में ही उत्पादन क्यों न हो रहा हो। बाहर के देशों की निर्मित वस्तुओं के प्रवेश से स्थानीय उद्योगों को खतरा बढ़ा। विकासशील देशों की दृष्टि से भूमण्डलीकरण के कुछ अन्य प्रभाव निम्नलिखित है :–

राजनीतिक प्रभाव : भूमण्डलीकरण के सभी प्रकार की गतिविधियों को नियमित करने की शक्ति सरकार के स्थान पर अन्तर्राष्ट्रीय संस्थानों को देता है, जो अप्रत्यक्ष रूप से बहुराष्ट्रीय कंपनियों द्वारा नियत्रित होते हैं। जैसे– जब एक देश किसी अन्य देश की व्यापारिक गतिविधियों के साथ जुड़ा होता है, तो उस देश की सरकार उन देशों के समय अलग–अलग समझौते

करती है। यह समझौते अलग–अलग देशों के साथ अलग–अलग होते हैं। अब अंतराष्ट्रीय संगठन जैसे विश्व व्यापार संगठन सभी देशों के लिए नियमावली बनाता है और सभी सरकारों को ये नियम अपने–अपने देश में लागू करने होते हैं। इसके साथ ही भूमण्डलीकरण कई सरकारों को निजी क्षेत्र की सुविधा प्रदान करने हेतु कई विधियों कानूनों और संविधान बदलने के लिए विवश करता है। प्रायः सरकारें कामगारों के अधिकारों की सुरक्षा करने वाले और पर्यावरण संबंधी कुछ नियमों को हटाने पर विवश हो जाती है।

आर्थिक प्रभाव : भूमण्डलीकरण से अन्य देशों से पूँजी, नवीनतम प्रौद्योगिक और मशीनों का आगमन होता है। जैसे– भारत का सूचना प्रौद्योगिकी उद्योग विकसित देशों में प्रयोग किए जाने वाले कम्प्यूटरों और दूर संचार यंत्र का प्रयोग करता है। लगभग 15 वर्ष पहले यह अकल्पनीय था। भारत के कुछ संस्थानों के इंजीनीयर स्नातकों की अमेरिका और यूरोप के कई देशों में बहुत माँग है। कई देशों में सरकारों के पास प्राकृतिक संसाधनों का स्वामित्व होता है और वे पूरी दक्षता से जनहित में उनका उपयोग करती है और लोगों को विभिन्न सेवाएँ उपलब्ध कराती है। भूमण्डलीकरण सरकारों को संसाधनों का निजीकरण कराने के लिए प्रोत्साहित करता है। जिससे लाभ कमाने की दृष्टि से संसाधनों का शोषण होता है और कुछ लोगों के हाथों में पैसा इकट्ठा हो जाता है। निजीकरण उन लोगों को भी वंचित रखता है जो इन संसाधनों का उपयोग करने के लिए खर्च करने की क्षमता नहीं रखते। भूमण्डलीकरण का ही प्रभाव है कि कई यूरोपीय देशों ने मिलकर यरोपीय मुद्रा का चलन प्रारम्भ किया।

सामाजिक – सांस्कृतिक प्रभाव : भूमण्डलीकरण परिवारिक संरचना को भी बदल देता है। अतीत में संयुक्त परिवार का चलन था। अब इसका स्थान एकांकी परिवार ने ले लिया है। हमारी खान–पान की आदतें, त्योंहार, समारोह भी काफी बदल गए है। जन्मदिन, महिला दिवस, मई दिवस, फास्ट–फूड रेस्ताराओं की बढ़ती संख्या और कई अन्तर्राष्ट्रीय त्योहार भूमण्डलीकरण के प्रतीक हैं। भूमण्डलीकरण का प्रत्यक्ष प्रभाव हमारे पहनावे में देखा जा सकता है। समुदायों के अपने संस्कार, परंपराएँ और मूल्य भी परिवर्तित हो रहे हैं।

इस प्रकार आर्थिक उदारीकरण के स्वभाव को लेकर भूमण्डलीकरण मूलतः पूँजीवादी शक्तियों का हित साधने में लगा रहा। वैश्विक स्तर पर प्रारंभ हुई इस भूमंडली प्रक्रिया ने निजिकरण को बढ़ावा देकर हस्तक्षेप को बहुत हद तक समाप्त कर दिया। जिससे राष्ट्रीय संप्रभुता और राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए अनेकानेक खतरे उत्पन्न हुए। खासकर तीसरी दुनिया और विकासशील देशों के लिए एक नये प्रकार की चुनौती का जन्म हुआ। लेकिन एक दूसरा पक्ष यह भी है, कि भूमण्डलीकरण के कारण ही इन देशों के विश्वयुद्ध के त्रासदी से उठ खड़ा होने का मौका मिला। दलित आदिवासी और स्त्री को विशेषकर लाभ हुआ। भारत और हिन्दी साहित्य के संदर्भ में

हम दलित, आदिवासी और स्त्री के आंदोलनों में तीव्रता लाने का श्रेय कही न कहीं भूमण्डलीकरण का भी है।

भूमण्डलीकरण की प्रकृति ऐसी है कि वह राष्ट्र को राष्ट्र नहीं रहने देना चाहता बल्कि सारी भौगोलिक सीमाएँ तोड़कर अन्तर्राष्ट्रीय परिपेक्ष्य में विलय करना चाहता है। व्यक्ति को अपनी जड़ों से काटकर विश्व मानव में बदलने में विश्वास रखता है। उसकी राष्ट्रीय चेतना समाप्त कर अन्तराष्ट्रीय चेतना में बदल देता है। भूमण्डलीकरण सूचना प्रौद्योगिक के रथ पर सवार राष्ट्र की सीमाओं का उल्लंघन करता है, जिससे समय और दूरी का संकुचन होता है। इसके स्वभाव में तीव्रगमिता है। इसी तीव्रता के कारण अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय प्रवाह, सांस्कृतिक प्रवाह और सामाजिक प्रवाह का निर्वाध आवागमन होता है। इसके लिए यह उपभोक्ता की सर्वोच्चता, उदारीकरण और समरूपीकरण का भ्रामक विज्ञापन करता है। वास्तव में इस विज्ञापन की आड़ में नव–उपनिवेशवाद का आक्रमण होता है। कुमुद शर्मा के अनुसार ''बहुराष्ट्रीय कम्पनियों ने भूमण्डलीकरण की प्रक्रिया में मनुष्य को नागरिक नहीं उपभोक्ता को नहीं अपने व्यवसायिक हित को सर्वोपरी माना है। व्यापारिक रणनीति के लिए उन्होंने विज्ञापन उद्योग का सहारा लिया। विज्ञापन के जरिए ही उसने अपने उत्पाद के लिए खरीदारों की जमात पैदा की। ये कम्पनियाँ विज्ञापन बाजार में भारी धनराशि लगा सकती थी। इसलिए विज्ञापन के जादू से अपने उत्पाद के हक में उपभोक्ता के मानोवृति को बदलने में सक्षम हुई''।

भूमण्डलीकरण समरूपता की बात करता है। इसकी प्रवृति यह है कि जातीय विभेद, सांस्कृतिक वैविध्य और अन्य विविधताओं आदि को मिटाकर एक साथ संस्कृति समान सभ्यता और समान रूचियों का 'विश्व मॉडल' तैयार हो। गौरतलब है कि भूमण्डलीकरण विश्व के अनेक संस्कृतियों का एकीकरण चाहता है लेकिन यह किस हद तक सही है यह तो सोचने की विषय है, एक प्रश्न यह भी है कि वास्तव में यह विश्व का समरूपीकरण चाहता है या मात्र दिखावा करता है। क्योंकि भूमण्डलीकरण का सबसे मूल चरित्र है बाजारीकरण और सभी जानते हैं कि बाजार में संवेदना नहीं होती, यहाँ तो सिर्फ नफा–नुकसान की बात होती है। ऐसी में मुनाफे के लिए पूँजीवादी किस तरीके से किस हद तक गुजरेंगें यह तो सोचने का विषय है, इन्हीं प्रश्न के संदर्भ में कुमुद शर्मा ने कहीं है– ''मुक्त बाजार व्यवस्था में उनका समरूपीकरण वस्तुतः नियंत्रीकरण है। वे समरूपता के नारे से विकासशील देशों के बाजारों को नियंत्रित कर रहे हैं।

वैश्वीकरण की प्रक्रिया में संस्कृति एवं सभ्यता परिवर्तित हो रहे है। आधुनिकता एवं भौतिकवाद अपने उत्कर्ष पर है। आधुनिकता की इस दौर में व्यक्ति, समाज नहीं बल्कि विश्व से सभी देशों की सीमाओं का अतिक्रमण आरंभ है। आने वाले दिनों में वैश्वीकरण और तीव्र होने वाली है।

सन्दर्भ :

1. अभय कुमार दुबे : भारत का भूमण्डलीकरण, दिल्ली 2008, पृ. 30–31.
2. कुमुद शर्मा : भूमण्डलीकरण और मीडिया, दिल्ली, पृ. 29.
3. जेरेमी सी ब्रुक : भूमण्डलीकरण बनाम अन्तर्राष्ट्रीयतावाद, युवा संवाद वर्ष 1, अंक 9, दिसम्बर 2003, पृ. 203.
4. प्रभा खेतान : बाजार के बीच : बाजार के खिलाफ, दिल्ली 2010, पृ. 11.
5. पामेला शुर्मर स्मिथ, इंडियाः ग्लोबलाईजेशन एंड चेंज, बेवसाइट, पृ. 41.
6. प्रेम सिंह : वैश्वीकरण का असली चेहरा, युवा संवाद, पृ. 10–11.
7. फैकल्टी एसोसिएट ऑफ हिन्दी (प्रियंका सिंह): आलेख, भूमण्डलीकरण से जूझती हिन्दी।
8. सचिदानंद सिन्हा, भूमण्डलीकरण की चुनौतियाँ, नई दिल्ली, पृ. 110–112.

***

तबले में प्रयुक्त वर्तमान वर्ण

*डॉ. अमित कुमार ईश्वर**

तबले के वर्तमान में प्रयुक्त प्रमुख वर्णों के संदर्भ में पं. विनोद लेले जी बताते हैं कि पहले से जो दस वर्ण—ता या ना, तिं या ती, दिं या थुं, तू, ते, टे, ट या र, गे, गि या घे घी घ, के कि क या कत्, धा एवं धिं निश्चित हैं और इसी को लोग मानते हैं, अगर सही रूप से देखा जाए तो ये दस से भी कम हैं, जो प्रमुख दस हैं यहाँ भी सिर्फ आठ या सात हैं क्योंकि **धा** एवं **धिं** तो संयुक्त अक्षर है लेकिन इसे विद्वानों ने बाद में मिलायी है अक्षर तो केवल दो ही हैं एक ना और एक गे जो तबले में 6 अक्षर और बाँयें में 2 अक्षर, तो मुख्य आठ अक्षर हैं। इसमें भी सूक्ष्मता से देखा जाए तो **ते** और **टे** ध्वनि एक ही है यहाँ पर दो ध्वनि नहीं निकल रही है इसीलिए मूलरूप से देखा जाय तो 7 हीं ध्वनियाँ है लेकिन जो वर्तमान में वादन हो रहे हैं, उसमें बहुत सारे अक्षर का प्रयोग किया जा रहा है जिनके बारे में हम बहुत विचार नहीं करते हैं जब हम मुख्य वर्ण के अलावा **धिर धिर** की बात करें तो इसमें जो **र** है वो हमारे मूल वर्णों में प्रयोग नहीं होता है, जहाँ ना की बात आती है वहाँ विद्वानों ने इस पर सोचा है कि किस समय हम ना और किस समय हम न बोलते हैं। ना बोलेंगे तो कैसे बजाएगें और न बोलेंगे तो कहाँ बजाएगें। उसी प्रकार धिनगिन का प्रयोग हुआ तो धिन गिन का न चाँटी पर बजायेगें तो रेला कभी बनता हीं नहीं, इसके लिए धिन गिन जो स्याही पर तेटे के नीचे मुलायम हाथों से बजता है तो न कि ध्वनि हो रहा है उसी प्रकार मैंने पं० सामता प्रसाद जी (गुदई महाराज) को सुना है वो लव पर न का प्रयोग करते थे।

धागे धिन गिन धाति । धागे धिन गिन धाति ।
X 2
धागे तिन किन ताति । धागे धिन गिन धाति ।
0 3

इसको तीनताल के अंदाज़ से बजाते थे :—

धागे धिन गिन धाड़ा। गिन धागे तिन किन ।
X 2
ताके तिन किन धाड़ा । गिन धागे धिन गिन ।
0 3

इस बंदिश में न का प्रयोग लव पर किया गया अगर इस न का प्रयोग चाँटी पर की जाती तो यह कविता बन ही नहीं पाती इसी तरह

---

* तबला संगतकार, वसन्त कन्या महाविद्यालय, कमच्छा, वाराणसी

विद्वानों ने बहुत सारे बंदिशों की रचना की जिसमें एक शब्द को तबले के चाँटी, लव एवं स्याही पर प्रयोग किया गया। उपर्युक्त में जो न के प्रयोग के लिए बात कही गयी वह धिन गिन के रेला में स्याही पर प्रयोग होता है, पं० सामता प्रसाद जी लव पर न का प्रयोग किए हैं। बनारस घराने में अंगुशताना जो धिनगिन तकतक धिनगिन धाड़गिन में धाड़गिन के ड़ एवं न का प्रयोग चाँटी पर किया जाता है इस प्रकार और भी प्रयोग किए गये जैसे चिपकी (तक) जिसे चाँटी एवं लव के बीच से तर्जनी को दबा कर बजाया जाता है और इससे संबंधित बहुत सारे बंदिश वर्तमान में बजाये जाते हैं और इसका प्रयोग किया जाता है–

X 2 0 3
धिन गिन तक धिन। गिन धिन धाड़ा गिन।
धिन गिन धाड़ा घेघे। तक तिन ताड़ा किन।
तिन किन तक तिन। किन तिन ताड़ा किन।
धिन गिन धाड़ा घेघे। तक धिन धाड़ा गिन।

इसमें तक का प्रयोग चाँटी पर दबा के किया जाता है जिसे चिपकी बोलते हैं। चिपकी का प्रयोग ना धिं धिं ना के तीव्र गति के समय किया जाता है जहाँ खड़ी अँगुली का प्रयोग करने में मुश्किल होने लगता है, और बंदिशों में चिपकी (तक) का प्रयोग सौंदर्य वृद्धि के लिए किया जाता है। इस प्रकार वर्तमान में **कि या किट** का प्रयोग डग्गे पर बाँयें अँगुली के तर्जनी को मोड़ कर आघात् करने से कि या किट की एवं बाँयें हाथ के चारों अँगुलियों को मोड़ कर आघात् करने से क्रे, ग्रे इत्यादि की ध्वनि उत्पन्न होती है, और बहुत सारे बोल का प्रयोग विभिन्न विद्वानों द्वारा किया जाता है। यही कारण है कि वर्तमान में जिस तबला वाद्य का इतना विकास हुआ है वह विद्वानों ने स्वतंत्र रूप से उसमें बिना बाध्यता के मूल रूप को रखते हुए विभिन्न प्रकार के बंदिश एवं ध्वनि का प्रयोग कर के इस वाद्य को समृद्ध स्वरूप प्रदान किया है। अवनद्ध वाद्य ध्वनि के माध्यम से ही अपनी बात कह सकता है इसलिए विद्वानों ने गहन चिंतन करके सौंदर्य वृद्धि के लिए विभिन्न प्रकार की ध्वनि के बारे में सोचे हैं। विद्वानों का मत है कि पखावज का अनुकरण करके तबला एवं तबले के वर्णों का विकास हुआ, फिर तबले के विद्वानों ने इस पर गहन चिंतन कर के इसे नया रूप प्रदान किया। तबले की विशेषता या कहें तो इसकी प्रकृति ऐसी है कि यह विश्व के किसी भी अवनद्ध वाद्य का अनुकरण कर उस वाद्य के बोलों को बजाने की क्षमता इसे समृद्ध बना देता है, जिस के फलस्वरूप वर्तमान में सभी अवनद्ध वाद्य में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है।

***

राजनीति व प्रशासनिक क्षेत्रों में भ्रष्टाचार की समस्या

डॉ. अनिष कुमार सोनकर *

भ्रष्टाचार जैसा कि नाम से स्पष्ट है कि यह दो शब्दों से मिलकर बना है– भ्रष्ट तथा आचार। भ्रष्ट का अर्थ है–बुरा या बिगड़ा हुआ तथा आचार का अर्थ है– आचरण। इस प्रकार भ्रष्टाचार का शाब्दिक अर्थ है–वह आचरण जो किसी भी प्रकार से अनैतिक या अनुचित हो यानि आचरण का बिगड़ा रूप। विधि द्वारा मान्य नियमों के विरूद्ध अपने स्वार्थ पूर्ति के लिए सार्वजनिक सत्ता के दुरूपयोग को भ्रष्टाचार की संज्ञा दी गयी है। वर्तमान समय में भ्रष्टाचार एक जहर के रूप में देश, राजनीति, प्रशासन, व समाज में फैल रहा है। इस सम्बन्ध में संथानम समिति ने कहा था– अपने कर्तव्यों से हटकर निजी हित साधन के उद्देश्य से किसी प्रकार की कार्यवाही करना या न करना भ्रष्टाचार है। 21 दिसम्बर 1963 को भारत में भ्रष्टाचार के खात्में पर संसद में डॉ राम मनोहर लोहिया ने जो भाषण दिया था वो आज भी प्रासंगिक है। डॉ राम मनोहर लोहिया ने कहा था– सिंहासन व व्यापार के बीच सम्बन्ध जितना दूषित, भ्रष्ट व बेईमान हो गया है उतना दुनिया के इतिहास में कहीं नहीं हुआ है। इस प्रकार भ्रष्टाचार में निम्न तत्व अन्तर्निहीत हैं–

- पद या सत्ता का दुरूपयोग।
- सार्वजनिक सम्पत्ति के दुरूपयोग को अनदेखा करना।
- सर्वमान्य विधियों, नियमों व तरीकों को अनदेखा करना।
- निजी हित के अनुसार कार्यों में तत्परता व शिथिलता लाना।

भ्रष्टाचार तथा अनैतिकता का निर्णय कानूनी व गैर–कानूनी से नहीं, बल्कि इस बात से तय होता है कि यह सामाजिक व राजनीतिक आचरण को ठगनें का प्रयास करते हैं। राजनीति में नैतिकता नाम की चीज का पतन हो गया है। जैसा कि हमें देखनें को मिलता है कि राजनेता अपना दल बदल कर दूसरे दल में चले जाते हैं, तथा भ्रष्ट तरीके से अपनी निष्ठा में परिवर्तन कर देते हैं।

राजनीतिक भ्रष्टाचार ने लोकतंत्र को पार्टीतंत्र में बदल दिया हैं। किसी भी विषय पर मन्तव्य बनाने से पहले विधायकों व सांसदों द्वारा पार्टी की आकांक्षाओं से हरी झण्डी लेना आवश्यक हो गया हैं। जनप्रतिनिधि स्वयं अपनी बुद्धि से कार्य नहीं कर सकता है। राजनीति के लिए धन की आवश्यकता को नकारा नहीं जा सकता। इस प्रकार राजनीति एक व्यापार बन गया हैं। हमें देखने को मिलता है कि नेताओं द्वारा पहले वोट खरीदने में लाखों का निवेश किया जाता है और चुनाव बाद घूस के माध्यम से

* UGC-NET पूर्व शोधछात्र, राजनीति विभाग, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी

निवेश की रकम वसूल की जाती है। भ्रष्टाचार से नौकरशाह भी अछूते नहीं हैं। राजनीतिक भ्रष्टाचार ने इसे भी प्रभावित किया है। ये भ्रष्ट नेता बिना नौकरशाही के सरकारी धन की लूट नहीं कर सकते हैं। राजनीतिक और प्रशासनिक भ्रष्टाचार की यह परिघटना तेजी से पनप रही है। एक तरफ बड़े–बड़े नेताओं के अवैध धन स्विस बैंकों के खुफिया खातों में जमा है, तो वहीं दूसरी तरफ तीसरी श्रेणी के क्लर्कों से लेकर आई.ए.एस. अफसरों के घरों पर छापे पड़ें, जिसमें करोड़ो–करोड़ो की सम्पत्ति बरामद हुई। इस प्रकार राजनीतिक व प्रशासनिक भ्रष्टाचार एक–दूसरे से अलग न होकर परस्पर गठजोड़ से पनपते हैं। ये भ्रष्ट नेता बिना नौकरशाही की मदद से सरकारी धन का दुरुपयोग नहीं कर सकते।

उत्तर–प्रदेश की राजनीति में भ्रष्टाचार रूपी जहर अपने विकराल रूप में फैल रहा है। अब यह एक सामान्य मनोवृत्ति के रूप में स्वीकार कर लिया गया है। आज हम इसके इतने आदि हो चुके हैं कि कहीं–कहीं तो हमें इस बात का भी आभास नहीं हो पाता कि हमारा कोई व्यवहार भ्रष्टाचार को बढ़ावा दे रहा है। उत्तर–प्रदेश में भ्रष्टाचार 6 विभागों (शिक्षा, बिजली, सिंचाई, लोक–निर्माण, चिकित्सा व राजस्व) को मुख्य रूप से प्रभावित किया है। सरकारी व गैर–सरकारी संस्थायें व कर्मचारी बिना रिष्वत लिए कोई कार्य नहीं कर रहे हैं। इस जहर से अस्पताल, शिक्षा व शिक्षण संस्थायें भी अछूते नहीं हैं। उत्तर–प्रदेश में अभी हाल ही में कई घोटाले हुए, जिनमें से यमुना एक्सप्रेस वे, आगरा एक्सप्रेस वे, गोमती–रिवर फ्रन्ट प्रोजेक्ट, यू.पी.पी. एस.सी. व अन्य भर्ती घोटाले, खनन घोटाला, मनरेगा घोटाला, खाद्यान घोटाला, व हज यात्रा घोटाला प्रमुख रूप से उल्लेखनीय है। वर्तमान परिपेक्ष्य में भ्रष्टाचार आम जन–जीवन, राजनीति, केन्द्र सरकार, राज्य सरकार, जिला, ब्लॉक व पंचायतों आदि में अपना कदम जमा चुका हैं। निचले स्तर पर होने वाले भ्रष्टाचार को स्पीड मनी या सीमा शुल्क के रूप में जाना जाता हैं। थाना स्तर पर पुलिस अधिकारी, सीमा शुल्क अधिकारी व आयकर अधिकारी आदि इस प्रकार के भ्रष्टाचार से लाभान्वित हो रहे हैं। इसी प्रकार जिला स्तर पर किए जा रहे ठेकों के आवंटन में पूरे जिला प्रशासन में कमीशन की रकम का बंटना एक आम बात हो गयी है।

गत् कुछ वर्षों से देश की राजनीति में भ्रष्टाचार से सम्बन्धित कई घोटालें सामने आयें हैं, जिनमें चारा घोटाला (1996), कॉमनवेल्थ घोटाला (2011), सत्यम् घोटाला, 2जी घोटाला (2011), कोयला घोटाला आदि हैं। दिल्ली में हुए राष्ट्रमंडलीय खेलों के आयोजन में हुए भ्रष्टाचार के पीछे भी नेताओं व अफसरों का शीर्ष खेल ही था। दुनिया भर के भ्रष्टाचार पर नजर रखने वाली संस्था ट्रांसपेरेन्सी इंटरनेशनल रिपोर्ट के अनुसार भारत 2016 में 2015 के मुकाबले 79वें स्थान पर रहा जबकि 2015 में 76वें स्थान पर था। ग्लोबल करप्शन इंडेक्स–2017 में भारत भ्रष्टाचार के मामले में 81वें स्थान पर है। एशिया महाद्वीप में भ्रष्टाचार के मामले में भारत प्रथम स्थान पर है।

एक सर्वे में पाया गया कि भारत में रिश्वतखोरी की दर 69 प्रतिशत है। इसके अलावा वियतनाम, पाकिस्तान, थाइलैण्ड व म्यामार फोर्ब्स की टॉप 5 भ्रष्ट एशियाई देशों की सूची में शामिल हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं, कि भ्रष्टाचार राजनीतिक जीवन का अंग बन चुका है, जो देश व समाज के विकास में बाधक बना हुआ है। देश के नेता, अफसर, व्यापारी तथा तरह–तरह के माफिया ने मिलकर शासन को आधारहीन बना दिया है। परन्तु वर्तमान समय में लोकतंत्र राजनीति रूपी सीढ़ी से नीचे उतरता जा रहा है। राजनीति में भ्रष्टाचार रूपी जहर फैला हुआ है, जो लोकतंत्र की नींव को कमजोर कर रहा है। साथ ही देश के सामाजिक, आर्थिक व धार्मिक क्षेत्रों पर अपना वर्चस्व बना रखा है। भ्रष्टाचार का परिणाम यह है कि भ्रष्टाचार से देश में गरीबी, बेरोजगारी, मंहगाई व भूखमरी की समस्या बढ़ती जा रही है। साथ ही देश के विकासात्मक कार्यों में बाधा उत्पन्न हो रही है और भ्रष्टाचार के मामले में देश की जो स्थिति है उससे देश की लोकतांत्रिक व्यवस्था पर खतरा बना हुआ है।

सन्दर्भ :

- हैरिस राबर्ट : पालिटिकल करप्षन इन एण्ड बियॉण्ड द नेशन स्टेट।
- हुसैन प्रो. नदीम : समकालीन भारतीय समाज एक समाजशास्त्रीय अध्ययन भारत बुक सेन्टर, लखनऊ 2011.
- विलियम्स राबर्ट : पार्टी फाइनेन्श एण्ड पालिटिकल करप्शन।
- एडवर्ड रैमण्ड फिसमैन : इकोनॉमिक गैगेस्टर करप्सन वायलेन्श एण्ड द पावर्टी ऑफ नेशन्स 2010.
- अवस्थी एण्ड अवस्थी : इण्डियन एडमिनिस्ट्रेशन।

***

बाबासाहब डा. अम्बेडकर के शिक्षा नीति एवं प्रतिबद्ध लोक सेवा

डॉ. सुनिल कुमार *

बाबासाहब का मानना था कि किसी भी समुदाय के जीवन में शिक्षा का बहुत महत्व होता है। उसका विकास शिक्षा की धुरी पर घूमता है। शिक्षा सभ्यता और संस्कृति की मापक हैं। इससे यह पता चलता है कि विकास की दृष्टि से किसी समुदाय की क्या स्थिति है और वह किधर तथा कितनी रफ्तार से जा रहा है। लेकिन शिक्षा एक हथियार ही है। यह मनुष्य की बौद्धिकता का प्रतिस्थापन नहीं है। ऐसा नहीं माना जा सकता कि यदि कोई व्यक्ति शिक्षित नहीं है तो वह एक मनुष्ट के रूप में बुद्धिमान भी नहीं है। यदि सभी लोगों को अशिक्षित रखा जाए तो उनकी बुद्धिमता तब भी बची रहती है। चूंकि शिक्षा एक अतिरिक्त हथियार है इसलिए बुद्धिमान मनुष्य इसे प्राप्त करके अधिक शक्तिशाली हो जाते है।

डॉ॰ अम्बेडकर राजनीति पर बोलते हैं तो वे शिक्षा से अधिक मनुष्य की मूल बुद्धिमता पर भरोसा करते हैं। इसीलिए उन्होनें प्रतिनिधि सरकार के लिय वयस्क मताधिकार की बात रखी हैं उनका तर्क अनुसूचित जातियों के हितो को ध्यान में रख कर आया है लेकिन ऐसा तर्क अनुसूचति जातियों के हितो को ध्यान में रख कर आया है लेकिन ऐसा तर्क मनुष्य मात्र पर लागू किया जा सकता है। वे कहते है– ''मेरा विचार है कि हर कोई मनुष्य यह समझने के लिए कि वह खुद क्या चाहता है, पर्याप्त रूप से बुद्धिमान होता है। इस मामले में साक्षरता की कोई खास मान्यता नहीं है। एक मनुष्य निरक्षर हो कर भी बहुत बुद्धिमान हो सकता है।''[1]

ऊपर के उद्धरण का मतलब यह कदापि नहीं है कि डॉ॰ अम्बेडकर साक्षरता और शिक्षा के महत्व को नकार रहे हैं। इसके विपरीत, उन्होंने शिक्षा और उच्च शिक्षा को समाज के जीवन में बहुत महत्व दिया है। खुद उन्होंने अपने समय की विश्व की सर्वोच्च शिक्षा पाई थी। उनके कहने का मतलब केवल यही है कि शिक्षा मनुष्य की बुद्धिमता को जन्म नहीं देती। मनुष्य जैविक रूप में बुद्धिमान पहले पैदा होता है और बौद्धिकता के विकास के लिए शिक्षा बाद में प्राप्त करता है। यह उनका शिक्षा के क्षेत्र में जैविक मानववाद का सिद्धान्त है। मनुष्य जैविक रूप में बुद्धिमान पैदा होता है लेकिन बाद में उसे शिक्षा प्राप्त करने के लिए लगातार प्रयत्न ही नहीं बल्कि कठोर संघर्ष करना चाहिए।

शिक्षा यदि सर्व–जन–सुलभ हो तो एक बात है लेकिन भारत के समाज में ज्यादातर ऐसा नहीं रहा है। यहॉ प्राचीन काल में चातुर्वर्ण्य

---

* पीएच. डी. (इतिहास), बी. आर. ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

व्यवस्था लागू रही है। उस व्यवस्था में शिक्षा वर्ग–शिक्षा थी। उसमें शुद्र और अन्त्यज को शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार नहीं था और यह मनाही साफ–साफ धर्म ग्रन्थों के संस्कृत श्लोको में लिख कर की गई है। डॉ॰ अम्बेडकर लिखते है– ''शिक्षा एक छोटे से वर्ग तक सीमित थी। यह कभी भी बहुजनों का अधिकार और अवसर नहीं रही। वस्तुतः चातुवर्ण्य व्यवस्था में एक ही वर्ग शिक्षा प्राप्त कर सकता था और बाकी जनता इससे बंचित रखी गई थी।''[2] एक अन्य स्थल पर उन्होंने लिखा है– ''यह महसूस किया जाना चाहिए कि लिखने और पढ़ने का वेदों के अध्ययन से सीधा संबंध है। लिखना और पढ़ना स्वतंत्र और विशेष अधिकार प्राप्त लोगों के लिए आवश्यक था। वेद न पढ़ने वालों के लिए लिखना और पढ़ना आवश्यक नहीं था। इस प्रकार लिखना और पढ़ना वेदों से जुड़ गया था। इसका नतीजा यह निकला कि वेदों के पढ़ने और पढ़ाने के लिए दिए गए कुछ लोगों का अधिकार और अधिकांश लोगों के लिए वेदों को पढ़ने की मनाहियों का मनु का सिद्धान्त लिखने और पढ़ने की कला से जुड़ कर रह गया था। जिन लोगों को वेदों के अध्ययन का अधिकार मिला था उन्हें ही लिखने और पढ़ने का अधिकार मिला था। जिन्हे वेदों के अध्ययन का अधिकार नहीं था उनके लिखने और पढ़ने का अधिकार छीन लिया गया था। इसलिए कहा जा सकता है कि मनु के विधान के अनुसार लिखना और पढ़ना थोड़े से उच्च वर्गो का अधिकार बन गया था तथा अधिकांश निम्न वर्गो का भाग्य निरक्षरता के अंधकार से बंध कर रह गया था।''[3] डॉ॰ अम्बेडकर ने महाराष्ट्र के ब्राह्मणों के पेशवा काल की स्थिति इस प्रकार रखी है– ''पेशवाओं के राज्य में दलित वर्ग शिक्षा के क्षेत्र से पूर्णतया बाहर था।''[4]

राज्य की शिक्षा सम्बन्धी एक महत्वपूर्ण नीति हुआ करती है। ऐसा नहीं है कि कोई वर्ग शिक्षा आपने आप प्राप्त कर लेता है। इसमें राज्य का पूरा–पूरा हाथ होता है कि किस वर्ग को शिक्षा दी जाए और किस वर्ग को इससे वंचित रखा जाए। डॉ॰ अम्बेडकर लिखते है कि पेशवाओं के ब्राह्मणी राज्य की तुलना में ब्रिटिश शासन आने पर दलित वर्गो के मन में अनेक आशाएँ जगी थी। कारण यह था कि पहले पेशवाओं के धर्मतंत्र की तुलना में ब्रिटिश राज लोकतांत्रिक था, दूसरे, दलित वर्गो ने अंग्रेजो का उनकी भारत विजय में सहायता की थी। इसलिए स्वाभाविक रूप से उनका विश्वास था कि बदले में अंग्रेज भी उनकी मदद करेंगे।''[5] लेकिन एक लम्बे समय तक अंग्रेजों ने भारतीय लोगों को शिक्षा देने के बारे में अपनी चुप्पी साधे रखी। यद्यपि प्रशासन के उच्च अधिकारी अपने नैतिक कर्तव्य और प्रशासनिक जरूरतों के नाते जनता में ज्ञान का प्रसार करने के बारे भूल में नहीं थे, लेकिन फिर भी 1813 तक राज्य की शिक्षा सम्बन्धी कोई सार्वजनिक घोषणा नहीं की गई,[6] और अंग्रेज सरकार ने बाद में जो घोषणा की उसके अनुसार शिक्षा को उच्च वर्गो के लिए सुरक्षित कर दिया।[7] डॉ॰ अम्बेडकर अंग्रेजो की इस शिक्षा नीति को खोज सके थे। उन्होंने बम्बई प्रेजीडेंसी की बोर्ड ऑफ

एजुकेशन की 1850–51 की रिपोर्ट से कुछ पैरे उद्धृत किए हैं। वे इस प्रकार हैः–

''8वॉ पैरा – 1830 में माननीय कोर्ट ने मद्रास को इस प्रकार लिखा– ''शिक्षा में सुधार जो लोगों की नैतिक और वौद्धिक दशा का स्तर ऊॅचा उठाने में मदद करते हैं, ये वे सुधार हैं जो उच्च वर्गों की शिक्षा से सम्बन्धित हैं– ऐसे लोगों की शिक्षा से जिनके पास फुर्सत है और जो देशवासियों के दिमागो पर स्वाभाविक असर रखते हैं। उन वर्गो का शिक्षा का स्तर उठा कर आप अन्ततः समुदाय के लोगों से ज्यादा प्रभावकारी परिवर्तन ला सकोगे बनिस्पत इस आशा के कि बहुजन समाज को सीधे शिक्षा दे कर लाभ प्राप्त करना चाहिए। आप हमारी इस चिन्ता से खूब वाकिफ है कि हम देशीय लोगों में से ऐसे लोगों का ग्रुप अपनी इच्छा पर तैयार करना चाहते हैं जो अपनी आदतो और अपनी योग्यताओं के कारण भारत सरकार के लोक प्रशासन में जो अब तक उनका स्थान रहा है, उससे ज्यादा भागीदार बनें और अपने देश के ऊॅचे ओहदों पर काम करें।''

''22वॉ पैरा – इसमें कोई संन्देह नहीं कि यदि बम्बई के दलित वर्गो में से ऐसा गुप तैयार किया जाता है तो वे बोर्ड की सेवा में रत प्रोफेसरों और अध्यापकों द्वारा किसी भी अन्य समुदाय की तुलना में अधिक बौद्धिकता में प्रशिक्षित किए जा सकते हैं। और इतनी ऊॅची योग्यता पा कर, जो उन्हे मिलेगी, देशीय लोगों के लिए खुले ऊॅचे से ऊॅचे पद जैसे न्यायाधीश, ग्राण्ड जूरी, 'हर मैजेस्टीज कमीशन ऑफ दि पीस' को प्राप्त करने में उन्हे कोई नहीं रोक सकेगा। कुछ दयालु हृदय के लोग सोचते हैं कि यह अंग्रेज सरकार की हददर्जे की अनुदारता और कमजोरी होगी, यदि वह दलित वर्गो की ऐसी नियुक्तियों से उत्पनन्न होने वाली हिन्दू समुदाय के मन में धृणा बढ़ने के भय के सामने झुक जाती है। वे चाहते हैं कि जाति प्रथा की बुराई पर खुला आक्रमण किया जाना चाहिए।''[9]

''23वॉ पैरा – लेकिन यहॉ एलफिन्सटन महोदय, जो भारत भूमि में इस पक्ष के बेहद उदार और दरिया–दिल प्रशासक रहे है, के विचार सही दिशा में काम करने के लिए पढ़े जा सकते हैं। वे कहते हैं– यह कहा जाता है कि मिशनरी लोग निम्न जातियों के लोगों को अपने सबसे अच्छे अनुयायी मानते हैं लेकिन हमें इस बात में बहुत सावधानी बरतनी चाहिए कि इस तरह के निम्न जातियों के लोगों को कितना प्रोत्साहित किया जाए। वे सबसे अधिक तिस्कृत लोग ही नहीं है बल्कि समाज के बड़े विभाजन में उनकी संख्या भी सबसे कम है। डर लगता है कि यदि हमारी शिक्षा प्रणाली सब से पहले उनमें अपनी जड़े जमाती है तो वह आगे प्रसारित नहीं हो सकेगी। हम एक ऐसे नए वर्ग के साथ होंगे जो उपयोगी ज्ञान में बाकी सबसे श्रेष्ठ होगा लेकिन बाकी जातियों से घृणित और तिरस्कृत भी होगा। ऐसा करना तब हो ठीक रहेगा यदि हम अपनी सता को सेना के बल पर बनाए रखने से सन्तुष्ट होना चाहते है या जनसंख्या के एक भाग को मोहित

करना चाहते हैं लेकिन वह शिक्षा को विस्तृत आधार देने के हमारे हर प्रयास के खिलाफ होगा।''[10]

डॉ॰ अम्बेडकर यह भी मानते थें कि भारत में अंग्रेज सरकार की शिक्षा नीति में साम्प्रदायिक सन्तुलन रहा है। उन्होंने गवर्ननर–जनरल को बताया था कि इसी साम्प्रदायिक नीति के तहत अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी और बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय को समान रूप से तीन–तीन लाख रूपये सालाना सरकार द्वारा अनुदान के रूप में दिए जा रहे हैं। इसी तर्क पर उन्होंने अनुसूचित जातियों की शिक्षा के लिए अनुदान मॉगे थे।[11] अपनी पुस्तक 'स्टेट्स एण्ड माइनरिटीज' में उन्होंने अनुसूचित जातियों की सामान्य शिक्षा, उच्च शिक्षा और विदेशी शिक्षा के लिए अलग–अलग धाराऍ रखी थी।[12] गवर्नर जनरल के सामने अनुसूचित जातियों की शिकायतें रखते समय उन्हानें सेण्ट्रल एडवाइजरी बोर्ड ऑफ एजुकेशन में इन जातियों के सदस्यों के रूप में दो प्रतिनिधि रखने की मॉग भी रखी थी।[13]

यहॉ प्रतियोगी परीक्षाओं और कुशल प्रशासन का एक बार पुनः जिक्र किया जा सकता है। यहॉ भी डॉ॰ अम्बेडकर इस सवाल की समीचीनता पर प्रश्नचिन्ह नहीं लगा रहे कि लोक सेवाओं में कुशल प्रशासक पाने के लिए प्रतियोगी परीक्षाओं का तरीका भरोसेमन्द है या नहीं। वे केवल यही प्रश्न पूछ रहे हैं कि यदि प्रतियोगी परीक्षाऍ सभी जातियों और धर्मावलम्बियों के लिए समान रूप से खुली हुई हैं तो क्या इतने भर से अनुसूचित जातियों के लोग लोक सेवाओं में प्रवेश पा सकेंगे। डॉ॰ अम्बेडकर खुद इस प्रश्न का उतर देते हुए लिखते हैं कि सब कुछ राज्य की शिक्षा व्यवस्था पर निर्भर करता है। पर क्या राज्य की शिक्षा व्यवस्था पर्याप्त रूप से लोकतांत्रिक हैं? क्या शिक्षा की सुविधाऍ प्रतियोगी परीक्षाओं में हिस्सा लेने के लिए समाज के सारे वर्गो के लिए समान रूप से सुलभ हैं? यदि ऐसा नहीं है तो खुली प्रतियोगिता के नाम पर समाज के ज्यादातर वर्ग लोक सेवाओं में पहुॅचने से रह जाऍगे।[14] यहॉ भी डॉ॰ अम्बेडकर वही बात दुहराते हैं कि भारत में उच्च शिक्षा पर हिन्दुओं का और उनमें भी विशेषकर द्विज हिन्दुओं एकाधिकार काबिज है। अनुसूचित जातियों में व्याप्त गरीबी के कारण लोक सेवा के उच्च पदो के लिए जरूरी उच्च शिक्षा उनके पास नहीं है और ऊॅचे पद ही सरकार की नीति सम्बन्धी बातें तय करते है।[15] समाधान में डॉ॰ अम्बेडकर इसी बात पर जोर देते हैं कि राज्य की शिक्षा व्यवस्था पर्याप्त रूप से लोकतांत्रिक होनी चाहिए जिससे सभी वर्गो के छॅटे हुए अच्छे लोक सेवक सरकार का कामकाज चलाऍ।[16]

लोक सेवा के क्षेत्र में भर्ती का तरीका कम महत्वपूर्ण नहीं है; भर्ती करन के नियम होते है जिनके अनुसार भर्ती की जानी होती है। लेकिन देखने में यह आता है कि भर्ती करने वाले अधिकारी उन नियमों का पालन नहीं करते। यह सरकारी क्षेत्र की बात है लेकिन गैर–सरकारी क्षेत्र में कोई खास नियम ही नहीं होते।

असल में, डॉ॰ अम्बेडकर के ऐसे विचार क्यों बने थे? इन विचारों के बनने में उनका बचपन तक का तजुर्बा था। उन्होंने निजी मिल मालिकों के मिलों में भर्ती का तरीका देखा था कि उनमें साम्प्रदायिकता के हिसाब से नियुक्तियॉ की जाती थीं। 1938 में बम्बई विधान सभा में 'इंडस्ट्रियल डिस्प्यूट्स बिल' पद बहस करते समय उन्होंने अपने अनुभव इन शब्दों में रखें थे– ''मैंने अपने बचपन में इन सारे मिलों में जा कर देखा है। उनमें मेंरे परिवार के कुछ लोग काम करते थे। मै उनके लिए भोजन ले जा कर जाया करता था। अधिक तो नहीं, लेकिन मैंने कुछ मिलों को अभी कुछ दिन पहले जा कर फिर देखा है। इन सारे मिलों के बारे में जो आश्चर्यजनक बात सामने आती है वह यह है कि वे मिल अपने प्रबंधकों के चचेरे भाइयों के लिए स्वर्ग बन गए है। सैंकड़ों निकम्मे लोग ऊॅचे पदों पर केवल इसलिए नियुक्त किए जाते हैं कि वे प्रबधकों के किसी रिश्ते में आते हैं। आप पारसियों के मिलों में जा कर देखेंगे कि उनमें सैकड़ों पारसियों को नौकरियॉ मिली हुई हैं, भले ही मिल को उनकी जरूरत हो या न हो। आप गुजरातियों के प्रबंध वाले मिलों में जा कर देखेंगे कि वहॉ सैकड़ों गुजरातियों को नौकरियॉ मिली हुई हैं भले ही मिल को उनकी भी जरूरत हो या न हो। यहूदियों के मिलों में आप वहॉ आवश्यकता के और बिना आवश्यकता के नौकरी करते हुए सैकड़ों यहूदियों को पाएॅगे। प्रबंधको द्वारा अच्छे मजदूरों की कमाई का अधिकांश भाग इन निठल्ले लोगों के पेट भरने के लिए इस्तेमाल किया जाता है, चाह ये कुशल काम करने वाले हों या न हों और चाहे मिल को इनकी आवश्यकता हो या न हों।[17] इस तरह निठल्ले और फालतू लोगों को भर्ती करने से मिल का काम भी ठीक नहीं चलता। ऐसी हालत में देश के उद्योग पर बुरा असर पड़ता हैं। यह सब इसलिए होता हैं क्योंकि भर्ती करने के नियम कोई निश्चित और तरीके नहीं हैं। इसलिए डॉ॰ अम्बेडकर चाहते हैं कि ऐसी नियुक्तियों पर रोक लगनी चाहिए।

जहॉ तक सरकारी क्षेत्र का सवाल है, डॉ॰ अम्बेडकर ने गोल मेज सभा की अपनी प्रभावकारी दलीलों के कारण दलित जातियों के लिए सरकारी क्षेत्रों में नौकरियों के द्वार खुलवा दिए थे। लेकिन सच्चाई यह थी कि सरकारी आदेश के बावजूद नौकरियों में अनुसूचित जातियों के उम्मीदवारों को नहीं लिया जाता था। इस का कारण यह था कि अनुसूचित जातियों की नियुक्तियों के लिए अधिकारियों को विवेकाधिकार दिए गए थे। डॉ॰ अम्बेडकर इस बारे मे लिखते है– ''लोक सेवाओं में अनुसूचित जातियों की नियुक्तियॉ अन्य अल्पसंख्यकों की तरह एक निश्चित कोटा तय न किए जाने के कारण नियोक्ताओं के विवेकाधिकार पर छोड़ दी गई हैं। नियुक्ति अधिकारी प्रायः सवर्ण हिन्दू होते है और उनसे यह अपेक्षा नहीं रखी जा सकती कि वे विवेकाधिकार का इस्तेमाल अनुसूचित जातियों के फायदे में करेंगे।[18] उन्होंने निष्कर्ष निकाला है कि लम्बे काल से चले आ रहे अपने

पूर्वाग्रहों के कारण सवर्ण हिन्दुओं के नियुक्ति अधिकारी अनुसूचित जातियों के हित की बात नहीं सोचेंगे।[19] इतना ही नहीं, वे यह भी बताते हैं कि यदि नौकरी देने की बात आती है तो अनुसूचित जाति का व्यक्ति सब से बाद में नियुक्त किया जाता है लेकिन यदि नौकरी से निकालने की बात आती है तो सबसे पहले अनुसूचित जाति का व्यक्ति निकाल दिया जाता है।[20] वे साइमन कमीशन के सामने अपने साक्ष्य में यह भी बताते हैं कि यदि दलित जातियों को नौकरियॉ दी जाती है तो अस्पृश्यता की भावना के कारण ऐसे विभागों में दी जाती हैं जो फैक्ट्री के हिसाब से महत्वपूर्ण नहीं माने जातें।[21] डॉ॰ अम्बेडकर बार–बार प्रशासन के लिए दण्ड की बात नहीं करते; वे बार–बार जो बात करते हैं, यह प्रशासक के दिमाग में भेंदभाव की बात हैं। वे उस पर वर्ग–पक्षधरता का आरोप लगाते हैं। सवाल यह है कि अल्पसंख्यक की दृष्टि से इस आरोप को अपराध कितना माना जाए। डॉ॰ अम्बेडकर सवर्ण हिन्दुओं के लोक प्रशासकों के जिक्र तक से चिढ़ते हैं। वे उन्हें सुधारना या दण्ड देना नहीं चाहते बल्कि उनके एकाधिकार की प्रशासनिक व्यवस्था को मिटाना चाहते हैं। दलित जातियों के प्रतिनिधित्व की दृष्टि से वे सवर्ण हिन्दुओं के प्रशासकों का कुशल प्रशासक कहने को तैयार नहीं हैं। वे लिखते हैं– ''लोक प्रशासन अछूतों के खिलाफ भेदभाव के बर्ताव में सराबोर है। इसने विधि न्यायालयों को, सरकारी विभागों को, को–ओपरेटिव बैंकों और विशेष रूप में पुलिस को अपनी चपेट में ले रखा है। जमीन प्राप्त करने, बैंकों से ऋण उधार लेने में और काम के मामलों में जहॉ कहीं भी, अछूतों के प्रति यह भेदभाव पूरी तरह छाया हुआ है। नौकरियों के मामलों में तो यह सबसे अधिक उजागर है। जबकि मात्र छोटे–मोटे विनियम नहीं है बल्कि अछूतों के सरकारी सेवाओं में प्रवेश के और उनकी प्रोन्नतियों के पक्के, मुकम्मिल और मान्य नियम बने हुए हैं लेकिन ज्यादातर यह देखने में आता है कि उन्हे नौकरियॉ नहीं मिलतीं। उनके लिए पूरे के पूरे डिपार्टमेण्ट बन्द हैं।''[22] वे आगे लिखते हैं– ''कपड़ा मिलों के बुनकर विभागों में वे नौकरी नहीं पा सकते और सेना में उनकी भर्ती नहीं हो सकतीं। यदि किसी अछूत को कही नौकरी मिलती भी है तो चाहे वह कितना ही कुशल हो, या उसकी सर्विस कितनी लम्बी हो, प्रोन्नति में एक स्तर से ऊपर नही उठ सकता। सामान्य सिद्धान्त यह है कि अछूत प्रशासनिक पदों पर तैनात नहीं किए जाएँगे। परिणाम यह निकलता है कि यदि पूरा का पूरा विभाग अछूतों के हाथ में आ जाए जो बात अलग है अन्यथा उन्हें बहुत कम पद मिलते हैं। इसका ठोस उदाहरण दे कर बताया जाए कि ऐसा एक सफाई कर्मचारियों का ही विभाग है जिसमें अछूतों के साथ भेदभाव नहीं बरता जाता। इसमें किसी भेदभाव की इसलिए जरूरत नहीं हैं क्योंकि यह पूरा का पूरा काम अछूतों के जिम्मे डाल दिया गया है। और सवर्ण हिन्दुओं की इसमें उनसे कोई प्रतियोगिता नहीं है।''[23] वैसे सफाई

विभाग की नियुक्तियों में भी अन्तिम परिणाम असमानता का ही निकलता है क्योंकि उसमें दूसरे वर्गो के लोग नहीं लियें जाते।

लोक प्रशासन के क्षेत्र में जो सबसे महत्वपूर्ण सिद्धान्त है वह इसकी बौद्धिकता और कानूनियत का हैं। इसमे मान कर चला जाता है कि प्रशासन का कोई भी सदस्य बौद्धिक हो कर कानून के अनुसार काम करेगां इस सिद्धान्त में यह मान लिया गया होता है कि प्रशासन के पास पहले से कानून मौजूद होते है। लेकिन क्या प्रशासन के पास सच में हमेशा कानून होते हैं? क्या कभी ऐसा नहीं होता कि उसके पास कानून न रहतें हों? क्या ऐसी स्थिति अकल्पनीय है जब प्रशासन कानून के अभाव में रहता हों? इस सवाल को इस तरह भी पूछा जा सकता है कि क्या राजकाज की हर बात के लिए कानून बनाया जा सकता हैं? क्या कुछ ऐसे सवाल नहीं हैं जो भविष्य में अस्तित्व में आएँगे? जो कानून अभी भविष्य के गर्भ में है, क्या उनकी विषय वस्तु वर्तमान काल में बिलकुल नहीं रहती। उदाहरण के रूप मे, भारत की संसद द्वारा पारित धर्म स्थल अधिनियम 1991 को देखा जा सकता है। यह कानून अब बना है कि सभी धर्म स्थलो के दावे 15 अगस्त 1947 के दिन के पहले के रहेंगे। लेकिन इससे पहले 15 अगस्त 1947 से ले कर आज तक प्रशासन के सामने विभिन्न धर्मानुयायियों के दावे आते रहे थे। तब 15 अगस्त 1947 से ले कर इस अधिनियम के आने के दिन 10 जुलाई, 1991 तक के बीच में प्रशासन ने इन मामलों में अपने कैसे निर्णय दिए हैं? इस प्रकार, स्पष्ट कानून के अभाव में प्रशासन निष्क्रिय नही बना रहता बल्कि सभी महत्वपूर्ण विषयों पर अपन निर्णय देता रहता हैं।

इस प्रकार, डॉ॰ अम्बेडकर लोक प्रशासकों द्वारा व्यक्तिगत आधार पर या साम्प्रदायिक आधार पर जनता के या अल्पसंख्यकों के साथ किए गए भ्रष्टाचार या भदभाव के लिए उन्हें न्याय व्यवस्था द्वारा दण्डित करना चाहते हैं।[24]

सन्दर्भ :

1. डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर : राइटिंग्स एण्ड स्पीचेज, खंड 2 पृ. 472.
2. वही, पृ. 172.
3. वही, खंड 3, पृ. 43.
4. वही, खंड 2, पृ. 409.
5. वही, पृ. 409.
6. वही, पृ. 410.
7. वही, पृ. 415.
8. वही, पृ. 415.
9. स्टेट्स एण्ड माइनरिटीज, बी. आर. अम्बेडकर, पृ. 36.
10. डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर : राइटिंग्स एण्ड स्पीचेज, खंड 10, पृ. 430–31.

11. वही, पृ. 416.
12. मिस्टर गांधी एण्ड दि एमन्शिपेशन ऑफ दि अनटचेबल्स, बी. आर. अम्बेडकर, पृ. 41.
13. वही, पृ. 42.
14. डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर : राइटिंग्स एण्ड स्पीचेज, खंड 2, पृ. 395.
15. वही, पृ. 230.
16. वही, खंड 10, पृ. 420.
17. वही, खंड 2, पृ. 472.
18. डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर : राइटिंग्स एण्ड स्पीचेज, खंड 5, पृ. 108.
19. वही, पृ. 103–04.
20. वही, खंड 2, पृ. 396.
21. वही, पृ. 396.
22. वही, खंड 10, पृ. 436.
23. डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर : राइटिंग्स एण्ड स्पीचेज, खंड 5, पृ. 394.
24. वही, खंड 2, पृ. 278–79.

***

यजमानी ब्राह्मणों के बीच स्वार्थ संघर्ष और विभेदन

डॉ. अवध पटेल *

स्मृतियों और पुराणों में इस बात के उदाहरण भरे पड़े हैं कि यजमानी ब्राह्मणों के विविध वर्गों के बीच द्वेष की भावन बढ़ती जा रही थी। उपहार–विनिमय की प्रथा अर्थात् दान लेने–देने की प्रथा में ही इस संघर्ष के बीज छिपे थे। इस प्रथा से संबंधित सामाजिक अर्थव्यवस्था में ज्यों–ज्यों बदलाव आता गया त्यों–त्यों दान में मिलने वाली वस्तुओं का बँटवारा कम से कम लाभप्रद होता गया। उदाहरण के लिए, गृह्यसूत्राों के रचनाकाल से पहले कबीलाई सामाजिक जीवन में यज्ञ का महत्व सर्वाधिक था। वह उनके जीवन की धुरी बना हुआ था। किन्तु गृह्यसूत्रों में रचनाकाल के आसपास बाजार–आधारित सामाजिक अर्थव्यवस्था का बोलबाला हो गया था इसलिए यज्ञ कर्म के लिए अपेक्षित बहुत अधिक तामझाम के प्रति गृहस्थ यजमानों का आकर्षण पहले की अपेक्षा कम होता गया। यज्ञ कर्मों में कमी आने से पुरोहितों की दक्षिणा में भारी गिरावट आ गई। इसकी क्षतिपूर्ति हेतु कई नए–नए गृह्यसंस्कारों का विधान किया गया। इन संस्कारों की बदौलत नगरवासी गृहस्थ यजमानों की ओर से यजमानी ब्राह्मणों को पुनः दान–दक्षिणा मिलने लगी और इस प्रकार यजमान–पुरोहितों के बीच संरक्षण–संरक्षित की परंपरा नए रूप में चलती रही। बाद में, जब तीसरी सदी से नगरों का क्षय शुरू हुआ तो एक बार फिर नगरवासी गृहस्थ यजमानों का टोटा पड़ना शुरू हुआ और इस प्रकार यजमानी ब्राह्मणों के जीवन निर्वाह के लिए आवश्यक साधन अपर्याप्त हो गए। इन अपर्याप्त साधनों की क्षति पूर्ति करने की जब फिर आवश्यकता महसूस की जाने लगी तो दान संबंधी कई नए अनुष्ठानों का आविष्कार हुआ। इस प्रसंग में हम पूर्ववर्ती आध्यायों में विचार कर चुके हैं।

यजमानी ब्राह्मणों के बीच शुरू हुए लड़ाई–झगड़े के ऐतिहासिक संदर्भ को समझने के लिए हमें अपात्रीकरण के सिद्धांत को और परवर्ती नरक की यातना भोगने वाली अवधारणा पर विचार करना होगा। अपौत्रीकरण के इस सिद्धांत के दर्शन सर्वप्रथम गृह्यसूत्र साहित्य में होते हैं। बाह्मणों द्वारा पारंपरिक अनुष्ठान संपादित कराते समय मिलने वाले उपहारों में हिस्सा बँटाने वाले प्रतिद्वंद्वी साथियों को अवैध ठहराना इस सिद्धांत का मुख्य उद्देश्य था। इस तरह से ऐसा लगता है कि अपात्रीकरण का सिद्धांत ब्राह्मण–पुरोहितों के बीच उपहार वितरण के दायरे के सिकुड़ जाने के फलस्वरूप उत्पन्न एक प्रकार के आर्थिक कष्ट के निवारणार्थ अपनाया गया सचेतन सामाजिकीकरण का प्रयास भर था। संबंधित ब्राह्मण वर्गों को अपात्र

* पीएच. डी. (इतिहास), बी. आर. ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

ठहराऐ जाने का जो कारण प्रस्तुत किया गया, वह यह था कि इन ब्राह्मणों ने कुछ ऐसे निंदनीय कर्म अपने जीवन में अपना लिए हैं जिनके संपर्क मात्र में आने से वे अपवित्र हो गए हैं। आश्चर्य है कि ये कर्म वे थे जो किसी न किसी तरह से उत्पादन वितरण और प्रशासनिक प्रबंध व्यवस्था जैसे अनिवार्य कायों से संबंधित थे, पर जिन्हें ब्राह्मणों के लिए वर्ज्य माना जाने लगा था। गृह्यसूत्रों और मनुस्मृति में अपपात्रता विषयक कर्मों की सूची देखें तो स्पष्ट हो जाता है कि यदि कोई यजमानी ब्राह्मण अपने यजमानों के लिए विहित यज्ञ कार्मो और संस्कार संबंधी अनुष्ठानों को छोड़कर जीविकोपार्जन के लिए कोई अन्य कर्म अपना ले तो उसे अपपात्र घोषित कर दिया जाता था। अपपात्र घोषित कर दिए गए ब्राह्मणों की सूची में वे लोग सम्मिलित थे जो या तो किसी व्यवसायी संघ में या किसी राज सेवा के लिए नियुक्त हो गए थे अथवा जिन्होंने वाणिज्य, खनन और विनिर्माण कार्यों को अपने पेशे के रूप में अपना लिया था। इनके अतिरिक्त, चिकित्सा कार्य करने वाले या ज्योतिषी का धंधा करने वाले, यहाँ तक कि शूद्रों के लिए, ग्रामीणों के लिए, स्त्रियों के लिए और अपधर्मी अथवा विधर्मी संप्रदायों के लिए पौरोहित्य कर्म करने वालों को भी अपपात्र मान लिया गया।

अपपात्र ब्राह्मणों की सबसे लंबी और विधिवत प्रस्तुत सूची मनुस्मृति में वे सभी ब्राह्मण सम्मिलित हैं जिन्होंने या तो अपने जीविकापार्जन के लिए पौरोहित्य–बाह्य कर्म अपना लिए थे या जो निंदनीय प्रकृति वाले पौरोहित्य कर्मों से जुड़े हुए थे। गृह्यसूत्रों में भी अपपात्र ब्राह्मणों की सुचियाँ दी गई हैं किन्तु मनुस्मृति वाली सूची में जिस प्रकार का सामाजिक पूर्वाग्रह देखने को मिलता है उसके रंचमात्र भी दर्शन इन गृह्यसूत्रों में नहीं होते।[1] मनुस्मृति वाली सूची में ग्रामयाजी, शूद्रयाजी, लोकयाजी/गणयाजी, देवलक (मंदिरों में देव प्रतिमाओं की पूजा–अर्चना करने वाले पुजारी), भिषकशास्त्रोपजीवी (चिकित्सक), नक्षत्रपाठक (ज्योतिषी), वेदविक्रयिन (पैसा लेकर वेद पढ़ाने वाले), राजाओं और व्यवसाय संघों में नौकरी करने वाले, दुकानदार, मांस विक्रेता, कलाल (शराब विक्रेता), ग्रामसेवक, कुसीदिक (सूदखोर), गोपालक, अभिनेता और गायक, समुद्र यात्री, जुआघरों के मालिक, चारण–भाट, धनुष–बाण बनाकर अपनी जीविका कमाने वाले, शस्त्र विद्या सिखाने वाले, अश्वपालक, गजपालक (महावत), ऊँट पालने वाले, पेड़–पौधे लगाकर पेट पालने वाले, रथपति, संदेशवाहक, भेड़ और भैंस पालने वाले आदि–आदि सभी सम्मिलित हैं। अपपात्र कर्मों की जैसी लंबी सूची मनुस्मृति में दी गई है उतनी लंबी सूची परवर्ती साहित्य में नहीं मिलती। यह बात अलग है कि इन परवर्ती कृतियों में अपपात्र कर्मों की ऐसी कुछ अन्य कोटियाँ भी जुड़ गई थीं जिनमें सम्मिलित कर्मों को मनुस्मृति के काल तक वर्ज्य या भर्त्सना लायक नहीं समझा जाता था।

कूर्मपुराण[2] में कापालिकों, पाँचरात्रों और पाशुपतों को पंक्तिदूषक वर्गों की श्रेणी में रखा गया है और इन्हें श्राद्ध–भोजन में निमंत्रित करने का

निषेध किया गया है। यह वह काल था (600 ई0 से लेकर 900 ई0 तक) जब ऐसे गैर–परंपरावादी संप्रदाय बने ही नहीं थे और इन संप्रदायों में दीक्षित कापालिक आदि वैदिक परंपरा से हटकर समाज में लोकप्रियता प्राप्त करने लगे थे तथा परंपरागत रूप से अग्निहोत्र करने वाले कई यजमान इनकी ओर आकृष्ट भी हो चुके थे। कूर्मपुराण के इसी अवतरण में वैदिक विधि–विधान और प्रार्थना–विधि के अनुरूप शिव और विष्णु की आराधना करने वाले व्यक्तियों को पंक्तिपावक मानते हुए श्राद्ध–भोजन में उनकी उपस्थिति को स्वागत योग्य घोषित किया गया है। इसी पुराण में अपपात्रों की सूची में संस्कृत के अतिरिक्त अन्य भाषा सिखाकर जीविका कमाने वाले अध्यापकों को पहली बार सम्मिलित किया गया। यहाँ ध्यान देने लायक तथ्य यह है कि कूर्मपुराण के रचनाकाल में ही न केवल क्षेत्रीय भाषाओं और लिपियों का विकास हुआ था अपितु यह काल विभिन्न धर्म संघों और मठों में भाषाओं के अध्ययन–अध्यापन हेतु शिक्षण वृत्तियों की स्थापना के लिए भी प्रसिद्ध रहा था।

अवैधीकरण या अपपात्रता की इस प्रक्रिया का एक दिलचस्प पहलू यह है कि इसी प्रक्रिया से जोड़कर नरकों की कल्पना की गई और उनकी यातनाओं के भागीदार इन्हीं अपात्रों को माना गया। तीसरी सदी के बाद नए–नए नरकों की कल्पना और उनमें मिलने वाली यातनाओं की कहानी प्रत्येक पुराण का जाना–पहचाना विषय बन गया। ग्रह्यसूत्रों में अपपालकों वाले प्रसंग में केवल इतना भर उल्लेख मिलता है कि घोषित अपपातक ब्राह्मणों को श्राद्ध'–भोजन के लिए निमंत्रित करने पर नैवेद्य पूर्वजों तक नहीं पहुँच पाता। किन्तु पुराणों में अपपालकों की कथा को और लंबा खींचते हुए यहाँ तक कहा गया है कि इस वर्ग के व्यक्ति वस्तुतः अपवित्र होते हैं और उन्हें मृत्योपरांत नरक की यातनाएँ झेलनी होगी। कदाचित इतना कहकर ही पुराणकारों को संतोष नहीं हुआ, तभी तो उन्होंने आगे कहा कि इन पापियों को एक निश्चित अवधि के लिए नरक की यातनाएँ भोग लेने के बाद पुनः पुनः सैकड़ों बार चांडाल योनियों में पुनर्जन्म लेना होगा। मत्स्यपुराण के 101वें अध्याय में, जिसे हजरा से तीसरी सदी की रचना माना है, वेदाध्ययन को जीविकोपार्जन कासाधन बनाने वाले व्यक्तियों को, अयाज्य–याजिकों को (अर्थात अपात्र यजमानों के लिए यज्ञादि संपन्न कराने वालों को), भिषकशास्त्रोपजीवियों को तथा नक्षत्र पाठकों को मृत्योपरांत नरक की यातना भोगने वाले बताया गया है।[3] बृहन्नारदीयपराण में[4] जिसे हजरा ने नौवीं सदी की रचना माना है, नरकगामी व्यक्तियों की सूची न केवल कई गुना बढ़ गई है अपितु उसमें नरक की यातना भोगने की कालावधि भी बढ़ा दी गई है। उदाहरण के लिए, शिव और विष्णु का नाम जोड़कर वामाचार में प्रवृत्त संप्रदायों के साथ तथा अपने शरीर पर क्रमशः लिंग और चक्र का चिह्न धारण करने वाले व्यक्तियों के साथ संबंध जोड़ने वाले ब्राह्मणों के दर्शन मात्र से अपवित्र हो जाने की बात भी कही गई है। इसी तरह से उल्लेख

किया गया है कि जो ब्राह्मण वेदाध्ययन को अपनी जीविका का साधन बनाएगा वह न केवल मृत्यु के बाद नरक की यातना भोगने का अधिकारी होगा, अपितु उसे अगले जन्म में म्लेच्छ की योनि भी धारण करनी होगी। ग्रामयाजी, शूद्रयाजी, नक्षत्रपाठक और देवलक ब्राह्मणों को ब्रह्मचांडालों की संज्ञा देते हुए कहा गया है कि ये सभी पाँचों महापाताके के दोषी होंगे।[5]

मत्स्यपुराण के अनुसार[6] प्राचीन काल में केवल एक प्रकार की यजमानी सेवा प्रचलित थी। किन्तु आगे चलकर ब्राह्मणों में मतभेद बढ़े और एक–दूसरे के बीच विश्वास की भावना में कमी आने लगी। पणिामस्वरूप कई प्रकार के पौरोहित्य कर्म प्रचलित हो गए। असंतुष्ट ब्राह्मणों ने परंपरागत वैदिक संस्कार या अनुष्ठान संपन्न कराने बंद कर दिए। उनके स्थान पर उन्होंने शूद्रों के लिए कर्मकांड में भाग लेना शुरू कर दिया। कुछ ने मंदिरों में पुजारी का पेशा अपना लिया तो कुछ पैसा लेकर वेद पढ़ाने लगे। यद्यपि उन दिनों पौरोहित्य वृत्ति के रूप में वेदाध्यापन और अनुष्ठान कर्म की लोकप्रियता धीरे–धीरे कम होती जा रही थी, फिर भी कुछ तो ब्राह्मण वैदिक पंडितों का वेश धारण कर और अपने को वैदिक कर्मकांडों का विशेषकर बताकर[7] काफी धन कमाने में लगे थे। यहाँ तक कि परंपरागत धार्मिक सिद्धांतों से मतभेद रखने वाले कुछ ब्राह्मणों ने कापालिक, पाशुपत और पाँचरात्र जैसे वममार्गी संप्रदायों को शुरू करने में मदद पहुँचाई तथा आयुर्वेद, ज्योतिष, भाषाविद्या, स्मृतिशास्त्र और हेतुशास्त्र जैसी वेद–विरूद्ध विद्या शाखाएँ शुरू कीं।[8]

प्राचीन यज्ञ–व्यवस्था और संस्कार–आधारित उपहार–विनिमय प्रथा में आई अवनति के परिणामस्वरूप पौरोहित्य व्यवसाय में विविधीकरण उत्पन्न हुआ। इसके प्रमाण आरंभिक पुराणें में भरे पड़े हैं। इन पुराणों में बार–बार इस बात पर बल दिया जाता रहा कि घोर निर्धनता से पीड़ित होने की अवस्था में ब्राह्मण यदि ब्राह्मणों के लिए वर्जित व्यवसाय अपना लें और शूद्र यजमानों के लिए पौरोहित्य कर्म करने लगें तो इन्हें अनुचित नहीं माना जाना चाहिए।[9] इस प्रकार की निर्धनता का कारण पारंपरिक पौरोहित्य कर्मों से जीविकोपार्जन न कर पाना ही था।[10] वेदाध्ययन अवनति की ओर अग्रसर था तथा विशेषतः वेदविहित रूप संबंधी कर्मकांडों का प्रचलन कम होता जा रहा था। इस तरह से वैदिक पद्धति में निष्णात अग्निहोत्री ब्राह्मणों की जीविका के साधन कम होते जा रहे थे। लगभग सभी आरंभिक पुराणकारों ने इस शोचनीय स्थिति का रोना रोया है।[11] उन्होंने कहा कि कलियुग का आरंभ हो चुका है और इसका कारण और परिणाम दोनों ही वेदविहित यज्ञों में आई कमी को माना जा सकता है।[12] राजा और प्रजा दोनों ही यज्ञों से विरत हो चुके थे, इसीलिए कलियुग शुरू हुआ।[13] अंततोगत्वा कुछ ब्राह्मण वर्गो ने वेदविहित परंपरागत कर्तव्यों का त्याग कर दिया।[14]

एक ओर तो श्रेत्रिय ब्राह्मणों की जीविका के परंपरागत साधन लुप्त होते गए और दूसरी ओर उनके परिवारों में आश्रित सदस्यों की संख्या में वृद्धि होती रही। इस बात को आरंभिक पुराणों में कई जगह बड़े स्पष्ट तरीके से उठाया गया है। इन अवतरणों में प्रत्याशित दानियों को उपदेश दिया गया है कि वे उन परंपरानिष्ठ ब्राह्मणों को ही दान दें जिन पर अपने कई संबंधियों और कुटुंबियों के पालन–पोषण का भार हो। कूर्मपुराण और वराहपुराण में ऐसे कई दरिद्र और वृत्तिहीन क्षेत्रिय ब्राह्मणों का स्पष्ट उल्लेख है जो अपने घरों (साग्निकों) में पवित्र अग्नि रखते थे और जिन्हें अपने कई कुटुंबियों को पालन–पोषण भी करना पड़ता था।[15] ऐसे दरिद्र और वृत्तिहीन ब्राह्मणों की जीविका–निर्वाह के लिए प्रबंध करने वाले दानियों को अनन्त और अद्वितीय पुण्य की प्राप्ति होने की बात कही गई है।[16] कूर्मपुराण कहता है कि जो व्यक्ति वेद ज्ञाता क्षेत्रिय/अग्निहोत्री ब्राह्मणों को गन्ने, जौ (यव) और गेहूँ (गोधूम) की फसल वाले खेत दान में देता है उन्हें मोक्ष की प्राप्ति होती है अर्थात् उन्हें पुनर्जन्म के दुःखों से छुटकारा मिल जाता है।[17] यहाँ तक उल्लेख है कि निर्धन श्रेत्रिय ब्राह्मण को गोचर्म के आकार जितनी कृषि योग्य भूमिदान में देने से भी दानकर्त्ता के सभी पाप धुल जाते हैं।[18] कूर्मपुराण से बाद में रचे गए वृहन्नारदीयपुराण में भी कई प्रसंगों में निर्धन, बेकार (वृत्तिहीन) और बड़े कुटुंबों वाले ब्रह्मणों की चर्चा हुइ है।[19] उनमें ऐसे गृहस्थ ब्राह्मणों के लिए वृत्तिदान का जीविका के साधन जुटाने में मद्द करने की बात की गई है।[20] बताया गया है कि ऐसे कर्मों से दानकर्त्ताओं को जिस मात्रा में पुण्य की प्राप्ति होगी उसकी नापजोख करना देवताओं के लिए भी असंभव है। यहाँ तक कि अन्य लोगों को दान के लिए प्रेरित करने वाला व्यक्ति भी दानकर्ता के समान ही पुण्य का भागी बनेगा।[21]इन प्रसंगों में वृत्तिहीन, कुटुंबिन और दरिद्र जैसे शब्दों की पुनरावृत्ति होने से स्पष्ट हो जाता है कि आरंभिक मध्यकाल और मध्यकाल के दौरान परंपरानिष्ठ श्रेत्रिय ब्राह्मण परिवारों को जीविका निर्वाह से संबंधित घोर कष्टों का सामना करनापड़ रहा था।

कूर्मपुराण बड़े परिवार वाले ऐसे ब्राह्मणें को जीवन–निर्वाह के लिए कृर्षि, वाणिज्य और कुसीद जैसे वर्जित उपाय अपनाने की अनुमति देता है। किंतु इसी प्रसंग में वह यह भी कहता है कि यद्यपि स्वयं कृषि कर्म करने वाले ब्राह्मण पाप का भागी बनता है किन्तु यदि वह अपनी आय में से कुछ हिस्सा दान में दे दे तो उसके ये पाप स्वयं ही धूल जाते है।[22] भूमिदान के प्रसंग में कृषतों कर्षयतों जैसे वाक्यांश के प्रयोग से यह स्पष्ट हो जाता है कि तत्कालीन ब्राह्मण समुदाय में से कई ब्राह्मण वर्ग अपने जीवन निर्वाह के लिए या तो दान में मिली भूमि पर स्वयं खेती करते थे या फिर कृषि मजदूरों से खेती करवाते थे।

मत्स्यपुराण के प्रमाणानुसार द्वापर के अंतिम वर्षो में वेदों को प्रमाण मानते रहने में संदेह किया जाने लगा था। परंपरानिष्ठ ब्राह्मणों में से

कुछ उसकी प्रामाणिकता को चुनौती भी देने लगे थे।[23] हमारी कालगणना के अनुसार द्वापर के ये अंतिम वर्ष भारत के पूर्व मध्यकालीन समाज के कुछ पक्षों से मेल खाते हैं। मत्स्यपुराण में ही उपर्युक्त प्रसंग से पहले वाले एक लंबे खण्ड में इस बात को लेकर उग्र वाद–विवाद वर्णित है कि परंपरागत यज्ञ प्रधान धार्मिकता के स्थान पर यज्ञेतर तपस्या को अपनाना समुचित होगा या नहीं। यह दूसरी वाली व्यवस्था अर्थात 'तपस्या' कूर्म उत्तर द्वापरकालीन और आरंभिक कलिकाल की आवश्यकताओं से मेल खाता प्रतीत होती है।[24] उपर्युक्त कथा में यह बात ध्यान देने योग्य जान पड़ती है कि जब यज्ञ समाप्ति पर पशु बलि देने का समय आया तो पुरोहितों में इस विषय को लेकर मतभेद उत्पन्न हो गया। कई ब्राह्मण पशु बलि का अधर्म मानते हुए उसका विरोध करने लगे।[25] इस विरोध के बावजूद जब वसुधर नरेश के यह घोषित करने पर कि पशु बलि से संपन्न होने वाला यज्ञ न्यायोचित और परंपरा के अनुकूल है तो पशु बलि देकर यज्ञ की समाप्ति हुई इस पर उन ब्राह्मणों ने राजा को शाप दे दिया। इस कथा से स्पष्ट हो जाता है कि पशु बलि प्रधान यज्ञकर्म का कुछ पुरोहित वर्ग विरोधी करने लगे थे और इस तरह से ब्राह्मण समुदाय उन्हीं दिनों वर्गो में विभाजित हो गया था।[26] विष्णुपुराण के एक श्लोक में भी यज्ञ के स्थान पर तपस्या के प्रचलन की निंदा की गई है। विष्णुपुराण पुरोहितों के इस कर्म–विचलन को अर्थात् उनकी पथभ्रष्टता को कलियुग के शीघ्र आरंभ के लिए जिम्मेदार ठहराता है।

परंपरागत यज्ञ कर्म के स्थान पर तपस्या के धार्मिक महत्व को सभी आरंभिक पुराण एक स्वर से स्वीकार करते हैं।[27] कूर्मपुराण में तो बल देकर यहाँ तक कहा गया है[28] कि कलियुग में कोई मुर्ख ब्राह्मण ही अपने जीविका निर्वाह के लिए वेदविहित यज्ञ बलि का पौरोहित्य अपनाएगा। कूर्मपुराण की रचना पाँचवीं और आठवीं सदियों के बीच हुई होगी। इसीलिए तो इसमें तत्कालीन सामाजिक वास्तविकता का इस तरह से यथार्थ चित्रण हुआ है अन्यथा आरंभिक पुराणों में तो बलिप्रधान यज्ञ कर्म के स्थान पर तपस्या की शुरूआत को केवल श्रोत्रिय ब्राह्मणों के व्यावसायिक व्यवहार का 'उल्लंघन' मात्र कहकर संतोष का लिया गया था।

इस तरह से ब्राह्मणों के बीच पनप रहा व्यावसायिक संकट ही परंपरागत ब्राह्मण समुपाय को कई वर्गों में विभाजित करने के लिए जिम्मेदार रहा होगा। जो पुरोहित अधिक कट्टर न होने के कारण परंपरा से ही बंधे रहना नहीं चाहते थे, उन्होंनें विविध निंदित वृत्तियाँ अपना लीं। ऐसे ब्राह्मणों की संख्या बहुत अधिक थी। जो ब्राह्मण अल्पसंख्यक थे और अपने को वेद विहित यज्ञों से जी जुड़े रखना पसंद करते थे, उन्हें गुप्तकाल के बाद स्मार्त कहा जाने लगा। इन स्मार्तों ने प्राचीन संस्कार–प्रधान कर्मकांडों से प्राप्त होने वाले शुल्क के स्थान पर नए दान–प्रधान अनुष्ठानों को स्वीकार नहीं किया और न ही ये लोक–प्रचलित नई पूजा–पद्धतियों से जुड़ पाए। पर जो

ब्राह्मण कट्टरपंथी नहीं थे और परंपरा से हटकर जो ग्रामयाजी, लोकयाजी या देवलक बन चुके थे, उनकी इन स्मार्तों ने बहुत निंदा की। सभी पुराण इस प्रकार के निंदासूचक कथनों से भरे पड़े हैं क्योंकि इन्हीं आरंभिक मध्यकालीन और मध्यकालीन स्मार्तों ने अपने आवश्यकता और सुविधा के अनुसार इन पुराणों की रचना की थी या पूर्वरचित संस्करणों का संशोधन किया था।

संदर्भ और टिप्पणियाँः–

1. आर.एन. नन्दी, 'सम सोशल एस्पेक्ट्स ऑफ दि गृह्यसूत्राज', प्रोसिडिंग्स ऑफ दि इंडियन हिस्टरी कॉग्रेस, 38वां सत्र, भूवनेश्वर, 1977
2. कूर्मपुराण, 11, अध्याय 21
3. मत्स्यपुराण, अध्याय 101
4. बृहन्नारदीयपुराण, अध्याय 14, श्लोक 114–6, 139–40, 143–3
5. वही, अध्याय 14, श्लोक 182–4
6. मत्स्यपुराण, अध्याय 144, श्लोक 15–6
7. वही, अध्याय 144, श्लोक 41, दिव्युवृतश्च ये केचिद्वृत्तयार्थम् श्रुतिलिंगिनः
8. वही, अध्याय 144, श्लोक 22–3, 40
9. शुद्रणामंत्ययोनिस्ते संबंधा ब्राह्मणैः सह भवंतिकलौतस्मिन् शयनासनभेजनैः, वायुपुराण, अध्याय 58, श्लोक 39, मत्स्यपुराण, अध्याय 144, श्लोक 35, 38–9
10. मनसा कर्मणा स्तुत्या वार्त्ता सिध्यति वा नवा, वायुपुराण, अध्याय 58, श्लोक 32; तुलना कीजिए मत्स्यपुराण, अध्याय 144, श्लोक 31
11. नाधीयंते तदा वेदा न यंजते द्विजातयः, वायुपुराण, अध्याय अध्याय 58 श्लोक 38; तुलना कीजिए मत्स्यपुराण, अध्याय 144, श्लोक 17 और वायुपुराण, खण्ड 6, अध्याय 1, श्लोक 48–9
12. विष्णुपुराण, खण्ड 6, अध्याय 1, श्लोक 48–8
13. यजंते नाश्यमेधेन राज्ञा शूद्रयोनह, वायुपुराण, अध्याय 58, 67
14. मत्स्यपुराण, अध्याय 144, श्लोक 71
15. वही, अध्याय 72, श्लोक 35; अध्याय 97, श्लोक 15
16. श्रोत्रियाय कुलीनाय वज्निताय तपस्वत्ने, व्रतस्थाय दरिद्राय प्रदेयं भक्तिपूर्वकम्, कूर्मपुराण II, 26, श्लोक 11; गोचर्ममात्रमपि वा यो भूमिं संप्रयच्छति, ब्राह्मणाय दरिद्राय सर्वपापैः पुभुच्यते, कूर्मपुराण II, अध्याय 26, श्लोक 14; तुलना कीजिए श्रोत्रियाय दरिद्राय साधुवृताय धीमते, वेदवेदांगविदुषे साग्निकाय कुटुंबिने, वराहपुराण, अध्याय 103, श्लोक 9 और देखिए अध्याय 101, श्लोक 7 और अध्याय 104, श्लोक 9
17. कूर्मपुराण, II, अध्याय 26, श्लोक 13
18. वही, श्लोक 14

19. वृहन्नारदीयपुराण, अध्याय 12, श्लोक 11, षटकर्मनिरतायैव श्रोत्रियायोहिताग्नये वृत्तिहीनाय वे देयं दरिद्राय कुंटुबिने।
20. वृहन्नारदीयपुराण, अध्याय 13, श्लोक 30
21. वही, अध्याय 13, श्लोक 30
22. कूर्मपुराण, II, अध्याय 25, श्लोक 8–9
23. मत्स्यपुराण, अध्याय 144, श्लोक 17–8, तेषां विपर्ययोत्पन्न भवंति द्वापेर पुनः, आदि
24. मत्स्यपुराण, अध्याय 143, श्लोक 11–2
25. वही, अध्याय 143, श्लोक 11–7, अधर्मो धर्मधाताय प्रारब्धः पशुभिस्तया, नायं धर्मो अधर्मोयं न हिंसा धर्म उच्यते, श्लोक 13
26. व्याकुलो द्वापरेष्वर्थः कृयते भिन्नदर्शनैः, मत्स्यपुराण, अध्याय 144, श्लोक 17; वही, श्लोक 21, तेषां मेघाबिनां पूर्वं मर्त्ये स्वायंभुवेन्तरे, उत्पतस्यंतीह शास्त्राणां द्वापरे परिपंथिनः
27. मत्स्यपुराण, अध्याय 144, वायुपुराण, अध्याय 57; बृहमांडपुराण, अध्याय 63, आदि
28. कूर्मपुराण, खण्ड–1, अध्याय श्लोक 5, यजंत्त यज्ञान् वेदांश्च पठंति चाल्पबुद्धयः

***

चम्पारण में नील की खेती का इतिहास

डॉ. रवि कुमार *

'चम्पारण में नील की खेती' अंग्रेज निलहों के दबाव में आकर नील की खेती करने वाले भारतीय रैयतों के दुःख भरी कहानी एवं औपनिवेशिक शोषण की गाथा का एक कलंकपूर्ण अध्याय है। ''इंगलैंड पहुँचने वाली नील की एक–एक पेटी लोगों के खून से रंगी होती थी।'' यह उक्ति बंगाल सर्विस के पदाधिकारी श्री ई. डे. लौटियर की है जो 1848 में फरीदपुर के जिलाधिकारी थे। एक जाँच समिति के समझ गवाही देते हुए उन्होंने बताष दण्डाधिकारी के रुप में मेरे पास कई ऐसे रैयत भेजे गए थे जिनके शरीर में आर–पार भाला भोंक दिया बया था। मेरे सामने ऐसे भी रैयत लाये गये जिन्हें एक निलहा मिस्टर फोर्ड ने गोली मार दी थी। मैने अभिलेख में लिख दिया कि किस तरह कई लोगों को पहले भाला से आहत कर अपहृत कर लिया गया। मैं समझता हूँ कि नील उत्पादन की यह प्रणाली खूनी प्रणाली है।

यह बताना कठिन है कि भारत में नील की खेती सर्वप्रथम कब शुरु हुई, किन्तु अभिलेखों से पता चलता है कि 'देश में उपजायी जाने वाली वस्तु के रुप में इसका प्रचलन भारत में बहुत पहले से ही था। प्राचीन लेखकों का कहना है कि नील लोकप्रिय रंग और लाभकर माल के रुप में भारत से यूरोप लाया गया था तथा उसका नाम उस देश के नाम पर 'इंडिकम' रखा गया जहाँ यह उपजाया जाता है।[1]

1600 ई. में नील वाणिज्य का एक प्रमुख माल था जिसमें ईस्ट इंडिया कमपनी ने लाभ उठाया और वह कई वर्षो तक इस व्यापार को बढ़ावा देती रही। एक समय ऐसा पाया गया कि वेस्ट इंडिया में नील की अच्छी उपज हो सकती है और तब एक शताव्दी तक व्यापार चलने के बाद ईस्ट इंडिया कंपनी ने पश्चिम भारतीय उपनिवेशों में धन लगाना बंद कर दिया। किन्तु वेस्ट इंडिज में इसकी खेती कम लाभप्रद पायी गयी और इसे छोड़ दिया गया। ईस्ट इंडिया कंपनी ने पुनः इसकी खेती शुरु की और उसे 1779 ई. में 80 हजार पौंड का घाटा उठाना पड़ा। इसके बाद कंपनी ने अपने कर्मचारियों एवं स्वतंत्र व्यापारियों को यह काम सौंप दिया । भारत में नील की गहन खेती कराने के उद्देश्य से ईस्ट इंडिया कंपनी ने गोरे निलहों को भारी रकम पेशगी दी। निलहों ने कम लागत पर नील की खेती कराने के लिए अवैध और अनुमपषिक तरीके अपनाये। 1860 के नील आयोग के समक्ष साक्ष्य देते हुए सर एशले इडेन ने उनके जघन्य कर्मो की एक सूची दी और बताया कि जब निलहों पर मुकदमा किया जाता था तब

---

* पीएच. डी. (इतिहास), बी. आर. ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

न्याय का भी गला घोंट दिया जाता था।आयोग ने जब पूछा कि ऐसा क्यों होता था तो सर एशले इडेन ने कहा – ''निःसंदेह न्याया नहीं होता था और मैं समझता हूँ कि बहुत हद तक इसका कारण यह था कि गर्वनर और सरकार के अनेक अधिकारी निलहों का पक्ष करते थे। इसका अंशिक कारण वर्त्तमान कानून भी है, जिसमें यूरोपवासी को दोषी ठहराना बड़ा ही कठिन होता है। मैं बतलाना चाहूँगा कि एक नवयुवक सहायक के रुप में मैनें कई मामलों में आने देशवासियों का पक्ष लिया है।[2]

सरकार और निलहों के बीच साँठ–गाँठ का संदेह रैयतों को तब हुआ जब 1857 में सर फ्रेडरिक हेलिडे की सरकार ने कृष्णगढ़ और मुर्शिदाबाद जिलों के कुछ निलहों को सहायक दण्डाधिकारी बना दिया। कृष्णगढ़ के माननीय जे. डब्ल्यू. लिंके ने, जो वहाँ के रैयतों से बराबर मिलते थे, जाँच आयेाग को बताया कि इस नियुक्ति के प्रति रैयतों का रुख अच्छा नहीं था। उनलोगों के बीच एक कहावत सी बन गयी थी कि ''अब तो भेड़िये को भेड़ की रखवाली मिल गयी है।'' लोगों की यह धारणा थी कि उप राज्यपाल सर फ्रेडरिक हेलिडे का नील के कई कारखानों में हिस्सा है। बहुतेरे सरकारी कर्मचारी और निलहे खुलकर मिलते–जुलते थे। किन्तु एकाध अपवाद भी थे, जैसे बंगाल के उप राज्यपाल, सर जॉन पीटर ग्रान्ट और उनके सचिव स्तर डब्ल्यू एस. सेटोनकार नील आयेग के प्रतिवेदन पर सर जॉन ने अपने वृत्त में लिखा है ''सरकारी अभिलेखों से पता चलता है कि बंगाल प्रान्त में नील उत्पादन की पद्धति बहुत पहले से ही दोषपूर्ण नही है। विषेश रुप से वर्त्तमान वर्ष के आरेभ मे ंतो यह पद्धति इतनी दोषपूर्ण हो गयी थी जितनी पहले कभी नहीं थी।'' 1810 में चार निलहों को सुदूर देहातों में रखने के लिए दिया गया लाइसेंस रद्द कर दिया गया क्योंकि यह सिद्ध हो गया कि वे वहाँ के निवासियों के प्रति बहुत बुरा व्यवहार करते थे और उसी वर्ष सपरिषद गर्वनर जनरल ने 13 जुलाई को एक परिपत्र जारी करना उचित समझा जिसका उदाहरण नीचे दिया जाता है।

''देहात के विभिन्न भागों में बसे हुए यूरोपीय निलहों द्वारा किये गये दुर्व्यवहारों और अत्याचारों की ओर हल में सरकार का ध्यान विशेष रुप से आकृष्ट किया गया है। यद्यपि ऐसे दुर्व्यवहारों एवं अत्याचारों की घटनाएँ बहुत हुई है तथापि महामहिम गर्वनर जनरल अपनी परिषद के साथ अभी भी आषा करते है कि निलहों ने सामान्यतः ऐसा व्यवहार नहीं किया होगा जिससे उसके वर्गगत या समूहगत चरित्र पर इस प्रकार का लांछन लगाया जाए। किन्तु इस वर्ग के कुछ व्यक्तियों के विरुद्ध दण्डाधिकारियों एवं उच्चतम न्यायालय के समक्ष हाल में जो तथ्य सिद्ध हो चुके हैं, उन्हें देखते हुए सपरिषद गर्वनर जनरल अपना अनिवार्य कर्त्तव्य मानते हैं कि कुछ ऐसे उपाय किये जाय जो इस तरह अंग्रेजों के चरित्र पर धब्बा लगाने वाले तथा देश की प्रजा का सुख चैन हरने वाले अपराधों की पुनरावृत्ति को रोकने के लिए वर्त्तमान स्थिति में उन्हें सर्वाधिक उपयुक्त प्रतीत हो।[3]

आधुनिक भारतीय इतिहास को कलंकित करने वाले इस नील उद्योग को उत्तरी बिहार में लाने का श्रेय सरकार तिरहुत के कलक्टर फ्रैकॉस ग्रान्ड को जाता है। बिहार में नील उत्पादन का प्रारंभिक इतिहास अस्पष्ट है, लेकिन स्टीवेन्सन मूर लिखते है कि ''नील अंग्रेजी साम्राज्य की स्थापना के पूर्व भी बिहार में उत्पादित होता था, लेकिन यूरोपीय पद्धति पर नील की खेती उत्तरी बिहार में सर्वप्रथम 1782 ई. में आरंभ हुई। इसके पश्चात विकसित होकर इसने उद्योग का रुप धारण कर लिया।[4]

1782 ई. में मि. ग्रान्ड को कंपनी सरकार द्वारा तिरहुत (मुजफ्फरपुर एवं दरभंगा) का कलक्टर नियुक्त किया गया। 1785 में उन्होनें लिखा है कि ''मैनें यूरोपीय ढ़ंग से नील उत्पादन आरंभ किया है, नील की खेती एवं निर्माण को प्रोत्साहित किया है तथा तीन कारखानों का निर्माण अपने खर्च पर किया है। इसके पश्चात नील की परिणति एक उद्योग के रुप में हुई, जिसने आगे चलकर यूरोपीयन उद्यमियों को आकर्षित किया।'' मि. ग्रान्ड को गर्वनर जनरल लार्ड कार्नवालिस का कोपभाजन बनना पड़ा। 1787 में अपने लिए व्यापार करने के आरोप में गर्वनर जनरल ने उसे पद्च्युत कर दिया। इस संदर्भ में 7 अगस्त 179़2 का एक पत्र जो तिरहुत के एक तत्कालीन कलक्टर, आर. बथुर्स्ट को संबोधित है, जिसका सारांश है कि नील की खेती करने वाले रैयतों को आषाढ़ माह में तीन सिक्का रुपये तथा जमीन के लगान के लिए तीन रुपये पूरे फसल वर्ष के लिए दिया जाता था। यदि खेती को कार्त्तिक माह में मुक्त कर दिया जाता था तो ठेकेदार द्वारा 10 आना तथा रैयत द्वारा शेष 6 आना का भुगतान मालिक को किया जाता था। फाल्गुनी फसल जिसकी बुआई मार्च में होती थी, उसमें एकबार फसल काटकर खेत छोड़ दिया जाता था तो खेती के लिए 1 रुपये आठ आना तथा लगान के लिए एक रुपया दो आना प्रति बीघा के दर से एक ठेकेदार को भुगतान करना पड़ता था।[5]

प्रारंभ में तिरहुत में नील उद्योग का प्रसार मंद गति से हुआ। 1788 में मात्र 5 यूरोपियन ही नील कारखानों के मालिक थे।[6] 1802 के आते–आते निलहों की संख्या बढ़कर 13 हो गया, जिसमें 1 भारतीय, 4 अंग्रेज, एक स्कॉच, 4 आयरिश, 1 जर्मन एवं 2 इटली वासी थे।[7]

प्रारंभिक काल में नील उद्योग ईस्ट इंडिया कंपनी के प्रत्यक्ष नियंत्रण में था तथा इसमें शामिल होने के लिए प्रत्येक यूरोपियन को ईस्ट इंडिया कंपनी से विषेश अनुमति प्राप्त करना पड़ता था। प्रारंभिक अवस्था में स्थापित नील कारखाने इनते लाभदायक सिद्ध हुए कि 19वीं सदी के प्रारंभिक वर्षों में ही प्रतिस्पर्धा के भय ने निलहों का दिमाग शिथिल कर दिया। प्रारंभ में जिन निलहों को अनुमति मिल गयी थी, उनके एकाधिकार ने नये निलहों को हतोत्साहित किया।[8]

1801 में तिरहुत के 13 निलहों ने लार्ड वेलेस्ली को एक अभ्यावेदन दिया जिसमें नये प्रतियोगियों के हस्तक्षेप से मुक्त रखने हेतु सरकारी

संरक्षण प्रदान करने तथा भविष्य में प्रत्येक स्थापित नील कारखाना के दस कोस के क्षेत्र के अन्तर्गत नया कारखाना स्थापित करने की अनुमति नहीं प्रदान करने का अनुरोध किया गया था।[9] 18 अक्टूबर 1810 ई0 को राजस्व पार्षद को संबोधित एक पत्र में तिरहुत के तत्कालीन कलक्टर ने लिखा है कि ''तिरहुत जिला के अन्तर्गत व्यापार कर रहे कुछ यूरोपियन निलहों द्वारा कम से कम 6 या 7 लाख रुपये सलाना नील कृषकों एवं दैनिक मजदूरों के बीच वितरित किया जाता है।[10]

तिरहुत में नये निलहों के प्रादुर्भाव को रोकने का प्रयास निस्फल रहा। 1828 के आते–आते नील की खेती का विस्तार इतनी तीव्रगति से हुआ कि निलहों के बीच बढ़ते हुए आपसी प्रतिस्पर्धा को देखकर कलक्टर को जिला की शान्ति व्यवस्था एवं पूर्व से स्थापित निलहों के कल्याण के प्रति आशंका होने लगी थी। उसने सोचा कि यूरोपीयनों के वंशजों अब नये कारखानों की स्थापना करने से रोकने हेतु सरकारी प्रतिबंध आवश्यक है। इसके बाद भी 1850 तक तिरहुत में 86 कारखाने स्थापित हो चुके थे।[11]

तिरहुत जिला में नील की खेती शुरु होने के कुछ ही वर्षों के उपरान्त सारण जिला में नील की खेती होने लगी। उस समय चम्पारण भी सारण जिला के कलक्टर के अधीन ही था। 1793 में छपरा के सिविल सर्जन डॉ. आईवोरी तथा पटना मिन्ट के ऐसे मास्टर राबर्ड ब्लेक ने अकबरपुर में नील कारखाना बनाने की अनुमति सरकार से प्राप्त की। डॉ. आईवोरी एवं मि. ब्लेक अनुसरण करते हुए चैपमेन के शिकारपुर के पास एक करखाना के निर्माण का कार्य प्रारंभ किया, लंकिन सरकार से अनुमति नहीं मिलने के चलते उसे छोड़ना पड़ा। लेकिन बाद में उसे नील की खेती कराने हेतु जमीन मिल गयी तथा अनन्तपुर में उसने कार्य प्रारम्भ कर दिया। चैपमेन का दूसरा साथी मि. शोर को 50 बीघा जमीन के साथ नील की खेती करने की अनुमति मिल गयी तथा 1794 में दरौली में उसने अपना कारखाना बनाया। 1799 में शोर के उत्तराधिकारी को 3750 बीघा जमीन दी गई, जिसमें से आधी भूमि पर नील की खेती होती थी।[12]

19वीं सदी के प्रारंभिक वर्षों में ही जिले के लगभग आधी कतर भागों में नील कारखाने स्थापित हो गये, लेकिन सदी के मध्य तक नील की खेती चीनी उद्योग से जुड़ी रही। 1850 के आस–पास नील की कीमत में इतनी वृद्धि हुई कि उससे चीनी उद्योग लकवा ग्रस्त हो गया तथा सभी चीनी मिलों का स्थान नील उद्योग ने ले लिया। फलस्वरुप पूरा जिला नील कारखानों के छाता के अधीन आ गया। 19वीं सदी के अन्त तक पूरा जिलान्तर्गत 35 कारखाना तथा 36 आउट वर्क्स स्थापित हो चुके थे। उस समय नील की खेती का कुल क्षेत्रफल 45,500 एकड़ था।[13]

मुजफ्फरपुर में नील की खेती आरम्भ होने के तीस साल बाद ही चम्पारण में नील की खेती शुरु की जा सकी, फिर भी तिरहुत तथा सारण जिला की तुलना में चम्पारण में नील की खेती का क्षेत्रफल बहुत अधिक

था। यूरोपीय पद्धति पर आधारित पहली नील कारखाना कर्नल हिक्की द्वार 1813 में बारा (वर्त्तमान में बारा चकिया) में स्थापित किया गया। उसके बाद में मेसर्स मोरन एवं हील द्वारा क्रमशः राजपुर एवं तुरकौलिया में एक–एक कारखाना स्थापित किया गया। 1845 में कैप्टन टेलर ने सिरहा में एक नील कारखाना स्थापित किया। उस समय तक यूरोपियनों का मुख्य उद्योग चीनी का था न कि नील का। 1850 ई. तक चम्पारण में चीनी उद्योग फल–फूल रहा था। 1850 के बाद नील की कीमत में वृद्धि होने के चलते चीनी उद्योग का स्थान नील उद्योग ने ग्रहण किया।[14]

उत्तरी बिहार विशेष कर चम्पारण के प्रति निलहों के आकर्षण के अनेक कारण थे। सर्वप्रथम चम्पारण की उर्वरा–भूमि नील की खेती के लिए सर्वाधिक उपयुक्त थी। दूसरा चम्पारण ही एक ऐसा क्षेत्र था जहाँ पर कोई भारतीय नील निर्माता उस समय तक यूरोपियन नील निर्माताओं के साथ प्रतिस्पर्धा में सफल नहीं हो पाया था।[15]

तीसरा 1857 के पश्चात निलहों के प्रति सरकार का रुख काफी उदार हो गया, क्योंकि बिहार में सिपाही विद्रोह सशक्त था और निहले कंपनी शासक के प्रबल समर्थक सिद्ध हुए थे। विद्रोहियों से लड़ने तथा मुजफ्फरपुर एवं अन्य जगहों की रक्षा करने के साथ ही सिपाही विद्रोह रुपी जल में डूबे कंपनी की सत्ता को पुनः स्थापित करने में निलहों ने काफी सहयोग प्रदान किया था।[16]

उपर्युक्त कारणों के अलावे तत्कालीन भूमि पर अधिकार संबंधी कानून भी चम्पारण में नील उद्योग के तीव्र प्रसार के लिए काफी उपयुक्त सिद्ध हुआ। 19वीं सदी में चम्पारण हजला की अधिकांश भूमि पर मुख्य रुप से बेतिया, रामनगर एवं मधुबन राज का अधिपत्य कायम था। मधुबन, ढ़ाका एवं केसरिया थाना के अन्तर्गत अनेक छोटे–छोटे मालिक थे, लेकिन सर्वप्रथम बेतिया राज एवं कुछ जमींदारों का अधिपत्य पूर्व से ही कायम था। किसी भी जमींदार के अधीन रहने वाला रैयत जबतक लगातार 12 वर्षों तक एक गाँव में रहकर एक निश्चित भूमि को जोत–आबाद कर उसपर पट्टा के माध्यम से रैयती अधिकार प्राप्त नहीं कर लेता था तब तक वह अपने जमींदार के इच्छा के पर्यन्त ही अपनी जोत पर काबिज रह सकता था। लेकिन इस वैधानिक व्यवस्था के तहत रैयतों को प्राप्त अधिकार को भी माननीय उच्च न्यायालय, कलकत्ता ने राय उदित नारायण सिंह बनाम ओबिकरम सिंह के वाद का निष्पादन करते समय दिनांक 28 अगस्त, 1865 को यह व्यवस्था देते हुए नकार दिया कि लगातार 12 वर्षों तक जमीन जोतने पर कोई रैयत रैयती अधिकार का दावेदार हो सकता है। लेकिन 1859 के अधिनियम 5 के खण्ड 7 के अनुसार लिखित रुप से ठीका पर ली गई जमीन पर उक्त समय का बंधन लागू नहीं होगा। इसके अतिरिक्त दिनांक 19 जून, 1867 के वाद संख्या 3147/1866 का निष्पदान करते हुए माननीय उच्च न्यायालय ने निर्णय दिया कि ''किसी कायमी रैयती की मृत्यु

के उपरान्त जमींदार अपनी स्वेच्छा से उसकी जमीन को किसी दूसरे रैयत को दे सकता है। मृतक के सेबेध को वह भूमि उत्तराधिकार में नहीं प्राप्त होगी।'' जमींदारों को प्राप्त असीमित अधिकार का लाभ उठाकर निलहों ने चम्पारण के बड़े जमींदारों से ठीका एवं स्थायी पट्टा के माध्यम से जमींदारी अधिकार प्राप्त कर लिया। जमींदारी अधिकार प्राप्त करने परान्त वे रैयतों को अपनी सुविधानुसार नील की खेती करने के लिए बाध्य करने लगे।

सन्दर्भ :

1. डी. जी. तेन्दुलकर, जब गाँधीजी चम्पारण आये (गाँधी इन चम्पारण का हिन्दी रूपान्तरण) राजभाषा विभाग, बिहार सरकार, पटना, पृ. 01.
2. डी.जी. तेन्दुलकर, उपरोक्त, पृ. 1–2.
3. डी.जी. तेन्दुलकर, उपरोक्त, पृ. 2–3.
4. सी.जे. स्टीवेन्सन, मूर, फाइनल रिपोर्ट ऑन द सर्वे एण्ड सेंडलमेंट आपरेशन्स इन द डिस्ट्रीक्ट ऑफ मुजफ्फरपुर, कलकता, 1990, पृ. 336
5. पी. सी. रायचौधरी, बिहार डिस्ट्रीक्ट गजेटियर्स, चम्पारण, पटना, 1960, पृ. 263
6. प्रोसीडिंग्स ऑफ द जेनरल, डिपार्टमेंट ऑफ बंगाल, नं० 1–16, नवम्बर, 1877, बिहार राज्य अभिलेखागार, पटना
7. उपरोक्त, बिहार राज्य अभिलेखागार, पटना
8. प्रोसीडिंग्स ऑफ द जेनरल (मिस) डिपार्टमेंन्ट ऑफ बंगाल, नं० 1–16, नवम्बर 1877, बि.रा.अ., पटना एवं द जर्नल ऑफ द बिहार रिसर्च सोसाइटी, पटना वाल्यूम –XXXIX, पार्ट –IV, दिसम्बर 1953, पृ. 373.
9. उपरोक्त, बिहार राज्य अभिलेखागार, पटना
10. जिला राजस्व अभिलेखागार, मुजफ्फरपुर के अभिलेख
11. एल० एस० एस० ओमले, बंगाल डिस्ट्रिक्ट गजेटीयर्स चम्पारण, कलकता 1907, पृ. 97.
12. बंगाल डिस्ट्रिक्ट गजेटियर्स, सारण, कलकता, 1908, पृ. 100.
13. उपरोक्त, पृ. 100
14. सी. जे. स्टीवेन्सन मूर, फाइनल रिपोर्ट ऑन द सर्वे एण्ड सेहेलमेंट ऑपरेशन्स इन द डिस्ट्रिक्ट ऑफ चम्पारण डिस्ट्रिक्ट, 1892–99, कलकता 1900, पृ. 146.
15. जार्ज वाट, पम्फलेट ऑन इंडिगो, कलकता, 1890, पृ. 17
16. मिन्डेन विल्सन, हिस्ट्री ऑफ बिहार इन्डिगो फैक्ट्रीज, कलकता 1908, पृ. 17.
17. प्रोसेडिंग ऑफ द गवर्नमेंट ऑफ इंडिया होम डिपार्टमेंट, जुलाई 1869, नं. 131–132.

***

बिहार में नक्सलवाद के कारण : एक अध्ययन

*डॉ. पंकज कुमार**

बिहार और देश में नक्सलवाद एक ऐसा सत्य है जिसे आज की तारीख में स्वीकार करने के सिवा कोई रास्ता नहीं है। इसका कारण बिहार और देश की सामाजिक एवं आर्थिक संरचना में निहित है। आजादी के बाद हमने जो सामाजिक एवं आर्थिक विकास का संरचना अपनाया है, उस संरचना से एक छोटे से भाग का विकास हुआ। कुछ लोगों के पास आय और धन का संकेन्द्रण हुआ है, वहीं बड़ी संख्या में लोग इससे वंचित हुए हैं। आजादी के बाद देश की जनसंख्या में काफी वृद्धि हुई। विशेषकर बिहार राज्य का जनसंख्या वृद्धि दर राष्ट्रीय दर से ज्यादा रहा है। इसका मुख्य कारण अशिक्षा रहा है। बिहार का सामाजिक एवं राजनीतिक हालात भी इसके लिए बहुत हद तक जिम्मेवार माने जा सकते हैं। जनसंख्या वृद्धि के कारण खेती योग्य भूमि पर जनसंख्या का दबाव बढ़ने लगा था, जिसकी परिणति खेती योग्य भूमि का धीरे–धीरे कम होने में लगने लगा था। इस तरह धीरे–धीरे लोगों के बीच बेरोजगारी अपना विस्तार करने लगा था। इसके अलावे उपलब्ध जमीन का समान वितरण जरूरतमंद लोगों के बीच नहीं था। उग्रवाद या नक्सलवाद अपने मूल में कानून और व्यवस्था की समस्या नहीं, बल्कि राजनीतिक और आर्थिक समस्या के साथ–साथ सामाजिक और सांस्कृतिक समस्या भी है। इसका समाधान राजनीतिक तरीकों से आर्थिक–सामाजिक विकास और सांस्कृतिक समायोजन द्वारा ही हो सकता है। 1967 में दार्जिलिंग जिले के एक गांव नक्सलबाड़ी से शुरू होने के कारण इस संघर्ष को नक्सलवाद कहा जाने लगा। परन्तु वास्तव में इस उग्र नक्सलवाद का जड़ भूमि के विषमतापूर्ण वितरण तथा आर्थिक उपार्जन की संरचना में निहित है। धीरे–धीरे यह उग्रवाद मध्य बिहार में ज्यादा उग्र रूप धारण करने लगा था। वहीं पर भूमि का स्वामित्य समाज के कुछ लोगों के पास केन्द्रित था। चूंकि बिहार की अधिकांश जनता कृषि पर निर्भर करती है वैसी स्थिति में कृषि योग्य भूमि का समान वितरण इस उग्रवाद की उग्रता को कम करने में सार्थक एवं कारगर साबित हो सकता है। वास्तव में जनसंख्या विस्फोट ने कृषि योग्य भूमि की उपलब्धता को काफी कम कर दिया है जिसके कारण लोगों का जीवन काफी कष्टदायक हो गया। इस समस्या के प्रति सरकार की उपेक्षा ने नक्सलवाद को बढ़ाने का ही काम किया। सरकार के द्वारा जो भी योजनाएं शुरू की गई वह वास्तविक जमीन पर उतर नहीं सका। दरअसल नक्सलवाद के पनपने में मूल रूप से सत्ता प्रतिष्ठान ही जिम्मेदार है। योजना आयोग ने 2006 में

* पीएच. डी. (इतिहास), बी. आर ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

नक्सलवाद की समस्या से निपटने के लिए डी. बंदोपाध्याय की अध्यक्षता में एक समिति गठित की थी। समिति ने अप्रैल 2008 को अपनी रिपोर्ट दी। इसमें विस्तार से उल्लेख है कि किस तरह सामाजिक, आर्थिक राजनीतिक और सांस्कृतिक रूप से आदिवासी और दलित समाज पीड़ित है। उनकी समस्याओं की नक्सलवादी तत्काल समाधान करने की कोशिश करते हैं। इस प्रकार वे उन लोगों में अपनी पैठ बनाते जा रहे हैं। सत्ता प्रतिष्ठान न इन समस्याओं के प्रति जागरूक है और न ही समर्पित।

इस रिपोर्ट में स्पष्ट तौर पर कहा गया है कि गरीबी और शोषण का नक्सलवाद से सीधा संबंध है। उस रिपोर्ट में सुझाव दिया है कि सबसे पहले भूमिहीनता की समस्या से निपटना होगा। साथ ही उचित रोजगार, जमीन अधिग्रहण की सही नीति और उसके साथ–साथ उचित पुनर्वास नीति भी बनानी होगी। सबसे जरूरी है इन नीतियों का सही कार्यान्वयन भी होना चाहिए। यह विदित है कि अनेक जगहों पर भूमि अधिग्रहण को लेकर विवाद होते रहे हैं, चाहे सरदार सरोवर परियोजना हो या नंदीग्राम। सभी जगहों पर आम किसान या आदिवासियों को विश्वास में नहीं लिया गया और न ही उनके पुनर्वास पर विशेष ध्यान दिया गया। राष्ट्रीय पुनर्वास नीति को ज्यादा कारगर एवं लोगों के हित में होना चाहिए। क्योंकि राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग तक उनके उचित पुनर्वास पर सवाल खड़ा कर चुका है। आर्थिक विकास एवं सामाजिक परिवर्तन अवश्य होना चाजिए, पर गरीब लोगों, दलितों, किसानों और आदिवासियों के जीवन के मूल्य पर होनेवाला विकास समस्याओं को ही जन्म देगा। शांतिपूर्ण तरीकों से अपनी हित में आवाज उठाना किसी भी तरह से गलत नहीं ठहराया जा सकता है। ऐसी स्थिति में शांतिपूर्ण तरीके से अपनी आवाज उठानेवालों पर दमन इन लोगों को नक्सलवाद के समीप ले जाता है। मानवाधिकारों के लिए शांतिमय प्रतिरोध का दमन भी नक्सलवाद के लिए उर्वर जमीन तैयार करता है। हिंसा से सख्ती से निपटा जाए, लेकिन इस हिंसा के लिए जमीन कौन तैयार कर रहा है। इस पर ध्यान देने की जरूरत है। मेरा स्पष्ट इशारा नेता, प्रशासन और पुलिस की तरफ है। कुछ नीतियां बनती भी हैं तो भ्रष्ट प्रशासनिक व्यवस्था उसे कार्यान्वित नहीं होने देता है। सरकारी तंत्र नकारा और भ्रष्ट हो चुका है। गरीबी और महंगाई बेतहाशा बढ़ रही है; लेकिन अधिकारियों और नेताओं का पेट भी उसी अनुपात में बढ़ता जा रहा है। इसके अतिरिक्त आदिवासियों को सामाजिक और सांस्कृतिक विघटन, शारीरिक शोषण आदि का भी सामना करना पड़ रहा है। दूसरी तरफ नक्सलवादी भी निहित स्वार्थों की वजह से विकास में रोड़े अटका रहे हैं। वे अपने क्षेत्रों में सड़क आदि नहीं बनने देना चाहते हैं क्योंकि इससे सुरक्षा बलों की उन तक पहुंच हो जाएगी। दूसरी, उन्हें भय है कि अगर क्षेत्र का आर्थिक विकास होने लगेगा तो उनकी पूछ कम हो जायेगी। इन सारी बातों से स्पष्ट रूप से एक प्रकार का विरोधाभास झलक रहा है। नक्सलवाद की उत्पत्ति के पीछे मुख्य

रूप से विकास का सामान रूप से सभी क्षेत्रों में न होना, बेरोजगारी, गरीबी, उत्पीड़न, शोषण, सरकारी योजनाओं का लोगों को लाभ न मिलना, भ्रष्टाचार आदि को माना जाता रहा है। यों कहें तो इन्हीं सब कारणों के समाप्ति के लिए नक्सलवाद का जन्म हुआ। परन्तु आज नक्सलवाद एक तरह से समाज को वहीं ले जा रहा है जहां से इसकी शुरूआत हुई थी। विकास एवं जनहित के लिए लड़ाई लड़ने वाले आज खुद विकास में बाधा पैदा कर रहे हैं। क्योंकि उन्हें लगता है कि विकास एवं जनसमृद्धि, लोगों को नक्सलवाद के आंदोलन से दूर कर देगा। इससे स्पष्ट है कि नक्सलवाद का मुख्य उद्देश्य लोगों एवं समाज का हित नहीं है बल्कि खुद को सत्ता पर काबिज करना है। इस तरह नक्सलवाद की दिशा एवं दशा को अच्छी तरह समझा जा सकता है। सत्ता प्रतिष्ठान की जिम्मेदारी है कि ऐसी परिस्थितियों का निर्माण करे कि आम गरीब आदिवासी किसान नक्सलवादियों के प्रभाव में न आ पाए। आज नक्सल आंदोलन जिस दिशा में चल चुका है उससे आम आदमी का भला नहीं होने वाला है। जिस प्रकार आज की राजनीति एक व्यवसाय का रूप ले चुका है उसी प्रकार यह नक्सलवाद भी कुछ लोगों के लिए धन कमाने का जरिया बन चुका है जिसको हम नक्सलवाद के आज के बदलते स्वरूप एवं दिशा से समझ सकते हैं। अब नक्सली जंगलों से निकलकर शहरों की तरफ रूख कर रहे हैं, यह अब साबित हो गया है। गुप्तचर एजेंसियां भी इसे मान रही है। नकसलियों का रांची, दिल्ली और पूणे जैसे शहरों में जमीन में निवेश करना एक खतरनाक साजिश के तरफ इशारा करता है। इसके दो मायने हो सकते हैं। पहला यह कि नक्सली अपना आधार अब जंगलों से निकाल कर शहरों की तरफ ले जा रहे हैं। दूसरा यह कि क्या लेवी से उनकी आमदनी इतनी बढ़ गयी है कि वह अचल सम्पत्ति में पैसा लगा रहे हैं। अगर ऐसा है तो उनके भू–माफियाओं से संबंधों की जांच होनी चाहिए। स्थायी आमदनी की तलाश में नक्सलियों ने रीयल एस्टेट में निवेश शुरू किया है। हालात यही इशारा करते हैं कि नक्सली दिन–ब–दिन अपनी जमीन और आमदनी दोनों मजबूत कर रहे हैं। इससे स्पष्ट है कि नक्सली आन्दोलन के जिम्मेवार कारणों का अस्तित्व आज भी बरकरार है। अगर बदलाव कुछ सम्भव हो पाया है तो उसके पीछे सरकार का प्रयास एवं लोगों की जागरूकता ज्यादा जिम्मेवार है न कि नक्सल आंदोलन। नक्सलवाद के लिए केवल सामाजिक एवं आर्थिक कारणों को जिम्मेवार ठहराना, पूर्णरूप से सही नहीं होगा। समय के साथ कारणों के स्वरूप एवं गुण बदलते हैं। इस नक्सलवाद में कारणों के केवल स्वरूप बदले हैं। यह नक्सलवाद आज खुद एक कारण बन गया है जिसको खत्म करने के लिए एक अन्य आंदोलन की जरूरत महसूस हो रही है। क्योंकि आज नक्सलवाद खुद लोगों के लिए कष्ट का कारण एवं विकास में बाधक बन चूका है। गरीब एवं बेरोजगार लोगों को बंदूक का भय दिखा कर इस आंदोलन से जोड़ा जा रहा है। आज आम जनता हिंसा एवं उग्रवाद से ऊब

चुकी है। वे अमन एवं शांति जोहने लगी है। वहीं नक्सली कहीं–कहीं समानान्तर शासन चलाने की कोशिश कर रहे हैं, जिसे लोकतंत्रीय व्यवस्था में सही नहीं ठहराया जा सकता। सरकार को चाहिए कि नक्सलवाद के पीछे के कारणों को पूरी ईमानदारी के साथ दूर किया जाए एवं लोगों को नक्सली आंदोलन में शामिल होने से रोका जाए। इन संदर्भ में मुंशी प्रेमचन्द्र के उपन्यास 'गोदान' के नायक 'होरी' का कथन याद आता है कि हम कोई राजपाट नहीं चाहते, कोई गाड़ी–बंगला, धन–दौलत नहीं चाहते, बस चैन से दो वक्त की रोटी और मर्यादा की जिंदगी चाहिए। यह 1936 के गरीब किसान का कहना था। 2010 का किसान आदिवासी शायद यह भी कहेगा कि रोटी के साथ–साथ हमें स्वास्थ्य, शिक्षा और अन्य विकास भी चाहिए। उभरते हुए शक्तिमान भारत से यह मांग कोई ज्यादा नहीं है। सम्पूर्ण विकास की बुनियादी जरूरतों को पूरा करना पूर्णरूप से असम्भव है। अबतक नक्सलवाद किसी भी प्रकार का सामाजिक परिवर्तन लाने में समर्थ नहीं हो पाया है। जबकि इस आंदोलन का मुख्य उद्देश्य था सामाजिक परिवर्तन करके लोगों के जीवन को सुखद एवं शोषण मुक्त करना। इसके लिए नक्सलियों का मानना था कि सामाजिक परिवर्तन सत्ता पर नियंत्रण पाये बिना बंदूक की नली के माध्यम से सम्भव नहीं है। लेकिन आज ठीक इसके विपरीत चुनाव में भाग लेकर कई नक्सली नेता संसद तथा विधानसभा का सदस्य बन चूके है। आजकल नक्सली चुनाव बहिष्कार करने के लिए लोगों पर दबाव बनाते हैं ताकि सरकार बनने में अड़चन डाल सके। कट्टर नक्सली संगठन जमकर संसदीय रास्ते का विरोध करते है इसीलिए हर चुनाव में वे बहिष्कार का नारा भी देते हैं। वे 'माओत्सेतुंग' का एक कथन बराबर दोहराते हैं– सत्ता का जन्म बंदूक की नली से होता है। संसद का रास्ता उन्हें हमेशा भटकाव का रास्ता लगता रहा है। उनका मानना है कि अमल बदलाव चुनाव के रास्ते नहीं, हथियारबंद क्रांति के रास्ते ही होगा। 1967 से लेकर आज तक नक्सलवादी आंदोलन का मूल संसदीय रास्ते के विरोध पर ही आधारित रही है। लेकिन जिस तरह चुनाव के बहिष्कार को नक्सलियों ने अपना हथियार बनाया इसी तरह इनके कुछ नेताओं को संसद का आकर्षण खींचता भी रहा है। पिछले लोकसभा चुनाव में भाकपा माओवादी के नेता कामेश्वर बैठा जेल में रहते हुए पलामू से चुनाव लड़े और जीते। वे अभी जेल में हैं। लेकिन उन्होंने सत्ता बंदूक की नली से नहीं वोट से पाई है।

1990 का विधानसभा चुनाव इसलिए याद किया जाता है कि उस समय तक एक साथ नौ नक्सली चुनाव जीतकर विधानसभा पहुंचे थे। इनमें से रामाधार सिंह के अलावा मधु सिंह भी शामिल थे जो पलामू जिले के पांकी से चुनाव जीतकर विधानसभा पहुंचे थे। ये नक्सली संगठन पार्टी यूनिटी के बड़े नेता थे लेकिन चुनाव लड़ने के लिए उन्होंने संगठन को छोड़ दिया था। इसके अलावा पहली बार विधानसभा का चुनाव लड़ रही भाकपा

माले के सात नेता भी उसी साल चुनाव जीतकर विधानसभा पहुंचे थे। इसमें एक भगवान सिंह कुशवाहा भी थे जो पिछले चुनाव तक सूबे के ग्रामीण विकास मंत्री थे। माले के टिकट पर जीतनेवाले ये सातों विधायक कभी भूमिगत राजनीति में थे। माले के नेता इससे पहले इंडियन पीपुल्स फ्रंट के बैनर तले चुनाव भी लड़ चूके थे और 1989 के लोकसभा चुनाव में पहली बार रामेश्वर प्रसाद ने जीत भी हासिल की थी। उनकी जीत से पूरे देश में हंगामा मच गया था। श्री प्रसाद ने बिहार में माले के भूमिगत आन्दोलन का लम्बे समय तक नेतृत्व किया था। वैसे बिहार में सबसे पहले चुनाव जीतने वाले नक्सली नेता उमाधार सिंह थे जो दरभंगा के हायाघाट से चुनाव जीतकर विधानसभा पहुंचे थे और तब उन्हें बिहार का पहला नक्सली विधायक कहा गया था। 1995 में भाकपा माले के रामनरेश राम के विधानसभा पहुँचने की भी जोरदार चर्चा हुई थी। वे बिहार में नक्सली आंदोलन के जन्मदाताओं में से एक रहे हैं। कुछ संगठनों के अनुसार चुनाव का पूरी तरह से बहिष्कार किया जाना चाहिए जबकि कुछ संगठन इसका रणनीतिक रूप से इस्तेमाल करने पर जोर देते रहे हैं।

उदाहरण के तौर पर भाकपा माओवादी जैसे संगठन इस चुनाव का पूरी तरह बहिष्कार करते हैं और इस बार भी करेंगे। दूसरी तरफ सीपीआईएमएल जनशक्ति जैसे कुछ ऐसे संगठन हैं जो यह मानते हैं कि रणनीति के लिहाज से चुनाव का इस्तेमाल किया जा सकता है। वे पार्टी के प्रचार और विस्तार के लिए चुनाव में उतरते हैं। कुछ नक्सली संगठन यह भी मानते हैं कि अभी हथियारबंद क्रान्ति का समय नहीं है इसलिए चुनाव का उपयोग हथियार के रूप में किया जा सकता है। इसका उदाहरण भाकपा माले लिबरेशन है जो नियमित रूप से चुनाव में भाग लेती है और 1990 से इसके विधायक लगातार अपनी मौजुदगी का अहसास विधानसभा में कराते रहे हैं। इससे यह स्पष्ट है कि नक्सलवाद के पीछे का लक्ष्य परिवर्तन नहीं, बल्कि सत्ता पाने का यह एक माध्यम बन गया है।

ऐसे उग्रवाद या नक्सलवाद के पीछे कई कारणों जैसे– जनसंख्या की सघनता, श्रमिक एवं मजदूरी विवाद, भूमि सुधार का अभाव, जातिवाद नौकरशाही व्यवस्था की निष्क्रियता, बेरोजगारी एवं ग्रामीण संरचना का न होना, को मुख्य रूप से जिम्मेवार माना जाता है। परन्तु इसमें से बहुत सारे कारण एक दूसरे के न होने का परिणाम है। हम मानते हैं कि इसमें से बहुत कारण आज विद्यमान नहीं है या धीरे–धीरे लगभग समाप्त हो रहे हैं। जिस समय उग्रवाद या नक्सली आंदोलन पनपा, निश्चित तौर से उपर्युक्त वर्णित कारण इसके लिए जिम्मेवार हो सकते हैं। लेकिन आज इनमें से बहुत सारे कारण अपने आप विकास के प्रभाव से समाप्त हो रहे हैं। विगत् 2010 में, विधान सभा चुनाव में जिस तरह लोगों ने जाति एवं धर्म से ऊपर उठकर वोट किया और पुनः नीतीश की सरकार को बनाने का कार्य किया यह स्पष्ट दर्शाता है कि लोगों के अन्दर विकास की ललक ने जातिवादी

मानसिकता को तोड़ने का काम किया है। इसके पीछे मुख्य रूप से विकास की सोच ही जिम्मेवार है। विकास के कारण कई प्रकार की पूर्व से चली आ रही समस्या का निदान होता है। विकास से इन्सान के सोच में बदलाव होता है। विकासोन्मुख मानसिकता का प्रादुर्भाव होता है। शिक्षा का प्रसार धीरे–धीरे बढ़ने लगता है। लोग शिक्षा का महत्व समझने लगते हैं जिसके कारण लोगों के अन्दर अपने जीवन एवं स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता भी बढ़ने लगती है। इसके परिणामस्वरूप जनसंख्या दबाव की समस्या धीरे–धीरे खत्म होने लगेगी। लोग जनसंख्या नियंत्रण के महत्व को समझने लगेंगे। जागरूकता एवं शिक्षा प्रसार के कारण श्रमिकों से संबंधित मजदूरी विवाद धीरे–धीरे खत्म होने लगेगा। क्योंकि मजदूरी विवाद वहीं खड़ा होता है जहां जागरूकता एवं शिक्षा का अभाव होता है। कानूनी प्रावधानों एवं अपने अधिकार के प्रति सजगता ने इस तरह के विवादों के मामलों को बहुत कम कर दिया है। जहां तक भूमि सुधार की परिकल्पना है, उसे भी प्रशासनिक स्तर एवं सामाजिक पृष्ठभूमि को समझते हुए सर्वमान्य एवं कानून सम्मत हल निकाला जा सकता है। क्योंकि समय बीतने के साथ एवं जनसंख्या दबाव के कारण भूमि सुधार की सम्भावना आज के संदर्भ में बहुत कम हो गयी है। यों कहें कि आज के हालात ने भूमि सुधार की दायरा को सीमित कर दिया है। पिछले पांच वर्षों में सरकार के प्रयास एवं विकास की किरण ने जातिवादी दृष्टिकोण को लगभग समाप्त करने का काम किया है जिसका प्रभाव विगत् सम्पन्न विधानसभा चुनाव में देखने को मिला है। इसी तरह नौकरशाही की शिथिलता भी सरकार के प्रयास से धीरे–धीरे खत्म हो जायेगी। प्रदेश की नई सरकार ने प्रशासनिक स्तर पर 'राईट–टू–सर्विस एक्ट' का प्रावधान करना चाहती है। इससे प्रशासन को लोगों के कार्य के प्रति जवाबदेह होना होगा, अन्यथा टालमटोल की स्थिति में वे दण्ड के भागी होंगे। इससे निश्चित रूप से सकारात्मक प्रभाव देखने को मिलेगा। एक बार इस तरह के प्रावधान होने के बाद लोगों के अन्दर जागरूकता बढ़ने लगेगी और वे इसे अपना अधिकांत के रूप में उपयोग करने लगेंगे। इस तरह धीरे–धीरे नौकरशाही की शिथिलता समाप्त होने लगेंगी। जहां तक ग्रामीण अभिसंरचना का प्रश्न है, यह निश्चित तौर पर अविकसित स्थिति में है। लेकिन विगत पांच वर्षों में प्रदेश की तत्कालीन सरकार ने उस क्षेत्र में काफी कुछ किया है। ग्रामीण अभिसंरचना का अविकसित तथा अभाव नक्सली आंदोलन के पनपने एवं बढ़ने में बहुत ही महत्वपूर्ण कार्य किया है। बेरोजगारी के बढ़ने एवं बरकरार रहने के पीछे भी उपर वर्णित कारण ही मुख्य रूप से जिम्मेवार रहे हैं। अगर आज नक्सली आंदोलन के स्वरूप पर विचार करें तो हम पाते हैं कि यह आंदोलन ही लोगों के लिए उत्पीड़न एवं अविकास के कारण हैं। इसको हम बिहार के एक जिला–शिवहर के संदर्भ में समझ सकते हैं। जर्जर सड़कों एवं नदियों से घिरे शिवहर जिले का तरियानी प्रखंड नक्सलियों का अभ्यारण्य बन गया है, विकास योजनाएं ठप

हैं, व्यवसाय चौपट हो गया है। प्रमुख व्यवसायी पलायन कर चुके हैं और शाम होते ही कभी गुलजार रहने वाला बाजार में सन्नाटा पसर जाता है। नक्सली आतंक के कारण इलाके की विकास योजनाएं ठप हैं और व्यवसाय चौपट हो रहा है। जहां दूसरे क्षेत्र पिछले पांच वर्षों में तेजी से विकास के पथ पर अग्रसर हैं, वहीं तरियानी में सबकुछ ठहर सा गया है। बेलसंड छतौनी भाया तरियानी पथ का निर्माण नक्सलियों के भय से ठप हैं। बेलसंड की ओर से सड़क का निर्माण पूरा हो गया, परंतु छपरा गांव के निकट नक्सलियों के कारण कार्य शरू नहीं हो सका।

सन्दर्भ :

- जोहरी, जे.सी.; नक्सलाइट पोलिटिक्स इन इंडिया, रिसर्च पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 1972.
- तिवारी, कनक; ''बस्तर'' लाल क्रांति बनाम ग्रीन हंट, मेघाबुक्स प्रकाशन, दिल्ली, 2010.
- दास सत्यप्रकाश एण्ड स्वरूप सन्स, नक्सल मुवमेन्ट एण्ड स्टेट पावर, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 2006.
- दूबे, अभय कुमार; क्रांति का आत्मसंघर्ष : नक्सलवादी आंदोलन के बदलते चेहरे का अध्ययन, विनय प्रकाशन, दिल्ली, 1991.
- पाण्डेय, सच्चिदानन्द; नक्सल वायलेंस : एसोसियो – पॉलिटिकल स्टडी, दिल्ली : चाणक्य प्रकाशन, 1985.
- दैनिक जागरण, 16.04.10, पृ. 8.
- प्रभात खबर, 25.10.10, पृ. 10
- हिन्दुस्तान समाचार–पत्र, 20.09.10, पृ. 15.

***

संगीत की दृष्टि से 'प्रबन्ध'

*डॉ. स्वरवन्दना शर्मा**

संगीत की शास्त्रपरक चर्चा के प्रसंग में प्रबन्ध एक विशेष पारिभाषिक शब्द है। 'प्रबन्ध' का अर्थ है प्र अर्थात् प्रकृष्ट रूप से बँधा हुआ। संगीत के सन्दर्भ में प्रबन्ध का अर्थ है स्वर - ताल और पद (शब्द) से प्रकृष्ट रूप से अर्थात् भलीभाँति बँधी हुई रचना, जिसे हम सामान्यतः बंदिश शब्द से कहते हैं। 'बंदिश' में भी बँधे होने का अर्थ समाया हुआ है।

मध्यकाल के संगीतशास्त्र के ग्रंथों में विशेषतः शार्ङ्गदेव के संगीतरत्नाकर और राणा कुंभा के संगीतराज में प्रबन्ध का विस्तृत वर्णन मिलता है, जिसे इस सारणी की सहायता से समझ सकते हैं –

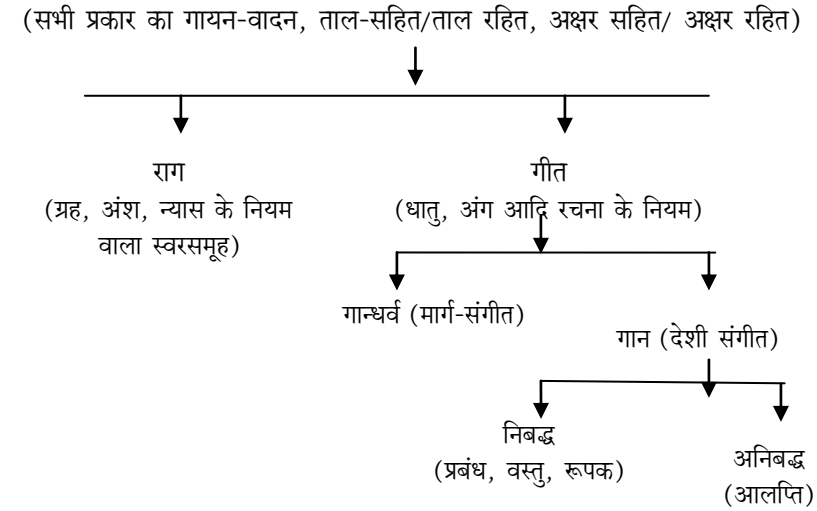

इस सारणी के अंत में निबद्ध (बँधा हुआ) के अंतर्गत प्रबन्ध, वस्तु और रूपक को गिना गया और अनिबद्ध (बिना बँधा हुआ) के अंतर्गत आलप्ति को गिना गया है।

प्रबन्ध में चारों धातु और छहों अंग होते हैं, वस्तु में धातु और अंग की संख्या कम होती है, जिसे आजकल चीज़ कहते हैं, जिसमें नाट्यतत्त्व (कथा या घटना) की प्रधानता हो उसे रूपक कहते हैं।

---

* एसोसिएट प्रोफेसर, संगीत गायन, वसन्त कन्या महाविद्यालय, वाराणसी

प्रबन्ध के धातु और अंग - भारतीय शास्त्र-परंपरा में कई बार विषय को स्पष्ट करने के लिये मनुष्य की आकृति का आधार लेते हैं। आयुर्वेद के अनुसार मानवशरीर में वात-पित्त-कफ ये धातुएँ तथा हाथ-पैर आदि अंग है। इसी प्रकार प्रबन्ध-पुरुष की उद्ग्राह, मेलापक, ध्रुव और आभोग ये चार धातुएँ बताई गई हैं। कहीं ध्रुव और आभोग के बीच अन्तरा नाम की पाँचवी धातु भी कही है। ये सब गीत के खण्ड हैं। प्रबंध-पुरुष के छह अंग स्वर, बिरुद,पद, तेन, पाट और ताल कहे गये हैं।

धातु - गीत का सबसे पहला भाग उद्ग्राह है। जिसे मुख्यगीत प्रारंभ करने से पहले गाया जाए। कभी पूर्वालाप या कभी गीत के शब्दों को ही भिन्न रूप से गाना इसका उदाहरण है। ध्रुव वह भाग है जो बार-बार दुहराया जाता है। पुराने गीतों/भजनों में पहली पंक्ति के साथ 'ध्रुव' लिखा जाता है। आजकल इसके समानार्थक 'स्थायी' शब्द का प्रयोग करते हैं। स्थायी एक से अधिक आवर्तन की होने पर केवल पहला आवर्तन ही दोहराते हैं। उद्ग्राह और ध्रुव के बीच मेलापक है जिसका अर्थ है मिलाने वाला। इसके उदाहरण उन स्वरप्रयोगों में ढूँढ सकते हैं जो विशेषतः सुगमसंगीत में गीत की कड़ियों के बीच वाद्यों पर बजाए जाते हैं। अंतिम भाग आभोग कहा जाता है। प्रबंध दो या तीन या चार धातुओं (खंड) से बन सकते हैं। पुराने ध्रुपदों में स्थायी, अंतरा, संचारी, आभोग चार खण्ड होते थे। आजकल ज्यादातर बंदिशों में स्थायी-अंतरा दो धातुएँ (खंड) होती हैं। भजन, गीत, गज़ल आदि में अनेक अंतरे होते हैं। इन्हें संचारी-आभोग का परिवर्तित रूप कह सकते हैं।

अंग - प्रबंध-पुरुष के छह अंग हैं- स्वर, बिरुद, पद, तेन, पाट और ताल। तेन और पद नेत्र के समान, पाट और बिरुद को हस्त, ताल और स्वर को चरण के समान माना गया है।

प्रबन्ध-पुरुष

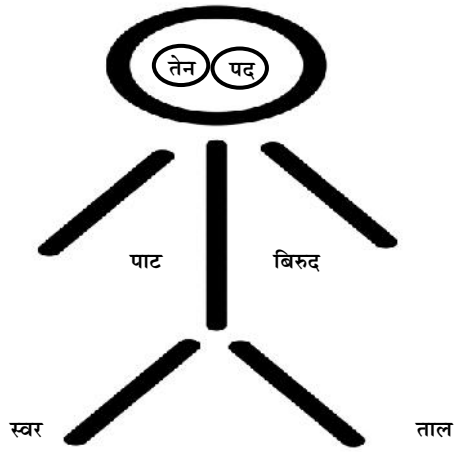

स्वर- इसके बिना प्रबंध गा ही नहीं सकते, यह अनिवार्य अंग है। जैसे- सा रे ग म।

बिरुद- गुण या प्रशंसासूचक शब्द। जैसे- उदार, दयालु।

पद – बिरुद और तेन (मंगलसूचक) छोड़कर अन्य शब्द। जैसे- ए री आली पिया बिन।

तेन- मंगलार्थक या ईश्वरवाचक शब्द- हरि ऊँ या हरिनाम संकीर्तन।

पाट- तालवाद्य पर बजने वाले अक्षर - धा तिरकिट तक, ता तिरकिट तक।

यह तालवाद्य पर बजने के साथ अनेक बंदिशों के अंतर्गत आता है और अवनद्धवाद्यों की अपनी प्रबन्ध-रचना (बोल, कायदा, परन) में तो होता ही है।

ताल- संगीत के समय को नापने का साधन। यह भी प्रबन्ध का आवश्यक अंग है।

प्रबंध-पुरुष के चरण के रूप में स्वर-ताल को बताये जाने का कारण यह है कि जैसे बिना पैर के मनुष्य चल नहीं सकता वैसे ही स्वर-ताल के बिना प्रबन्ध अर्थात् बंदिश चल नहीं सकती। प्रबंध के छह अंगों में से छह, पाँच, चार, तीन या दो अंगों से प्रबंध-रचना हो सकती है। प्रायः दो अंगों में स्वर और ताल या कहीं ताल के स्थान पर पद/बिरुद/तेन के साथ भी प्रबंध रचना मानी गई है। बंदिश सरगमगीत हो तो स्वर और ताल - ये दो अनिवार्य अंग हैं ही यदि कोई तालबद्ध किये बिना शब्दों को स्वरबद्ध करके गाये तो वहाँ स्वर के साथ पद/बिरुद/तेन यह दूसरा अंग हो जाएगा, जिसमें शब्दों के काल-मान में ताल छिपा रहेगा।

प्रबन्ध के भेद – प्रबन्ध के तीन प्रमुख भेद इस प्रकार हैं –

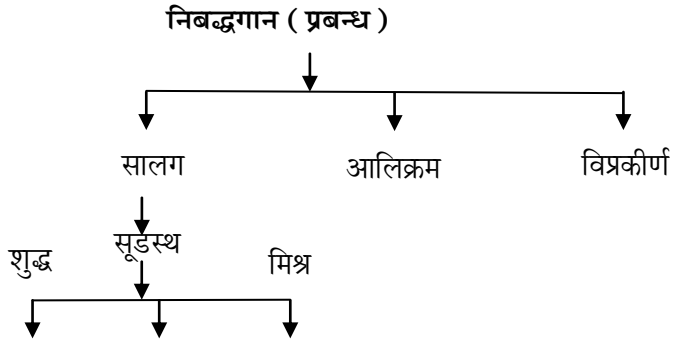

सूडप्रबन्ध में एक रचना के अनेक गीतों में परस्पर संबंध होता था। इसके अनेक भेद-उपभेद थे। आलिक्रम में भी गीतों में संबंध था, पर भेद कुछ कम थे। विप्रकीर्ण परस्पर संबंध के बिना स्वतंत्र रूप से गाने लायक प्रबन्ध थे।

सूडप्रबन्ध का मुख्य उदाहरण जयदेव का गीतगोविंद है जिसमें 24 गीत (अष्टपदियाँ) कथा के रूप में जुड़े हुए हैं। कहीं दो गीतों को जोड़ने के लिये बीच में श्लोक रखे गए हैं।

आलिक्रम प्रबन्धों के प्रकार में पंचतालेश्वर, तालार्णव (तालसमुद्र अर्थात् तालों का भंडार), रागकदम्ब (रागों का समूह) नामों से ही पता चलता है कि इसमें एक से अधिक तालों और रागों का प्रयोग होता रहा होगा। अतः उन गीतों या

गीतखंडों में परस्पर संबंध होता होगा। अन्यान्य भेदों में गद्य, दण्डक, आर्या, गाथा, त्रोटक जैसे नाम हैं, जो काव्य में छंदों के नाम हैं। इसका एक भेद स्वरार्थ प्रबन्ध है, जिसमें स्वर के अक्षरों की कविता उन्हीं स्वरों में गाई जाती थी। जैसे- 'नीर गगरी गिरी नार से' की स्वरलिपि है - नि़ रे गगरे गरे नि़रे सा।

विप्रकीर्ण का अर्थ है फुटकर। जो प्रबन्ध सूड और आलिक्रम में नहीं आते वे विप्रकीर्ण कहे गये। ये अपने आप में स्वतंत्र अर्थात् मुक्तक काव्य की तरह कथासूत्र से अलग माने गये। इसके भेदों में त्रिपदी, चतुष्पदी, षट्पदी, चतुरंग आदि हैं। धम्माली नामक भेद आज का धमार है।

आज गाई जाने वाली ज्यादातर बंदिशें विप्रकीर्ण के अंतर्गत आती हैं। प्रयत्न करने पर कहीं-कहीं बड़े और छोटे ख्याल की बंदिशों में कथा-सूत्र जोड़ सकते हैं। जैसे- राग दरबारी कानड़ा के बड़े ख्याल – 'मुबारकबादियाँ, शादियाँ' और छोटे ख्याल – 'बन्दनवा बाँधो रे बाँधो सब मिल के मालनिया' में शादी की मुबारकबाद और उसके लिए साजसजावट करने की बात कही जा रही है।

वर्तमान समय में प्रबन्ध अर्थात् बंदिशों के निम्न प्रकार अधिक प्रचलित हैं –

ध्रुपद - प्रायः मध्यलय की बंदिश जो 12 मात्रा के चौताल में होती है। सूलताल (10 मात्रा) और तीवरा (7 मात्रा) में द्रुत बंदिश होती है। संगीत की प्रशंसा, ईश्वर या राजा की स्तुति, प्रकृति, दर्शन संबंधी विषयों का वर्णन होता है। पुराने ध्रुपदों में स्थायी, अंतरा, संचारी, आभोग होता था, आजकल पहले दो खंड होते हैं। जैसे- राग यमन का ध्रुपद - तू ही भज भज रे मना।

धमार – 14 मात्रा के धमार नामक ताल में प्रायः राधा-कृष्ण की होरी, फागुन मास, वसन्त ऋतु का वर्णन होता है। जैसे- राग बागेश्री का धमार - आयो फागुन मास।

ध्रुपद-धमार दोनों में बंदिश के पहले नोम्–तोम् का आलाप, बंदिश के साथ-साथ हाथ से ताली देकर लयकारी के साथ उपज का काम और पखावज पर संगत होती है।

खयाल – मुख्यतः विलंबित और द्रुत दो प्रकार के खयाल होते हैं, कुछ बंदिशें मध्यलय की होती हैं। इन सब बंदिशों के साथ आलाप-तान गाते हुए मुखड़े के साथ सम दिखाते हैं। विलंबित ख्याल एकताल (12 मात्रा), झूमरा (14 मात्रा), तिलवाड़ा (16 मात्रा) तालों में और द्रुत ख्याल एकताल (12 मात्रा), आड़ाचौताल (14 मात्रा) और त्रिताल (16 मात्रा) तालों में और मध्यलय ख्याल रूपक (7 मात्रा), झपताल (10 मात्रा) और त्रिताल (16 मात्रा) में गाए जाते हैं। ईश्वर, संगीत, प्रकृति, नायक-नायिका संबंधी वर्णन होता है। गाने में शब्द की तुलना में राग-ताल को महत्त्व दिया जाता है। उदाहरण के लिये राग बिहाग का बड़ा ख्याल - कैसे सुख सोवे नींदरिया और छोटाख्याल - लट उलझी सुलझा जा बालम, दुर्गा का मध्यलय - सखि मोरी रुमझुम। इसकी संगत तबले पर होती है।

तराना- प्रायः अर्थरहित शब्दों को राग-ताल में बाँधते हैं जिसमें स्वर-लय का चमत्कार मुख्य होता है। कुछ विद्वान इसके शब्दों का कूट (गुप्त) अर्थ भी बताते हैं।

इसका विस्तार कभी तानों से और कभी तेज गति में 'दिर-दिर तननन' बोलों से किया जाता है। जैसे - राग मालकौंस में - तोम तनन तन देरेना।

ठुमरी-दादरा – ये प्रायः साथ बोले जाने वाले नाम हैं और शास्त्रीय संगीत के ध्रुपद-खयाल प्रकारों के बाद उपशास्त्रीय संगीत के रूप में कहे जाते हैं। इनकी बंदिशें प्रायः श्रृंगार-प्रधान होती हैं। ठुमरी की बदिशों का भाव के आधार पर बोल-बनाव से विस्तार किया जाता है। दादरा गतिप्रधान गीतप्रकार है। धीमी लय की ठुमरी दीपचंदी (14 मात्रा) और जतताल (16 मात्रा) में गाते हैं और द्रुतलय की ठुमरी और दादरा ये दोनों ही कहरवा (8 मात्रा) और दादरा (6 मात्रा) तालों में गाते हैं। जैसे- राग भैरवी की धीमी ठुमरी - जा मैं तोसे नाहीं बोलूँ, द्रुतलय की ठुमरी बंदिश की ठुमरी कही जाती है जैसे खमाज में - कोयलिया कूक सुनावे और भैरवी में दादरा - आया करे जरा कह दो साँवरिया से।

टप्पा – टप्पा भी अपेक्षाकृत चंचलगीत प्रकार है, जिसमें खास तरह की घुमावदार तानों का प्रयोग विशेष होता है अतः जटिल और श्रमसाध्य होता है। अधिकतर बंदिशें पंजाबी भाषा में होती हैं। टप्पा के प्रचार-प्रसार के साथ प्रायः शोरी मियाँ का नाम लिया जाता है। 16 मात्रा के पंजाबी या अद्धा तालों के साथ इसे गाया जाता है। राग काफी का प्रसिद्ध टप्पा है - ओ मियाँ जाने वाले।

कुछ विशेष प्रबंधों के प्रकार –

त्रिवट – इसके संबंध में दो मत हैं। पहला मत केवल अवनद्ध वाद्यों के पाटाक्षर से बनी बंदिश को त्रिवट या तिरवट कहता है। दूसरे मत में 'त्रि' शब्द को प्रधानता देते हुए सार्थक शब्द, सरगम और तबले के बोल अथवा तराना, सरगम और तबले के बोल से बनी बंदिश त्रिवट कही जाती है। यह बहुत दुर्लभ प्रकार है। बंदिशः प्रायः द्रुतख्याल वाले तालों में होती है। इसे ख्याल की तरह तान से सजाते हैं। पहले प्रकार का उदाहरण मालकौंस में - त्रक धिकिट धान धान धान धा, ता धा, दूसरा प्रकार भूपाली में- धिरकिट तक धी धी ना।

चतुरंग - इसके नाम से स्पष्ट है कि यह चार अंगों से मिलकर बनी रचना होती है। सार्थक शब्द, तराना, सरगम और तालवाद्य के अक्षरों से यह आकार लेती है। कभी-कभी संस्कृत के श्लोक या उर्दू/अरबी की कुछ लाइनें भी ली जाती हैं। यह भी अप्रचलित प्रकार है। इसका विस्तार भी छोटे ख्याल जैसा जादातर तानों से किया जाता है। जैसे- राग सिंधूरा में – चतरंग गाओ गुनि सब मिल कर।

सादरा – झपताल में बनी ऐसी विशेष रचना जिसमें झपताल का 2-3-2-3 मात्रा-विभाजन वाला छंद छिप जाता है। मोटे तौर पर सुनने में त्रिताल की बंदिश प्रतीत होती है लेकिन बड़ी सुघड़ता और कुशलता से वह झपताल में सजाई हुई होती है। उछलती लय वाली इस बंदिश में आलाप-तानों का बर्ताव भी उससे मेल खाता हुआ लयप्रधान किया जाता है। जैसे राग मारवा में- सखि धूम मची झपताल की। कुछ विद्वान झपताल में बनाये वैशिष्ट्यपूर्ण ध्रुपद को सादरा कहते हैं और उसका संबंध दिल्ली के पास के शाहदरा गाँव से बताते हैं।

रागसागर या रागमाला – नाम से समझ में आता है कि यह रागों के समूह से बनी रचना है। सबसे अधिक चर्चित रागमाला 'एमन हमीर छाया परे स्याम की, हर दरबार में कहावे नायकी' है जिसमें अलग-अलग रागनामों के शब्द उस-उस राग के स्वरों में बाँधे गये हैं। कुछ ऐसी बंदिशें भी हैं, जिसमें रागनामों से अलग कविता है और अनेक रागों में बिठाई गई है। जैसे 'इंद्रधनु' नाम से 7 रागों में - ए बेलरिया हरी झुकि रही। इसका विस्तार करते समय अंगभूत रागों को सम्हालकर मिलाते हुए गाना होता है।

कैवाड़ प्रबन्ध – केवल पाटवर्णों अर्थात् तबला या पखावज के बोलों से बनी सार्थक या निरर्थक गीतरचना। (एक मत से यह त्रिवट के अंतर्गत होगा।) इसके भेद के रूप में तराना के बोलों से बनी सार्थक गीत-रचना। यह भी बहुत दुर्लभ गीत-प्रकार है। जैसे रागेश्री में- तुम देरे तुम देरे दानी दयादान।

स्वरार्थ प्रबन्ध – नाम से ही स्पष्ट है कि सात स्वरों के अक्षरों से बनी सार्थक कविता, जिसे उन्हीं स्वरों में बाँधा जाए, स्वरार्थ-प्रबन्ध कही जाती है। इसकी अधिकतम 7, कहीं 6 और 5 ही निश्चित अक्षरों की काव्यरचना भी पर्याप्त कुशलता और सजगता माँगती है और संगीत की दृष्टि से राग के रूप को भी संभालने की तार्किक बुद्धि माँगती है। जैसे - 'नीर गगरी गिरी नार से' को इन्हीं अक्षरों वाले स्वरों में यमन में गाया जाएगा।

इस प्रकार हम देखते हैं कि संगीत में क्रियाप्रधान और विचारप्रधान दोनों ही पक्षों का सुन्दर समन्वय 'प्रबन्ध' के रूप में दिखाई देता है।

सहायक ग्रन्थ –

1. भावरंगलहरी- प्रथम भाग, पं0 बलवन्तराय भट्ट, वाराणसी, 1964.
2. भावरंगलहरी- द्वितीय भाग, पं0 बलवन्तराय भट्ट, वाराणसी, 1974.
3. संगीत-जिज्ञासा और समाधान, डॉ0 तेजसिंह टाक, बेकरा आलमी फाउण्डेशन, लखनऊ, 2001.
4. भारतीय संगीत कोश, श्रीविमलाकान्त राय चौधरी, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, 1975.
5. क्रमिक पुस्तक मालिका- तृतीय भाग, पं0 भातखंडे, संगीत कार्यालय, हाथरस, 1979.
6. क्रमिक पुस्तक मालिका- चतुर्थ भाग, पं0 भातखंडे, संगीत कार्यालय, हाथरस, 1979.
7. संगीतांजलि- द्वितीय भाग, पं0 ओम्कारनाथ ठाकुर, वाराणसी, 1975.
8. रागविज्ञान, प्रथम भाग, पं0 विनायकराव पटवर्धन, संगीत-गौरव-ग्रंथमाला, पुणे, 1978.
9. रागविज्ञान, द्वितीय भाग, पं0 विनायक पटवर्धन, संगीत-गौरव-ग्रंथमाला, पुणे, 1970.
10. रागविज्ञान, तृतीय भाग, पं0 विनायक पटवर्धन, संगीत-गौरव-ग्रंथमाला, पुणे, 1967.

***

पटना जिले में वायु-प्रदूषण की पर्यावरणीय समस्या : एक भौगोलिक विश्लेषण

साधना कुमारी *

संक्षेपणः– बिहार राज्य के प्राचिन नगर एवं राजधानी पटना का नगरीकरण अति तीव्र गति से हो रहा है। 2011 में इसकी आबादी 16.87 लाख से ज्यादा थी। पिछले 60 वर्षो में (1951–2011) इसकी जनसंख्या वृद्धि+10, 82, 965 या+382.20 प्रतिशत हुई है। गंगा नदी के किनारे पूरब से पश्चिम इसका विस्तार 20 किलो मीटर से भी अधिक लम्बाई हो गया है। यहाँ स्वचालित वाहनों की संख्या में प्रतिवर्ष तीव्रतर गति से वृद्धि होने के कारण नगर भयंकर वायु प्रदूषण का शिकार हो गया है। पटना नगर में प्रतिवर्ष गाड़ियों से 4.23 लाख टन वायु प्रदूषण उत्पन्न होता है। गाड़ियों से निकलने वाले प्रदूषण में कार्बनडाइऑक्साइड से लेकर कार्बनमोनोऑक्साइड, पीएम 10, पोली ऑरोमेटिक, बेंजीन जैसे तत्व सामिल है। इन प्रदूषणों को घटाने के लिए ठोस कदम उठाने की आवश्यकता है।

परिचय Introduction :– पटना एक प्राचिन नगर है। भौगोलिक स्थिति के अनुसार इसका विस्तार 25°35', और 25°38' उत्तरी अक्षांशो तथा 85°5' से 85°16' पूर्वी देशान्तर के बिच है, यह बिहार का सबसे बड़ा शहर एवं राजधानी है। पटना वर्ग MC (10,00,000-19,99,999 व्यक्ति) का नगर है, "Sparawled on the bank of the Ganga, Patna, the Eternal City of the East, is a lineal descendent of the ancient metropal is of Patliputra and Azimabad.
The City is also consecrated by the sikh as it is the birth place of Guru Gobind Singh, the tenth and the last Guru of sikhism"
"Patna is a primate city in the state it is the largest city in the leveeregion and is one of the most ancient cities of the world. Patna is a river form city located on the right bank of the Ganga, at the confluence of the Ganga and the Gandak and in the post the some".
यह गंगा नदी के किनारे दाहिनी ओर पूरब से पश्चिम लगभग 20 किलोमीटर से उपर लम्बाई में विस्तृत है।
पटना पूर्वी मध्य रेलवे के मेन लाइन (main line) पर स्थित एक महत्वपूर्ण रेलवे जंक्शन है, जो कोलकता से 541 किलोमीटर पश्चिम में है, एक ब्रांचलाइन पटना को गया से जोड़ती है। 1982 में महात्मा गांधी सेतु के निर्माण के बाद से सड़क मार्ग द्वारा उत्तरी बिहार दक्षिणी भाग से जुड़ा हुआ है। यह हवाई मार्ग द्वारा भी जुड़ा हुआ है।

---

* सहायक प्राध्यापिका, एस.डी. कॉलेज, परैया, गया (बिहार)

पिछले 5 दशकों में जनसंख्या में तीव्रतर गति से जनसंख्या वृद्धि के कारण नगर का विकास चारों ओर, विशेषकर पश्चिम में तथा पूर्व की ओर अधिक हुआ है। इसका वर्तमान विस्तार पश्चिम में दानापुर– बिहटा तक, पूर्व में फतुहा तक तथा दक्षिण में पुनपुन तक होता जा रहा है।

पटना का नगरीकरण : नगरीकरण का सामान्य अर्थ है नगरीय वृद्धि, नगरीकरण नगरीय होने या बनाने, नगरोन्मुख गति और प्राथमिक व्यवसाय तथा ग्राम्य जीवन पद्धति से द्वितयक या तृतयक व्यवसाय तथा नगरीय पद्धति में परिवर्तन की समान्य प्रक्रिया है।

तालिका संख्या – 1

पटना के नगरीकरण का प्रारूप : 1901 – 2011

क्र० सं०	वर्ष दशक	शहर का स्टेटस	क्षेत्र० वर्ग कि०मी० में	कुल जनसंख्या	संख्या में वृद्धि(+) ह्रास(–)	प्रतिशत वृद्धि (+) ह्रास (–)
1	1901	.....	.....	1,34,785	.....	.....
2	1911	म्यू०	.....	1,36,153	+1,368	+1,06
3	1921	म्यू०	.....	1,19,976	–16,177	–11.68
4	1931	म्यू०	.....	1,59,690	+30,714	+33.10
5	1941	म्यू०	.....	1,95,415	+36,775	+23.00
6	1951	म्यू०	.....	2,83,479	+87,064	+44.33
7	1961	म्यू० कार.	57.19	3,63,700	+80,221	+28.30
8	1971	म्यू० कार	71.05	4,73,001	+1,09,30	+30.05
9	1981	म्यू० कार.	79.42	7,76,371	+3,03,370	+64.14
1011	1991	म्यू० कार.	99.45	9,11,243	+1,40,872	+18.14
12	2001	प आर	99.34	13,76,950	+4,54,707	+49.57
	2011	प आर	99.34	16,87,828	+3,21,384	+23.52
	1901.51	.....	.....	.....	+1,48,694	+85.22
	1951.2011	.....	.....	.....	+10,82,965	+382.20
	1901.2011	.....	.....	.....	+15,53,043	+1,152.24

स्त्रोत– (i) भारत की जनगणना, 1991 श्रृंख्ला 5, बिहार, पार्ट-IIए, जेनरल पोपुलेशन टेबुल्स, पृ० 307।

(ii) भारत की जनगणना 2001, श्रृंख्ला 11, जनसंख्या के अंतिम आंकड़े

(iii) भारत की जनगणना, 2011 और

(iv) स्वयं का आंकलन

Growth of Population of Patna City (1901-2011)

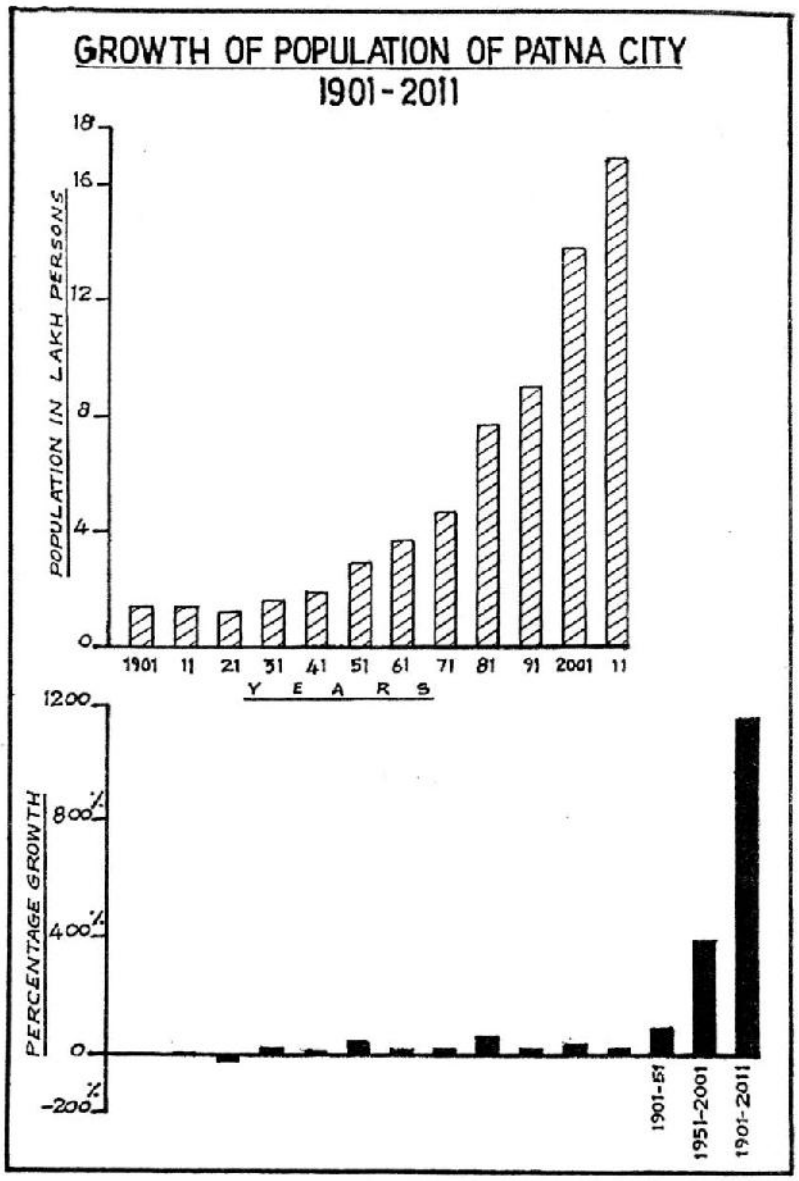

विश्लेषणः–

वायु–प्रदूषणः– वायु के दुषित होने की प्रक्रिया अथवा वायुमण्डल में हानिकारक तत्वों की मात्रा का बढ़ना वायु प्रदूषण कहलाता है"

Air pollution is the excessive concentration of one or more contaminants such as trust, smoke, fumes, gases, etc, in air which adversely affects human health, plants, animals, or cause damage to property."

निम्नलिखित रासायनिक प्रदूषक वायु के लिए अत्यन्त हानिकारक होते है :–

(a) कार्बन–मोनो–ऑक्साइड (Carbon Mono Oxide - Co)

(b) नाइट्रोजन के ऑक्साइड (Nitrogen oxide - No_2)

(c) सल्फर के ऑक्साइड (Sulpher - di - oxide - So_2)

(d) हाइड्रोजन (Hydrogen)

परिवहन के साधनों द्वारा वायु–प्रदूषणः स्टीम युग में प्रवेश करते ही मानव हर्षित हुआ कि उसकी यात्रा सुगम हुई और घोड़ागाड़ी, बैलगाड़ी आदि से जो दूरी महिनों में तय की जाती थी वह अब कुछ दिनों और घंटो में तय की जायगी। तथा कई गुणा अधिक माल ढोकर एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुंचाया जा सकेगा। रेलगाड़ी, मोटरगाड़ी, जलपोत और हवाई जहाज, वाहनों के उत्कृष्ट रूप प्रस्तुत करते हैं। पर विकसित देशों में वाहन विस्तार इतना अधिक हो गया है कि महानगरों में मोटरगाड़ियों को पार्क करने के लिए कठिन समस्या उठने लगी है, इसके लिए बहुमंजिला कार पार्क इमारतों का निर्माण किया जा रहा है। (पटना में बुद्ध स्मृति पार्क के बाहर ऐसी ही इमारत का उद्घाटन किया गया है।) भारतीय (पटना सहित) सड़क पर मोटरगाड़ियों का विस्तार तेजी से हुआ है। इससे यात्रा उपेक्षाकृत सुगम हो गई है, लेकिन इस विस्तार से अनेक विकट समस्याएँ उत्पन्न हुई है।

सबसे विकट समस्या इसके द्वारा प्रयुक्त ईंधन से वायु–प्रदूषण और ध्वनी प्रदूषण की है, मोटरगाड़ी में प्रयुक्त पेट्रोल एवं डीजल से निकलने वाला धुँआ वायु में सीसा के कण उड़ेल रहा है जो श्वास की बिमारियों का कारण है। वाहनों के तेज आवाज से ध्वनी प्रदूषण बढ़ रहा है, वाहनों से निकलने वाला धुंआ, गैस तथा सूक्ष्म–कण आसपास फैलकर वहाँ की गैस अथवा वातावरण को प्रदूषित करते हैं। वाहनों की संख्या दिनोंदिन बढ़ती जा रही है, जिससे नगरीय जीवन कष्टप्रद होता जा रहा है।

हर साल पटना शहर के अन्दर गाड़ियों की वजह से 4.23 लाख टन वायु प्रदूषणः पटना नगर निगम क्षेत्र में गाड़ियों से हर साल करीब 4.23 लाख टन वायु प्रदूषण फैल रहा है। वातावरण में सबसे ज्यादा प्रदूषण शहर में चलने वाले चार पहिया (डीजल) वाहन से निकलता है, जबकि प्रतिवाहन प्रदूषण के मामले में पटना की हवा को टेम्पो–ऑटो सबसे ज्यादा प्रदूषित कर रहा है। जिस रफ्तार से शहर में गाड़ियों की संख्या और उससे निकलने वाली प्रदूषण की मात्रा बढ़ रही है, उससे आने वाले 30 साल में शहर में वायु प्रदूषण की समस्या विकराल हो जाएगी।

डीजल वाले चार पहिया वाहन से ज्यादा प्रदूषण : अध्ययन के मुताबिक पटना म्युनिसिपल एरिया में वाहनों से निकलने वाले कुल प्रदूषण में 63 फीसदी डीजल वाहनों से ओर 37 फीसदी पेट्रोल वाहनों से होता है। शहर

में चल रहे वाहनों की संख्या के आधार पर सबसे ज्यादा करीब 47 फीसदी चार पहिया वाहनों से निकलता है। इसके बाद 20 फीसदी पेट्रोल वाले दो पहिया वाहन, 15 फीसदी पेट्रोल चार पहिया, दस फीसदी डीजल बस, छह फीसदी डीजल थ्री व्हीलर और दो फीसदी पेट्रोल वाले तिपहिया वाहनों से निकलता है।

पिछले 10 सालों में बेतहाशा वृद्धि हुई है गाड़ियों में : पिछले 10 साल में चार पहिया और दो पहिया वाहनों की संख्या में बेतहाशा वृद्धि की वजह से इससे निकलने वाले प्रदूषण की मात्रा में काफी इजाफा हुआ है। साल 2004–2005 में पटना में करीब 20 हजार 214 गाड़ियाँ रजिस्टर्ड हुई थीं। दस साल बाद इसमें चार गुणा से ज्यादा बढ़ोतरी आ गई है। साल 2013–14 में पटना में करीब 85834 गाड़ियाँ रजिस्टर्ड हुई है। कुल मिलाकर दस साल में करीब 5 लाख 30 हजार 320 नई गाड़ियां रजिस्टर्ड हुई।

Co_2 की मात्रा ज्यादा :– आंकड़ों को दो भागों में बांटा गया है। इसमें ज्यादा और कम मात्रा में निकलने वाला प्रदूषण शामिल है। गाड़ियों से निकलने वाले प्रदूषण में कार्बन डाइऑक्साइड से लेकर कार्बन मोनो ऑक्साइड, पीएम 10, पॉली आरोमेटिक, बेंजीन जैसे तत्व शामिल है।

दो पहिया सबसे ज्यादा रजिस्टर्ड : साल 2013–14 में 85 हजार 834 गाड़ियां रजिस्टर्ड हुई थी। इसमें सबसे ज्यादा 66655 दो पहिया वाहन थे। इसके अलावा 11 हजार 33 कार, 33 हजार ट्रैक्टर, 1142 ऑटोरिक्शा, 869 ट्रक, 516 ट्रेलर, 224 मोपेड समेत अन्य वाहन शामिल है।

प्रतिवर्ष 1100 नए थ्री वहीर्ल्स : आंकड़ों के मुताबिक राजधानी में हर जाल साल करीब 1100 नए थ्री व्हीलर्स रजिस्टर्ड हो रहे है। हालांकि पिछले साल इसकी खरीदारी के आंकड़े में गिरावट भी आई है। इसके अलावा मोपेड और डिलीवरी वेन की खरीदारी में कमी आई है। प्रदेश में दस साल में करीब 11 हजार 343 ऑटोरिक्शा रजिस्टर्ड हुए है।

Quick Facts

2005 में पटना में 20 हजार 314 गाड़ियां रजिस्टर्ड हुई थी, इसमें 2566 कार थी। 2014 में 85 हजार 834 गाड़ियां रजिस्टर्ड हुई। तब कार की संख्या 11 हजार 33 थी।

गाड़ियों से निकलने वाला प्रदूषण

	गाड़ी	प्रदूषण
*	चार पहिया (डीजल)	201209 tones / year
*	दो पहिया (पेट्रोल)	83335 tones / year
*	चार पहिया (पेट्रोल)	628000 tones / year
*	बस डीजल (डीजल)	40933 tones / year
*	तीन पहिया (डीजल)	25446 tones / year
*	तीन पहिया (डीजल)	9413 tones / year

ज्यादा मात्रा में निकलने वाला प्रदूषण

*	Co	5782
*	Hydro Carbon	2008
*	No_2	2906
*	PM 10	170
*	Co	411270

कम मात्रा में निकलने वाला प्रदूषण

*	Polyaromatic hydro Carbons	(PAH) 404
*	Formaldehyde	71
*	Benzene	58
*	Bata didena	14
*	Acetaldehyde	4

AIR POLLUTION DUETODIFFERENT AUTOMOBILES : 2013-14

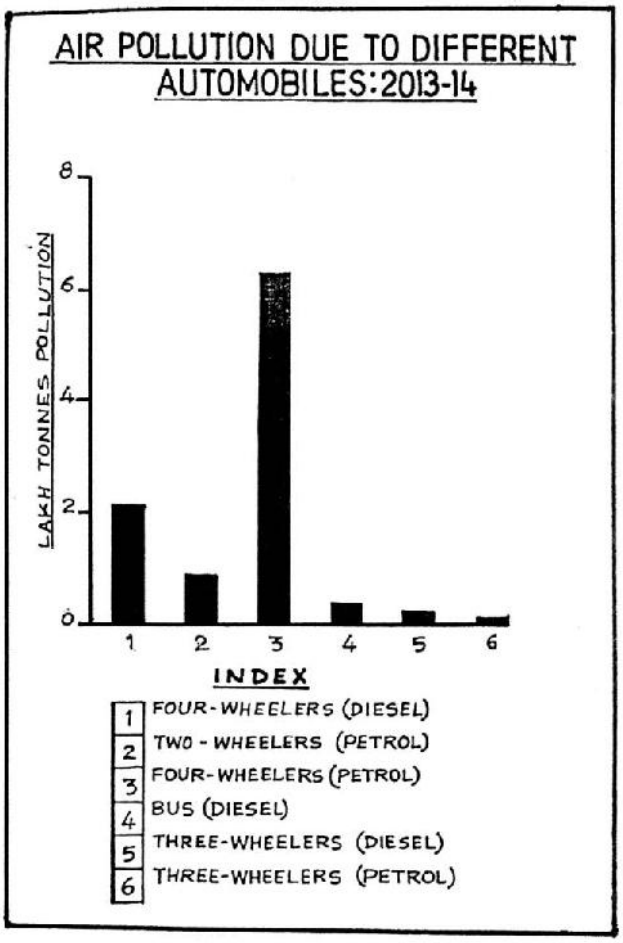

फेफड़े का संक्रमण सबसे ज्यादा : हवा में शामिल कणों के फेफड़ों में जाने पर एलर्जी, नींद न आना, बेचैनी, चिड़चिड़ापन, पाचन क्रिया में परेशानी, ब्रोन्काइटिस, बेन्कोलाइटिस, अस्थमा से लेकर कई खतरनाक बिमारियों तक होती है। ज्यादा देर तक प्रदूषित क्षेत्र में रहने से 10 माइक्रॉन से कम के कणों को रोकने वाला मास्क लगाना जरूरी है।

निष्कर्ष (Conclusion) नगर में बढ़ते वायु–प्रदूषण पर नियंत्रण के लिए प्रशासन, स्वाचालित वाहनों के मालिक तथा नागरिक की जागरूकता तथा यातायात संबंधी नियमों को अमल करने की आवश्यकता है। हमें प्रदूषण बोर्ड के नियमों का पालन करना चाहिए। लीडयुक्त पेट्रोल का न्यूनतम उपयोग, ज्यादा पुरानी गाड़ियों के चालन पर रोक, बसों से यात्रा पर जोर, इंधन रहित वाहनों (जैसे साइकिल) का अधिकतम उपयोग, ट्रैफिक जाम से हटकर सड़कों का उपयोग, सड़कों किनारे ज्यादा वृक्षारोपण आदि प्रदूषण कम करने के उपायों पर जोर देना आवश्यक है।

सन्दर्भ :

1. Shambhu, Shesh Dhar, 2005, Patna millian city of Bihar : A Geographical Study, An Unpublished Ph.D Thesis, BodhGaya, Magadh University, P.3
2. मौर्य एस.डी., 2008 जनसंख्या भूगोल, इलाहाबाद, शारदा पुस्तक सदन, पृ. सं. 342
3. Ghosh, m., 1919, Patliputra : Patna, Patna, Law Press, PP. 3-6.
4. Agrawal, K.m., Sikdhar, R.K. and Deb, S.C., 2002 A Text book of Environment Kolkata, Macmillion Indian Limited, P. 218.
5. तिवारी, देवेन्द्र, शहर में हर साल गाड़ियों से 4.23 लाख टन वायु प्रदूषण, एक अंश, दैनिक भास्कर, एक दैनिक समाचार पत्र, पटना से प्रकाशित, 04.07.2015 पृ० सं० 1.
6. Taneja, K.L. (1971) : Morphalagy of Indian cities N.G. S.I, Varanasi
7. Troy, P.N. (1966 ed.) Urban Redevelopment in Australia, Australian National University Press, Canbera,
8. Rao, V.L.S. Prakasha, 1964, Towns of My sone state, Asia Publishing House, Bombay.
9. Hall, P. 1966, : The world cities, weiden feld & Nicolson, London.
10. Harvey, D. 1973,. Social Justice and the city, London.
11. Burke, G. 1971;. Towns in making, Edwand Arnald, London

***

अस्मिता उड़ान और आक्रोश का वितान : 'उठाता है कोई एक मुट्ठी ऐश्वर्य'

रणधीर कुमार सिंह *

'उठाता है कोई एक मुट्ठी ऐश्वर्य' चर्चित कवयित्री और कथाकार जया जादवानी का काव्य–संग्रह है जो सन 2009 में मेधा बुक्स, दिल्ली से प्रकाशित हुआ है। जया जादवानी द्वारा रचित यह तीसरा काव्य–संग्रह है, इससे पूर्व 'मैं शब्द हूँ' 'अनंत भावनाओं के बाद भी' नामक दो संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। इस संग्रह की कविताओं में रूमानी भूमि के साथ एक भावपूर्ण आध्यात्मिक भूमि तो दिखायी देती है, लेकिन आक्रोष और अस्मितामूलक उद्‌गार संग्रह की उपादेयता को महत्वपूर्ण बनाते हैं। कविताओं की उत्कृष्ट भाव भूमि के साथ अनुभव–संसार युक्त होकर काव्यगत गंभीरता को नया आयाम देता है। इस आयाम की परिधि निःसंदेह जया जादवानी के कृतित्व की ही परिधि है लेकिन एक बारीक स्फुरण स्त्री–विमर्श के आयाम से भी जुड़ जाता है।

संग्रह में कुल 92 कविताएँ संकलित है जिसमें अधिकांशतः छोटी कविताएं हैं, कुछ कविता एक निश्चित मध्यम आकार की भी हैं जिन्हें किसी भी रूप में लंबी कविता नहीं कहा जा सकता। कविताओं की संवेदना स्त्री–मानस के विभिन्न आयामों से निर्मित है, इसके बावजूद इस काव्य–संग्रह को सरल काव्य–संवेदानाओं का मजबूत उदाहरण माना जा सकता है। रचनाओं की भावभूमि बहुत विविधपूर्ण भी नहीं है, इसके बावजूद रचनाओं में सादगी है, सरलता है। कविता में भावों का कलात्मक संयोजन संभवतः कविता को सर्वाधिक शक्तिशाली बनाता है, केवल भावों का प्रकटीकरण ही नहीं। इस दृष्टि से प्रस्तुत काव्य संग्रह से संभवतः न्याय नहीं किया जा सकता। यद्यपि यहाँ संगठित भाव भी है और कला भी। रचनाओं के अलग–अलग निर्मित होते सौंदर्यशास्त्र के दौर में स्त्री अस्मिता अपना कोई मुकम्मल सौंदर्यशास्त्र नहीं पा सका है, इस तरह के कलात्मक लेखन की अपेक्षा भावनाओं और भावों–रूपों के संतुलित प्रकटीकरण को मानना ही चाहिए।

कलात्मक उत्कृष्टता में दबे भावों और विचारों को यहाँ पर उचित विस्तार मिलता है। प्रस्तुत संग्रह में जया अपनी एक कविता 'उसने कहा' में लिखती हैं–

''उसने कहा तुम मत जाओ
तुम्हारे बिना अधूरा हूँ मैं
और सारी की सारी गठरी सर पे मेरे

---

* पुरा परास्नातक छात्र, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

वह चल रहा आगे–आगे
मैं गठरी समेत उसकी पीछे।''
(2009:89)

इन पंक्तियों में आक्रोश तो नहीं है लेकिन एक बारीक और मजबूत संकेत है कि युगीन इतिहास जिसका सारा भार नारी के ऊपर डाल दिया गया लेकिन कभी भी किसी कार्य और सृजन का श्रेय उसे नहीं मिला, सिवाय युगीन अभिशाप बनने के। कवयित्री का यह संकेत विषेष समाज में ही रहा है। इसे समान्यीकरण/सामान्यीकृत करना उचित नहीं होगा। जया जादवानी की उड़ान दिखाती है कि प्रतिरोध की संस्कृति विकसित होने के साथ हौसले को विस्तार मिलना आवश्यक है। 'अभिव्यक्ति' कविता स्त्री मानस की रूमानियत और विस्तार को परिभाषित करती है–

''लेकर नक्षत्र हाथों में
बजाऊँ में करताल की तरह
जिसकी धुन पर नाचे पूरी पृथ्वी
पूरा आसमान
समूची आकाशगंगाएँ
कि बरसे जल्द समस्त धाराओं में
प्रेम को कैसे व्यक्त कर सकती हूं
मैं
इसके सिवाय.... ।''
(2009:98)

पृथ्वी, नक्षत्र, पूरा आसमान, समूची अकाशगंगाएँ और समस्त धाराएँ करताल की ध्वनि में लीन हो जाए, प्रेम का संगीत ऐसा हो तो जादवानी खुद सवाल उठाती है कि असीम बंधनों के बावजूद संसार विस्तीर्ण है, स्त्री के मानस गान और जीवन संगीत हेतु एक लय है तो प्रेम क्यों ना व्यक्त करूँ?

संग्रह की अधिकांष कविताएँ स्त्री संवेदना की प्रभावपूर्ण अभिव्यक्ति करती है। 'स्त्री' षीर्षक से ही संग्रह में चार कविताएँ संकलित है, जिनकी तात्विक एकता 'स्त्री' संज्ञा में सन्निहित है। एक कविता स्त्री की संवदेना से जुड़ी हुई दूसरे में उसकी अभिव्यक्ति, किसी अन्य कविता में उसकी षक्ति बन प्रकट होती है। संग्रह की कई कविताएँ पुरूष सत्ता को बेनकाब करती हैं–

''जो कभी नहीं बोलते
बोलते हैं सबसे ज्यादा
जिसे तुम खामोषी समझने की
भूल करते हो
वह हर जगह ढँकी है
शब्दों लाशों से।''
(2009:45)

प्रस्तुत कविता युगों से बेबस और लाचार नारी का चित्र प्रस्तुत करती ही है, पुरूष सत्ता के भीषण दमन–तंत्र और दोगले स्वरूप को भी प्रकट करती है। बोलने–बतियाने का मौलिक अधिकार भी उसके पास नहीं था, उसके हर सवाल की प्रायः हत्या की जाती रही है। यह भी कि स्त्री की चुप्पी को (जो कि लादी गई है) उसकी कमजोरी समझने की भूल की जाती रही है। यह भूल अनजाने में कम, जानबूझकर ज्यादा की गयी है। फलतः स्त्री आक्रोष का बढ़ना स्वाभाविक ही है। 'संसार' कविता में जया जादवानी यही सवाली रखती हैं–

''वह उठाती है
हथेली पर
पूरा का पूरा संसार
रच देती
मेंहदी सा
तुम सिर्फ खुषबू लेते हो
और ऐतराज करते हो।'' (2009:50)

यह 'ऐतराज' अपनी ध्वनि में पूरी षोषण–श्रृंखला को समाहित किया हुआ है। कविता में ध्वन्यात्मकता बहुआयामी है।

शिल्प, विचार और भाव की जटिलता सरलता से निर्मित है। इस संग्रह की कुछ कविताओं में शिल्प अद्‌भुत बन पड़ा है क्योंकि रचना की ध्वनि बहुत दूर तक जाती है और एक बोध के प्रति सचेत करती हैं। 'संसार', 'उसने कहा', 'जो कभी नहीं बोलते' आदि कुछ ऐसी ही कविताएँ हैं जो संतुलित और सधी हुई होने के साथ गहरी दृष्टि भी रखती हैं।

'स्त्री' विषयक कविताएँ संग्रह की विशिष्टता और सामान्यता भी है। स्त्री मन के ढेर सारे दरवाजे खुले रहते हैं, अनगिनत रास्ते खुले रहते हैं लेकिन इन मानसिक दायरों से बाहर निकलते ही और निकलने के पूर्व ही 'देह' और सामाजिकता का ताबूत पाँव को पीछे खींचने लगता है। बहते जल के समान स्त्री का जीवन हर जगह लगभग एक जैसा होते हुए भी कहीं नहीं होता। 'स्त्री–2' शीर्षक कविता में जया लिखती हैं–

''लेकर अजूरी में पानी
खुद को देखो तो दिखता है
उसका चेहरा
यूँ मैं अपनी अँजूरी छोड़ती हूँ
वापस नदी में
खुद को ढूढ़ती हूँ
बहकर बहुत दूर नहीं गई हूँगी
अभी घड़ी भर पहले जरा सा
घूँट पिया था
अपना मुँह धोया था।'' (2009:34)

हर कदम पर स्त्री अपने को ढूंढ़ती है लेकिन अतीत तो बहुत पीछे छूट चुका होता है, यहाँ तक वर्तमान भी एक–एक क्षण भी अतीत का हिस्सा बनता जाता है, यातनामय अतीत का हिस्सा, जबकि वर्तमान भी लगभग गायब होता है। 'उठाता है कोई एक मुट्ठी ऐष्वर्य' संग्रह की कई कवितायें यातनामय अतीत और संघर्षपूर्ण वर्तमान को चित्रित करती हैं।

नारी पूर्ण मुक्ति के बाद जीवन जीने की केवल अभीप्सा नहीं पाले रख सकती, उसका विश्वास दैनंदिन स्वतंत्रता और उन्मुक्त उड़ान में है। उसकी (नारी की) रूमानियत और प्रेम मांसल और आध्यात्मिक संस्तर तक पहुँचते हैं। 'प्रेम' पर जया का अधिक विश्वास है। 'प्रेम' केवल मांसल सौन्दर्य तक सीमित नहीं है, यह नीले आसमान के घेरों, काल की बहती नदी, अंतहीन वायलिन तार से टूटी धुन, सुन्दर पेन्टिंग जिसमें कोई चित्रकार जैसे प्राण डाल दे, बारिशों की दरार, ख्वाबों में बारिश जैसी अनंत कल्पनाओं तक विस्तार पाता जाता है। 'चुम्बन' कविता में कवयित्री लिखती है–

''सारी चीजें एक–एक करके चली गई
नसों में काँपता रह गया
वह अनगढ़ चुम्बन
जो किसी के देख लिए जाने की
हड़बड़ाहट में लिपटा था
× × × ×
एक अवास्तविक संसार का हिस्सा
जिसके बीच जाने से डर लगता था
अब जाके समझ में आया
संसार के स्थायित्व का रहस्य
उसकी अनगढ़ता में है।'' (2009:82)

अवास्तविक संसार और अनगढ़ अवायवीय सौन्दर्य कैसे मांसल प्रेम का पूरक और सहायक है, इस संग्रह की कुछ कविताओं के माध्यम से यह बात स्पष्ट होती है। वैसे यह सौन्दर्य उतना कलात्मक और आकर्षक नहीं है कि बाँधे रखें पर एक सहज आकर्षण के रूप में इसे अनुभूत किया जा सकता है। जया जादवानी स्त्री की अभिव्यक्ति और शोषण से मुक्ति पर सर्वाधिक बल देती हैं। यद्यपि वह जानती हैं कि संघर्ष सापेक्षिक जीवन–गति से है। पुरुष सत्ता के खिलाफ स्त्री–संघर्ष का मोर्चा जितना मजबूत होना चाहिए था उतना नहीं हो पाया, बावजूद इसके जया संघर्ष पर सर्वाधिक बल देती हैं।

संग्रह की 'शीर्षक' कविता की बात करें तो भी एक रूमानी भाव बोध का आभास होता है। 'उठाता है कोई एक मुट्ठी ऐश्वर्य' पंक्ति संग्रह की दूसरी ही कविता 'बहुत कुछ होता है बीनने को इस धरती पर' से अवतरित है जो कि प्रस्तुत काव्य संग्रह की शीर्षक भी है। यह कविता 'हर की पैड़ी'

नदी में फेंके गये सिक्कों को ढूँढ़ते कुछ चेहरे की चेष्टा की पृष्ठभूमि पर निर्मित होती है। लेकिन कवयित्री की संवेदना उसे आध्यात्मिक प्रेम के धरातल तक पहुँचा देती है–

''वे बीनते हैं सिक्के
हर की पैड़ी पर
धूप में चमकती उनकी काली देह
मछली सी फिसलती और
रोक लेती सिक्कों को तल से ठीक पहले
× × ×
चिड़िया उठाती है घास का तिनका
उठाता है फकीर पात्र अपना
उठाता है कोई एक मुट्ठी ऐष्वर्य
मेरी बाँहें छोटी पड़ गई
मैंने उठाया जब तुम्हें।''

(2009:12)

इस संग्रह की अधिकांश कविताएँ छोटी और संतुलित होने के कारण पठनीय बन पड़ी हैं। यह बात भी महत्वपूर्ण है कि रचनाकार का दायरा न तो बहुत व्यापक है न ही बहुत गहरा, लेकिन एक जिद है, हौसला है, खुले आसमान तक उड़ते जाने का संघर्ष के गहरे दायरे में जकड़ी हुई नारी को मुक्ति का पंक्षी बार–बार जगाने की कोशिश करता है। उसके (नारी) मन में एक ऐसा दायरा बन गया है जहाँ दुनियाँ भर का शोर है, भाग दौड़ है और भ्रमित मन। मुक्ति की कामना से लबरेज यह संग्रह सही अर्थों में चेतना की स्पष्टता को प्रकट करता है, चेतना की दृढ़ता को नहीं। चेतना की स्पष्टता मुक्तिकामी चेतना में ही है। लेकिन दृढ़ता न होने का कारण अयाचित भय है जिसके खिलाफ आक्रोश अवश्य है संभवतः दृढ़ता नहीं।

वस्तुतः स्त्री विमर्श का सौंदर्यशास्त्र है या नहीं, इस बात पर गौर किये बिना भी स्त्री साहित्य का मूल्यांकन संभव होता है। लेकिन वर्चस्ववादी नजरिया बदलना चाहिए। अन्यथा नारी तवे पर रोटी पलटती रहेगी, दुनिया बदलती रहेगी लेकिन नारी को यही लगेगा कि वह तो अभी रोटियां ही पलट रही है। उसकी अभीप्सा, प्रेम और आक्रोश की दिशा निश्चित और मजबूत होनी चाहिए। कविताओं का पाठ मानसिक व्यग्रताओं पर एक विराम लगाता है, सोचने को विवश करता है। जया जादवानी का यह काव्य–संग्रह निश्चयतः संवेदित सत्य का प्रस्तोता है।

सन्दर्भ :

- जादवानी, जया (2009), 'उठाता है कोई एक मुट्ठी ऐष्वर्य', मेधा बुक्स, दिल्ली

***

धर्मेत्तर दाम्पत्य जीवन की खुशहाल सम्बन्धों की दास्तां 'सुनहरी धूप'

संजय कुमार प्रजापति *

मनुष्य सामाजिक प्राणी है। वह समाज में रहकर अपना जीवन व्यतीत करता है। एकता, प्रेम और परस्पर सहयोग की भावना के बिना समाज का निर्माण नहीं हो सकता। किसी भी समाज की नींव उस समाज में रह रहे लोगों के द्वारा पड़ती है, जो धर्म, सम्प्रदाय, कट्टरता और जातिवाद से ऊपर उठकर इंसानियत, प्रेम और सौहार्दपूर्ण वातावरण की बात करता हैं। लेकिन वर्तमान समय में हर क्षेत्र में धर्म का हस्तक्षेप हो रहा है। मनुष्य को सामाजिक प्राणी बनकर जीना है तो धार्मिक दखल और कट्टरता की उपेक्षा करनी होगी क्योंकि षिक्षा, स्वास्थ्य, सड़क, भोजन और भाषा का कोई धर्म नहीं है। इस सामाजिक यथार्थ को समझे बिना धर्मनिरपेक्ष सामाजिक मूल्य की महत्ता को स्थापित नहीं किया जा सकता है। व्यक्ति की कमजोरी यही है कि उसने प्रेम और मित्रता जैसे तत्वों को नहीं तलाषा। साम्प्रदायिकता समाज के लोगों को विभाजित करती रही है। साम्प्रदायिकता के षड़यंत्र को समाज के बौद्धिक वर्ग समझ सकता है और आपसी भाईचारे, बन्धुत्व के भाव द्वारा इस षड़यंत्र से मुक्ति का मार्ग प्रषस्त किया जा सकता है। मनुष्य के अन्दर सौहार्दपूर्ण धर्मनिरपेक्ष वातावरण बनाकर साम्प्रदायिक ताकतों को परास्त करने की क्षमता विद्यमान है। यथार्थ अभिव्यक्ति, धर्मनिरपेक्ष सामाजिक मूल्य और धर्मेत्तर दाम्पत्य जीवन की महत्ता को समकालीन तेलुगु के प्रगतिषील मानवतावादी रचनाकार 'सय्यद सलीम' ने अपने उपन्यास 'सुनहरी धूप' में अंकित किया है।

यह उपन्यास मूल रूप से तेलुगु भाषा में 'रानीगारी कथलू' नाम से सन् 2008 में प्रकाषित हुआ था। इसका हिन्दी अनुवाद आर. शान्ता सुन्दरी ने 'सुनहरी धूप' नाम से किया। इसका प्रथम हिन्दी संस्करण 2014 में प्रकाशित हुआ। यह उपन्यास दो अलग–अलग धर्मों से सम्बन्धित एक सफल विवाहित जोड़े के सुखी और मंगलमय दाम्पत्य जीवन को रेखांकित करती हैं। हिन्दू ब्राह्मण लड़की नगरानी उर्फ रानी और मुस्लिम लड़के सैफुल्लाह उर्फ सैफ के वैवाहिक जीवन में आने वाली समस्याओं भाषिक, सांस्कृतिक भिन्नता, धार्मिक मान्यताओं, रहन–सहन, खान–पान, आदतों आदि का समाधान किस प्रकार किया, इसकी सीख यह उपन्यास देता है। यह उपन्यास धार्मिक सहिष्णुता की मिषाल पेष करता है।

उपन्यास का प्रारम्भ नागरानी और सैफुल्लाह उर्फ सैफ के स्कूली जीवन से होता है। शर्मा डिग्री कॉलेज के पहले दिन ही रानी और सैफ की

---

* शोध छात्र काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

टकराहट के साथ मुलाकात होती है। रानी के लम्बे घने बालों को देखकर सैफ उस पर फिदा हो जाता है और मन ही मन रानी को चाहने लगता है। धीरे–धीरे कॉलेज में एक–दो मुलाकातों के बाद दोनों एक दूसरे से प्रेम करने लगते है। धार्मिक मान्यताएँ उनके एक होने में तमाम तरह की अड़चने उत्पन्न की। यह प्रेम दो अलग–अलग परिवारों के लिए धार्मिक रूप से चुनौती पैदा करती है। सैफ के परिवार वाले दोनों के विवाह मुस्लिम रीति–रीवाज़ से करवाना चाहते थे। वहीं रानी के परिवार वाले हिन्दू रीति–रीवाज़ से उनका फेरे लगवाना चाहते थे। सैफ और रानी आपसी सूझ–बूझ और तमाम अड़चनों एवं बाधाओं को पार कर इस समस्या का हल कोर्ट मैरिज कर निकालते है। इस तरह दोनों परिवारिक रिश्तों का मिलन होता है।

यह इस प्रेमी युगल के परस्पर आधुनिक विचारों और भावनात्मक सम्बन्धों का परिणाम है। वर्तमान समय और शहरों में आधुनिक विचारों से प्रेरित होकर ऐसे विवाह अमूमन सम्पन्न होने लगे हैं। परम्परागत रूढ़िवादी मानसिकता के लोग एक धर्म से दूसरे धर्म में विवाह को सामाजिक स्वीकृति नहीं देते हैं। अतिवादी समूहों का आरोप है कि मुस्लिम लड़के हिन्दू लड़कियों को मुसलमान बनाने की साजिश के तहत उनसे शादी करते हैं। इसे कथित तौर पर 'लव जिहाद' नाम दिया गया हैं। हालांकि लंबे समय से रूढ़िवादी भारतीय परिवारों में हिन्दू–मुस्लिम विवाह की आलोचना होती रही है लेकिन मुसलमान बनाने की साजिश जैसे आरोप हाल में लगने शुरू हुए हैं।

सैफ और रानी का दाम्पत्य जीवन खुषहाल था। दोनों ने साझा भगवान के रूप में प्रेम को स्वीकार किया। उनका मानना है कि आपसी मतभेदों को प्यार रूपी मरहम से ही ठीक किया जा सकता है। शादी के बाद दोनों ने पूर्व में अपने द्वारा बनाये गये नियमों को याद किया। इसे सैफ और रानी ने पंचसूत्र नाम दिया था –

''एक : कोई किसी से इस बात के लिए जबरदस्ती नहीं करेगा कि नाम या धर्म बदलना जरूरी है।

दो : एक–दूसरे के रिवाजों की खिल्ली नहीं उड़ाई जाएगी।

तीन : घर में मेरी पूजा के लिए और तुम्हारी नमाज के लिए इतंज़ाम होना चाहिए।

चार : चाहे त्योहार कोई भी हो दोनों मिलकर खुशी–खुशी से उसे मनाएँगे।

पाँच : मज़हब और ईश्वर के विषय में पूरी आज़ादी हो।''[1]

नागरानी के पिता भास्कर राव और माता सुन्दरम्मा का बेटी के ससुराल अक्सर आना–जाना लगा रहता था। एक दिन सैफ के घर उसके अंगोल के राबर्ट चाचा का आगमन होता है, जो कि सैफ के पिता मस्तान वली के घनिष्ठ मित्र हैं। राबर्ट चाचा को नयी नवेली बहु द्वारा घर में किये गये आव–भगत और सेवा सत्कार से काफी प्रसन्न होते है। परन्तु उनको

इस शादी को लेकर जो मुख्य समस्या है वह धर्म परिवर्तन है। वह नागरानी से धर्म परिवर्तन करने का आग्रह करते है। उनका मानना है कि शादी के बाद तमाम तरीके की समस्याएँ उत्पन्न होती हैं। वे कहते हैं–''तुम जिन समस्याओं की बात कर रही हो, वे व्यक्तिगत हैं। सामाजिक समस्याओं का समाधान करने का एक ही रास्ता है। तुम धर्म बदल लो, इस्लाम को अपना लो।''[2] परन्तु राबर्ट चाचा के इस बात का पुरजोर विरोध करते हुए सैफ कहता है– ''ये धर्म परिवर्तन विश्वासों के आधार पर नहीं होते। ये तो सिर्फ आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए या आसमानताओं को मिटाने के लिए किए जाते हैं।''[3] धर्म और जाति विशेष के आधार पर मनुष्य की मनुष्यता को नहीं आंका जा सकता है। इन्सानों में त्याग, धैर्य, समर्पण और प्यार इत्यादि का भाव ही मनुष्यता को परिभाषित कर सकता है।

साहित्य सदैव समाज की परिस्थितियों, घटनाओं तथा जन–साधारण की भावनाओं की अभिव्यक्ति का प्रतिबिंब रहा है। समाज में विवाह एक पवित्र बंधन है, जो त्याग, समर्पण और समझदारी पर टिका होता है। किसी भी सुखी जीवन के लिए पति–पत्नी दोनों ही जीवन का आधार होते हैं। इस उपन्यास के मुख्य पात्र सैफ और रानी भी अन्त तक अपने जीवनसाथी के प्रति समर्पित रहते है। सैफ के पिता के अचानक बकरीद के दिन घर में आने पर उनका मटन बिरयानी खाने की ज़िद हो या मक्का और रामेश्वर यात्रा का संकल्प, दोनों मिलकर अपने बड़े बुजुर्गो की इच्छा का मान रखते हैं। उपन्यासकार ने दाम्पत्य जीवन के साकारात्मक स्वरूप को रेखांकित किया है। पति और पत्नी दोनों ही अपने अधिकार और कर्तव्यों के प्रति सचेत हैं। दाम्पत्य जीवन में दोनों का ही समान महत्व है। पति–पत्नी के सम्बन्धों के लेकर बिन्दु अग्रवाल का विचार है–''अपनी योग्यता, कुशलता और सेवा से दाम्पत्य जीवन को निरन्तर सुचारू रूप से चलाना पति–पत्नी का धर्म है। यह धर्म परिवार की नैतिकता और षान्ति का मेरूदण्ड है।''[4]

सुखी दाम्पत्य जीवन के लिए पति–पत्नी दोनों ही महत्वपूर्ण कड़ी होते हैं। इस रिश्ते के उज्ज्वल भविष्य के लिए पति–पत्नी दोनों का आपसी सामंजस्य बनाये रखना महत्वपूर्ण है। गृहस्थ जीवन में जितने भी सुख होते हैं, वह दाम्पत्य जीवन की सफलता पर आधारित होते हैं। यदि व्यक्ति के दाम्पत्य जीवन में संघर्ष है तो उसे आत्मिक संतुष्टि नहीं प्राप्त हो सकती। सुखी दाम्पत्य जीवन का आधार पति–पत्नी का सात्विक प्रेम होता है। सैफ और रानी के प्रेम एक–दूसरे के धर्म और मज़हब पर नहीं अपितु विश्वासों की डोर पर बँधा है। दाम्पत्य जीवन में दोनों के मन में एक दूसरे के प्रति प्रेम, त्याग और समर्पण का भाव विद्यमान हैं।

हमारे मजबूत सम्बन्ध का आधार प्रेम होता है और जब यही प्रेम स्वार्थी हो जाता है, तो हमारे सम्बन्ध बिखरने लगते हैं। सौंदर्य और वासना का प्रेम मनुष्य के दाम्पत्य जीवन को खोखला कर देता है। जो इस जाल में

फँस जाते हैं, उनका दाम्पत्य जीवन बड़ी ही निराशा से भरा हुआ होता है। यदि दाम्पत्य जीवन में सच्चा प्रेम और समर्पण है तो बड़े से बड़े आघात भी व्यक्ति को चोट नहीं पहुंचा सकता। सैफ और रानी का भी प्रेम वासना का नहीं अपितु सच्चा प्रेम है। उनके आपसी मजबूत सम्बन्धों से ही उनके परिवारों में प्राणों का संचार होता है। इस सम्बन्ध को बनाने में विवाह महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, क्योंकि इसी के लिए यह पवित्र रिश्ता जन्म लेता है। दांपत्य जीवन को सुखी बनाने के लिए उसमें विश्वास भी अहम कड़ी का कार्य करता है। जब किसी के दाम्पत्य जीवन में विश्वास समाप्त हो जाता है, तो इस रिश्ते की जड़े तक हिल जाती है। यदि पति–पत्नी में आपसी समझ भाव है तो यह समस्या आसानी से सुलझ जाती है।

'सुनहरी धूप' में धर्मेत्तर विवाह के सामाजिक प्रतिरोध के स्वर को उभारा गया है। सैफ और रानी के विवाह से सैफ के रिष्तेदार और रानी के रिष्तेदार दूरी बना लेते हैं। उनके अन्दर धार्मिक कट्टरता व्याप्त होने के कारण सैफ और रानी द्वारा धार्मिक कर्मकांड और धार्मिक क्रियाकलापों को न करने पर उनका सामाजिक बहिष्कार करते हैं। लेकिन सैफ और रानी विभिन्न धर्मी होते हुए एक–दूसरे को अपनाते हैं। उनका आपसी प्यार धर्म के दायरे के बाहर प्रेम की मिषाल है। 'सूनहरी धूप' के सैफ और रानी एक–दूसरे के सामाजिक मान्यताओं को मानते हुए एक–दूसरे की आँखों में अपने अस्तित्व को ग्रहण करते हैं। और कभी न टूटने वाले प्यार के बंधन में बँधे रहते हैं।

समीरा, सैफ और रानी की बेटी है। समीरा में अपने माता–पिता के संस्कार कूट–कूटकर भरे हैं। वह अपने माता–पिता के पदचिन्हों पर चलती है। समीरा के पैदा होने के पूर्व रानी को इस बात का दुःख होता है कि स्कूल में दाखिला करते वक्त मजहब का नाम लिखना होगा। क्योंकि सैफ और रानी अपने–अपने धर्मों को मानते है। उनके कमरे में एक तरफ पूजा स्थल है तो दूसरी ओर नमाज़ की जगह है। रानी सोचने लगती है– ''इन्सानों में जात–पात, मज़हबी रीति–रिवाज की भावना काफी गहराई तक जड़ जमा चुकी है। उनके बारे में सोचने से डर लगता है। शायद मैं ही राई का पहाड़ बना रही हूँ। आजकल कितने सारे लोग ऐसे हैं जो दूसरे मज़हबों में शादी कर रहे हैं! उन्होंने न जाने इस समस्या का हल कैसे किया होगा!''[5] भारतीय कानून के मुताबिक पिता का मज़हब ही बच्चों का मज़हब बन जाता है। सैफ इस व्यवस्था से असहमति प्रकट करता है। उसका मानना है कि औरतें सदियों से पुरूषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चली हैं। पारिवारिक संकल्पना महिलाओं के बिना पूर्ण नहीं माना जा सकता है। पुरूषों के दुःख–सुख, कठिनाईयों और चुनौतियों में वह समान रूप से भागीदार होती हैं। लेकिन हमारा समाज आज भी पुरूषवादी सत्ता का गुलाम है। वह इस व्यवस्था को बदलना चाहता है। इस बदलाव की इजाजत भारतीय संविधान देता है। संविधान के अनुच्छेद 14 और 15 में

समता का अधिकार वर्णित हैं। इसके अनुसार स्त्री और पुरूष में लैंगिक रूप से भेदभाव नहीं किया जा सकता है।

'सुनहरी धूप' में स्त्री–पुरूष की समानतावादी दृष्टि पग–पग पर उजागर हुई है। उपन्यास की नायिका रानी आधुनिक नारी, सजग, शिक्षित व कामकाजी नारी है। उसके अन्दर भारतीयता का गुण विद्यमान है। वह गंगा–जमुनी तहजीब का प्रतीक है। धर्म को लेकर उसका स्पष्ट मत है कि ''ईष्वर एक ही है। उसका न आदि है न अंत। उसका न रूप है न नाम। चाहे जितने भी नामों से बुला लें, पर है तो वह एक ही। सर्वसाक्षी, सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापी है। अगर ईश्वर नामक कोई शक्ति है, तो मैं नहीं समझती वह हिन्दूओं और मुसलमानों के लिए अलग होगी।''[6] नागरानी धर्म और संस्कृति के प्रति पूर्णतः समर्पित होकर भी धर्मनिरपेक्षता का प्रतीक है। वह अपने पति का विरोध मात्र विरोध के लिए नहीं अपितु वह उसे पूरा सहयोग करती है। वह अपने सम्बन्धों व रिष्तों को जीती है, तोड़ती नहीं है। रानी नारी की उस मानसिकता का ईमानदारी से विश्लेषण करती है, जिसके तहत उसकी अस्मिता बोध मुखर हो उठती है। वह अपनी पूरी सामर्थ्य, लगन और मेहनत से जुटकर अपनी सूझ–बूझ और योग्यता का परिचय देती है। वह पुरूष से जीवन के अनेक क्षेत्रों में समानता की अपेक्षा करती है। वह अपने उत्तरदायित्वों का निर्वहन करती है। वहीं पारिवारिक जनों के प्रति भी अपनी जिम्मेदारियों को नहीं भूलती।

निष्कर्षतः कह सकते है कि मध्य युग में हिन्दू और मुसलमान के पहनावे को अपनाना, रिवाजों को अपनाना, आपसी शादियाँ आम बात थी। किन्तु आज धर्म के आधार पर पहनावे, रीति–रिवाज़ आदि को बदला जा रहा है। ऐसी आपसी शादियाँ तो दंगे छिड़ जाने का प्रमुखता से कारण बनती जा रही हैं। ऐसे माहौल में हिन्दू–मुस्लिम के बीच की एकता को 'सुनहरी धूप' में वास्तविक धरातल पर उतारने का प्रयत्न है। 'सुनहरी धूप' में धर्मेत्तर दाम्पत्य जीवन गुजारने वाले जोड़े हैं, जो धार्मिक सहिष्णुता की भावना को आगे रखते हैं। यह उपन्यास सैफ और रानी विवाह के प्रेम और आत्मीय सम्बन्धों की सुदृढ़ता को प्रदर्षित करता है। इन जोड़ों के दाम्पत्य जीवन में धर्म का कोई मुद्दा बीच में नहीं आता हैं। उपन्यासकार ने मित्र विवाह को धार्मिक कट्टरता के विरोध में उभारा है। धर्म के भेदभाव को भूलकर जब रानी और सैफ एक–दूसरे को अपनाते हैं तो वे सिर्फ एक व्यक्ति को नहीं अपितु धार्मिक सहिष्णुता की सोच भी आगे रखते हैं। 'सुनहरी धूप' में धर्म के पार मनुष्य मन में घुमने तथा धार्मिक चिह्नों से परे होकर मन के एकात्म होने के महत्व को रेखांकित किया गया है। सांप्रदायिक सोच और कट्टरपंथिता के खिलाफ कबीर के पंथ को स्वीकार कर उपन्यासकार ने ढाई आखर प्रेम की ताकत को उजागर किया हैं। इतना ही नहीं विभिन्न धर्म के दम्पत्ति से जन्म लेने वाली नयी पीढ़ी धर्मेत्तर

समाज की स्थापना के संभावना की ओर उपन्यासकार द्वारा ध्यानाकर्षित किया गया है।

सन्दर्भ :

1. सूनहरी धूप ; सय्यद सलीम, हि. अनु. आर. शान्ता सुन्दरी, मेधा बुक्स, नवीन शहादरा, दिल्ली, प्रथम सं. 2014, पृ. 21.
2. वहीं, पृ. 35.
3. वहीं, पृ. 36.
4. हिन्दी उपन्यास में नारी चित्रण, बिन्दु अग्रवाल, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 309.
5. सूनहरी धूप ; सय्यद सलीम, हि. अनु. आर. शान्ता सुन्दरी, मेधा बुक्स, नवीन शहादरा, दिल्ली, प्रथम सं. 2014, पृ. 95.
6. वहीं, पृ. 31.

***

बिहार की प्राचीन भौगोलिक स्थिति एवं संस्कृतियाँ

नीरज कुमार *

बिहार की प्रागैतिहासिक संस्कृतियों देश हीं नहीं विदेशों में भी अपनी पहचान बनाकर प्रतिष्ठा पा रही है। इसी दिशा में यह आलेख-भौगोलिक एवं संस्कृतियों का अध्ययन करने का प्रयास है। प्रागैतिहासिक पक्ष उस क्षेत्र के प्रारंभिक इतिहास को जानने का एक सशक्त माध्यम माना जाता है। वास्तव में ये इतिहास की एक ऐसी अनुपूरक कड़ी है, जिसके द्वारा किसी भी क्षेत्र के विखंडित इतिहास को जोड़ने और उस क्षेत्र के इतिहासक्रम में हुए सांस्कृतिक बदलाव की प्रारंभिक सोपान मानी जाती है। वास्तव में किसी भी क्षेत्र की प्रारंभिक संस्कृति मनुष्य के तात्विक पक्षों, बौद्धिक, धार्मिक एवं नैतिक पक्षों की अभिव्यक्ति है। संस्कृति वस्तुतः आंतरिक भाव के आत्मविकास का एक प्रगाढ़ माध्यम है। किसी भी प्रदेश के लोगों की संस्कृति का अध्ययन काल और देश द्वारा ही केवल सीमित नहीं होता बल्कि वह उस क्षेत्र में जीवन की परिपक्व और उन्नत अवस्था में भी समाहित होती है। इसमें आदिम काल से प्रारंभ करके उसके बाद की मानवीय गतिविधियों एवं विकास पर विचार किया जाता है। बिहार की प्रागैतिहासिक संस्कृतियों के संबंध में हमारे पास जो उपलब्ध साक्ष्य हैं, उन अवशेषों के आधार पर जो प्रागैतिहासिक संस्कृतियों का अनुक्रम प्राप्त होता है, उसमें- पुरापाषाण काल, मध्यपाषान काल एवं नवपाषान काल की निरंतरता देखने को मिलती है। किसी भी क्षेत्र की संस्कृतियों के निरूपण में उस क्षेत्र की भौगालिक अवस्थिति एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। जहाँ तक प्राचीन बिहार के भौगोलिक इतिहास का प्रश्न है। यह गंगतटीय मैदान के समृद्ध क्षेत्र में अवस्थित है। जिसे वैदिक काल में प्राच्य या पूर्व देश कहा जाता था। 12वीं शताब्दी के अन्त में बौद्ध विहारों की बहुलता के कारण बिहार नाम से प्रचलित हुआ। बिहार का जलोढ़ मैदान संरचनात्मक दृष्टि से सबसे नवीन संरचना वाला क्षेत्र है। इसके विपरित उच्च बिहार के क्षेत्र का लगभग 90 प्रतिश प्रदेश मूलतः अत्यंत प्राचीन आर्कियन शैल समूहों से निर्मित है। भू-विज्ञान की दृष्टिकोण से बिहार में कई व्यापक संगठनात्मक इकाइयाँ शामिल है। इनमें उत्तरी बिहार का मैदान चतुर्थ कल्प से है। उत्तरी चम्पारण, तृतीय कल्प से। रोहतास और औरंगाबाद विन्धकाल से संबंधित है। बिहार के उत्तर पश्चिम में स्थित शिवालिक का पर्वतीय भाग एवं तराई क्षेत्र है। जिसके तीन उपभाग हैं यथा-

---

* शोधार्थी, भा. इ. एवं पु. विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना

रामनगर दून, सुमेश्वर श्रेणी एवं दून घाटी। बिहार में गंगा का मैदानी क्षेत्र जो भारत के विशाल मैदान का एक उपखण्ड है जिसे 'हिन्दुस्तान का मैदान' भी कहा जाता है। इसका विस्तार नेपाल के अर्न्तराष्ट्रीय सीमा से लेकर छोटानागपुर (वर्तमान झारखण्ड) के पठार तक है। बिहार के गंगा नदी के दक्षिणी तट से छोटानागपुर पठार तक स्थित दक्षिणी बिहार का मैदान इनमें गया, राजगीर, खड़गपुर, गिरियक तथा बराबर की पहाड़ियाँ प्रमुख है। बिहार के नदी अपवाह तंत्र में अनेक छोटी-छोटी नदियाँ है, जो धरातलीय बनावट के अनुसार प्रवाहित होती है। इन्होंने बिहार के धरातलीय स्वरूप को विकसित करने में निर्णायक योगदान किया है। प्राचीन बिहार की नदियों को तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। (1) उत्तरी बिहार की नदियाँ यह हिमालय से निकलकर दक्षिण और पूर्व की ओर बहती हुई गंगा में आकर मिलती है। इनमें प्रमुख है- सरयू (घाघरा) गंडक, बूढ़ीगंडक, बागमती, कमला-बलान, कोसी तथा महानंदा (2) दक्षिणी बिहार की नदियाँ-पठारी भाग से निकलकर उत्तर की ओर बहने वाली यह नदियाँ गंगा या उसकी सहायक नदियों में आकर मिलती है। इनमें प्रमुख है-सोन, उत्तरी कोयल, पुनपुन, फल्गु, पंचाने तथा कर्मनाशा इसके अतिरिक्त भी छोटी-छोटी नदियाँ हैं।

प्राचीन बिहार में पश्चिमी चम्पारण में स्थित शिवालिक पर्वत श्रेणी और नवादा, रोहतास तथा कैमूर में स्थित दक्षिणी पठार में जलप्रपात मिलते हैं, इनमें प्रमुख है-ककोलत जलप्रपात, सुखलदरी जलप्रपात, परासडीह जलप्रपात, तमासीन जलप्रपात, दुर्गावती जलप्रपात, इसके अलावे गुरसिन्धु जलप्रपात मालुदह जलप्रपात, केरीदह जलप्रपात, गोंआ जलप्रपात आदि। गर्म जलकुंडों में राजगीर की पहाड़ी एवं खड़गपुर की पहाड़ियों में कई गर्म जलकुंड हैं। बिहार में कई प्रकार की मिट्टियाँ भी पायी जातो हैं। निर्माण प्रक्रिया की दृष्टी से बिहार की मिट्टियों को दो प्रधान कोटियों में रखा जा सकता है। इसमें (1)अवशिष्ट मिट्टी (2)प्रवाही या अपोढ़ मिट्टी। मूल चट्टान, भू-आकृति, आद्रता और भौतिक तथा रासायनिक विशेषताओं के आधार पर बिहार की मिट्टियों को तीन प्रमुख वर्गों में बाँटा जा सकता है। (1) उत्तरी बिहार के मैदान की मिट्टी इसके निम्न उपवर्ग देखने को मिलते हैं इसमें उप हिमालय की पर्वतपदीय मिट्टी, तराई मिट्टी, पुरानी जलोढ़ या बांगर मिट्टी, नवीन जलोढ़ या खादर मिट्टी। (2) दक्षिण बिहार के मैदान की मिट्टी-इसके उपवर्ग हैं- कगारी मिट्टी, टाल मिट्टी, पुरानी जलोढ़ या करैल-कैवाल मिट्टी, बलथर मिट्टी (3) दक्षिणी पठार की मिट्टी-इसमें कैमूर पहाड़ी की लाल बालुकायुक्त मिट्टी तथा लाल

और पीली मिट्टी है। प्राचीन बिहार के कुछ महत्वपूर्ण नगर भी इसके भौगौलिक एवं सांस्कृतिक समृद्धियों की जानकारी देते हैं।

पुरापाषाण कालिन संस्कृति - किसी भी क्षेत्र की तरह बिहार में भी पुरापाषाण युगीन सभ्यता का विकास हिम युग या प्लाइस्टोसीन काल में हुआ। इस काल में बिहार में मनुष्यों को क्रिया-कलापों का क्षेत्र जिस क्षेत्रों में मुख्यत: दृष्टिगोचर होता है। उसमें नालन्दा, राजगीर, गया, मुंगेर और भागलपुर जिला मुख्य है। इसमें सबसे विस्तृत तौर पर जहाँ से सबसे महत्वपूर्ण जानकारी मिलती है वह है कि जेठियान घाटी (नालन्दा), पैमार घाटी (गया), पैसरा (मुंगेर), भालितोर (भागलपुर)। पैसरा मुंगेर से अचुलियन उपकरण बनाने का एक कार्यशाला प्रकाश में आया है। उत्खनन में जो साक्ष्य प्राप्त हुए हैं, उसके आधार पर ऐसा दिखता है कि इन अचुलियन उपकरणों के निर्माण के लिए क्वार्ट और क्वार्टजाइट पत्थरों को विशेषत: व्यवहार इस क्षेत्र में होता था। पैसरा से जो अचुलियन उपकरण प्राप्त हुए हैं उसमें हस्त कुठारों की अधिकता है। इसके अतिरिक्त धारयुक्त एवं धारविहिन विदारक एवं भली भांति तैयार किये गये पत्थर के अन्य उपकरण भी प्राप्त हुए हैं। इसके अलावे उत्तर बिहार में भैसालोटन (बाल्मीकि नगर) से एक पाषाण उपकरण प्रकाश में आया है, जिसे स्थानीय उद्‌भव मानने में विद्वानों के बीच मतभेद है। कुछ विद्वानों का मत है कि यह सीमावर्ती नेपाल से आया है तथा कुछ विद्वान इसे भैसालोटन की ही स्थानीय उद्‌भव मानते हैं। इसके अलावे भी उपरोक्त अन्य क्षेत्रों से पुरापाषाण काल से संबंधित अवशेषों की पाप्ति हुई है। यह सर्वविदित है कि इस काल के मनुष्यों का जीवन निर्वहण का मुख्य साधन पाषाण ही था। इस काल में धातु, कृषि या व्यवस्थित जीवन के कोई संकेत दृष्टिगोचर नहीं होते हैं। भारत के किसी भी पुरापाषाणिक क्षेत्रों की तरह बिहार में भी इस काल में जीवन यायावरी देखने को मिलती है। जिसमें कन्द-मूल, फलों का संग्रह और शिकार, आखेट ही जीवन की सदोगति तय करती थी।

मध्यपाषाण काल- पुरापाषाण काल के पश्चात मध्यपाषाण काल का आगमन हुआ। अत: मनुष्य के लिए नवीन परिस्थितियों के साथ सर्वथा नवीन अनुकूलन आवश्यक हो गया। जलवायु परिवर्तन की शृंखला के साथ जो सबसे मौलिक परिवर्तन आया वह था उपकरण औजारों में तकनीकी विकास। इसका परिणाम हुआ कि कई नवीन प्रकार के उपकरण औजारों का निर्माण होने लगा। जहाँ पुरापाषाण काल में क्वार्टजाइट, कैल्सिडोनी और बलुआ पत्थर का प्रयोग होता था वहीं मध्यपाषाण काल में इसके अलावे फ्लिंट, चर्ट, जेसपर और अगेट पत्थर का प्रयोग भी होने लगा। इन पत्थरों के प्रयोग ने तकनीकी विकास में

नवीन आयाम को जन्म दिया और जिसके कारण मध्यपाषाण युग में सुक्ष्म पाषाणिक उपकरण बनने लगे, इसमें फलक, बेधनी, अर्धचन्द्राकार तथा समलंब प्रमुख है।

नवपाषाण कालीन संस्कृति- मध्यपाषाण काल के पश्चात नव पाषाणकाल का आगमन हुआ। वास्तव में इसे नव पाषाणकालीन क्रांति की संज्ञा दी जाती है। इसके पीछे तर्क है कि इस काल में मानव के जीवन में पूर्ण स्थायित्व है। कृषि, पशुपालन अर्थव्यवस्था के समुन्नत आधार हैं, मृदभांड निर्माण एवं तकनीकीकरण अपने उन्नत दौर में है और जीवन में पूर्ण स्थायित्व है। बिहार में नव पाषाणकालीन संस्कृतियों के जहाँ से संकेत प्राप्त होते हैं उसमें भीमबांध, राजगीर, केयर (गया), चिरांद, चेचर कुतुबपुर (वैशाली) मनेर, ताराडीह, सेनुआर, पैसरा, चम्पा, हाजीपुर आदि स्थानों से प्राप्त हुए हैं। इस काल में मानव ने अपने भरण पोषण के लिए प्रकृति पदत्त फल-फूलों तथा अन्य खाद्य सामग्रियों के स्थान पर खाद्यान्न उत्पादन एवं पशुपालन प्रारंभ कर दिया। जंगली पशुओं में कुत्ते, भेड़ एवं बकरी को पालतू बनाया गया एवं चावल, जौ, गेहूँ की खेती की गई।

पुरास्थलों के उत्खनन से निश्चित आवास के भी प्रमाण प्राप्त हुए हैं। इसके अलावा मृदभांड निर्माण की भी एक समुन्नत व्यवस्था दिखाई पड़ती है। जिसमें हस्त निर्मित और चाक निर्मित दोनों प्रकार के मृदभांड उत्खनन में प्राप्त हुए हैं। मृदभांड सादा, रंगीन चित्र सभी प्रकार के हैं। कई प्रकार के मृदभांड परम्पराओं की भी जानकारी प्राप्त होती है। जिसमें लाल मृद्भांड, मार्जित लाल मृद्भांड, रूक्ष सतही मृद्भांड, कृष्णलोहित मृदभांड, कृष्ण लेपित मृद्भांड एवं सबसे विशिष्ट रज्जुछाप मृद्भांड है। पाषाण उपकरण में फ्लैक, ब्लेड, छेनी, वाणाग्र, प्वांट, छिद्रक इत्यादि के प्रयोग की जानकारी मिलती है। जिस पाषाण का इस्तेमाल किया गया उसमें चर्ट, कैल्सिडोनी, अगेट, जेस्पर, क्वार्टज आदि प्रमुख है। उत्खनन में चिरांद एवं सेनुआर से वैशाल्ट एवं ग्रेनाइट के गोल कुल्हाड़ी प्राप्त हुए हैं। इसके अलावे अस्थी के उपकरणों की भी प्राप्ति हुई है। यदि कश्मीर घाटी को छोड़ दें तो बिहार में स्थित चिरांद एक ऐसा पुरास्थल है। जहाँ से भारत में सर्वाधिक मात्रा में एवं सर्वाधिक प्रकार के अस्थि उपकरण प्राप्त हुए हैं। इसके अलावे पकी मिट्टी की वस्तुएँ यथा पहिया, मनके, चुड़ियाँ, सांप, चिड़ियां, इत्यादि की भी प्राप्ति हुई है। बिहार में स्थित सेनुआर एक ऐसा पुरास्थल है, जहाँ से नव-ताम्र पाषाणकालीन चरण के साक्ष्य प्राप्त हुए हैं। यहाँ से प्राप्त यह चरण इस बात का पुष्ट प्रमाण प्रस्तुत करता है कि नवीन पाषाणकाल के पश्चात ताम्र पाषाणकाल का आगमन हुआ। वास्तव में साक्ष्य इस

बात की ओर संकेत करते हैं कि यह दोनों संस्कृतियों के मध्य एक संक्रमण का काल प्रस्तुत करता है। बिहार की प्रागैतिहासिक संस्कृतियों की अखिल भारतीय स्तर की अन्य प्रागैतिहासिक संस्कृतियों से सीमित क्षेत्रीय विषमताओं के साथ समानता भी दृष्टिगोचर होती है। जिसमें पाषाण के प्रकार, उपकरण एवं अन्य तकनीकी साम्यता के संकेत नजर आते हैं।

अत: कहा जा सकता है कि बिहार की प्राचीन कालीन भौगोलिक एवं संस्कृतियाँ भारत के किसी भी क्षेत्र की प्रागैतिहासिक संस्कृतियों से सीमित क्षेत्रीय विषमताओं के साथ समानता रखती है। यहाँ के पुरास्थलों के उत्खनन से भी पुरापाषाण काल से लेकर नव पाषाणकाल तक एक सांस्कृतिक अनुक्रम दृष्टिगोचर होते हैं। जिसमें पुरापाषाण काल में जहाँ यायावरी जीवन एवं जीवन निर्वहन पद्धति की जानकारी प्राप्त होती है वहीं मध्य पाषाण काल से जीवन में स्थायीत्व के प्रारंभिक संकेत दृष्टिगोचर होते हैं जो नव पाषाणकाल में जाकर अपने सर्वस्व स्वरूप को प्राप्त करता है। उपकरण औजार में पुरापाषाण काल में जहाँ हस्त कुठार, गोल औजार की प्राप्ति होती है वहीं मध्यपाषाण काल में सूक्ष्म औजार बहुतायत मिलते हैं। जबकि नव पाषाणकाल में उपकरण औजारों में कलात्मकता के संकेत प्राप्त होते हैं। नव पाषाणकाल में जीवन निर्वहण की वृहत्तम प्रवृत्ति देखने को मिलती है। जिसमें मृदभांड निर्माण, स्थायी आवास, कृषि पशुपालन अर्थव्यवस्था के महत्वूपर्ण आधार हैं।

सन्दर्भ :

1. अग्रवाल, डी॰ पी॰, गुजदर एस॰, द रिफ्युजन ऑफ मेटलर्जी इन प्रीहिस्टोरिक इंडिया, 1971
2. जे॰ एम॰ मैकसर्न, ऑरीफेरस अकरेन्सेज इन छोटानागपुर, बंगाल रिकॉड्स ऑन द जियोलोजिकल सर्वे ऑफ इंडिया, 1904
3. मुहली, जे॰ डी॰, द बीगनींग ऑफ द युज ऑफ मेटल्स एण्ड एल्वायज, 1988
4. बी॰ के॰ थापर, शनशीप ऑफ कैलकोलिथिक कल्चर, 1975
5. अग्रवाल, डी॰ पी॰, द आर्क्योलोजी ऑफ इंडिया, 1982
6. शशी, एस॰डी॰ एन॰, एसे इन इंडियन प्रोटोहिस्ट्री, 1979
7. सिंह, पी॰, राइज ऑफ कल्चर्स इन इस्टर्न इंडिया इन डॉन ऑफ इंडियन सिविलाइजेशन अप टू 600 ई॰ पूर्व, 1999
8. चट्टोपाध्याय, कुमार प्रणव,आर्क्योमेटेलर्जी इन इंडिया : स्टडीज ऑन टेक्नोकल्चर इन अर्ली कॉपर एण्ड आयरन एजेज इन बिहार, झारखण्ड एण्ड वेस्ट बंगाल, 1992
9. घोष, अमलानंद, इन्साइक्लोपीडिया इन इंडियन आर्कियोलॉजी
10. सिन्हा, वी॰ पी॰, आर्ट एण्ड ऑर्कियोलॉजी इन बिहार, पटना, 1988

***

प्रवासी हिन्दी साहित्य और अभिमन्यु अनत

अभिषेक कुमार तिवारी *

वर्तमान में समकालीन विमर्श के अन्तर्गत प्रवासी साहित्य एक नवीन विमर्श जुड़ गया है जो कि हिन्दी साहित्य में अपनी महत्वपूर्ण स्थिति बना चुका है। कुछ कारणों को ध्यान में रखते हुए व्यक्ति या समुदाय कानूनी या गैर कानूनी तरीकों से प्रवसन कर रहे हैं, जैसे – आतंकवाद, बेरोजगारी, आर्थिक विपन्नता आदि। स्वदेश को छोड़कर परदेश में बसने के कारण चाहे कुछ भी हो किन्तु नये देश मे प्रवास के दौरान व्यक्ति में अपने जड़ से अलग होने का दर्द, अनिश्चितता, अलगाव की भावना, विषाद, अव्यवस्था की पीड़ा और रंग, संस्कृति, रीति–रिवाज तथा भाषा के आधार पर भेदभाव से व्यक्ति या समुदाय अन्य देश में रहकर अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष करने लगता है।

(क) प्रस्तावना –

प्रवासी पुत्र अखबार वालों का
बिल नहीं चुकाता,
यात्रा के लिए ट्रेन या बस की
बुकिंग नहीं करवाता
रात–विरात पिता के खाँसने पर
उन्हें पानी नहीं पिलाता
या फिर दौड़कर
नुक्कड़ से दवा की दो गोलियाँ नही लाता.....
वह तो
नयी भाषाओं के अक्षरों में
अपनी मात्राएँ स्वयं खोजता है
एक बार फिर चलता है
घुटनों के बल
नये संघर्षों से जूझता, नया कल ढूंढ़ता[1].....

उपर्युक्त रचना यद्मेश गुप्त द्वारा रचित है, जो प्रवासी भारतीय के संघर्ष, द्वन्द, दुविधा एवं अनिश्चितता की मार्मिक अभिव्यक्ति करती है। जिसमें एक प्रवासी पुत्र की विवशता दृष्टव्य है। जो अपने कर्तव्यों का निर्वहन नहीं कर पाया तथा कुछ कर पाने की आशा में संघर्षों से निरन्तर जूझता रहता है।

---

* शोधार्थी, डॉ. भीमराव आम्बेदकर विश्वविद्यालय, आगरा, उ.प्र.

प्रवासी हिन्दी साहित्य – ''प्रवासी साहित्य का उद्‌भव भारतीय प्रवासी नाम से आया है जो हिन्दी डायस्पोरा का हिन्दी रूपान्तर है। डायस्पोरा शब्द का अर्थ है वह बिखरी हुई आबादी जो विशेषकर अलग–अलग भौगोलिक क्षेत्रों में जा बसती है। आबादी का बड़ी संया में अनैच्छिक बिखराव डायस्पोरा है।''[2]

भारतीय लोग किसी न किसी प्रयोजन से विश्व के विभिन्न देशों में निवास करने लगे। इनमें से जो व्यक्ति लेखन कार्य करने लगे, उन्हें प्रवासी लेखक कहा जाने लगा। हिन्दी में लिखने वाले लेखकों व साहित्यकारों को प्रवासी हिन्दी लेखक अथवा साहित्यकार कहा जाने लगा। इस प्रकार विदेशों में रचित लेखन को प्रवासी हिन्दी लेखन के रूप में अपनी पहचान बन गई है जो वास्तव में हिन्दी साहित्य का ही एक अंश है। एक प्रवासी लेखक का लेखन क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत होता है। विभिन्न परिवेशों, संस्कृतियों व प्रकृतियों के लोगों के साथ सामंजस्य स्थापित करते हुए उसकी अभिवृतित व्यापक हो जाती है। किसी भी प्रवासी हिन्दी रचनाकार की रचना को पढ़ते समय यह महसूस होता है कि पाठक के वास्तविक जीवन से सम्बन्धित है। भारत के विदेशों की तरफ लोगों/समुदायों का स्थानान्तरण बढ़ रहा है। उसे भी लेखक अपनी रचनाओं के माध्यम से सभी के समक्ष प्रस्तुत कर रहे हैं तथा साथ ही यूरोपियन–अमेरिकन जीवन शैली का परिचय पाठकों को मिलता है।

कुछ आलोचक प्रवासी को दूसरे दर्जे का साहित्य बताता है वह अपना संकीर्ण दृष्टिकोण व्यक्त करता है। इसी संदर्भ में प्रख्यात लेखक व विद्वान डॉ. कमल किशोर गोयनका जी का वक्तव्य है – ''विदेशों में लिखा जा रहा साहित्य एक नए अस्तित्व बोध व आत्मबोध का साहित्य है। हम दूसरेां की प्रशंसा करना ही भूल गये हैं। हिन्दी में अधिकांश लेखक आत्म मुग्ध हैं और गुट के साथ जीते हैं तथा उनका गुट उनके लिए पुरस्कार/यश/ प्रकाशन आदि की व्यवस्था करता है। अपने प्रतिकूलों को हाशिए पर डाल कर ये लोग सिर्फ अपने लोगों की प्रशंसा करते हैं। इन्हें संहिता नहीं पार्टी साहित्य चाहिए।''[3] आधुनिक काल में वास्तविकता यह है कि अनेक आलोचनाओं को दर किनार करते हुए प्रवासी हिन्दी साहित्य का क्षेत्र निरन्तर विस्तृत होता जा रहा है तथा यह महत्वपूर्ण स्थान स्थापित करने में पूर्णतः सफल भी रहा है।

(ग) अभिमन्यु अनत : जब हम प्रवासी हिन्दी के विस्तृत क्षेत्र एवं प्रचार–प्रसार के बारे में सोचते हैं, तो अनेक देशों के नाम व अनेक साहित्यकारां के नाम हमारे स्मृति पटल पर अंकित हो जाते हों, लेकिन मॉरीशस ने हिन्दी को जिस प्रकार अपनाया है या कहें जिस प्रकार हिन्दी को पहचान मिली है, वह अन्य और किसी देश में नहीं। हिन्दी को मॉरीशस में इस स्थान पर ले जाने का श्रेय रहा है, विश्व में प्रसिद्ध विद्वान अभिमन्यु अनत को। यह मॉरीशस में एक नये युग का शुभारम्भ करते थे और नये युग को विभिन्न दिशाओं में विकासमान बनाते हुए मॉरीशस से बाहर भी अपने देश के हिन्दी साहित्य को प्रतिष्ठित, प्रचारित और सम्मानित करते थे।

मॉरीशस के हिन्दी साहित्य के इतिहास में अभिमन्यु अनत को उचित स्थान देने की माँग सर्वप्रथम मॉरीशस के राजेन्द्र अरण (भारतीय नागरिक, परन्तु अब मॉरीशस के नागरिक) ने अपने लेख में की थी जो डॉ. श्यामधर तिवारी के शोध प्रबन्ध – ''अभिमन्यु अनत : व्यक्तित्व एवं कृतित्व'' की समीक्षा के रूप में लिखा गया था। यह लेख ''बसंत'' पत्रिका के वर्ष 7, अंक 43 में प्रकाशित हुआ था, अर्थात् यह सन 1985 का प्रसंग है। राजेन्द्र अरूण ने लिखा है कि ''अभिमन्यु अनत बहुमुखी प्रतिभा के धनी हे, आधुनिक भाव–बोध तथा उन्मुक्त मानसिकता के लेखक है तथा प्रवासी हिन्दी साहित्य को प्रतिष्ठित करने वाले हैं।''[4]

अभिमन्यु अनत मॉरीशस के एकमात्र ऐसे साहित्यकार हें, जिनकी अभी तक सबसे अधिक हिन्दी रचनाएं (32 उपन्यास, 5 कहानी–संग्रह, 5 नाटक, 4 कविता संग्रह 3 जीवनी, 1 अनुवाद, 4 संपादित ग्रंथ, 1 प्रतिनिधि संकलन तथा लगभग 10 कृतियाँ प्रकाशन की प्रतीक्षा) प्रकाशित हुई हैं।

अभिमन्यु अनत जी ने अपने उपन्यासों में जन पीड़ा एवं जन मुक्ति को अभिव्यक्त किया है। कमल किशोर गोयनका से बातचीत के अन्तर्गत उन्होंने स्वीकारा हैः –

''मेरी सबसे बड़ी प्रेरणा इतिहास की यातना, उससे उपलब्ध आम आदमी की वह दयनीय स्थिति और उसका उस स्थिति के सामने कभी न टूटने का संकल्प रहा है। इसी ने मुझसे मेरी रचनाएं लिखवाई हैं।''[5]

(अभिमन्यु अनत एक बातचीत, भूमिका)

अभिमन्यु अनत द्वारा रचित प्रमुख उपन्यासों की चर्चा करना मैं यहां उचित समझूंगा, जिनका उद्देश्य पाठक को यथार्थबोध से अवगत कराना रहा है – नदी बहती रही (1970), आन्दोलन (1971), एक बीघा प्यार (1972), जम गया सूरज (1973), तपती दोपहरी (1977), लाल पसीना (1977), कुहांसे का दायरा (1978), शेफाली (1979), हड़ताल कब होगी (1979), अपनी ही तलाश (1982), अपनी अपनी सीमा (1983) आदि।

अभिमन्यु अनत के उपन्यासों में लगभग एक हजार पात्र हैं और हर प्रवृत्ति के पात्र है। उनकी ग्रामीण जीवन के साथ–साथ शहरी जीवन पर भी गहरी दृष्टि रही है। अनत जी नेताओं, व्यापारियों तथा शिक्षितों के समाज तथा देश विरोधी क्रियाकलापों, दुष्प्रवृत्तियों को भी निरावृत्त करते हैं। इनकी देखनी जीवनमूल्यों, आदर्शवादी विषयों पर प्रभावी रूप से चली है और यही जीवन दृष्टि उन्हें प्रेमचन्द्र के समरूप बनाती है।

मॉरीशस में हिन्दी कविता का विकास सन 1968–2010 तक निरन्तर रहा है। अभिमन्यु अनत ने बीस वर्ष तक ''बसंत'' त्रैमासिक पत्रिका का संपादन किया और युवा कवियों की प्रतिभा को उजागर किया। इनके अब तक पाँच कविता–संग्रह छप चुके हैं– ''नागफनी में उलझी साँसें, ''कैक्ट्स के दाँत'', ''एक डायरी बयान'', ''गुलमोहर खौल उठा'' तथा अभिमन्यु अनत : समग्र कविताए।''[6] इन्होंने अपनी कविताओं से मॉरीशश

की हिन्दी कविता को पहचान दिलाने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। अनत जी ने कविता को विध्वंस, विद्रोह, मुक्ति एवं मानव–कल्याण से जोड़कर वैश्विक रूप प्रदान किया।

अभिमन्यु जी उपन्यासकार के साथ ही, कवि तथा कथाकार भी रहे हैं उन्होंने गद्य की सभी विधाओं पर अपनी लेखनी चलायी है। मॉरीशस तथा भारतीय पत्र–पत्रिकाओं तथा निजी संग्रहों में उनकी कई कहानियां प्रकाशित हुई हैं। उनके मुख्य कहानी संग्रह इस प्रकार हैं – खामोशी के चीत्कार (1973), इंसान और मशीन (1973) वह बीच का आदमी (1981) तथा एक थाली समन्दर (1987)। इन्होंने लघु कथाओं में भी स्वतंत्र रूप से अपने विचारों की अभिव्यक्ति की है। अनत जी ने अपनी रचनाओं में मॉरीशस के अतीत, वर्तमान और भविष्य तीनों का अंकन किया है।

अभिमन्यु जी की रचनाओं की भाषा मुख्य रूप से हिन्दी रही है। जिसे पाठक सहज सरल रूप से आत्मसात कर लेते हैं। उन्होंने स्वंयं स्वीकारा है और ''एक बातचीत'' की अपनी रचना में बताया है कि ''हिन्दी में इसलिए लिखता हूं क्योंकि यह भाषा मेरी धमनियों में दौड़ने वाली भाषा है। अंग्रेजी और फ्रेंच में न लिखकर हिन्दी में इसलिए लिखता हूं, क्योंकि इस भाषा को मैंने स्कूल, कॉलेज में नहीं सीखा। यह मेरे वंश से मिली है, जब मैं सोचता भोजपुरी और हिन्दी में हूँ तो किस ईमानदारी से फ्रेंच ओर अंग्रेजी में लिख पाऊँगा? हिन्दी में इसलिए लिखने को विवश हूं, क्योंकि भोजपुरी और हिन्दी मेरे देश की मिट्टी सौंधी गंध अपने में लिए हुए है। इन्हीं भाषाओं में इतिहास की आहें निकली हैं। मेरी हिन्दी भारत की हिन्दी नहीं है, यह मॉरीशश में जन्मी, फली–फूली हिन्दी हैं।''[7]

अभिमन्यु अनत जी के छः नाटक प्रकाशित हुए हैं। उन्होंने नाटक का निर्देशन तो किया ही है, टेलीविजन के लिए कई धारावाहिक भी बनाए अनेक अभिनेताओं को तैयार भी किये। यह अपनी साहित्य साधना के अतिरिक्त रेडियो नाटक लिखने में भी निपुण रहे और इनके द्वारा रचित नाटक रेडियो तथा दूरदर्शन पर भी प्रस्तुत किये गये।

अभिमन्यु अनत बहुमुखी प्रतिभा के धनी व्यक्ति रहे हैं। उनकी विशिष्टता के विषय में यह कहा भी गया है– ''अभिमन्यु अनत मॉरीशस के एकमात्र ऐसे लेखक हैं जिन्होंने सर्वाधिक विधाओं में सर्वाधिक पुस्तकें लिखी हैं। उनका अपना वैशिष्ट्य है, जो उन्हें सम्पूर्ण मॉरीशस के हिन्दी साहित्य में ही नहीं देश की विभिन्न भाषाओं के सम्पूर्ण साहित्य में विशिष्ट बनाता है। यह विशिष्टता केवल उनके पास है। इसके पीछे उनकी साहित्य साधना है।''[8]

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि अभिमन्यु जी ने समर्पित भाव से हिन्दी की सेवा की है। हिन्दी को उच्च शिखर पर स्थापित करने में उन्होंने अपना बहूमूल्य योगदान दिया है। जब भी मॉरीशस के अप्रवासी भारतीयों के लोक जीवन के इतिहास को जानने का प्रयत्न होगा तो इनका साहित्य सर्वाधिक प्रमाणिक एवं विश्वसनीय सिद्ध होगा। अनत जी में महावीर प्रसाद

द्विवेदी जैसा संपादकीय दायित्व, निराला का विद्रोह और तेज, तुलसीदास की लोकमंगल दृष्टि, प्रेमचंद की सामाजिक, राष्ट्रीय, आर्थिक और सांस्कृतिक दृष्टि एवं दासत्व से मुक्ति, मानव अधिकारों की रक्षा, सामाजिक बुराइयों के प्रति घोर चिन्ता, जीवन मूल्यों का बोध विद्यमान है। ऐसा दूसरा उदाहरण अन्यत्र देश में मिलना दुर्लभ ही होगा।

अन्ततः अभिमन्यु अनत का लेखकीय एवं सर्जक कलाकार का व्यक्तित्व इक्कीसवीं शताबदी तथा नई पीढ़ियों के मध्य सदैव स्मरण किया जायेगा।

सन्दर्भ :

1. प्रवासी पुत्र डॉ. पदमेश गुप्ता, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम सं. 2017, पृ. 27
2. प्रवासी जगत, प्रवासी जगत का साहित्य, साहित्यकार व संस्कृति केन्द्रित त्रैमासिक पत्रिका खण्ड–1, अंक–4, आषाढ–भाद्रपद 2075/जु.–सि., 2018 पृ. 89.
3. वही पृ. 129.
4. वही पृ. 13.
5. प्रवासी हिन्दी साहित्य दशा एवं दिशा, संपादक–प्रो. प्रदीप श्रीधर, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली–110002, 2018, पृ. 173.
6. प्रवासी साहित्य जोहान्सबर्ग से आगे, डॉ. कमल किशोर गोयनका नई दिल्ली, संस्करण–प्रथम 2015, पृ. 28.
7. अभिमन्यु अनत : एक बातचीत, डॉ. कमल किशोर गोयनका, ज्ञान भारती प्रकाशन, दिल्ली, 1985, पृ. 16.
8. अभिमन्यु अनत की प्रतिनिधि रचनाएं, डॉ. कमल किशोर गोयनका, नटराज प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 1999, पृ. 17.

***

डॉ. धर्मवीर का प्रेमचन्द विषयक विचार

*बबिता कुमारी**

प्रेमचंद जमीन से जुड़े हुए कथाकार थे। उनकी रचनाओं में जो जन पीड़ा है वह किसी पुस्तक या अखबारों से अर्जित नहीं है, बल्कि जिस समाज के भीतर रह कर उन्होंने जीवन को अनुभव किया उनके सुख दुख में शामिल रहे उसी की अभिव्यक्ति प्रेमचंद का कथा साहित्य है। प्रेमचन्द की अन्तर्दृष्टि के संबंध में डॉ. कविता सिंह लिखती हैं– ''प्रेमचन्द धरती से जुड़े हुए रचनाकार थे। अतः उनके उपन्यासों में गहराई की जगह विस्तार अधिक पाया जाता है, जो मन की अपेक्षा जन को प्रमुखता देता है। प्रेमचंद ऐसे लेखक नहीं थे जिनका लेखन भरे पेट की तृप्ति के साथ शुरू होता है। उनकी अपनी जिन्दगी हिन्दुस्तान की मध्यवर्गीय त्रासदी का एक जीता–जागता नमूना है। उन्होंने अपने व्यक्तित्व की ऊर्जा इस त्रासदी से ही पायी, इसलिए प्रेमचंद की जिंदगी और उनकी रचनाएँ दो अलग किस्म की बातें नहीं है, यह तस्वीर एक ऐसे तल्ख लेखक की है जिसके चेहरे पर एक जबरदस्त तनाव है, जिसकी ऑखों में जलन है और जिसके दिल में लगातार सुलगने वाली आग है।''[1]

डॉ. धर्मवीर जो दलित चेतना के सशक्त रचनाकार हैं तथा जिन्होंने दलितेतर लेखकों के संबंध में अपने विचार व्यक्त किये हैं तथा जो मेरे शोध का विषय भी है, के विचार प्रेमचंद के संबंध में डॉ. कविता सिंह से विपरीत है। डॉ. धर्मवीर का मानना है कि प्रेमचंद के साहित्य मे जो थोड़ी बहुत दलित तथा दलित वर्ग की समस्या आई है वह परिस्थितियों की मजबुरी की ऊपज है। अपनी रचना प्रेमचंद : सामन्त का मुंशी में वे लिखते हैं–

''किसी भी शासक कौम की साहित्य में नुमाइन्दगी जरुर होती है– और हिन्दू कौम प्रेमचंद के समय में गॉधी के नेतृत्व में शासक कौम बनने की ऐसी जद्दोजहद कर भी रही थी। फिर, देश के इतने बड़े भूगोल के विस्तार में एक ही उद्देश्य के लिए रणनीतियों की विभिन्नताओं का होना लाजिमी था। इसी सन्दर्भ से प्रेमचन्द के रूप में हिन्दू कौम की एक खास रणनीति पेश आती है। चूँकि बिना ज्यादा लोगों को साथ लिए राजनैतिक स्वतंत्रता की प्राप्ति असम्भव और अकल्पनीय घोषित हो चुकी थी, इसलिए, मजबुरी में सामन्त चरित्र के साहित्यकारों को अपने हाव–भाव में कुछ बदलाव लाने और अपनी लिख–बोल की भाषा में वे ज्यादा दिखलाने पड़ गए थे। आमूल चूल परिवर्तन करने का या गरीबों के हक तक जाने का कोई सवाल नहीं था पर डॉ. अम्बेडकर ने दलितों के लिए पृथक् मॉगों को रख कर अतिरिक्त और वास्तविक दबाव बना दिया था।''[2]

---

* W/o जय कुमार सिंह क्वार्टर नं. G/106/F, रेलवे कॉलोनी, ईमली रोड, मुजफ्फरपुर।

डॉ. धर्मवीर का मानना है कि प्रेमचन्द की रचनाओं में जो ब्राह्मण विरोधी स्वर है वह कायस्थ होने के कारण ही है, इसे कहीं से दलित समस्या या सहानुभूति से नहीं जोड़ा जा सकता है। प्रेमचंद ने अपनी रचनाओं में ब्राह्मणों का विरोध इसलिए नहीं किया कि ब्राह्मण दलितों और गरीबों का शोषण करते थे बल्कि ब्राह्मण और कायस्थों में बुद्धिजीवियों को लेकर जो विरोध था उसी के परिणामस्वरूप प्रेमचन्द के साहित्य में ब्राह्मणी व्यवस्था का विरोध किया गया है। इस सन्दर्भ में डॉ. धर्मवीर का प्रस्तुत उद्धरण द्रष्टव्य है–

''प्रेमचन्द कायस्थ कौम के उसी धर्म के अभाव में खड़े होकर हिन्दी और उर्दू में साहित्य सृजन कर रहे थे। उनमें कायस्थ का अनिवार्य गुण ब्राह्मण विरोधी हैं। कभी गॉधी का दामन पकड़ते हैं और कभी कुछ और– वही जो कायस्थ के मस्तिष्क की सनातन समस्या है। आचार्य नरेन्द्र देव हों या कोई दूसरे बाबू सम्पूर्णानन्द – सब इधर–उधर भटकते हुए और भागे हुए फिरते हैं। अपना कोई खूँटा नहीं है। ईमानदारी यह है कि ब्राह्मण विरोध से कभी चूकते नहीं। कभी उलटी होड़ में पड़कर ये महर्षि तक बन जाते हैं, जहॉ जाकर ये ब्राह्मण से पूर्णतया हार जाते हैं। खुद ब्राह्मणी वर्ण–व्यवस्था के शूद्र होकर कहने लगते हैं कि विश्व में वेदविद्या के प्रचार के लिए अपने आश्रमों में जन्मना ब्राह्मणों को ही प्रवेश देंगे। ऐसी हालत पर शोचनीय होकर यही कहा जा सकता है कि ये सब कुदरत के खेल हैं। इस कौम की संभावना यह थी कि यह हिन्दुस्तान के सारे शूद्रों और दलितों के लिए नया धर्म खड़ा करके उन्हें धार्मिक नेतृत्व प्रदान करती लेकिन यह राजकाज और लगान के खातों में फेरबदल करती और ब्राह्मण से उलझती आपाधापी में पड़ी रही।''[3]

डॉ. धर्मवीर दलितेतर लेखकों के संबंध में जब अपने विचार व्यक्त करते हैं तब प्रेमचन्द के विषय में, उनके साहित्य सृजन के संबंध में वे इस बात पर विशेष जोर देते हैं कि चूँकि प्रेमचंद कायस्थ जाति के थे और कायस्थ तथा ब्राह्मणों का सर्वश्रेष्ठता के लिए विरोध चिर काल से चला आ रहा है इसलिए प्रेमचन्द की रचनाओं में भी ब्राह्मण विरोधी स्वर स्वाभाविक ही आए हैं। किन्तु डॉ. कविता सिंह का मानना है कि प्रेमचन्द ने गरीब, दबे–कुचले, दलित लोगों का दर्द बहुत नजदीक से देखा था, उनके बीच रहकर कुछ हद तक उसे भोगा भी था, इसलिए प्रेमचन्द की रचनाओं में गरीबों और दलितों का दर्द बहुत ही स्वाभाविक रूप से वर्णित हुआ है। इस संबंध में डॉ. कविता सिंह का प्रस्तुत उद्धरण द्रष्टव्य है–

''प्रेमचन्द ने जिस परिवेश को अपने जज्बातों से लेकर अपने लेखक तक भोगा है, वह उनकी जिन्दगी का एक अहम परिवेश है। यह परिवेश लेखक कहीं से अर्जित नहीं करता बल्कि परिवेश के भीतर रहकर उसकी तमाम कड़वाहट को, विसंगतियों को भोगता है। यही वजह है कि प्रेमचन्द का यथार्थ कहीं से चुराया नकली याथार्थ नहीं है, बल्कि ऐसा यथार्थ है जो

प्रेमचन्द की नसों और रगों से जुड़ा हुआ है। प्रेमचन्द ने अपनी रचनाओं में उस आदमी को पैदा किया है, जो कठोर हो चुका है। फुफकारता है, दॉत भींचे जवाबी हमले की तैयारी करता है और 'प्रेमाश्रय' के मनोहर की आवाज में अकड़कर कहता है– ''ना कारिन्दा कोई काटु है और ना जमीन्दार कोई हौवा। यहॉ कोई दबैल नहीं है। जब कौड़ी–कौड़ी लगान चुकाते हैं तो धौंस क्यों सहें'' और वह आदमी 'प्रेमाश्रय' की विलासी की दमदार आवाज में चुनौती देता है, ''खॉ साहेब किस मिजाज में हों। कहे देती हूँ, इन जानवरों के पीछे लहू की नदी बह जायेगी। माथे गिर जायेंगे।''[4]

डॉ. धर्मवीर ने प्रेमचंद के लेखन के संबंध में अपनी आपत्ति दर्ज कराई है कि वह अपने उपन्यास 'रंगभूमि' में – जो दलित साहित्य का विमर्श माना जाता है– में बार–बार 'चमार' शब्द का प्रयोग करते हैं। डॉ. धर्मवीर का मानना है कि यहॉ प्रेमचंद किसी व्यक्ति को महत्व न देकर एक जाति सूचक शब्द का ही बार–बार प्रयोग करते हैं। प्रेमचंद के संबंध में डॉ. धर्मवीर का दृष्टिकोण द्रष्टव्य है–

''पूरे उपन्यास में 'सूरदास' नाम का एक चमार पात्र है, दूसरे नाम का चमार पात्र सूरदास का भतीजा 'मिठवा' है। इन दो के सिवा एक तीसरे चमार का नाम 'चुनक' मिलता है। इन तीन के सिवा किसी अन्य चमार का नाम नहीं है। चमारों के चौधरी तक का नाम गायब है जब कि वह मौजूद है। बाकी सब जगह बहुवचन में 'चमार', 'चमारों' या एक वचन में 'एक चमार' का प्रयोग हुआ है। फिर सूरदास का नाम भी कोई नाम नहीं है बल्कि अंधे व्यक्ति की अमिधा है।''

सच बात तो यह है कि बहुत बुरा लगता है जब प्रेमचंद इस 'रंग–भूमि' में बिना नाम के मात्र 'चमार' को अपना पात्र बनाते हैं और उससे बुलवाते हैं। इसमें वे उसी बात को तरजीह दे रहे हैं कि चमार का कोई नाम और शाम नहीं होता। चमार के इस अनाम होने की बात भी पैतृकता से जुड़ी हुई है। जब जमींदार किसी चमार से पूछता है कि तेरे कितने बच्चे हैं तो इस परम्परा में उसका जवाब होता है– ''हुजूर आपके तीन बच्चे हैं।'' जमींदार के सामने वह बच्चों को अपने कह ही नहीं सकता। गॉव उसका इसलिए नहीं होता क्योंकि इस परम्परा में वह गॉव में जब चाहे भगा दिया जाता है।''[5]

प्रेमचंद के संबंध में डॉ. धर्मवीर के विचार पूर्वग्रह से प्रभावित होने के कारण कहीं–कहीं पक्षपातपूर्ण भी हो गये हैं। प्रेमचंद के कथा साहित्य में वर्णित दलित पात्र जिन्हें प्रेमचंद ने नायक के रूप में प्रस्तुत किया है, को डॉ. धर्मवीर उनकी बेबसी मानते हैं तथा दलितों की समस्याओं के वर्णन के पीछे प्रेमचंद के किसी गहरी चाल के रूप में ही देखते हैं। प्रस्तुत उद्धरण प्रेमचंद के संबंध में डॉ. धर्मवीर के विचारों का आईना है–

''मैं 'कफन' और 'रंगभूमि' की समीक्षाओं में टेक्स्ट से बाहर इसलिए जा रहा हूँ क्योंकि प्रेमचंद इनकी कथाओं में सच से बाहर जा रहे हैं। मुझे

सच पकड़ना है। मेरे पास सर्चलाइट है। प्रेमचन्द इन कथाओं के पाठ तैयार करके मुझे गलत दिशा में ले जा रहे हैं। जो चमारों का सच नहीं है, वे उसे चमारों का सच बतारहे हैं। वे अपने पाठकों को भ्रमित कर रहे हैं। उन्हें सच से बाहर जाने का अधिकार किसने दिया है? यदि वे कला के नाम पर झूठ बोलेंगे तो मैं उनके झूठ को वहॉ भी पकडूँगा। कला सच को निखारने और तरासने के लिए है, सच को नकारने और झूठलाने के लिए नहीं। झूठ की सृष्टि करके कला को बदनाम क्यों किया जा रहा है? कला कब बुरी चीज है? यह सच के साथ बहुत अच्छी लगती है क्योंकि यह उसे और चमका देती है। लेकिन प्रेमचन्द का गुनाह यह है कि उन्होंने झूठ बोलने को फन मान लिया है। इसे कैसे सहन किया जायेगा? जिन्होंने यह नारा लगाया था कि 'नथिंग बियोण्ड द टेक्स्ट', उन्हें एक नारा यह भी लगाना चाहिए था कि 'टेक्स्ट नोट बियोण्ड द ट्रूथ'। साहित्य के नाम पर झूठ बोलने का अधिकार ले रहे हैं– क्या कर रहे हैं? वही देखो जो प्रेमचंद दिखाना चाह रहे हैं, वह मत देखो जो प्रेमचंद छिपा रहे हैं– फिर आलोचना आलोचना कहॉ रह जाती है? वह पाठ की गुलाम बन जाती है। तब जैसे कोई लेखक उसे बहका दे, वैसे समीक्षक बहक जायेगा।''[6]

प्रेमचन्द के उपन्यास 'रंगभूमि' के सूरदास नामक चमार के व्यक्तित्व के संबंध में जहॉ डॉ. धर्मवीर के विचार नकारात्मक प्रभावों की पड़ताल करते हैं वहीं डॉ. शरणकुमार लिंबाले के विचार इस संबंध में डॉ. धर्मवीर से भिन्न हैं। यहॉ डॉ. शरणकुमार लिंबाले के विचार द्रष्टव्य है–

''सूरदास ब्रह्म रूप से अन्धा होकर भी आन्तरिक दृष्टि से अन्धा नहीं है, प्रेमचन्द ने सूरदास को अन्धा क्यों दिखाया है? सूरदास के पास पुरखों से मिली दस बीघा जमीन और चॉदी के पॉच सौ सिक्के हैं। फिर भी वह भीख क्यों मॉगता है? यह समझ में नहीं आता। उसे भिखारी दिखाने के लिए प्रेमचन्द ने अन्धा बनाया होगा। सूरदास जिस पाण्डेपुर में रहता है, वह मिश्र जाति के लोगों की बस्ती है। वहॉ नायक राम दयागिरी जैसे ब्राह्मण रहते हैं। सूरदास, भैरों जैसे अछूत भी रहते हैं। मिनई वाला जगधर, दूध वाला बजरंगी, ताड़ी बेचने वाले भैरो, पान बेचने वाला ठाकुरदीन, ताहिर अली नामक मुसलमान जैसे विभिन्न जातियों के लोगों की यह बस्ती है। सूरदास चमरौटी में रहने वाला चमार नहीं है। वह मिश्र जाति की बस्ती में रहने वाला चमार है। वह अछूत न होकर अस्पृश्य है। अस्पृश्यता के जानलेवा अनुभवों से उसका परिचय नहीं है। जिस काल में अछूतों का मन्दिर–प्रवेश का आन्दोलन नहीं था, उस काल में सूरदास सभी जातियों के लोगों के साथ मन्दिर में बैठकर गाता हुआ दिखाई देता है। भैरों जैसे अछूत को भी मन्दिर में आने की मनाही नहीं है। मात्र स्नान करके मन्दिर में आये इतनी ही सीमित अपेक्षा उससे है। प्रेमचन्द द्वारा अपने काल में देखा गया भव्य सपना यानी यह उपन्यास है।''[7]

डॉ. धर्मवीर के विचार में प्रेमचंद दलितों के हित में लिखने वाले सहृदय लेखक कतई नहीं हैं। डॉ. धर्मवीर अपने विचार के घेरे में मुख्य रूप से प्रेमचंद की दलित समस्या पर लिखा माना जाने वाले कथा साहित्य 'रंगभूमि' और 'कफन' को लेते हैं। डॉ. शरणकुमार लिंबाले भी मानते हैं कि प्रेमचन्द के उपन्यास 'रंगभूमि' का पात्र सूरदास अछूतों का प्रतिनिधित्व नहीं करता है। वे लिखते हैं–

''सूरदास न्यायप्रिय और धार्मिक है। वह अहिंसा का पुजारी है, महामानव है। सभी लोग उसे महापुरुष के रूप में जानते हैं। सूरदास जैसे अछूतों का प्रतिनिधि नहीं लगता, वैसे वह जन साधारण का भी प्रतिनिधि नहीं लगता। वह दुनिया में निराला और लाखों में एक प्रतीत होता है। यही कारण है कि वह चमार होकर भी चमार नहीं लगता। सूरदास पर कितने भी अन्याय, अत्याचार हो फिर भी वह झल्लाकर उसके खिलाफ खड़ा नहीं होता। सूरदास गॉधीवाद की प्रतिमूर्ति है। वह वैचारिक स्तर पर महान प्रतीत होता है फिर भी वह हिन्दू धर्म के पाप पुण्य के चक्र में फॅसा हुआ है। उसकी ऐसी धारणा है कि हम जो दुख भोग रहे हैं, वह पूर्वजन्म का पाप है। इसलिए सूरदास दलित साहित्य का नायक नहीं लगता। 'रंगभूमि' में दलितों की समस्या नहीं है। इस उपन्यास में सत्य–असत्य, धर्म–अधर्म, न्याय–अन्याय के लिए संघर्ष चल रहा है। सूरदास अपनी जमीन के लिए और फिर अपनी झोपड़ी के लिए लड़ता दिखाई देता है। इसलिए उसकी लड़ाई को स्वराज्य आन्दोलन की उपमा नहीं दी जा सकती। सूरदास ने अपनी जमीन के लिए और मकान के लिए जो संघर्ष किया है। उसकी अपेक्षा उसके द्वारा सुभागी के लिए किया गया संघर्ष कई गुणा महत्वपूर्ण है जिसकी चर्चा नहीं हुई है।''[8]

प्रेमचंद के उपन्यास 'रंगभूमि' के संबंध में डॉ. धर्मवीर ने जिस प्रकार अपने विचार व्यक्त किए हैं संभवतः उसी प्रकार के विचारेां से प्रेरित होकर ही अनेक दलित साहित्यकारों तथा दलित समाज ने इस उपन्यास की प्रतियॉ जला दी थी और प्रेमचंद के 'रंगभूमि' दहन की तुलना बाबासाहेब भीमराव अम्बेदकर द्वारा 'मनुस्मृति' की प्रतियॉ जलाने से करके इसे सही ठहराया था। 'रंगभूमि' के दहन के संबंध में विभिन्न दलित साहित्यकारेां के मत द्रष्टव्य है, जो डॉ. धर्मवीर के विचारों को भी स्पष्ट करते हैं। नैमिशराय का वक्तव्य द्रष्टव्य है–

''पिछले दिनों प्रेमचन्द की रंगभूमि की प्रति जलाई गई। इसमें गलत क्या? मुझे बतलाएँ। जिसके सीने में आग धधकती है, यह वही जानता है जो सदियों से जलता रहा है वह जलाएगा भी। नहीं जलाएगा तो खुद को जलायेगा। जैसा अक्सर होता रहा है। पर जिसके भीतर स्वयं को जलाने का दुस्साहस जन्म ले लेता है, वह दूसरों को भी जलाकर खाक कर देता है।

मैं रंगभूमि जलाने वालों की न तो भर्त्सना करूँगा और न ही प्रशंसा। वे स्वयं इस बात का अहसास करेंगे और बतलायेंगे कि उन्होंने ऐसा क्यों किया। हालॉकि उक्त उपन्यास की प्रति जलाने से पूर्व भारतीय दलित साहित्य अकादमी के द्वारा यह तला दिया गया था कि वे ऐसा क्यों कर रहे हैं। तब प्रेमचन्द समर्थकों ने उनकी बात को बहुत हल्के तरीके से लिया था। जबकि बाद में यानी जब मनुस्मृति की तरह रंगभूमि सवर्णों के प्रेमचंदी खेमे की ओर से हुई।''[9]

सन्दर्भ :

1. डॉ. कविता सिंह : प्रेमचन्द अैर उनकी अन्तर्दृष्टि, परिषद्–पत्रिका, अप्रैल 2004–मार्च 2005, पृ. 21.
2. डॉ. धर्मवीर : प्रेमचन्द : सामन्त का मुंशी, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2005, पृ. 7.
3. डॉ. धर्मवीर : प्रेमचन्द : सामन्त का मुंशी, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2005, पृ. 14.
4. डॉ. कविता सिंह : प्रेमचन्द अैर उनकी अन्तर्दृष्टि, परिषद्–पत्रिका, अप्रैल 2004–मार्च 2005, पृ. 21–22.
5. डॉ. धर्मवीर : 'पांडेपुर का गॉव', प्रेमचन्द की नीली ऑखें, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2010, पृ. 42.
6. डॉ. धर्मवीर : 'पांडेपुर का गॉव', प्रेमचन्द की नीली ऑखें, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2010, पृ. 55.
7. डॉ. शरण कुमार लिंबाले, अनुवाद डॉ. जिमाऊ शा. मोरे : गैर दलित, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2017, पृ. 43–44.
8. डॉ. शरण कुमार लिंबाले, अनुवाद डॉ. जिमाऊ शा. मोरे : गैर दलित, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2017, पृ. 44.
9. मैं रंगभूमि जलाने वालों की न तो भर्त्सना करूँगा और न ही प्रशंसा, मोहनास नैमिशराय, साखी, सम्पादक–केदारनाथ सिंह, अंक–11, अप्रैल–जून, 2005, पृ. 58–59.

***

पूर्वोत्तर भारत के पर्व, उत्सव एवं त्योहार

डॉ. सुनील कुमार साव *

पूर्वोत्तर भारत में सम्मिलित आठ राज्यों में अलग–अलग प्रकार की जनजातियां हैं। उनकी अपनी अलग–अलग संस्कृति है। ये अपनी खुशी, उल्लास, आनंद का उपभोग पर्व, त्योहार एवं उत्सवों के माध्यम से करते हैं। पूरे भारत में पूर्वोत्तर का त्योहार एवं उत्सव प्रसिद्ध है। रंग–बिरंगे उत्सवों त्योहारों में इस राज्य का सौंदर्य और भी मनोरम हो जाता है। पूर्वोत्तर भारत को मैदानी भाग से जोड़ने वाला राज्य असम है। असम में भिन्न प्रकार की जनजातियां हैं। इनके त्योहार एवं उत्सव वर्षभर धूम मचाते रहते हैं। असम का सबसे प्रसिद्ध त्योहार 'बिहू' है। बसंत एवं शरद के आगमन पर नृत्य एवं गीत का त्योहार है– 'बिहू'। अपने देश के अन्य कई उत्सवों की तरह इसका संबंध भी कृषि से है। यह त्योहार आनंद का प्रतीक है। 'बिहू' यहाँ की संस्कृति का प्रतीक है। बिहू उत्सव तीन प्रकार के होते हैं। – कंगाली बिहू, भोगाली बिहू और तीसरा रंगाली बिहू। रंगाली बिहू इन तीनों बिहू में प्रमुख है। इस बिहू को बसंत के अवसर पर मनाया जाता है। पुराने वर्ष को विदा करके नये वर्ष का स्वागत करता है। इसमें सब छोटे अपने बड़ों को नमस्कार करते हैं और मंदिर में इकट्ठे होकर कीर्तन करते हैं। असम कृषि प्रधान राज्य है। मजदूर, कृषक अपनी मनोकामना पूरी होने पर संगीत और नृत्य से झूम–झूम कर अपनी थकान उतारते हैं और फिर से कार्य में जुट जाते हैं। बिहू का आरंभ दो दिन आगे से हो जाता है। इस उत्सव में खेती से जुड़ी चीजों को खिलाया जाता है। पूरे बिहू उत्सव में लाल रंग को प्रमुखता दी जाती है। युवतियाँ हाथों में मेंहदी लगाती हैं, लाल पाड़ वाली साड़ियां पहनती हैं। पुरुष भी हाथ में मेंहदी लगाते हैं। रंग के माध्यम से इनके मन का आनंद एवं खुशहाली देखी जा सकती है।

मेघालय के प्रमुख त्योहारों में शादसुक मिन्सिएम, नोङक्रेम, बङाला, बेहडिङख्लाम आदि के नाम लिए जा सकते है। बेहडिङख्लाम के दिन ये नृत्य, संगीत के माध्यम से त्योहार मनाते है। इनकी मान्यता है कि नृत्य, संगीत एवं नाटक के माध्यम से बुरी आत्माओं को समाज से भगाया जाता है। त्योहार में अनेक प्रकार के खेल खेले जाते हैं जिसका उद्देश्य मनोविनोद होता है। 'बेहडिङख्लाम' त्योहार की समाप्ति 'दात लोआखोट' नामक नृत्य से होती है। दो दल लकड़ी की गेंद से इस खेल को खेलते हैं। खेल के अन्त को कृषि से जोड़ा जाता है। खेल में जो जीतता है माना जाता है उसकी खेती अच्छी होगी। नृत्य, संगीत के माध्यम से ईश्वर का धन्यवाद ज्ञापन करते हैं।

---

* हिंदी विभाग, नेहू, शिलांग–793022

मिजोरम राज्य के लोग मूलतः किसान हैं। सरकारी नौकरी करने वाले एवं पेशेवर लोगों की संख्या भी इस राज्य मे निवास करती है। कृषि प्रधान राज्य होने के कारण यहाँ के त्योहार एवं उत्सव भी कृषि आधारित हैं। मिजो में त्योहार को 'कुट' कहा जाता है। मिजोरम के विभिन्न त्योहारों में आजकल केवल तीन त्योहार चपचार, मिमकुट और थालफवांकुट ही ज्यादा प्रमुखता से मनाये जाते हैं। इसके अलावा यहाँ की ज्यादातर जनसंख्या इसाई है। उनका मुख्य त्योहार 'क्रिसमस' है। बौद्ध एवं हिन्दू धर्म के त्योहार भी यहाँ मनाये जाते हैं।

अलका कौशिक नागालैण्ड के पर्व–त्योहार के बारे में लिखती हैं– ''ज्यादातर आदिवासी धर्मान्तरित इसाई हैं लेकिन अपनी मूल प्रकृति, धर्म और पुरानी परंपराओं से आज भी जुड़े हैं। यही कारण है कि पूरे बारह महीने नागालैण्ड की धरती पर उत्सवों के गान सुनाई देते हैं।

ज्यादातर पर्व खेती–बारी से जुड़े हैं और खाने–पीने, नाचने–गाने से लेकर सुखद और मौज–मस्ती के लिए जाने जाते हैं। नागा समाज की मुक्त जीवनशैली को भी दर्शाते हैं ये पर्व, लेकिन उनके खुलेपन को किसी आमंत्रण की तरह लेने की भूल कतई नहीं करनी चाहिए।''[1]

मणिपुर में प्रत्येक जनजाति के अपने–अपने रीति–रिवाज हैं। इनके अपने–अपने देवता हैं। यहाँ तीन प्रसिद्ध नदियां हैं– इम्फाल, नामबूल और बोराक। इन्हें प्रसन्न करने के लिए यहाँ प्रतिवर्ष मेला लगता है। प्रत्येक जनजाति की खास संस्कृति और रीति–रिवाज है, जो इनके नृत्य, संगीत व पारंपारिक प्रथाओं में दृष्टिगोचर होता है। इस राज्य में इतने त्योहार होते हैं कि इसे उत्सव की भूमि भी कहा जाता है। यहाँ के प्रमुख त्योहारों में चेराओवा, रथयात्रा, डोल यात्रा आदि हैं।

त्रिपुरा बंगाली भाषा–भाषी के साथ–साथ देवबर्मा, कॉकबरक जनजातीय भाषा बहुल राज्य है। इस राज्य में जुलाई के महीने में सप्ताह भर 'खरचीपूजा' का उत्सव मनाया जाता है। अगरतला के पास स्थित एक पहाड़ी पर उनकुटि तीर्थ है। यहां पर चट्टानों पर अनेक देवी–देवताओं की मूर्तियां खुदी हुई हैं। जो बौद्धकालीन जान पड़ती हैं। अशोकाष्टमी के दिन यहाँ मेला लगता है। अगरतला से लगभग 50 किलोमीटर की दूरी पर रूद्रसागर नामक एक सुंदर झील है। इस झीलों के बीचों–बीच एक महल बना हुआ है। एक छोटी सी पहाड़ी पर त्रिपुरा सुंदरी का पीठस्थान स्थित है। दीपावली के समय यहाँ मेला लगता है। बंगाली नववर्ष अप्रैल के दूसरे सप्ताह में मनाया जाता है।

सिक्किम में ज्यादातर जनसंख्या हिन्दू एवं बौद्ध धर्म को मानती है। यहाँ के नागरिक भारत के सभी मुख्य हिन्दू त्योहारों जैसे दीपावली, होली, दशहरा आदि मनाते हैं। बौद्ध धर्म के लोग लहोसार, लूसोंग, सागा दावा, ल्हाबाब, ड्यूचेन डुपका, टेशी और भूमचू त्योहार मनाते हैं। लोसर त्योहार तिब्बती नववर्ष का त्योहार है जो मध्य दिसम्बर में आता है। इस दौरान यहाँ के सारे दफ्तर, स्कूल, कॉलेज सप्ताह

भर के लिए बंद रहते हैं। लोग छुट्टी में खुशी और उल्लास से त्योहार मनाते हैं। पर्यटकों को लुभाने के लिए यहाँ बड़े दिन का त्योहार भी मनाया जाता है। पाश्चात्य संसकृति ने यहाँ के त्योहारों, लोकरंगों, उत्सवों, पर्वों को क्षति नहीं पहुंचाई है। यहाँ के लोग अभी भी अपनी परंपराओं से जुड़े हुए हैं।

अरुणाचल प्रदेश में 25 से भी ज्यादा जनजातियां हैं, उनकी अपनी अलग–अलग मान्यताएं हैं, उत्सव हैं, त्योहार हैं। समय–समय पर अपनी खुशी, उल्लास के लिए यह पर्व, उत्सव एवं त्योहारों का आयोजन करते हैं। अरुणाचल प्रदेश के उत्सव, पर्व के बारे में उल्लेख करते हुए लिखा गया है– 'अरुणाचल प्रदेश में अलग–अलग जनजातियां हैं, और लगभग सभी के अपने रीति–रिवाज हैं, अपनी वेश–भूषा और अपनी भाषा है। सब लोगों की अपनी एक विशेष प्रकार की संस्कृति है। फिर भी सब लोग एक सूत्र में बंधे हैं, और सभी को भारतीय होने का भी उतना ही गर्व है जितना अरुणाचल वासी होने का।''[2] अरुणाचल के अपर एवं लोवर सुबनश्री जिले के पूर्वी भाग में हिलमिरी नामक जनजातियां बड़ी संख्या में निवास करती हैं। इनका प्रमुख त्योहार 'बूरी–बूत' है। इस त्योहार को ये अनादिकाल से मनाते आ रहे हैं। इनके पुजारी 'न्यीब' के पास भगवान से प्राप्त असाधारण शक्ति होती है यही त्योहार के लिए स्थान का चुनाव करता है। इस त्योहार के बारे में जमुना बीनी ने लिखा है– ''पहले 'बूरी–बूत' त्योहार ग्राम स्तर पर मनाया जाता था और त्योहार मनाने का कोई निश्चित समय भी नहीं होता था। जब भी कोई प्राकृतिक आपदा और महामारी फैलती थी तब इस पर्व को मना लिया जाता था। किन्तु बाद में इस पर्व को राजो (जनवरी) से लोइकी (मार्च) महीने के बीच मनाया जाने लगा। ऐसी मान्यता है कि इन्हीं महीनों के दौरान ईश्वर सभी प्राणियों पर अपनी कृपा–दृष्टि सबसे अधिक रखते हैं।''[3]

अरुणाचल प्रदेश में आदी जनजाति के लोगों की जनसंख्या काफी है। आदी जनजाति का सबसे मुख्य त्योहार सोलुंग उत्सव है। आदी जनजाति में भी उप जातियां हैं– पासी, पदाम, मिलांग, पांगी। यह भी इस त्योहार को मनाते हैं। अंग्रेजी माह के सितम्बर में इस त्योहार को मनाया जाता है। सोलुंग उत्सव की तिथि तय होने के बाद इसके लिए 'मीरी' का चयन किया जाता है। नौ दिनों तक चलने वाले सोलुंग उत्सव में पोनुंग नामक नृत्य किया जाता है। अरुणाचल प्रदेश की 25 से भी अधिक जनजातियों में से एक है तगिन। यह जनजाति मुख्य रूप से अपर एवं लोवर सुबनश्री जिले में निवास करती है। इनका प्रमुख त्योहार 'सी दोन्यी' है। यह त्योहार जनवरी की एक से चार तारीख के बीच आरंभ होता है। 'सी दोन्यी' में 'सी' का अर्थ धरती माँ एवं 'दोन्यी' का अर्थ है सूर्य होता है। तागिन मान्यताओं के आधार पर धरती पुलिंग है एवं सूर्य स्त्रीलिंग। अरुणाचल के सब त्योहारों की तरह इस त्योहार का संबंध भी कृषि से ही है। लोग अपने जीवन की सुख–शांति के लिए एवं प्राकृतिक आपदाओं से बचने के लिए कामना करते हैं।

जनवरी भर तगिन जनजाति के लिए हर्ष, खुशी एवं उल्लास का माहौल रहता है। जनवरी तक इनकी फसल कटकर घर तक पहुँच जाती है। उसी की खुशी में एवं संपन्नता के आनंद में यह त्योहार मनाया जाता है। त्योहार में बड़े–बूढ़े, जवान, बच्चे, साक्षर, निरक्षर, अमीर, गरीब आदि सभी वर्ग के लोग बिना किसी भेदभाव के आपसी बैर मिटाकर इस त्योहार में शरीक होते हैं। अरुणाचल में मोनपा जनजातियां निवास करती हैं। मोनपा जनजातियों द्वारा नववर्ष का आरंभ होते ही पर्व, उत्सव एवं त्योहारों का आरंभ हो जाता है। इनका मुख्य त्योहार नववर्ष का त्योहार है। वर्ष का प्रथम त्योहार लोसर होता है। इस त्योहार में लोग नये कपड़े पहनकर भगवान की पूजा करते हैं। सभी बड़े–बुजुर्ग छोटों को सुखी एवं मंगलमय जीवन के लिए आशीर्वाद देते हैं –

''टाशी दीले फुन्सुम छोह
आमा बाटु, कुगम जाहप्प
म्रेन दलु ले रेमगन ते, ज्ञागन फाह ङोतो
जोमज्युक नऊ तेमरी शो।''[4]

मोन्पा जनजातियों ने बौद्ध धर्म को स्वीकार कर लिया है। परंतु अपनी जनजातीय त्योहारों का इन्होंने बहिष्कार नहीं किया है। अपनी पारंपरिक त्योहारों के साथ ही साथ ये बौद्ध धर्म के पर्व, उत्सव एवं त्योहारों को मनाते हैं। इनका दूसरा मुख्य त्योहार छोइकोर है। यह त्योहार इनके समुदाय का एक प्रमुख धार्मिक त्योहार है, जिसे प्रत्येक चन्द्रवर्ष के चौथे महीने में दो बार मनाया जाता है। इस त्योहार में बड़े बुजुर्ग को घर बुलाकर उनसे धर्म ग्रंथ का वाचन कराया जाता है। छोइकोर शब्द 'छोइ' एवं 'कोर' से बना है। जिसमें छोई का अर्थ धर्म ग्रंथ एवं कोर का अर्थ परिक्रमा करना है अर्थात् धर्म ग्रंथ को लेकर परिक्रमा करना ही इस त्योहार का मुख्य उद्देश्य है। इस त्योहार को यहाँ के लोग अपने समाज की सुख शांति एवं फसल की अच्छी पैदावार के लिए मनाते हैं। एक और प्रमुख त्योहार 'छेह चिलेङ' है। इस त्योहार को मोम्पा जनजाति पूर्णिमा के दिन मनाते हैं। प्रत्येक माह की पूर्णिमा को ज्यादातर लोग मांसाहार का सेवन नहीं करते हैं। पूर्वोत्तर भारत की जनजातियेां के अन्तर्संबंध में भिन्नता तो है पर इस भिन्नता में एकता है। इस एकता को स्पष्ट करते हुए शिवानंद झा ने लिखा है– ''रंग–बिरंगी संस्कृति के बावजूद सामाजिक नियमों के पालन एवं जातीय परंपरा पर अटूट विश्वास अरुणाचल की विशिष्टता है, जो हमारी राष्ट्रीय पहचान का मूल स्वर है। परंपराओं के क्रमबद्ध अनुशीलन, किन्तु विकासोन्मुखी स्वभाव के कारण ही स्वातंत्र्योत्तर काल में जिस गति से इस राज्य ने विकास के विविध आयोमों में सफलता अर्जित की है वह अन्य राज्यों के लिए अनुकरणीय है।''[5] भारत में विभिन्नता में एकता (unity in diversity) है। इस बात को पूर्वोत्तर भारत में आकर समझा जा सकता है। यहाँ पर बसने वाली अनेक जातियों के खान–पान, रहन–सहन, रीति–रिवाज संस्कृति

अलग–अलग है। फिर भी उनमें सामाजिक, आर्थिक एवं बौद्धिक स्तर पर समानता है। यही समानता उनकी विभिन्नता में एकता को प्रदर्शित करती है जो सर्वत्र भारत में दुर्लभ है।

किसी भी संस्कृति में त्योहारें का स्थान सर्वोच्च होता है। पर्व, त्योहार एवं उत्सवों के माध्यम से ही हम उस समाज के लोक–रंग, समाज, संस्कृति को जान एवं पहचान सकते हैं। लगभग सभी जनजातियों का उत्सव कृषि से जुड़ा होता है। इस प्रकार के प्राचीन धार्मिक–सांस्कृतिक धरोहर के प्रतीक इन त्योहारों को असम, मेघालय, नागालैण्ड, मिजोरम, सिक्किम, अरुणाचल प्रदेश एवं त्रिपुरा के लोग सदियों से मनाते आ रहे हैं। परंपरा, लोक–संस्कृति एवं लोकरंग को बचाने के लिए इस पारंपरिक त्योहारें को समाज में जिन्दा रखने के लिए इन त्योहारों का प्रचलन आवश्यक है। इन त्योहारों, पर्व एवं उत्सवों की समाज में आवश्यकता है।

सन्दर्भ :

1. hindinest/desperdes
2. जनपथ, संपा. अनंत कुमार सिंह, प्रो. नन्द किशोर पाण्डेय (अतिथि संपा.), दिसम्बर, 2009
3. वही
4. Folk songs & dances of Arunachal Pradesh, vol. (i) Dr. N. Osik, p- 50
5. जनपथ, संपा. अनंत कुमार सिंह, प्रो. नन्द किशोर पाण्डेय (अतिथि संपा.), दिसम्बर, 2009

***

निर्मला जैन एवं समकालीन हिन्दी आलोचना

डॉ. अभिलाषा कुमारी *

समकालीन हिन्दी आलोचना का आलोचनात्मक परिदृश्य अपने समय की सर्जनात्मकता और सर्जनात्मक संवेदना से गहरी सम्पृक्ति का साक्ष्य प्रस्तुत करता है। डॉ. नामवर सिंह ने एक जगह लिखा है कि ''आलोचना अपने समय की बौद्धिकता की उपस्थिति है।'' बौद्धिकता से उनका तात्पर्य अपनी सेवा में लगी बौद्धिकता से नहीं है बल्कि ऐसी बौद्धिकता से है जो समय की हलचल और धड़कन से परिचित है। नलिन विलोचन शर्मा का मन्तव्य है कि ''आज आलोचना दिङ्नागों का स्थूल हस्तावलेप नहीं है, लेकिन यह जीवित कवियों के आशय के वर्णन से भी भागती नहीं। आधुनिक आलोचना का क्षेत्र नीर–क्षीर विवेचना भी नहीं रह गया है, कृति अच्छी है या बुरी, आलोचना का यही क्षेत्र है। आज विक्टर ह्यूगो की यह धारणा आलोचक को मान्य नहीं हो सकती। जैसा कि आइ.ए. रिचर्ड्स ने कहा– ''आलोचक के आसन पर बैठना क्या है मूल्यों के निर्णायक के आसन पर बैठना है।'' क्रोचे का अनुसरण करते हुए जे.ई. स्पिंगार्न ने आलोचना का मुख्य लक्ष्य इन बातों का उत्तर देना माना है– (क) कलाकार ने क्या अभिव्यक्त करने की चेष्टा की है? (ख) उसने किस प्रकार अपनी अभिव्यक्ति को सफल बनाया है? इन दोनों प्रश्नों के अतिरिक्त आलोचना से इसके उत्तर की भी अपेक्षा की जाती है। क्या जो अभिव्यक्त किया गया है, वह इसके योग्य था?''[1]

नंददुलारे वाजपेयी जैसे आलोचक का यह दावा बेहद महत्त्वपूर्ण लगता है कि 'कवि अपने काव्य के लिए ही जिम्मेदार है, पर समीक्षक अपने युग की सम्पूर्ण साहित्यिक चेतना के लिए जिम्मेदार है।' एक अन्य अर्थ में जातीय जीवन का नियामक होता है आलोचक।

विजय बहादुर सिंह का कथन है कि– ''आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी और डा. नामवर सिंह सभी यह मानते हैं कि सच्चे आलोचक की असली परीक्षा तो उन कृतियों की कसौटी पर होती है जो अपने युग के अनुभवों का इतिहास समेटे हुए आती है। आलोचना की इसी व्यावहारिक जमीन पर उतर कर आलोचक की सारग्राहिता, मूल्यांकन क्षमता और समर्थ अतिक्रामक दृष्टि की परीक्षा सम्भव है। बगैर इस अतिक्रामकता के आलोचक या तो पंडितई करेगा या फिर कृति को अपने स्पर्श से बचे–खुचे पाठकों के बीच भी इतना अजनबी बना देगा कि दोनों का भविष्य संकटग्रस्त हो उठेगा।''[2]

---

* ग्राम-बैगना, पो.- पिंडौली, भाया- कटना, जिला- मुजफ्फरपुर

इस सम्बन्ध में निर्मला जैन का ध्यातव्य पठनीय है– ''कुछ समय पहले हिन्दी के वरिष्ठ चिंतक कवि कुंवरनारायण ने 'समीक्षा' की वर्तमान स्थिति से निराश होकर लिखा था– 'यह समीक्षा निरपेक्ष रहकर लिखने के लिए उत्तम समय है, जबकि समीक्षा की ओर से अपने लिए न तो किसी प्रकार की प्रेरणा, न ही चुनौती महसूस कर रहा हूँ। लगता है वह कहीं अखबारों और पत्र–पत्रिकाओं के पुराने ढेरों के नीचे दबी पड़ी है। रोज लिखी जा रही, रोज बासी हो रही है। वह न तो है, न नहीं है।

उन्हीं के हमउम्र एक दूसरे कथाकार कृष्ण बलदेव वैद ने भी अपनी परेशानी व्यक्त करते हुए दो तरह के आलोचकों से तौबा बोली थी– एक तो हिन्दी के 'तात्त्विक आलोचक' जिनका अंत वे 'रूढ़ पड़ गए युग्मों की बेड़ियों से मुक्ति दिलाने के लिए' अत्यन्त जरूरी समझते थे, और दूसरे वे आलोचक 'समीक्षा जिनकी जबान की नोक पर बिराजती है।'

ध्यान देने की बात यह है कि इन रचनाकारों को 'समीक्षा' के परिमाण से नहीं गुणात्मकता से शिकायत है।''[3]

समकालीन हिन्दी आलोचना में सिद्धान्त–चर्चा, प्राचीन भारतीय काव्यशास्त्र की प्रासंगिकता की तलाश, उत्तर आधुनिकतावादी चिंतन और आंदोलन की सक्रियता के अतिरिक्त 'हिन्दी नवजागरण' और 'हिन्दी जाति' जैसी अवधारणाओं पर भी पर्याप्त विवाद होता रहा है। उत्तर आधुनिकतावादी या विखंडनवाद आदि से डरने की अपेक्षा उसे समझकर अपनी शर्तों पर अपनाने पर बल देते हुए कृष्णदत्त पालीवाल कहते हैं– ''समकालीन आलोचना में एक आवाज चारों ओर से उठ रही है कि उत्तर आधुनिकतावाद ने सर्जनात्मकता की सभी अवधारणाओं पर प्रश्नचिह्न लगा दिया है। अब रचनाकार का स्थान 'पाठ' और 'पाठक' ने ले लिया है और 'पाठक' ही पाठ में प्रवेश करके अर्थ का सृजन करता है। यहाँ पाठक पाठ को अपने तरीके से रचता है। वह कविता को पढ़ते समय उसी कविता को फिर रचता है। आज हम 'रामचरित मानस', 'कामायनी' और 'असाध्य वीणा' की व्याख्या में नए–नए अर्थ उद्घाटित करते हैं। इस तरह कृति के पाठ को पाठक रचता है, स्थापित अर्थ के स्थान पर नए अर्थ की सृष्टि करता है। यह सर्जनशीलता का ही विस्तार है। उसका विनाश नहीं है। इस तरह उत्तर आधुनिकतावाद, विखंडनवाद, विमर्श–सिद्धान्त अर्थात् उत्तर संरचनावाद से डरने की जरूरत नहीं है, उसे समझकर अपनी शर्तों पर अपनाने की शक्ति हममें होनी चाहिए। हमारे यहाँ सर्जनशीलता का मूल स्रोत है प्रतिभा, जिसे पश्चिम में 'सर्जनात्मक कल्पना' कहा गया है। कृति में विशिष्टता तब आती है जब वह 'अनुकृति' से बचकर 'अपूर्व वस्तुनिर्माण क्षमता' को धारण करती है।''[4]

समकालीन हिन्दी आलोचना के वैशिष्ट्य को रेखांकित करते हुए 'मधुरेश' का यह कथन महत्त्वपूर्ण है– ''इस दौर की आलोचना में एक ओर यदि कलावादी रूझानों की सक्रियता बढ़ी है, उसकी पुनर्स्थापना के प्रयासों में तेजी आई है, वहीं साहित्य के समाजशास्त्रीय अध्ययन का भी विकास

हुआ है और साहित्य के समाज एवं राजनीति से अंतः सम्बन्धों को नए सिरे से परिभाषित करने के प्रयास भी स्पष्ट लक्षित किए जा सकते हैं। हिन्दी में काव्यालोचन की एक सुदीर्य और सुस्थापित परम्परा की उपस्थिति के कारण यह स्वाभाविक है कि आलोचना का बहुलांश आज भी कविता पर ही केन्द्रित है। इसमें एक ओर यदि कुंवर नारायण से लेकर अरूण कमल तक कवि–आलोचकों की सक्रिय हिस्सेदारी देखी जा सकती है वहीं बच्चन सिंह से लेकर ललित कार्तिकेय तक आलोचकों का हस्तक्षेप भी ध्यान आकृष्ट करता है। दूसरी ओर सारे आरोपों और स्यापे के बावजूद कथा–आलोचना का भी तेजी से विकास हुआ है। नाट्यालोचन की सजगता भारतेंदु काल से ही दिखाई देने लगी थी, भारतेन्दु के प्रसंग में उनके 'नाटक' नामक विस्तृत निबन्ध की चर्चा शुरू में ही की जा चुकी है, लेकिन समुचित रंगमंच के अभाव में रंग आन्दोलन जैसी कोई चीज हिन्दी में बहुत बाद में ही अस्तित्व में आ सकी। नेमिचन्द्र जैन की पत्रिका 'नटरंग' की इसमें ऐतिहासिक भूमिका रही है।''[5]

मधुरेश वैचारिक दृष्टि से समकालीन आलोचना की वैविध्यता को इंगित करते हैं। उनका कथन है कि अधिकतर आलोचकों ने छायावाद और उसके प्रमुख कवियों को तथा आलोचकों ने भक्तिकाव्य के पुनर्मूल्यांकन को अपने आलोचना–कर्म के केन्द्र में रखकर अपनी यात्रा शुरू की। परंतु समकालीन आलोचना का बड़ा हिस्सा नई कविता और समकालीन कविता पर विचार करता है।

'रेवती रमण' बीसवीं सदी को हिन्दी साहित्य के सन्दर्भ में हिन्दी आलोचना की सदी कहते हैं। ''बीसवीं सदी की साहित्यिक गतिविधि को इस नजरिये से देखने की जरूरत है कि वह खासतौर से आलोचना की सदी है। पूरे सौ वर्षों की सृजनात्मकता विशिष्टता सृजन में निहित आलोचना–दृष्टि की सजगता है। आलोचना तो आदि और मध्यकाल में भी थी, लेकिन तब वह गद्य नहीं पद्य थी।''[6]

समकालीन आलोचना के प्रमुख आलोचकों को इंगित करता हुआ रमेश दवे का यह ध्यातव्य अत्यन्त महत्वपूर्ण है। ''एलियट और स्टीफन स्पेण्टर ने हमारे समय में और बादलेयर, मलार्मे, पाल वेलेरी, एलेक्शान्द्र ब्लोक, येट्स, रिल्के, स्टीफन जार्ज आदि प्रतीकवादियों ने जिस तात्त्विक और निबन्धात्मक आलोचना का 19वीं से बीसवीं शताब्दी तक विस्तार कर दिया था, उससे हिन्दी में अज्ञेय, मुक्तिबोध, रघुवीर सहाय, निर्मल वर्मा, वागीश शुक्ल, विजयदेवनारायण साही आदि अनेक सर्जन आलोचकों ने जो आलोचना कर्म किया, वह हिन्दी की चिरस्थायी निधि बन गया। उसी का तो अधिक प्रगाढ़ प्रयोग आगे चलकर अन्य हिन्दी सर्जकों ने भी किया। नामवर सिंह और रामविलास शर्मा जैसे आलोचकों को विचारधारा मोह से मुक्त करके परखा जाए, तो ये आलोचक हिन्दी भाषा और साहित्य के शुद्ध आलोचक कहे जा सकते है, ठीक वैसे ही जैसे रामस्वरूप चतुर्वेदी,

शिवकुमार मिश्र, शिवदान सिंह चौहान आदि हैं। चन्द्रकान्त बान्दिवडेकर, विजयेन्द्र, विजयमोहन सिंह, सुधीश पचौरी, मदन सोनी, ज्योतिष जोशी भी इस बीच हिन्दी आलोचना में अपनी उपस्थिति सूचित करने लगे, लेकिन इनमें हिन्दी आलोचना का भारतीय और पश्चिमी दृष्टियों के सम्यक उत्कर्ष का उदाहरण प्रभाकर श्रोत्रिय, रमेशचन्द्र शाह वागीश शुक्ल और मदन सोनी में पाया जाता है। यद्यपि शाह, वागीश शुक्ल और मदन पर क्लिष्टता का आरोप है, तथापि उनका आलोचना–विवेक मौलिकता और स्पष्टता की आत्म–नियन्त्रित दृष्टि का द्योतक है। निर्मला जैन, राजी सेठ, मृदुला गर्ग आदि ने आलेखात्मक टिप्पणीकरण किया है, फिर भी उनकी आलोचना दृष्टि में आलोचक की आकस्मिकता के बजाय गहराई दिखाई दी। अनूदित व निबन्धात्मक आलोचनाओं और विचार–आन्दोलनों की रूपवाद से लेकर उत्तर–आधुनिकतावादी आलोचना तक जो भी आलोचनाएँ इस बीच हिन्दी में आयीं, उनसे यह भी लगा कि हिन्दी ने अपनी आलोचनात्मक शक्तियों को अधिक उदात्त और ग्रहणशील बनाया है, और हिन्दी भाषा विश्व की किसी भी आलोचना–भाषा के मुकाबले कमतर नहीं मानी जा सकती।''[7]

मधुरेश ने समकालीन प्रमुख काव्यालोचकों में बच्चन सिंह, प्रेमशंकर, निर्मला जैन, विष्णुचंद्र शर्मा, विश्वनाथ त्रिपाठी, परमानंद श्रीवास्तव, नन्द किशोर नवल, धनंजय वर्मा, अशोक वाजपेयी, प्रभाकर श्रोत्रिय, विश्वनाथ प्रसाद तिवारी आदि की चर्चा की है।

मधुरेश के विचार से निर्मला जैन मुख्य रूप से काव्यालोचक है। प्रस्तुत है मधुरेश का यह ध्यातव्य– ''निर्मला जैन ने कथा साहित्य और आलोचना पर भी लिखा है, लेकिन उनका मुख्य कार्य–क्षेत्र काव्य की आलोचना ही है। 'जैनेन्द्र की सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ' शीर्षक से उनकी कहानियों के चयन के साथ उन्होंने लम्बी भूमिका लिखकर जैनेन्द्र की कहानियों पर पुनर्विचार भी किया है– उनके महत्त्व के सन्दर्भ में। उनकी उल्लेखनीय पुस्तकें है– 'रस सिद्धान्त और सौन्दर्यशास्त्र', 'हिन्दी आलोचना बीसवीं शताब्दी' (1973) 'आधुनिक साहित्य : मूल्य और मूल्यांकन', 'कथा प्रसंग यथा प्रसंग' आदि।''[8]

निर्मला जैन की सबसे महत्त्वपूर्ण देन आलोचना के क्षेत्र में काव्यशास्त्र से सम्बन्धित है। डा. जैन की भारतीय और पाश्चात्य काव्यशास्त्र से सम्बन्धित पुस्तकें इनके गहन अध्ययन, मौलिक दृष्टि, सुस्पष्ट विवेचन एवं सर्जनात्मक भाषा की परिचायक हैं। इनका शोध ग्रंथ 'रस सिद्धान्त और सौन्दर्यशास्त्र' भारतीय और पाश्चात्य काव्यशास्त्र के तुलनात्मक अध्ययन का अद्वितीय उदाहरण है।

डॉ. जैन के पास अंग्रेजी और पाश्चात्य साहित्य की अत्यन्त विभ्राट और विशद प्रज्ञा है। वह अन्वेषणात्मक और विवेचनात्मक निर्भावुकता है, जो रचना, सर्जक और आलोचक के बीच किसी भी स्तर पर उन्हें सेण्टीमेण्टल नहीं बनने देती। वे प्लेटो, अरस्तू, लोंगिनुस, जॉन ड्राइडन, विलियन वर्डस्वर्थ

से लेकर एफ.आर.लीविस तक की वह निरपेक्षता अपनाती हैं, जो एक आलोचक का अन्वीक्षण कर्म है। वे महत्त्वपूर्ण विचारकों और प्रवृतियों के क्रमिक इतिहास और चिंतन का प्रामाणिक विवेचन बोधगम्य शैली में करती है।

पाश्चात्य काव्य–चिन्तन के क्षेत्र में प्लेटो का ऐतिहासिक महत्व असंदिग्ध है। निर्मला जैन के विचार से काव्यशास्त्र के व्यवस्थित विवेचन, उचित मूल्यांकन एवं महत्त्व–निर्धारण का श्रेय आचार्य अरस्तू को ही दिया जाता है, जो उचित ही है, परन्तु प्लेटो को इस गौरव से पूर्णतः वंचित करना उनके प्रति अन्याय होगा। डॉ.जैन के शब्दों में– ''कला को राजनीति और धर्म, नीति आदि की दासता से मुक्त कराने का गौरव तो आचार्य अरस्तू को दिया जाता है, परंतु उन्हें मार्ग दिखाने का श्रेय आचार्य प्लेटो को ही है।

अरस्तू से पूर्व काव्य और दर्शन के बीच जो विरोध या झगड़ा यूनानी जीवन में प्रचलित था, आचार्य प्लेटो ने पहली बार उस पर गम्भीरता से विचार कर उन कारणों का विवेचन किया जो काव्य के महत्त्व की स्वीकृति में बाधक थे। यद्यपि उनके दृष्टिकोण में पक्षधरता हैं। नैतिकता, दर्शन, धर्म, आचार, जीवन के उपयोगी मूल्यों के प्रति समर्पित उनका मन सौन्दर्यवादी मूल्यों की प्रतिष्ठा कर उनके पक्ष में अपना मतदान नहीं कर सका। परन्तु उन्होंने अरस्तू के लिए निषेधात्मक रूप से आधार प्रस्तुत किया।

प्लेटो यद्यपि कलाओं को अन्य शास्त्रों की दासता से मुक्त न कर पाए यह उनकी परम्परा–प्राप्त दाय की विवशता थी, फिर भी उन्होंने अरस्तू से पहले प्रबल शब्दों में कलाओं में निहित आनन्द तत्व की स्वीकृति कर ली थी। प्लेटो की समर्थ अनुशासक बुद्धि की यह स्वीकृति ही बाद में अरस्तू के सिद्धान्त विवेचनका आधार बनी।''[9]

यह सर्वविदित है कि प्लेटो के काव्य–सिद्धान्त उनकी दार्शनिक मान्यताओं पर आधृत है। पश्चिम में कला को जन–कल्याण, हित एवं सत्य से असम्पृक्त रूप में देखने की प्रवृति का बीजारोपण 'प्लेटो ने ही किया। उन्होंने काव्य–सृजन, सम्प्रेषण और ग्रहण तीनों को दैवी–प्रेरणा का परिणाम माना। डॉ. जैन आचार्य प्लेटो की उद्भावनाओं का परीक्षण कर अपना निष्कर्ष इस प्रकार देती हैं– ''आचार्य प्लेटो की इस मान्यता में बल इतना ही है, कि उन्होंने काव्य के वस्तुपरक आधार की प्रतिष्ठा की। आदिम आचार्यों की भांति यद्यपि प्लेटो और अरस्तू दोनों का सिद्धान्त–विवेचन अनुगम (इन्डक्टिव) विधि पर आश्रित है, दोनों के सामने ही होमर के महाकाव्य एवं अन्य कृतिकारों की नाट्य–कृतियाँ वर्तमान थीं, फिर भी उनके विवेचन में मूल दृष्टि का भेद हैं। प्लेटो आदर्श राज्य से कवि को तिरस्कृत कर निष्कासित करने के फेर में थे, क्योंकि उसकी उपलब्धियाँ उनकी आदर्श राज्य–कल्पना के अनुकूल नहीं बैठती थी, और अरस्तू इस तिरस्कृत कवि के उद्धार में प्रयासरत। अतएव प्लेटो का अधिकांश विवेचन नकारात्मक या

अभावात्मक है। जिसमें विधान की अपेक्षा निषेध अधिक है और अरस्तू ने सकारात्मक या भावात्मक पद्धति का प्रश्रय लिया है। अतः उनके विवेचन में सिद्धियों की स्वीकृति अधिक है।

आत्मेतर या परस्थ को महत्व देनेवाले इस आदिम सिद्धान्त का सहजानुभूति के परवर्ती सिद्धान्त से भी तीव्र विरोध है। कला को मूलतः सहजानुभूति एवं उसकी मूल प्रक्रिया का घटन कलाकार के मानस में स्वीकार करनेवाले आचार्य क्रोचे जहाँ सहजानुभूति में कवि की अनुभूति और अभिव्यक्ति को अभिन्न मानते हुए, प्रातिभ ज्ञान में सम्पूर्ण कलात्मक सर्जना का अन्तर्भाव करते हैं वहाँ प्लेटो जैसे वस्तुवादी आचार्य इस प्रक्रिया में कवि की अहंता का पूर्ण विलोप एवं परिहार स्वीकार करते हैं। दोनों सिद्धान्तों के मान्य व अमान्य अंश परस्पर क्रमशः अमान्य व मान्य हैं।''[10]

सन्दर्भ :

1. आलोचनाः सृजन–प्रक्रिया, नलिन विलोचन शर्मा, 'आजकल', वरिष्ठ संपादक– राकेश रेणु, वर्ष–71, अंक–10, पूर्णांक–850, फरवरी 2016, माघ–फाल्गुन 1937, पृ. 19.
2. विजय बहादुर सिंह : आलोचना का जनतान्त्रिक चेहरा और पाठ, 'आलोचना' त्रैमासिक, प्रधान सम्पादक–नामवर सिंह, सहस्त्राब्दी अंक अड़तालीस, जनवरी–मार्च 2013, पृ. 147.
3. निर्मला जैन : कथा और समय का सच, किताबघर प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण–2015, पृ. 7.
4. कृष्णदत्त पालीवाल : हिन्दी आलोचना : समकालीन परिदृश्य, सामयिक बुक्स, नई दिल्ली, संस्करण–2014, पृ. 33.
5. मधुरेश : हिन्दी आलोचना का विकास, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम लोकभारती संस्करण–2012, पृ. 235.
6. रेवतीरमण : बीसवीं सदी की हिन्दी आलोचना, बीसवीं सदी का हिन्दी साहित्य, सम्पादक–डॉ. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली, तीसरा संस्करण–2012, पृ. 206.
7. रमेश दवे : आलोचना–समय और साहित्य, भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली, दूसरा संस्करण–2006, पृ. 61.
8. मधुरेश : हिन्दी आलोचना का विकास, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम लोकभारती संस्करण–2012, पृ. 239.
9. निर्मला जैन : प्लेटो के काव्य–सिद्धान्त, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम वाणी संस्करण 2011, पृ. 97.
10. काव्य की परिभाषा, काव्य–भेद और काव्य–स्वरूप, उपरिवत, पृ.53.

***

महिला लेखिका एवं हिन्दी उपन्यास में स्त्री विमर्श

डॉ. अन्तिमा कुमारी *

हिन्दी उपन्यास के क्षेत्र में महिला लेखिकाओं के आगमन ने 'स्त्री विमर्श' की दृष्टि से हिंदी उपन्यासों के वैशिष्ट्य को स्थापित तो किया ही स्त्रियों में आत्मविश्वास को भी जागृत किया, विभिन्न स्वावलम्बी नायिकाओं का चित्रण कर महिलाओं को जीवन जीने के नये रास्ते दिखाये।

यह नारी की चेतना और जागृति ही थी कि वे घूँटन भरी वैवाहिक जीवन को तोड़ने में भी संकोच नहीं करती, स्त्री–पुरुष के अहं के टकराव को ही दिखाया गया है मनू भण्डारी के उपन्यास 'आपका बंटी' में। इसमें शकुन का विश्लेषण द्रष्टव्य है–

''उसने कई बार अपने और अजय के संबंधों के रेशे–रेशे उधेड़े हैं– सारी स्थिति में बहुत लिप्त होकर भी और सारी स्थिति से बहुत तटस्थ होकर भी, पर निष्कर्ष हमेशा एक ही निकला है कि दोनों ने कभी प्यार किया ही नहीं। तर्कों और बहसों में दिन बीतते थे और ठंडी लाशों की तरह लेटे दूसरे को दुखी, बेचैन और छटपटाते हुए देखने की आकांक्षा में राते।''[1]

युगीन उपन्यासों में चित्रित नारी पात्र अपनी स्वअस्तित्व की रक्षा के लिए संघर्षशील नजर आती है। अपनी व्यक्तित्व तथा पहचान की रक्षा के लिए वह सामाजिक परम्पराओं को तोड़ने में भी संकोच नहीं करती। प्रारम्भिक उपन्यासों में नारी परम्पराओं से बंधी रहती है किन्तु स्त्री लेखिकाओं तथा कुछ पुरुष लेखक आधुनिक नारी को सारी वर्जनाओं को तोड़ने की हिम्मत देता है। उपन्यासों के माध्यम से स्त्रियों में जो चेतना आई, आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर होने, अपने जीवन के मुख्य निर्णयों को स्वयं लेने की जो हिम्मत आई उसे निम्न संदर्भों में देखा जा सकता है–

''युगीन नारियों के लिए विवाह की शर्त के रूप में यौनपावित्र्य की मर्यादा का कोई महत्व नहीं है। वे विवाह पूर्व और विवाहोत्तर संबंध भी बनाने लगी हैं। 'कुसुम अंसल' कृत 'उसकी पंचवटी' में साधवी पति के दब्बू और ठंडे व्यवहार को झेल नहीं पाती है। तब अपने पति के बड़े भाई का गर्भ धारण करती है। निरूपमा सेवती कृत 'मेरा नरक अपना है'' की शीला पति को छोड़कर मित्र के साथ फ्लैट शेयर करने लगती है और बाद में उसी से शादी करती है। महीप सिंह कृत 'यह भी नहीं' की शांता उन्मुक्त आकांक्षी है। ''मित्रो मरजानी' की 'मित्रो' अस्थिमज्जा से निर्मित एक नारी तन है जिसमें माँ के ममत्व और स्नेह के साथ–साथ औरत का तन भी है। उसका उन्मुक्त निर्भिक दृढ़ व्यक्तित्व परंपरावादी मूल्यों के बंधनों में बंधकर उसे रहने नहीं देता।''[2]

---

* एम.ए., पीएच.डी. (हिन्दी), बी.आर.ए.बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

''युगीन उपन्यासों में एक नया मोड़ आया जब नारी विमर्श के अन्तर्गत नारियों ने स्वयं नारी–मन की गुत्थियाँ पीड़ा, अवैध संबंधों की जटिलता, और परिवर्तित सोच और परिस्थितियों का चित्रण करना आरंभ किया। शशि प्रभा शास्त्री कृत ''नावे'' उपन्यास में परिवर्तित सोच का यथार्थ चित्रण है। इस उपन्यास में विपन्न मालती को सोमजी नौकरी दिलाते हैं। सोमजी की सहानुभूति अंतरंगता में बदल जाती है। यह अंतरंगता मालती को कुंवारी माँ बना देती है। कॉलेज की प्रिंसिपल अविवाहित हैं, वह मालती को इस स्थिति से उबारने के लिए उसकी शादी विजयेश से करा देती है। परंतु नारी को उसकी अतीत के साथ स्वीकार कर पाना पहले भी आज भी साधारण बात नहीं है। विजयेश भावनाओं के प्रवाह में आकर समाज सुधारक बनने की झोंक में शादी तो करता है। किन्तु बाद में वहीं संबंध विडंबनापूर्ण और तनावग्रस्त बन जाता है।''[3]

''युगीन संदर्भ में स्त्री की अस्मिता जागृत हो चुकी है। आज वह पति से पत्नी के रूप में उतना पाना चाहती है, जितना वह देती है। दांपत्य संबंध में आज वह परस्पर समान कर्तव्य और समान अधिकार की पक्षधर है। दांपत्य संबंध स्त्री–पुरुष के आपसी समझ, समर्पण और आत्मिक प्रेम पर आधारित हैं। यह समर्पण किसी शर्त या समझौते की बुनियाद पर नहीं है। परंतु आज यह पूरी बुनियाद ही हिल गई है। आधुनिकताबोध ने इस सहज आत्मिक संबंध को उलझा एवं विसंगतिपूर्ण बना दिया है। स्त्री–पुरुष संबंधों में बदलती सोच ने इस संबंध को व्यक्तिपरक और आलोचनात्मक बना दिया है।''[4]

आश्चर्य की बात है कि हिन्दी के अधिकांश आरम्भिक उपन्यास स्त्री विमर्श को ही लेकर लिखे गए और इन सभी उपन्यासों में धीमे–धीमे ही सही पर भारतीय समाज के नजरिए को बदलने का प्रयास किया। इस दिशा में महत्वपूर्ण प्रयास किया प्रेमचंद ने उनके स्त्री पात्र घर की चाहरदीवारी लांघते हैं, स्वतंत्रता और अस्मिता के लिए संघर्ष करते हैं परन्तु इन प्रयासों में वे या तो वेश्यालय चली जाती हैं या मौत ही मुक्ति देती है (निर्मला), लेकिन प्रेमचंद ने धनिया जैसा चरित्र भी गढ़ा है, जो समाज को ललकारती है। प्रेमचंद के नारी पात्रों की यही ललकार मैत्रेयी पुष्पा के स्त्री पात्रों में सुनाई देती है।

भुवन धनिया की वंशज है और मैत्रेयी प्रेमचंद की विरासत को नयी सम्भावनाओं से भर देती है। मैत्रेयी के उपन्यासों में दुर्गा और चंडी रूप अभिव्यक्ति पाता है। इनके पात्र तमाम खूबियों और कमजोरियों के साथ हमारे समक्ष प्रस्तुत होते हैं।

मैत्रेयी पुष्पा 'स्त्री विमर्श' को शक्तिशाली रूप में प्रस्तुत करती हैं।

'चाहे वह चाक हो, झूला–नट,
बेतवा बहती रही, अल्मा कबूतरी'

अगनपारखी, इदन्नम् विजन या फिर कहे ईसुरी फाग हो। इन उपन्यासों में स्त्री के शोषण, संघर्ष और साहस की कथा कही गयी है।

इनके उपन्यास में नारीवाद नारे के रूप में नहीं बल्कि जीवन के स्वभाविक प्रवाह के रूप में प्रस्फुटित हुए हैं।

इनके उपन्यास 'चाक' में चाक की नायिका सारंग कम पढ़ी–लिखी होने के बावजूद जाट समाज में व्याप्त रूढ़ियों के प्रति विद्रोह करती है। लेखिका का यह स्त्री–समाज को जागृत करने का ही प्रयास है कि अपने अधिकारों के लिए लड़ने से कोई परम्परा नहीं रोक सकती है। नारी संहिता तथा रूढ़ियों को तोड़ने का हिम्मत देता है उपन्यास 'चाक'। इस उपन्यास के सन्दर्भ में गोपाल राय लिखते हैं–

''चाक में जाट समाज में नैतिक संहिताओं की रूढ़ियों में जकड़ी पुरानी पीढ़ी के क्रूरता भरे हठ का, जिसके तहत नारी संहिता का उल्लंघन करने वाली स्त्री से जीने का अधिकार छीन लेना एक बहुत मामूली बात है, चित्रण किया गया है। इस समाज में किसी स्त्री की हत्या कर दिए जाने पर भी एक हल्की सी सुगबुगाहट के अतिरिक्त कोई विशेष हलचल नहीं होती, इसके प्रतिरोध में कोई खड़ा नहीं होता। इस क्रूर परिवेश में मैत्रेयी पुष्पा ने नारी नियति का जो चित्र प्रस्तुत किया है, उसमें एक चौंकाने वाली तागजी है। इस समाज में न केवल पिछड़ी जाति की स्त्री, वरन् दलित समाज की स्त्री भी प्रेम करने के अधिकार से वंचित है। इस 'अपराध' के लिए यदि रेशम की हत्या की जाती है, तो गुलबन्दी भी जिन्दा जला दी जाती है। कोई पुरुष इस अमानवीय कृत्य के विरोध में खड़ा होने की हिम्मत नहीं जुटा पाता। इसके विरोध में खड़ी होती है सारंग, जो बहुत पढ़ी–लिखी तो नहीं है, पर जिसमें संकल्प की गजब की दृढ़ता है और जिसके संकल्प को शान देता है श्रीधर प्रजापति। श्रीधर अपने आदर्श और प्रेम के चाक पर सारंग का नया चरित्र गढ़ता है। सारंग में अन्याय से लड़ने, आततायियों का मुकाबला करने, नारी अधिकारों के लिए जान दे देने तक की हिम्मत और दृढ़ता है।''[5]

प्रभा खेतान की स्त्री अनुनय की मुद्रा अथवा समर्पण के भाव में नहीं है, बल्कि अपने समस्त उर्जा के साथ एक मनुष्य के रूप में दिखाई देती है। वर्चस्ववादी स्थितियों के प्रति इनका संघर्ष ध्वंसात्मक है। 'छिन्नमस्ता' को पढ़ते वक्त यह धारणा बनती है कि स्त्री देह भर नहीं है और न ही स्त्री की यौनिकता को केवल देह और उसके उपभोग तक सीमित कर सकते हैं। भारतीय सभ्यता के इतिहास में स्त्री के सन्दर्भ में सारा कुछ पुरुष वर्ग द्वारा निर्धारित किया जाता है। प्रभा खेतान का सम्पूर्ण लेखन उसका प्रतिकार करता दिखाई देता है।

'स्त्री विमर्श' के सन्दर्भ में प्रभा खेतान का मानना है विवाह, पति, बच्चे से परे भी औरत का अस्तित्व होता है। 'तालाबन्दी' 'छिन्नमस्ता' 'अपने–अपने चेहरे' प्रभाजी का 'स्त्री विमर्श' पर प्रमुख उपन्यास है। 'छिन्नमस्ता' की प्रिया उपन्यास के एक सन्दर्भ में कहती है–

'' ''औरत कहाँ नहीं रोती? सड़क पर झाड़ू लगाते हुए, खेतों में काम करते हुए, एयरपोर्ट पर बाथरूम साफ करते हुए या फिर सारे

भोग–ऐश्वर्य के बावजूद.... पलंग पर रात–रात भर अकेले करवटें बदलते हुए.... हजारों सालों से इनके ये आँसू बहते आ रहे हैं।'' पुरुष द्वारा नारी का शोषण, या कहें कि नारी के शोषण और दमन में पूरे समाज की हिस्सेदारी, तथाकथित सभ्य समाज की पहचान बनी हुई है। आधुनिक युग में नारी के प्रति समाज के दृष्टिकोण में बदलाव तो जरुर आया है और स्त्री खुद भी अपनी लड़ाई लड़ने की संकल्प शक्ति से युक्त हो रही है।''[6]

प्रभा खेतान ने अपनी लेखनी के माध्यम से स्त्री के अन्दर के भाव की खामोशी को तोड़ा एवं उपन्यास विधा को नयी सार्थकता पदान की। वे लिखती हैं – 'मेरी मुक्ति की यात्रा प्रिया से शुरू होती है जो इस उपन्यास की मुख्य पात्र है।' वे आगे लिखती हैं– 'खुद महिला लेखिकाओं की कलम पे वर्जनाओं का गला लगा हुआ है, अपने बारे में, स्त्री पक्ष के बारे में कुछ कहना बाकी है, चूँकि वर्जनाओं की दीवार लांघनी अभी बाकी है।

प्रभा के पात्र के रूप में जो प्रिया है का साक्षात्कार एक ऐसी स्त्री के रूप में होता है, जो स्त्री होने की जकड़नों के खिलाफ निरन्तर संघर्ष करती हुई दिखाई देती है। इसमें प्रभा सहित उन सभी स्त्रियों की आवाजें हैं जिन्होंने प्रिया की तरह का जीवन घुट–घुटकर जीया है। प्रिया ऐसी प्रतिनिधि है, जो अपनी स्मृति–यात्रा से गुजरते हुए स्त्री शोषण के रूपों के साथ ही पुरुष वर्चस्ववादी सत्ता को ठोकरें मारती है एवं एक आत्मनिर्भर स्त्री का निर्माण करती है। उपन्यास की नायिका मात्र देह बनने से इनकार करके अस्मिता की एक ऐसी दुनिया में ले जाती है, जहाँ स्त्री आत्मनिर्भर है, जो उसकी पहचान है और इस पहचान के लिए घर के निरंकुश दीवारों को अपनी आर्थिक स्वाधीनता के विस्फोट से उड़ा देती है।

'छिन्नमस्ता' उपन्यास के संबंध में गोपाल राय लिखते हैं–

''यह आधुनिक नारी की त्रासदी और उसके संकल्प का एक प्रामाणिक दस्तावेज है। यह एक ऐसी स्त्री की संघर्ष कथा है, जो रूढ़ बन्द समाज से टकराते और अपने को भावात्मक स्तर पर लहूलुहान करते हुए अपने अस्तित्व को नये सिरे से परिभाषित करने की कोशिश कर रही है। इस उपन्यास की पहचान बनती है प्रिया के चरित्र से जो अपने को सदियों से शोषित–पीड़ित नारी की पंक्ति से अलग करने में समर्थ होती है। वह समाज और परम्परा के जड़ मूल्यों को चुनौती देती हुई अपनी अलग पहचान बनाती है, पर कहीं भी असंतुलित नहीं होती। 'छिन्नमस्ता' का मिथक प्रिया जैसी संवेदनशील आधुनिक नारी के लिए बहुत सार्थक है, जो इस मनःस्थिति में ही अपनी लहूलुहान जिन्दगी को दोबारा जीती है, वह अपना कटा सिर हाथ में लेकर, पुरुष समाज से संघर्ष कर रही है।''[7]

तत्कालीन उपन्यासों में ऐसी स्त्रियों का चित्रण हो रहा है जो अपने अधिकारों के लिए सजग हैं। अब वे पति की स्वेच्छाचारिता को स्वीकार नहीं करती, अपनी अस्मिता के लिए वह पति से भी टकरा सकती है–

''माना कि शास्त्रों में लिखा है कि ऊँचे खानदान के पुरुष का कर्तव्य है कि अपनी पत्नी और गृहस्थ सुख के लिए पति की लालसाओं की हत्या पर उतर आए।''[8]

''ये सब पुरुष प्रधान समाज के अवसरवादी प्रसंग है। एक ओर पतिव्रत धर्म की परिभाषा करता राम के साथ सीता का वनगमन है, दूसरी ओर उसी निष्ठा को तोड़ता हुआ मर्यादा पुरुषोत्तम राम का सीता की अग्निपरीक्षा लेना।''[9]

मारवाड़ी समाज को केन्द्र में रखकर अलका सराबगी ने 'कलिकथा वाया बाईपास' तथा प्रभा खेतान ने 'पीली आंधी' में बड़ी शिद्दत से मारवाड़ी महिलाओं के जीवन की गहरी पड़ताल की। यहाँ महिलाओं की स्थिति काफी तलख कर देने वाली है। इन उपन्यासों के केन्द्र में नारी व्यथा है।

कलिकथा : वाया बाइपास में कथा शहर के बाहर निकल जाती है वे कलयुग को अपनी कथा में समा लेना चाहती है परन्तु उनके पास कथा की कमी है इसलिए सारे प्रसंग वक्तव्य बनकर रह जाते हैं।

पीली आंधी में प्रभाजी ने मारवाड़ियों के संघर्ष तथा पैसा कमाने के अदम्य इच्छाशक्ति का चित्रण किय है। इस उपन्यास के नारी पात्रों में 'सोमा' और 'ताई' के जीवन प्रसंग सबसे अधिक मार्मिक बन पड़े हैं। दोनों इस व्यवस्था का विरोध करती है। सोभा उस जड़ समाज को छोड़कर चली जाती है, परन्तु ताई उसी व्यवस्था में घुलती जीती है। उपन्यास के अंत में ताई की प्रेमकथा का प्रसंग जोड़कर तो प्रभाजी ने उपन्यास को और भी मार्मिक बना दिया है।

'शेष कादम्बरी' अलकाजी के द्वारा रचित एक अन्य उपन्यास है। रूबी दी एक सामान्य भारतीय नारी की प्रतिनिधि हैं। सतपीढ़िया शाह की बेटी होने के बावजूद उन्हें पल–पल औरत होने की सजा भुगतनी पड़ती है।

शेष कादम्बरी नारी को खुद को तलाशने और टटोलने की कथा है, जो आगे बढ़कर नारी अस्मिता की तलाश में परिणत हो जाता है। कथा में आयी तमाम महिला पात्र अपने वजूद की तलाश में संघर्ष कर रही है। 70 वर्ष की उम्र में रूबी दी को यह सवाल कचोटता है कि वे किसके लिए जी रही है। सविता रूबी दी की दूसरी अक्स है जो परामर्श नामक रूबी दी की संस्था में बीमार अवस्था में आयी थी। पत्रकार कादम्बरी जो रूबी दी की नातिन है वह चाहती है कि लोग सोशल वर्क के बजाए सोशल जस्टिस के लिए लड़े। कादम्बरी ही रूबी दी के सामने यह सवाल खड़ा करती है कि क्या वेश्याओं के बीच काम करने वाली संस्था कुछ ठोस कार्य कर सकी हैं, क्या वे एक भी औरत को वेश्या से औरत का दर्जा दिलवाने में सफल रही है या फिर एक भी लड़की को वेश्या बनने से रोक सकी है। जहाँ रूबी दी समाज की यातनाओं को सहती हुई औरत है वहीं दूसरी ओर कादम्बरी समाज के बनाए बंधनों एवं हदबंदियों को तोड़ती औरत है। इसके अलावा इसमें देवीदत्त मामा एवं मिस्टर वियेना की कथा है। मिस्टर वियेना की

प्रेमकथा मार्मिक बन पड़ी है, परन्तु बलिदान यहाँ भी औरत का ही हुआ। यह एक प्रकार की फैण्टेसी कथा मानी जा सकती है।

चित्रा मुद्गल के उपन्यासों में 'एक जमीन अपनी' जो सौन्दर्य प्रतियोगिता से लेकर सिन्दूर पोछने तक की कथा की अपने अंदर समेटे हुए हैं के साथ–साथ गिगुड और आवां जैसी उत्कृष्ट रचना शामिल है।

आवां बेहद उर्जावान भाषा में देखे एवं भोगे गए यथार्थ को प्रतिबिम्बित करता है। यह आत्मकथात्मक है और तटस्थ सर्जक की कृति भी। यह चित्राजी के जरिए समाज की क्रूर सच्चाईयों को रचनात्मक शैली में हम तक पहुँचाने का प्रयत्न है। 1990 के दशक में घटने वाली परिवर्तनों का विश्वसनीय दस्तावेज की तरह है यह उपन्यास।

'आवां' उपन्यास 550 पृष्ठों के लगभग रचित है। इस उपन्यास में लेखिका ने ट्रेड यूनियन नेता देवीशंकर पाण्डे की बेटी नमिता पांडे जिसकी उम्र लगभग 21 साल है के जीवन संघर्षों के माध्यम से बम्बई के मजदूर संगठनों, मजदूर परिवार की स्थितियों तथा कारोबारियों के स्वार्थ पूर्ण जीवन शैली को पेश किया है।

ध्यान रखने की बात है कि इसी दशक में स्त्री प्रधान रचनाओं और स्त्रीवादी आलोचना का विकास काफी तेजी से हुआ और स्त्री लेखिकाओं ने अपनी रचना के मूल्यांकन के लिए– यथार्थवाद, आलोचनात्मक यथार्थवाद और रूपवाद – भाषा चिन्तन आदि के खिलाफ काफी मुखर होकर मोर्चा भी खोल दिया। उन्होंने साहित्यिक पाठों तथा संस्कृति में मौजूद वर्चस्वों की व्यवस्थित आलोचनाएँ की तथा इन सीमा से उपन्यासों को उबारने के लिए स्वयं भी रचनात्मक लेखन किया।

उपन्यासों में कुछ अन्य नाम भी हैं जिसे उद्धृत करना आवश्यक है जैसे–मृणाल पांडे की पटरंग पुराण, नमिता सिंह– अपनी सलीबें रमणिका गुप्ता–सीता, जया जादवाणी–तत्वमसि क्षमा शर्मा–परछाईं, अन्नपूर्णा, राजी सेठ–तत्सम, मेहरूनिशा परवेज– अकेला पलाश चन्द्रकान्ता–अपने–अपने कोणार्क, कथा सतिसर, गीताञ्ली श्री–तिरोहित, मिथलेश्वर–माटी काहे कुम्हार की, भगवान दास मोखाल–बाबल तेरे देश में प्रतिमा राय–द्रौपदी इत्यादि।

इस सबसे ऊपर एक नाम जहाँ से ये कड़ियाँ शुरु हुई वह है महादेवी वर्मा की– 'श्रृँखला की कड़िया' जिन्होंने इस विषय को बड़ी संवेदना के साथ प्रस्तुत किया। स्त्री विमर्श से जुड़े आत्म कथात्म शैली की परम्परा भी चलती रही जैसे–अन्या से अनन्या। दलित स्त्रियों से भी जुड़ी परम्परा रही – 'अछूत' और 'जूठन' के रूप में।

आलोचनात्मक पुस्तकों के रूप में कुछ प्रबुद्ध लोगों के द्वारा लिखी गयी रचनाएँ भी अहम योगदान निभाती रही हैं वे हैं– क्षमा शर्मा–स्त्रीवादी विमर्श, अनामिका–मन मांझने की कला, मृणाल पांडे–परिधि पर स्त्री, अरूण प्रकाश–स्त्री मुक्ति का सपना, स्त्री मन और देह, मृदुला सिन्हा–मात्र देह नहीं है औरत, अरविन्द जैन–औरत होने की सजा, कात्यायनी–दुर्ग द्वार पर

दस्तक, उषा महाजन–उठो अन्नपूर्णा साथ चलें मृणाल पांडे–स्त्री देह की राजनीति से देश की राजनीति तक, जहाँ औरतें गढ़ी जातीं इत्यादि।

अतः एक ओर औरत जगत के लिए अनिवार्य होना चाहती है और सर्वोपरिता की ओर अग्रसर होना चाहती है, तो दूसरी ओर उसे ऐसी परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है, जो हमेशा उसे नगण्य बनाने पर तुली होती है। प्रश्न उठता है कि कैसे एक व्यक्ति स्त्री की स्थिति में रहते हुए परितोष पा सकती है?

इस प्रकार हम देखते हैं कि आज के उपन्यास सदियों से धर्म–ग्रन्थों में वर्णित नारी संहिता मानने से इनकार कर स्त्री को स्वतंत्रता प्रदान करते हैं। 'स्त्री विमर्श' की दृष्टि से उपन्यासों के वैशिष्ट्य' को निम्न बिन्दुओं से समझा जा सकता है–

- उपन्यास का उदय यथार्थवादी चेतना की अभिव्यक्ति से जुड़ा है।
- उपन्यास जीवन की संश्लिष्टता और वैविध्य को उभारने में अधिक सक्षम है।
- स्त्री प्राचीन समय से ही साहित्य सर्जना के केन्द्र में रही है।
- कभी उसे महिमामंडित करके वर्णित किया गया तो कभी भोग्या बनाकर।
- उत्तरवैदिक काल में स्त्री को पुरुष के अधीन कर दिया गया।
- प्रारम्भिक हिंदी उपन्यासों में हिंदू आदर्शों को स्वीकारते हुए पुरुष वर्चस्व को ही कायम किया गया है।
- प्रारम्भिक हिंदी उपन्यासों में स्त्रियों के प्रति होने वाले क्रूर प्रथाओं की ओर समाज का ध्यान आकृष्ट किया गया।
- उपन्यासों में हिन्दी समाज की चिरलांछित, चिरवंचिता, चिरवन्दिनी नई दीप्ति के साथ हमारे सामने आई।
- हिंदी उपन्यास में विवाहपूर्व प्रेम का अंकन भी 'रहस्य कथा' से आरम्भ होता है।
- भारतेन्दु युग के उपन्यासकार स्त्री की सामाजिक स्थिति की ओर लोगों का ध्यान आकृष्ट करने लगे थे।
- किसी भी मनुष्य के शोषण और उत्पीड़न के कारणों में अशिक्षा प्रमुख है।
- प्रेमचंद वेश्यावृत्ति के विरोध में सामाजिक आन्दोलन चलाते हुए भी उसके प्रति घृणा व्यक्त नहीं करते।
- 'सेवासदन' में वेश्याजीवन को एक सामाजिक सन्दर्भ में देखा गया है।
- 'निर्मला' में दहेज और अनमेल विवाह की समस्या उठाई गई है।
- अनमेल विवाह का दण्ड स्त्रियों को उम्र भर भुगतना पड़ता है।
- सुमित्रा (प्रतिज्ञा उपन्यास) पर नारी–मुक्ति आन्दोलन का प्रभाव स्पष्ट है।
- हिंदी उपन्यासों ने स्त्रियों की चेतना को जागृत किया।
- मार्क्सवाद स्त्री–स्वतंत्रता का अधिक पक्षधर है।
- यशपाल ने अपने उपन्यासों में स्त्री–पुरुष संबंध की परम्परागत संहिता को जबर्दस्त चुनौती दी है।
- यशपाल ने स्त्री के मुक्त प्रेम और काम संबंध का समर्थन किया है।

- पुरुष द्वारा नारी पर आरोपित 'पतिव्रता' का मूल्य और 'सतीत्व' की धरणा एक साजिश है।
- आधुनिक उपन्यासों की नारी परम्परागत नारी संहिता को ठुकराती है।
- ये उपन्यास नारी को आर्थिक स्वतंत्रता और स्वयं जीवनसाथी चुनने या अविवाहित रहने की हिम्मत देते हैं।
- आज नारी घुंटन भरी वैवाहिक जीवन को तोड़ने में भी संकोच नहीं करती।
- आज के उपन्यासों में चित्रित नारी पात्र अपनी स्वअस्तित्व की रक्षा के लिए संघर्षशील नजर आती हैं।
- आज लेखक अपने उपन्यासों के माध्यम से नारी को सारी वर्जनाओं को तोड़ने की हिम्मत देते हैं।
- युगीन नारियों के लिए विवाह की शर्त के रूप में यौनपावित्र्य की मर्यादा का कोई महत्व नहीं है।
- आज स्त्री पति से पत्नी के रूप में उतना पाना चाहती है जितना वह देती है।
- प्रभा खेतान विवाह, पति, बच्चे से परे भी औरत का अस्तित्व स्वीकारती हैं।
- छिन्नमस्ता में स्त्री अपना कटा सिर हाथ में लेकर पुरुष समाज से संघर्ष कर रही है।

किसी विद्वान ने कहा है कि गुलाम को अगर गुलामी का एहसास करा दो तो वह स्वयं गुलामी से मुक्ति पा लेगा। हिन्दी उपन्यासों का 'स्त्री विमर्श' के सन्दर्भ में यही वैशिष्ट्य है कि इसने स्त्रियों को उसके दयनीय स्थिति से अवगत कराकर उनमें संघर्ष और विरोध करने की चेतना का संचार किया। जिसकी परिणति उनके स्थिति में सुधार के रूप में सामने आई।

सन्दर्भ :

1. आपका बंटी, मन्नू भण्डारी हिंदी की महिला उपन्यासकारों की मानवीय संवेदना (से उद्धृत), पृ. 35.
2. मित्रो मरजानी–कृष्णा सोबती–साढ़ोत्तर हिंदी उपन्यास प्रतिपाद्य और शिल्प से उद्धृत, पृ. 59.
3. नावें–शशि प्रभा शास्त्री–हिन्दी की समकालीन महिला उपन्यासकार, पृ. 31.
4. अंतिम दशक के हिंदी उपन्यासों में नारी समस्याएँ, डॉ. श्रीमती अर्चना झा, मदर टेरेसा एडुकेशन ट्रस्ट, पटना, 2009, पृ. 63–64.
5. हिन्दी उपन्यास का इतिहास, गोपाल राय, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2005, पृ. 388.
6. वही, पृ. 384.
7. वही, पृ. 384.
8. अल्मा कबूतरी – मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 93.
9. इदन्नमम–मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 93.

***

प्रयोजनमूलक हिन्दी में तकनीकी का प्रयोग

डॉ. ममता कुमारी *

वैज्ञानिक एवं तकनीकी हिन्दी से तात्पर्य हिन्दी के उस स्वरूप से है जिसका प्रयोग विज्ञान और तकनीकी विषयों को अभिव्यक्त करने के लिए किया जाता है। यह भाषा के आधुनिकीकरण के पहलू से भी जुड़ा है। 1961 में भारत सरकार के शिक्षा मंत्रालय के अधीन वैज्ञानिक और तकनीकी शब्दावली आयोग की स्थापना की गई। यह आयोग विधि क्षेत्र का छोड़कर अन्य सभी विषयों के पारिभाषिक शब्दों के निर्माण व भाषा के तकनीकी मजबूती पर जोर देने का कार्य किया। वैज्ञानिक और तकनीकी शब्दावली आयोग वर्तमान में भारत सरकार के शिक्षा मंत्रालय के अधीन कार्य कर रहा है। मानक शब्दावली तैयार करने में इसकी अहम् भूमिका रही है। इस भूमिका से प्रयोजनमूलक हिन्दी के तकनीकी प्रयोग को काफी बल मिला है।

वर्तमान समय में पत्रकारिता, विज्ञापन, जनसंचार, बैंक आदि कई क्षेत्रों में हिन्दी का भरपूर उपयोग हो रहा है। हिन्दी के समाचार–पत्र विश्व के सर्वाधिक पढ़े जाने वाले पत्र बन गये हैं। स्वाभाविक है हिन्दी अब धीरे–धीरे तकनीकी समृद्धि की और अग्रसर है, जो इसके क्षेत्र को व्यापकता प्रदान कर रहा है। प्रयोजनमूलक हिन्दी सिद्धान्त और प्रयोग में 'दंगल झाल्टे' कहते भी हैं– ''वर्तमान युग में हिन्दी के विज्ञापन भाषा का रूप जनसंचार के माध्यमों (समाचार–पत्र, पत्रिकाएँ, रेडियो, दूरदर्शन, सिनेमा) आदि होते जा रहे हैं।''[1] क्षेत्र के इस व्यापकता के कारण ही प्रयोजनमूलक हिन्दी ने अपने विभिन्न क्षेत्रों में लगातार विकास किया है। खासकर बैंकिंग क्षेत्र में प्रयोजनमूमलक हिन्दी ने अपनी मजबूत उपस्थिति दर्ज की है। ''विजयपाल सिंह के अनुसरा'' भारत में बैंकिंग व्यवस्था पश्चिम की देन है। देश के आर्थिक ढॉचे के निर्माण और उसके सुनियोजित विकास में बैंकों की भूमिका महत्वपूर्ण है।''[2] 1881 ई. में अवध कमर्शियल बैंक तथा 1894 में पंजाब नेशनल बैंक से होते हुए भारत में बैंकिंग सिस्टम उत्तरोत्तर विकसित होता चला गया और इस सबके नियंत्रण हेतु रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया की स्थापना की गई। यहॉ ग्राहकों और बैंकों के बीच एक ऐसी भाषा की जरुरत थी जिसे दोनों पक्ष आसानी से समझ सकें। कुल मिलाकर डॉॉ रेखा रानी की बात माने तो ''अभी तक जो बैंकिंग एक विशेष वर्ग तक सीमित थी वह अब जन सामान्य से जुड़ गयी। अतः कारोबारी विकास एवं सांविधिक उपबंधों को पूरा करने हेतु बैंकों के लिए यह आवश्यक हो गया कि वे हिन्दी में कार्य करें।''[3] चूॅकि मूल बैंकिंग नियम विनियम अन्य कागजात अंग्रेजी में ही थे। अतः राष्ट्रीयकरण के बाद इन्हें हिन्दी में भी जारी/प्रकाशित करना अनिवार्य हो गया। राजभाषा अधिनियम के अनुसार धारा 3 (3) के प्रलेख

---

* एम.ए., पीएच.डी. (हिन्दी), पंखाटोली, मुजफ्फरपुर

अनिवार्यतः द्विभाषिक रूप में जारी किए जाने चाहिए। इसके लिए बैंकों ने स्पष्टतः अपने यहॉ राजभाषा अधिकारी को रखकर हिन्दी को बैंकिंग व्यवस्था के मुख्य धारा में लाने का मजबूती से प्रयास किया। इसके लिए स्वाभाविक था हिन्दी के तकनीकी विकास को समृद्ध किया जाए जिससे तकनीकी प्रयोग में प्रयोजनमूलक हिन्दी को समृद्ध किया जा सके।

भारत सरकार और भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा बैंकों में हिन्दी प्रयोग के संबंध में जारी किये गये निर्देश को स्पष्टतः देखा जा सकता है–

(क) बैंकिंग कार्य–व्यवहार में हिन्दी का प्रयोग करते समय देवनागरी लिपि का प्रयोग किया जाए और भारतीय अंकों के अन्तर्राष्ट्रीय रूप का प्रयोग किया जाए।

(ख) बैंक–कार्यालयों से जारी किए जाने वाले सभी प्रपत्र द्विभाषी हों अर्थात वे हिन्दी–अंग्रेजी दोनों भाषाओं में रहें।

इस प्रकार सभी बैंकों के कार्य–पालक, शाखा–प्रबन्ध कार्याधिकारी और कर्मचारियों को चाहिए कि वे अपने ही हित में और साथ–साथ सरकार को राजभाषा–विषयक नीति के कार्यान्वयन के हितों में आदेशों–अनुदेशों का पालन सुनिश्चित करे। यह कार्य किसी व्यक्ति विशेष के वश में नहीं हैं, अपितु इसके लिए सामूहिक प्रयास की ही आवश्यकता है। यह तभी संभव हो सकता है, जबकि सभी प्रायोक्ताओं के मन में हिन्दी के प्रति अनुराग जाग्रत हो।[4]

डॉ आर.जी. जायसवाल कहते हैं– फिर भी कुल मिलाकर इस समय बैंकों में हिन्दी का प्रयोग तमाम पूर्वाग्रही न–नुकूर अंग्रेजी प्रयोग की जिद्द और हठवादिता के बावजूद काफी संतोषप्रद स्तर पर हो रहा है।

आज जब देश के दूर दराज के गॉवों, कस्बों, में भी बैकिंग सुविधा उपलब्ध होने लगी है, तो समय का तकाजा है कि बैंकों द्वारा आमलोगों की जनसाधारण की भाषा में बैकिंग सुविधा उपलब्ध कराई जाये। भारत सरकार की भषा नीति के सम्यक् अनुपालन के लिए इस आशय के स्पष्ट निर्देश जारी किए गए हैं कि समस्त यांत्रिक एवं इलेक्ट्रॉनिक सुविधाएँ हिन्दी में भी उपलब्ध हो अर्थात् प्रचालक को इच्छानुसार हिन्दी या अंग्रेजी में ऑकड़ा प्रविष्टि करने और कम्प्यूटर से तैयार होने वाली सामग्री इच्छानुसार हिन्दी या अंग्रेजी में प्रिंट होकर उसमें उपलब्ध हो सके, इसके लिए अब समस्त सुविधाएँ उपलब्ध है। अब आवश्यकता है, बैंकों को अपना मन बनाने की, वैचारिक एवं मानसिक अवरोध दूर करने की और वास्तविक अर्थों में बैंकों में हिंदी के क्षेत्र में भी कम्प्यूटर संस्कृति लाने की। लब्बोलुबाब यह कि कुछ अपवादों को छोड़कर बैंकों की अधिकांश शाखाओं में राजभाषा नियमों का अनुपालन हो रहा है, यथा–हिन्दी में प्राप्त पत्रों का उत्तर हिन्दी में दिया जा रहा हैं, हिन्दी में लिखे गये और हस्ताक्षरित चेक स्वीकार किए जा रहे हैं, वेतन–बिलों सहित, वित्तीय किस्म के दस्तावेजों पर हिन्दी में हस्ताक्षर किए जा रहे हैं, टिप्पणियॉ, मसौदे, मंजूरी रजिस्टर, संकल्प, सामान्य आदेश, प्रशासनिक रिपोर्ट, नोटिस, विज्ञापन बैंकों द्वारा निष्पादित सभी तरह की

संविदाएँ, निर्णय, अनुदेश संबंधी सभी कार्य हिन्दी में किये जा रहे हैं, इसके साथ ही वार्षिक रिपोर्ट, फाइल कवर, सील, रबर की मुहरे, डायरियॉ, स्टीकर, कैलेण्डर, विजिटिंग कार्ड, डेस्क कैलेण्डर और अन्य सभी उपहार की वस्तुएँ, साइन बोर्ड, काउन्टर मैनुअल, संहिता, फॉर्म, टाइपिस्टों, स्टैनाग्राफरों, डिमाण्ड ड्राफ्टों से संबंधित सभी कार्य अंग्रेजी के साथ–साथ अब हिन्दी में भी हो रहे हैं। यह शुभलक्षण है। अपनी मातृभाषा, राजभाषा, संपर्क भाषा और बहुलांश की भाषा हिन्दी के प्रति यही हमारा निष्कलुष और अनाविल कर्तव्य है।[5]

तकनीकी प्रयोग में प्रयोजनमूलक हिन्दी के व्यापक स्वरुप पर गौर करने के इसके और भी क्षेत्र स्पष्टतः उजागर होते हैं। आज के समय में बाजारवाद का दौड़ है जिसमें बीमा एक महत्वपूर्ण क्षेत्र है जहॉ हिन्दी की आवश्यकता एवं अनुप्रयोग का काफी महत्व है। इसके तहत बीमा कंपनियॉ अधिक से अधिक अपने क्षेत्र का प्रसार कर पाती है। भारत में इस क्षेत्र का विकास 19वीं शताब्दी से देखने को मिलता है। इसके अन्तर्गत जीवन बीमा निगम व साधारण बीमा निगम दोनों कार्यों को समझा जा सकता है। बैंकों की तरह जीवन बीमा निगम ने भी भारत के लगभग हरगॉव में अपनी उपस्थिति दर्ज करा लिया है। अतः ऐसी स्थिति में बैंकों की तरह जन–जन की सेवा करते हुए अपनी आर्थिक स्थिति को पुख्ता करने के लिए बीमा निगम को भी अपनी देसी भाषा की आवश्यकता महसूस हुई। संभवतः साठ के दशक तक निगम में हिन्दी प्रयोग की स्थिति शून्य थी, भारत सरकार के राजभाषा संबंधी आदेश भी निगम पर लागू नहीं किए जाते थे। पर आज स्थिति बिल्कुल बदल गई है। प्रयोजनमूलक हिन्दी ने अपनी स्थिति इतनी सुदृढ़ कर ली है कि तकनीकी प्रयोग में इसे अनदेखा नहीं किया जा सकता है। तभी तो निगम में प्रयुक्त होने वाली अंग्रेजी शब्दावली का हिन्दीकरण करने, अपने केन्द्रीय कार्यालयों से लेकर गॉव–गॉव तक फैले छोटे कार्यालयों तक राजभाषा अधिनियम एवं नियमों को लागू करने, बीमादारों की सेवा हिन्दी में ही करने आदि से देश की आर्थिक स्थिति में भी इसकी महत्ता स्पष्टतः उजागर हुई है। यह बिल्कुल कहा जा सकता है कि हिन्दी प्रयोग में पग–पग पर उत्पन्न होने वाली कठिनाईयों और समस्याओं का निराकरण बड़े ही सहज व धैर्यपूर्वक करते हुए प्रेम व सद्भाव से बीमा निगम के कर्मचारियों–अधिकारियों ने हिन्दी प्रयोग को काफी ऊँचाइयों तक पहुॅचाया है। इसमें कोई द्वैध नहीं है कि अंग्रेजी कम्प्यूटर की वजह से कुछ समय के लिए बाधा जरुर हुई थी किन्तु पुनः कम्प्यूटरों में हिन्दी प्रयोग शुरु हो जाने से इस निगम में हिन्दी–प्रयोग पूर्व की स्थिति को प्राप्त हो गया है। यहॉ निश्चय ही तकनीकी प्रयोग में प्रयोजनमूलक हिन्दी अपनी अच्छी स्थिति के कारण ही प्रतिस्पर्धा में अपनी सशक्त उपस्थिति दर्ज कर पाती है।

राजभाषा अधिनियम की कई धाराओं को भी इस संदर्भ में समझा जा सकता है– जैसे धारा 3 (3) के अनुसार निगम के कुछ कागजात हिन्दी और अंग्रेजी में साथ–साथ जारी करना अनिवार्य है। यहॉ नियम 5 के

अनुसार हिन्दी प्राप्त पत्र का उत्तर हिन्दी में ही दिया जाना अनिवार्य है। इस संबंध में भारत सरकार के वित्त मंत्रालय से समय–समय पर हिन्दी प्रयोग संबंधी सुझाव व निर्देश जारी होते रहते हैं। वैश्वीकरण व औद्योगिक गतिविधियों में तेजी के कारण यह सुझाव काफी महत्वपूर्ण साबित होते हैं। इससे बीमा व्यवसाय अपने क्षेत्र का विस्तार करने के साथ–साथ लोगों का विश्वास हासिल करने में भी सफल हो जाते हैं। यह स्वभाविक है कि बीमा बाहार में सफलता हासिल हेतु एक सशक्त भाषा की काफी महत्वपूर्ण भूमिका होती है। इसलिए हिन्दी यहॉ एक बेहतर विकल्प साबित हो जाता है। आज बाजार की मुख्य भाषा बनकर इसने बाजार का नक्शा और चरित्र ही बदल दिया है। राष्ट्र की सरहदों को लॉघते हुए चीन, पाकिस्तान, श्रीलंका, यूरोप आदि देशों में इंटरनेट, कम्प्यूटर, ई–मेल में माध्यम से अपनी सशक्त उपस्थिति दर्ज कर रही है। यह सब तकनीकी प्रयोग व वैज्ञानिक विकास से ही संभव हो पाया है। स्वतंत्रता आंदोलन के समय को ले लें तो हम पाते हैं कि, उस समय जितनी भी सामाजिक समस्याऍ थी उन सबने अपने कार्यक्रमों में हिन्दी को महत्वपूर्ण स्थान दिया। ब्रह्म समाज, आर्य समाज, प्रार्थना समाज, रामकृष्ण मिशन, थियोसोफिकल सोसाइटी आदि सभी ने अपना संदेश लोगों तक पहुॅचाने में हिन्दी का आश्रय लिया अंग्रेजों ने दक्षिण भारत में अपने प्रसार के लिए गोरे फौजी अफसरों के लिए हिन्दी सीखना अनिवार्य कर दिया था। जॉर्ज ग्रियर्सन के अनुसार–कुछ अंग्रेज सौदागर निःसंदेह धड़ल्ले से हिन्दुस्तानी बोल सकते थे।[6]

आज विज्ञान का युग है। जीवन का प्रत्येक क्षेत्र आज विज्ञान से प्रभावित है। विज्ञान के कई आविष्कारों ने हमारी जीवन शैली को पूरी तरह से बदल दिया है। कम्प्यूटर एक इलेक्ट्रॉनिक मशीन है, जोड़ना, गिनना, भाग देना आदि क्रियाओं द्वारा डाटा से सूचना निकालने और उसकी प्रक्रिया द्वारा कई तरह के कार्य किये जा सकते हैं। इस प्रक्रिया को 'डाटा प्रोसेसिंग' कहा जाता है। इस मशीन की विशेषता है कि यक कई तरह के कार्य बहुत तेज गति से करती है, जिसका काम बताया जाए, उतना ही काम सही–सही तरीके के बिना गलती के और अविरत रूप में करती हैं। ऑकड़ों के अपार भण्डार को कम जगह में संग्रहित करके रखने का और जब मॉग तब तुरंत प्रस्तुत करने का कार्य भी यह मशीन करती है।

कम्प्यूटर के बारे में विस्तृत जानकारी देते हुए माधव सोनटक्के जी लिखते हैं– ''कम्प्यूटर का जन्म मूलतः गणनाओं की समस्या के हल के रूप में हुआ है। ब्रिटिश गणितज्ञ चार्ल्स बैवेज (सन् 1872–1871) ने सन् 1822 में रॉयल सोसायटी के लिए एक छोटा–सा गणक यंत्र तैयार किया, जिसे उन्होंने 'डिफरेन्स इंजन' का नाम दिया था। सन् 1955 और 1860 के मध्य उन्होंने एक ऐसे यांत्रिक संगणक का डिजाईन तैयार किया, जिससे प्रायः गणितीय कार्य (मैथेमेटिकल ऑपरेशन्स) किये जा सकते थे। यह डिजाईन जटिल था। इसे त्रुटिपूर्ण भी माना गया, फलतः अधूरा रहा। वर्ष 1937 में हार्वर्ड विश्वविद्यालय के प्रो. एच. आइकेन न बैवेज का सपना साकार किया।

आइकेन ने 1944 में एक ऐसे यंत्र का निर्माण किया, जिसमें स्वयंचालित ढंग से अंकगणितीय क्रियाओं को सफलतापूर्वक सम्पन्न किया जा सकता था। इस मशीन को 'हार्वर्ड मार्ग–1' यह नाम दिया गया। यंत्र ने प्रथम आधुनिक कम्प्यूटर होने का सम्मान प्राप्त किया। तब से लेकर आज तक विकसित होकर कम्प्यूटर हमारे जीवन पर हावी हुआ है।

भारतवर्ष में कम्प्यूटर का आगमन सन् 1955 में हुआ। सबसे पहला कम्प्यूटर भारतीय सांख्यिकी संस्थान कलकत्ता में आया। प्रथम भारतीय कम्प्यूटर (आई.एस.आई.जे.यू) का डिजाइन जुलाई 1964 में आई.एस.आई (इंडियन स्टेटिस्टिकल इंस्टीट्यूट) कलकत्ता और जादवपुर यूनिवर्सिटी ने तैयार किया था। यह कम्प्यूटर जादवपुर युनिवर्सिटी में बना। आगामी आठ वर्षों में दूसरी। 70 विदेशी कार्यप्रणाली स्थापित की गयी। उस समय आई. बी.एम. और आई.सी.एल. ही सर्वाधिक जानी–मानी कम्पनियॉ थीं। आज भारत में लगभग 40 कम्पनियॉ माइक्रो कम्प्यूटरों का निर्माण कर रही हैं। इन कम्पनियों ने कम्प्यूटर उद्योग में क्रान्ति कर दी है और कम्प्यूटर की शक्ति को एक स्तर प्रदान किया है।[7]

निष्कर्ष के तौर पर हम कह सकते हैं कि भारत सरकार के रेल–विभाग में भी हिन्दी के तनीकी प्रगति व वैज्ञानिक विकास को देखा जा सकता है। सच है कि संस्कृति, परंपरा, धरोहर तथा सामाजिकता आदि को हिन्दी क्षेत्रों तक पहुॅचाया। यह रेल हिन्दी का ऐसा आईना है, जिसमें वह अपनी पूरी बुनावट देखती है। रेलवे बोर्ड ने 'हिन्दी शब्दावली समिति' का गठन किया है साथ ही समय–समय पर भाषा चिन्तकों, विभागीय विशेषज्ञों और साहित्यकारों को आमंत्रित किया जाता है। इन बातों से निश्चय ही तकनीकी प्रयोग का बल मिलता है, जो हिन्दी के संर्वांगिण विकास को पुष्ट करता है तथा प्रयोजनमूलक हिन्दी अपने उद्देश्य को पूरा करने में सफल भी होता है।

सन्दर्भ :

1. दंगल झाल्टे : प्रयोजनमूलक हिन्दी सिद्धांत और प्रयोग, पृ. 37–73.
2. डॉ विजय पाल सिंह : कार्यालयीय हिन्दी– विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, पृ. 75.
3. सं. डॉ त्रिभुवन राय, अनुवाद : स्वरुप और आयाम, पृ. 87–88.
4. डॉ फूलबदन सिंह, डॉ विजय कुमार : व्यावहारिक एवं प्रयोजनमूलक हिन्दी तथा साहित्यशास्त्र, भवदीय प्रकाशन अयोध्या–फैजाबाद, वर्ष 2003, पृ. 28.
5. स्वर्ण जयंती समारोह स्मारिका–मैसूर हिन्दी प्रचार परिषद् सन् 1995, पृष्ठ 113.
6. समकालीन साहित्य समाचार में डॉ शंकर दयाल शर्मा का लेख किताब घर, दिल्ली, पृ. 10.
7. माधव सोनटक्के : प्रयोजनमूलक हिन्दी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद 2014.

***

कथाकार राजेन्द्र यादव

डॉ. प्रिया आनन्द *

राजेन्द्र यादव की कथा–दृष्टि को समझने के लिए समय–समय पर उनके द्वारा इस विषय पर दी गयी टिप्पणियों की खोज कर उनसे गुजरना आवश्यक प्रतीत होता है। शोध के क्रम में राजेन्द्र यादव और उनके समकालीन कथाकारों एवं समीक्षकों के विचारों से अवगत होना जरूरी है। राजेन्द्र यादव जितने बड़े कथाकार हैं उतने ही बड़े कथा–समीक्षक भी हैं। उनकी कथा–दृष्टि अत्यंत पैनी है। चीजों और संदर्भों को समझने के मामले में वे अत्याधुनिक तकनीक और सोंच का इस्तेमाल करते हैं। 'दृष्टि' शब्द का अर्थ अत्यंत व्यापक है। दृष्टि को किसी सीमा में बांधकर नहीं रखा जा सकता है। समझ, सदंर्भ, सामर्थ्य और सोंच के आधार पर दृष्टि का कैनवास बदलता है। कथा–दृष्टि के मामले में परम्परागत तरीके से मूल्यांकन का जो आधार बनाया गया है उसे कहानी–कला की संज्ञा दी गयी है। कहानी और कला दोनों दो चीजें है। बुनावट के स्तर पर, शिल्प के स्तर पर और सोंच के स्तर पर दोनों का संदर्भ अलग–अलग है। लेकिन जब हम कहानी–कला को एक साथ जोड़ते हैं तो पांच छः चीजें उभरकर सामने आती है। जैसे– कथावस्तु, पात्र, संवाद/कथोपकथन, वातावरण/देशकाल, भाष–शैली, शिल्प और उद्येश्य।

राजेन्द्र यादव कथा की दृष्टि से परम्परागत बने मूल्यों को अपनी समानांतर दृष्टि से निस्तेज कर देते हैं। राजेन्द्र यादव के शब्दों में, ''कथा–सर्जना, कलाकार की मानस–प्रक्रिया से ढ़लकर रूप लेती है, इस संसार के समानान्तर स्वतंत्र–सृष्टि ही तो है..... स्वतंत्र–सृष्टि, अर्थात् निर्माण और संघटन के अपने नियमों, परम्पराओं से प्रेरित–परिचालित .. कलाकार इसके लिए मिट्टी भले ही इस वस्तु–संसार से लेता हो; रूप उसका वह अपने ही स्वप्नों, स्मृतियों, आवश्यकताओं, दबावों, कुण्ठाओं और दृष्टियों के अनुरूप देता है..... अपने 'उस' जगत् का वह नियामक है, ब्रह्मा है और 'इस' जगत् में वहां के राजदूत की हैसियत से ही रहता है। कला–जगत के निर्माण का कार्य, कलाकार व्यक्तित्व के 'उस जटिल, संश्लिष्ट और प्रायः अविश्लेष्य' के हाथों होता है जो स्रष्टा है..... उस रचनात्मक तनाव के क्षणों में होता है, जब प्रतिभा की तीव्र बेधक दृष्टि वस्तुओं को आर–पार देखने लगती है, उनकी मूल प्रकृति को छू लेती है .... और कलाकार अपने सारे संस्कारों और प्रभावों को झटकाकर प्रकृति और वस्तु का एक नया पक्ष, एक अनदेखा कोण, एक अपरिचित रूप खींचकर सामने रख देता है। हो सकता है यह सारा 'नयापन' पहले से ही प्रकृति और वस्तु में विद्यमान हो; लेकिन उसे वहां से खींचकर एक स्वतंत्र सत्ता के रूप में सामने और समानान्तर स्थापित कर देना, कलाकार को एक भिन्न प्रतिष्ठा और निष्ठा देता है.....

---

* द्वारा पूनम मिश्रा, रामदयालु नगर, हाजीपुर रोड, नियर जेनिथ पेट्रोल पम्प, मुजफ्फरपुर- 842002

कला उसके लिए प्रकृति की 'प्रतिकृति' या 'प्रतिनिधि' न रहकर स्वयं नयी कृति होकर आती है.... एक स्वतंत्र सृष्टि का माध्यम, जो वास्तविक सृष्टि की तुलना में अधिक सत्य, अधिक ग्राह्य, अधिक युक्तिपूर्ण और संतुलित है.....''[1]

लेखक अपने–आप को समझदार और शातिर भी मानता है। समझदारी का यह भाव निरंतर रचनादृष्टि में परिवर्तन और विकास का काम करता है। साहित्य के बारे में लेखक हमेशा नैतिक मूल्यों और आत्मीय संवाद पर विचार करते नजर आता है। रचनाशीलता को वे नैतिक–अनैतिक से ऊपर उठकर, शुद्ध मानवीय धरातल पर स्पंदित होते देखना चाहते हैं। उन्हें यह लगता है कि रचना भीतरी द्वंद्व और तनाव को जीवित रखते हुए, अभिव्यक्ति में अपनी सार्थकता पाती है। अपनी साहित्यिक प्रेरणा के बारे में वे लिखते हैं– ''अक्सर लेखकों कलाकारों की प्रेरणा या तो लड़की होती है या फिर कड़की। 'आह से उपजा होगा गान' वाले तो दर्जनों में मिल जायेंगे। हां, यह लड़की वाली प्रेरणा प्रारंभिक किशोर कविताओं तक तो साथ देती है लेकिन आगे जब लेखकीय जिम्मेदारी अपना दाम मांगने लगती है, गहरे उतरने और विस्तार में फैलने की मजबूरी पैदा कर देती है तो यह प्रेरणा या तो अपना रूप बदलने लगती है या कहीं पीछे छूट जाती है। संतों की शब्दावली में इसे इश्क मिजाजी का इश्क हकीकी में बदलना कह सकते हैं। एक का प्यार फैल कर सारी नारी–जाति और मानव–मात्र के लिए होने की बात भी सुनी गयी है। और न जाने कितने लेखक रहे हैं जिन्हें कड़की ने ऐड़े लगा–लगाकर सिखाया है। चैखव, बालजाक, निराला, मजाज और मारियों पूजो तक ने कड़की की खाइयों पर लेखन के सेतु बनाये हैं। हां, खतरे दोनों प्रकार की प्रेरणाओं में बराबर है कि लड़की की प्रेरणा वाला कवि सिर्फ सन्यासी, समीक्षक और अफसर बन जाये और कड़की वाला लेखक व्यावसायिकता की अंधेरी गलियों में भटककर पत्रकारिता या फुटपाथी साहित्य रचने लगे, फिल्मी दुनिया में ही शरण पाये...''[2]

राजेन्द्र यादव का विचार है कि ''कोई भी वैचारिक मुद्दा या तो बहस लायक होता है या नहीं होता। मगर मित्र लेखकों में एक अजीब प्रवृत्ति दिखायी देती है– लगभग दयनीयता की हद तक। वे या तो सवाल उठाने वाले की जन्मपत्री बांचने लगते हैं या प्रश्न की परिभाषाओं में ही अपना बौद्धिक कमाल दिखाते हैं। काशीनाथ के 'देख तमाशा लकड़ी का' के बहाने जब मैंने आर्ष–भाषा और लोकभाषा के आपसी रिश्ते को समझने के लिए, उस पर एक बुद्धिजीवी की तरह विचार करने का आमंत्रण दिया तो कुछ मित्रों ने प्रत्याक्रमण को ही 'जवाब देना' समझा (अगर 'लोकभाषा' यानी 'गालियों' से आपको इतना ही मोह है तो अपने घर में क्यों नहीं बोलते) मेरा आग्रह था कि भाषा को लेकर पारिवारिक किस्म के आत्मसंतोष की बजाय गहराई से विचार इस पर किया जाना चाहिए की क्या अन्य उपकरणों की तरह भाषा भी छोड़ी और ग्रहण की जाने वाली चीज है या स्वयं जीवन पद्धति और –अस्तित्व की अभिव्यक्ति है? सवाल दो प्रकार की भाषाओं से आगे बढ़कर संभ्रांत और लोक के आपसी रिश्तों का है, उन्हें लेकर अपनी

या समाज की मानसिकताओं के विश्लेषण का है। करोड़ों लोगों के 'अस्तित्व की अभिव्यक्ति' भाषा को जब हम 'पाखाना–पेशाब–संभोग' जैसे निजी कर्मों को सार्वजनिक रूप में पेश करने के तर्क के रूप में बदल देते हैं तो हमारी कौन–सी जहनियत प्रकट होती है? एक विशेष वर्ग (चाहे इसमें हम स्वयं भी क्यों न शामिल हो) के इस अहंकार की गहरी पड़ताल क्यों बुद्धिजीवी की चिंता का विषय नहीं होना चाहिए?''[3]

'हिन्दी कहानी का इतिहास' के लेखक गोपाल राय ने राजेन्द्र यादव के बारे में लिखा है– ''राजेन्द्र यादव की पहली कहानी 'प्रतिहिंसा' रामरख सहगल द्वारा सम्पादित 'कर्मयोगी' में मई 1947 में प्रकाशित हुई थी। उन्हीं के द्वारा प्रदत्त सूचना के अनुसार उनकी आरंभिक कहानियों का 'रेखाएँ, लरहें और परछाइयाँ' नामक संग्रह 1950 के पूर्व छप चुका था। दूसरा संग्रह 'देवताओं की मूत्तियाँ' 1952 में प्रकाशित हुआ। ये संकलन आज उपलब्ध नहीं हैं, अतः इनमें संकलित कहानियों की सूची भी अनुपलब्ध है। ये कहानियाँ राजेन्द्र यादव के कहानी संकलन, 'पड़ाव–1' में शामिल है, पर उन्हें अलग करना एक मुश्किल काम है।

अपनी इन कहानियों के बारे में राजेन्द्र यादव लिखते हैं, ''1951–52 तक की रचनाओं को देखने पर लगता है कि मैं भीतर और बाहर सामंतवादी संस्कारों मूल्यों, मान्यताओं और आचार संहिता से ही लड़ रहा था और इस प्रयास में बिना अपनी जमीन छोड़े ज्यादा यथार्थवादी और प्रामाणिक होने की कोशिश कर रहा था। सामंतवादी प्रवृतियों से मुक्त होन की परीक्षाओं और प्रक्रियाओं से गुजरे बिना ही हमारा समाज अचानक साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद से मुक्त हो गया था और हमारे पास भारतीयता के नाम पर रह गया था सड़ा गला पुनरूत्थानवाद। नये युग की टकराहट स्तर–स्तर पर उसी से थी।''[4]

'हंस' के संपादक राजेन्द्र यादव ने अपने बारे में लिखा है– ''बीस साल हंस का संपादन करने के दौरान मुझे खलनायक तो बना ही दिया गया है। इस रावण के चेहरे में एक चेहरा और सही। इस तरह की रचनाओं के प्रकाशन में आदमी सबसे ज्यादा 'अपनों' से डरता है– खासकर पत्नी और बच्चों से। अपने मित्रों के सामने क्या कहकर बाप का बचाव करेंगे, ऐसा था हमारा बाप? या ऐसे थे तुम्हारे पापा? मैं जानता हूँ हमारी और इनकी पीढ़ी में जमीन–आसमान का अंतर है। हम आदर्श देश–समाज के सपने देखने वाले लोग थे जो क्रमशः स्वप्न–भंग की प्रक्रिया में कुंठित और हताश होते चले गए। बड़े सपने जब टूटते हैं तो कहर अपनों पर ही टूटता है। खासतौर पर स्त्री–पुरूष के बीच रोमांस का जादू बिखरने लगता है– वहां रह जाती है सिर्फ देह या शारीरिकता ... अकारण नहीं है कि घमासान युद्धों के बीच प्यार और सेक्स की अविस्मरणीय कहानियाँ जन्म लेती हैं।''[5]

कहानी की प्रकृति पर विचार करते हुए राजेन्द्र यादव ने लिखा है– ''कहानी मूलतः अपनी प्रकृति में उतनी हवाई (या अमूर्त) हो ही नहीं सकती क्योंकि उसमें 'लोग' होते हैं, उनके संदर्भ और संबंध होते हैं, कुंठाएं, संघर्ष

और स्वप्न होते हैं। वह अनिवार्य रूप से एक सामाजिक विधा है। व्यापक और तात्विक होने के लिए निश्चय ही हमें अमूर्तन में जाना पड़ता है। कविता के लिए आसान है कि वह वास्तविक को सार्वभौमिक या सार्वजनीन बनाने के लिए अवास्तविक में स्थगित हो जाये, मूर्त को अमूर्त में बदलती रहे, मगर कहानी के संदर्भ में आकार का यह निषेध वास्तविक का या अंततः मनुष्य का निषेध है। मनुष्यता के नाम पर मनुष्य का अस्वीकार साहित्य में कहानी–मात्र का अस्वीकार है। वहां अमूर्त्त संवेदों को पात्रों की वास्तविकताओं के माध्यम से जीकर ही प्रत्ययों में पहुंचने की कोशिक है...।''[6]

इक्कीसवीं शताब्दी में मीडिया ने जनमानस को बहुत दूर तक प्रभावित किया। मीडिया के उत्थान में नैतिक मूल्यों का व्यापक क्षरण हुआ। राजेन्द्र यादव ने चौथा स्तम्भ कहे जाने वाले मीडिया के इस गिरावट का जबरदस्त रचनात्मक विरोध किया। दूरदर्शन चैनलों पर हर पांच–दस मिनट बाद दो बाते दुहराई जाने– ''खबर चैनलों में पहली बार, या 'अब वक्त है कि ब्रेक का'; मतलब यह कि विज्ञापन परोसने का के अलावे भूत–प्रेत, डायन–अघोरी, भ्रष्टाचार, चमत्कारी बाबा, हत्या और बलात्कार जैसी खबरों को प्राथमिकता देने और मीडिया की इन हरकतों से राजेन्द्र यादव लगातार दुखी होते रहे। प्रस्तुत है उनकी टिप्पणी– '''हंस' के 'खबरिया चैनलों में पहली बार' विशेषांक की योजना में तय किया गया था कि अंक में सिर्फ उन्हीं की कहानियां या वैचारिक लेख लिए जायेंगे जो इन चैनलों से किसी न किसी रूप में जुड़े है। सभी कहानियां कलात्मक शर्तों पर पूरी नहीं उतरती थी, मगर वहां जो 'भोगा हुआ यथार्थ' आया वह सचमुच दिल दहला देने वाला था कि किस तरह देश की सर्वश्रेष्ठ पत्रकार प्रतिभायें एक–दूसरे को छुरा मारने के लिए अभिशप्त हैं। वहां होड़ अपना सर्वश्रेष्ठ देने की नहीं, अपना निकृष्टतम दिखाने और दर्शक को आत्महत्या के बिन्दु पर ले आने की है। यह ग्लैडिएटरों का खेल है। हर कोई गुलाम है, चालीस हजार से लेकर चार लाख महीने के जूते के नीचे सबके हाथ बिंधे हैं। याद आती है नाजी जर्मनी के सर्वश्रेष्ठ वैज्ञानिकों की होड़, कि कौन–कितनी संहारक गैस खोज कर लाता है ताकि देखते–देखते लाखों यहूदियों का सफाया किया जा सके....।''[7]

राजेन्द्र यादव लेखक के चिन्तन प्रक्रिया पर कुछ इस तरह विचार करते हैं– ''क्या कहानी उपन्यास का लेखक लेखन–सामग्री से भरा निर्जीव बक्सा ही है? उसका काम 'भीतर भरे हुए' को केवल बाहर 'उलीचना' और 'उँड़ेलना' ही है? लेखन उसकी अपनी भी चिन्तन प्रक्रिया नहीं बन सकता? कि उस समय चिन्तन–प्रक्रिया में वह रेडिमेड विचार पाठक को दे ही नहीं, खुद मथे और पाए भी? हो सकता है कि इस दृष्टि से मैने अपने को पात्रों के रूप में बांटकर मुखर–चिन्तन या लाउड–थिंकिंग ही किया हो और लिखने के दौराना पात्रों के साथ–साथ या उसकी मार्फत अपनी उलझने और समस्याएँ सुलझाने की कोशिश भी की हो.....''[8]

राजेन्द्र यादव की कथा दृष्टि और समीक्षा दृष्टि से संबंधित टिप्पणियों के कई महत्वपूर्ण अंश उद्धृत किए गए हैं। राजेन्द्र यादव की कहानियों और कथा–दृष्टि पर समय–समय पर कई लेखकों ने टिप्पणी की है। मोहन गुप्त की यह टिप्पणी द्रष्टव्य है– ''संक्षेप में कहा जाय तो राजेन्द्र यादव की कहानियाँ आजादी के बाद तेजी से विघटित हो रहे मानव–मूल्यों, स्त्री–पुरूष सम्बन्धों, बदलती हुई सामाजिक और नैतिक परिस्थितियों तथा पैदा हो रही एक नयी विचार–दृष्टि को रेखांकित करती है। उन्होंने व्यक्ति के माध्यम से समाज को समझने की लगातार कोशिश की है। यही कारण है कि उनकी कहानियों में रूपायित व्यक्ति–चेतना सामाजिक चेतना से विरत या निरपेक्ष नहीं है, क्योंकि एक अनुभूत सामाजिक यथार्थ ही उनका यथार्थ है। यथार्थ बोध के सम्बन्ध में उनकी अपनी मान्यता है कि जो कुछ हमारे संवेदन के वृत्त में आ गया है, वही हमारा यथार्थ है.... लेकिन इस यथार्थ को कलात्मक और प्रामाणिक रूप से सम्प्रेषणीय बनाने के लिए जरूरी है कि हम इसे अपने से हटकर या उठकर देख सकें, उसे माध्यम की तरह इस्तेमाल कर सकें।''[9]

साहित्य और संवेदना पर राजेन्द्र यादव कुछ ज्यादा गंभीर और चिंतित रहे है। साहित्यकारों की संवेदना के संदर्भ में उन्होंने वाल्मीकि, व्यास, कालीदास, तुलसीदास का मनुष्य के साथ तादात्म्य पर विचार किया है। दर्शन, धर्म, साहित्य, भाषा, विज्ञान, समाज, मनोविज्ञान, इतिहास और समाजशास्त्र जैसे अनेक दृष्टियों से राजेन्द्र जी ने साहित्य और साहित्यकारों की मानसिकता पर विचार किया है।

सन्दर्भ :

1. राजेन्द्र यादव : एक दुनियाः समानान्तर, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण–2010, पृ. 17–18.
2. राजेन्द्र यादव : कहानीः अनुभव और अभिव्यक्ति,, वाणी प्रकाशन, संस्करण–2009, पृ. 113.
3. वही, 'कोल्ड टैक्स्ट' का सौन्दर्यशास्त्र, पृ. 88.
4. गोपाल राय : हिन्दी कहानी का इतिहास, राजकमल प्रकाशन, संस्करण–2011, पृ. 437.
5. राजेन्द्र यादव : हासिल और अन्य कहानियाँ, राजकमल प्रकाशन, संस्करण–2008, पृ. 07.
6. राजेन्द्र यादव : कहानीः अनुभव और अभिव्यक्ति, वाणी प्रकाशन, संस्करण–2009, पृ. 83–84 (कहानी से गायब होता आदमी।)
7. 'वक्त है एक ब्रेक का' राजेन्द्र यादव, अजीत अंजुम, रवीन्द्र त्रिपाठी, राजकमल प्रकाशन, संस्करण–2007, पृ. 07.
8. राजेन्द्र यादव : शह और मात, राधाकृष्ण प्रकाशन, संस्करण–2008, पृ. 11.
9. राजेन्द्र यादव : प्रतिनिधि कहानियां, राजकमल प्रकाशन, संस्करण–2010, संपादक, मोहन गुप्त।

***

स्त्री–विमर्श एवं मृणाल पाण्डेय

डॉ. रश्मि रेखा *

स्त्री–विमर्श आधुनिक हिन्दी साहित्य के केन्द्र में है। इस विमर्श में न सिर्फ शोषित पीड़ित स्त्रियों की व्यथा–कथा है बल्कि इस प्रताड़ना के विरूद्ध प्रतिकार का स्वर भी है। स्त्री–विमर्श की अवधारणा को लेकर लम्बा रचनात्मक संवाद हुआ है। पश्चिमी देशों के विचारकों से लेकर भारत के विद्वानों ने समय–समय पर स्त्री–विमर्श की अवधारणा को स्पष्ट करने का प्रयास किया है। इस कार्य में पुरूष लेखकों के मुकाबले महिला लेखिकाओं ने बढ़–चढ़कर हिस्सा लिया है। हिन्दी साहित्य की पत्रिकाओं में भी समय–समय पर स्त्री–विमर्श संबंधी विशेषांक, स्त्री–विमर्श के अवधारणा संबंधी विचारपरक लेख प्रकाशित होते रहे हैं।

इस क्रम में प्रस्तुत है 'नवनीत' पत्रिका की संपादकीय का यह अंश– 'नारी तुम केवल' श्रद्धा हो ....' से लेकर 'मैं भरी सुराही मदिरा की...' तक का एक बहुत लम्बा वितान है नारी–जीवन का। और यह कहानी सिर्फ भारतीय नारी की नहीं है, दुनिया भर में नारी ने इस स्थिति को झेला है। और, इसे बदलने की सार्थक कोशिश भी की है। बहुत कुछ बदला है इस संदर्भ में, लेकिन बहुत कुछ बदलना अभी बाकी भी है। संघर्ष अभी जारी है। जीवन के अनेक क्षेत्रों में उपलब्धियों के कई–कई शिखर छूने के बावजूद ऑचल में दूध और आंखों में पानी की स्थिति बनी हुई है। पर यह तो स्वीकारना ही होगा कि इस स्थिति के बावजूद नारी की पहचान का यह संघर्ष नये–नये रूपों में लगातार सामने आ रहा है, और संघर्ष के परिणाम भी दिख रहे हैं। इस प्रक्रिया में नारी ने बहुत कुछ पाया है, लेकिन कितना कुछ पाना अभी शेष है।''[1]

स्त्री–विमर्श की अवधारणा पर मृणाल पाण्डे ने समय–समय पर रचनात्मक अभिव्यक्ति दी है। कई जगहों पर मृणाल पाण्डे स्त्री–विमर्श की अवधारणा को स्पष्ट करने में सफल रही हैं। वस्तुतः स्त्री–विमर्श सिर्फ स्त्रियों की समस्याओं का विमर्श नहीं है और न ही स्त्री–विमर्श संबंधों का विमर्श है। सच्चाई यह है कि स्त्री–विमर्श मानव जीवन का विमर्श है। इसके विविध पक्ष है और विविध आयाम भी। महिला लेखिकाओं ने जीवन की नई परिभाषा गढ़ने का स्वप्न देखा है।

मृणाल पाण्डे की स्त्री–विमर्श संबंधी अवधारणाओं के विविध आयाम है। स्त्रियों की कई ऐसी समस्याएं हैं, जिनका निदान दूसरी समस्या को जन्म देती है। मृणाल पाण्डे ने 'प्रगति के साथ महिला कामगारों की छँटनी भी' में कुछ इस तरह लिखा है– ''हममें से सभी को यह पता है कि स्त्रियां

* कल्याणी कॉम्पलेक्स, एक्जिविसन रोड, पटना

देश की आधी आबादी है। पर देश के कुल कामगारों का 35 प्रतिशत भी है, और देश में काम पर खर्च होने वाले कुल समय का दो–तिहाई भाग भी उनकी ही मेहनत–पसीने का है, यह कितने लोग जानते हैं? अन्तर्राष्ट्रीय श्रम–संगठन के अनुसार, पिछले तीस बरसों में घर के बाहर कृषि और उद्योग के क्षेत्र में स्त्रियों की भागीदारी बेतरह बढ़ी है। और यह शौकिया या नारी–मुक्ति आंदोलन की हवा में बहकर नहीं, बल्कि ठोस आर्थिक कारणों से हुआ है। पर एक और बात हाल की कई शोध–रपटों और सर्वेक्षणों से उभरकर आई हैं– इन कामगार स्त्रियों की औसत इस बीच बढ़ने की बजाय घटी है। वे धीरे–धीरे संगठित होने के बजाय फुटकर काम और भू–स्वामिनी के पद से भूमिहीन मजदूर की स्थिति में आने को बाध्य हुई हैं।''[2]

मृणाल पाण्डे शिक्षित महिलाओं की समस्याओं पर व्यावहारिक रूप से विचार करती हैं। पढ़ी–लिखी स्त्री अथवा कामकाजी महिला कैसे चाहकर भी परंपरागत रूढ़ियों से नहीं टकरा पाती है। ऐसा करने पर नई तरह के उलझनों का सामना करना महिलाओं की मजबूरी बन जाती है– ''शिक्षा ने जहां मध्यवर्गीय स्त्री को अपना भला–बुरा सोचने के लिए एक ठोस जमीन और मानसिक सूक्ष्मता दी है, वहीं विवाह–संबंधों और पारिवारिक ढांचे से उसकी उपेक्षाओं को भी बड़ा बनाया है। स्पष्टतः परिवार के उस ढांचे से, जहां स्त्रियों से सिर झुकाकर बिना सवाल पूछे घर के बड़ों की हर जायज–नाजायज मांग को चुपचाप पूरा करने की उपेक्षा की जाती रही है, उसे कई बार शिकायतें होंगी, पर हमारे यहां इस सहज मानवीय सच्चाई के प्रति समाज का रवैया काफी शुतुर्मुर्गाना रहा है। फलस्वरूप नातों–रिश्तों की जो नई परिभाषा, परिवार के तालमेल तनिक फर्क तरह से बिठाने से बनती थी, वह तो नहीं बन पाई, उलटे नाना प्रकार के कूट चरित्रों और छल प्रपंची रस्मों–रिवाजों का जन्म होता चला गया। जिनसे तात्कालिक रिलीफ भले ही मिली हो, पर कालान्तर में समस्या सुलझने की बजाय उलझती चली गई है।''[3]

मृणाल पाण्डे ने स्त्री विमर्श की अवधारणा में रूढ़ीवादी स्त्रीत्व की व्याख्या की है। उनका मानना है कि देह, सौंदर्य और कामुकता से उपर उठकर अपने 'स्व' की पहचान करनेवाली स्त्री पुरूष समाज को भी नया रास्ता दिखायेगी– ''स्वाभिमानी, स्पष्टता वक्ता और आत्मनिर्भर बनती हुई स्त्री से डरने या घृणा करने के बजाय, मां–पत्नी–प्रेमिका–पुत्री के रूपों में अब तक स्त्रियों की अत्यधिक अलंकरणप्रियता, आत्मग्रस्तता, चिड़चिड़ेपन, ईर्ष्यालुता या कलहप्रियता से खिन्न पुरूषों को यह याद रखना चाहिए कि स्त्रियां यदि पारस्परिक रूढ़िवादी स्त्रीत्व (यानी स्त्री एक विशुद्ध देह है, या स्त्री महज सौंदर्य है, या स्त्री केवल कोख है आदि जैसी धारणाओं) को पीछे छोड़कर, अपना 'स्व', महज शारीरिक सौंदर्य, कामुकता अथवा मातृत्व के असहज दम घोंटू रूपों के परे अपनी पूरी मानवता के सन्दर्भों में खोजेंगी, तो

अपने साथ–साथ वे अपने से जुड़े तमाम पुरूषों को भी तो कहीं गहरे नैराश्य, तनाव और ऊब से मुक्त करती जाएंगी।''[4]

स्त्री–विमर्श की अवधारणा पर मृणाल पाण्डे की समकक्ष लेखिकाओं ने भी जमकर विमर्श किया है। कुछ लेखिकायें स्त्रियों की मुक्ति का स्वप्न देखने में आर्थिक आजादी को बड़ा कारण मानती है। स्त्री–विमर्श में स्त्री का मांसल शरीर बार–बार आता है। महिलाओं के शोषण में देह का महत्वपूर्ण स्थान है। इस शोषण के मूल में सिर्फ पुरूषों का वहसीपन ही नहीं है। गरीबी, बेरोजगारी, अशिक्षा और आर्थिक तंगी एक स्त्री को देह व्यापार करने के लिए बाध्य कर देता है। महिलाओं के इन शोषणों के कारण पर मृणाल पाण्डे ने अपने लेखन के माध्यम से जमकर प्रहार किया है। चर्चित महिला लेखिका सुधा अरोड़ा कथाकार एवं साहित्यकार भी है।

सुधा अरोड़ा ने स्त्रियों की आर्थिक स्वतंत्रता की वकालत कुछ ऐसे की है– ''आर्थिक आजादी स्त्री–मुक्ति नहीं, पुरूष मुक्ति का दरवाजा है। भारतीय समाज के मध्यवर्गीय ढांचे में हमने औरत को आधुनिक और आत्मनिर्भर तो बनाया पर उसे वह माहौल देने में असमर्थ रहे जहां यह आत्मनिर्भरता उसे बराबर का हक या सम्मान दिला पाती। अर्थसत्ता या मनी पॉवर से इनकार नहीं किया जा सकता पर वही अर्थ जब पुरूष कमा कर लाता है तो वह गृहस्वामी है, घर का सर्वेसर्वा है, आदर का पात्र है।''[5]

मृणाल पाण्डे से पहले मेरी वोल्सटन ने स्त्री के अधिकारों पर विमर्श किया है। एक दशक पहले ही उनका यह मानना था कि वह समय अब आ गया है, जब स्त्रियों की जीवन–शैली में क्रांति पैदा की जाए– ''वह घड़ी आ पहुंची है कि स्त्री की आचार शैली में एक क्रांति पैदा की जाए, उसकी विलुप्त गरिमा को पुनर्स्थापित किया जाए, और मानव प्रजाति के अंग के रूप में स्वयं को सुधारते हुए विश्व को सुधारने के लिए उन्हें परिश्रम करने को उद्यत किया जाए। यह वह अवसर है कि अपरिवर्तनीय आचारसंहिता को स्थानीय तौर–तरीकों से पृथक किया जाए। यदि पुरूष अर्धदेव है, तो उनकी सेवा करना हमारा अभीष्ट क्यों हो! और यदि स्त्री आत्मा की गरिमा इतनी ही विवादास्पद है जितनी पशुओं की, यदि उनकी तर्कबुद्धि उनके आचरण को संचालित करने के लिए पर्याप्त अन्तर्ज्ञान देने का सामर्थ्य नहीं रखती, तो निश्चय ही वे समस्त प्राणियों में सर्वाधिक दुर्भाग्यशाली है तथा नियति के लौह पंजों के नीचे नत, उन्हें सृष्टि में एक कोमल दोष मानना चाहिए।''[6]

स्त्री विमर्श पर मृणाल पाण्डे का विचार डॉ. रोहिणी अग्रवाल से कहीं न कहीं मेल खाती है। दोनों की दृष्टि व्यापक है। स्त्री–मुक्ति के साथ अविभाज्य रूप से जुड़ी देह–मुक्ति की धारणा को डॉ. रोहिणी 'नैतिकता के कोलाहल मे देह विमर्श की धमक' शीर्षक अपनी लेख में विमर्श का विषय बनाया है। डॉ. रोहिणी का मानना है कि स्त्री लेखन स्त्री द्वेष से भयभीत नहीं, पुरूष की बर्बर ताकत से भयभीत जरूर है। अपने स्त्री विमर्श संबंधी इस आलेख में डॉ. रोहिणी अग्रवाल ने कुछ ऐसा ही मंतव्य दिया है–

''बेशक स्त्री छवि को मनचाही गढ़ंत दी है पुरूष तंत्र ने, किंतु क्या स्त्री को नियंत्रित अनुशासित कर पाया है वह? सीमोन द बोउवार इस तथ्य को स्वीकारती है कि स्त्री पैदा नहीं होती, बनाई जाती है। क्या इसलिए कि आरोपित स्त्री छवि के बावजूद उसके भीतर कहीं एक स्त्री जिन्दा है? यदि हां तो क्या इसीलिए वह जिंदा स्त्री पुरूष तंत्र की आंख की किरकिरी है कि उसके अहंऔर तिकड़म दोनों को करारी चोट देकर अपनी आचार संहिता खुद बनाना चाहती है। दरअसल अनैतिकता का सवाल और कुछ नहीं खम्भा नोच डालने की खिसियाहट है क्योंकि अपसंस्कृति का रोना रोने वाले भी जानते हैं कि स्त्री–मुक्ति से न घर टूटते हैं, न प्रेम–विश्वास जैसी संवेदनशील मानवीय पारस्परिक अपेक्षाएं टूटता है पुरूष अहं, नैतिकता की गढ़ी नई नृशंस संरचनाएं और सांस्कृतिक उत्कर्ष के थोथे दंभ।''[7]

तकनीकी शिक्षा के दौर में उच्च शिक्षा प्राप्त करनेवाली महिलाओं के प्रतिशत का घटना लेखिका को संशय में डाल देता है, जबकि बदलते परिवेश में एक तरफ समर्थ माता–पिता की बेटियां काफी बेहतर कर रही है वहीं दूसरी ओर आर्थिक रूप से पिछड़े अभिभावकों की बेटियां आगे की पढ़ाई नहीं कर रही है– ''आज जब नया तकनीकी परिवर्तन एक तरह से विकास की बुनियादी शर्त बन गया है, देश में उच्च शिक्षा पा रही स्त्रियों की तादाद का मात्र तीन प्रतिशत होना साफ इशारा करता है कि आनेवाले समय में जहां उच्च तकनीकी शिक्षा से जुड़ी नौकरियों की संख्या बढ़ेगी, वहां स्त्रियां कार्यक्षेत्र में हाशिए की उस जगह में सिमटती चली जाएंगी जहां कम तनख्वाह, कम सुविधावाले और एकरस किस्म के गैर–तकनीकी काम बचे रहते है। अगर नई शिक्षा नीति सचमुच स्त्री–पुरूष में समता लाने का प्रयास कर रही है, तो इस बात की अजहद जरूरत स्पष्ट हो जाती है कि स्त्रियों को विज्ञान और तकनीकी के विषय पढ़ने को न केवल प्रेरित भर किया जाए, बल्कि इन्हें उनके दैनिक जीवन से जोड़कर देखा और प्रस्तुत किया जाए और उनके स्कूलों में उसकी सही सुविधाएं भी दी जाएं। विज्ञान से यहां मतलब सिर्फ भौतिक शास्त्र, रसायन शास्त्र, शरीर विज्ञान से जुड़े कोर्सों से ही नहीं, पशु–चिकित्सा विज्ञान, डेरी पालन तथा कृषि–विज्ञान से भी है, जिसमें स्त्रियों को खासकर ग्रामीण इलाकों की स्त्रियों की अधिक गहरी रूचि होनी स्वाभाविक है।''[8]

मृणाल पाण्डे ने स्त्री–विमर्श के क्रम में इस विमर्श की खामियों को उजागर किया है। किस प्रकार महिलाओं के उत्थान की लम्बी–लम्बी बातें तथा योजनाएं बनाई जाती है। इन योजनाओं का क्रियान्वयन नहीं हो पाता है।

सन्दर्भ :

1. 'उपलब्धियों का उत्सव' संपादकीय, संपादक–विश्वनाथ सचदेव, 'नवनीत' (पत्रिका) मार्च–2010, पृ. 10.

2. 'प्रगति के साथ महिला–कामगारों की छंटनी भी', मृणालपाण्डे, स्त्री देह की राजनीति से देश की राजनीति तक' संस्करण–1987, राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, पृ. 96.
3. 'घर परिवार और स्त्री' मृणाल पाण्डे, 'स्त्री देह की राजनीति से देश की राजनीति तक', संस्करण–1987, पृ. 90.
4. 'निजमन मुकुर सुधारि' मृणाल पाण्डे 'स्त्री देह की राजनीति से देश की राजनीति तक', संस्करण–1987 राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, पृ. 21.
5. 'प्रतिकूल स्थितियों में औरतों का जिन्दा रह जाना किसी चमत्कार से कम नहीं, सुधा अरोड़ा, नवनीत, पृ. 28.
6. 'इसी विषय पर कुछ और बातें', मेरी वोल्सटन क्राफ्ट/अनुवाद– मीनाक्षी, 'स्त्री–अधिकारों का औचित्य–साधन, संस्करण–2003, राजकमलप्रकाशन नई दिल्ली, पृ. 71.
7. 'नैतिकता के कोलाहल में देह विमर्श की धमक', डॉ. रोहिणी अग्रवाल', 'हंस' (पत्रिका), फरवरी–2009, पृ. 51.
8. 'स्त्री–शिक्षा की अंधेरी भूलभुलैया', मृणाल पाण्डे, 'स्त्री देह की राजनीति से देश की राजनीति तक', संस्करण–1987, राधाकृष्णन प्रकाशन नई दिल्ली पृ. 130–131.

***

नयी कहानी आंदोलन में राजेन्द्र यादव का योगदान

डॉ. सुप्रिता शालिनी *

हिन्दी कहानी की विकास–यात्रा में 'आंदोलन' शब्द 'नयी कहानी' के साथ जुड़ता है। आधुनिक हिन्दी कहानी का आरंभ 1900 ई. में माना जाता है। नयी कहानी आंदोलन का प्रारम्भ 1950 ई. से माना जाता है। कहानी अपनी विकास–यात्रा में लगभग 50 वर्षों तक रचनात्मक और विकासात्मक रूप में अग्रसर होती है। इस दौर में दर्जनों बड़े कहानीकार अपनी कहानियों के माध्यम से इस विकास–यात्रा को पूरी करते हैं।

सन् 1947 में देश के आजाद होने के बाद सामाजिक, राजनीतिक और साहित्यिक स्तर पर सोंच में व्यापक बदलाव आया। इस बदलाव ने कहानीकारों को कुछ नया करने की प्रेरणा दी और इस प्रेरणा ने नयी कहानी आंदोलन को जन्म दिया। नयी कहानी आंदोलन आगे चलकर एक साहित्यिक आंदोलन के रूप में सामने आया। कमलेश्वर, मार्कण्डेय, दुष्यंत कुमार, राजेन्द्र यादव और मोहन राकेश नयी कहानी का अरम्भ 1950 ई. के आस–पास से मानते है। एक मन्यता यह भी है कि नयी कहानी आंदोलन छठे–दशक के अंत में आरम्भ हुआ और सांतवें दशक के मध्य में समाप्त हो गया।

हिन्दी के कथा आलोचकों ने 'नयी कहानी' नाम कैसे पड़ा और इसके मूल प्रस्तावक कौन थे, इस पर समय–समय पर विचार किया है। गोपाल राय ने अपनी पुस्तक हिन्दी कहानी का इतिहास पुस्तक में कहानी आंदोलन पर विचार करते हुए लिखा है– ''1951 में हिन्दी कहानी–लेखन में सक्रिय कहानिकारों में जैनेन्द्र, अज्ञेय और चन्द्रकिरण सौनरेक्सा को हटा देने के बाद भी पुरानी पीढ़ी के लेखकों में बेचन शर्मा 'उग', यशपाल, विष्णुप्रभाकर आदि अपेक्षाकृत नयी पीढ़ी के कहानीकारों में निर्गुण, पहाड़ी, भीष्म साहनी, अमृत राय आदि और युवा पीढ़ी के कहानीकारों में कृष्णा सोबती, मोहन राके, कमलेश्वर, राजेन्द्र यादव, कमल जोशी आदि उल्लेखनीय हैं। 1951 में या उसके दो–एक वर्ष आगे–पीछे कहानी–लेखन में प्रवृत्त होने वाले युवकों में रामकुमार, अमरकान्त, उषा प्रियंवदा, मार्कण्डेय आदि उल्लेखनीय हैं। पर इनमें किसी ने भी 1955 के पूर्व अपनी कहानियों को 'नयी कहानी' का नाम नहीं दिया। उपलब्ध प्रमाणों के आधार पर 'नयी कहानी' की अवधारणा सम्भवतः कमलेश्वर के दिमाग की उपज थी।''[1]

'नयी कहनी' आंदोलन से पहले 'पुरानी कहानी' शीर्षक के अंतर्गत आलोचकों ने कहानियों पर विचार किया है। कमलेश्वर ने नयी कहानी के

---

* एम.ए., पीएच.डी.(हिन्दी), यूजीसी-नेट, बी.आर.ए.बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

बारे में लिखा है– ''नयी कहानी का उदय ऐतिहासिक संदर्भ में हुआ। इसने परिपाटीबद्ध रूढ़ अर्थों में 'कहानी' को स्वीकर नहीं किया। यह एक ऐसा मोड़ थ जो आन्तरिक और बाह्य कारणों से हिन्दी कहानी में आय। इसके अन्तर्गत कहनी के 'फार्म' तथा कथ्य दोनों स्तरों पर एक नवीन दिशा की खोज की गयी। 'नयी कहानी' अपने में विकसित होती आयी है; पहले उन्मेष में इसका कोई नाम भी नहीं था.... पर बदलते हुए यथार्थ ने जब मूल्यों की एक संक्रान्ति खड़ी कर दी, तो नयी कहानी ने उसे वहन किया और प्रेमचन्द–प्रसाद की कहानी की परम्परा को नये अर्थ तथा नये जीवन–सन्दर्भें की अेर अभिमुख किया। .... नयी कहानी ने उत्तराधिकार में जो कुछ पाया, उस सबको बिन सोंचे–समझे ग्रहण नहीं किया– प्राप्त मूल्यों में से जिसकी संगति उसकी आनतरिक प्रक्रिया की प्रकृति और अपने जीवन बोध के साथ बैठती थी, उसे ही उसने ग्रहण किया। और हर लेखक ने अपने अनुभूत जीवन की निरन्तरता में से जीवन खण्डों को उठाकर अभिव्यक्ति दी है। रेणु, राकेश, राजेन्द्र यादव, भीष्म साहनी, हरिशंकर परसाई, अमरकान्त, रमेश बक्षी, मर्कण्डेय, शिवप्रसाद सिंह, मन्नू भंडारी, शैलेष मटियानी, उषा प्रियम्बदा, मधुकर गंगाधर, राजेन्द्र अवस्थी, शानी, शरद जोशी जैसे शक्त लेखकों ने 'नयी कहानी' को जीवन्तता और विविधता दी है। कुछ अंतराल से आने वालों में प्रयाग शुक्लन, विजय चौहान, रामनारायण शुक्ल, प्रबोध कुमर, महेन्द्र भल्ला, दूधनाथ सिंह, रवीन्द्र कालिया, ज्ञानरंजन, सुशील कुमार, परेश, विमल, देवेन गुप्त, अनीता औलक, योगेश गुप्त, अवधनारायण सिंह, प्रेम कपूर, गिरिराज किशोर आदि ने और भी नये आयामों की ओर यात्र आरम्भ की है।''[2]

डॉ. नामवर सिंह ने 'कहानी, नयी कहानी' नामक पुस्तक में 'आज की हिन्दी कहानी', 'नई कहानीः सफलता और सार्थकता', 'नई कहानीः नये प्रश्न', 'आज की हिन्दी कहानी : ऐतिहासिकता नवीनता और उपलब्धियाँ' और 'नयी कहानी की पहली कृति : परिन्दे' के अलावे चौदह और कहनी संबंधी उपशीर्षकों के अंतर्गत 'प्रक्रिया' के तहत विचार किया है। पुस्तक के अंत में 'नयी कहानीः नये संदर्भ' शीर्षक के अंतर्गत डॉ. सिंह ने आजादी के बाद भारत के बदले परिदृश्य में लिखी गई नयी कहानी पर कुछ इस तरह विचार किया है– '''नई कहानी' की आवाज, वस्तुतः एक रचनात्मक संभावना को देखकर उठी थी, जे आज भी नई पीढ़ी के कहानीकारों की पहली कृतियोंू में साफ झलकती है। ये कृतियाँ आज भी ताजा मालूम होती है, क्योंकि इनके मूल में सर्जनात्मक प्रयास है। लम्बे अवकाश के बाद हिन्दी कहानी में जीते–जागते आदमी दिखाई पड़े, तो लगा कि कहानी में एक रचनात्मक खेज की शुरूआत हो गई। वैसे साफ–सुथरी कहानियाँ उस समय भी कम न थीं, लेकिन आंचलिक रेखाचित्रों की जीवंतता के सामने वे निष्प्राण प्रतीत हुईं। उल्लेखनीय है कि उसी 'प्रतीक' में राजेन्द्र यादव की कहानी 'खेल–खिलौने' छपी और शिवप्रसाद सिंह की 'दीदी–माँ' भी।

'दीदी–माँ' की तलना में 'खेल–खिलौने' में कहीं ज्यादा करीगरी और पच्चीकारी है लेकिन खुली दाद मिली सीधी–सहज 'दीदी–माँ' को। दूसरी ओर मोहन–राकेश एक अरसे से 'साफ–सुथरी' कहानियाँ लिखते आ रहे थे, लेकिन पहली कहानी–संग्रह 'पान–फूल' है मार्कण्डेय का जिसकी ओर हिन्दी जगत की सहसा दृष्टि गई! यों 'पान–फूल' की तुलना में 'नये–बादल' की कहानियाँ कहीं ज्यादा साफ–सुथरी और चमत्कारपूर्ण है। निश्चय ही उस आकर्षण के मूल में बहुविापित आंचलिकता मात्र न थी। इसी तरह कारीगरी के विपरीत सहजता को दाद देने का मतलब कला के एक पक्ष की जगह दूसरे पर जोर देना भर नहीं था। इस आकर्षण का कारण एक वस्तु–विशेष या एक शिल्प–विशेष नहीं, बल्कि वस्तु और शिल्प दोनो में निहित एक नई सर्जना दृष्टि थी। दूसरे सफल लेखक जहाँ पहले की अच्छी कहानियों जैसी एक और कहानी लिखने की कोशिश कर रहे थे, वहाँ नया कहानीकार एक जीते–जागते आदमी–एक नये जीवन्त अनुभव को तराश कर कहानी का आकार दे रहा था।''[3]

समाजवाद और व्यक्तिवाद के संतुलन से नई कहानी का मूल दर्शन तैयार हुआ था अैर वह जीवन के ढेरों अन्य पक्षों जैसे स्त्री–पुरूष संबंधों की बदलती दुनियाँ, मानवीय शोषण व संवेदनशीलता आदि की अभिव्यक्ति में जाकर व्यक्त हुआ था। नई कहानी ने अपने ढंग की समकालीनता के बोध की खोज के लिए बहुत बार इतिहास तथा भविष्य के बारे में तरह–तरह के 'आब्सेशन' से लड़ाई की और उसे तोड़ने के नाम पर वर्तमान की पूजा की। राजेन्द्र यादव के ही शब्दों में 'अतः कहानी का अनुभूति और समय क्षेत्र सिमट गया है और दोनों जगहों पर वह केवल वर्तमान और केवल वर्तमान की कहानी रह गई है। .... जो है, भूत और भविष्य के बीच निरन्तर भिंचत–घुटता चला आता वर्तमान क्षण ही है।'' नयी कहानी का यह भावबोध 60 के दशक का वह सामाजिक भावबोध है जिसमें समाज में एक तरह का यथास्थितिवाद का बोलबाला है। ऐसे में कहानीकार मूल्यों के टूटन और बिखराव को लेकर खीज की मनःस्थिति में हैं। नयी कहानी के 'नयेपन' पर विचार करते हुए मोहन राकेश लिखते हैं : ''बात नयी जगह जाकर नयी तरह के व्यक्ति की कहानी लिखने की नहीं, उसी तरह रहकर, उसी इन्सान के उन्हीं अन्तर्द्वन्द्वों को जीवन के नये संदर्भ में देखने की है। जीवन के मूल्य जब बदलते हैं तो सब जगह एक ही तरह से नहीं बदलते। हर देश और जाति के संस्कार बदलते हुए मूल्यों को अपनी तरह से ग्रहण करते हैं जिससे परिवर्तन का भी हर जगह अपना एक अलग रंग हो जाता है। आज हमारे चारो ओर जीवन तेजी से बदल रहा है। इसका एक अर्थ यह है कि हम बदल रहे हैं। यदि हम अपने इस बदलते हुए 'सेल्फ' को पहचानने का प्रयत्न नहीं करते, अपने इस 'सेल्फ' की ही कहानी नहीं कहते, तो इसका अर्थ यह है कि या तो हम किन्हीं अंतर्मुख

ग्रंथियों में उलझे हैं, या जीवन की चुनौती को ठीक से स्वीकार करने से कतराते हैं।''[4]

राजेन्द्र यादव ने नई कहानी के विचार दर्शन को लेकर जो वैचारिक अंतर्क्रिया की उसका फल दो रूप में सामने आया। पहला सैद्धांतिक और दूसरा व्यावहारिक। सिद्धांत के अंतर्गत राजेन्द्र यादव के विचार विभिन्न लेखों, अग्रलेखों, संपादकीय एवं पुस्तक के रूप में सामने आया। व्यावहारिक रूपसे उनकी कहानियाँ हमारे समक्ष हैं।

कथा आलोचक मधुरेश की मान तो, ''नयी कहानी की सौन्दर्यशास्त्र गढ़ने में राजेन्द्र यादव की भूमिका उनके अन्य समकालीनों की अपेक्षा कहीं अधिक महत्वपूर्ण और निर्णायक रही है।'' देवीशंकर अवस्थी 'नयी कहानी : संदर्भ और प्रकृति' शीर्षक पुस्तक में यह मानते हैं कि ''उस समय केवल राजेन्द्र यादव ने ही परम्परा को एक सीमा तक अस्वीकाार करने का साहस दिखाया था– कम से कम कहानी विचार की दृष्टि से।''

नयी कहानी का दौर संभावनापूर्ण और काफी उर्वर था। राजेन्द्र यादव भी इस बात को अपनी पुस्तक 'कहानी : स्वरूप और संवेदना' में कुछ इस तरह स्वीकार करते हैं – ''एक साथ इतनी अधिक समर्थ और संभावनापूर्ण प्रतिभाओं का उदय, जीवन क इतने विविध और विषद पक्षों का अंकन, कलात्मक स्तर साहित्य की एक ही विधा में बहुत दिनों के बाद देखने को मिला है।''

हिन्दी के व्याख्याता रमेश प्रसाद गुप्ता ने 'राजेन्द्र यादव का कथा साहित्यः कथ्य एवं शिल्प' विषय पर शोधकार्य किया है। उन्होंने नयी कहानी आंदोलन में राजेन्द्र यादव की भूमिका पर विचार करते हुए लिखा है– ''जब ढेर सारे रचनाकार एक ही साथ कई–कई स्तरों पर रचनाशील दिखे, जो अपने समय के यथार्थ की विभिन्न प्रतिछवियाँ उपस्थित कर रहे थे। उसमें राजेन्द्र यादव ने भी अपनी सक्रिय भगीदारी निभाई। जिन्होंने जहाँ एक ओर अपने दौर की कहानियों में निरन्तर नये प्रयोग किये, वहीं दूसरी ओर नयी कहानी को प्रतिष्ठित करने के लिए उसे ठीक अपने समय के संदर्भ में परिभाषित और मूल्यांकित किया, क्योंकि कोई भी रचना (किसी भी विधा में अपने समय के संदर्भों एवं दबाबों के बीच ही संभव होती रही है।''[5]

स्वातंत्र्योत्तर कथा–साहित्य को एक खास शक्ल देने में राजेन्द्र यादव की भूमिका अहम रही है। दूसरी विधाओं की जगह कहानियों को साहित्य के केन्द्र में बनाए रखने में उन्होंने बड़े गंभीर बहसधर्मी प्रयास भी किए। उन्होंने नई कहानी को पीछे के पूरे साहित्य से ही आगे बढ़ा हुआ साबित करने की कामयाब कोशिश की। नई कहानी का संघर्ष एक ओर प्रतिबद्ध मार्क्सवादी लेखन से था, तो दूसरी ओर पहले से चली आती मनोविश्लेषणवादी व्यक्तिवादी कहनियों से भिन्न अपनी पहचान कायम करने का भी था। इसके बावजूद इन दोनों धाराओं के प्रमुख तत्वों का समन्वय भी नई कहानी में कर लिया गया था। नई कहानी आंदोलन के बुनियादी अंतः

चरित्र को खोलने के लिए राजेन्द्र यादव की पंक्तियाँ उल्लेखनीय हैं –''लेकिन आज जहाँ लेखक का कहानी संबंधी दृष्टिकोण उसके परिवेश के अनेक तत्वों को प्रभवित परिवर्तित हुआ है, वहीं उसने अपने पूर्ववर्ती लेखकों की कमियों–शक्तियों को भी पहचाना है। समाजवादी यथार्थवाद में मनुष्य के खोए व्यक्तित्व को प्रतिष्ठित करना और व्यक्तिवादी द्वीपों को सामाजिक संदर्भों में देखना भी उसे अपने लेखकीय दायित्व के ही अंग लगते हैं। समाजवादी लेखकों का परिवेश बोध और व्यक्तिवादी लेखकों की आत्मसजगता (सेल्फ–कान्शसनेस नहीं, कान्शसनेस आफ द सेल्फ) का समन्वय अपने अनुभव संस्कारों के साथ मिलकर उसकी चेतना को बनाता है। इस सबके साथ ही अपने युग और यथार्थ को अत्यंत संवेदनशील मानस पर ग्रहण करता है.... जीवन के अत्यंत वैयक्तिक अनुभवों को आज के परिवेश में तटस्थता से रखता है– इसलिए पहले दोनों वर्गों से अधिक प्रामाणिक और विश्वसनीय लगता है। परिवेश की विश्वसनीयता और अनुभूति की प्रामाणिकता का यह सामंजस्य हिन्दी कहानी में पहली बार इस रूप में आया है।''[6]

नई कहानी के सन्दर्भ में 'एक दुनियाः समनान्तर' की भूमिका का विशेष महत्व है। इस भूमिका में राजेन्द्र यादव ने हिन्दी कहानी के साथ नई कहनी संबंधी अपनी समस्त चिन्ताओं को व्यक्त किया है। हम जानते हैं कि एक 'दुनियाः समानान्तर' नामक पुस्तक में चुने हजुए बाइस कहानियों को शामिल किया गया है। इस संकलन में राजेन्द्र यादव ने कहानियों के अलावा 'यह संकलन' और 'एक दुनियाः समानान्तर' शीर्षक से नई कहानी आन्दोलन को प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से रचनात्मक विमर्श किया है। 'एक दुनियाः समानान्तर' शीर्षक से अनठावन पृष्ठों का यह विमर्श कल–सज्ञना, कलाकार, कहानी, कहानीकार एवं नई कहानी के आलोक में मुकम्मिल दस्तावेज है। इस विमर्श के अन्त में राजेन्द्र यादव ने लिखा है, ''और मुझे लगता है आज हमारी नयी कहनी जहाँ आ गयी है, वह उसका समाप्त होना नहीं है, आगे गति न हो पाने के कारण बिखर जाना है.... किसी बड़े प्रारम्भ के बंद दरवाजों पर सिर पटककर साँस तोड़ देना है .... शयद जिन्दगी भी किसी ऐसे ही बन्द प्रारम्भ की देहलीज पर आ गयी है... मगर जिन्दगी और कहानी को दरवाजा तो खोजना ही होगा। इस वर्तमन को किसी–न–किसी भविष्य तक तो खींचना ही होगा, उस आशा को तो प्राप्त करना ही हेागा जो अनागत है, अगले जीवन और अगली कहनी की थीम है....''[7]

नई कहानी का सौन्दर्यशास्त्र गढ़ने में राजेन्द्र यादव के वक्तव्यों/टिप्पणियों की निर्णायक भूमिका से इंकार नहीं किया जा सकता है। अपनी पुस्तक 'कहनीः अनुभव और अभिव्यक्ति' में राजेन्द्र यादव नयी कहानी आंदोलन पर विचार करते हुए लिखते हैं– ''हिन्दी कहानी की सम्पूर्ण यात्रा में 'नयी कहानी' पहला और शायद साहित्यिक अर्थों में अभी तक का अंतिम आंदोलन था। द्वितीय युद्ध के बाद कविता राष्ट्रीय–अंतर्राष्ट्रीय स्तर

पर अपनी सार्थकता खो रही थी और युद्ध, विभाजन, ध्वंस से गुजरकर आये हुए लोग एक–दूसरे को अपने अनुभव सुनाने को इतने आतुर–व्याकुल थे कि कविता में अधूरापन महसूस करते थे। और कहानी–उपन्यास के शास्त्रीय अनुशासन उन्हें बांधे रखने में असमर्थ थे। तीव्र, ज्वलंत और अस्तितव विदारक ये अनुभव हर विधा की शास्त्रीय सीमाओं को ओछा कर रहे थे। इस दौर के बद ही आया अपने को जांचने, जमाने और भविष्य की ओर देखने का समय। यात्रा की मजबूरी, आगे बढ़ने की आपाधापी, पीछे के खिंचाव और भविष्य के आश्वासन जो सामने आने से पहले ही अपनी दरारें और तड़कनें दिखाने लगे थे। यानी आश्वासन शब्दों का रूप लेने से पहले हीं अविश्वासों, आशंकाओं और भाषा–विदूषण या दूषण में बदलने लगे थे। और मोटे रूप से इसी मानसिकता को अभिव्यक्त करते हैं नयी कहानी के अधिकांश कथाकार– मूलतः वाम के प्रति झुकाव के साथ– क्योंकि व्यवस्था के विरोध को वाम एक दार्शनिक आधार भी देता था। सब मिलाकर छूटता वर्तमान ...बांधे रखनेवाले मूल्यों, संस्थाओं और दर्शनों के प्रति विरक्ति, उदासीनता या निश्चित आक्रोश–क्योंकि यही बस तो तरह–तरह की मरीचिकाओं के रूप में रास्ते में आ–खड़े होते थे।''[8]

वास्तव में नयी कहानियाँ जीवित परिवेश में सांस लेते व्यक्ति और उसके व्यक्तित्व के खोज की कहानियाँ हैं। बदलते समाज में टूटते और बनते संबंधों की कहानियाँ हैं। ये कहानियाँ परिवेश की वास्तविकता और अनुभूति की प्रामाणिकता के आग्रह के साथ लिखी गई हैं।

सन्दर्भ :

1. गोपाल राय, हिन्दी कहानी का इतिहास–2, राजकमल प्रकाशन, संस्करण–2011, पृ. 519.
2. कमलेश्वर : नयी कहनी की भूमिका, ईशान प्रकाशन, संस्करण–1991, पृ. 35–36.
3. नामवर सिंह : कहानी, नयी कहानी, लोकभारती प्रकाशन, संस्करण–2008, नयी कहानीः नये प्रश्न, पृ. 182–183.
4. देवीशंकर अवस्थी : नयी कहनी : संदर्भ और प्रकृति, राजकमल प्रकाशन, संस्करण–2008, पृ. 95.
5. रामेश प्रसाद गुप्ता : राजेन्द्र यादव का कथा–साहित्य : कथ्य एवं शिल्प, शोध–प्रबन्ध, वर्ष–2003, पृ. 180.
6. राजेन्द्र यादव : एक दुनिया : समानान्तर, राधाकृष्ण प्रकाशन, संस्करण–2010, पृ. 55.
7. राजेन्द्र यादव : एक दुनिया : समानान्तर, राधाकृष्ण प्रकाशन, संस्करण–2010, वही, पृ. 74.
8. राजेन्द्र यादव : कहानी : अनुभव और अभिव्यक्ति, वाणी प्रकाशन, संस्करण–2009, पृ. 46–47.

***

हिन्दी आलोचना का क्रमिक विकास

डॉ. विवेक रंजन *

हिन्दी आलोचना अपने उद्‌भव काल से अबतक विभिन्न पड़ावों से गुजरते हुए विकास के मार्ग पर अग्रसर है। प्रस्तुत अध्याय में हिन्दी आलोचना के उद्‌भव और विकास का शोधपरक विवेचन उपस्थापित होगा। हिंदी आलोचना के बारे में विभिन्न विद्वानों ने समय–समय पर अपना मन्तव्य दिया है। उदाहरणस्वरूप–

'हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास' में गणपति चन्द्र गुप्त ने आलोचना को व्याख्यायित करते हुए लिखा है–

''आलोचना का सामान्य अर्थ किसी वस्तु या व्यक्ति के दोषों की चर्चा करना है किन्तु साहित्य के क्षेत्र में इसे थोड़े भिन्न एवं व्यापक अर्थ में ग्रहण किया जाता है। साहित्य में किसी भी साहित्यिक रचना के विवेचन, विश्लेषण, गुण–दोष दिग्दर्शन या मूल्यांकन को अथवा साहित्य के संबंध में किसी सामान्य विचार, सिद्धान्त या नियम के प्रतिपादन को तथा उसकी ऐतिहासिक, सामाजिक या मनोवैज्ञानिक व्याख्या को 'आलोचना' 'समालोचना' या 'समीक्षा' के अन्तर्गत स्थान दिया जाता है। इस दृष्टि से साहित्यिक आलोचना के मुख्यतः तीन रूप निर्धारित किये जा सकते हैं– 1. सैद्धान्तिक 2. व्यावहारिक एवं 3. ऐतिहासिक। भारतीय साहित्य में आलोचना की अत्यंत दीर्घ, पुष्ट एवं सुविकसित परम्परा रही है किन्तु उस का स्वरूप मुख्यतः सैद्धान्तिक है। इसका कारण यह है कि यहाँ आलोचना का विकास केवल रचनाओं के परीक्षण या मूल्यांकन की दृष्टि से नहीं अपितु काव्य–तत्व के अनुसन्धान की जिज्ञासा, सच्ची शोध लालसा एवं शुद्ध वैज्ञानिक दृष्टि से हुआ था– अतः उसका स्वरूप शास्त्रीय एवं सैद्धान्तिक है। कदाचित इसीलिए उसका नामकरण भी 'अलंकारशास्त्र' या 'काव्य–शास्त्र' जैसे स्वतंत्र शास्त्र के रूप में हुआ।''[1]

भारतीय हिन्दी साहित्य के गहन अध्ययन से यह सर्वत्र स्पष्ट होता है कि भारतेन्दु युग हिन्दी साहित्य की अनेक विधाओं का आरम्भ बिन्दु है इसमें से आलोचना का उद्‌भव भी जुड़ा हुआ है यद्यपि की इसका बीज यत्र–तत्र पहले की रचनाओं में भी पाया जाता है। इस सन्दर्भ में रेवती रमण का कथन उल्लेखनीय है–

''भारतेन्दु–युग के लेखक अपने तरीके से रचना में ही आलोचना का समावेश करते हैं। वे एक साथ कवि, नाटककार, पत्रकार और समाजसुधारक थे। नाटक और साहित्यिक पत्रकारिता के आरम्भिक काल में

---

* यादव नगर लेन नं. 01, भगवानपुर चौक रेवा रोड, मुजफ्फरपुर

भारतेन्दु और उनके सहयोगियों ने रचनात्मक और आलोचनात्मक अन्तर्दृष्टि के लिए बड़ा संघर्ष किया। उसमें मुठभेड़ का साहस था, कला भी थी। लेकिन भाषा का अभाव था। तथापि रचना के बाहर निकलकर, रचना के अनुभवों से समृद्ध सैद्धान्तिक आलोचना की शुरुआत का श्रेय आधुनिक साहित्य के जनक भारतेन्दु हरश्चिन्द्र को ही है। उन्होंने सन् 1883 ई. में 'नाटक' शीर्षक प्रबन्ध की रचना की। यह परवर्ती नाट्य विमर्श का एक सुदृढ़ आधार बना। अपने लघु प्रबन्ध में हरिश्चन्द्र ने संस्कृत और पाश्चात्य नाटकों के इतिहास पर एक दृष्टि डाली और नवयुग के नाटककारों को पुरानी नाट्य–रूढ़ियों से मुक्त होकर नयी सर्जना की प्रेरणा दी। प्रसंगवश, उपाध्याय चौधरी बदरीनारायण 'प्रेमधन' के 'दृश्य रूपक' की चर्चा की जा सकती है, जिसमें हिन्दी के अतिरिक्त अन्य प्रान्तीय भाषाओं के नाटकों पर भी विचार किया गया था। यह सिलसिला कच्छप गति से चल ही रहा था कि काशी नागरी प्रचारिणी की पत्रिका के प्रथम अंक (1896) में गंगाप्रसाद अग्निहोत्री का एक लेख प्रकाशित हुआ – 'समालोचना'। इसमें समीक्षकों की स्वाभाविक सीमाओं का जिक्र हुआ है। अग्निहोत्रीजी ने दलबन्दी की दूषित प्रवृति पर प्रहार करते हुए केवल गुण–दोष– विवेचन को अपर्याप्त घोषित किया। समझा जाता है कि हिन्दी आलोचना का प्रारम्भिक दौर भी पाश्चात्य प्रभावों से निरपेक्ष नहीं था। मसलन, बाबू जगन्नाथ दास रत्नाकर का पद्यवद्ध आलेख 'समालोचनादर्श' पठनीय है, जो अलेक्जेण्डर पोप के 'ऐन एसे इन क्रिटिसिज्म' का अनुवाद माना गया है।''[2]

भारतेन्दु युग अनेक विधाओं की दृष्टि से साहित्यिक विधाओं के नवीनीकरण का युग रहा है। इस युग में साहित्य के नये युग का आरम्भ होता है, जिसमें नये–नये विचार और भावनाओं का संचार हुआ। हिन्दी आलोचना के उद्‌भव पर प्रकाश डालते हुए विश्वनाथ त्रिपाठी लिखते हैं–

''हिन्दी आलोचना का इतिहास रीतिकाल के थोड़ा पहले शुरू होता है। सच तो यह है कि रीतिकाल का रीतिबद्ध साहित्य रीतिवादी आलोचना से प्रभावित है और लक्षणों के उदाहरण रूप में रचा गया है। रीतिकालीन लक्षण ग्रन्थों का उपजीव्य संस्कृत का काव्य–शास्त्र है। संस्कृत काव्य–शास्त्र के चार सम्प्रदाय प्रसिद्ध हैं– 1. भामह, उद्‌भट आदि का अलंकार सम्प्रदाय; 2. कुंतक का वक्रोक्ति सम्प्रदाय; 3. वामन का रीति सम्प्रदाय; 4. आनन्दवर्धन का ध्वनि सम्प्रदाय। रीतिकाल में हिन्दी का जो काव्य–शास्त्र रचा गया वह उन्हीं सम्प्रदायों की नकल पर। कहा जाता है कि 'हिततरंगिणी' के लेखक कृपाराम हिन्दी के सर्वप्रथम काव्यशास्त्री थे। उन्होंने 16वीं शताब्दी में ही थोड़ा बहुत रस–निरूपण किया था, लेकिन हिन्दी में 'काव्य रीति का सम्यक समावेश पहले पहल आचार्य केशव ने ही किया।' केशव ने संस्कृत काव्यशास्त्र के पहले खेवे अर्थात् भामह, दण्डी जैसे आचार्यों की मीमांसा को भी अपने निरूपण का आधार बनाया। लेकिन आचार्य शुक्ल के अनुसार केशव के पचास वर्षों बाद रीतिग्रन्थों की जो

परम्परा हिन्दी में चली उसने परवर्ती आचार्यों के आधार पर काव्यशास्त्रीय विवेचना की। फलतः रीतिकालीन आचार्यों द्वारा हिन्दी में संस्कृत साहित्यशास्त्र के विकास–क्रम की एक संक्षिप्त उद्धरणी प्रस्तुत हो गयी। रीतिकाल के आचार्य लक्षणकार होते थे और उदाहरण प्रस्तुत करते समय कविता करते थे।''[3]

हिन्दी आलोचना के उद्‌भव तथा विकास में भारतेन्दु के साथ ही भट्टजी और प्रेमधनजी विशेष साधुवाद के पात्र है। इस पर विश्वनाथ त्रिपाठी का उद्धरण उल्लेखनीय है–

''प्रेमधन और भट्टजी ने वस्तुतः भारतेन्दु के कार्य को आगे बढ़ाया। भारतेन्दु ने यद्यपि 'नाटक' पर एक लेख लिखकर हिन्दी में आलोचना का सूत्रपात किया। किन्तु उन्हें इस दिशा में अधिक कार्य करने का अवसर नहीं मिला। भारतेन्दु की ही भाँति प्रेमधन और भट्ट भी अनेक विषयों पर अपनी लेखनी चलाते थे एवं पत्रकार और साहित्यकार थे। ये लोग समूचे जीवन पर दृष्टिपात करते थे, विविध आन्दोलनों में सम्मिलित होते थे और उन पर अपनी दो–टूक सम्मति प्रकट करते थे। पत्र–पत्रिकाएँ उनकी इसी आवश्यकता की पूर्ति करती थीं। उस काल का नवीन साहित्य विभिन्न सामाजिक आन्दोलनों का ही अंग था। ये लोग सभी पर अपना मत प्रकट करते थे, इन्होंने अपने पत्रों में साहित्यिक कृतियों की भी समीक्षा की। हिन्दी आलोचना का जन्म पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित इनकी इसी समीक्षा से हुआ। यह समीक्षा सामाजिकता से इतनी लिपटी है कि इसकी साहित्यिकता पर 'शुद्धतावादी' विचारक शंका प्रकट कर सकते हैं। बात यह है कि साहित्य के विभिन्न साहित्यांग परम्परा के मृत अंशों को त्यागकर साहित्य के स्रोत जीवन से रस खींचकर विकसित होने की तैयारी कर रहे थे। आलोचना भी यही कर रही थी। पत्रकारिता से जो समसामयिकता से घनिष्ठ संबंध रखती है, का आलोचना विकसित होना यही प्रकट करता है। आगे चलकर आलोचना का अपना स्वरूप अधिकाधिक स्पष्ट हुआ।''[4]

हिन्दी आलोचना का सर्वांगिण विकास इस क्षेत्र में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के पदार्पण के साथ ही आरम्भ होता है। आचार्य शुक्ल ने आलोचना के नये मानदण्डों को स्थापित किया तथा आलोचना की विकसित पद्धति का सूत्रपात किया। आचार्य शुक्ल के आलोचना के क्षेत्र में योगदान को स्पष्ट करते हुए गणपति चन्द्रगुप्त लिखते हैं– ''आचार्य शुक्ल ने आलोचना के तीनों रूपों– सैद्धान्तिक, ऐतिहासिक एवं व्यावहारिक विकास में योग दिया। सैद्धान्तिक आलोचना के अन्तर्गत उनके 'चिन्तामणि' (दो भाग) तथा 'रस–मीमांसा' में संकलित कुछ लेख एवं विचार आते हैं, जिनमें मुख्यतः रस–सिद्धान्त के विभिन्न पक्षें की नयी व्याख्या प्रस्तुत की गई है। रस–सिद्धान्त को उन्होंने आधुनिक दृष्टिकोण से विकसित करते हुए उसके आनन्दवाद को मनोवैज्ञानिक एवं समाजवादी आधार प्रदान करने का प्रयास किया है। रस–दशा के भी उन्होंने अनेक नये भेद करते हुए उसे

साधनावस्था, सिद्धावस्था, स्मृत रूपविधान, कल्पित रूप विधान आदि के आधार पर विश्लेषित किया तथा उसकी अनेक कोटियाँ भी निर्धारित की। काव्य में व्यक्त भाव सामाजिक के आदर्शों और मान्यताओं के जितना अधिक अनुकूल होता, उतना ही उसका साधारणीकरण अधिक हो सकेगा–इस स्थापना के आधार पर उन्होंने रस–सिद्धान्त की व्यक्तिवादी प्रवृतियों को सामाजिकता की ओर उन्मुख किया। साथ ही उन्होंने विभिन्न पाश्चात्य सिद्धान्तों की संकीर्णताओं एवं त्रुटियों की ओर भी अप्रत्यक्ष रूप में संकेत किया।''[5]

हिन्दी आलोचना के क्षेत्र में शुक्लजी का पदार्पण संक्रमण काल में हुआ। इस समय हिन्दी आलोचना एक ओर तो पाश्चात्य प्रभाव में थी तो दूसरी ओर उसपर पश्चिम का भी प्रभाव पड़ रहा था। शुक्लजी ने इसे इन दोनों से मुक्त कर उसे विकास की एक नई दिशा प्रदान की। यहाँ रेवती रमण का यह कथन देखा जा सकता है–

''हिन्दी आलोचना के क्षेत्र में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने एक युगान्तर प्रस्तुत किया। उनकी शैली में भारत की शास्त्रीय पद्धति के साथ–साथ अँग्रेजी की शैली भी मिली हुई थी। उनके आलोचनात्मक निबंध शास्त्रीयता के ठोस धरातल पर ज्ञान का चमत्कार देखते और दिखाते हैं। शुक्लजी ने हिन्दी आलोचना को वैज्ञानिक और आधुनिक रूप दिया। उनके मानदण्ड साहित्येतर नहीं थे लेकिन उन्हें हम रीतिवादी बिल्कुल नहीं कह सकते। शुक्ल जी की आलोचना का शास्त्रीय आधार व्यवस्थित है अर्थात् उसका शास्त्र पक्ष सुदृढ़ है, वह रसवाद का परम्परागत आधार लेकर चला है, तथापि वह अन्धमतवादी नहीं है। शास्त्र के सुदृढ़ आधार पर शुक्लजी ने लोकमंगल का लक्ष्य निर्धारित कर आलोचना में युग–बोध का समावेश किया है। शुक्लजी ने हिन्दी आलोचना को पारिभाषिक महत्व के बहुत सारे शब्द दिये हैं। 'लोकमंगल' उन्हीं का दिया हुआ शब्द है। शुक्लजी मनुष्य को लोकबद्ध प्राणी कहते हैं। मनुष्य की निजी सत्ता का ज्ञान लोकबद्ध है। 'यह लोक ही है, जिसके भीतर कविता या किसी भी कला का प्रयोजन और विकास होता है।''[6]

आलोचना की बात होती है तो इसमें प्रतीक पुरुष के रूप में डॉ. रामविलास शर्मा का नाम प्रथमतः आता है। जिस समय शर्माजी का पदार्पण हिन्दी आलोचना के क्षेत्र में हुआ वह हिन्दी आलोचना का संक्रमण काल था। इस युगीन परिस्थिति को रेवती रमणजी के प्रस्तुत कथन से समझ सकते हैं–

''डॉ. रामविलास शर्मा हिन्दी की मार्क्सवादी आलोचना के प्रतीक पुरुष हैं। उन्होंने जिन दिनों लिखना शुरु किया उन दिनों मार्क्सवादी आलोचना को पगडण्डी की शक्ल भी नहीं मिली थी। आचार्य शुक्ल का देहावसान हो चुका था और पं. हजारी प्रसाद द्विवेदी उनकी खाली जगह भरने में लगे थे। तुलनात्मक समीक्षा का तिलिस्म पहले ही टूट चुका था

और डा. नगेन्द्र के काम कुण्ठ रसबोध का किला अब तक निर्माणाधीन ही था। प्रो. प्रकाशचन्द्र गुप्त और शिवदान सिंह चौहान स्वनिर्मित मकड़ी के जाले में फँसकर रह गये थे। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी की प्रतिभा का तेज छायावाद की सुवर्ण–स्मृति के साथ ही मन्द पड़ गया था और पं. शान्तिप्रिय द्विवेदी बड़े शान्त तरीके से अप्रासंगिक हो गये थे। गरज यह कि साहित्य में जिस तीव्रता से नवीन प्रवृतियों और शैलियों का समावेश हो रहा था, उसमें प्रगति की आकांक्षा जिस प्रयोग वैविध्य में उजागर हो रही थी, उसे अनदेखा करके आलोचना एक ठहरी हुई गतानुगतिक चीज ही हो सकती थी। व्यक्ति–वैशिष्ट्य के नाम पर व्यक्तिवाद के नये उत्थान के एक ऐतिहासिक दौर में डॉ. रामविलास शर्मा ने एक साथ अन्दर और बाहर के दोनों ही मोर्चों पर दबंग और विचारवान आलोचक की भूमिका का निर्वाह किया।''[7]

मार्क्सवाद के बाद हिन्दी आलोचना अनेक विकास के रास्तों से गुजरती हुई एक नये रूप समाजशास्त्रीय आलोचना के रूप में विकसित हुई। समाजशास्त्रीय आलोचना का विकास मार्क्सवादी विचारकों ने किया था, शायद इसलिए इसे मार्क्सवाद से जुड़ा समझ लिया जाता है। इसका स्पष्टीकरण अजय वर्मा के प्रस्तुत उद्धरण में देख सकते हैं–

''समाजशास्त्रीय आलोचना का विकास मार्क्सवादी विचारकों ने किया। मार्क्स बाल्जाक के प्रशंसक थे। मार्क्स और एंगेल्स ने विश्व की क्लासिक रचनाओं का अध्ययन किया था तथा कला और साहित्य पर विचार किया। इनके इन विचारों को संकलित करके प्रगति प्रकाशन मास्को ने 'साहित्य तथा कला' शीर्षक से पुस्तक प्रकाशित की। इसमें संकलित टिप्पणियों और संकलनकर्ता के संपादकीय में मार्क्सवादी सौन्दर्यशास्त्र का आधार मौजूद है। इसी के आधार पर परवर्ती मार्क्सवादी विचारकों ने मार्क्सवादी सौन्दर्यशास्त्र का निर्माण किया।

समाजशास्त्रीय आलोचना का विकास मार्क्सवादी विचारकों ने किया, इसलिए प्रायः साहित्य के समाजशास्त्र और मार्क्सवादी आलोचना को समान समझ लिया जाता है। खासतौर से आज के दौर में 'साहित्य का समाजशास्त्र' को लेकर यह भ्रम अक्सर देखा जाता है। पर यहाँ यह ध्यान में रखना जरुरी है कि साहित्य के समाजशास्त्रीय अध्ययन की एक मार्क्सवाद विरोधी धारा भी है जिसके केन्द्र में मार्क्सवादी विचारधारा नहीं, मैक्सवेबर के समाजशास्त्रीय सिद्धान्त है।''[8]

डॉ. नामवर सिंह ने न केवल मार्क्सवादी आलोचना को बल्कि प्रगतिवादी समीक्षा के विकास को भी गति प्रदान की। यद्यपि नामवर सिंह को मार्क्सवादी आलोचक माना जाता है किन्तु मार्क्सवाद में जो कट्टरता परिलक्षित है, नामवर सिंह उसके जकड़न से अलग प्रतीत होते हैं। डॉ0 नामवर सिंह की जिन कृतियों ने प्रगतिवादी आलोचना के विकास में विशेष भूमिका निभाई उनमें प्रमुख है–

''प्रगतिवादी समीक्षकों में डॉ. नामवर सिंह का स्थान अत्यंत उच्च है। उनके अब तक कई समीक्षात्मक ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं जिनमें 'हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग', 'छायावादः इतिहास और आलोचना' (1954), 'आधुनिक साहित्य की प्रवृतियाँ', 'कहानी : नई कहानी' (1964), 'कविता के नये प्रतिमान' (1968), 'दूसरी परम्परा की खोज' (1982) आदि उल्लेखनीय हैं।''[9]

निष्कर्षतः साहित्य में मनोविश्लेषणवाद नवीन किन्तु बहुत ही चर्चित शब्द बनकर उभरा है। हिन्दी में मनोविश्लेषणवादी अनेक विधाओं का विकास हुआ है, आलोचना भी उन्हीं विधाओं में से एक है। यद्यपि आलोचना के क्षेत्र में मनोविश्लेषणवादी आलोचना अधिक प्रसिद्धि नहीं पा सकी, तथापि इसने आलोचना को विकास में एक पायदान आगे जरुर बढ़ाया है।

सन्दर्भ :

1. गणपति चन्द्र गुप्त : हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास,, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2006, पृ. 474.
2. बीसवीं सदी की हिन्दी आलोचना, रेवती रमण, बीसवीं सदी का हिन्दी साहित्य, सम्पादक– डॉ. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली, 2012, पृ. 182–183.
3. विश्वनाथ त्रिपाठी : हिन्दी आलोचना, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014, पृ. 15.
4. विश्वनाथ त्रिपाठी : हिन्दी आलोचना, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014, पृ. 22.
5. गणपति चन्द्र गुप्त : हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2006, पृ. 479–480.
6. बीसवीं सदी की हिन्दी आलोचना, रेवती रमण, बीसवीं सदी का हिन्दी साहित्य, सम्पादक – डॉ. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली, 2012, प. 185–186.
7. बीसवीं सदी की हिन्दी आलोचना, रेवती रमण, बीसवीं सदी का हिन्दी साहित्य, सम्पादक– डॉ. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली, 2012, पृ. 194–195.
8. अजय वर्मा : हिन्दी आलोचना का स्वत्व भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली, 2012, पृ. 108.
9. गणपति चन्द्रगुप्त : हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2006, पृ. 499.

***

संस्मरण साहित्य : एक आलोचनात्मक अध्ययन

लक्की कुमारी

संस्मरण बहुत ही लचकदार विधा है। इसके तत्व और गुण अन्य अनेक विधाओं में मिल जाते हैं। बहुत समय तक रेखाचित्र., जीवनी, रिपोर्ताज आदि विधाओं और संस्मरण को एक ही समझा जाता रहा। संस्मरण और रेखाचित्र एक–दूसरे के साथ कहीं–कहीं इस तरह जुड़े कि एक–दूसरे के पर्याय मान लिये गये। संस्मरण में वर्णनात्मकता होती हैं और विवरण प्रस्तुत किया जाता है। स्थितियों और व्यक्तियों को एक–एक चरण आगे–पीछे जोड़कर अंकित किया जाता है। संस्मरण एक से अधिक शब्दचित्र हो सकते हैं। स्मृति से जुड़ी अनुभूतियों और भाव सम्पदा के आधार पर अभिव्यक्ति होती है। स्मृति के रंग–रूप को आत्मीयता की स्याही के रस में डुबोकर व्यंजित किया जाता है। संस्मरण केवल अतीत की घटनाओं पर आधारित होता है। लेखक की दृष्टि आन्तरिक विशेषताओं को अभिव्यक्त करने की ओर रहती है। उसके लिए व्यक्तिगत संबंध का होना अनिवार्य हैं जब किसी व्यक्ति, वस्तु, घटना आदि के साथ जुड़ी हुई यादों पर से समय का आवरण हट जाता है और अतीत की घटनाएँ चलचित्र की रील की भाँति साकार होकर कलमबद्ध हो जाती है, तो संस्मरण की सृष्टि होती है। इसमें भावुकता का अंश प्रधान होता है। व्यास–शैली का प्रयोग होता है। लेखक अनेक कथ्यात्मक प्रसंगों और घटनाओं का वर्णन करता चलता है। इन तथ्यों की पुष्टि हेतु इस अंश को देखा जा सकता है–––

''संस्मरण में सम्पूर्ण जीवन का चित्रण न करके कुछ घटनाओं का विवेचन होता है। लेखक अपने जीवन की किसी घटना–विशेष या सम्पर्क में आये हुए व्यक्ति–विशेष के चरित्र के महत्वपूर्ण पक्ष की झाँकी पेश कर जीवन के खण्ड रूप या किसी एक पक्ष का ही चित्रण करता है। वह खण्डविशेष अपने–आप में महान होता है और आत्मलम्बन की विशेषताओं पर प्रकाश डालने वाला भी। यह कथात्मक साहित्य–विधा है। यह कथा काल्पनिक न होकर सत्य पर आधारित रहती है। शंका और अविश्वास की गुंजाइश संस्मरण में बहुत कम होती है। कथा का ताना–बाना व्यक्ति–जीवन और घटनाओं से बुना जाता है और पाठक के साथ सहज तादात्म्य हो जाता है। जीवन के ऐसे अनेक पक्षों और प्रसंगों की झाँकी संस्मरण में पेश की जाती है जिनके जानने की इच्छा पाठक को होती है। यों भी अन्तरंग प्रसंग किसी की भी जिज्ञासा का कारण बन जाते हैं। यद्यपि चित्रोपमता संस्मरण साहित्य की अनिवार्यता नहीं है, तथापि हिन्दी संस्मरण साहित्य की यह ऐसी महती विशेषता है, जिसके कारण संस्मरणों को रेखाचित्र कहा जाता रहा है। चित्रोपमता से तात्पर्य है कि आत्मलम्बन का विवेचन इस ढंग से किया जाये कि उसका स्वरूप पाठक के सामने स्पष्ट रूप से उभरकर

उसी प्रकार आ जाये जैसे कि कैमरे द्वारा चित्र। संस्मरण लेखक चुन–चुनकर शब्दों द्वारा चित्र प्रस्तुत करता है। संवेदनशील और भावुक लेखक सम्पर्क में आने वाले व्यक्ति और घटनाओं के महत्वपूर्ण रूप को स्मृति–पटल में एकत्रित एवं अंकित करता रहता है, जब वह लिखने बैठता है तो चित्र सहज ही बनते चले जाते हैं।''[1]

संस्मरण की एक कड़ी में जुड़ा हुआ चर्चित नाम है– यात्रा–संस्मरण जिसको देशी–विदेशी यात्रियों ने अपनी–अपनी भाषाओं में प्रयुक्त किया है। अपने आदि रूप में यात्रा–संस्मरण यात्रा–वृत्त अधिक है, और अधिकतर विदेशी यात्रियों का प्रिय–लेखा जोखा रहा है। हिंदी के आरंभिक यात्रा–वृत्त भारतेंदु द्वारा लिखे गए हैं। वे स्वभाव से सैलानी थे और लेखकीय वृत्ति के अनुरूप उनका पैना पर्यवेक्षण था। उनके यात्रा–वृत्तों में हैं 'हरिद्वार' 'लखनऊ', 'जबलपुर' सरयू पार की यात्रा, वैधनाथ की यात्रा और जनकपुर की यात्रा। ये वृत्त कविवचन सुधा, 'हरिशचन्द्र चंद्रिका' मोहन चंद्रिका इस प्रकार विविध अंकों में प्रकाशित है। इस हेतु इन अंश को देखा जा सकता है––––

''प्रायः प्रत्येक नयी विधा अपने आगमन की घोषणा पत्र–पत्रिकाओं के माध्यम से ही करती है। संस्मरण–साहित्य भी इसका अपवाद नहीं है। 'सरस्वती' इस युग की सर्वाधिक महत्वपूर्ण पत्रिका थी और संस्मरण–साहित्य ने इसके माध्यम से ही अपने अस्तित्व की सूचना दी। इसके विभिन्न अंकों में समय–समय पर अनेक रोचक संस्करण प्रकाशित होते रहे। स्वयं महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'अनुमोदन का अंत' फरवरी (1905), 'सभा की सभ्यता' (1907), विज्ञानाचार्य बसु का 'विज्ञान–मंदिर' (जनवरी, 1918) आदि की रचना करके संस्मरण–साहित्य की श्रीवृद्धि की। 'सरस्वती' के विभिन्न अंकों में महावीर प्रसाद द्विवेदी के अतिरिक्त रामकुमार खेमका, जगद्बिहारी सेठ, पांडुरंग खानखोजे, प्यारेलाल मिश्र, काशी प्रसाद जायसवाल, जगन्नाथ खन्ना, भोलादत्त पांडेय आदि द्वारा क्रमशः लिखी गयी', 'इधर–उधर की बातें' (मई 1918), 'मेरी बड़ी छुट्टियों का प्रथम सप्ताह' (जून 1913), 'वाशिंगटन महाविद्यालय का संस्थापन दिनोत्सव' (अक्टूबर 1913), 'लंदन का फाग या कुहरा' (फरवरी 1908), 'इग्लैण्ड के देहात में महाराज बनारस का कुआं' (जुलाई, 1907), 'अमेरिका आने वाले विद्यार्थियों को सूचना' (दिसम्बर, 1911) और मेरी नयी दुनिया संबंधिनी रामकहानी (1909) शीर्षक रचनाएँ प्रकाशित हुई। आलोच्य युग में प्रकाशित उपर्युक्त अधिकांश संस्मरण प्रवासी भारतीयों द्वारा लिखे गये और प्रायः सभी का अभीष्ट भारतीय पाठकों को पश्चिम की रीति–नीतियों, दर्शनीय स्थलों आदि से परिचित कराना था। यही कारण है कि इनकी शैली अनेक स्थलों पर निबंधात्मक हो गयी है।''[2]

संस्मरण विधा के संदर्भों को आगे ले जाने की श्रेणी में इन तथ्यों को देखा जा सकता है। इस संदर्भ के द्वारा संस्मरण के विभिन्न पहलुओं का बोध होता है।

''मेरे चार–चार चाचा थे। अर्जुन, भीम, लक्ष्मण और नरसिंह मेरे पिता मारूती और मेरे चाचा राम, हैदराबाद में रहते थे। रामायण–महाभारत के नाम वाले सभी पात्र हमारे परिवार में देखने को मिलते हैं। हमारा संयुक्त परिवार था। मेरे पिता भाइयों में सबसे बड़े थे। शादी के पश्चात् इन्हें अलग घर बसाने के लिए मजबूर किया गया था। मेरे पिता बढ़ई का काम करते थे। गाँव के रईस लोग उन्हें साल में एक बार थोड़ा–सा अनाज देते, वह भी फसल के समय। वे अचानक 1973 में चल बसे। मेरे चाचा दशमी के समय मुर्गा काटते थे। मुर्गे के गोरत के छोटे–छोटे टुकड़े करके नमक–मिर्च मसाला (मोठा) डालकर, जब चूल्हे पर उबालने के लिए रखते, तो दूर तक उसकी खुशबू जाती थी। इस गंध को सूँघने के पश्चात् मेरी दीदी घर के पिछवाड़े में जाती। जहाँ मेरा चाचा मुर्गे को साफ करके बाकी कचरा वहीं फेंककर आता था। दीदी झट से झुक कर लंबे–लंबे छिछड़े उठाती और हमारे घर की ओर भागने लगती। वे मुर्गे के अंतड़े होते थे। उन्हें पानी से स्वच्छ धोकर, थोड़ा सा नमक–मिर्च डालकर पका लेते थे, और हम सब भाइ–बहन और माँ बैठकर मिश्रित अनाज के आटे से बनी हुई रोटी के साथ खाते थे। उस सब्जी से इतनी गंदी बास आती थी कि पूछो मत। अंतड़े की गंदगी कभी भी ठीक ढंग से साफ नहीं हो पाती थी। इसलिये कभी भी कोई इन्हें खाने के काम में नहीं लाता था। परन्तु हम अभागे वैसी गंदगी भरी चीज को खाते थे। मुझे अंतड़े की भाजी खाने नहीं देते थे, परन्तु जिद्द करके मैं थोड़ा सा खा ही लेता था और बाद में कै करता था। इतनी सारी समस्याएँ झेलते हुए भी मेरी माँ को हमारे स्कूल जाने की सदा चिंता रहती थी, क्योंकि दलित आंदोलन का प्रभाव हमारे गाँव के दलितों पर गहराई से हुआ था। हमारे गाँव से चार किलोमीटर दूरी पर हमारे तालुके भालकी में राजा ढाले, यशवंत अम्बेडकर आदि महाराष्ट्र के क्रान्तिकारी दलित नेताओं ने आकर दलितों में जागृति लायी थी। उनका भाषण सुनने के लिए मेरी माँ तथा अनेक दलित स्त्रियाँ जाते थे। वे साथ में हमें भी ले जाते थे।''[3]

संस्मरण की अन्य विधाओं को आगे बढ़ाते हुए इसी कड़ी के उन अंशों को देखा जा सकता है, जो संस्मरण को अधिक पुष्टता प्रदान करती है।

''श्यामाचरण जी पीते थे, कहना शायद ठीक नहीं होगा, वे पीते नहीं थे, ड्रिंक करते थे, ड्रिंक को वे आचमन कहते, उन्होंने स्वयं स्वीकार किया है, मधु प्याले का प्रत्यक्ष अनुभव होने के दो दशक पहले बच्चन जी की 'मधुशाला' पूरी याद हो गई थी, यदा–कदा आचमन सुख की अपनी कमजोरी के लिए मैं बच्चन जी को दोष नहीं दूँगा। पीने के बाद जो बोतलें खाली हो जातीं, उनका क्या हो? विश्वविद्यालय के दूसरे अध्यापक उन्हें कबाड़ी को बेच देते, दुबे जी उनका उपयोग परिवेश के सौंदर्यीकरण के लिए करते। वे विश्वविद्यालय–परिसर की चाणक्यपुरी कहे जाने वाले क्षेत्र के बंगला नं. सात में रहते थे। उसमें सामने की ओर बड़ा सुंदर बगीचा था।

भाँति–भाँति के गुलाब से वंती के दिनों में वह बगीचा बिल्कुल ईरानीकालीन लगता नहीं फूल नहीं, रंग बोलते हैं, यह शीर्षक केदार जी को पता नहीं कहाँ से सूझा था? दुबे जी के बगीचे के फूल नहीं रंग बोलते थे। रंग ही नहीं सुगंध भी, सुगंध के साथ बोतलें भी, इस बगीचे की क्यारियाँ ईटों से नहीं बोतलों से बनतीं। यह क्यारी बियर की बोतलों की हैं या ओल्ड मांक की बोतलों की। वे अपने माली से यह नहीं पूछते थे कि तुमने रजनीगंधा की क्यारी में आज पानी डाला या नहीं कहते, आज तुम 'ओल्ड मांग' को पानी पिलाना भूल गए। शाम को वे बगीचे में कुर्सियाँ निकलवा लेते। कोई लाख अमदिरावादी हो, खाली बोतलों से भरे इस बगीचे में कुछ न कुछ सुरूर चढ़ता ही, यह सरूर दुबे जी की बातों का होता, उनकी विदग्धता का होता, उनकी आत्मीयता का होता, उनके शब्द चयन का होता, अंग्रेजी हो या हिंदी,? दुबे जी शब्द चयन में बड़ी सावधानी बरतते और तो और छत्तीसगढ़ी और बुंदेली के ठेठ शब्द भी उनके मुख से निकलते तो जैसी गरिमा की चाशनी में पककर। इतने शीरों थे दुबे जी के लब कि बुंदेली और छत्तीसगढ़ी सुनकर भी विद्वान श्रोता बेमजा नहीं होते थे।''[4]

संस्मरण के द्वारा इसके विभिन्न विधाओं की विभिन्न पहलुओं को स्पष्टता मिलता है। निःसंदेह यह संस्मरण बहुत सारे तथ्य को स्पष्ट करती है————

''कविता का मूल रस–तत्व जो प्रेम है, और जो किसी संवेदनशील कवि की मूलपूँजी है वह प्रेम उनके भीतर था। बिना किसी भेदभाव के, जाति–बिरादरी के वह सबसे जुड़ते थे। वह किसी गुट से भी नहीं बंधे थे। हालांकि कुछ लोग यह आरोप भी लगते रहे हैं, कि उनका संबंध आर..एस. एस. से था। लेकिन मैंने उन्हें कभी न उस वेशभूषा में देखा, न उन्होंने कभी ऐसी कट्टर मानसिकता का उदाहरण पेश किया। जबकि उसके सहपाठियों में रहे घोर जनसंघी सोच और दृष्टिवाले आज के चर्चित राजनीतिज्ञ और कई काव्य–संग्रहों के रचयिता पंडित केशरीनाथ त्रिपाठी और हरिमोहन मालवीय। हरिमोहनजी तो ए.जी. ऑफिस में ही थे, लेकिन उन्हें भारत सरकार की नौकरी से हटना भी पड़ा। और उमाकांत जी के प्रिय कवियों में थे– नईम भाई, एहतराम इस्लाम। भारतीय संस्कृति से प्रेम करना कट्टर हिंदू होना नहीं है। वह कट्टरता के विरोधी थे। मुसलमान फकीर भइयाजी तो उनके घर–परिवार में ही रहते थे। पौराणिक चरित्रों को माध्यम बनाकर कुछ नया रचने और कहनेवाले उमाकांतजी सबके थे, सबसे हाथ बंटाते थे और सबके काम आते थे। न जाने कितने–कितने प्रगतिशीलों ने भी यही किया है। तो क्या उन्हें भी हम इस बिना पर ऐसे दायरे में नहीं खींच घसीट सकते? हाँ एक बात जो उमाकांत जी में विशेष थी वह ये कि बिना आडंबर की जिंदगी जीते थे। जितने साधारण उतने ही सहज। परिवार को परिवार की तरह जीते थे।''[5]

संस्मरण साहित्य के विधागत स्वरूप को समझने हेतु पुष्पा भारती के आलेख जो 'आप तो गए अपने राम के धाम' नाम शीर्षक से उल्लेखित किया गया है। इस अंश को रेखांकित करके संस्मरण की विधागत रूप को समझा जा सकता है————

''यादों की जुगाली करते हुए मन पीछे, बहुत पीछे ही भागता जाता है न। मुझे भी याद आ रहे हैं सन् 1956–57 के वे दिन जब मैं कलकत्ता विश्वविद्यालय से संबद्ध शिक्षायतन कॉलेज में हिन्दी की प्राध्यापिका बनकर गई थी। उन दिनों वहाँ विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग में श्री कल्याणमल लोढ़ा और श्रीविष्णुकांत शास्त्री पढ़ाते थे। मैंने दोनों के नाम तो सुन रखे थे, किंतु परिचय किसी से नहीं था। आदत मेरी ऐसी थी कि अपने काम से काम रखती थी। बस! सामाजिक रूप से किसी से मिलना जुलना या परिचय प्राप्त करने की कोशिशें करना वगैरह आता ही नहीं था। सो शुरुआती समय ऐसे ही गुजर गया। डेढ़ दो बरस बाद किसी समारोह में जब शास्त्रीजी से परिचय हुआ तो वे बड़े सहज भाव से बोले, 'ओहो!' तो आप हैं हमारी बच्चियों की पुष्पा दी। आपसे मिलने के लिए तो हम बड़े उत्सुक थे। बी0ए0 में आप जिन छात्राओं को पढ़ाकर भेजती हैं, वह एम.ए. की पढ़ाई के लिए हमारे ही विभाग में आती हैं। सच मानिए उन छात्राओं को पढ़ाने में हमें स्वयं बहुत आनंद मिल रहे हैं। साहित्य के कितने धुंध और जाले काट–छाँटकर बड़ी उर्वर भूमि तैयार कर देती हैं आप। वे बच्चियाँ आपका हवाला देकर जिस तरह की बातें करती हैं– जैसे प्रश्न पूछती हैं कि चित्त प्रसन्न हो जाता है। मैं संकोच में भर उठी थी। उन्हें बीच बीच में टोक कर इतना ही कहा, 'मेरे मुँह पर मेरी प्रशंसा करने की बजाय आपने मुझे सिर्फ आशीर्वाद दिया होता तो मैं ज्यादा खुश होती।''[6]

संस्मरण विधा की अनेक रोचक संदर्भों की श्रेणी में इस अंश को रेख्त्राांकित किया जा सकता है। इसके तहत कान्तिकुमार जैन की यह लेखनी विशिष्ट योगदान करती है————

''श्यामचरण जी दुबे ने हिंदी साहित्य के जिन रचनाकारों की कृतियों को अपने समाजशास्त्रीय अध्ययन के लिए पसंद किया, वे सभी स्वयं दुबे जी की तरह व्यक्तिगत जीवन में शाइस्तगी पसंद, सुरूचि संपन्न और अभिजात रूचि के हैं। कृष्णा सोबती, राही मासूम रजा, राजेन्द्र यादव, श्रीलाल शुक्ल, अशोक वाजपेयी, इनकी तुलना में उन्हें मुक्तिबोध या हरिशंकर परसाई पसंद नहीं आते थे, ये दोनों उनकी दृष्टि में कुर्त्ता, पैजामा पहनने वाले, टूटी चप्पले चटकाने वाले थे, दुबे जी मुक्तिबोध के व्यक्तित्व के प्रशंसक नहीं थे। उनके कर्तृत्व की महत्ता से भी वे आश्वस्त नहीं थे, मुक्तिबोध की कविताओं के संबंध में अपने लेखों में वे जो टिप्पणियाँ करते, वे मुक्तिबोध की सर्वस्वीकृत साहित्यिक छवि से हटकर होतीं। ओमप्रकाश सम्मान के अवसर पर बोलते हुए कमानी सभागार नई दिल्ली में वे बोल तो रहे ये 'साहित्य की मेरी पहचान' विषय पर भाषण के अंत–अंत में उन्होंने

मुक्तिबोध को अपनी जद में ले ही लिया। कहा ''बहुचर्चित और प्रायः देवस्थान पर प्रतिष्ठित मुक्तिबोध काका और निर्भय हथरसी के प्रेमियों के लिए सिर्फ अर्थहीन शब्द योजना के प्रणेता हो सकते हैं। मुक्तिबोध के प्रति उनका यह रवैया किंचित पूर्वग्रहपूर्ण ही कहा जाएगा, क्योंकि उसी भाषा में उन्होंने स्वीकार किया था।''[7]

अंततः साहित्य की सच्ची पहचान है, उसकी मानवीय और सामाजिक संवेदना, साथ ही वे यह भी स्वीकार करते हैं कि मनोरंजन, सामाजिक आलोचना और सांस्कृतिक मूल्यांकन के अतिरिक्त वह नए क्षितिजों और सीमांतों को भी खोजती है, प्रेरित करती है, प्रत्यक्ष परिवर्तन में साहित्य की भूमिका सीमित ही होती है किंतु नई अभिवृत्तियों और नए मूल्यों के जनक के रूप में उसका महत्व असंदिग्ध है।

सन्दर्भ :

1. डॉ. माजदा असद : गद्य की नयी विधाएँ, ग्रन्थ अकादमी, प्रथम संस्करण : 1990, पृ. 11.
2. डॉ. नगेन्द्र : हिंदी साहित्य का इतिहास, मयूर पेपरबैक्स, चालीसवां संस्करण, 2012, पृ. 509.
3. युद्धरत आम आदमी जन साहित्य का दस्तावेजी त्रैमासिक पूर्णांक–101, विशेषांक–2009, संपादक रमणिका गुप्ता, पृ. 116.
4. 'हंस जुलाई–2005, जनचेतना का प्रगतिशील कथा– 'मासिक, पूर्णांक–226, वर्ष–19, अंक–12, संपादक राजेन्द्र यादव, पृ. 28.
5. साहित्य अमृत मासिक नवम्बर, 2006, वर्ष–12, अंक–4, कार्तिक–मार्गशीर्ष, संवत् 2063, संपादक–डॉ. लक्ष्मीमल्ल सिंधवी, पृ. 29.
6. साहित्य अमृत, वर्ष–10, अंक–10, मई–2005, संपादक डॉ. लक्ष्मीमल्ल सिंधवी, पृ. 42
7. 'हंस जुलाई–2005, जनचेतना का प्रगतिशील कथा– 'मासिक, पूर्णांक–226, वर्ष–19, अंक–12, संपादक राजेन्द्र यादव, पृ. 35.

***

मीडिया का बदलता स्वरूप

पल्लवी कुमारी *

हिन्दी शब्द 'माध्यम' से अंग्रेजी में 'मीडियम' और मीडिया बना। एक जगह की बात या घटना को दूसरी जगह पहुंचाने में जो व्यक्ति या उपकरण माध्यम बनता है, वही मीडिया है।

सृष्टि के जन्मकाल से ही किसी न किसी रूप में मीडिया का अस्तित्व रहा है और आगे भी रहेगा। इस सृष्टि में नारद जी पहले पत्रकार हैं। इसीलिए उनकी जयंती (ज्येष्ठ कृष्ण 2) वास्तविक 'पत्रकारिता दिवस' है। 30 मई को देशभर में 'हिन्दी पत्रकारिता दिवस' मनाया जाता है। चूंकि 1826 में इस दिन श्री जुगल किशोर शुक्ल ने कोलकाता से हिन्दी का पहला साप्ताहिक अखबार 'उदन्त मार्त्तण्ड' शुरू किया था।

हिन्दी का पहला दैनिक समाचार पत्र 'उदन्त–मार्त्तण्ड' संवादों की दुनिया में मील का पत्थर कहा जा सकता है। संवाद चुटीले, संक्षिप्त, व्यंग्यपूर्ण, रोचक, गंभीर, हास्यास्पद आदि अनेक प्रकार के हो सकते हैं वैसे तो संवादों का सर्वाधिक महत्व नाटकों में होता है, पर समाचार पत्रों से नाटक बहुत कम प्रकाशित होते हैं, कभी–कभी कविता में भी संवाद देखा जाता है। समाचार–पत्र हमें समकालीन घटनाओं से परिचित कराते हैं। किसी व्यक्ति से ली गई भेंटवार्ता समाचार पत्रों में संवादों का सबसे बड़ा उदाहरण है। भेंटवार्ताओं में अनेक प्रसंग ऐसे होते हैं जिनसे संवाद प्रस्फुटित होते हैं। समाचार पत्रों में समाचारों के माध्यम से पाठक से संवाद होता है। समय के साथ मीडिया का रूप भी परिवर्तित होते जा रहा है आज के संदर्भ में जहाँ तक मीडिया का प्रश्न है संवाद हमेशा ही होता है। कभी दर्शक के रूप में, कभी श्रोता के रूप में तो कभी पाठक के रूप में। जब कोई व्यक्ति समाचार पत्र पढ़ता है तो उसका पाठकीय संवेदना के माध्यम से लेखक ओर संपादक से संवाद होता है। जब कोई दर्शक टी.वी. कार्यक्रम देख रहा होता है। दो व्यक्तियों के द्वारा किए गए वार्तालाप को ही संवाद कहा जाता है।

आजादी के बाद भारत में रेडियो एक बेहद ताकतवर माध्यम के रूप में विकसित हुआ। एक धर्मनिरपेक्ष, लोकहितकारी राष्ट्र के जनमाध्यम के तोर पर देश के नवनिर्माण में आकाशवाणी की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। सामाजिक विचारक जेम्स पेत्रास के शब्दों में– ''एक नयी दृष्टि को प्रेरित किया जाना चाहिए जो लोगों के केवल प्रभुत्व से स्वतंत्र होने की इच्छा ही नहीं, जागृत करे, बल्कि जीवन को अर्थपूर्ण बनाने के लिए मुक्त करती हो तथा अयांत्रिक रिश्तों को बढ़ाते हुए संघर्ष जारी रखने की प्रेरणा दे।''[1]

---

* यूजीसी-नेट, शोध छात्रा, हिन्दी, बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

सूचना और शिक्षा के अलावा देश की सामासिक संस्कृति को उभारने और राष्ट्रीय नवनिर्माण के लिए शुरू किए गए कार्यक्रमों को एक आवाज देने का काम रेडियो ने किया।

वर्तमान समय में मीडिया को उपयोगिता, महत्व एवं भूमिका निरंतर बढ़ती जा रही है। कोई भी समाज, सरकार, वर्ग, संस्था, समूह व्यक्ति मीडिया की उपेक्षा कर आगे नहीं बढ़ सकता। वेबस्टर की New International Dictionary के ''कोई उद्योग, यूनियन, कारपोरेशन, व्यवसाय, कर्मचारियेां, हिस्सेदारों या जनसाधारण के साथ स्वस्थ और उत्पादक सम्बन्ध स्थापित करने या उन्हें स्थायी बनाने के लिए प्रयत्न करें, जिनसे वह अपने आपको समाज के अनुकूल बना सके, अथवा अपना उद्देश्य समाज पर व्यक्त कर सके, उसके इन प्रयत्नों को जन–सम्पर्क कहते हैं।''[2]

आज के जीवन में मीडिया एक अपरिहार्य आवश्यकता बन गया है। अगर हम देखें कि समाज किसे कहते हैं तो यह तथ्य सामने आता है कि लोगों की भीड़ या असंबंद्ध मनुष्य को हम समाज नहीं कह सकते हैं। समाज का अर्थ होता है संबंधों का परस्पर ताना–बाना, जिसमें विवेकवान और विचारशील मनुष्यों वाले समुदायों का अस्तित्व होता है।

आदि मानव इशारों और ध्वनियों से अपनी बात करता था तो बाद के मानव ने पहले बेतरतीब और फिर तरतीबवार भाषा और उसे जाहिर करनेवाले चित्रों, चिन्हों अर्थात् अक्षरों को मीडिया का साधन बनाया। इस अवस्था में एक दूसरे तक अन्तवैयक्तिक संचार का माध्यम रहा, अगर यह कहा जाए की संचार की शुरूआत दो व्यक्तियों या एक ही स्थान पर मौजूद छोटे–छोटे समूहों के बीच संचार की शुरूआत हुई। मीडिया का स्वरूप बदलता रहा कल कुछ और था, आज कुछ और आने वाले कल का मीडिया कुछ और ही कहानी कहेगा। कहने का आशय ये है कि ''समय के साथ–साथ मीडिया के स्वरूप भी परिवर्तित होते चले गये। वर्तमान समय में समाज में मीडिया व सूचनाओं के प्रति लोगों की ललक बढ़ रही है हर आयु वर्ग सूचना समृद्ध होने का सुखद एहसास लिए घूम रहा है।''[3]

घरेलू महिलाओं व बच्चों की बातों में भी खबरें और ढेर सारे मीडिया के संस्कार रोपने की कोशिश हो रही है। प्रार्थना सभा शीर्षक पढ़कर बच्चों को देश दुनिया की घटनाओं एवं मुद्दों के प्रति जागरूक करने का तरीका आम हो चुका है, वहीं इन्टरनेट आधारित मीडिया की ओर बच्चों को मोड़ने का सिलसिला भी अनेक स्कूलों में प्रारंभ हो चुका है। बच्चों को समसामयिक, राष्ट्रीय, अंतर्राष्ट्रीय स्तर के विषयों, मुद्दों घटनाओं पर विशेष एसाइनमेंट दिये जाते हैं। जिससे उन्हें इन्टरनेट पर सर्चिंग के साथ–साथ जानकारी खोजने का ज्ञान भी प्राप्त हो सकें।

हेरोल्ड लासवेल के शब्दों में मास मीडिया के मुख्य कार्य हैं, ''आसपास के माहौल पर नजर रखना, जानकारी को विश्लेषित कर उसका प्रस्तुतीकरण और सभ्यता तथा संस्कृति का संप्रेषण करना है।''[4] इस

परिभाषा में अब दो और घटक भी जुड़ गये हैं और वे हैं मनोरंजन तथा विज्ञापन।

हमारा समाज जनसंचार पर कितना निर्भर है यह इस बात से पता चल सकता है कि सामाजिक और वैयक्तिक दोनों स्तरों पर हम मीडिया से जुड़े हुए हैं। यह जुड़ाव, यह निर्भरता केवल मनोरंजन, अर्थशास्त्र, अर्थव्यवस्था और राजनीति तक ही सीमित नहीं है बल्कि शिक्षा, विद्या, विज्ञान, कृषि, परिवार जैसे क्षेत्रों पर भी आश्रित है।

1970–80 के दशक विज्ञान में स्थानिकता (पोजिशनिंग) दौर के नाम से जाना जाता था। इस संकल्पना का प्रारम्भ 1972 में ''एडवरटाईजिंग एज'' नामक पत्रिका में जैक ट्राउड और एल राईट्स द्वारा लिखे गये लेखों से हुआ। इस पोजिशनिंग संकल्पना ने विश्व भर के विज्ञापनों को सर्वाधिक प्रभावित किया। इस संकल्पना पर आधारित भारतीय विज्ञापनों में हीरा होण्डा, कैडबारी– चॉकलेट आदि प्रमुख हैं।''[5]

वर्तमान समय में विज्ञापन का मायाजाल सर्वत्र व्याप्त है। एक उद्योग एवं व्यवसाय के रूप में यह अर्थव्यवस्था का प्रमुख अंग बन गया है। देश, समाज, व्यवसाय एवं व्यक्ति के विकास के लिए विज्ञापन आवश्यक साधन बन गया है। पत्रकारिता आज पूरी तरह से विज्ञापन के चंगुल में है। इसका कारण यह है कि पत्रकारिता जिन माध्यमों के द्वारा जन–जन तक पहुंचती है विज्ञापन के माध्यम भी वही हैं जिसे जन संचार माध्यम या मीडिया कहा जाता है और इन माध्यमों की प्रमुख आय विज्ञापन ही है। इसलिए पत्रकारिता की दशा एवं दिशा का निर्धारण भी विज्ञापनों के द्वारा होने लगा है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मीडिया के आ जाने से बे–जुबान को आवाज मिल गई अब लोग बिना किसी सहायक के कम्प्यूटर चलाने की प्रभावोत्पादकता के बारे में ध्यान दे सकते हैं। टिकट बुक कराने और टेलीफोन का बिल जमा करने से लेकर सूचनाओं के आदान–प्रदान के लिए इंटरनेट का इस्तेमाल बढ़ा है। इसी तरह फुरसत के क्षणेां में टी.वी. – सिनेमा पर दिखाए जाने वाले धारावाहिकों और फिल्मों के जरिये हम अपना मनोरंजन करते हैं।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि मीडिया ने जहाँ एक ओर लोगों को सचेत और जागरूक बनाने में अहम भूमिका निभाई है, वहीं उसके नकारात्मक प्रभावों से भी इनकार नहीं किया जा सकता। यह भी स्पष्ट है कि मीडिया के बिना आज सामाजिक जीवन की कल्पना नहीं की जा सकती। ऐसे में यह जरूरी है कि हम मीडिया माध्यमों से प्रसारित और प्रकाशित सामग्री को निष्क्रिय तरीके से ग्रहण करने के बजाए उसे सक्रिय तरीके से सोच–विचार करके और आलोचनात्मक विश्लेषण के बाद ही स्वीकार करें।

सन्दर्भ :

1. लक्ष्मेंद्र चोपड़ा : जनसंचार का समाजशास्त्र, आधार प्रकाशन, संस्करण, 2002, पृ. 115
2. डॉ. अर्जुन तिवारी : जनसंचार और हिन्दी पत्रकारिता, जयभारती प्रकाशन, संस्करण, 1999, पृ. 49
3. डॉ. भगवतस्वरूप : भूमंडलीकरण मीडिया और नारी, सम्पादक– डॉ. गिरिराज शरण अग्रवाल, शोध दिशा, पृ. 46
4. Understanding Mass Communication, हेराल्ड लॉसवेल।
5. गंगा नई दिल्ली, मई 118, पृ. 69

***

भिखारी ठाकुर के नाट्य साहित्य में दलित-विमर्श

*डॉ. राम दुलार साहनी**

भारतीय समाज में जाति व्यवस्था एक अत्यन्त पुरानी परम्परा है। आज भी हमारा समाज इस जाति–व्यवस्था के बन्धन से जकड़ा हुआ है। परन्तु अब धीरे–धीरे जाति व्यवस्था के बन्धन ढीले हो रहे हैं। हमारा हिन्दू समाज प्राचीन काल से ही चार वर्णों में विभक्त है। ये वर्ण है– ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। आगे चलकर इन्हीं चार वर्णों से हमारे समाज में अनेक जातियों का अभ्युदय हुआ। इस सामाजिक वर्णव्यवस्था में ब्राह्मण और क्षत्रिय श्रेष्ठ, जबकि वैश्य और शूद्र नीच समझा गया है। ऋग्वेद के पुरूष सूक्त में वर्णों की उत्पत्ति सम्बंधी एक सिद्धान्त है, जिसकी चर्चा प्रायः की जाती है। इस सिद्धान्त में कहा गया है–

"ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहु राजन्यः कृतः
उरूतस्य यद् वैश्यः पादोभ्याम शूद्रों अजायत।"[1]

अर्थात् प्रजापति ब्रह्मा के मुख से ब्राह्मण, बाहु से क्षत्रिय, जंघा से वैश्य और पैरों से शूद्र की उत्पत्ति हुई। पुराण और स्मृति आदि ग्रंथों में भी इस सिद्धान्त की चर्चा हुई है। इससे प्रतीत होता है कि बार–बार इस सिद्धान्त की चर्चा करके वैश्य और शूद्र जातियों की निन्दा की गयी है। प्राचीन समय से चली आ रही वर्ण–व्यवस्था के सिद्धान्त का आधार कर्म था। इसी वर्ण व्यवस्था का भारतीय समाज में जाति व्यवस्था के रूप में विस्तार हुआ। परन्तु बाद में इस वर्ण–व्यवस्था एवं जाति–व्यवस्था को ईश्वर और धर्म से जोड़कर जन्मना (दैविक) बना दिया गया। वर्ण–व्यवस्था और जाति व्यवस्था का जन्मना (दैविक) सिद्धान्त हिन्दू समाज में आज भी प्रचलित है। भारतीय सामाजिक संरचना में वर्णों और जातियों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। हिन्दू समाज में पुर्नजन्म, पाप–पुण्य एवं कर्म–सिद्धान्तों ने इसे और महत्वपूर्ण बना दिया। प्राचीन वैदिक ग्रन्थों, मध्यकालीन साहित्यों और आधुनिक सामाजिक–सांस्कृतिक परम्परा में वर्ण–व्यवस्था और जाति–व्यवस्था का प्रभाव परिलक्षित होता रहा है। आज भी वर्ण–व्यवस्था और जाति व्यवस्था का यथार्थ स्वरूप भारतीय समाज में दिखायी पड़ता है। इसी के कारण लोगों में उच्च–नीच की भावना परिव्याप्त है।

लोककलाकार, रंगकर्मी एवं समाज सुधारक साहित्यकार भिखारी ठाकुर का जन्म सन् 1887 ई. में सारण जिलान्तर्गत कुतुबपुर गाँव में पिछड़े वर्ग के नाई जाति में हुआ था। भिखारी ठाकर ने अपने समय के समाज में परिव्याप्त दलितों की समस्या का प्रभाव देखा और उन्होंने इसे दूर करने का

---

* एम.ए.(हिन्दी), यू.जी.सी नेट(हिन्दी) पी-एच.डी.(हिन्दी), बी.आर.ए.बी.यू., मुजफ्फरपुर

सफल प्रयास किया। भिखारी ठाकुर का बालपन स्वयं दलित प्रभाव से ग्रसित था। उन्होंने अपने जीवन को उस समय के समाज की सामन्ती व्यवस्था में व्यतीत किया। भिखारी ठाकुर के समय की सामन्ती व्यवस्था में नाई को गाँव के सम्पूर्ण निवासियों की हजामत (दाढ़ी, बाल आदि काटना) करनी पड़ती थी। इसके साथ ही अन्य सभी जातियों खासकर सामन्ती प्रभाव वाले लोगों के घर पर शादी–विवाह, जनेऊ, श्राद्धकर्म तथा अन्य किसी प्रकार के अनुष्ठान में नाई को पूर्णतः सहयोगी रहना पड़ता था। नाई की दलित वेदना को भिखारी ठाकुर ने अपने शब्दों में इस प्रकार अभिव्यक्त किया है–

"शादी के दिन पहुँचल राजा। तिलके में से बाजल बाजा।।
धावत छूटल गोड़ के छाल। ह जजमनिका निज महाल।।
रात के बोलाहट दिन के नेवता। काम के कइक तरह के भवता।।
तेह में नइखे मन अनसात। छत्तीस गण्डा सहलन बात।।
कंटिया खातिर गइलन धावल। तेकर हक कोंहार लोग पावल।।
पत्तल घटलऽ धावल जइहऽ। बारी न होखस त लेले अइहऽ।।
माली न लेके अइलन फूल। एह में बा नाउ के भूल।।
देरी भइल ना आइल ढ़ोल। ठाकुर तूँ हउअ बकलोल।।
दही–अच्छत–मीठा धइलऽ। गउर–गणेश के स्थापन कइल।।
दिहऽ बोलाहटा नगर भरऽ। छूटे न पावे एको घर।।
देखिहऽ बिहने रोकिह मत। नेवता के लिखात बा खत।।
बहुत दूर बा कहे बेचारा। देवे के होई रेल के भाड़ा।।
बात सुनत मे जिव खिसिआइल। आज ना रहित जो तिलक आइल।।
तोहरा के देखलइती खेल। ठाकुर कइल बहुत अपेल।।
नाई के माई गिरावे लोर। बबुआ जइहन देश का ओर।।
जूरत नइखे छाता जूता। कइसे चिठी नेवतिहन पूता।।
कच्चा सेर भर सतुआ–नून। बेसी ना पइबऽ एको बून।।
एतने पइबऽ जइबऽ जरूर। ना त करबऽ मार के चूर।।
गवलन दुख भिखारी नाई। सुनि के गुनी लिजै सब भाई।।[2]

अतिशय कठिनाइयों के बावजूद नाई जाति को जजमनिका के सभी कार्य सम्पादित करने पड़ते थे जबकि उन्हें उचित पारिश्रमिक भी नहीं मिलते थे। इस कारण उन्हें अत्यन्त गम्भीर संकटों का सामना करना पड़ता था। नाई जाति–वर्ग के जीवन में निरंतर आर्थिक समस्या, निर्धनता और गरीबी के कारण दयनीय दशा बनी रहती थी। गाँव के सामन्तों एवं दबंग लोगों द्वारा पिछड़े वर्ग की जातियों का शोषण किया जाता था जिसमें नाई जाति भी शामिल थी। नाई जाति की सामाजिक और आर्थिक स्थिति वैसी ही थी जिस प्रकार दलितों की। भिखारी ठाकुर ने दलित जीवन की इस समस्या को स्वयं झेला और महसूस किया था। फलतः दलित जीवन व्यतीत करने का यथार्थ अनुभव भिखारी ठाकुर के पास था।

भिखारी ठाकुर ने अपने लोकनाटकों के सृजन में विषय–वस्तु का चयन समाज के दलित, अशिक्षित और उपेक्षित वर्गों से किया। दलित एवं पिछड़े वर्गों के जनजीवन में घटनेवाली घटनाओं को आधार बनाकर भिखारी ठाकुर ने लोक नाटकों की रचना की। इनके लोक नाटकों का विषय दलित व्यक्तियों एवं दलितों का पारिवारिक जीवन है जिसमें उनकी आर्थिक और सामाजिक समस्या परिलक्षित होती है। दलितों की इन्हीं सामाजिक और आर्थिक समस्याओं को चिन्हित कर भिखारी ठाकुर ने अपने नाटकों के माध्यम से निदान करने का प्रयास किया है। इनके प्रयासों से समाज के दलित पिछड़े वर्ग के लोगों का जीवन स्तर एवं दीन–दशा सुदृढ़ होता है। भिखारी ठाकुर द्वारा चयनित समस्याओं में बाल–विवाह भी शामिल है। दलित एवं पिछड़े समाज के लोगों में आज भी बाल विवाह की समस्या कहीं–कहीं दिखायी पड़ती है। परन्तु भिखारी ठाकुर के समय में यह समस्या दलित समाज में पूर्ण परिव्याप्त थी। इसी तरह दलित समाज में अनमेल विवाह की समस्या दिखाई पड़ती थी। दलित समाज तो आर्थिक समस्या से निरंतर जूझता रहा है। इन्हीं आर्थिक समस्याओं से ग्रसित होकर दलित परिवारों में बेटियों को बेचने जैसी अपराधिक घटनाएँ घटती रही है। अपने स्वार्थ में वशीभूत होकर मनुष्य सम्पत्ति के लालच में संयुक्त परिवार के बिखरने जैसी घटनाओं को घटने दिया है। भिखारी ठाकुर ने अपने नाटकों के माध्यम से समाज की इस घटना की ओर भी संकेत किया है, जिसमें संयुक्त परिवार का विघटन दिखलायी पड़ता है। बहुविवाह समाज की एक समस्या है परन्तु यह कई अन्य समस्याओं को जन्म देता है। जिससे समाज काफी प्रभावित होता है। बहुविवाह की समस्या दलित समाज में अधिक थी। दलित समाज का प्रत्येक व्यक्ति नशाखोरी की समस्या से ग्रसित था जिसका बुरा प्रभाव परिवार की स्त्रियों और बच्चों पर पड़ता था। इस समस्या को सुधारने के लिए भिखारी ठाकुर ने अपने नाटक का सृजन एवं मंचन किया जिसमें भिखारी ठाकुर स्वयं निसइल का अभिनय करते थे। आज के समय में बिहार सरकार ने अपने प्रान्त में पूर्णतः नशा पर प्रतिबन्ध लगा दिया है। कहीं–न–कहीं यह भिखारी ठाकुर के प्रयास का ही परिणाम है कि असंख्य दलित परिवार नशा के प्रभाव से मुक्त है। कुछ दलित व्यक्तियों में चोरी करने जैसी प्रवृत्ति थी, जुआ खेलकर समय और सम्पत्ति की बर्बादी दलित व्यक्तियों के जनजीवन में शामिल था। अनेक ऐसी कुप्रवृतियाँ दलितों में व्याप्त थी जिससे उनका सामाजिक जीवन कष्टमय हो जाता था। भिखारी ठाकुर ने अपने नाटकों में इन समस्याओं का रेखांकन कर नाच मण्डली के माध्यम से इसका मंचन किया जिससे दलितों के साथ–साथ समाज के अन्य वर्गों में भी इन समस्याओं के प्रति घृणा उत्पन्न होने लगी। समाज के सभी वर्ग के लोगों ने इन समस्याओं का परित्याग कर इसके प्रभाव से धीर–धीरे मुक्त होने लगे। भिखारी ठाकुर द्वारा चिन्हित की

गई कुछ समस्याएँ ऐसी है जिस पर सरकार को कानून बनाकर उसे प्रतिबन्धित करना पड़ा जिनमें बाल विवाह और नशाखोरी शामिल हैं।

भिखारी ठाकुर ने कुल बारह लोक नाटकों की रचना की जिनके नाम हैं– बिदेसिया, भाई–बिरोध, बेटी–वियोग, बिधवा–बिलाप, कलयुग–प्रेम राधेश्याम बहार, गंगा–स्नान, पुत्र–वध, गबरघिचोर, बिरहा–बहार, नकल भांड आ नेटुआ के और ननद–भउजाई। इन सभी लोक नाटकों के मंचन के लिए भिखारी ठाकुर ने नाच मंडली का गठन किया। इसके अधिसंख्य सदस्य दलित एवं पिछड़े वर्ग से आते थे जिनमें अभिनेता, वादक, गायक एवं नर्तक के गुण विद्यमान थे। भिखारी ठाकुर के नाट्य साहित्य के पात्रों के नाम भी उसी प्रकार है जिस प्रकार दलित समाज के लोगों के नाम होते हैं। उपदर, उदबास, झाँटूल, चटक, चेथरू, अखजों लोभा, बिदेसी, उपकारी, उजागर, उपदेश, दुखहारिन, मलेछू, अटपट आदि नाम संभ्रान्त वर्ग में प्रचलित नहीं है। भिखारी ठाकुर के समाज सुधार एवं दलित समस्या के समाधान पर अपना विचार व्यक्त करते हुए नागेन्द्र प्रसाद सिंह ने लिखा है– ''दलित तुल्य भिखारी ठाकुर ने दलितों की विभिन्न समस्याओं के विषय में दलितों के उत्थान के उद्देश्य से लोक नाटक लोकगीत की रचना की और दलित अभिनेताओं के सहयोग से दलित बहुल ग्रामीण परिवेश में प्रस्तुत कर उनमें चेतना का संचार करने का प्रयास किया।''[3]

उपदर सम्पत्ति के लालच में आकर अपनी पत्नी द्वारा प्रेरित किये जाने पर अपने छोटे भाई की हत्या कर देता है। इसके पश्चात उपदर की पत्नी उसे फटकार सुनाती है। भिखारी ठाकुर ने समाज की इस समस्या की अभिव्यक्ति इस प्रकार की है–

''मरलस रे बेदरदा ते भाई के।
कइले हतेयारी घोर मुह ना देखब तोर;
करब खिदमत नइहर जा के भाई के। मरलस....
चीकन बोलत बात, काटि के सहोदर भ्रात;
कइसे होखब तू दोसरा के जनमाई के। मरलस....
दुनियाँ से धो के लाज, करबऽ तू अकेले राज;
मरत बानी हम सरमाई के। मरलस....
कहत भिखारी नाई, रोअबऽ जमपुर जाई;
गुनि–गुनि अपना कमाई के। मरलस....''[4]

आर्थिक समस्या से ग्रसित दलित समाज को अर्थाभाव के कारण अपनी पुत्री को बेचना पड़ता था। इसके परिणामस्वरूप पुत्री को उचित वर की प्राप्ति नहीं हो पाती थी। अर्थात् बेमेल विवाह की समस्या उत्पन्न होती थी। इस तरह की सामाजिक समस्या से ग्रसित पुत्री अपने पिता के सम्मुख वेदना व्यक्त करती है। प्रस्तुत है भिखारी ठाकुर के शब्दों में–

''गिरिजा कुमार! करऽ दुखवा हमार पार,
ढर–ढर ढरकत बा लोर मोर हो बाबूजी।

पढ़ल गुनल भूलि गइलऽ, समदल भेड़ा भइलऽ;
सउदा बेसाहे मे ठगइलऽ हो बाबूजी।
केई अइसन जादू कइल, पागल तोहार मति भइलऽ;
नेटी काटि के बेटी भसिअवलऽ हो बाबूजी।
रोपेया गिनाइ लिहलऽ पगहा धराइ दिहलऽ;
चेरिया के छेरिया बनवल हो बाबूजी।''[5]

नशा के दुष्प्रभाव से व्यक्ति का जीवन और उस व्यक्ति से जुड़े परिवार के सदस्यों को कष्टों का सामना करना पड़ता था। भिखारी ठाकुर ने इसकी अभिव्यक्ति इस प्रकार की है–

''बेटा–बेटी भूखे मुअलन, माई–बाबू भइलन सूर।
मेहर के तन पर वस्त्र नइखे, बबुआ निशा में भइलन चूर।।''[6]

भिखारी ठाकुर के समय में समाज का दलित एवं पिछड़ा वर्ग पूर्ण मनोयोग से परिश्रम करता था। परन्तु सामन्त एवं सम्भ्रान्त परिवारों द्वारा दलितों का शोषण किया जाता था। इसकी अभिव्यक्ति जगलाल प्रसाद सिंह 'विद्यार्थी' ने इस प्रकार की है– ''उन दिनों श्रमिकों की तथा विशेषकर नाऊ की स्थिति समाज में अत्यन्त दयनीय थी। वह जी तोड़ परिश्रम करता था। उन्हें अपने मालिकों के प्रति श्रद्धा थी, पर बदले में सामान्यतः पारिश्रमिक नही मिलता था।''[7]

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि भिखारी ठाकुर ने अनेकानेक समस्याओं के समाधान अपने नाट्य साहित्य के माध्यम से मनोरंजन के साथ किया है। इनके नाटकों में दलित जीवन का यथार्थ स्वरूप परिलक्षित होता है जो समस्याग्रस्त एवं अभाव ग्रस्त है। इनका निदान प्रस्तुत कर भिखारी ठाकुर अपने लोक नाटकों में दलित विमर्श करते नजर आते हैं। भिखारी ठाकुर ने स्वयं दलित जीवन का यथार्थ भोगा है जिसकी वास्तविक संवेदना की अभिव्यक्ति उनके लेखन में हुई है।

सन्दर्भ :

1. ऋग्वेद, 10/190
2. भिखारी ठाकुर रचनावली, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् पटना, प्रधान सम्पादक– प्रो. राम बुझावन सिंह, द्वितीय संस्करण– अगस्त, 2011, पृ. 287.
3. उपरिवत्, पृ. सम्पादकीय–8
4. उपरिवत्, पृ. 68
5. उपरिवत्, पृ. 90
6. उपरिवत्, पृ. 187
7. भिखारी ठाकुर; व्यक्तित्व एवं कृतित्व– डॉ. जगलाल प्रसाद सिंह 'विद्यार्थी', प्रकाशक– डॉ. जगलाल प्रसाद सिंह 'विद्यार्थी', नूतन नगर शीतलपुर सारण, संस्करण– प्रथम, 2006 ई. पृ. 49

***

दलित साहित्य एवं गैर दलित लेखकों का योगदान

रश्मि प्रिया *

दलित साहित्य से तात्पर्य दलित जीवन और उसकी समस्याओं पर लेखन को केन्द्र में रखकर हुए साहित्यक आन्दोलनों से है, जिसका सूत्रपात दलित पैंथर से माना जाता है। दलितों को हिन्दू समाज व्यवस्था में सबसे निचले पायदान पर होने के कारण न्याय, शिक्षा, समानता तथा स्वतंत्रता आदि मौलिक अधिकारों से भी वंचित रखा गया। उन्हें अपने ही धर्म में अछूत या अस्पृश्य माना गया। दलित साहित्य की शुरुआत मराठी से मानी जाती है जहॉ दलित पैंथर आन्दोलन के दौरान बड़ी संख्या में दलित जातियों से आये रचनाकारों ने आम जनता तक अपनी भावनाओं, पीड़ाओं, दुखों–दर्दों को लेखों, कविताओं, निबंधों, जीवनियों, आत्मकथाओं, कटाक्षों, व्यंगों, कहानियों आदि विधाओं के माध्यम से पहुॅचाया।

भारत में दलित शब्द का अत्यधिक प्रयोग 19वीं शताब्दी से हुआ है। यद्यपि दलित शब्द आधुनिक है लेकिन उस शब्द से जुड़ी भावना प्राचीन काल में ही उत्पन्न हो गयी थी। प्राचीन काल में दलितों के लिए शूद्र, अतिशूद्र, चण्डाल, अंत्यज, अस्पृश्य आदि शब्दों का प्रयोग किया गया है। भारतीय 'वर्ण–व्यवस्था' का जाति व्यवस्था में परिवर्तन होने से शूद्र की दयनीय अवस्था हो गयी थी। यहीं से दलित के लिए विभिन्न नामों का प्रयोग प्रारम्भ हुआ, जो दलित शब्द के ही पूर्वज हैं। दलित जीवन को लेकर हिन्दी साहित्य में आदिकाल से ही रचनाएॅ मिलती है। आदिकाल में नाथ कवियों के बल पर, मध्ययुग में कबीर, सन्त रैदास, दादूदयाल आदि से होते हुए आधुनिक काल में प्रेमचंद, निराला, रेणु, नागार्जुन, सुदामा पाण्डेय 'धूमिल' जगदीशचन्द्र, अमृतलाल नागर, चतुरसेन शास्त्री आदि का साहित्य दलित जीवन के दुख–दर्दों का जीवन्त दस्तावेज प्रस्तुत करता है। इन गैर–दलित लेखकों ने भी अपनी रचनाओं के माध्यम से दलितों के जीवन को लेकर अपनी करुणा एवं सहानुभूति को दलित साहित्य में प्रस्तुत किया है।

दलित जातियों का उद्‌भव वर्ण–व्यवस्था की उत्पत्ति से माना जाता है। वैदिक युग में हमारा समाज वर्ण व्यवस्था पर आधारित था। सम्पूर्ण समाज अपने कर्म के अनुसार चार वर्णों ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र में विभाजित था। यही शूद्र वर्ण आगे चलकर विभिन्न नामों से अभिहीत हुआ जैसे–चाण्डाल, अछूत, अस्पृश्य, बहिष्कृत, दलित इत्यादि।

व्यापक अर्थ में देखें तो 'दलित' एक वर्गीय शब्द है जो न केवल अछूतों को ही अपने भीतर लेता है, बल्कि अभावग्रस्त सभी जातियों को जिनकी आर्थिक दशा खराब हो और विभिन्न प्रकार के अभावों में जीवन

* शोध-छात्रा, हिन्दी, बी.आर.ए.बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

जीते हैं। जैसे–खेतिहर मजदूर, बंधुआ–मजदूर, भूमिहीन गरीब, बेरोजगार महिलाएँ एवं अनाथ बच्चे। ये सब चाहे किसी भी जाति से हो वर्गीय दृष्टि से दलित ही होते हैं।

संकुचित अर्थ में 'दलित' उन्हें कहा जाता है जिन्हें युगों से उच्च वर्ग के लोगों ने प्रताड़ित किया है, कुचला है, रौंदा है, जिनका स्पर्श भी निषिध्य माना है। अर्थात् समाज का जो वर्ग आर्थिक–सामाजिक प्रगति में सबसे पिछड़ा हो उसे 'दलित–वर्ग' कहा जाता है। इसमें मजदूर, भूमिहीन गरीब, घुक्कड़ जातियॉ आदि शामिल हैं। डॉ. भोलानाथ तिवारी के अनुसार– 'जो दबा हो, कुचला हो, जिसे बढ़ने नहीं दिया गया हो वह 'दलित' कहलाता है।[1] भारतीय दलित साहित्य अकादमी के अध्यक्ष डॉ. सोहनपाल 'सुमनाक्षर' के अनुसार– 'दलित' शब्द जहॉ व्यक्ति को अपनी अस्मिता, स्वाभिमान और अपने गौरवपूर्ण इतिहास की ओर दृष्टिपात करने को बाध्य करता है, वहीं पर अवनति, वर्तमान स्थिति और तिरस्कृत जीवन के विषय में सोचने के लिए विवश करता है। 'दलित' शब्द आक्रोश, चीख, वेदना, पीड़ा, घुटन–चुभन और छटपटाहट का प्रतीक है।[2] 'दलित' शब्द के इन अर्थों को देखते हुए यह निष्कर्ष निकलता है कि शोषित–पीड़ित लोगों के लिए 'दलित' शब्द का ही उपयोग ज्यादा किया गया है।

यह 'दलित' शब्द साहित्य में आकर एक ऐसी धारा का निर्माण करता है, जो मानवीय संवेदनाओं और सामाजिक सरोकारों की यथार्थवादी अभिव्यक्ति कर उसकी विसंगतियों को खत्म कर देना चाहती है। इस साहित्य में कल्पना जगत की बातें कम और भोगी हुई पीड़ा की यथार्थ की सच्चाई अधिक है। यह सामाजिक व्यवस्था से उत्पन्न बहुजन समाज की विषमता व दासतामूलक सामाजिक स्थिति को बदलकर स्वतंत्रता, समतामूलक समाज की आवश्यकता को रेखांकित करती है। इसका अंतिम लक्ष्य मानवीय समता के सम्मान को प्राप्त करना है। यह दलित जीवन का वह दर्पण है जिसमें उसका दिखाई पड़ने वाला अतीत, भविष्य और वर्तमान जीवन की जड़ताओं को तोड़कर उसे गतिशील बने रहने को अभिप्रेरित करता है।

डॉ. रामकृष्ण राजपूत ने 'दलित साहित्य' का अर्थ इन शब्दों में स्पष्ट किया है– 'दलित' अर्थात् दबाया गया, कुचला गया, दबाया गया, दबोचा गया, अभावग्रस्त, पदमर्दित, अभिवंचित। इस सबका प्रतिशोध जब वाणी और लेखनी से प्रस्फुटित हुआ तो उसी का नाम पड़ा 'दलित साहित्य'।''[3]

प्रसिद्ध दलित लेखक ओमप्रकाश वाल्मीकि के अनुसार ''दलित साहित्य सिर्फ एक दलित, अछूत या शूद्र का साहित्य नहीं है। दलित साहित्य अपने आप में व्यापक अर्थ रखता है 'दलित' शब्द के भीतर छिपा गूढ़ अर्थ जिस भाव की व्याख्या करता है वह एक पहचान है। उनलोगों की जो सदियों से दबे–कुचले, प्रताड़ित, उपेक्षित लोग हैं। जिन्होंने जीवन के हर क्षेत्र में अपनी रचनात्मकता, दृढ़ता और मौलिकता स्वयं सिद्ध की है। इस देश के निर्माण में जिन्होंने अपना जीवन स्वाहा किया है।'' श्री बाबुराज

बागुल के अनुसार ''मनुष्य की मुक्ति को स्वीकार करने वाला वंश वर्ण और जाति का प्रबल विरोध करनेवाला साहित्य ही दलित साहित्य है।''[4]

दलित साहित्य की अवधारणा के संबंध में दो मत देखने को मिलते हैं। इस विषय पर लंबी बहसें चलीं एक मत के अनुसार अधिकांशतः दलित साहित्यकारों का मानना है कि चूंकि सवर्णों ने दलितों की पीड़ा को भोगा नहीं, इसलिए वे दलित साहित्य नहीं लिख सकते। सिर्फ दलित मूल के साहित्यकार ही दलित समस्या को सही अभिव्यक्ति दे सकते हैं। दूसरे वर्ग के मतानुसार किसी भी वर्ग का साहित्यकार जो दलित जीवन और उनकी समस्याओं पर रचना, आलोचना करता है वह दलित साहित्यकार है। यह सवाल दलित साहित्य में प्रमुखता से छाया रहा कि दलित साहित्य कौन लिख सकता है, यानी स्वानुभूति ही प्रमाणित होगी या सहानुभूति को भी स्थान मिलेगा। इस पक्ष को लेकर दलित साहित्यकारों ने प्रेमचंद और निराला जैसे महान् रचनाकारों की रचनाओं पर सवाल तक उठा दिए। हालॉकि यह मत अधिक दिनों तक टिका नहीं, किन्तु आरंभ में बहस का विषय बना रहा। यह प्रश्न मराठी की तुलना में हिन्दी में अधिक उठा। अंत में इस बात पर सहमति बनती दिखी कि दलित साहित्य अस्सी और नब्बे के दशक में उभरा एक साहित्यिक आंदोलन है जिसमें प्रमुखता से दलित समाज में पैदा हुए रचनाकारों ने हिस्सा लिया और इसे अलग धारा मनवाने के लिए संघर्ष किया। डॉ. सोहनपाल 'सुमनाक्षर' दलितोत्थान को 'दलित साहित्य' का मूल आधार मानते हैं उनके शब्दों में– दलितों के उत्थान के लिए लिखा गया या लिखा जा रहा साहित्य ही 'दलित साहित्य' है।''[5]

दलित चिंतक कंवल भारती के मतानुसार– ''दलित साहित्य से अभिप्राय उस साहित्य से है जिसमें दलितों ने स्वयं अपनी पीड़ा को रूपायित किया है, अपने जीवन संघर्ष में दलितों ने जिस यथार्थ को भोगा है, दलित साहित्य उसी की अभिव्यक्ति का साहित्य है। यह कला के लिए कला नहीं बल्कि जीवन और जीवन की जीजिविषा का साहित्य है। इसलिए यह कहना न होगा कि वास्तव में दलितों द्वारा लिखा गया साहित्य ही दलित की कोटि में आता है।''[6]

इस प्रकार विभिन्न विद्वानों ने दलित साहित्य की अवधारणा अपने मतानुसार अलग–अलग प्रस्तुत किया है। कुछ ने दलित साहित्य के भाव पक्ष को देखकर इसकी परिभाषा दी है, तो कुछ ने इसके विषय को ध्यान में रखकर इसकी अवधारणा स्पष्ट किया है। सभी मतों को जानने के बाद यह स्पष्ट होता है कि दलित साहित्य दलितों के सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक, मानसिक स्थिति का सच्चा दस्तावेज है। यह दलित जीवन और उसकी समस्याओं को केन्द्र में रखकर लिखा गया साहित्य है। ''दलित साहित्य मानव मुक्ति का साहित्य होने के साथ–साथ शास्त्रों से मुक्ति की चेतना का साहित्य भी है। इस साहित्य में दलितोत्थान की मूल चेतना के साथ–साथ

आम आदमी के दुःख दर्द उसके सामाजिक सरोकार आदि को नए सिरे से अभिव्यक्त करने का आग्रह है।''[7]

वैदिक युग में वर्ण–व्यवस्था कर्म पर आधारित था यदि कोई ब्राह्मण नीच कार्य करता तो वह शूद्र की श्रेणी में आता और कोई शूद्र जाति में जन्म लेकर ब्राह्मणोचित कार्य करता तो वह ब्राह्मण की श्रेणी में आता। किन्तु कालांतर में यह परिवर्तित होकर जन्म पर आधारित हो गया। वैदिक युग में दलित जाति के संबंध में ओम प्रकाश वाल्मीकि ने लिखा है– ''वैदिक साहित्य में जाति शब्द नहीं मिलता, किन्तु ऐसे वर्गों के नाम मिलते हैं जो परवर्तीकाल में जातियॉ बन गयीं। जैसे– उग्र, क्षतृ, सूत, पोल्क्स, चांडाल, आयोगव, पांचाल और वैदेह आदि। किन्तु वैदिक काल में कुछ ऐसे तथ्य उपलब्ध थे जिनसे परवर्ती काल में जातियों की उत्पत्ति हुई अर्थात् कुछ जातियों के नाम उनके व्यवसायों के नाम पर, कुछ प्रजातियों के नाम पर और कुछ उन प्रदेशों के नाम पर जहॉ के निवासी थे, पड़े।''[8]

मनुस्मृति, नारदस्मृति में चार वर्णों की व्यवस्था देखने को मिलती है जिसमें शूद्र वर्ण को ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य वर्ण का गुलाम माना गया है। मनुस्मृति, नारदस्मृति, रामचरित मानस, महाभारत आदि धार्मिक ग्रन्थों में शूद्रों के संबंध में जो उपेक्षापूर्ण, अपमानजनक कथाऍ है, टिप्पणियॉ हैं, उनसे सभी सवर्णों को एक तराजू में तौलना उचित नहीं। बहुत से ब्रह्मण भी ऐसे हुए हैं जिन्होंने भेदभाव और जातिप्रथा की निंदा की है। इनमें स्वामी दयानंद सरस्वती, स्वामी नारायण, महापंडित राहुल सांकृत्यायन आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

हिन्दी साहित्य में कबीर और रैदास से पहले आदिकाल में रचित नाथ और सिद्ध साहित्य में भी वर्ण व्यवस्था का विरोध किया गया है, तब मराठी और दलित साहित्य नहीं हुआ करता था। प्रसिद्ध साहित्यकार डॉ. कालीचरण 'स्नेही' का दलित साहित्य के उद्‌भव के संबंध में यह विचार है कि – ''दलित साहित्य का उद्‌भव वज्रयानी सरहपा और नाथ पंथ से माना जाता है, जो कि पूरी तरह से सही है। संत रैदास पहले दलित और दलित चेतना के कवि थे, जिन्होंने वर्ण–व्यवस्था के साथ संघर्ष किया था और उसकी व्याख्या कर्म की दृष्टि से की गई थी।''[9]

मध्यकाल में देश में मुस्लिम शासन आने तथा सूफी संतों द्वारा इस्लाम के प्रचार–प्रसार से हिन्दू धर्म के आडंबरों और भेद–भाव से पीड़ित एवं उपेक्षित बहुत से लोगों ने इस्लाम के समानता, स्वतंत्रता तथा शिक्षा के प्रति आकृष्ट होकर इस्लाम धर्म अपना लिया। समानता, स्वतंत्रता का अधिकार प्राप्त करने से इनमें चेतना उत्पन्न हुई जिससे इन्होंने शिक्षा भी प्राप्त की। उस काल में दादू, नामदेव, पलटू, कबीर, रैदास आदि दलित साहित्यकारों ने दलितों को उनका अधिकार और सम्मान दिलाने का प्रयास किया। इन्होंने जाति–पाति की निंदा कर मनुष्य को समाज में समान स्थान दिलाने की कोशिश की। इन्होंने अपने लेखन में ईश्वर का सहारा लिया और

समाज में व्याप्त धार्मिक आडंबरों और भेदभाव का पुरजोर विरोध किया। संत कबीर के साहित्य में यथार्थ जीवन का चित्रण सामाजिक विद्रोह के रूप में दिखाई पड़ता है। जाति–पाति का विरोध करते हुए वे कहते हैं ''एक जाति से सब उत्पन्न कौन ब्राह्मण कौन सूदा।'' इसी काल में मीराबाई ने जाति–पाति के भेद–भाव को अस्वीकारते हुए रैदास को अपना गुरु माना था।

आधुनिक काल में दलित कविता का प्रारंभ 1914 में 'सरस्वती' में प्रकाशित हीराडोम की भोजपुरी कविता 'अछूत की शिकायत' से मानी जाती है। लक्ष्मी नारायण सुधाकर की कविता 'उत्पीड़न की यात्रा' पहली कविता है जिसमें दलितों के साथ किये जाने वाले षडयंत्र को बताया गया है। दलित साहित्य की शुरुआत मराठी से मानी जाती है जहॉ दलित पैंथर आन्दोलन के दौरान बड़ी संख्या में दलित जातियों से आए रचनाकारों ने आम जनता तक अपनी भावनाओं को लेखों, कविताओं, निबंधों, जीवनियों, कटाक्षों, व्यंग्यों, कथाओं आदि के माध्यम से पहुॅचाया।

दलित साहित्य सर्वत्र चिंतन के केन्द्र रूप में सन् 1980 के बाद आया। दलित जीवन पर केन्द्रित साहित्य या दलितों द्वारा लिखित साहित्य पर भिन्न–भिन्न दृष्टियों से सोचा जाने लगा दलित जातियों को उनके सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक शैक्षिक आदि अधिकार दिलाने हेतु साहित्य की विभिन्न विधाओं में इसे केंद्र में रखकर रचनाएॅ होने लगी। हिन्दी की विभिन्न साहित्य विधाओं में लिखा हुआ दलित साहित्य का दायरा अत्यंत विस्तृत है। जहॉ दलित साहित्यकारों ने अपनी स्वयं भोगी हुई पीड़ाओं को साहित्य के माध्यम से अभिव्यक्ति दी वहीं गैर दलित साहित्यकार भी इसमें पीछे नहीं रहे। प्रेमचन्द, निराला, नागार्जुन, अमृतलाल नागर, त्रिलोचन सरीखे साहित्यकारों ने दलित जीवन की विसंगतियों का अत्यंत यथार्थ चित्रण अपनी रचनाओं में किया है।

मुंशी प्रेमचन्द ने अपनी अनेक रचनाओं में दलितों की समस्याओं को उजागर किया है। इनके 'कर्मभूमि' और 'गोदान' नामक उपन्यास दलित समस्या पर आधारित उपन्यास है। कर्मभूमि में अछूतोद्धार को मूल समस्या के रूप में दिखाया गया है। अछूत इसमें अकेले अपनी समस्याओं से नहीं लड़ते बल्कि सवर्ण भी उनके साथ खड़े नजर आते हैं और अंततः वे अपनी कोशिश में सफल होते हैं। 'गोदान' में पंडित मातादीन और सिलिया जैसे चरित्रों के माध्यम से प्रेमचन्द ने दलित चेतना उजागर किया है। 'सद्गति', 'ठाकुर का कुऑ', 'मंदिर', 'पूस की रात', 'कफन', 'घासवाली', 'दूध का दाम', 'मुक्तिमार्ग', 'सौभाग्य' के कोड़े' आदि अनेक कहानियों में दलितों की आर्थिक, सामाजिक, शैक्षिक, धार्मिक समस्याओं को बड़े ही मार्मिक ढंग से उजागर किया है, जो पाठकों के मन को झकझोर देने वाला और इन समस्याओं पर सोचने को बाध्य करने वाला है।

हिन्दी के प्रसिद्ध साहित्यकार अमृतलाल नागर की कृति 'नाच्यो बहुत गोपाल' भी दलित जीवन पर आधारित एक महत्वपूर्ण उपन्यास है।

इसमें मेहतर जाति के लोगों के जीवन को विस्तृत रूप से चित्रित किया गया है। ब्राह्मणी निर्गुनिया का मेहतर जाति के मोहना से प्रेम विवाह करना, दलित समाज में शामिल हो उनकी पीड़ा देखना, भोगना तथा अपना सम्पूर्ण जीवन उनकी उन्नति में लगा देना इस उपन्यास की मूल कहानी है।

प्रमुख आंचलिक उपन्यासकार फणीश्वर नाथ 'रेणु' का 'मैला ऑचल' और 'परती परिकथा' भी दलित विषयक उपन्यास है। मैला ऑचल के पात्र कालीचरण, डॉ. प्रशांत, बावनदास दलितोद्धार का कार्य करते हैं। चमारों की टोली में जाकर भोजन करके छुआ–छूत का विरोध भी करते हैं। मजदूरों को अपने अधिकारों के प्रति सचेत करते हैं। परती परिकथा में दिखाया गया है कि देश की आजादी के बाद दलित वर्ग के लोग अपने अस्तित्व के प्रति सचेत हो रहे हैं। उनमें परिवर्तन आ रहा है और अंत में दलित और सवर्ण मिलकर रहने लगते हैं।

पंडित सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' द्वारा लिखित 'कुल्लीभाट' में 'निराला' जी के विद्रोही तेवर और गलत सामाजिक मान्यताओं पर उनके तीखे प्रहारों ने इस उपन्यास को दलित साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान दिलाया है। नागार्जुन की 'बलचनमा' और 'वरुण के बेटे' नामक दलित विषयक उपन्यास में दलित जीवन की विभिषिका, उनके मन की छटपटाहट, असंतोष, शोषण पर प्रकाश डाला गया है। रॉगेय राघव की 'कब तक पुकारुँ' उपन्यास में नटों की चेतना के साथ–साथ नारी जीवन के सम्मान और महत्ता को भी निरूपित किया गया है।

इसी प्रकार जगदीश चन्द्र की 'धरती धन न अपना', 'नरक कुंड में वास', 'जमीन अपनी तो थी'। गिरिराज किशोर की 'परिशिष्ठ', संजीव द्वारा रचित 'धार', मदन दीक्षित की 'मोरी की ईंट', 'श्रीलाल शुक्ल' की 'राग दरबारी', भगवती चरण वर्मा की 'भूले–बिसरे चित्र', शैलेश मटियानी की 'सर्पगंधा', रामदरश मिश्र की कृति 'सूखता हुआ तालाब', विवेकी राय की 'बबूल', मन्नू भंडारी की कृति 'महाभोज', रमणिका गुप्ता की 'सीता' मैत्रेयी पुष्पा की 'आलमा कबूतरी' नमिता सिंह की 'अपनी सलीवें' में हरिजनों पर हो रहे अत्याचार, शोषण, पंचायतों की मनमानी को– ऑपरेटिव सोसाइटियों पर पूँजीपतियों का कब्जा इत्यादि समस्याओं का भंडाफोड़ किया गया है। इस प्रकार बहुतेरे गैर दलित साहित्यकारों ने दलित जीवन पर केन्द्रित अनेक रचनाओं द्वारा दलित साहित्य को समृद्ध बनाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

कहानी के क्षेत्र में प्रेमचन्द की 'सद्गति', 'पूस की रात', 'मंदिर', गिरिराज किशोर की 'घोड़े का नाम घोड़ा', 'गुनाहगार', 'खरबूजे', 'वह हॅसा क्यों नहीं', शैलेश मटियानी की 'सतजुगिया आदमी' चित्रा मुद्गल की 'डोमिन काकी', 'नाम', 'बलि' शिव प्रसाद सिंह की 'मुर्गे ने बॉग दी', 'इन्हें भी इंतजार है' इत्यादि के नाम उल्लेखनीय हैं। इन कहानियों के द्वारा लेखक ने दलित जीवन की विभिन्न विभिषिकाओं, पीड़ाओं, समस्याओं को पाठकों तक पहुँचाया हैं।

वर्तमान समय में हिन्दी साहित्य में दलित विषयक काव्य, कहानी, उपन्यास, नाटक, निबंध, पत्रिकाएँ, आत्म कथाएँ, समीक्षा', शोध–ग्रंथ काफी मात्रा में निकलें हैं। कविता के क्षेत्र में गैर दलित साहित्यकारों द्वारा लिखित पंडित माधव शुक्ल का 'हम अछूत', सियाराम शरण गुप्त की 'एक फूल की चाह', गया प्रसाद शुक्ल 'सनेही' का 'हरिजन', ब्रह्मदत्त की 'श्रीराम प्रतिष्ठा', निराला की 'दलित जन पर करो करुणा', सुभद्रा कुमारी चौहान की 'प्रभु तुम मेरे मन की जानो' आदि कविताएँ हैं। इस तरह की और भी कई रचनाएँ हैं जो जाति व्यवस्था के दंश से पीड़ित दलित समाज की विभिन्न समस्याओं की तरफ बरबस ध्यान खींचते हैं और पाठकों को सोंचने पर विवश करते हैं।

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि हिन्दी के दलित साहित्य को विस्तार प्रदान करने में गैर दलित साहित्यकारों की भूमिका भी महत्वपूर्ण रही है। साहित्य की विभिन्न विधाओं में दलित समाज की समस्याओं को केन्द्र में रखकर इन्होंने रचनाएँ की हैं तथा उनकी सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, राजनैतिक एवं मानसिक समस्याओं को भली–भाँति उजागर किया है। इन रचनाओं को पढ़कर यह कहा जा सकता है कि इनमें चित्रित दलित जीवन का यथार्थ पाठकों के मन को झकझोर देने वाला और अनायास ही सुधारात्मक प्रयास की ओर प्रेरित करने वाला है।

सन्दर्भ :

1. हिन्दी ऑचलिक उपन्यासों में दलित जीवन, डॉ. भरत सगरे, पृ. 19.
2. शिखर की ओर (श्री माता प्रसाद अभिनन्दन ग्रन्थ), सं. डॉ. एन. सिंह, लेख–दलित साहित्य.
3. प्रज्ञा, सं. रामकृष्ण राजपूत, मार्च–जून, 1995, पृ. 10.
4. हिन्दी दलित साहित्य का विकास, सं. डॉ. प्रमोद कोवप्रत, लेख दलित साहित्य की अवधारणा, डॉ.एन. मोहन, पृ. 50.
5. इक्कीसवीं सदी का दलित आन्दोलन साहित्यिक एवं सामाजिक सरोकार, सं. डॉ. विरेन्द्र सिंह यादव, लेख दलित चेतना एवं दलित कविता–एक विवेचन, डॉ. महेश आलोक, अरविन्द कुमार, पृ. 121.
6. हिन्दी साहित्य का विकास, सं. डॉ. प्रमोद कोवप्रत, लेख दलित साहित्य की अवधारणा, डॉ. एन. मोहन, पृ. 50.
7. हिन्दी साहित्य में दलित अस्मिता, डॉ. कालीचरण स्नेही, पुरोवाक (प्रस्तावना).
8. प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, डॉ. ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ.45.
9. हिन्दी साहित्य में दलित अस्मिता, डॉ. कालीचरण स्नेह, भूमिका से.
10. इक्कीसवीं सदी का दलित आन्दोलन साहित्यिक एवं सामाजिक सरोकार, सं. डॉ. विरेन्द्र सिंह यादव, लेख दलित साहित्य की वैचारिक समस्याएँ, डॉ. प्रभाकर सिंह, पृ. 08.

***

उपेक्षित स्त्री का साहित्यक विवेचन

शालिनी कुमारी *

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते/रमन्ते तत्र देवता।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः कियाः।।[1]

अर्थात् जहाँ स्त्रियों की पूजा होती है वहाँ देवता निवास करते हैं और जहाँ स्त्रियों की पूजा नहीं होती है, उनका सम्मान नहीं होता है वहां किये गये समस्त कार्य निष्फल हो जाते हैं।

नारी तुम केवल श्रद्धा हो
विश्वास–रजत–नग पगतल में
पीयूष–स्रोत सी बहा करो
जीवन के सुंदर समतल में

भारतीय साहित्य के विपुल भण्डार में नारी के सम्मान में न जाने कितनी ही उक्त प्रकार की उक्तियाँ भरी पड़ी हैं। किन्तु क्या वास्तविकता में नारी को समाज, घर और परिवार में वह गरिमामय और गौरवपूर्ण स्थिति प्रदान की गई है? क्या वास्तव में उसे अपने ही परिवार में वह महिमामंडित स्थिति प्रदान की गई है? क्या मनुष्य होने के नाते उसे जो नैसर्गिक अधिकार प्राप्त होने चाहिए वह समाज ने उसे दिया है? यह दुर्भाग्य पूर्ण है कि आज भी इन प्रश्नों के उत्तर नाकारात्मक ही है।

जब देश आजाद हुआ, खुशी का माहौल था, सभी लोग जश्न मना रहे थे, उस वक्त देश के प्रथम प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू रेडियो प्रसारण से जनता को सम्बोधित करते हुए कह रहे थे ''मेरे देश के लोगों, इस वक्त समूची दुनियाँ सो रही है मगर भारत जाग रहा है और इस आजादी के साथ ही हम अपने खुद के आदर्शों के साथ में जीना आरम्भ कर रहे हैं।'' देश आजाद हुआ भारत ने गुलामी की जंजीर तोड़कर स्वतंत्रता की सांस ली। लेकिन देश के भीतर गुलामी के भीतर की गुलामी आज भी जिंदा है। देश की अपनी आबादी ने अवश्य स्वतंत्रता प्राप्त की किन्तु देश के प्रत्येक घर में जो गुलामी चल रही थी वह आज भी बरकरार है। यह है स्त्रियों की गुलामी। आज लोगों को लगता है कि स्त्रियाँ भी स्वतंत्र हो गयी हैं वो पढ़–लिख कर नौकरी के क्षेत्र में पुरूष से कन्धे से कन्धा मिलाकर चल रही हैं। लेकिन यह सबकुछ छलावा है। अगर यह कहा जाए कि स्त्री के गुलामी की जंजीर को दोहरा कर दिया गया है तो अतिश्योक्ति नहीं होगी। आज उसका घर और दफ्तर दे स्तरों पर शोषण चल रहा है। आज भी उसके आदर्श क्रमशः पिता, भाई और पति निर्धारित करते हैं। इन तमाम परिस्थितियों में कुछ अपवाद अवश्य है किन्तु अपवाद कभी भी नियम नहीं

* ग्राम+पोस्ट- चिंतामनपुर, जिला- पूर्वी चम्पारण (बिहार)

हो सकता है। जबकि एक आम भारतीय महिला के लिए आजादी का वह मतलब कदापि नहीं है जो विकसित देशों की महिलाओं के लिए है। बावजूद इसके भारतीय महिला अपनी अस्मिता को पहचान के लिए आज भी संघर्ष करती ही नजर आती है।

भारतीय समाज में स्त्रियों की स्थिति का दृष्टिपात किया जाए तो उनके द्वारा समाज में प्राप्त स्थानों को हम सामान्यतः तीन आयामों में बांट सकते हैं। चौथा आयाम वर्तमान में जारी है। प्राचीन या वैदिक युग, मध्यकाल और आधुनिक काल। वैदिक युग को महिला सशक्तिकरण की दृष्टि से स्वर्णयुग कहा जा सकता है। यह समय अनेक विदुषी महिलाओं यथा गार्गी, मैत्रेयी, घोषा, अपाला, लोपामुद्रा, जैसी अनेक स्त्रियों को हम वैदिक मंत्रों की सृष्टिकर्ता के रूप में पाते हैं। समाज में सती–प्रथा तथा पर्दा प्रथा का कहीं उल्लेख नहीं मिलता है। स्त्रियों को प्रमुख वार्तालापों तथा संगोष्ठियों (सभा और समिति) में पुरूष विद्वानों के समान ही आमंत्रित किया जाता था और वे वाद–विवाद में भाग भी लेती थीं। स्वयंवर उपनयन संस्कार, नियोग प्रथा तथा अन्तिम संसकार के भी अधिकार स्त्रियों को प्राप्त थे। इन सभी बातों के प्रमाण प्रमाणित ग्रन्थों में उपलब्ध हैं।

महिला की स्थिति में पराभव के संकेत उत्तर वैदिक काल से मिलने लगते हैं। जो स्मृतिकाल तक अपनी जड़े जमा लेता है ओर तब स्त्री को पिता, पति और पुत्र के अधिन कर दिया जाता है। मैत्रेयी संहिता में स्त्री की टूटना सुरा की जाने लगती है। और उसे वैदिक काल में प्राप्त प्रायः सभी अधिकार छिन लिए जाते हैं।

मध्य–युग तक आते–आते महिला की स्थिति पतन की पराकाष्ठा को पार कर जाती है। यह कहना उचित होगा कि इस समय महिला 'सेक्स' का 'आब्जेक्ट' बनकर रह जाती है। मुस्लिम आक्रमण और रीतिकाल के कवियों ने इस स्थिति को और जटिल कर दिया। मुस्लिम आक्रमणकारी सुन्दर लड़कियों और स्त्रियों का हरण कर लेते थे जिसके कारण बाल–विवाह और जौहर एवं सती प्रथा जैसी कुप्रथाओं का उद्‌भव हुआ। दूसरी ओर रीति काल के कवि भोग–विलास में डूबे अपने आश्रयदाताओं को खुश करने के लिए स्त्री को भोग्या रूप में प्रस्तुत करने लगे। पतन की ओर बढ़ते समाज को भक्तिकाल के प्रसिद्ध महाकवि तुलसी ने यह लिखकर ''ढोल, गंवार, शूद्र, पशु नारी। सकल ताड़न के अधिकारी।''[2] अवश्य ही हवा प्रदान की होगी। यद्यपि इस युग में भी रजिया सुल्तान, कर्णवती, जीजाबाई, दुर्गावती जैसी महिलाएँ हुई। किन्तु समाज में इनकी चमक एक उल्कापिंड की तरह ही क्षणिक ही थी।

महिलाओं की स्थिति में परिवर्तन का तीसरा आयाम है– आधुनिक काल। यद्यपि की आधुनिक कला का आरम्भ ब्रिटिश दासता का प्रवेश द्वार है तथापि यूरोपीय पुनर्जागरण ने भारतीय बुद्धिजीवी वर्ग को इन सामाजिक सुधारों के लिए प्रेरित किया। परिणामतः राजा राममोहन राय, ईश्चरचन्द्र

विद्यासागर, केशवचन्द्रसेन ज्योतिबा फूले, अम्बेदकर जैसे राजनीतिज्ञ और समाज सुधारक दलित और स्त्रियों को इस दयनीय स्थिति में परिवर्तन के लिए आगे बढ़े, तो वहीं दूसरी ओर साहित्यकारों का भी एक वर्ण इस क्रांतिकारी सामाजिक परिवर्तन के लिए बेचैन हो उठा। इन साहित्यकारों ने स्त्री की दशा पर वृहद् प्रकाश डाला। प्रारंभिक लेखकों में प्रेमचन्दर ने स्त्री–त्रासदी का जो चित्र प्रस्तुत किया वह सर्वाधिक नवीन एवं सत्य था। 'निर्मला' उपन्यास महिला केन्द्रित साहित्य के इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। प्रेमचन्द रचित इस उपन्यास में अनमेल विवाह और दहेज प्रथा को चित्रित किया गया है। देहज न दे पाने के कारण सुन्दर और सुशीला निर्मला का विवाह एक अधेड़ पुरूष से कर दिया जाता है जिसे पहली पत्नी से तीन बच्चे थे।

एक युवती के मनोदशा का जो वर्णन प्रेमचन्द ने 'निर्मला' उपन्यास में किया है वह इस उपन्यास को प्रथम मनोवैज्ञानिक उपन्यास के पद पर खड़ा कर देता है। निर्मला की मनोदशा का वर्णन करते हुए प्रेमचन्द लिखते हैं– 'वकील साहब अपने प्रेम प्रदर्शन में कोई कमी नहीं रखते थे, लेकिन निर्मला को इन बातों से घृणा होती थी। वही बातें जिन्हें किसी युवक के मुख से सुनकर उसका हृदय प्रेम से उन्मत्त हो जाता, वकील साहब के मुँह से निकल कर उसके हृदय पर शर समान अघात करती थीं। उसमें रस न था, उल्लास न था, उन्माद न था, केवल बनावट थी, धोखा था, और शुष्क एवं नीरस शब्दाडम्बर।''[3]

निर्मला का चरित्र निर्मल होते हुए भी उसे हमेशा अनादर एवं अवहेलना सहना पड़ा। पति परायण होते हुए भी उसके रूप एवं यौवन के कारण उसका पति उसपर शक करता है, परिस्थितियाँ उसे दोषी बना देती हैं। मृदुभाषी निर्मला कर्कश स्त्री का रूप धारण कर लेती हैं। प्रेमचन्द लिखते हैं– ''जब हृदय जलता है तो वाणी भी अग्निमय हो जाती है।''[4]

निर्मला विपरीत परिस्थितियों से लड़ती हुई मृत्यु को प्राप्त हो जाती हैं। दहेज प्रथा और अनमेल विवाह का चित्रण प्रेमचन्द ने अपने उपन्यास 'सेवासदन' में भी किया है। किन्तु निर्मला को प्रेमचन्द का प्रथम 'यथार्थवादी' एवं 'मनोवैज्ञानिक' उपन्यास माना जा सकता है। निर्मला की मृत्यु कुत्सित सामाजिक प्रथा को मिटाडालने के लिए एक कठिन चुनौती के रूप में प्रस्तुत किया है। 'सेवासदन' में भी शादी टूटने का कारण अनमेल विवाह ही है। 'सेवासदन' उपन्यास की नायिका रूपवती नवयुवती है वहीं उसका पति गजाधर एक अधेड़ पुरूष। गजाधर को हमेशा यह भय बना रहता है कि सुमन उसको छोड़कर किसी युवक की तरफ आकर्षित न हो जाए प्रेमचन्द लिखते हैं– ''गजाधर प्रसाद की दशा अशर्फियों की थैली लिए बैठा हो। सुमन का वह मुख कमल जिस पर वह कभी भौंरे की भांति मंडराता था, अब उसकी आंखों में जलती हुई आग के समान था। वह उससे दूर–दूर रहता था, उसे भय था कि वह मुझे जला न दे। स्त्रियों का

सौन्दर्य उसक पति–प्रेम है। इसके बिना उसकी सुन्दरता इन्द्रायण का फल है, विषमय और दग्ध करने वाला।''[5]

अन्ततः गजाधर का सन्देह एक संभ्रान्त युवती को वेश्या बनने पर मजबूत कर देता है। क्या उसके लिए यह समाज और समाज की झूठी मान–मर्यादा जिम्मेदार नहीं है जो सुमन को किसी भी रूप में पनाह नहीं देकर उल्टे उसे बदनाम करती है?

प्रेमचन्द के बाद अनेक कवियों एवं लेखकों ने स्त्री–त्रासदी को केन्द्र में रखकर लेखन आरम्भ किया। स्त्री के प्रति भी यह सहानुभूति जगी कि आखिर वह भी हाड़–मांस से बनी एक कोमल हृदय रखने वाली मनुष्य ही तो है। निर्मला पुतुल लिखती हैं– ''तन के भूगोल से परे एक स्त्री के मन की गांठे खोलकर कभी पढ़ा है तुमने उसके भीतर का खौलता इतिहास। अगर नहीं तो जानते क्या हो तुम रसोई और बिस्तर के गणित से परे एक स्त्री के बारे में।

आधुनिक युग में अनेक लेखकों ने स्त्री–विमर्श को आगे बढ़ाया, इनमें अनेक स्त्री लेखिकाओं जैसे– मृदुला गर्ग, प्रभा खेतान, डॉ. कुसुम मेघवाल, शिवानी, मृणाल पाण्डे इत्यादि अनेक लेखिकाओं का साहित्य में पदार्पण स्त्री विमर्श के क्षेत्र में मील का पत्थर साबित हुआ। प्रभा खेतान ने स्त्री पक्ष नामक उपन्यास में वृंदा के माध्यम से लिखा है– सेक्स आदि घटनाएँ जीवन की हैं। फिगर–विगर का चक्कर सब पैसे वालों के चोंचले हैं। यदि सुमित ने इतना पैसा नहीं कमाया होता यदि वह महज एक फैक्ट्री में काम कर रहा होता, तब क्या वह इतना ऐश कर पाती?''[6]

किन्तु आज भी स्त्री को पुरूषों के समान समाज ने अधिकार नहीं दिया है। कानून चाहें उसे बराबर का अधिकारिणी मान चूँकी है लेकिन एक स्त्री पढ़ी–लिखी होने के बाद भी उसी त्रासदी को झेलती है जो सदियों से चली आ रही है। आखिर कब तक वह झेलेगी, कब तक सहेगी वह सब सह के भी उपेक्षिता ही है? तभी तो जयशंकर प्रसाद लिखते हैं– ''क्या कहती हो ठहरों नारी, संकल्प अश्रु–जल से अपने तुम दान कर चुकी पहले ही, जीवन के सोने से सपने। यही आज भी सत्य है।''

सन्दर्भ :

1. मनुस्मृति, श्लोक 3/56
2. सुन्दरकाण्ड, रामचरितमानस, तुलसीदास, पृ. 663
3. निर्मला, प्रेमचन्द, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण–2018, पृ. 30–31
4. वही, पृ. 133
5. सेवासदन, प्रेमचन्द, सुमित्र प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण 2014, पृ. 20–21
6. स्त्री पक्ष, तेरहवीं कड़ी, प्रभा खेतान, जनसत्ता सबरंग, 9 मई, 1999

***

हिन्दी साहित्य में भारतेन्दु का योगदान

शशि कुमार पासवान *

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र हिन्दी साहित्य में एक अमीट हस्ताक्षर कहे जाते हैं। इन्होंने अपने कृतित्व और व्यक्तित्व से हिन्दी साहित्य को उन ऊचाईयों पर ला खड़ा यिा है जो हमारे लिए बहुत ही गर्व की बात है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र तेजस्वी और प्रखर प्रतिभा के धनी है। हिन्दी साहित्य में इनका व्यक्तित्व हिन्दी के साथ–साथ समाज में भी क्रांति लाने का कार्य किया है। इनका अपने साहित्यिक जीवन से बहुत ही बड़ा गहरा लगाव रहा है। यही कारण है कि आज भारतेन्दु हमारे बीच न रहते हुए भी आज हमारे समक्ष उपस्थित हैं।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (1850–1885) : भारतेन्दु हरिश्चन्द्र आधुनिक हिन्दी गद्य के जनक माने जाते हैं। उन्होंने हिन्दी गद्य को अनेक रूपों– निबंध, नाटक, इतिहास, आत्मकथा, कहानी, उपन्यास, यात्रा वर्णन आदि में ढाला इसके पूर्व इन विद्याओं का आविर्भाव नही हो पाया था। इस समय तक गद्य इस योग्य हो चुका था कि वह जनता की चित्तवृतियों को नये रूप–रंगों में रचनात्मक पर रूपान्तरित कर सके। आधुनिक हिन्दी साहित्य के पितामह कहे जाते हैं। वे हिन्दी में आधुनिकता के पहले रचनाकार थे। उनका कार्य काल युग की सन्धि पर खड़ा है। उन्होंने रीतिकाल की विकृत सामन्ती संस्कृति को पोषक वृतियों को छोड़कर स्वस्थ परम्परा की भूमि अपनाई और नवीनता के बीज बोए।

बच्चन ने अपने इतिहास में यह लिखा है कि ''भारतेन्दु के व्यक्तित्व में फक्कड़पन और मस्ती भरी हुई थी। वे इतिहास + प्रसिद्ध अमीचन्द्र के वंशज और काशी के सुप्रसिद्ध रईस गोपाल चन्द्र के पुत्र थे। वे 'जो घर जारै आपना चले चलै हमारे साथ' के अनुयायी थे। यदि अमीचन्द्र ने अंग्रेजी उपनिवेशवाद को स्थापित करने में सहायता पहुँचायी थी तो भारतेन्दु ने उस उपनिवेशवाद के विरूद्ध वैचारिक जमीन तैयार की। वे अपनी छोटी–सी जिंदगी में अमीचन्द्र के कुकृत्यों का प्रायश्चित करते रहे। यदि एक ओर उनमें आभिजात्य का संस्कार था तो दूसरी ओर उसे फेंककर जनता के साथ एकीकृत होने की क्षमता। अन्तर्विरोध उनमें है– एक तरह से अन्तर्विरोध के पुंज हैं– वे विशिष्ट भी थे और सामान्य भी, राजभक्त भी थे, देश भक्त भी सनातनी वैष्णव भी, आडंबर विरोधी भी, कर्मकांड समर्थक भी, ईश्वरवादी और निरीश्वरवादी भी, परंपरावादी भी थे, आधुनिक भी। कविता में खड़ी बोली के समर्थक थे और गद्य में खड़ी बोली के प्रयोग के हिन्दूवादी

* यूजीसी-नेट, गाँव- चन्दवारा घाट हरपुर, पोस्ट- प्रधान डाकघर (मुज.), पुलिस स्टेशन- अहियापुर, जिला-मुजफ्फरपुर, पिन कोड- 842001

भी थे और हिन्दू–मुस्लिम एकता के समर्थक भी। गृहस्थ भी थे, अगृहस्थ भी। इस प्रकार के अंतर्विरोध उनके अपने युग के थे। अंतर्विराधों का होना स्वाभाविक था, उनका न होना ही विस्मयकारी होता।''[1]

भारतेन्दु– युग अथवा पुनर्जागरण काल का उदय हिन्दी–कविता के लिए नवीन जागरण के संदेशवाहक युग के रूप में हुआ था। किन्तु इसके सीमांकन के सम्बंध में विद्वानों में मतभेद हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (1850–1885) के रचनाकाल की दृष्टि में रखकर ई. 1868–1893 की अवधि को 'नयी धारा' अथवा 'प्रथम उत्थान' की संज्ञा दी है और इस काल को भारतेंदु हरिश्चन्द्र तथा उनके सहयोगी लेखकों के कृतित्व से समृद्ध माना है। किन्तु उनके द्वारा निर्धारित काल अविध से कुछ अन्य लेखकों का वैमत्य है। डॉ. केसरी नारायण शुक्ल ने 1922–1957 वि. मिश्र बंधुओं ने 1926–1945 वि. डॉ. रामकुमार वर्मा 1870–1900 ई. रामविलास शम्र 1868–1900 ई. तक भारतेन्दु युग की व्याप्ति मानी है।

डॉ. बच्चन सिंह ने अपने इतिहास के सम्बंध में यह लिखा है कि ''सन् 1884 में भारतेन्दु हरिशचन्द्र 'कालचक्र' तैयार कर रहे थे। इसमें 'संसार में जो बड़ी–बड़ी घटनाएँ हुई हैं उनका समय निर्णय किया गया है। श्रीराम, युधिष्ठिर, सिंकदर के आक्रमण कर्बला के युद्ध आदि का समय निर्धारित करते हुए लेखक ने 'हिन्दी नये चाल में ढली' 1873 का भी उल्लेख किया है। प्रश्न होता है कि दुनिया की प्रसिद्ध घटनाओं में हिन्दी का नये चाल में ढलना भी क्या एक प्रसिद्ध घटना है? दूसरा प्रश्न यह है कि सन् 1873 को ही इस घटना के घटित होने का समय क्यों चुना गया। दूसरे प्रश्न के उत्तर में ही पहले प्रश्न का उत्तर अनुस्यूत है। सन् 1873 में 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' का प्रकाशन हुआ। सन् 1868 में 'कविवचनसुधा' का प्रकाशन हो चुका था।''[2]

भारतेन्दु जी ने जिस प्रकार हिंदी गद्य की भाषा का परिष्कार किया उसी प्रकार काव्य की ब्रजभाषा का भी। उन्होंने देखा कि बहुत से शब्द जिन्हें बोलचाल से उठे कई सौ वर्ष हो गए थे, कवितों और सवैयों में बराबर लाए जाते हैं। इसके कारण कविता जनसाधारण की भाषा से दूर पड़ती जाती है। भारतेंदुजी ने हिन्दी काव्य को केवल नए–नए विषयों के आरे ही उन्मुख किया, उसके भीतर किसी नवीन विधान या प्रणाली का सूत्रपात नहीं किया। गद्य को जिस परिणाम में भारतेन्दु ने नए–नए विषयों और मार्गों की ओर लगाया उस परिमाण में पद्य को नहीं। उनकी अधिकांश कविता तो कृष्णभक्त कवियों के अनुकरण पर गेय पदो ंके रूप में है जिनमें राधाकृष्ण की प्रेमलीला और विहार का वर्णन है।

हिन्दी साहित्य उद्‌भव और विकास में हजारी प्रसाद द्विवेदी ने स्वयं लिखा है कि ''नई चाल से उनका तात्पर्य है कि इस समय उन्होंने जिस भाषा की नींव डाली, उसमें किसी प्रकार का बंधन नहीं था, और न किसी प्रकार से कृत्रिम रूप से वह गढ़ी हुई थी। वस्तुतः भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने

उनके सहयोगियों ने जिस प्रकार की भाषा में अपने लेख और ग्रंथ लिखे वह बहुत स्वाभाविक और भाव–प्रकाशन में समर्थ भाषा थी। हरिश्चन्द्र चंद्रिका में कई ऐसे लेख प्रकाशित हुए, जिनका मान दीर्धकाल तक होता रहा। मुंशी ज्वाला प्रसाद का 'कवि राज की सभा, तोता + राम का 'अद्‌भूत अपूर्व स्वप्न, बाबू काशी प्रसाद का 'रेल का टिकट खेल', आदि लेख बहुत लोकप्रिय हुए। स्वयं भारतेन्दु का लिखा 'पाँचवाँ पैगम्बर' भी बहुत लोक + प्रिय हुआ।''[3]

नवीन धारा के बीच भारतेंदु की वाणी का सबसे ऊँचा स्वर देशभक्ति का था। नीलदेवी, भारतदुर्दशा आदि नाटकों के भीतर आई हुई कविताओं में देश दशा की मार्मिक व्यंजना है, वह तो है ही; बहुत सी स्वतंत्र कविताएँ भी उन्होंने लिखीं जिनमें कही देश की अतीत गौरव गाथा का गर्व, कही वर्तमान अधोगति की क्षोभरी वेदना कही भविष्य की भावना से जगी हुई चिंता इत्यादि अनेक पुनीत भावों का संचार पाया जाता है। भारतेन्दु ने कवि समाज भी स्थापित किये थे जिनमें समस्यापूर्ति बराबर हुआ करती थी।

हजारी प्रसाद द्विवेदी ने यह कहा है कि ''भारतेन्दु का प्रभाव भाषा के प्रचार–क्षेत्र में बहुत व्यापक रहा। उन्नीसवीं शताब्दी के अंत में भाषा के सम्बंध में लोकमत को सचेत करने के लिए जिस प्रकार के उद्योग हुए, वे हिन्दी भाषा के इतिहास में एकदम नए हैं। गौरीदत्त और अयोध्या सिंह खत्री जैसे परवर्ती काल के उत्साही प्रचारकों को भी भारतेन्दु के 'निज भाषा उन्नति' का मंत्र ही प्रधान रूप से प्रेरणा दे रहा था। भाषा के प्रति इस प्रकार की जागरूकता के मुख्य और क्रियात्मक रूप का कारण तो राष्ट्रीय भावना थी, किन्तु प्रतिक्रियात्मक रूप का हेतु था हिन्दी की भयंकर उपेक्षा। भारतेन्दु की प्रेरणा ने हिंदी भाषा के आन्दोलन को वास्तिविक जन–आन्दोलन का रूप दे दिया। इसी जन–आन्दोलन ने हिंदी का जन भाषा बनने की ओर बराबर उन्मुख बनाएं रखा। यह जन–संश्रय का ही परिणाम है कि निरंतर उपेक्षित और अपमानित होते रहने पर भी हिंदी आज सर्वोच्च गौरव की अधिकारणी बनी है। हिन्दी की शक्ति जनता की शक्ति है। वह इतनी बड़ी ताकत है कि उसके सामने बड़े–से–बड़े शक्तिशाली मनुष्य की तनी भृकुटि निः शक्त हो जाने को बाध्य है। भारतेन्दु की प्रेरणा से हिन्दी जन भाषा बनी।''[4]

भारतेन्दु की सफलता का प्रधान रहस्य यह जीवन प्राणधारा ही है। उनकी सफलता का दूसरा रहस्य है, उनकी अपूर्व दानशीलता से मेरा मतलब रूपया पैसा लुटाने से नहीं है। भारतेन्दु ने रूपया–पैसा काफी लुटाया भी था। लेकिन मैं दूसरी बात कह रहा था। लुटाने से अभिप्राय है, अपना सर्वोत्तम लुटाना दाता का प्रधान लक्षण है कि उसके इर्द–गिर्द ग्रहीता स्वयं जुट आते हैं ओर विशेषता यह है कि स्वयं आकृष्ट ग्रहीता आगे चलकर महादानी बन जाते हैं।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में यह द्रष्टव्य है कि ''हरिश्चंद्री हिन्दी के आर्विभाव के साथ ही नये–नये लेखक भी तैयार होने लगे। चंद्रिका में भारतेन्दु आप तो लिखते ही थे बहुत–से और लेखक भी उन्होंने उत्साह दे–देकर तैयार कर लिये थे। स्वर्गीय पं. बदरी नारायण चौधरी, बाबू हरिश्चन्द्र के संपादन कौशल की बड़ी प्रशंसा किया करते थे। बड़ी तेजी के साथ वे चंद्रिका के लिए लेख और नोट लिखते थे और मैटर को बड़े ढंग से सजाते थे। हिंदी गद्य साहित्य के इस आरंभकाल में ध्यान देने की बात है कि उस समय जो थोड़े से गिनती क`लेखक थे, उनमें विदग्धता और मौलिकता थी और उनकी हिन्दी होती थी। वे अपनी भाषा की प्रकृति को पहचानने वाले थे। बंगला, मराठी, उर्दू, अँग्रेजी के अनुवाद का वह तूफान जो पच्चीस–तीस वर्ष पीछे चला और जिसके कारण हिन्दी का स्वरूप संकट में पड़ गया था उस समय नहीं था। उस समय ऐसे लेखक न थे जो बंगला की पदावली और वाक्य ज्यों–के –त्यों रखते हो या अंगरेजी वाक्यों और मुहावरो का शब्द प्रति शब्द अनुवाद करके हिन्दी लिखने का दावा करते हो। उस समय की हिंदी में न 'दिक्–दिक् अशांति' थी न कांदना, सिहरना, और छल–छल अश्रुपात, न 'जीवन होड़' और 'कवि का संदेश' था, न 'भाग लेना और स्वार्थ लेना।''[5]

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने हिन्दी साहित्य के अनेक विधाओं में अपना बहुमूल्य प्रतिभा से निखारा है। निबंध, आलोचना, कहानी, नाटक, उपन्यास, कविता यात्रावर्णन आदि को देखा जाए तो नवीन क्रांति का युग जान पड़ता है। आधुनिक गद्य साहित्य के पितामह कहे जाने वाले भारतेन्दु गद्यको जिस परिमाण में नए–नए विषयों और मार्गों के माध्यम से हिन्दी साहित्य की नींव रखी है, वह काफी सिद्धहस्त जान पड़ता है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने यह लिखा है कि ''हरिश्चन्द्र के जीवनकाल में ही लेखकों और कवियों का एक खासा मंडल चारों ओर तैयार हो गया। उपाध्याय पं0 बदरीनारायण चौधरी, पं. प्रताप नारायण मिश्र, बाबु तोताराम, ठाकुर जगमोहन सिंह लाला श्रीनिवास दास, पंडित बालकृष्ण भट्ट, पं. अम्बिका दत्त व्यास, पं. राधाचरण सिंह गोस्वामी इत्यादि कई प्रोढ़ और प्रतिभाशाली लेखकों ने हिन्दी साहित्य के इस नूतन विकास में योग दिया था। भारतेंदु का अस्त तो संवत् 1941 में ही हो गया था उनका यह मंडल बहुत दिनों तक साहित्य निमार्ज्ञण करता रहा। अनेक प्रकार के गद्य प्रबंधक, नाटक, उपन्यास, आदि इन लेखकों में न दिखाई पड़ी। भारतेन्दु जी में हमें दो प्रकार की शैलियाँ का व्यवहार पाते हैं। उनकी भावावेश की शैली दूसरी है और तथ्यनिरूपण की शैली दूसरी। भावावेश की भाषा में प्रायः वाक्य बहुत छोटे–छोटे होते हैं और कभी–कभी पर बहुत कम आ जाते हैं।''[6]

भारतेन्दु द्वारा प्रवर्तित आधुनिक काल में एक ओर पश्चिम की नयी चेतना से सम्पर्क का यत्न है, तो दूसरी ओर लोक जीवन से जुड़े रहने की

उतनी ही उत्कट लालसा है। पत्र–पत्रिकाओं के आयोजन से यदि एक उद्देश्य की पूर्ति होती है, तो नाटक और लोक–काव्यों के प्रचार–प्रसार से दूसरे उद्देश्य की। यही कारण है कि इस युग के लेखकीय कार्यक्रम में तीन अंग बराबर मिलेंगे। पत्रकारिता का निंतर आयेाजन, नाट्य–लेखन और अभिनय तथा कजली–लावनी जैसे स्थानीय लोक माध्यमों का संवर्द्धन। यह लोक–जीवन से जुड़े रहने की चिंता भारतेन्दु–युगीन हिन्दी लेखक को पश्चिमी संस्कृति के प्रवाह में बहने नहीं देती।

हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास में रामस्वरूप चतुर्वेदी ने यह लिखा है कि ''भारतेंदु के रचनाकार, व्यक्तित्व की संश्लिष्ट उनके काव्य–रूपों के चुनाव में पूरी तरह झलकती है। वे ह्रदय से कवि हैं, पर उनकी कविता ब्रजभाषा में है, और अधिकतर भक्तिकालीन संस्कारेां से युक्त, बीच–बीच में कुछ रीतिकालीन भंगिमा भी दिख जाती है। नवोन्मेा के दबाव में उपवाद–स्वरूप कुछ कविताएँ खड़ी बोली में लिखी हैं, तब छंद विधन अधिकतर उर्दू का है। गद्य सारा का सारा खड़ी बोली में है, वे खड़ी बोली गद्य के पहले रचनाकार हैं। शिक्षक प्रवचन + कर्ता और अनुवादक से आगे– पर उन्होंने अपने समय में संभाव्य सभी गद्य–रूपों का प्रयोग किया नाटक, एक अधुरा उपन्यास, आत्मकथा, निबंध, समीक्षा, पत्रकारिता नाटक उनके कृतित्व के केन्द्र में है, यह कहना शायद ठीक होगा। पुनर्जागरण चेतना की सशक्त अभिव्यक्ति के लिए उनका यह सजग चुनाव है जिस तक साक्षर–निरक्षर सबकी पहुँच है। नाटक के जन्म की भारतीय कथा में भी भर मुनि ने उल्लेख किया है कि यह माध्यम सब वर्णों के लिए है, और आधुनिक जनतंत्र के युग में तो उनकी यह विशेषता और उभरकर आती है।''[7]

भारतेन्दु युगीन द्वैत पुनर्जाकरण– प्रक्रिया के साथ–साथ चलता है। भारतेंदु ने अपनी व्यवस्था कुछ इस प्रकार रखी थीः विचार–आन्दोलन–खड़ी बोली–गद्य यह एक पक्ष था, जब दूसरे पक्ष में थेः संस्कार–रचना ब्रजभाषा–कविता। भारतेन्दुं विचारों से जितनें आधुनिक थे अनुसरण करते हैं।

हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में यह द्रष्टव्य है कि ''भारतेन्दु का प्रभाव भाषा के प्रचार–क्षेत्र में बहुत व्यापक रहा। उन्नीसवीं शताब्दी के अंत में भाषा के सम्बन्ध में लोकमत को सचेत करने के लिए जिस प्रकार के उद्योग हुए, वे हिन्दी भाषा के इतिहास में एक + दम नए है। गौरीदत्त और अयोध्यासिंह खत्री जैसे परवर्ती काल के उत्साही प्रचारकों को भी भारतेंदु के 'निज भाषा उन्नति' का मंत्र ही प्रधान रूप से प्रेरणा दे रहा था। भाषा के प्रति इस प्रकार की जागरूकता के मुख्य और क्रियात्मक रूप के कारण तो राष्ट्रीय भावना थी, किंतु प्रतिक्रियात्मक रूप का हेतु था हिंदी की भयंकर उपेक्षा। भारतेंदु के प्रेरणा से हिन्दी भाषा के आन्दोलन को वास्तविक जन–आन्दोलन का रूप दे दिया। इसी जन–आन्दोलन ने हिन्दी को जन–भाषा बनने की ओर बराबर उन्मुख बनाए रखा।''[8]

निष्कर्षतः भारतेन्दु हिन्दी साहित्य को ऊँचाईयों पर ला खड़ा किया जो हिन्दी–भाषी जनता के लिए गर्व एवं गौरव की बात है। हिन्दी–भाषा एवं साहित्य के विकास में उनका योगदान अप्रतिम है। हिन्दी गद्य के जनक भारतेन्दु एक प्रखर प्रतिभा के धनी साहित्यकार रहे हैं। उनके योगदान को विस्मृत नहीं किया जा सकता है।

सन्दर्भ :

1. हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, डॉ. बच्चन सिंह, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 2018, पृ. 294
2. वही, पृ. 292–293
3. हिन्दी साहित्य का उद्‌भव और विकास, हजारी प्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2019, पृ. 208–209
4. वही, पृ. 212
5. हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल साहित्य सरोवर, जयपुर, हाउस, आगरा, पृ. 310
6. वही, पृ. 312
7. हिन्दी और संवेदना का विकास, रामस्वरूप चतुर्वेदी, लोकभारती प्रकाशन, प्रयागराज, 2019, पृ. 85
8. हिन्दी साहित्य का उद्‌भव और विकास, हजारी प्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2019, पृ. 212

***

काव्य साधनामोहनलाल महतो 'वियोगी' की कविताएँ

श्वेता कुमारी *

काव्य या कविता का अर्थ सृष्टि या रचना है– 'पश्य देवस्य काव्यं न ममार न जीयति' में इस संसार को काव्य के संज्ञा से अभिहित जगत् देवता, ईश्वर का काव्य है। कलांतर में काव्य शब्द का अर्थ परिवर्तित होता गया। इसी प्रवृत्ति में इस शब्द का अर्थ हुआ– एक संत अथवा कवि के गुण से संपन्न संत, दार्शनिक अथवा कवि से उद्‌भुत वस्तु[1] और एक समय काव्य उस अर्थ में रूढ़ हो गया जिसे साहित्य अथवा साहित्य की विशिष्ट विधा 'कविता' (काव्य, पोयट्री, शायरी) कहा जाता है। पद्य, काव्य या कविता साहित्य की वह विधा है जिसमें किसी कहानी या मनोभाग को कलात्मक रूप से किसी भाषा के माध्यम से अभिव्यक्त किया जाता है। यह वह वाक्य रचना है जिससे चित्त किसी मनोवेग से पूर्ण हो अर्थात् वह जिसमें चुने हुए शब्दों के द्वारा कल्पना और मनोवेगों का प्रभाव डाला जाता है। 'रमणीय' अर्थ के प्रतिपादक शब्द को 'रसगंगाधर' में 'काव्य' कहा गया है। 'अर्थ की रमणीयता' के अन्तर्गत शब्द की रमणीयता(शब्दालंकार) भी समझ कर इस लक्षण को लाग स्वीकार करते हैं। परन्तु 'अर्थ की रमणीयता' कई प्रकार की हो सकती है। इस कारण यह लक्षण बहुत स्पष्ट नहीं है। साहित्य दर्पणाकार आचार्य विश्वनाथ का लक्षण ही सबसे सटीक जान पड़ता है। उनके अनुसार 'रसात्मक वाक्य ही काव्य है।' रस अर्थात् मनोवेगों का सुखद संसार ही काव्य की आत्मा है।

काव्य या कविता क्या है इस संबंध में भारतीय साहित्य में आलोचकों की बहुत ही समृद्ध परंपरा रही है– आचार्य विश्वनाथ, पंडितराज जगन्नाथ आचार्य श्रीपति, भामह, पंडित अम्बिकादत्त व्यास आदि संस्कृत के विद्वानों से लेकर आधुनिक युग में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, महावीर प्रसाद द्विवेदी, जयशंकर प्रसाद महादेवी वर्मा आदि अनेकानेक प्रबुद्ध कवियों ने कविता का स्वरूप करते हुए अपने–अपने विचार व्यक्त किये हैं। विद्वानों के मतानुसार मानव हृदय अनन्त रूपात्मक जगत् के नामा रूपों, व्यापारों में भटकता रहता है किन्तु जब मानव अहं की भावना का परित्याग करके विशुद्ध अनुभूति मात्र रह जाता है तब वह मुक्त हृदय हो जाता है। हृदय की इस मुक्ति की साधना के लिए मनुष्य वाणी जो शब्द विधान करती आई है उसे कविता मानव को स्वार्थ संबंधों के सकीर्ण घेरे से ऊपर उठाती है और शेष सृष्टि से रागात्मक संबंध जोड़ने में सहायक होती है।

भरत मुनि कृत 'नाट्यशास्त्र' कदाचित् सबसे प्राचीन ग्रन्थ है, जिसमें काव्य के एक विशिष्ट रूप 'नाटक' की उत्तमता का निर्देश किया

---

* शोध-छात्रा, हिन्दी, बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

गया है, जिससे काव्य के लक्षण अथवा स्वरूप का कुछ संकेत हो जाता है– ''मृदुललित पदार्थ गूढ़शब्दार्थहीन जनपद सुखभोग्यं युक्ति मन्नृत्ययोज्यम्। बहुकृतरसमार्ग सन्धिसन्धानयुक्तं भवति जगति योग्यं नाटकं प्रेक्षकाणाम्।।[2] काव्य मात्र का स्वरूप निर्धारित करने में इससे यह संकेत मिलता है कि काव्य सरल और ललित, सार्थक पदों से युक्त, गूढ़ शब्दों से विहीन और सरस होना चाहिए।[3]

आ.भामह और रुद्रट ने शब्दार्थ को सहित रहने पर ही काव्य की संज्ञा दी है।[4] आचार्य विश्वनाथ ने रसयुक्त वाक्य को ही काव्य की संज्ञा दी है– वाक्यं रसात्मकं काव्यं।[5]

आचार्य नंद दुलारे वाजपेयी के अनुसार ''काव्य तो प्रकृत मानव अनुभूतियों का नैसर्गिक कल्पना के सहारे ऐसा सौन्दर्यमय चित्रण है, जो मनुष्य मात्र में स्वभावतः अनुरूप भावोच्छ्वास और सौन्दर्य संवेदन उत्पन्न करता है।''[6]

कविता की परिभाषा देते हुए आ. महावीर प्र. द्विवेदी जी लिखते हैं– ''अंतःकरण की वृत्तियों के चित्र का नाम कविता है। नाना प्रकार के विकारों के योग से उत्पन्न हुए मनोभाव जब मन में नहीं समाते, तब वे आप ही आप मुखमार्ग से निकलने लगते है, तब वे आप ही आप मुखमार्ग से निकलने लगते हैं, अर्थात् मनोभाव शब्द का रूप धारण करते हैं। वही कविता है।''[7]

आ. शुक्ल के अनुसार ''जिस प्रकार आत्मा की मुक्तावस्था ज्ञानदशा कहलाती है, उसी प्रकार हृदय की मुक्तावस्था रसदशा कहलाती है, हृदय की इसी मुक्ति की साधना के लिए मनुष्य की वाणी जी शब्द विधान करती आयी है, उसे कविता कहते हैं। इस साधना को हम भावयोग कहते हैं और कर्मयोग और ज्ञानयोग के समकक्ष मानते हैं।''[8]

पाश्चात्य विद्वान कॉलरिज ने कहा है कि उत्तम शब्द उत्तम क्रम में कविता होती है। टी.एस. इलियट ने कवि और कविता पर विचार करते हुए लिखा है– ''प्रत्येक कवि को लगता है कि उसकी कुछ सामाजिक उपयोगिता है। लेकिन मैं स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि उसे धर्मविज्ञान, उपदेशक, अर्थशास्त्री, समाजशास्त्री या अन्य किसी रूप में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। वह कुछ भी कर सकता है, किन्तु तब वह कविता लिखता है तब उसे कविता ही लिखना चाहिए– कविता, जो कविता के रूप में मान्य हो, न किसी अन्य रूप में।''[9]

इस प्रकार काव्य की अनेक परिभाषाएँ दी गई है। ये परिभाषाएँ प्राचीन और आधुनिक हिन्दी काव्य के लिए सही ठहरती है। काव्य सिद्ध चित्त को अलौकिक आनंदानुभूति कराता है, तो हृदय के तार झंकृत हो उठते हैं। काव्य में सत्यं शिवं सुंदरम की भावना भी निहित होती है। जिस काव्य में यह सब कुछ पाया जाता है वह उत्तम काव्य माना जाता है।

काव्यप्रकाश में काव्य के तीन प्रकार के कहे गए हैं, ध्वनि, गुणीभूत, व्यंग्य चित्र। ध्वनि काव्य उसे कहते हैं जिसमें शब्दों से निकले हुए अर्थ

(वाच्य) की अपेक्षा छिपा हुआ अभिप्राय प्रधान हो। गुणीभूत में यह गौण होता है तथा चित्र या अलंकार में बिना व्यंग्य के चमत्कार होता है। इन तीनों को क्रमशः उत्तम, मध्यम और अधम भी कहते हैं। काव्यप्रकाशकार का बल छिपे हुए भाव पर अधिक जान पड़ता है, रस के उद्रेक पर नहीं।

काव्य के दो प्रकार से भेद किये गए हैं– एक स्वरूप के अनुसार और दूसरा शैली के अनुसार। स्वरूप के अनुसार काव्य के भेद :–

स्वरूप के अनुसार काव्य के दो भेद है– श्रव्यकाव्य एवं दृश्यकाव्य। श्रव्यकाव्य का रसास्वादन स्वयं पढ़कर या दूसरे से सुनकर किया जाता है। जैसे–रामायण और महाभारत। श्रव्यकाव्य के भी दो भेद हैं– प्रबंध तथा मुक्तक काव्य।

प्रबंध काव्य में कोई प्रमुख कथा काव्य के आदि से अंत तक क्रमबद्ध रूप में चलती है। कथा का क्रम बीच में कहीं टूटता नहीं और गौण कथाएँ बीच–बीच में सहायक बने कर आती है। जैसे–रामचरितमानस।

प्रबंध काव्य के दो भेद हैं– महाकाव्य और खंडकाव्य महाकाव्य में किसी ऐतिहासिक या पौराणिक महापुरुष की संपूर्ण जीवन कथा का आद्योपांत वर्णन होता है। महाकाव्य में निम्नलिखित बातें होना आवश्यक है–

महाकाव्य का नायक कोई पौराणिक या ऐतिहासिक हो तथा उसका धीरोदात्त होना आवश्यक है।

जीवन की संपूर्ण कथा का सविस्तार वर्णन हो।

श्रृंगार, वीर और शांत रस में से किसी एक की प्रधानता होनी चाहिए। यथास्थान अन्य रसों का भी प्रयोग होना चाहिए।

उसमें सुबह–शाम, दिन–रात, नदी, नाले, वन, पर्वत, समुद्र आदि प्राकृतिक दृश्यों का स्वाभाविक चित्रण होना चाहिए।

आठ या आठ से अधिक सर्ग होने चाहिए, प्रत्येक सर्ग के अन्त में छंद परिवर्तन होना चाहिए तथा सर्ग के अंत मे अगले अंक की सूचना होनी चाहिए।

खंडकाव्य में किसी की संपूर्ण जीवन कथा का वर्णन होकर केवल जीवन के किसी एक ही भाग का वर्णन होता है। खंडकाव्य में निम्नलिखित बातें होना आवश्यक है–

1. कथावस्तु काल्पनिक हो।
2. सात या सात से कम सर्ग हो।
3. उसमें जीवन के जिस भाग का वर्णन किया गया हो वह अपने लक्ष्य में पूर्ण हो।
4. प्राकृतिक दृश्य आदि का चित्रण देश काल के अनुसार और संक्षिप्त हो।

मुक्तक काव्य में केवल एक ही पद या छंद स्वतंत्र रूप से किसी भाव या रस अथवा कथा को प्रकट करने में समर्थ होता है। गीत, कवित्त, दोहा आदि मुक्तक होते हैं।

दृश्यकाव्य–जिस काव्य की आनंदानुभूति अभिनय को देखकर एवं पात्रों से कथोपकथन को सुनकर होती है उसे दृश्यकाव्य कहते हैं। जैसे नाटक में या चलचित्र में।

शैली के अनुसार काव्य के भेद हैं– पद्य, गद्य और चंपू काव्य। पद्य काव्य में किसी कथा का वर्णन काव्य में किया जाता है, जैसे गीतांजलि गद्य काव्य में किसी कथा का वर्णन गद्य में किया जाता है, जैसे जयशंकर प्रसाद की कामायनी। गद्य में काव्य रचना करने के लिए कवि को छंद शास्त्र के नियमों से स्वतंत्रता प्राप्त होती है। चंपू काव्य में गद्य और पद्य दोनों का समावेश होता है। मैथिली शरण गुप्त की 'यशोधरा' चंपू काव्य है।

पंडित मोहन लाल महतो 'वियोगी' का नाम हिन्दी साहित्य संसार में एक प्रतिभावान साहित्यकार के रूप में लिया जाता है। आ. रामचंद्र शुक्ल ने अपनी पुस्तक 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में छायावाद के चार प्रमुख कवियों की चर्चा करने के पश्चात् इस संवर्ग के अन्य उल्लेखनीय कवियों में पहला नाम वियोगी जी का लेते हुए लिखा है कि ''श्री वियोगी की कविताएँ निर्माल्य, एकतारा और कल्पना में संगहित है।''[10] वियोगी जी छायावाद के अग्रणी कवियों में से एक हैं। इनके कृतित्व में जीवन–मूल्यों तथा मानवीयगरिमा के रक्षार्थ मूल्य मिलते हैं, जो किसी काव्यचेता कवि में ही मिलते हैं। इनका जीवन–दर्शन विराट और विशिष्ट है। महाकवि के कृतित्व में वह सभी प्रवृत्तियॉ उपस्थित बन नजाती है। इनकी कविताओं में आस्तिकता का आलोक है, रहस्यात्मकता का आवरण है, जन–जीवन के प्रति लगाव है, क्रांति और संघर्ष का भाव है, जीवन की विषम समस्याएँ हैं, नारी प्रकृति और प्रेम के प्रति खुली दृष्टि है, अज्ञात सत्ता के प्रति जिज्ञासा है, यथार्थ के प्रति गहरा बोध है। वियोगी जी का काव्य वैयक्तिकता से राष्ट्रीयता ओर है।

डॉ. दीनानाथ 'शरण' ने लिखा है– ''छायावाद–रहस्यवाद के झिलमिल पर्दे 'वियोगीजी' के काव्य कक्ष पर सुशोभित हैं, जिनके भीतर किसी अज्ञात के प्रति अनुराग का दीपक जलता है। यह प्रेम–परक रहस्यवाद जो कबीर और जायसी के काव्य की कुंजी है, रवीन्द्रनाथ की 'गीतांजलि' की पूंजी है, वियोगी जी की भी आरंभिक काव्य–साधना की अनमोल मणि है।''[11]

छायावादी काव्य के प्रसिद्ध समालोचक पंडित शांति प्रिय द्विवेदी ने भी लिखा है कि वियोगी जी की प्रतिभा से छायावादी काव्य आलोकित हुआ है। निःसंदेह छायावादी काव्य को बिहार के जिन कवियों की कलम ने बल–वैभव प्रदान किया उनमें गया निवासी पंडित मोहनलाल महतो 'वियोगी' का नाम सर्वोपरि है।''[12]

श्री अवधेन्द्र देव नारायण जी ने लिखा है कि– ''सन् 1914 में ही इनकी छायावाद और रहस्यवाद की कविताएँ तत्कालीन प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में छपा करती थीं। यों इतिहासकार सन् 1918–19 को छायावाद काल

सुनिश्चित करते हैं। किन्तु यदि सच्चाई से काल का निर्धारण हो, तो कहावि 'वियोगी' छायावाद के आद्य प्रवर्त्तकों में हैं। तब प्रसाद जी को छोड़कर 'निराला', पंत और महादेवी साहित्य क्षेत्र में प्रवृष्ट नहीं हो पाए थे। नवीनता के अन्वेषी 'वियोगी' जी अपनी दीप्त सर्जना द्वारा युग निर्माण कर रहे थे।''[13]

'''वियोगी' जी संपुष्ट सांस्कृतिक पुरानी परंपरा की भूमि पर खड़े होकर दर्शन की गुत्थियों में रत रहने पर भी खड़ी बोली की काव्य–भाषा द्वारा अनोखी सूझ–बूझ से निरन्तर सुधा वर्षण करते रहे। गीतों में प्राणवत्ता और प्रेषणीयता के साथ मार्मिक अभिव्यंजना युग वरेण्य कमनीयता का द्योतक है। सरल और प्रसाद गुण सम्पन्न इनकी गीतियॉ सरस, सुंदर और मधुर है।[14]

कान्हूलाल गुर्दा जो कि एक बहुमुखी प्रतिभा संपन्न विद्वान कवि और अनेक काव्य–पुस्तकों के रचयिता, साहित्य समाज के सभापति थे और पन्नालाल भैया छैल से वियोगी जी ने अपने कवि जीवन के आरंभ में प्रेरणा और प्रभाव ग्रहण किया। ''कान्हूलाल गुर्दा इनके काव्य गुरु थे। गुर्दा जी से उन्होंने काव्य और काव्य रचना के विभिन्न आयामों की विधिवत् शिक्षा ग्रहण की थी।''[15]

अपने कवि जीवन के आरंभ में वियोगी जी ब्रजभाषा में समस्यापूर्तियॉ लिखा करते थे 'छविनाथ उपनाम से उदाहरण के लिए एक समस्या 'वाणी' की काव्यपूर्ति सवैया निम्नलिखित है–

प्रातरू सॉझ समयनित बैठिकै ध्यान बतावती अमृत सानी।
त्यो छविनाथ विचित्रन भॉति के देत प्रमाण अनेक न आनी।।
हंस मयूर की चाल गनावति औरन केर स्वरूप बखानी।
का किनियत्न तूं केती करै पर काक न बोलिहैं कोकिल बानी।।

यह उनकी सर्वप्रथम प्रकाशित काव्य रचना है। ब्रजभाषा में समस्यापूर्तियॉ वे 'छविनाथ' उपनाम का प्रयोग बैशाख विक्रम संवत 1977 (1920 ई.) से 'वाणी' समस्या की पूर्ति से ही करने लगे। साहित्यमाला (मासिक पत्रिका) में निरन्तर वियोगी जी की समस्यापूतियॉ छपा करती। इसके अतिरिक्त वियोगी जी एक सफल व्यंग्य चित्रकार भी थे।

सन्दर्भ :

1. नवभारत टाईम्स, रविवार्ता, पटना, 10 दिसंबर, 1989 एवं विष्णु पद रोड गया, डॉ. रामशंकर द्विवेदी (रामकृष्ण प्रकाशन, चित्रांगदा कॉम्पलेक्स, हॉस्पिटल रोड, विदिशा म.प्र.), प्रथम संस्करण, पृ. 201, 202, साक्षातकार।
2. काश, 1–15 मार्च, 1991ई., वर्ष–4, अंक–02, सं.–गोवर्द्धन प्रसाद सदय, लेख–काव्य हिमालय के गौरवमय शिखर मोहन लाल महतो वियोगी, डॉ. दीनानाथ शरण, पृ. 07
3. वही कालजयी महाकवि वियोगी शीर्षक लेख, लेखक– श्री अवधेन्द्र देव नारायण, पृ. 12

4. स्मृतिगंधा, लेखक– डॉ. अमरकुमार सिंह एवं डॉ0 (श्रीमती) भूपेन्द्र कलसी, बिहार ग्रन्थ अकादमी, पटना, सं.–2013, मोहनलाल महतो वियोगी शीर्षक लेख, पृ. 334–335
5. कल्पना (निर्माल्य, कल्पना, एकतारा संयुक्त सं.–2012) मोहनलाल महतो वियोगी, वियोगी साहित्य परिषद, रामसागर रोड, गया, पृ. 43
6. एकतारा, वही, पृ. 41, मोहन शीर्षक कविता से
7. वही, पृ. 41, 'राम' शीर्षक कविता से
8. कल्पना, वही, ओ विराट् शीर्ष कविता से
9. वही, 'दुस्सह भार' शीर्षक कविता से, पृ. 46
10. एकतारा, वही, 'दरिद्र नारायण' शीर्षक कविता से, पृ. 05
11. वही, 'स्तवन' शीर्षक कविता से, पृ. 39
12. निर्माल्य, वही, पृ. 39
13. भारतीय साहित्य के निर्माता मोहनलाल महतो वियोगी, रामनिरंजन परिमलेंदु, साहित्य अकादमी, रविन्द्र भवन, 35, फिरोजशाह मार्ग, नई दिल्ली–110001, पृ. 48
14. निर्माल्य (निर्माल्य, कल्पना, एकतारा संयुक्त सं. 2012) मोहनलाल महतो वियोगी, वियोगी साहित्य परिषद्, 61, रामसागर रोड, गया, 'कुसुम की कामना', शीर्षक कविता, पृ. 36
15. 'आर्यावर्त' (महाकाव्य), वियोगी साहित्य परिषद्, 61, राम सागर रोड, गया, लेखक– मोहनलाल महतो वियोगी, सप्तम् संस्करण, 2011, पृ. 48

***

त्रिलोचन के काव्य का जनपदीय आधार

*सुमित कुमार**

फणीश्वरनाथ रेणु ने त्रिलोचन को 'सबदजोगी' कहा था। त्रिलोचन ने जीवन भर शब्दों का होम ही साधा। अपने शब्दों की शाश्वत पर उनका भरोसा था, भरोसा ही नहीं, अटूट आस्था एवं विश्वास था। उन्होंने यूँ ही तो नहीं कहा था– ''मैंने कब कहा था, कविता की सांस मेरी सांस है? जानता हूँ मेरी सांस टूटेगी, और यह दुनिया, जिसे दिनरात चाहता हूँ, एक दिन टूटेगी।''

आत्मदया से रहित उनकी यह अकुंठ आत्मस्वीकृति अकारण नहीं। शब्दों के प्रति इस आस्था के पीछे है उनकी शब्द–साधना। इससे भी बढ़कर आत्म में अन्य एवं अन्य में आत्म का साक्षात्कार। यानी जबतक दुनिया है, दुनिया में लोग है, तबतक शब्द जीवित है। कवि जब कहता है कि – ''भीख माँगता उसी त्रिलोचन को देखा कल'' तो उस त्रिलोचन में कितने ही दीन–दुःखी समाहित होते हैं।

त्रिलोचन सहज भाषा के कवि है इनकी कविताओं में विभिन्न 'जनपदों' व गांवों की भाषा है। 'उस जनपद का कवि कविता इस दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण है जो निम्न पंक्तियों में देखा जा सकता है– ''त्रिलोचन धरती धन के कवि हैं। धरती के जन ही उनके धन है। उनका कंठ ही उनकी बानी है और उनका जीवन ही त्रिलोचन की कविता का ओढ़ना–विछौना है। उस जन के लिए उन्होंने अपने को जनपद का कवि कहा। त्रिलोचन का मानना है कि जब तक इस जन की मुक्ति नहीं तब तक उनके कवि की भी मुक्ति नहीं। जितना सीधा–सादा है उसी तरह उनकी कविता भी सीधी–सादी दिखती है। चमक–चमक दिखावे, छलावे, दूसरों पर डोरे डालने के लिए उन्होंने कभी भी अपने को अभीष्ट नहीं बनाया। पर जैसा कि मैंने पहले ही उल्लेख किया है कि उनकी सादगी और सहजता में एक खास तरह की कठिनता भी है। वे शब्दों के नहीं, बल्कि वाक्यों के कवि है। उनका एक सीधा–सादा सरल दिखनेवाला वाक्य अर्थ की कितनी तहों को किस कदर जमाए रखे है कि उसकी व्याख्या करना आसान नहीं है– इस रास्ते से नहीं, उधर, उस रास्ते हो लें। उधर भेड़ उंची है और खेत में पानी नीचे है।[1]

त्रिलोचन ग्रामीण चेतना के सशक्त कवि है। इनकी कविताओं में ग्राम्य, सौंदर्य की अनुपम झलक है जिसे कवि ने परत–दर–परत उबारने का प्रयत्न किया है। इनकी कविताओं की विशेषता का वर्णन कुछ इस प्रकार है– त्रिलोचन की कविता भी उनके व्यक्तित्व की सहजता और बीहड़ता की

* ग्राम+पो.- हरपुर पूसा, थाना- पूसा, जला- समस्तीपुर, पिन-848125

तरह सहज और जटिल है। पानी की तरह सहज और सरल दिखती है, पर पानी के स्वाद की तरह अव्यक्त रंगहीन और पारदर्शी है। पानी का स्वाद कैसा होता है यह पीनेवाले के लिए कहना जितना आसान है उतना ही उसकी गुणवता बताना मुश्किल। फिर त्रिलोचन की कवितानद का पाट इतना विविध विस्तीर्ण है कि उसे एक घाट के पानी का स्वाद कहना ज्यादती होगी। उनकी लम्बी सुदीर्घ कविता नदी के अनेक घाट है, हर घाट का अलग पानी है और उसका अलग स्वाद। हिन्दी कविता के आधुनिक इतिहास में उन्हें 'अवघट घाट' का कवि कहा जाय तो अव्यक्ति न होगी। छायावाद के दौर में जो स्थिति और भूमिका निराला की रही है, वही स्थिति इस साठ वर्षों में प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, नई कविता और साठोतरी कविता के दौर में चले दर्जनों छोटे–छोटे काव्यान्दोलनों के बीच त्रिलोचन की रही है। जनवादी प्रगतिवादी कैडर के लोग त्रिलोचन की सौ फीसदी प्रगतिशीलता के बावजूद इस तथ्य से हिचकते रहे कि त्रिलोचन तो बाबा तुलसीदास के चेले हैं। भला तुलसीदास का घोषित अनुयायी क्या आज हिन्दुत्व की मार–काट के बीच तुलसीदास की नजर दिखाकर कविता का तीसरा गवाह बन सकता है?[2]

त्रिलोचन की भाषा को उनकी विश्वदृष्टि और जीवन दृष्टि से अलग–अलग रखकर नहीं समझा जा सकता। उनके भावागत प्रयोगों को समझने में गलतियाँ होती रही है एकांगिता से काम लिया जाता रहा है। कुछ लोगों की समझ में यह आता है कि त्रिलोचन की शब्द मर्मज्ञता का कारण यह है कि उन्होंने कोश ग्रन्थों के सम्पादन में काम किया। विडम्बना यह है कि त्रिलोचन की भाषा को कोशों से समझा नहीं जा सकता। वह उस त्राणधारा से सीधे जुड़ी है, जिसका अंश ही बड़े–से–बड़े कोश में अट पाता है। उस मूल स्रोत की समझ में बोलियाँ सहायक होती है, परन्तु गलत जगह दाद देने का एक अन्य उदाहरण है उनके देशज प्रयोगों को उनकी उपलब्धि बताना। त्रिलोचन की भाषा में ऐसे देशज, प्रयोग आते हैं और इतने धड़ल्ले से आते हैं जिनसे उनकी रचना में एक नया रंग भर जाता है पर त्रिलोचन देशज आंचलिकता के मोह में यह नहीं करते, अपितु उन शब्दों का प्रयोग विलक्षण अर्थ के लिए करते हैं उसका यथार्थ नहीं मिलता और जो अर्थगर्भित ही नहीं चित्रगर्भित नहीं होते है– ''झाँय झाँय करत दुपहरिय, एक हलुका, एक दरेरा, उमड़ा भीड़ भड़का जैसे प्रयोग गढ़े हुए नहीं उसी जन भाषा से उठाये हुए हैं, यद्यपि नई ध्वनि व्यंजनाएँ गढ़ने की उनमें असाधारण प्रतिभा है।[3]

त्रिलोचन भाषा को गढ़ने वाले कवि है वे अपने भावों के अनुरूप भाषा को मोड़ लेते है जिस तरह के ग्रामीण परिवेश का उन्हें वर्णन करना रहा उसी तरह के भाषा का वे चुनाव किये है जो निम्न पंक्तियों में उपलब्ध है–

त्रिलोचन जीवन–संघर्ष और जीवन–सौन्दर्य के अप्रतिम कवि हैं। उनकी कविता में चित्रित संघर्ष और सौन्दर्य केवल उनका नहीं, बल्कि उस हिन्दी भाषी जाति का संघर्ष और सौन्दर्य है, जिसे देखने और पहचानने की क्षमता हिन्दी कविता के आधुनिकतावादी माहौल में लगातार होती गई है। त्रिलोचन ने न केवल उसे देखा और पहचाना है, बल्कि उससे वैसा आन्तरिक लगाव स्थापित किया है, जैसा कविता में तुलसीदास और निराला तथा गद्य में प्रेमचन्द जैसे कथाकारों में ही देखने को मिलता है। प्रगतिशील कवि त्रिलोचन के प्रचलित अर्थ में राजनीतिक कविताएँ बहुत कम लिखी है, पर राजनीति की मूल्यपरक गहरी चेतना निसन्देह उनकी कविता में सदा अनुप्राणित करती रही है। उनकी कविता इस बात का प्रमाण है कि प्रगतिशील कविता कोई संकीर्ण और एकपक्षीय कविता नहीं, बल्कि ऐसी कविता है, जिसमें जीवन की तरह ही व्यापकता और विविधता है, प्रकृति की तरह ही रंग बिरंगापन है।

त्रिलोचन के गजल, रूबाई, सॉनेट जैसे हिन्दीतर कविता के क्लासिकीय काव्यरूपों में भी कविता रची है और हिन्दी के नए–पुराने काव्यरूपों तथा छन्दों में भी। उनकी विशेषता यह है कि वे काव्यरूप की स्थिरता और सार–तत्व की गतिशीलता के द्वन्द्व से कविता में एक ऐसे वेग और शक्ति की सृष्टि करते हैं, जिनकी मिशाल हिन्दी कविता में केवल 'निराला' में सुलभ है। क्लासिकीय अनुशासन और आधुनिक स्वच्छंदता त्रिलोचन की अपनी पहचान है। तुलसीदास ने संस्कृत शब्दों के योग से अवधि भाषा को उन्नत किया था, त्रिलोचन ने अवधि भाषा के योग से खड़ी बोली और रस से भर दिया है। उनकी हीरे की तरह कठोर और दीप्तिपूर्ण काव्य–भाषा अवधि की देशी खांड जैसी मिठास से युक्त है। ताज्जुब की बात यह है कि प्रगतिशील हिन्दी कवियें की नवीनतम पीढ़ी त्रिलोचन जैसे कवियों के दाय को समझने और आत्मसात करने की दिशा में ललक और लगन के साथ बढ़ रही है।[4]

त्रिलोचन भाषिक क्षमता के धनी कवि हैं। इनकी कविताओं में विभिन्न जनपदों के भाषा का मिश्रण है। यह उनके काव्य सौन्दर्य को बढ़ा देता है संप्रेषण की दृष्टि से इनकी भाषा विलक्षण है जो निम्न पंक्तियों में देखा जा सकता है– जनपद का प्रतिनिधि कवि राजकवि नहीं है। वह जनता का कवि है। उसकी कविता अवध की जनवाणी बनी है। वह समाज जीवन से प्रतिकृति है। अरूण कमल स्पष्ट करते हैं कि त्रिलोचन काव्य की वर्णनात्मक प्रकृति थे वजह नहीं है। वर्णन का अवकाश न रहने पर कविता में कथा तत्व का अभाव ही रहता है। वर्णन का अवकाश, कथा तत्व और चरित्र यानि जनजीवन में चित्र साथ–साथ लगे चलते हैं। विचार प्रणाली उनकी व्यवस्थित है, शास्त्र सुचिंतित है, पर संरचना वेहद अनौपचारिक और प्रयोगशील। यह पद्य लिखने की प्रक्रिया में बिल्कुल गद्यात्मक हो लेते हैं और गद्य लिखते हुए कवित्व के शिखर पर पहुँच जा सकते हैं। कोई उनके

संग्रहों के नाम पर ही विचार करे तो धन्य हो जाए उनकी क्षमता की झलक पाकर। अरधान उस कवि की कृति है जो जायसी को जानता है, निराला का आत्मीय है। ताप के ताप हुए दिन कवि के खुद के हो सकते हैं तो उसके जनपद के जातीय जीवन के भी हो सकते हैं।[5]

इनकी भाषा में कहीं–कहीं गद्यात्मक भाषा भी है जिसे हम चंपू काव्य कहते हैं भाषिक दृष्टि से त्रिलोचन कवि सहजता व सजगता के कवि है जो इन पंक्तियों में उपलब्ध है – त्रिलोचन के गद्यकाव्य में छन्दोबद्ध काव्य की शब्दावली और मुहावरे का पूरा असर था। भाषा तो एक ही है, जिसे छन्द में बांधे, चाहे छन्द से घुटने दें, भाषा की लय पकड़ना ही है। लय तो गद्य और पद्य दोनों में हेती है। गद्य की लय थोड़ा अलग जाती है, वह अनियंत्रित होती है और पद्य की लय नियंत्रित होती है। कवि वहाँ पंक्ति के अनुवर्तन में है, उसे हर पंक्ति के पूरा करना ही है चाहे भाव हर पंक्ति के पूरा होने के पहले ही खत्म हो जाए।.... कविता की जाएगी जन भाषा का पूरा विकास हो जाएगा।[6]

त्रिलोचन के गद्य काव्य की भाषा मुहावरेदार होकर और मोहक हो गई। ठीक केदारनाथ अग्रवाल की भाषा भी इनकी भाषा से मिलती–जुलती है–

केदार जनवादी कवि हैं, अतः जनता की भूमिका को जनवाद के आधार पर तय करते हैं। मेहनतकश जनता से कवि केदार प्रतिबद्ध हैं, इससे उनकी कव्य–चेतना भी ढलती हुई दिखाई पड़ती है। पूंजीवादी समाज की राजनीतिक प्रणाली में जनतंत्र पूंजीपतियों के लिए होता है, जनता के लिए नहीं। अतः इस समाज में बदलाव का अर्थ है, सामाजिक, राजनीतिक शक्ति संतुलन का इस तरह बदलना कि वह किसान मजदूरों और अन्य मेहनतकशों के पक्ष में हो जाए। हर युग में इस मानवीय संघर्ष की परम्परा रही है, हर नए युग के कवियों को यह संघर्ष विरासत के रूप में मिला है। यह विरासत देश की, हिन्दी–भाषा की काव्य–परम्परा से मिली है, लेकिन उसे अपने समय के यथार्थ के साथ अपने विशेष प्रकार के सम्बन्ध कहे या अपने समकालीन यथार्थ की विसंगतियों एवं विषमताओं से भीड़न्त करके विकसित एवं समृद्ध किया है।[7]

नागार्जुन और त्रिलोचन ने संस्कृत, पाली, प्राकृत से छन्द भाषा और शब्द शक्ति का ज्ञान अर्जित किया है। त्रिलोचन दूसरी परम्परा में उसे 'सॉनेट का पथ' कहते हैं। वह किराए की चीज है। सॉनेट का ठाठबाट त्रिलोचन का फिर भी अपना है। रामविलास शर्मा ने उसे 'उनकी नाप का कुर्ता' कहा है। उसमें रोला (कविता) छंद की अर्न्तयात्रा अनूठी है। वहां गेयता और एकान्विति को आलोचकों ने देखा है। त्रिलोचन ने रमलीनता से रोमांटिक परम्परा की इस प्रवृति को स्वीकार किया है, 'चीज किराए की है, स्पेंसर, सिडनी, शेक्सपियर, मिल्टन की वाणी / वडर्सवर्थ, कीट्स की अनवरत

प्रिय कल्याणी स्वर–धारा कहा भी है। वह खुद सवाल पूछते हैं : 'उसने नयी चीज क्या दी है।'[8]

काव्य–भाषा की निजता को लेकर त्रिलोचन ने कड़ा संघर्ष किया है। वह उपहास के पात्र भी बने हैं। लेकिन उनकी दिनचर्या का एक नैतिक आधार है तो उसे प्रतिबिंबित करनेवाली काव्य–भाषा भी अपनी रीढ़ पर कायम रही है। उनमें 'धरती का–सा धैर्य' है और 'दृगों में समाहित है व्योम।' तो जाहिर है, उनकी काव्य–भाषा अर्थ के स्तर से गहराई की थाह देती है और व्यापकता उसमें व्योम सदृश है। साधारण कवि अमूमन असाधारण को लपक लेते हैं। वे अपने युग की संरचना से अनुकूलित होकर जल्दी ही चर्चा के केंद्र में आ जाते हैं। असाधारण कवि वे होते हैं, जो किसी स्तर से न केवल कोई समझौता नहीं करते, बल्कि अपने नवोन्मेष के कारण सही समय पर पहचान में नहीं आते। फिर मैं यह भी कहना चाहता हूँ कि त्रिलोचन की बेताबियॉ कुछ खास हैं और, इन बेताबियों को संभवतः उसी भाषा में व्यक्त किया जा सकता था, जिसमें उन्होंने किया है। मतलयज लिखते हैं–

''इस कविता की भाषा के पीछे, जो रक्त बजता है, उसे सुनने के लिए, आपको अपनी धमनी पर कुछ देर तक हाथ रखना होगा। यह भाषा तनाव जर्जर, तनिक से स्पर्श से बिखर पड़नेवाली भाषा नहीं है। यह भाषा ठोस मज्जा और रुधिर से बनी है। यह भाषा अपनी जड़ों से कटी हुई, हवा से रस चूसनेवाली दुस्साहसी भाषा नहीं है। इसके निर्माण में एक पूरी परंपरा, बीज रूप में मौजूद है। यह भाषा तटों के बीच से ही अपना मार्ग खोजती है। इस भाषा में शब्दों में अर्थ सिमटा–कसा केंद्रित–सा रहता है और लक्ष्य पर सीधी चोट करता है। (या फिर लक्ष्य चूक जाने पर ऐसा नहीं कर पाता)। इस भाषा में अर्थ शब्दों के चारों ओर फूट–पसरकर संदिग्ध (संभावनापूर्ण!) व्यंजना का घेरा नहीं बनाता। इस भाषा में अस्पष्ट कुछ नहीं है, सब कुछ क्रिस्टल के समान है। अनेक पहलुओं वाला, पर साफ अर्थ और अर्थ के बीच किसी तीसरे अर्थ का अंतराल इस भाषा के शब्दों में नहीं है। यह कवि की अनुभूतियों की तरह ही एक सरल भाषा है (सपाट नहीं)। दूसरे शब्दों में, यह अपने काव्य–नायक उस औसत भारतीय आदमी के समान ही और उसके मर्म की अभिव्यक्ति के लिए उपयुक्त एक औसत भाषा है।''[9]

काव्य–भाषा कई अर्थों में जनपदीय संवेदना का संस्पर्श करती है। भाषा, बोली, उपभाषा, उपबोली, जनपदीय क्षेत्रों में बदलते रहती है। जिन क्षेत्रों से त्रिलोचन का सरोकार रहा, वह क्षेत्र हिन्दी और भोजपुरी से प्रभावित रहा। काव्य की भाषा की अपनी एक सहजता होती है। काव्य–भाषा न सिर्फ जन–जीवन को बल्कि जनपदीय चेतना को भी उजागर करती है।

सन्दर्भ :

1. आलोचना, त्रैमासिक सहस्राब्दी अंक छब्बीस जुलाई– सितम्बर 2007, सम्पादक नामवर सिंह, पृ. 17.
2. आलोचना, त्रैमासिक सहस्राब्दी अंक छब्बीस जुलाई– सितम्बर 2007, सम्पादक नामवर सिंह, पृ. 13.
3. लोक चेतना वार्ता, त्रिलोचन जन्मशती अंक 8–9, पृ. 178.
4. फ्लैप, ताप के ताए हुए दिन, त्रिलोचन, संभावना प्रकाशन, हापुड़ 1980 ई.
5. भारतीय साहित्य के निर्माता त्रिलोचन, रेवती रमण साहित्य अकादमी, प्रथम संस्करण, 2011, पृ. 26.
6. विष्णुचन्द्र शर्मा, त्रिलोचन का कवि कर्म, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010, प्रथम संस्करण, पृ. 21.
7. आलोचना, सहस्राब्दी अंक–बयालीस, पृ. 14.
8. विष्णुचन्द्र शर्मा, त्रिलोचन का कवि कर्म, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010, प्रथम संस्करण, पृ. 18
9. नया ज्ञानोदय, जनवरी 2018, सम्पादक–लीलाधर मण्डलाई, अंक–179, जनवरी–2018, पृ. 22.

***

मुजफ्फरपुर नगर की चुनौतियाँ एवं समस्याएँ

*सुनील कुमार**

परिचयः– मुजफ्फरपुर उतरी बिहार राज्य के तिरहुत प्रमंडल का मुख्यालय है। इसका क्षेत्रफल 3173 वर्ग किलोमीटर है तथा जनसंख्या घनत्व 1514 प्रति वर्ग किलोमीटर है, साक्षरता दर 84.8 प्रतिशत एवं लिंगानुपात 900 है। मुजफ्फरपुर के उतर में पूर्वी–चम्पारण, सीतामढ़ी, दक्षिण में वैशाली और सारण, पूरब में समस्तीपुर, दरभंगा तथा पिश्चम में गोपालगंज है। अक्षांशीय विस्तार उतर में $25^0 5'$ N से तथा $26^0 23'$ N देशांतरी विस्तार पूरब में $84^0 53'$ N से $85^0 45'$ N तक है। समुद्रतल से ऊँचाई 170 से.मी. तथा वार्षिक औसत वर्षा, 11.87 सेमी है मुजफ्फरपुर का मौसल गर्मीयों में अप्रैल से जून महिनों के बीच अत्यंत गर्म तथा नम रहता है। इसके मुकाबले सर्दिया काफी सुखर एवं शीतल होती हैं। गंडक, बूढ़ी, गंडक, बागमती, तथा लखनदेई प्रमुख नदियाँ हैं।

प्राचीन काल में मुजफ्फरपुर मिथिला (तिरहुत) राज्य का अंग था। बाद में मिथिला में वज्जि गणराज्य की स्थापना हुई। तीसरी सदी में भारत आए चीनी यात्री ह्वेनसांग के यात्रा विवरणों से यह पता चलता है कि यह क्षेत्र काफी समय तक महाराजा हर्षवर्द्धन के शासन में रहा। आठवीं सदी के बाद यहाँ बंगाल के पाल वंश के शासकों का शासन शुरू हुआ जो 1019 तक जारी रहा। तिरहुत पर लगभग 11वीं सदी में चेदि वंश का भी कुछ समय तक शासन रहा। सन् 1211 से 12226 के बीच गैसुधीन एवाज तिरहुत का पहला मुसलमान शासक बनां 1764 में बक्सर की लड़ाई के बाद यह क्षेत्र सीधे तौर पर अंग्रेज के अधीन हो गया। सन् 1875 में प्रशासनिक सुविधा के लिये तिरहुत का गठन कर मुजफ्फरपुर जिला बनाया गया।

मुजफ्फरपुर में दो अनुमंडल पूर्वी अनुमंडल तथा पश्चिमी अनुमंडल तथा प्रखण्ड कीसंख्या 16 औराई, बंदरा, बोचहाँ, गायघाट, कांटी, कटरा, कुढ़नी, मरवन, मीनापुर, मोतीपुर, मुरौल, मुशहरी, साहेबगंज, सकरा पारू, सरैया है। नगर निगम की संख्या एक तथा गनर पंचायत की संख्या तीन हैं।

विकास और नगरीकरण एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। नगरीकरण मानव गतिविधियों को एकीकृत करता है। एकीकृतिकरण से विशेज्ञता आती है इससे उत्पादकता माल की उपलब्धता तथा सेवाओं के वितरण में बढ़ोतरी होती है। इस प्रक्रिया से मजदूर तथा नौकर की अवसरों में इजाफा होता है। अतः शहरीकरण किसी भी अर्थव्यवस्था के लिए वृद्धि के है जन की तरह है।

---

* शोध-छात्र, भूगोल-विभाग, एल.एन.एम.यू., दरभंगा



भूगोलवेत्ता नेल्सन एंडिसन के अनुसार लोगों का ग्रामीण से नगरीय निवास की ओर स्थानांतरण है। यह जीवन पद्धति में नगरीय हो जाता है। अर्थात् लोग कृषि अर्थव्यवस्था से हटकर गैर–कृषि व्यवसाय की ओर जाते है तथा अपने व्यवसाय में औद्योगिक हो जाते हैं। नगरीकरण का संबंध मानव समूह और नगर दोनों से है। इसमें गांव से नगरों की जनसंख्या की गतिशीलत होना और ग्रामीण जीवन का नगरीय जीवन में परिवर्त्तित होने की प्रक्रिया नगरों के विकास एवं प्रसार में शामिल है।

नगरीकरण के ऐसी ऐतिहासिक पहलू की बात करे तो सभ्यतओं के आरंभ में भी इसके उदाहरण मिलते हैं। सिन्धू घाटी सभ्यता नगरीय सभ्यता का बेहतर उदाहरण है।

भारतीय संविधान में नगरीय विकास राज्य का विषय है। राज्यपाल किसी क्षेत्र को जनसंख्या घनत्व और स्थानीय प्रशासन के लिए राजस्व और गैर–कृषि गतिविधियों में नियोजन आदि के आधार पर नगर अधिसूचित करते है, नगर का दर्जा प्राप्त करने के लिए किसी क्षेत्र में यदि स्थानीय सरकार दो न्यूनतम जनसंख्या पचास हजार होना चाहिए तथा गैर–कृषि में कार्य करने वाले पुरूष आबादी का 75 प्रतिशत होना चाहिए। जनसंख्या घनत्व प्रति व्यक्ति 400 होना चाहिए।

नगरीकरण की स्थिति और प्रभावः– अर्थव्यवस्था के उदारीकरण के बाद नगरीकरण में आई तेजी क्योंकि नीजिकरण को बढ़ावा मिला।

नगरीकरण के विभिन्न पहलूः–

- ईफ्रास्ट्रक्चर और कनेक्टिविटी अहम् पहलू है।
- नियोजन चरण से सड़क और हवाई अड्डे तक पहुँच इन्टरनेट कनेक्टिविटी और बुनियादी ढाँचों को प्राथमिकता देना आवश्यक है।
- नगर की गुणवत्ता के लिए अत्याधुनिक बुनियादी ढांचा महत्वपूर्ण है बल्कि उत्पादन औद्योगिक वातावरण के लिए भी आवश्यक है।
- नई व स्थायी प्रौद्योगिकियाँ भी नगरीकरण की अहम विशेषता है।
- जहाँ नगरीकरण सेवाओं के वितरण में सुधार करता है वही भीड़–भाड़ प्रतिबंधित प्रतिशीलता उच्च अपशिष्ट उत्पादन और प्रदूषण जैसी कई चुनौतियाँ पैदा करता है।

शहरी विकास की योजनाएँः–

- प्रधानमंत्री आवास योजना अर्बन, अमृत मिशन, स्मार्ट सिटी जैसी अहम योजनाएँ
- स्मार्ट सिटी के लिए चयनित प्रत्येक शहर को प्रतिवर्ष रू. 100 करोड़ का आवंटन होता है।
- स्वच्छ जल, अपशिष्ट निपटान बिजली, सीवरेज जैसी बुनियादी सुविधाएँ मुहैया कराने पर जो दिया जाय।
- स्वच्छ और टिकाऊ पर्यावरण, स्मार्ट–समाधानों का इस्तेमाल, समावेशी विकास, ई–गवर्नेंस, स्वास्थ्य और शिक्षा सुविधाएँ सुनिश्चित करना प्रमुख उद्येश्य है।

नगरीकरण की चुनौतियाँ व समस्याएँः–

1. नगरों की आवास समस्या

(क) प्रवास (ख) अत्यधिक जनसंख्या घनत्व (ग) मलिन बस्तियाँ

2. यातायात की समस्या

(क) सार्वजनिक साधनों की कमी जैसे रेल, मेट्रो, बस आदि।

3. अनियोजित भूमि उपयोगः–
   (क) नगर सीमा में खतरनाक उद्योगों की स्थापना
   (ख) अवैध निर्माण
   (ग) कूड़ा निष्पादन की समस्या
4. जल आपूर्त्ति की समस्या
5. जल निकासी की समस्या
   (क) जल–जमाव (ख) सीवर का अभाव
6. पर्यावरणीय अभाव
   (क) हरित पेटी की आवश्यकता तथा बागवानी की कमी।
7. रोजगार की समस्या

(क) असंगठित क्षेत्र में निश्चित रोजगार निश्चित नहीं होना न ही रोजगार भत्ता की व्यवस्था

8. शिक्षा व स्वास्थ्य की समस्या आदि।

शहरी बुनियादी ढांचे के निवेश और समता निर्माण के निम्न स्तर होना। शहरों में बढ़ती आबादी को आधारभूत सुविधाएँ स्वच्छ जल, सार्वजनिक यातायात, सीवेज ट्रीटमेंट और आवास आदि मुहैया कराना महत्वपूर्ण चुनौतियाँ है। नगरी प्रवसन के कारण नगरीकरण का दर ज्यादा है। इसे सकारात्मक रूप में नहीं देखा जाता है। नीतियों के साथ अक्सर ग्रामीण पलायन के कम करने की मांग की जाती है। बात यदि नगरीकरण की समस्याएँ की करे तो पर्यावरणीय समस्याएँ बेहद अहम हो जाती है। नगरीकरण की सबसे बड़ी समस्याएँ प्रदूषण है। प्रदूषण से लोगों को गंभीर बीमारी हो रही है, असमय लाखों लोगों की मृत्यु हो रही है। कंक्रीट के सड़कों तथा इमारतों के कारण शहर हीट आइलैंड में परिवर्तित हो रहे हैं। शहरों के विकास के लिए हरि क्षेत्रों की बलि चढ़ाया जाना ग्लोबल वार्मिंग को बढ़ावा दे रहा है। जो भविष्य में आने वाले बेहद गंभीर समस्याओं की चेतावनी दे रहा है। इसके अतिरिक्त शहरों पर बिछी सड़क रूपी कंक्रीट चातरों से जहाँ एक तरफ भूजल पुनर्चक्रण प्रभावित आदि हो रहा है। वहाँ दूसरी ओर अनियोजित नगरीकरण व जल निकासी–प्रणाली से शहर बाढ़ग्रस्त हो रहे हैं। जिससे पेयजल की समस्याएँ भी बढ़ती जा रही है शहरों में बढ़ता अपराध लोगों के बीच असुरक्षा का भाव पैदा करता है। इसके अलावा शहरों में बढ़ती स्लम बस्तियाँ और अवैध आवासन आदि की अहम समस्या है।

नगरीकरण के विरोधाभास में उपजी गरीबी भी बेहत गंभीर समस्या है शहरों में तनाव भी तुलनात्मक रूप से अधिक है, क्योंकि जहाँ सम्पत्ति संबंधी आर्थिक असमानता अधिक है तथा एकाकीपन और एकल परिवार के कारण उपजी भाव शून्यता, संवादहीनता और व्यक्तिवादिता जैसी समस्या अहम हैं। इसके अलावा बेतरतीब यातायात और सड़क दुर्घनाओं में इजाफा हो रहा है।

निष्कर्षः– नगरीकरण के नकारात्मक प्रभाव को कम करते हुए देश के सतत् और समावेशी विकास को सुनिश्चित किया जा सके। समावेशी नगरीकरण के लिए जरूरी है। उर्जा के नवीकरण संसाधनों जैसे पवन चक्कियों सौर पैनलों, जैव अपशिष्टों आदि के इस्तेमाल को बढ़ावा दिया जाय।

बनीकरण व वृक्षों का आवरण तथा कचरा व अपशिष्ट प्रबंधन पर ध्यान देन की जरूरत है। इसके अलावे स्वच्छ पेयजल की आपूर्ति सुनिश्चित करने सैनिटेशन व्यवस्था को दुरूस्त करने और यातायात सुविधा को उन्नत करने की आवश्यकता है निश्चित तौर पर केन्द्र सरकार व राज्य सरकारों के स्तर पर इन मामलों पर कार्यवाही हो रही है। लेकिन इस लिहाज से और ध्यान देने की जरूरत है।

सन्दर्भ :

1. डॉ. सुरेश चन्द्र बंसल, भारत का वृहत् भूगोल, मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ, पृ. 569
2. प्रो. (डॉ.) विमल किशोर मिश्र, बिहार : एक सामान्य परिचय बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना, पृ. 346
3. बिहार समग्र, KBC, Nano Publication Pvt. Ltd. p. 174
4. लुसेंट बिहार सामान्य ज्ञान, लूसेंट, पब्लिकेशन, पृ. 219
5. बिहार : एक परिचय, इमत्याज अहमद, नेशनल पब्लिकेशन, पृ. 269

***

हिन्दी आलोचना का क्रमिक उद्‌विकास

सुरजीत बिहारी *

साहित्य–क्षेत्र में, ग्रंथ को पढ़कर उसके गुणों और दोषों का विवेचन करना और उसके संबंध में अपना मत प्रकट करना आलोचना कहलाता है। यह आलोचना काव्य, उपन्यास, नाटक, निबंध आदि सभी की हो सकती है, यहाँ तक कि स्वयं आलोचनात्मक ग्रंथों की भी आलोचना हो सकती है। यदि हम साहित्य को जीवन की व्याख्या मानें, तो आलोचना को उस व्याख्या की व्याख्या मानना पड़ेगा।"भारतेन्दु–युग में आलोचना का आरम्भ पुस्तक–समीक्षा के रूप में हुआ। इससे किस नयी आवश्यकता की पूर्ति होती थी, इसका संकेत 'प्रेमघन' ने अपने निबन्ध 'नागरी के समाचार पत्र और उनकी आलोचना' में किया है। वे लिखते हैं : "यद्यपि सभी विषयों की समालोचना करनी समाचार पत्रों का एक मुख्य धर्म्म व अंग है, परन्तु साहित्य संबन्धी समालोचना उसमें भी एक विशेष आवश्यक वस्तु है। क्योंकि प्रथम तो इससे कि सामयिक पत्रों के द्वारा समान्यतः सभी पत्र पाठकों को किसी नवीन पुस्तक व पत्र के प्रकाशित होने की विज्ञप्ति हो जाती और बिना कौड़ी व्यय के पुस्तक–प्रणेता को एक बार विज्ञापन देने का लाभ हो जाता है।"[1]

भारतेन्दु–युग की आलोचना पुस्तक–समीक्षा के रूप में ही सामने आती है, लेकिन यह पुस्तक–समीक्षा आलोचनात्मक सम्भावनाओं से भरी हुई है। इसमें गुण दोष विवेचन प्रधान है, पर साथ ही इसका भी संकेत है कि कृति सम्पूर्ण रूप में कैसी है। इसी तरह इसमें कृति को सामाजिक और राष्ट्रीय सन्दर्भ से जोड़कर देखने की प्रवृत्ति है तो साहित्यिक कसौटी पर उसकी परीक्षा का भी प्रयत्न है। "समीक्षक यदि कृति के सम्बन्ध में कोई निर्णय देता है तो वह भरसक उसका कारण भी बतलाता है। इस प्रकार इस आलोचना में व्याख्या के तत्त्व भी हैं। यह आलोचना लेखकों के लिए भी लिखी गयी है और पाठकों के लिए भी। इसकी शैली गम्भीर भी है और व्यंग–विनोद से युक्त भी। इस युग में साहित्य के कई रूप अंग्रेजी साहित्य के प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष प्रभाव से विकसित हुए। जहाँ तक आलोचना का प्रश्न है, वह न देशी प्रभाव का निषेध करती है, न विदेशी प्रभाव का, बल्कि इन दोनों के मेल से वह नये साहित्य की आवश्यकता की पूर्ति का प्रयत्न करती है। यह बात हम आलोचना की पद्धति और भाषा दोनों में देखते हैं।"[2]

डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी आलोचना की विकास प्रक्रिया पर लिखते हैं कि "आलोचना की एक प्राचीन और बड़ी पुष्ट परंपरा काव्य शास्त्र के रूप में पहले से आती दिखती है, पर रचना को शास्त्र से सीधे–जोड़ने वाली प्रक्रिया के रूप में आलोचना का विकास आधुनिक काल में ही होता है। कहा जा सकता है कि काव्यशास्त्र अपनी प्रकृति में विचार–गद्य के अधिक

---

* एम. ए. (हिन्दी), शोध छात्र, यू.जी.सी., नेट, बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

निकट था, फिर हिन्दी की आरंभिक आलोचना सारणियों में–जहाँ माहवीर प्रसाद द्विवेदी, मिश्र बंधु और पद्म सिंह शर्मा का स्मरण किया जा सकता है–निबंध शैली की आलोचना मिलती है। व्यंजना के गद्य स्तर पर मूल रचना के अर्थ–विस्तार की संभावना पहली बार आचार्य रामचंद्र शुक्ल के यहाँ दिखाई देती है।"[3]

आलोचना संबंधी गतिविधि क्रमशः पत्र–पत्रिकाओं में तेज होती है। 1900 के आसपास 'सरस्वती' (इलाहाबाद), 'सुदर्शन' (बनारस) और 'समालोचक' (जयपुर) का प्रकाशन आरंभ होता है, जहाँ नये ग्रंथों की समीक्षा और आलोचनात्मक विषयों की विवेचना नियमित रूप से चलती है। नाटक के बाद ध्यान अब केन्द्रित होता है नये विकसित माध्यम उपन्यास पर। "इस संबंध में जो प्रश्न उठाए गए उन पर विविध पत्र–पत्रिकाओं के बीच व्यापक बहस गति पकड़ती है, मुख्य विषय है उपन्यास में वर्णित यथार्थवाद के स्वरूप को लेकर। नया माध्यम, और वह भी पश्चिम से आया हुआ होने के कारण तत्कालीन आलोचना ठीक ही अपना ध्यान उपन्यास पर केन्द्रित करती है समाज में उसके प्रभाव के व्यापक प्रश्न को सामने रखकर। पहले नाटक और फिर उपन्यास के उदय का विवेचन करते समय आलोचना के दायित्व–निर्वाह का औचित्यबोध यों आप से आप प्रकट हो जाता हैं। यहाँ लक्षित करने की बात यह भी है कि आधुनिक काल के आरंभ में इन गद्य–रूपों को लेकर साहित्यिक परिदृश्य पर गहमागहमी अधिक है।"[4]

रामस्वरूप चतुर्वेदी ने हिन्दी गद्य विन्यास एवं विकास में इस संदर्भ में लिखा है कि "रामचंद्र शुक्ल ने जब संपूर्ण प्रभुत्व संपन्न स्वायत्त गद्य विकसित किया तो उसकी कुछ स्वाभाविक परिणति यह भी थी कि उन्होंने अपने आलोचनात्मक लेखन या कि इतिहास में कहीं साहित्येतर मानदंड स्वीकार नहीं किए। स्वायत्त गद्य स्वायत्त रचना और वैसी ही विचारधारा को संभव करता है। यह सर्वविदित है कि आचार्य शुक्ल की प्रिय तथा मानक रचना तुलसी का रामचरितमानस रही और अधिकतर उसी में से उन्होंने अपने काव्य–मूल्य विकसित किए, जिस रचना के बारे में स्वयं कवि ने कहा, 'एहि महँ रघुपति नाम उदारा'। विलक्षण बात यह है कि इसके बावजूद उन्होंने अध्यात्म को काव्य और कला के विवेचन में कहीं प्रासंगिक नहीं माना।"[5]

आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अवदान को रेखांकित करते हुए डॉ० नागेन्द्र ने लिखा है कि "छायावादयुगीन हिन्दी समीक्षकों में आचार्य रामचंद्र शुक्ल का अवदान संपूर्ण भारतीय काव्यशास्त्र में अप्रतिम स्थान का अधिकारी है। इतने प्रौढ़ व सर्वांगीण आलोचक की विचाार–सरणि से परवर्ती हिन्दी–आलोचना का प्रभावित न होना आश्चर्यजनक होता। किंतु उनके प्रभाव को ग्रहण करते हुए आलोचकों ने अपनी मौलिकता और स्वतंत्र दृष्टि का परिचय दिया है। उदाहरणार्थ, नंददुलारे वातपेयी ने शुक्ल जी की त्रुटियों का उल्लेख करते हुए नवीन पद्धति के निर्माण की चेष्टा की, तो हजारीप्रसाद द्विवेदी और नागेन्द्र ने भी शुक्ल जी से टकरा कर एक ओर उनकी श्रेष्ठता को स्वीकार किया और दूसरी ओर अपने लिए नया मार्ग ढूंढ़ कर हिन्दी–

आलोचना को आगे बढ़ाया। नवीन पद्धति का निर्माण करने पर भी इन्हें सामान्यतः शुक्ल–संस्थान के आलोचकों के रूप में हीस्वीकार करना चाहिए।"[6]

हिन्दी साहित्य का इतिहास, पुस्तक में डॉ. हरदयाल ने इसे स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है, जो इस प्रकार है "नयी आलोचना किसी पूर्व निश्चित आलोचनात्मक मान को आलोच्य पर चस्पा नहीं करती, क्योंकि आलोच्य अपना मान स्वयं है। आलोच्य की निजी प्रतिमानता की ओर छायावाद–काल में भी ध्यान गया था, पर उस समय आलोचना के किसी वैज्ञानिक आधार की खोज नहीं की जा सकी थी। अमेरिका की नयी आलोचना (न्यू क्रिटिसिज्म) ने समीक्षा को वैज्ञानिक आधार दिया। फलस्वरूप प्रचलित प्रतिमान–रसवादी, मार्क्सवादी, ऐतिहासिक, मनोविश्लेषणात्मक आदि मान्य नहीं रहे, क्योंकि वे साहित्य का अनुषंगिक अध्ययन प्रस्तुत करते हैं। रैनसम, रॉबर्ट पेन वारेन, क्लीन्थ ब्रुक्स, ब्लैकमर, टेट आदि नये आलोचना–संस्थान के लेखक हैं, जिनसे इधर की हिन्दी–समीक्षा प्रभावित हुई है।"[7]

आलोचना के विकास को लेकर डॉ. नन्ददुलारे वाजपेयी के अवदान को रंखांकित करते हुए डॉ. नगेन्द्र, हिन्दी साहित्य के इतिहास में लिखते हैं कि "नंददुलारे वाजपेयी ने न केवल शुक्ल जी की सीमाओं को उद्‌घाटित किया, अपितु छायावादी काव्य के संदर्भ में उनके दृष्टिकोण को भी नवीन साहित्यिक संवेदना के उपयुक्त नहीं माना। वाजपेयी जी की समीक्षादृष्टि के निर्माण में छायावादी काव्य का प्रमुख योग रहा है। उसकी नूतन कल्पना–छवियों, भावों और भाषा–रूपों की ओर वे विशेष आकृष्ट हुए। मध्यकालीन संस्कारों से प्रेरित रत्नाकर का काव्य तथा 'साकेत' की रुआंसी अभिव्यक्तियां उन्हें अनाकर्षक लगीं।"[8]

आलोचना को नया आयाम प्रदान करने वाले हजारी प्रसाद द्विवेदी के संदर्भ में डॉ. नगेन्द्र लिखते हैं कि "हजारी प्रसाद द्विवेदी दूसरे ऐसे आलोचक हैं, जिनकी आलोचनात्मक उपलब्धियां महत्त्वपूर्ण और संग्रहणीय हैं। 'हिन्दी–साहित्य की भूमिका' (1940) में उन्होंने आलोचना की ऐतिहासिक पद्धति की प्रतिष्ठा करते हुए यह प्रतिपादित किया है कि किसी ग्रंथकार का स्थान निर्धारित करने के लिए क्रमागत सामाजिक, सांस्कृतिक एवं जातीय सातत्य को देखना आवश्यक है, जिसके लिए आलोचक को अपनी जातीय परंपरा या सांस्कृतिक विरासत का पर्याप्त बोध होना चाहिए। द्विवेदी जी में बोध और पांडित्य का अद्‌भुत मिश्रण है। नवीन मानवतावाद और समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण के कारण उनका पांडित्रू लचीला और बोध आधुनिक हो गया है। वे मुख्यतः शुक्ल–संस्थन के आलोचक हैं, पर अपने मानवतावादी दृष्टिकोण तथा ऐतिहासिक पद्धति के कारण शुक्ल जी से अलग हैं।"[9]

डॉ. नगेंद्र ने हिन्दी–आलोचना को व्यावहारिक एवं सैद्धांतिक दोनों दृष्टियों से संवर्द्धित किया है। वे रसवादी आलोचक हैं। 'रस–सिद्धांत' में रस की सांगोपांग विवेचना करते हुए उन्होंने इसे पुनः प्रतिष्ठित करने का पांडित्यपूर्ण प्रयास किया है। रसवाद पर जितना एकांतिक आग्रह नगेंद्र जी

का दिखायी पड़ता है, उतना अन्य किसी आलोचक का नहीं। "यदि वाजपेयी जी, द्विवेदी जी और डॉ० नगेंद्र की आलोचनाओं के वृत्त बनाये जायें तो वाजपेयी जी की स्थिति मध्यवर्ती ठहरती है। उनकी वृत्तपरिधि एक ओर द्विवेदी जी की वृत्तपरिधि का स्पर्श करती है, तो दूसरी ओर नगेंद्र की । द्विवेदी जी और नगेंद्र की परिधियां एक दूसरे से अछूती रह जाती हैं। द्विवेदी जी की मानवतावादी समीक्षा में साहित्येतर तत्त्वों की बहुलता है, वाजपेयी जी साहित्यिक मूल्यों पर बल देते हुए भी यथास्थान साहित्येतर मूल्यों का प्रयोग भी करते हैं, किंतु नगेंद्र जी एकांततः साहित्यिक समीक्षा–सिद्धांतों के पक्षपाती हैं, साहित्येतर मूल्यों से उनका संबंध प्रायः नहीं है।"[10]

डॉ. रामविलास शर्मा के योगदान को डॉ. हरदयाल इस प्रकार अभिव्यक्त करते हैं "मार्क्सवादी आलोचकों में डॉ. रामविलास शर्मा की दृष्टि सबसे अधिक पैनी, स्वच्छ और तलस्पर्शी है। 'प्रगति और परंपरा' (1948), 'प्रगतिशील साहित्य की समस्याएं' (1954), 'आस्था और सौंदर्य' (1956) आदि उनके उल्लेखनीय निबंध–संग्रह हैं। विचारों के स्तर पर वे कहीं भी समझौतावादी नहीं बनते, अपितु अपनी बात को बहुत ही निर्भीक ढंग से कहते हैं। वर्ग–भेद पर आधारित समाज की पहचान को उन्होंने साहित्यकार के लिए आवश्यक माना है।"[11]

नामवर सिंह हिन्दी आलोचना के स्तंभ हैं। उन्होंने हिन्दी आलोचना को एक नई दिशा दी है। गति और लय प्रदान की है। अपने समय के ज्वलंत मुद्दों से बहस की है। वे सदा आगे की सोचते रहे हैं। पीछे मूड़कर बहुत कम देखा है। उनके प्रारंभिक साहित्यिक जीवन में बहुत कुछ है जो अब तक लुप्त है। प्रस्तुत लेख में उनके प्रारंभिक लेखन की कुछ बानगी भर है।

"नामवर सिंह ने अपने साहित्यिक जीवन की शुरूआत काव्य–लेखन से की थी। चौदह वर्ष की उम्र, यानी 1938 से उनका काव्यारंभ प्रारंभ हुआ। सबसे पहले वे ब्रजभाषा में कवित्त और सवैया लिखते थे। यहीं से उन्होंने मध्यकालीन काव्य को भी गहराई से अवगाहन करना प्रारंभ किया। 1941 में वे बनारस अध्ययन करने आए और उनका संपर्क त्रिलोचन से हुआ। त्रिलोचन ने उन्हें खड़ी बोली में लिखने को उत्प्रेरित किया। उन्होंने 1941 से अबाध गति से कविता लिखना शुरू किया। छंदों पर निरंतर अभ्यास करते गए और कविता–लेखन का जो सिलसिला प्रारंभ हुआ। वह अविराम गति से 1957 तक चला। फिर वह सदा के लिए बंद हो गया। इस बीच, 1951 में उन्होंने अपना पहला कविता–संग्रह 'नीम के पत्ते' छपने के लिए एक प्रकाशक के दिया, जो छप न पाया। 1953 में पुनः उन्होंने एक कविता–संग्रह तैयार कर छपवाने की कोशिश की, पर असफल रहे। दूसरी ओर उनके आलोचनात्मक निबंध पत्र–पत्रिकाओं में छपते रहे और उनसे उनको यश मिलना भी शुरू हुआ। 1957 के बाद वे पूरी तरह आलोचना में ही रम गए।"[12]

निष्कर्ष :– हिन्दी में आलोचना को व्यवस्थित विधा का रूप और आकार देने का कार्य आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने किया। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी,

रामविलास शर्मा, विजयदेव नारायण साही, नामवर सिंह सरीखे लोगों ने इसे विस्तार दिया है। हिन्दी आलोचना की व्याप्ति और स्वीकृति की जमीन तैयार करनेवाले विद्वानों की फेहरिस्त काफी बड़ी है। इसमें नामवर सिंह अनन्य हैं। वजह साफ है। इन्होंने आलोचना विधा को केंद्रिय स्थान दिलाने में बड़ी भूमिका निभाई है। अपने दौर में नामवर सिंह का साहित्य की केंद्रिय शख्सियत बनकर उभरना और बरकरार रहना इसका परिणाम है और प्रमाण भी। समीक्षा के अलावा नामवर सिंह ने जो भी रचा है, उसका महत्व गौण है। पिछले चार–पांच दशक में नामवर सिंह ने समीक्षा–कर्म के जरिए अपने दौर के रचनाकारों को परिधि पर धकेल कर खुद को केंद्र में किया है। इतिहास में ऐसा अपवाद स्वरूप ही होता है। इन्होंने न सिर्फ हिन्दी अपितु अपने देश–काल के भारतीय साहित्य के केंद्र में जगह निश्चित किया है। नामवर सिंह अपने आप में व्यक्ति से बढ़कर एक पक्ष के तौर पर शुमार किए जाते हैं, जिससे गोया सहमत हुआ जा सकता है या असहमत, पर नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है। यह एक हुनर है और यही हुनर उन्हें नामवर बनाता है। एक ऐसे दौर में जब साहित्य को अपने दौर के ज्ञानात्मक अनुशासनों में कोई बड़ी हैसियत के तौर पर न आंका जा रहा हो। खेल, राजनीति जैसी विधाओं ने कला विधा पर तवज्जो हासिल की है। ऐसे में, हिन्दी में साहित्य समीक्षा के द्वारा अपने देश–काल में स्वीकृति प्राप्त करना गौरतलब है।

सन्दर्भ :

1. नंदकिशोर नवल : हिन्दी आलोचना का विकास, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2017, पृ. 26.
2. वही, पृ. 37, 38.
3. रामस्वरूप चतुर्वेदी : हिन्दी गद्य विन्यास और विकास, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद,1996, पृ. 182.
4. वही, पृ. 183.
5. वही, पृ. 191.
6. डॉ. नागेन्द्र एवं डॉ. हरदयाल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, संपादक मयूर पेपरबैक्स, नोएडा, 2014, पृ. 778
7. वही, पृ. 785
8. वही, पृ. 778
9. वही, पृ. 779
10. वही, पृ. 780
11. वही, पृ. 782
12. आजकल, प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली, अक्तूबर 2016, पृ. 18

***

प्रेमचंद की दृष्टि में दलित स्त्री

वेद प्रकाश ओझा *

भारतीय समाज में औरत और उसमें भी दलित औरत की स्थिति काफी दयनीय है, प्रेमचन्द के समय यह समस्या अपने विकराल रूप में थी। जातिगत वर्चस्व बनाएँ रखने के लिए दलित महिलाएँ ही सामुदायिक बलात्कार का शिकार होती थी, जन्म के बाद लड़कियों को मार देने की कुप्रथा भी इसी समाज में अधिक थी, अंधविश्वासों की बलि–वेदी पर भी प्रायः दलित महिलाएँ ही चढ़ा दी जाती थीं। प्रेमचन्द ने इन सारी समस्याओं को अपने कथा साहित्य में चित्रित किया है, जो 'दलित स्त्री पात्रों के चित्रण में प्रेमचंद के दृष्टिकोण' की व्यापकता को प्रदर्शित करता है। प्रेमचंद के संबंध में भीष्म साहनी का प्रस्तुत कथन द्रष्टव्य है–

''प्रेमचन्द का लेखन हार्दिक है। मानवता के प्रति उनके गहरे प्यार और जीवन के प्रति विश्वास ने उनके लेखन में ऐसी क्रान्ति भर दी है, जो बेहद सन्तोषप्रद है। उन्होंने सदैव अनुभूति की तीव्रता के साथ लेखन किया और इसने चाहे अपने क्रुद्ध विरोध, व्यंग्य या विडम्बना के जरिए अभिव्यक्त किया हो, जैसा कि आरम्भिक कहानियों में मिलता है या फिर गहरी व्यथा या उदासी के जरिए जैसा कि बाद की कहानियों में मिलता है, उनका स्रोत हमेशा समान था– पीड़ित मानवता के लिए गहरी करूणा और प्यार तथा उसके साथ पूर्ण तादात्म्य का भाव। इसने भी उन्हें दृष्टि की वह व्यापकता और परास दी जो अन्यत्र दुर्लभ है। उनकी कहानियाँ जीवन के हर क्षेत्र से आए चरित्रों से, शब्दशः भरी–पूरी हैं। वे समृद्ध, बहुरंगी और वैविध्यपूर्ण तथा एक ही समय में प्रामाणिक और जीवन के प्रति सच्ची हैं। अपनी आँखों में सतत् हास्य और करूणा की झलक लिए प्रेमचन्द ने जीवन–नाट्य का पर्यवेक्षण किया और जो कुछ देखा, उसे चित्रित किया, कभी अपनी टिप्पणी से उसे रेखांकित करते हुए और कभी उसे खुद ही बोलने का मौका देते हुए। उनके पूरे लेखन में सच्चाई और सरलता की खनक है, जो अपनी जनता की जिन्दगी और नियति के साथ एक रचनाकार के गहरे जुड़ाव से आती है। बाहरी हुकूमत के खिलाफ चल रहे संघर्ष की रोज–रोज की गतिविधियों में उनकी दिलचस्पी ने उनके लेखन को वह समकालीनता और प्रासंगिकता दी, जिसके चलते उनके लेखन से उनके समय की एक जीवन्त, सुस्पष्ट और व्यापक तस्वीर उभरती है। और उन्होंने जो कुछ लिखा, उससे निकलनेवाली सर्वव्यापक उष्मा के चलते हम उन्हें आज भी प्यार करते हैं।''[1]

दलित स्त्री पात्रों के चित्रण में प्रेमचंद के दृष्टिकोण की मीमांसा से दो बातें उभरकर सामने आती हैं– पहला यह कि प्रेमचंद द्वारा चित्रित

---

* शोध-छात्र, हिन्दी, बी.आर.ए.बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

दलित स्त्री–पात्र भेदमूलक सामाजिक व्यवस्था का विरोध करती हैं और दूसरा परिवर्तन की दिशा में असफल ही सही किन्तु एक कदम आगे अवश्य बढ़ती हैं। गंगी का ठाकुर के कुँए पर पानी लेने के लिए चढ़ता एक तरफ भेदमूलक सामाजिक व्यवस्था का विरोध है, तो दूसरी ओर परिवर्तन की दिशा में बढ़ाया गया एक असफल कदम है। यहाँ 'ठाकुर का कुँआ' का यह अंश द्रष्टव्य है–

''दोनों पानी भरकर चली गयीं, तो गंगी वृक्ष की छाया से निकली और कुएँ के जगत के पास आयी। बेफिक्रे चले गये थे। ठाकुर भी दरवाजा बन्द कर अन्दर आँगन में सोने जा रहे थे। गंगी ने क्षणिक सुख की साँस ली। किसी तरह मैदान तो साफ हुआ। अमृत चुरा लाने के लिए जो राजकुमार किसी जमाने में गया था, वह भी शायद इतनी सावधानी के साथ और समझ–बूझकर न गया होगा। गंगी दबे पांव कुएं के जगत पर चढ़ी। विजय का उसे ऐसा अनुभव उसे पहले कभी न हुआ था।

उसने रस्सी का फंदा घड़े में डाला। दायें–बायें चौकन्नी दृष्टि से देखा, जैसे कोई सिपाही रात को शत्रु के किले में सूराख कर रहा हो। अगर इस समय वह पकड़ ली गयी, तो फिर उसके लिए माफी या रियायत की रत्ती भर उम्मीद नहीं। अन्त में देवताओं को याद करके उसने कलेजा मजबूत किया और घड़ा कुएँ में डाल दिया।''[2]

पानी और अस्पृश्यता की समस्या को लेकर प्रेमचंद ने 'ठाकुर का कुँआ' कहानी लिखा था, जिसके लगभग डेढ़ सौ साल बाद सुशीला टाकभौरे ने 'सिलिया' कहानी भी इसी समस्या को लेकर लिखा, लेकिन आज से डेढ़ सौ साल पहले प्रेमचंद जो साहस गंगी से करवा देते हैं, जो प्रश्न गंगी के माध्यम से पूरे समाज से पूछते है, उस साहस के विपरीत 'सिलिया' कहानी की सिलिया पानी भरने के संबंध में अपने बहन की ही गलती मानती है। इसे हम कहानी के इस अंश में देख सकते हैं–

''मालती को रोता हुआ देख उसे खराब जरुर लगा, मगर वह इस बात को समझ रही थी कि इसमें मालती की ही गलती है, ''जब हमें पता है कि हम अछूत दूसरों के कुएँ से पानी नहीं ले सकते तो फिर वहाँ जाना ही क्यों? वो बकरीवाली कैसे चिल्ला रही थी, ''ओरी बाई, दौड़ो री, जा मोड़ी को समझाओं .... देखो तो मना करने के बाद भी कुएँ से पानी भर रही है। हमारी रस्सी बाल्टी खराब कर दई जाने.....।'' ..... ''बेचारी मालती!'' सिलिया सोच रही थी कि भगवान उसे जल्दी ही अक्ल दे देंगे, तब वह ऐसे काम नहीं किया करेगी।''[3]

दलित स्त्री पात्रों के चित्रण में प्रेमचंद का दृष्टिकोण नये विचारों को स्थापित करता है। उनकी 'घासवाली' कहानी में कहानी की दलित स्त्री पात्र 'मुलिया' का चित्रण रंग, रूप तथा स्वभाव से उसके अपने समाज की स्त्रियों से भिन्न रूप में हुआ है। यहाँ प्रेमचंद का दृष्टिकोण है कि गुणों से सम्पन्न स्त्रियाँ केवल सवर्णों में ही नहीं बल्कि दलित वर्ग में भी होती हैं।

'घासवाली' कहानी में प्रेमचन्द एक ओर तो मुलिया के रूप–सौन्दर्य का वर्णन करते हैं तो दूसरी ओर यह भी दिखाते हैं कि दलित स्त्रियों में रूप के कारण जो बुराई आ जाती है वह उनकी स्वेच्छा नहीं मजबूरी होती है। मुलिया के व्यक्तित्व में दोनों रूपों का वर्णन कर दलित स्त्रियों को महानता प्रदान करने की ही दृष्टि लेखक की है, इसे निम्न उद्धरणों में देखा जा सकता है–

''मुलिया इस ऊसर में गुलाब का फूल थी। गेहुआ रंग था, हिरन की सी आँखें, नीचे खिंचा हुआ चिबुक, कपोलो पर हल्की लालिमा; बड़ी–बड़ी नुकीली पलके, आँखों में एक विचित्र आद्रता, जिसमें एक स्पष्ट वेदना, एक मूक व्यथा झलकती रहती थी। मालूम नहीं चमारों के उस घर में वह अप्सरा कहां से आ गयी थी। क्या उसका कोमल फूल सा गांत इस योग्य था कि सर पर घास का टोकरी रख कर बेचने जाती? उस गांव में भी ऐसे लोग मौजूद थे, जो उसके तलबों के नीचे आँखें बिछाते थे, उसकी एक चितवन के लिए तरसते थे, जिनसे अगर वह एक शब्द भी बोलती, तो निहाल हो जाते, लेकिन उसे आये साल–भर से अधिक हो गया, किसी ने उसे युवकों की तरफ ताकते या बाते करते नहीं देखा। वह घास लिये निकलती तो ऐसा मालूम होता, मानों उषा का प्रकाश, सुनहरे आवरण में रंजित, अपनी छटा बिखेरता जाता हो। कोई गजले गाता, कोई छाती पर हाथ रखता, पर मुलिया नीची आँख किये अपनी राह चली जाती। लोग हैरान होकर कहते–इतना अभिमान! महावीर में ऐसे क्या सुरखाब के पर लगे हैं, ऐसा अच्छा जवान भी तो नहीं, न जाने यह कैसे उसके साथ रहती है।''[4]

प्रायः दलित स्त्रियों के बारे में यह समझा जाता है कि वे भय या पैसों के लालच में आकर अमीर आदमियों के हाथों का खिलौना बन जाती हैं या उनमें उच्च चरित्र का अभाव होता है। किन्तु दलित स्त्री पात्रों के चित्रण में प्रेमचन्द का दृष्टिकोण सर्वथा भिन्न है। मुलिया उनके कहानी की सभी गुणों से युक्त दलित स्त्री पात्र है, मुलिया के द्वारा प्रेमचंद दलित स्त्रियों को महिमामंडित करने का प्रयास करते हैं। मुलिया के उच्च चरित्र एवं वाक्पटुता के सन्दर्भ में यह उद्धरण द्रष्टव्य है–

''मुलिया फिर बोली– मैं भी रोज बाजार जाती हूँ। बड़े–बड़े घरों का हाल जानती हूँ। मुझे किसी बड़े घर का नाम बता दो, जिनमें कोई साईस, कोई कोचवान और कोई कहार, कोई पण्डा, कोई महाराज न घुसा बैठा हो? यह सब बड़े घरों की लीला है। और वे औरतें जो कुछ करती हैं, ठीक करती हैं। उनके घरवाले भी तो चमारिनों और कहारिनों पर जान देते फिरते हैं। लेना–देना बराबर हो जाता है। बेचारे गरीब आदमियों के लिए यह बातें कहाँ? मेरे आदमी के लिए संसार में जो कुछ हूँ, मैं हूँ। वह किसी दूसरी मिहरिया की ओर आँख उठाकर भी नहीं देखता। संयोग की बात है कि मैं तनिक सुन्दर हूँ, लेकिन मैं काली–कलूटी भी होती, तब भी वह मुझे इसी तरह रखता। इसका मुझे विश्वास है। मैं चमारिन होकर भी इतनी नीच

नहीं हूँ कि विश्वास का बदला खोट से दूँ। हाँ, वह अपनी मन की करने लगे, मेरी छाती पर मूँग दलने लगे, तो मैं भी उसकी छाती पर मूँग दलूँगी। तुम मेरे रूप ही के दीवाने हो न। आज मुझे माता निकल आये, कानी हो जाऊँ, तो मेरी ओर ताकोगे भी नहीं। बोलो झूठ कहती हूँ।''[5]

प्रेमचंद दलित स्त्री पात्रों के चित्रण में उनके बेबसी के दर्द को बखूबी उभारते हैं, साथ ही अपने पति की सहचरी के रूप में भी दिखते हैं। जहाँ उनके परिवार तथा पति को किसी कष्ट की संभावना होती है, वहाँ विरोध भी दर्ज करती हैं किन्तु परिस्थिति उस विरोध को आगे नहीं बढ़ने देती। 'पूस की रात' कहानी में जोखू कम्बल के पैसे लगान के रूप में देना चाहता है जिसका विरोध उसकी पत्नि मुन्नी करती है किन्तु परिस्थिति को समझ कर कम्बल के लिए रखे पैसे पति को दे देती है। दलित स्त्री पात्रों के चित्रण में प्रेमचंद का दृष्टिकोण उनके पतिपरायणता को भी दिखाना है, जो कहानी के इस अंश में द्रष्टव्य है–

''हल्कू उदास होकर बोला– तो क्या गाली खाऊँ।
मुन्नी ने तड़पकर कहा – गाली क्यों देगा, क्या उसका राज है?

मगर यह कहने के साथ उसकी तनी हुई भौहें ढीली पड़ गयीं। हल्कू के उस वाक्य में जो कठोर सत्य था, वह मानो एक भीषण जन्तु की भाँति उसे घूर रहा था। उसने जाकर आले पर से रूपये निकाले और लाकर हल्कू के हाथ पर रख दिये। फिर बोली–तुम छोड़ दो अबकी से खेती। मजूरी में सुख से एक रोटी खाने को तो मिलेगी। किसी की धौंस तो न रहेगी। अच्छी खेती है। मजूरी करके लाओ, वह उसी में झोंक दो, उस पर से धौंस।''[6]

अपने ब्राह्मणत्व का रोब दिखाकर सवर्ण पुरुष समाज किस प्रकार दलित स्त्री का शोषण करता है इसका भी उल्लेख प्रेमचन्द करते हैं। सवर्ण पुरुष यह समझता है कि दलित स्त्रियों को अगर भगवान ने थोड़ा भी रूप दिया है तो इसलिए न कि सवर्ण पुरुष उसका उपभोग कर सके। धर्म की आड़ में दलित स्त्री का किस प्रकार शोषण होता है, इसको प्रेमचंद अपने 'गोदान' उपन्यास में उजागर करते हैं–

''आज तो तुम यहाँ से न जाने पाओगी झूना रानी! रोज–रोज कलेजे पर छुरी चला के भाग जाती हो, आज मेरे हाथ से न बचोगी।..... ..... एक प्रेमी का मन रख दोगी, तो तुम्हारा क्या बिगड़ जायेगा, झूना रानी! कभी–कभी गरीबों पर दया किया करो, नहीं भगवान् पूछेंगे, मैंने तुम्हें इतना रूप–धन दिया था, तुमने उससे एक ब्राह्मण का उपकार भी नहीं किया, तो क्या जवाब दोगी? बोलो मैं विप्र हूँ, रुपये–पैसे का दान तो रोज ही पाता हूँ, आज रूप का दान दे दो।''[7]

दलित स्त्री–पात्रों के चित्रण में प्रेमचन्द का दृष्टिकोण सदा सहानुभूति का रहा है, जिसमें दया तो नहीं किन्तु मुक्ति की कामना जरुर है। 'गोदान' उपन्यास की दलित स्त्री–पात्र सिलिया को सवर्ण पुरुष मातादीन काम करने की मशीन की तरह रखता है, उसका दैहिक और

श्रमिक शोषण भी करता है किन्तु अपने धन या शरीर पर उसका कोई अधिकार स्वीकार नहीं करता है। सिलिया की बेबसी का वर्णन प्रेमचन्द इन शब्दों में करते हैं–

''सिलिया ने उस पक्षी की भाँति, जिसे मालिक ने पर काटकर पिंजरे से निकाल दिया हो, मातादीन की ओर देखा। उस चितवन में वेदना अधिक थी या भर्त्सना, यह कहना कठिन है। पर उसी पक्षी की भाँति उसका मन फड़फड़ा रहा था और ऊँची डाल पर उन्मुक्त वायु–मण्डल में उड़ने की शक्ति न पाकर उसी पिंजरे में बैठना चाहता था, चाहे उसे बेदाना, बेपानी, पिंजरे की तीलियों से सिर टकराकर भर ही क्यों न जाना पड़े। सिलिया सोच रही थी, अब उसके लिए दूसरा कौन–सा ठौर है। वह ब्याहता न होकर भी संस्कार में और व्यवहार में और मनोभावना में ब्याहता थी, और अब मातादीन चाहे उसे मारे या काटे, उसे दूसरा आश्रय नहीं है, दूसरा अवलम्बन नहीं है। उसे वह दिन याद आये और अभी दो साल भी तो नहीं हुए जब यही मातादीन उसके तलवे सहलाता था। जब उसने जनेऊ हाथ में लेकर कहा था– सिलिया जब तक दम में दम है, तुझे ब्याहता की तरह रखूँगा, जब वह प्रेमातुर होकर हार में और बाग में और नदी के तट पर उसके पीछे–पीछे पागलों की भाँति फिरा करता था। और आज उसका यह निष्ठुर व्यवहार! मुट्ठी भर अनाज के लिए उसका पानी उतार लिया।''[8]

प्रेमचन्द ने दलित स्त्रियों को तथा उनकी समस्याओं को केन्द्र में रख कर जो कहानियाँ लिखी है उनकी चर्चा करते हुए डॉ. इन्द्रमोहन कुमार सिन्हा लिखते हैं–

'' 'जुरमाना' में दिखाया गया है कि मेहतरों और मेहतरानियों द्वारा सफाई का काम होता है। 'दूध का दाम' की भंगिन भूंगी जमींदार महेशनाथ के पुत्र सुरेश को जन्म से ही अपना दूध पिला कर पालती है क्योंकि उसकी माँ को बच्चे के पिलाने के लिए दूध नहीं होता। परिणामस्वरूप, उसका पुत्र मंगल माँ के दूध के अभाव में दुर्बल होता चला जाता है। पर भूंगी के मरने पर मंगल के साथ भंगियों की तरह व्यवहार होने लगता है और महेशनाथ के घर के जूठन पर ही उसे जीवन व्यतीत करना पड़ता है। इन कहानियों में दिखाया गया है कि अछूतों द्वारा किए सेवा–कार्य की सराहना नहीं होती थी।

'लांछन' में प्रासंगिक रूप से यह बताया गया है कि अछूतों की बहू–बेटियों से उच्च–कुल के पुरुषों का प्रेम व्यापार चलता है।''[9]

दलित स्त्री पात्रों के चित्रण में प्रेमचंद का एक दृष्टिकोण ये भी है कि ये औरतें अपने समाज के पुरुषों से अधिक प्रलोभन की शिकार होती हैं, कभी प्रलोभन में पड़कर अपने बच्चे के हिस्से का दूध बड़े लोगों के बच्चे को पिला देती है, तो कभी किसी का जीवन बचाने के लिए किसी अमीर आदमी से कुशल व्यापारियों की तरह सौदा करती हैं। यद्यपि इन दलित स्त्री पात्रों के चित्रण में प्रेमचंद का दृष्टिकोण उनके लालच को नहीं बल्कि उनके अभावग्रस्त जीवन को व्यक्त करना ही होता है।

सन्दर्भ :

1. कहानीकार प्रेमचंद, भीष्म साहनी, प्रेमचंद विगत महत्ता और वचर्तमान अर्थवत्ता, संपादक–मुरली मनोहर प्रसाद सिंह, रेखा अवस्थी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण– 2006, पृ. 288.
2. प्रेमचन्द : ठाकुर का कुआँ,, प्रेमचन्द की सम्पूर्ण कहानियाँ, सुमित्र प्रकाशन, इलाहाबाद, खण्ड–1, 2014, पृ. 85.
3. सुशीला टाकभौरे : सिलिया, दलित कहानी संचयन, चयन एवं सम्पादन, रमणिका गुप्ता, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, 2003, पृ. 62–63.
4. प्रेमचन्द : घासवाली, प्रेमचन्द की सम्पूर्ण कहानियाँ, खण्ड–1, सुमित्र प्रकाशन, इलाहाबाद, 2014, 189–190.
5. वही, पृ. 192–93.
6. प्रेमचन्द : पूस की रात, प्रेमचन्द की सम्पूर्ण कहानियाँ, खण्ड–1, सुमित्र प्रकाशन, इलाहाबाद, 2014, पृ. 95–95.
7. प्रेमचन्द : गोदान, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1988, पृ. 49–50.
8. वही, पृ. 254–255.
9. डॉ. इन्द्रमोहन कुमार सिन्हा : प्रेमचन्दयुगीन भारतीय समाज, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना, मई, 1974, पृ. 137.

***

कोरोना काल एवं लॉकडाउन का मानसिक स्वास्थ्य पर प्रभाव : एक मनोवैज्ञानिक अध्ययन

डॉ. अमर कुमार *

कोरोना वायरस ने लोगों के शारीरिक स्वास्थ्य पर तो असर डाला ही है, मानसिक स्वास्थ्य को भी इसने बुरी तरह प्रभावित किया है। कोरोना संक्रमण पर नियंत्राण के लिए भारत, अमेरिका, ब्रिटेन, ¯ांस जैसे देशों में लगाए गए लॉकडाउन ने दुनिया को सामाजिक और आर्थिक स्तर पर बुरी तरह बर्बाद कर दिया। यही वजह है विभिन्न देशों की सरकारों को अर्थव्यवस्था बचाने के लिए धीरे–धीरे लॉकडाउन हटाना पड़ा। भारत में भी पहले चरणवद्ध लॉकडाउन लगाया गया और चार चरणों के बाद लॉकडाउन 5.0 की जगह केंद्र सरकार ने अनलॉक शुरू किया। आर्थिक गतिविधियाँ शुरू हुई, लेकिन दूसरी ओर कोरोना के मामले बढ़ते रहे। कोरोना वायरस ने जीवन के तमाम पहलुओं, जरूरतों, व्यवस्थाओं और गतिविधियों को भविष्य के लिए दो काल में बांट दिया। जैसे 'भारतः आजादी से पहले और आजादी के बाद' या फिर 'भारतः गाँधी से पहले या गाँधी के बाद'। हालांकि अध्ययन की दृष्टि से इसे तीन भाग में देखा जाना चाहिए। जैसे पत्राकारिता आपातकाल से पहले, आपातकाल के दौरान और आपातकाल के बाद, ठीक उसी तरह दुनियाः कोरोना महामारी से पहले, महामारी के दौरान और महामारी के बाद।

परिचय : कोरोना वायरस ने दुनियाभर में तबाही मचा रखी है। दुनिया के 200 से ज्यादा देश इसकी चपेट में हैं। चीन के वुहान शहर से शुरू हुए इस वायरस से महाशक्ति कहे जाने वाले अमेरिका और ब्रिटेन जैसे देश भी उबर नहीं पा रहे। भारत भी इस वायरस से जूझ रहा है। दुनियाभर में कोरोना संक्रमण का आँकड़ा बड़ी तेजी से बढ़ रहा है। करीब 100 साल पहले दुनियाभर में फैले स्पेनिश फ्रलू ने तबाही मचाई थी और अब इस कोरोना वायरस ने। कोरोना वायरस ने लोगों के शारीरिक स्वास्थ्य पर तो असर डाला ही है, मानसिक स्वास्थ्य को भी इसने बुरी तरह प्रभावित किया है। कोरोना संक्रमण पर नियंत्राण के लिए भारत, अमेरिका, ब्रिटेन, ¯ांस जैसे देशों में लगाए गए लॉकडाउन ने दुनिया को सामाजिक और आर्थिक स्तर पर बुरी तरह बर्बाद कर दिया। यही वजह है विभिन्न देशों की सरकारों को अर्थव्यवस्था बचाने के लिए धीरे–धीरे लॉकडाउन हटाना पड़ा। भारत में भी पहले चरणवद्ध लॉकडाउन लगाया गया और चार चरणों के बाद लॉकडाउन 5.0 की जगह केंद्र सरकार ने अनलॉक शुरू किया। आर्थिक गतिविधियाँ शुरू हुई, लेकिन दूसरी ओर कोरोना के मामले बढ़ते रहे। कोरोना वायरस ने जीवन के तमाम पहलुओं, जरूरतों, व्यवस्थाओं और गतिविधियों को भविष्य

* पी-एच. डी. मनोविज्ञान विभाग, ल.ना.मि.वि.वि., कामेश्वरनगर, दरभंगा (बिहार)

के लिए दो काल में बांट दिया। जैसे 'भारतः आजादी से पहले और आजादी के बाद' या फिर 'भारतः गाँधी से पहले या गाँधी के बाद'। हालांकि अध्ययन की दृष्टि से इसे तीन भाग में देखा जाना चाहिए। जैसे पत्राकारिता आपातकाल से पहले, आपातकाल के दौरान और आपातकाल के बाद, ठीक उसी तरह दुनियाः कोरोना महामारी से पहले, महामारी के दौरान और महामारी के बाद।

कोरोना काल में मानसिक स्वास्थ्य : कोरोना वायरस से संबंधित अध्ययनों में बताया जा चुका है कि सामान्यतः मुंह, नाक और आंखों के जरिए शरीर में प्रवेश करता है और फैफड़े समेत अन्य अंगों को नुकसान पहुँचाना शुरू कर देता है। साँस लेने में बढ़ती तकलीफों के साथ गंभीर मरीजों की मौत भी हो जाती है। ये तो हो गए शारीरिक नुकसान, जिसमें वायरस संक्रमण होना जानलेवा साबित हो सकता है। लेकिन मानसिक तौर पर कोरोना वायरस बिना संक्रमित हुए भी जानलेवा हो सकता है। कोरोना और मानसिक स्वास्थ्य या कोरोना और मानसिक तनाव, अवसाद आदि को लेकर तमाम अध्ययन सामने आ चुके हैं। संक्रमण फैलने का डर, लॉकडाउन के दौरान घर में कैद रहने का डर, अर्थव्यवस्था तबाह होने के कारण नौकरी जाने का डर, बंदी के कारण व्यापार चौपट होने का डर, शिक्षा और स्वास्थ्य सुविधाओं के छिन जाने का डर.....ऐसे तमाम भय के माहौल में दुनिया ने लंबा वक्त गुजारा और अबतक इन संकटों से नहीं उबर पाए हैं। कोरोना महामारी ने हमारी सामान्य दिनचर्या को बुरी तरह प्रभावित कर दिया है। हर आयु वर्ग के लोगों के लिए इसने चुनौतियां पैदा की है और उनकी चिंताएँ बढ़ा दी है। कोरोना के दौर में तनाव और चिंताएँ एवं मानसिक रोग एक बढ़ती हुई समस्या है। बीबीसी की एक रिपोर्ट के मुताबिक दुनिया के करीब एक तिहाई से कुछ कम मनोरोगी केवल भारत और चीन में हैं। भारत में तो मानसिक समस्या से परेशान 10 में से एक व्यक्ति को ही काउंसिलिंग, इलाज आदि मिल पाता है। कहा जाता है कि किसी चीज के बारे में बार–बार लगातार सुनना, देखना और संबंधित विषय के बारे में बहुत ज्यादा जानकारी लेना, उसके प्रति दिमाग को बेहद संवेदनशील बना देता है। कोरोना के मामले में भी यही बात लागू होती है। सूचना क्रांति के इस दौर में, जबकि इंटरनेट के माध्यम से दुनिया एक मोबाइल में सिमट चुकी है... सूचनाओं की एक बाढ़ सी आ गई है। कोरोना महामारी को लेकर हमारे आसपास बातें खूब हो रही हैं। व्हाट्सएप, फेसबुक जैसे सोशल मीडिया और अन्य मीडिया प्लेटफॉर्मों पर कोरोना को लेकर दुनियाभर की बातें चल रही हैं। इनमें कुछ सही है तो बहुत सारी सूचनाएँ गलत भी है। कुछ सच्चाई है तो बहुत सारी कोरी अफवाहें भी हैं। ऐसे में हमें इनसे बचने की जरूरत है।

लॉकडाउन के दौरान सामाजिक अलगाव और दिनभर कोरोना की खबरें देखते–सुनते सभी चिंतित हो जाते हैं। विशेषज्ञों के मुताबिक, घबराहट का असर बड़ों पर ही नहीं बल्कि बच्चों पर भी पड़ता है। वे भले ही आपको न बता पाएं लेकिन वे भी भावनात्मक और मानसिक तनाव से गुजर रहे हैं,

जिसका असर उनके व्यवहार में बदलाव के रूप में नजर आ सकता है। डॉक्टरों की सलाह है कि बच्चों से इस बारे में बात की जानी चाहिए। पिछले दिनों न्यूयॉर्क टाइम्स की एक रिपोर्ट में विशेषज्ञों की सलाह थी कि लॉकडाउन के दौरान उनका एक रूटीन जरूर बनाएं ताकि वे व्यस्त और सकारात्मक रहें।

डॉक्टरों का कहना है कि बच्चों में झुंझलाहट तनाव का एक बड़ा संकेत है। तनाव और घबराहट के कारण हार्मोन और रसायनों में परिवर्तन हो सकता है, जिसका असर शारीरिक तौर पर भी दिखाई देता है। डॉक्टर बच्चों के साथ समय बिताने और उनका भरोसा हासिल करने की जरूरत बताते हैं कि वे पूरी तरह सुरक्षित हैं। उनका एक अच्छा सा रूटीन बनाकर उन्हें व्यस्त रखना जरूरी होता है। अच्छी नींद नहीं आना, सोने के बाद बीच–बीच में उठना बच्चे में तनाव की निशानी हो सकती है। इसके लिए बच्चों को शाम से ही किसी रचनात्मक गतिविधि में शामिल कराएं। अगर गर्मी ज्यादा पड़ रही है, उन्हें स्नान कराकर सुलाना फायदेमंद होगा। चार साल और उससे ऊपर की आयु वाले बच्चों पर हुए एक अध्ययन में सामने आया था कि 90 फीसदी बच्चों में पेट दर्द से जुड़ी कोई बीमारी नहीं निकली। स्वस्थ रहने और पाचन सामान्य रहने के बावजूद उन्हें पेट में दर्द था। इसके पीछे तनाव बड़ा कारण माना गया। कई बाल रोग विशेषज्ञ का कहना है कि ऐसी स्थिति में बच्चों को अधिक फाइबर युक्त आहार देना चाहिए। विशेषज्ञों के मुताबिक, तनाव के कारण बच्चों में शौच की आदतों में भी बदलाव आ सकता है। इसलिए उनके भावनात्मक बदलावों को पहचानें। जरूरी हो तो विशेषज्ञ डॉक्टर से परामर्श लेना सही रहेगा।

लॉकडाउन, एकाकीपन और डिप्रेशन : विश्व स्वास्थ्य संगठन के मुताबिक दुनियाभर में हर साल करीब आठ लाख लोग आत्महत्या कर लेते हैं। डिप्रेशन में जाने की कोई उम्र निर्धारित नहीं होती है। किशोर, युवा, प्रौढ़ उम्र की किसी भी अवस्था में यह हो सकता है। लेकिन डब्ल्यूएचओ की ओर से आत्महत्या को लेकर जारी ग्लोबल डाटा के मुताबिक ऐसा करने वालों में 15 से 29 साल के लोगों की तादाद सबसे अधिक है। विश्व स्वास्थ्य संगठन इस बारे में आगाह कर चुका है कि साल 2020 के अंत तक डिप्रेशन यानी अवसाद दुनिया की दूसरी सबसे बड़ी बीमारी बन जाएगी।

डिप्रेशन या अवसाद, कोरोना काल में इस शब्द ने दुनिया का ध्यान अपनी ओर खींचा। बहुत सारे लोगों ने इसके बारे में पढ़ने, जानने और समझने की कोशिश की। डिप्रेशन या अवसाद आखिर है क्या? यह इतना खतरनाक क्यों है? दरअसल पढ़ाई, करियर या रिलेशनशिप में असफलता को लेकर या फिर किसी बात को लेकर असंतुष्टि के कारण उपजा तनाव पहले चिंता में बदल जाता है और फिर यही चिंता जब लंबे समय तक बनी रहती है तो अवसाद यानी डिप्रेशन में तब्दील हो जाती है।

इन दिनों अधिकतर लोग डिप्रेशन यानी की अवसाद की गिरफ्त में आ रहे हैं। मनोचिकित्सक डॉ. आलोक के मुताबिक, जो लोग डिप्रेशन से

जूझ रहे होते हैं, वे किसी से बात नहीं कर पाते और अकेला महसूस करते हुए जिंदगी से हार महसूस करने लगते हैं। विशेषज्ञ बताते हैं कि डिप्रेशन के कुछ संकेत होते हैं। अगर कोई अपना, दोस्त, सहकर्मी या कोई और जानने वाला अगर डिप्रेशन से जूझ रहा हो तो उसके व्यवहार पर गौर करना जरूरी है। डिप्रेशन से जूझ रहे लोगों की बातों में, उनके बर्ताव में बदलाव जैसे लक्षण देखे जाते हैं। जैसे, चिडचिडापन रहना, नींद और भूख में कमी, अपराधबोध होना, उदास और दुखी रहना, आत्मविश्वास में कमी, सुस्ती और थकान महसूस होना, किसी काम में दिलचस्पी न लेना, अकेलापन, एकाकीपन, उत्तेजना या शारीरिक व्याग्रता, नशे का आदी होने लगना....ऐसे तमाम लक्षण हैं, जिनके नजर आने पर उनपर निगाह रखने और उनसे बातचीत करने की आवश्यकता बताई जाती है। डिप्रेशन में कई व्यक्ति अपनी जिंदगी से इतने परेशान हो जाते हैं कि उन्हें लगता है, उनकी जिंदगी में कुछ नहीं बचा और उन्हें दुनिया बेकार लगने लगती है।

डॉ. आलोक बताते हैं कि डिप्रेशन की स्थिति हावी होने पर पीडित व्यक्ति की काउंसिलिंग जरूरी है। उन्हें समय रहते मदद की जरूरत होती है। मन में उल्टे–सीधे ख्याल आते हों तो मनोचिकित्सक से खुल कर बातें करनी चाहिए। डिप्रेशन से पीडित व्यक्ति के अभिवावक डॉक्टर को पीड़ित के व्यवहार में आए बदलावों के विषय में पूरी बात बताएं। मनोचिकित्सक जरूरत के अनुसार, दवाओं और थेरेपी के जरिए पीडित का इलाज करते हैं। अगर सही समय पर मदद मिल जाए, तो इस मुश्किल से छुटकारा सम्भव है।

योग, ध्यान और घरेलू उपाय : तनाव और डिप्रेशन से उबरने के लिए अक्सर योग, ध्यान और व्यायाम की सलाह दी जाती है। योग विज्ञान में तनाव का सबसे बेहतर इलाज है। आम आदमी की जिंदगी में बढ़ते तनाव की वजह से जीवन असंयमित हो गया है। लोग खुद से संतुष्ट नहीं है। जब तक हमें मानसिक शांति नहीं मिलेगी तब तक हम जीवन के विकारों से मुक्त नहीं हो सकते हैं। भागदौड भरी जिदंगी को संयमित और संतुलित करने के लिए मन को स्थिर रखना जरूरी है और इसके लिए योग और ध्यान उपयुक्त माध्यम है। वहीं दूसरी ओर घरेलू उपायों के जरिए भी व्यक्ति तनाव पर नियंत्राण पा सकता है। एक मेडिकल रिसर्च के मुताबिक, हल्दी और नींबू डिप्रेशन से उबरने में बहुत मददगार है। एंटीऑक्सीडेंट, एंटी इंफ्रलेमेटरी तत्व, एंटी बायोटिक और एंटीडिप्रेसेंट तत्वों से भरपूर हल्दी के साथ नींबू के मिश्रण का सेवन करने से डिप्रेशन कम होता है। ऐसे तमाम घरेलू उपाय हैं, जिनके जरिए तनाव पर नियंत्राण जरूरी है।

देश में लॉकडाउन के बीच पिछले दिनों केंद्र सरकार ने भी माना है कि लोग डिप्रेशन का शिकार हो सकते हैं। इसी डिप्रेशन की समस्या से निपटने के लिए केंद्र सरकार ने एक हेल्पलाइन नंबर जारी किया है, जहाँ कॉल कर सलाह ली जा सकती है। नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ मेंटल हेल्थ एंड न्यूरो साइंस के डॉक्टरों ने टोल फ्री नंबर 08046110007 जारी किया

है। इस नंबर पर डिप्रेशन से जूझ रहे व्यक्ति कॉल कर अपनी समस्या बता सकते हैं, जहाँ डॉक्टर उन्हें जरूरी सलाह देंगे और समाधान बताएंगे। लॉकडाउन में डिप्रेशन बड़ी समस्या नहीं बन जाए, इसके लिए डॉक्टरों को प्रशिक्षण भी दिया जा रहा है। डॉक्टरों को टेलीमेडिसिन की भी ट्रेनिंग दी जा रही है।

इसके अलावा अवसादग्रस्त लोगों की मदद के लिए आसरा, स्पंदन, लाइफलाइन फाउंडेशन जैसी कई स्वयंसेवी संस्थाएं सहायता उपलब्ध कराते हैं। इन हेल्पलाइन सुविधाओं के जरिए लोग खुल कर अपनी बात और समस्याएं बता पाते हैं। कई संस्थाएं फोन कॉल के जरिए निर्धारित समय तक सेवा देती है तो कई संस्थाएं 24x7 यानी पूरे सप्ताह 24 घंटे यह सुविधा देती हैं।

निष्कर्ष : अध्ययन से प्राप्त निष्कर्ष के आधार पर कहा जा सकता है कि कोरोना काल के बाद, हमें राष्ट्रीय मानसिक स्वास्थ्य कार्यक्रम के मानसिक स्वास्थ्य निवारक घटक को मजबूत करने की आवश्यकता होगी। साथ ही सार्वजनिक स्वास्थ्य के अभिन्न अंग के रूप में समुदाय आधारित मानसिक स्वास्थ्य संवर्धन और स्थानीय से लेकर राष्ट्रीय स्तर पर स्वास्थ्य प्रोत्साहन नीतियों पर जोर दिए जाने की आवश्यकता है। कोरोना संकट के इस काल में स्वास्थ्य व्यवस्था के सामने फिलहाल संक्रमण खत्म करने चुनौती है। कोरोना काल के बाद हमें बहु–आयामी बनना होगा, जिसमें एक शारीरिक स्वास्थ्य के साथ सामाजिक एवं आर्थिक रूप से अनुकूल एक जन–आधारित मानसिक स्वास्थ्य निवारक कार्यक्रम तैयार करना होगा। इसके अलावा शहर से लेकर गाँव तक के स्वास्थ्य केंद्रों में मानसिक स्वास्थ्य इकाई स्थापित करने, सरकारी या गैर सरकारी स्तर पर मानसिक सलाह केंद्र यानी काउंसिलिंग सेंटर बनाने और बढ़ाने समेत अन्य कई जरूरी पहलुओं पर सरकार को नए सिरे से सोचने की जरूरत होगी

सन्दर्भ :

1. श्रीवास्तव, रामजी, शर्मा, गोपाल, (2008) : आधुनिक अपसामान्य मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसीदास प्रकाशन, दिल्ली
2. चौबे, सरयू प्रसाद (2005) : बाल विकास मनोविज्ञान के मूलतत्व, कंसेप्ट पब्लिशिंग, नई दिल्ली
3. सिंह, अरुण कुमार (2001) : उच्चतर नैदानिक मनोविज्ञान, जैनेंद्र प्रेस, नारायणा, नई दिल्ली
4. विप्लव विनोद, (सम्पादक) (2016) : मानसिक रोगः कारण और बचाव, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली
5. सुलेमान, मुहम्मद, तौआब, मुहम्मद, (2004) : असामान्य मनोविज्ञानः विषय और व्याख्या, मोतीलाल बनारसीदास प्रकाशन, दिल्ली
6. वर्मा, विनोद (2004) : पतंजलि और आयुर्वेदिक योग, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली

***

वैश्वीकरण काल में बिहार की महिलाओं के लिए साक्षरता अभियान

कुन्दन कुमार पासवान *

1947 ई॰ में भारत आजाद हुआ। 1950 ई॰ में नये संविधान को लागू किया गया। देश के विकास के लिए पंचवर्षीय योजनायें तैयार की गयीं और उनपर अमल भी किया गया। प्रथम पंचवर्षीय योजना के अंत तक करीब 70.3 प्रतिशत लड़कों ने प्राइमरी स्कूलों में दाखिला लिया जबकि इसका एक सबसे बड़ा कारण था महिला शिक्षिकाओं का नितांत अभाव। सेकेन्डरी एवं कॉलेज स्तर तक के शिक्षा में लड़कियों को प्रोत्साहन देकर इस कमी को पूरा किया जा सकता था।1 इस दिशा में पहल करते हुये भारत सरकार ने 1958 ई॰ में श्रीमती दुर्गा बाई देशमुख की अध्यक्षता में एक कमिटी का गठन किया। प्राइमरी एवं सेकेन्डरी स्तर पर महिला शिक्षा में किस तरह जल्द से जल्द प्रगति हो यह इस कमिटी के लिए विचारणीय प्रश्न था।2 कमिटी ने काफी विचार-विमर्श के उपरान्त 1959 में अपना रिपोर्ट सरकार को सौपा। इस रिपोर्ट में कई अनुशंसायें की गयी।

अनुशंसायें निम्नलिखित थीं-

(i) भारत सरकार को कुछ समय के लिए महिला शिक्षा को एक विशिष्ट समस्या के रूप में स्वीकार करना चाहिए।

(ii) भारत सरकार को एक निश्चित अवधि के अन्तर्गत निश्चित योजना के अनुरूप महिला शिक्षा का विकास करने का भार अपने उपर लेना चाहिए।

(iii) भारत सरकार को समस्त राज्यों के लिए महिला शिक्षा के विस्तार की नीति निर्धारित करनी चाहिए तथा इस नीति के क्रियान्वयन के लिए राज्यों को आवश्यक धन राशि प्रदान करनी चाहिए।

(iv) ग्रामीण क्षेत्रों में महिला शिक्षा के प्रसार के लिए विशेष प्रयास किये जाने चाहिए।

(v) पुरुषों तथा महिलाओं की शिक्षा में विद्यमान अन्तर को यथा शीघ्र समाप्त करने के प्रयास किये जाने चाहिए।

(vi) महिला शिक्षा की समस्याओं पर विचार करने के लिए राष्ट्रीय महिला शिक्षा परिषद् नमक पृथक इकाई का गठन किया जाना चाहिए।

---

* यू.जी.सी. -नेट (इतिहास)

(vii) महिला शिक्षा के प्रसार हेतु राज्यों में लड़कियों तथा महिलाओं की शिक्षा की राज्य परिषदें गठित करनी चाहिए।

दुर्गाबाई देशमुख समिति के सुझाव को स्वीकार करते हुए केन्द्रीय शिक्षा मंत्रालय ने राष्ट्रीय महिला शिक्षा परिषद का गठन किया। इस परिषद का प्रमुख कार्य लड़कियों एवं महिलाओं की शिक्षा से सम्बन्धित समस्याओं के निराकरण हेतु तथा महिला शिक्षा के प्रसार एवं उसमें सुधार हेतु नीतियों, कार्यक्रमों एवं प्राथमिकताओं से सम्बंधित सुझाव देना था। इस परिषद को समय-समय पर महिला शिक्षा की प्रगति का मूल्यांकन करने, भावी कार्यक्रमों की रूपरेखा भी प्रस्तुत करनी थी।[3] महिला शिक्षा की समस्याओं पर विचार करने के लि परिषद को समय-समय पर सर्वेक्षण, विचार गोष्ठियों तथा अनुसंधान कार्यक्रमों को आयोजित करना था।[4]

1962 ई॰ में भारत सरकार ने डॉ॰ सम्पूर्णानन्द की अध्यक्षता में महिला शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए इमोशनल इन्टीग्रेशन कमिटी का गठन किया।5 कमिटी ने स्कूलों में बहुत ही कम लड़कियों के द्वारा दाखिला लेने पर अपनी गहरी चिन्ता व्यक्त की। इस कमिटी ने अनुशंसा की कि 1965-66 ई॰ तक महिला शिक्षा को अनिवार्य घोषित कर दिया जाए जिससे लड़कियों को शिक्षा का उचित लाभ मिल सके।[6]

1964 ई॰ में राष्ट्रीय महिला शिक्षा परिषद ने विद्यालय स्तर पर लड़के एवं लड़कियों के पाठ्यक्रम में अंतर होने अथवा नहीं होने की महत्वपूर्ण समस्या पर विचार करने हेतु श्रीमती हंसा मेहता की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया। इस कमिटी ने विचार विमर्श के उपरानत सुझाव दिया कि विद्यालय स्तर पर लड़के तथा लड़कियों के पाठ्यक्रम में अन्तर नहीं होना चाहिए। समिति ने कहा कि भारत में जनतंत्रीय तथा समाजवादी समाज की स्थापना की प्रक्रिया चल रही है। अत: शिक्षा का सम्बन्ध व्यक्तिगत क्षमताओं, रूझानों तथा रूचियों से लेना चाहिए, न कि यौन भेद से। अत: यौन के आधार पर पाठ्यक्रम में अन्तर करने की आवश्यकता नहीं है। समिति ने यह भी कहा कि कोई भी ऐसा कदम नहीं उठाना चाहिए जो लड़के तथा लड़कियों के बीच विद्यालय अंतर को बढ़ाए।[7] इस समिति ने मिडिल सकूल के स्तर पर व्यावसायिक विषयों के पढ़ाई की भी अनुशंसा की। लड़कियों के लिए विशेष जरूरतों को भी पाठ्यक्रम का हिस्सा बनाया गया जिससे एक कुशल महिला बनने में उन्हें कोई कठिनाई नहीं हो।[8] समिति ने अपनो अनुशंसा में यह भी कहा कि विश्वविद्यालयों को उन सम्भावनाओं को तलाशना चाहिए जिससे लड़कियों को उनकी विशेष जरूरत के विषयों की भी वहाँ पढ़ाई हो सके। समय-समय

पर उन पाठ्यक्रमों की समीक्षा की जानी चाहिए और पाठ्यक्रमों को व्यवहारमय दिये जाने में पैदा होने वाली कठिनाइयों को तत्काल दूर किया जाना चाहिए। यह केन्द्र एवं राज्य सरकारों का दायित्व होना चाहिए कि वह महिला शिक्षिकाओं के प्रशिक्षण की विशेष वयवस्था करे। यह कार्य सेकेन्डरी एवं विश्वविद्यालय स्तर पर होना चाहिए। यह विश्वविद्यालयों का दायित्व बनता है कि वह अच्छी एवं गुणवत्ता वाले शिक्षिकाओं को तैयार करे।

1965 ई॰ में भक्तवत्सला कमिटी ने पिछले राज्यों में महिला शिक्षा के क्षेत्र में हो रहे प्रगति की समीक्षा की। ये पिछड़े राज्य थे बिहार, जम्मू एवं कश्मीर, मध्यप्रदेश उड़ीसा, राजस्थान एवं उत्तर प्रदेश। इस कमिटी ने स्वोकार किया कि संसाधनों की कमी के कारण इन राज्यों में महिला शिक्षा का अपेक्षित विकास नहीं हो पा रहा है। केन्द्र सरकार को तत्काल इस समस्या की ओर ध्यान देनी चाहिए। अपने रिपोर्ट में इस कमिटी ने कहा कि केन्द्रीय सहायता प्राइमरी स्तर पर तत्काल दिया जाना चाहिए।

महिला शिक्षिकाओं की बहाली की जानी चाहिए तथा उन्हें अच्छा प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए। किताब, लिखने की सामग्री एवं कपड़े के लिए लड़कियों को सरकार की ओर से पैसे दिये जाने चाहिए। महिला शिक्षिकाओं को रहने के आवास की सुविधा होनी चाहिए। सेकेन्डरी स्तर, स्थानीय स्तर के अधिकारियों को केन्द्रीय सहायता मिलनी चाहिए। 1964-66 के भारतीय शिक्षा आयोग ने नेशनल कमिटी ऑन दी एडुकेशन ऑफ विमेन के सारी अनुशंसाओं को स्वीकार कर लिया। हंसामेहता एवं भक्तवत्सलम कमिटी के रिपोर्ट को भी पूरी तरह स्वीकार कर लिया गया। आयोग (दालत सिंह कोठारी आयोग) ने मानव संसाधनों के विकास परिवारों की उन्नति तथा लड़कों के चरित्र-निर्माण में पुरूषों की अपेक्षा महिलाओं की शिक्षा को अधिक महत्व प्रदान किया तथा महिला शिक्षा के लगभग सभी पक्षों पर अपने विचार व्यक्त किये। कुछ सुझाव निम्नलिखित थ-

(i) भारतीय संविधान में संकलित लक्ष्य की प्राप्ति के लिए लड़कियों की अनिवार्य शिक्षा के लिए अधिकाधिक प्रयास किये जायें।

(ii) लड़कियों को अध्ययन के लिए लड़को के विद्यालयों में भेजने के लिए जनमत तैयार किया जाये।

(iii) उच्च प्राथमिक स्तर पर लड़कियों के लिए अलग स्कूल खोले जायें।

(iv) लड़कियों के लिए नि:शुल्क छात्रावासों तथा छात्रवृत्तियों की व्यवस्था की जाय।

(v) लड़कियों के लिए अल्पकालीन शिक्षा तथा व्यावसायिक शिक्षा की व्यवस्था की जाए।

(vi) लड़कियों के लिए पृथक कॉलेज खोले जाएँ।

(vii) शिक्षा शास्त्र, गृह विज्ञान तथा सामाजिक कार्यक्रयों के पाठ्यक्रमों को सम्मुनत करके लड़कियों के लिए अधिक उपयोगी बनाया जाए।

(viii) लड़कियों के लिए उच्च शिक्षा को प्रोत्साहित किया जाए।

(ix) महिला शिक्षा के लिए अनुसंधान इकाइयों की स्थापना की जाए।

(x) विवाहित महिलाओं के लिए अंशकालीन शिक्षा तथा अविवाहित महिलाओं के लिए पूर्णकालीन शिक्षा की व्यवस्था की जाय।

(xi) महिला शिक्षा के संचालन के लिए केन्द्रीय तथा राज्य स्तर पर प्रशासनिक तंत्र का गठन किया जाए।

बिहार प्रान्त भी वैश्वीकरण के प्रभाव से अपने को अलग नही रख गया। कहा गया कि बिहार जैसे पिछले राज्यों का समेकित विकास तब तक नहीं हो पायेगा जब तक यहाँ की आधी आबादी अर्थात् महिलाओं को साक्षर नहीं बनाया जाता। निरक्षरता के कारण महिलायें स्वयं अपना विकास अवरूद्ध करती हैं। पुरूष प्रधान समाज भी उनकी प्रगति में रोड़ा अटका रहा है। अस्तु महिलाओं की शिक्षा पर ध्यान नितांत आवश्यक है। इस दृष्टि को ध्यान में रखकर 1991 में बिहार शिक्षा परियोजना की शुरूआत की।

सन्दर्भ :

1. एजुकेशनल एक्अीविटिज ऑफ दी गवर्नमेंट आम इंडिया, दिल्ली, 1963 पृ॰ 116
2. गवर्नमेंट रिजोल्यूशन न॰ एफ॰ 34-12/57-बी॰-5, 19 मई, 1958
3. रिपोर्ट ऑफ दी कमिटी टू लूक इन्टू दी काउजेज फार बलैक ऑफ पब्लिक सर्पोट, नयी दिल्ली, 1965, पृ॰ 7
4. वही
5. 1962 में शिक्षा मंत्रलालय ने इस कमिटी का गठन किया और उसी वर्ष कमिटी ने अपना रिपोर्ट भी पेश कर दिया।
6. रिपोर्ट ऑफ दी इमोशनल इन्टीग्रेशन कमिटी, 1762 पृ॰ 65-66
7. वाई॰ बी॰ माथुर, उपरोक्त, पृ॰ 109
8. रिपोर्ट ऑन दी डिफरेन्शियेशन ऑफ कैरीकुला फार व्याज एंड गर्ल्स, 1964 पृ॰ 55-58

***

20वीं सदी का किसान आन्दोलन : एक अवलोकन

*शशिकान्त कुमार**

20वीं सदी में कई कृषक आन्दोलन हुए, इस काल में आन्दोलन का मूल कारण वही बने रहे जो 19वीं सदी में थे, लेकिन इसके स्वरूप में कुछ अंतर आ गया। अब कृषक आन्दोलन का उद्देश्य व्यापक हो गया। 19वीं सदी के कृषक आन्दोलन का स्वरूप क्षेत्रीय तथा मसीहावादी था। इस समय आन्दोलन का दृष्टिकोण भी संकीर्ण होता था इनका मुख्य निशाना तात्कालिक शोषक वर्ग होते थे। उदाहरण के लिये पबना के किसानों ने घोषणा की कि वे महारानी के रैयत हैं तथा उन्हीं के बनकर रहना चाहेंगे। इसके उद्देश्य भी तात्कालिक होते थे। जब ये उद्देश्य पूरे हो जाते थे तो ये आन्दोलन स्वयमेव शांत पड़ जाते। इन आन्दोलनों को आधुनिक विचारधारा का आधार प्राप्त नहीं था, यही वजह है कि औपनिवेशिक शासन के समक्ष ये वास्तविक चुनौती प्रस्तुत नहीं कर सके। परन्तु 20वीं सदी के कृषक आन्दोलनों का स्वरूप अलग था। इस अवधि के कृषक आन्दोलनों को स्पष्ट राजनीतिक विचारधारा का आधार प्राप्त था। 20वीं सदी के कृषक आंदोलनों का राष्ट्रीय आन्दोलन से जुड़ाव था। कृषक आन्दोलन पर बुर्जुआवादी प्रभाव विभिन्न क्षेत्रों में किसान सभाओं का गठन होना तथा उनमें कृषक नेताओं के साथ राष्ट्रीय नेताओं का भाग लेना इसका उदाहरण है। किसान सभा के नेता भी सक्रिय रूप से राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लेते थे।

चम्पारण किसान आन्दोलन (1917) : 20वीं सदी के आरंभिक दशकों में चम्पारण में किसान आन्दोलन हुआ जिसका गूंज पूरे भारत में हुई। इस आन्दोलन का महत्व इसलिए भी ज्यादा है कि यहीं से महात्मा गाँधी का भारतीय राजनीति में सक्रिय रूप में प्रवेश हुआ साथ ही राष्ट्रीय आन्दोलन के मुख्य अस्त्र सत्याग्रह का प्रथम प्रयोग यहीं हुआ। उत्तरी बिहार में नेपाल से सटे हुए चंपारण में नील की खेती होती थी। नीलहों बागान मालिकों ने इस क्षेत्र में तीन कठिया प्रणाली लागू कर रखी थी। इसके तहत कृषकों को अपनी खेती योग्य जमीन के 15% भाग में नील की खेती करनी पड़ती थी। इससे कृषकों की स्थिति दयनीय होती चली गयी। गाँधीजी ने इस आंदोलन का नेतृत्व किया। अंततः सरकार ने एक जाँच आयोग बनाया और तीन कठिया प्रणाली समाप्त कर दी गई। जिसके परिणामस्वरूप कृषकों में नई चेतना जागी और वे राष्ट्रीय आन्दोलन को भी अपना समर्थन देने लगे। इस प्रकार गाँधीजी द्वारा चलाया गया पहला सत्याग्रह सफल रहा। एन. जी. रंगा

* यू.जी.सी. नेट (जे.आर.एफ.), विश्वविद्यालय इतिहास विभाग, तिलकामाँझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर

ने महात्मा गाँधी के चम्पारण सत्याग्रह का विरोध किया था, जबकि रवीन्द्रनाथ टैगोर ने चम्पारण सत्याग्रह के दौरान ही इन्हें "महात्मा" की उपाधि दी।

खेड़ा किसान आन्दोलन (1918) : खेड़ा किसान आन्दोलन 1918 में गुजरात राज्य के खेड़ा नामक स्थान में चलाया गया। खेड़ा में लगान वृद्धि एवं अन्य शोषण से किसान पीड़ित थे। सूखे के कारण फसल नष्ट हो गई थी फिर भी किसानों को कर से छूट नहीं मिल पा रही थी। जिसके फलस्वरूप गाँधीजी के नेतृत्व में किसानों ने लगान देना बन्द कर दिया। बड़े पैमाने पर किसानों ने सत्याग्रह किया जिसके परिणामस्वरूप सरकार को झुकना पड़ा और लगान में राहत दी गई। इस आन्दोलन में गाँधीजी के साथ वल्लभ भाई पटेल, इन्दुलाल याज्ञनिक तथा अन्य युवा लोगों ने गाँवों का दौरा किया। गाँधीजी ने प्रस्ताव रखा सरकार यदि लगान माफ कर देती है तो लोग स्वेच्छा से लगान दे सकते है। सरकार ने ऐसा ही आदेश दिया जिससे आंदोलन वापस ले लिया गया।

दरभंगा किसान आन्दोलन (1919) : दरभंगा किसान आन्दोलन का कारण भी जमींदारों द्वारा किसानों का शोषण था। प्रथम विश्वयुद्ध के बाद किसानों की स्थिति अत्यंत दयनीय हो गयी। इन शोषणों के विरुद्ध किसानों को संगठित करने में स्वामी विद्यानन्द की अहम भूमिका रही। उनके नेतृत्व में किसानों ने अपना आन्दोलन चलाया। जिसके फलस्वरूप 1920 में दरभंगा राज ने किसानों को कुछ राहत प्रदान की।

संयुक्त प्रांत में आन्दोलन (बेदखली रोको आन्दोलन) 1920–22 : ब्रिटिश सरकार ने 1856 ई. में संयुक्त प्रांत के ताल्लुकदारों एवं जमींदारों के अधिकार वापस होने से किसानों का शोषण प्रारंभ हो गया। इस शोषण के विरूद्ध संयुक्त प्रांत में 1918 में बेदखली रोको आन्दोलन चलाया गया। बाबा रामचन्द्र ने जमींदारों के विरूद्ध किसानों को संगठित किया साथ ही किसानों को जागृत करने का प्रयास किया। सरकार ने बाबा रामचन्द्र को गिरफ्तार किया परन्तु किसानों के दबाव के कारण उन्हें छोड़ना पड़ा। अंततः 1920 में अवध किसान सभा का गठन हुआ। 1920 में किसान आन्दोलन कांग्रेस के असहयोग आंदोलन से जुड़ गया।

एका आन्दोलन 1921–1922 : एका आन्दोलन जमींदारों के शोषण के खिलाफ हरदोई, बहराइच तथा सीतापुर आदि क्षेत्रों में प्रारंभ हुआ। इसे शुरू करने में किसान नेता मदारी पासी का हाथ था। यह आन्दोलन पहले के किसान आन्दोलन से कुछ हद तक भिन्न थे, क्योंकि इसके साथ छोटे–मोटे जमींदार भी शामिल थे। ये ऐसे जमींदार थे जो बढ़े हुए कर के बोझ से परेशान एवं सरकार से नाराज थे। सरकार के दमनात्मक नीति के कारण 1922 तक आते–आते आन्दोलन शिथिल हो गया। इस प्रकार एका आन्दोलन पहले के 'किसान सभा आन्दोलन' से इस मायने में अलग था कि जहाँ किसान आन्दोलन में मूलतः काश्तकार शामिल थे जमींदार नहीं, वही

एका आन्दोलन में छोटे–मोटे जमींदार भी शामिल थे जो बढ़े हुए लगान के बोझ से परेशान एवं सरकार से नाराज थे।

मोपला विद्रोह (1921) : 1921 ई. में मालावार तट पर मोपला विद्रोह पुनः भड़क उठा। यह पहले से भिन्न था। 1921 ई. में असहयोग आन्दोलन के दौरान गाँधीजी, मौलाना आजाद और शौकत अली ने मोपला आन्दोलन का समर्थन किया। खिलाफत नेता अली मुसलियार जो इस व्रिदोह का नेतृत्व कर रहे थे, इसे गिरफ्तार करने के लिए एक स्थानीय मजिस्ट्रेट ने मस्जिद पर छापा मारा। मुसलियार तो गिरफ्तार नहीं हुए परन्तु मस्जिद पर छापा मारे जाने की सनसनी खबर चारों ओर फैल गई। बड़े पैमाने पर मोपला एकत्र हो गए, पुलिस ने गोलियाँ चला दीं जिससे बड़ी संख्या में मोपला मारे गए, जिससे मोपला भी हिंसा पर उतर आए। फलतः इस संघर्ष ने साम्प्रदायिक रूप धारण कर लिया। इससे राष्ट्रीय कांग्रेस ने समर्थन वापस ले लिया जिसके परिणामस्वरूप 1921 के अंत तक मोपलाओं के विद्रोह को सरकार ने कठोर दमनात्मक नीति के द्वारा विद्रोह को पूरी तरह से कुचल दिया गया।

पूरा विद्रोह दो चरणों में चला। प्रथम चरण में व्रिदोहियों ने बदनाम जमींदारों, विदेशी बागान मालिकों तथा सरकारी प्रतिष्ठानों को निशाना बनाया। उदार जमींदारों तथा गरीब हिन्दूओं को छोड़ दिया गया। ज्यादातर मोपला विद्रोही अशिक्षित थे तथा उनके कट्टरपंथी धार्मिक भावनाएं प्रधान थी। जैसे–जैसे सत्ता का दमन बढ़ता गया हिन्दुओं पर हमला, उनकी हत्या तथा जबरन धर्म परिवर्त्तन की घटना भी बढ़ने लगी। अतः सरकार ने भारी दमन कर उसे शांत कर दिया।

बारदोली सत्याग्रह (1928 ई.) : यह सत्याग्रह सुरत जिले में स्थित बारदोली में किसानों द्वारा संगठित किया गया। इसे कल्याण जी तथा कुवर जी मेहता ने संगठित किये तथा इसे राष्ट्रीय नेताओं में वल्लभ भाई पटेल ने नेतृत्व प्रदान किया। 1926–27 ई० में कपास के मूल्यों में गिरावट के बावजूद सरकार ने बारदोली में राजस्व 22% बढ़ा दिया। फलतः किसानों पर कर का बोझ बढ़ गया। इस मुद्दे पर कांग्रेस के नेताओं ने विरोध करने का निश्चय किया। जाँच के लिए बारदोली जाँच समिति का गठन किया गया। इस जाँच ने लगान बढ़ोतरी को अनुचित बताया। इस बढ़ोतरी को कम करने के लिए क्षेत्रीय नेताओं तथा किसानों ने बड़े पैमाने पर भागीदारी निभायी। अगस्त 1928 में स्वयं गाँधीजी बारदोली पहुँच गये। अब सरकार के पास झुकने के अतिरिक्त कोई चारा नहीं था। अंततः एक न्यायिक अधिकारी ब्रूमफिल्ड तथा एक राजस्व अधिकारी मैक्सवेल ने सारे मामले की जाँच की तथा निष्कर्ष निकाला कि 22% लगान बढ़ोतरी गलत थी अब इसे घटाकर 6.03% कर दिया गया। इस प्रकार यह अहिंसात्मक कृषक आन्दोलन सफल हुआ।

वर्ली विद्रोह (1945–49 ई.) : बम्बई क्षेत्र के ताल्लुकों के बहुसंख्यक वर्ली किसानों की भूमि जमींदारों तथा महाजनों के अधिकार में चली गई थी, क्योंकि अनाज के रूप में लिए गए ऋण का भुगतान वे नहीं कर सकते थे। इन वर्ली किसानों को जीवन भर के लिए बंधुआ मजदूर बना दिया गया। अतः किसानों ने विद्रोह कर दिया। सरकार के दमनात्मक नीति के कारण यह विद्रोह कमजोर पड़ गया।

तेभागा आन्दालन (1946–50 ई.) : यह आन्दोलन मुख्यतः बंगाल में केन्द्रित था। इसकी शुरूआत त्रिपुरा के हसनाबाद से हुई। जो बंगाल में नोआखोली तक फैल गया। इस आन्दोलन के प्रमुख नेता कम्पाराम सिंह एवं भवन सिंह थे। नोआखोली में भीषण साम्प्रदायिक दंगे हुए परन्तु इस आन्दोलन में हिन्दू एवं मुस्लिम किसानों ने एकता का प्रदर्शन किया। इसमें बटाईदार किसानों ने निर्णय किया कि वे फसल का 2/3 हिस्सा लेंगे और जमींदारों को 1/3 हिस्सा ही देंगे। बंटवारे की इसी अनुपात के कारण इसे तेभागा आन्दोलन कहते हैं। इस आन्दोलन में मुस्लिम किसानों के साथ महिलाओं की भी व्यापक भागीदारी रही। सरकारी दमन कांग्रेस तथा लीग की उदासीनता तथा किराए पर जमीन उठाने वाले बंगाली मध्यमवर्ग के कारण तथा मार्च 1947 के अंत में कलकत्ता में दुबारा दंगों की शुरुआत तथा इसके परिणाम ने आन्दोलन को स्थगित करने पर मजबूर कर दिया।

तेलांगना आन्दोलन (1946–1951 ई.) : हैदराबाद रियासत में तेलांगना किसानों का व्रिदोह साहूकारों, जमींदारों, व्यापारियों तथा निजाम के अधिकारी वर्ग के विरुद्ध था। यह विद्रोह देशमुख, पटेल, पटवारियों द्वारा जमीनों की लूट, बेगार, और निचली जातियों की महिलाओं के साथ दुर्व्यवहार आदि कारणों से हुआ जिसने अधिकांश जनता को समान रूप से प्रभावित किया। आंध्र महासभा ने किसानों के साथ सहयोग किया। इसे साम्यवादियों ने भी अपना समर्थन दिया ताकि निजाम के प्रभाव को कमजोर किया जा सके। विद्रोह को तब और प्रोत्साहन मिला जब पुलिन ने किसान नेता कुमारैय्या की हत्या कर दी। इनकी शहादत ने व्यापक किसान संघर्ष को जन्म दे दिया जिसका मुकाबला करने के लिए निजाम सरकार ने कम्यूनिस्ट पार्टी तथा आंध्र किसान सभा को गैर कानूनी करार दिया।

परिणाम : इस आन्दोलनों ने परम्परागत जमींदारी व्यवस्था एवं साम्राज्यवादी शासन की जड़े खोद दी। जिससे ऐसा माहौल तैयार हुआ जो राष्ट्रीय आन्दोलन के समय राजनीतिक दलों में कृषि सुधार एक प्रमुख मांग बन गई। किसान आन्दोलनों में आम जन–जागरूक हुए। कई किसान संगठित होकर संगठन बनाये जिन्होंने न केवल किसान आन्दोलनों को नेतृत्व प्रदान किया बल्कि राष्ट्रीय आन्दोलन को एक नई दिशा प्रदान की।

इस प्रकार 20वीं सदी में कई किसान आन्दोलन हुए। जिसका मूलभूत कारण 19वीं सदी जैसे ही थे। लेकिन 20वीं सदी के किसान आन्दोलन का उद्देश्य व्यापक हो गया। 20वीं सदी के किसान आन्दोलनों का

राष्ट्रीय आन्दोलन से जुड़ाव था। अतः 20वीं सदी में चम्पारण किसान आन्दोलन, खेड़ा किसान आन्दोलन, दरभंगा किसान आन्दोलन, संयुक्त प्रांत में आन्दोलन, एका आन्दोलन, मोपला विद्रोह तथा बारदेली सत्याग्रह, वर्ली विद्रोह, तेभागा आन्दोलन आदि हुए।

सन्दर्भ :

1. ग्रोवर, बी. एल., मेहता, अलका, यशपाल : आधुनिक भारत का इतिहास, एस. चन्द, नई दिल्ली, 1981.
2. शुक्ल, आर. एल. : आधुनिक भारत का इतिहास, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालन, दिल्ली विश्वविद्यालय, 1987.
3. सरकार, सुमीत : आधुनिक भारत, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1993.
4. बंधोपाध्याय, शेखर : प्लासी से विभाजन तक और उसके बाद, ओरियंट ब्लैकस्वॉन, नई दिल्ली, 2009.
5. चन्द्र, विपिन : आधुनिक भारत का इतिहास, ओरियंट ब्लैकस्वॉन, नई दिल्ली, 2008.
6. राय, डॉ. सत्या एम. : भारत में उपनिवेशवाद और राष्ट्रवाद, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली, 2011.
7. दत्ता, के. के. : बिहार के लोगों का सामाजिक जीवन, पटना, 1988.
8. दत्ता, के.के., "हिस्ट्री ऑफ द फ्रीडम मूवमेंट इन बिहार" भाग–I, II, III, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना, 1957.
9. मिश्र, गिरीश, : अग्रेरियन प्राब्लेम्स ऑफ द परमानेन्ट सेटलमेंट : ए केस स्टडी ऑफ द चंपारण, दिल्ली, 1978.
10. भट्टाचार्य, सब्यसाची : आधुनिक भारत का आर्थिक इतिहास, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2013.
11. कुमार, डॉ. अजीत : बिहार में अंग्रेजी राज और स्वतंत्रता आन्दोलन, जानकी प्रकाशन, पटना, 2002.
12. पाण्डेय, धनपति : आधुनिक भारत का आर्थिक इतिहास, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 2017.

***

हिन्दी में नाट्यानुवाद की परंपरा

डॉ. मनोज 'विद्यासागर' *

हिन्दी साहित्य में नाटकों के अनुवाद की परंपरा मुख्य रूप से भारतेंदु हरिश्चन्द्र से होती है। स्वंय भारतेंदु ने चौर 'पंचाशिका' (1868) के बंगला संस्करण का अनुवाद 'विद्यासुन्दर' नाम से किया गया था। भारतेंदु से पहले सन् 1862 ई0 में कालिदास कृत अभिज्ञानशाकुन्तलम् का अुनवाद राजा लक्ष्मण सिंह ने करके हिन्दी प्रेमियों का ध्यान आकृष्ट किया था। इस युग में अनुवाद था रूपान्तरण मूलतः संस्कृत, बंगला तथा अंग्रेजी भाषाओं से किए गये। इस दिशा में स्वंय भारतेंदु ने मार्ग दर्शन किया। अनुवाद से न केवल नाटक–साहित्य को नवीन दृष्टि प्राप्त हुई, वरन् हिन्दी साहित्यकारों के रचना –संस्कार को विस्तृत आयाम भी प्राप्त हुआ। यदि संस्कृत भाषा से भवभूति और कालिदास के नाटकों के अनुवाद अधिक हुए तो बंगला से माइकल मधुसूदन दत्त, मनमोहन बसु तथा द्वारिकानाथ गांगुली के नाटकों के। अंग्रेजी भाषा में सबसे ज्यादा प्रभावशाली विलियम शेक्सपीयर हैं जिनके नाटकों के अनुवाद होते रहें है नाटकों के अनुवाद परंपरा का अध्ययन करने के लिए इसे हम तीन खंडों में विभक्त कर सकते है।

1. भारतेंदु युग– 1850–1900 2. प्रसाद युग– 1900–1950
3. राधव युग– 1950 के उपरांत।

भारतेंदु युग में प्रमुख रूप से भवभूति के नाटक उत्तर रामचरित का अनुवाद देवदत्त तिवारी (1871) नंदलाल विश्वास दूबे (1857) लाला सीताराम (1897) मालतीमाधव का लाला शालीग्राम (1881) लाला सीताराम (1898) महावीर चरित लाला सीताराम (1897) तथा कालीदास कृत अभिज्ञानशाकुन्तलम्[1] का नंदलाल विश्वास दूबे तथा मालविक्रागिमत्र का ज्वाला प्रसाद सिंह, लाला सीताराम (1898) ने प्रस्तुत किया। हिन्दीं भाषा में अन्य भाषाओं के नाटकों के अनुवाद करने की प्रेरणा राजा लक्ष्मण सिंह में प्रथम बार बलबती हुई। राजा साहब ने खड़ी बोली में शकुन्तला नाटक का प्रथम गद्यमय अनुवाद प्रस्तुत किया। इन्होंने मेद्यदूत[2] काव्य भी अनुवाद किया।

बंगाल भाषा से सबसे ज्यादा अनुवाद माइकेल मधुसुदन दत्त के नाटक पद्मावती–बालकृष्ण भट्ट (1878) शर्मिष्टा–रामचरण शुल्क (1880) कृष्ण मुरारी व विद्यासुन्दर– रामकृष्ण वर्मा (1899) तथा मनमोहन बसु कृत संती उदित नारायण लाल (1880) द्वारिकानाथ गांगुली के वीरनारी का अनुवाद रामकृष्ण वर्मा (1889) ने किया। इस युग में बंगला से हिन्दी में अनुवाद करनेवालों में रामकृष्ण वर्मा का नाम

---

* ग्राम+पो. गम्हरिया, जिला- मधेपुरा।

विशेष रूप से उल्लेखनीय है। अनुवादकों की भाषा हिन्दी हैं और मूल के भावों को उचित रूप में व्यक्त किया गया है।

अंग्रेजी में सर्वाधिक अनुवाद विलियम शेक्सपीयर के नाटको के हुए। पारसी कम्पनियाँ शेक्सपीयर के नाटकों का उर्दू रूपान्तरण करके उसका अभिनय प्रस्तुत करती थी, जिससे इनके प्रचार–प्रसार में वृद्धि हुई। शेक्सपीयर के कुछ प्रमुख अनुदित नाटक है।

द मर्चेन्ट ऑफ 'वेनिस'– दुर्लभ बंधु – भारतेंदु हरिश्न्द्र वेनिस का सौदागार – श्रीमती आर्य

द कॉमेडी ऑफ एरर्स – भ्रम जालक– मुंसी इमदाद अली – भूल भूलैया लाला सीताराम

एज यू लाइक एट–मन भावन– रोमियों एण्ड जूलियट प्रेमलीला –पुरोहित गोपीनाथ।।

मैकवैथ[3]– सादसेन्द्र साहस– मथुरा प्रसाद उपाध्याय

इसी काल में तोताराम ने जोजेफ एडीसन कृत नाटक'कैटों' का अनुवाद केटोवृतान्त (1879) नाम से किया। इस नाटक में अविकल अनुवाद मिलता है। पात्रों के नाम भी ज्यों के त्यों रख लिये गये है। दृश्य के स्थान पर गंर्भाक का प्रयोग किया गया है। यह इस काल की विशेषता है। इसी नाटक का दूसरा अनुवाद तोताराम जी ने संस्कृत शैली पर प्रस्तावना आदि सहित किया है।

प्रसाद युग नाटक के दृष्टिकोण से काफी अहम् है। जयशंकर प्रसाद इस युग के प्रतिनिधि नाटककार है। इनके आगमन से नाटक को नया मार्ग दर्शक मिला। इन्होंने स्वंय कई प्रकार के नाटको की रचना की है, जिसमें पोराणिक, ऐतिहासिक तथा सामाजिक नाटक प्रमुख है। जयशंकर ने स्वंय किसी नाटक का अनुवाद नहीं किया है, लेकिन प्रसाद की रचनाओं पर अंग्रेजी नाटककार और कवि शेक्सपीयर की नाट्य–तकनीक का विशेष प्रभाव है, कथानक पर भी इसका प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है।

इस युग में भी बंगला, संस्कृत तथा अंग्रेजी भाषा से नाटकों के अनुवाद का सिलसिला जारी रहा है, जिसमें भवभूति कृत उत्तर रामचरित तथा मालती माधव का अनुवाद पंडित सत्यनारायण कविरत्न (1913) ने किया जबकि भासकृत स्वत्नवासवदत्ता– मैथिलीशरण गुप्त (1929) सत्यजीवन वर्मा, प्रतिभा नाटक –बलदेव शास्त्री पंचरात्र मध्यम व्यायोग, प्रतिज्ञायोन्धराय का अनुवाद ब्रजजीवन दास ने किया। इन अनुवादों में कविरत्न ने श्लोको के स्थान पर बड़े मधुर सवैया रखें है जो काफी रूचिपूर्ण है।

संस्कृत के अलावे इस युग में बंगला तथा अंग्रेजी से नाटको का अनुवाद हुआ है। बंगला नाटककार में द्विजेन्द्र लाल राय के नाटको की धुम रही है, जिनमें प्रमुख है– राणा प्रताप नूरजहाँ, शांहजहाँ, चंद्रगुप्त, मेवाड़पन। इनके अनुवाद में

रामचन्द्र वर्मा तथा रूपनारायण पाण्डे का विशेष योगदान है। इसके अलावा बंगला भाषा से कुछ नाटकों का अनुवाद ब्रजनंदन सहाय ने भी किया है। गिरीश धोष तथा रविन्द्रनाथ टैगोर के विसर्जन – मुरारीदास अग्रवाल (1924) डाकधर – प्रो0 रामचन्द्र प्रभाषचंद्र नांदी (1917) अचलायतन – रूपनारायण पाण्डे (1924) लाल कनेर – हजारी प्रसाद द्विवेदी[4] ने बंगला नाटको का हिन्दी अनुवाद किया ।

अंग्रेजी भाषा से शेक्सपीयर[5] के नाटक– ऑथेलो, जूलियस सीजर, किंग लियर, हैमलैट का अनुवाद लाला सीताराम तथा रोमियों जूलियट का अनुवाद चतुर्भज औदीच्च ने किया है।

शेक्सपीयर के अलावा इस युग में जॉन गाल्सवर्दी के तीन नाटक स्ट्राइक, जस्टिस तथा दि सिलबर बॉक्स का अनुवाद प्रेमचन्द्र ने हड़ताल (1930) न्याय (1931) तथा चांदी की डिबिया (1931) नाम से किया। इसी समय श्रीधर पाठक ने गोल्डस्मिथ के 'हरमिट' का 'एकान्तवास' योगी (1886) 'डेजटेड विलेज' का उजड़ग्राम (1889) तथा ट्रेवलर का श्रान्त पथिक नाम से अनुवाद प्रस्तुत किया ।

इसके साथ ही फ्रांस के प्रसिद्ध नाटककार मोलियर के नाटकों का अनुवाद भी इसी काम में हुआ है। जर्मन कवि गेटे के प्रसिद्ध नाटक फााउस्त का अच्छा अनुवाद श्री भोलानाथ शर्मा, एम0 ए0 ने किया है

भारतेंदु युग से शुरू हुई अनुवाद की यात्रा अब आधुनिक युग में पहुँच गई है। यह हिन्दी अनुवाद का आधुनिक युग है। डॉ0 रांजेय राधव इस युग के प्रतिनिधि अनुवादक हैं। इनके आगमन से अनुवाद को नया मार्गदर्शन मिला । राघव ने तीस से ज्यादा ग्रंथो का कुशलतापूर्वक अनुवाद किया है, जिसमें संस्कृत, अंग्रेजी नाटकों की प्रमुखता रहीं है। इनमें संस्कृत से अनूदित रचनाएँ है। शूद्रक कृत मृच्छकटिकम (1957) विशाखदत्त का मुद्राराक्षस (1957) और दण्डी का दशकुमार चरिता (1957) इसके अलावे अंग्रेजी के प्रसिद्ध नाटककार शेक्सपीयर के पन्द्रह (15) नाटकों के अनुवाद भी इन्होंने किया दै। साथ दी विश्व के अन्य प्रख्यात लेखकों गोल्सवर्दी,पियरे लुई तथा सोफोकलीज आदि की कृतियों का अनुवाद किये है।

इस काल में अनूदित नाटक जीवन के विभिन क्षेत्रों से अधिक जुड़े है। तथा उनमें रंगमंचीयता एवं अभिनेयता का विशेष ध्यान रखा गया है। मूल्यों में परिवर्तन हुआ और समाज का ढांचा विगड़ने लगा । महानगरीय जीवन, यान्त्रिकता, औधोगीकरण के कारण जीवन और जगत में अनेक नयी समस्याओं का विकास हुआ। नवीन परिवेश, नवीन भाव–बोध एंव नवीन समस्याऔं ने अनुवादकों को भी प्रभावित कर दिया। अनुवादकों ने पुराना लीक छोड़कर नवीन उभार्गा ग्राहन किया। आज का नाट्य साहित्य विश्व साहित्य के संपर्क में आकर समृद्ध बनने का प्रयास कर रहा है। आसबोर्न, ज्यॉपाल सात्र, ब्रेख्त, जींद के नाट्क 'काकेशियन चाक सर्कल' का हिन्दी अनुवाद खरिया का घेरा, कालबेवर क निर्देशन में मंचन किया

गया। ओ' नील का नाटक मोरिंग विक्रम एलेक्टरा का अनुवाद उपेन्द्रनाथ अश्क ने सन्1968 में 'अभिशप्त' नाम से किया है। रंगकर्मी हबीब तनबीर ने शुद्रक के प्रसिद्ध नाटक मृच्छकटिकम का अनुवाद 'मिट्टी की गाड़ी' (1958) नाम से किया। हिन्दींतर नाटकों बादल सरकार के बंगला नाटक बांकी इतिहास (1969) पगला धोड़ा (1974) विजय तेंदुलकर के मराठी नाटक अमीर (1960) उसकी जात (1969) खामोस अदालत जारी है(1973)। धासीराम कोतवाल (1974) बेबी (1976) की धाड़े (1976) एक जिंदी लड़की (1977) सखाराम बाइंडर (1978) दंभद्वीप (1979) जाति ही साधु की (1981) कमला (1982) ।

गिरीश करनाड के कन्डर नाटक मोहम्मद तुलगक और हयवदन (1973) जयंद दलवी गुजराती नाटक बैरिस्टर (1980) गोविन्द पुरूषोत्तम देश पाण्डे का नाटक उध्वस्त धर्मशाला का अनुवाद हिन्दीं में हुआ है। अद्यतन प्रमुख अनुदित नाटक है। प्राचीन सेन गुप्ता कृत पन्नाधाय (बंगला) अनुवादक नैमिचंद्र जैन तथा विजय तेदुलकर कृत मसाज (मराढ़ी) अनुवादक सुषमा वक्षी (1909)।

अन्य विदेशी भाषा उत्कृष्ट रचनाओं के अनुवाद हिन्दीं में होते रहे है। जिससे हमारा नाट्य साहित्य का काफी समृद्ध हो रहे है। अनुवाद के माध्यम से हम दुसरे साम्राज्य की संस्कृति तथा सभ्यता तथा रीति–रिवाज इत्यादि को समझने में सक्षम होते है। अनुवाद से भाषाओं की अभिव्यक्ति क्षमता बढ़ती है। भाव–विचार के नए केन्द्र खुलते है। मुल्यवान अनुवादों से सृजनशील– साहित्य निशचित रूप से प्रभावित होते है। अनुवाद किसी भाषा का दूसरी भाषा की ओर मैत्री का कदम है। सहयोग तथा सहकारिता भाषा के विकास के लिए आवश्यक है। भाषा साहित्य समाहित होते ळें

सन्दर्भ :

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास – सं. डॉ. नगेन्द्र प्रकाशकः– मयुर पेपर वेक्स नोएडा– 1991., पृ. 471.
2. हिन्दी साहित्य का इतिहास– सं. आचार्य रामचन्द्र शुल्क प्रकाशकः– नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी– 1999, पृ. 270.
3. हिन्दी साहित्य का इतिहास – आचार्य रामचन्द्र शुल्क प्रकाशकः– नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी– 1999., पृ. 270.
4. हिन्दी नाटको पर पाश्चात्य प्रभाव डॉ. श्रीपति शर्मा, प्रकाशकः– विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा– 1961, पृ. 110.
5. हिन्दी साहित्य का इतिहास – सं. डॉ. नगेन्द्र प्रकाशकः– मयुर पेपर वेक्स नोएडा– 1991, पृ. 510.

***

शैलीमापक्रमिकी विश्लेषण : उत्तरकांड के संदर्भ में

डॉ. समदर्शी कुमार *

उत्तरकांड का शैलीमापक्रमी विश्लेषण : उत्तरकांड में भी अग्रप्रस्तुति प्रतिमान के चारों अभिलक्षण–विचलन, विपथन, समांतरता और विरलता–प्राप्त होते हैं। यहाँ भी ये अभिलक्षण और साधन दोनों रूपों में सक्रिय हैं? जिनके आधार पर इस कांड में महाकवि तुलसीदास जी के शैली–वैशिष्ट्य को स्थापित किया गया है।

इस कांड में गोस्वामी तुलसीदास जी ने अनेक संवादों की योजना की है। ये संवाद क्रमशः गरुड़–काक–भुशुण्डि, श्री हनुमान–भरत, भरत–श्रीराम, शिव–पार्वती, गरुड़–नारद, गरुड़–ब्रह्मा एवं गरुड़–शिव संवाद हैं।

विचलनपरक शैलीमापक्रमी विश्लेषण : शैलीमापक्रमी दृष्टि से मानस के उत्तरकांड में प्रोक्तिस्तरीय विचलन के चारों प्रकार सक्रिय हैं। यहाँ क्रमशः परिमाण–सूत्र, संबंध–सूत्र, गुण–सूत्र एवं प्रविधि–सूत्र के अतिक्रमण से उत्सृजित विचलन के उदाहरण द्रष्टव्य हैं।

परिणाम – सूत्र के खंडन पर आधारित

शिव–पार्वती संवाद का संदर्भ :

पार्वती शिवजी से पूछती हैं–

"राम परायन ज्ञानरत गुनागार मतिधीर।
नाथ कहहुँ केहि कारन पाएउ काक–सरीर।।
तेहि केहि हेतु काग सन जाई। सुनी कथा मुनि निकट बिहाई।।
कहहु कवन बिधि भा संवादा। दोउ हरिभगत काग उरगादां।"[1]

इसके उत्तर देने से पहले शिवजी प्रसन्न होते हैं फिर पार्वती जी की बड़ाई करते हैं एवं श्रीराम की परम पवित्र इतिहास की माहात्म्य बताते हैं और अंत में उसके प्रश्न का उत्तर देते हैं–

"गौरि गिरा सुनि सरल सुहाई। बोल शिव सादर सुख पाई।।

X X X

से सब सादर कहिहौं सुनहु उमा मन लाइ।।"[2]

अतः पार्वती जी के प्रश्न का उत्तर देने से पहले बहुत कुछ कहने अर्थात् अपेक्षा से अधिक कहने के कारण परिमाण–सूत्र का खंडन हो जाता है। फलतः विचलन स्वरूपित होता है।

गरुड़ काकभुशुण्डि संवाद में सबसे दुर्लभ शरीर के विषय में पूछने का संदर्भ गरुड़–काकभुशुण्डि से कहते हैं–

---

* भारतीय नगर वार्ड नं. 26, निकट, सलहेश स्थान सहरसा

"प्रथमहि कहहु नाथ मतिधीश। सबते दुर्लभ कवन सरीरा।"[3]

फिर काकभुशुण्डि कहते हैं–

"तात सुनहु सादर अति प्रीती। मैं संक्षेप कहौं यह नीती।।
नर तन सम नहिं कवनिउ देही। जीव चराचर जाचत तेही।।"[4]
"नरक स्वर्ग अपबर्ग निसेनी। ज्ञान बिराग भगति सुभ देनी।।
काचु किरिच बदले ते लेहीं। कर ते डारि परसमनि देही।।"[5]

उपर्युक्त प्रोक्ति में गरुड़ काकभुशुण्डि से कहते हैं, हे नाथ आप मुझे बताइये कि सबसे दुर्लभ शरीर कौन है? इसके उत्तर में काकभुशुण्डि जी यह बताते है कि मानव शरीर सबसे दुर्लभ हैं। इसके अलावा भी वे यह बताते हैं कि स्वर्ग तथा मोक्ष की सीढ़ी है और ज्ञान–वैराग्य, कल्याण को देने वाला है। वह मनुष्य जो शरीर धारण करके विषयों में अनुरक्त रहते हैं, वे पारसमणि को हाथ से फेंक देते हैं। इसके बदले में वे कांच का टुकड़ा ही लेते हैं। यहाँ यह प्रश्न गरुड़ ने नहीं पूछा था कि शरीर किसका साधन है, जिसका वे उत्तर देते हैं।

अतः यहाँ अपेक्षा से अधिक कहने के कारण परिणाम–सूत्र का खंडन होता है। फलतः विचलन स्वरूपित होता है।

गरुड़–काकभुशुण्डि संवाद में मानस–रोग पूछने का संदर्भ :

गरुड़ काकभुशुण्डि से मानस–रोग पर प्रकाश डालने का निवेदन कहते हैं–

"मानसरोग कहहु समुझाई। तुम्ह सर्वज्ञ कृपा अधिकाई।"[6]

काकभुशुण्डि उत्तर देते हैं–

"सुनहु तात अब मानस रोगा। जिन्ह ते दुख पावहि सब लोगा।।
मोह सकल व्याधिन्ह कर मूला। तिन्ह ते पुनि उपजहि बहु सूला।।
काम बात कफ लोभ अपारा। क्रोध पित्त नित छाती जारा।
प्रीति करहिं जौं तिनिउ भाई। उपजै सन्यपात दुखदाई।"[7]
"एहि बिधि भलेहि सो रोग नसाहीं। नाहिंत जतन कोटि नहिं जाहीं।"
"विषम मनोरथ दुर्गम नाना। ते सब सूल नाम को जाना।।
जनिअ तब मन बिरुज गोसाँई। जब उरबल बिराग अधिकाई।।"[8]

उपर्युक्त प्रोक्ति में गरुड़–काकभुशुण्डि से सिर्फ मानस रोग के बारे में पूछते हैं कि मानस रोग क्या है? इसके उत्तर में काकमुशुण्डि मानस रोग के बारे में बताने के अलावा इस रोग के निवारण का भी उपाय बताते हैं, जिनके विषय में गरुड़ जी ने नहीं पूछा था।

अतः यहाँ काकभुशुण्डि के द्वारा मानस–रोग के निवारण–हेतु उपाय बताना उत्तर की अपेक्षा से अधिक कथन के रूप में उपस्थित होता है। अतः अपेक्षा से अधिक कहने के कारण यहाँ भी परिमाण–सूत्र का खंडन हो जाता है। फलतः विचलन स्वरूपित होता है।

संबंध–सूत्र के खंडन पर आधारित :

गरुड़ का शंका–निवारण हेतु नारद, ब्रह्मा, शिव तथा काकमुशुण्डि के पास जाने का संदर्भ :

निम्नलिखित प्रोक्ति में गरुड़ द्वारा क्रमशः नारद, ब्रह्मा, शिव एवं काकभुशुण्डि के पास जाने का संदर्भ द्रष्टव्य है –

"प्रभु बंधन समुझत बहु भांति। करत विचार डरग आराती।।"[9]

X X X

"जाइ सुनहुँ तहं हरि गुन भूरी। हाइहि मोह जनित दुख दूरी।
मैं जब तेहि सब कहा बुझाई। चलेउ हरषि मम पद सिरु नाई।
ताते उमा न मैं समुझावा। रघुपति कृपा मरम मैं पावा।"[21]

उपर्युक्त प्रोक्ति में गरुड़ अपने मोह–निवारण हेतु नारद के पास जाते हैं। नारद जी उनका मोह–निवारण करने के बजाय उन्हें अपनी घटना सुनाते हैं कि मुझे भी एक बार ऐसा ही मोह हुआ था। फिर इसके बाद वह गरुड़ जी को ब्रह्मा के पास भेज देते हैं। ब्रह्मा जी भी उनके मोह–निवारणार्थ उन्हें शिवजी के पास जाने की सलाह देते हैं। यह सलाह गरुड़ जी ने नहीं माँगी थी। फिर गरुड़ जी शिवजी के पास जाते हैं। और शिवजी भी उन्हें काकभुशुण्डि के पास जाने को कहते हैं।

अतः उपर्युक्त प्रोक्ति में नारद से लेकर शिवजी तक किसी ने भी इनका मोह–निवारण नहीं किया, साथ ही उन्हें सलाह दे डाली। यहाँ शंका–निवारण हेतु आग्रह किया गया था किसी से पर उत्तर मिला किसी से। प्रश्न किया कुछ और, उत्तर के रूप में मिला परामर्श–मात्र–फलतः यहाँ संबंध–सूत्र का खंडन हो जाता है और विचलन स्वरूपित होता है।

काक का पूर्वजन्म में शिव मंदिर में शिवनाम जपने के क्रम में गुरु को प्रणाम नहीं करने के कारण शिव द्वारा उसे शाप देने का संदर्भ :

गरुड़ काकभुशुण्डि से अपने पूर्व जन्म की कथा कहते हैं :–

"एक बार हर मंदिर जपत रहेउं सिवनाम।

X X X

महाविटप कोटर महुं जाई। रहु अधमाधम अधगति पाई"[22]

उपर्युक्त प्रोक्ति में काक पूर्वजन्म में मानव होता है। वह शिवमंदिर में शिव की पूजा करता होता है। वहीं गुरू आते हैं। पर वह उन्हें उठकर प्रणाम नहीं करता है। इस पर शिव जी कुपित होकर उसे शाप दे देते हैं।

यहां काकभुशुण्डि शिवमंदिर में शिव को प्रसन्न करने हेतु उनसे वरदान हेतु उनकी पूजा करता है। पर उसे मिलता है शाप। यहाँ पाने की कामना कुछ और है पर मिला कुछ और है। अतः यहाँ भी संबंध–सूत्र का खंडन हो जाता है। फलस्वरूप विचलन उभरता है।

गुण–सूत्र के खंडन पर आधारित :

काकभुशुण्डि द्वारा श्रीराम के मुख–विवर प्रवेश में अनेकानेक ब्रह्माण्ड देखने का संदर्भ :

निम्नलिखित प्रोक्ति में काकभुशुण्डि ने श्रीराम के मुख विवर में प्रवेश कर जो–जो देखा है वह सारा कुछ यहाँ द्रष्टव्य है–

"मूदेउं नयन त्रसित जब भयउं। पुनि चितवत कोसलपुर गयऊं।।
मेहि बिलोकि रामु मुसुकाहीं। बिहँसत तुरत गयउं मुख माहीं।"[23]
"उदर मांग्न सुनु अंजराया। देखेउं बहु ब्रह्मांड निकाया।।

X X X

प्रति ब्रह्माण्ड राम अवतारा। देखौं बाल विनोद अपारा।।"[24]
"देखि कृपाल बिकल मोहि बिहंसे तव रघुवीरा।
"देखेउँ जन्ममहोत्सव जाई। बिधि प्रथम कहा मैं गाई।।
बिहंसत ही मुख बाहेर आएउं सुनु अति धीर।।"[25]

उपर्युक्त प्रोक्ति में काकमुशुण्डि का ह कहना कि जब मैं भयभीत हो गया तब मैंने आँखें मूंद लीं। फिर जब मैंने आँखें खोलीं तो मैं अवधपुरी पहुँच गया। मुझे देखकर श्रीरामचन्द्र जी मुस्कुराने लगे। उनके हँसते ही तुरंत मैं उनके मुख में चला गया। फिर मैंने वहाँ बहुत से ब्रह्माण्ड–समूह देखे, अत्यन्त विलक्षण अनेक लोक देखे, करोड़ों ब्रह्मा और शिव, अगणित तारागण, सूर्य और चंद्रमा, अगणित लोकपाल, अगणित यम, अगणित काल, अगणित विशाल पर्वत, बड़ी विस्तृत पृथ्वी, असंख्य समुद्र, नदी, तालाब, वन, देवता, मुनि, सिद्ध, नाग, नर, किन्नर और जड़–चेतन सहित चारों प्रकार के जीव देखे। प्रत्येक ब्रह्माण्ड में अपना रूप देखा, प्रत्येक भुवन में पृथक्–पृथक् अवधपुरी देखी, भिन्न–भिन्न स्त्री–पुरुष देखे, प्रत्येक ब्रह्माण्ड में रामावतार और अपार कालकेलि देखता फिरता था। फिर श्रीराम का जन्मोत्सव देखा तब दयालु श्रीराम जीम ुझे व्याकुल देखकर हँस दिये और प्रभु के हंसते ही मै मुख के बाहर आ गया।

ये सभी बातें सामान्य तौर पर अपरिमाप्य और मान्य नहीं है, जिस कारण यहाँ गुण–सूत्र का खंडन हो जाता है। फलतः विचलन स्वरूपित होता है।

लोमश ऋषि के आश्रम में उनके शाप से नर–देह से चांडाल पक्षी की देह धारण करने का संदर्भ :–

निम्नलिखित प्रोक्ति में लोमश ऋषि के शापवश नररूप काकमुशुण्डि के काक देह धारण करने का संदर्भ द्रष्टव्य है :–

"पुनि पुनि सगुन पक्ष मैं रोपा। तब मुनि बोलेउ बचन सकोपा।

X X X

सुमिरि राम रघुबंसमनि हरषित चलेउं उड़ाइ।"[26]

उपर्युक्त प्रोक्ति में लोमश ऋषि के शाप के कारण नर–देह से चांडाल पक्षी कौआ के रूप में परिवर्तित हो जाना असंभव और अपरिमाप्य है। फलतः गुण–सूत्र का खंडन हो जाता है और विचलन स्वरूपित हो पड़ता है।

प्रविधि–सूत्र के खंडन पर आधारित

तुलसीदास जी द्वारा श्रीराम के बारे में आलंकारिक अभिव्यक्तिवश प्रविधि–सूत्र का खंडन :

निम्नलिखित प्रोक्ति में तुलसीदास कहते हैं कि–

"कोसलेन्द्र पदकन्जमंजुलौ कोमलावजमहेशवन्दितौ।

X X X

कारुणीककलकंज लोचनं नौमि शंकरमनङ् गमोचनं।।"[27]

श्रीराम के कंठका रंग मोर–रूपी नील वर्ण है। कमलरूपी नयन है। कमलरूपी हाथ–पैर भी हैं मनरूपी भैरा एवं कुंद के फूल रूपी शरीर है। यह सभी प्रोक्तियाँ अपनी अस्पष्टता और आलंकारिकता के कारण प्रविधि–सूत्र का खंडन कर देती है। फलतः प्रोक्तिस्तर विचलन उभरता है।

शिवजी द्वारा श्रीराम के गुण–वर्णन में आलंकारिक अभिव्यक्तिवश प्रविधि–सूत्र खंडन का संदर्भ

"रजनीचर वृन्द पतंग रहे। सर पावक तेज प्रचंड रहे।

X X X

अति दीन मलीन दुखी नितही। जिन्ह के पद पंकज प्रीति नहीं।"[28]

उपर्युक्त प्रोक्ति में रावण के मरणोपरांत देवताओं द्वारा श्रीराम के बारे में यह कहना कि निशिचरवृन्द पतंग–रूप थे जो आपके बाणरूपी अग्नि की तीक्ष्ण आँच में जल मरे। महामोह और महाममतारूपी रात्रि के अंधकार–समूह के लिए आप सूर्यरूप, किरण–समूह हैं। कामदेवरूपी किरातन ने मनुष्यरूपी हरिणों के हृदय में कुभोगरूपी बाण मारकर उसका नाश किया है, जो आपके चरण–कमलों में प्रेम नहीं करते, वे मनुष्य अथाह भवसागर में पड़े रहते हैं। जिनका प्रेम आपके चरण कमलों में नहीं है, वे नित्य ही अत्यन्त दीन–मलीन रहते हैं। अतः उपर्युक्त प्रोक्ति में स्पष्टता के अभाव में आलंकारिकतावश प्रविधि–सूत्र का खंडन हो जाता है। फलतः विचलन उभरता है।

पुरवासियों का श्रीराम को भेजने को कहने में आलंकारिक अभिव्यक्तिवश प्रविधि–सूत्र के खंडन का संदर्भ

"जलज बिलोचन स्यामल गातहि। पलक नयन इव सेवक त्रातहि।
घृत सर रुचिर चाप तूनीरहि। संतकंज बनरबि रनधीरहि।"[29]
"काल कराल ब्याल खगराजटि। नमत राम अकाम ममता जहि।"
बहु वासना मसक हिम रासिहि। सदाएकरस अज अविनासिहि।"[30]

उपर्युक्त प्रोक्ति में जहाँ–तहाँ लोग रघुनाथ जी का गुण–गान करते हुए एक दूसरे को यही सिखाते हैं कि कमलनयन, श्यामल शरीर वाले पलकों से नेत्र की रक्षा करने के समान सेवक की रक्षा करने वाले श्रीराम को भजो। संतरूपी कमलवन को, सूर्यरूप श्रीराम को भेजो। कालरूपी कराल सर्प के लिए श्रीराम रूप गरूड़ को भजो, लोभ, मोहरूपी मृगसमूह के लिए श्रीराम–रूपी किरात को भजों। कामदेव–रूपी हाथी के लिए जन को सुख देने वाले राम–रूप सिंह को भजो। कामदेव–रूपी हाथी के लिए जन

को सुख देने वाले राम–रूप सिंह को भजो। संशय और शोकरूप सघन अंधकार के लिए श्रीराम–रूप सूर्य को भजो। राक्षसरूप घने बन को जलाने वाले श्रीराम–रूप अग्नि को भजो। राक्षस–रूप घने वन को जलाने वाले श्रीराम–रूप अग्नि को भजो एवं बहुत–सी वासनाओं रूपी मच्छड़ों के लिए रामरूपी पाला–समूह को भजो।

अतः यहाँ उपर्युक्त प्रोक्ति में आलंकारिक भाषा के प्रयोग के कारण प्रविधि–सूत्र का खंडन हो जाता है। फलतः विचलन स्वरूपित होता है।

रामप्रताप रूपी सूर्य के उदय होने से काम, क्रोध, मद, मत्सर, शोकानुभूति की आलंकारिक अभिव्यक्तिवश प्रविधि–सूत्र के खंडन का संदर्भ :

'जब ते रामप्रताप खगेसा। उदित भयउ अति प्रबल दिनेसा।
पूरि प्रकास रहेउ तिहुं लोका। बहुतेन्ह सुख बहुतन मन सोका।'[31]
"जिन्हहि सोक ते कहउं बखानी। प्रथम अबिधा नसान नसानी।
सुख संतोष विराग बिबेका। बिगत सोक ए कोक अनेका।"[32]

उपर्युक्त प्रोक्ति में रामप्रताप सुनकर गरुड़ जी को शंका न हो, इस विचार से काकभुशुण्डि जी उनको संबोधित करके कहते हैं, हे पक्षिराज, जब से रामप्रताप–रूपी अत्यन्त प्रचण्ड सूर्य उदय हुआ है तब से तीनों लोकों में पूरा प्रकाश छाया रहा है। पापरूपी उल्लू जहाँ तहाँ छिप गये और काम–क्रोधरूपी कैरव सिकुड़ गये। अनेक कर्म, गुण काल और स्वभाव–ये चकोर हैं जो कभी भी सुख नहीं पाते। मत्सर, मान मोह और मदरूपी चोरों का गुण किसी भी दिशा में नहीं चल पाता। धर्मरूपी तालाब में ज्ञान और विज्ञान–रूपी अनेक प्रकार के कमल खिल उठे हैं। सुख, संतोष, वैराग्य और विवेकरूपी अनेक चक्रवाक शोक–रहित हो गये हैं।

अतः यहाँ आलंकारिक प्रयोगवश प्रविधि–सूत्र का खंडन हो जाता है। फलतः विचलन उभरता है।

गरुड़ द्वारा ज्ञान विवेचन की आलंकारिक अभिव्यक्तिवश प्रविधि–सूत्र के खंडन का संदर्भ :

"जीव हृदयं तम मोह बिसेषी। ग्रंथि छूट किमी परडन देखी।"[33]
'गंथि न छूटि मिटा सो प्रकासा। बुद्धि बिकल भइ विषय बतासा।'[36]

उपर्युक्त प्रोक्ति में काकमुशुण्डि जी गरुड़ को ज्ञान के बारे में कहते हैं कि जीव के हृदय में मोहरूपी अंधकार प्रबल है। गांठ देख नहीं पड़ती तब छूटे कैसे? यदि भगवान की कृपा से सात्विकी श्रद्धारूपी सुन्दर गो–हृदयरूपी घर में आकर बसे और हरी घास चरे तब भाव–रूप शिशु को पाकर पिन्हावे। तब हे भाई, परम धर्ममय दूध दुहकर निष्कामतारूपी अग्नि बनाकर उस परम दूध को औंटे। तब क्षमा–संतोषरूपी पवन से उसे ठंडा करें और समतारूपी दही का सम जामन देकर उसे जमावे तथा मुदितारूपी माध में विचाररूपी मथानी से, इन्द्रिय दमन रूपी आधार में सत्य एवं उत्तम प्रिय वाणीरूपी रस्सी लगाकर दही को मथकर निर्मल, सभग और अत्यन्त पवित्र वैराग्यरूपी मक्खन निकाल लें। तब योगरूपी अग्नि प्रकट करके

शुभाशुभ कर्म–रूपी इंधन लगाके ममतारूपी मैल जल जाय, ज्ञानरूपी घी रह जाय, तब बुद्धि उसे ठंडा करे। तब विज्ञानरूपिणी बुद्धि स्वच्छ घी पाकर, चित्त–रूपी दिया उसे भरकर समतारूपी दृढ़ दीयट बनाकर, उस पर दृढ़ करके धरे। कपास से तीनों अवस्थाएँ (जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति) और तीनों गुण (सत्व, रज, तम) इनको निकालकर तब तुरीयावस्थारूपी रूई को सँवार सुन्दर, कड़ी बत्ती बनावे। इस प्रकार तेज–राशि विज्ञानमय दीपक जलावे, जिसके समीप जाते ही मदादि पतंग जल जाये। तब बुद्धि प्रकाश प्राप्त करे, हृदय–रूपी अपने घर में बैठकर गांठ को छोड़ती है, तब कल–बल और छल करके पास जाती है और अंचल की वायु से दीपक को बुझा देती है। इन्द्रियहार और उर–गृह के अनेक झरोखे हैं। वे देवता जब विषयरूपी पवन का झोंका आते देखते है तब हठपूर्वक दरवाजे खोल देते हैं। जब वह पवन–झकोर हृदयरूपी घर में जाता है तब विज्ञान दीपक को बुझा देता है। गांठ ने छूटी और वह प्रकाश भी जाता रहा। विषयरूपी पवन से बुद्धि व्याकुल हो गयी।

अतः उपर्युक्त प्रोक्ति सघन आलंकोरिक अभिव्यक्तिवश प्रविधि–सूत्र के खंडन का उदाहरण है। फलतः यहाँ विचलन स्वरूपित हो उठता है।

काकभुशुण्डि द्वारा गरुड़ के भक्ति–विषयक कथन में आलंकारिक अभिव्यक्ति का संदर्भ :

"कहेउँ ग्यान सिद्धांत बुझाई। सुनहु भगति भनीकै प्रभुताई।।
राम भगति चिंतामनि सुंदर। बसइ गरुड़ जाके उर अंतर।।"[37]

X X X

"ब्रह्म कथा सुधा मथि गाढ़हि भगति मधुरता जाहिं।
"बिरति चर्म असि ग्यान मद लोभ मोह रिपु मारि।
जय पाइअ सो हरि भगति देखु खगेस बिचारि।।"[42]

उपर्युक्त प्रोक्ति में काकभुशुण्डि गरुड़ जी से कहते हैं ज्ञान का सिद्धांत मैंने समझाकर कहा। अब भक्तिरूपिणी मणि की प्रभुता सुनिए। हे गरुड़ रामभक्ति–रूपिणी सुन्दर चिंतामणि जिसके हृदय के भीतर हैं दिन–रात वह परम प्रकाशमय रहता है। मोहरूपी दारिद्य पास नहीं आता और न ही लोभरूपी पवन उसे कभी बुझाता है। काकभुशुण्डि कहते हैं कि रामभक्ति–रूपी मणि जिसके हृदय में बसती है उसे स्वप्न में भी लेशमात्र दुःख नहीं होता है। वेद, पुराण पवित्र पर्वत–रूप हैं। नाना प्रकार की रामकथाएँ उन–उन पर्वतों की सुन्दर खान–रूप हैं। सज्जन इन खानों के भेदी–रूप हैं। सज्जनों की सुन्दर बुद्धि उसे खोदने वाली कुदाल–रूपा है। ज्ञान और वैराग्य नेत्र–रूप हैं। जो प्राणी भावसहित खोजेगा वह सब सुखों की खान भक्तिरूपी मणि को पा लेगा। सब साधनों का फल सुन्दर रामभक्ति है। 'ब्रह्म' क्षीरसागर, ज्ञान, मंदराचल और संत देवता है जो उस समुद्र को मथकर कथारूपी अमृत को निकाल लेते हैं जो वैराग्यरूपी ढाल और ज्ञानरूपी तलवार से मद–लोभ, मोहरूपी शत्रुओं को मारकर जय प्राप्त

करते हैं। अतः उपर्युक्त प्रोक्ति में स्पष्ट कथन की जगह आलंकारिक अभिव्यक्तिवश प्रविधि सूत्र का खंडन हो जाता है। फलतः विचलन उभरता है।

तुलसीदास की रामप्रियता के कथन में आलंकारिक अभिव्यक्तिवश प्रविधि–सूत्र के खंडन का संदर्भ

उत्तरकांड के उपांत में तुलसी कहते हैं –

"कामहिं नारि पियारि जिमि लोभिहिं प्रिय जिमि दाम।

X X X

तिमि रघुनाथ निरंतर प्रिय लागहु मोहि राम।।"[43]

उपर्युक्त प्रोक्ति के अनुसार जैसे कामी को स्त्री प्यारी लगती है और लोभी को दाम (धन) प्रिय लगता है, वैसे ही रघुकुल के स्वामी राम मुझे निरंतर प्रिय लगते हैं। अतः यहाँ भी स्पष्ट कथन की जगह आलंकारिक भाषिक अभिव्यक्तिवश प्रविधि–सूत्र का खंडन हो जाता है और विचलन उभरता है।

विपथित शैलीमापक्रमी विश्लेषण :

राम के राजभिषेक के उपरांत सभी की विदाई होने पर हनुमान की विदाई नहीं होने से मानक के अतिक्रमणवश उत्पन्न विपथन :

निम्नलिखित प्रोक्तियों में राम के राज्यभिषेक के उपरांत श्रीराम के द्वारा सभी को विदाई दी जाती है–

"अब गृह जाहु सखा सब भजेहु मोहिह दृढ़ नेमं।

X X X

"सुनु सर्वज्ञ कृपा सुख सिंधो। दीन दयाकर आरत बंधों।।[44]

"अस कटि कपि सब चले तुरंता। अंगद कहै सुनहु हनुमता

X X X

चरन नलिन उर धरि गृह आवा। प्रभु सुमाउ करि जनन्हि सुनावा।।"[46]

उपर्युक्त प्रोक्ति में श्रीराम सबको अपने–अपने घर जाने को कहते हैं और उन्हें देने हेतु रंग–बिरंगे सुन्दर अनुपमेय भूषण, वस्त्र मँगातें हैं। सबसे पहले भरत ने सुग्रीव को वस्त्र पहनाये, फिर प्रभु की प्रेरणा से विभीषण को लक्ष्मण जी ने भूषण–वस्त्र पहनाये। श्री जांबवन्त, नीलादि सबको श्रीरघुनाथ जी ने वस्त्राभूषण पहिनाये। ये सभी अपने–अपने हृदय में रामरूप के चरणों में माथा नवाकर चले। फिर अंगद प्रभु के पास आए और बहुत ही प्रकार से अपनी दीनहीनता को बताते हुए कहा कि हे प्रभु, मेरा तो कोई नहीं है। पिता ने आपके ही हाथ मुझे सौंपा है, इसलिए आप अपने साथ मुझे रख लें। मैं आपका हर एक काम करूँगा। कृपया मुझे अपने से दूर न करें। पर प्रभु ने उसे भी बहुत प्रकार से समझाकर अपने हृदय पर की माला, वस्त्र, भूषण पहना कर विदा किया। भक्तों के उपकार को चित्त में रखकर भाई लक्ष्मण और शत्रुध्न सहित सबको पहुँचाने चले। तब हनुमान जी ने सुग्रीव के चरणों को पकड़कर अनेक प्रकार से विनय की कि थोड़े

दिनों रघुनाथ जी की सेवा करके हे देव, आपके चरणों का दर्शन करूँगा। ऐसा कहकर हनुमान प्रभु के पास लौट कर आ गए। फिर दयालु श्रीराम जी ने निषादराज को बुला लिया और उनको भूषण, वस्त्र, प्रसाद दिये। फिर कहा कि घर जाओ, हमारा स्मरण करते रहना। मन, कर्म, वचन से धर्म पर चलते रहना। तुम मेरे सखा हो और भरत समान भाई हो। सदैव अवधपुरी आते–जाते रहना।

अतः यहाँ श्रीराम जी द्वारा सभी को विदाई देकर घर जाने को कहने पर हनुमान जी को विदाई नहीं देने और अवधपुर में ही रहने देने के कारण सबको विदाई देने का जो मानक बना है वह मानक टट जाता है। फलतः यहाँ विपथन स्वरूपित होता है।

समांतरित शैलीमापक्रमी विश्लेषण :

समतामूलक समांतरित विश्लेषण :

रामचरितमानस में रामकथा के भीतर राम–कथा कहने से उत्पन्न समतामूलक समांतरता :

"सुनत गरुइ कै गिरा बिनीता। सरल सुप्रेम सुखद सुपुनीता।।
भएउ तासु मन परम उछाहा। लाग कहइ रघुपति गुनगाहा।।
प्रथमहिं अति अनुराग भवानी। रामचरित सर कहेसि बखानी।।[47]

X X X

जेहि बिधि राम नगर निज आए। बायस बिसद चरित सब गाए।।
कहेसि बहोरि राम अभिषेका। पुर बरनत नृप नीति अनेका।।
कथा समस्त भुसुंडि बखानी। जो मैं तुम्ह सन कही भवानी।।[50]

उपर्युक्त प्रोक्ति में रामायण के भीतर रामायण कही गयी है। यहाँ रामचरितमानस में श्रीराम की संपूर्ण कथा तो कही गयी है फिर भी इस कथा के अंतर्गत भी एक रामकथा और कही ही गयी है। जिसमें राम के जन्म से लेकर राज्याभिषेक तक का वर्णन हुआ है।

अतः यहाँ व्यापक रामचरितमानस के भीतर लघु रामायण के कहने के कारण समतामूलक समांतरता उत्पन्न हो जाती है।

श्री हनुमान द्वारा राम के अयोध्या–आगमन का संदेश भरत को देने और भरत के द्वारा यही संदेश पुरवासियों को देने की प्रसन्नता–परिणाम की समतामूलक समांतरता :

"रिपु रन जीति सुजस सुर गावत। सीता सहित अनुज प्रभु आवत।।
सुनत बचन बिसरे सब दूखा। तृषावंत जिमि पाइ पियूषा।।"[51]
हरषि भरत कोसलपुर आए। समाचार सब गुरहिं सुनाए।
सुनत सकल जननी उठि धाई। नर अरु नारि हरषि सब धाए।।"[52]

उपर्युक्त प्रोक्ति में हनुमान जी द्वारा श्रीराम के लक्ष्मण–सीता सहित आने का संदेश भरत को दिया जाता है। भरत जी पुनः प्रसन्नतापूर्वक यही संदेश माताओं और पुरवासियों को देते हैं। इस समाचार से वे सब भरत की ही तरह प्रसन्न होते हैं। यहाँ भरत जी का हनुमान द्वारा संदेश सुनने के

बाद प्रसन्न होने तथा पुनवासियों का भी संदेश सुनने के बाद प्रसन्न होने की प्रतिज्ञप्ति की समतामूलक समांतरता उभरती है।

श्रीराम–बसिष्ठ मिलन एवं श्रीराम–भरत मिलन की समतामूलक समांतरता :

यहाँ प्रभु से दोनों के मिलन की प्रकृतिगत समानता द्रष्टव्य है–

"बामदेव बसिष्ठ मुनि नायक। देखे प्रभु महि धरि धनु सायक।।
धाइ धरे गुर चरन सरोरुह। अनुज सहित अति पुलक तनोरूह।
भेंटि कुसल बूझी मुनि राया। हमरे कुसल तुम्हारिहिं दाया।।
स्कल द्विजन्ह मिलि नायए माथा। धर्म धुरंधर रघुकुल नाथा।।[53]
"गहे भरत पुनि प्रभु पद पंकज नमत जिन्हहि सुर मुनि संकर अज।।
अति प्रेम हृदय लगाइ। अनुजहि मिले प्रभु त्रिभुवन धनी।।"[54]

उपर्युक्त प्रोक्ति में श्रीराम जब वन से अयोध्यापुरी वापिस आते हैं तब वे पहले गुरु वशिष्ठ और तत्काल बाद भरत जी से मिलते हैं। अतः यहाँ राम का गुरु वशिष्ठ और भरत से मिलने की प्रतिज्ञप्ति की समतामूलक समांतरता स्वरूपित होती है।

श्रीराम–लक्ष्मण–सीता एवं भरत का तपस्वी वेश हटाने की समतामूलक समांतरता :

निम्नलिखित प्रोक्ति में श्रीराम–लक्ष्मण–सीता एवं भरत के तापस वेश को हटाकर राजसी वेश प्रदान करने की समतामूलक समांतरता द्रष्टव्य है–

"पुनि करुनानिधि भरत हँकारे। निजकर राम जटा निरुआरे।।

X X X

पुनि निज जटा राम बिबराए। गुर अनुसासन मानि नहाए।।[55]
"करि भज्जन प्रभु भूषन साजे। अंग अनंग देखि संत लाजे।।
दिव्य बसन बर भूषन अँग अँग सजे बनाइ।।"[56]

उपर्युक्त प्रोक्ति में जब श्रीराम–लक्ष्मण सहित वन से अयोध्यापुरी वापस आते हैं और श्रीराम के राज्याभिषेक की जब तैयारी की जाती है, तब उससे पहले वे श्रीराम–लक्ष्मण तपस्वी वेश उतारकर राजसी वेश धारण कर लेते हैं।

अतः यहाँ चारों के तपस्वी वेश से राजसी वेश के परिवर्तन के कारण समतामूलक समांतरता स्वरूपित होती है।

भरत जी द्वारा श्रीराम से और गरुड़ द्वारा काकभुशुण्डि से संत–असंत के भेद को पूछने में समतामूलक समांतरता :

निम्नलिखित प्रोक्ति में भरत श्रीराम एवं गरुड़ काकभुशुण्डि से संत और असंत के प्रकृतिगत भेद के विषय में पूछते हैं–

"संत असंत भेद बिलगाई प्रनतपाल मोहि कहहु बुझाई।।[57]
संत असंत मरम तुम्ह जानहु। तिन्ह कर सहज सुभाव बखानहु।।"[58]

उपर्युक्त प्रोक्तियों में भरत जी श्रीराम से संत–असंत के भेद पूछते है। यही प्रश्न गरुड़ जी भी काकभुशुण्डि जी से करते हैं। अतः यहाँ दोनों

के द्वारा संत–असंत की भेदक प्रतिज्ञप्ति की समतामूलक समांतरता उभरती है।

वेद, शिव और नारद के द्वारा श्रीराम की स्तुति और गुण–गान करने की प्रतिज्ञप्ति की समतामूलक समांतरता :

सबसे पहले इनमें पहले वेद का स्तवन द्रष्टव्य है। मूलतः यहाँ यह समानता स्तवन की प्रतिज्ञप्तिमूलकतावश है–

"बंदी वेष बेद तब आए जहँ श्रीराम

X X X

जे नाथ कर करूना त्रिलोके त्रिविध दुख जे निर्वहे।"

X X X

"प्रेम सहित मुनि नारद बरनि राम गुन ग्राम।।
सोभासिंधु हृदय धरि गए जहाँ विधि धाम।।"[78]

उपर्युक्त प्रोक्ति में वेद श्रीराम की स्तुति करते हुए कहते हैं कि हे भूप–शिरोमणि आपकी जय हो। आप सगुण–निर्गुण दोनों रूप हैं। आपने रावण तथा दुष्ट राक्षसों को अपनी भुजा के बल से मारा। आपने मनुष्य–रूप में अवतार लेकर संसार के भार और दुखों को भस्म कर दिया है। हे प्रभु, आपकी जय हो। भक्ति सहित मैं आपको नमस्कार करता हूँ। हे नाथ, जिन जीवों को आपने करुणा करके देखा उनका तीनों प्रकार के दुखों से निवारण हो गया। हम आपको नमस्कार करते हैं। जिन्होंने ज्ञान के अभिमान से विशेष मतवाले होकर आपकी आवागमन छुड़ाने वाली भक्ति का आदर न किया, हे हरि, वे देवताओं को भी कठिनता से प्राप्त होने वाले पद को पाकर भी उस पद से गिर पड़ते हैं। जो सब आशा–भरोसा छोड़कर विश्वास करके आपके दास होकर रह गये हे नाथ, वे आपका नाम जपकर बिना परिश्रम ही भवपार हो जाते हैं।

श्री शिव और ब्रह्मा जी पूज्य जिन चरणों की कल्याणकारी रज को स्पर्श करके गौतम मुनि की स्त्री अहल्या तर गयी, जिनके नख से मुनियों से वंदित त्रिलोक को पवित्र करने वाली गंगाजी निकली–आपके दोनों चरण कमलों को हे राम, रमापति, हम नित्य भजते रहते हैं। संसार–रूपी वृक्ष की जड़ 'अव्यक्त' है। यह अनादिकाल से है। इसमें चार त्वचाएँ और छह स्कन्ध हैं। 25 शाखाएँ, अनेक पत्ते और बहुत से फूल हैं। कड़वे, मीठे दोनों प्रकार के फल लगे हैं। इस पर एक ही बेल है जो इस पर आश्रित रहती है। यह नित्य नवीन फूलता है और पत्तों से युक्त रहता है। ऐसे संसार–वृक्ष को मैं नमस्कार करता हूँ। ब्रह्म अज है, अद्वैत है, अनुभव से जाना जाता है और मन से परे हैं, जो ऐसा ध्यान करते हैं, वे ऐसा कहा करें और जानें। हम तो हे नाथ, आपका सगुण यश नित्य गाते हैं। करुणा के धाम, हे सद्गुणों के खानि, हे देव, हम यह वर माँगते हैं कि मन, कर्म वचन के विकारों को छोड़कर हम आपके चरणों में प्रेम करें। इतनी सारी विनती कर वेद अंतर्धान हो गये।

इसके उपरान्त शिव जी स्तुति करते हैं कि हे राम, हे रमारमण, हे रमापति, रामचन्द्र जी आपकी जय हो, संसारताप के के नाश करने वाले भवभय से व्याकुल जन की रक्षा कीजिए। हे अवधपति। हे देवताओं के स्वामी, हे लक्ष्मी के स्वामी, हे प्रभो, हे प्रभो, आपकी शरण प्राप्त कर आपसे माँगता हूँ कि मेरी रक्षा कीजिए। हे दस सिर और बीस भुजावाले रावण के नाश करने वाले, आपने पृथ्वी का समूह महारोग दूर किया। निशिचर बृंद पतंगरूप थे, जो आपके बाणरूपी अग्नि की तीक्ष्ण आँच में जल मरे ! आप पृथ्वी मंडल कं अत्यन्त भूशणरूप है और अति सुंदर श्रेष्ठ वाणए धनुश और तरकश धारण किये हैं। मदमहामोह और महाममता रूपी रात्रि कें अंधकार–समूह के लिए आप सूर्य–किरण–समूह हैं। कामदेव–रूपी किरात ने मनुष्य–रूपी हृदय में कुभेग–रूपी बाण मारकर उनका नाष किया है। हे दुःख के हरने वाले, हे नाथ, उसे मारकर विषय–रूपी वन में भूले हुए नीच अनाणि की रक्षा कीजिए। बहुत से रोगों और वियोगों से लोग मारे गये। यह आपे चरणों के निरादर के फल हैं जो आपके चरण–कमलों में प्रेम नहीं करते वे मनुष्य अथाह भवसागर में पड़े हैं। जिनका प्रेम चरण–कमलों में नहीं है वे नित्य ही अत्यंत दीन, मलीन और दुखी रहते हैं। आपकी कथा का जिन्हें आधार है, उनको सदा संत–भगवंत प्रिय लगते हैं। उनके न राग हैं, न लोभ हैं, न अभिमान हैं, न मद है। उनको सम्पत्ति और विपत्ति – दोनों एक से हैं। इसी से ओपके सेवक आनंदित होते हैं। मुनियोग का भरोसा सदा छोड़ते हैं और आपका सदैव भरोसा रखते हैं। प्रेम करके निरंतर नेम लेकर सदा प्रेम से युद्ध हृदय से चरणकमल की सेवा करते हैं। निरादर और आदर को समान मानकर सब संत आनंद से पृथ्वी पर विचरते हैं। हे रघुवंशी वीर, रण में महाधीर और अजेय होर भी आप मुनियों के मन कमल के भ्रमर होकर उनको भजते हैं। हे हरि मैं आपका नाम भजता हूँ और आपको प्रणाम करता हूँ। हे श्रीपते, आपके चरण कमलों की अविनाशिनी अटल भक्ति और निरंतर सत्संवरदान आपसे माँगता हूँ, इसे आप प्रसन्न होकर दीजिए। तब शिव जी कैलाश को चले गये।

इसके बाद नारद जी प्रभु की सुन्दर और नित्य नवीन कीर्ति का गान करने लगें। है! शोच–विमोचन, कमलदन–लोचन, आप अपनी कृपादृष्टि से मुझाको देखिए। आप कामारि महादेव जी के हृदयकमल के प्रेमरूपी मकरंद–रस के पान करने वाले भ्रमर हैं। आप निशिचर समूह के बल को तोड़ने वाले हैं। मुनियों और सज्जनों को आनंद देने वाले और पापों के नाशक हैं। ब्राह्यण रूपी नयी खेती के लिए आप नवीन मेघ–समूह के समान हैं, जिसको कोई शरण देने वाला नहीं उसके आप शरण्य हैं और दीन जनों को ग्रहण करने वाले हैं। टपने भुजबल से आपने पृळवी का भारी बोझा उतारा एवं उसे चूर7चूर कर डाला। आप खर–दूशण और विराध के वध करने में पंडित हैं। हे रावण के शत्रु, हे आनंद–रूप, हे राज–राजेन्द्र, हे दशरथ महाराज के कुलरूपी कुई के चंद्ररूप श्रीराम जी आपकी जय हो।

आपका सुन्दर यश पुराणों, वेदों और शासें में प्रकट है। देवता, मीनि और संत–समागम होने पर उसे गाते हैं। आप कयुणयुक्त हैं, व्यलीक और मद के नाश करने वाले, सब प्रकार से कुशल और श्री अयोध्या जी के भूषण हैं। आपका नाम कलि के पापों को मथ डालने वाला और ममता का नाशक है। हे तुलसीदास के प्रभु शरणागत की रक्षा कीजिए। तब प्रेम–सहित श्रीराम जी के गुण–गान वर्णन करके नारद मुनि शोभा सागर श्रीराम जी को हृदय में धरकर जहाँ ब्रह्मा जी का धाम था वहाँ चले गये।

अतः उपर्युक्त प्रोक्ति में वेद, शिव और नारद जी द्वारा श्रीराम की स्तुति की प्रतिज्ञप्ति की समतामूलक समांतरता उभरती है।

तुलसीदास जी द्वारा प्रश्न की वृत्तिकता की आवृत्ति से उत्पन्न समतामूलक समांतरता :

निम्नलिखित प्रोक्ति में तुलसीदास जी कहते हैं–

"बिनु गुर होइ कि ज्ञान कि होइ विराग बिनु।

X X X

चलै कि जल बिनु नाव कोटि जतन पचि पचि मरिअ।।[79]

"बिनु संतोष न काय नसाहीं। काम अछत सुख सपने हुँ नाहीं।।
बिनु विज्ञान की समता आवै। कोउ अवकास कि नभ बिनु पावै।।"[80]

वैराग्य के बिना क्या ज्ञान हो सकता है? गुरु के बिना क्या ज्ञान हो सकता है? श्रीहरि के बिना क्या सुख मिल सकता है? स्वाभाविक संतोष के बिना क्या कोई शांति पा सकता है? जल के बिना क्या नाव चल सकती है? श्रीराम–भजन के बिना क्या कामनाएँ मिट सकती हैं आदि–आदि। यहाँ पूरी प्रोक्ति में प्रश्न की वृत्तिकता की आवृत्ति के कारण समतामूलक समांतरता उभरती है।

गरुड़ और पार्वती की शंका के समाधान की समतामूलक समांतरता :

गरुड़ भुशुंडि से अपनी शंका का समाधान पाकर कहते हैं :–

"जीवन जन्म सुफल मम भयऊ। तव प्रसाद संसय सब गयऊ।।
जनेहु सद्य मोहि निज किंकर। पुनि पुनि उमा कहइ बिहंगबर।।[81]

इसी तरह उमा भी शिव से कहती हैं कि वह विगत संदेह हो गयी है–

"सुनि सब कथा हृदय अति भाई। गिरिजा बोलि गिरा सुहाई।।

X X X

उपजी राम भगति दृढ़ बीते सकल कलेस।"[82]

उपर्युक्त प्रोक्तियों में काकभुशुंण्डि–गरुड़ की शंका का समाधान करते हैं और शिव–पार्वती की शंका का समाधान करते हैं। अतः यहाँ दोनों ही शंका–निवारण मूलक प्रतिज्ञप्तियों की आवृत्ति के कारण समतामूलक समांतरता स्वरूपित होती है।

विरोधमूलक समांतरित शैलीमापक्रमी विश्लेषण :

राम–राज्य वर्णन बनाम कलि–काल निरूपण में विरोधमूलक समांतरता :

तुलसीदास ने राम–राज्य की विशेषताओं का विशद् निरूपण किया है–

"रामराज बैठ त्रैलोका। हरषित भए गए सब सोका।।
बयरु न कर काहू सन कोई। रामप्रताप विषमता खोई।।[83]

X X X

"कृतजुग त्रेता द्वापर पूजा मरम अरु जोग।
जे गति होइ सो कलि हरि नाम ते पावहिं लोग।।"[117]

उपर्युक्त रामराज्य निरूपण और कलिकाल वर्णन विषयक प्रोक्तियों में विरोधिता प्राप्त होती है। रामराज्य का वर्णन करते हुए कहा गया है कि यहाँ कोई किसी से वैर नहीं करता है। सब लोग अपने–अपने वर्ण और आश्रम के अनुरूप धर्मों में तत्पर रहते है। वे वेद मार्ग पर चलते हैं, न शोक है और न रोग है। इस राज्य में दैहिक, दैविक ओर भौतिक ताप किसी को नहीं व्यापते। सब मनुष्य आपस में प्रेम करते हैं। अपने–अपने धर्म पर चलते हैं और वेदों की बतायी हुई नीति पर प्रेम रखते एवं लगे रहते हैं। स्त्री–पुरुष सब रामभक्ति में तत्पर हैं, सब परमगति के अधिकारी हैं। यहाँ किसी की भी अकाल मृत्यु नहीं होती न किसी को कोई पीड़ा होती है। सबका शरीर नीरोग रहा है। न कोई दरिद्र, दुःखी और न ही दीन है। सभी बुद्धिमान और सुलक्षणयुक्त हैं। सब दंभरहित और धर्मरत हैं। सभी दयावान् हैं। सब स्त्री–पुरुष चतुर और गुणवान है। गुणों के ज्ञाता है। पंडित ज्ञानी हैं, सब उपकार मानने वाले हैं कपट किसी में नहीं है। रामराज्य में जड़–चेतन में काल, कर्म, स्वभाव और गुणों के लिये हुए दुख किसी को भी नहीं हैं। सब उदार, परोपकारी हैं। सब स्त्री–पुरुष ब्राह्मणों के चरणों के सेवक हैं। सब पुरुष मात्र एक पत्नीव्रत हैं और वे पत्नियाँ मन, वचन, कर्म से पति का हित करने वाली हैं। श्रीरामचंद्र जी के राज्य में दंड संन्यासियों के हाथ में हैं। वन वृक्ष सदैव फूलते–फलते हैं। हाथी और सिंह एक साथ रहते हैं। यहाँ तक कि प्रकृति तथा प्रकृति में पाने जाने वाले सभी जीव–जंतु में समानता और गुणों की खान पायी जाती हैं।

पर कलिकाल में पुरुष और स्त्री सभी अधर्मरत और वेद के विरोधी हैं। कलि के पापों ने सब धर्मों को ग्रास लिया है, सद्ग्रंथ लुप्त हो गये हैं। पाखंडियों ने अपनी बुद्धि से गढ़–गढ़कर बहुत से मार्ग फैला दिये हैं। सब लोग मोह के वश में हैं। शुभकर्मों को लोभ ने ग्रस लिया है। वर्णाश्रम धर्म नहीं रह गया है। स्त्री–पुरुष वेद के विरोध में लगे हैं। ब्राह्मण वेदों को बेचने वाले और राजा प्रजा को खा जाने वाले हैं कोई भी वेद की आज्ञा नहीं मानता। जिसे जो भाता वही उसका वेद–मार्ग है। जो डींग मारे वही पंडित है, जिनके कार्यों का अरम्भ ही मिथ्याा हैं, जसे दम में अनुरक्त है वे ही संत हैं। जो पराया धन हरण करे, वही सयाना है। जो दंभ करे, वही बड़ा आचारी, जसे झूठ बोले वही गुणवान\। जिसने शुद्धाचरण, सदाचार के आचार–विचार से रहित हैं और जिसने वेद मार्ग का त्याग कर रखा है वही कलयुग में ज्ञानी और वैरागी है। जिसके बड़े–बड़े नाखून और बड़ी–बड़ी जटाएँ है, वे ही कलिकाल में तपस्वी नाम से प्रसिद्ध है। जसे अमंगल वेश

और अमंगल आभूषण धारण करता है, जसे भक्ष्यामभक्ष्य खाता है वही योगी और वही सिद्ध पुरुष हैं और उसी की कलयुग में मान–प्रतिष्ठा है। वे ही पूजनीय माने जाते हैं जो 'अपकारी है। उनका बड़ा गौरव है और वे ही प्रतिष्ठा योग्य माने जाते हैं जो मन, कर्म और बचन से लताड़िये हैं। वे ही कलिकाल में वक्ता कहे जाते हैं। यहाँ मनुष्य स्त्रियों के वश में होकर नद के बंदर की तरह नाचते हैं। ब्राह्मणों को शूद्र ज्ञानोपदेश देते हैं और जनेऊ डाल कर कुत्सित दान लेते हैं। सब मनुष्य काम, लोभ और क्रोध में तत्पर और देता, ब्राह्मण, वेद और संत के विरोधी होते हैं। सुन्दर गुणों का धाम और सुन्दर रूप वाले पति को छोड़कर अभागिनी स्त्रियाँ पराये पुरुषों को भजती हैं। सुहागिनी स्त्रियाँ तो आभूषणरहित होती हैं, पर विधवाओं के नित्य नये श्रृंगार होते हैं। गुरु और शिष्य का अंधे और बहरे का सा हिसाब है। एक (शिष्य) सुनता नहीं, दूसरा (गुरु) देखता नहीं। जो गुरु शिष्य का धन हरण करता है और उसका शोक–हरण नहीं करता वह घोर नरक में पड़ता है। माता–पिता बालकों को बुलाते हैं और जिससे पेट भरे वही धर्म सिखाते हैं। स्त्री–पुरुष ब्रह्म–ज्ञान के सिवा दूसरी बात ही नहीं कहते और लोभवश कौड़ी के लिए विप्र और गुरु की हत्या करते हैं। शूद्र दूसरों से कहते हैं कि क्या हम तुमसे कम हैं? जो परस्त्री में लिप्त कपट–चतुर, माह–द्रोह–ममता में लिपटे हुए हैं वे ही मनुष्य अभेदवादी ज्ञानी हैं। ये लोग आप तो गए गुजरे हुए ही हैं और जो कहीं कोई सन्मार्ग का प्रतिपालन करते हैं तो उनको भी वे नष्ट करते हैं। तेली, कुम्हार, स्वपच, भील व बहेलिये, कोल और कलवार जो वर्णों में अधम हैं, वे स्त्री के मरने वर घर की धनादि सम्पत्ति नाश कर चुकने पर सिर मुड़वाकर संन्यासी होते हैं। वे ब्राह्मणों से अपने को पुजाते हैं। ब्राह्मण निरक्षर, लोलुप, कामी, सदाचाररहित तथा दुराचाररहि तथा दुराचारी शठ औ नीच जाति की व्याभिचारिणी स्त्रियों के स्वामी होते हैं। शूद्र अनेक प्रकार के जप, तप व्रत करते हैं और व्यासगद्दी पर बैठकर पुराण कहते हैं। सभी मनुष्य मनमाना आचरण करते हैं। सब पाप करते हैं और उसका फल दुःख, भय, रोग, शोक और वियोग पाते हैं। संन्यासी बहुत धन लगाकर घर एवं धन–घाम दोनों सजाते हैं। वैराग्य नहीं रह गया है। इसे विषयों ने हार लिया है। तपस्वी धनवान और गृहस्थ दरिद्र हो गये हैं। लोग कुलीन पतिव्रता स्त्री को निकाल देते हैं। और अच्छी चाल को त्यागकर घर में दासी को लाकर उसे निश्चल करके रखते हैं। पुत्र तभी तक माता–पिता को मानते हैं जब तक उन्होंने स्त्री का मुख नहीं देखा है। जब ससुराल प्यारी लगने लगती है तब कुटुंब शत्रुरूप लगने लग जाते हैं। राजा पापरत हो गये हैं, उनमें धर्म न रह गया है। नित्यप्रति प्रजा को झूठे ही निरपराध दंड देते रहते हैं। जनेउमात्र द्विज होने का और निर्वस्त्र होना तपस्वी का चिह्न रह गया है। जो न तो पुराणों को माने और न वेद को, कलियुग में वही ठीक सच्चा भगवत्–भक्त और संत है। गुण में दोष लगाने वाले बहुत हैं, पर गुणी कोई भी नहीं है। कलियुग में बारंबार अकाल पड़ता

है। बिना अन्न के सब लोग दुःखी होकर मरते हैं। कलियुग में ब्रह्माण्ड भर में कपट, हठ, दंभ, द्वेष, पाखंड, मोह, कामादि और मद व्याप्त हो गये हैं। मनुष्य जप, तप, यज्ञ, व्रत, दान आदि धर्म तामसी रीति का वृत्ति से करते हैं। स्त्रियों के बाल ही भूषण हैं। उन्हें भुख बहुत लगती है वे धनरहित दुखी रहती है, फिर भी बहुत प्रकार से ममत्व बना रहता है। वे मूर्ख हैं सुख चाहती हैं पर धर्म में प्रेम नहीं है। मनुष्य रोग से दुखी है। यहाँ बिना कारण ही अभिमान और विरोध है। आयु दस–पाँच, पंद्रह या पचास वर्ष की है, पर गर्व ऐसा है कि कल्पान्त होने पर भी उनका नाश नहीं होने का। यहाँ कोई बहिन–बेटी का विचार नहीं करता। न संतोष है, न विचार और न ही शीतलता। जिसको भिक्षा नहीं मांगनी चाहिए वे भी मांगने लगे। किसी के पास कुछ खाने को नहीं है। सब लोग वियोग और विशेष शोक से मारे हुए हैं। धर्म–आचरण उठा गये हैं दम, दान और ज्ञानपना का बुद्धिमानी न रह गयी, मूर्खता और दूसरों को ठगना ही रह गया है। स्त्री–पुरुष सभी अपने–अपने शरीर के पालन–पोषण में लगे रहने वाले हैं। परमेश्वर तथा पराये की निंदा करने वाले ही संसार में फैले हुए हैं। अतः कलिकाल पाप और अवगुणों का घर है।

उपर्युक्त दोनों ही प्रोक्तियों में रामराज्य और कलिकाल की समांतरता स्वरूपित हो जाती है।

अयोध्या कांड में राम के राज्याभिषेक की तैयारी से बनवास देना और उत्तरकांड में वनवास संपन्न होने पर श्रीराम के राज्याभिषेक तैयारी की विरोधमूलक समांतरता :

अयोध्या कांड के उपर्युक्त प्रसंग में कैकेयी की मुख्य भूमिका है–

"बात दृढ़ाइ कुमति हँसि बोली। कुमत कुबिहन दुलह जनु खोली।।"[118]

X X X

सिंहासन पर त्रिभुअन साँई। देखि सुरन्ह दुदंभी बजाई।।"[155]

उपर्युक्त दोनों प्रोक्तियों में जहाँ अयोध्या कांड में श्रीराम के राज्याभिषेक करने की तैयारी से माता कैकेयी के द्वारा दशरथ जी से वर माँग लेने पर श्रीराम को चौदह वर्षों के बनवास हेतु वनगमन करना पड़ता है वहीं उत्तरकांड में लभ्मण–सीता सहित श्रीराम के चौदह वर्षों की वनवास अवधि बीतने के पश्चात् अयोध्या–आगमन पर उनका राज्योंभिषेक किया जाता है।

अतः अयोध्याकांड और उत्तरकांड की साकल्यपरकता में अयोध्याकांड में राज्याभिषेक की तैयारी से बनवास मिलने और उत्तरकांड में राज्याभिषेक की तैयारी से राज्य मिलने की विरोधमूलक समांतरता स्वरूपित होती है।

संत और असंत के लक्षण–निरूपण की विरोधमूलक समांतरता :

श्रीराम भरत को संत का लक्षण–निरूपण करते हुए कहते हैं–

"संतन्ह के लच्छन सुनु भ्राता। अगनित श्रुनत पुरान बिख्याता।।

X X X

बिगत काम मम नाम परायन। सांति बिरति बिनती मुदितायन।।"[156]

"सीतलता सरीलता मैत्री। द्विजपद प्रीति धर्म जनयत्री।।
ये सब लच्छन बसहिं जासु उर। जानेहु तात संत संतत फुर।।
सम दम नियम नीति नहिं डोलहिं। पुरुष बचन कबहूँ नहिं बोलहिं।।"[157]

पुनः निम्नलिखित प्रोक्ति में श्रीराम असंत के अभिलक्षणों का निरूपण करते हैं–

"सुनहु असंतन्ह केर सुभाऊ। भूलेहु संगति करिय न काऊ।

X X X

ते नर पाँवर पापमय देह धरे मनुजाद।।"[158]

X X X

ब्रिप्रद्रोह पर द्रोह बिसेष। दंभ कपट जिअ धरे सुबेषा।।"[160]

उपर्युक्त पहली काव्य–प्रोक्ति में बताया गया है कि संत लोग क्षमाशील होने से देवताओं के सिर पर चढ़कर देवलोकों को लाँघते हुए परम धाम को जाते हैं। वे सारे जगत् को प्रिय होते हैं। वे कभी विषयों में लिप्त नहीं होते हैं। शील और सद्गुणों के खान होते हैं। दूसरों का दुःख देखकर वे दुखी और सुख देखकर वे सुखी होते हैं। उनका सबमें समान भाव रहता है। उनके लिए कोई भी शत्रु नहीं होता है। वे मदरहित और वैराग्यवान होते हैं। वे लोभ, अमर्ष और भयरहित होते हैं। इनका चित्त कोमल होता है। वे दीनों पर दया करते हैं और मन, वचन, कर्म से कपट–छल हीन भक्ति करते हैं। वे सबको मान प्रतिष्ठा देते हैं और स्वयं मान–रहित होते हैं। वे सम, इन्द्रियदमन, बारहों प्रकार के नियमों और नीति का अनुपालन करते हैं। वे कभी भी कठोर वचन नहीं बोलते हैं।

दूसरी काव्य–प्रोक्ति में असंतों के लक्षण को निर्दिष्ट किया गया है। ये पराये ऐश्वर्य देखकर सदैव जलते रहते हैं। ये जहाँ कहीं दूसरों की निंदा सुनते हैं वहाँ ऐसे प्रसन्न होते हैं, मानों नवों निधियाँ उनको राह में पड़ी हुई अचानक ही मिल गयी हों। काम, क्रोध, मद और लोभ में इनकी तत्परता होती है। वे दयारहि कपटी, कुटिल पापों के घर होते हैं। बिना कारण ही ये सब किसी से वैर रखते हैं। जो इनके साथ भलाई करता है उसके साथ भी ये बुराई करते हैं। इसका लेना, देना, भोजनादि भी झूठ पर आधारित होता हैं। ये मोर की तरह झूठे वचन बोलते है। इसका हृदय कठोर होता है तथा ये द्रोही प्रकृति के होते हैं। परस्त्री, परायेधन, परायी निंदा में ये असक्त रहते हैं। लोभ ही इसका ओढ़ना और लोभ ही इसका बिछौना है। ये लिंग और पेट–इन्हीं दो इन्द्रियों में तत्पर रहते हैं। ये वेदों के विदूषक होते हैं। हृदय में पाखंड और कपट रखते हैं। ऊपर से सुंदर वेश धारण किये रहते हैं। अतः ये सभी अवगुणों की खान होते हैं।

इस प्रकार उपर्युक्त प्रोक्तियों में संत–असंत के लक्षण बिल्कुल एक–दूसरे के प्रतिकूल हैं। अतः यहाँ दोनों के लक्षणों की विशेषता के कारण यहाँ विरोधमूलक समांतरता स्वरूपित होती है।

शिष्य का शिवपूजन के नाम जपने के क्रम में वरदान पाने की जगह अभिशप्त होंने की तथा गुरु का अपमान करने की जगह गुरु की कृपा से उद्धार प्राप्त करने की विरोधमूलक समांतरता :

निम्नलिखित प्रोक्ति में काकभुशुण्डि अपने पूर्वजन्म में शिव का जप करने के क्रम में मंदिर में गुरु के आने पर उठकर अभिमानवश उन्हें प्रणति नहीं निवेदित करने का उल्लेख करते हैं–

"एक बार हरि मंदिर जपत रहेउँ सिवनाम।

X X X

अति अध गुर अपमानता सहि नहिं सके महेस।।"[161]

शिव का यह शाप सुनकर गुरु हाहाकार कर उठते हैं और शिव से अपने शिष्य के उद्धार हेतु प्रार्थना करने लग जाते हैं–

"हाहाकार कीनह गुरु दारुन सुनि सिव–साप।
स्फुरन्मौलि कल्लोलिनी चारू गंगा लसछभाल वालेंदु कंठं भुजंगां।[163]

X X X

"न यावदुमानाथ पादारबिंद। भंजंतीत लोक परे वा नराणां।।
जरा जन्म दुःखौघतातप्यमानं। प्रभे पाहि आपन्नमामीशशंभ।।"[166]

इस प्रार्थना पर शिव प्रसन्न होते हैं और गुरु से वर माँगने को कहते हैं। गुरु उनसे शिष्य के कल्याणार्थ वर माँगते हैं–

"सुनि बिनती सर्वग्य सिब देखि बिप्र अनुरागा।

X X X

एहि कर होइ परम कल्याना। सोइ करहु अब कृपानिधाना।।"[167]
"विप्र गिरा सुनि परहित सानी। एवमस्तु इति भइ नभबानी।।

X X X

तदपि तुम्हारि साधुता देखी। करिहौं एहि पर कृपा बिसेषी।।"[168]

उपर्युक्त प्रोक्ति में शिष्य की शिव–उपासना के समय गुरु के आ जाने पर शिष्य अपने गुरु को उठकर प्रणाम नहीं करता है। इस पर क्रोधित होकर शिव उसे शाप दे देते हैं। पर गुरु इस शाप को सुनकर शिष्य को शाप से मुक्त कराने हेतु शिव की आराधना करने लगते है। शिव गुरु की आराधना से प्रसन्न होकर वर माँगने को कहते हैं। गुरु वर के रूप में अपने दुःख का निदान करने का अनुग्रह करते हैं कि हे प्रभु, अब आप वैसा ही कीजिए जिससे इसका कल्याण हो। शिव 'तथास्तु' कह देते हैं।

अतः उपर्युक्त प्रोक्ति में दो प्रकार की विरोधी समांरता स्वरूपित होती है। शिष्य शिव की उपासना उन्हें प्रसन्न कर वर पाने के लिए करता है। पर गुरु का अपमान करने के कारण शिवजी अप्रसन्न हो उठते हैं और वर की जगह उसे शाप दे डालते हैं दूसरे, शिष्य स्वयं जान–बूझकर अपने

गुरु को अपमानित करता है पर गुरु उसे अनदेखी कर अपने शिष्य–प्रेमवश शिवजी की स्तुति कर अपने शिष्य की शापमुक्ति के लिए प्रार्थना करते हैं और उसका निदान उपलब्ध कर देते हैं। अतः यहाँ भी गुरु–शिष्य व्यवहार की पारस्परिक प्रतिकूलता के कारण विरोधी समातरता उत्सृजित होती है।

ज्ञान बनाम भक्ति की विरोधमूलक समांतरता :

निम्नलिखित प्रोक्ति में ज्ञान और भक्ति प्रतीत प्रकृति को दर्शाया गया है। पहले ज्ञान का निरूपण किया गया है–

"जब सो प्रभंजन उर गृह जाई। तबहिं दीप विज्ञान बुझाई।।

X X X

जे निर्बिन्ध पंथ निर्बहई। सो कैवल्य परम पद लहई।।"[169]

फिर काकभुशुण्डि गरुड़ से भक्ति की प्रकृति का विवेचन करते हैं–

"रामभगति चिंतामनि सुंदर। बसै गरुड़ जाके उर अंतर।।

X X X

व्यापहिं मानस रोग न भारी। जिन्हि के बस सब जीव दुखारी।।"[170]

उपर्युक्त पहली काव्य–प्रोक्ति में कहा गया है कि जैसे ही पवन का झकोरा हृदयरूपी घर में जाता है वैसे ही ज्ञानरूपी दीपक बुझ जाता है। ज्ञान मार्ग कृपाण की धार है। इस मार्ग से गिरते देर नहीं लगती।

इसके प्रतिकूल भक्ति के बारे में कहा गया है कि श्रीराम–भक्ति तो सुंदर चिंतामणि रूप है। यह जिसके हृदय के भीरत बसी है वह हृदय दिन–रात प्रकाश से ज्योतित रहता है। उसको दीपक, दीया, बत्ती कुछ भी नहीं चाहिए। मोह–रूपी दारिद्रय इसके पास नहीं आता है और न ही लोभ रूपी पवन उसे कभी बुझा पाता है। अविद्या का प्रबल अंधकार मिट जाता है। कामादि दृष्ट उसके निकट नहीं जाते हैं। जिसके हृदय में भक्ति बसती है विष अमृत के समान और शत्रु मित्रवत् हो जाता है। उस भक्ति–मणि के बिना कोई भी सुख नहीं पाता वैसे भारी मानस रोग, जिनके वश होकर सभी जीवद दुखी रहते हैं, भक्ति–भावना वाले को कभी नहीं व्यापते। यहाँ ज्ञान को दीपक कहा गया है, जिसमें बाती और तेल लगता है जो माया, मोहरूपी हवा से बुझ जाता है। पर भक्ति को मणि कहा गया है जिसमें न ही तेल, न ही बाती की आवश्यकता होती है, न ही यह किसी प्रकार की मोह–माया से बुझता ही है। यह हमेशा प्रकाशमान बना रहता है। अतः यहाँ ज्ञान और भक्ति के निरूपण में प्रकृतिगत विरोधमूलक समांतरता स्वरूपित होती है।

विरल शैलीमापक्रमी विश्लेषण

श्रीराम–हनुमान संवाद का संदर्भ

निम्नलिखित प्रोक्ति में श्रीराम हनुमान जी से कहते हैं–

"नर सरीर धरि जे पर पीरा। करहिं ते सहहिं ते सहहिं महाभव भीरा।।
करहिं मोह बस नर अध नाना। स्वास्थ रत परलोक नसाना।।"[171]

हे हनुमान जो नर–देही दूसरों को दुःख पहुँचाते हैं, उन्हें जन्म–जन्म के महान संकट सहने पड़ते हैं। मनुष्य स्वार्थी होकर अनेक पाप

करते हैं, जिससे उनका परलोक नष्ट हो जाता है। यहाँ नर देही का ध्यान मोह ओर स्वार्थ के आकर्षण से विमुख करने की ओर खींचा गया है। उपर्युक्त प्रोक्ति में ध्यानाकर्षण और सूक्ति की क्षमता है। अतः यह एक विरल कथन है।

निष्कर्ष :

उत्तरकांड में परिमाण–सूत्र के खंडन पर आधारित विचलन के दो उदाहरण प्राप्त होते हैं। इनमें पहला विचलन गरुड़ काकभुशुण्डि संवाद में सबसे दुर्लभ शरीर के विषय में पूछने के संदर्भ में है। दूसरा भी गरुड़–काकभुशुण्डि संवाद में मानस–रोग पूछने के संदर्भ में है।

संबंध–सूत्र के खंडन पर आधारित विचलन के दो उदाहरण प्राप्त होते हैं। इनमें पहला संदर्भ गरुड़ का शंका–निवारण हेतु नारद, ब्रह्मा, शिव तथा काकभुशुण्डि के पास जाने का संदर्भ है तथा दूसरा संदर्भ काक के पूर्व जन्म में शिव–मंदिर में शिव नाम जपने पर शिव द्वारा उसे शाप देने का संदर्भ है।

गुण–सूत्र के खंडन पर आधारित पर विचलन के भी दो उदाहरण प्राप्त होते हैं। इनमें पहला काकभुशुण्डि द्वारा श्रीराम के मुख–विबर में प्रवेश कर अनेकानेक ब्रह्माण्ड देखने का संदर्भ है एवं दूसरा लोमश ऋषि के आश्रम में गुरु–शाप से शिष्य के कौआ बनने का संदर्भ है।

प्रविधि–सूत्र के खंडन पर आधारित विचलन के छह उदाहरण प्राप्त होते हैं। इनमें पहला शिव जी द्वारा श्रीराम के गुणगान में आलंकारिक अभिव्यक्ति को संदर्भ हैं, दूसरा पुरवासियों का श्रीराम को भेजने को कहने में आलंकारिक अभिव्यक्ति का संदर्भ है, तीसरा काकभुशुण्डि और गरुड़ संवाद में राम–प्रापरूपी सूर्य के उदय होने से जिन–जिन को शोक हुआ उनके संदर्भ में आलंकारिक अभिव्यक्ति का संदर्भ है, चौथा काकभुशुण्डि द्वारा गरुड़ को ज्ञान के बारे में आलंकारिक भाषा की अभिव्यक्ति का संदर्भ है, पाँचवाँ काकभुशुण्डि द्वारा गरुड़ को भक्ति के बारे में कहने में आलंकारिक भाषा की अभिव्यक्ति के संदर्भ में प्राप्त होता है एवं छठा तुलसीदास द्वारा किए गए निरूपण के संदर्भ में आलंकारिक अभिव्यक्तिवश प्राप्त होता है।

विपथित शैलीमापक्रमी विश्लेषण के अंतर्गत भी दो उदाहरण प्राप्त होते हैं। इनमें पहला रामराज्य के उपरांत सभी की विदाई होने पर हनुमान की विदाई नहीं होने से उत्पन्न विपथन एवं दूसरा रामचरितमानस के भीतर पुनः एक और रामायण कहने में प्राप्त होता है। समांतरता में समतामूलक समांतरित शैलीमापक्रमी विश्लेषण के अंतर्गत छह उदाहरण प्राप्त होते हैं। इनमें पहला श्री हनुमान द्वारा एवं भरत जी द्वारा प्रभु राम के आने का संदेश देने की समतामूलक समांतरता का है। दूसरा श्रीरा–वसिष्ठ मिलन एवं श्रीराम–भरत मिलन की समतामूलक समांतरता। तीसरा श्रीराम–लक्ष्मण–सीता एवं भरत जी का तपस्वी वेष हटाने की समतामूलक समांतरता का है। चोथा दृष्टांत भरत द्वारा श्रीराम से और गरुड़ द्वारा

काकभुशुण्डि से संत–असंत भेद पूछने में समतामूलक समांतरता का है। पाँचवा वेद, शिव और नारद के द्वारा श्रीराम ककी स्तुति गुणग्राम करने की प्रतिज्ञप्ति की समतामूलक समांतरता का है एवं छठा गरुड़ और पार्वती की शंका के समाधान की समतामूलक समांतरता का हैं।

तथा विरोधमूलक समांतरित शैलीमापक्री विश्लेषण पाँच उदाहरण प्राप्त होते हैं। इनमें पहला रामराज बनाम कलिधर्म निरूपण में, दूसरा अयोध्या कांड में राम के राज्याभिषेक की तैयारी से वनवास देने और उत्तरकांड में श्रीराम की वन की वापसी के पश्चात् राज्याभिषेक की तैयारी में। तीसरा संत–असंत लक्षण की विरोधमूलकता में, चौथा गरुड़ के पूर्वजन्म में गुरु की अवज्ञा करने फिर भी गुरु का उसकी भलाई के बारे में सोचने में एवं छठा उदाहरण ज्ञान–बनाम भक्ति की विरोधमूलक समांतरता में प्राप्त होता हैं।

विरल शैलीमापक्रमी विश्लेषण का एक उदाहरण प्राप्त होता है, जो श्रीराम और हनुमान के संवाद के संदर्भ का है।

अतः हम कह सकते हैं कि इस कांड में सबसे अधिक विचलन के बारह उदाहरण प्राप्त होते हैं, इसके बाद समांतरता के ग्यारह एवं विपथन के दो तथा विरलता का एक उदाहरण प्राप्त होता है।

सन्दर्भ :

1. अंजनीनंदनशरण, (संपाद), मानस–पीयूष, उत्तरकांड, खंड–7 (गोरखपुर : गीता प्रेस, प्रथम संस्करण–2017, आठवां संस्करण–2058) पृ. 332–334
2. अंजनीनंदनशरण, (संपा), मानस–पीयूष, उत्तरकांड, खंड–7 (गोरखपुर : गीता प्रेस, प्रथम संस्करण–2017, आठवां संस्करण–2058) पृ. 334–335
3. वही, पृ. 729
4. वही, पृ. 732–733
5. अंजनीनंदनशरण, (संपाद), मानस–पीयूष, उत्तरकांड, खंड–7 (गोरखपुर : गीता प्रेस, प्रथम संस्करण–2017, आठवां संस्करण–2058) पृ. 734
6. वही, पृ. 731
7. वही, पृ. 743
8. अंजनीनंदनशरण, (संपाद), मानस–पीयूष, उत्तरकांड, खंड–7 (गोरखपुर : गीता प्रेस, प्रथम संस्करण–2017, आठवां संस्करण–2058) पृ. 744–756
9. अंजनीनंदनशरण, (संपाद), मानस–पीयूष, उत्तरकांड, खंड–7 (गोरखपुर : गीता प्रेस, प्रथम संस्करण–2017, आठवां संस्करण–2058) पृ. 343
10. वही, पृ. 344
11. वही, पृ. 345
12. वही, पृ. 346

13. अंजनीनंदनशरण, (संपाद), मानस–पीयूष, उत्तरकांड, खंड–7 (गोरखपुर : गीता प्रेस, प्रथम संस्करण–2017, आठवां संस्करण–2058) पृ. 347
14. वही, पृ. 348
15. वही, पृ. 349
16. वही, पृ. 351
17. वही, पृ. 352
18. वही, पृ. 353
19. अंजनीनंदनशरण, (संपाद), मानस–पीयूष, उत्तरकांड, खंड–7 (गोरखपुर : गीता प्रेस, प्रथम संस्करण–2017, आठवां संस्करण–2058) पृ. 353
20. वही, पृ. 355
21. अंजनीनंदनशरण, (संपाद), मानस–पीयूष, उत्तरकांड, खंड–7 (गोरखपुर : गीता प्रेस, प्रथम संस्करण–2017, आठवां संस्करण–2058) पृ. 580
22. अंजनीनंदनशरण, (संपाद), मानस–पीयूष, उत्तरकांड, खंड–7 (गोरखपुर : गीता प्रेस, प्रथम संस्करण–2017, आठवां संस्करण–2058) पृ. 459
23. वही, पृ. 462
24. अंजनीनंदनशरण, (संपाद), मानस–पीयूष, उत्तरकांड, खंड–7 (गोरखपुर : गीता प्रेस, प्रथम संस्करण–2017, आठवां संस्करण–2058) पृ. 463
25. अंजनीनंदनशरण, (संपाद), मानस–पीयूष, उत्तरकांड, खंड–7 (गोरखपुर : गीता प्रेस, प्रथम संस्करण–2017, आठवां संस्करण–2058) पृ. 616–618
26. वही, पृ. 58
27. अंजनीनंदनशरण, (संपाद), मानस–पीयूष, उत्तरकांड, खंड–7 (गोरखपुर : गीता प्रेस, प्रथम संस्करण–2017, आठवां संस्करण–2058) पृ. 126–127
28. वही, पृ. 207–209
29. अंजनीनंदनशरण, (संपाद), मानस–पीयूष, उत्तरकांड, खंड–7 (गोरखपुर : गीता प्रेस, प्रथम संस्करण–2017, आठवां संस्करण–2058) पृ. 207–7209
30. वही, पृ. 211–212
31. अंजनीनंदनशरण, (संपाद), मानस–पीयूष, उत्तरकांड, खंड–7 (गोरखपुर : गीता प्रेस, प्रथम संस्करण–2017, आठवां संस्करण–2058) पृ. 211–212
32. वही, पृ. 666
33. वही, पृ. 668
34. अंजनीनंदनशरण, (संपाद), मानस–पीयूष, उत्तरकांड, खंड–7 (गोरखपुर : गीता प्रेस, प्रथम संस्करण–2017, आठवां संस्करण–2058) पृ. 672–683
35. वही, पृ. 691–700

36. अंजनीनंदनशरण, (संपाद), मानस–पीयूष, उत्तरकांड, खंड–7 (गोरखपुर : गीता प्रेस, प्रथम संस्करण–2017, आठवां संस्करण–2058) पृ. 715
37. वही, पृ. 716
38. वही, पृ. 720
39. वही, पृ. 722
40. वही, पृ. 726
41. वही, पृ. 727
42. अंजनीनंदनशरण, (संपाद), मानस–पीयूष, उत्तरकांड, खंड–7 (गोरखपुर : गीता प्रेस, प्रथम संस्करण–2017, आठवां संस्करण–2058) पृ. 818
43. अंजनीनंदनशरण, (संपाद), मानस–पीयूष, उत्तरकांड, खंड–7 (गोरखपुर : गीता प्रेस, प्रथम संस्करण–2017, आठवां संस्करण–2058) पृ. 141–142
44. अंजनीनंदनशरण, (संपाद), मानस–पीयूष, उत्तरकांड, खंड–7 (गोरखपुर : गीता प्रेस, प्रथम संस्करण–2017, आठवां संस्करण–2058) पृ. 143–151
45. अंजनीनंदनशरण, (संपाद), मानस–पीयूष, उत्तरकांड, खंड–7 (गोरखपुर : गीता प्रेस, प्रथम संस्करण–2017, आठवां संस्करण–2058) पृ. 153–159
46. अंजनीनंदनशरण, (संपाद), मानस–पीयूष, उत्तरकांड, खंड–7 (गोरखपुर : गीता प्रेस, प्रथम संस्करण–2017, आठवां संस्करण–2058) पृ.
47. अंजनीनंदनशरण, (संपाद), मानस–पीयूष, उत्तरकांड, खंड–7 (गोरखपुर : गीता प्रेस, प्रथम संस्करण–2017, आठवां संस्करण–2058) पृ. 366–383
48. अंजनीनंदनशरण, (संपाद), मानस–पीयूष, उत्तरकांड, खंड–7 (गोरखपुर : गीता प्रेस, प्रथम संस्करण–2017, आठवां संस्करण–2058) पृ. 386–390
49. अंजनीनंदनशरण, (संपाद), मानस–पीयूष, उत्तरकांड, खंड–7 (गोरखपुर : गीता प्रेस, प्रथम संस्करण–2017, आठवां संस्करण–2058) पृ. 391
50. वही, पृ. 24
51. वही, पृ. 339
52. अंजनीनंदनशरण, (संपाद), मानस–पीयूष, उत्तरकांड, खंड–7 (गोरखपुर : गीता प्रेस, प्रथम संस्करण–2017, आठवां संस्करण–2058) पृ. 56–58
53. वही, पृ. 59–60
54. अंजनीनंदनशरण, (संपाद), मानस–पीयूष, उत्तरकांड, खंड–7 (गोरखपुर : गीता प्रेस, प्रथम संस्करण–2017, आठवां संस्करण–2058) पृ. 93–94
55. वही, पृ. 94–95
56. अंजनीनंदनशरण, (संपाद), मानस–पीयूष, उत्तरकांड, खंड–7 (गोरखपुर : गीता प्रेस, प्रथम संस्करण–2017, आठवां संस्करण–2058) पृ.

57. वही, पृ.
58. वही, पृ. 103–108
59. अंजनीनंदनशरण, (संपाद), मानस–पीयूष, उत्तरकांड, खंड–7 (गोरखपुर : गीता प्रेस, प्रथम संस्करण–2017, आठवां संस्करण–2058) पृ. 109
60. वही, पृ. 110
61. वही, पृ. 111
62. वही, पृ. 112
63. वही, पृ. 114
64. वही, पृ. 119
65. वही, पृ. 119
66. वही, पृ. 120
67. अंजनीनंदनशरण, (संपाद), मानस–पीयूष, उत्तरकांड, खंड–7 (गोरखपुर : गीता प्रेस, प्रथम संस्करण–2017, आठवां संस्करण–2058) पृ. 123
68. वही, पृ. 126
69. वही, पृ. 127
70. वही, पृ. 128
71. वही, पृ. 129
72. वही, पृ. 130
73. अंजनीनंदनशरण, (संपाद), मानस–पीयूष, उत्तरकांड, खंड–7 (गोरखपुर : गीता प्रेस, प्रथम संस्करण–2017, आठवां संस्करण–2058) पृ. 130
74. वही, पृ. 113
75. वही, पृ. 312
76. वही, पृ. 314
77. वही, पृ. 315
78. वही, पृ. 316
79. अंजनीनंदनशरण, (संपाद), मानस–पीयूष, उत्तरकांड, खंड–7 (गोरखपुर : गीता प्रेस, प्रथम संस्करण–2017, आठवां संस्करण–2058) पृ. 316
80. अंजनीनंदनशरण, (संपाद), मानस–पीयूष, उत्तरकांड, खंड–7 (गोरखपुर : गीता प्रेस, प्रथम संस्करण–2017, आठवां संस्करण–2058) पृ. 109
81. वही, पृ. 110
82. अंजनीनंदनशरण, (संपाद), मानस–पीयूष, उत्तरकांड, खंड–7 (गोरखपुर : गीता प्रेस, प्रथम संस्करण–2017, आठवां संस्करण–2058) पृ. 778
83. वही, पृ. 792
84. वही, पृ. 162
85. वही, पृ. 164
86. वही, पृ. 166
87. वही, पृ. 167

88. अंजनीनंदनशरण, (संपाद), मानस–पीयूष, उत्तरकांड, खंड–7 (गोरखपुर : गीता प्रेस, प्रथम संस्करण–2017, आठवां संस्करण–2058) पृ. 167
89. वही, पृ. 167
90. वही, पृ. 168
91. वही, पृ. 169
92. वही, पृ. 170
93. वही, पृ. 174
94. वही, पृ. 176
95. वही, पृ. 177
96. अंजनीनंदनशरण, (संपाद), मानस–पीयूष, उत्तरकांड, खंड–7 (गोरखपुर : गीता प्रेस, प्रथम संस्करण–2017, आठवां संस्करण–2058) पृ. 177
97. वही, पृ. 178
98. वही, पृ.
99. वही, पृ. 179
100. वही, पृ. 535
101. वही, पृ. 541
102. वही, पृ. 542
103. अंजनीनंदनशरण, (संपाद), मानस–पीयूष, उत्तरकांड, खंड–7 (गोरखपुर : गीता प्रेस, प्रथम संस्करण–2017, आठवां संस्करण–2058) पृ. 542
104. वही, पृ. 543
105. वही, पृ. 544
106. वही, पृ. 545
107. वही, पृ. 546
108. वही, पृ. 547
109. वही, पृ. 548
110. अंजनीनंदनशरण, (संपाद), मानस–पीयूष, उत्तरकांड, खंड–7 (गोरखपुर : गीता प्रेस, प्रथम संस्करण–2017, आठवां संस्करण–2058) पृ. 548
111. वही, पृ. 549
112. वही, पृ. 550
113. वही, पृ. 551
114. वही, पृ. 552
115. अंजनीनंदनशरण, (संपाद), मानस–पीयूष, उत्तरकांड, खंड–7 (गोरखपुर : गीता प्रेस, प्रथम संस्करण–2017, आठवां संस्करण–2058) पृ. 557
116. वही, पृ. 555
117. वही, पृ. 556
118. वही, पृ. 557
119. अंजनीनंदनशरण, (संपाद), मानस–पीयूष, उत्तरकांड, खंड–7 (गोरखपुर : गीता प्रेस, प्रथम संस्करण–2017, आठवां संस्करण–2058) पृ. 158

120. वही, पृ. 159
121. वही, पृ. 191
122. वही, पृ. 212
123. वही, पृ. 213
124. वही, पृ. 214
125. अंजनीनंदनशरण, (संपाद), मानस–पीयूष, उत्तरकांड, खंड–7 (गोरखपुर : गीता प्रेस, प्रथम संस्करण–2017, आठवां संस्करण–2058) पृ. 214
126. वही, पृ. 215
127. वही, पृ. 218
128. वही, पृ. 220
129. वही, पृ. 221
130. वही, पृ. 222
131. वही, पृ. 223
132. वही, पृ. 227
133. अंजनीनंदनशरण, (संपाद), मानस–पीयूष, उत्तरकांड, खंड–7 (गोरखपुर : गीता प्रेस, प्रथम संस्करण–2017, आठवां संस्करण–2058) पृ. 227
134. वही, पृ. 229
135. वही, पृ. 236
136. वही, पृ. 240
137. वही, पृ. 244
138. वही, पृ. 246
139. वही, पृ. 247
140. वही, पृ. 248
141. वही, पृ. 360
142. अंजनीनंदनशरण, (संपाद), मानस–पीयूष, उत्तरकांड, खंड–7 (गोरखपुर : गीता प्रेस, प्रथम संस्करण–2017, आठवां संस्करण–2058) पृ. 361
143. वही, पृ. 367
144. वही, पृ. 368
145. वही, पृ. 369
146. वही, पृ. 89
147. वही, पृ. 90
148. वही, पृ. 91
149. वही, पृ. 92
150. वही, पृ. 93
151. अंजनीनंदनशरण, (संपाद), मानस–पीयूष, उत्तरकांड, खंड–7 (गोरखपुर : गीता प्रेस, प्रथम संस्करण–2017, आठवां संस्करण–2058) पृ. 93
152. वही, पृ. 94
153. वही, पृ. 95

154. वही, पृ. 98
155. वही, पृ. 99
156. अंजनीनंदनशरण, (संपाद), मानस–पीयूष, उत्तरकांड, खंड–7 (गोरखपुर : गीता प्रेस, प्रथम संस्करण–2017, आठवां संस्करण–2058) पृ. 235–236
157. अंजनीनंदनशरण, (संपाद), मानस–पीयूष, उत्तरकांड, खंड–7 (गोरखपुर : गीता प्रेस, प्रथम संस्करण–2017, आठवां संस्करण–2058) पृ. 237–239
158. वही, पृ. 240–243
159. वही, पृ. 244
160. अंजनीनंदनशरण, (संपाद), मानस–पीयूष, उत्तरकांड, खंड–7 (गोरखपुर : गीता प्रेस, प्रथम संस्करण–2017, आठवां संस्करण–2058) पृ. 246
161. अंजनीनंदनशरण, (संपाद), मानस–पीयूष, उत्तरकांड, खंड–7 (गोरखपुर : गीता प्रेस, प्रथम संस्करण–2017, आठवां संस्करण–2058) पृ. 577–578
162. अंजनीनंदनशरण, (संपाद), मानस–पीयूष, उत्तरकांड, खंड–7 (गोरखपुर : गीता प्रेस, प्रथम संस्करण–2017, आठवां संस्करण–2058) पृ. 580–581
163. वही, पृ. 683
164. अंजनीनंदनशरण, (संपाद), मानस–पीयूष, उत्तरकांड, खंड–7 (गोरखपुर : गीता प्रेस, प्रथम संस्करण–2017, आठवां संस्करण–2058) पृ. 583
165. वही, पृ. 584–585
166. वही, पृ. 586
167. वही, पृ. 588–589
168. अंजनीनंदनशरण, (संपाद), मानस–पीयूष, उत्तरकांड, खंड–7 (गोरखपुर : गीता प्रेस, प्रथम संस्करण–2017, आठवां संस्करण–2058) पृ. 589
169. अंजनीनंदनशरण, (संपाद), मानस–पीयूष, उत्तरकांड, खंड–7 (गोरखपुर : गीता प्रेस, प्रथम संस्करण–2017, आठवां संस्करण–2058) पृ. 700–703
170. वही, पृ. 715–719
171. अंजनीनंदन शरण, (संपादक), मानस–पीयूष, उत्तरकांड, खंड–7 (गोरखपुर : गीता प्रेस, प्रथम संस्करण–2017, आठवां संस्करण–2058) पृ. 719

***

मध्यकालीन भारत में अमीर वर्ग की भूमिका

*दीपक कुमार ठाकुर**

मध्यकालीन भारत भारतीय इतिहास का एक महत्वपूर्ण चरण रहा है जिस पर मुस्लिम आकान्क्षाओं का विशेष प्रभाव था जिसको स्थापित करने में अमीर वर्ग का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। मध्यकालीन राजनीतिक व्यवस्था एवं राज्य वशों के उत्थान एवं पतन में अमीर वर्ग का सक्रिय योगदान रहा है। अमीर वर्ग शासन एवं जनता के मध्य एक कड़ी का काम करते थे। अमीर वर्ग का उद्‌भव हम प्राचीन भारत तथा विश्व के अन्य देशों में भी देख सकते है। मध्यकाल में अमीर वर्ग मंत्रीयों से भी उच्च पद प्राप्त थे। सल्तनत काल में सुल्तान के बाद दूसरा पद अमीरों का था। मध्यकाल में अमीर नाम सैनिक और असैनिक दोनों प्रकार के अधिकारियों के लिये प्रयुक्त होता था। अमीरों में अफगान, तुर्क तथा मंगोल जाति के मुसलमान सम्मिलित थे। सल्तनत कालीन अमीर वर्ग की संरचना की उत्पत्ति का श्रोत 'अजाम' अथवा फारस की राजपद्धति को माना है। सल्तनत काल में सेना के संगठन के अनुरूप ही उमरा वर्ग की संरचना हुई। सभी अमीरो को उनके पद के अनुसार उमरा वर्ग में उचित स्थान दिया गया। उस अमीर वर्ग में विभिन्न विदेशी तथा भारतीय जातीय तत्व थे, जिनकी संस्था विभिन्न कालो में सुल्तानों की अभिरूचि के अनुसार बदलती रही।

सल्तनत काल में प्रायः सभी प्रभावी पदों पर नियुक्त व्यक्तियों की सामान्य संज्ञा थी 'अमीर'। इन अमीरों का प्रभाव उस समय अधिक होता था, जब सुल्तान अयोग्य, निर्बल, अल्प व्यस्क अथवा उत्तराधिकार संधर्ष में घिरा होता था। इल्तुतमिश के समय में अमीरो का संगठन तुर्क–ए चहलगानी बनाकर इत्तुतमिश ने अमीरो पर लगाम कसी लेकिन उनके उत्तराधिकारी के समय के सभी सुल्तान अमीरों के हाथों के कठपुतलियाँ थे। बलवन अपनी सत्ता को ईश्वरी सत्ता से जोड़कर देखा जिसका परिणाम यह हुआ कि उसके समय अमीर आज्ञाकारी से अधिक कुछ भी नही थे।

मध्यकालीन भारत में अमीर वर्ग संरचना एवं स्वरूप :– भारत पर तुर्क विजय के बाद जहाँ एक तरफ राज्य सत्ता के स्वरूप में परिवर्तन आया वही दूसरी ओर नवीन शासन वर्ग (अमीर वर्ग) की भी उदय हुआ जो अपने उद्‌भव के प्रारम्भ में जातीपता का आधार लिये हुआ था। सल्तनत काल में सुल्तानों द्वारा रचित अमीर वर्ग का संगठन समय के साथ परिवर्तित होता रहा है। सामान्यत अमीर वर्ग का नया शासक अपने सेवा काल का प्रारम्भ सुल्तान अथवा पहले से अमीर पद का ओहदा पाये लोगों का स्वामी भक्त गुलामों के रूप में करता था तथा अपनी स्वामी भक्ती, योग्यता तथा

* शोध छात्र (UGC NET) इतिहास विभाग, दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर

शासकीय अनुकम्पा से विभिन्न पदो पर कार्य करने के पश्चात अमीर पद ग्रहण करता था। सल्तनत काल में मलिक का पद प्राप्त करने के पश्चात ही उसे अमीर वर्ग में शामिल किया जाता था। अमीर शब्द एक व्यापक व प्रभावशाली समूह को प्रकट करता है जो उच्च सैनिक व शासक पद के लिये योग्य होने के साथ–साथ इस शब्द का प्रयोग शासक वर्ग की पहचान के सन्दर्भ में किया जाता था। इसके अर्न्तगत खान, मालिक और अमीर आते थे। सल्तनत काल में खान, मलिक व सिपहसालार तथा सरखेल की पदवी सैनिक पदों को चिन्हित करती थी लेकिन इसके साथ ही वे सामाजिक प्रतिष्ठा आर्थिक साधनों का प्रयोग व प्रशासनिक अधिकारों की द्योतक थी। खान, अमीर व मलिक वर्ग का शासक वर्ग में समाविष्ट होने का औचित्य यह था कि इस श्रेणी के अधिकारी ही सुल्तान तक अपनी पहुँच बनाते थे। प्रसिद्ध भारतीय इतिहासकार के. एम. अशरफ ने तुर्क अमीर वर्ग के संगठन एवं स्वरूप का अध्ययन करके उन्हें दो वर्गों में विभाजित किया है प्रथम उलेमा एवं द्वितीय अमरा। इसके अतिरिक्त भी अमीरों के छोटे समूह थे किन्तु प्रतिष्ठा व प्रभाव की दृष्टि से उनसे काफी कमत्तर थे।

सल्तनत काल में सेना के संगठन के अनुरूप ही उमरा वर्ग की संरचना हुई सभी अमीरों को उनके पद के अनुसार उमरा वर्ग में उचित स्थान दिया गया। इस उमरा वर्ग में विभिन्न विदेशी तथा भारतीय जातीय तत्व थे, जिनकी संस्था विभिन्न कालो में सुल्तानों की अभीरूचि के अनुसार बदलती रही है। ऐवक तथा इल्तुतमिश और बलवन के शासन काल में इल्वारी तुर्कों का प्रभुत्व रहा उत्तरोत्तर बलवन काल में भारतीय मुसलमानों को उमरा वर्ग में प्रवेश करने का अवसर मिला। उनकी संख्या खिलनी काल की अपेक्षाकृत तुगलक काल में अधिक बड़ी तथा लोदी काल में सत्ता उन्हीं के हाथों में थी। तुगलक काल में नवीन जातीय तत्व उमरा वर्ग में प्रवेश करते रहे।

सल्तनत काल में अमीर वर्ग में हिन्दुओं बहुत कम प्रवेश हुआ था फिर भी उनके जातीय तत्व के रूप में उमरा वर्ग में संलग्न करने की प्रक्रिया इसी काल में प्रारम्भ हुई। सुल्तान अलारूद्दीन खिलवी द्वारा देव गिरि के शासक रामचन्द्र देव की पुत्री मरहट्ठी रानी से विवाह करना राजा रामचन्द्र देव को 'रायरायन' की उपाधी से सुशोभित करना राजा करन बघेल की पत्नी कमला देवी से विवाह करना व उनकी पुत्री देवल रानी से खिज्र खान का विवाह करना इस बात का द्योतक है खिलजी सुल्तान अलारूद्दीन के उत्तराधिकारी कुटुबुदीन मुबारकशाह का गुजरात के बारबरी सरदार खुसरों खान को दिल्ली में उच्च पद पर प्रतिष्ठित करना उसके प्रति आगाज प्रेम प्रदर्शित का बरवारियों को दिल्ली लाकर बसाना प्रमाणित करता है कि गैर मुसलमान भी प्रशासन में सहयोगी बने, किन्तु बरवारियों ने जिस तरह कुतुबुद्दीन मुबारकशाह खिलजी का वध किया और दिल्ली में खुसरो खान को गद्दी पर बैठने के पश्चात व्यवहारकिया उससे मुसलमान उमरा वर्ग की

आस्था उनसे समाप्त हो गयी ऐसे में हिन्दू वर्ग को उच्च पदो पर प्रतिनिधित्व मिलता बन्द हो गया। मुहम्मद बिन तुगलक के शासन काल में कुछ हिन्दुओ को उच्च पदों पर आसीन किया गया था जिससे उन्हें मुसलमान उमरा वर्ग के आक्रोश का सामना करना पड़ा था। सल्तनत काल में हिन्दूओ को उमरा वर्ग में नियुक्त की जो शुरूवात हुई थी इसके अन्त तक प्रायः बन्द हो गयी थी।

मध्यकालीन शासन में अमीर वर्ग का योगदान :– मध्ययुगीन भारत के सल्तनत काल में अमीरो की बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका थी। सुल्तान के तुरन्त नीचे अमीरो का स्थान था उनकी शक्ति सम्नन्ता का सूचक था किन्तु कभी–कभी उनके सत्ता को भी अपने अधिकार में ले लेते थे। कोई वंश निर्बल होता था तो वह नाम मात्र का ही सत्ताधारी रहाता था। उसी जगह अमीर वर्ग का प्रतिनिधि शासन करता था। सल्तनत काल में अमीर वर्ग का प्रभाव बहुत गहरा था। यहाँ तक की अमीरो ने आरम्भिक तुर्की साम्राज्य के गठन में सक्रिय भाग लिया था। अमीर वर्ग का उत्थान सोची समझी नीति के अनुसार नही बरन अकस्मात था उसमें वे सब परिस्थितियाँ निहित थी, जिनके कारण दिल्ली सल्तनत की स्थापना हुई। भारत में मुहम्मद खिलजी तथा नासिरूद्दीन कुबाचा का महत्वपूर्ण हाथ था। अचानक मुहम्मद गौरी के मृत्यु के उपरान्त अपने सेवक (अमीर) कुतुबुद्दीन ऐबक को भारत का शासक नियुक्त कर अमीरों के प्रभुत्व की शुरूवात की। प्रशासन में महत्व की दृष्टि से इलवरी अमीर तुर्क वर्ग के बाद ताजिक अमीरो का स्थान था जिसके सदस्य दरवार में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त किये थे। मध्य एशिया में मंगोल आक्रमण के कारण कुलीनवंश के बहुत से युवराज तथा अमीर परिवार के लोग भारत में आकर वस गये थे जिन्हें इल्तुतमिश एवं उनके उत्तराधिकारी ने दरवार में सम्मानित पद दिया। पेशकशी अमीरो की भी एक बहुत बड़ी संख्या थी। अमीर दरवार में उपस्थित रहते थे परन्तु उनका राजनीतिक क्रिया–कलाप प्रभावहीन था लखनौती के मुक्तिशप दानुज ने तुगरिज अधिकार के समय बलवन की सहायता की जिसके बदले में बलवन ने दरबार में सम्मानित किया। कैकुबद के शासन काल में पेशकशी राजाओं की संख्या काफी अधिक थी। अमीरों में अन्य महत्वपूर्ण वर्ग ऐबीसी नियाई अमीरो का था ऐवक के शासन काल में अवध के मुक्ति मलिक काम्याज ऐवीसीनियाई था वास्तव में सल्तनत राजाओं के शासन काल में इनका प्रभुत्व काफी था। इल्वरी तुर्को के शासन काल में नव मुस्लिम धर्म परिवर्तित मंगोलो का भी अमीर वर्ग में महत्वपूर्ण स्थान था तथा शासन काल के अन्तिम वर्षों में इनका प्रभाव और बड़ गया था। बलवन कालीन अमीरों की सूची में दो मंगोल अमीरो को सरिश्तादारी मैसाना एवं सरिश्तादारी मैसारा का पद प्राप्त था। सल्तनत काल के सुदृढ़ होने के साथ–साथ सत्ता के समान्तर प्रशासकीय वर्ग की भी उदय हो गया जो शीघ्र ही सामन्तीय वर्ग में परिवर्तित हो गया इस वर्ग ने अपने स्वार्थो और हितो को सर्वोपरि माना।

इस प्रकार सुल्तान और अमीरो में संघर्ष शुरू हो गया। इल्तुतमिश का राज्य रोहण तुर्की अमीरो की शक्ति का एक महत्वपूर्ण घटना है। पहली बार अमीरो ने अपने नेता को चुनने के अधिकार का दृढ़ रूप से प्रयोग किया और यह साबित किया कि राजा चुनने का अधिकार अमीरो का है। इल्तुतमिश का विरोधी होते हुए भी यल्दौज कुबाचा शासन में काफी सक्रिय थे। प्रसिद्ध इतिहासकार मिनहाज सिराज इल्तुतमिश शासन काल में सक्रिय 30 अमीरों की बात करता है। वरनी का मानना है कि चालीस दास सरकार को नियुक्त करते थे जिसे इतिहास में चहलगानी कहाँ गया है। इल्तुतमिश के मृत्यु के बाद चहलगानी दल एक संगठन के रूप में उमर आया था। जिन्होने रजिया के सुल्तान बनने तथा बाद में बड़ा सकत खड़ा कर अपना प्रभुत्व प्रदर्शित किया। रनिया की मृत्यु के बाद बलवन की शक्ति के उत्थान के बीच का काल अमीरो और सुल्तान के बीच संघर्ष का काल था, जिसमें बलवन की सत्ता प्रतिस्थपित हुई। बलवन ने चहलगानी व्यवस्था पर अंकुश लगाया तथा अमीरो के महत्व का नकारा यही नही राजत्व के फारसी सिद्धान्त को लागू किया तथा राज्य की शान और प्रतिष्ठा को पुनः प्राप्त किया। बलवन अपने प्रियः पुत्र महमूद के मृत्यु के सदमें को नही सह सका तथा मृत्यु को प्राप्त हुआ जिससे उसके अयोग्य उत्तराधिकारी के चलते अमीरो की सत्ता पुनः प्रतिस्थापित हो गयी।

मध्यकालीन भारत में अमीरों के सरकार में हुई मुख्य बाते विशेष रूप से रही है जिसमें उनके बंशज, उनकी स्वामिभक्ति, उनके कार्य के अनुरूप ही हुआ करती थी। सम्राट उनसे किसी भी प्रकार की सैनिक अथवा दीवानी विभाग में सेवा ले सकता था एवं राजकीय तथा प्रशासकीय आवश्यकताओं के अनुसार उन्हें साम्राज्य के किसी भाग में या उससे बाहर भी भेज सकता था। कुल मिलाकर सल्तनत कालीन व्यवस्था में अमीरो का वर्चस्व बना रहा। सुल्तान तथा अमीर वर्ग दोनो एक दूसरे के पुरक रहे। मध्यकालीन भारत में अमीरो का महत्व सुल्तानो को राजगद्दी पर बैठाने और उतारने वालों के रूप में बना रहा। इनमें आपस में गुटबन्दी के कारण इनका महत्व घटता–बड़ता रहा। इस प्रकार मध्यकालीन भारतीय राजनीतिक व्यवस्था एवं राजवंशो के उत्थान तथा पतन में भी अमीर वर्ग का महत्वपूर्ण योगदान था। भारत में तुर्क विजय के साथ ही इस वर्ग की रचना हुई। अमीर वे स्तम्भ थे जिस पर सुल्तान की सत्ता टिकी होती थी या यू यी कहिये मध्यकालीन समाज में अमीर वर्ग सत्ता के प्यूरी थे।

सन्दर्भ :

1. घनश्याम दत्त शर्मा, मध्यकालीन भारतीय समाजिक आर्थिक इतिहासएवं राजनीतिक संस्थाये, पृ. 92.
2. डॉ. आर. के. शर्मा : दिल्ली सल्तनत (1200–1586) पृ. 31.

3. शिव कुमार गुप्ता : मध्यकालीन भारत का इतिहास (1000–1526) पृ. 274–75.
4. सतीश चन्द्र : मध्यकालीन भारत : सल्तनत से मुगलो तक, पृ. 41.
5. प्रो. राधेश्याम : मध्यकालीन प्रशासन समाज एवं संस्कृति पृ. 122.
6. जियाउद्दीन वरनी, तारीख–ए–फिरोज शाही, विन्लोथिका इण्डिया संस्करण पृ. 145.
7. एच. सी. वर्मा : मध्यकालीन भारत (750 –1540) पृ. 133.
8. आर. के. सक्सेना : दिल्ली सल्तनत पृ. 47–48.
9. वी. एल. गुप्ता, प्रेमाराम : मध्यकालीन भारत (1000 –1761), 1992 पृ. 77.
10. हरिश्चन्द्र शर्मा : मध्यकालीन भारत पृ. 71–72.

***

जल संसाधनों का उपयोग और महत्व : एक अवलोकन

अनूप कुमार तिवारी *

जल संसाधन जल के वे स्रोत हैं जो मनुष्यों के लिए उपयोगी होते हैं। अधिकांशतः लोगों को ताजे जल की आवश्यकता होती है। जल की उपस्थिति के कारण ही पृथ्वी पर जीवन संभव है। जल एक अक्षय प्राकृतिक संसाधन है। एक अक्षय संसाधन वह संसाधन होता है जिसे बार–बार इस्तेमाल किया जा सकता है क्योंकि यह प्राकृतिक रूप से प्रतिस्थापित हो जाता है। विश्व का 70.87 प्रतिशत भाग जलीय है जबकि 29.13 प्रतिशत भाग ही भू–भाग है। कुल जल का केवल मात्र 2.1 प्रतिशत भाग ही उपयोग योग्य है जबकि 37.39 प्रतिशत भाग लवणीय है। जनसंख्या में लगातार हो रही वृद्धि के कारण जल की मांग में भी लगातार वृद्धि हो रही है। एक तरफ जहाँ जनसंख्याँ में वृद्धि होने के कारण उद्योगों एवं कृषि क्षेत्र में वृद्धि की आवश्यकता के कारण जल की मांग में लगातार वृद्धि हो रही है तो दूसरी तरफ बढ़ते जल प्रदूषण एवं विदोहन के कारण जलापूर्ति में लगातार कमी आ रही है जो विश्व के लिए चुनौती बनती जा रही है। भारत में कृषि क्षेत्र में जलाभाव के कारण लगातार गिरावट आ रही है। देश में कई उद्योग जल की कमी के कारण बन्द हो रहे हैं।

भारत में विश्व के कुल जल संसाधनों का 5 प्रतिशत भाग है। प्रो. के.एल.राव के अनुसार देश में कम से कम 1.6 किमी लम्बाई की लगभग 10360 नदियाँ है, जिनमें औसत वार्षिक प्रवाह 1869 घन किलोमीटर है। भौगोलिक दृष्टि से अनेक बाधाओं एवं विषम वितरण के कारण इसमें से केवल 690 अरब घन किमी (32 प्रतिशत) सतही जल का ही उपयोग हो पाता है। इसके अतिरिक्त राष्ट्रीय स्तर पर उपलब्ध पारम्परिक भण्डारण एवं प्रवाह मोड़कर पुनरू आपूर्ति के योग्य लगभग 432 अरब घन मीटर जल है। सतही जल का सर्वाधिक प्रवाह सिंधु, गंगा एवं बह्मपुत्र में है जो कुल प्रवाह का 60 प्रतिशत है। देश की वार्षिक संभाव्यता 1869.35 घन किमी की विस्तृत तस्वीर से स्पष्ट होता है कि देश में कहाँ जल संसाधनों का अभाव है तथा कहाँ पर्याप्तता एवं अधिकता है। सर्वप्रथम बेसिनों के अनुसार गंगा, गोदावरी तथा कृष्णा के पास बड़ा क्षेत्र है जहाँ अनेक वर्षा क्षेत्र है। गंगा बेसिन का विस्तार दक्षिण – पश्चिम में चंबल, सिंध, बेतवा व केन तक है। कृष्णा बेसिन में पर्याप्त वर्षा मिलने के उपरान्त भी इनके प्रवाह क्षेत्रों में अनेक शुष्क क्षेत्र अवस्थित है। पूर्व की ओर प्रवाहित अधिकांश नदियाँ पश्चिमी घाट से निकलती है, जो पर्याप्त वर्षा वाले स्त्रोतों से पोषित है, फिर

* एम.ए. भूगोल, पा.जी. विभाग, बी.आर.ए.बी.यू. मुजफ्फरपुर, बिहार

भी पश्चिमी घाट के पूर्व में महाराष्ट्र के धूले से बीजापुर बेलारी तक वृष्टि छाया क्षेत्र पाया जाता है। इसी प्रकार पूर्वी भाग में पर्याप्त जलापूर्ति वाली नदियाँ प्रवाहित होती है।

जिस जल का उपयोग किया जाता है, वह बहुत ही कम है इसका कारण है विश्व में दो प्रकार के जल का होना– 1.लवणीय जल 2.अलवणीय जल 1–लवणीय जल – यह महासागरों व सागरों के रुप में विद्यमान है। विश्व का लगभग 97.5 प्रतिशत जल लवणीय जल है जो कि खारापन लिये होता है। 2. अलवणीय जल –यह विश्व में जल के कुल आयतन का केवल 2.5 प्रतिशत है एवं अलवणीय जल का लगभग 70 प्रतिशत भाग अंटार्कटिका ,ग्रीनलैंड व पर्वतीय क्षेत्रों में बर्फ की चादरों और हिमनदों के रुप में मिलता है जबकि 30 प्रतिशत से थोड़ा –सा कम भौमजल के जलभृत के रुप में पाया जाता है।

उपलब्धता : भौगोलिक दृष्टिकोण से जल संसाधन का वितरण रू–प्रकृति में जल विभिन्न अवस्थाओं में भिन्न – भिन्न स्त्रोतों में वितरित है, जहाँ से उसका परिसंचरण होता रहता है। जल किसी भी स्त्रोत में स्थायी रूप से नहीं रहता है। जल मण्डल में लगभग 13,84,120000 घन किलोमीटर जल विभिन्न दशाओं में पाया जाता है, –

महासागर 97.39 प्रतिशत
हिम टोपियाँ, हिम खण्ड, हिमनद 2.01 प्रतिशत
भूजल एवं मृदा नमी 0.58 प्रतिशत
झीलें तथा नदियाँ 0.02 प्रतिशत
वायुमण्डल 0.001 प्रतिशत

जल मण्डल में पाया जाने वाला जल पृथ्वी पर विभिन्न रूपों में वितरित है। जल का ज्यादातर भाग 97.39 प्रतिशत लवणीय है, जबकि स्वच्छ जल बहुत कम अर्थात 2.61 प्रतिशत ही है। जलीय वितरण में धरातलीय, भूमिगत तथा महासागरीय जल को सम्मिलित करते है। जल का वितरण प्राचीन काल से समान रूप में नहीं रहा है, पृथ्वी का 70.87 प्रतिशत भाग जलीय है।

उपयोगिता : जल एक प्राकृतिक संसाधन है, जिसको एक बार उपयोग के बाद पुनः शोधन कर उपयोग योग्य बनाया जा सकता है। जल ही ऐसा संसाधन है जिसकी हमें नियमित आपूर्ति आवश्यक है जो हम नदियों, झीलों, तालाबों, भू–जल, महासागर तथा अन्य पारस्परिक जल संग्रह क्षेत्रों से प्राप्त करते है। जल का सर्वाधिक उपयोग सिंचाई में 70 प्रतिशत, उद्योगों में 23 प्रतिशत, घरेलु तथा अन्य में केवल 7 प्रतिशत ही उपयोग में लिया जाता है। जल की उपयोगिता में मनुष्य के लिए पेयजल, मनुष्य के लिए पेयजल, पशुधन के लिए पेयजल, अन्य घरेलु, वाणिज्यिक एवं स्थानीय निकाय उपयोग हेतु, कृषि कार्य के लिए, ऊर्जा उत्पादन में जल का उपयोग, पर्यावरण एवं पारिस्थितिकी उपयोग हेतु, कलकारखानें एवं उद्योग एवं उद्योग अन्य उपयोग जैसे सांस्कृतिक एवं पर्यटन सम्बन्धी उपयोग में लाया जाता है।

राष्ट्रीय जल संसाधन तालिका

क्रम संख्या	मदें		मात्रा (घन किलोमीटर)
1.	वार्षिक वर्षा (हिमपात सहित)		4000
2.	औसत वार्षिक उपलब्धता		1869
3.	प्रति व्यक्ति जल उपलब्धता (2001) घनमीटर में		1820
4.	अनुमानित उपभोज्य जल संसाधन		1122
	(i) सतही जल संसाधन	690 घन किलोमीटर	
	(ii) भू-जल संसाधन	432 घन किलोमीटर	

महत्व : जल संसाधन का सर्वाधि महत्व प्रतिशत सिंचाई में 70 प्रतिशत किया जाता है, जबकि 23 प्रतिशत उद्योगों में, 7 प्रतिशत घरेलु तथा अन्य उपयोगों में किया जाता है। लोगों द्वारा पृथ्वी पर विद्यमान कुल शुद्व जल का 10 प्रतिशत से भी कम उपयोग किया जा रहा है। जल संसाधन का निम्नलिखित क्षेत्रों में उपयोग किया जा रहा है –

सिंचाई एवं कृषि कार्य हेतु : जल का सर्वाधिक उपयोग 70 प्रतिशत भाग सिंचाई कार्यो में किया जाता है। सिंचाई कार्यो में सतही एवं भूजल का उपयोग किया जाता है। सतही जल का उपयोग नहरों एवं तालाबों के द्वारा होता है, जबकि भूजल का उपयोग कुओं एवं नलकूपों द्वारा होता है। विश्व का 1/4 भूभाग ऐसी शुष्क दशाओं वाला है, जो पूर्णतया सिंचाई पर निर्भर करता है। सिंचाई से चावल, गेहूँ, गन्ना, कपास, फल, सब्जी आदि का वृहद स्तर पर उत्पादन किया जाता है। अधिक जनसंख्या भार वाले क्षेत्रों में चावल की दो–तीन फसले ली जाती है जिसके लिए सिंचाई की आवश्यकता होती है। इसी प्रकार ग्रीष्मकालीन फसलें लेने के लिए भी सिंचाई में अधिक जल की आवश्यकता होती है। वर्तमान में जिन देशों ने सिंचाई में सतही जल की अपेक्षा भूजल का अधिक दोहन किया है, वहाँ जल संकट उत्पन्न हुआ। संयुक्त राज्य अमेरिका में सिंचाई में 25 प्रतिशत भूजल तथा 75 प्रतिशत सतही जल का उपयोग किया जाता है, जबकि भारत जैसे देशों में सिंचाई में भूजल का अन्धाधून्ध उपयोग किया जा रहा है। सतही जल का अधिकांश भाग बिना उपयोग किये महासागरों में मिल जाता है और जल संकट की समस्याएं उत्पन्न होता जा रहा है।

जल संसोधन का उपयोग उद्योग एवं कारखानें : कुल शुद्व जल का 23 प्रतिशत कल–कारखानों एवं उद्योगों में उपयोग किया जाता है यही कारण है कि अधिकांश कल–कारखानों एवं उद्योग जलाशयों के निकट स्थापित किये जाते हैं ताकि जल का समस्याएं न बनी रहे। उद्योगों में जल का उपयोग भाप बनाने, भाप के संघनन, रसायनों के विलयन, वस्त्रों की धुलाई, रंगाई, छपाई, तापमान नियंत्रण के लिए, लोहा–इस्पात उद्योग में लोहा ठण्डा

करने, कोयला धुलाई करने, कपड़ा शोधन तथा कागज की लुगदी बनाने आदि के लिये किया जाता है।

घरेलु कार्य हेतु : प्रकृति में जल समान रूप से वितरित नहीं है, लेकिन इसकी उपलब्ध मात्रा के अनुसार ही जल उपयोग की विधियां विकसित कर मानव ने प्रकृति के साथ समायोजन किया है। शुष्क क्षेत्रों में जल का कम मात्रा तथा बहुउद्देशीय उपयोग किया जाता है। घरेलु कार्यो में पीने, खाना बनाने, स्नान करने, कपड़े धोने, बर्तन धोने आदि में जल की आवश्यकता होती है। नदियों के किनारे बसे शहरों के लिये जल के उपलब्ध रहने पर भी समस्या उत्पन्न हो गई है, क्योंकि नगरों द्वारा इन जल स्त्रोतों को प्रदूषित कर दिया है। भारत में गंगा नदी पर बसे कानपुर, वाराणसी, हुगली पर बसे कोलकाता, यमुना पर बसे दिल्ली आदि नगरों में जलापूर्ति की समस्या उत्पन्न हो गई है।

जल विद्युत उर्जा : अफ्रीका में संसार की 23 प्रतिशत सम्भावित जल विद्युत ऊर्जा विद्यमान है, लेकिन वहाँ विकसित जल शक्ति संसार की केवल 1 प्रतिशत ही है। इसी प्रकार दक्षिण अमेरिका में जल शक्ति सम्भाव्यता 17 प्रतिशत है तथा विकसित जल शक्ति 4 प्रतिशत ही है। महासागरों का मुख्य उपयोग परिवहन में किया जाता है। इसके अतिरिक्त महासागर भविष्य के ऊर्जा भण्डार भी है।

नहरों का निर्माण : भूसतह की विषमता होने पर नदियों के सहारें नहरों का निमार्ण किया जाता है। नहरों का निमार्ण जल के बहुउद्देशीय उपयोग के लिए किया जाता है, जिनमें सिंचाई, परिवहन, जल विद्युत, बाढ़ नियंत्रण आदि प्रमुख है।

नौ परिवहन – नदियों, नहरों तथा झीलों में स्थित सतही जल संसाधन का उपयोग नौ परिवहन में किया जाता है। नौ परिवहन में नदी या नहर के पानी की प्रवाह दिशा, जल राशि की मात्रा, मौसमी प्रभाव, नदियों तथा नहरों की लम्बाई की मुख्य भूमिका होती है।

जल संकट एवं पर्यावरणीय आपदायें : जलवायु परिवर्तन के दौर का सर्वाधिक प्रभाव जल संसाधन पर पड़ा। प्रकृति में उपलब्ध कुल जल संसाधन का लगभग 2 प्रतिशत भाग हिम के रूप में जमा है तथा केवल एक प्रतिशत से भी कम जल मानवीय उपयोग के लिए उपलब्ध हो पाता है। यह जल भी पर्यावरण आपदाओं एवं मानवीय क्रियाकलापों द्वारा गुणात्मक एवं मात्रात्मक ह्रास की ओर है जबकि अम्ल वर्षा द्वारा शुद्ध जल प्रदूषित हो रहा है। इस प्रकार वर्तमान में प्रकृति में उपलब्ध जल संसाधन को मात्रात्मक एवं गुणात्मक दृष्टि से जलवायु परिवर्तन, विश्व तापन, अम्ल वर्षा, हिम का पिघलना आदि क्रियाएँ प्रभावित करती है, जिनके फलस्वरूप जल की उपलब्धता निरन्तर घट कर जल संकट को जन्म दे रही है। प्रकृति के साथ मनमानी छेड़छाड़ से सदियों से संतुलित जलवायु के कदम लड़खड़ा गये है। तीव्र औद्योगीकरण एवं वाहनों के कारण धरती दिन–प्रतिदिन गरमाती

जा रही है। जलवायु परिवर्तन के कारण ध्रुवों की बर्फ पिघल रही है। सन् 1988 में संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम तथा विश्व मौसम विज्ञान संगठन ने वैज्ञानिकों का एक अन्तर्राष्ट्रीय दल–इंटर गवर्नमेंटल पैनल ऑन क्लाइमेंट चेन्ज का गठन किया था, जिसके शोध में पाया गया है कि पिछली सदी के दौरान औसत तापमान 0.3 से 0.6 डिग्री सेल्सियस की वृद्धि होने मात्र से ही जलवायु डगमगा गई है और खतरनाक नतीजे सामने आने लगे है। इस दौरान महासागरों का जल स्तर 10.25 सेंटीमीटर ऊँचा हो गया है, जिसमें 2.7 सेंटीमीटर की बढ़ोतरी बढ़े हुए तापमान के कारण पानी के फैलाव से हुई है।

जलवायु एक जटिल प्रणाली है। इसमें परिवर्तन आने से वायुमण्डल के साथ ही महासागर, बर्फ, भूमि, नदियाँ, झीलें तथा पर्वत और भूजल भी प्रभावित होते है। इन कारकों के परिवर्तन से पृथ्वी पर पायी जाने वाली वनस्पति और जीव–जन्तुओं पर भी प्रभाव परिलक्षित होता है। सागर के वर्षा वन कहलाये जाने वाले मूंगा की चट्टानों पर पायी जाने वाली रंग–बिरंगी वनस्पत्तियाँ प्रभावित हो रही है।

जलवायु परिवर्तन से सूखा पड़ेगा जिसका प्रत्यक्ष प्रभाव खाद्यान्न उत्पादन पर पड़ेगा। जल की उपलब्धता भी घटेगी क्योंकि वर्तमान समय में कुल स्वच्छ पानी का 50 प्रतिशत मानवीय उपयोग में लाया जा रहा है। अतरू कुवैत, जॉर्डन, इजराइल, रवांडा तथा सोमालिया जैसे जलाभाव वाले दशों में भंयकर जल संकट उत्पन्न होगा। अमेरिकी सुरक्षा एजेंसी ने अनुमान लगाया है कि कार्बन डाई ऑक्साइड की मात्रा दुगुनी होने से उत्पन्न गर्मी के कारण कैलिफोर्निया में पानी की वार्षिक आपूर्ति में सात से सोलह प्रतिशत की कमी आ सकती है। जलवायु परिवर्तन से कृषि के साथ ही वनों की प्राकृतिक संरचना भी बदल सकती है। सूक्ष्म वनस्पतियों से लेकर विषाल वृक्षों तक का तापमान और नमी का एक विशेष सीमा में अनुकूलन रहता है। इसमें परिवर्तन होने से ये वनस्पित्तयाँ तो अपना स्थान परिवर्तित कर लेंगी या सदा के लिए विलुप्त हो जायेंगी। ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि बढ़ती जनसंख्या एवं शहरीकरण के कारण इन्हे दूसरा रास्ता ही अपनाना होगा। इस प्रकार जलवायु परिवर्तन से विश्व के एक–तिहाई वनों को खतरा है। उच्च तापमान से वनाग्नि की घटनायें भी बढ़ रही है। वनाग्नि से वायुमण्डल में कार्बन डाई ऑक्साइड की मात्रा बढ़ सकती है।

प्रकृति में पाये जाने वाले जल के विषम वितरण के कारण ही प्रारम्भिक जल संकट उत्पन्न हुआ है, जो बढ़ती मांग के कारण अधिक गहरा गया है। उदाहरणार्थ एशिया में विश्व की 60 प्रतिशत जनसंख्या निवास करती है, जबकि कुल नदियों का प्रवाह विश्व का 36 प्रतिशत है। दूसरी ओर दक्षिणी अमेरिका में विश्व की 6 प्रतिशत जनसंख्या निवास करती है तथा वहाँ कुल सतही प्रवाह विश्व का 20 प्रतिशत है।

मानवीय उपयोग हेतु उपलब्ध जल संसाधन का अधिकांश भाग भू–सतह पर नदियों व झीलों में स्थित है जो वर्षा के वाष्पीकरण की मात्रा से नियन्त्रित होता है। ये दोनों क्रियाएं जलवायु के तत्वों के रूप में जलीय चक्र की प्रमुख प्रक्रियाएं है तथा जल के पुनर्वितरण में महत्त्वपूर्ण भूमिका रखती है। 20वीं शताब्दी के अन्तिम दशकों में बढ़ते मानवीय हस्तक्षेप ने काफी हद तक जलीय चक्र की प्रकृति को परिवर्तित किया है। भारत में शुष्क भागों में निरन्तर वनोन्मूलन एवं सम्बन्धित आर्थिक क्रियाओं के कारण मरूस्थलीकरण की प्रक्रिया में तीव्रता आयी जिसके फलस्वरूप वर्षा की मात्रा में कमी आयी है। भारतीय उप महाद्वीप में जल की वार्षिक उपलब्धता मानसून की संतुलित सक्रियता पर निर्भर करती है जिसका आकर्षण न्यून दाब का केन्द्र थार के मरूस्थल में स्थित है।

सन्दर्भ :

1- Gurjar, R.K. and Jat B.C. (2008) Geography of Water Resource, Rawat Publications, Jaipur.
2- WHO, 2001. Guidelines for Drinking Water Quality. Addendum: Microbiological agents in Drinking Water, Geneva: World Health Organization.
3- Status of Ground Water Quality in India (2007): Central Ground Water Board, Govt. of India.
4- Ground Water Quality in Shallow Aquifers of India (2010): Central Ground Water Board, Govt. of India.
5- Carder, D.J. and Spencer, G.W. (1997): Water Conservation Hand Book. Soil Conservation series deptt. of Agriculture, Australia.
6- डॉ. रवीन्द्र कुमार, 2016ः पर्यावरण प्रदूषणः एक अध्ययन, हिंद–युग्म, नई दिल्ली, अप्रैल 2016।
7- राठौड़ सुनीता, जाट बी.सी. (2008) ''बढ़ती जनसंख्या एवं पेयजल समस्याः चुनौतियां एवं समाधान, Geographical aspects, Vol.10 Rajasthan Geographical Association, Bhilwara.
8- ADA Reports (2005): The impact of Fluoride onhealth, Journal of American dietic association, Volume 105 number 10

***

वैश्वीकरण का प्रभाव

नरेश राम *

वैश्वीकरण का शाब्दिक अर्थ स्थानीय या क्षेत्रीय वस्तुओं या घटनाओं के विश्व स्तर पर रूपान्तरण की प्रक्रिया से है। यह एक ऐसी प्रक्रिया का वर्णन करने कि लिए प्रयुक्त किया जा सकता है, जिसके द्वारा पूरे विश्व के लोग मिलकर समाज बनाते हैं तथा एक साथ कार्य करते हैं। यह प्रक्रिया आर्थिक, तकनीकी, सामाजिक और राजनीतिक ताकतों का एक संयोजन है। वैश्वीकरण में भौगोलिक सीमा की बाध्यता समाप्त हो जाती है।

वैश्वीकरण का उपयोग अक्सर आर्थिक वैश्वीकरण के संदर्भ में किया जाता है, अर्थात् व्यापार, विदेशी प्रत्यक्ष निवेश, पूँजी प्रवाह और प्रौद्योगिकी के प्रसार के माध्यम से राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था का अंतराष्ट्रीय अर्थव्यवस्थाओं में एकीकरण आदि।

टॉम जी.पामर ''के अनुसार सीमाओं के पार विनिमय पर राज्य प्रतिबंधों ह्यस या विलोपन और इसके परिणामस्वरूप उत्पन्न हुआ उत्पादन और विनिमय का तीव्र एकीकृत और जटिल विश्व स्तरीय तंत्र'' भूमण्डलीकरण है।

थॉमस एल फ्राइडमेन के अनुसार वैश्वीकरण ''दुनिया के 'सपाट' होने के प्रभाव की जाँच करता है'' और तर्क देता है कि वैश्वीकृत व्यापार (Globalized Trade),vkmVlksflZax(Outsourcing), आपूर्ति के श्रृंखलन (Supply Chaining) और राजनीतिक बलों ने दुनिया को, बेहतर और बदत्तर, दोनों में स्थायी रूप से बदल दिया है। वे यह तर्क भी देते हैं कि वे वैश्वीकरण की गति बढ़ रही है और व्यापार संगठन तथा कार्यप्रणाली पर इसका प्रभाव बढ़ रहा है।

नोअम चोमस्की के अनुसार ''सैद्धांतिक रूप में वैश्वीकरण शब्द का उपयोग, आर्थिक वैश्वीकरण (Economic Globalization) ने नव उदार रूप का वर्णन करने में किया जाता है।''

भूमण्डलीकरण अमेरिका, जापान, चीन, जर्मनी आदि देशों के लिए भले ही अत्यन्त उत्साहवर्द्धक संभावनाएँ पैदा करता है लेकिन यही बात अगर भारत, बंग्लादेश या अन्य एशियाई देश– अफ्रिका, लैटिन अमेरिकी देशों के लिए स्वतंत्रता और उन्नति का पैगाम नहीं, बल्कि ऐसे वातावरण और परिस्थिति का नियम का व्यवस्था करने वाला बन जाता है, जो इन्हें विकसित पूँजीवाद देशों के अनुकूल ऐसे बाजार में तब्दील कर दे, जहाँ हर चीज बिकने योग्य होती है।

गौरतलब है कि वैश्वीकरण का अर्थ पूँजी, श्रम, कौशल, तकनीक, ज्ञान और उपभोक्ता सामग्रियों का ऐसा निर्वाध, बाधा रहित प्रवाह का नाम है, जिसमें

---

* इतिहास विभाग, ल.ना.मि.वि., दरभंगा, ग्राम+पो. जाले, जिला - दरभंगा, बिहार

राज्यों की भौगोलिक सीमाएँ बौनी हो जाती है, तो निस्संदेह हम कह सकते है कि वैश्वीकरण विकसित राष्ट्रों पर लागू न होकर विकासशील और पिछड़े राज्यों पर लागू होता है।

भूमण्डलीकरण की प्रक्रिया में देश एक दूसरे पर परस्पर निर्भर हो जाते है और लोगों के बीच की दूरियाँ घट जाती है। एक देश अपने विकास के लिए दूसरे देशों पर निर्भर करता है। जैसे– सूती कपड़े के उद्योग महत्त्वपूर्ण नामों में से एक है, जो जापान, भारत या अन्य देशों में पैदा हुई कपास पर निर्भर करता है। काजू के अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में प्रमुख भारत अफ्रिकी देशों में कच्चे काजू पर निर्भर करता है। जाहिर है अमरिका का सूचना प्रौद्योगिका उद्योग किसी सीमा तक भारत और अन्य विकासशील देशों के इंजीनियरों पर निर्भर करता है। भूमण्डलीकरण में केवल वस्तुओं और पूँजी का ही संचलन नहीं होता है। अपितु लोगों का भी संचलन होता है।

भूमण्डलीकरण एक प्रत्यक्ष राजनीतिक प्रणाली न होकर एक सशक्त आर्थिक हस्तक्षेप है, जिसकी मुख्य प्रेरक शक्ति भी प्रभुत्व और वर्चस्व का विस्तार ही है, ताकि तीसरी दुनियाँ में बाजार की अपार संभावनाओं का दोहन किया जा सके। जाहिर है कि वैश्वीकरण उपनिवेशवाद का नया संस्करण है, जो उससे कहीं अधिक विकट, अधिक विनाशकारी, दैत्य के रूप में प्रकट हुआ है। एक ऐसा विकासशील और पिछड़े राष्ट्र की सामाजिक–सांस्कृतिक अस्मिता को, उनकी पहचान को लगातार दिला रहा है, भले ही उसने चकाचौंध करने वाला मुखौटा धारण किए हुए हो, लेकिन उसके पीछे सारे संसार को निगल जाने की अभिलाषा लहर ले रही है। जाहिर है भूमण्डलीयकरण जितना भी अधिक लोकलुभावन दिख रहा है। इसमें महाविनाश की घटना को भी उतनी ही स्पष्टता के साथ सुना जा सकता है।

भूमण्डलीकरण संपूर्ण विश्व को एक ग्राम में तब्दील करने की अवधारणा है जहाँ कोई सीमा, कोई सरहद, कोई दीवार न हो। भूमण्डलीकरण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसने पूरी दुनिया की तस्वीर बदल दी है। वर्तमान समय बाजारवाद का है। मनुष्य को किसी मिलने वाले वस्तु के बदले में धन या साथ–साथ जीवन का प्रत्येक क्षेत्र बाजारवाद से प्रभावित प्रत्येक गतिविधि व्यावसायिक दृष्टिकोण या तो स्वतः अपना रही है या अपनाने को मजबूर है। साहित्य, संगीत, कला, विज्ञान, दर्शन सभी पर व्यवसायिकता का प्रत्यक्ष प्रभाव दिखाई देता है।

आज के भूमण्डलीकरण विशेषता में से एक है 'प्रतिभा पलायन' अथवा प्रतिभा संपन्न लोगों का पूर्व से पश्चिम की ओर भागना। 14वीं सदी का विश्व इसी प्रकार की घटना का साक्षी है। भूमण्डलीकरण के प्रारंभिक रूपों में भारत का कपड़ा, इंडोनेशिया और पूर्वी अफ्रिका के मसाले, जावा का गलीचे, जिंबाबे का सोना तथा चीन के रेशम और चाय ने यूरोप में प्रवेश पाया। जिसके बाद यूरोप के लोगों की अपनी स्त्रोतों को ढूढ़ने की उत्सुकता में यूरोप में अन्वेषण के युग का प्रारंभ

किया। अतः आधुनिक भूमण्डलीकरण मुख्यतः अतीत में भारतीयों, अरबों और चीनियों द्वारा स्थापित ढाँचे के कारण ही संभव हुआ है। आधुनिक भूमण्डलीकरण की ओर कदम प्रौद्योगिक परिर्वतनों नेएक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई हैं। अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं जैसे संयुक्त राष्ट्र, विश्व बैंक और विश्व व्यापार संगठन की स्थापना इस प्रक्रिया में सहयोग देने वाला एक अन्य कारक है। अपने देश से बाहर बाजार मिलने और उपभोक्तावाद ने विश्व के विभिन्न भागों में भूमण्डलीकरण के विस्तार की ओर प्रेरित किया।

भूमण्डलीकरण के कारण जहाँ पूरा विश्व 'एक गाँव' में तब्दील हो चुका है वहीं अंतर्मन की दूरियाँ भी बढ़ रही है। विकास के नाम पर अंग्रेजों की मुँहजोड़ी और उधारी ने शेष दुनिया के जमीन अंतर्विकास और देशज संवेदना के सम्मुख लगातार संकट खड़ा किया है। भाषाई साम्राज्यवाद केवल भाषा साम्राज्यवाद नहीं होता वह आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक साम्राज्यवाद से अभिन्न रूप से जुदा होता है। अतः अंग्रेजी का प्रसार केवल भाषा का ही नहीं अपितु सामाज्यवाद का प्रसार भी है।

वैश्वीकरण के कारण दक्षिण–पूर्व एशिया और मध्य एशिया के बीच समुद्री मार्ग का विस्तार हुआ। केवल वस्तुओं और लोगों ने ही नहीं बल्कि प्रौद्योगिकी ने भी विश्व के एक छोर से दूसरे छोर तक की यात्रा की। इस अवधि में भारत न केवल शिक्षा एवं आध्यात्म का केंद्र था बल्कि धन–दौलत का भी अपार भंडार था। इसे 'सोने की चिड़ियाँ' कहा जाता था, जिससे आकर्षित होकर विश्व के अन्य भागों से व्यापारी और यात्री यहाँ आए। चीन में मंगोल शासन के दौरान कई चीनी आविष्कार जैसे बारूद, छपाई, धमन भट्टी, रेशम की मशीने, कागज की मुद्रा और ताश यूरोप में पहुँचे। वास्तव में इन्हीं व्यापारिक संबंधों ने आधुनिक भूमण्डलीकरण का बीज बोया।

वास्तव में भूमण्डलीय दो क्षेत्रों पर बल देता है– उदारीकरण और नीजिकरण। उदारीकरण का अर्थ है औद्योगिक और सेवा क्षेत्र की विभिन्न गतिविधियों से संबंधित नियमों में ढील देना और विदेशी कंपनियों को घरेलू क्षेत्र में व्यापारिक और उत्पादन इकाईयाँ लगाने हेतु प्रोत्साहित करना। नीजिकरण के माध्यम से निजी क्षेत्र की कंपनियों को उन वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन की अनुमति प्रदान की जाती है, जिनकी पहले अनुमति नहीं थी। इसमें सरकारी क्षेत्र की कंपनियों की संपत्ति को निजि क्षेत्र के हाथों बेचना भी सम्मिलित है। भूमण्डलीकरण के आधुनिक रूपों का प्रारंभ दूसरे विश्व युद्ध से हुआ है। आधुनिक भूमण्डलीकरण मुख्यतः विकसित देशों के इर्द–गिर्द केंद्रित है। ये देश विश्व के प्राकृतिक संसाधनों का मुख्य भाग खर्च करते हैं। विश्व के विभिन्न भूभाग में रहने वाले लोग प्राकृतिक संसाधनो के 80 प्रतिशत से अधिक भाग का उपभोग करते हैं।

उनका नवीनतम प्रौद्योगिकी पर नियंत्रण है। विकासशील देश प्रौद्योगिकी, पूँजी, कौशल और हथियारों के लिए इन देशों पर निर्भर है।

भूमण्डलीकरण का स्वरूप प्रकृति और इतिहास : भूमण्डलीकरण का इतिहास बहुत पुराना नहीं है। 20वीं सदी के अंतिम दो दशकों से ही इसके लक्षण साफ तौर पर दिखाई देने लगता है। गौरतलब है जब विश्व के दो शक्तिशाली देशों में से एक सेवियत संघ का विघटन हो गया तो इस विघटन के बाद अमेरिका को चुनौती देने वाला कोई भी देश नहीं बचा। इसलिए अमेरिका पूरी आजादी के साथ भूमण्डलीकरण को प्रचारित करने में लग गया, जहाँ घी सीधी उंगली से नहीं निकला तो वहाँ उसने टेढ़ी भी की। जिससे पूरी दुनिया के पास भूमण्डलीकरण के स्वागत के अलावा कोई रास्ता नहीं बचा।

इस प्रकार भूमण्डलीकरण के तीन चरण है :–

1. भूमण्डलीकरण का पहला चरण 1870–1914 के बीच का माना गया है। इस समय रेलवे, टेलीग्राफ व्यवस्था और अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय व्यवस्था के आदान–प्रदान के लिए नये तौर–तरीकों और तकनीकी के साधनों का उपयोग हुआ। हस्तशिल्प और कुटीर उद्योगों को फैक्ट्रियों तक पहुँचाया जाना अपने आप में वैज्ञानिक प्रबंध समझा गया तथा फैक्ट्रियों के संरक्षण के लिए कानून बनाया गया। पहली बार श्रम–क्षेत्र में ट्रेड यूनियन का प्रभाव बढ़ा। एक प्रकार से यह अन्तर्राष्ट्रीयकरण का दौर था। दुनिया नये तरीके से अग्रसर हो रही थी। तभी प्रथम विश्वयुद्ध ने सब किये–कराये पर पानी फेर दिया। इस प्रकार विश्व में एक नई भूमण्डलीय संरचना बनते–बनते रह गई यही भूमण्डलीकरण का पहला चरण था।

2. दूसरा चरण था बहुराष्ट्रीयकरण का जिसका समय था (1950–1960)। 1914 से 1950 के बीच में बहुत सारी छोटी–छोटी घटनाएँ हुई। जैसे प्रथम विश्वयुद्ध, महामंदी और फिर द्वितीय विश्वयुद्ध।यह एक प्रकार से विश्व के इतिहास में यह सबसे बड़ी त्रासदी का समय था। जिसके परिणामस्वरूप नव–राष्ट्रवाद का उदय हुआ और उन्नत देशों को फिर से अपने–अपने राष्ट्र निर्माण की आवश्यकता पड़ी। जिसके कारण पश्चिमी देशों में अकथनीय आर्थिक प्रगति और समृद्धि आयी। इस बीच में अमेरिका न एक शक्ति के रूप में उभरा बल्कि राष्ट्र के बाहर जाकर पूँजी का निवेश भी किया। और विदेशों में अपनी दफ्तर और फैक्ट्रियाँ खोली। लेकिन उसका मुख्यालय अमेरिका में ही रखा। जिससे सभी जगह निगरानी कर सके एवं विदेशों में अपनी फैक्ट्री स्थापित कर सके। क्योंकि वहाँ मजदूरी कम थी और मजदूरों को सामाजिक सुरक्षा देने की बाध्यता नहीं थी।द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद अनेक देशों की आर्थिक स्थिति खराब हो चुकी थी ढाँचागत सुविधाओं के आधार क्षतिग्रस्त हो गए। प्राकृतिक तंत्र और खाद्य सामग्री का अभाव हो गया। बमबारी में अनेक देशों के अनेक संस्थान नष्ट हो गए। महँगाई आसमान छूने लगी तथा कर्मचारियों को वेतन देने के पैसे सरकार के खजाने में नहीं थी। उन दिनों

अमेरिकी ही एक ऐसा देश था। जो आर्थिक रूप से मजबूत था। इसलिए अन्य पश्चिमी देशों के साथ मिलकर उसने आर्थिक पुनःर्निर्माण और व्यापारिक बाधाओं को समाप्त करने के उद्देश्य से प्रमुख अन्तर्राष्ट्रीय संस्थानों का गठन किया। जिससे बिना किसी अवरोध के विश्व में मुक्त व्यापार का मार्ग प्रशस्त हुआ।

इस प्रकार से अमेरिका के नेतृत्व में बनी इन अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं के माध्यम से भूमण्डलीकरण की रूपरेखा तैयार की गई, जिससे विश्व के अनेक देशों को जो, अपने पैरों पर खड़ा हो सकने की हालत में नहीं थे, उन्हें आशिंक सहारा मिला। वे न केवल विश्वयुद्ध में हुए आर्थिक तबाही से बाहर निकले बल्कि विश्व में उनका आर्थिक सिक्का भी जमने लगा। इस तरह आर्थिक जगत में एक ऐसी व्यवस्था पनपने लगी जिससे तीसरी दुनिया के देशों के बाजार पर अमीर और शक्तिशाली देशों का कब्जा होने लगा। इसी विस्तार को अमीर और शक्तिशाली देशों द्वारा भूमण्डलीकरण का नाम दिया गया।

3. आज हम भूमण्डलीकरण के तीसरे दौर से गुजर रहे है, जो 20वीं शताब्दी के उत्तर्राद्ध से अब तक चल रहा है, लेकिन सही मायने में भूमण्डलीकरण सोवियत संघ के विघटन के बाद से ही माना जाता है, क्योंकि उससे पहले विश्व दो ध्रुवों में बँटा था। एक तरफा पूँजीवादी ताकते थीं तो दूसरी तरफ समाजवादी ताकतें। जहाँ पूँजीवादी देशों का प्रतिनिधित्व अमेरिका कर रहा था वहीं समाजवादी देशों का प्रतिनिधित्व अमेरिका के हाथों में ही था।

भूमण्डलीकरण के प्रभाव : भूमण्डलीकरण प्रत्येक देश को भिन्न–भिन्न ढंग से प्रभावित करता है। इसका प्रभाव एक देश से दूसरे देशों में भी बदल जाता है। भूमण्डलीकरण का विकसित देशों पर प्रभाव विकासशील देशों से अलग था। विकसित देशों में भूमंडलीकरण से नौकरियाँ कम हुई, क्योंकि कई कंपनियाँ उत्पादन खर्च को कम करने के लिए उत्पादन इकाईयों को विकासशील देशों में ले गई। यूरोप के कई देशों में बेरोजगारी एक सामान्य बात हो गई। विकासशील देशों में भूमण्डलीकरण खाद्यानों एवं अन्य कई निर्मित वस्तुओं के उत्पादकों को प्रभावित करता है। भूमण्डलीकरण ने कई विकासशील देशों के लिए दूसरे देशों से कुछ मात्रा में वस्तुएँ खरीदना अनिवार्य किया, भले ही उन वस्तुओं का उनके अपने देश में ही उत्पादन क्यों न हो रहा हो। बाहर के देशों की निर्मित वस्तुओं के प्रवेश से स्थानीय उद्योगों को खतरा बढ़ा। विकासशील देशों की दृष्टि से भूमण्डलीकरण के कुछ अन्य प्रभाव निम्नलिखित है :–

राजनीतिक प्रभाव : भूमण्डलीकरण के सभी प्रकार की गतिविधियों को नियमित करने की शक्ति सरकार के स्थान पर अन्तर्राष्ट्रीय संस्थानों को देता है, जो अप्रत्यक्ष रूप से बहुराष्ट्रीय कंपनियों द्वारा नियत्रित होते हैं। जैसे– जब एक देश किसी अन्य देश की व्यापारिक गतिविधियों के साथ जुड़ा होता है, तो उस देश की सरकार उन देशों के समय अलग–अलग समझौते करती है। यह समझौते अलग–अलग देशों के

साथ अलग–अलग होते हैं। अब अंतराष्ट्रीय संगठन जैसे विश्व व्यापार संगठन सभी देशों के लिए नियमावली बनाता है और सभी सरकारों को ये नियम अपने–अपने देश में लागू करने होते हैं। इसके साथ ही भूमण्डलीकरण कई सरकारों को निजी क्षेत्र की सुविधा प्रदान करने हेतु कई विधियों कानूनों और संविधान बदलने के लिए विवश करता है। प्रायः सरकारें कामगारों के अधिकारों की सुरक्षा करने वाले और पर्यावरण संबंधी कुछ नियमों को हटाने पर विवश हो जाती है।

आर्थिक प्रभाव : भूमण्डलीकरण से अन्य देशों से पूँजी, नवीनतम प्रौद्योगिक और मशीनों का आगमन होता है। जैसे – भारत का सूचना प्रौद्योगिकी उद्योग विकसित देशों में प्रयोग किए जाने वाले कम्प्यूटरों और दूर संचार यंत्र का प्रयोग करता है। लगभग 15 वर्ष पहले यह अकल्पनीय था। भारत के कुछ संस्थानों के इंजीनीयर स्नातकों की अमेरिका और यूरोप के कई देशों में बहुत माँग है। कई देशों में सरकारों के पास प्राकृतिक संसाधनों का स्वामित्व होता है और वे पूरी दक्षता से जनहित में उनका उपयोग करती है और लोगों को विभिन्न सेवाएँ उपलब्ध कराती है। भूमण्डलीकरण सरकारों को संसाधनों का निजीकरण कराने के लिए प्रोत्साहित करता है। जिससे लाभ कमाने की दृष्टि से संसाधनों का शोषण होता है और कुछ लोगों के हाथों में पैसा इकट्ठा हो जाता है। निजीकरण उन लोगों को भी वंचित रखता है जो इन संसाधनों का उपयोग करने के लिए खर्च करने की क्षमता नहीं रखते। भूमण्डलीकरण का ही प्रभाव है कि कई यूरोपीय देशों ने मिलकर यरोपीय मुद्रा का चलन प्रारम्भ किया।

सामाजिक– सांस्कृतिक प्रभाव : भूमण्डलीकरण परिवारिक संरचना को भी बदल देता है। अतीत में संयुक्त परिवार का चलन था। अब इसका स्थान एकांकी परिवार ने ले लिया है। हमारी खान–पान की आदतें, त्योंहार, समारोह भी काफी बदल गए है। जन्मदिन, महिला दिवस, मई दिवस, फास्ट–फूड रेस्ताराओं की बढ़ती संख्या और कई अन्तर्राष्ट्रीय त्योहार भूमण्डलीकरण के प्रतीक हैं। भूमण्डलीकरण का प्रत्यक्ष प्रभाव हमारे पहनावे में देखा जा सकता है। समुदायों के अपने संस्कार, परंपराएँ और मूल्य भी परिवर्तित हो रहे हैं।

इस प्रकार आर्थिक उदारीकरण के स्वभाव को लेकर भूमण्डलीकरण मूलतः पूँजीवादी शक्तियों का हित साधने में लगा रहा। वैश्वीक स्तर पर प्रारंभ हुई इस भूमंडली प्रक्रिया ने निजिकरण को बढ़ावा देकर हस्तक्षेप को बहुत हद तक समाप्त कर दिया। जिससे राष्ट्रीय संप्रभुता और राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए अनेकानेक खतरे उत्पन्न हुए। खासकर तीसरी दुनिया और विकासशील देशों के लिए एक नये प्रकार की चुनौती का जन्म हुआ। लेकिन एक दूसरा पक्ष यह भी है, कि भूमण्डलीकरण के कारण ही इन देशों के विश्वयुद्ध के त्रासदी से उठ खड़ा होने का मौका मिला। दलित आदिवासी और स्त्री को विशेषकर लाभ हुआ। भारत और हिन्दी साहित्य के

संदर्भ में हम दलित, आदिवासी और स्त्री के आंदोलनों में तीव्रता लाने का श्रेय कही न कहीं भूमण्डलीकरण का भी है।

भूमण्डलीकरण की प्रकृति ऐसी है कि वह राष्ट्र को राष्ट्र नहीं रहने देना चाहता बल्कि सारी भौगोलिक सीमाएँ तोड़कर अन्तर्राष्ट्रीय परिपेक्ष्य में विलय करना चाहता है। व्यक्ति को अपनी जड़ों से काटकर विश्व मानव में बदलने में विश्वास रखता है। उसकी राष्ट्रीय चेतना समाप्त कर अन्तराष्ट्रीय चेतना में बदल देता है। भूमण्डलीकरण सूचना प्रौद्योगिक के रथ पर सवार राष्ट्र की सीमाओं का उल्लंघन करता है, जिससे समय और दूरी का संकुचन होता है। इसके स्वभाव में तीव्रगमिता है। इसी तीव्रता के कारण अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय प्रवाह, सांस्कृतिक प्रवाह और सामाजिक प्रवाह का निर्वाध आवागमन होता है। इसके लिए यह उपभोक्ता की सर्वोच्चता, उदारीकरण और समरूपीकरण का भ्रामक विज्ञापन करता है। वास्तव में इस विज्ञापन की आड़ में नव–उपनिवेशवाद का आक्रमण होता है। कुमुद शर्मा के अनुसार ''बहुराष्ट्रीय कम्पनियों ने भूमण्डलीकरण की प्रक्रिया में मनुष्य को नागरिक नहीं उपभोक्ता को नहीं अपने व्यवसायिक हित को सर्वोपरी माना है। व्यापारिक रणनीति के लिए उन्होंने विज्ञापन उद्योग का सहारा लिया। विज्ञापन के जरिए ही उसने अपने उत्पाद के लिए खरीदारों की जमात पैदा की। ये कम्पनियाँ विज्ञापन बाजार में भारी धनराशि लगा सकती थी। इसलिए विज्ञापन के जादू से अपने उत्पाद के हक में उपभोक्ता के मानोवृति को बदलने में सक्षम हुई''।

भूमण्डलीकरण समरूपता की बात करता है। इसकी प्रवृति यह है कि जातीय विभेद, सांस्कृतिक वैविध्य और अन्य विविधताओं आदि को मिटाकर एक साथ संस्कृति समान सभ्यता और समान रूचियों का 'विश्व मॉडल' तैयार हो। गौरतलब है कि भूमण्डलीकरण विश्व के अनेक संस्कृतियों का एकीकरण चाहता है लेकिन यह किस हद तक सही है यह तो सोचने की विषय है, एक प्रश्न यह भी है कि वास्तव में यह विश्व का समरूपीकरण चाहता है या मात्र दिखाव करता है। क्योंकि भूमण्डलीकरण का सबसे मूल चरित्र है बाजारीकरण और सभी जानते हैं कि बाजार में संवेदना नहीं होती, यहाँ तो सिर्फ नफा–नुकसान की बात होती है। ऐसी में मुनाफे के लिए पूँजीवादी किस तरीके से किस हद तक गुजरेंगें यह तो सोचने का विषय है, इन्हीं प्रश्न के संदर्भ में कुमुद शर्मा ने कहीं है– ''मुक्त बाजार व्यवस्था में उनका समरूपीकरण वस्तुतः नियंत्रीकरण है। वे समरूपता के नारे से विकासशील देशों के बाजारों को नियंत्रित कर रहे हैं।

वैश्वीकरण की प्रक्रिया में संस्कृति एवं सभ्यता परिवर्तित हो रहे है। आधुनिकता एवं भौतिकवाद अपने उत्कर्ष पर है। आधुनिकता की इस दौर में व्यक्ति, समाज नहीं बल्कि विश्व से सभी देशों की सीमाओं का अतिक्रमण आरंभ है। आने वाले दिनों में वैश्वीकरण और तीव्र होने वाली है।

सन्दर्भ :

1. अभय कुमार दुबे : भारत का भूमण्डलीकरण, दिल्ली 2008, पृ. 30–31.
2. कुमुब शर्मा, भूमण्डलीकरण और मीडिया, दिल्ली, पृ. 29.
3. जेरेमी सी ब्रुक भूमण्डलीकरण बनाम अन्तर्राष्ट्रीयतावाद, युवा संवाद वर्ष 1, अंक 9, दिसम्बर 2003, पृ. 203.
4. प्रभा खेतान, बाजार के बीचः बाजार के खिलाफ, दिल्ली 2010, पृ. 11.
5. पामेला शुर्मर स्मिथ, इंडियाः ग्लोबलाईजेशन एंड चेंज, बेवसाइट, पृ. 41.
6. प्रेम सिंह, वैश्वीकरण का असली चेहरा, युवा संवाद, पृ. 10–11.
7. फैकल्टी एसोसिएट ऑफ हिन्दी (प्रियंका सिंह)ः आलेख – भूमण्डलीकरण से जूझती हिन्दी।
8. सचिदानंद सिन्हा, भूमण्डलीकरण की चुनौतियाँ, नई दिल्ली, पृ 110–112.

***

गांधो की चिंतन शैली और सत्याग्रह - एक अवलोकन

सरिता कुमारी *

गांधी की चिंतन शैली में 'सत्याग्रह' की महत्वपूर्ण भूमिका रही है और यह उनके जीवन-दर्शन का अभिन्न अंग है। इसलिए गांधी के जीवन-दर्शन को समझने के लिए उनके सत्याग्रह संबंधी सिद्धांतों को भली-भांति समझना आवश्यक है। सत्याग्रह का अर्थ है 'आग्रह', अर्थात् सत्य के लिए नैतिक दबाव डालना। यह 'सत्य' और 'आग्रह' इन दोनों शब्दों के संयोग से बना है जिसका अर्थ है- सत्य के लिए दृढ़तापूर्वक आग्रह करना। गांधी के अनुसार अहिंसात्मक उपायों का सहारा लेते हुए सदैव सत्य पर दृढ़ रहना और वचन तथा कर्म से उसी के अनुसार आचरण करना ही सत्याग्रह है। गांधी ने सत्याग्रह के इस व्यापक स्वरूप को अपना और उसका सफल प्रयोग भी किया।

सत्याग्रह राजनीतिक तथा सामाजिक क्षेत्र में हो रहे अन्याय, शोषण और अत्याचार के विरूद्ध अहिंसात्मक संघर्ष है। हिंसात्मक संघर्ष व्यक्ति विशेष अपना समूह विशेष को क्षति पहुँचाता है जबकि अहिंसात्मक संघर्ष अथवा सत्याग्रह का ध्येय अत्याचार का अन्त करना होता है। हिंसा से प्रेरित मनुष्य कभी भी स्वयं को क्रोध, घृणा, प्रतिशोध आदि दुर्भाव्चनाओं से परे नहीं रख पाता, परन्तु अहिंसा के मार्ग पर चलने वाला सत्याग्रही अपने सौहार्दपूर्ण व्यवहार से अपने विरोधी को भी मित्र बना लेता है। सत्याग्रही विरोधी का हृदय परिवर्तन करने में विश्वास करता है और सदा सत्य की विजय चाहता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि हिंसात्मक संघर्ष और सत्याग्रह मूलतः एक दूसरे से भिन्न है।[1]

दक्षिण अफ्रीका की गोरी सरकार द्वारा दक्षिण अफ्रीका में भारतीवासियों के प्रति जो असमानता का व्यवहार किया जा रहा था उससे वे सभी भारतवासी नाराज थे जिनमें राजनीतिक चेतन थी। इंग्लैंड से वैरिस्टर की डिग्री प्राप्त करने के बाद वहां वकालत आरम्भ करने वाले मोहनदास करमचन्द गांधी द्वारा चलाए गये शांतिपूर्ण प्रतिरोध और सत्याग्रह आन्दोलन के माध्यम से वहां के भारतवासियों की हालत प्रकाश में आई। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने अनेक प्रस्ताव प्रस्ताव पारित करे भारतीवासियों के प्रति किये जा रहे असमानता के व्यवहार की निन्दा की थी और ब्रिटिश सरकार से हस्तक्षेप करने का अनुरोध किया था जिसका कोई नतीजा नहीं निकला था। इस प्रकार दक्षिण अफ्रीका के प्रश्न को

---

* असिस्टेन्ट प्रोफेसर (अंशकालिक), वसन्ता कॉलेज फॉर वामेन

लेकर शिक्षित भारतवासियों में उत्तेजना थी और इस बात से प्रसन्न थे कि गांधी जी ने जो आन्दोलन दक्षिण अफ्रीका में चलाया था उसके फलस्वरूप वे कुछ रियायतें पाने में सफल हुए थे। इससे भारतीवासियों को यह विश्वास हो गया था कि अनुनय के मुकावले आन्दोलन और संघर्ष के तरीके में अधिक ताकत थी।[2]

गांधी जी के अनुसार सत्य पर अटल रहना ही सत्याग्रह है। सत्याग्रह असत्य को सतय से और हिंसा को अहिंसा से जीतने का नैतिक शास्त्र है। इसका उद्देश्य धैर्यपूर्वक कष्ट सहकर, अहिंसात्मक एवं उचित तरीकों से सत्य को प्रकट करना, भूलों को सुधारना एवं भूल करने वालों का हृदय परिवर्तन करना है। सत्याग्रही संसार के सम्मुख आने उद्देश्य की शुद्धता और अपनी मांग का औचित्य सिद्ध करने के लिए कष्ट झेलने, बल्कि प्राण उत्सर्ग करने को सदा तत्पर रहता है।''[3]

2 दिसम्बर, 1917 को गांधी जी ने सत्याग्रह का अर्थ स्पष्ट करते हुए कहा था, ''सत्याग्रह शारीरिक शक्ति नहीं है-यह आत्मबल है, आत्मा का सार तत्व साथ है। अतः यह शक्ति सत्याग्रह कहलाती है, जिसमें ज्ञान और प्रेम की लौ उजागर रहती है। यदि कोई अज्ञानवश हमें कष्ट देता है तो हम उसे प्रेम से जीतेंगे यही सत्याग्रह है। अहिंसा परमोधर्म, अहिंसा सुप्त अवस्था में रहती है, जागृत सृष्टि गतिशील है।''[4]

गांधी का साध्य एवं साधना की एकरूपता में विश्वास था। स्थायी अच्छाई कभी भी अनैतिक साधनों से प्राप्त नहीं की जा सकती। साध्य प्राप्त करने के लिए साधन सदैव उचित व नैतिक होना चाहिए। अहिंसा, सत्याग्रह की व्यवहारिक अभिव्यक्ति है, अतः सत्याग्रह पूर्णतः हिंसा का विरोध करता है क्योंकि हिंसा अनैतिक है।

सत्याग्रह वह साधन हैं जिसका सत्याग्रही उन कानूनों एवं समाज में व्याप्त प्रथाओं के विरोध के लिए प्रयोग कर सकता है, जिनके निर्माण में उसकी स्वीकृति नहीं ली गई या जो वह अपनी आत्मा के विरुद्ध समझता है। जन-आन्दोलन के रूप में सत्याग्रह में हड़ताल, उपवास, धरना, प्रार्थना सभाएं, असहयोग, नागरिक अवज्ञा, पद यात्राएं आदि शामिल हैं। किन्तु, इन सबाके अहिंसात्मक होना बहुत जरूरी है। गांधी ने एक बार कहा था कि मैंने भारतीय आन्दोलन को सत्याग्रह नाम दिया है, क्योंकि यह वह शक्ति है जो सत्य, प्रेम अथवा अहिंसा पर आधारित है।[5]

इस तरह सत्यग्रह के अर्थ को पूर्णतया समझने के लिए यह भी जान लेना अति आवश्यक है कि सत्याग्रह मूल रूप से निष्क्रिय प्रतिरोध से भिन्न है। हालांकि यह सच है कि 1906 में जब दक्षिण अफ्रीका में गोरे शासकों के

विरूद्ध उन्होंने आन्दोलन छेड़ा था तो उस समय वे उसे निष्क्रिय प्रतिरोध ही कहा करते थे, परन्तु बाद में उन्होंने यह महसूस किया कि यह उसकी उचित परिीाषा नहीं है। उनका यह विश्वास था कि निष्क्रिय प्रतिरोध करने वाला व्यक्ति आसानी से नैतिक सिद्धांतों का परित्याग कर देता है। इसलिए उन्होंने अपने आन्दोलनों को निष्क्रिय प्रतिरोध की संज्ञा न देकर उसे 'सदाग्रह' अथवा 'सत्याग्रह' कहा।[6]

भारत के पूर्व प्रधानमंत्री श्री पी॰ बी॰ नरसिंह राव ने पेरिस में 12 जुलाई 1995 को महात्मा गांधी का 125 वां जन्म दिन मनाने के लिए आयोजित यूनेस्को गोष्ठी में महात्मा गांधी के 'सत्याग्रह' को एक राजनीतिक हथियार कहा था। अपने उद्‌बोधन में नरसिंह राव ने कहा गांधीजी जो नैतिक पीड़ा अनुभव करते थे और एक राजनीतिक कर्ता के रूप में जो उनकी सामाजिक दिलचस्पी और चिन्ता के विषय थे, उनके मिलन का रचनात्मक संश्लेषण उनके राजनीतिक कार्यक्रम के अनूठे क्रांतिकारी तरीके के रूप में प्रकट हुआ जिसे हम सत्याग्रह के नाम से जानते हैं अर्थात् आत्मा की शक्ति या सत्य का आग्रह जो पहले पहल दक्षिण अफ्रीका में प्रयुक्त हुआ।[7]

एक राजनीतिक हथियार के रूप में सत्याग्रह का विकास जिन परिस्थितियों में हुआ, उनपर प्रकाश डालना जरूरी है 1906 में ट्रांसवाल की सरकार ने एक कानून बनाया जिसके अंतर्गत हिन्दुस्तानियों का निवासी के रूप में रजिस्टर कराना पड़ता था, और इस तरह उन्हें ब्रिटिश साम्राज्य का स्वाभाविक नागरिक होने के अधिकार से वंचित कर दिया जाता था। इस काले कानून का विरोध करने के लिए गांधीजी ने जोहान्सबर्ग में एक सभा का आयोजन किया। महात्मा जी का विचार था कि वहां एक प्रस्ताव पास करके दक्षिण अफ्रीका के हिन्दुस्तानियों को इस भेदभावपूर्ण कानून का प्रतिरोध करने के लिए प्रोत्साहित किया जाए। यद्यपि यह सभा परम्परागत ढंग से एक अन्यायपूर्ण कानून के प्रति विरोध प्रकट करने के लिए बुलाई गई थी तथापित वहां एक अत्यंत उल्लेखनीय घटना हो गई जब भाग लेने वाले एक व्यक्ति ने ''भगवान के नाम से'' यह घोषणा की कि वह इस कानून को कभी नहीं मानेगा और उसने उपस्थित लोगों को भी ऐसा ही करने की सलाह दी। इस प्रस्ताव के नैतिक प्रभाव की ओर ध्यान आकृष्ट करते हुए गांधीजी ने कहा कि यह बात सर्वाधिक महत्व की बन गई है। प्रत्येक व्यक्ति को अपना हृदय टटोलना चाहिए। यदि उसकी अंतरात्मा उसे इस बात का आश्वासन देती है कि उसमें ऐसा करने के लिए पर्याप्त शक्ति है, तभी उसे इस बात की प्रतिज्ञा करनी चाहिए और तभी उसकी प्रतिज्ञा का

फल मिलेगा। भारतीय स्वाधीनता आंदोलन क दौरान महात्मा गांधी ने कई बार यह बात दोहराई।

इस तरह असत्य और दमन का विरोध करने के लिए सत्याग्रह का एक हथियार के रूप में जन्म हुआ। जैसा कि गांधीजी ने कई बार कहा- सत्याग्रही के लिए नैतिक संहिता में बहुत से विशिष्ट नियम हैं। उसे यह विश्वास होना चाहिए कि सत्य के एक से अधिक रूप हो सकते हैं उसे यह भी मानना चाहिए कि अपने विरोधी की अंतरात्मा तक पहुंचा जा सकता है और अहिंसात्मक विरोध द्वारा उसे बदला जा सकता है। उन्होंने अनगिनत बार यह कहा कि मेरे मन में ब्रिटिश लोगों के प्रति य और किसी अन्य के प्रति कोई घृणा नहीं है। हम तो उस प्रणाली को बदलना चाहते हैं सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि उन्हें विश्वास था कि एक सच्चाई के मुकाबले में न कोई जीतने वाला होता है और न कोई हारनेवाला, बलिक सत्याग्रह के फलस्वरूप जो समझौता होता है, उससे पिछले दो विरोधी, मैत्री के एक मजबूत धागे में बंध जाते हैं जिससे दोनों की आध्यात्मिक उन्नति होती है।

गांधीजी के राजनीतिक विरोध के अनूठे हथियार की शक्ति का पता इस बात से चलता है कि जब 1914 में गांधीजी हिन्दुस्तान के लिए रवाना हुए, तब तक वह दक्षिण अफ्रीका में हिन्दुस्तानियों के लिए बहुत से लाभ प्रापत कर चुके थे। जनरल जे॰ सी॰ स्मट्स ने गांधीजी से समझौते की वार्ता की थी। इसलिए उसे जब पता चला कि महात्माजी अपनी मातृभूमि को वापस जा रहे हैं तो उसे बड़ी प्रसन्नत हुई। उसके बाद थे- ''सन्त हमारे तटों से चला गया है और मेरी हार्दिक इच्छा है कि सदैव क लिए चला गया।''। इस शताब्दी के प्रारम्भ में महात्मा जी ने जातीय भेदभाव के विरुद्ध जो संघर्ष किया, उसका एक और फल भी निकला। काले समुदाय को और उनके नेताओं को भी अहिंसा की शक्ति समझ में आ गई। नसलवादी शासन के क्रूर अत्याचारों के बावजूद अंतत: उन्होंने एक अहिंसक तथा उग्र संघर्ष करके उस पर विजय प्राप्त की। जब 1990 में प्रेजिडेंट नेल्सन मंडेला दिल्ली यात्रा पर आए तो उन्होंने दक्षिण अफ्रीका में गांधीवादी विरासत की चर्चा की। उन्होंने कहा कि हम पर गांधीजी के अहिंसात्मक संघर्ष की अवधारणा और परम्परा का प्रभाव पड चुका है।

जब दो दशकों के अंतराल के बाद 1914 में गांधीजी भारत लौटे तो उन्होंने राजनीतिक दृश्यावली में भारी परिवर्तनदेखा। बीसवीं शताब्दी के दूसरे दशक में इस उपमहाद्वीप के मध्यम वर्गों का दृष्टिकोण सैद्धान्तिक और संगठनात्मक दोनों दृष्टियों से राष्ट्रवादी हो चुका था। एक ओर उच्च मध्यम वर्गों और दूसरी ओर अपेक्षाकृत कम खुशहाल किसानों के बीच धन सम्पदा और

जागरूकता की भारी खाई थी और आधुनिक राजनीति की परमपरागत प्रक्रियाओं से उस खाई को पाटना कठिन था। वास्तव में औपनिवेशिक सरकार ने खेतों में और कारखानों में काम करने वाले मजदूरों का मध्यम वर्गों की अपेक्षा कहीं अधिक शोषण किया था। इसके बावजूद खाते-पीते लोगों की राष्ट्रीयता अधिक मुखर और प्रखर तथा सुसंगठित थी जबकि गरीब और साधनहीन लोगों की राष्ट्रीयता न तो संगठित थी अैर न ही उसके पीछे कोई आधुनिक विचारधारा थी। वास्तव में गरीब लोग अपनी व्यथा और पीड़ा की आवाज को स्वत: स्फूर्त और स्थानीय विद्रोह के जरिए प्रकट करते थे जिसे औपनिवेशिक शासक तुरंत दबा देते थे। वास्तव में 19वीं शताब्दी में जनजातीय क्षेत्रों मं अंग्रेज शासकों और उनके पिछलग्गू जागीरदारों के दमन के विरुद्ध कई छोटे मोटे विद्रोह हुए। उनमें से कुछ तो कई वर्षों तक चलते रहे। परन्तु अन्ततोगत्वा वे सभी बढ़िया हथियारों और आपस में फूट डालने की गहरी साजिशों के जरिए दबा दिए गए। इसलिए बीसवीं शताब्दी के प्रारंभिक दशकों में सोद्देश्यपूर्ण समस्या यह थी कि सुविधाहीन वर्गों की पीड़ा को और मध्यमवर्गों की आकांक्षाओं को आपस में किस तरह एक सार्थक या सोद्देश्यपूर्ण ढंग से तथा जन-आधारित राष्ट्रीयता से किस तरह जोड़ा जाए, और इस प्रश्न का उत्तर कोई भी नहीं दे पा रहा था।

जब गांधीजी न अपनी दृष्टि से 1914 की स्थिति को परखा तथा अपना आधार या घर, आश्रम को अर्थात् आध्यात्मिक आश्रय स्थल को बनाया क्योंकि यही उन्हें अपने उस काम के लिए सर्वाधिक उपयुक्त लगा जो उन्होंने अपने लिए चुना था। उस बेला में मध्यम वर्गों के लोगों से बातचीत करने के बाद उनकी यह राय पक्की हो गई कि औपनिवेशिक जुए से मुक्ति पाने की इच्छा की दृष्टि से वे सब वर्ग एकजुट है। कुछ ही वर्षों बाद उन्होंने यह भी देखा कि किसान, कारीगर और मजदूर भी यह अनुभव करने लगे हैं कि ब्रिटिश शासन को उखाड़ फेंकना उनके भौतिक और आध्यात्मिक कल्याण की जरूरी शर्त है। चूंकि आधुनिक राजनीति के जरिए, चाहे वह उदारपंथी हो या उग्रपंथी, इन वर्गों तक नहीं पहुंचा जा सकता था, इसिलए गांधीजी ने लोकप्रिय धार्मिक आख्यानों का उपयोग एक शक्तिशाली साधन के रूप में किया ताकि गरीब लोगों को राष्ट्रीयता के उद्देश्य के लिए एकजुट किया जा सके और उसी के साथ उनकी सामाजिक जागरूकता के स्तर को भी ऊंचा उठाया जा सके। उन्होंने गरीब और पददलित लोगों जैसा लगने के लिए जानबूझकर आधा शरीर ढकने वाले वस्त्र अपनाए और झोंपड़ी में रहना शुरू किया। यह दिलों और मस्तिष्क को ईमानदारी से जोड़ने का एक प्रयास था जिसका चिरस्थायी प्रभाव पड़ा। इस प्रक्रिया में उन्होंने देखा कि लोकशक्ति एक विशाल अप्रयुक्त जलाशय

के समान है और उसका उपयोग उन्होंने सत्याग्रह के सिद्धांत पर आधारित राष्ट्रव्यापी आंदोलनों में किया।

भारत में सत्याग्रह संबंधी गांधोवादी प्रयोग पहले एक छोटे पैमाने पर किए गए। शुरू में उनका उद्देश्य किसानों और मजदूरों के विशिष्ट ग्रुपों की शिकायतों को दूर करना था, जिससे साथ ही साथ उनके राजनीतिक क्षितिज भी व्यापक होते गए। जब प्रथम विश्वयुद्ध समाप्त हआ जिसमें भारत के लोगों ने ग्रट ब्रिटेन को पर्याप्त सहयोग दिया था, तब गांधीजी ने सत्याग्रह का उपयोग का भारतव्यापी आन्दोलन के रूप में किया। वास्तव में तो तीन दशकों की अवधि में ही कई राष्ट्रव्यापी विरोध शुरू किए और उनके पीछे दो सामरिक उद्देश्य थे- एक तो आज के विभिन्न सामाजिक, भाषायो और धार्मिक वर्गों को एक ही सूत्र में आबद्ध कर दिया जाए और दूसरे वह अंग्रेजों को यह दिखाना चाहते थे कि दक्षिण एशिया के अपने साम्राजय को उन्हें यथाशीघ्र भंग कर देना पड़ेगा।

गांधीजी ने भारत में जो राष्ट्रव्यापी सत्याग्रह शुरू किए वे मानवता के इतिहास में लोगों को जुटाने वाले सबसे बड़े आन्दोलनों में से थे। 1906 में दक्षिण अफ्रीका में सत्याग्रह के जन्म के साथ ही उसके नैतिक पहलू की चर्चा मैं कर चुका हूँ। जब हम दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह का संबंध भारत के सत्याग्रह से जोड़ते हैं तो यह उपयुक्त ही होगा कि भारत क सत्याग्रह के सामाजिक आयामों को ध्यान में रखें। उन दिनों भारत की जनसंख्या लगभग 40 करोड़ थी। उसमें से लगभग 75 प्रतिशत आबादी गांवों में रहती थी और इसी का उपयोग गांधीजी अपने सत्याग्रही कार्यक्रम के जरिए राष्ट्रवादी राजनीति में करना चाहते थे। यह कहना ता सच नहीं होगा कि इस काम में वह पूरी तरह सफल हुए। तथापित देश में हर बड़े गांव में गांधीजी ने राष्ट्रीयता का झंडा गाड़ दिया और किसी भी आकार के हर गांव के दर्जन भर या अधिक किसान परिवार इस संघर्ष की सक्रिय परिधि में आ गए। इस राष्ट्रीय आन्दोलन में कितनी बड़ी संख्या में लोगों ने भाग लिया वह सचमुच विस्मित कर देने वाला है क्योंकि देश की लगभग 10 प्रतिशत जनता या चार करोड़ लोगों ने उस अवधि की सबसे बड़ी साम्राज्यवादी शक्ति के विरुद्ध अहिंसक संघर्ष में भाग लिया। वास्तव में इसे शानदार सफलता इसलिए मिली क्योंकि यह अहिंसक था।

सत्याग्रह का यह काम एक सीधे सादे संगठन की मदद से इतनी चतुराई भरी निपुणता से, ऐसे कुशल तरीके से किया गया कि मार्च 1930 में प्रतीकात्मक रूप से शुरू किए गए डांडी कूच ने करोड़ों लोगों को इतनी तेजी से प्रेरित किया कि उन्होंने देश भर में आन्दोलन शुरू कर लिए। यह आंदोलन नमक पर कर के विरोध में शुरू किया गया था क्योंकि देश के गरीब से गरीब

किसान पर भी इसका बुरा प्रभाव पड़ता था। नमक पर कर लगाने से असहमति जताने के लिए गांधीजी ने थोडे से, कुल 79-निष्ठावान कार्यकर्ता चुने जिनमें भारतीय समाज के विभिन्न वर्गों के लोग थे। महात्मा जी और उनके सत्याग्रही साथी पश्चिम भारत स्थित अहमदाबाद नगर से चलकर अरब सागर के डांडी नामक गांव में पहुंचे। 241 मील की यह यत्रा कुछ सप्ताहों में पूरी करके गांधीजी और उनके बहादुर सत्याग्रहियों ने 40 करोड़ लोगों के राष्ट्र को ब्रिटिश साम्राज्य के विरुद्ध एकजुट खड़ा कर दिया।

गांधीजी के इस काम पर अविश्वसनीय रूप से कम खर्च हुआ और यह जितने छोटे पैमाने पर शुरू किया गया था, उतने ही व्यापक पैमाने पर जनता में नई चेतना का संचार हुआ। इससे पता चलता है कि महात्मा जी सामरिक दृष्टि से कितने पटु थे और उसी के साथ यह इस बात का भी प्रमाण है कि कितनी विशाल संख्या में स्त्रियों और पुरुषों ने उनके इस राजनीतिक कार्यक्रम में भाग लिया। जहां तक इस छोटी सी यात्रा- अहमदाबाद से डांडी तक के मार्ग को मैं यही संज्ञा दूंगा-से पता चलता है कि उस पर होने वाल लागत व्यय की दृष्टि सेयह सत्याग्रही कर्म, राजनीतिक विरोध प्रकट करने के संवैधानिक या हिंसक परम्परागत तरीकों के मुकाबले, कितना अधिक श्रेष्ठ है और इस काम की सबसे बढ़िया बात यह थी कि यह निहत्था था-अहिंसक था और इसलिए इस पर कुचलने का दमन करने का कोई प्रभाव नहों पड़ना था।

यद्यपि इसमें बड़ी भारी संख्या में लोगों ने भाग लिया और यह देशव्यापी आंदोलन था, परन्तु उसकी सबसे बड़ी बात यह थी कि यह पूरी तरह अनुशासनपूर्ण और संयत रहा। गांधीजी का साधनों की पवित्रता के पक्का विश्वास था और वह साधन और साध्य में किसी किस्म का अंतर बर्दाश्त नहीं करते थे। उन्होंने संयुक्त प्रांत में चौरीचौरा नामक कस्बे में लोगों द्वारा हिंसा की एक ही वारदात होने पर भी एक राष्ट्रव्यापी आंदोलन को अचानक ही स्थगत कर दिया। इस आंदोलन को स्थगित करने से इतनी व्यापक निराशा फैली और लोगों के मन में सचमुच में गुस्सा आया कि जवाहरनाल नेहरू तक ने गांधीजी के इस निर्णय के बारे में अपनी गम्भीर शंका व्यक्त की। परन्तु गांधीजी अपने इस निर्णय पर डटे रहे और उन्होंने उन्होंने इस बात पर बल देकर कहा कि सत्याग्रह आंदोलन में अपनाए जाने वाले साधन निश्चित रूप से अहिंसक ही होने चाहिए। आन्दोलन तो स्थगित हो गया परन्तु लोगों के मन पर यह सन्देश अमिट रूप से अंकित हो गया।

सन्दर्भ :

1. अमरेश्वर अवस्थी एवं राम कुमार अवस्थी; आधुनिक भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक चिन्तन, रिसर्च पब्लिकेशन्स, जयपुर, 1988, पृ॰ 366
2. एम॰ के॰ गांधी; हिन्द स्वराज, अहमदाबाद, नवजीवन, 1959, पृ॰ 49
3. अंजु झाम्ब; ''हिन्द स्वराज और एंथनी जे॰ परेल'', मनोज सिन्हा सम्पादित-गाँधी अध्ययन, हैदराबाद 2008, पृ॰ 73
4. जय सिंह; ''जिन्होंने गाँधी को बनाया'', हिन्दुस्तान, (हम तुम), पटना, 28 जनवरी, 2007, पृ॰ 1
5. एम॰ के॰ गाँधी; हिन्द स्वराज, पूर्वोद्धृत, पृ॰ 6
6. मोहनदास करमचन्द गाँधी; हिन्द स्वराज, सर्व सेवा संघ, वाराणसी, जून, 2013 (बारहवाँ संस्करण).
7. मोहनदास करमचन्द गाँधी; हिन्द स्वराज, अहमदाबाद, नवजीवन, 1959, पृ॰ 44.

***

स्कूली छात्रों का मनोविज्ञान एवं चिन्तन

अनुराधा कुमारी *

शिक्षा मनोविज्ञान में चिंतन शब्द का उपयोग काफी प्रचलित है। चिंतन एक ऐसी मानसिक प्रक्रिया है जो सभी प्राणियों में होती है। इसे वातावरण से मिलने वाली सूचनाओं का मानसिक जोड़–तोड़ या फिर किसी समस्या व सममाधान के बीच की मध्यस्थ प्रक्रिया के रूप में देखा जाता है, जो सही अनुक्रिया का चुनाव करने में मदद करती है। चिंतन की प्रक्रिया उस समय शुरू होती है जब मनुष्य को स्पष्ट रास्ता नहीं मिलता है।

प्रस्तावना : विद्यालय एक देशी संस्था है जिसमें मानवता की नई पौध तैयार की जामी है। देश और समाज के भविष्य का निर्माण यहॉ होता है। बड्सवर्थ के अनुसार Child of is the father of man अर्थात् शिशु मनुष्य का पिता होता है। इस कथन का सत्यापन विद्यालय में ही होता है। यदि किसी समाज का विश्लेषण करना हो तो वहां के स्कूली बच्चों के मनोविज्ञान अध्ययन किया जा सकता है[1]। हमारा अतीत साक्षी है कि गुरूकूल परम्परा में राजकुमार और सामान्य कुमार यथा कृष्ण सुदामा जैसे छात्र समान रूप से नीति सदाचरण सेवा, अनुशासन आदि मानवीय मूल्यों का पाठ पढ़ते थे। आज स्कूली छात्र बन्द कमरे में अपना भारी–भरकम पाठ्यक्रम पूरा करने के दवाब में जीते हैं। इनकी प्रतिस्पर्दा इतनी कड़ी है जो इन्हें हर पल दवाव में जीने को विवश करती है। यह चिन्तन का विषय है।

विषय विस्तार (समीक्षा):– स्कूली बच्चों पर जो दबाव पढ़ाई का रहता है इससे वे तनाव में जीते हैं। यह तनाव इन्हें प्रोत्साहित करता है। कभी–कभी यह अति दुखदः परिणाम भी देता है। तनाव की सामान्य प्रक्रिया चिन्ता है। चिन्तर एक भविष्य उन्मुख मनोदशा है जिसमें मनुष्य भविष्य की नकारात्मक घटनाओं का सामना करने का प्रयास करता है जिसके लिए वह तैयार होता है।[2] व्यक्ति के जीवन की समस्याएँ चिन्ता उत्पन्न करती है। चिन्ता की मात्रा अधिक होने पर इसका प्रभाव व्यपाक स्तर पर अपना प्रभाव डालता है।

चिन्ता की उत्पति भय से होती है। जब अर्थ चिरकालिक हो जाता है, तो हम चिन्ता करने लगते हैं। चिन्ता वह कष्ट पद मानसिक स्थिति है जिसमें व्यक्ति भविष्य की विपतियों की आशंका से व्याकुल रहता है।

लेजारस एवं फोल्कमैन (Lazarus & Folkman), टेलर (Taylor) आदि के विचारों को संचित हुए मार्गन, किंग, विस्ज एवं स्कौलपर (Morgan, King, Wcisz & Schqder, 1986) ने मनोविज्ञान एवं चिन्तन का

* शोधार्थी, शिक्षा विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया

एक उत्तम परिभाषा इस प्रकार दिया है– ''हमलोग तनाव को एक आन्तरिक अवस्था के रूप में परिभाषा करते हैं जो शरीर के दैहिक मांगों (बीमारी की अवस्थाएँ व्यायाम, अत्यधिक तापक्रम आदि) या वैसी पर्यावरणी एवं सामाजिक परिस्थितियाँ जिसे सचमुच में हानिकारक, अनियंत्रण योग्य तथा निबटने के मौजूद साधनों को चुनौती देने वाला के रूप में मूल्यांकित किया जाता है, से उत्पन्न होता है।

फ्रायड के अनुसार चिंता एक भावात्मक एवं दुखद अवस्था होती है जो अहं (ego) को आलंवित खतरा से सतर्क करता है ताकि व्यक्ति वातावरण के अनुकूल व्यवहार कर सके।

फिशर (Fisher) ने सामान्य चिंता के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए कहा है– ''सामान्य चिंता उन कठिनाइयों के प्रति की जानेवाली प्रतिक्रिया है जो व्यक्ति की पहुँच के बाहर होती है और जिनका परित्याग करने में व्यक्ति असमर्थ रहता है''

कौलमैन (1981) ने कहा कि ''भय और आशंका की सामान्यकृत अनुभूति ही चिंता है'' यह प्रतिबल का एक परेशान करनेवाला रूप है।

बेरोन (Baron 1992) ने भी तनाव कुछ इसी अर्थ में परिभाषित किया है, ''तनाव एक ऐसी बहुआयामी प्रक्रिया है जो हतलोगों में वैसी घटनाओं के प्रति अनुक्रिया के रूप में उत्पन्न होती है जो हमारे दैहिक एवं मनोवैज्ञानिक कार्यो को विघटित करता है या विघटित करने की धमकी देता है।

केरेन हार्नी (Karen Horney 1885-1952) का मत है कि जब सुरक्षा आवष्यकता की तुष्टि नहीं होती है तो बच्चों में विद्वेष (hosility) उत्पन्न हो जाता है बच्चे कुछ कारणों से जैसे– निःसहायता की भाव माता–पिता के डर आदि से अपने विद्वेष भाव का दमन कर देता है। जब विद्वेष भाव का दमन हो जाता है तो उससे बच्चों में चिंता की उत्पत्ति होती है, जिसे मूल चिंता कहा जाता है।

हार्नी के अनुसार मूल चिंता से बच्चा अपने आप को बचाने के लिए कुछ तरीका अपनाता हे जैसे–

स्नेह प्राप्त करना ¼Gaining affection½& इसमें बच्चे दूसरों से प्यार एवं स्नेह पाने की पूरी कोशिश करते है। दूसरों की बात सुनते है और उनकी आज्ञा का पालन करते है[3]। बच्चा दूसरों से स्नेह एवं प्यार पाने के लिए एक और तरीका अपनाता है, वह है विन्रमता। विनम्रता आत्म रक्षा का एक दूसरा प्रमुख उपाय है। बच्चा हमेशा दूसरे के साथ विनम्र भाव से पेश आता है, अगर दूसरों की बात उसे पसंद नहीं आती उसे अच्छी नहीं लगती फिर भी वह उस बात को मानता है जिद नहीं करता है, झगड़ा नहीं करता तथा किसी भी बात पर वाद–विवाद नहीं करता है।

विनम्रता दिखाना ¼Showing Submis Siveness)– इसमें व्यक्ति प्रत्येक व्यक्ति के विचारों को काफी विनम्रता से स्वीकार करता है। वह कभी कुछ

ऐसा काम नहीं करता जिसमें दूसरे व्यक्ति को क्रोध आ जाए, जिसे दूसरा व्यक्ति पसंद न करें वह ऐसा कुछ भी नहीं करता है।[4] यदि कभी ऐसी परिस्थिति उत्पन्न हो भी जाती है, जिससे दूसरे व्यक्ति को क्रोध आ जाए वह उसे पसंद नहीं करे तब वह अपनी आवश्यकता और इच्छा का दमन कर देता है। व्यक्ति को यह विष्वास होता है कि यदि वह लोगों के प्रति विनम्रता दिखायेगा तो लोग उसे चोट नहीं पहुँचाऐंगे, उसके साथ अच्छा व्यवहार करेंगे।

दूसरों पर नियंत्रण पाना ¼Achieveing Power overothers)– दूसरों पर नियंत्रण पाना या अपने बल को दिखाकर सकल होना आत्मरक्षा का महत्त्वपूर्ण प्रक्रम हैं। जब व्यक्ति अपने आपको अर्थात् स्वयं को हर काम में हर तरह से दूसरों से स्वयं को श्रेष्ठ समढता है। वह स्वयं को दूसरों की तुलना में मजबूत तथा अपनी उपलब्धियों को दूसरों की तुलना में अधिक महत्त्वपूर्ण समझता है। तो वह एक तरह से अपने मन के हिन भाव को दूर करता है उसके मन में जो एक निःसहायता का भाव है उसकी क्षतिपूर्ति करता हे। तथा अपने सुरक्षा के भाव को मजबूत करता है।

प्रत्याहार या निवर्तन ¼withdrawal)– मूल चिंता से व्यक्ति स्वयं को बचाने के लिए एक ओर तरीका अपनाता है जिसे प्रत्याधर या निवर्तन करते हैं, इसमें व्यक्ति स्वयं को पुरी तरह से अपने आपको दूसरों से अलग कर लेता है। अतः व्यक्ति एक तरह से दूसरों से पूर्णतः स्वतंत्र हो जाता है, उसे किसी से कोई तरह का संबंध नहीं रहता वह अकेले रहता है और अपनी आवश्यकताओं को अकेले ही पूरा करता है, वह बाह्य एवं भीतरी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए किसी अन्य व्यक्ति पर निर्भर नहीं रहता है।

आत्म–रक्षा के इन चारों प्रक्रमों का एक सामान्य लक्ष्य है– व्यक्ति को चिंता से बचना। ये सभी प्रक्रम व्यक्ति में सुरक्षा तथा पुनर्विश्वास उत्पन्न करते है।

व्यक्ति पर चिंता से पड़ने वाले प्रभावों को दो रूपों में देखा जा सकता है–

व्यक्तिगत प्रभाव :–

व्यक्ति के आस–पास के वातावरण में चिंता का प्रभाव : चिंता के व्यक्तिगत प्रभावों को निम्नलिखित शीर्षकों में विभाजित किया जा सकता हैः–

चिंता के शारीरिक प्रभाव :– चिंता होने पर व्यक्ति के अन्दर कुछ शारीरिक परिवर्तन होते है, जिसे चिंता का शारीरिक प्रभाव कहा जाता है। चिंता के शारीरिक प्रभावों के रूप में यह देखा जा सकता है कि जिस व्यक्ति को चिंता होती है, उसकी दिल की धड़कन बढ़ जाती है, मांसपेशियों में कमजोरी आ जाती हे, तनाव के कारण थकान मिचली सीने में दर्द साँस लेने में तकलीफ होती है तथा साथ ही पेट व सिर में र्द की शिकायत भी व्यक्ति करता है[5]। व्यक्ति को अधिक पसीना आता है और शरीर के अन्दर प्रमुख मांसपेशियों में रक्त का बहाव बढ़ जाता है और पाचन तंत्र प्रणालियों

में रूकावट आ जाती है, त्वचा का पीला पड़ना, पसीना आना काँपना चिंता के कारण होने वाले शरीर के बाहरी प्रभाव है।

अतः चिंता के शारीरिक प्रभाव के रूप में यह कहा जा सकता है कि जब व्यक्ति चिंतित होता है तो उसके शरीर में कई तरह के बाहरी और आन्तरिक जटिलताएँ देखी जा सकती है।

चिंता के उपरोक्त शारीरिक प्रभावों में से एक से अधिक प्रभाव एक से अधिक व्यक्तियों में देखे जा सकते है।

चिंता के भावनात्मक प्रभाव :– चिंता के भावनात्मक प्रभाव के रूप में यह कहा जा सकता है कि व्यक्ति जो चिंतित होता है वह अपनी चिंता को भय और आतंक के भाव के रूप में अनुभव करता है। आम तौर पर व्यक्ति का यह डर तो तर्कहीन होता है, परन्तु इस तर्कहीन डर से व्यक्ति के अन्दर जो खतरा महसूस होता है, वह वास्तविक होता है, जैसे वह मरने वाला है[6]। अतः इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि व्यक्ति के मन में किसी भी चीज को लेकर भय व आशंका बनी रहती है। व्यक्ति हमेश तनाव में रहता है, उसे किसी भी चीज पर ध्यान केन्द्रित करने में कठिनाई होती है। व्यक्ति के स्वभाव में चिड़ड़िापन आ जाता है, उसे किसी खतरे या किसी होने वाली घटना के संकेतों का अनुभव होता है, व्यक्ति को हमेश यह महसूस होता है कि उसका मस्तिष्क शुन्य हो गया है ओर व्यक्ति को सब कुछ डरावना अनुभव होता है। तथा उसकी भावनात्मक स्थिति नकारात्मक स्थिति में प्रकट होती है।

चिंता के संज्ञानात्मक प्रभाव :– चिंता के संज्ञानात्मक प्रभाव के रूप में यह कहा जा सकता है कि व्यक्ति के मन में ऐसे आषंकित खतरों के विचार आते रहते है कि जैसे वह मरने वाला है, जैसे किसी व्यक्ति को इस बात का भय रहता है कि उसके सीने में दर्द का कारण कोई भयंकर बिमारी है और यह उसी के अचानक प्रभाव है। और इसी कारण व्यक्ति अपने सिर में दर्द, दिल का दौरा, सीने में दर्द होने से बहुत अधिक भय का अनुभव करता है। वह यह सोचता रहता हे कि वह अब मरने वाला है। व्यक्ति इन सब विषय पर या इसके बारे में जरूरत से अधिक सोचता है और इसे अपने मस्तिष्क से बाहर नहीं निकाल पाता है।

व्यक्ति के आस–पास के वातावरण में चिंता का प्रभाव– व्यक्ति के आस–पास के वातावरण में चिंता के प्रभावों को निम्नलिखित शीर्षकों में विभाजित किया जा सकता हैः–

परिवार में चिंता का प्रभाव– परिवार में किसी एक के चिंताग्रस्त होने से उसका नकारात्मक प्रभाव घर के वातावरण पर पड़ता है, जो व्यक्ति चिंतित होता है, वो घर का माहौल तनावपूर्ण बना देता है, जिसका सीधा असर परिवार में रहने वाले लोगों के आपसी संबंधी पर पड़ता है। परिवार का विघटन होने लगता है, जो व्यक्ति चिंतित होता है वह परिवार की जिम्मेदारियाँ भूल कर चिंता को दूर करने के लिए गलत चीजों का जैसे नशे

की लत, औषधि सेवन आदि करने लगता है और परिवार टुटने लगता है। और इस आधुनिक काल में विकास की होड़ में छोटे–छोटे बच्चे भी या स्कूली बच्चे भी चिंता से ग्रस्त पाए गए है, जिसके कारण उनसे संबंधित वातावरण पर उनका नकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

सामाजिक संस्थान में चिंता का प्रभावः– किसी भी सामाजिक संस्थान में किसी भी व्यक्ति के चिंता का नकारात्मक प्रभाव पड़ता हे। सामाजिक संस्थान में अलग–अलग वर्ग समूह के लोग एकजुट होकर किसी भी कार्य को सम्पन्न करते है, जैसे– शादी–विवाह, धार्मिक अनुष्ठान समारोह इत्यादि, परन्तु यदि इन कार्यक्रमों में सम्मिलित होने वाला कोई व्यक्ति चिंताग्रस्त होता है तो व्यक्ति के इस चिंता का सामाजिक संस्थानों में नकारात्मक प्रभाव पड़ता है, चिंता ग्रस्त व्यक्ति की एकाग्रता छीन हो जाती है और लगातार किसी एक काम को मन लगाकर नहीं कर पाता है, और उसका वह चिंतित है, इस कारण चिंताग्रस्त व्यक्ति स्वयं तो चिंतित रहता ही है और साथ ही अपने आस–पास के माहौल को भी तनावपूर्ण बना देता है जिस कारण सामाजिक संस्थानों पर उसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

व्यवसायिक क्षेत्र में चिंता का प्रभाव– व्यवसायिक क्षेत्र में अगर कोई ऐसा व्यक्ति कार्य करता है जो चिंता ग्रस्त है, तो उसका सीधा और प्रत्यक्ष प्रभाव उसकी कार्य क्षमता, उसका कार्य क्षेत्र एवं उसके आस–पास के लोगों पर पड़ता है। यदि व्यक्ति चिंताग्रस्त होता है, तो संबंधित कार्य को पुरा करने में अपनी सम्पूर्ण कार्य क्षमता का उपयोग नहीं कर पाता, जिससे उसका कार्य निम्न कोटि का होता है और उसकी आमदनी प्रभावित होती है[7]। कभी–कभी व्यक्ति विशेष की चिंता का प्रभाव इतना व्यापक हो जाता है कि जहाँ वह कार्य करता है अर्थात् उससे संबंधित क्षेत्र तथा उसके आस–पास कार्य करने वाले व्यक्तियों पर भी नकारात्मक प्रभाव पड़ने लगता है और साथ जहाँ व्यक्ति कार्य करता है, उस व्यवसायिक क्षेत्र को भी नुकसान झेलना पड़ता है।

सीखने की क्षमता में चिंता का प्रभाव :– चिंता के संबंध में मनोवैज्ञानिक बुग्लेस्की ने अपने विचारों को व्यक्त करते हुए सीखने की क्षमता में चिंता के प्रभावों को व्यक्त किया है। उन्होंने यह बताया है कि एक प्रक्रिया में रूकावट समझा जाता है। एक व्यक्ति जो चिंता से पीड़ित होता है, एक कार्य को करने में पूर्ण सक्षम नहीं हो सकता है। इस प्रकार यह समझा जा सकता है कि चिंता क्रिया में रूकावट डालती है और इस तरह सीखने की गति में कमी आ जाती है। परन्तु यह विचार पूर्णतः सही नहीं है और चिंता के कार्य को ठीक से न समझने के कारण है। वास्तव में किसी व्यक्ति की चिंता उसके कार्य में रूकावट भी डाल सकती है अर्थात् व्यक्ति को सीखने में बाधा भी डाल सकती है और उसे प्रेरित भी कर सकती है।

कुठा (Frustrations) जब व्यक्ति की कोशिश किसी लक्ष्य पर पहुँचने में बाधित हो जाती है तो इससे व्यक्ति में कुंठा उत्पन्न होता है। इस

तरह का कुंठा तब उत्पन्न होता है जब वांछित लक्ष्य की प्राप्ति के मार्ग में बाधा उत्पन्न हो जाता है या किसी अन्य व्यक्ति द्वारा बाधा खड़ा कर दिया जाता है। ऐसे कई चीजें है जिनसे व्यक्ति को अपने दिन–प्रतिदिन की जिन्दगी में कुंठा उत्पन्न होती है। इसमें विभेद एवं पूर्वाग्रह, कार्य असंतुष्टि तथा प्रियजनों की मृत्यु आदि प्रमुख बाह्य या पर्यावरणी कारक है जो व्यक्ति में कुंठा उत्पन्न करते हैं। इसी तरह से दैहिक विकलांगता अकंलापन दोशभाव, अपर्याप्त आत्म–नियंत्रण, आवश्यक क्षमताओं की कमी आदि कुछ ऐसे प्रधान आंतरिक कारक है जिनसे व्यक्ति में कुंठा उत्पन्न होता है। इन दोनों तरह के कारकों से उत्पन्न कुंठाओं से तनाव का जन्म होता है, क्योंकि ऐसी कुंठाओं के रूप निबटाना व्यक्ति के लिए सामान्यतः काफी कठिन होता है।

यह कहा जा सकता है कि चिंता भय संवेग का पर्यायवाची है, जो व्यक्ति में होता है। फ्राइड ने अपने अध्ययन में भय के स्थान पर चिंता शब्द का प्रयोग किया है और इसका प्रयोग इसलिए किया है कि भय वह है जिसमें व्यक्ति बाह्य जगत की वस्तु से करता है[8]। चिंता मनोविश्लेषणात्मक सिद्धान्त का महत्त्वपूर्ण अंग हैं मनस्ताप तथा मनोविक्षिप्त में व्यक्तियों में चिंता से होने वाली समस्या का विशेष महत्त्व है और जब व्यक्तियों में असंतुलन उत्पन्न हो जाता है तो चिंता की गतिविधियों का अध्ययन किया जाता है।

इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि चिंता की उत्पत्ति भय से होती है। जब व्यक्ति के अन्दर का भय चिरकालिक हो जाता है तो इससे व्यक्ति में चिंता उत्पन्न होती है, अतः चिंता व्यक्ति की वह कष्टप्रद मानसिक स्थिति है जिसमें वह भविष्य में होने वाली या आनेवाली विपत्तियों की आशंकाओं से व्याकुल रहता है।

साहित्य सर्वेक्षण : मनोवैज्ञानिकों द्वारा लिए गए अध्ययनों से यह स्पष्ट हुआ है कि किसी भी समस्या के समाधान के लिए व्यक्ति में साधारण स्तर की चिंता आवश्यक है, इससे समस्या के समाधान में एक तरह से सहायता मिलती है क्योंकि अगर चिंता एक निश्चित मात्रा में होती है तो यह अधिप्रेरणा का काम करती है, परन्तु यदि चिंता सामान्य से अधिक से अधिक हो जाती है तो अर्थात् इसका स्तर बहुत अधिक हो जाता है तो इससे समस्या के समाधान में बाधा होने लगती है, क्योंकि ऐसी थिति में व्यक्ति में संज्ञानात्मक भंगता उत्पन्न होने लगती है।

शोध प्रविधि : प्रस्तुत शोध–लेख में द्वितीयक स्रोतों के माध्यम से ऐतिहासिक, सैद्धांतिक विश्लेषणात्मक, तुलनातम्क एंव नवीन व्यवहारिक पद्धतियों को अपनाते हुए शोध–लेख को मौलिकता प्रदान करने का प्रयास किया गया है। इस शोध कार्य हेतु आवश्यक सामाग्री स्कूली छात्रों का मनोविज्ञान एवं चिन्तन से संबंधित पुस्तकालयों इंटरनेट एंव शोध संस्थानों आदि में उपलब्ध साधनों के अलावा मध्यकालिन तथा आधुनिक संदर्भ–ग्रंथों से एकत्र किया

गया है। इन संदर्भ पर आधारित पुस्तकों के अलावा विभिन्न आयोगों के प्रकाशनों आत्मलेखो, समाचार पत्र–पत्रिकोओं, राजनीतिक दलों के घोषणापत्रों एवं राजनेताओं के भाषण, मनोवैज्ञानिक इत्यादि के लेखन सामाग्री संग्रहित कर विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत है।

उपसंहार : इस प्रकार हम पाते हैं कि बच्चें मूल चिन्ता के कारण असहाय, भयभीते, विद्वेष युक्त हो जाते है स्वयं का माता–पिता के सोह से दूर अकेला पाते हैं। इसके लिए कई तरीका अपना कर यथा स्नेह पाना विभुता दिखाना दूसरों पर नियंत्रण पाना, प्रत्याहार आदि द्वारा पुन विश्वास पाने की कोशिश करते है। इस चिन्ता के शारीरिक मावनात्मक और संज्ञानात्मक प्रभाव से बच्चें का चहुमुखी विकास प्रभावित होता है। उनके सीखने की क्षमता कम होने लगती है। इससे इनका तन मन और जो बुरी तरह प्रभावित होती है। कुंठा इन्हें अपने आगोश में जकड़ लेता है। यह चिन्तनीय है।

अतः स्कूली बच्चों को शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक रूप से स्वस्थ बनाने की नितान्त आवश्यक है तभी भावी भविष्य उज्ज्वल होगा।

सन्दर्भ :

1. अरूण कुमार सिंह (2002) : उच्चतर समाान्य मनोविज्ञान पटना विश्वविद्यालय, पटना
2. अरूण कुमार सिंह (2004) : आधुनिक असामान्य मनोविज्ञान पटना विष्वविद्यालय, पटना
3. अरूण कुमार सिंह (2001) : शिक्षा मनोविज्ञान पटना विश्वविद्यालय, पटना
4. अरूण कुमार सिंह : आधुनिक मनोविज्ञान प्रयोग एवं परीक्षण, पटना विश्वविद्यालय, पटना
5. हिन्दुस्तान अखबार हिन्दी पटना 5 फरवरी 2010
6. हिन्दुस्तान अखबार हिन्दी पटना 24 मई 2010
7. मुहम्मद सुलेमान (2001) : मनोवैज्ञानिक प्रयोग और परीक्षण कॉलेज ऑफ कॉमर्स, पटना
8. डॉ. आर.के. ओझा : मनोविज्ञान के सिद्धान्त एवं सम्प्रदाय

***

किशोरावस्था और उसकी विशेषताएँ

विभा *

भूमिका : बचपन और जवानी के मध्य की अवस्था किशोरावस्था कहलाती है। इस समय सभी अंगो का तेजी से निकास होने लगता है। यह बारह–तेरह वर्ष से लेकर 20–21 वर्ष की अवस्था तक माना जाता है। किशोरवास्था मानव जीवन की ऐसी अवस्था जहॉ एक ओर बचपन छूटता है तो दूसरी ओर प्रौढ़ावस्था शुरू हेाती है। इस समय शरीर के साथ–2 मानसिक विकास की प्रक्रिया परिपक्त की ओर होती है। शरीर की भौतिकी और रसायन दोनों बदलती है। कल्पनाओं और आकांक्षाओं की परिपूर्ति हेतु किशोर को अपने जीवन की दिशा भी तय करनी पड़ती है। यदि इस चुनाव में माता–पिता हस्तक्षेप करते है, किशोर की रूचि, प्रकृति और सम्भावनाओं का विशेष ध्यान न रखकर अपनी अतृप्त कामनाओं को किशोर पर लादते है तो किशोर में कुंठा पनपने लगती है, इसका मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य प्रभावित होने लगता है। इस समय हीनता, अवसाद, तनाव यदि चरम पर होतो किशोर हानि–लाभ की परवार किये विना कठोर और गलत कदम तक उठा लेते है। अतः इन संभावनाओं से बचने हेतु किशोरावस्था और उसकी विशेषताओं को विस्तार से जानना लक्ष्य है।

विषय विस्तार : किशोरवस्था मानव जीवन का सबसे संवेदनशील एंव महत्वपूर्ण काल है। क्रो एवं क्रों के विचार से किशोर ही वर्तमान की शक्ति और भावी आशा को प्रस्तुत करता है।

स्टेटले हॉल के अनुसार ''किशोरावस्था बड़े संघर्ष तनाव तूफान तथा विरोध की अवस्था है[1]।'' इस कठिन काल की कई विशेषताएँ और चुनौतियाँ भी हैं। इसकी विशेषता का अध्ययन ही छोटा है।

विग वरूण के किशोरवस्था में शारीरिक मानसिक स्वर्थ मनोवैज्ञानिक परिवर्तन होते है। इन परिवर्तनों की विशेषताएँ निम्नांकित है।

शारीरिक विकासः– (Physical Development) किशोरावस्था को शारीरिक विकास का सबसे बेहतर एवं महत्त्वपूर्ण काल माना जाता हे। इस काल में किषोरों के शरीर में कई महत्त्वपूर्ण परिवर्त्तन होते हैं। जैसेः– किशोरों के लम्बाई एवं भार में तीव्र वृद्धि, किशोरों के दाढ़ी और मूँछ का उगना, वही किशोरियों में मासिक स्राव का प्रारंभ होना।[2] किशोरों के शारीरिक एवं मांसपेशीय ढ़ाँचे में कठोरता एवं ढ़ृढ़ता आदि।

कोलेसनिक का कथन है– ''किशोरों और किशोरियों– दोनों को अपने स्वास्थ्य की विशेष चिन्ता रहती है। किशोरों के लिए सबल, स्वस्थ्य

---

* शोधार्थी, शिक्षा विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया

और उत्साही बनना एवं किशोरियों के लिए अपनी आकृति को नारी जातीय आकर्षण प्रदान करना महत्त्वपूर्ण होता है।''

मानसिक विकास (Mental Development) : किशोर के मस्तिष्क का लगभग सभी दिशाओं में विकास होता है। उसमें विशेष रूप से कल्पना और दिवास्वप्नों की बहुलता, बुद्धि का अधिकतम विकास, सोचने–समझने एवं तर्क करने की शक्ति का विकास, विरोधी विचारों का विकास आदि मानसिक गुण पाये जाते है। इस संबंध में कोलेसनिक के शब्दों में– ''किशोर की मानसिक जिज्ञासा का विकास होता है। अतः वह सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक और अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं में रूचि लेने लगता हैं। वह इन समस्याओं के सम्बन्ध में अपने विचारों का निर्माण भी करता है।''

व्यवहार में विभिन्नता (Difference in Behaviour) : किशोरों में आवेगों और संवेगों की बहुत प्रबलता होती है। यही कारण है कि वह विभिन्न अवसरों पर अलग–अलग तरह का व्यवहार करता है।[3] उदाहरण स्वरूप किसी समय वह अत्याधिक क्रियाशील होता है और समय सुस्त और आलसी हो जाता है, किसी परिस्थिति में पूर्ण रूप से उत्साहपूर्वक एवं जोशपूर्ण रूप से व्यवहार करता हैं, तो दूसरे परिस्थिति में उत्साहविहीन कार्य करता है। बी. एन. झा ने लिखा है– ''हमारे सबके संवेगात्मक व्यवहार में कुछ विरोध होता है, पर किशोरावस्था में यह व्यवहार विशेष रूप से स्पष्ट होता हैं।''

घनिष्ट व व्यक्तिगत मित्रता :(Fast Friendship)– किसी समूह का सदस्य होते हुए भी किशोर केवल एक या दो बालकों से घनिष्ट संबंध रखता हैं, जो उसके परममित्र होते है और जिनसे वह अपनी समस्याओं के बारे में स्पष्ट रूप से बात–चीत करता है। वेलेनटीन (Valentine) का कथन है– ''घनिष्ट और व्यक्तिगत मित्रता उत्तर किशोरावस्था की विशेषता है।''

काम शक्ति की परिपक्ताः (Maturity of sex instinct) : कामेन्द्रियों की परिपक्वता और कामशक्ति का विकास किशोरावस्था की सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषताओं में से एक है। इस अवस्था के पूर्व–काल में बालकों और बालिकाओं में समान लिंगों के प्रति आकर्षण होता है। इस अवस्था के उत्तरकाल में यह आकर्षण विषम लिंगों के प्रति प्रबल रूचि का रूप धारण कर लेता है। फलस्वरूप कुछ किशोर और किशोरियाँ संभोग का आनन्द लेते हैं। गेटस एवं अन्य (GatesAnd others) का मत हैं– ''लगभग 40 प्रतिशत को एक या इससे अधिक बार का विषम लिंगीय अनुभव होता है।''

स्थिरता व समायोजन का अभाव (Lack ofAdjustmentAnd stability):

रॉस ने किशोरावस्था को शैशवावस्था का पूनरावर्तन (Recapitulation) कहा हैं, क्योंकि किशोर बहुत कुछ शिशु के समान होता है। उसकी बाल्यावस्था की स्थिरता समाप्त हो जाती है और वह एक बार फिर शिशु के समान अस्थिर हो जाता है। उसके व्यवहार में इतनी उद्विग्नता आ जाती है कि वह शिशु के समान अन्य व्यक्तियों और अपने वातावरण से समायोजन नहीं कर पाता हे। अतः रॉस का मत है कि ''शिशु के समान

किशोर को अपने वातावरण से समायोजन करने का कार्य फिर आरम्भ करना पड़ता है।''

समूह का महत्त्वः (Importance to Group) : किशोर जिस समूह का सदस्य होता है, उसकों वह अपने परिवार और विद्यालय से अधिक महत्त्वपूर्ण समझता है। अगर उसके माता–पिता एवं परिवार के विचारों एवं समूह के विचारों में अंतर होता है, तो वह समूह के विचारों को ही श्रेयस्कर समझता है। ओर उसी के अनुसार अपने व्यवहारों, रूचियों आदि को ढालने लगता है। वह अच्छे–बुरे का तार्किक अध्ययन नहीं कर पाता है। तभी तो बिग एवं हण्ट (Bigge And Hunt) ने कहा है कि ''जिन समूहो से किशोरों का सम्बन्ध होता हैं, उनसे उनके लगभग सभी कार्य प्रभावित होते हैं। समूह उनकी भाषा, नैतिक मूल्यों, वस्त्र पहनने की आदतों और भेजन की विधियों को प्रभावित करते हैं।''

समाज सेवा की भावना (Feeling of Social Service) : किशोरों में समाज सेवा की अति तीव्र भावना होती है। इस संबंध में रॉस (Ross) के ये शब्द उल्लेखनीय हैं– ''किशोर समाज–सेवा के आदर्शो, का निर्माण और पोषण करता है। उसका उदार हृदय मानव जाति के प्रेम से ओत–प्रोत होता है और वह आदर्श समाज का निर्माण करने में सहायता देने के लिए उद्विग्न रहता है।''

विद्रोह व स्वतंत्रता की भावना (RevoltAnd freedom feelings) : किशोरों में शारीरिक और मानसिक स्वतंत्रता की प्रबल भावना होती है। वह बड़ों के आदर्शो, विभिन्न परम्पराओं, रीति–रिवाजों और अन्धविश्वासों के बन्धनों में न बँधकर स्वतंत्र जीवन व्यतीत करना चाहता है। किशोर मन किसी भी तरह का दबाब या बन्धन स्वीकारने की स्थिति में नहीं होता है।[4] अगर उसपर किसी प्रकार का बंधन लगाया जाता हैं तो उसमें विद्रोह की भावना उत्पन्न हो जाती है। कोलेसनिक (Kolesnik) का कथन हैं कि :– ''किशोर प्रौढ़ों को अपने मार्ग में बाधा समझता है जो इसे अपनी स्वतंत्रता का लक्ष्य प्राप्त करने से रोकते हें।''

रूचियों में परिवर्त्तन एवं स्थिरता (Change in interestAnd stability)

किशोरों का मन बच्चों की तरह चंचल एवं चलायमान होता है, किसी एक स्थान विषय, विचारधारा एवं कार्यो पर स्थिर न होकर परिवर्त्तनशील होता है। के. के. स्ट्रांग (K.K. Strong) के अध्ययनों ने सिद्ध कर दिया है कि 15 वर्ष की आयु तक किशोरों की रूचियों में निरन्तर परिवर्त्तन होता रहता है, वेलेनटाडन (Valentine) के अनुसार– ''किशोर बालकों एवं बालिकाओं की रूचियों में समानता भी होती है, और विभिन्नता भी उदाहरणस्वरूप बालकों एवं बालिकाओं में पत्र–पत्रिकायें, कहानियाँ, नाटक और उपन्यास पढ़ना, सिनेमा देखना, रेडियों सुनना, शारीरिक सजावट, पर ध्यान देना देना, विषय लिंगी से प्रेम करना, बालकों का

खेल–कूद, व्यायाम, सामाजिक कार्य, नाटक, प्रतियोगिता में भाग लेना, तो बालिकाओं का कढ़ाई–बुनाई, नृत्य और संगीत के प्रति रूचियाँ होती है।''

अपराध–प्रवृत्ति का विकास : (Development of delinquency) : किशोर बालक–बालिकाओं में अभिभावकों का दबाब, कार्य में असफलता, प्रेम का अभाव, निराशा, नये अनुभवों की इच्छा, अभिभावकों के अंकुश एवं आर्थिक बंधन आदि कारणों से अपराधी प्रवृत्ति का विकास होने लगता है। इस संबंध में वैलेनटीन (Valentine) का विचार है कि–''किशोरावस्था, अपराध प्रवृत्ति के विकास का नाजुक समय है। पक्के अपराधियों की एक विशाल संख्या किशोरावस्था में ही अपने व्यावसायिक जीवन को गम्भीरता पूर्वक आरम्भ करती है।

समाज सेवा की भावना : (Feeling of social service) : किशोरों में समाज सेवा के प्रति तीव्र भावना होती है। इस संबंध में रॉस (Ross) का मन्तव्य है,– ''किशोर समाज–सेवा के आदर्शो का निर्माण और पोषण करता है। उसका उदार हृदय मानव–जाति के प्रेम से ओत–प्रोत होता है और वह आदर्श समाज का निर्माण करने में सहायता देने के लिए उद्विग्न रहता हे।''

व्यवसाय का चुनाव : (Selection of profession) : किशोरावस्था में बालक अपने भावी जीवन की सुरक्षा को ध्यान में रखते हुए किसी अच्छे व्यवसाय को चुनने के लिए चिन्तित रहता है। इस संबंध में स्ट्रेंग (Strangs) का कथन हैं, ''जब छात्र हाईस्कूल में होता हे, तब वह किसी व्यवसाय को चुनने, उसके लिए तैयारी करने, उसमें प्रवेश करने और उसमें उन्नति करने के लिए अधिक से अधिक चिंतित होता जाता है।''

ईश्वर व धर्म में विश्वास : (Faith in godAnd religion) : किशोरावस्था के प्रारंभ में बालकों एवं बालिकाओं को धर्म एवं ईश्वर में आस्था नहीं होती है। इनके संबंध में उनमें इतनी शंकाये उत्पन्न होती है कि वे उनका समाधान नहीं कर पाते हैं परंतु धीरे–धीरे उनमें धर्म और ईश्वर के प्रति विश्वास उत्पन्न होने लगता है। वे ईश्वर की सत्ता को स्वीकार करने लगते हैं। उनमें ईश्वर के प्रति आस्था उत्पन्न होता है। उनका पूजा–पाठ में भी ध्यान लगता है।

स्थिति व महत्त्व की अभिलाषा : (Will of statusAnd importance) : किशोरों में बड़ा एवं चर्चित व्यक्ति बनने की अभिलाषा उत्पन्न होती हे। वह किसी सम्मानित एवं चर्चित व्यक्ति के समान अपने को स्थापित करना चाहता है। ब्लेयर, जोन्स एवं सिम्पसन (Blair, JonesAnd Simpson) के शब्दों में– ''किशोर महत्त्वपूर्ण बनना, अपने समूह में स्थिति प्राप्त करना और श्रेष्ठ व्यक्ति के रूप में स्वीकार किया जाना चाहता है।''

जीवन दर्शन का निर्माण : (Formation of philosophy os life)

किशोरावस्था से पूर्व बालक अच्छी और बुरी, सत्य और असत्य नैतिक और अनैतिक बातों के बारे में ना ना प्रकार के प्रश्न पूछता है। परंतु किशोर होने पर वह स्वयं इन बातों पर विचार करने लगता है, और

फलस्वरूप वह अपने जीवन–दर्शन का निर्माण करता है। वह ऐसे सिद्धान्तों का निर्माण करना चाहता है, जिनकी सहायता से वह अपने जीवन में कुछ अलग एवं प्रभावपूर्ण प्रदर्शन कर सके।

उपसंहार– इस प्रकार हम पाते हैं कि किशोरावस्था वह नाजुक अवस्था है जब स्वयं कि शोसक साथ–साथ उसके अभिभावक को भी पूर्ण जागरूक रहने की जरूरत होती है। प्यार और उचित और अनुचित रूचि और अरूचि, लाभ और हानि के साथ ही भावी भविष्य के निर्णयक मार्ग का चयन किया जाता है। इसे समय में अभिभावक अपनी कामनाओं को लालसाओं को बच्चें के माध्यम से पूरा करना चाहते है। यदि बच्चें ही रूचि, जिज्ञासा इस दिशा में हो तब तो सब कुछ ठीक है। अन्यथा रस्साकशी शुरू हो जाती है।[5] ऐसे समय किशोर से घनिष्टता और मित्रता का भाव रखना जरूरी हो जाता क्योंकि स्थिरता और समायोजन के अभाव के कारण जल्दी–जल्दी निर्णय बदलने की नौबत आ जाती है। समूह का समाज सेवा की भावना, व्यवसाय का चुनाव और निर्णय साधार पर जीवन दर्शन का निर्माण सार्थक और संटीका हो अति आवश्यक है ऐसे समय अभिभावक की भूमिका भी काफी महत्वपूर्ण होती है इसका ध्यान रखा जाए ताकि किशोर सफल, स्वस्थ और सुव्यावैस्थित मानव बनें।

सन्दर्भ :

1. नन्दा, ए.के. (2001) : 'मेंटल हेल्थ ऑफ हाई स्कूल स्टुडेण्ट्स : ए कम्परेटिव स्टडी', इण्डियन साइक्लोजी रिभिब्यू, 56(1), 2–7.
2. बदामि, एच.डी. (1969) : ऐन अनक्वायरी इनटु दी एडजस्टमेंट प्रॉब्लम्स ऑफ गर्ल्स स्टुडेण्ट्स, विद्या जर्नल ऑफ गुजरात युनिवर्सिटी खण्ड ग्प्प् स. 2, अगस्त 1969, पेज–88–98,
3. रास्क, के. एवं अन्य (2002) : 'एडोलेसेन्ट्स सब्जेक्टिभ–वेलबिंग एण्ड रियलाइज्ड भैलूज' जर्नल ऑफ एडभांस नर्सिग, 38(3), 254–263.
4. सिंह, अरूण कुमार (2010): शिक्षा मनोविज्ञान भारती भवन (पी.एण्ड डी.) ठाकुरबाड़ी रोड़, पटना–800003।
5. हसन, एस. (1996): हयुमन एडजस्टमेंटः मेजर्स एण्ड फाइंडिंग्स आगरा, भार्गव बुक हाउस।

***

बिहार में महिला सशक्तिकरण एवं चुनौतियाँ : कैमूर जिले के मोहनडरवान ग्राम पंचायत के संदर्भ में एक विशेष अध्ययन

*पंकज कुमार**

परिचय : महिला सशक्तिकरण महिलाओं के सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक उत्थान के साथ–साथ सभी प्रकार के हिंसा से सुरक्षा के लिए आवश्यक है। यह एक स्वरूप एवं समृद्ध समाज के साथ–साथ राजनीतिक वातावरण से भी जुड़ा है, जहाँ महिलाएँ बिना किसी डर शोषण, भेदभाव, हिंसात्मक व्यवहार और परम्परागत पुरूष प्रभुत्व से बचकर साँस ले सकती हैं। महिला सशक्तिकरण के लिए ना सिर्फ महिलाओं के लिए नीतियों का निर्माण करने से बल्कि उन्हें नीति निर्धारण जैसे महत्वपूर्ण कार्य में भी सम्मिलित करने की आवश्यकता है परन्तु आज भारत में महिलाओं की राजनीतिक सशक्तिकरण की समीक्षा करने के उपरांत ये बाते निकलकर सामने आती है कि ना तो महिलाएँ नीति निर्धाराण को चुनने में तथा ना ही अपने आप को नीति निर्धारण के रूप में चुने जाने में विशेष रूचि रखती है। 2014 लोकसभा चुनाव में चुने जाने वाले 10 सांसदों में से 9 पुरूष एवं 1 महिला है। इस चुनाव में कुल 61 सीटों पर महिला सांसद चुनी गई जो कि कुल सीटों का लगभग 11 प्रतिशत है जो महिला आबादी के अनुसार बहुत ही कम है[1]। परन्तु इस स्थिति के लिए महिलाओं को जिम्मेदार समझना उचित नहीं होगा, बल्कि इस स्थिति के लिए हमारी सामाजिक संरचना और परिवेश जिम्मेदार है।

पुरूषों की अपेक्षा महिलाएँ ज्यादा अशिक्षित हैं, जो महिला सशक्तिकरण के लिए एक बड़ी चुनौती है, परन्तु एक सत्य यह भी है कि महिलाओं के सशक्तिकरण का यह एक सबसे प्रमुख साधन भी है। हमारे समाज की सबसे बड़ी विडम्बना यह है कि आज भी लड़कियों को सिर्फ इसलिए पढ़ाया जाता है ताकि उनका विवाह करने में आसानी हो। लोगों के इस सोच का परिणाम यह है कि भारत में पुरूषों की तुलना में महिलाओं की शैक्षणिक स्थिति काफी निम्न है। 2011 जनगणना के अनुसार जहाँ पुरूषों की साक्षरता दर 82 प्रतिशत है[2] वहीं महिलाओं की साक्षरता दर 63.5 प्रतिशत है।

वर्तमान समय में महिला सुरक्षा और बचाव, महिला सशक्तिकरण की राह में सबसे बड़ी चुनौती है। आज महिला घर के बाहर क्या घर के अंदर भी सुरक्षित नहीं है। संपूर्ण महिला अपराधों में से अधिकतर महिला अपराध एवं हिंसा पुरूषों द्वारा किया जाता है। नेशनल क्राइम रिकॉर्ड ब्यूरो के वर्ष 2014 के आँकड़े कहते है कि पिछले 10 वर्षो में महिलाओं के खिलाफ अपराध दोगुने हुए हैं। इनमें से कुछ

* शोध छात्र, लोक प्रशासन विभाग, मगध विश्वविद्याल, बोधगया

प्रमुख है– बलात्कार, घरेलू हिंसा, ऑनर किलिंग, एसिड फेकना, पीछा करना, महिला तस्करी, डायन बताकर हत्या और प्रताडित करना।[3] नेशनल क्राइम ब्यूरो के ऑकडों के मुताबिक, 2016 में महिलाओं के खिलाफ अपराध के कुल 338954 मामले सामने आये[4]।

बाल–विवाह, विधवा विवाह, दहेज प्रथा, पर्दा प्रथा आदि कई कुरीतियाँ है जो महिला सशक्तिकरण की राह का काँटा बना हुआ है। भारत में ऐसी कई सामाजिक एवं धार्मिक मान्यताएँ है जिन्हें निभाने के क्रम में महिलाओं का स्वास्थ्य काफी प्रभावित हो रहा है। महिला सशक्तिकरण तब तक सम्भव नहीं है जब तक महिलाएँ खुद सशक्तिकरण के लिए आगे नहीं आती हैं। अतः आज महिलाओं को आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनाने, शिक्षा को प्रोत्साहित करने तथा उसके विरूद्ध सभी तरह की होने वाली हिंसा को समाप्त करने की आवश्यकता है। इस दृष्टि से महिला सशक्तिकरण के समक्ष आनेवाली चुनौतियों का अध्ययन प्रासंगिक हो जाता हैं।

साहित्य समीक्षाः–

इला, भट्ट (2016)[5] के अनुसार महिलाओं पर घर एवं बाहर दोनों की दोहरी जिम्मेदारी का बोझ सशक्तिकरण की राह में चुनौती बनी हुई है। वही महिलाओं का आर्थिक स्तर पर दूसरों का आश्रित होना उनके शोषण का एक प्रमुख कारण है।

मिनाक्षी व्याम (2008)[6] का कहना है कि बचपन से ही लड़कियों को दबाकर रखने से उनमें साहस की कमी आ जाती है।

शकुन्तला बैडम (2008)[7] ने अपने आलेख में विधवाओं की स्थिति पर प्रकाश डालते हुए कहा है कि उन्हें अनेक प्रतिबंधों में जीना पड़ता है तथा उनके चरित्र पर शक भी किया जाता है। उनके अनुसार महिलाएँ उच्च पदों पर आसीन हो रही है परन्तु अधिकांश महिलाएँ उपेक्षित, शोषित और उत्पीडित हैं।

शोध आलेख का उद्देश्यः–

1. महिला सशक्तिकरण हेतु सरकार द्वारा क्रियान्वित विभिन्न योजनाओं एवं कानूनों का अध्ययन करना।
2. महिलाओं के सामाजिक, राजनीतिक एवं शैक्षणिक सशक्तिकरण को प्रभावित करने वाले कारकों का विश्लेषण कर उपयुक्त सुझाव देना।

परिकल्पनाः–

1. सरकार द्वारा क्रियान्वित योजनाओं के कारण महिलाएँ सशक्त हुई है।
2. शैक्षणिक स्थिति एवं आर्थिक स्वावलम्बन महिला सशक्तिकरण में सहभागी हैं।

शोध आलेख प्रविधिः– प्रस्तुत शोध आलेख कैमूर जिले के मोहनडरवान ग्राम पंचायत पर केन्द्रित है। प्रस्तुत आलेख में गुणात्मक एवं संख्यात्मक विधियों का प्रयोग करते हुए आँकड़ों का संग्रहन दोनों प्राथमिक तथा द्वितीयक स्रोतों द्वारा किया गया है द्वितीयक स्रोतों के तहत सेन्सस, पत्र–पत्रिकाओं, सरकारी दस्तावेज

इत्यादि कर प्रयोग किया गया है जबकि प्राथमिक स्रोतों के लिए मोहनडरवान ग्राम पंचायत में निवास करने वाली 100 महिलाओं का उदेश्यपूर्ण निदर्शन पद्धति की सहायता से चयन कर अध्ययन सम्पादित किया गया है तथा साक्षात्कार अनुसूची द्वारा एकत्रित आँकड़ों का विश्लेषण किया गया है।

मोहनडरवान ग्राम पंचायत में महिला सशक्तिकरण एवं चुनौतियाँः– प्रस्तुत शोध आलेख में चयनित 100 महिला उत्तरदात्रिओं को उम्र (20 वर्ष–80 वर्ष), जाति (सामान्य जाति, पिछड़ी जाति, अत्यन्त पिछड़ी जाति, अनुसूची जाति), शैक्षणिक स्थिति (अशिक्षित, प्राथमिक से लेकर स्नातकोत्तर तक), वैवाहिक स्थिति, पारिवारिक स्वरूप (एकाकी, संयुक्त), आवास (कच्चा–पक्का) तथा आय के आधार पर वर्गीकृत किया गया है।

सरकार द्वारा क्रियान्वित योजनाओं द्वारा महिलाएँ सशक्त हुई हैं।

सारणी संख्या–1	उत्तर	संख्या
	हाँ	55
	नहीं	43
	अनिश्चित	02
	कुल	100

बिहार में शराब बंदी से महिलाओं के प्रति होने वाले अपराधों में कमी आयी हैं।

सारणी संख्या–2	उत्तर	संख्या
	हाँ	74
	नहीं	22
	अनिश्चित	04
	कुल	100

स्थानीय स्वशासन में महिलाओं को आरक्षण मिलने से महिलाएँ सशक्त हुई हैं।

सारणी संख्या–3	उत्तर	संख्या
	हाँ	50
	नहीं	37
	अनिश्चित	13
	कुल	100

पंचायत प्रतिनिधि के रूप में महिलाएँ अपना कार्य स्वयं करती हैं।

सारणी संख्या–4	उत्तर	संख्या
	हाँ	30
	नहीं	60
	अनिश्चित	10
	कुल	100

उपर्युक्त सारणी संख्या–1,2,3, तथा 4 के आँकड़े स्पष्ट करते हैं कि 55 प्रतिशत महिलाएँ सरकार द्वारा क्रियान्वित योजनाओं से सशक्त हुई है। इसी क्रम में सर्वाधिक 74 प्रतिशत उत्तरदात्रिओं ने स्वीकार किया है कि बिहार में शराबबंदी से उनके प्रति होने वाले अपराधों में कमी आई है। 50 प्रतिशत महिलाओं का मानना है कि स्थानीय स्वशासन में आरक्षण ने उन्हें सशक्त किया है लेकिन 60 प्रतिशत उत्तरदात्रिओं ने स्पष्ट रूप से कहा है कि पंचायत प्रतिनिधि के रूप में उनकी कार्यो का सम्पादन उनके पुरूष अभिभावकों द्वारा सम्पादित किया जाता है। अतः यह कहा जा सकता हैं कि सरकार द्वारा चलाई जाने वाली योजनाओं के कारण महिलाएँ सशक्त हुई हैं।

शिक्षा से महिलाओं को अन्याय से लड़ने की शक्ति मिल रही हैं।

सारणी संख्या–5	उत्तर	संख्या
	हाँ	71
	नहीं	28
	अनिश्चित	01
	कुल	100

शिक्षा महिलाओं को आर्थिक रूप से सशक्त बनाने में सहायता कर रही हैं।

सारणी संख्या–6	उत्तर	संख्या
	हाँ	58
	नहीं	37
	अनिश्चित	05
	कुल	100

परिवार में लड़कियों की शिक्षा को लड़कों के शिक्षा जितना महत्व दिया जाता है।

सारणी संख्या–7	उत्तर	संख्या
	हाँ	38
	नहीं	53
	अनिश्चित	09
	कुल	100

महिलाएँ नौकरी करने के लिए परिवार की ओर से स्वतंत्र हैं।

सारणी संख्या–8	उत्तर	संख्या
	हाँ	42
	नहीं	45
	अनिश्चित	13
	कुल	100

आर्थिक रूप से सशक्त महिलाओं को परिवार में ज्यादा महत्व दिया जाता हैं।

सारणी संख्या–9	उत्तर	संख्या
	हाँ	53
	नहीं	32
	अनिश्चित	15
	कुल	100

शिक्षण एवं प्रशिक्षण द्वारा महिलाओं को आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनाया जा सकता हैं।

सारणी संख्या–10	उत्तर	संख्या
	हाँ	56
	नहीं	31
	अनिश्चित	13
	कुल	100

उपर्युक्त सारणी संख्या–5,6,7,8,9 तथा 10 के आँकड़ों के विश्लेषण से यह ज्ञात होता है कि सर्वाधिक 71 प्रतिशत महिला उत्तरदात्रिओं ने स्वीकारा है कि शिक्षा से उन्हें अन्याय से पहले की शक्ति मिली है तथा सबसे कम 28 प्रतिशत महिलाओं ने इसे नकारा है। इसी क्रम में 58 प्रतिशत महिलाओं ने स्वीकारा है कि शिक्षा उन्हें आर्थिक सशक्तता प्रदान कर रही है जबकि 37 प्रतिशत उत्तरदात्रिओं ने इसे नकार दिया है। उपरोक्त आँकड़े यह स्पष्ट करते हैं कि परिवार में लड़कियों की शिक्षा को लड़कों जितना महत्व नहीं दिया जाता है। परिवार की ओर से नौक्करी संबंधी स्वतंत्रता के प्रश्न पर 45 प्रतिशत महिलाओं का मानना है कि वे परिवार की ओर से स्वतंत्र नहीं है जबकि 42 प्रतिशत उत्तरदात्रिओं का मानना है कि उन्हें स्वतंत्रता प्राप्त है। 53 प्रतिशत महिलाओं का मानना है कि आर्थिक सशक्तता उन्हें पारिवारिक महत्ता प्रदान करता है। 56 प्रतिशत महिला उत्तरदात्रिओं की मान्यता है कि शिक्षण और प्रशिक्षण द्वारा महिलाओं को आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनाया जा सकता है। अतः उपर्युक्त आँकड़ों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि शैक्षणिक स्थिति एवं आर्थिक स्वावलम्बन महिला सशक्तिकरण में सहभागी है।

निष्कर्षः उपर्युक्त विवेचनाओं से यह स्पष्ट है कि लैंगिक असमानता, कन्या भ्रूण हत्या, घरेलू हिंसा जैसे कि महिलाओं से मार–पीट करना, उन्हें जला देना, आर्थिक रूप से घर के पुरूष अभिभावक पर निर्भर रहना, बलात्कार छेड़छाड़, यौन उत्पीड़न, ऑनर किलिंग, अपहरण, दहेज, पर्दा प्रथा, महिलाओं की प्रकृति के अनुसार कार्यो

का अभाव तथा महिलाओं के साथ रंग भेद जैसे कि विवाह के लिए गोरे रंग की महिलाओं को प्राथमिकता देना इत्यादि महिला सशक्तिकरण हेतु चुनौतियाँ हैं।

महिला सशक्तिकरण हेतु कुछ सुझावः–

(क) महिला आयोग को और अधिक शक्तिसम्पन्न मनाया जाए।

(ख) शिक्षा का व्यापक रूप से प्रचार–प्रसार।

(ग) महिलाओं को महिला संबंधी कानूनों के प्रति जागरूकता प्रदान करना।

(घ) महिला संबंधी योजनाओं में अधिक पारदर्शिता लाना।

(ड़) महिला कोर्ट का गठन किया जाना ताकि अपराधियों के खिलाफ त्वरित कार्यवाही की जा सके।

सन्दर्भः–

1. https:/loksabha.nic.in/members/womenar.aspx? Isno=9.
2. https:/censusindia.gov.in/2011-common/censusdata 2011.html
3. https:/ncrb.gov.in/en/crime-india-2014-0
4. https:/ncrb.gov.in/en/crime-india-2016-0
5. भट्ट, इला. आर. (2016, सितम्बर). महिलाओं का आर्थिक सशक्तिकरण, योजना, पृ. 37
6. व्यास, मिनाक्षी (2008). नारी चेतना और सामाजिक विधान, रोशनी पब्लिकेशन्स, कानपुर, पृ. 75.
7. वैश्य, शकुन्तला (2008). महिला सशक्तिकरण क्यों और कैसे आर, बी.एस.ए. पब्लिशर्स, जयपूर, पृ. 46–50.

***

विद्यालय छात्रों की अभियोजना क्षमता : एक मनोसामाजिक अध्ययन

वीणा कुमारी *

भूमिकाः बच्चे हमारा भावी भविष्य है। इनका सर्वांगीण विकास ही राष्ट्र का स्वस्थ समृद्ध और सुविकसित बना सकता है। बच्चे जब परिवार के माहौल से निकलकर विद्यालय जाते हैं, तब इनमें समायोजन की क्षमता क्रमशः तीव्रता से विकसित होने लगती है। समायोजन क्षमता के कारण ही बच्चों की मित्र मंडली बड़ा आकार लेने लगती है। घर से भिन्न विद्यालय के वातावरण में अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए बच्चे जब विविध परिस्थितियों के अनुकूल स्वयं ढल जाते हैं वही से उनमें समायोजन क्षमता का विकास होने लगता है।

विस्तार : बालक का विकास, समायोजन झमता, विद्यालय, परिवार, समाज, असमा योजना झमता।

विस्तारः– समायोजन शब्द का शब्द कोशीय अर्थ है अनुकूल बनना, उपयुक्त होना, उचित होना, सुधारना तथा व्यवस्थित होना। समायोजन शब्द के अर्थ को विभिन्न विद्वानों के अनुसार स्पष्ट किया जा सकता है।

समायोजन की प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष प्रतिक्रियाएँ लक्ष्य तक बिना हानि के उत्साह सहित सुगमता से पहुचा देती है जबकि असमायोजित प्रतिक्रियाएँ हमें लक्ष्य से दूर भटका कर परेशान करती है।

समायोजन (Adjustment) शब्द का शब्दकोशीय अर्थ होता है अनुकूल बनाना, उपयुक्त होना, उचित होना, अनुरूप होना, सुधारना तथा व्यवस्थित होना। (The dictionary meaning of the word 'adjustment' is to adopt, fits, make suitable, make correspondent, modify or arrange.)

जब व्यक्ति दो उत्तेजनाओं के बीच समायोजन का प्रयास करता है तो व्यक्ति एक–दूसरे के बीच में अनुरूपता लाने के लिए या तो एक में अथवा व्यक्ति दोनों उत्तेजनाओं के बीच उपयुक्त सुधार करता है[1]। ऐसा होता है कि कुछ परिस्थिति में परिवर्तन लाना संभव नहीं होता है तो ऐसी स्थिति में व्यक्ति अपनी सुविधा के अनुसार संबंधित विषय या उत्तेजना में सुधार कर लेता है। जिससे व्यक्ति का समायोजन ठीक हो सके। इसे हम उदाहरण के द्वारा इस प्रकार स्पष्ट कर सकते हैं। जैसे– बदलते मौसम के अनुसार मनुष्य का कपड़ा पहनना। गर्मी के मौसम में सुती कपड़ा और ठंडे के मौसम में गर्म ऊनी कपड़ा पहनना। व्यक्ति को मौसम के अनुकूल इस प्रकार का व्यवहार करना उस परिस्थिति के अनुरूप समायोजन कहलाता है।

---

* शोधार्थी, शिक्षा विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया

एस.एस. शेफर (1961) ने समायोजन की परिभाषा को विश्लेषित करते हुए कहा है कि समायोजन वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा कोई जीवधारी अपनी आवश्यकता तथा इन आवश्यकताओं की संतृप्ति से संबंधित परिस्थिति में संतुलन बनाए रखता है।
बोन हेलर (1970) के अनुसार हम समायोजन शब्द को अपने आपको मनोवैज्ञानिक रूप से जीवित रखने के लिए वैसे ही प्रयोग में ला सकते हैं जैसे की जीवनशास्त्री अनुकूल शब्द का प्रयोग किसी जीव को शारीरिक एवं भौतिक दृष्टि से जीवित रखने के लिए करते हैं।
गेर्ट्स, जर्सिल्ड एवं अन्य (1948) के द्वारा समायोजन की दी गई परिभाषा समायोजन ऐसी सतत् प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति अपने व्यवहार में इस प्रकार से परिवर्तन करता है कि उसे स्वयं तथा अपने वातावरण के बीच और अधिक मधुर संबंध स्थापित करने में मदद मिल सके।
बेरिंग, लैगफील्ड एवं साथियों (1962) के अनुसार दी गई परिभाषा, ''समायोजन एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें कोई व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं एवं पर्यावरण के बीच सामंजस्य एवं संतुलन स्थापित करने का प्रयास करता है।''

समायोजन की परिभाषाओं का विश्लेषण करने पर इनमें निम्नलिखित विशेषताएँ पाई जाती हैं जो इस प्रकार है–

1. समायोजन यथार्थ पर आधारित एक संतोषदायी प्रक्रिया है।
2. समायोजन से व्यक्ति में तनाव एवं कुठां का हास होता है।
3. समायोजन सामाजिक संदर्भ में नैतिक मूल्यों पर अधिक बल देता है।
4. समायोजन में व्यक्ति के अभाव की तृप्ति, कुंठा एवं तनाव से बचने की क्षमता तथा मन की शांति निहित होती है।
5. समायोजन में ग्रहणशीलता, संतुलित जीवन, अनुभव से लाभ उठाने की योग्यता, सहनशीलता, सामंजस्य भाव एवं वस्तुनिष्ठता आदि का गुण पाया जाता है।

इन विशेषताओं के आलोक में आधुनिक मनोवैज्ञानिकों ने मनोविज्ञान को समायोजन का विज्ञान (Psychology is the science of adjustment) माना है। विभिन्न प्रकार के वातावरणों से व्यक्ति का संबंध होता है जैसे–सामाजिक, पारिवारिक, राजनैतिक, आर्थिक, प्राकृतिक आदि इन सभी वातावरण में व्यक्ति स्वयं को समायोजित करने का प्रयास करता है किन्तु व्यक्ति का संबंध सामाजिक पर्यावरण से सर्वाधिक महत्वपूर्ण माना जाता है[2]। क्योंकि व्यक्ति का स्वयं का विकास एवं उनकी मौलिक आवश्यकताओं की पूर्ति समाज पर ही निर्भर करती है। अतः व्यक्ति के लिए सामाजिक समायोजन को सर्वोपरि माना गया है।)

सभी प्रकार से समायोजित व्यक्ति वही होता है जो पहले तो अपने आप से संतुष्ट और समायोजित हो तथा दूसरे अपने चारों ओर फैले वातावरण या परिवेश से उसका सही तालमेल हो। इस दृष्टि से समायोजन के क्षेत्रों को व्यक्ति तथा उसके वातावरण से ही निहित होना चाहिए। एक व्यक्ति की दुनिया जहाँ

उसके अपने शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य तथा व्यक्तित्व के महत्वपूर्ण पहलुओ के इर्द–गिर्द घूमती है[3]। जहां उसे अपने सामाजिक परिवेश काल–कज के क्षेत्रों में भी समायोजित होने की आवश्यकता पड़ती है। समायोजन संबंधी उनकी इन आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए हम किसी भी समायोजन संबंधी क्षेत्रों को मुख्यतः तीन भागों में बाँटते हैं।

- व्यक्तिगत समायोजन
- सामाजिक समायोजन
- व्यावहारिक समायोजन

व्यक्तिगत समायोजन (Personal Adjustment)

व्यक्तिगत समायोजन से तात्पर्य यह है कि व्यक्ति अपने आप से कितना समायोजित है। इस बात का निर्णय व्यक्ति समायोजन क्षेत्र से, समायोजन स्तर से ज्ञात कर सकते हैं। कोई व्यक्ति किसी क्षेत्र में किस स्तर तक समायोजित है वह इस बात पर निर्भर करती है कि इस क्षेत्र से संबंधित व्यक्ति विशेष की आवश्यकताओं कितनी सीमा तक पूरी होती है अथवा उसके पूरी होने की संभावना व आशा से वह किस सीमा तक संतुष्ट रहता है। जब तक ये आवश्यकताएँ पूरी होती रहती है या इनकी पूर्ति की आशा बनी रहती है तो व्यक्ति समायोजित रहता है[4]। नही ंतो इसके विपरीत व्यक्ति कुसमायोजित (डंसंकरनेजउमदज) का शिकार होता है। प्रश्न यह उठता है कि व्यक्ति अपने आप को समायोजित रखने या संतुष्ट रखने से संबंधित विभिन्न क्षेत्र कौन–कौन से हैं। जिनके ऊपर उसका व्यक्तिगत समायोजन निर्भर करता है। इस तरह यह कहा जा सकता है कि व्यक्तित्व के विकास से संबंधित विभिन्न पहलुओं तथा व्यक्तिगत आवश्यकताओं में निहित समायोजन को ही इनका आधार मानते हैं। जो निम्न प्रकार के हैंः–

शारीरिक विकास और स्वास्थ्य संबंधी समायोजन (Adjustment to physical development and health)

वह व्यक्तिगत समायोजन का एक प्रमुख पहलु हो सकता है। हर आयु स्तर पर कितना शारीरिक विकास हो इसका एक निर्धारित मापदंड होता है। लंबाई, भार तथा शरीर के अंगों का विकास अगर समान स्तर को छूता रहे तो व्यक्ति शारीरिक रूप से अपने आपको समायोजित अनुभव करता है। अपने रंग–रूप, शरीर की बनावट आदि से भी व्यक्ति संतुष्टि का अनुभव करता रहे। यह बात भी व्यक्ति के स्वास्थ्य संबंधी समायोजन का उचित आधार बनाती है। इस तरह व्यक्ति की अपनी शारीरिक संरचना अपने विकास, शारीरिक अंगों तथा संस्थानों की कार्य प्रणाली तथा सामान्य स्वास्थ्य से संतुष्टि का अनुभव करने वाली बातें शारीरिक विकास और स्वास्थ्य संबंधी समायोजन के क्षेत्र में आती है। और इस प्रकार का समायोजन उसे अपने संतुष्टि या समायोजित होने में पूरी मदद करता है।

मानसिक विकास और स्वास्थ्य समायोजन (Adjustment with regard to mental development and health)

(व्यक्तिगत समायोजन का दूसरा बड़ा पहलु व्यक्ति के मानसिक स्वास्थ्य से संबंधित है। व्यक्ति का मानसिक स्वास्थ्य किस स्तर का है और उससे व्यक्ति कितनी सीमा तक संतुष्टि का अनुभव करते हैं। इससे व्यक्ति के व्यक्तिगत समायोजन का एक प्रमुख आधार सिद्ध होता है। इसी तरह अच्छे मानसिक स्वास्थ्य की प्राप्ति भी हमें व्यक्तिगत रूप से भली–भाँती समायोजित बनाने में अत्यधिक सहयोगी होती है। चिंता, क्लेश, निराशाओं, कुठांओं, दबाव तथा तनाव का हमारे जीवन में क्या स्थान है। व्यक्ति उसे किस रूप में लेते हैं। और उनसे किस प्रकार निपटता है। यह सभी बातें व्यक्ति के मानसिक स्वास्थ्य का स्वामी है। अच्छे ढंग से व्यक्तिगत सामाजिक और व्यावसायिक समायोजन कर सकता है। परतु अपने मानसिक तथा स्वास्थ्य को ठीक बनाये रखने में व्यक्ति की अपनी बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका होती है)। अतः इनसे संबंधित समायोजन व्यक्तिगत समायोजन के क्षेत्र में ही शामिल किया जाता है।

संवेगात्मक समायोजन (Emotional Adjustment)

व्यक्ति के व्यक्तित्व और व्यवहार में संवेगों (Emotional) का एक प्रमुख स्थान है। अपने आप से समायोजित होने के लिए उनमें संवेगात्मक परिपक्वता (Emotional haturity) का होना अति आवश्यक है। उचित रूप से संवेगों की अभिव्यक्ति व्यक्ति के समायोजन के लिए काफी आवश्यक है[5]। जो लोग ऐसा नहीं कर पाते हैं वे संवेगात्मक रूप से अस्थिर तथा कुसमायोजित माने जाते हैं।

लैंगिक समायोजन (Sexual Adjustment)

लैंगिक या यौन संबंधी आवश्यकता (Sex Needs) हमारी आवश्यकताओं में एक बड़ी आवश्यकता है। इस आवश्यकता की पूर्ति जब तक सामाजिक मान्यता प्राप्त तरीकों से ठीक प्रकार होती रहती है। व्यक्ति अपने आप को समायोजित अनुभव करता है। इसकी पूर्ति में बाधा या कोई असंतोष कुसमायोजन को जन्म देता है। विभिन्न अनुसंधानों ने इस संबंध में यही निष्कर्ष निकाला है कि व्यक्ति का समुचित लैंगिक विकास यौन या काम के प्रति उचित दृष्टिकोण तथा उसकी स्वाभाविक अभिव्यक्ति एवं तृप्ति ही उसे हमसे तथा अपने परिवेश से ठीक प्रकार समायोजित रखती है।

व्यक्तिगत आवश्यकताओं से संबंधित समायोजन (Adjustment with respecot to the Individual needs)

व्यक्ति के व्यक्तिगत समायोजन की परिधि में ऐसी सामाजिकता भी शामिल होती है जिनका संबंध व्यक्ति की व्यक्तिगत आवश्यकतओं में शारीरिक आवश्यकताओं (physiological or organic needs) के रूप में भूख, प्यास, नींद, विश्राम आदि आवश्यकताएँ आती है। भौतिक आवश्यकताओं (material needs) में

भौतिक सुख सुविधाओं को जुटाने तथा भोगने की बात आती है। सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं में स्नेह एवं प्यार पाने और देने, आत्मा की अभिव्यक्ति करने, दूसरों पर प्रमुख बनाने, आदर एवं सम्मान प्राप्त करने जैसी आवश्यकताएं आती है। इस तरह की व्यक्तिगत आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु शुरू से प्रयत्न करते रहते हैं तथा मृत्युपर्यन्त तक यही प्रयत्न चलते रहते हैं। व्यक्ति को अपने प्रयत्नों में कितनी सफलता मिलती है। हम किस सीमा तक अपने इन प्रयत्नों और उनके परिणामों से संतुष्ति का अनुभव करते हैं। उसी सीमा तक व्यक्ति का अनुभव अपने आप को समायोजित रखता है। इस तरह व्यक्तिगत आवश्यकताओं की पूर्ति से संबंधित समायोजन व्यक्ति के व्यक्तिगत समायोजन के लिए एक काफी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

अतः अंत में यह कहा जा सकता है कि व्यक्ति के जीवन में व्यक्तिगत समायोजन का महत्वपूर्ण स्थान है। इसके द्वारा जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में व्यक्ति को समायोजन करने में मदद मिलती है।

सामाजिक समायोजन (Social Adjustment)

(एक व्यक्ति को जितना अपने आप से संतुष्ट और समायोजित होने की आवश्यकता होती है। उतनी ही अपनी सामाजिक परिवेश से जुड़ी हुई बातों तथा व्यक्तियों के साथ उचित तालमेल बनाये रखने और समायोजित रहने की होती है। व्यक्ति को अपने परिवेश तथा अपने उपलब्ध परिस्थितियों से भी संतुष्टि का अनुभव करना चाहिए तभी वह ठीक तरह समायोजित रह सकता है। सामाजिक परिवेश का दायरा उसके घर–परिवार से शुरू होकर विश्व–बंधुत्व की सीमाओं को छूना है।) मुख्य रूप से एक व्यक्ति में सामाजिक समायोजन में निम्न पहलुओं को शामिल किया जाता है। जिसका विस्तार से वर्णन इस प्रकार है।

घर–परिवार से समायोजन (Home and family adjustment)

व्यक्ति को अपना घर, घर जैसी सुख–शांति एवं संबंध प्रदान करने वाला लगना चाहिए तथा उसे अपने परिवारों के सदस्यों के साथ उठना–बैठना, रहन–सहन अच्छा लगना चाहिए। जिस व्यक्ति को घर काटने को दौड़ता है उसे ज्यादा समय घर से बाहर बिताना पसंद आता है। जिस व्यक्ति के घर के सदस्यों से आपसी वार्तालाप तक समाप्त हो जाये। ऐसा घरेलू वातावरण प्रत्येक व्यक्ति को कुसमायोजित ही करेगा। दूसरा इसके विपरीत एक–दूसरे को समझने वाले स्नेह एवं प्यार से भरे सहयोगी वातावरण में प्रत्येक सदस्य को पूरी तरह तालमेल बिठाकर अपने और परिवार को आगे बढ़ाने में समुचित सहायता मिलती है। ऐसे वातावरण में सभी सदस्यों की व्यक्तिगत तथा सामूहिक आवश्यकताएं ठीक तरह से रहती है और सभी लोग भली–भाँति समायोजित रहते है। अतः जिसे घर एवं परिवार के सदस्यों में पारस्परिक सहयोग एवं तालमेल रहता है, ऐसे वातावरण में व्यक्ति के समायोजित रहने की संभावना ज्यादा रहती है।

मित्र और संबंधियों से समायोजन (Adjustment with friends and relatives)

सामाजिक दायरे के अंतर्गत दूसरी कड़ी मित्रता तथा सगे–संबंधियों को लेकर होती है। सामाजिक संबंध को इन्हीं के सहारे जीवित रखा जाता है। सुखी जीवनयापन के लिए इनके बीच ठीक तरह से संपर्क सूत्र कायम रखने की आवश्यकता होती है[7]। जो जिंदगी की विषम परिस्थितियों में अपने आप को स्थिर रखने में काम आते हैं। अतः मित्रता संबंधियों से संबंध यह भी किसी व्यक्ति को समायोजित रखने में मदद करता है।

उपसंहारः– अतः स्पष्ट है कि अभियोजन क्षमता के विकास पर ही विद्यालय छात्रों का सम्पूर्ण विकास निर्भर करता है। इनका शारीरिक मानसिक और भावनात्मक विकास अभियोजन क्षमता के विकास पर ही निर्भर करता है अतः अध्ययन के माध्यम से बच्चों को लक्ष्य तक ले जाने में अभियोजन क्षमता का महत्वपूर्ण योगदान है।

सन्दर्भ :

1. शिक्षा के दार्शनिक आधार, नालन्दा खुला विश्वविद्यालय, डॉ. मंजु शर्मा, सम्पादक असित सिन्हा, पृ. 49
2. ब्रेक तथा ऐमेरी (Beck and emery) (1985) असामान्य मनोविज्ञान, पृ. 37
3. बेफ्स (Befs) (1950) असामान्य मनोविज्ञान, पृ. 18.
4. Burgens (1981) असामान्य मनोविज्ञान, पृ. 54.
5. Burt (1995) असामान्य मनोविज्ञान, पृ. 96.
6. डॉ. शिव कुमार सिंह, असामान्य मनोविज्ञान, पृ. 13.
7. अरूण कुमार सिंह (2004) आधुनिक असामान्य मनोविज्ञान, पटना विश्वविद्यालय, पटना, पृ. 36.

***

वसुधैव कुटुंबकम : शांति एवं सामंजस्य का दर्शन

डूमरेन्द्र राजन *

कोरोना महामारी ने संपूर्ण विश्व के सामने दर्द एवं अमानवीयता की एक ऐसी तस्वीर पेश की है जो आने वाली सभ्यताओं के लिए सीख का काम करेंगी। सीख तो मिलेगी लेकिन फिलहाल इस शोध पत्र का उद्देश्य है वसुधैव कुटुंबकम एवं भारतीय दर्शन के आलोक में कुछ सवाल का जबाब ढूंढना तथा यह देखना की वसुधैव कुटुंबकम शांति एवं समृद्धि का दूत है.....

सवाल है :

चीन से महामारी फैला उसके दो पक्ष हैं

पहला– मीडिया रिपोर्ट के अनुसार वह इसको देर से सूचित किया क्या मानव जाति सिर्फ उनकी भौगोलिक सीमा तक ही सीमित है ?

दूसरा पक्ष– फैलने का कारण उनका मांस बाजार है इससे पहले भी कई बीमारियां वहां से फैली है।

वसुधैव कुटुम्बकम– महोपनिषद का वाक्य है "अयम निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम ,उदार चरितानां नाम तू वसुधैव कुटुंबकम" अर्थात ऊंच–नीच की संकीर्ण मानसिकता से परे, उदार चरित्र वालों की समझ ही वसुधैव कुटुंबकम है, पूरा संसार ही हमारा परिवार है यह हमारी संस्कृति की समझ है जिसने गो, गंगा, गीता को जन्म दिया यह सब भी हमारे परिवार का हिस्सा हैं, दुनिया के किसी भी सभ्यता के इतिहास में कुटुंबों की ऐसी परिभाषा नहीं मिलती। छांदोग्य उपनिषद कहता है 'तत्वमसि' मांडूक्योपनिषद कहता है 'अयमात्मा ब्रह्म' यही तो मूल भावना है वसुधैव कुटुंबकम का.....

विश्व के निराशा का समाधान– विश्व निराशा के दौर से गुजर रहा है ,महामारी ने जीवन की व्यस्तता की चाल को थोड़ा धीमा कर दिया है लेकिन वसुधैव कुटुंबकम को मानने वाला इस समय भी निराश नहीं हो सकता, हताश नहीं हो सकता क्योंकि हम मानते हैं कि जीवन का पक्ष सिर्फ स्थूल शरीर नहीं, यहाँ सूक्ष्म शरीर, कारण शरीर पंचज्ञानेंद्रिय + वायु से बना मनोमय कोश, पंच कर्मेंद्रीय और पंच वायु से बना प्राणमय कोश तथा पंच ज्ञानेंद्रिय+ बुद्धि से बना विज्ञानमय कोश है, मतलब हमारे जीवन का पक्ष सिर्फ स्थूल शरीर नहीं है यहां पंचकोश है, यहां सूक्ष्म शरीर है तो फिर निराशा क्यो? वसुधैव कुटुंबकम का विचार उस हिमालय की तरह है जिसके लिए कहा गया है' खड़ा हिमालय बता रहा है डरो न आंधी पानी से' महामारी आती रहेगी –जाती रहेगी वसुधैव कुटुंबकम हिमालय की तरह खड़ा रहेगी और जीवंतता को कायम भी रखेगा।

---

* शोध छात्र, पटना विश्वविद्यालय

अब सवाल पर आते हैं– इसके दो पहलू हैं पहला कि चीन द्वारा देर से दुनिया को सूचित करना । ताज्जुब की बात है कि गौतम बुद्ध का दर्शन वहां तक पहुंचा और बुद्ध ने तो न्याय –बंधुता और समानता का दर्शन दिया फिर भी उस राष्ट्र ने दुनिया को संकट में डाला ।यदि वसुधैव कुटुंबकम के मर्म को समझता तो पूरे संसार संकट में नहीं डालता.....

सवाल का दूसरा पक्ष है कि चीन में बीमारी फैलने का एक कारण उनका मांस बाजार रहा है, जहाँ हर रोज करोड़ों पशुओं की हत्या होती है; हाल के दिनों की लगभग सभी बीमारी उनके मांस बाजार से कहीं ना कहीं जुड़ी रही है। बड़ी बात यह है प्रतीत होता है कि मानव के अलावा उन्हें जीवो से भी प्यार नहीं हमारे अग्नि पुराण के 231 में अध्याय में वर्णित है– "गोश्वोष्दगर्दभश्वानः सारिका गृहगोधिका, चटका मासकूर्माधाः कथिता ग्राम वासिनः" अर्थात गाय, घोड़ा, गधा, कुत्ता, मैना, छिपकली, पक्षी और कछुआ आदि ग्रामवासी हैं इनका वध निषिद्ध है".... हमारा वसुधैव कुटुंबकम हर जीव–जंतु ,पशु–पक्षी सबसे प्रेम करना सिखाता है . वसुधैव कुटुंबकम एक श्लोक नहीं अपने आप में संपूर्ण दर्शन है एवं विश्व में प्रेम और शांति के लिए यह मार्गदर्शक है.....

ऋग्वेद–

'वास्तोष्पते प्रति जानी हय स्मानत्स्वावेशो अनमीयो भवा नः। यत्वमेह प्रति तन्नो जुपस्व शं नो भव शं चतुष्पदे'; है वास्पतोष्यते मुझसे आत्मीयता रखो, सुंदर निवास वाले और हमारे लिए रोग रहित हो जो तुम्हें हम समर्पित करते हैं उससे प्रसन्न हो और हमारे द्विपाद और चतुष्पाद प्राणियों के लिए कल्याण पद हो, ऋग्वेद का ऋषि देखिए किस तरह संपूर्ण चराचर जगत को अपना परिवार मानकर उनके कल्याण की प्रार्थना करता है.....

रामचरितमानस–

"जय राम रूप अनूप निर्गुण ,सगुण गुण प्रेरक सही"

अर्थात ब्रह्म चाहे निर्गुण हो या शगुन तू इतना तो निश्चित है की वह सर्वव्यापी है, गोस्वामी तुलसीदास कितने बड़े दार्शनिक जिन्होंने संपूर्ण संपूर्ण विश्व में ब्रह्म को माना यह कितना बेहतरीन वसुधैव कुटुंबकम की अवधारणा है....

बौद्ध दर्शन का– इनका अभ्युदय ही तो करुणा से हुआ संपूर्ण विश्व के कल्याण के लिए इनके यहां बोधिसत्व का सिद्धांत है,' जब तक संसार का हर एक व्यक्ति मुक्त नहीं हो जाता तब तक मैं इसी संसार में रहूंगा' यह वसुधैव कुटुंबकम की कितनी महान अवधारणा है, जीव मात्र के प्रति करुणा रखो सब से प्रेम करो यही तो वर्तमान जरूरत है

श्री अरविंद– अरविंद समग्र अद्वैतवाद की बात करते हैं उनका मानना है कि भौतिक तत्व एवं आत्म तत्व एक ही ब्रह्म की निम्नतम एवं उच्चतम दो अवस्थाएं हैं तात्पर्य है संपूर्ण विश्व ब्रह्ममय हैः यह भारतीय दर्शन में ही संभव है।

स्वामी विवेकानंद– यह तो संपूर्ण विश्व के आध्यात्मिक गुरु थे इनका सार्वभौम धर्म जो बिना भेदभाव के सबको स्वीकार्य करने की बात करता है क्या इससे बेहतर भी वसुधैवव कुटुंबकम की अवधारणा होगी?

गांधी– गांधी का संपूर्ण जीवन ही तो वसुधैव कुटुंबकम का परिचायक रहा दक्षिण अफ्रीका में रंगभेद के विरुद्ध 'सत्य –अहिंसा 'के हथियार से सुसज्जित यह योद्धा पूरे विश्व को अपना परिवार मानता था जौानदर्शन तो अद्वितीय है उनके यहां वसुधैव कुटुंबकम की अवधारणा इतनी मजबूत है कि वह तो सूक्ष्मजीव मात्र की भी रक्षा के लिए तत्पर रहते हैं

निष्कर्षतः– हम देख सकते हैं कि विश्व को निराशा से निकाल कर आशा की ओर ले जाने का मार्ग है वसुधैव कुटुबंकम क्योंकि यहां जीवन सिर्फ स्थूल चीजों में ही नहीं अपितु सूक्ष्म चीजों में भी है यहां बुद्ध की करुणा है, यहां गांधी की अहिंसा है, यहां विवेकानंद का सार्वभौम धर्म है, यहां श्री अरविंद का समग्र अद्वैत है, यहां रामानुजाचार्य के ईश्वर का अंतर्यामी स्वरूप है। यहां ऋग्वेद के ऋषियों का समर्पण है... वर्तमान विश्व जो कि सभ्यता की अवसरवादी और विकास की भौतिकवादी लालच से भरपूर आदतों के कारण तकनीक रूप से करीब तो आया लेकिन मानवीयता और अध्यात्म के साथ–साथ परिवार को खो दिया ऐसे में वसुधैव कुटुंबकम ही संपूर्ण विश्व के लिए मार्गदर्शक का कार्य कर सकता है।

सन्दर्भ :

- यशपाल जैन : सबजन हिताय (सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली, 1987)
- मनोज सिंह : पुराणों में पर्यावरण (शोध पत्र, संसकृत, पालि, प्राकृत विभाग, इलाहाबाद विश्वविधालय, इलाहाबाद, 2002)
- डॉ बलदेव प्रसाद मिश्र : तुलसी–दर्शन (हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 1942)
- बसंत कुमार लाल : समकालीन भारतीय दर्शन (मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 2016)
- चंद्रधर शर्मा : भारतीय दर्शन (मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 2013)

***

स्वामी शिवानन्द जी तीर्थ और योग की महत्ता

सत्या सुमन सोनी *

स्वामी शिवानन्द जी तीर्थ महाराज 'गीताघाट के बाबा' के नाम से मशहूर थे। इनका आश्रम सासाराम शहर में स्थित है। शिवानन्द जी ने गरीबों, शोषितों के पक्ष में आवाज उठाई। उन्होनें दक्षिण बिहार के अतिपिछड़े लोगों के विकास के लिए अपने प्रवचन के माध्यम से आत्मनिर्भर बनाने का सार्थक प्रयास किया। उन्होनें गीताघाट आश्रम की स्थापना की जिसमें सभी धर्म, जाति, संप्रदाय के लोगों का प्रवेश आसन था।

उन्होनें अपने प्रवचन में योग के बारे में बताया है कि ईश्वर सेआत्मा का मिलन ही योग का प्रमुख वृत्ति है। योग और कर्म दोनों एक ही सिक्के दो पहलू हैं। जो व्यक्ति भगवद् प्राप्ति का उद्देश्य रखकर जो भी क्रिया करता है वही योगी है। योग शब्द का अर्थ ही जोड़, मेल, युक्ति, कुशलता तथा वियोगादि का योग यानी विछड़े हुए को मिलाना है। जीव संसार में भूल कर विछड़ गये हैं। इसलिए इनके मनोवृत्तियों का सांसारिक प्रपंचों से हटकर परमपिता परमात्मा में लग जाना ही योग है फिर चाहे वह किसी भी जाति, संस्था तथा संप्रदाय का हो।[1]

योग से ही मनुष्य को सुख की प्राप्ति हो सकती है। मनुष्य को सुख का अनुभव प्रेम रूपी योग से हो सकता है। अगर किसी व्यक्ति को प्रेम हो जाता है तो वह प्रेम के वश में रह कर वाह्यदुनिया को भूल जाता है। जिसकी मनोवृत्ति जिस विषय में उत्सुक हो जाती है, वही विषय उस समय के लिए सर्वोपरि लगने लगता है। अगर किसी को अपने प्रेम से मोहभंग हो जाता है तो वह दुःख का अनुभव प्राप्त कर लेता है। जैसे धन मिलने सुख होता है परन्तु मिलते ही बिछुड़ने का भय रूपी दुःख भी लग जाता है। इसलिए बात साफ है कि सुख की खोज ही दुःख का काँटा है। सुख की खोज का परिपूर्ण हो जाना ही सुख दुःख मुक्त होने का चाटा है, परन्तु चाटे को दुःख ही समझ लेते है। यद्यपि वह मोह से छुटने का अद्भूत काँटा है।[2]

योग मनुष्य को मायामुक्त भी करता है। माया का अर्थ हुआ जो समझ में न आयें। घटना घटने के बाद समझ में आ जाये तो माया का निराकरण हो गया। भक्ति और ज्ञान यही होता है। भगवान राम को राज्यतिलक की घोषणा होने के बाद देवताओं के अन्दर एक दुःख की घटा सामने आयी क्योंकि राम के वन गमन से ही उनके दुःख का अन्त हो सकता था। इसलिए उन्होनें माँ शारदा से प्रार्थना की तुम अयोध्या में जाओं

---

* शोध छात्रा, इतिहास विभाग, वीर कुवँर सिंह विश्वविद्यालय, आरा, बिहार।

और माया से किसी की बुद्धि विमोहित कर राम के राजतिलक की जगह चौदह वर्ष वनगमन की व्यवस्था करा दो। शारदा हिचकिचाई की भगवान राम की नगर में किसकी बुद्धि विमोहित होगी, क्योंकि मायावी अपने से छोटी बुद्धि वाले को ही विमोहित कर सकते हैं। इसलिए रामचरित मानस में कहा गया है–

भरत जनकु मुनिजन सचिन, साधु सचेत विहायी।
लागी देव माया सबुही यथा जोग जनु पायी।।[3]

रामचरित मानस के प्रत्येक पात्र योग और कर्म से प्रभावित हैं। माया के प्रभाव के कारण कैकेयी और मन्थरा की मति प्रभावित हो जाती है, लेकिन अपनों से तिरस्कार मिलने से दुःख की प्राप्ति होती है तब फिर से उन्हें अपनी गलती का एहसास होता है और वे अपने गलत कर्मो को सुधारने की कोशिश करते है। यदि हम रामचरित मानस के सभी पात्रों को देखे तो वें कही न कही त्याग की भावना से प्रेरित हैं। ये त्याग की भावना उनके योग और कर्म का प्रतिफल है।

योग एक प्रेम का सरोवर है। जल के सरोवर में शरीर डूब कर मर जाता है और प्रेम सरोवर में डूब कर अर्थात् निमग्न होकर तर जाता है। जैसे आप रामचरित मानस का पाठ कर रहें हैं कुछ देर बाद आपका मन उब जायेगा परन्तु अपनी इच्छा होने से उबने के बाद भी दुःख की अनुभूति कम होगी। यदि आपका चित्त योग से प्रभावित है तो आपका मन वाणी थक जायेगा परन्तु आपका हृदय कभी नही थकेगा। प्रेम में व्यक्ति अथाह सागर को पार कर लेता है।

स्वामी शिवानन्द जी अपने प्रवचन में कहते हैं कि शरीर एक फल के समान है, जिसका ऊपरी भाग हांड़–मांस है और कैवल्य शरीर बीज है। हांड़–मांस में गुण–दोष का समावेश हो जाने से कैवल्य शरीर में गुण–दोष का विभाजन नही होता। शरीर पुरी तरह से शुद्ध होता है, क्योंकि इसके अन्दर पाँच तत्त्वों के योग का सम्मिलन होता है।

कुछ लोग योग को भी तप मानते है, तप शब्द का अर्थ है तपना या तपाना। कुछ लोग अग्नि से शरीर से तपाते है, कुछ नंगे रह कर ही तप करते है, कुछ बड़े होकर तप करते हैं और कुछ लोग व्रत उपवास, गिरी कन्दरा भूधरा के अन्दर रह कर भी मौन व्रत करते हैं। परन्तु ये सब बचकानी बुद्धि के तप हैं। जिस प्रकार बच्चें परस्पर खिलौनों में स्पर्धा किया करते हैं, उसी प्रकार ये सभी तपस्वी एक दूसरे को देखकर स्पर्धा पूर्वक ही तप करने में प्रवृत्त होते हैं। तप शब्द का यथार्थ अर्थ है बिना मांगे ही जो अपने आप दुःख मिलता है। जैसे किसी ने गाली दी, किसी ने पिट दिया, अथवा कही धूप में चलना पड़ा, किसी के घर में आग लग जाने से प्राणी पदार्थों की रक्षा में किसी अंग का जल जाना किसी कार्यक्रम का प्रसाद समझ कर सह लेने का ही नाम तप होता है।

जिस दिन भोजन न मिले उस दिन उपवास समझ कर प्रसन्न होना तप है। परन्तु जानबूझ कर उपवास करना अहंकार का ही एक चिन्ह होता है और उपवास के नाम पर फलादि भोजन का सेवन भी एक अहंकार का ही रूप है। जब किसी कार्यवश स्वयं भोजन न मिले और उस सहर्ष रूप से स्वीकार करना ही सच्चा तप कहा जाता है। किसी के घर पर यदि जल न मिले, सोने को जगह न मिले और गाड़ी में बैठने की सीट न मिले पुत्र–पत्नी आपकी बात न माने ऐसी अवस्था में भी उत्तरोत्तर चित्त का प्रसन्न होना ही सच्चा तप है–

जिस दिन हो बिमार देह यह, हर्षित चित्त हो नाँचों।
शिवानन्द तू ध्यान मग्न हो, गीता हरि की बाँचों।।[4]

तप करने वाला व्यक्ति योगी प्रवृत्ति का होता है और उसके कर्म से सामने वाला व्यक्ति भी प्रभावित होता है। तप योगी सिर्फ ऋषि–मुनि ही नही होते बल्कि वह खेतों में काम करता किसान, मजदूरी करता हुआ मजदूर और अपने परिवार को पालता हुआ गृहस्थ भी योगी कहा जा सकता है। योगी की दृष्टि हमेशा योगमय रहती है जिसके कारण वह सारे प्राणी पदार्थो में योग दर्शन करने लगता है। रामचरित मानस में कहा गया है कि– 'योगीन परमतत्त्वमय भाषा, शान्त शुद्ध सम सहज प्रकाशा'।। परन्तु बालकों को खेल–खिलौने ही दिखाई ही देगें, जवानों को भोग, वृद्धों को रोग, मोह–अन्धकार में घिरे हुए लोगों को मोह–शोक और मुमुक्षओं को मोक्ष।[5]

योग के प्रमुख के नियम– सर्वप्रथम अहिंसा है। अहिंसा का अर्थ किसी को भी मन, वचन, कर्म से ही दुःख नही देना है। अस्तेय का अर्थ चारी न करना है। लेकिन चोरी शब्द का अर्थ छिपाना भी होता है। अपने आप को और अपने असलियत को छिपाना ही चोरी है। योगी व्यक्ति अपने स्वरूप को स्पष्ट रूप से प्रगट कर देता है। ब्रह्मचर्य का योग में अविवाहित होना नही बल्कि परमात्मा में विचरण करना है। उसी प्रकार अपरिग्रह का अर्थ संग्रह न करना है, क्योंकि संग्रह करने से लोगों में अहंकार उत्पन्न होता है। और योग का अन्तिम नियम शुद्धि है। शुद्धि आन्तरिक तथा बाह्य होना चाहिए।

सन्दर्भ :

1. मन की आँखे खोल, स्वामी शिवानन्द जी तीर्थ, सासाराम, 2017, पृ. 7.
2. पूर्वोक्त, पृ. 14.
3. प्रेम बाँट हृदय छाँट, स्वामी शिवानन्द जी तीर्थ, 2017 पृ. 19.
4. पूर्वोक्त पृ. 91.
5. पूर्वोक्त पृ. 85.

***

कोविड-19 एवं मनरेगा

डॉ. मुहम्मद जावेद *

राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी कानून से देश की ग्रामीण जनता को रोजगार का वैधानिक अधिकार प्राप्त हुआ।

ग्रामीण क्षेत्र में गरीबी को कम करने तथा रोजगार प्रदान करने के लिए सितम्बर 2006 में ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम पारित किया गया। राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी कानून का उद्देश्य वर्ष में 100 दिन का रोजगार उपलब्ध कराकर गैर कृषि अवधि के दौरान अकुशलत ग्रामीणों का गाँव से पलायन रोकना है। इसके अनुसार इच्छुक ग्रामीण परिवारों को रोजगार प्राप्त करने का वैधानिक अधिकार प्राप्त हो गया। ग्रामीण रोजगार गारंटी अिनियम की व्यवस्थानुसार प्रथम चरण में 2 फरवरी 2006 से देश में चयनित अधिक पिछड़े 200 जिलों में राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना लागू की गयी थी। वर्तमान में यह योजना पूरे देश में लागू है। वर्ष 2009 में प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने पंचायत प्रमुखों के सम्मेलन में नरेगा को महात्मा गाँधी का नाम दिया अर्थात् मनरेगा (2 अक्टूबर 2009)। आज यह देश की गरीबी व बेरोजगारी कम करने वाली सबसे बड़ी योजना है।

राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना का लक्ष्य ग्रामीण क्षेत्र के जरूरतमंद प्रत्येक परिवार को 100 दिन का सुनिश्चित अकुशल रोजगार प्रदान करना है। पहले से चल रहे 'सम्पूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना' और 'काम के बदले अनाज योजना' को राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना में सम्मिलित कर लिया गया है। राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना के अन्तर्गत जल संरक्षण, सूखा निवारण, वनों के विस्तार, वृक्षारोपण, भूमि संरक्षण, उद्धरण एवं विकास, बाढ़ नियंत्रण, जल–प्लावन से प्रभावित–क्षेत्रों से जल निकास की व्यवस्था, ग्रामीण संबंधिता बढ़ाने के लिये ग्रामीण क्षेत्र में सर्वकालिक सड़कों के निर्माण आदि कार्यक्रमों में ग्रामीण परिवारों को रोजगार प्रदान किया जायेगा। इस कोरोना महामारी काल में तथा लॉकडाउन से उत्पन्न बेरोजगारी की समस्याँ में मनरेगा की महत्वपूर्ण भूमिका होगी। मुख्य बातें निम्नवत् हैं –

1. प्रत्येक वित्तीय वर्ष में प्रत्येक गरीबी की रेखा से नीचे के परिवार को, जिसके वयस्क सदस्य अकुशल शारीरिक श्रम करना चाहतें, कम से कम 100 दिन का रोजगार उपलब्ध कराया जायेगा।
2. वर्तमान में 182 रु0 प्रतिदिन मजदूरी को बढ़ाकर अब 202 रु0 कर दिया गया है।

---

* एसोसिएट प्रोफेसर, वाणिज्य विभाग, शिब्ली नेशनल कालेज, आज़मगढ़ उ.प्र.

3. गाँव में निवास करने वाले गरीबी रेखा से नीचे वाले परिवार के सदस्य इसके अन्तर्गत अकुशल रोजगार पाने के लिये पंजीकरण करा सकता है।
4. सभी योग्य आवेदकों को आवेदन की तिथि से 15 दिनों के भीतर फोटोयुक्त रोजगार कार्ड जारी किया जाता है।
5. रोजगार कार्डधारी आवेदक द्वारा काम की माँग किए जाने पर उन्हें 15 दिनों के भीतर सूचित किया जायेगा तथा उसे कार्य आवंटित किया जाय।
6. योजना के अंतर्गत प्रारम्भ किये जाने वाले कार्यों में जल एवं मिट्टी संरक्षण, वन रोपण तथा भूमि विकास कार्य को प्राथमिकता किया जाय।
7. गाँव के लिये परियोजनाओं को सिफारिश ग्रामसभा द्वारा की जानी चाहिये, जिसका अनुमोदन जिला पंचायत द्वारा किया जाय।
8. मजदूरी का भुगतान 15 दिनों के भीतर किया जाय। मजदूरी की राशि के मामले में राज्य सरकारों द्वारा अधिसूचित कृषि श्रमिकों के लिये न्यूनतम मजदूरी का नियम लागू होता है।
9. राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना के अंतर्गत महिलाओं के लिये एक–तिहाई आरक्षण की व्यवस्था की गयी है।
10. कार्ड धारक को मांगने पर यदि 15 दिनों तक रोजगार नहीं दियया तो उसके लिये बेरोजगारी भत्ता दिये जाने की व्यवस्था है।
11. इस योजना के अन्तर्गत कार्य करने वाले श्रमिक को यदि कार्य के दौरान चोट लग जाती है या वह घायल हो जाता है तो उसकी निःशुल्क चिकित्सा की जायेगी और मृत्यु की दशा में 25000 रुपये का भुगतान किया जायेगा।

योग्य परिवारों के वयस्क सदस्य रोजगार हेतु पंचायतों में अपना पंजीकरण कराते हैं और रोजगार कार्ड प्राप्त करते हैं। पंजीकृत व्यक्ति कम से कम 14 दिन के लगातार कार्य के लिये पंचायतों या कार्यक्रम अधिकारी को अपना लिखित आवेदन करते हैं। पंचायत या कार्यक्रम अधिकारी कार्य प्रदान करने की सृचना का पत्र प्रार्थी को देंगे। उसके निवास से 5 किमी0 की सीमा में काम देंगे। यदि 5 किमी0 से अधिक दूरी पर कार्य दिया जाता है, तो अतिरिक्त मजदूरी दी जायेगी। राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी कार्यक्रम नीतिगत आधार पर गव्यात्मक है। यह माँग आधारित कार्यक्रम है। माँगने पर काम उपलब्ध कराया जायेगा। इस कार्यक्रम के प्रति ग्रामीण क्षेत्र में उत्साह है और लोग इस कार्यक्रम में अपनी भागीदारी बढ़ाने को तत्पर हैं।

मनरेगा की उपलब्धियों का विवरण निम्न तालिकाओं से स्पष्ट है –

Table-1

Year	Person-days of work generated (Rs. in crore)
2014-15	166.21
2015-16	235.14
2016-17	235.60
2017-18	234.30

Table-2

Year	Budget Allocation (Rs. in crore)
2014-15	33000
2015-16	37346
2016-17	48220
2017-18	55167
2018-19	62700
2019-20	71002

इस कोरोना महामारी एवं लॉकडाउन से उत्पन्न बेरोजगारी को कम करने के लिए अर्थात रोजगार को बढ़ावा देने के लिए मनरेगा के तहत 40,000 करोड़ रुपये का अतिरिक्त आवंटन किया है। कुल 300 करोड़ मानव दिवस का रोजगार का सृजन होगा। मानसून के मौसम में वापस लौट रहे प्रवासियों समेत ज्यादा काम की जरूरत को पूरा करेगा। बड़ी संख्या में टिकाऊ और जल संरक्षण संपदाओं सहित आजीविका संपदाओं का निर्माण।

तालिका–3

उत्तर प्रदेश में कोरोना संकट काल में मनरेगा की उपलब्धियाँ

क्र.सं.	आधार	संख्या
01.	कुल ग्राम पंचायतों की संख्या	58,845
02.	कितनी ग्राम पंचायतों में काम चल रहा है?	53,117
03.	वर्तमान में काम करने वाले श्रमिकों की संख्या (15 सितम्बर 2020)	17,86,488
04.	वर्ष 2020 के पाँच महिनों में सृजित मानव दिवसों की संख्या (15 सितम्बर 2020)	22.90 करोड़
05.	एक दिन में अधिक से अधिक काम करने वाले श्रमिकों की संख्या	62.24 करोड़
06.	इस वर्ष अब तक कुल कितने श्रमिकों को काम दिया गया, उनकी संख्या है। (15 सितम्बर 2020)	94,69,640
07.	कुल कितने प्रवासी मजदूर लौटे थे, उनकी संख्या	16,34,427
08.	कितने प्रवासी श्रमिकों ने अब तक काम किया	11 लाख से अधिक
09.	इस वर्ष 2020 में अब तक बनाये गये नये जॉब कार्डो की संख्या	1.68 लाख से अधिक

लॉकडाउन के दौरान जब सभी जगह काम–धंधे, उद्योग–व्यापार बंद हो गए थे, तब मनरेगा ही प्रदेश के लाखों श्रमिकों के लिए सहारा बनी। मनरेगा के इतिहास में बीते साढ़े चार महीनों में प्रदेश में न केवल रिकार्ड मजदूरों को रोजगार मुहैया कराया गया है, बल्कि समय पर मजदूरों का भुगतान भी सुनिश्चित किया गया है। प्रदेश में एक दिन 62.24 लाख से अधिक श्रमिकों ने मनरेगा में मजदूरी की, जो एक रिकॉर्ड बना। वर्तमान वित्तीय वर्ष में मनरेगा में प्रदेश को 26 करोड़ मानव दिवस सृजन का लाभ मिला है, जिसमें से पाँच महीने की अवधि में 22.90 करोड़ मानव दिवस सृजन कर लिया गया है।

प्रदेश की 58845 ग्राम पंचायतों में से 53,117 में मनरेगा के तहत कार्य कराए जा रहे हैं। वर्तमान में 17,86,488 श्रमिक मनरेगा में काम कर रहे हैं। जबकि प्रदेश में अब तक 94,69,640 श्रमिकों को इस वर्ष मनरेगा में रोजगार उपलब्ध कराया गया है। लॉकडाउन में प्रदेश की 49123 ग्राम पंचायतों में कुल 1636427 प्रवासी श्रमिक लौटे थे। इनमें से 11 लाख से अधिक श्रमिकों को मनरेगा में रोजगार दिया गया। 1.68 लाख से अधिक श्रमिकों के नए जॉब कार्ड बनाए गए। इस प्रकार हम यह कह सकते हैं कि कोरोना संकटकाल एवं लॉकडाउन के समय में लाखों परिवारों को मनरेगा ने सहारा दिया है।

कुछ महत्वपूर्ण सुझाव

1. मनरेगा का दायरा बढ़ाने की आवश्यकता है। इसके कार्यक्षेत्र में चिड़िया उड़ाने और मवेशी हांकने तथा नीलगाय को भगाने को भी शामिल करने का प्रयास होना चाहिए।
2. मनरेगा, अन्त्योदय योजना, एकीकृत बाल विकास योजना, आंगनबाड़ी, मिड डे मील योजना, बी.पी.एल. कार्ड जैसी योजनाओं को मिलाकर एक एकीकृत योजना लागू नहीं होने से गरीबों को उनका हक नहीं मिल पा रहा है।
3. श्रमिकों के हित में मनरेगा के ढाँचे में सुधार की आवश्यकता है। अतः इसके संगठानात्मक ढांचे में सुधार करके उसको सफल बनाया जा सकता है।
4. अगर कोई मुकदमा दायर हो जाए या किसी प्रकार का हस्तक्षेप किया जाय तो सकारात्मक निकल सकते हैं। जैसे झारखंड में खूटी जिले में अनियमितताओं को लेकर अर्थशास्त्री ज्यां प्रेज द्वारा मजदूरी भुगतान अधिनियम के अन्तर्गत मामला दायर किये जाने का सकारात्मक परिणाम मिला। अतः अहित होने पर मुकदमा करने से परहेज नहीं करना चाहिए।
5. हेल्प सेन्टर अर्थात् सहायता केन्द्र के अधिक से अधिक गठन पर बल देना चाहिए।

6. सर्वप्रथम इस योजना को भ्रष्टाचार से मुक्त रखने के लिए प्रभावी नियन्त्रक व्यवस्था करने का प्रयास होना चाहिए।
7. मजदूरों के उपस्थिति रजिस्टर, मजदूरी भुगतान तथा निर्माण कार्यों में किसी प्रकार की गड़बड़ी न हो, इसके लिए कड़े प्रावधान करने होंगे।
8. इस योजना में होने वाले कार्यों का चयन सावधानी से करना चाहिए, जिससे कि गलत कार्यों (दोबारा) को रोका जा सके।
9. इस योजना का विस्तार से प्रचार व प्रसार ग्रामीण क्षेत्रों में करने का प्रयास होना चाहिए, जिससे कि अधिक से अधिक लोग इस योजना का लाभ प्राप्त कर सकें।
10. सामाजिक अंकेक्षण का क्षेत्र और अधिक बढ़ाने पर बल देना होगा तभी इसमें फैले भ्रष्टाचार पर अंकुश लगाया जा सकता है।

राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना की नीतिगत रूपरेखा ग्रामीण बेरोजगारी और गरीबी की समस्या के निदान हेतु एक सबल आधार तैयार करती है। समाज के आर्थिक दृष्टि से कमजोर वर्ग के लोग इस संदर्भ में बड़े प्रयास की अपेक्षा भी करते हैं। परन्तु योजना की वास्तविक सफलता इसके सक्षम क्रियान्वयन पर निर्भर करती है। यह कहा गया है कि योजना के क्रियान्वयन में कमियाँ हैं काम माँगने वाले अधिकांश परिवारों को काम मिल तो जाता है, परन्तु बहुत कम परिवारों को 100 दिन का पूर्ण रोजगार मिल पाता है। विभिन्न अध्ययनों से स्पष्ट हुआ है कि कार्य पाने वालों में से केवल 30 प्रतिशत का 100 दिन का रोजगार प्राप्त हुआ था। बहुत कम परिवारों को 100 दिन का पूरा रोजगार मिल पाता है। ऐसी दशा में कार्यक्रम की मूल भावना की पूर्ति नहीं हो पा रही है। इस संदर्भ में भारत के कन्ट्रोलर एण्ड ऑडीटर जनरल (सी.ए.जी.) ने भी ध्यान आकृष्ट किया है। भारत के कन्ट्रोलर एण्ड ऑडीटर जनरल ने राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना के क्रियान्वयन के निष्पादन आडिट में महत्वपूर्ण कमियाँ पायी हैं और योजना का अतिरिक्त प्रसार करने से पूर्व इन कमियों के निराकरण करने की सलाह सरकार को दी है। माँगने वाले सभी लोगों को रोजगार भी नहीं उपलब्ध कराया जा सकता है। अतः राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना का क्रियान्वयन पक्ष सुदृढ़ बनाया जाना चाहिये और इसका व्यापक प्रचार–प्रसार किया जाना वांछित है ताकि देश की बेरोजगार श्रम शक्ति इसके प्रावधानों से अवगत हो सके और इसमें अपनी भागीदारी बढ़ाये। यदि सही रूप से मनरेगा का क्रियान्वयन किया जायेगा तो कोरोना महामारी व लॉकडाउन से उत्पन्न बेरोजगारी की समस्याओं का सरलता से समाधान सम्भव हो सकेगा। जिसका उदाहरण उत्तर प्रदेश है, जिसमें मनरेगा ने बड़ी संख्या में लोगों को सहारा दिया है।

इस कोरोना महामारी काल में मनरेगा ने प्रवासी श्रमिकों तथा महानगरों से करोड़ों की संख्या में आये श्रमिकों को सौ दिन का रोजगार उपलब्ध कराया है। मनरेगा ने ग्रामीण अर्थव्यवस्था के लिए एक अति

महत्वपूर्ण काम किया है। इसने इस कोरोना महामारी के परेशानी के समय ग्रामीणों एवं श्रमिकों को बड़ी राहत पहुँचाई है और यह स्वतः ही रोजगार पैदा करने का जरिया बन गई है। सरकार ने अपनी भूमिका को बदल स्वयं को मद्दगार के रूप में प्रस्तुत किया है। सरकार ने इस योजना में 40,000 करोड़ अपने अतिरिक्त धन का आवंटन किया है, जिससे इस योजना के क्रियान्वयन में धन का अभाव न आये। मनरेगा ने बखूबी अपनी भूमिका का निर्वाह कर रही है। इसका उदाहरण उत्तर प्रदेश राज्य है। उम्मीद है कि सरकार एवं मनरेगा इस चुनौतीपूर्ण कार्य में खरी उतरेगी।

सन्दर्भः

1. शुक्रवार, साप्ताहिक पत्रिका, 29 मई से 4 जून 2010, पृ. 20.
2. डॉ. सी.पी. जोगी, दैनिक जागरण, वाराणसी, 12 अक्टूबर 2009, पृ. 10.
3. विजय विद्रोही, चौरासी पैसों का हिसाब कौन देगा? अमर उजाला, वाराणसी, 26 अक्टूबर 2009, पृ. 14.
4. वही.
5. दैनिक जागरण, 10 सितम्बर 2009, पृ. 1.

आधार :

1. ज्यां प्रेज : नरेगा के वायदे पर अमल, योजना, नई दिल्ली, अगस्त 2008, पृ. 15–16.
2. अरुण आदित्य : गाँवों की तस्वीर बदल सकती है बशर्ते ....., अमर उजाला, वाराणसी, 6 जनवरी 2009, पृ. 4.
3. रघुवंश प्रसाद सिंह, राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी कानून के दो साल, योजना, नई दिल्ली, अगस्त 2008, पृ. 7–10.
4. ललित माथुर, 'नरेगा के वायदे पर अमल', योजना, नई दिल्ली, अगस्त 2008, पृष्ठ 11–14.
5. ज्यां प्रेज, रीतिका खेड़ा एवं सिद्धार्थ : नरेगा में भ्रष्टाचार : मिथक और वास्तविकता, योजना, नई दिल्ली, अगस्त 2008, पृ. 15–16.
6. सुनीता नारायण : रोजगार गारंटी कानून एवं पर्यावरण सुरक्षा, योजना, नई दिल्ली, अगस्त 2008, पृ. 17 एवं 47.
7. ज्यां प्रेज : रोजगार गारंटी की कीमत (एक), हिन्दुस्तान, वाराणसी, 20 दिसम्बर 2005, पृ. 5.
8. Dr. P. Anandharaja Kumar, Impact Assessment of MGNREGS on Rural Migration, Kurukshetra, New Delhi, December 2010, Pp. 26-29.
9. Dr. S. Vijay Kumar, Mahatma Gandhi National Rural Employment Gurantee Act : A Review, Kurukshetra, New Delhi, Jan. 2011, Pp. 10-12.
10. B.K. Pattanaik and Hans Lal, Mahatma Gandhi NREGA and Soial Audit System of Village Panchayats, Kurukshetra, New Delhi, Jan. 2011, Pp. 23-25.

11. Jean Dreze and Rectika Khera, The battle for employment guarantee : The NREGA is making a difference to the lives of the rural poor, slowly but surely FRONTLINE, Anna Salai, Chennai, Jan. 3-16, 2009, Pp. 4-26.
12. Amarjeet Sinha, Livelihood Development and Diversification, Yojana, Ministry of Imformation & Broadcasting, New Delhi, September 2018, Pp. 25-29.
13. डॉ. आर.सी. श्रीवास्तव : ग्रामीण भारत के विकास इंजन प्रवासी श्रमिक, कुरूक्षेत्र, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, नई दिल्ली, अगस्त 2020, पृ. 30–34.
14. डॉ. नरेन्द्र पाल सिंह : सतत ग्रामीण विकास का माध्यम मनरेगा, कुरूक्षेत्र, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, नई दिल्ली, सितम्बर 2018, पृ. 46–48.
15. अमर उजाला, वाराणसी, 15 सितम्बर 2020, पृ. 7.

***

आधुनिक विज्ञानस्य कृते वेदनिष्ठसंस्कारविज्ञानस्योपयोगित्वम्

कृष्ण मुरारी त्रिपाठी *

समुपसर्गपूर्वकात् 'डुकृञ् करणे' इत्यस्मात् धातोः भावे घञि सम् + कृ + अ इत्यवस्थायां 'सम्परिभ्यां करोतौ भूषणे' इति सूत्रेण भूषणेऽर्थे सुटि कृते संस्कृ + अ इति जाते, 'अचो ञ्णिति' इत्यनेन अजन्ताङ्गस्य ञिति परे वृद्धौकृतायां संस्कारशब्दो निष्पद्यते।

ऋग्वेदे 'संस्कार' इत्यस्य पवित्रीकरणमित्यर्थः वर्णितः। एवञ्च भूषणार्थकसुडागमविधानेन अस्य अलङ्करणमित्यर्थो भवति। येन कर्मणा किञ्चिद् वैशिष्ट्यं शोभनावाजायते, तदेव संस्कारपदवाच्यम्। संस्क्रियते-अनेन-इति करण-व्युत्पत्त्या ईदृशाऽर्थस्याऽधिगमो जायते।

यथा च छान्दोग्योपनिषदि-

तस्मादेष एवं यज्ञस्तस्यमनश्च वाक्च वर्तिनी।
तयोरन्यतरां मनसा संस्करोति ब्रह्मा वाचा होता।।[१]

जैमिनीसुत्रेषु संस्कारशब्दस्य बहुधा प्रयोगोद्धऽवलोक्यते। सर्वेषुस्थलेषु शब्दोऽयं पवित्रतार्थे निर्मलतार्थे वा प्रयुक्तः। जैमिनीसूत्रे संस्कारशब्दः उपनयनार्थे प्रयुक्तोऽस्ति।[२]

शबरस्वामिना अपि जैमिनिसूत्रस्य व्याख्यानावसरे संस्कारशब्दस्य विवेचनमेभिः शब्दैः कृतम् –

संस्कारोनाम स भवति यस्मिञ्जाते पदार्थो भवति योग्यःकस्यचिदर्थस्य[३]

अर्थात् यदनन्तरं वस्तुनि योग्यताविशेषः-आगच्छति तदेव संस्कारपदस्यार्थः।

वीरमित्रोदये तु 'संस्कार' इत्यस्य योग्यता इत्यर्थः कृतः। मीमांसकास्तु योग्यताम् एव संस्काररूपेण स्वीकुर्वन्ति।[४]

अद्वैतवेदान्तिनस्तु जीवे शारीरिकक्रियाणां मिथ्यारोपं संस्कारपदेन स्वीकुर्वन्ति।[५]

लौकिकसंस्कृतवाङ्मये शिक्षासंस्कृति-प्रशिक्षण[६]-सौजन्यपूर्णता-व्याकरणात्मक-शुद्धि[७]-संस्करण-परिष्करण[८]-शोभा-आभूषण[९]-प्रभाव-स्वरूपस्वभावक्रियास्मरणजनकशक्ति[१०]शुद्धिक्रिया-धार्मिकविधि[११]-विचारभावनादिषु अस्योपयोगः दृश्यते।[१२]

---

* शोधच्छात्रः. वेदविभागः. संस्कृतविद्याधर्मविज्ञानसंकायः. काशीहिन्दूविशविद्यालयः

वैदिकसंस्कृतिविवेचनपरेण वेदानां वैज्ञानिकव्याख्याकारेण पण्डितमधुसूदन-ओझामहोदयेन कर्मसम्पादनयोग्यताया: उत्पादनमिति संस्करशब्दस्यार्थ: प्रकाशित:। तेन हि छन्द: समीक्षानामके ग्रन्थे लिखितं यत्-'कस्यचित् कस्मिंश्चिद् कर्मणि योग्यतासम्पादनं हि संस्कार:।

भारतीयसमाजव्यवस्थायां तथा च भारतीयसंस्कृतौ गर्भाधानादीनामुपनयनविवाहादीनां क्रियाकलापानां संज्ञा'संस्कार' इति प्रसिद्धं विद्यते।

एवं प्रकारेण सुस्पष्टं यत् संस्कारस्य अभिप्रायोऽस्मि सा शुद्धा धार्मिकक्रिया या जनै: दैहिक-मानसिक-बौद्धिकपरिष्काराय अनुष्ठीयते, येन स: समाजस्य मान्य: सदस्यो भवेत्। किन्तु संस्कारेषु परम्परागता धार्मिकविधिविचारा: सहवर्तिनश्च नियमा अपि समाविष्ट: सन्ति येषामुद्देश्यं केवलमौपचारिक-दैहिकसंस्कार एव नास्ति, अपितु जनानां सम्पूर्णव्यक्तित्वस्य परिष्कार: पूर्णता चापि अस्ति। सामान्यत इदं स्वीक्रियते यद् विधिपूर्वकं संस्कारणामनुष्ठनै: संस्कृतेषु जनेषु विलक्षणत्वै: साकं वर्णनीय-गुणानां प्रादुर्भावो भवति ।

अत: वक्तुं पारयाम: यत्संस्कार: केवलं धार्मिक: सामाजिको वा आडम्बरो नास्ति। अस्य महत्त्वस्य उपादेयतायाश्च ज्ञानाभावे सामाजिकपरिबन्धनरूपेणएते करणीया: सन्तीति मत्वा स्वयमेवास्माभि: एतेषांमहत्त्वं न्यूनीकृतम्। विवाहसंस्कार एको महत्त्वपूर्ण: संस्कारोऽस्ति य: स्त्रीपुरुषयोर्मध्ये स्थायिविश्वासं तादात्म्यं च स्थापयति। विवााहसंस्कारेण बद्धौ दम्पतीसर्वदा संवदेते,विवादस्य अवकाश: तयोर्मध्ये न भवति।यतोहिसुखेषु दु:खेष वा तयो: सहभागिता वर्तते। संस्कारं विवर्ज्याद्यतनीयेऽस्माकंसमाजे विवाहादिसमारोहेषु यादृशं वैभवप्रदर्शनं क्रियते तेन न भवत्यस्माकमान्तरिकविकासस्य मार्गप्रशस्तिरति तु तद्विधे: क्रियाकलापैरस्माकं मिथ्याहङ्कार एव तुष्यति।

यत: संस्काराणांमूलभूतं लक्ष्यं मानवेषु नैतिकगुणनामाधानमेवास्ति। अतएव संस्काराणां सम्पादनेन मानवेषुनैतिकगुणानां विकासो भवति। एषु संस्कारेषु जीवनस्य सम्पूर्णा व्यवस्था सम्पादितास्ति यया मानव: समाजे सम्यग्रूपेण जीवनं यापयितुसमर्थो भवति।

अमी गर्भाधानादि-षोडशसंस्कारा: प्राय: द्विजानां सर्वत्र भवन्ति। साम्प्रतं भारते भारतीयपद्धत्यनुसारणार्यसंस्कृते: सनातने वर्त्मनि च पूर्वोक्ता: अमी संस्कारा एवं षोडशसंख्यका: बाहुल्येन प्रचलिता: सन्ति। वैदिकसंस्कारास्तु यागेष्वेव सम्प्राप्यन्ते। ब्रह्मसंस्कारा एव षोडश संस्कारपरिधौ समायान्ति। प्राय: शास्त्रीयाधारेणैव एष: निर्णय: सामान्यलोकोक्तिक्रमेण समायाति। यतो हि मनुज: प्रथमं मातृगर्भादुत्पन्नो भवति। पश्चात् संस्कारेभ्य: समुत्पन्ना भवति। 'द्वाभ्यां जन्म-संस्काराभ्यां जायते' इति द्विज:।' मातृगर्भान्निस्सरणानन्तरं जातकर्म-यज्ञोपवीतादि-संस्कारेण संस्कृत: मनुष्य एव गार्भिक-बैजिक-एनोनिर्वहणपूर्वकं गर्भजन्य-दोषादबीजयोषाच्च मुक्त:

प्रतिसंस्कारसंस्कृतः पुरुष एव द्विजो भवति। षोडशसंस्कारसंस्कृतः पुरुषः संस्कारवान् भूत्वा सम्पूर्णो भवति। संस्कारेण मानव दोषान्मुक्तः गुणैश्च युक्तः सम्पूर्णत्वमेति। अर्थात् सुसंस्कृतः समपूर्णत्वमेति।

सम्प्रति षोडशसंस्कारा एव लोकप्रियाः सन्ति। अतएव शोधपत्रेऽस्मिन् मया षोडशसंस्काराणामेव ग्रहणं कृतम्। यथा-

१. गर्भाधानम्	२. पुंसवनम्	३. सीमान्तोन्नयनम्	४. जातकर्म
५. नामाकरणम	६. निष्क्रमणम्	७. अन्नप्राशनम्	८. चूडाकर्म
९. कर्णवेधः	१०.उपनयम्	११. वेदारम्भः	१२. केशान्तः
१३.समावर्तनम्	१४.विवाहः	१५. अग्न्याधानम्	१६.अन्त्येष्टिश्च

१. गर्भाधानम्- गर्भ आधीयते येन कर्मणा तद्गर्भाधानमित्यनुगतार्थं कर्म-नामधेयम् । यस्य कर्मणः पूर्तो स्त्री पतिप्रदत्तं शुक्रं धारयति तदेव गर्भालम्भनं गर्भाधानं वा भवति। एवमेतद् स्पष्टं यदिदंकर्म न काल्पनिकमपितु धार्मिकं कृत्यमेव अन्वर्थं कर्म। अदः प्रजननकार्यं सोद्देश्यं तथा सुसंस्कृतं यथा स्यादतो गर्भाधानसंस्कारोऽपि धार्मिककर्तव्यत्वेन निर्दिष्टः

२. पुंसवनम्-गर्भाधाननिश्चयानन्तरं क्रियमाणं कर्म संस्कारो वा पुंसवनम् । पुंसवन नाम गर्भस्थशिशोः पुरुषत्वप्रदानम् । पुमान् प्रसूयते येन कर्मणा तत् पुंसवनमीरितम्। अस्मिन्नवसरे पठितासुगीतर्चासु पुमान् अथवा पुत्रोल्लेखोऽस्ति। ताः पुत्रजन्मनः अनुमादेनं कुर्वन्ति। पुत्रप्रसविका माता प्रशंसायोग्या समाजे सम्मान्या चासीत् ।

स्मृतिषु पुंसवनसंस्कारस्य अनुष्ठनाय सम्यक्-कालस्य चर्चाकृता अस्ति। मनुयाज्ञवल्क्यानुसारेण गर्भाशये गर्भगतिशीलनात् प्राक् संस्कारोऽयं कर्तव्यः।शङ्खोऽपि एतदेवानुसरति। बृहस्पत्यनुसारेण गर्भस्पन्दनशीलनान्तरमेव कृत्यमिदं कर्तव्यम् ।

जातूकर्ण्यः द्वितीये वा मासि पुंसवनं भवेदिति। पारस्करोऽपि मासे द्वितीये, तृतीये वा यदहः पुंसा नक्षत्रेण चन्द्रमाः स्यात् तत्र पुंसवनमिति। संस्कारस्य कालः गर्भात् द्वितीयमासतःअष्टममासपर्यन्तं मन्यतेस्म। अत्र बीजन्तु विभिन्नासु स्त्रीषु। वैविध्येऽस्मिन कुलाचार प्रथाः पारिवारिकीप्रथा च कारणानि भवन्ति। एषु कालेषु बृहस्पतिः एवं भेदं स्थापयति प्रथमे गर्भे संस्कारोऽयं तृतीयामास कर्तव्यः। द्वितीयप्रसवितृत्वसम्पन्नायां स्त्रियां कृत्यमिदं चतुर्थे षष्टे अष्टमे मासे वा समाधेयम् ।

३. सीमन्तोन्नयनम्– गर्भस्थस्य तृतीयः संस्कारः सीमन्तोन्नयनसस्कारः। सीमन्तः उन्नीयते यस्मिन्कर्मणि तत् सीमान्तोत्रयनमितिकर्मनाम धेयम् । अस्य नाम्नः कारणमस्ति यदास्मिन कृत्ये गर्भिण्याः स्त्रियःकेशानामुन्नयनं कर्तव्यमिति।

गृह्यसूत्रेषु स्मृतिषु ज्यौतिषग्रन्थेषु च संस्कारोऽयं कदा भवेत्? अयं प्रश्नः समुदेति। गृह्यसूत्रं प्रायः चतुर्थे, पंञ्चमे मासे वा, आदिशति। स्मृत्यनुसारेण षष्ठे अष्टमे मासे वा भवतु। ज्यौतिषाः जन्मनः पूर्व कदापि भवत्विदं स्वीकुर्वन्ति। कतिपये स्मृतिकारः विषयेऽस्मिन् अतोऽधिकाः उदारचित्ताः दृश्यन्ते। तन्मते यदि

सीमान्तोन्नयनसंकारात् पूर्वमेव सन्ततिप्रसव:स्यात्तर्हि शिशुजन्मन: अनन्तरं मातुरङ्के मञ्जूषायां वा स्थाप्यसंस्कारोऽयं क्रियते स्म।

४. जातकर्म- पुत्रे जाते सति जातस्य यत्कर्म तज्जातकर्म उच्यते। येन कर्मणा जातकस्य शिशो: गर्भवासजनितसकलदोषो निवर्तते। आयुर्मेधा च वर्द्धते, तदेव कर्म जातकर्माख्य: संस्कारविशेष:।

५. नामकरणम् – नाम्न: करणं नामकरणम् 'अणीयस्त्वाच्च संज्ञाकरणं व्यवहारार्थं लोक' इति यास्कवचनात् नामकरणस्य आवश्यकताया: प्रतीति: प्रबलतया ज्ञायते। इह लौकिकसमस्तकार्यसम्पादनार्थं नामकरणम् अतएवाह बृहस्पति:

नामाखिलस्य व्यवाहरहेतु: शुभावहं कर्मसु भाग्यहेतु:।
नाम्नैव कीर्ति समते मनुष्यस्तत: प्रशस्तं खलु नामकर्म ।।

६. निष्क्रमणम् – निष्क्रमणं नाम शिशोर्गृहात् प्रथमं बहिर्गमनम्। सुरक्षार्था प्रसूतिकागृहे कञ्चित् निर्धारितकालं शिशु गृहे संरक्ष्य नियतकाले नियतमुहूर्ते एवं बहिरानयति न तु यदा कदापि। एष एवसंस्कार: प्रसूतिगृहात्प्रथमबहिर्निर्गमनात्माको निष्क्रमणमिति कथ्यते।

७. अन्नप्राशनम्- गर्भवासमलिनभक्षणादिदोषनिरासपूर्वकेन्द्रियायुर्बलत्वस्थै-र्यब्रह्मतेज: प्राप्तिप्रयोजनकोऽयमन्नप्राशन्नसंस्कार:। अन्नस्य प्रकृष्टरूपेण मन्त्रपाठादिना इष्टकुलदेवादिपूजनपुर: सरं प्रथमत: यत् क्रियते तदन्नाप्राशनामिति पारस्करादय:। मनुस्तु षष्ठेऽथवाष्टमे वा कुलाचारानुसारं यदीष्टं तदान्नप्राशनं करणीयम् समस्तु षष्टेऽष्टमे कुलेष्ट वेति मन्यते।

८. चूडाकर्म - चूडानां केशपाशानां करणंसंस्कारो येन कर्मणा तच्चूडाकरणमिति वक्ष्यमाणसंस्कारकर्मणो नामधयेम् दृष्टफलेषु हिन्दुत्वबोधनमेव। तां विना हिन्दो: तदितरभेदकबाह्यचिन्हान्तराभावात। उपवीतं तु द्विजत्वमात्रबोधकम, शूद्रस्य तत्रानधिकारात्। परन्तु शिखया तु ब्राह्मणादयश्चत्वारोऽपिहिन्दुपदाभिधेया:परिचीचन्ते।यथोक्तंकेनचित् 'शिखावत्वं हिन्दुत्वम्'।

चूडाकरणसंस्कारकालविषये विभिन्नमतानि उपलक्ष्यन्ते। तत्र यथा –

तृतीय वर्षे चौलं यथाकुलधर्म वा।
कुलधर्मोपदिष्टे वा काले चौलं कार्यम् ।।
जन्मप्रभृति तृतीये वर्षे वा कार्यमिति।
व्यवस्थितिविकल्प: केषाञ्चिदुपनयनेन सह स्मर्यत इति।।
तृतीये पञ्चमे वाऽब्दे चौलकर्म प्रशस्यते।
प्राग्वाऽसमे सप्तमें वा सहापनयनेन वा। इति आश्वालायनगृह्य सूत्रे।

९. कर्णवेध: कर्णवेधसंस्कारस्य विषये वेदगृह्यसूत्रस्मृत्यादिग्रन्थेषु विस्तृतरूपेण कोऽपि उल्लेख:न प्राप्यते। तथापित अथर्ववेदस्यायंमन्त्र संस्कारमिमं प्रमाणयति-

लोहितेन स्वधितिना मिथुनं कर्णयोः कृधि।
अकर्ताश्श्विना लक्ष्य तदस्तु प्रजया बहु।।

अर्थात् लौहशलाकया द्वयोः कर्णयोः चिह्नं क्रियते। अश्विनीकुमार इतिनाम्ना देवः चिह्नितं स्थानं निर्दिशति। अमुना कल्याणं भवति सन्ततीनाम् । एतेन मन्त्रेण कर्णवेधसंस्कारस्य संङ्केतो लभ्यते। यद्यपि मन्त्रोऽयं ग्रन्थेषु गवां वर्णनप्रसङ्गे आयाति। तथापि एतेन मन्त्रेण दृष्टिगोचरों भवति यत् कर्णवेधसंस्कार आसीत् ।

१०. उपनयनम्- 'उप' उपसर्गपूर्वकात् 'नी' धातोः 'ल्युट्' प्रत्यये कृते सति उपनयनशब्दो निष्पद्यते यस्यार्थो भवति समीप आनयनम। उपनयनं नाम आचार्य समीपनयनाङ्गको गायत्र्युपदेशप्रधानकः कर्मविशेषः। यथा –

गृह्योक्तकर्मणा येन समीपं नीयते गुरोः।
बालो वेदाय तद्योगाद् बालस्योपनयं विदुः ।।

११. वेदारम्भः वेदारम्भसंस्कारस्योल्लेख केवलं व्यासस्मृतौ वेदारम्भ क्रियाविधौ द्वितीयचरणे प्राप्यते। गृह्यसूत्रेस्मृतिग्रन्थे च अस्य प्रत्यक्षतया नामोल्लेखःन प्राप्यते। तथापि संस्कारस्य स्पष्टसंङ्केतः सर्वत्र प्राप्यते।

१२. केशान्तः केशान्तसंस्कार एव गोदानसंस्कार इति नाम्ना ज्ञायते। संस्कारोऽयं शरीरेणव्यवहारेण च सम्बद्धोऽस्ति। अत्र शिष्यस्य क्षौरकर्म क्रियते। तदनन्तरं गोदानं भवति। शिष्यः युवावस्थायां समागतः तस्य सूचकोऽयं संस्कारः। षोडशवर्षे संस्कारोऽयं विधेयः।चौलसंस्कारवत् सर्वे विधयः क्रियतेऽस्मिन संस्कारे।

१३. समावर्तनम् – 'सम् + आ' उपसर्गपूर्वकात् 'वृतु' धातोः ल्युट प्रत्यये कृते सति 'समावर्तन' शब्द निष्पद्यते। यस्यार्थः भवति वेदाध्ययनान्तरं गुरुकुलात् स्वगृहागतमनम् इति। उक्तञ्च वीरिमित्रोदये - **तत्र समावर्तनं नाम वेदाध्ययनानन्तरगुरुकुलात् स्वगृहागमनम्। उपनयनसंस्कारः गुरुकुलप्रवेशार्थम्, समावर्तनसस्कारः गुरुकुलाात् प्रत्यावर्तनार्थम् ।**

१४. विवाहसंस्कारः'वि' उपसर्गात् वहधातोः 'घञ्' प्रत्ययकृते विवाहशब्दः सिद्धयति। वहनं वाहः, विशिष्टो वाहोविवाह इति। 'विवाह विशिष्ट वहनं ' इति शब्दकल्पद्रुमः। यद्यपि विशिष्टवहनं यस्य कस्यापि वस्तुनः सम्भवति तथापित विवाहशब्दो योगरूढत्वेन साम्प्रतं दारपरिग्रहार्थ एव प्रयुज्यते।

१५. अग्न्याधानम् (अग्निपरिग्रहः) विवाहसंस्कारे लाजाहोमादि क्रियासुयस्मिन् अग्नौ होमाहुतिः सम्पाद्यतेतस्य नाम आवसथ्य 'अग्निरिति। अस्यैव नाम विवाहग्निरपि। अस्याग्नेःआहरणमम्, पिरसमूहनम्, स्थापनं प्रभृतयश्च क्रियाःसंस्कारेऽस्मिन सम्पाद्यन्ते। विवाहग्नेराहरणं कृतो भवेदित्यत्रमतवैभिन्नयं प्राप्यते, तत्र पशुवतो वैश्यगृहात् अग्निमानीय विवाहमण्डपे उपलिप्त पवित्रभूमौ परिसमूहनं पर्युक्षणपूर्वकञ्च अग्निस्थापनं समन्त्रं विधिर्निर्दिष्टेन मार्गेणकर्तव्यम् ।

१६. अन्त्येष्टि संस्कार:- भारतीयसंस्कृत्यामन्तितमोऽयं संस्कार:। मनुष्यस्य मृत्यो:पश्चात् संस्कारेऽयं भवति। अन्त्येष्टिसंस्कारस्य वर्णनं वैदिक साहित्यादारभ्य पुराणसाहित्यपर्यन्तं विद्यते। अद्यापि व्यक्ते मृत्यो: पश्चात्त तस्य अन्त्येष्टि संस्कार:धर्मसम्प्रदायानुसारेण भवति। सूत्रकाराणां मतं विद्यतेयत् जातकर्मसंस्कारादिमाध्यमेन व्यक्ति: जीवने अभ्युदयं प्राप्नोति, अन्तयेष्टिसंस्कारद्वारा परलोकञ्च गच्छति। तद्यथा– **जातसंस्कारेणेमं लोकमभिजयतिमृतसंस्कारेणामुं लोकम्।**

षोडशसंस्काराणां महत्वं-

भारतीयचिन्तनधारा पुनर्जन्मसिद्धान्तेन प्रभावित वर्तते। पुनर्जन्मवाद-माश्रित्यैवास्माकं चिन्तनं प्रवर्तते,यथा चोक्तं श्रीमदभगवद्गीतायाम् –

न त्वेवाहं जातु नासं न त्वं ने मे जनाधिपाः।
न चैव न भविष्यामः सर्वे वयमतः परम्।।[१३]

अतएव भारतीयमनीषिणां मतमस्ति यत् नवजातशिशु: पूर्वजन्मनि कृतानां कर्मणां संस्कार गृहीत्वैव इह जन्मनि समुत्पद्यते। समुत्पन्ने शरीरेसंरचितायां बुद्धौ च। तत्तत्संस्कारं प्रभाव आत्मनि संपृक्तत्वेन अनुभूयते। अतएव पूर्वसंस्कारानाश्रित्यैव अस्मिन् जन्मनि विभिन्नेषु कार्येषु प्रवर्तते। प्रायशो दृष्टिाथमायाति यत् कश्चित् जन्म: जन्मत एवं आध्यात्मिकविचारं प्रति आकृष्टे भवति। दुष्कर्मस्वेव च अन्यस्य मनो रमे। तत्रैन स्पष्टयत प्राक्तनजन्मतः संस्कारान्गृहीत्वैव मानवोऽपरं जन्म गृह्णाति। एतेषां संस्काराणां निश्चितस्मृति: जनजातशिशौ न भवति।अतएव एतेषु संस्कारेषु संशोधनम,परिवर्धन, परिवर्तनञ्च वर्त्तमानसंस्कारै: कर्त्तु शक्यते।एभि: संस्कारै: तस्य शिशो: व्यक्तित्वस्य सार्वङ्गीणविकासो भवति। समये-समये एतदर्थया प्रक्रिया प्रचाल्यते तस्यैव 'संस्कार' इति संज्ञा। एभि: संस्कारै: जातकस्य शारीरक-मानसिक बौद्धिकाध्यात्मिकक्षमतानां क्रमिकविकासो भवति। व्यक्त: व्यक्तित्वस्य चानेन ाध्यमेन सम्पूर्णविकास: क्रियते।

अतएव वेदपुराणधर्मशास्त्रेषु संस्काराणामावश्यकता वर्णिताऽसितं यथा-सुवर्णादिपदार्थानां तापनमाध्यमेन मलनिवारणं कृत्वा तेषां परिशोधनेन सुन्दरीकरणं स्वरूपस्य प्रकाशनञ्च क्रियते तथैव मावेषु मावीयगुणानां च आधानाय विकासाय निगमागमसम्मत्तमसंस्कारा: सर्वथा अपेक्ष्यन्ते। अभिप्रायोऽस्ति यत् मनुष्या: पूर्णतः विधिपूर्वकसंस्कारसम्पन्नाः भवेयु:। वस्तुत: विधिपूर्वकसंस्कारसाधनेन दिव्यज्ञानमुत्पाद्य आत्मन: परमात्मस्वरूपे प्रतिष्ठपनमेव संस्कारस्योद्देश्मास्ति

अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतश्नुते

मानवजीवनप्राप्तेश्च सार्थकताऽपि चतुर्थसोपानसिद्धिरूपेण मुक्त सिद्धयतितत्र संस्कारै:शरीरादिशुद्धिर्भवति। शुद्धाद्धन्त:करणेन अस्माकं सन्मार्गे साधुतया प्रवृत्तिर्भवति। सज्जनप्रवृत्या यथोद्देश्यं मोक्षादिकं प्राप्यते। स च संस्कारो द्विविध: -

१. मलापनयनम् २. अतिशयाधानञ्च। तत्र अपनयनं नाम दूरीकरणम। केनचित् विशिष्टापदार्थेन तद्दर्पणस्य प्रकाशवैशिष्ट्यानयनमतिशयाधानम्। अत्र दिव्यशाक्तिर्विशेषो वा प्रकाशविशेष एव अतिशयशब्देन लभ्यते। आधानमुपस्थापनम् अर्थात् संस्कारविशेषस्य आधानमतिशयाधानम् । एवमेव भावनाप्रतियत्नगुणाधानादि-शब्दाः संस्कारवाचकाः एव सन्ति। यथोक्तं मनुस्मृतौ द्विजस्य जातकर्मणा उपयनादिसंस्कारैः बीजगर्भादिजन्यदोषाणां पापानां वा अपमार्जनं भवति।[१४]

मनोरिदमपि कथनमस्ति यत् द्विजानां गर्भाधानादिशारीरिकसंस्काराःवैदिकमन्त्रैः कार्याः। सस्काराः इहलोके परलोके च पवित्रयन्ति।[१५]

याज्ञवल्क्योऽपित इममेव विचारं प्रतिपादयति। यथ वा अङ्गिरस्स्मृतौ-

शोभनाकृतिचित्रनिर्माणार्थतत्र वैशिष्टयातिदेशार्थं कर्म-कुशैलैः यथा आवश्यकतामनुभूय तत् – तद् वर्णैः रज्जनं क्रियते तथैव मानवानां चरित्रनिर्माणार्थ संस्काराणां सविधि प्रतिपादननमावश्यकम्।[१६]

संस्कारः मानवादारभ्य व्यक्तिं प्रति तथा परिवारादिविश्वं यावत् परिवारस्य समाजस्य राष्ट्रस्य च हितसाधनं करोति। संस्कारेण मानवानां मनसि आस्तिकतायाः भावना उन्मीलिता प्रतिष्ठा च भवति। मानवः सन्ध्यावन्दनजपहवनादि-नित्यैमित्तिकर्माणि यथाविधि सम्पादयन् स्वजीवनं सात्त्विकं सुखमयञ्च करोति।

महर्षिमनोरनुसारेण स्वाध्याव्रतहोमदेवर्षितर्पणयज्ञसन्तानोत्पत्तीज्याभिः पञ्च महायज्ञान्मनुष्ठानैश्चेद शरीरं ब्रह्मप्रयुक्तंक्रियतेऽर्थात्, ब्रह्मप्राप्त्यर्थं योग्यतां प्राप्तनोति।[१७]

मानवानां जीवने आचारग्रहणार्थं त्स्योत्तरोत्तरमभिवृद्धर्थं जन्मतः मृत्युपर्यन्तं षोडशसंकाराःक्रमिकविकासार्थमेव विहिताः।[१८]

आधानमपि समर्थस्त्रीपुरुषयोः ऋतुकालिकयोगसत्त्वेन सल्लग्नमुहूर्त्तदिव-सग्रहर्क्षयोगैश्चाधनाज्जन्मपर्यन्तमेव विभिन्नसंस्काराः मन्त्रतन्त्रयन्त्रौषध्यादिभिः वैदिक मन्त्रयोगैः कर्मकाण्डैश्च सम्पाद्यन्ते।

गर्भाधाने सत्त्वे मासानां क्रमेण जीवस्य द्वितीये मासे प्रथमः, षष्ठे मासे द्वितीयः संस्कारः क्रियते। वस्तुतः रहस्यमिदं वैज्ञानिकम्। मातुः आहारविहारेण गर्भस्थः शिशुः स्वजीवनत्त्वं गृह्णाति। न केवलं भोजनादिकमपि तु मातुः मानसिकी स्थितिरपि महत्वपूर्णा भवति। महाभारते मातुः श्रवणक्रियाप्रसंङ्गे सुभ्रदार्जुनयोः कथा प्रसिञ्च वर्तते। अर्जुनः एकदा स्वत्नीं सुभद्रां चक्रव्यूहनीतिमश्रावयत्। तत्रत कथा समाप्तेः पूर्वमेव निद्रापन्ना सुभद्रा शेषाशं न श्रुतवती, तेनैव अज्ञातेन शोषांशेन अभिमन्युः चक्रव्यूहे बद्धे मृतश्च। अनेन ज्ञायते यत् मातुः सर्वा क्रियाः संस्काररूपाः बालकं प्रभावयन्ति।

ऋग्वेदे उक्तं यत् माता-पिता च द्वावपि सदैव सावधानौ भवेतां येन सन्तति: अन्यथाचारयुक्तो न भवेत् ।[१९]

प्रसूत: प्रथमत: शूद्रो भवति, तत: उपनयनादिसंस्कारेण संस्कृत: वर्णाश्रमविधानं मानवीयसर्वाङ्गीणविकासञ्च द्विजो वेदाध्ययनेन विप्रत्वं प्राप्य विद्योपासनया ब्रह्मसाक्षात्कारेण च ब्राह्मणो भवति। यथा-

जन्मना जायते शूद्रः संस्कारात् द्विज उच्यते।
वेदाभ्यासी भवेद्विप्रः ब्रह्म जानाति ब्राह्मणः।।

तत्राद्य भारते समुत्पन्नो मानव एवात्मानं गर्हयतीति किमत: परमाश्चर्यं स्यात्। तदेतद् वेद-वैदिकविद्वेषस्यैव फलामिति वयं प्रतीम:। संप्रति वैदेशिकविज्ञानचमत्कारचमत्कृता विपश्चितोऽपि वेदं, वैदिकमार्षवचनं तत्रत्यां प्रक्रियांच, तर्कवादे भृशं व्यर्थंदूषयन्ति। एतेषां सम्प्रदायानामेकाङ्गत्वं तु वर्त्तत एव। आहारऋविहारादिष्वपि व्यभिचारस्यैव प्राधान्यम। भारतीयशिक्षाहीना: पाश्चात्यानुचरा: वा शिक्षाहीना अभावग्रस्ताश्च मृगतृष्णायां मग्ना: सन्त इहलोकेन साकं परलोकमपि नाशयन्ति। अस्य अयमर्थ: यत ऐते सम्प्रदाया: व्यर्था: सन्ति। परमिदं तु सत्यमेवयत् सर्वे प्राकृतिकनियमा: सनासत्वमवधरयन्ति। स्थित्यन्तरमपि न भवति सद्य:। अतएव सर्वाभिप्रायिका: राष्ट्रियनियोजने संस्कारा: तेषां वैज्ञानिकक्रम: मानवीयसर्वाङ्गीणविकासक्रम: नैतिकताया: विधानं सर्वाभीष्टप्रापकत्वेन राष्ट्रियमानकत्वेन जीवनस्य प्रत्येकक्षेत्रे स्वानुरोधेन शिक्षणेऽन्वेषणे च संघीयोद्यमत्वेन भवेत्। निगमागमसम्मतेभ्य वैदिकसिद्धान्तेभ्य: वेदविहिताचरणेभ्यो बहिर्गता: वेद्वेषरत: जाता: अपर मतान्यनुसरन्तोऽपि न जीवनस्य वास्तविकं सुखमीहोपरं वा प्राप्नुवन्ति। यावतांशेनास्मदाष्ट्रवचनोकतानामहिंसासत्यास्तेयादीनां यमादीनां तत्तन्मतेषु स्थितरस्ति तावानेवांशो मानवं मानवतां च सत्यापयति, न तु सर्वाशतयेति वास्तविकी स्थिति:।

अस्माकं भारतीयैर्महर्षिभि: शारीरिकीं मानसिकीमाध्यत्मिकीं सामाजिकीं च शुद्धिमभिलक्ष्य सस्काराणामन्येषां च कर्मणां निर्धरणं कृतं वद्यिते। अत एवास्माकं स्मार्तो बाड्.मय: सुमहाननितरसाधारणश्च लभ्यत इति महते गौरवायास्ति

सन्दर्भ सूची –

१. छा.उ. ४.१६. १-२
२. जै.सू. – ६.१.३५
३. जै.सू. शबरभाष्यम- ३.१.३
४. प्रोक्षणादिजन्यसंस्कारो याज्ञाङ्गपुरोडाशेष्विति द्रव्यधर्म:वाचस्पत्सबृहदभिधानम् -५ पृ० ५१८८
५. स्नानाचमानादिजन्या: संस्कारा देहे उत्पष्माना अपि तदभिमानिजीवे कल्प्यन्ते। वाचस्पत्यबृहदभिधानम् – ५
६. निसर्गसंस्कारविनीत इत्यसौ नृपेण चक्रे युवराजशब्दभाव। रघुवंशम-३.३५

७. संस्कारवत्येव गिरामनीषी तथासपूतश्च विभूतिषतश्च। कुमारसम्भवम्-१.२८.
८. प्रयुक्तसंस्कार इवाधिकं बभै। रघुवंशम् ३.१८
९. स्वभावसुन्दरं वस्तु न संस्कारमपेक्षतो। शाकुन्तलम् ७७.३३
१०. संस्कारजन्यं ज्ञान स्मृतिः- तर्कसंग्रहः
११. कार्यःशरीरसंस्कारः पावनः प्रेत्य चेह च। म.स्मृ- २.२६
१२. फलानुमेयाः प्रारम्भाः प्राक्तना इव। रघुवंशम-१.२०
१३. गीता- २.१२
१४. गार्भैर्होमैर्जातकर्मचौडमोञ्जीनिबन्धनैः
बैजिकं गार्भिकं चौनो द्विजानामपमृज्यते।। मम. स्मृ- २.२७
१५. वैदिकैः कर्मभिःपुण्यैर्निषेकादिर्द्विजन्मानाम्।
कार्य शरीरसंस्कारः पावनः पेत्य चेह च।।म.स्मृ.-२.२६
१६. चित्रकर्म यथानेकै रागैरून्मील्यते शनैः
तद्वत्स्यात्संस्कारैर्मन्त्रपूर्वकैः अं.स्मृ-४.१०
१७. स्वाध्यायेन ब्रतैर्होमैस्त्रैविद्येनेज्यय सुतैः।
महायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीयं क्रियते तनुः ।। म.स्मृ. २.२८
१८. निषेकाद्या श्मशनान्तास्तेषं वै मन्त्रतः कियाः या.स्मृ.
१९. यन्ते माता प्रममद्याात् यच्चचारावनुव्रतम् ।
तन्में रेतःपिता वृङ्क्तान्मा भुरण्योपपद्याताम्। ऋ.वे.

***

ज्ञानमीमांसा के आलोक में अन्य मन की समस्या

फूलहसन अंसारी *

अन्य मन के ज्ञान से संबंधित समस्या एवं समाधान के पूर्व इस सन्दर्भ में उठने वाले मुख्य प्रश्न पर ध्यान देना आवश्यक होगा कि मन क्या है? पाश्चात्य विचार धारा में मन तथा आत्मा के बीच कोई स्पष्ट भेद नहीं किया गया है। जो लोग मन को एक द्रव्य के रूप में स्वीकार करते हैं उसे ही आत्मा के रूप में मानते हैं जो शरीर के परिवर्तनों के साथ परिवर्तित नहीं होता, भले उस पर आधारित मानसिक क्रियाएं परिवर्तित होती रहती हैं। इस अर्थ में मन को एक सूक्ष्म और अमूर्त द्रव्य के रूप लिया जाता है, जिसके किसी रूप या आकर का कभी कोई ज्ञान हमें नहीं होता और ऐसे किसी मन का भान हमें तरह तरह की मानसिक क्रियाओं के आधार पर ही होता है। इसलिए इन मानसिक क्रियाओं अनुभूतियों, भावनाओं, वैचारिक प्रक्रियाओं, आदि को मन के संकेत के रूप में स्वीकार किया जा सकता है। मन की कोई उचित व्याख्या तो नहीं दिया जा सकता है, परन्तु यहां इस प्रश्न के आलोक में कहा सकता है कि मन से तात्पर्य व्यक्ति के मानसिक अवस्थाओं से संबंधित क्रियाओं से है जो व्यक्ति की सुख, दुःख, उदासी, निराशा, संवेदना, विचार, आदि आंतरिक अनुभूतियों को प्रदर्शित करता है।

अन्य मन की समस्या ज्ञानमीमांसीय समस्या है। इसमें यह प्रमाणित करने का प्रयास किया जाता है कि किस विश्वास के आधार पर हम अन्य के मन को स्वीकार करते हैं? यह समस्या संशयवादियों द्वारा उत्पन्न की गई समस्या है। यह समस्या अन्य व्यक्तयों के मानसिक अवस्थाओं एवं आंतरिक अनुभूतियों के ज्ञान से संबंधित समस्या है। यह समस्या इस प्रकार है– मुझे अपनी मानसिक अवस्थाओं का ज्ञान साक्षात् एवं स्पष्ट रूप से होता है, परन्तु मेरे समान जो अन्य व्यक्ति हैं उनमें भी मन है वे भी मेरी तरह सुख एवं दुःख का अनुभव करते हैं। यह कहने का आधार क्या है? अर्थात् वह मापदंड क्या है जिसके आधार पर अन्य के मन को स्वीकार किया जाता है? यह समस्या कोई सैद्धांतिक नहीं है जिसका कोई बौद्धिक समाधान दिया जा सके। यह एक व्यवहारिक समस्या है, क्योंकि जितनी भी प्रकार की अनुभूतियां होती हैं वे नितांत ही व्यक्तिगत अनुभूतियां होती हैं। यह सत्य है कि अन्य व्यक्तियों में भी वैसी ही शारीरिक क्रियाएं होती हैं जैसे मेरे अंदर, परन्तु क्या दावा है कि वह कोई भौतिक पदार्थ या सत्ता से भिन्न कोई चेतन सत्ता हो, शायद वह कोई रोबोट (Robot) हो। जिनमें मेरी जैसी क्रियाएं करने का प्रोग्राम किया गया हो।

---

* शोध छात्र, दर्शन एवं धर्म विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

इस समस्या के समाधान के लिए ज्ञानमीमांसा में अभी तक तीन संभावित सिद्धांत प्रस्तुत किए गए हैं–

1. सादृशयानुमान का सिद्धांत
2. व्यवहारवादी सिद्धांत
3. भाषीय सिद्धांत

1. सादृश्यानुमान का सिद्धांत (Analogy Theory)—

इस समाधान की अवधारणा का आधार जॉन स्टुअर्ट मिल (John Stuart Mill) की प्रायोगिक अन्वेषण की विधियाँ (Method of Experimental Inquiry) है। इसी के आधार पर कहा जा सकता है कि हमारे मानसिक अवस्थाओं का कारण शारीरिक व्यवहार होता है तथा शारीरिक व्यवहार का आधार मानसिक होता है। अर्थात् ये दोनों अवस्थाएं एक दूसरे के सापेक्ष होती हैं। इसी सापेक्षता के कारण हम अपनी शारीरिक अवस्था के आधार पर अन्य के मानसिक अवस्था का अनुमान करते हैं। इसे इस प्रकार से व्यक्त किया जा सकता है कि मेरी शारीरिक अवस्थाओं के साथ मेरी मानसिक अवस्था भी संलग्न रहती है। तो जो भी मेरे समान अन्य व्यक्ति हैं उनमें भी कोई न कोई मानसिक अवस्था अवश्य होगी। इस प्रकार अपने सादृश्य अन्य व्यक्तियों के शारीरिक अवस्थाओं के आधार पर अन्य के मानसिक अवस्था का अनुमान किया जाता है। जैसे यदि "अ" के साथ "ब" है तो जो भी "अ" के समान होगा उसके साथ "ब" भी होगा। इस प्रकार यह सत्य है कि दूसरों के मानसिक अवस्थाओं का ज्ञान हमें नहीं होता है, किन्तु हम उसकी शारीरिक क्रियाओं के आधार पर उसकी मानसिक क्रियाओं का अनुमान करते हैं।

सादृश्यानुमान एक प्रकार का अनुमान है। जिसके अंतर्गत अपने कुछ विशेष प्रकार के शारीरिक हाव–भाव को देखकर अन्य के विषय में भी उसी प्रकार का अनुमान करते हैं, जिस प्रकार से अपने विषय में। इसे एक उदाहरण के द्वारा आसानी से समझा जा सकता है, जब–जब मेरे दांत में असहाय दर्द होता है, तब–तब एक विशेष प्रकार की चिल्लाहट, छटपटाहट, नाक, भौंह, ललाट इत्यादि का सिकोड़ना, चेहरे का उदास हो जाना आदि व्यवहार दांत के दर्द के साथ–साथ पाए जाते हैं। जब कभी मैं अन्य लोगों को विशेष परिस्थितियों में इसी प्रकार के विशेष–विशेष शारीरिक लक्षणों को व्यक्त होते हुए देखता हूँ तो मैं ऐसा अनुमान करता हूँ कि दूसरे लोग भी इसी प्रकार के (मेरे जैसे) दर्द अनुभव करते होंगे।

सादृश्यानुमान में विसंगतियां—

1. ए.जे.एयर (A.J.Ayer) के अनुसार मेरी और अन्य लोगों की शारीरक्रियात्मक (Physiological) समानताएं गौण महत्व रखती है।[1] अर्थात् मेरा और अन्य लोगों का अभिन्न होना अथवा हू–ब–हू एक दूसरे के सदृश होना अन्य व्यक्तियों के अस्तित्व में विश्वास करने के लिए अनिवार्य नहीं है।

2. सादृश्यानुमान को सत्य मान भी लिया जाए, तो भी इस पर आधारित निष्कर्ष पूर्ण सत्य न होकर संभावित सत्य ही होंगे, क्योंकि साश्यानुमान एक प्रकार का अनुमान है।

3. सादृश्यानुमान पर आधारित युक्तियों में कई समानताओं के आधार पर कोई एक निष्कर्ष निगमित किया जाता है, परन्तु यहां पर केवल एक ही समानता है और वह यह है कि मेरी शारीरिक क्रिया के साथ मेरी मानसिक अवस्थाएं भी संलग्न रहती हैं।

4. सादृश्यानुमान में सबसे गम्भीर समस्या यह है कि इसे आगमनात्मक अनुमान के आधार पर सिद्ध किया जाता है जो स्वयं में एक समस्या है।

5. यदि मान भी लिया जाए कि जिस प्रकार हम किसी व्यक्ति के शारीरिक व्यवहार को देखकर उसके मानसिक अवस्था का अनुमान करते हैं। ठीक उसी प्रकार दूसरे भी मेरे शारीरिक व्यवहार के आधार पर मेरी मानसिक अवस्था का अनुमान करते हैं। और इनका यह अनुमान सत्य भी होता है, तो भी इसमें एक दोष उत्पन्न होगा। जिसे सिद्ध साधन का दोष कहते हैं। अर्थात् जिसे सिद्ध करना है उसे साधन स्वीकार कर लिया गया है।

2. व्यवहारवादी सिद्धांत (The Behaviourist Theory)—

इस समाधान के अनुसार हमारी मानसिक स्थिति हमारी शारीरिक व्यवहार पर निर्भर करती है। जब किसी व्यक्ति को दर्द का अनुभव होता है तो वह एक विशेष प्रकार का शारीरिक व्यवहार करता है, जैसे चिल्लाना, रोना आदि। इसी के संदर्भ में जान.एल.पोलक (J.L.Pollock) कहते हैं कि मानसिक अवस्थाओं से सम्बन्धित कथन और भौतिक अवस्थाओं से सम्बन्धित कथन तर्कतः एक दूसरे के समतुल्य होते हैं। इस प्रकार मानसिक कथनों का विश्लेषण भौतिक कथनों में किया जा सकता है।[2]

इस सिद्धांत का मुख्य रूप से समर्थन जी.राइल (G.Ryle) करते हैं। राइल के अनुसार रेने डेकार्ट (Rene Descart) मन एवं शरीर के द्वैत को स्वीकार करता है। जिसके अनुसार मन में विचार होता है, विस्तार नहीं। पुनः शरीर में विस्तार होता है विचार नहीं। इस प्रकार प्रथम दृष्टि से डेकार्ट मन और शरीर को परस्पर विरोधी कहता है तथा द्वितीय दृष्टि से वह मन को शरीर में स्थिर कर देता है अपने क्रिया–प्रतिक्रियावाद (Interactionism) के आधार पर। जैसे शरीर कोई यंत्र हो जो मन के द्वारा संचालित हो रहा हो। इसी को Ryle हास्यजनक भाषा में "मशीन में प्रेत का पूर्वाग्रह" (Dogma of the Ghost in that Machine) करते हैं। इस प्रकार के द्वैत को वह कोटि दोष भी कहते हैं।[3]

राइल स्पष्ट रूप से द्वैतवाद का खण्डन करते हैं। वे सभी प्रकार के मानसिक व्यापारों का तार्किक विश्लेषण कर सिद्ध करते हैं कि ये सभी तात्विक रुप से शारीरिक व्यवहार ही है और वास्तविक सत्ता तो शरीर है, मानसिक व्यापार तो शरीर के विभिन्न प्रकार के व्यवहार है। किसी भी

शारीरिक व्यापार को शरीर से भिन्न किसी अन्य प्रकार का रूप देना और फिर उसे व्यक्ति सीमित कर देना कोटि दोष है।

राइल कहते हैं कि "जब हम कहते हैं कि लोग अपने मानसिक व्यापारों की चर्चा करते हैं, जिनकी परिणति बाह्य क्रियाओं तथा कथनों में होती है, तब हम वस्तुतः बाह्य क्रियाओं एवं कथनों के बारे में ही चर्चा करते।"[4]

इसी के आधार पर राइल मन की सत्ता का खंडन करते हैं। उनके अनुसार जो कुछ है वह केवल शारीरिक व्यवहार है, और इसी शारीरिक व्यवहार को हम मन कहते हैं। जैसे क्रोध का अर्थ है एक विशेष प्रकार का शारीरिक व्यवहार करना। इस प्रकार शारीरिक व्यवहार के पीछे कुछ भी छिपा नहीं होता है। अतः शरीर से पृथक मन की सत्ता को मानना सुसंगत नहीं है, क्योंकि राइल विभिन्न प्रकार के शारीरिक व्यवहार को ही मानसिक अवस्था कहते हैं, इसलिए राइलके समाधान को व्यवहारवादी समाधान कहते हैं।

व्यवहारवादी समाधान में विसंगतियां—

1. राइल स्वयं यह सिद्ध नहीं करते हैं कि कौन सा भ्रामक प्रत्यय मन पर लागू किया गया है। वे यह भी स्पष्ट नहीं करते हैं कि उपयुक्त प्रत्यय को मन पर लागू किया जाए।[5] अब हम राइल के विचारों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि मन की सत्ता शरीर के किसी एक भाग में स्थित नहीं है, बल्कि सम्पूर्ण शरीर ही मन का वास है, परन्तु यह एक प्रकार से हास्यपरक विचार होगा।

2. इस सिद्धान्त से ऐसा प्रतीत होता है कि सादृश्यानुमान युक्ति को सिद्ध करने के लिए इस युक्ति का निर्माण किया गया है,क्योंकि बाह्य व्यवहार और मानसिक अवस्था में अनिवार्य संबंध न होने के कारण सादृश्यानुमान पर आधारित युक्ति संशयवाद के आक्षेपों से मुक्त नहीं हो सकती थी।

3. यदि व्यवहार ही मानसिक अवस्था है तो क्या कोई व्यक्ति अपनी मानसिक अवस्था को जानने के लिए स्वयं के व्यवहार का ही निरीक्षण करेगा?

4. यह सिद्धान्त मन और शरीर के मिथ्या तादात्म्य पर आधारित है। यदि यह मान लिया जाए कि जो कुछ भी है वह केवल शारीरिक व्यवहार है, तो हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि कोई भी व्यक्ति अपने व्यवहार को आसानी से छिपा भी सकता है, जैसे अभिनेता।

भाषीय सिद्धान्त (The Linguistics Theory)—

भाषीय सिद्धान्त के द्वारा इस समस्या का समाधान करने का प्रमुख आधार सम्प्रत्यय है। ज्ञान सम्प्रत्ययात्मक होता है और कोई भी सम्प्रत्यय शब्दों के अभाव में अभिव्यक्त नहीं हो सकता है।[6] अतः कोई ज्ञान चिंतन का विषय तभी हो सकता है,जब वह प्रतिज्ञाप्तियों के माध्यम से अभिव्यक्त हो। जिस प्रकार विचारशीलता को मनुष्य का व्यावर्तक लक्षण (differentium) कहा गया है उसी प्रकार मनुष्यों के द्वारा प्रयुक्त भाषा भी उसे अन्य प्राणियों

से भिन्न करती है, इसीलिए ज्ञानमीमांसा के अन्तर्गत पशुओं के ज्ञान, नैतिक ज्ञान, धार्मिक ज्ञान, एवं रहस्यात्मक ज्ञान के ऊपर विचार नहीं किया जाता है। संक्षेप में, समस्त मानव ज्ञान सम्प्रत्ययात्मक है, इसे शब्दों के द्वारा अनुस्यूत और भाषा के द्वारा प्रकाशित किया जाता है।

"न सोडस्ती प्रत्ययोलोके यः शब्दानुगमात ऋते।
अनुविद्धमिव ज्ञानं सर्वं शब्देन भासते।।[7]

रुडोल्फ कार्नेप जैसे दार्शनिकों के अनुसार दार्शनिक समस्याएं साधारण भाषा के द्वारा नहीं सुलझायी जा सकती है, दर्शन को एक पृथक भाषा की आश्यकता है। विटगेन्श्टाइन के अनुसार ज्ञानमीमांसा मनोविज्ञान का दर्शनशास्त्र है। अनेक दार्शनिक समस्याएँ भाषा भ्रम है। पूर्वर्ती विटगेन्श्टाइन के अनुसार "समस्त दर्शन भाषा की आलोचना (Critique of Language) है"[8], किन्तु अपनी परवर्ती रचनाओं में उसने भी ज्ञानमीमांसीय समस्या का किसी न किसी रूप में निरुपण किया है।[9]

यह सत्य है कि विट्गेन्श्टाइन अन्य मन के ज्ञान से सम्बन्धित किसी समस्या का कोई समाधान प्रस्तुत नहीं करते हैं, परन्तु मेलकोम (N. Malcolm) ने विट्गेन्श्टाइन की पुस्तक Philosophical Investigation में इस समस्या के समाधान का संकेत देखते हैं। मेलकोम इन्हीं संकेतों के आधार पर एक मत को प्रस्तुत करते हैं जिसमें वे अन्य के मन के ज्ञान के लिए "पर्याप्त शर्तों" को प्रस्तुत करने की चेष्टा करते हैं।

विट्गेन्श्टाइन के अनुसार यह समस्या इसलिए उत्पन्न होती है, क्योंकि यह मान लिया जाता है कि हमें जब कोई संवेदना होती है, तो वह नितांत ही व्यक्तिगत होती है और उसे संवेदना को कोई दूसरा व्यक्ति समझ नहीं सकता है। जिसका तार्किक परिणाम यह होता है कि इस संवेदना के लिए प्रयुक्त भाषा व्यक्तिगत भाषा होती है, परन्तु विट्गेन्श्टाइन के अनुसार व्यक्तिगत भाषा की कोई सम्भावना नहीं है। भाषा के प्रयोग के कुछ नियम एवं परिस्थितियां होती है। ये नियम एवं परिस्थितियां व्यक्ति का व्यवहार है, जैसे "दर्द" का अर्थ है एक विशेष प्रकार का व्यवहार करना। उल्लेखनीय है कि राइल भी व्यवहार की बात करते हैं, परन्तु वे व्यवहार को ही मानसिक अवस्था कहते हैं। विट्गेन्श्टाइन व्यवहार को मानसिक अवस्था नहीं कहते हैं, उनके अनुसार व्यवहार मानसिक अवस्था का उपयुक्त मापदण्ड है और इसी मापदण्ड से भाषा सीखी जाती है।

उदाहरण के लिए, माना कि किसी बच्चे के पैर में चोट लगी है, उसे दर्द हो रहा है और वह रोता है। उसकी मां कहती है कि बेटा तुम्हें दर्द हो रहा है मैं वहां दवा लगा देती हूँ और तुम्हरा दर्द कम हो जाएगा। इस प्रकार वह बच्चा दर्द शब्द के अर्थ को समझ जाता है कि इसका प्रयोग किस प्रकार के व्यवहार के लिए किया जा रहा है। इस प्रकार भाषा के प्रयोग के नियम एवं परिस्थितियाँ होती है जिनके माध्यम से भाषा सीखी जाती है और वह व्यवहार है।

उपर्युक्त सिद्धांत को पूर्ण रूप से समझने के लिए विट्गेन्श्टाइन द्वारा प्रस्तुत दो प्रकार के कथनों पर विचार करना आवश्यक है। प्रथम कथन यानी उत्तम पुरुष कथन (First Person Statement) तथा द्वितीय कथन यानी अन्य पुरुष कथन (Third Person Statement)। विट्गेन्सटाइन के अनुसार उत्तम पुरुष कथन, जैसे "मैं पीड़ा में हूँ"– इसे वास्तविक कथन नहीं कहा जा सकता है, क्योंकि अपनी संवेदनाओं के विषय में "जानना" और "निश्चित होना" पदों का प्रयोग तर्कसंगत नहीं है। मेरी "अपनी पीड़ा" एक नितांत व्यक्तिगत अनुभूति है इसके लिए किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि मैं अपनी पीड़ा को जानता हूँ। अतः जब मैं कहता हूँ कि "मैं पीड़ा में हूँ" तो कम से कम अपनी दृष्टि में मेरी प्रामाणिकता सिद्ध होती है।[10] उनके अनुसार दर्द की अनुभूति भले ही व्यक्तिगत हो, किन्तु ''दर्द" शब्द का अर्थ व्यक्तिगत भाषा से संबंधित नहीं है। द्वितीय कथन यानी अन्य पुरुष कथन, जैसे "वह पीड़ा में है"– इसे वह वास्तविक कथन कहते हैं, क्योंकि यह सत्य या असत्य होता है। स्वयं के संबंध में निरीक्षण नहीं किया जा सकता है कि "मैं पीड़ा में हूँ", परन्तु अन्य व्यक्तियों के संबंध में निरीक्षण किया जा सकता है और इसका आधार व्यवहार है। अतः अन्य व्यक्तियों के दर्द की आंतरिक अनुभूति का निकष उनका दर्द से संबंधित बाह्य व्यवहार है।

यहां प्रश्न उठ खड़ा होता है कि यदि व्यवहार को ही अन्य मनस के ज्ञान के लिए पर्याप्त माना जाता है, तो व्यवहारवादियों द्वारा दिए गए समाधान के खण्डन का क्या औचित्य है? इसके उत्तर में कहा जा सकता है कि व्यवहारवादी दार्शनिक "दर्द की आंतरिक अनुभूत" और "दर्द का व्यवहार" दोनों को तर्कतः अभिन्न मान लेते हैं। जिसका परिणाम यह होता है कि वास्तविक व्यवहार एवं नाटक (भ्रम) के मध्य भेद नहीं हो पाता है। इसी के समाधान के लिए विट्गेन्सटाइन आंतरिक अवस्थाओं और अनुभूतियों के लिए बाह्य निकषों की आवश्यकता पर बल देते हैं।[11]

उपर्युक्त विवरण को एक उदाहरण के माध्यम समझा सकता है। मानाकि दो व्यक्ति हैं "अ" और "ब"। "अ" एक सड़क को क्रॉस कर रहा है तथा "ब" उसी से अपनी कार से गुजर रहा है तभी "ब" अपना संतुलन खो देता है, और "अ" से टकरा जाता है। अर्थात् दुघर्टना हो जाती है। इस के पश्चात् आस – पास के लोग वहां पहुंचते हैं। अब "ब" से प्रश्न पूछते हैं, आप कैसे हैं? और इसी के साथ उसके व्यवहार का अवलोकन करते हैं। वह पाते हैं कि "ब" दर्द के अनुरूप सारे व्यवहार कर रहा है पर, उसके न तो बाह्य अंगों पर चोट है और कोई आंतरिक गड़बड़ी मालूम होती है, उसके चेहरे की भाव भंगिमा से ऐसा लग रहा है कि वह अन्य लोगों को धोखा देने के लिए ऐसा कर रहा है तो हम नहीं कहेंगे कि उसे दर्द हो रहा है, यदि उन्हीं व्यवहारों के साथ "अ" के शरीर पर चोट के निशान हैं तथा जाँच से पता चलता है कि उसे कोई शारीरिक गड़बड़ी है तो हम कहेंगे कि उसे वास्तव में दर्द हो रहा है। इस प्रकार दूसरों की मनः स्थिति या

मानसिक क्रियाओं के हमारे ज्ञान का आधार उसके द्वारा अभिव्यक्त मात्र कुछ व्यवहार ही नहीं हो सकते, बल्कि उस सम्पूर्ण वातावरण या परिस्थिति समूह का भी इसमें योगदान होता है।[12] जिसमें वह व्यवहार किया जा रहा है।

निष्कर्ष (**Conclusion**)

आज के इस वैज्ञानिक युग में जहां विज्ञान इतना अत्याधुनिक हो चुका है कि वह मंगल ग्रह पर जीवन की कल्पना करने में समर्थ है। उसी युग में अन्य मन की समस्या पर विचार करना एक प्रकार का व्यर्थ सा प्रतीत होता है, क्योंकि मनुष्य के पास ऐसे अनेक यन्त्र हैं जिनकी सहायता से इस समस्या का समाधान कम से कम समय में हो सकता है जैसे नार्को टेस्ट। यहां एक समस्या उत्पन्न होती है कि क्या यंत्रों पर संशय नहीं किया जा सकता है? क्योंकि यंत्र भी खराब हो सकते हैं। यह तो एक छोटी सी समस्या है। इस संदर्भ में मैं दो प्रकार की कल्पना करता हूँ– प्रथम कल्पना के अनुसार मुझे किसी अपरिचित व्यक्ति की आंतरिक अनुभूति की परीक्षा करना है जिसे चोट लगी है। इसमें मुझे यह देखना है कि वह इस अवस्था में किस प्रकार की क्रिया या विचार करता है। द्वितीय कल्पना के अनुसार मैं जिस व्यक्ति की परीक्षा यन्त्र द्वारा करने जा रहा हूँ वह व्यक्ति ना होकर स्वयं एक यंत्र (रोबोट) है जो अपने प्रोग्राम के अनुसार उस यंत्र को भी प्रभावित करता है जिसकी सहायता से उसका परीक्षण होने वाला था। अब वह उस परीक्षण में सफल हो जाता है। यह मात्र एक कल्पना नहीं है, बल्कि सत्य के समीप भी है, क्योंकि इसी युग में विज्ञान ने artificial intelligence प्रोग्राम का आविष्कार किया है। फिर क्या अभी भी यह प्रश्न व्यर्थ ही है? हा यह सत्य है कि यह विज्ञान में व्यर्थ है, परन्तु दर्शनशास्त्र में नही।

सन्दर्भ :

1. A. J. Ayer (1956) : The Problem of Knowledge, Penguin Books, p. 221-22.
2. J. L. Pollock (1974) : Knowledge and Justification, Princeton University Press New Jersey, p. 254-55-
3. G. Ryle (1949) : The Concept of Mind, Hutchinson's University Library London, p. 16
4. G.Ryle (1949) : The Concept of Mind, Hutchinson's University Library London, p. 25.
5. G.J. Warnock (1957) : English Philosophy since 1900, Oxford University Press, p. 96.
6. हरिशंकर उपाध्याय (1999), पाश्चात्य दर्शन का उद्भव और विकास, दर्शन अनुशीलन केंद्र इलाहाबाद, पृ. 18.
7. वाक्यपदीय 1/23.

8. अशोक बोहरा (2016), लुडविग विट्गेन्श्टाइन : ट्रैक्टेटस लॉजिको–फिलोसॉफिकस, भारतीय ज्ञानपीठ, पृ. 54, (अनु. 4.0031).
9. अशोक बोहरा (1996), लुडविग विट्गेन्श्टाइन : फिलोसॉफिकल इन्वेस्टिगेशंस, भारतीय दार्शनिक अनुसंधान परिषद्, पृ. 185–86, (अनु. 574, 575, 577, 578)
10. अशोक बोहरा (1996), लुडविग विट्गेन्श्टाइन : फिलोसॉफिकल इन्वेस्टिगेशंस, भारतीय दार्शनिक अनुसंधान परिषद्, पृ. 121, (अनु. 289)।
11. अशोक बोहरा (1996), लुडविग विट्गेन्श्टाइन : फिलोसॉफिकल इन्वेस्टिगेशंस, भारतीय दार्शनिक अनुसंधान परिषद्, पृ. 186, (अनु. 580)
12. George Pitcher (1964) : Philosophy of Wittgenstein, Prentice, p. 305-307.

***

डॉ. भीमराव अम्बेडकर : अछूत आन्दोलन में महत्वपूर्ण योगदान

ताहीद आफताब *

जाति–पाति, छूत–अछूत, ऊँच–नीच आदि विभिन्न सामाजिक कुरीतियों के दौर में एक ऐसी असाधारण शख्सियत का अवतरण इस धरती पर हुआ, जिसने समाज में एक नई क्रांतिकारी चेतना व सोच का सूत्रपात किया। वह महान शख्सियत थी, डा. भीमराव रामजी अम्बेडकर। उन्नीसवीं सदी में देश में छूत–अछूत, जाति–पाति, धर्म–मजहब, ऊँच–नीच आदि कुरीतियों का स्थापित साम्राज्य चरम सीमा पर जा पहुंचा था। देश में मनुवादी व्यवस्था के बीच समाज को ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के रूप में विभाजित था।

शूद्रों में निम्न व गरीब जातियों को शामिल करके उन्हें अछूत की संज्ञा दी गई और उन्हें नारकीय जीवन जीने को विवश कर दिया गया। उन्हें छुना भी भारी पाप समझा गया। अछूतों को तालाबों, कुंओं, मंदिरों, शैक्षणिक संस्थाओं आदि सभी जगहों पर जाने से एकदम वंचित कर दिया गया। इन अमानवीय कृत्यों की उल्लंघना करने वाले को कौड़ों, लातों और घूसों से पीटा जाता, तरह–तरह की भयंकर यातनाएं दी जातीं। निम्न जाति के लोगों से बेगार करवाई जातीं, मैला ढुलवाया जाता, गन्दगी उठवाई जाती, मल–मूत्र साफ करवाया जाता, झूठे बर्तन साफ करवाए जाते और उन्हें दूर से ही नाक पर कपड़ा रखकर अपनी जूठन खाने के लिए दी जाती व बांस की लंबी नलिकाओं से पानी पिलाया जाता। खांसने व थूकने के लिए उनके मुंह पर मिट्टी की छोटी कुल्हड़ियां बांधने के लिए विवश किया जाता। जिस स्थान पर कथित अछूत बैठते उसे बाद में उस स्थान को पानी से कई बार धुलवाया जाता। अत्यन्त कुटिल व मानवता को शर्मसार कर देने वाली परिस्थितियों के बीच दलितों, पिछड़ों और पीड़ितों के मुक्तिदाता और मसीहा बनकर अवतरित हुए डा. भीमराव रामजी अम्बेडकर जी का जन्म 14 अप्रैल, 1891 को मध्य प्रदेश में इंदौर के निकट महू छावनी में एक महार जाति के परिवार में हुआ। उनका पैतृक गाँव रत्नागिरी जिले की मंडणगढ़ तहसील के अंतर्गत आम्ब्रावेडे था। उनके पिता का नाम रामजी राव व दादा का नाम मालोजी सकपाल था। वे अपने पिता की चौदह संतानों, 11 लड़कियों व 3 लड़कों में चौदहवीं संतान थे। उस समय पूर्व के 13 बच्चों में से केवल चार बच्चे बलराम, आनंदराव, मंजुला व तुलासा ही जीवित थे। शेष बच्चों की अकाल मृत्यु हो चुकी थी। समाज जाति–पाति, ऊँच–नीच और छूत–अछूत जैसी भयंकर कुरीतियों के चक्रव्युह में फंसा हुआ

* राजनीति विज्ञान विभाग, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय

था, जिसके चलते महार जाति को अछूत समझा जाता था और उनसे घृणा की जाती थी।

बाबा साहेब अम्बेडकर का ऐसे विकट और बुरे दौर में जन्म हुआ था जब दलितों की स्थिति बहुत निम्न अवस्था में थी। उनके बचपन का नाम भीमराव एकपाल उर्फ 'भीमा' था। उनके पिता जी फौज में नौकरी करते थे और कबीर पंथ के बहुत बड़े अनुयायी थे। उनकीं माता श्रीमती भीमाबाई भी धार्मिक प्रवृति की घरेलू महिला थीं। 20 नवम्बर, 1896 में मात्र 5 वर्ष की आयु में ही माता का साया उनके सिर से उठ गया था। इसके बाद उनकी बुआ मीरा ने चारों बहन–भाईयों की देखभाल की। भीमराव ने प्रारंभिक शिक्षा सतारा की प्राथमिक पाठशाला में हासिल की। 7 नवम्बर, 1900 को उनका दाखिला सतारा के वर्नमेंट वर्नाक्यूलर हाईस्कूल में करवाया गया। वे बचपन से ही अत्यन्त कुशाग्र बुद्धि के थे और हर परीक्षा में अव्वल स्थान पर रहते थे। इसके बावजूद सामाजिक कुरीतियों के चलते उन्हें अछूत के नाम पर प्रतिदिन अनेक असहनीय अपमानों और यातनाओं का सामना करना पड़ता था। लेकिन, बालक भीमराव एकदम विपरीत सामाजिक परिस्थितियों के बीच अनवरत रूप से अपने शिक्षा–अर्जन के कार्य में लगे रहे और बहुत अच्छे अंकों के साथ उन्होंने हाईस्कूल की परीक्षा उत्तीर्ण की। वर्ष 1907 में उन्होंने मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण की। उनकीं अनूठी प्रतिभा से प्रभावित होकर एक चहेते व सामाजिक संकीर्णताओं से मुक्त ब्राह्मण शिक्षक ने उन्हें 'अम्बेडकर' उपनाम दिया, जोकि आगे चलकर उनके मूल नाम का अभिन्न हिस्सा बन गया। वर्ष 1908 में वे मात्र 17 वर्ष की आयु में रमाबाई के साथ विवाह–सूत्र में बंध गए। विवाह बंधन में बंधने के बावजूद उन्होंने मुंबई के एलफिंस्टन कॉलेज से एफ.ए. अर्थात इंटरमीडिएट और बड़ौदा के महाराजा द्वारा प्रदत्त 25 रूपये प्रतिमाह छात्रवृति के बलबूते वर्ष 1912 में बी. ए. की परीक्षा बहुत अच्छे अंकों के साथ उत्तीर्ण की। 12 दिसम्बर, 1912 को उन्हें यशवतं नामक पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई। 2 फरवरी, 1913 को पिता के देहान्त के बाद भीमराव अम्बेडकर को अपनी पढ़ाई बीच में ही छोड़नी पड़ी और पारिवारिक दायित्व के निर्वहन के लिए नौकरी करने को विवश होना पड़ा। लेकिन, थोड़े समय बाद ही उन्हें बड़ौदा के महाराजा की कृपा पुनः प्राप्त हुई और उन्हें उच्च शिक्षा हासिल करने के लिए विदेश जाने का सौभाग्य मिला। वे एस.एस. अकोना जहाज से अमेरिका के लिए रवाना हुए और 23 जुलाई, 1913 को न्यूयार्क जा पहुंचे। वहां जाकर उन्होंने कोलम्बिया विश्वविद्यालय में प्रवेश ले लिया। उन्होंने वर्ष 1915 में एम.ए. की डिग्री और 10 जून, 1916 को अर्थशास्त्र में अमेरिका के कोलंबिया विश्वविद्यालय से पी. एच.डी. पूरी की। हालांकि नियमानुसार उनका शोध धनाभाव के चलते आठ वर्ष बाद प्रकाशित होने के कारण पी.एच.डी डिग्री वर्ष 1924 में ही हासिल हो सकी। वे इसी वर्ष वास्तव में डॉ. भीमराव अम्बेडकर बने। उन्होंने वर्ष 1916 में प्रख्यात 'लंदन स्कूल ऑफ इकॉनामिकल एण्ड पॉलीटिकल साइंस'

में दाखिला ले लिया। अचानक छात्रवृति रोक दिए जाने से उन्हें पढ़ाई के बीच में ही 21 अगस्त, 1917 को स्वदेश लौटने को विवश होना पड़ा। भारत लौटकर उन्होंने पूर्व में हस्ताक्षरित अनुबंध के अनुसार महाराजा बड़ौदा की सेना में सैन्य सचिव के पद पर नौकरी करनी पड़ी। इस अत्यन्त सम्मानजनक पद पर रहने के बावजूद उन्हें अछूत के रूप में निरन्तर अपमान और तिरस्कार के दंश को झेलना पड़ा। अंततः उन्होंने इस पद को छोड़ दिया। इसके बाद वे एक निजी ट्यूटर व लेखाकार के रूप में काम करने लगे। बाद में उन्हें परिचित मित्रों के सहयोग से नवम्बर, 1918 में बंबई के सिडनेम कॉलेज ऑफ कॉमर्स एण्ड इकोनोमिक्स में राजनीतिक अर्थव्यवस्था के प्रोफेसर के रूप में नौकरी मिल गई। इसी दौरान वर्ष 1920 में ही सौभाग्यवश उन्हें महाराजा कोल्हापुर द्वारा प्रदत्त छात्रवृति हासिल हो गई और उन्होंने 5 जुलाई, 1920 को प्रोफेसर के पद को छोड़ दिया। वे पुनः 'लंदन स्कूल ऑफ इकॉनामिकल एण्ड पॉलीटिकल साइंस' में अपनी अधूरी पढ़ाई पूर्ण करने मे लिए लंदन जा पहुंचे और सितम्बर, 1920 से अपनी पढ़ाई शुरू कर दी। जनवरी, 1923 में उन्हें डी.एस.सी. अर्थात डॉक्टर ऑफ साईंस की उपाधि प्रदान की गई। लंदन के 'गेज इन' से उन्होंने बैरिस्टर की परीक्षा उत्तीर्ण की। वे 3 अप्रैल, 1923 में डॉक्टर ऑफ साईंस, पी.एच.डी. और बार एट लॉ जैसी कई बड़ी उपाधियों के साथ स्वदेश लौटे। स्वदेश लौटकर उन्होंने मुंबई में वकालत के साथ–साथ अछूतों पर होने वाले अत्याचारों के विरूद्ध आवाज उठाना शुरू कर दिया।

डॉ. अम्बेडकर यह मानते थे कि हरिजनों के मन में एक विचित्र हीन भावना पैदा हो गई है। इसे समाप्त करना होगा । अपनी पुस्तक– ''शूद्र कौन थे ? में उन्होनें लिखा – ''अछूतों की सामाजिक स्थिति यह है कि वे अपनी हीन स्थिति के प्रति कभी शिकायत नहीं कर सकते। उन्होंने कभी यह सपने में भी नहीं सोचा कि वे ऐसे प्रयत्न करें कि अन्य जातियों के साथ व्यवहार करने के लिए मजबूर करें जैसा एक इन्सान दूसरे से करता है।' डॉ. अम्बेडकर ने कहा कि यह भावना समाप्त करनी होगी। दलितों को याचना करने और भीख मांगने से उसके अधिकार नहीं मिलेंगे। उन्हें अपने अधिकार प्राप्त करने के लिए संघर्ष करते हुए लड़ना होगा।

आन्दोलन को अचूक, कारगर व व्यापक बनाने के लिए उन्होंने 'मूक नायक' पत्रिका भी प्रकाशित करनी शुरू की। उनके प्रयासों ने रंग लाना शुरू किया और वर्ष 1927 में उनके नेतृत्व में दस हजार से अधिक लोगों ने एक विशाल जुलूस निकाला और ऊँची जाति के लिए आरक्षित 'चोबेदार तालाब' के पीने के पानी के लिए सत्याग्रह किया और सफलता हासिल की। इसी वर्ष उन्होंने 'बहिष्कृत भारत' नामक एक पाक्षिक मराठी पत्रिका का प्रकाशन करके अछूतों में स्वाभिमान और जागरूकता का अद्भूत संचार किया। देखते ही देखते वे दलितों व अछूतों के बड़े पैरवीकार के रूप में देखे जाने लगे। इसी के परिणास्वरूप डॉ. भीमराव अम्बेडकर को वर्ष 1927

में मुंबई विधान परिषद का सदस्य मनोनीत किया गया। इसी तरह उन्हें पुनः 1932 में भी परिषद का मनोनीत सदस्य चुना गया। विधान परिषद में उन्होंने दलित समाज की वास्तविक स्थिति को न केवल उजागर किया, बल्कि शोषित समाज की आवाज को बखूबी बुलन्द किया। वर्ष 1929 में उन्होंने 'समता समाज संघ' की स्थापना की। अगले वर्ष 1930 में उन्होंने नासिक के कालाराम मंन्दिर में अछूतों के प्रवेश की पाबन्दी को हटाने के लिए जबरदस्त सत्याग्रह किया। इसके साथ ही दिसम्बर, 1930 में 'जनता' नाम से तीसरा पत्र निकालना शुरू किया। वर्ष 1931 में उन्होंने राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी के विरोध के बावजूद दूसरी गोलमेज कांफ्रेंस में दलितों के लिए अलग निर्वाचन का अधिकार प्राप्त करके देशभर में हलचल मचा दी। गांधी जी के अनशन के बाद डॉ. अम्बेडकर व कांग्रेस के बीच 24 सितम्बर, 1932 को 'पूना पैक्ट' के नाम एक समझौता हुआ और डॉ. अम्बेडकर को भारी मन से कई तरह के दबावों के चलते दलितों के लिए अलग निर्वाचन की माँग वापस लेना पड़ा। लेकिन, इसके जवाब में उन्होंने वर्ष 1936 में 'इंडिपेंडेंट लेबर पार्टी' की स्थापना करके अपने घोषणा पत्र में अछूतों के उत्थान का स्पष्ट एजेण्डा घोषित कर दिया। अब शोषित समाज डॉ. अम्बेडकर को अपने मसीहा के रूप में देखने लग गया था। इसी के परिणास्वरूप वर्ष 1937 के आम चुनावों में डॉ. अम्बेडकर को भारी बहुमत से अभूतपूर्व विजय हासिल हुई और कुल 17 सुरक्षित सीटों में से 15 सीटें नवनिर्मित 'इंडिपेंडेंट लेबर पार्टी' के खाते में दर्ज हुईं। वे 12 वर्ष तक बम्बई में विधायक रहे। इसी दौरान वे बम्बई कौंसिल से 'साईमन कमीशन' के सदस्य चुने गए। उन्होंने लंदन में हुई तीन गोलमेज कांफ्रेंसों में भारत के दलितों का शानदार प्रतिनिधित्व करते हुए दलित समाज को कई बड़ी उपलब्धियां दिलवाईं। दलितों के मसीहा डॉ. भीमराव अम्बेडकर का भारतीय राजनीति में कद बहुत ऊँचाई पर जा पहुंचा। वर्ष 1942 में उन्हें गर्वनर जनरल की काऊंसिल का सदस्य चुन लिया गया। उन्होंने शोषित समाज को शिक्षित करने के उद्देश्य से 20 जुलाई, 1946 को 'पीपुल्स एजुकेशन सोसाइटी' नाम की शिक्षण संस्था की स्थापना की। इसी सोसायटी के के तत्वाधान में सबसे पहले बम्बई में सिद्धार्थ कालेज शुरू किया गया और बाद में उसका विस्तार करते हुए कई कॉलेजों का समूह बनाया गया। ये कॉलेज समूह आज भी शिक्षा के क्षेत्र में अग्रणीय भूमिका निभा रहे हैं। 15 अगस्त, 1947 को देश को लंबे समय के बाद स्वतंत्रता नसीब हुई। 29 अगस्त, 1947 को डॉ. भीमराव अम्बेडकर को संविधान निर्मात्री सभा की प्रारूप समिति का अध्यक्ष पद पर सुशोभित किया गया। अपनी टीस के चलते ही उन्होंने संविधान में यह प्रावधान रखा कि, 'किसी भी प्रकार की अस्पृश्यता या छुआछूत के कारण समाज में असामान्य उत्पन्न करना दंडनीय अपराध होगा'। इसके साथ ही उन्होंने अनुसूचित जाति एवं जनजाति के लोगों के लिए सिविल सेवाओं, स्कूलों और कॉलेजों की नौकरियों में आरक्षण प्रणाली लागू करवाने में भी

सफलता हासिल की। उन्होंने महिलाओं की सामाजिक व आर्थिक स्थिति सुदृढ़ करने पर पर बराबर बल दिया। 26 नवम्बर, 1949 को संविधान सभा ने संविधान को अपना लिया और इसे 26 जनवरी, 1950 को लागू कर दिया गया। इस संविधान के पूरा होने पर डॉ. अम्बेडकर के आत्मिक उद्‌गार थे कि, ''मैं महसूस करता हूँ कि संविधान, साध्य (काम करने लायक) है, यह लचीला है, पर साथ ही इतना मजबूत भी है कि देश को शांति और युद्ध दोनों के समय जोड़कर रख सके। वास्तव में, मैं कह सकता हूँ कि अगर कभी कुछ गलत हुआ तो इसका कारण यह नहीं होगा कि हमारा संविधान खराब था, बल्कि इसका उपयोग करने वाला अधम था।'' वर्ष 1948 में उनका दूसरा विवाह सविता अम्बेउकर के साथ हुआ। आगे चलकर वर्ष 1949 में उन्हें स्वतंत्र भारत का प्रथम विधिमंत्री बनाया गया। वर्ष 1950 में डॉ. अम्बेडकर श्रीलंका के 'बौद्ध सम्मेलन' में भाग लेने के लिए गए और बौद्ध धर्म के सिद्धान्तों से अत्यन्त प्रभावित होकर स्वदेश लौटे। उन्होंने वैचारिक मतभेदों के चलते वर्ष 1951 में विधिमंत्री के पद से त्यागपत्र दे दिया। डॉ. अम्बेडकर वर्ष 1952 के आम चुनावों में हार गए। इसके बावजूद वे वर्ष 1952 से वर्ष 1956 तक राज्यसभा के सदस्य रहे। अत्यन्त कठिन व अडिग संघषों के उपरांत, उनके मन में यह मलाल विष का रूप धारण कर चुका था कि वे शोषित समाज के उत्थान व समृद्धि के लिए जो अपेक्षाएं भारत सरकार से रखते थे, उनपर भारत सरकार खरा नहीं उतरीं और अपनी इच्छाओं को पूरा करने में वे पूरी तरह कामयाब नहीं हो सके। इससे बढ़कर, देश में कानून बनने के बावजूद दलितों व शोषितों की दयनीय स्थिति देखकर उन्हें बेहद कुंठा व वेदना का गहरा अहसास हुआ। देश व समाज में दलितों, शोषितों व अछूतों को अन्य जातियों के समकक्ष लाने के लिए डॉ. अम्बेडकर ने बहुत लंबा गहन अध्ययन और मंथन किया।

संदर्भ :

1. एस.के. पंजम : शूद्रो का प्राचीन इतिहास, दिव्यांश पब्लिकेशंस, 2010, पृ. 392.
2. डॉ. आर.आर. यादव : डॉ. बी.आर. अम्बेडकर का समाजदर्शन, समात साहित्य सदन, जयपुर, 1990
3. विजय कुमार पुजारी : अम्बेडकर–जवीन और दर्शन, नई दिल्ली, भारतीय बौद्ध महासभा, 1988, पृ0सं052
4. लोखण्डे : जी.एस. भीमराव जी अम्बेडकर ; ए स्टडी इन सोसल डेमोक्रेसी, इन्टेकुवल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1977
5. डॉ. महेश्वर दत्त : गांधी अम्बेडकर और दलित (राधा पब्लिकेशन, नई दिल्ली), 2005, पृ. 133.
6. बाली, एल.आर. : डॉ. अम्बेडकर और भारतीय संविधान, भीम पत्रिका प्रकाशन जालंधर, 1980.

***

नारी सशक्तिकरण की मिशाल दलित बौद्ध भिक्षुणी -'पूर्णिका'

डॉ. रणधीर कुमार *

महात्मा बुद्ध नारी जाति की समानता के लिए विश्व में पहले समर्पित महामानव थे। उन्होंने अपने संघ में सभी वर्णों को निर्बाध प्रवेश दिया। जिसमें उन्होंने पुरुषों और स्त्रियों में किसी प्रकार का भेद नहीं किया, बल्कि नारियों के लिए भिक्षुणीसंघ की स्थापना की। भिक्षुणियों को थेरी भी कहा जता है। भिक्षुणीसंघ में किसी प्रकार के भेदभाव की भावना उत्पन्न न हो, इसलिए उन्होंने महाप्रजापति गौतमी और यशोधरा जैसी महारानियों के साथ ही प्रकृति जैसी मेहतरानियों (चाण्डाल कन्या) को संघ में प्रव्रज्या देने के उपरान्त एक पंक्ति में बिठा दिया। ऐसा उदाहरण आज तक किसी भी महापुरुषों के द्वारा नहीं प्रस्तुत किया गया है। ऐसी दलित बौद्ध महिलाओं में प्रकृति सुप्पिया, (चाण्डाल की पुत्री), खज्जुत्तरा, सुमंगला, किस्सा गौतमी (एक गरीब की पुत्री), चापा (एक वहेलिय की बेटी) तथा पूर्णिका (एक दासी की पुत्री) थी।

पूर्णिका का जन्म श्रावस्ती में हुआ था। वह सेठ अनाथपिण्डिक के घर की दासी की पुत्री थी। बुद्ध से पूर्व में भारत में दास प्रथा का जन्म हो चुका था। दासों को किसी भी प्रकार के मानवीय अधिकार नहीं होते थे। एक तरह से उसे मनुष्य नहीं समझा जाता था। अनाथपिण्डिक के परिवार पर बुद्ध का प्रभाव था।1 एक दिन क्रमिक चारिका करते हुए भगवान बुद्ध अपने विशाल भिक्षुसंघ सहित श्रावस्ती आए और अनाथपिण्डिक के जेतवन महाविहार में ठहरे। अनाथपिण्डिक तो उनका श्रद्धालु उपासक था। खबर मिलते ही वह तुरन्त जेतवन महाविहार जा पहुंचा। दोनों हाथ जोड़कर तथागत का अभिवादन किया और वह एक ओर जा बैठा। अवसर पाकर उनसे निवेदन किया- ''भन्ते! भगवान भिक्षुसंघ सहित कल आप मेरे घर भोजन स्वीकार करें।''

भगवान ने मौन रह निमंत्रण स्वीकार किया। तथागत का आशीर्वाद ग्रहण कर अनाथपिण्डिक बिना पीठ दिखाए यानी, बिना मुड़े उनके दर्शनीय चेहरे को देखते-देखते खुशी-खुशी वहां से चला आया। घर आकर उसने उत्तम खाद्य-भोजन तैयार करवाये। तथागत के भिक्षुसंघ सहित पधारने का समाचार पाकर आज घर के सभी सदस्यों में बड़ा उत्साह था। किन्तु सबसे अधिक उत्साह तो अनाथपिण्डिक की दासीपुत्री पूर्णिका को था। उसने बहुत चाव के साथ घर की खूब साफ-सफाई की। सुन्दर फूलों से घर-आंगन को सजाया।

---

* सहायक प्राध्यापक, प्राचीन इतिहास विभाग, एस.एम.आर.सी.के. कॉलेज, समस्तीपुर

खाद्य-भोजन में अपना सबसे अधिक सहयाग दिया। उसने सुन रखा था कि उसके स्वामी नगर सेठ सुदत्त (अनाथपिण्डिक) ने जेत राजकुमार का उद्यान बैलगाड़ियों पर हिरण्य (सोने की मुहरें) लादकर किनारे से किनारे लगाकर (बिछाकर) खरीदा है और वहां भगवान बुद्ध के लिए एक अति रमणीय आराम (भिक्षु विश्राम-स्थान) का निर्माण करवाया है। कल तथागत यहां भिक्षुसंघ सहित भोजन के लिए पधारेंगे।[2]

वह भगवान बुद्ध का दिव्य दर्शन कर सकेगी, उनके अमृत-वचन सुन सकेगी। यह सोचकर दासी-पुत्री पूर्णिका मन ही मन बहुत प्रसन्न थी। दूसरे दिन भगवान बुद्ध और उनके योग्य भिक्षुसंघ को भोजन-काल की सूचना भिजवाई गई-''भन्ते, भोजन तैयार हो गया।'' तब भगवान बुद्ध ने पूर्वाह्न के समय सु-आच्छादित हो, पात्र एवं चीवर हाथ में ले, जहां नगर सेठ (अनाथपिण्डिक) का निवास स्थान था, वहां पहुंचे। वहां पहुंचकर अपने भिक्षुसंघ सहित भगवान सेठ द्वारा बिछाये आसन पर जा बैठे। तब अनाथपिण्डिक गृहपति ने बुद्ध सहित भिक्षुसंघ को अपने हाथों से भोजन परोसा। भोजन के उपरांत एक ओर बैठे अनाथपिण्डिक गृहपति ने भगवान से 'धम्मदेशना' (उपदेश) की प्रार्थना की। इस पावन अवसर पर परिवार के सभी सदस्य वहां उपस्थित थे। पूर्णिका तो दासीपुत्री थी, वह चोरी-छिपे दरवाजे के पास बैठी उनका उपदेश बहुत मनोमयी होकर सुनती रही।

भगवान बुद्ध ने वहां दान कथा, शीलकथा, कामनाओं के दोष, निष्कामता का महत्व अपने सारगर्भित उपदेश द्वारा प्रकाशित किया। सभी सुनने वालों को खूब धर्म लाभ हुआ, किन्तु भगवान की अमृत वाणी का सबसे अधिक प्रभाव दासीपुत्री पूर्णिका पर पड़ा। जैसे कालिक (धब्बा) रहित शुद्ध वस्त्र अच्छी तरह रंग पकड़ लेता है, बिल्कुल उसी प्रकार दासीपुत्री पूर्णिका के निर्मल मन ने सच्चे धर्म का कल्याणकारी मार्ग अंगीकार कर लिया। उसके निर्मल चक्षु उत्पन्न हुए। वह धर्म अर्थात प्रथम फल 'सोतापन्न' में प्रतिष्ठित हुई। अब वह निर्वाण रूपी स्रोत (प्रवाह) में प्रवाहित होने लगी। उसका चित्त विकारों से विमुक्त हुआ- उसे बुद्ध के प्रति श्रद्धा, धम्म के प्रति श्रद्धा, संघ के प्रति श्रद्धा एवं श्रेष्ठ और सुन्दर शीलों से युक्त 'धम्मदेशना' का स्पष्ट दर्शन प्राप्त हुआ। अब वह सत्पुरुषों का सत्संग, सद्धर्म का श्रवण एवं चिंतन और धर्मानुकूल जीवन व्यतीत करने लगी।

'धम्मदेशना' (उपदेश) सुनने के बाद भगवान बुद्ध आयुष्मान सुदत्त (अनाथपिण्डिक) के माता-पिता तथा पत्नी के धर्म का संदर्शन करा अपने आसन से उठकर अपने भिक्षुसंघ सहित चल दिए।

अब दासीपुत्री पूर्णिका सदा की भांति अपने दैनिक सेवा कार्य में व्यस्त रहने लगी। उसका सबसे प्रमुख कार्य यह था कि पास ही में बहती अचिरावती नदी के किनारे जाना और वहां से जल भर कर लाना। यह काम वह ठिठुरती सर्दी में भी बखूबी करती थी। नदी का पीने का स्वच्छ जल लाने के लिए वह सदा कड़ी सर्दी में भी ठंढे जल में उतरकर पानी लाती थी।[3] एक दिन बहुत सुबह शीत ऋतु में एक ब्राह्मण अचिरावती नदी के बीचों-बीच गहरे पानी में खड़ा होकर स्नान कर रहा था। सर्दी से उसका पूरा शरीर थर्र-थर्र कांप रहा था। दासीपुत्री पूर्णिका भी उसके निकट ही जल भरने को जा पहुंची। उसने निरंतर सर्दी की कठिन पीड़ा से कांपते हुए ब्राह्मण को नदी के शीतल जल में डुबकियां लगाते देखा। दासीपुत्री पूर्णिका यह देखकर चुप न रह सकी। अत: उसने थर्र-थर्र कांपते हुए ब्राह्मण से पूछ ही लिया।'हे ब्राह्मण! इस प्रकार कांपते हुए नदी-स्नान करने से तुम क्या लाभ देखते हो?'' ब्राह्मण थर्राती हुई आवाज में तुरंत बोला- 'दिन में मुझसे जो कुछ भी पाप कर्म हो जाता है, मैं उसे उसी दिन शाम को नदी में स्नान करके धो डालता हूं और रात को मुझसे जो पाप-कर्म होता है, उसे मैं प्रात:काल उठते ही नदी में स्नान करके धो लेता हूं।''

दासीपुत्री पूर्णिका को भगवान बुद्ध के मुखारविन्द से सुने उपदेशों के माध्यम से कल्याणकारी तथा सुखकारी 'आर्य-मार्ग (श्रेष्ठमार्ग) का सम्यक्-ज्ञान हो चुका था। अब वह अन्धविश्वासों के कुचक्र से सदा-सदा के लिए विमुक्त हो चुकी थी। अत: उसने अपने अर्जित ज्ञान के आधार पर ब्राह्मण से पूछा-'ब्राह्मण! नदी में स्नान करने से पाप-कर्मों से मुक्ति मिल जाती है। यह तुमसे किसने कह दिया? यह तो अज्ञानी और मूर्ख व्यक्ति द्वारा अज्ञानी और मूर्ख व्यक्ति के प्रति दिया हुआ उपदेश लगता है। यदि वास्तव में ही नदी के जल में स्नान करने से पाप-कर्म धुल जाते हैं और सुगति प्राप्त हो जाती है, तब तो जल में रहने वाले मेढ़क, मछली, कछुए तथा अन्य सभी जलचरों की सुगति सुनिश्चित है। यदि नदी में स्नान करने से पाप मुक्ति हो जाती है, तो हिंसा करने वाले, चोरी करने वाले, व्यभिचार मं लिप्त रहने वाले, झूठ बोलने वाले तथा शराबी तथा अन्य अकुशल एवं पाप कर्म करने वाले सभी लोग खूब पाप करके केवल नदी में स्नान करने मात्र से पाप-मुक्त हो जाएंगे।[4]

एक महिला पनिहारिन से धर्म की ऐसी सीधी-सच्ची किन्तु खरे धर्म की बातें सुनकर ब्राह्मण की आंखें खुल गईं। उसने सोचा मैं अभी तक कितना अज्ञानी था। आज तक मैं कैसे पतित और कुमार्ग पर चलता रहा हूं। आज मुझे सच्चे 'आर्य-मार्ग' (श्रेष्ठमार्ग) के दर्शन हुए हैं। उसने दासीपुत्री पूर्णिका का आभार स्वीकार करते हुए कहा- ''बहन! मैं आपसे पूछता हूं, मुझे अब क्या

करना चाहिए?' दासीपुत्री पूर्णिका ने सीधे-साधे और सरल शब्दों में उससे कहा- 'हे ब्राह्मण! यदि वास्तव में ही तुम्हे पाप-कर्म पसन्द नहीं हैं, तो फिर छिपे या प्रकट रूप में कोई पाप-कर्म ही मत करो। वर्तमान या भविष्य में यदि तू कोई पाप-कर्म करेगा, तो नदी में जल-स्नान से तरी मुक्ति बिलकुल सम्भव नहीं है। वास्तव में यदि तुझे पाप-कर्म प्रिय नहीं है, तो तू शील-सदाचार का पालन कर, बुद्ध धम्म और संघ की शरण ग्रहण कर। इसी सत्य-मार्ग से तेरा मंगल होगा।' ब्राह्मण दासीपुत्री पूर्णिका के ऐसे सुन्दर वचन सुनकर बहुत प्रभावित हुआ और तुरन्त अचिरावती नदी के जल से बाहर निकल कर विनीत स्वर में कहने लगा-'मैं आज से अपने जीवन में आर्य-मार्ग (श्रेष्ठ मार्ग) पर आधारित पंचशीलों का पालन करुंगा। मैं जान गया हूं कि सद्धर्म ही वह जल स्रोत है, जो स्वच्छ है, निर्मल है, विमल है। यही श्रेष्ठ मंगलकारी स्नान है।'

दासी पूणिका के घर पहुंचने से पूर्व ही उसके और जल में स्नान को शुद्धि मानने वाले ब्राह्मण के वार्तालाप की चर्चा नगर सेठ अनाथपिण्डिक तक पहुंच चुकी थी। अब दासी पुत्री पूर्णिका के प्रति उसके मन में बड़ी श्रद्धा जाग्रत हो गई। उसे ऐसा अनुभव हुआ कि दासी पुत्री में किसी ब्राह्मण से भी अधिक योग्यता है। उसने पूर्णिका को दासत्व से मुक्त कर दिया और तथागत के पास चलने के लिए उससे आग्रह किया।

नगर सेठ अनाथपिण्डिक दासीपुत्री पूर्णिका को अपने राजसी रथ में आदरपूर्वक बिठाकर जेतवन महाविहार की ओर चल दिए। तथागत बुद्ध उस समय भोजनोपरांत अपनी गंधकुटी के बाहर बरामदे में बैठे भिक्षुओं के साथ धर्म चर्चा में लीन थे। रथ को जेतवन महाविहार के प्रवेश द्वार पर ही छोड़, दोनों पैदल चलकर गंधकुटी में बुद्ध के निकट जा पहुंचे। वहां जाकर तथागत को अभिवादन कर एक ओर खड़े हो गए। अवसर पाकर उन्होंने भगवान से कहा- ''भन्ते! भगवान यह मेरी दासीपुत्री पूर्णिका है। अपनी पूर्व पुण्य-पारमिताओं के फलस्वरूप छोटे से जीवन में इसके श्रेष्ठ शीलों से युक्त विरज-निर्मल चक्षु उत्पन्न हुए हैं। आपकी असीम अनुकम्पा से इसे सद्धर्म का साक्षात्कार हुआ है। एक 'उदक शुद्धिक' यानी जल से शुद्धि मानने वाले ब्राह्मण को इसने मिथ्या मार्ग से हटाकर वास्तविक विशुद्धि के मार्ग (बुद्ध धर्म) पर आरुढ़ कर दिखाया है। यह देखकर मैंने इसे दासत्व से मुक्त भी कर दिया है। आपकी अनुमति से इसे भिक्षुणीसंघ में प्रव्रज्या मिले।'

नगर सेठ अनाथपिण्डिक के आग्रह पर दासीपुत्री पूर्णिका को भगवान बुद्ध के हाथों प्रव्रज्या मिली। पूर्णिका ने अत्यंत आदरपूर्वक तथागत की तीन बार प्रदक्षिणा की और अभिवादन किया। अब वह श्रावस्ती स्थित भिक्षुणीसंघ के पूर्वाराम महाविहार में रहने लगी।[5]

इस तरह पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर पूर्णिका उस ब्राह्मण के साथ हुए अपने संलाप पर चिन्तन करती हुई उसे गाथाबद्ध कर कहती है- मैं पनहारिन थी। सदा पानी भरना ही मेरा काम था। स्वामिनियों के दण्ड के भय से, उनकी क्रोध-भरी गालियों से पीड़ित होकर, मुझे कड़ी सर्दी में भी सदा पानी में उतरना पड़ता था।[6] अरे ब्राह्मण! तू किसके भय से भयभीत होकर इस कड़ी सर्दी में गहरी नदी में उतरता है और कांपते हुए शरीर से निरंतर सदी की कठिन पीड़ा को सहता है?[7] हे पुण्णिके! तू जानती हुई भी मुझसे कारण पूछती है। क्या तू नहीं जानती कि मैं पाप-कर्मों के फल का अवरोध करने के लिए ही यह कुशल कर्म करता हूं?[8]

युवा या वृद्ध मनुष्य जो भी पाप कर्म करता है, वह गंगा-स्नान-शुद्धि से उन सबसे मुक्त हो जाता है।[9] गंगा-स्नान-शुद्धि से पाप-मुक्ति होती है, यह तुझसे किसने कहा? यह तो अज्ञानी, मूर्ख व्यक्ति का अज्ञानी मूर्ख के प्रति उपदेश है।[10] यदि गंगा जल से ही शुद्धि होती, तब तो मेढ़क, कछुए जल के सर्प, मगर और अन्य जलचरों का स्वर्ग में जाना सुनिश्चित है।[11] यदि गंगा-जल-स्नान से पाप-मुक्ति होती है, तो फिर भेड़-सूअर और मृगों को मारने वलो या उनका मांस बचने वाले, कछुए, चोर, जल्लाद या अन्य पापी लोग, सभी पाप-कर्म करने के बाद गंगा-स्नान कर, क्या पापमुक्त नहीं हो जाएंगे?[12] फिर यदि इस नदी में नहाने से पूर्व के पाप-कर्म धुल जाते हैं, तो क्या फिर उनके साथ ही तेरे पुण्य-कर्म भी न धुल जाएंगे? अरे मूर्ख ब्राह्मण! फिर तेरे पास क्या शेष रहेगा?[13] अरे ब्राह्मण! यदि ब्रह्मा (ब्रह्मा) के भय से या अन्य किसी के भय से तू इस कड़ी सर्दी के दुख को सहता है, तो भी उस भय को तू छोड़, सदी से अपनी त्वचा की रक्षा कर, उसे पीड़ित मत कर।[14] मैं कुर्मा में पतित था, तूने मुझे आर्य-मार्ग (श्रेष्ठ मार्ग) में लगाया। भगिनि। इन स्नान-वस्त्रों को मैं तुझे दान करता हूं।[15]

अरे ब्राह्मण! ये तेरे वस्त्र तेरे ही पास रहें, मुझे इनकी इच्छा नहीं है। हां, यदि दुख से तुझे भय है, यदि दुख तुझे प्रिय नहीं लगता, तो प्रकट या छिपे हुए पाप-कर्म मत करना।[16] वर्तमान या भविष्य में यदि तू पाप-कर्म करेगा, तो दुख से तेरी मुक्ति सम्भव नहीं। तू चाहे कहीं भी चला जाए या भाग जाए, पर दुख से मुक्ति न होगी।[17] यदि दुख से तुझे भय है, यदि दुख तुझे प्रिय नहीं लगता,[18] तो तू उन सदृश (अद्वितीय गुणों वाले), बुद्ध, धर्म और संघ की शरण जा, सदाचरण का पालन कर, अवश्य ही तेरा मंगल होगा।[19]

मैं उन सदृश (अद्वितीय गुणों वाले) बुद्ध, धर्म और संघ की शरण ग्रहण करुंगा, सदाचरण का पालन करुंगा, वह मेरे लिए मंगलकारी होगा।[20]

पहले मैं नाममात्र का, पतित ब्राह्मण था, इस समय मैं सच्चा ब्राह्मण हूं, तीनों विद्याओं का ज्ञाता हूं और वेद-सम्पन्न ब्राह्मण हूं आज मैं सच्चे अर्थों में श्रोत्रिय हूं, स्नातक हूं।[21]

निश्चित तौर पर कहा जा सकता है कि महात्मा बुद्ध ने अपने संघ में दलितों को प्रवेश कराया साथ ही उन्हें अन्य वर्णों के भांति दीक्षा भी दी। जिनमें दलित नारियों की संख्या कम नहीं है। इन दलित महिलाओं ने संघ में प्रवेश कर तत्कालीन समाज पर अपनी अहम छाप छोड़ी। क्रीत-दासी खुज्जुत्तरा पहले स्वयं को धम्म में अनुशासित करती है और फिर रानी श्यामावती को सद्धर्म का मार्ग दिखाती है। दासी-पुत्री पूर्णिका के श्रेष्ठ शीलों से युक्त विमल-निर्मल चक्षु उत्पन्न होते हैं। निम्न जाति की किस्सा गौतमी को सरसों के दाने तो नहीं मिले किन्तु खोया हुआ होश जरूर मिला। अछूत जाति से सम्बन्धित प्रकृति की प्रव्रज्या ने तो शूद्र चाण्डाल वर्ग के लोगों में सद्धर्म में प्रवेश के एक नये युग का सूत्रपात किया।

सन्दर्भ :

1. विमलकीर्ति (अनु॰ एवं सम्पा॰); थेरी गाथा, नयी दिल्ली, 2008, पृ॰ 202
2. मधुकर पिपलायन; बौद्ध महिलाओं के प्रेरणा-प्रसंग, सम्यक् प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ॰ 83
3. वही, पृ॰ 85
4. वही, पृ॰ 87
5. वही, पृ॰ 89
6. थेरीगाथा, पृ॰ 236
7. वही, पृ॰ 237
8. वही, पृ॰ 238
9. वही, पृ॰ 239.
10. वही, पृ॰ 240
11. वही, पृ॰ 241
12. वही, पृ॰ 242
13. वही, पृ॰ 243
14. वही, पृ॰ 244
15. वही, पृ॰ 245
16. वही, पृ॰ 246
17. वही, पृ॰ 247
18. वही, पृ॰ 248
19. वही, पृ॰ 249
20. वही, पृ॰ 250
21. वही, पृ॰ 251

***

किसान एवं नारी विमर्श की सशक्त अभिव्यक्ति - हत्या

प्रा.डॉ. राजश्री भामरे *

आधुनिक मानव के जीविकोपार्जन का सुधारित रुप खेती से प्रारंभ होता है। काफी प्राचीन समय से भारतीय समाज का प्रमुख व्यवसाय खेती ही है तथा अधिकांश जनता खेती पर ही निर्भर थी। समयानुकूल सभी ऋतुओं के अनुरुप खेती में अनाज तथा अन्य उत्पादों की उपज की जाती। इसीकारण खेतीसंपन्न परिवार काफी समृध्द और धनिक बनता गया। परन्तु समयचक्र सदैव एक सा नही रहता। परिवर्तन सृष्टि का नियम है। इसी परिवर्तन के अनुसार पर्यावरण में असंतुलन आने लगा। कभी अतिवृष्टि तो कभी सूखे ने खेतीसंपन्न किसान परिवार को मुश्किलों का सामना करना पडा। ऐसी स्थिति सालोंसाल चलने लगी। जिससे खेत पर उपजीविका चलानेवाला किसान अत्याधिक पेरशान हो उठा। हालातों से त्रस्त होकर थोडी–बहुत खेतीवाले किसान अपनी जमीनें बेचकर शहर में जा बसे और छोटा–मोटा व्यवसाय या मजदूरी करने पर विवश हो गये।

किसान जमीन को अपनी मॉ समझता है और पालनहार मॉ के रुप में पूजता है। इसीकारण जमीन पर बेहद प्रेम करनेवाले कई किसानों ने गांव में ही रहकर जी तोड मेहनत करके अपनी जमीन में बुआई की इसी आस पर की भविष्य में अच्छी फसल होगी। परन्तु कई बार प्रकृति के प्रकोप में उनके यह सपने धूल में मिल गये। सालों साल इसीप्रकार कोई न कोई विपदा से किसानों को सेठ–साहुकारों का कर्जदार बना दिया। नौबत यहॉ तक आई कि परिवार का भरणपोषण मुश्किल हो गया तो साहुकारों का कर्जा किसानों के सर पर धरा के धरा रहकर अधिक बडा पहाड बनता गया। आगे का सम्पूर्ण वर्ष भी वह उधार या कर्जा उठाकर अपने परिवार का गुजारा करने पर विवश होने लगा। ऐसे में पहला कर्जा चुकाये बगैर अधिक रुपया न देने की सेठ–साहुकारों की वृत्ति से परेशान होकर कई बार यही मेहनतकश किसान परिस्थितियों के सामने हार मानने लगा। जीवन संघर्ष से थकने लगा। वर्तमान समय में जैसे अब उसके सामने कोई मार्ग ही न बचा हो यही सोचकर आत्महत्या जैसा कठोर कदम उठाने लगा है। किसान जो पूरे सामज का अन्नदाता है परन्तु आज वही आर्थिक दुरावस्था से मृत्यु को गले लगा रहा है। परिस्थितियों से किसानों की यह हार अथवा जिसे पलायनवादी वृत्ति कहना भी उचित ही होगा क्योंकि उसकी तथा परिवार की समस्याऍ कम नही कर सकती, बल्कि उनकी परेषानियॉ अधिक बढत ही होती है। आज भारत की तत्कालीन समस्याओं में यह समस्या भी उग्ररुप ले

* अध्यक्ष एवं सहयोगी अध्यापिका, महात्मा गांधी महाविद्यालय, अहमदपूर जि.लातूर, महाराष्ट्र

रही है। जिससे भारत सरकार एवं सम्पूर्ण समाज चिंतित है। किसानों की आत्महत्या केवल उसके परिवार तक सीमित नही है, बल्कि वह अब मानव समाज की चिंता का विषय बन गया है।

विगत कई वर्षों से हिन्दी साहित्य में विविध विमशों की चर्चा जोरों से हो रही है। इसी श्रृंखला में अब किसान विमर्श का नाम भी जुड गया है। क्योंकि कभी वैभवसंपन्न किसानों के जीवन में प्राकृतिक बदलाव ने काफी परिवर्तन लाकर रख दिया है। आज मेहनतकश जमीन का मालिक परिवार की उपजीविका चलाने की चिंता, कर्जे का असहय बोझ और अंधकारमय भविष्य के कारण चिंतामग्न एवं निराश है। पूरे भारत के किसानों का यही हाल है। लेकिन महाराष्ट्र का किसान प्रकृति के प्रकोप से अधिक प्रभावित रहा। महाराष्ट्र के मराठवाडा क्षेत्र में किसानों की आत्महत्याओं का प्रमाण सबसे अधिक है। मराठवाडा में अत्यल्प वर्षा के कारण यहॉ का किसान कई मुश्किलों का निरंतर सामना करते रहता है, और आज आर्थिक कठिनाईयों को सहते हुए किसान अपना ही जीवन समाप्त कर रहा है। इस वास्तविकता पर समाज का ध्यान केंद्रित करने का सफल प्रयास बरखा शर्मा जैसी युवा लेखिका ने अपनी कहानी 'हत्या ' के माध्यम से किया है। बरखाजी का सीधा सम्बन्ध मराठवाडा से रहा, उन्होंने स्वयं इन इलाकों के किसानों की दशा देखी और किसानों की दयनिय अवस्था को कहानी में प्रस्तुत किया। आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य में हत्या कहानी का अनन्यसाधारण महत्व स्थापित हो गया है। 'हत्या' कहानी में किसान विमर्श के साथ नायिका के आत्माभिमानी चरित्र से नारी विमर्श की भी सशक्त अभिव्यक्ति हुई है।

कहानी की प्रमुख नायिका काशी आधुनिक भारतीय स्वाभिमानी नारी का प्रतिनिधित्व करती है। काशी ज्यादा पढी लिखी नही है लेकिन परिवारिक आपदा के समय डगमगाती नही बल्कि पूरे साहस से परिवार की जिम्मेदारी निभाने की ठान लेती है। काशी का पति एकनाथ तत्कालीन किसान कृषक समस्याओं से घिरा है। आर्थिक कठिणाईयों से हारकर अपने परिवार का विचार न करते हुए एक दिन आत्महत्या कर लेता है। वह बूढे माता–पिता, छोटा भाई नारु, पत्नी काशी और तीन छोटे बच्चों को बेसहारा छोडकर चला गया। गांव के लोगों से नारु ने जब यह खबर सुनी तो वह अपना आपा खो बैठा, बूढे माता–पिता बेहाल, बेकाबू हो गये। काशी पति को रस्सी से झूलता देख बेहोश हो गई। एकनाथ के दाहसंस्कार के समय नारु अपने पिता समान बडे भाई की यादों में तडप उठा उसे समाज के उस वर्ग के प्रति अत्याधिक घृणा हो चली जिसने उसके भाई को यह कदम उठाने पर विवश किया। वह भाई के अंतिमसंस्कार में शामिल हुए साहुकारों को खींचता हुआ चिल्लाने लगा, ''मेरे दादा ने आत्महत्या नही की है, आप लोगों ने मारा है उसे, आपके सूद (ब्याज), आपकी खेली गई चालें, हमारी खेती हथियाने के लिए की गई आपकी कोशिशों ने मेरे दादा को मारा है। मेरे दादा ने आत्महत्या नही की, उनकी हत्या हुई है।'' नारु कॉलेज में

पढनेवाला युवा है सचेत बुध्दि से वह स्वार्थ और छलकपट से भरी साहुकारी वृत्ति से भलीभॉति परिचित है। साहुकार वहॉ से खिसकने लगे मगर नारु का गुस्सा शांत नही होता। परिजन उसे समझाने पर भी वह न रुका और अपने भाई की मृत्यु का दर्द, मन की भडास एक–एक कर समाज की दूषित यंत्रणा पर निकालता रहा। कचहरी से आए सरकारी कर्मचारियों की ओर देखता हुआ क्रोधित होकर वह अपना गुस्सा उतारता हुआ कहता है, ''अरे इतने वर्षों में अब तक, आप में से किसी ने भी मेरे दादा का साथ नही दिया। अगर मेरे दादा को जीवित रहते उसका थोडा सुन लेते तो उसे कंधो पर श्मशान पहुॅचाने की नौबत नही आती।'' नारु के शाब्दिक क्रोध द्वारा लेखिका ने आज की असफल यंत्रणा की पोलखोल की है। नारु की क्रोधभरी पीडा किसानों की दुर्दशा, आर्थिक विपन्नावस्था तथा स्वार्थ एवं ढोंग से भरी राजनीती का उदघाटन करती है।

पति की मृत्यु के बाद काशी पहले तो स्वयं को संभाल न पाई। तीन बच्चे, बुढे सास–ससुर और देवर की जिम्मेदारी से बौखला गई। उसके मन में भी भविष्य की चिंता से क्षणभर आत्महत्या का विचार भर आया। परन्तु अगले ही पल उसका साहसी मन सोचता है– 'जीवन है तो मृत्यु भी अटल है, क्यों न संघर्ष किया जाए?' वह ठान लेती है **मै संघर्श करुंगी, देवर नारु और बच्चों को पढालिखाकर प्रगत□ील किसान बनाऊंगी। हम भूमिपुत्र है, अन्नदाता के रुप में अपनी गरिमा संभालेंगे**। अपने प्रण के अनुसार व्यवहार करती हुई पति की आत्मशांती के लिए मृत्युभोज जैसे रिति–रिवाज को तिलांजली देती है। वह जानती है कर्जा लेकर रीति–रिवाज निभाना केवल पाखंड और दिखावा है। काशी बूढे सास–ससुर, बेटे समान छोटा देवर नारु और तीन बच्चों का भार एक साथ अपने कन्धे पर उठाने को तैयार हो जाती है। वह अच्छी तरह जानती है उसके पति को आत्मशांति कैसे मिलेगी, मृत्युभोज से नही बल्कि नारु पढ–लिख जाए, बच्चे दिवाली पर नये कपडे पहनकर पटाखे जलाये, माता–पिता चिन्तामुक्त होकर पंढरपुर विठठल मंदिर जाकर किर्तन करें। इसी में एकनाथ की आत्मशांति छुपी है इस बात से वह भलीभॉति परिचित थी। काशी अपना दुखदर्द निगलकर केवल अपना कर्तव्य याद रखती है। एकनाथ की तेरहवीं के बाद दूसरे ही दिन हाथ में खुरपी और टोकरा लेकर खेत पर निकल पडी। उसकी सांस रमबाई उससे कहती भी है अभी मेहमानों का घर में आना जाना शुरु है,गांव के लोग क्या कहेंगे? परन्तु काशी ने परिस्थिति को स्वीकार लिया था। उसकी आत्मा स्वाभिमान और हिंमत से भर उठी थी। इसलिए वह सांस से कहती है, ''मेहमानों को आप संभालो, मै दूसरों के खेतों पर काम करने जा रही हूॅ। थोडा इंतजाम होते ही जल्द अपने खेत पर काम शुरु करेगे।'' देवर जिसे वह अपना बड बेटा मानती थी उससे भी पढाई के साथ उसका हाथ बॅटाने की सलाह देती हुई काम पर निकल जाती है।

निश्कर्श :– 'हत्या' कहानी की विषयवस्तू अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं संवेदनशील है। भारतीय भ्रष्ट समाज व्यवस्था तथा प्रशासन का बलि किसान एकनाथ आजके पूरे कृषक वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है। नारु के अनेकों संवाद महाराष्ट्र के किसानों की आर्थिक विपन्नवस्था दर्शाने में समर्थ है। इन्ही संवादो द्वारा राजनीति और प्रशासकिय भ्रष्टाचार पर करारा व्यंग्य कसा गया है।

नारी विमर्श की दृष्टि से हत्या कहानी को काफी सराहा गया है। आज का युग नारी चेतना का युग है। साहित्य और समाज में भी नारी ने अपनी नींव को सुदृढ कर लिया है कहानी की लेखिका बरखा शर्मा आधुनिक समय की युवा साहित्यकार के रुप में उभर रही है। वह नारी का आत्मनिर्भर तथा आर्थिक सबलता स्त्री जीवन की महत्वपूर्ण उपलब्धि मानती है। परिवार एवं समाज निर्माण में पुरुष और स्त्री समान रुप से सहभागी है। पुरुष के अभाव में नारी स्वयं के बलबूते पर परिवार को संभालने में पूरी तरह समर्थ होती है। काशी का पति की मृत्यु के बाद तत्काल परिवार का पूरा दायित्व स्वयं पर लेते हुए दूसरे के खेत पर काम को निकल जाना ही नारी के सशक्तीकरण का प्रमाण है। बदलती हर परिस्थितियों का सामना करते हुए अपने कर्तव्यों का पालन करनेवाली काशी कर्तव्यनिष्ठ सबला नारी का रुप है। लेखिका की यही नई सोच, नई दृष्टि असंख्य नारियों को भविष्य संवारने की प्रेरणा प्रदान करेगी। कहानी में रुढी–परंपराओं पर भी चोट की गई है। सहज, सरल भाषा एवं संवादों ने कहानी को ह्रदयस्पर्शी बना दिया है, बरखा शर्माजी की हत्या कहानी मौलिक, प्रासंगिक और प्रभावोत्पादक है। इसीकारण बरखाजी को 'हत्या' कहानी के लिए उत्कृष्ट आधुनिक लेखिका का पुरस्कार मिला है।

सन्दर्भ :

1. बरखा राजेश शर्मा : पहचानः एक प्रयास
2. बरखा राजेश शर्मा : हत्या (कहानी)
3. डॉ. बबन बोडके : बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक की कहानियों में नारी
4. जगदीश्वर चतुर्वेदी : स्त्रीवादी साहित्य विमर्श
5. गंगाप्रसाद विमल : प्रेमचंद आज के संदर्भ में

***

प्राचीन भारत में भू-स्वामित्व

पवन कुमार सिंह *

प्राचीन भारत में भूमि पर स्वामित्व किसका था, एक विवादास्पद प्रश्न है? इस विषय पर न प्राचीन भारतीय शास्त्राकार और न आधुनिक विद्वान् एकमत हैं। इन विचारकों में कुछ भूमि पर राजा का अथवा राज्य का स्वामित्व मानते हैं तो कुछ व्यक्ति का और कुछ सामूहिक स्वामित्व की वकालत करते हैं। इन सभी विकल्पों के सम्बन्ध में ऐसे दृष्टांत मिलते हैं, जिनसे इन सभी विचारों को बल मिलता है। अतः इन दृष्टान्तों के आधार पर आधुनिक विद्वानों ने इन तीन विभिन्न विकल्पों के समर्थन में तर्क प्रस्तुत किया है। मेन और मजुमदार ने सामूहिक स्वामित्व के पक्ष में तर्क प्रस्तुत किया है। कीथ, मैकडोनाल्ड, वेडेन पावेल, काशी प्रसाद जायसवाल तथा अल्तेकर जैसे विद्वानों ने व्यक्तिगत स्वामित्व की वकालत की है। परन्तु एस. के. मैत्री तथा यू. एन. घोषाल जैसे विद्वानों ने राजकीय स्वामित्व का समर्थन किया। वस्तुतः मुख्य विवाद व्यक्तिगत स्वामित्व तथा राजकीय स्वामित्व अथवा राजकीय स्वामित्व के समर्थकों के बीच है। विवाद का मुख्य कारण है तीनों विकल्पों के सम्बन्ध में साक्ष्य उपलब्ध होना।

भारत में आर्य बाहर से आये और यहाँ के मूल निवासियों को धीरे–धीरे अपने अधीन किया, और अपनी संस्कृत में भी रंग डाला। प्रारम्भ में आर्यों का जीवन खानाबदोशों जैसा था। धीरे–धीरे व एक स्थान पर बसने लगे और कृषि पर उनकी निर्भरता जीवन–निर्वाह के लिए बढ़ती गई तभी भूमि पर स्वामित्व का प्रश्न उत्पन्न हुआ। आर्यों के आगमन के पूर्व हम व्यक्तिगत स्वामित्व की कल्पना नहीं कर सकते और न राजकीय स्वामित्व की कल्पना, राज्य के अभाव में, तर्क संगत प्रतीत होता है। संभव है प्रारंभ में कबीलाई संगठन भूमि पर स्वामित्व रखता हो। सिन्धु घाटी की सभ्यता से संबंधित अन्नागार तथा मजदूरों की बस्ती सामूहिक स्वामित्व का संकेत देते हैं। इस समय व्यक्तिगत स्वामित्व की कल्पना भी की जा सकती है। प्रारमी में वैदिक युगीन आर्यों ने भी सामूहिक स्वामित्व को अपनाया। वे बाहर से आये थे और भारत में आकर बसने लगे थे। विभिन्न समूहों में बंटे होने के कारण उनके द्वारा अधिकृत भूमि पर उनका अधिकार समूहगत ही रहा होगा।

वस्तुतः भू–स्वामित्व के विकास में सैद्धांतिक तथा व्यावहारिक दोनों ही पक्षों का योगदान रहा है। प्रारम्भ में कबीलाई राज्य रहा होगा। बाद में राजतंत्र का विकास हुआ। इसके अन्तर्गत एक क्षेत्र विशेष पर राजा का

* शोध छात्र, इतिहास विभाग, वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा (बिहार)

अधिकार स्थापित हुआ और राज्यों से साम्राज्य स्थापित हुए अर्थात् किसी शक्तिशाली राजा द्वारा अन्य राजाओं को पराजित कर उनके भू–भाग पर अपना आधिपत्य स्थापित करना। इस प्रकार साम्राज्य की स्थापना हुई जिसका स्वामी सम्राट कहलाता था। इन राजाओं का अपने अधीन भू–भाग पर अधिकार होता था तथा सम्राट अपने द्वारा विजित भू–भाग का स्वामी बन बैठता था। वैदिकोत्तरकालीन भारत में अनेक राजाओं तथा सम्राटों द्वारा ब्राह्मणों, श्रमणों, मंदिरों तथा विहारों को भूमिदान देने का उल्लेख विभिन्न अभिलेखों में हुआ है। इसके अतिरिक्त विभिन्न व्यक्तियों द्वारा भी भूमि दान देने का उल्लेख मिलता है। इससे भूमि पर व्यक्तिगत स्वामित्व का संकेत मिलता है। व्यक्तिगत सम्पत्ति के रूप में भूमि का होना इस समस्या का व्यावहारिक पक्ष है। इसके अनुसार भूमि व्यक्तिगत सम्पत्ति के रूप में वर्तमान थी। भूमिपति अपनी भूमि का क्रय–विक्रय अथवा दान कर सकता था। इसकी पुष्टि अनेक साक्ष्यों से होती है। परन्तु शास्त्रकारों का एक वर्ग, जैसे कौटल्य तथा मनु भूमि पर राजा के स्वामित्व का समर्थन करते हैं। इसी प्रकार जैमिनी भू–स्वामित्व के पक्ष0धर हैं। बाद के अधिकांश लेखकों ने इसका समर्थन किया है।

सामूहिक अथवा सामुदायिक भू–स्वामित्व : वैदिककाल के प्रारम्भ में भूमि पर निस्सन्देह सामूहिक स्वामित्व था परन्तु उत्तर वैदिककाल में व्यक्तिगत भू–स्वामित्व का सिद्धान्त विकसित हो चुका था। ऐसा प्रतीत होता है कि उत्तर वैदिककाल में जब आर्य स्थायी तौर पर विभिन्न स्थानों में बस गए तो कृषि योग्य भूमि विभिन्न व्यक्तियों के अपने परिश्रम से तैयार किया जाने लगा, जिस पर वे खेती करने लगे। परिणामस्वरूप इस भूमि पर कृषकों का स्वामित्व स्वीकार किया जाने लगा। ऋग्वेद में 'वास्तुपति' शब्द का उल्लेख हुआ है। इस शब्द से व्यक्तिगत स्वामित्व का संकेत मिलता है। सामूहिक अथवा सामुदायिक स्वामित्व का अर्थ सामूहिक खेती के रूप में लेना उचित प्रतीत नहीं होता। ऐसी प्रथा गणतांत्रिक व्यवस्था में प्रचलित होने के अनुमान किया जा सकता है। इसमें कोई संदेह नहीं कि चारागाहों का उपयोग सामूहिक रूप से की जाती थी। कौटिल्य एवं मनु, दोनों ने, राजा से चारागाह के लिए विशेष व्यवस्था करने का निर्देश यिा है। मनु और विष्णु गोचर भूमि को अविभाज्य मानते हैं। नियार्कस उत्तर–पश्चिम में परिवारिक सम्बन्ध के आधार पर सामूहिक तौर पर खेती करने का उल्लेख करता है। परवर्तीकालीन कुछ अभिलेखीय प्रमाण भी मिलते हैं, जिनसे सामूहिक स्वामित्व का संकेत मिलता है। ग्वालियर अभिलेख से विदित होता है कि सम्पूर्ण ग्वालियर के समस्त लोगों ने मिलकर एक ग्राम में पड़ा हुआ भू–खण्ड और दो भू–क्षेत्र मंदिर को दान में दिए थे। सियादोनी अभिलेख से भी लोगों द्वारा मिलकर भूमि–दान करने की जानकारी मिलती है।

राजकीय भू–स्वामित्व : भूमि पर राजा का समर्थन अनेक शास्त्राकारों ने किया है। अनेक प्राचीन आधुनिक विचारकों ने भूमि को राजा की सम्पति

माना है। इस विषय को लेकर ईस्ट इण्डिया कम्पनी के दो अफसरों ने अपना–अपना मत व्यक्त किया। एक की मान्यता थी कि भूमि पर राजा अथवा सरकार का स्वामित्व है जबकि दूसरे के अनुसार भूमि पर भूमिपति का स्वामित्व होता है, इसलिए राजा अथवा सरकार को केवल लगान से मतलब होना चाहिए अर्थात् राजकीय स्वामित्व तथा व्यक्तिगत स्वामित्व को लेकर मतभेद बराबर से रहा है और प्राचीन साहित्य एवं अभिलेखों से दोनों प्रकार की स्थितियों की जानकारी मिलती हैं।

आपस्तम्ब धर्मसूत्र के अनुसार भू–गर्भ से निकली हुई सम्पत्ति पर राजा का अधिकार होता है, न कि उसे खोद कर बाहर निकालने वालों का अर्थात् अप्रत्यक्ष रूप से यह राजकीय स्वामित्व का संकेत देता है। कौटिल्य भी भूमि पर राजकीय स्वामित्व के पक्ष में प्रतीत होते है। उनके अनुसार राजा भूमि के साथ–साथ जल–कर भी प्राप्त करने का अधिकारी था। कृषि कार्य के लिए भूमि प्रदान की जाती थी, परन्तु ठीक से खेती नहीं होने पर राज्य के द्वारा भूमि वापस ले ली जाती थी।

व्यक्तिगत भू–स्वामित्व : सामूहिक एवं राजकीय भू–स्वामित्व के विरीत प्राचीन साहित्य एवं अन्य स्त्रोतों से व्यक्तिगत भू–स्वामित्व का प्रमाण मिलता है। मीमांसा के अनुसार भूमि पर राजा का स्वामित्व नहीं होता। विश्वजीत यज्ञ में ऐसा विधान है कि यज्ञ के उपरान्त राजा अपना सर्वस्व दान कर देता है परन्तु मीमांसा के अनुसार वह अपनी प्रजा की भूमि को दान में नहीं दे सकता चूंकि राजा भूमि के अतिरिक्त सभी चीजों का स्वामी होता है। जैमिनी के अनुसार भूमि उसका है, जो इस पर मेहनत कर खेती करता है। इसलिए राजा सम्पूर्ण भूमि को दान में नहीं दे सकता है और न अधीनस्थ शासक कोई प्रदेश किसी को दे सकता था। परन्तु जो भूमि अथवा गृह खरीदे गए हों, दान में दिए जा सकते थे। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में भी राजकीय भूमि और प्रजा की व्यक्तिगत भूमि के बीच अन्तर स्पष्ट किया गया है।

सन्दर्भ :

1. राधाकृष्ण चौधरी : प्राचीन भारत का आर्थिक इतिहास, पृ. 12.
2. डॉ. नवीन कुमार : प्राचीन भारत का सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास।
3. ए. के. मित्तल : भारत का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास, 1991.
4. शिवस्वरूप सहाय : प्राचीन भारत का सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास, 1998.
5. के. सी. जैन : प्राचीन भारतीय सामाजिक आर्थिक जीवन।
6. जय शंकर मिश्र : प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, 1986.
7. आर. सी. मजुमदार : कार्पोरेट लाइफ इन एंसियेन्ट इण्डिया।

***

दक्षिण भारतीय कृषि का स्वरूप तथा विकास

डॉ. कुश कुमार *

दक्षिण भारत की आर्थिक समृद्धि में वहाँ के समुद्री तटों से होने वाले व्यापार मात्र का अकेला हाथ था, यह निष्कर्ष निकाल लेना सही नहीं होगा। उसमें वहाँ की कृषि–व्यवस्था और कृषिक उन्नति का भी बहुत बड़ा योगदान था। इस हेतु दक्षिणापथ और सुदूर दक्षिण की भौगोलिक बनावट का विश्लेषण करना आवश्यक है। दक्षिणापथ का पश्चिम भाग छोटे–छोटे पर्वतों, पठारों तथा प्रायः सूखे रहने वाले प्रदेशों से आबाद था और वहाँ कृषिक उत्पत्ति प्राप्त करना बहुत ही कठिनाई भरा काम था। किन्तु पश्चिमी घाटों से निकलने वाली गोदावरी, कृष्णा, कावेरी और तुंगभद्रा जैसी बड़ी नदियों तथा उनमें अलग–अलग समाहित हो जाने वाली उन सैकड़ों छोटी–मोटी नदियों के पूर्वाभिमुख होकर पूर्वी समुद्र में जा मिलने से उत्पन्न होने वाले डेल्टा प्रदेशों के भीतरी भाग बहुत ही अन्नबहुत और उपजाऊ थे। फलतः, इन पर अपना–अपना अधिकार बनाये रखने हेतु विभिन्न शासन–सत्ताओं के बीच लगातार युद्ध होते रहते थे। इन नदियों पर बनने–बनाये जाने वाले बाँधों, उनसे निकली जाने वाली सिंचाई की नालियों तथा पुष्करिणियों से जो सिंचाई की सुविधाएँ उन पूर्वी–दक्षिणी भागों को प्राप्त हुईं, उनसे वहाँ कि कृषिक उन्नति के माध्यम से उन क्षेत्रों की सम्पन्नता बहुत ही बढ़ी। आंध्र से लेकर तमिलनाडु तक का सारा प्रदेश ''धान का कटोरा'' बन गया।

दक्षिण में कृषि के विस्तार का क्रम आन्ध्र प्रदेश में शासन करने वाले प्रारंभिक पल्लव शासकों के समय ही प्रारंभ हो चुका था। इक्ष्वाकु और प्रारंभिक पल्लव शासकों ने अपने क्षेत्रों में पड़ने वाले जंगलों को साफकर उन पर खेती करने–कराने का क्रम प्रारंभ किया और वहाँ से उन्हें बहुमूल्य लकड़ियों तथा हाथियों की भरपूर प्राप्तियाँ हुईं। ये दोनों ही वंश उत्तर भारत की वर्णधर्म वाली संस्कृति और संस्कृत साहित्य की धर्मशास्त्रों वाली परंपरा के पोषक थे। अतः अपने यज्ञयागादि कर्मों के लिए उन्होंने उत्तर भारतीय ब्राह्मणों को आमंत्रित कर अपने क्षेत्रों में बसाया और उन्हें भूमिदान (ब्रह्मदेय) देकर उन्हें वहाँ स्थिर कर लिया। ये ब्राह्मण पहले से ही कृषिकर्म में निरत और कुशल थे। प्रायः इन्हें जो भूमिक्षेत्र दान में दिये गये, वे या तो पर्वतीय थे अथवा जंगली थे, जिन्हें इन्होंने कृषियोग्य बनाया। ये स्वयं तो अपने हाथों से खेती नहीं करते थे, किन्तु मजदूर वर्ग वाले अन्य लोगों से, उन्हें कुछ पारिश्रमिक देकर अपनी खेती कराते थे। किन्तु पानी और सिंचाई के इंतजाम वे ध्यानपूर्वक करते थे, जिनके बहुविध उल्लेख दानपरक अभिलेखों में प्राप्त होते हैं।

---

* इतिहास विभाग, वीर कुंवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा (बिहार)

इन आगन्तुक ब्राह्मणों और स्थानीय शासकों का एक ऐसा सहयोगात्मक सम्बन्ध बना, जो धीरे–धीरे घनिष्ट हो गया। भूमिदाता राजा और भूमि प्राप्तकर्त्ता ब्राह्मणों के परस्पर हितों का एक अन्योन्याश्रयी सम्बन्ध इसका प्रमुख परिणाम हुआ। धीरे–धीरे दक्षिण में सिंचित खेती का विस्तार हुआ और धान वहाँ की मुख्य फसल हो गयी। यही धान वहाँ व्यापारिक वस्तुओं के विनिमय का माध्यम बना और विभिन्न वस्तुओं के दाम भी धान की मात्रा के रूप में ही तय किये जाने लगे।

धीरे–धीरे ब्राह्मणों और मंदिरों को दिये जाने वाले दानों– ब्रह्मदेय और देवदेय– ने एक नयी सामाजिक व्यवस्था को जन्म यिा। इस व्यवस्था के तीन तत्त्व थे– भूमिदाता राजा या शासक, उसे प्राप्त करने वाला ब्राह्मण अथवा बिचौलियों के रूप में मंदिर–मठ, विहार, भिक्षुसंघ अथवा ऐसी अन्य संस्थाएँ, तथा वे कृषक जो स्वयं खेतों के या तो छोटे–छोटे मालिक थे (वेड्डर लोग) अथवा अन्य भूमि मालिकों के खेतों पर मजदूरी पर काम करते थे और शूद्र मजदूर थे।

प्रथम सहस्त्राब्दि का मध्यकाल आते–आते दक्षिण भारत में नये–नये और पूर्व की अपेक्षा बड़े–बड़े जमीनी और पर्वतीय मंदिरों के निर्माण तेजी से तथा अधिक मात्रा में होने लगे। पहले वे बादामी, कांचीपुरम् और महाबलिपुरम् जैसे नगरों में ही बनाये जाते थे। किन्तु अब वे गाँव–देहातों में भी बनाये जाने लगे तथा व्यापारिक पथों पर भी निर्मित होने लगे। अब उन बड़े–बड़े मंदिरों में अन्नसंग्रह हेतु बड़े–बड़े कोठार भी बनने लगे, जिनमें मंदिरों की खेती योग्य भूमि से प्राप्त अन्नों को इकट्ठा किया जाने लगा। इन सबके पीछे कृषिक उत्पत्ति हेतु नयी तकनीकों के प्रयोग मुख्यरूप से दिखायी देंगे, जिनके कारण कृषिक उत्पत्ति में भरपूर अवशेष (अधिशेषः सरप्लस्) बचना प्रायः एक क्रम–सा बन गया। मंदिरों और ब्राह्मणों ने इन अधिशेषों से अपने को तो पूरी तरह अन्नसम्पन्न किया ही, व`अब उनके क्रय–विक्रय से व्यापारिक लाभ भी कमाने लगे। मंदिरों ने इन अधिशेषों से सभी मंदिर संलग्न मजदूरों और कार्यकर्त्ताओं का भरण–पोषण करते हुए उनसे अन्नसत्रों तथा पाठशालाओं को चलाने और साधु–सन्यासिओं, भिक्षुओं और अपाहिजों तथा यायावरों को कुछ दिनों मात्र की लघुकालिक व्यवस्थाएँ भी करनी प्रारंभ कर दी।

खेती के विकास में एरियट्ट नामक व्यवस्था ने भी महत्त्वपूर्ण योगदान किया। एरियट्ट व्यक्तिगत लोगों द्वारा प्रदत्त वह दान था, जो सिंचाई की व्यवस्थाओं के हेतु ही दिया गया होता था। इनसे तालाबों की मरम्मत और देखरेख की जाती थी। सारी दक्षिण भारतीय कृषि बड़े–बड़े बाँधों, उनसे निकाली गयी नहरों और नहरों से निकाली गयी कुल्याओं द्वारा ही की जाती थी। पानी इकट्ठा किये जाने वाले बड़े–बड़े बाँध वहाँ की मुख्य विशेषता थे, जिनके निर्माणों के प्रारंभ प्रारंभिक पल्लव शासकों के समय ही हो चुके थे। उनके अभिलेखों से प्रमाणित है कि इन तालाबों की

दीवारें ईंटों से चुनी जाती थीं, तथा उनकी दीवारों की मजबूती हेतु उन्हें पत्थरों से बनाने और उनके कुल्याओं के निकालने का क्रम उस समय तक प्रारंभ हो चुका था।

इन तालाबों की देखरेख सहाकरी सहाकरी आधार प्रायः ग्रामसभाओं की तालाब–समितियाँ करती थीं और कोई पानी तो न चुरावे, न व्यर्थ बहावे तथा न आवश्यकता से अधिक ले, इन बातों की ओर ये समितियाँ बराबर नजर रखती थीं। ऐसा करने वाले उनके द्वारा दण्डित किये जाते थे।

दक्षिण भारत के उन ब्राह्मण भूमिदान प्राप्तकर्त्ताओं को दानदत्त भूमि की अनेक सुविधाओं के साथ ही उन्हें सम्बन्धित भूमि पर खेती के विकास हेतु अनेक उत्तरदायित्व भी संभालने पड़ते थे। उन्हें सिंचाई के नये साधन जुटाने तथा प्रबंधन करने, जैसे तालाबों, कुओं, नहरों, कुल्याओं आदि के निर्माण आदि की जिम्मेदारियाँ दान की शर्तों में ही सम्मिलित थी। दान की ऐसी शर्तों का एक अच्छा उदाहरण सुंदर चोड़ द्वारा अनिरूद्ध नामक ब्राह्मण को दिया जाने वाला एकभोग रूप के दान का वह दानपत्र है, जो चोड़कालीन दानव्यवस्था का एक प्रमुख उदाहरण उपस्थित करता हैं किन्तु इन उदाहरणों से ये निष्कर्ष नहीं निकले जा सकते कि सिंचाई के सारे उपक्रम और उपाय केवल व्यक्तिगत लोगों की क्रियाशीलता मात्र तक सीमित थे। चोड़ और पल्लव राजाओं ने तो इस क्षेत्र में अनेक कार्य किये। अनेक अभिलेखिक साक्ष्य अनेक चोड़ शासकों द्वारा, नये–नये तालाबों के निर्माण की सूचनाएँ देते हैं। स्पष्टतः, इन शासकों ने कृषिक उन्नति के विभिन्न साधनों को जुटाकर अपने राजकीय राजस्व में भरपूर वृद्धि की होगी।

सन्दर्भ :

1. रोमिला थापर : दि पेंगुइन् हिस्ट्री ऑफ अर्ली इण्डिया, पृ. 336.
2. सी. मीनाक्षी : ऐडमिनिस्ट्रेशन् एण्ड सोशल लाइफ अण्डर दि पल्लवज, पृ. 104.
3. आर. पी. नन्दी : भारतीय इतिहास कांग्रेस (1984) के सत्र का अध्यक्षीय भाषण।
4. रोमिला थापर, पूर्वनिर्दिष्ट, पृ. 340 और आगे।
5. नीलकान्त शास्त्री : दि चोड़ज्, 1955, पृ. 577–578.
6. विशुद्धानन्द पाठक, प्राचीन भारत की आर्थिक स्थिति, प. 116–117, प. 118–119.
7. आर. सतियनाथियेर, स्ट्रगल फॉर इम्पायर, पृ. 234.

***

वर्तमान परिपेक्ष में गाँधी दर्शन की प्रासंगिकता

सुप्रिया कश्यप *

'गाँधी' शब्द से एक ऐसे व्यक्तित्व वाले व्यक्ति की छवि स्मरण होता है जिसने धर्म एंव नैतिकता के प्रवाह से प्रत्येक क्षेत्र को चाहे वह (सामाजिक हो, राजनीतिक या फिर आर्थिक) पवित्र करने का कार्य किया। वे एक अद्भूत व्यक्तित्व के धनी, एक प्रेरक, समाज सुधारक तो थे ही साथ ही उनमें कुछ ऐसे असाधारण गुण थे जिनके कारण वे अतिमानव माने जाए या नहीं लेकिन युगावतार के रूप में सर्वत्र पूज्य होंगे। क्योंकि गाँधी एक विचार ही नहीं बल्कि आचरण है जिसकी प्रासंगिकता कभी खत्म नहीं होगी

गाँधी जी का व्यक्तित्व बहुत बड़ा था। वे किसी को भी माफ कर सकते थे। क्योंकि वे हृदय परिवर्तन मे विश्वास रखते थे। वे अन्याय और शोषण की समाप्ति शांतिपूर्ण तरीके से करने में विश्वास रखते थे। वे अहिंसात्मक उपायों के द्वारा अन्याय को समाप्त करना चाहते है। यह अहिंसात्मक प्रवृति उनके अंदर स्वंय उनके व्यक्तिगत परीक्षण के बाद जीवन के सत्य से पैदा हुई थी। और वास्तव में उनके द्वारा निर्देशित यह वर्तमान मे वैश्विक स्तर पर व्याप्त हिंसापूर्ण वातावरण के लिए और भी उपयोगी है। वर्तमान समय में संपूर्ण विश्व एक ऐसे वायरस से जूझ रहा जो अब तक का सबसे गंभीर खतरा है। जिसने संपूर्ण विश्व की अर्थव्यवस्था को चरमरा दिया है। आमतौर पर जब भी कोई संकट आता है तो कुछ देशों अथवा राज्यों तक ही सीमित रहता है लेकिन वर्तमान समय मे इस वायरस (COVID-19) ने संपूर्ण मानव जाति को संकट में डाल दिया है। जिससे विश्व के सभी देशों की आधुनिकता की दौड़ के गति पर विराम लग गया है। यद्यपि कोरोना वायरस को रोकने के लिए अनेक उपाय किये गये जिससे इसके तेजी से फैलते प्रसार को रोका जा सके तथापि अभी तक विज्ञान इस वायरस से बचने के लिए कोई निश्चित उपाय नही सूक्षा पाया है। ऐसे दौर में जब हर तरफ संकट गहराता जा रहा है तब एक मात्र गाँधी जी के विचारधारा का महत्व बढ़ता जा रहा है। साथ ही गाँधी दर्शन को आत्मसात करने की आवश्यकता को भी महसूस करा जा सकता है।

स्वदेशी, स्वच्छा, सर्वोदय

गाँधी जी अपने जीवन में सफाई और स्वच्छता को लेकर बेहद सजग, संवेदनशील और समर्पित थे उन्होंने कहा था कि ''स्वतंत्रता से स्वच्छता अधिक महत्वपूर्ण है।'' उनका मानना था कि जब तक हम स्वंय अपने हाथों में झाड़ू और बाल्टी न ले लेंगे, तब तक हम अपने इलाको,

* शोध छात्रा, राँची विश्वविद्यालय, राँची

शहरों और अपने देश को साफ नहीं रख सकते। देखा जाए तो सफाई और स्वच्छता गाँधी जीवन जीने का अभिन्न अंग था। गाँधी जी शारीरिक कल्याण और एक स्वस्थ वातावरण के लिए स्वच्छता को महत्वपूर्ण मानते थे। उन्हें व्यक्तिगत रूप से कई बार सफाई करते हुए देखा गया था और यही उनकी सबसे बड़ी खुबी थी कि वह केवल अपने चिंतन का प्रसार ही नही करते थे बल्कि उसे अपने व्यवहार में भी अमल करते थे। इसका एक उदाहरण 1915 ई. का कुंभ का मेला है जहाँ वह एक तीर्थयात्री के रूप में न जाकर सफाई करने के लिए एक स्वंयसेवक के रूप में गये थे। उनका मानना था कि प्रत्येक व्यक्ति को स्वंय मे एक सफाईकर्मी होना चाहिए। इसी प्रकार जब दक्षिण अफ्रिका में प्लेग का प्रकोप फैला यह जोहांसबर्ग के आस–पास के क्षेत्र में खादानों वाले इलाके में फैला था। उस वक्त भी गाँधी जी ने स्वंय के जीवन को खतरे में डाल कर रोगियों की सेवा की। इस घटना के बाद उन्होंने लिखा था ''हमें स्वच्छता और सफाई का मूल्य पता होना चाहिए ... हमे गंदगी को स्वंय के बीच से हटाना होगा।'' उनके विचार मे 'स्वच्छता' स्वंय मे ही एक ईनाम है। दक्षिण अफ्रिका से लौटने के पश्चात् से मृत्यु पर्यन्त तक वे स्वच्छता के प्रति लोगों को जागरूक करते रहे। उन्होंने स्कूल तथा उच्च शिक्षा के पाठयक्रम में भी स्वच्छता को तुरंत शामिल करने पर जोर दिया था। आजाद भारत के साथ–साथ स्वच्छ भारत गाँधी जी का सपना था। जिसके लिए वे मुत्युपर्यन्त प्रयास करते रहे।

वर्तमान स्थिति में भी इसी सफाई और स्वच्छता को जीवन में अपनाने की आवश्यकता है। कोरोना वायरस से बचने के लिहाज से हमें स्वंय के, साथ–साथ परिवार, समाज को संक्रमण से मुक्त रखना जरूरी है। व्यक्तिगत स्वच्छता इस वक्त महत्वपूर्ण है और इस बुनयादी आदत पर अमल करके हम स्वंय के साथ–साथ देश को भी इस वैश्विक माहामारी (COVID-19) रूपी वायरस के प्रकोप से बचा सकते है। इस तरह वर्तमान में गाँधी द्वारा निर्देशित स्वच्छता ही प्रत्येक व्यक्ति की प्राथमिकता बन गई है।

इसी प्रकार गाँधी जी ऐसे पहले भारतीय थे जिन्होंने 1909 में अपनी पुस्तक 'हिंद–स्वराज' में मशीनीकरण के भयावह रूप को रेखांकित करते हुए 'स्वदेशी' के महत्व को बताये थे। उनका मानना था कि इससे 'स्वराज' को बढ़ावा मिलेगा। उन्होंने स्वदेशी की अवधारणा को राष्ट्रीय स्तर पर बहुआयामी स्वरूप प्रदान करने का कार्य वर्ष 1920 में असहयोग आंदोलन की शुरूआत के साथ किया। गाँधी जी की स्वदेशी भावना में सर्वप्रथम अपने पूर्वजों के धर्म या संस्कृति को अपनाना (समयानुसार परिवर्तन के साथ) शामिल है। यह धार्मिक स्वदेशी भावना है।

किसी भी संस्कृति का आधार वास्तविक धर्म में है जो कभी नष्ट नही हो सकता। वर्तमान समय में गाँधी जी के इस विचार पर अमल करना आवश्यक है क्योंकि धर्म के रीति–रिवाज, क्रियाकांड में नई पीढ़ी की रूचि

कम होती जा रही है और पाश्चात्य संस्कृति उनपर हावी होती जा रही है। समाज दिशाहीन होता जा रहा है, युवा पीढ़ी में अपने अतीत के प्रति सम्मान कम होता जा रहा है। इसी प्रकार समस्याएँ अनगिनत है किन्तु इसके लिए किसी एक व्यक्ति को दोषी नहीं कहा जा सकता वरन् पूरा समाज इसके लिए दोषी है। इसलिए वर्तमान में गाँधी जी के 'धार्मिक स्वदेशी' अपनाते हुए स्वंय में सुधार लाने की आवश्यकता है तथा अपने पुरातन संस्कृति, जिसके लिए भारतवर्ष को 'विश्वगुरू' की संज्ञा दी गई है, उसे व्यवहार में जीवंत करने की आवश्यकता है ताकि आने वाली पीढ़ी का भविष्य सही दिशा में जा सके।

दूसरा, गाँधी जी की स्वदेशी भावना में विदेशी वस्तुओं के परित्याग तथा स्वदेश में निर्मित वस्तुओं के उपभोग की बात शामिल है। यह 'आर्थिक' स्वदेशी भावना है। गाँधी जी के अनुसार स्वदेशी अपनाकर ही स्वतंत्रता को पाया जा सकता था वर्तमान स्थिती को देख कर भी यही कहा जा सकता है कि जब तक हम स्वदेशी को अपनाएंगे तब तक हम स्वस्थ और निरोग रहेंगे। पाश्चात्य संस्कृति की चकाचौंध को 'प्रगति' समझकर अगर जीवन में अपनाए तो हमें अनेक बीमारियों को भी उसके साथ में ही अपनाना पड़ेगा। इसलिए गाँधी जी के 'स्वदेशी' को जीवन में अपनाते हुए हमें स्वंय को स्वस्थ, निरोग और आत्मनिर्भर बनने की आवश्यकता है और इसी के आधार पर वर्तमान समय में माननीय प्रधानमंत्री जी के द्वारा भी स्वदेशी अपनाओं देश बचाओ की बात की जा रही है क्योंकि स्वदेशी भावना देश–प्रेम की भावना है, यह अपने राष्ट्र के प्रति सम्मान को दर्शाता है।[4] और साथ ही स्वदेशी अपनाने से उस पर होने वाला लाभ भी देश का होता है। जिससे देश को आर्थिक रूप से मजबूती मिलती है जिसके फलस्वरूप देश तरक्की करता है। इसके साथ ही स्वदेशी उत्पादन को बढ़ावा देने से रोजगार के नये अवसर भी उत्पन्न होते है जिससे बेरोजगारी की समस्या खत्म होती है। जो की वर्तमान में देश की सबसे बड़ी समस्या है।

गाँधी चिंतन में सर्वोदय की बात की गई है। सर्वोदय सबका उदय है। गाँधी जी समाज के प्रत्येक व्यक्ति के पूर्ण विकास की बात करते है क्योंकि व्यक्ति के संपूर्ण विकास से ही समाज का विकास होता है। सर्वोदय की दृष्टि से जीवन विज्ञान भी है, कला भी। प्रत्येक जीव के प्रति समादर और सहानुभूति ही सर्वोदय का मार्ग है।[5] सर्वोदय जीवन के शाश्वत और व्यापक मूल्यों की स्थापना चाहता है और बाधक मूल्यों का निराकरण। सर्वोदय की अवधारणा में हृदय–परिवर्तन, जीवन–शुद्धि, साधन शुद्धि और प्रेम का अधिकाधिक विस्तार शामिल है।[6] जो तू है, वही मैं हूँ। इसी भाव को अपनाने से सारे भेदभाव दूर होंगे। वर्तमान परिस्थिती में धन की सत्ता से संपूर्ण विश्व मोहवास में बँधा हुआ है। पर अन्याय, घोटाला, बईमानी, हिंसा, चौरी, डकैती इत्यादि इन सबकी जड़ पैसा है। मनुष्य इस माया में पड़कर अपना कर्तव्य और अपने दायित्व को भूल बैठा है। किंतु मनुष्य चाहे कितनी

भी भौतिक संपति अन्याय, शोषण और बईमानी से इकट्ठा कर लें, उससे उसे आत्मिक संतोष और सुख का अनुभव नहीं मिल सकता। आज भौतिक सुख सुविधाओं की अदम्य लालसा में स्वंय मनुष्य समाज का ही अस्तित्व संकट में दिखाई पड़ रहा है। इसके साथ ही प्रकृति पर भी इसका प्रतिकूल प्रभाव दिख रहा है। आज ग्लोबल वार्मिंग का मुख्य कारण हमारी भौतिकवादी और उपभोगतावादी जीवनशैली है। इससे हम अनेक बिमारियों के शिकार हों रहे है। इसलिए, हमें अपने आचरण में सुधार करने के साथ ही पर्यावरण का भी अनावश्यक दोहन बंद करना होगा। हमें यह समझना होगा कि स्वंय के अस्तित्व के लिए प्राकृतिक सामंजस्य का होना भी आवश्यक है। यही बात गाँधी जी भी कहते थे। उन्होंने कर्म को प्रधान माना था और भोग को नकारा था– ''India is the land of karma Bhumi Not Bog-bhumi''

उन्होंने काफी पहले ही वर्तमान संकट से सभी को आगाह करते हुए कहा था कि ''प्रकृति के पास मनुष्य के आवश्यकता को पूरा करने के बहुत कुछ है लेकिन लोभ और लालच को पूरा करने के लिए कुछ नहीं है।'' पर्यावरण संकट को देखते हुए उन्होंने पर्यावरण संरक्षण की बात की थी। उनका कहना था कि पर्यावरण संरक्षण वास्तव में मानव जीवन के लिए जीवन और मरण का प्रश्न है। और इसके लिए उन्होंने जीवन शैली में बदलाव के साथ ही आवश्यकताओं को कम करने पर बल दिया।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि महात्मा गाँधी ने सभी क्षेत्रों (सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, राजनीतिक) में आदर्श स्थापित किये। उन्होंने इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए केवल स्वंय को समर्पित ही नहीं किया बल्कि देश की जनता को भी प्ररित किया और आशानुरूप परिणाम भी प्राप्त किये। उनकी जीवन दृष्टि भाव ही नहीं संपूर्ण विश्व के कल्याण का मार्ग प्रशस्त करती है। वर्तमान में गाँधी जी हमारे बीच नही हैं किन्तु प्रेरणा एंव प्रकाश के रूप में उनका मार्गदर्शन निरंतर हमारे साथ है। वर्तमान में गाँधी चिंतन की सार्थकता प्रत्येक क्षेत्र मे है। और इसका एक उदाहरण स्वच्छता के क्षेत्र में स्वच्छ भारत के आईकन रूप में गाँधी जी को चुनकर हुआ है। चिंतन क्रिया और प्रभाव को जो सामन्जस्य गाँधी चिंतन में है वह अन्य किसी विचार धारा में नहीं है। वास्तव में उनके चिंतन में समस्त मानव जात्ति को दीर्घकाल तक ..... करने की अद्वितीय क्षमता है। भावी विश्व के अस्तित्व का एक मात्र विकल्प 'गाँधीवाद' है।

***

शब्दार्थ सम्बन्ध : एक विश्लेषणात्मक विवेचना

अर्चना कुमारी *

भूमिका : भारतीय भाषा दर्शन का सम्बन्ध अपनी समग्रता में विविधता तथा एकता का दिग्दर्शन हैं। इसका कारण संभवतः यह था कि भारतीय परंपरा में कभी भी वैचारिक संकीर्णता नहीं रही। भारतीय दर्शन के सम्प्रदाय सिद्धान्त की दृष्टि से विभिन्न हैं। किन्तु लक्ष्य की दृष्टि से एक है। इस दर्शन का चरम लक्ष्य मोक्ष प्राप्ति या आत्मोपलब्धि है। जिसकी प्राप्ति में ज्ञान की महत्वपूर्ण भूमिका है। ज्ञानका माध्यम भाषा है इसलिए भारतीय दर्शन में भाषा के स्वरूप, चिन्तन को विशद् स्थान मिला है। भारतीय दर्शन में विभिन्न सम्प्रदाय है– वस्तुवादी, अध्यात्मवादी, अद्वैतवादी आदि तथा सभी दर्शन ने अपनी तत्वशास्त्रीय दृष्टि को आधार रखकर ही भाषा पर विचार है जैसे न्याय दर्शन वस्तुवादी है, वह वस्तुवादी दृष्टिकोण से भाषा का विश्लेषण करता है। मीमांसा वेद को अपौरुषेय मानता है, वह शब्द को नित्य मानता है। भर्तृहरि पर श्रुतियों और वेदान्त का प्रभाव था।

यदि हम देखें तो भारतीय दर्शन में भाषा पर विचार तो वेद से ही प्रारम्भ है। भाषा का विश्लेषणात्मक रूप ब्राह्मण ग्रन्थ में और दार्शनिक रूप उपनिषद् में देखने को मिलता है। उपनिषद् भाषा के तत्व की उच्चत्तर सत्ता पर जोर दिया, तथा इसके अनुसार भाषा वह नहीं है जो बोला जाता है, बल्कि वह उससे उच्चतर है वाणी उस भाषा का संकेत मात्र हैं। भर्तृहरि जो वैयाकरण दर्शन के एक प्रसिद्ध दार्शनिक है वह इसी विचार का अनुकरण करते हैं।

यदि भाषा ज्ञान का साधक है। भाषा जो बोला है अर्थात् शब्द तो प्रश्न है कि शब्द क्या हैं? जो हम बोलते–लिखते हैं वही शब्द है तो इस पर विचार भिन्न दर्शन ने अपने–अपने ढंग से किया है हम भारतीय दर्शन के तीन प्रभुत्व दर्शन न्याय, मीमांसा, वैयाकरण दर्शन को केन्द्र में रखकर ही अपने विषय पर विचार करेंगे।

शब्द का स्वरूप : सभी के विचार शब्द के स्वरूप के विषय में विभिन्न है– न्याय दर्शन – आप्त का उपदेश ही शब्द है। ये वर्ण के समूह को ही शब्द कहते हैं, तथा शब्द की उत्पत्ति मानते हैं और उत्पत्ति धर्म वाला होने के कारण शब्द अनित्य है; तथा शब्द की अनित्यता को प्रतिपादित करने के लिए नैयायिक कहते हैं कि उच्चारण से पूर्व अनुलब्धि होने से तथा आवरणादि द्वारा अनुपल्बध माने जाने से शब्द अनित्य है। कहने का तात्पर्य है कि उच्चारण के पूर्व शब्द का अभाव रहता है। यदि उच्चारण के पूर्व शब्द विद्यमान होता है तो अवश्य सुनाई पड़ता। शब्द आकाश का गुण है। गुण वह होता है जो द्रव्य पर आश्रित हो एवं निष्क्रिय हो।

---

* शोध छात्रा, दर्शन एवं धर्म विभाग, कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

इसके विपरीत मत मीमांसा दर्शन का है। शब्द वर्णों का समूह है। तथा मीमांसा को वेद की प्रमाणिकता सिद्ध करना है इसलिए इसका प्रमख स्त्रोत शब्द है। इस कारण वह शब्द को नित्य मानता है। तथा यह न्याय दर्शन के विपरीत है, यह शब्द को द्रव्य मानता है तथा नित्य मानता है। शब्द की उत्पत्ति न ही अभिव्यक्ति है। अर्थात् नित्य उपस्थित शब्द आकाश में व्याप्त रहते हैं वह अभिघात से प्रकट होते हैं। मीमांसा शब्द की नित्यता के लिए तर्क देते हैं कि स्पर्शरहित आकाश हव्य नित्य है, शब्द की स्पर्श रहित है अतः शब्द भी नित्य हैं।

इन दोनों दर्शन में यह समानता है कि वह वर्ण को ही शब्द कहते हैं स्फोट को नहीं। स्फोट बुद्धि आन्तरिक शब्द है, जिससे ब्राह्म शब्द प्रकट होता है।

परन्तु वैयाकरण दर्शन के प्रमुख्य दार्शनिक भर्तृहरि ने शब्द के भौतिक रूप से ऊपर उठकर विचार किया तथा उसे तत्व के रूप में स्वीकार किया। उनके अनुसार जो बोला व सुना जाता है केवल वहीं शब्द नहीं हैं। बल्कि शब्द की बुद्धिस्थ सत्ता भी है जिसे स्फोट कहते हैं। इससे ही ध्वनि उत्पात होती है इसी बुद्धिस्थ शब्द के कारण उत्पन्न ध्वनियाँ श्रोता के श्रवणेन्द्रिय तक पहुँचकर उसे अर्थबोध कराती है। शब्द स्फोट है। वर्ण ध्वनि को शब्द अभिव्यक्ति का साधन मानते हैं। क्योंकि वर्ण नश्वर है।

शब्दार्थ का स्वरूप : शब्द के अर्थ होता है तो अर्थ का स्वरूप वाक्यपदीयम् के ब्राह्मकाण्ड में कुछ आठ प्रकार के पदार्थों का निरूपण है। जिसमें पद व पदार्थ के स्वरूप को बताया गया है। भर्तृहरि कार्यकारण भाव सम्बन्ध, तथा योग्यता रूप सम्बन्ध को महत्व देते हैं। अब यह कि पद के अर्थ से जिस पदार्थ का ज्ञान होता है वह क्या है जाति, आकृति, व्यक्ति, अर्थात् पद किसका संकेत करते हैं। तो मीमांसा जाति (सामान्य) को प्राथमिकता देते हैं। मीमांसा के दो सम्प्रदाय कुमारील भट्ट और प्रभाकर मीमांसक दो यहा पर एक मत नहीं है। प्रभाकर शुद्ध व्यक्तिवादी है तथा कुमारील शुद्ध जाति वादी है। इसके अनुसार पहले जाति का बोध होता है। तत्पश्चात् व्यक्ति का बोध होता है। क्योंकि जाति एक है जो सभी में सामान्य रूप से है किन्तु व्यक्ति अनेक है।

न्यायदर्शन अर्थात् प्राचीन न्याय दर्शन तो शब्द व्यक्ति आकृति, जाति, तीनों का ही संकेत करते हैं। नव्य नैयायिक प्राचीन नैयायिकों की अपेक्षा ओझा भिन्न मत प्रस्तुत करते हैं। जाति और आकृति से विशिष्ट व्यक्ति को शब्द का अर्थ स्वीकार करते हैं।

वैयाकरण दर्शन इन सभी मतों का खण्डन न करते हुए कहा है कि ये विवर्त रूप है अर्थात् शब्द तत्व एक है और आदि है जो विवर्त रूप से स्वयं को वर्ण पद, व्यक्ति जाति आदि के रूप में अभिव्यक्त करता है।

शब्दार्थ सम्बन्ध का स्वरूप : शब्द और अर्थ इसे ही शब्दार्थ कहते हैं। शब्दार्थ तो शब्द और अर्थ का सम्बन्ध है। इसे ही पद और पदार्थ का सम्बन्ध भी कहते हैं। पद वाचक है और पदार्थ वाच्य अतः इसे ही वाच्य वाचक सम्बन्ध भी कहते हैं। अब समस्या यह है कि अमुक शब्द कहने से

अमुक अर्थ का ही बोध कैसे होता अर्थात् घट कहने से 'कम्बु ग्रीवादिमान' वस्तु का ही बोध क्यों होता है। क्या एक विशेष शब्द से एक विशेष अर्थ का नियत सम्बन्ध है। सही मुख्य समरूप है जिसका समाधान दार्शनिकों ने अपने अनुसार किया।

न्याय के अनुसार शब्द अर्थ के बीच जो सम्बन्ध है वह 'संकेत' है। इस संकेत का स्वरूप है कि अमुक शब्द अमुक अर्थ का बोध करें इस प्रकार की इच्छा। इच्छा सादि यानत व आदि परमात्मा दोनों प्रकार की हो सकती है। शब्द और अर्थ का संकेत रूप सम्बन्ध ही शक्ति है। घट शब्द में घट रूप अर्थ बोध कराने की शक्ति है और इस शक्ति का कारण ईश्वर इच्छा है।नव्य नैयायिक इसे केवल इच्छा कहते हैं।

मीमांसक इच्छा या ईश्वर इच्छा दोनों को नहीं मानते हैं। मीमांसा के अनुसार शब्द में अर्थ का बोध करने की शक्ति स्वभाविक है। जिस प्रकार अग्नि में दाह की स्वभाविक शक्ति है उसी प्रकार शब्द अपने अर्थ का स्वभाविक बोध करता है। ये शब्दार्थ सम्बन्ध को नित्य कहते हैं। न्याय उसका खण्डन करता है वह कहते हैं कि यदि शब्द और अर्थ में प्राप्ति रूप सम्बन्ध होगा तो शब्द के समीप अर्थ व अर्थ के समीप शब्द रहने लगेगा जैसे मोदक शब्द कहते ही मुख मोदक से भर जाएगा। उसके उत्तर में मीमांसा कहते हैं कि यदि हम शब्द व अर्थ में नित्य सम्बन्ध न माने तो हमें अर्थ का ज्ञान नहीं हो सकता है।

वैयाकरण शब्द और अर्थ में सम्बन्ध को स्वीकारते हैं। तथा शब्दार्थ सम्बन्ध को नित्यता को भी महत्व देते थे। किन्तु वह उच्चारित शब्द को अविनाशी करने का प्रयास नहीं कर रहें। वह अपनी नित्यता का सम्बन्ध स्फोटात्मक आन्तरिक शब्द की अवधारणा से लेते है। बाह्यार्थ वस्तु से नहीं।

वैयाकरणदर्शन के अनुसार यह सम्बन्ध दो प्रकार का होता है। कार्य कारण भाव तथा योग्यता भाव सम्बन्ध। शब्द सुनकर अर्थ की प्रतीति होती है तो शब्द अर्थ का कारण बनता है, ज्ञात अर्थ से विवज्ञावशात् शब्द की उत्पत्ति होती है, तो अर्थ शब्द का कारण बनता है, ये परस्पर एक दूसरे के कार्यकारण है। इसी प्रकार शब्द में अर्थ का बोध करने कि योग्यता है। यह योग्यता सम्बन्ध है। इस शब्दार्थ सम्बन्ध को अभेद के रूप में स्वीकार किया गया है। यही शब्दार्थ सम्बन्ध शब्द शक्ति के नाम से जाना जाता है।

शब्दार्थ सम्बन्ध के प्रकार : शब्दों के कई अर्थ होते हैं तथा इसलिए न्याय दर्शन शब्दार्थ संबंध के दो प्रकार है– शक्ति और लक्षणा।

अभिधा : शक्ति संकेत का ही दूसरा नाम है। यह शब्द और अर्थ के बीच सहज या स्वाभाविक संबंध है। सामान्य स्थिति में इसी संबंध द्वारा शब्द से अर्थ का बोध होता है। सामान्य स्थिति में शब्द का अर्थ वाच्यार्थ या मुख्यार्थ कहलाता है।

लक्षणा : सामान्य स्थिति में शब्द का अर्थ, वाच्यार्थ होता है, परन्तु विशेष स्थिति में लक्ष्यार्थ होता है। लक्षणा शब्द की गौण वृत्ति कहलाती हैं। यह लक्षणा वही होती है जहाँ वक्ता के तात्पर्य की अनुपपत्ति हो।

लक्षणा दो प्रकार की होती हैं : जहल्लक्षण तथा अजहल्लक्षण। जहाँ पद का अर्थ बदल जाता है वहाँ जहल्लक्षणा होती है। 'गंगाया' का अर्थ है गंगा तीर। अजहल्लक्षणा में प्रकट अर्थ को छोड़ते नहीं, परन्तु साधारण वाच्यार्थ से काम नहीं चलता। न्याय व्यंजना और तात्पर्य को नहीं मानते। मीमांसा दर्शन की अविद्या व लक्षणा को ही मानते हैं। न्याय और मीमांसा में पद की ही शक्ति को मान्य किया गया है। जबकि वैयाकरण दर्शन में मुख्य शक्ति वाक्यगत होती है। पदों में वे कल्पित शक्ति स्वीकार करते हैं। नैयायिक पद में लक्षणा मानते हैं, वे वाक्य में लक्षणा नहीं मानते। मीमांस वाक्य में शक्ति मानते हैं, इसलिए उनके अनुसार वाक्य में भी लक्षणा है।

अभिधा और लक्षणा के अतिरिक्त शब्द और अर्थ के बीच व्यंजना का तात्पर्य नाम का अन्य सम्बन्ध भी माना है। उनका कहना है कि कभी–कभी शब्द से ऐसे अर्थ का भी बोध होता है जिनका बोध शक्ति और लक्षणा द्वारा संभव नहीं है। उदाहरण के लिए 'गंगायां घोषः' इस वाक्य में गंगा शब्द से लक्षणा द्वारा तीर का बोध होने पर उसमें शीतलता और पावनता का भी बोध होता है। इसलिए ऐसे अर्थों के बोध को सम्पादित करने के लिए व्यंजना माननी पड़ेगी। इसी कारण वैयाकरण दर्शन में शब्द के व्यंजना वति को महत्वपूर्ण ध्यान दिया गया है।

निष्कर्ष : भाषा जिससे हमारा लोक व्यवहार चलता है, फिर भी जिस पर हम पूर्ण रूप से ध्यान नहीं देते हैं। परन्तु हमारे भारतीय दर्शन के भाषा दर्शन में विभिन्न दार्शनिकों ने भाषा पर विचार किया है। किन्तु हम उसे चिन्तन रूप से नहीं कह सकते हैं। क्योंकि वह अपनों को अपने तत्व मीमांसीय व ज्ञानमीमांसीय विचारों को ध्यान रमें रख कर विचार करते, फिर भी भर्तृहरि भाषा को भौतिक स्तर से उठाकर अध्यात्मिक स्तर पर लिया है। और शब्द की व्यापकता को बताया है।

सन्दर्भ :

1. डॉ. कैलाशपति मिश्र : शब्दाद्वैत दर्शन
2. डॉ. कैलाशपति मिश्र : भारतीय भाषा दर्शन, कला प्रकाशन, वाराणसी 1996
3. डॉ. आभा सिंह : शब्दार्थ–मीमांसा, वाराणसी प्रकाशन मन्दिर, जगतगंज वाराणसी 2008
4. डॉ. कैलाश पति मिश्र : शब्दाद्वैत दर्शन, कला प्रकाशन, वाराणसी 2006
5. Tiwari, Devendra Nath : "The central problem of Bhartinari Philisophy" : I.C.P.R. New Delhi 2008
6. भतृहरि, वाक्यपदीयम् (तृतीय काण्ड) व्याख्याकार प्रो0 हरिनारायण त्रिपाठी, वाराणसी, चौखम्भा, संस्कृत सीरिज, 2015

***

भारतीय दर्शन में पर्यावरणीय नैतिकता और वर्तमान में इसकी प्रासंगिकता

नन्दिनी *

आज के वैज्ञानिक युग में मानव, जो कि विकास की रफ्तार में कुछ इस तरह मदमस्त है कि उसे अपने अस्तित्व का भी भान नहीं रहा है, विकास सदैव विनाश की ओर अग्रसित होता है, यह कथन आज के विकसित मानव पर सटीक बैठता है। विकास के लिए मनुष्य इतना व्यस्त है कि कब वह अपने स्वार्थ में अपनी माता स्वरूप प्रकृति का शत्रु बन बैठा, उसे ज्ञात नहीं। वह स्वयं उसके जीवन के लिए अनिवार्य पर्यावरण को क्षतिग्रस्त कर चुका है। अब प्रश्न यह है कि मानव का अस्तित्व तो इससे पूर्व भी था और वह सुखमय जीवन पहले भी व्यसीत करता था, तो अभी पर्यावरण इतना प्रदूषित कैसे हो गया? आज पर्यावरणीय नैतिकता के ज्ञान की आवश्यकता क्यों होने लगी? इन्हीं प्रश्नों का भारतीय दर्शन में क्या संभावित समाधान प्राप्त हो सकता है, इस लेख में यह जानने का प्रयत्न करेंगे।

यदि पर्यावरण के शाब्दिक अर्थ को देखें तो उसका तात्पर्य है 'जो हमें चारों ओर से घेरे है' वही पर्यावरण है। तो इस प्रकार वायु, जल, भूमि, वनस्पति, पेड़–पौधे सभी हमारे पर्यावरण के अंग हैं। हमारी प्रकृति ने इन्हीं इस प्रकार व्यवस्थित किया है जिससे सभी का जीवन संतुलित एवं सुचारू रूप से चल सके। किन्तु वर्तमान में मानव की अतिशय आवश्यकताओं एवं विलासितापूर्ण जीवन के कारण यह संतुलत विकृत हो चुका है। पर्यावरण की समस्या हमारे पूर्वजों एवं ऋषियों, मनीषियों के समय नहीं थी, किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि उन्हें पूर्व में ही ऐसी समस्यों की अशंका थी, इसलिए उन्होंने उस समय ही इन विषयों पर गहन चिन्तन किया था। दर्शन का सम्बन्ध चूँकि जीवन एवं जगत् से है, अतः इसका इस समस्या से सम्बन्ध स्वतः स्थापित हो जाता है। जो विचार वर्षों पूर्व हमारे ऋषि–मुनियों ने, दार्शनिकों ने उस समय किया वह आज के लिए अत्यंत प्रासंगिक हो गया। अब पर्यावरणीय नैतिकता को दर्शन में ढूढ़ने से पूर्व इसका सामान्य अर्थ जान लेना उचित होगा। जिस प्रकार नैतिकता का सम्बन्ध मानव के उचित–अनुचित कर्मों के निर्धारण से है; उसी प्रकार 'पर्यावरणीय नैतिकता' मनुष्य के वह कर्म जो पर्यावरण को प्रभावित करते हैं, उनके मूल्यांकन के लिए है। पर्यावरणीय नैतिकता मनुष्य को मनुष्य से इतर अन्य वस्तुओं के सन्दर्भ में उसके कर्तव्य का बोध कराती है। पर्यावरणीय नैतिकता के सन्दर्भ में सबसे मूल प्रश्न यह है कि ''पर्यावरण के सन्दर्भ हमारी नैतिक बाध्यता

* शोध छात्रा, धर्म एवं दर्शन विभाग, कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

क्या है?'' इसका सामान्य तौर पर उत्तर दिया जा सकता है कि यदि हम पर्यावरण के सन्दर्भ में कोई कार्य नहीं करते हैं तो ऐसी नीति मानवकेन्द्रित होगी।[1] चूँकि मनुष्य ही एक मात्र बौद्धिक प्राणी है जो कि नैतिकता को दर्शा सकता है। और मानकेन्द्रित नीति से अन्य की स्वतन्त्रता की हानि होगी जो कि किसी प्रकार से नैतिक नहीं है। अतः मनुष्य पर्यावरण के प्रति नैतिक रूप से बाध्य है।

भारतीय परंपरा के प्राचीन ग्रंथ वेद है जिसमें प्रकृति को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ है। वहाँ पृथ्वी, अग्नि, वायु, जल आदि सभी को पूजनीय एवं पवित्र मानकर उनकी पूजा–अर्चना का विधान भी मिलता है। पृथ्वीसूक्त के अथर्ववेद के ऋषि कहते हैं कि ''हे! धरती माँ जो कुछ मैं तुझझे लूँगा वह उतना ही होगा जिसे तू पुनः पैदा कर सके। तेरे मर्मस्थल पर या तेरी जीवन शक्ति पर कभी आघात नहीं करूँगा।''[2] इस कथन से ही स्पष्ट है कि पहले लोग के लिए प्रकृति कितनी आदरणीय थी। किन्तु वर्तमान में मानव स्वयं को प्रकृति का स्वामी समझने लगा है, वह पहले प्रकृति का उपयोग अपनी बुनियादी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए करता था, किन्तु अब यह आवश्यकताएँ विज्ञान की सहायता से बढ़कर शौक, मनोरंजन तक आ गई और प्रकृति का दोहन प्रारम्भ हो गया।

वेदों में वैश्विक नियम के रूप में 'ऋत' की अवधारणा पाई जाती है, जिसका प्रयोग अनेक अर्थों में पाया जा सकता है। किन्तु व्यापक रूप में इसे तीन दृष्टिकोण से देख सकते हैं। वैश्विक व्यवस्था के रूप में, नैतिक व्यवस्था के रूप में और इसके धार्मिक पक्ष के रूप में जहाँ वैश्विक व्यवस्था के रूप में यह ग्रह–नक्षत्रों की गति से लेकर, सूर्योदय एवं सूर्यास्त तक का कारण है वहीं नैतिक व्यवस्था के रूप में यह कर्म, जन्म–पुनर्जन्म, दण्ड आदि से जुड़ा हुआ है। धार्मिक पक्ष के रूप में 'यज्ञ' का फल भी ऋतानुसार ही होता है और समर्पित भी ऋत को ही होता है। यहाँ प्रश्न यह हो सकता है कि ऋत का पर्यावरणीय नैतिकता से क्या सम्बन्ध है? ऋत का पक्ष अवश्य ही पर्यावरणीय नैतिकता से अत्यंत व्यापक है किन्तु नैतिकता के रूप में दोनों में सम्बन्ध है। पहले देवताओं से लेकर मनुष्य तक अपने कर्मों से बधा था और यज्ञ अनुष्ठान को अपने कर्म के रूप में करता था, साथ ही उसे अनुचित करने पर भय भी था क्योंकि कर्मफलानुसार उसे उसके कर्म का फल मिलता है तो तय था और अनैतिक कार्य का फल कभी शुभ नहीं हो सकता। वह मनुष्य के प्रति ही नहीं अपितु जीव–जन्तुओं एवं पेड़–पौधों, प्रकृति सभी के प्रति अपने कर्म को लेकर सचेत था इसलिए पूर्व में समस्याएँ भी कम थी। वह नदियों, पेड़ों आदि की पूजा–अर्चना भी करता था। किन्तु जैसे जैसे उसने विलासिता का मार्ग चुना और अपने आध्यात्म का त्याग कर अतिबौद्धिक हो कर विज्ञान का मार्ग चुना, उसने स्वयं को प्रकृति का स्वामी मान लिया। अब प्रकृति उसके लिए पूज्यनीय नहीं रही वह मात्र मानव के उपभोग का साधन बन गई। किन्तु निरन्तर त्रास के बाद मानव को जब यह

आभास हुआ कि प्रकृति का दोहन उसके अपने अस्तित्व पर संकट है तो वह अनेकों मार्ग एवं उपाय विज्ञान द्वारा खोजने का प्रयत्न करने लगा। पूना के फर्ग्युसन कॉलेज के जीवाणुशास्त्रियों ने एक प्रयोग किया, जिनके आँकड़ों के अनुसार 'अग्निहोत्र यत्र' की एक समय की आहुतियों से 30x22 x10' के हाल के लगभग 8000 घन फिट वायु में कृत्रिम रूप में निर्मित वायु प्रदूषण का 77.5प्रतिशत समाप्त पाया गया।[3] वेदों में विभिन्न प्रकार के यज्ञों का वर्णन पाया जाता है, जिसमें कुछ यज्ञ विशेष अवसर के लिए थे तो कुछ नियमित रूप से करने के लिए। यह मात्र एक औपचारिकता नहीं था, यह प्रदूषण से बचने का ही उपाय था। इस प्रकार अनेकों उदाहरण हमें प्रारम्भिक ग्रंथों में प्राप्त होते हैं जो कि पर्यावरण के लिए ही नहीं अपितु मानव, जीव–जन्तु सभी के लिए उपयोगी थें किन्तु आधुनिक मानव ने बौद्धिकता का सहारा लेकर उसका तिरस्कार कर दिया।

पर्यावरण को क्षति मानव के अनेक क्रिया–कलापों से हो रहा है। पर्यावरण में प्रदूषण का कारण औद्योगिकिकरण के साथ ही वनों की लगातार कटाई, वैज्ञानिक प्रयोग, जीव–जन्तुओं की हत्या आदि अनेकों कारण है। पिछले कुछ वर्षों में जिस प्रकार मनुष्यों की जनसंख्या का विकास हुआ है वह किसी जनसंख्या विस्फोट से कम नहीं है। और यह तो सर्वसत्य है कि जनसंख्या बढ़ेगी तो आवश्यकता भी बढ़ेगी। अपनी बढ़ती आवश्यकता की पूर्ति के लिए मनुष्य को अधिक जमीन, अधिक पानी, अधिक भोजन आदि की आवश्यकता हुई और वह पेड़ों को काटा, हानिकारक कीटनाशकों का प्रयोग कर अधिक खाद्य–उत्पाद किया। ऋग्वेद में एक कथन है ''यदि आप हजारों एवं सालों तक (अनगिनत वर्षों तक) सुखमय जीवन की इच्छा रखते हैं तो व्यवस्थित रूप से वृक्षारोपण करीये।''[4] यह कथन वर्षों पूर्व होते हुए भी आज के युग के लिए प्रासंगिक है। यदि मनुष्य ऐसी नैतिकता अपने जीवन में भी ला सके तो संभवतः वह भविष्य की दुर्दशा से बच सकेगा। भारतीय दर्शन में सामान्यतः जीव एवं अजीव की उत्पत्ति एक ही तत्व से मानी गई है और इस प्रकार सभी में उस परम तत्व का अंश माना गया है इसलिए मनुष्य के श्रेष्ठ होने का कोई प्रश्न नहीं उठता है। बृद्धारण्यक उपनिषद् में उर्द्धित हैं ईश्वर जो ब्राह्मण में है, वह जल, वायु, अग्नि एवं पेड़–पौधें में रहता है, मनुष्य में उनके प्रति श्रद्धा होनी चाहिए।'[5] वेदों में ऐसे अनेकों उदाहरण प्राप्त हो जायेंगे। जिनमें प्रकृति के बदलते स्वरूप को न समझ पाने के कारण ही मनुष्य के लिए वह अत्यधिक पूजनीय हो गई। किन्तु मानव ने जब प्रकृति का अपमान किया तो अनेकों प्राकृतिक संकट उत्पन्न होने लगें। यदि विचार करें तो क्या यह प्रकृति का प्रतिशोध प्रतीत नहीं होता? अन्यथा जीवनदायी प्रकृति अपने विकराल रूप क्यों दिखाती? मनुष्य प्रकृति पर पूर्णतया आश्रित है किन्तु प्रकृति मनुष्य पर आश्रित नहीं है और इस प्रकार मनुष्य प्रकृति का पूरक तक भी नहीं है। तो क्या आवश्यकता नहीं है कि मनुष्य अपनी हदें पहचानें?

भारतीय परंपरा में वैदिक युग से लेकर समकालीन दर्शन तक में 'अहिंसा' का पर्याप्त विवरण प्राप्त होता है। इस शब्द का पर्यावरण से एक गहरा सम्बन्ध उभर कर सामने आता है। यूँ तो अहिंसा का संकुचित अर्थ हिंसा/हत्या (किसी भी प्राणी की) नहीं करने से हैं। किन्तु भारतीय परंपरा में इसका अत्यंत विस्तृत रूप सामने आता हैं। प्रारम्भ में यज्ञादि में कुछ पशुओं की बलि का विधान था, जिसके तर्क उस समायानुसार दिए गए थें। किन्तु जैसे–जैसे समय परिवर्तित हुआ, अहिंसा का भाव स्पष्ट रूप से सामने आने लगा। याज्ञवल्क्य स्मृति में कहा गया है–

''वसेत् सः नरके घोरे दिनानि पशुरोमभिः।
संमितानि दुराचारो घोरे दिनानि पशुरोमभिः।।

अर्थात् पशु की हत्या करने वाले उतने दिनों तक घोर नरक की यातना भुगतनी पड़ती है जितने रोयें उस पशु के शरीर पर होते हैं।[6] वैसे तो 'अहिंसा' की अवधारणा लगभग सभी दर्शनों में है किन्तु जैन दार्शनिकों ने अहिंसा को एक नया आयाम दिया। जैन धर्म में अहिंसा पर अत्यधिक बल दिय गया है। अहिंसा मात्र हिंसा का निषेध नहीं, अपितु मन, वचन, कर्म से किसी का बुरा करना अहिंसा है। जैन धर्म के ग्रंथ 'तत्वार्थसूत्र' में 'परस्परोग्रहो जीवानाम्' की अवधारणा मिलती है। जिसके अनुसार आपस में एक दूसरे का उपकार करते हुए सह–अस्तित्व में रहना ही जीव का कर्तव्य/धर्म है।[7] इन सभी बातों का सम्बन्ध पर्यावरणीय नैतिकता से भी है। मनुष्य अपने स्वार्थ के लिए पेड़–पौधों की कटाई ही नहीं अपितु जीव–जन्तुओं की हत्या भी बिना सोचे करता है। मनुष्य के कुकर्मों का फल जीव–जन्तुओं को भरना पड़ रहा। पर्यावरण के बदलाव के कारण अनेकों प्रजातियाँ नष्ट हो गई। माँस–भक्षण, दवाओं, सौन्दर्य प्रसाधन आदि बहुत से उत्पाद हैं जिनमें जीव–जन्तुओं का प्रयोग होता है। यह भी एक प्रकार की हिंसा ही तो है और यह पर्यावरण के संतुलन में बाधा डालता है। इसलिए ही हमारे पूर्वजों एवं ऋषियों, मुनियों ने अहिंसा का मार्ग सुझाया होगा। 'अहिंसा' की अवधारणा की बौद्ध, जैन, सांख्य, योग से लेकर वेदान्त तक समकालीन दर्शन में गाँधी जी ने अहिंसा पर अत्यधिक जोर दिया है। गाँधी जी ने तो अहिंसा के मार्ग का पालन करते हुए ही सभी लड़ाईयाँ जीतीं। अहिंसा में दया, क्षमा, सहानुभूति जैसी भावनाओं का समावेश सा होता है। यदि कोई 'अहिंसा' के मार्ग पर चले तो वह स्वतः ही सभी वस्तुओं के प्रति सजग होगा। इस प्रकार यदि यह जीव–जन्तु, पेड़–पौधे, मनुष्य सभी के प्रति अहिंसा की भावना रखता है तो वह स्वतः ही पर्यावरण के प्रति भी अपने कर्तव्य का वहन कर लेता है। विष्णुसंहिता में लिखा है–

''यो हिंसकानि भूतानि हिनस्याष्मसुखच्छया।
सजीवंच ऋतंचैव न क्वचित् सुखमेधते।।''

अर्थात् जो व्यक्ति अपने मनोरंजन के लिए किसी अहिंसक जीव का वध करता है वह इस जीवन में मृत के समान है और उसे इहलोक और परलोक में सुख नहीं मिलता है।[8]

ऐसे अनेकों श्लोक व उदाहरण भारतीय परंपरा में मिल जाएँगे जो कि पर्यावरण के प्रति हमारे पूर्वजों के दृष्टिकोण को दर्शाते हैं और कारण भी बताते हैं कि समस्या पहले क्यों नहीं था।

भारतीय दर्शन में कर्म एवं पुनर्जन्म की अवधारणा भी स्वीकृत है जिसके अनुसार किये गए कर्म का फल–मनुष्य को अवश्य ही भोगना पड़ता है, वह इस जन्म में या पुनर्जन्म लेकर। यह अवधारणा भले ही आधुनिक मानव अपने बुद्धि के अहंकारवश स्वीकार नहीं करता किन्तु पहले के लोगों में इसका भय था। लोग अनैतिक कर्म करने से पूर्व फल पर विचार अवश्य करते थें। हमारे धार्मिक ग्रंथों में भी यही दिखाया गया है कि कर्म का फल तो अवश्य ही भोगना पड़ता है चाहे वह देवता हों या मनुष्य। भारतीय दर्शन में यह अवधारणा कभी ऋत के रूप में तो कभी अदृष्ट के रूप में देखने को मिलती है। पहले लोगों में जो धार्मिकता थी वह उन्हें अनैतिक मार्ग से बचाती थी। किन्तु अब मनुष्य में इंसानियत खत्म सा होता जा रहा, कहने को तो अनेकों कानून हैं पर अपराधी को दण्ड का कोई भय नहीं। मनुष्य को अपने कर्म का कोई भय नहीं रह गया, इसलिए वह आध्यात्म का त्याग कर विलासिता की ओर भाग रहा है। यदि मनुष्य में पूर्व की भाँति आध्यात्म एवं धार्मिकता होती तो वह पर्यावरण को क्षति कभी नहीं पहुँचाता। वह पवित्र नदियों, पेड़, जीव–जन्तुओं को हानि नहीं पहुँचाता क्योंकि यह सभी पहले मनुष्य के लिए पूज्यनीय थे और वह इनके प्रति अपने उत्तरदायित्व एवं कर्तव्य का वहन करता था।

निष्कर्ष : आज के मनुष्य की जो स्थिति है उसका उदाहरण रैनकर प्राइम की पुस्तक 'हिन्दूइज्म एंड इकोलॉजी, सीड्स ऑफ ट्रुथ' में बहुत ही खूबसूरत ढंग से मिलता है। एक आदमी अपने घर की शोभा बढ़ाने के लिए एक बहुत ही सुन्दर पिंजड़ा खरीदता है, दिन भर उस पिजड़े को साफ–सुथरा आदि करता है। उसे पिंजड़े के अन्दर एक चिड़िया है जिसकी तरफ उस व्यक्ति का कोई ध्यान नहीं जाता है। जब वह अपने मित्र को बड़े ही गौरवपूर्ण तरीके से पिजड़ा दिखाता है, तो मित्र का ध्यान उस पिजड़े की जगह भूख से मर रही चिड़िया पर जाता है।''[10] इसी प्रकार आज के मनुष्य की आत्मा उस चिड़िया की भाँति है कि मर रही है और मनुष्य को उसका ज्ञान भी नहीं हो रहा। और वह पिंजड़ा आज के युग के सभी भौतिक वस्तुओं का प्रतीक है जिसकी ओर मनुष्य आकर्षित होता है। तो अब समय सिर्फ पर्यावरण की रक्षा की नहीं अपितु मनुष्य के स्वयं के अस्तित्व के रक्षा का भी है। यदि मनुष्य अपने अन्तरात्मा को स्वच्छ, पवित्र, निर्मल बना सका तो समस्याएँ स्वतः कम होने लगेंगी। किन्तु पर्यावरणीय नैतिकता के लिए सभी को मिलकर प्रयत्न करना होगा। इस नैतिकता को अपना कर्तव्य समझ

कर कार्य करें तो समस्या का समाधान अब भी सम्भव है। मशीन बनते जा रहे मनुष्य की भावनाओं को पुनः जागृत कर पर्यावरण की रक्षा की जा सकती है। विकास और विज्ञान को रोक दिया जाय, ऐसा कहने का मेरा कोई तात्पर्य नहीं है। किन्तु हम अपनी पंरपरा की अच्छाईयों को पुनर्जीवित कर सकें तो इससे हमारा ही लाभ होगा। आडंबर एवं अंधविश्वास का त्याग कर प्रासंगिक बातों का विश्वास तो कर सकते हैं। अपनी आवश्यकताओं की सीमा निर्धारित कर सकते हैं। विकास करें किन्तु उतना ही जो विनाश का आवाह्न न कर दे।

सन्दर्भ :

1. https;//iep.utm.edu/envi-eth/
2. पृथ्वीसूक्त, अथर्ववेद
3. परमहंस आत्मानन्द स्वामी, ''पर्यावरण–प्रदूषण निवारण की दिशा में एक प्राचीन भारतीय दृष्टिकोण'' विज्ञान, तकनीकि और पर्यावरण 2001, सम्पादक प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव, विज्ञान परिषद्, प्रयाग, पृ0सं0 11
4. Renugadevi R. : 'Environmental ethics inhindu vedas and puranas in India"; Africa Journal of History and Culture (AIHC), Vol. 4,
5. Ibid
6. श्रीवास्तव एल. : ''पर्यावरण प्रदूषण से हमारे पूर्वज भी सावधान थे'', विज्ञान तकनीकि, और पर्यावरण 2001, सम्पादक– प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव, विज्ञान परिषद, प्रयाग, पृ. 87.
7. en.m.wikipedia.org
8. श्रीवास्तव एल. : ''पर्यावरण प्रदूषण से हमारे पूर्वज भी सावधान थे'', विज्ञान तकनीकि श्रीवास्तव और पर्यावरण 2001, प्रेमचन्द्र
9. Prime, Ranchos : "Hinduism and Ecology : Seeds of truth", Matital Banarasidass Pulishers Private limitted, Delhi, 2003, P.No. 4

***

विकासशील देशों में मानव संसाधन विकास एक अध्ययन

डॉ. आशुतोष कुमार भारती *

सम्पूर्ण विश्व समाज विकसित तथा विकासशील दो समाजों में बँटा हुआ है। विकसित समाज में मानव संसाधन अपने चरम बिन्दु पर होते हैं तो वहीं विकासशील समाज में मानव संशाधन विकासोन्मुख होते हैं। विकासशील समाज में निर्धनता, बेरोजगारी, भुखमरी, अशिक्षा, धार्मिक अन्धविश्वास एवं जातीय–वर्चस्वता का निराकरण कर व्यक्ति जब देश की आर्थिक विकास की प्रक्रिया में सहभागिता देने का प्रयास करता है तो मानव संसाधन के विकास के रूप में देखा जाता है। भारत जैसे विकासशील देश में दक्षता विकास को मानव संसाधन विकास की प्रमुख रणनीति के रूप में देखा जाता है, मानव संसाधन वह अवधारणा है जो जनसंख्या को अर्थव्यवस्था पर दायित्व से अधिक परिसंपत्ति के रूप में देखती है। शिक्षा प्रशिक्षण एवं चिकित्सा सेवाओं में निवेश के परिणामस्वरूप जनसंख्या मानव संसाधन के रूप में बदल जाती है। मानव संसाधन उत्पादन में प्रयुक्त होने वाली पूंजी सरीखा है। यह मानव पूँजी कौशल और उसमें निहित उत्पादन के ज्ञान का भण्डार है साथ ही प्रतिभाशाली और काम पर लगे हुए लोगों और संगठनात्मक सफलता के बीच की कड़ी को पहचानने का सूत्र है। यह उद्योग, संगठनात्मक मनोविज्ञान और सिद्धान्त प्रणाली सम्बन्धित अवधारणाओं से सम्बद्ध है। मानव संसाधन की सन्दर्भ के आधार पर दो व्याख्याएँ मिलती है। प्रथमतः इसका मूल अर्थ राजनीतिक अर्थव्यवस्था और अर्थशास्त्र से लिया गया है जहाँ पर इसे पारम्परिक रूप से उत्पादन के चार कारकों में से एक श्रमिक कहा जाता है। पहला तरीका अधिकतर मानव संसाधन विकास के संदर्भ में प्रयुक्त होता तथा संगठनों से शुरू होकर राष्ट्रीय स्तर तक होता है। दूसरा व्यक्तिगत मुद्दों से सम्बन्धित होता है जिसे साधरणतः मानव संसाधन प्रबन्ध के रूप में जाना जाता है।

मानव संसाधन कृषि शुरू होने से पहले ही व्यवसाय तथा संगठनों का हिस्सा रहा है। उन्नीसवीं सदी के प्रारम्भ से ही उत्पादन की क्षमता बढ़ाने के तरीकों की मानव संसाधन को यांत्रिक रूपों में नहीं बल्कि मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से एकता तथा निष्ठा का एक संगठनात्मक सफलता में महत्वपूर्ण योगदान होता है तथा कहा गया कि मानव संसाधन संगठनों में अनुशासन बनाये रखने के लिए ही नही अपितु विकास नीति का भी केन्द्र बिन्दु है।

---

* भूगोल विभाग, बी.एन. मण्डल विश्वविद्यालय, लालू नगर, मधेपुरा

मानव संसाधन प्रबन्ध किसी भी प्रतिष्ठान की सबसे मूल्यवान उन अस्तियों के प्रबन्धन तथा कौशलगत और सुसंगत दृष्टिकोण है जिसके द्वारा व्यक्तिगत और सामूहिक रूप से व्यापार के उद्देश्यों को प्राप्त करने का कार्य किया जाता है। सामान्य अर्थ में मानव संसाधन प्रबन्धन का तात्पर्य रोजगार सृजन के साथ–साथ उनके संसाधनों का विकास करना, उपयोग करना, उनकी सेवाओं को काम और प्रतिष्ठान की आवश्यकता के अनुरूप बनाये रखना और बदले में उनका भरण–पोषण करते रहना है। विकासशील समाज में मानव संसाधन को विकसित करने में मानव संसाधन प्रबन्धन की महत्वपूर्ण भूमिका हो सकती है तथा इसी पर मानव संसाधन के विकास का भविष्य निर्भर है।

मानव संसाधन विश्लेषण आर्थिक विकास की प्रक्रिया में जन शक्ति महत्वपूर्ण भूमिका को रेखांकित करता है। यह उपलब्ध मानव संसाधनों के द्वारा वर्तमान एवं भविष्य की जनशक्ति आवश्यकताओं व सम्भावनाओं का परीक्षण करता है। मानव संसाधन विश्लेषण के द्वारा जनशक्ति के लिए किये विनियोग के लिए नीति निर्धारित की जाती है जिसके द्वारा विकासशील राष्ट्रों के सीमित संसाधनों का कुशलता के साथ उपयोग हो सके। मानव संसाधन विश्लेषण मानव संसाधन का बेहतर उपयोग करने के मार्ग में आने वाली बाधाओं का निर्दिष्टिकरण संभव बनाता है।

विकासशील समाजों में मानव संसाधन विकास अति आवश्यक है क्योंकि यहाँ पर विज्ञान तकनीकी एवं नवीनतम यंत्र उपकरणों का प्रयोग नित्य–प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है ऐसी स्थिति में इन्हें संचालित करने के लिए कुशलता तथा तकनीकी ज्ञान की आवश्यकता पड़ती है साथ ही विकास की प्रक्रिया मानव संसाधन विकास के दृष्टिकोण को आधुनिक बनाते हैं। बेकर, थियोडर शल्ज तथा मयर्स जैसे अर्थशास्त्रियों ने मानव संसाधन विनियोग को देश के आर्थिक विकास हेतु आवश्यक माना है। उनका मानना है कि यदि मानवीय संसाधनों पर अत्यविनियोग किया जाए तो श्रम की कुशलता न्यून होगी, उपक्रमशीलता का अभाव होगा तथा सामाजिक संस्थाएँ एक न्यून स्तर पर ही कार्य कर पाएंगी। कम विकसित देशों में भौतिक पूंजी की अवशोषण क्षमता अल्प होती है इसके पीछे तकनीकी रूप से कुशल व्यक्तियों, प्रशिक्षण श्रम एवं प्रशासनिक कुशलताओं का अभाव होता है। इन दुर्बलताओं को दूर करने के लिए जनशक्ति नियोजन किया जाना आवश्यक माना जाता है। आर्थिक रूप से मानव संसाधन नियोजन में प्रबन्धकीय, वैज्ञानिक अभियंत्रण व अन्य तकनीकी कुशलताओं का विकास एवं समर्थ उपयोग सम्मिलित है जिससे संगठनों का सृजन, विस्तार एवं विकास संभव हो सके। उत्पादक सेवाओं, उपक्रम व आर्थिक संस्थाओं की क्रियाशीलता में वृद्धि हो।

विकासशील देश एक सुस्पष्ट प्राथमिकता पर आधारित नहीं रहते जिससे कुशल व प्रशिक्षित जनशक्ति की आवश्यकता व इसकी उपलब्धता

के मध्य असंतुलन विद्यमान रहता है। विकासशील देशों में मानव संसाधन विकास में अनेक कठिनाईयाँ दृष्टिगत होती रही है।

- उच्च स्तर की मानव शक्ति का दुर्लभता– विकासशील देशों ने उच्च स्तर की मानवशक्ति की आवश्यकता इस कारण है कि उन देशों में पूंजी की अवशोषण आसानी से नहीं हो पाता। अतः उच्च स्तर की मानव शक्ति के विकास द्वारा ही कुशलताओं का सृजन एवं उपयोग संभव है जिसके लिए शिक्षा एवं प्रशिक्षण आवश्यक है।
- अतिरेक मानव शक्ति का उपयोग : विकासशील देशों ने अप्रशिक्षित एवं अकुशल जनशक्ति की अधिकता के पीछे जनसंख्या में होने वाली तीव्र वृद्धि, शिक्षा प्रणाली का दोषपूर्ण होना है जिसके लिए अतिरेक श्रमशक्ति के उपयोग हेतु जनसंख्या वृद्धि नियंत्रण, बाजार की अपूर्णताओं का निराकरण व सामाजिक संरचना में विद्यमान दोषों व विकृतियों का निराकरण आवश्यक है।

विकासशील देशों में कौशल, व्यक्तियों की दुर्बलता व अकुशल श्रम आधिक्य एक दूसरे से सम्बन्धित है। अतः विकास कार्यक्रमों को इस प्रकार चलाया जाना चाहिए कि औद्योगीकरण की आवश्यकताओं के अनुरूप प्रशिक्षित श्रम समय पर उपलब्ध हो सके। साथ ही यहाँ पर मानव संसाधन का समर्थ उपयोग इस कारण नहीं हो पाता क्योंकि शिक्षा प्रणाली दोषपूर्ण होती है तथा शिक्षा से सम्बन्धित अन्तर्संरचना का समुचित निर्माण नहीं हो पाया है। वस्तुतः शिक्षा प्रणाली ऐसी होनी चाहिए जो शिक्षित व्यक्तियों की संख्या को राष्ट्रीय विकास की आवश्यकताओं के अनुसार संतुलित रखने में समर्थ हो विकासशील देशों में मानवीय प्रयासों को गतिशील करने में समर्थ और समुचित संगठनात्मक ढाँचे की कमी दिखायी देती है।

वास्तव में प्रबन्धन की कारगर प्रणाली ही वित्त, उत्पादन एवं बाजार की क्रियाओं का विस्तार करते है। अतः मानव संसाधन के उपयोग हेतु व्यक्तियों के सामुहिक प्रयास औद्योगिक अनुशासन उत्पादक के बेहतर संगठन तथा कर्म के प्रति निष्ठावान सामाजिक वातावरण स्थापित किया जाना आवश्यक है। विकासशील देशों में मानव संसाधन विकास समुचित प्रेरणाओं के अभाव से ग्रस्त हैं। समाज में व्याप्त संकुचित दृष्टिकोण व निराशावादी मनःस्थिति युवा शक्ति को जोखिम एवं अनिश्चितता से जूझने की शक्ति प्रदान नहीं करती। सामान्यतः इन देशों में श्रम को प्रतिष्ठा नहीं मिलती तथा व्यक्ति की पारिवारिक पृष्ठभूमि, उसकी जाति, उसके पद वैभव के आधार पर प्रतिष्ठा मिलती है। तकनीकी धन्धों में लगे कामगारों को न्यून मजदूरी प्राप्त होती है तथा प्रतिष्ठानों में मालिक उनका भरपूर शोषण करते हैं।

विकासशील देशों में अफसरशाही के प्रचलन के कारण युवा मानव शक्ति में सृजनात्मक प्रतिभा का विकास नहीं हो पाता तथा इनमें गहरी

निराशा तथा तनावपूर्ण वातावरण में कार्य करना पड़ता है। मानव शक्ति के समर्थ उपयोग के लिए आवश्यक हो जाता है कि अन्य प्राथमिकता वाली क्रियाओं एवं पेशों में मानव शक्ति का अनुकूल आवंटन किया जाए। इस हेतु विभिन्न प्रकार के देशों में चाही जाने वाली कुशलता को निर्मित करके उसे प्रोत्साहन देने का अवसर प्रदान किये जाने होंगे।

कई विकासशील देशों में अभियन्ताओं, प्रबन्धकों, चिकित्सकों व कुशल प्रशासकों की भारी कमी दिखाई देती है। जिसके पीछे प्रशिक्षण की समुचित व्यवस्था का न होना तथा तकनीकी प्रशिक्षण प्राप्त करने के प्रति श्रमशक्ति की उदासीनता भी होती है। यही नहीं कम वेतन व सुविधाओं में कमी होने के वजह से कुशल मानव संसाधन विदेशों में प्रवास कर जाती है जिससे दुहरा नुकसान इन देशों को उठाना पड़ता है। विकासशील देशों में मानव संसाधन विकास में समस्याओं के पीछे कारण देखे जा सकते हैं।

- विकासशील देश लम्बे उपनिवेशवाद का शिकार होने के चलते इसकी शिक्षा प्रणाली मानव संसाधन विकास के प्रति उत्तरदायी नहीं हो पायी है।
- विज्ञान व तकनीकी प्रशिक्षण से सम्बन्धित ऐसी संस्थाओं का अभाव है जो माध्यमिक स्तर तक विद्यार्थियों को तैयार कर सके।
- मानवविकी के सापेक्ष विज्ञान विषयों की शिक्षा पर अधिक व्यय करना पड़ता है क्योंकि प्रयोगशाला स्थापना, यंत्रों की खरीद व उनके रख–रखाव तकनीकी सहायकों की नियुक्ति पर काफी व्यय करना पड़ता है।
- यहाँ पर स्कूलों, कालेज तो हैं लेकिन इनमें पर्याप्त सुविधायें विद्यमान नहीं होती न ही प्रशिक्षित प्राध्यापक ही होते हैं।
- शिक्षा के स्तर पर ह्रास तब भी होता है जब मानक पुस्तकों के स्थान शिक्षण संस्थाओं में गेस पेपर, गाइड व अन्य सामग्री को आधार बनाया जाता है।

विकासशील देशों में मानव संसाधन की आवश्यकताएँ कई कारकों पर निर्भर करती है जैसे– जनसंख्या में वृद्धि, नवप्रवर्तन की दर, भौतिक पूंजी विनियोग का परिणाम एवं अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियाँ, यही कारण है कि इन देशों में मानव संसाधन का आवश्यकताओं का स्पष्ट निरूपण नहीं हो पाता। अतः मानव संसाधन विकास में अड़चने आना स्वाभाविक है।

विकासशील देशों में भौतिक पूंजी की अवशोषण क्षमता अल्प होती है क्योंकि तकनीकी रूप से कुशल व्यक्तियों, प्रशिक्षण श्रम एवं प्रशासिनक कुशलताओं का अभाव होता है इस दुर्बलताओं को दूर करने के लिए जनशक्ति नियोजन किया जाना आवश्यक है।

मानव संसाधन नियोजन उस प्रक्रिया को सूचित करता है जो आर्थिक एवं अन्य लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए मानवशक्ति के उपयोग एवं विवरण के उद्देश्यों, नीतियों व कार्यक्रम को ध्यान में रखती है। इसमें संगठनों एवं संस्थाओं का विकास भी सम्मिलित है जो मानव शक्ति कार्यक्रमों को संचालित करते हैं।

मानवशक्ति नियोजन वस्तुतः आर्थिक नियोजन से भिन्न है, आर्थिक नियोजन में पदार्थ व आर्थिक संसाधनों के उपयोग में अनुकूलन विकास को ध्यान में रखा जाता है जबकि मानव संसाधन नियोजन में व्यक्तियों की योग्यता, कुशलता, ज्ञान एवं प्रेरणाओं के विकास को ध्यान में रखा जाता है। प्रो. हारविंसन का मानना है कि मानव संसाधन नीति को श्रम शक्ति के वास्तविक या संभावित सदस्यों के विकास अनुरक्षण एवं उपयोग को ध्यान में रखा जाता है। इसमें वह समस्त श्रम शक्ति निहित है जो पूरी तरह से उत्पादक कार्यों में रोजगार प्राप्त कर रही है या कार्य के अवसर जुटा नहीं पायी है।

आर्थिक रूप से मानव संसाधन नियोजन में प्रबंधकीय, वैज्ञानिक अभियंत्रण व अन्य तकनीकी कुशलताओं का विकास एवं समर्थ उपयोग सम्मिलित है जिससे संगठनों का सृजन, विस्तार एवं विकास सम्भव हो सके। उत्पादक सेवाओं, उपक्रम व आर्थिक संस्थाओं की क्रियाशीलता में वृद्धि हो सके।

स्पष्टतः कहा जा सकता है कि मानव संसाधन नियोजन द्वारा विकासशील देशों में आर्थिक विकास हेतु प्रभावी योजनाएँ निर्मित की जा सकती है बशर्ते उच्च शिक्षा एवं प्रशिक्षण की सुविधाओं में होने वाली मात्रात्मक व गुणात्मक वृद्धि मानवीय क्षमताओं कुशलताओं और सृजनात्मक स्तर के अनुसार उच्च प्रतिमान स्थापित किया जाए।

संदर्भ

1. डॉ. एम. पी. शर्मा, लोक प्रशासन के सिद्धान्त एवं व्यवहार, किताब महल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010, पृ. 210.
2. लारविंसन एवं मेयर्स, Education, Man Power and Economic Growth, 1970.
3. लेस्टर– Man Power Planning in a Free Society.
4. डॉ. राजकुमार गुर्जन, डॉ. बी.सी. जात, मानव एवं आर्थिक भूगोल, साहित्य भवन प्रकाशन, आगरा, 2013, पृ. 215.
5. अवस्थी एवं अवस्थी– प्रशासनिक सिद्धान्त, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल प्रकाशन, आगरा, 2007, पृ. 119.

***

विज्ञानमयकोशसन्दर्भे बुद्धेः स्वरूपम्

अनिल कुमार अवस्थी *

भूमिका – सृष्टे आदिकालादद्यावधि पर्यन्तं परिवर्तिनि संसारेऽस्मिन् शिक्षायाः गौरवं सर्वैः मन्यन्ते। शिक्षयैव सभ्यतायाः संस्कृतेश्च परिवर्तनं भवति। अनेन सुसभ्य विवेकशीलमानवस्य समाजस्य च सङ्कल्पना भवति। सुसभ्य मानवस्य निर्माणार्थं सद्ज्ञानस्यावश्यकता भवति। ज्ञानमेव प्रयोगेण परीक्षितं भूत्वा विज्ञानं भवति। विज्ञानमेव बौद्धिक शक्तिं समुत्पादयति। अनेनैव कर्त्तृत्वं समायाति, अथ च अस्माकमुपनिषत्सु पञ्चकोश सङ्कल्पना प्रथिता वर्तते। तेषु कोशेषु बौद्धिक कोशः विज्ञानमय कोशः वर्तते। कोशोऽयं ज्ञानेन्द्रियैः सह बुद्धेः स्वरूपं प्रतिपादयति।

विज्ञानमयकोशः उपनिषत्सु विज्ञानमयकोशोऽयं मनोमय कोशस्यात्मा वर्तते। कोशोऽयं ज्ञानेन्द्रियैः सह बुद्धेः समुच्चयं विज्ञानमयकोशः भवति उक्तं च –

ज्ञानेन्द्रियैः सह बुद्धिर्विज्ञानमय कोशः॥[1]

विज्ञानं नाम ज्ञानं तद् ज्ञानं तु अध्ययनेन भवति किन्तु अध्ययनानन्तरं प्रयोगेण अनुभवेषु परिणतं ज्ञानं विज्ञानं भवति तदेव विशिष्टं ज्ञानमर्थात् यथार्थरूपेण व्यवहारे परिवर्तनं स्यात् अतः परिवर्तनं तु कर्त्तृत्वरूपेण बुद्धयासाकं ज्ञानेन्द्रियैः भवति। मनोमयकोशः पञ्चज्ञानेन्द्रियाणि मनसा साकं वर्तते। मनः तु ज्ञानेन्द्रियाणां कारणरूपेण विद्यते परञ्च कर्त्तृत्वरूपेण ज्ञानेन्द्रियाणि बुद्धया साकं निश्चयं कुर्वन्ति। कोशोऽयमानन्दमयेन पूर्णो भवति।

आनन्देन सदा पूर्णः सदा ज्ञानमयः सुखम्॥[2]

कोशोऽयं ज्ञानेन्द्रियैः साकं वृत्तियुक्तं बुद्ध्यैव कर्त्तृत्वस्य स्वभावत्वेन विज्ञानमयकोशो भवति। कोशोऽयं पुरुषस्य जन्म-मरणञ्च इत्यनयोः स्वभावस्य कारणं भवति। उक्तं च –

बुद्धिर्बुद्धीन्द्रियैः सार्धं सवृत्तिः कर्त्तृलक्षणः।
विज्ञानमय कोशः स्यात्पुंसः संसार कारणम्॥[3]

कोशोऽयं प्राणमयमनोमयाभ्यां साकं सूक्ष्म शरीरं निर्माति। अनेन शरीरेण स्वप्नावस्थायां प्राणिषु कर्त्तृत्वं समायाति। उक्तं च –

बुद्धि कर्मेन्द्रिय प्राणपञ्चकैर्मनसाधिया। शरीरं सप्तदशभिः सुसूक्ष्मं लिङ्गमुच्यते॥[4]

अन्नमय, प्राणमय, विज्ञानमयञ्चेति एतैः त्रिभिः कोशैः संयुक्ता आत्मा बुद्धया चिन्तयति तदा तस्याः बुद्धयुक्तस्वरूपं विज्ञानमय कोशमुच्यते। उक्तं च–

---

* शोधच्छात्रः (शिक्षाशास्त्र विभागः), केन्द्रीयसंस्कृतविश्वविद्यालयस्य, लखनऊ परिसरः

एतत्कोशत्रयंसंसक्तं तद्भूतविशेषज्ञो यदा भासते तदा विज्ञानमयकोशः इत्युच्यते॥[5]

तैत्तिरीयोपनिषदि शाङ्करभाष्ये विज्ञानमय कोशोऽयं मनोमयकोशस्यात्मा वर्तते। मनोमयकोशोऽयं विज्ञानमयकोशं विना पूर्णो न भवति। अतः वेदानामुच्चारणे मनसि तु सङ्कल्पभावं भवत्येव किन्तु तेषां मन्त्राणामर्थविषये यो निश्चयात्मिका बुद्धिः वर्तते। सा बुद्धिः ज्ञानेन्द्रियैः साकं विज्ञानमयं वर्तते। सैव अन्तःकर्णस्याध्यवसाय धर्मः वर्तते। तन्मयः अर्थात् प्रमाणस्वरूप निश्चयः विज्ञानेन (निश्चयात्मिका बुद्धया) निष्पन्नो जातत्वात् आत्मा विज्ञानमयोऽस्ति। कारणमिदं वर्तते यत् वेदानामुच्चारणं तु याज्ञिककार्ये भवत्येव किन्तु तस्य विस्तारः प्रमाणेन विज्ञानपूर्वकं भवति। अतः विज्ञानं यज्ञस्य हेतुः वर्तते। उक्तञ्च –

यतो वाचो निवर्तन्ते। अप्राप्य मनसा सहेत्यादि। तस्य पूर्वस्य प्राणमयस्यैष एवात्मा शारीरः शरीरे प्राणमये भवः शारीरः। कः? य एष मनोमयः तस्माद्वा एतस्मादित्यादि पूर्ववत्। अन्योऽन्तर आत्मा विज्ञानमयो मनोमयस्याभ्यन्तरो विज्ञानमयः। मनोमयो वेदात्मोक्तः। वेदार्थविषया बुद्धिर्निश्चयात्मिका विज्ञानं तच्चाध्यवसायलक्षणमन्तः करणस्य धर्मः। तन्मयो निश्चय विज्ञानैः प्रमाणस्वरूपैर्निर्वर्तित आत्मा विज्ञानमयः। प्रमाण विज्ञान पूर्वको हि यज्ञादि हेतुत्वं च वक्ष्यति श्लोकेन॥[6]

अयं विज्ञानमयकोशः बुद्धेः कोशः वर्तते। यो आत्मनः सन्निकटो वर्तते। आत्मनः प्रकृत्या सह संयोगेन सर्वप्रथममस्यैव निर्माणमभवत्। अनेनैव महत्तत्वमपि कथ्यते। अस्याः बुद्धेः कारणेन मनुष्येषु 'अहं' भावोत्पन्नो भवति। येन कोशोऽयं स्वकीयमात्मनः भिन्नोऽस्ति इति मन्यते। मानवस्य जन्म-मृत्योश्च कारणं वर्तते। अयं कर्तृत्वममित्यस्यानुभवं करोति। अस्य सम्बन्धः ज्ञानेन्द्रियैः सह भवति। अनेन कोशोऽयमनुभवं करोति।

बुद्धेः स्वरूपं

सर्वव्यवहारहेतुर्बुद्धिर्ज्ञानम्। सा च द्विविधा स्मृतिरनुभवश्च। संस्कारमात्रजन्यं ज्ञानं स्मृतिः। तद्भिन्नं ज्ञानमनुभवः। सः द्विविधः यथार्थोऽयथार्थश्च। तद्वति तत्प्रकारकोऽनुभवो यथार्थ। यथा रजते 'इदं रजतमि'तिज्ञानम्। सैव प्रमेत्युच्यते। तद् भावयति तत्प्रकारकोऽनुभवोऽयथार्थः। यथा-शुक्तौ 'इदं रजतमि'ति ज्ञानम्। सैवाऽप्रमेत्युच्यते॥[7]

आहार-विहारादि समस्त व्यवहारस्य हेतोः गुणः बुद्धिः वर्तते तदेव ज्ञानं। सा द्विविधा वर्तते स्मृतिरनुभवश्च। या संस्कारमात्रेण जायमाना सा स्मृतिः (स्मरणं) वर्तते। तदतिरिक्तं यद् वर्तते तद् ज्ञानं सैवानुभवः। अनुभवोऽपि द्विविधः यथार्थमयथार्थं च। यादृशं यद् पदार्थं वर्तते तादृशमेवानुभवं यथार्थं वर्तते यथा यथार्थरजतं, रजतमिति। इयं यथार्थानुभवं 'प्रमा' इति कथ्यते। यादृशं यद् पदार्थं

तादृशं ज्ञानं नैव अयथार्थमनुभवमिति यथा – शुक्तौ इदं रजतमिति ज्ञानम् 'अप्रमा' इति कथ्यते।

अथ च बुद्धेः कार्याणि निश्चयात्मकं ज्ञानं यथा– कर्त्तव्यम्-अकर्त्तव्यं, ग्राह्यम्-अग्राह्यं, त्याज्यं-उपादेयं, लाभः-हानिश्च त्यादिषु कर्त्तव्येषु चयनमथ च कर्त्तृत्वस्यागमनमिति। सात्त्विक बुद्धेः चत्वारो गुणाः वर्तन्ते। सांख्यमतानुसारम् उक्तश्च –

अध्यवसायो बुद्धिर्धर्मौ ज्ञानं विराग ऐश्वर्यम्।
सात्त्विकमेतद्रूपं तामसमस्माद्विपर्यस्तम्॥[8]

सात्त्विकबुद्धेः चत्वारो गुणाः वर्तन्ते यथा –

धर्मः, ज्ञानम्, वैराग्यम्, ऐश्वर्यञ्चेति

धर्मः– अभ्युदयनिः श्रेयसोश्च साधकं धर्मरिति कथ्यते।

ज्ञानम्– वस्तूनां प्रकाशकर्त्तृत्वं ज्ञानमिति कथ्यते।

वैराग्यम्– पुत्र-कलत्रादिषु पदार्थेषु रागत्वं न वैराग्यमिति कथ्यते।

ऐश्वर्यम्– तच्चाष्ट गुणैः युक्तो वर्तते यथा – अणिमा, महिमा, लघिमा, प्राप्तिः, प्राकाम्य, ईशित्वं, वशित्वं, कामावसायित्वञ्चेति बुद्धेः ये चत्वारो तामसधर्माः सन्ति। ते एषां सर्वथा विपरीतो वर्तन्ते यथा – अधर्मम्- अज्ञानम्- अवैराग्यम् अनैश्वर्यञ्चेति। अस्मिन् विषये गीतायामपि वर्णितं वर्तते यथा –

प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च कार्याकार्ये भयाभये।
बन्धं मोक्षं च या वेत्ति बुद्धिः सा पार्थ सात्त्विकी॥[9]

सात्त्विकबुद्ध्या मनुष्यः किं करणीयं? किं न करणीयमयं जानाति? सः विषयेभ्यः बिभेति अथ च सद्कर्मसु प्रवृत्तो भूत्वा स्वयमेव कर्त्ता भोक्ता च इति न मन्यते।

अपि च राजसी बुद्धिः –

यया धर्ममधर्मं च कार्यं चाकार्यमेव च।
अयथावत्प्रजानाति बुद्धिः सा पार्थ राजसी॥[10]

मानवः यद् धर्मम् अधर्मं, करणीयमकरणीयञ्च कर्माणि करोति। तेषु कर्मसु वास्तविकं किं करणीयं तत्र भेदः कर्त्तुं न शक्यते। स अधर्ममपि धर्मं मन्यते। एषु कर्मसु या बुद्धिः प्रवर्तिता भवति सा राजसी इत्युच्यते।

अपि च तामसी बुद्धिः –

अधर्मं धर्ममिति या मन्यते तमसावृता।
सर्वार्थान्विपरीतांश्च बुद्धिः सा पार्थ तामसी॥[11]

तामस बुद्धियुक्तः मानवोऽहंकारस्य वशीभूतः भवति अथ च विषयेषु अत्युत्कट रागः भवति। अनेन सः शरीरमात्मनोश्च भेदः कर्त्तुं न शक्यते। अहं कर्त्ता भोक्ता च इति मन्यते। बुद्धिः मोहरूपी घनान्धकारे प्रवृत्तो भूत्वा अधर्मं धर्मं मन्यते अथ च कर्तृत्वेन सर्वथा भौतिक जगति नश्वरवस्तूनि प्रति आसक्तिः भवति।

अपि च केशवमिश्र प्रणीतेन तर्कभाषायां बुद्धेः लक्षणमेवं वर्तते –

अर्थ प्रकाशो बुद्धिः। नित्याऽनित्या च। एतादृशी बुद्धिर्नित्या, अन्यदीया त्वनित्या॥[12]

अर्थ प्रकाशः अर्थस्य प्रकाशकं ज्ञानं सा बुद्धिः नित्याऽनित्या च ईश्वरस्य बुद्धिः नित्याऽनित्या मनुष्यादयः। आत्मानमन्त इन्द्रियाणि 'मन' तथा च चक्षुरादि बाह्य इन्द्रियैः अर्थ प्रकाशको ज्ञानं भवति। अनेन कारणेन "अर्थ प्रकाशको बुद्धिः" इदं लक्षणं बुद्धेः क्रियते। एतद्निश्चितमेव बुद्ध्यैव अर्थस्य ज्ञानं भवति। तद् ज्ञानं यदा विशिष्टं यथार्थरूपं प्रयोगात्मकं च तदैव विज्ञानं भवति। मनसि बहवः विचाराः समायान्ति तेषु विचारेषु मनः संकल्पं-विकल्पं च करोति, सङ्कल्प सुदृढं निश्चयं चयदा बुद्धिः करोति तदा अर्थप्रकाशको भवति। अनेनैव कर्तृत्वं समायाति तदैव कार्यसिद्धिः सम्भवति। बुद्ध्या येषां शब्दानामर्थप्रकाशको भवति, ते बुद्ध्यादयः षट्मानसप्रत्यक्षाः वर्तन्ते यथा – प्रीतिः, सुखम्, पीडा, रागः, क्रोधः, उत्साहश्चेति।

१.प्रीतिः– प्रीतिरानन्दयोश्च नाम सुखं वर्तते।

२.सुखम– (सर्वात्मनामनुकूलवेदनीयम्) सम्पूर्णात्मभि अनुकूलेऽनुभवं कर्त्तुं योग्योऽस्ति।

३.पीडा– पीडायाः नाम दुःखं वर्तते। तद् दुःखं (सर्वात्मनाम्) सर्वैरात्मभिः (प्रतिकूलवेदनीयम्) प्रतिकूलरूपेऽनुभवं कर्त्तुं योग्यो वर्तते।

४.रागः– रागस्य नाम इच्छा वर्तते। कामना, अभिलाषा, लालसा, स्पृहा इत्यादयश्च तस्य पर्यायवाचिनः सन्ति। अस्य द्वौ भेदौ स्तः नित्यमिनित्यं च ईश्वरस्य इच्छा नित्या भवति, जीवस्य ईच्छा अनित्या भवति।

५.क्रोधः– क्रोधस्यापरं नाम द्वेषः वर्तते। अयं जीवात्मनः विशेषगुणः वर्तते।

६.उत्साहः– उत्साहं नाम प्रयत्नमपि कथ्यते। सोऽपि नित्यमनित्यं च। ईश्वरस्य प्रयत्नं नित्यं भवति। अनित्यं प्रयत्नं त्रिप्रकारकं भवति यथा – प्रवृत्तिं, निवृत्तिं, जीवयोनिं च। एषु प्रवृत्ते उदयं रागेन, निवृत्ते उदयं द्वेषेन, जीवयोने उदयमदृष्टेन प्रारब्धकर्मणा च वा भवति। एषु यदा-कदा प्रवृत्तिं निवृत्तिं च जाग्रदवस्थायां

भवति किन्तु तृतीयो प्रयत्नः जीवयोनिं सततं भवति अथ च प्रारब्धकर्मणां भोगस्य समाप्तेः तावदस्य प्रयत्नस्य धारा चलति।

पञ्चदशीकार विद्यारण्यमुनिना स्वकीयपञ्चदशीग्रन्थे मनबुद्ध्योश्च भेदं क्रियते यथा अन्तरिन्द्रिय यद् भवति तदेव मन इति कथ्यते। इन्द्रियमिदं कर्त्तृत्वेन, करणरूपत्वेन च परिणतं भवति। यदा कर्त्तृत्वेन परिणतं तदा विज्ञानमयकोशः कथ्यते, यदा करणत्वेन परिणतं भवति तदा मनोमयकोशः भवति। मन एवञ्च बुद्धिः परस्परमन्तर्बहिश्च तिष्ठति। यदा बुद्धिरन्तः तदा मनः बहिः तिष्ठति। यदा मनोऽन्तः तिष्ठतितदा बुद्धिः बहिः। अनेन एकस्यैव द्वौ कोशौ स्तः यथा – मनोमयः, विज्ञानमयश्चेति। उक्तं च –

कर्त्तृत्वकरणत्वाभ्यां विक्रियेतान्तरिन्द्रियम्।
विज्ञानमनसी अन्तर्बहिश्चैते परस्परम्॥[13]

अथ च विज्ञानमयकोशः, पञ्चज्ञानेन्द्रियाणि श्रोत्र, त्वक्, चक्षुः, रसना, घ्राणञ्च एतैः ज्ञानेन्द्रियैः जीवं कर्त्तृत्वमाप्नोति। अनेन करणरूपेण मनः यद् संकल्पं-विकल्पं च करोति। ताभ्यां संकल्पविकल्पाभ्यां निश्चयं बुद्धिः करोति। एतदर्थं पञ्चज्ञानेन्द्रियाणां पञ्चविषयेषु बुद्धिः प्रवृत्तो भूत्वा कार्यं करोति। वेदान्तसारे उक्तं च –

इयं बुद्धिर्ज्ञानेन्द्रियैः सहिता विज्ञानमय कोशो भवति॥[14]

विज्ञानमयकोशं पञ्चज्ञानेन्द्रियैः साकं बुद्धिः शरीरे नेतृत्वं करोति। कथं नेतृत्वं? अतः रथमयशरीरे बुद्धिः सारथी भवति। ज्ञानेन्द्रियाणि अश्वाः भवन्ति। अश्वाः विषयरूपी मार्गे बुद्ध्यानुसारं धावन्ति। एतदर्थं देहस्य सर्वाणि कार्याणि बुद्धेः कर्त्तव्यानि वर्तन्ते। उक्तञ्च –

आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु।
बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च॥[15]

अतः बुद्धिरूपी सारथी यदा कुशलः सर्वदा समाहितचित्तो भवति तदा इन्द्रियरूपी अश्वाः तस्याः बुद्धे अधीनो भवन्ति। अधीनस्थकर्त्तुं सारथिं विज्ञानवान् अर्थात् सदसदयोश्च ज्ञानं भवेत्। अनेन मनः नियन्त्रितं, समाहितञ्च भवति।

मनः बुद्धेः अधीनो भवति तदा निश्चितमेव जीवः संसारे सद्कर्त्ता भवति। उक्तञ्च –

यस्तु विज्ञानवान्भवति युक्तेन मनसा सदा।
तस्येन्द्रियाणि वश्यानि सदश्वा इव सारथेः॥[16]

अथ च एतद्निश्चितमेव वर्तते यत् विज्ञानमयकोशमेव साक्षात् बुद्धेः स्वरूपं वर्तते।

निष्कर्षः अथ च विज्ञानमयकोशसन्दर्भे बुद्धेः स्वरूपं यत्र उपस्थाप्यते तर्हि ज्ञानं भवति यत् बुद्धिः विज्ञानमयकोशात् पृथक् नास्ति, अपितु तस्यैव स्वरूपं वर्तते। कोशोऽयं ज्ञानेन्द्रियैः साकं बुद्धेः समुच्चयं वर्तते। आधुनिकैः केवलं बुद्धेः स्वरूपं मन्यन्ते परञ्च एतद्निश्चितमेव वर्तते यद् विज्ञानमयकोशस्य उपस्थापनं भवतु तर्हि बुद्धेः स्वरूपं विशिष्टरूपेण स्पष्टीयते। विज्ञानमयकोशमेव बुद्धिः वर्तते। अस्य विशद वर्णनमस्माकं भारतीय वाङ्मयेषु वर्तते। अस्याः बुद्धेः स्वरूपस्य वर्णनं निश्चितमेव शिक्षाजगति समुपयोगि भविष्यति।

सन्दर्भग्रन्थसूची

1. अन्नमभट्ट, तर्कसंग्रह, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, 2014, प्रथम संस्करण
2. आचार्य शङ्कर भाष्यार्थ, ईशादि यौ उपनिषद्, गीताप्रेस, गोरखपुर, संवत् 2068
3. आचार्य शङ्कर, विवेक चूडामणि, रणधीर प्रकाशन, दिल्ली, 2019, राजा आफसेट प्रिण्टर्स दिल्ली
4. ईश्वरकृष्णविरचिता, सांख्यकारिका, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 2013
5. 108 उपनिषद्, युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट, मथुरा, 2016, मुद्रक- युग निर्माण योजना प्रेस, मथुरा.
6. पाठक पी.डी., शिक्षामनोविज्ञान, अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा, मुद्रक – आर्यन प्रिण्टर्स
7. मिश्र, केशव, तर्कभाषाः, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 2015, पुनः मुद्रित संस्करण
8. विद्यारण्यमुनि, पञ्चदशी, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, वाराणसी, 2017, पुनःमुद्रित, संस्करण
9. शाङ्करभाष्यम्, ब्रह्मसूत्र, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 2017
10. श्रीमद्भगवद्गीताः, गीताप्रेस, गोरखपुर, 158 संस्करण
11. सदानन्द, वेदान्सारः, चौखम्बा विद्याभवन, 2014,

सन्दर्भ :

---

1 पैंगलोपनिषद् २/४

2 कठोपनिषद्, २५

3 वि.चू., १८६

4 शारीरिकोपनिषद् , १६

5 सर्वसारोपनिषद्, ५

6 शाङ्करभाष्य तै. उ., १/व.२/अ.४

7 प्रत्यक्षखण्डः गुणलक्षण प्रकरणम्, तर्कसंग्रहः, ३३

8 सांख्यकारिका, २३

9 श्रीमद्भगवद्गीता, ३०/१८

10 श्रीमद्भगवद्गीता, ३१/१८

11 श्रीमद्भगवद्गीता, ३२/१८

12 पदार्थनिरूपण तर्कभाषा, १६

13 पंचदशी पंचकोश विवेकप्रकरणम्, ८

14 वेदान्तसार, १३

15 कठोपनिषद्, ३/३

16 कठोपनिषद्, १/३/६

***

वेदेषु राष्ट्रियमानवासामञ्जस्य महत्त्वञ्च

आनन्द कुमार झा *

वैदिके युगे समाजस्य राजनीतिकविकासस्य कुल-ग्राम-विड्-जन-जनपदानीति पंच घटकतत्वान्यासन्। कुलमित्यासीत् सामाजिकसंघटनस्य मूलं घटकतत्वम्, तस्य चाधिपतिः पिता ज्येष्ठभ्रता वा 'कुलप'' इत्युच्यते स्म। अविभक्तः परिवार एव कुलमासीत्। विविधानां कुलानां समवायो ग्राम इत्यभिधीयते स्म, तस्य प्रमुखस्य ग्रामणीरिति कथ्यते स्म। ग्रामीण जनतायाः रक्षणं, तस्याः संघटनं, ग्रामेषु शान्तिस्थापनं व्यवस्था चेत्यादीनि तस्य प्रमुखकर्त्तव्यासन्। एतेषु कर्मसु तस्य साहाय्यं ग्रामसभाभिर्विधीयते स्म। ग्रामणीद्वारेणैव राजाजनसम्पर्कं व्यधत्त। अनेकग्रामसमूहो विश्पदेन व्यवह्रियते स्म। तस्याधीश्वरो विश्पतिरिति भण्यते स्म। विशो ग्रामाणां मिथः सम्बन्धानां व्यवस्थैव तस्य प्रमुखं कार्यं वर्तते स्म। विभिन्नानां विशां समुदायो जन इति पदवाच्य आसीत् ''ऐतरेयब्राह्मणे'' (८.१) जनपदशब्दो देशार्थे प्रयुक्तः। जनपदस्य राष्ट्रमित्यप्यपरमभिधानमासीत्। वैदिके युगे भारतं विविधेषु जनपदेषु राष्ट्रेषु वा विभक्तमासीत्। तानि च विविधराजशासितान्यासन्। अनु-यदु-पुरू-कुरू-द्रुह्यु-तत्सु-काशी-विदेह-तुर्वश-मत्स्य-पंचाल-मूजबदू-गान्धारप्रभृतिन्येवं विधान्येव जनपदान्यासन्।

राष्ट्रपदमृग्वेदे, यजुर्वेदीयायां[२] वाजसनेयीसंहितायां[३] मैत्रायणीसंहितायां[४] चाथर्ववेदेऽपि[५] च प्रयुक्तम्। ऋग्वेदे ''राष्ट्री''[६] मैत्रायणीयसंहितायां च ''राष्ट्रियम्''[७] इति च पदे समुपलभ्येते। अतो वैदिके काले राष्ट्रवधारणा सुस्थिरा जातेति सिद्ध्यति निश्चप्रचम्।

राष्ट्रं प्रजाभिर्निमीयत इति धारणा बद्धमूलासीत् वैदिके जनमानसे। एतस्मादेवैतरेयब्राह्मण- (८.२६) मुच्चैरूद्घोषयति ''राष्ट्राणि वै विश'' इति। एतस्मादेव च हेतोरापस्तम्ब बौधायनकात्यायनाः स्वकीयेषु श्रौत-सूत्रेषु विश् शब्दं राष्ट्रार्थे प्रयुक्तवन्तः। राष्ट्रस्यावधारणया सहैव तस्य निर्माणहेतुभूतायाः प्रजाया अपि महत्वोदयः स्वाभाविक एवासीत्। यास्कीये निरूक्ते (७.५) ''नरराष्ट्रम्'' इति पदमपीदमेव प्रमाणयति। अस्यां स्थितौ प्रजानां हृदयेषु स्वराष्ट्रभूमिमाश्रित्य गभीरशक्तिभावविकास सहज एवासीत्। कस्यापि जनसमुदायस्य स्वकीयायां स्थिरभूमेः सद्भावः, स्वकीयदेशावस्थितिसतदर्थंच मातृभूमिभावना, स्वदेशस्याभ्युदयाय रक्षणाय च स्वजनन्या इव रक्षणाय सततं निखिलकष्टसहिष्णुत्वं सर्वविधयत्नपरायणत्वञ्च सुदृढ़राज्यसंस्थापनावश्यकं वर्तते। वैदिके काले जनमानसे मातृभूमिभावना

* शोधच्छात्रः वेद विभागः, संस्कृतविद्याधर्मविज्ञानसंकायः, काशीहिन्दूविश्वविद्यालयः, वाराणसी

सुदृढैवासीत्। विविधेषु जनपदेषु राष्ट्रेषु वा विभक्तेऽपि भारते वर्षे सर्वेषामपिहार्दिकी कामनैकांतिकञ्च लक्ष्यं समुद्र पर्यन्ते भूभागे राष्ट्रस्यैकस्यैव स्थापनासीत्। ऐतरेयब्राह्मणे (८.१५) अस्यैव संश्रूयते ध्वनिः- ''आऽन्तादा परार्धात्पृथिव्यै समुद्रपर्यान्ताया एकराडिति''। राष्ट्रे राज्ञोऽभिषेककृत्यं मातृभूमि-नमक्रियापूर्वकमेवासीत् – ''नमो मात्रे पृथिव्यै नमो मात्रे पृथिव्या-'' (वाजसनेयी संहिता- ९.२२), वृताय च राज्ञे सैव मातृभूमि राज्यरूपेण प्रदीयते स्म। अथर्ववेदस्य (३.४.२) ''त्वां विश्यो वृणतां राज्याये'' त्यादिना मन्त्रेण सिद्ध्यति यत् प्रजाभिरेव राज्ञो वरणं क्रियते स्म। अभिषेकानन्तरं राजा वर्णानां, ग्रामणीनां सभासमितिसदस्यानां रत्निनांचाधीनतास्वीकरणात्पूर्वं मातृभूमेरधीनतां स्वीकुर्वाणोऽवदत् ''पृथिविमातर्मा मा हिंसीर्मा अहम् त्वां'' (शतपथब्राह्मणम् ५.४.३.२०) इति। शतपथब्राह्मणानुसारं पृथिव्या राष्ट्रस्य वा राज्ञस्य मध्ये मैत्रीभावः संजायतेऽतो नैव माता पुत्रं हिनस्ति नापि च पुत्रो मातरम् – ''न हि माता पुत्रं हिनस्ति न पुत्रो मातरम्।'' राष्ट्रं राज्यं वा राज्ञे सञ्चालनाय, नियमनाय, रक्षणाय, धारणाय, कृष्यै, क्षेमाय, सम्पन्नतायै, पोषणाय संवर्धनाय च प्रदीयते स्म। वाजसनेयीसंहितायां (९.२२) शतपथब्राह्मणे (५.२.१.२५) चोक्तम्'' ''इयं ते राड्यन्तासि यमनोसिध्रुवाऽसि। कृष्यै त्वा क्षेमाय त्वा रय्यै त्वा पोषायत्वा'' इति।

राज्यसञ्चालने राजा सभासमितीत्येतयोर्जनसंघटनयोः साहाय्यं लब्धवान्। समितिः सम्भवतयासीत् समग्रस्य राष्ट्रस्यैका संस्था, यस्यां सकलापि जनता मिलित्वात्मनो राज्ञो वरणं कृतवती, निर्वासितञ्च राजानं समामन्त्र्य पुनरपि वृतवती। सार्वजनिक समस्यानामपि समाधानं तस्यामेवाभूत्। राज्ञः समितावागमनभावश्यकमासीत्। (ऋग्वेदे ९.९२.६) राज्ञा न सत्यः समितीरियानः)। सभायाञ्च सभासदः कमपि समस्याविशेषः विमृपृवन्तस्तेषाञ्च निर्णयः सर्वेषामपि कृते मान्योऽपरिहार्यश्चासीत्। सभासमिति निर्वाचनेऽविद्यत कश्चिद्विशेषः- समितौ साधारणजनानामुपस्थतिरासीत्, सभायाञ्च केवलं राष्ट्रस्य वृद्धानामुत्तमजनानाञ्च- ''यत्र नरः समासते सुजाताः'' (ऋग्वेद, ७.१.४) ''न सा सभा यत्र न सन्ति वृद्धाः।'' धर्मनिर्णयो न्यायो वा तस्या आसीत् मुख्यं कार्यम्। स्वकर्त्तव्यनिर्वाहेऽसफलो राजा स्वपदपरित्यागे विवशीक्रियते स्म (अथर्ववेद, ३.४.६.७), तैत्तिरीय संहितायां (१५.४), शतपथ ब्राह्मणे (५.३.१.१), तैत्तिरीयब्राह्मणे (१.७.३.१), अन्येषु च ग्रन्थेषु रत्निपदाभिधेयानामन्येषामप्यधिकारिणामुल्लेखो विद्यते। ते चेमे- पुरोहितः, सेनानीः, क्षत्रः, (राजसत्तायाः प्रतिनिधिः), महिषी, सूतः (सारथी), ग्रामणीः, क्षन्ता (कञ्चुकी) संग्रहीता (कोषाध्यक्षः) भागदुधः (करादिविभागाधिकारी) अक्षावायो (आयव्यय लेखाध्यक्षः), गोविकर्ता (वनाध्यक्षः) च।

स्पष्टमिदमेतस्माद्यद् वैदिके युगे राजतन्त्रं प्रजातान्त्रिकमेवासीज्जनता च स्वाधिकारान्प्रति जागरूकाणवर्तत। अभिषेकसमये राजा प्रजाजनानां समक्षं राष्ट्राय

प्रजाभ्यश्च न द्रोहिष्यामिति प्रतिज्ञामकरोत्- ''यां च रात्रिमजायेऽहं यां च प्रतास्मि। तदुभयमन्तरेण इष्टापूर्तं मे लोकं सुकृतमायुः प्रजां वृङ्क्षीथा यदि ते द्रुह्येयमिति'' (ऐतरेयब्राह्मण ८.३.१५)। राज्ञोऽवस्थितिः प्रजाधारैवासीत् – ''विशि राज्ञा प्रतिष्ठितः'' (वाजसनेयीसंहिता, २९.९)। प्रजाभिस्तस्य वांछानिवार्यासीत् – ''विशस्त्वा सर्वा वांछन्तु'' (१०.१७३.१, अथर्ववेद ४.८.४)।

वाजसनेयी संहितायां (२२.२२) राष्ट्रस्य भौतिक बौद्धिकप्राकृतिक सुखसमृद्ध्यै कामनाभिव्यक्ता। ऋषिः कामयते यदस्माकं राष्ट्रे ब्रह्मवेत्तारो ब्राह्मणा जायन्ताम्, शूरा महारथिनः शास्त्रविद्यानिष्णाताः क्षत्रियाः समुत्पाद्यन्ताम् दुग्धवत्यो गावो वोढ़ारोऽनड्वाहः क्षिप्रगामिनश्चाश्वा भवन्तुः, रूपगुणादिसमपन्नाः सुशीला नार्यो विलसन्तुः यजमानानां पुत्रा वीरा विजयशीलाः सभ्याश्च भवन्तु पर्जन्योऽस्मदावश्यकतानुरूपं वर्षतुः अस्माकमोषधयः फलवत्यः पच्यन्ताम् अस्माकं योगक्षेमश्च कल्पतामिति –

आब्रह्मन्ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायतामाराष्ट्रे राजन्यः शूव इषव्योऽतिव्याधी महारथो जायतां दोग्ध्री धेनुर्वोढ़ानश्वानाशुः सप्तिः पुरन्धिर्योषा जिष्णू रथेष्ठाः सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायतां निकामे नः पर्यन्यो वर्षतु फलवत्यो न ओषधयः पच्यन्तां योगक्षेमो नः कल्पताम्। नूनमेव वैदिकं राष्ट्रगीतमिदमिति वयं वक्तुं शक्नुमः।

दीर्घायुष्यं प्राप्य प्रतिबुध्यमाना वयं पृथिव्यै बलहृतः स्यामेति तस्य मनोरमो मनोरथः- ''दीर्घं न आयुः प्रतिबुध्यमाना वयं तुभ्यं बलहृतः स्याम''। समग्रेऽपि विश्वावाङ्मय एतादृग् राष्ट्रियभावनाभरितमुदात्तभावोद्गारसंवलितं मातृभूमि-संस्तवनं नूनमेवास्तिसुदुर्लभम्। पृथिव्या विविधभाषाभाषिणो विविधधर्मावलम्बिनश्च जनाः तथैव तिष्ठन्ति यथा कुटुम्बिनो नराः परस्परं सौहार्द्रमनुभवन्त एकगृह एव वसन्ति- ''जनं बिभ्रती बहुधा विवाचसं नानाधर्माणं पृथिवी यथौकसम्।'' आथर्वणवाक्यमिदं धर्मभाषाव्याजेन भारतं विखण्डयितुर्महर्निशं प्रयतमानेभ्यः, साम्प्रदायिकतोपहतचित्तेभ्यः, स्वनिर्दोषदेशवासिनां नृशंसतया वधविधातृभ्यो नरकाकेभ्यः समुन्मीलयतीव सत्पथं, प्रेरयतीव च मानवमनुभवितुं विविधतायामेकतामुद्घाटयतीव च भिन्नभाषाभाषिक्यो भिन्नधर्मसंश्रितेभ्यश्च जनसमुदायेभ्यः सौहार्द्रपूर्णं सहास्तित्वं बन्धुत्वञ्च।

वेदमन्त्रेषु राष्ट्राभ्रंशनाय, राष्ट्रधारणाय, राष्ट्रानुकूलं, व्यवहारायैवञ्च राष्ट्रनिर्माणाय बहुत्रोपदेशा दृक्पथमायान्ति।

वेदे व्यक्ता राष्ट्रियभावना, मातृभूमिशक्तिः संज्ञानस्य सामनस्यास्य कल्याणस्य च धारणा भारतभूमौ भारतीयचेतसि प्राकाश्यमवाप्यापि जगतः सकलानमि राष्ट्राणां कृत आदर्शरूपा वर्तन्ते। अत्रे हि विश्वमानववादस्य, विश्वशान्तिवादस्य, विश्वबन्धुत्वस्य, विश्वकल्याणस्य नैतिकसाम्यवादसमाजवादयोश्च दर्शनं जायते। वस्तुतस्तु वैदिकधारणानुसारं विश्वनेकमीडं विद्यते- ''यत्र विश्वं

भवत्येकनीडम्'' (३२.८) अथर्ववेदानुसारञ्चैकरूपम् – ''यत्र विश्वं भवत्येकनीडम्'' (२.१.१) ऋग्वेदीय ''एकं वा इदं वि बभूवः सर्वम्'' (८.५८.२) इत्यादौ मन्त्रेष्यस्यैवैक्यस्योद्घोषः। इयमेव विश्वमानववादस्य दार्शनिक्याध्यात्मिकी च दृढ़ाधारशिला।

आगच्छत, वयं सर्वे परस्परं भेदभावं परित्यज्य राष्ट्रस्य प्रगतेर्वृद्धेर्विकासस्य च पुरोगामिनो भूत्वा तत्प्रति जागरूका भवाम – ''वयं राष्ट्रे जागृयाम पुरोहिताः'' (वाजसनेयी संहिता, ९.२३)।

सन्दर्भ सारांशिका –

१. ऐतरेय ब्राह्मण, ८.१४.
२. ऐतरेय ब्राह्मण, ८.२६.
३. वाजसनेयी संहिता।
४. यास्कीयेनिरूक्ते, ७.५.
५. वाजसनेयी संहिता, ९.२२.
६. शतपथ ब्राह्मण, ५.४.३.२०.
७. तैत्तिरीय ब्राह्मण, १.७.३.१.
८. ऋग्वेद, १०.१७४.१-२,५.
९. अथर्ववेद, ४.८.४.
१०. वाजसनेयी संहिता, २२.२२.
११. ऋग्वेदे संज्ञानसूक्ते, १०.१९१.२-४.

***

गढ़वाल के वन गुजर समुदाय पर आधुनिकता का प्रभाव

वन्दना कोठारी *
प्रो. एच.बी.एस. चौहान **

प्रस्तुत शोध पत्र में वन गुजर समुदाय का आधुनिक समाज के सम्पर्क में आने के कारण पारम्परिक परिवेश एवं सामाजिक जीवन में हो रहे परिवर्तनों को दर्शाया गया है। इनका मानना है कि कुछ क्षेत्रो में इन्हे हानि तथा कुछ में लाभ हुआ है। विस्थापिकरण के बाद से इनकी स्वतन्त्रतता पर जैसे अंकुश लग गया हो क्योंकि अब ये एक सीमित दायरे में रहते है,लेकिन शिक्षा, राजनीति आर्थिक व सामाजिक क्षेत्र में इनका बहुत विकास हुआ है, प्राचीन काल से यह समुदाय पशुचारण पर ही निर्भर था, इसके अतिरिक्त इनका अन्य कोई आजीविका का साधन नहीं था किन्तु अब ये लोग कृषि, बागवानी, मजदूरी, नौकरी आदि भी करने नगे है, शिक्षा की ओर अग्रसर हो रहे है।

सूचक शब्द– आधुनिकता, विस्थापिकरण, वनगुजर पुशुचारण, आजीविका

प्रस्तावना– गढ़वाल हिमालय में भोटिया, जौनसारी, कोल्टा, बोक्सा, थारू, राजी इत्यादि जनजातियों के अतिरिक्त वन गूजर समुदाय भी रहता हैं। जो कठिन पर्वतीय पारिस्थितिक तन्त्र में रहकर जीविका के लिए पशुपालन, व्यापार एवं कृषि का कार्य करत है। उत्तराखण्ड का गूजर समुदाय मुखतः पशुपालक हैं जो अब व्यापार एवं कृषि का कार्य भी करने लगा है।



R.L.E.K Organigation (Dehradun)
ग्रीश्म काल में बुग्यालों की ओर प्रवास करता वन गूजर समुदाय

* शोध छात्र, एन्थ्रोलॉजी विभाग, एच.एन.बी.जी.यू. श्रीनगर गढ़वाल, उत्तराखण्ड
** विभागाध्यक्ष, एन्थ्रोपोलॉजी, एच.एन.बी.जी.यू. श्रीनगर गढ़वाल, उत्तराखण्ड

सामाजिक क्षेत्र में परिवर्तन : वनगूजर समुदाय मे पुनरवास के पश्चात् से सामाजिक, सांस्कृतिक स्थिति मे जो परिवर्तन वर्तमान में दृष्टिगत हो रहा है, वह इनकी पुरानी संस्कृति से बिल्कुल मेल नही खाता वह समाज जो आज वनगूजरों में स्थापित है। वह इनका परिवर्तित रूप ही है। इनके सामाजिक क्षेत्रों में कई आधारभूत परिवर्तन हुये है। जिसका कारण इनका आधुनिकरण एवं भौतिकरण के समपर्क मे आना है। इन्हीं परिवर्तनों का विश्लेषण तथा परिवर्तन के कारण के तत्वों को उजागर करने के प्रयास इस शोध पत्र में किया गया है।

परिवार के स्वरूप में बदलाव : पहले वनगूजर समुदाय संयुक्त एवं विस्तृत परिवार में रहते थे। किन्तु वर्तमान में ऐसा देखने को नहीं मिला। समय के साथ साथ संयुक्त परिवारो का विघटन एकांकी परिवारो मे परिवर्तित हो गया है। जिसका कारण है कार्यों में कमी, निर्धनता, स्थाई निवास आदि। क्षेत्रिय अध्ययन के दौरान गूजर समुदाय में एकांकी परिवार अधिक देखने को मिले हैं। इनकी संख्या संयुक्त परिवार की अपेक्षा अधिक है। पहले गूजर समुदाय के परिवारों में माँ–बाप के अलावा चाचा–चाची, ताई–ताउ, दादा–दादी तथा इन सबके बच्चे एक साथ रहते थे, किन्तु अब इन परिवारों में माँ–बाप व उनके बच्चे ही रहते है।

वेश भूषा एवं आभुषणों मे परिर्वतन : बदलते वातावरणीय परिस्थितियों के कारण वनगूजर समुदायों के पहनावें में परिवर्तन देखने को मिला है। **स्त्रियों का पहनावा** चूड़ीदार पैजामा और कुर्ता था लेकिन अब वे सलवार कुर्ता ही पहनती है। स्त्रियां ओढ़ने के लिये बाजारी दुपट्टों का प्रयोग करने लगी है। पहले इनका कुर्ता साधारण नेहरूकट गले, गलें पर आगे बटन,पूरी बांह वाला, थोड़ा छोटा हुआ करता था। वर्तमान में ये आधी बाजू की बांह, विभिन्न डिजाईनों के गले, लम्बा कुर्ता और पैजामा की जगह सलवार का प्रयोग करने लगी है। पहले इनके कपड़े सिर्फ सूती ही हुआ करते थे, लेकिन अब टेरीकॉट, रेशमी, सिन्थेटिक कपड़ो का प्रयोग करने लगी है। जुती के साथ–साथ सैंडिल का भी प्रयोग करने लगे है।

पुरूषों का पहनावा इनका परम्परागत पहनावा कुर्ता तहमत, पगड़ी, चमड़ें की जूती, चैकदार सॉल, कुर्ते के ऊपर फतवी आदि है। बुजुर्ग में यह पहनावा आज भी प्रचलित है, लेकिन वर्तमान समय में युवा पुरूषों में इस परम्परागत पहनावा का प्रचलन नहीं है। वे जींन्स, पैंट, टी सर्ट और कमीज़ पहनने लगे हैं। इनके सिर पर पगड़ी के बजाय गोल टोपी (जैसा कि आम मुस्लिम व्यक्ति पहनता है) दिखाई देने लगी है। पहले के गूजर लम्बी दाढ़ी रखते थे लेकिन वर्तमान युवा पीढ़ी छोटे–छोटे बाल छोटी दाढ़ी या दाढ़ी रहित रहते है। इनके **परम्परागत आभूषण** चमकीली, शीरी, महल, हंसली, हाथों मे चांदी की बंग, बुन्दे आदि आभूषण होते है, परन्तु अब नयी पीढ़ी की महिलाएं आर्टिफीशियल आभूषणों का प्रयोग करती दिखायी देती है।




महिलाओं एवं पुरूषों कि वेशभूषा का परिवर्तित रूप

इन परिवर्तनों का एक कारण यह है, कि ये अब स्थाई निवास बनाकर रहने लगे हैं, तथा अपने ड़ेरों के पास स्थित शहरों के लोगों के सम्पर्क में आने से इन शहरी लोगों को देखकर इन्हें भी उन जैसा अच्छा दिखना है।

रहन–सहन एवं खानापान मे परिवर्तन मे परिवर्तन : पहले ये लोग अस्थाई ड़ेरों में रहते हुये ऋतु प्रवास करते थे। अब स्थाई डेरों में रहने लगे है। पहले इनके ड़ेरे जंगल में घास–फूस व लकड़ी के बने होते थे, लेकिन अब ये सींमेंट के बने पक्के मकान है। ऋतुप्रवास कम होने के कारण इनके ड़ेरे पक्के, मजबूत व स्थाई हो गये है। पहले ये नमकीन चाय पीते थे, लेकिन अब ये आम चाय बनाकर पीने लगे है। खाने में क्षेत्रो के सम्पर्क मे आने से एक बडा परिवर्तन यह देखने को मिला है, कि वनगूजर समुदाय के युवक अब मदिरा, बीडी एवं गुटखे का सेवन भी करने लगे है। जिसका प्रयोग इनके प्रयोग इनके धर्म में वर्जित माना गया हैं।






वर्तमान में गूजर समुदाय के रहन सहन का परिवर्तित रूप

आर्थिक परिवर्तन– वनगूजर समुदाय की आर्थिक संस्कृति में अनेको परिवर्तन आये है। जो निम्नलिखित है–

पशुपालन : इनकी जीविका का प्रमुख साधन पशुपालन ही रहा है। किन्तु पूर्व की अपेक्षा अब इनके दुग्ध व्यवसाय में कमी देखने को मिली है। ये लोग अपने पशुओं के लिए उत्तम चारागाह की खोज में एक स्थान से दूसरे स्थान पर ग्रीष्मकाल में पूरे परिवार, बच्चो व पशुओं के साथ ऋतु प्रवास के लिये जाते थे।किन्तु अब शीतकालीन ड़ेरों में स्थाई रूप से रहने लगे है जिससे पशुओं के लिये चारे की कमी हो जाती है। जिस कारण ये अपनी भैंसों को बेच रहे है क्योंकि अधिक भैंसों को पालने में इन्हें कठिनाई हो रही है। जिससे दूग्ध उत्पादन भी कम हो गया है।



दूध निकालता वनगूजर व्यक्ति

कृषि : वनगूजर समुदाय अब कृषि भी करने लगा है, भले ही कृषि इनकी आय का मुख्य स्रोत नहीं है, फिर भी काफी हद तक कृषि इनका भरण पोषण करती है। कृषि करने का बड़ा कारण यह है, कि ये अब स्थाई निवास बनाकर रहने लगे है वर्तमान समय में इन्हें पुनर्वास के कारण सरकार कि ओर से प्रति परिवार 12 बीगा तक ज़मीन आवंटित की गयी है,

जिस पर ये कृषि करते है। कई गूजर निर्धनता के कारण पूरी खेती नहीं कर पाते इसलिये खेती का कुछ भाग बाहरी लोगों को खेती करने के लिए दे देते है।तथा उसके ऐवज में कुछ धन ले लेते है ये लोग अपने खेतों में गेहूँ, धान, चरी, मक्का आदि उगाते है। ये कृषि के लिये आधुनिक उपकरणों का भी प्रयोग करते है।




कृषि मे संलग्न वन गूजर समुदाय

व्यवसाय : जब से सरकार ने इन्हे स्थायी रूप से बसाया है, ये लोग अपनी भैंसों से प्राप्त दुध, घी को आस पास के बाजारों स्वयं जाकर बेचने लगे है।




साभार R.L.E.K Dehradun

दुग्ध विक्रय करता वनगूजर समुदाय

मजदूरी : पुनरवास के पशचात से गूजर समुदाय के नवयुवक शहरी क्षेत्रों के सम्पर्क मे आने से अपने पारम्परिक पेशे को छोंड़ते जा रहे है। उनके अनुसार केवल पशुपालन पर निंभर रहकर आज के युग मे अपने परिवार का पालन पोषण नही किया जा सकता शहरी क्षेत्रों के सम्पर्क मे आने से इनकी आवश्यकताओं एवं इच्छाओं में भी वृद्धि हुई है। जिसके फलस्वरूप इसकी पूर्ति हेतु ये लोग आस पास के क्षेत्रो मे मजदूरी का कार्य करने लगे है।



मजदूरी करता वनगूजर व्यक्ति

शैक्षिक परिवर्तन : वर्तमान समय में वनगूजर समुदाय में सबसे बडा परिवर्तन शिक्षा का देखने को मिला है। चूँकि, वे जंगलों में भटकते थे इसलिये अपने बच्चों को शिक्षा नहीं दे सकते थे। अब वे एक जगह पर स्थाई निवास बनाकर रहते है। अतः अब वे अपने बच्चों की शिक्षा के प्रति जागरूकता दिखा रहे है। वह अपने बच्चों को स्कूल भेज रहे है। पथरी गूजर पुनर्वास बस्ती, मोहण्ड़, गूजर बस्ती, गैंण्डीखाता गूजर पुनर्वास बस्ती में गूजरों के बच्चे स्कूलों में शिक्षा ग्रहण कर रहे है। पहले जो गूजर अस्थाई निवास बनाकर रहते थे वे अपने बच्चों को सिर्फ उर्दू की शिक्षा दिलवाते थे। वर्तमान समय में सभी गूजर अपने बच्चों को स्कूली शिक्षा दिलवाने पर जोर दे रहे है

सारणी 1

कक्षा	लड़की	प्रति०	लड़का	प्रति०	कुल	प्रति०
I	26	24.52	50	31.44	75	28.67
II	23	21.69	28	17.61	51	19.24
III	20	18.86	27	16.98	47	7.73
IV	22	20.75	24	15.09	46	7.35
V	15	14.15	30	18.86	45	16.98
Total	106	100	159	100	265	100

वैकल्पिक शिक्षा केन्द्र वनगूजर पुनरवास बस्ती गैंण्ड़ीखाता

सारणी 1 के अनुसार वैकल्पिक शिक्षा केन्द्र गैंण्ड़ीखाता में पहली कक्षा में 28.67 प्रति० बच्चे, दूसरी कक्षा में 19.24 प्रति० बच्चे, तीसरी कक्षा में 17.73 प्रति० बच्चे, चौथी कक्षा में 17.35 प्रति० बच्चे व पांचवी कक्षा में 16.98 प्रति० बच्चे पढ़ते है। जिनमें लड़कियों की कुल संख्या 106 है। लड़को की कुल संख्या 159 है। दूसरी, तीसरी व चौथी कक्षा मे लड़कियों का प्रतिशत लड़को कि अपेक्षा अधिक प्रदर्शित हो रहा है। जिससे स्पष्ट होता है। कि ये लोग लड़कियों की शिक्षा के प्रति जागरूक हा`रहेहै।

सारणी 2
वनगूजर बस्ती प्राथमिक विद्यालय एवं जूनियर हाईस्कूल पथरी,हरिद्वार

कक्षा	लड़की	प्रति०	लड़का	प्रति०	कुल	प्रति०
IA	30	12.82	40	12.42	70	12.58
IB	25	10.68	35	10.86	60	10.79
IIA	27	11.53	31	9.62	58	10.43
IIB	30	12.82	30	9.31	60	10.79
III	26	11.11	35	10.86	61	10.97
IV	20	8.54	32	9.93	52	9.35
V	23	9.82	45	13.97	68	12.23
VI	20	8.54	27	8.38	47	8.45
VII	18	7.69	25	7.76	43	7.73
VIII	15	6.41	22	6.83	37	6.65
Total	234	100	322	100	556	100

सारणी 2 से ज्ञात होता है, कि पथरी पुनर्वास बस्ती में वन गूजर प्राथमिक विद्यालय पथरी में गूजर समुदाय के 556 बच्चे शिक्षा ग्रहण कर रहे है। यह विद्यालय आठवीं कक्षा तक है। यहाँ आठवीं कक्षा तक पढ़ाई की जाती है। यहॉ बच्चों को निःशुल्क शिक्षा, नयी किताबें व कॉपीयाँ, यूनिफॉम सरकार कि तरफ से उपलब्ध करायी जाती है। यहां पर 234 लड़कीयाँ व 322 लड़के भिन्न–भिन्न कक्षाओं मे शिक्षा ग्रहण कर रहे है। उपरोक्त सारणी से स्पष्ट प्रदर्शित हो रहा है, कि गूजर समुदाय पहले कि अपेक्षा वर्तमान समय मे शिक्षा कि ओर तीव्र गति से वृद्धि कर रहा है। ये परिवर्तन बाह्य समाजों के सम्पर्क में आने से तथा पुनरवास के कारण हुये हैं।





वनगूजर समुदाय की शिक्षा का परिवर्तित रूप गूजर बस्ती पथरी प्राथमिक विद्यालय एवं जूनियर हाईस्कूल

निष्कर्ष : प्राचीन काल में ये समुदाय जंगलों में पशुचारण करते हुए अर्धघुकनु जीवन व्यतीत करते थे और यही इनकी संस्कृति थी जिस कारण

ये किसी भी क्षेत्र में विकास नहीं कर सके, परन्तु जब से सरकार ने इन्हे जंगलो से हटा कर भिन्न–भिन्न स्थानों पर विस्थापित किया तब से ये लोग अपने आवस पास के समाज से सामंज्स्य स्थापित कर विकास की ओर अग्रसर हो रहे, अब ये लोग शिक्षा स्वास्थ्य की ओर अधिक ध्यान देने लेग है इनके जीविका संचालन के साधनों में भी बृद्धि हो गई है जैसे कृषि, मजदूरी नौकरी व्यवसाय आदि ये राजनैतिक क्षेत्र में भी हस्तक्षेफ करने लगे है, जिससे पता चलता है कि अब यह समुदाय अन्य समुदायो के समतुल्य होने लगे है।

सन्दर्भ :

1. RLEK (1997) Community forest Manegment in Protected Areas- A Van Gujjars Proposal for the Rajaji Area, Dehradun : Natraj Publishers, Page No.134.
2. क्षेत्रीय अवलोकन पर आधारित।
3. साक्षात्कार– गुलाम मुस्तफा आयु 55 वर्ष ग्राम पथरी (पदार्था) जिला हरिद्वार।
4. साक्षात्कार– नूर बानो आयु 55 वर्ष ग्राम पथरी पदार्था।
5. डबराल, शिवप्रसाद, (1995) उत्तराखण्ड के भोटान्तिक दोगड्डा प्रकाशन।
6. तिवारी, विजय कुमार (1998) भारत में जनजातियां, हिमालय पब्लिशिग हाऊस, दिल्ली।
7. डॉ. गणेश पाण्डेय, अरूणा पाण्डेय : भारत की जनजातियां, राधा पब्लिकेशन्स 4231/1, अंसारीरोड, दरियागंज, नई दिल्लीः 2012 पृ. 128
8. रावत, अजय (1996): तराई के वन एवं वनवासी, नैनीताल

***

शारीरिक शिक्षा के विविध क्षेत्र

रामधारी राम *

प्रस्तावना – शारीरिक क्रियाशीलता ही संचार का पहला माध्यम बनी। इसे सम्प्रेषण के रूप में भी लिया जा सकता है। जैसे–जैसे मानव ने सांस्कृतिक, भावनात्मक और सामाजिक रूप से विकास किया वैसे–वैसे उसकी शारीरिक क्रियाशीलता बढ़ती गयी। आधुनिक युग में शारीरिक क्रियाशीलता एक संगठित और निरीक्षणात्मक रूप में होती गयी और शारीरिक शिक्षा के नाम से जानी जाने लगी। ''क्रियाशीलता की कमी मानव के लिए अच्छे दशा को नष्ट करती है, जबकि गति और सिलसिलेवार छंग से की गई कसरत इसे बचाती है और संरक्षण करती है।''

शारीरिक बल, शारीरिक क्षमता, शारीरिक फिटनेस, शारीरिक बनावट एवं स्वास्थ्य आदि के रूप में जाना जाता है। शिक्षा शब्द से अभिप्राय सुव्यवस्थित ढंग से निर्देश या प्रशिक्षण या जीवन की क्रमबद्ध ढंग से तैयारी या या किसी कार्य के लिए विशेष ढंग से दिये जाने वाले दिशा–निर्देश से है। इन दोनों शब्दों का संयुक्त अर्थ शारीरिक क्रियाशीलता से सम्बद्ध है।

आधुनिक संदर्भ में शारीरिक शिक्षा अधिक व्यापक और दैनिक जीवन के सम्बन्ध में सार्थक अर्थ रखती है। शारीरिक शिक्षा मनुष्य के शारीरिक क्रियाकलापों में और उनके द्वारा दी जाने वाली शिक्षा है। इसके परिणामस्वरूप वह एक हृष्ट–पुष्ट और मजबूत शरीर, अच्छे स्वास्थ्य, मानसिक स्फूर्ति और सामाजिक एवं भावनात्मक संतुलन रखने वाला व्यक्ति बन जाता है।

भारत में शारीरिक शिक्षा का तो शायद ही कहीं वर्णन आता है। भारतीय साहित्य में इसकी खोज कठिन–सी लगती है। धार्मिक ग्रन्थों, मूर्तियों और तश्वीरों से मात्र अनुमान ही लगाया जा सकता है। वेद हमारे बहुत पुरातन ग्रन्थ हैं परन्तु इनमें भी शारीरिक शिक्षा के बारे में बहुत जानकारी नहीं मिलती है। शारीरिक शिक्षा और शक्ति के बारे में वेदों के श्लोकों का सहारा लेकर केवल अनुमान लगाया जा सकता है। कुछ श्लोकों में देवताओं के शरीर रूपी आकार का वर्णन आता है जिसमें इस बात पर विचार किया जा सकता है कि लोगों के अपने शरीर के बारे में कुछ ध्यान था।

फिजिकल कल्चर – शारीरिक शिक्षा में एक और शब्द आता है जिसको फिजिकल कल्चर कहा जाता है। बहुत से लोगों फिजिकल कल्चर को ही शारीरिक शिक्षा मानते थे, परन्तु यह भ्रम अधिक समय तक न चल सका क्योंकि लोगों को शारीरिक शिक्षा के बारे में जो गलत धारणाएं थी उनका

* असिस्टेन्ट प्रोफेसर, शारीरिक शिक्षा, स्वामी स. स्ना. महाविद्यालय, गाजीपुर

उचित उत्तर मिल गया। जब उन्होंने शारीरिक शिक्षा को न केवल बड़ी–बड़ी मांसपेशियों के विकास तक ही सीमित रखा बल्कि उन्होंने शारीरिक शिक्षा को समूचे मानव के विकास का साधन माना है।

वह लोग जो फिजिकल कल्चर को ही शारीरिक शिक्षा मानते थे उनके विचारानुसार शरीर को बड़ी–बड़ी मांसपेशियों के विकास में लगाया तथा फिर उन मांसपेशियों को लोगों के समक्ष प्रदर्शन तथा लोगों के आकर्षण का कारण बनकर ही प्रसिद्धि अनुभव करना था। वह अपने आप को ऐसा करके बहुत बडे फिजिकल कल्चर के व्यक्ति कहलवाते थे। वह शरीर को बड़ी–बड़ी मांसपेशियों के साथ सुशोभित करने अथवा सजाने के लिए अखाड़े में जाकर बड़ी–बड़ी मूगलियाँ तथा दण्ड–बैठक मारकर अथवा वजन उठाकर अपनी इन मांसपेशियों का विकास करने में विश्वास रखते हैं उनके अनुसार उसमें केवल मात्र शारीरिक तौर पर ह्रष्ट–पुष्ट बनाना ही है।

फिजिकल कल्चरिस्ट उन वस्तुओं की ओर अधिक ध्यान देते हैं जिनका सम्बन्ध मनुष्य के शरीर को सुडौल तथा खूबसूरत बनाना है। इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए भिन्न–भिन प्रकार की प्रतियोगिताएँ आयोजित की जाती है, जिस प्रकार Best Physique competitions वजन उठाने की प्रतियोगिताओं से अथवा बड़ी–बड़ी मांसपेशियाँ बनार साधारण शिक्षा के उद्देश्यों की प्रप्ति नहीं की जा सकती।

फिजिकल कल्चर चाहे उन्नीसवीं शताब्दी में शारीरिक शिक्षा ही माना जाता है परन्तु वर्तमान में विद्वान यह कहते हैं कि फिजिकल कल्चर का वर्तमान शिक्षा के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। वह तो इस सीमा तक कहते हैं कि फिजिकल कल्चर का शिक्षा में कोई सम्बन्ध है भी नहीं फिजिकल कल्चर यदि है भी तो वह केवल कल्बों या दूसरी ऐसी संस्थाओं तक ही सीमित है।

इतना अन्तर होने के पश्चात रूस जैसे कई देशों में अभी भी फिजिकल कल्चर जैसी वस्तु है, परन्तु उस देश में इस शब्द की व्याख्या तथा इसके क्षेत्र को अत्यधिक व्यापक रूप में लिया गया है। उसको किसी तंग दायरे में बांधा नहीं गया बल्कि इसको समूचे मानव के विकास का साधन माना है।

फिजिकल ट्रेनिंग – प्राचीन काल के घिसे–पिटे विचार वर्तमान आधुनिक शिक्षा प्रणाली ने जब प्रयोग किये जाते हैं तो उनका इलाज रूपी भूत सा उन पर प्रभाव डालता प्रतीत होता है तथा उनके लिए फिजिकल ट्रेनिंग तथा फिजीकल एजूकेशन दोनों में कोई अन्तर दिखाई नहीं देता तथा यदि उनको इन शब्दों में अन्तर बताने का प्रयत्न किया जाये तो वह इधर–उधर की बातें करके दोनों को एक समान दिखाने का भरपूर प्रयत्न करते हैं।

फिजिकल ट्रेनिंग शब्द फौजियों को शारीरिक तौर पर तैयार कर लड़ाई के संकटों से परिचित कराने के लिए दी गई ट्रेनिंग का ही दूसरा रूप है। इस प्रकार की ट्रेनिंग पहले केवल फौज को ही दी जाती थी परन्तु

समय तथा परिस्थितियों ने इसको शैक्षणिक ढाँचे में भी सम्मिलित करने का प्रयत्न किया था। परन्तु विद्यार्थियों तथा फौज के कर्मचारियों को एक ही प्रकार से ट्रेनिंग देना केवल एक के लिए ही नहीं बल्कि दोनों के लिए हानिकारक प्रतीक होता है। वह भी समय था जबकि शैक्षणिक संस्थाओं में भी इस प्रकार की फौज के अधिकारियों ने आना आरम्भ कर दिया तथा विद्यार्थियों को उसी प्रकार की फिजिकल ट्रेनिंग देनी आरम्भ कर दी।

यद्यपि इन अधिकारियों की रुचि तथा परिश्रम बहुत दिखाई देता था परन्तु एक आधारभूत अन्तर जो नाजुक विद्यार्थियों तथा फौजियों में था उसको न जाना गया। आज भी अत्याधिक संस्थाएं अपनी शिक्षण प्रणाली में वही प्राचीन फिजिकल ट्रेनिंग अपनाती हैं। परन्तु उनका यत्न और कोशिश होती है शिक्षा के उद्देश्यों को प्राप्त करना। यह तो वही बात हुई कि बीज ना रिंड तथा उम्मीद रखनी बादमों की।

फिजिकल ट्रेनिंग तो केवल मात्र अपने शरीर की मांसपेशियों को किसी विशेष कार्य के लिए बनाने तक ही सीमित है। फिजिकल ट्रेनिंग को शारीरिक शिक्षा नहीं माना जा सकता। वर्तमान युग में विज्ञान की उन्नति तथा शिक्षा के नये प्रसार द्वारा इस प्रकार की ट्रेनिंग को कुछ सीमा तक भुला ही दिया गया है तथा इसका स्थान ले लिया है शारीरिक शिक्षा ने तथा उन फौज के अधिकारियों का स्थान आज शारीरिक शिक्षा में निपुण अध्यापकों तथा लेक्चररों ने ले लिया है जो पुराने धब्बे होने के लिए तथा विद्यार्थियों को नव मार्ग दिखाने के लिए दिल की गहराई से परिश्रम कर रहे हैं। फिजिकल ट्रेनिंग तथा शारीरिक शिक्षा दोनों के महत्व लोगों तक पहुँचा रहे हैं।

कोचिंग – शारीरक शिक्षा में एक अन्य शब्द का प्रयोग होता है जिसको कोचिंग कहा जाता है। कोचिंग से भाव है किसी वस्तु का ज्ञान देना अथवा कुछ सिखाना जिसके द्वारा विद्यार्थियों की कमियों को दूर करके उनको किसी उच्च स्तर पर ले आने के लिए जो यत्न अथवा कोशिशें की जाती है उनको कोचिंग खेलों के स्तर को ऊँचा करने का ढंग है जिसके द्वारा विद्यार्थी अथवा खिलाड़ी के भीतर न केवल उस खेल में निपुणता प्राप्त करने में सहायता मिलती है बल्कि उसके शारीरिक तथा मानसिक विकास में भी वृद्धि होती है कोचिंग शब्द अत्यधिक व्यापक है तथा इसकी परिधि के भीतर सभी वस्तुएँ जिनका सम्बन्ध खेले के स्तर को ऊँचा उठाना होता है आ जाती है जिस प्रकार तकनीकी ढंग आधारभूत प्रशिक्षण खेल की तैयारी, खेल में आई कठिनाइयों का समाधान खिलाड़ी की शारीरिक कुशलताओं की तैयारी आदि आ जाते हैं। कोचिंग के बिना खेलों में किसी क्रमबद्ध तैयारी की सम्भावना बहुत कम हो जाती हैं किसी भी खेल की बारीकियों का ज्ञान प्राप्त करने के लिए कोचिंग अत्यधिक आवश्यक है। वैसे तो हम प्रतिदिन अपने से बड़ों से कुछ न कुछ सीखते रहते हैं। परन्तु उन सीखी हुई वस्तुओं

को और अधिकतर लाभदायक बनाने के लिए किसी ट्रेनिंग प्राप्त कोच की कोचिंग अत्यधिक आवश्यक एवं महत्वपूर्ण है।

शारीरिक शिक्षा के सभी कार्यक्रम केवल पुस्तकों की सीमा तक ही सीमित नहीं, बल्कि यह एक प्रयोगात्मक विषय है। इसलिए इस विषय की अन्य क्रियाओं को सिखाने के लिए किसी योग्य और सूझ–बूझ वाले कोच से कोचिंग प्राप्त करनी आवश्यक हो जाती है। कोचिंग वर्तमान युग में एक व्यवसाय बन गयी है और सभी लोगों के दिलों में खेलों के महत्व की अत्यधिक इज्जत होने लगी है तथा खेलों में हिस्सा लेने वाले देशों में मान तथा गौरव का विषय बनती जा रही है। इसलिए इनकी एक विशेष विधि द्वारा तैयारी उस समय तक पूर्ण नहीं हो सकती जितने समय तक उन खेलों के लिए सही कोचिंग का प्रबन्ध नहीं होता।

व्यायाम – व्यायाम एक विशेष प्रकार की क्रियाओं को कहते हैं, जो बार–बार की जाती हैं तथा जिनके द्वारा मनुष्य में सन्तुलन तथा एकरूपता उत्पन्न की जा सकती है। व्यायाम के लिए शक्ति की पूर्णता, हरकतें, फूर्ती तथा सांस का होना अत्यधिक आवश्यक है। व्यायाम द्वारा दृढ़ निश्चय, आत्मविश्वास तथा अनुशासन की भावना पैदा होती है। व्यायाम की क्रियाएँ निम्नलिखित दो प्रकार की होती हैं–

1. निकासात्मक क्रियाएं
2. सुधारात्मक क्रियाएं

स्पोर्ट्स (खेलकूद) – स्पोर्ट्स से प्रत्येक व्यक्ति परिचित है। शायद ही कोई मनुष्य ऐसा होगा जिसकों इस बारे में पता न हो। जब मनुष्य अपने दैनिक कार्य से थक जाता है तो वह दैनिक कार्यक्रम से दूर ले जाने वाली नवीन क्रियाएं करता है। उनको करने से प्रसन्न्ता प्राप्त होती है। इस प्रकार की क्रियाएं एक साधारण मनुष्य के लिए स्पोर्ट्स है। स्पोर्ट्स का वास्तविक अर्थ वह क्रियाएं हैं जिनमे हरकत की अवस्था न ही बदलती जैसे कि एथलेटिक्स में देखने में आता है। खिलाड़ी अपने शरीर में कोई बड़ा परिवर्तन किये बिना भागता ही जाता है।

वर्तमान में स्पोर्ट्स का क्षेत्र बढ़ गया है उसमें तैराकी, तीरंदाजी, पर्वतारोहण आदि खेलकूद आदि भी सम्मिलित किया गया है।

खेलें – बच्चा बचपन से लेकर युवावस्था तक कोई क्रिया करता है। वह जब शैशवावस्था में ही होता है तो अपने हाथ–पांव मार–मार कर खेलता है। उसको किसी ने यह सिखाया नहीं होता, यह क्रिया स्वस्फूर्त एवं प्राकृतिक होती है। खेल में प्रत्येक छोटा–बड़ा भाग लेना चाहता है परन्तु खेल क्या है? खेल उन शारीरिक परिवर्तनों को कहते हैं जो खिलाड़ी खेल के मैदान में घूमफिर करता है। उसकी क्रियाएं खेल की अवस्था के अनुसार बदलती रहती हैं। खेल अनेक प्रकार के होते हैं।

मनोरंजन – यदि खेल शब्द को देखा जाय तो इसका शीघ्रता से समझ में आने वाला अर्थ है, मन में प्रसन्नता करने वाली क्रियायें मनोरंजन में वह

क्रियायें हैं जिसके द्वारा मनुष्य अपने फालतू समय का प्रयोग करके शारीरिक तथा मानसिक थकावट से छुटकारा पाता है।

मनुष्य अपने जीवन को उत्तम ढंग से व्यतीत करने के लिए हमेशा कार्य में जुटा रहता है। यह कार्य उसके अन्दर थकावट पैदा कर देता है परन्तु अपना मन प्रसन्न करने के लिए अपने कार्य के पश्चात ऐसी क्रियाएं भी करता है जो उसके मन को अच्छी लगती है। यह मनोरंजन की क्रियाएं कहलाती हैं। यह उन क्रियाओं को किसी विवशता अथवा दबाव के अधीन नहीं करता। उदाहरणयः एक मनुष्य खिलौने बनाकर अपनी जीविका कमाता है तथा इसको कार्य समझता है परन्तु एक अन्य मनुष्य जीविका कमाने के लिए खिलौने बनाने का कार्य दैनिक कार्य नहीं बल्कि मनोरंजन है। फालतू समय का प्रयोग करने के लिए कई साधन है, जैसे –

1. खेलों तथा शारीरिक क्रियाओं में भाग लेना
2. सैर–सपाटे तथा घूमने–फिरने(यात्रा) पर जाना।
3. प्रिय रुचियों का शौक पूरा करना।
4. समाचार पत्र तथा अच्छी पुस्तकें पढ़ना।
5. सिनेमा या टेलीविजन के कार्यक्रम देखना।
6. रेडियो पर अपने मन पसन्द कार्यक्रम सुनना।
7. अकेलेपन में प्रकृति का आनन्द लेना।
8. धार्मिक तथा सांस्कृतिक कार्यक्रम में भाग लेना।

कवायद (ड्रिल) – शारीरिक शिक्षा को एक अन्य समानार्थी नाम ड्रिल से भी जाना जाता है। यह शब्द सेना से लिया गया है। सेना में किसी क्रमबद्ध कार्यक्रम को ड्रिल कहा जाता है। सामान्यतः ड्रिल बैण्ड अथवा संगीत की धुन की सहायता की जाती है। यह ड्रिल व्यक्तिगत एवं सामूहिक सारी गतिविधियों के साथ जुड़ी है।

व्यक्तिगत व्यायामों को सामूहिक रूप से कराने पर वह माह ड्रिल कहलाती है। यदि कवायद का सही अर्थ देखा जाय तो इसका अर्थ होता है उपयुक्त आदेश पाने पर व्यवस्थित एवं क्रमबद्ध तरीके से गतिविधियों का अभ्यास करना। ड्रिल का अभ्यास करवाते समय शारीरिक शिक्षा के शिक्षक हेतु निम्न बिन्दू विचारणीय हैं–

1. व्यक्तिगत अभ्यास क्रमानुसार करवाना
2. सम्पूर्ण कक्षा या समूह को गिनती व संगीत के साथ अभ्यास करवाना।
3. समय के अनुसार प्रदर्शन को खण्डों में विभक्त करवाते हुए उसकी व्याख्या भी करना।

जिमनास्टिक – शारीरिक शिक्षा पर यूरोपीय विचारधारा के प्रभाव के फलस्वरूप इस शब्द का प्रचलन शारीरिक शिक्षा के पर्यायवाची शब्द के रूप में हो गया। वस्तुतः जिमनास्टिक शब्द की उरत्पत्ति यूनानी भाषा से हुई है जिसका अर्थ है 'नैकेड आर्ट' अथवा नग्न–कला।

जिमनास्टिक शब्द का अर्थ है उपयोगी, आवश्यक एवं वैज्ञानिक सिद्धान्तों के आधार पर शरीर के प्रत्येक अवयव एवं स्नायुओं को सुन्दरता एवं सुडौलता प्रदान करना है। जिमनास्टिक आधुनिक युग की नहीं वरन प्राचीन युग की देन है। प्राचीन काल में यूनान निवासियों द्वारा सुडौल देह–यष्टि की कामनावश इस काल का विकास किया गया। 18वीं शताब्दी में जर्मन विशेषज्ञ गट्स–मथ की जिमनास्टिक में गहरी पैठ ने उन्हें इस कला(जर्मन जिमनास्टिक व्यायाम) के पितामह के रूप में ख्याति प्रदान की। यही नहीं इनके द्वारा ही शारीरिक शिक्षा में जिमनास्टिक को प्रयोग किये जाने का भी सुझाव दिया गया। गट्स–मथ की जिमनास्टिक क्रिया विशेषज्ञता और गहरी समझ के कारण लोगों पर उनका विशेष प्रभाव पड़ा। यही नहीं लिखित विषय–वस्तु प्रदान करने हेतु 'गट्स–मथ' द्वारा जिमनास्टिक पर साहित्य लिखा गया जिनमें से कुछ महत्वपूर्ण पुस्तकें इस प्रकार हैं–

1. जिमनास्टिक फॉर द यंग
2. गेम्स
3. जर्मन जिमनास्टिक

जर्मन के ही एक अन्य खेल विशेषज्ञ एडॉल्फ स्पीडा द्वारा इस दिशा में व्यायाम की पाठशाला खोलकर एक महत्वपूर्ण कदम उठाया गया। शारीरिक शिक्षा और जिमनास्टिक एक दूसरे के पूरक होते हुए भी एक नहीं हैं। यद्यपि शारीरिक शिक्षा एवं जिमनास्टिक को बहुत लोगों द्वारा समानार्थी समझा जाता है परन्तु यह तो निश्चित है कि शारीरिक शिक्षा के अन्तर्गत जिमनास्टिक सम्बन्धित गतिविधियाँ अपवना विशेष स्थान रखती हैं। कुछ विशिष्ट देश जैसे स्वीडन, डेनमार्क और जर्मनी में जिमनास्टिक शब्द को शारीरिक शिक्षा एवं खेलकूद सम्बन्धी गतिविधियों से जोड़ा जाता है।

अन्य शारीरिक व्यायाम एवं गतिविधियों की भांति जिमनास्टिक को भी शारीरिक वलिष्ठता, सौन्दर्य, लचीलेपन, सामंजस्य एवं सुदृढ़ता हेतु प्रयोग में लाया जाता है। जिमनास्टिक्स केवल शारीरिक वरन् व्यक्ति के मानसिक, संवेगात्मक विकास के लिए भी अत्यन्त आवश्यक है। समाज में अपने संतुलित देहयष्टि के प्रदर्शन एवं प्रतिष्ठा पाने के लिए भी इनका प्रचलन अतिशयता से हो रहा है। जिमनास्टिक व्यायामों के लिए विशिष्ट व आवश्यकीय उपकरण इस प्रकार है–

1. व्यायाम हेतु मैट (जमीन पर), 2. हॉरीजैन्टल वार, 3. पैरेलल वार, 4. बैलेंस वीम 5. स्टील वार, बाल्टिंगे हार्स, 6. साइड हार्स, पामेल हार्स, लॉग हार्स, 7. रोमन रिंग्स, 8. रोपस, 9. लैडर्स, 10. ट्रैम्पोलियन, 11स्वीडिश बाक्स

निःसन्देह जिमनास्टिक विद्यार्थियों हेतु प्रभावी व्यायाम है। कक्षा व्यवस्था व प्रबन्ध इस प्रकार का होना चाहिए कि सभी विद्यार्थियों से व्यक्तिगत तथा सामूहिक रूप से गतिविधियाँ करवायी जा सकें। इस व्यवस्था के अन्तर्गत समस्त जिमनास्टिक्स के उपकरणों के चारों ओर

विद्यार्थियों को एकत्रित व निर्दिष्ट किया जाना चाहिए जिसमें वे स्वतंत्र रूप से आदेशों का पालन करते हुए जिमनास्टिक्स व्यायामों को कर सके तथा शारीरिक शिक्षा के अध्यापक द्वारा उनका सुविधाजनक ढंग से निरीक्षण किया जा सके।

निष्कर्ष : निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि शारीरिक शिक्षा को मनुष्य के समग्र व्यक्तित्व विकास के साधन के रूप में स्वीकार किया गया है। शारीरिक शिक्षा क्लबों, सौन्दर्य प्रतियोगिताओं एवं शारीरिक सौन्दर्य संस्थाओं मे अभी भी जीवित है। मनुष्य के शरीर को चुस्ती–फूर्ती, शारीरिक सौष्ठव और संतुलन प्रदान करती है। खेल बालक की सहज वृत्ति है जिसे शिशु प्रारम्भ से ही स्वभावतः करता रहता है। इनका नित्य प्रति का अभ्यास ही विद्यार्थियों के लिए लाभदायक होता है। शारीरिक प्रशिक्षण की प्रक्रिया अलग–अलग देशों द्वारा अलग–अलग प्रकार से अपनायी गयी।

व्यक्तिगत व्यायामों को सामूहिक रूप से कराने पर वह मास ड्रिल कहलाती है। आदेश पाने पर व्यवस्थित एवं क्रमबद्ध तरीके से गतिविवधियों का अभ्यास करना निःसन्देह जिमनास्टिक्स विद्यार्थियों हेतु प्रभावी व्यायाम है। कक्षा व्यवस्था व प्रबन्ध इस प्रकार का होना चाहिए जिसकी विद्यार्थियों में व्यक्तिगत तथा सामूहिक रूप से गतिविधियाँ करायी जा सके। शारीरिक शिक्षा के अध्यापक द्वारा उनका सुविधाजनक ढंग से निरीक्षण भी किया जाना चाहिए।

सन्दर्भ :

1. शर्मा, डॉ. एन.पी., शारीरिक शिक्षा के सिद्धान्त और इतिहास, खेल साहित्य केन्द्र, 7/26 अंसारी रोड दरियागंज नई दिल्ली, 2017,
2. सिंह, अजमेर एवं अन्य, शा. शिक्षा तथा ओलम्पिक इतिहास, कल्यानी पब्लिशर्स, लुधियाना, नई दिल्ली 2014, पृ0 12
3. सिंह, होशियार : शारीरिक शिक्षा का इतिहास, लक्ष्य पब्लिकेशन, 7/26 अंसारी रोड दरियागंज नई दिल्ली, 2013, पृ. 40.
4. शर्मा, डॉ. रमा : शारीरिक शिक्षा, विनोद पुस्तक मन्दिर, रांगेय राघव मार्ग आगरा–2, पृ. 17–19.

***

केदारनाथ सिंह की कविताओं में लोक सौन्दर्य

उमेश कुमार पर्वत *

कवि केदारनाथ सिंह के विराट क्रियाशील–काव्य व्यक्तित्व एवं अप्रतिम प्रतिभा की पहचान उनकी कविताओं से ही हो जाती है। समकालीन काव्य आन्दोलन में लोक जगत एवं उससे जुड़े समस्त सौन्दर्यों को उद्घाटित करने व उससे गहरा जुड़ाव रखने वाले कवि है।

केदारनाथ सिंह अपनी कविताओं में लोक को लेकर अत्यन्त सजग हैं। उनके लिए उनका लोक सिर्फ गाँव या गाँव की संस्कृति नहीं है, उन्होंने अपनी कविता में इस संस्कृति को एक गरिमा और ऊँचाई प्रदान की है। विश्वनाथ प्रसाद तिवारी का कहना है कि केदारनाथ सिंह की कविताओं में नदी, नाले, फूल, जंगल, तट, धूप, सरसों के खेत, धानों के बच्चे, वन, सांध्यतारा, बसंत, फागुनी हवा, पकड़ी के पात, कोयल की कुक, पुरबा–पछुवा हवा, शरद प्रात, हेमन्ती रात, चिड़ियाँ, घास, कुनगी, बहुरूपी, प्रकृति संसार रूपायित मिलेगा। कवि के लोक की एक खास विशेषता यह है कि वहाँ के लोग समूह में विश्वास करते हैं, गरीबी व अभाव के बावजूद उनकी आँखों में एक तरह की चमक है और किसी भी संकट से भिड़ने–लड़ने का अदम्य उत्साह भी – पानी से घिरे लोग, टमाटर बेचती बुढ़िया या माझी का पुल जैसी कविताएँ उनका ज्वलंत उदाहरण हैं। उनकी कविताओं में लोक का सम्पूर्ण तत्त्व विद्यमान है जो लोकजीवन की वास्तविकता व यथार्थता का बोध कराता है। मानव की आन्तरिक सम्वेदनाओं को भी झंकृत कर देता है इन कविताओं में माँ के हाथों की रोटी की गंध, मेड़ों पर बैठकर सतधरिया का कलेवा करते मजदूर, घास चरते बैल, भुसों की गंध, धान व तम्बाकू के खेत, बचपन के गाँव की गालियाँ, धानों की बालियाँ, भेड़ व बकरियाँ और आदमी को खुद द्रष्टव्य है। गाँव का होने का गर्व यहाँ जिसमें गाँव का ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण मानवीय चेतना से युक्त लोक के विविध पक्षों का सौन्दर्य उद्घाटित होने लगता है। केदार जी अपनी जीवनशैली को भारतीय किसान से सीखते हैं। लोक की अनुभूति उन्हें लोक–मिथकों धारणाओं एवं दंत कथाओं से जोड़ती है। वे किसान पिता की उसको और उससे व्यंजित होने वाले जीवन मूल्यों को नये मुहावरों से बाँधने की चेष्टा करते हैं, जिसमें आदि से अंत तक सौन्दर्य दृष्टिगत होता है।

''मेरे बेटे
कुएँ में कभी मत झाँकना

---

* शोध छात्र, भोजपुरी अध्ययन केन्द्र, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

जाना
पर उस ओर कभी मत जाना
जिधर उड़े जा रहे हों
काले–काले कौएँ
हरा पत्ता
कभी मत तोड़ना
अगर तोड़ना तो ऐसे
कि पेड़ को जरा भी
न हो पीड़ा
रात की रोटी जब भी तोड़ना
तो पहले सिर झुकाकर
गेहूँ के पौधे को याद कर लेना
कभी अँधेरे में
अगर भूल जाना रास्ता
तो ध्रुवतारा पर नहीं
सिर्फ दूर से आनेवाली
कुत्तों के भूँकने की आवाज़ पर
भरोसा करना
मेरे बेटे
बुध को उत्तर कभी मत जाना
न इतवार को पच्छिम।''

इस प्रकार लोक में व्याप्त समस्त सौन्दर्य के ताजा व सूक्ष्म चित्र केदार जी की कविताओं में अत्यधिक मिलेंगे 'दुपहरिया, 'फागुन के गीत', 'बसन्त गीत', 'पात नये आ गये', 'धानों के गीत', 'रात', 'विदागीत' आदि प्रसिद्ध गीतों तथा अन्य कविताओं में कवि की भाषा, लय और बिम्ब योजना की विशिष्टता लक्षित की जा सकती है। उनकी भाषा में लोक जीवन की भीनी गंध है। यह गंध भी एक खास अंचल की है, जिसे भोजपुरी अंचल कह सकते हैं। केदारनाथ सिंह गाँव से शहर चले आते हैं, लेकिन उनके मन में उनका गाँव पूरी तरह से रचा–बसा रहता है। चलते–फिरते उठते–बैठते उसी की समृत्तियों में बरबस खोये रहते हैं, उनका मानना है कि गाँव के लोग सभ्य होते हैं उनमें संगठन की नींव है कवि की इसी ग्राम्य चेतना में लोक चेतना समाहित है। इस लोक की वास्तविक भाव भूमि उनकी 'देश और घर' नामक कविता है, जिसमें लोक की वास्तविकता साफ–साफ दिखाई पड़ती है।

''हिन्दी मेरा देश है
भोजपुरी मेरा घर
घर से निकलता हूँ
तो चला जाता हूँ देश में

देश से छुट्टी मिलती है
तो लौट आता हूँ घर।''

इस तरह से हम देख सकते हैं कि कवि का सम्पूर्ण जीवन लोक में ही रचा–बसा हुआ है।

केदार जी की एक कविता जो 'अकाल में सारस' में संकलित है कि जब गाँव के लोग शव को फूँक कर आते हैं तो लोक में प्रचलित परम्पराओं के अनुसार हर रस्मों को अपनी सांस्कृतिक परम्पराओं के अनुरूप बड़ी ही निष्ठा के साथ पूरी करते हैं।

'न होने की गंध' नामक कविता की पंक्तियाँ –

''उस घर के किवाड़
अब भी खुले थे
कुछ नहीं था सिर्फ रश्म की मुताबिक
चौखट के पास धीमे–धीमे जल रही थी
थोड़ी सी आग
और उससे कुछ हटकर
रखा था लोहा
हम बारी–बारी
आग के पास गये और लोहे के पास गये
हमने बारी–बारी झुककर
दोनों को छुवा
यों हम हो गये शुद्ध
यों हम लौट आए
जीवितों की लम्बी उदास बिरादरी में।''

अकाल में सारस में ही संकलित एक अन्य कविता जिसमें लोक का मार्मिक पक्ष उद्घाटित होता है। इसमें कवि ने लोककथा का जिक्र किया है, जो कि वह सदियों से हमारे लोक में प्रचलित रही है। कवि केदार जी ने इस कविता में लोक की विडम्बनाओं को बड़ी ही निर्भयता के साथ प्रस्तुत किया है यह वही लोक है, जिसमें वे स्वयं से प्रश्न करते नजर आते हैं, जिसमें उनका समूचा मानव समाज व सम्पूर्ण वातावरण स्वयं उपस्थित रहता है। यह उनकी अपनी एक शैली थी।

केदारनाथ सिंह की कविताओं में लोक जीवन की विराट शक्ति व सौन्दर्य स्पष्ट रूप से निखर कर पाठकों के मानस पटल पर स्वयमेव अंकित हो जाता है। उन्होंने अपनी कविताओं में लोक के सभी पक्षों को बड़ी ही सरलता व सहजता के साथ उकेरा है। 'तीसरा सप्तक' से लेकर 'सृष्टि पर पहरा' तक की उनकी कविताओं में लोकचेतना का स्वर सुना जा सकता है।

''रूको आँचल में तुम्हारे
यह समीरन बाँध दूँ, यह टूटता प्रन बाँध दूँ।
एक जो इन उँगलियों में

कहीं उलझा रह गया है
फूल–सा वह काँपता क्षण बाँध दूँ।''

केदारनाथ जी का अपने गाँव व वहाँ के लोगों से अत्यधिक लगाव उन्हें दिल्ली से बलिया जिले के उस चकिया गाँव में बरबस ही खींच लाता है जहाँ के मानव व मिट्टी से बचपन से ही उनका बेहद आत्मीय सम्बन्ध रहा है। यही कारण है कि उनकी कविताओं में उनके गाँव के कई लोग अनायास ही आते रहते हैं जैसे, झपसी, लालमोहर, कैलासपति, निषाद आदि। तात्पर्य यह है कि केदार जी की कविता की एक बहुत बड़ी जमीन, जिसमें उनका गाँव व लोक है, अपने पूरे समूह अपनी लयबद्धता, संघर्ष और जिजिविषा के साथ बार–बार उपस्थित होता है। केदार जी की कविता में गाँव की यह एक अद्वितीय विशेषता है, जो उनके समकालीन कवियों में दुर्लभ है। भूतों के बारे में लोक में एक तररह का अंधविश्वास सर्वविदित है। यह लोक संस्कृति का एक अभिन्न अंग रहा है। यह लोक विश्वास जब केदार की कविता में प्रकट होता है। इसका उल्लेख डॉ0 विजयमोहन सिंह 'टालस्टाय और सायकिल' की समीक्षा में किये हैं– ''भुतहा बाग के भूत भी भाग गए हैं कहीं और रहने की खोज में। गाँव के ये भूत इतने निरीह और गरीब होते थे कि रास्ते में किसी राही से महज कभी–कभी माँग लेते थे ''चुटकी भर सुर्ती या महज एक बीड़ी'' इस तरह के लोक विश्वास केदार जी की कविताओं में यत्र–तत्र मिल ही जाते हैं। उनकी एक कविता में 'एक हल्दी से रंगे ताजा दूरदर्शी पत्र–सा' का जिक्र आता है। इस कविता में कवि ने कोई और बात कहने के लिए हल्दी–रंगे पत्र का व्यवहार किया है।'' लोक में यह विश्वास है कि कोई पत्र यदि हल्दी रंग में रंगकर आता है, तो वह शुभ समाचार लेकर आता है। आज भी गाँवों में जब कोई शुभ संदेश देना होता है तो पत्र पर हल्दी के छींटे मारे जाते हैं। हल्दी सदियों से लोक में एक शुभ वस्तु के रूप में मौजूद रही है। बिना हल्दी के ना तो वैवाहिक रस्म पूरी होती हैं, न खोईछा भरता है और न ही चुमावन होता है। कई बार तो परदेश जाते समय लोग अपनी गाँठ में एक हल्दी बाँध लेते हैं, इस विश्वास के साथ कि इस तरह उनकी यात्रा शुभ हो जाएगी।

उनकी कविता 'अकाल में सारस' की कुछ पंक्तियाँ –

''छू लूँ किसी को
लिपट जाऊँ किसी से?
मिलूँ
पर किस तरह मिलूँ
कि बस मैं ही मिलूँ
और दिल्ली न आए बीच में।''

यहाँ पर कवि का अपनों के प्रति आत्मीय लगाव है, जो एक तडफ़ सा प्रतीत हो रहा है। यहाँ सिर्फ और सिर्फ अपने गाँव व अपने लोगों से लिपट जाने, उन्हीं का हो जाने की आकांक्षा बलवती प्रतीत होती है। वे

अपने लोक की पावन भूमि के आत्मीय संदर्भों में दिल्ली या अन्य किसी को भी नहीं आने देते हैं।

केदार जी ने इस लोक की शक्ति को पहचाना है और अपनी रचनाओं में संजोया भी है। केदार जी 'लोक' की शक्ति को उजागर करते हैं। लोक के इसी सामर्थ्य को उद्घाटित करने के उद्देश्य से वे लोक संवेदना को महत्व देते हैं। लोक भाषाएँ न केवल किसी मानक भाषा को समृद्ध करती हैं बल्कि वे विभिन्न लोकभाषी जनों को भावात्मक एकता के सूत्र में पिरोती हैं। 'गाँव आने पर' नामक कविता में गाँव से कवि का आत्मीय जुड़ाव दिखाई पड़ता है। इस कविता में कवि ने गाँव के बने रहने की इच्छा जाहिर की है। अपने लोगों के बीच उन्होंने जीना चाहा है, जिसमें एक गहरा आकर्षण है।

''क्या करूँ मैं?
करूा करूँ, क्या करूँ कि लगे
कि मैं इन्हीं में से हूँ
इन्हीं का हूँ
कि यहीं हैं मेरे लोग
जिनका मैं दम भरता हूँ कविता में
और यही, यही जो मुझे कभी नहीं पढ़ेंग।''

केदार जी के जीवन का अनुभव काफी समृद्ध रहा है। उनकी कविताओं में कस्बाई जीवन व वहाँ के लोगों से जुड़ाव उनका सुख–दुःख प्रमुखता से व्यक्त हुआ है। उनकी एक कविता ''हीरा भाई'' है, जिसमें कवि ने अपने गाँव के साथी के माध्यम से वहाँ के लोगों की बुनियादी चिंता को बड़ी सत्यता के साथ व्यक्त किया है।

''एक पूरा चरक–संहिता होता था
उनका जर्जर थैला
जिसमें मवेशी भी ठीक हो जाते थे
और कभी–कभी आदमी भी
आदमी और पशु के बीच के
अंतिम लचकहवा पुल थे हीरा भाई।''

सब मिलाकर नई कविता के इस महान कवि की कविताओं में लोक के बहुआयामी तत्त्व व उसके जीवन से जुड़ी वास्तविकताओं की अभिव्यक्ति हुई है। उनकी कविताएँ लोक से गहरे संपृक्त हैं। केदार जी लोक से कविता रचने की ऊर्जा पाते हैं। यही कारण है कि वे लोक के बेहद करीब होने तथा उसी में जीने–मरने की आकांक्षा रखते हैं।

सन्दर्भ :

1. दुबे, डॉ. श्यामसुंदर, लोक परम्परा, पहचान एवं प्रवाह, राधाकृष्ण प्रकाशन, प्रथम संस्करण–2003

2. सिंह केदारनाथ, मेरे साक्षात्कार, किताबघर प्रकाशन, दिल्ली संस्करण–2008
3. सिंह केदारनाथ, अकाल में सारस, राजकमल प्रकाशन, दूसरा संस्करण–1990, पुनर्मुद्रित–1996 (लोककथा)
4. शुक्ल, डॉ. श्री प्रकाश, साठोतरी हिन्दी कविता में लोक सौन्दर्य, लोकभारती प्रकाशन।
5. सिंह केदारनाथ, उत्तर कबीर तथा अन्य कविताएँ, राजकमल प्रकाशन, दूसरा संस्करण–1999, पृ. 28.

***

गम्भीर विषादी रोगियों के अवसाद और उनके चक्रों पर मनोप्राण चिकित्सा, प्राणायाम एवं ध्यान का पड़ने वाले सम्मिलित प्रभाव का अध्ययन

दुर्गेश चन्द्र द्विवेदी *
डॉ. अमृत लाल गुर्वेन्द **
डॉ. संतोष विश्वकर्मा ***

प्रस्तुत शोध का मुख्य उद्देश्य प्राण मनोचिकित्सा, प्राणायाम एवं ध्यान का अवसाद पर पडने वाले प्रभाव का अध्ययन है। इस अध्ययन में प्रयोगात्मक तथा नियंत्रित समूह अभिकल्प का प्रयोग किया गया। प्रासंगिक एवं यादृच्छिक प्रतिचयन विधि द्वारा देव संस्कृति विश्वविद्यालय, गायत्रीकुंज और तनाव निवारण केन्द्र, हरिद्वार (उत्तराखण्ड) से 20 से 60 वर्ष की आयु के मनोरोगियों का चयन किया गया। इसमें से मनोरोगियों को प्रयोगात्मक समूह तथा नियंत्रित समूह में रखा गया। आँकड़ों का संग्रहण 'Depration test age 18+' by Prof. O.P. Mishra तथा 'Bio Pulser Reflexograph Machine' द्वारा किया गया। प्रयोगात्मक समूह को 90 दिन तक प्रतिदिन प्राण मनोचिकित्सा, 10 मिनट अनुलोम–विलोम प्राणायाम, 10 मिनट सोऽहम् ध्यान का अभ्यास कराया गया। सांख्यकीय विश्लेषण हेतु 'टी–परीक्षण' का प्रयोग किया गया। अध्ययन से प्राप्त परिणामों में यह पाया गया कि प्राण मनोचिकित्सा, प्राणायाम तथा ध्यान का अवसाद के मनोरोगियों के मानसिक स्वास्थ्य पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

कूटशब्द : प्राण मनोचिकित्सा, प्राणायाम, ध्यान एवं अवसाद।

वर्तमान समय में बढ़ती हुई आधुनिकता तथा औद्योगीकरणने जहाँ एक तरफ संसार में अभूतपूर्व वैभव तथा सुख प्रदान किया है, वहीं मानव जीवन में चिंताजनक अशांति एवं मानसिक तनाव भी उत्पन्न किया है, जिसके कारण नाना प्रकार के शारीरिक व मानसिक रोग बढ़ रहे हैं। (सिंह, 1999)

वर्तमान समय में सम्पूर्ण विश्व मानवता अत्यन्त संकट के दौर से गुजर रहीं हैं। प्रथम और द्वितीय विश्व युद्ध में जितने लोगों का संहार नहीं हुआ था, उससे कहीं ज्यादा लोग

* शोधार्थी, योग एवं स्वास्थ्य विभाग, देव संस्कृति विश्वविद्यालय, हरिद्वार, उत्तराखण्ड, भारत।
** निर्देशक, पी.एच.डी. एसोसिएट प्रोफेसर, मानव चेतना एवं योग विभाग, देव संस्कृति विश्वविद्यालय, हरिद्वार, उत्तराखण्ड, भारत।
*** सह निर्देशक, असिस्टेन्ट प्रोफेसर, नैदानिक मनोविज्ञान विभाग, देव संस्कृति विश्वविद्यालय, हरिद्वार, उत्तराखण्ड, भारत।

कोरोना जैसी महामारी का शिकार होकर अपनी जान गँवा चुके हैं। इटली और अमेरिका जैसे देशो में लाखों लोग इस बीमारी का शिकार होकर अपना जीवन समाप्त कर चुके हैं।जो लोग जीवित हैं वे हर क्षण भय और दहशत में जीवन गुजारने के लिए मजबूर हैं। जिन लोगों ने अपने स्नेही स्वजनों को खोया है, वे दुख और विषाद में डूब गये हैं। एक ओर स्वयं को बचाने का संकट और दूसरी ओर स्नेही स्वजनों को खोने का गहरा दुःख है। ऐसी स्थिति में लोगचिंता, डर, फोविया, और अवसाद जैसे मनोरोगों के शिकार हो सकते हैं।

इसके अलावा वर्तमान समय में लोग स्वयं तथा परिवार को कोरोना से बचाने के लिए अपने घरों में कैद हैं। नौकरी, व्यापार चौपट होने के कारण आजीविका का संकट हैं। सरकार से लेकर सामान्य जन मानस तक सभी तनाव, चिन्ता तथा संघर्ष के दौर से गुजर रहे हैं। अभी कोरोना का महासंकट है। कोरोना समाप्त होने के बाद भी नौकरी, बेरोजगारी, गरीबी तथा अर्थव्यवस्था का महासंकट होगा। इसके अलावा लोगोंको अनेकों शारीरिक और मानसिक रोगों से उबारने की चुनौती होगी। ऐसी स्थिति से निपटने के लिए योग, प्राणायाम, ध्यान आदि का आश्रय लेकर स्वयं को सशक्त, शान्त और निरोगी बनाना एक कारगर और प्राभावी उपाय हो सकता है।

योग जड़ तत्व से प्राण और फिर प्राण से मन और मन से परे विज्ञान तत्पश्चात् पूर्ण ब्रह्म की अभिव्यक्ति है। यद्यपि योग साधना व्यक्तिगत है, परन्तु इसका परिणाम सार्वजनिक है, क्योंकि उसका उद्देश्य मनुष्य को अतिमानस अर्थात् आध्यात्मिक स्तर पर ले जाना है। (गोरे, 2004)

प्रकृति के सभी तत्वों का अस्तित्व प्राण शक्ति पर निर्भर करता है। किसी भी तत्व का अस्तित्व तभी तक रहता है, जब तक उसमें प्राण रहते हैं। प्राण के निकल जाने पर उसका अस्तित्व भी नष्ट हो जाता है। मनुष्य का सम्पूर्ण जीवन और विकास भी इसी प्राण तत्व पर निर्भर करता है। प्राणायाम ही एक ऐसा सरल उपाय है, जिसके माध्यम से व्यक्ति अपनी प्राण शक्ति बढ़ा सकता है। आचार्य श्रीराम शर्मा कहते हैं कि जिसने इस प्राण शक्ति को जितनी अधिक मात्रा में धारण करने, पचाने व उसे सही दिशा में प्रयुक्त करने की विद्या सीख ली, वह उतना ही मनोबल सम्पन्न, स्वस्थ और दीर्घायु होता चला जाता है। (ब्रह्मवर्चस, 1993)

प्राणायाम की प्रक्रिया में पूरक और रेचक को धीमा करने के अनेक लाभ हैं। इससे रक्त को अधिक आक्सीजन मिलती है, पाचन क्रिया में सुधार होता हैं। इससे हृदय की गति धीमी होती है और रक्तचान को कम करने में सहायता मिलती है। इस प्रक्रिया से मन शान्त होता है और तनाव से मुक्ति मिलती है। इससे अत्यधिक मात्रा में प्राण ऊर्जा की प्राप्ति होती है तथा जीवनी शाक्ति की वृद्धि होती है। हम चाहे जिस प्रकार का श्वसन करें या प्राणायाम करें, सचेतन श्वसन पर नियन्त्रण न रखकर केवल श्वसन के प्रति सजगता पैदा कर लें, तो यह श्वसन को नियमित बनायेगी और हमें शान्ति देने वाली लय प्रदान करेगी। एक तनावग्रस्त मस्तिष्क को इससे शान्ति मिलेगी। श्वसन के प्रति जागरूक होने मात्र से प्रमस्तिष्कीय

प्रान्तस्था क्रियाशील हो जाती है और मस्तिष्क के विकसित क्षेत्र को प्रेरित करती है।' (सरस्वती, 2001)

धीमा और गहरा श्वसन हमारे रक्त प्रवाह में 'एडाराफिन' नामक मस्तिष्कीय रसायन का स्राव करता है। इससे मन शान्त तथा तनाव रहित बनता है। यह एक शाक्तिषाली मस्तिष्कीय रसायन है। यह तन्त्रों का नियन्त्रण करता है और वेदना को सहन करने की शक्ति प्रदान करता है।

मस्तिष्क में स्थित 'प्रीफ्रन्टल कॉर्टेक्स' कमजोर तथा अविकसित होने पर व्यक्ति अवसाद ग्रस्त हो जाता हैं। ध्यान का अभ्यास करने पर 'प्रीफ्रन्टल कॉर्टेक्स' विकसित तथा सशक्त हो जाता है। 'एक ऐतिहासिक अध्ययन से ज्ञात हुआ है कि ध्यान करने वाले व्यक्तियों के मस्तिष्क में उल्लेखनीय रूप से 'प्रीफ्रन्टल कॉर्टेक्स ग्रे मैटर थिकनेस' अधिक था। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि व्यक्ति जितना अधिक ध्यान करता है, उसका 'प्रीफ्रन्टल कॉर्टेक्स' उतना ही अधिक मजबूत और बेहतर होता है। अध्ययन में शोधकर्त्ताओं ने ध्यान करने वाले व्यक्तियों को सबसे अधिक प्रसन्न, चतुर तथा स्वस्थ पाया। शोधकर्त्ताओं का कहना है कि यदि कोई मनुष्य अवसाद मुक्त होना चाहता है, तो उसे नियमित ध्यान करना चाहिए।'(डॉ. सारा लजार, न्यमरोसाइंटिस्ट, हार्वर्ड)

सौर जालिका चक्र रोग का केन्द्र है, तो हृदय चक्र को आरोग्यता का केन्द्र कह सकते हैं। जिस व्यक्ति का हृदय चक्र सक्रिय तथा बड़ा हो और सौर जालिका चक्र छोटा एवं संतुलित हो तो व्यक्ति शारीरिक और मानसिक रूप से स्वस्थ और निरोगी रहता है। 'यदि सौर जालिका चक्र निम्न तथा नकारात्मक भावनाओं का स्रोत है। जैसे– शांति, हर्ष, दयालुता, कोमलता, संवेदनशीलता हृदय चक्र को सक्रिय करने से निम्न भावनाएँ, उच्च भावनाओं में परिवर्तित की जा सकती हैं।' (सुई,2005)

शोध विधि

प्रतिदर्श एवं प्रतिचयन : प्रस्तुत शोध अध्ययन में प्रासंगिक प्रतिचयन विधि द्वारा 'तनाव निवारण केन्द्र' हरिद्वार (उ.ख.) से 20 से 60 वर्ष की आयु के 200 विषादी रोगियों का चयन किया गया। इसके बाद यादृच्छिक प्रतिचयन विधि द्वारा 200 रोगियों में से 120 अवसाद के रोगियों का चयन (प्रयोगात्मक समूह 60 और नियन्त्रित समूह 60) किया गया है।

शोध अभिकल्प – प्रस्तुत शोध में नियन्त्रित समूह डिजायन का प्रयोग किया गया है, जिसमें प्रयोगात्मक समूह में 60 तथा नियन्त्रित समूह में 60 विषादी रोगियों को रखा गया।

उपकरण – प्रस्तुत शोध में अवसाद को मापने के लिए 'बायोपल्सर रिफलेक्सोग्राफ मशीन' तथा 'डिप्रेशन टेस्ट एज 18+' का प्रयोग किया गया है। इस डिप्रेशन टेस्ट को प्रो. ओ.पी. मिश्रा, डॉ0 सन्तोष विश्वकर्मा तथा डॉ. विद्याभूषण ने विकसित किया है।

सांख्यकीय विश्लेषण – प्रस्तुत शोध अध्ययन में आँकड़ों के सांख्यकीय विश्लेषण हेतु टी–परीक्षण का उपयोग किया है।

संग्रहण प्रक्रिया – प्रस्तुत शोध अध्ययन में प्राण मनोचिकित्सा, अनुलोम–विलोम प्राणायाम तथा सोऽहम् ध्यान का अवसाद पर पड़ने वाले सम्मिलित प्रभाव का अध्ययन करने के लिए मिश्रित

प्रतिचयन विधि का प्रयोग किया गया। प्रासंगिक प्रतिचयन विधि के द्वारा 'तनाव निवारण केन्द्र' हरिद्वार (उ.ख.) से 20–60 वर्ष की आयु वाले 200 रोगियों का चयन किया गया है। इसके बाद यादृच्छिक प्रतिचयन विधि द्वारा 200 विषादी रोगियों में से 120 रोगियों का चयन प्रयोगात्मक समूह 60 तथा नियन्त्रित समूह 60 के रूप में किया गया। विषादी रोगियों के अवसाद को मापने के लिए 'डिप्रेशन टेस्ट एज 18+' का प्रयोग किया गया। इसके अलावा विषादी रोगियों के चक्रों में विद्यमान प्राण ऊर्जा के स्तर को मापने के लिए 'बायोपल्सर रिफलेक्सोग्राफ मशीन' का प्रयोग किया गया।

अध्ययन प्रारम्भ करने के पहले प्रयोगात्मक समूह के विषादी रोगियों का दोनों परीक्षणों के द्वारा पूर्वपरीक्षण किया गया। इसके बाद 90 दिन तक इनकी प्राण मनोचिकित्सा की गयी और 10 मिनट अनुलोम–विलोम प्राणायाम तथा 10 मिनट सोऽहम् ध्यान का अभ्यास कराया गया। इसके बाद इनका पश्चात् परीक्षण किया गया। यही प्रक्रिया नियन्त्रित समूह के साथ अपनायी गयी, किन्तु उनसे कोई अभ्यास नहीं कराया गया। इसके पश्चात् प्राप्त आँकड़ों के सांख्यिकीय विश्लेषण हेतु टी–परीक्षण का उपयोग किया गया।

परिणाम :

सारणी (1) प्रयोगात्मक समूह एवं नियन्त्रित समूह के अवसाद स्तर के मध्य तुलना।

Paired Samples Test

		Paired Differences					t	df	Sig. (2-tailed)
		Mean	Std. Deviation	Std. Error Mean	95% Confidence Interval of the Difference Lower	Upper			
Experimental Group	Pre depression - post depression	48.13333	20.98697	2.70741	43.01102	53.25484	17.878	59	0
Control Group	control_pre_d - control_post_d	-0.76667	9.57285	1.23585	-3.2396	1.70626	-0.62	59	0.537

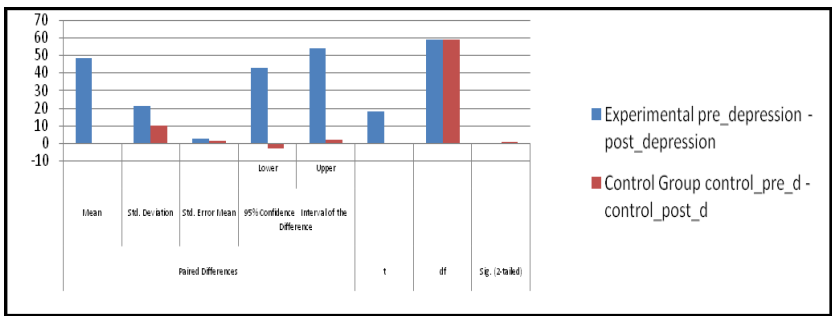

उपरोक्त सारणी (1) से स्पष्ट होता है कि नियन्त्रित समूह के 'डिप्रेशन टेस्ट एज 18+' के पूर्व और पश्चात् परीक्षण का मध्यमान 0.76667 और मानक विचलन 9.57285 है,

मानक त्रुटि विचलन 1.23585 है, दोनों माध्यो के बीच अन्तर 95% वास्तविक होने के संयोग का निचला मान 3.023585 और उच्चता का मान 1.70626 है एवं टी–परीक्षण का मान 0.620 है, जो कि सांख्यिकीय रूप से सार्थक नहीं है। इसी प्रकार प्रयोगात्मक सममूह के पूर्व और पश्चात् परीक्षण का मध्यमान 48.43333 और मानक विचलन 20.98697 है, मानक त्रुटि विचलन 2.70941, दोनों माध्यों के बीच अन्तर 95% वास्तविक होने के संयोग का निचला मान 43. 81184 और उच्चता का मान 53.01182 है एवं टी–परीक्षण का मान 17.876 है, जो कि सांख्यिकीय रूप से 0.01 पर सार्थक है। प्राप्त परिणामों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि मनोप्राण चिकित्सा, अनुलोम–विलोम प्राणायाम तथा सोऽहम् ध्यान का अवसाद पर सार्थक प्रभाव पड़ता है।

सारणी (2) दोनों समूहों के विषादी रोगियों के चक्रों में विद्यमान प्राण ऊर्जा स्तर के मध्य तुलना

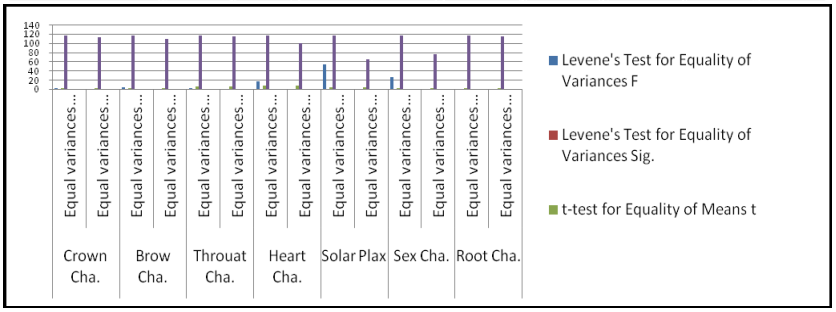

उपरोक्त सारणी (2) से स्पष्ट होता है 'बायोपल्सर रिफलेक्सोग्राफ मशीन' से ब्रह्म चक्र के समान प्रसरण स्वीकृत होने के अन्तर्गत टी– परीक्षण का मान 4.374, आज्ञाचक्र का टी परीक्षण मान 4.155, कंठ चक्र का टी परीक्षण मान7.136, हृदय चक्र का टी परीक्षण मान 9. 136, सौर जालिका चक्र का परिक्षण मान 5.076, और कामचक्र का टी परिक्षण मान 4.372 है। स्वतन्त्रता की कोटि (df) 59 पर 0.05 स्तर पर सार्थक होने के लिए टी सारणी का मानक 2. 00 से अधिक होना चाहिए। अतः सभी चक्रों का प्राप्त परिणाम 0.05 स्तर पर सार्थक हैं। प्राप्त परिणामों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि प्राण मनोचिकित्सा, अनुलोम–विलोम

प्राणायाम तथा सोऽहम् ध्यान का अवसाद के मनोरोगियों के चक्रों में विद्यमान प्राण ऊर्जा पर सार्थक प्रभाव पड़ता है।

परिणामों की विवेचना – प्राणिक मनोपचार द्वारा विषादी रोगी के सौर जालिका चक्र, कण्ठ चक्र, आज्ञा चक्र तथा ब्रह्म चक्र में विद्यमान तनाव परक या अभिघाती ऊर्जा तथा नकारात्मक तत्वों का विखण्डन एवं निष्कासन करके, इन्हें वैद्युतीय बैंगनी प्राण से ऊर्जित करके अवसाद का उपचार किया जाता है। अनुलोम–विलोम प्राणायाम की प्रक्रिया में पूरक और रेचक को (7:1, 7:1) धीमा करने से रक्त को अधिक ऑक्सीजन, पाचन क्रिया में सुधार और रक्तचाप को कम करने में सहायता मिलती है। इससे मन शान्त होता है और तनाव से मुक्ति मिलती है। इससे अत्यधिक प्राण ऊर्जा की प्राप्ति होती है और जीवनीशक्ति की वृद्धि होती है। ध्यान का अवसाद के निवारण में बहुत सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। ध्यान की अवस्था में किसी बिन्दु, स्थान तथा चक्र पर एकाग्र होने पर प्रमस्तिष्कीय प्रान्तस्था क्रियाशील हो जाती है और मस्तिष्क के विकसित क्षेत्र को प्रेरित करती है। इससे भावनात्मक शान्ति मिलती है, तनावग्रस्त मस्तिष्क शान्त होता है। मस्तिष्क के शान्त होने पर शरीर और मन का तनाव और खिचाव दूर होकर उसे विश्रान्ति मिलती है।

जब किसी व्यक्ति को अभिघाती अनुभव होते हैं, तो उससे अभिधाती दिमागी ऊर्जा उत्पन्न होती है, जो कि विभिन्न चक्रों के केन्द्रों में चली जाती है। यह आगे चलकर तनाव, विषाद या फोविया के रूप में प्रकट हो सकती है। इस अभिघाती ऊर्जा में भी आंशिक चेतना होती है, जिसे अभिघाती विचार कहते हैं। अभिघाती अनुभव के परिणाम स्वरूप व्यक्ति में भय, आत्म विश्वास में कमी, असुरक्षा निरर्थकता अथवा उदासीनता के भाव बार–बार आते हैं। आगे चलकर ये नकारात्मक विचार या भावना स्थायी रहने वाले नकारात्मक काल्पनिक विचारों को जन्म देते हैं, जो हतोत्साह के रूप में प्रकट होते हैं। फोविया एक अभिघाती डर है, जो कि कुछ चक्रों में जाकर केन्द्रित हो जाता है। यह फोविया अथवा भयपरक विचार सौर जालिका चक्र तथा ब्रह्म चक्र मेंकेन्द्रित हो जाता है। प्राणिक मनोपचारकजब इन भयानक विचारों अथवा ऊर्जा को अंशतः या पूर्णतः निकालता है, तो रोगी को निश्चित रूप से आराम मिलता है। (सुई,2005)

अवसाद के गम्भीर रोगी के चक्र बहुत छोटे हो जाते हैं और आभामण्डल कम हो जाता है और चक्र छोटा हो जाता है। इस कारण रोगी को बार–बार नकारात्मक तथा आत्महत्या के विचार आते हैं। ऐसी स्थिति में विषादी रोगी को चलने में भी परेशानी होती है। मूलाधार चक्र आत्म संरक्षण या जिजीविषा का केन्द्र है। ऐसी स्थिति में रोगी द्वारा सोऽहम् ध्यान साधना करने पर रोगी के चक्र सक्रिय तथा बड़े हो जाते हैं और आभामन्डल भी बड़ा व सशक्त हो जाता है। धीरे–धीरे अवसाद के रोगी का स्वास्थ्य सामान्य होने लगता है। 'चक्रों के सक्रिय और विकसित होने से शरीर के सभी अंग–अवयव संतुलित रूप से कार्य करने लगते हैं, क्योंकि चक्र ही सम्बधिंत अंगों को ऊर्जित और नियन्त्रित करते हैं।' (सुई,1997)

अनुलोम–विलोम प्राणायाम (7:1,7:1) की प्रक्रिया में पूरक और रेचक को धीमा करने के अनेक लाभ हैं। इस अभ्यास से रोगी के आभामण्डल बड़े तथा ऊर्जित हो जाते हैं। सभी

चक्र विकसित तथा आकार में बड़े हो जाते हैं। मूलाधार चक्र जो कि आत्म संरक्षण अथवा जिजीविाा का केन्द्र है, इस प्राणायाम के अभ्यास से ऊर्जित, विकसित तथा अत्यन्त बड़ा हो जाता है। 'प्राण शक्ति श्वसन प्रक्रिया (अनुलोम–विलोम प्राणायाम 7:1,7:1) में मनुष्य को इतनी अधिक ऊर्जा प्राप्त होती है कि कुछ समय के लिए आभामण्डल 100% से अधिक, स्वास्थ्य आभामण्डल 4 फिट या अधिक और बाहरी आभामण्डल 2 मीटर या उससे अधिक फैल जाता है। व्यक्ति बहुत अधिक शाक्तिशाली हो जाता है। उसका वायवी शरीर चमकदार और घना हो जाता है।' (सुई, 2006)

न्यूरोरसायन कारण (Nurochanrical Faror) के अन्तर्गत मेडिकल शोधों से ज्ञात हुआ है कि अवसाद की उत्पति में न्यूरोट्रांसमीटर की प्रमुख भूमिका होती है, इस सम्बन्ध में हुए अध्ययनों से ज्ञात हुआ है कि नॉरपेनेफ्रिन (Norepinephrine) तथा सेरोटोनिन (Serotonin) दो ऐसे न्यूरोट्रांसमीटर हैं, जिनकी भूमिका अवसाद उत्पन्न करने में अत्यधिक है। (सिंह, 2011) ध्यान का अवसाद पर बहुत सकारात्मक प्रभाव पड़ता हैं। 'ध्यान करने से सेरोटोनिन और नॉरपेनेफ्रिन दोनों रसायनों का स्तर बढ़ता है। ध्यान स्वभाविक रूप से अवसाद प्रतिरोधी' के रूप में कार्य करता है। वास्तव में ध्यान मनुष्य के मस्तिष्क के अन्दर एक न्यूरोकेमिकल यूटोपिया (स्थिति) बनाता है जहाँ अवसाद जीवित रहने में असमर्थ रहता हैं।' (मॉन्ट्रियल रिसर्च टीम)

एक अवसाद ग्रस्त व्यक्ति स्वयं के बारे में हमेशा नकारात्मक ढ़ंग से सोचता है। वह अपने बारे में सोचता है कि वह तुच्छ और घटिया है, उसके अन्दर आत्म सम्मान नाम की कोई चीज नहीं है। वह स्वयं को असफल मानता है और इस असफलता का कारण स्वयं को मानता है। ऐसी रोगी में दोषभाव भी बहुत अधिक होता है। ऐसे रोगी अपने भविष्य को निराशा और उदासी से भरा हुआ समझते हैं। वे सोचते हैं कि सब कुछ बिगड़ गया और उन्हें किसी प्रकार के सकारात्मक होने की आशा छोड़ देनी चाहिए। अपने बुरे भविष्य के लिए वे अनेको प्रकार के तर्क देते हैं।' (चानोन, बेकर तथा रॉबर्टसन,1993)

ऐसे विषादी रोगियों में नकारात्मक चिन्तन की एक चेन बन जाती है, वह चाहकर भी इस चेन को तोड़ नहीं पाता है और अपने चिन्तन को सकारात्मक नहीं बना पाता है। इसका कारण यह है कि ऐसे मनोरोगी में इच्छा शक्ति की बहुत कमी हो जाती है। प्राण चिकित्सक द्वारा आज्ञा चक्र का मनोपचार करके और आज्ञाचक्र को बड़ा एवं सक्रिय करके अवसादी व्यक्ति की इच्छा शक्ति में वृद्धि की जा सकती है। इच्छाशक्ति में वृद्धि हो जाने पर विषादी का अपने मन पर नियन्त्रण हो जाता है। मन नियन्त्रित होने पर विषादी स्वयं को नकारात्मक चिन्तन से मुक्त कर सकता है और अपने मन को सकारात्मक दिशा में मोड़ सकता है तथा स्वयं को सकारात्मक बना सकता है।

'आज्ञा चक्र उच्च कोटि की मानसिक क्षमता या आदर्श मस्तिष्क का केन्द्र है। यह 'निर्देश' या इच्छा शक्ति का केन्द्र भी है। कई बार प्राण चिकित्सक को मानसिक रोगी के इच्छा चक्र को सक्रिय करना पड़ता है। आज्ञाचक्र के सक्रिय होने पर रोगी की इच्छा शक्ति

बढ़ जाती है, जिससे वह सोच–समझ सकता है। बहुत मनोरोगियों को गलत भावनाएँ आती हैं। इस समस्या को समाप्त करने का साधन आज्ञाचक्र को सक्रिय करना है।'(सुई,2005)

शोध निष्कर्ष – प्रयोगात्मक समूह तथा नियन्त्रित समूह के विषादी रोगियों के अवसाद स्तर में सार्थक अन्तर पाया गया। साथ ही दोनों समूहों के विषादी रोगियों के चक्रों में विद्यमान प्राण ऊर्जा के स्तर में भी सार्थक अन्तर पाया गया।

अतः निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि विषादी रोगियों के अवसाद पर मनोप्राण चिकित्सा, अनुलोम–विलोम प्राणायाम तथा सोऽहम् ध्यान का सार्थक और सकारात्मक प्रभाव पड़ा। इसलिए अवसाद रोग के उपचार के लिए मनोप्राण चिकित्सा, अनुलोम–विलोम प्राणायाम तथा सोऽहम् ध्यान का उपयोग करना एक कारगर और प्रभावी उपाय हो सकता है।

सन्दर्भ :

1. सिंह, आर (1999), योग विज्ञान एवं योग चिकित्सा (पृष्ठ–4.5)। दिल्ली : चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान।
2. गोरे, एम.एम. (2004), शरीर विज्ञान एवं योगाभ्यास। पुणे, कैवल्य धाम, लोनावाला।
3. ब्रह्मवर्चस (1993), प्राणायाम से आधिव्याधि निवारण (पृष्ठ–155) मथुरा, युग निर्माण योजना।
4. सरस्वती, स्वामी निरंजना नन्द (2001), प्राण, प्राणायाम और प्राण विद्या (पृष्ठ–38–50), योग पब्लिकेशन ट्रस्ट मुंगेर बिहार।
5. डॉ. सारा लजार, न्यूरोंसाइंटिस्ट, हार्वर्ड,https://cocinstitute.org /Meditation/8-compelling-Reasons.
6. सुई, मास्टर चोआ कोक (2005), प्राणिक मनोपचार (पृष्ठ–109), नई दिल्ली, प्राणिक उपचार संस्थान।
7. सुई, मास्टर चोआ कोक (1997), उन्नत प्राणिक उपचार (पृष्ठ–17),
8. सुई, मास्टर चोआ कोक (2006), प्राणशक्ति उपचार प्राचीन विज्ञान एवं कला (पृष्ठ–110), नई दिल्ली, आल इण्डिया प्राणिक हीलिंग फाउन्डेशन
9. शोध लेख, साइन्स डाइजेसट, जून, 1981।
10. डा. रेमण्ड क्लीन तथा रोजीन अभीटेज, डलहौजी यूनिवर्सिटी, नोवास्कॉटिया।
11. सिंह, अरूण कुमार (2011), नैदानिक असामान्य मनोविज्ञान (पृष्ठ–329), मोतीलाल बनारशी दास पब्लिशर्स, दिल्ली।
12. मॉट्रियल रिसर्च टीम,http://cociustitute.org/meditation/8compelling-Reasons.
13. सिंह, अरूण कुमार (2011), नैदानिक असामान्य मनोविज्ञान (पृष्ठ–332), मोतीलाल बनारशी दास पब्लिशर्स, दिल्ली।
14. सुई, मास्टर चोआ कोक (2005), प्राणिक मनोपचार (पृष्ठ–9), नई दिल्ली, प्राणिक उपचार संस्थान।

***

माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों में मातृभाषा के प्रति अभिरूचि व अभिवृत्ति का अध्ययन

प्रदीप कुमार पंकज *

''बालक को उत्तम शिक्षा किस भाषा में दी जाये, जिस भाषा में उसे सपने आते हो, उस भाषा में दी जाए।''

प्रस्तावना :– भाषा एक ऐसा माध्यम है, जो समाज या राष्ट्र के रंगमंच पर होने वाले विविध क्रिया कलाप घात–प्रतिघात तथा घटनाओं से उद्वेलित मानव मन के उद्‌गारों को वाणी प्रदान करता हैं। भाषा हमारी सम्पूर्ण अभिव्यक्ति का माध्यम हैं। भाषा के बिना–विषय प्रकटीकरण करना संभव नही हैं। हमारे शिक्षा क्रम में भाषा का बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है। व्यक्ति के विकास में शिक्षा की महत्वपूर्ण भूमिका होती हैं। शिक्षा मनुष्य का सर्वांगीण विकास करती हैं। शिक्षा का पहला कदम ज्ञान हैं यह सरल सहज और वास्तविक प्रक्रिया से होता है। भाषा ज्ञान को प्राप्ति के क्रम में व्यक्ति सर्वप्रथम अपनी मातृभाषा का ज्ञान प्राप्त करता है। स्वतंत्रता के बाद यह अनुभव किया गया कि भारत जैसे बहुभाषायी देश तो राष्ट्रीय एकता को सुदृढ़ करने के लिए पाठ्‌यक्रम की ऐसी रचना की जाए जिसमें प्रत्येक शिक्षित व्यक्ति एक से अधिक भाषाओं को जानकर हो इस प्रकार शिक्षा की व्यवस्था में त्रिभाषा सूत्र का प्रारंभ हुआ।

संवैधानिक प्रावधानों के परिणामस्वरूप भाषा जैसे संवेदनशील मुद्‌दे पर राजनैतिक और क्षेत्रीय प्रतिक्रिया संविधान निर्माताओं ने हिन्दी की व्यापकता को स्वीकार करते हुये उसे संघ की राजभाषा होगी ऐसी धारा 343 में कहा गया। 14 सितम्बर 1949 को संविधान सभा के 324 सदस्यों मे से 312 ने हिन्दी के पक्ष में मतदान करके हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाया। मातृभाषा और राष्ट्रभाषा का महत्त्व भली–भांति उजागर हो जाता है। मातृभाषा व्यक्ति को अपनी धरती से जोड़ती है तो राष्ट्रभाषा विभिन्न प्रदेशों को एकता के सूत्र में बांधकर राष्ट्र को सुदृढ़ और ओजस्वी बनाती है।

भाषा परिभाषा – मातृभाषा की इतनी अधिक मांग है कि दुनिया के सबसे बड़ Search English Google ने भी वर्ष 2009 में मातृभाषा को अपना लिया और हिन्दी की लोकप्रियता इतनी अधिक है की दूसरे भाषा के मुकाबले हिन्दी 97 प्रतिशत की वृद्वि दर से सबसे आगे बढ़ने वाली भाषा है। जिसे गूगल भी मानता है। हिन्दी शब्द की उत्पति संस्कृत भाषा के सिन्धु शब्द से हुई है। सिन्धु नदी के क्षेत्र में आने कारण ईरानी लोग सिन्धु न कहकर हिन्दु कहने लगे जिसके कारण यहाँ के लोग हिन्द, हिन्दु और हिन्दुस्तान कहलाने लगे। मातृभाषा के प्रचार–प्रसार के लिए भारतेन्दु हरीशचन्द्र के

* व्याख्याता, हितकारी सहकारी महिला शिक्षा महाविद्यालय, आरामपुरा, धाकड़खेड़ी, कोटा, राजस्थान

योगदान को भुलाया नही जा सकता है। और सौभाग्य से हमें भी भारतेन्दु हरीशचन्द्र के वाराणसी में स्थित हरीशचन्द्र कॉलेज में इंटर की पढ़ाई करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ मातृभाषा का महत्व भारतेन्दु हरीशचन्द्र के इस कथन से लगाया जा सकता है।

निज भाषा उन्नाति अहै, सब उन्नाति को मूल
बिन निज भाषा–ज्ञान के, मिटत न हिय को सूल।
विविध कला शिक्षा अमित, ज्ञान अनेक प्रकार
सब देसन से ले करहू, भाषा माहि प्रचार।

अभिरूचि : साधारण शब्दों में अभिरूचि से हमारा अभिप्राय किसी तथ्य, वस्तु या प्रतिक्रिया के प्रति ध्यान केन्द्रित करता है जब कोई वस्तु अच्छी लगती है या पसन्द आती है। तो स्वाभाविक रूप मे हमारी अभिरूचि उसके प्रति हो जाती है। जिसके फलस्वरूप हम उस और अपना ध्यान केन्द्रित कर लेते है। रूचि शब्द अंग्रेजी भाषा Interest का पर्याय है जो Latin भाषा के इन्ट्रेसी शब्द से बना है जिसका अर्थ है यह आवश्यक होती है या वह सम्बन्धित होती है मातृभाषा मे रूचि सस्कृत भाषा के रूच् ;शब्दद्ध से बना है जिसका अर्थ पसन्द करना होता है। रूचि क्रिया न होकर एक स्थायी प्रवृति अथवा एक मानसिक संरचना है जो चेष्टात्मक क्रिया को आवश्यक चालक शक्ति प्रदान करती है।

''रूचि जन्मजात भी होती है और अर्जित भी।

जिन वस्तुओं से किसी अस्थायी उद्देश्य या आवश्यकता की पूर्ति होती है उनमें रूचि भी अस्थायी होती है।

मैंक्डूगल के अनुसार – रूचि और ध्यान का परस्पर संबंध बतलाते हुए कहा है कि, Interest is latent altention altention is interest in action अर्थात रूचि गुप्त ध्यान है, ध्यान सक्रिय रूचि है।

अभिवृत्ति– अभिवृत्ति शब्द की उत्पत्ति Aptus अर्थात् शब्द से हुई (attitude) है। Aptus शब्द लेटिन भाषा का शब्द है। जिसका अर्थ है– योग्यता या सुविधा अभिवृत्ति एक परिकल्पनात्मक तथ्य है। क्योकि अभिवृत्ति को प्रत्यक्ष रूप से देखा नही जा सकता लेकिन इसके प्रभावों को अनुभव किया जा सकता है। अभिवृत्ति का सबंध अनुभव और व्यवहार के संगठन से है। सामाजिक व्यवहार की अभिवृत्ति और निर्धारण में अभिवृत्तियों की महत्वपूर्ण भूमिका है। साधारण शब्दों में अभिवृत्ति से हमारा अभिप्राय व्यक्ति के उस दृष्टिकोण अथवा स्थिति के प्रति किसी विशेष प्रकार के व्यवहार को इंगित करते है। अन्य शब्दों में अभिवृत्तियों उन व्यक्तित्व प्रवृत्तियों की ओर संवेग करती है जिनके द्वारा किसी निश्चित वस्तु व्यक्ति या स्थिति के प्रति व्यक्ति व्यवहार का निर्णय लिया जाता है।

आधुनिक समाज की बहुत सी समस्याओं का अध्ययन भी अभिवृत्ति मापन की प्रविधियों द्वारा किया जा रहा है जैसे प्रेम विवाह धूम्रपान, मद्यमान, नियोजन, दहेज जातिधर्म भेद आदि।

फ्रीमैन द्वारा : ''अभिवृत्ति किन्ही निश्चित परिस्थितियों व्यक्तियों एवं वस्तुओं के प्रति संगत रूप से प्रत्युत्तर देने वाली वह स्वाभाविक तत्परता है जिसे सीखा जाता है। तथा यह किसी व्यक्ति के प्रत्युत्तर देने की लाक्षणिक रीति बन जाती है।

समस्या का औचित्य – माध्यमिक कक्षाओं का शिक्षण मातृभाषा में होना चाहिए परन्तु इन कक्षाओं में अध्ययनरत विद्यार्थियो की मातृभाषा के प्रति अभिवृत्ति क्या है? क्या इन्हें मातृभाषा में शिक्षण करना उचित उगता है? क्या ये विद्यार्थी मातृभाषा को सम्मान की दृष्टि से देखते है? क्या विद्यार्थी को मातृभाषा में शिक्षण से कठिनाई उत्पन्न होती है। क्या विद्यार्थी हीन –भावना से ग्रसित है कि उसे मातृभाषा आती है तो वह गवार है? विघार्थी को मातृभाषा के प्रति लगाव है या नही। मातृभाषा मे शिक्षण रूचिकर उगता है। क्या? अगर हाँ तो क्यों? अगर नही तो क्या कारण है?

हिन्दी शिक्षा को माध्यम हो या नही इसके प्रति विद्यार्थियों की अभिवृत्ति क्या है? क्या केवल मातृभाषा का ज्ञान होना ही उनकी तरक्की में बाधक है? क्या अभिभावक अपने बच्चों को अंग्रेजी माध्यम से पढ़ने को मजबूर करते है? इस प्रकार इन सभी प्रश्नो के उत्तर जानने तथा छात्रों की मातृभाषा के प्रति अभिवृत्ति को जानने हेतु शोधार्थी द्वारा इस शोध समस्या का चयन किया गया है। माध्यमिक कक्षाओं में अध्ययनरत समस्त विद्यार्थियों का शिक्षण मातृभाषा में होना चाहिए परन्तु क्या आज सभी विद्यालयों में मातृभाषा को प्राथमिकता प्राप्त हो पायी है। वर्तमान शिक्षण प्रणाली में मातृभाषा की क्या उपयोगिता है? बालक की प्रांरभिक शिक्षा मातृभाषा में होनी चाहिए या नही? बालक मातृभाषा द्वारा शिक्षण में रूचि ले रहे है या नही? मातृभाषा हमारे संस्कार एवं धर्म आचरण, मान्यताओं को किस प्रकार विकसित करती है? मातृभाषा में शिक्षण किस प्रकार होना चाहिए कि वह विद्यार्थियों के लिए उपयोगी सिद्ध हो सके। मातृभाषा में शिक्षण कब तक होना चाहिए तथा इसके बाद कौनसी अन्य भाषा का शिक्षण होना चाहिए?

मातृभाषा में शिक्षण बालकों के मनोभावों के अनुरूप है या नही? मातृभाषा में शिक्षण क्यों होना चाहिए? सरकारी व गैर सरकारी सभी विद्यालयों के पाठ्यक्रम में मातृभाषा का स्थान होना आवश्यक है या नही? क्यों सभी को चाहे वह ग्रामीण हो या शहरी मातृभाषा में शिक्षण करना चाहिए। इस लघुशोध से विघार्थी को पाठ्यक्रम में सम्मिलित हिन्दी विषय के उद्देश्यों व हिन्दी की महत्ता समझने मे मदद मिलेगी छात्रों का सर्वागींण विकास करने में मार्गदर्शन प्राप्त होगा हिन्दी विषय के प्रति नकारात्मक दृष्टिकोण को देखते हुए इस समस्या का चयन किया गया है। ताकि विद्यार्थियों में मातृभाषा के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण विकसित किया जा सके तथा विद्यार्थियों में मातृभाषा के अध्ययन के रूचि जागृत कि जा सके।

समस्या कथन – ''माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों में मातृभाषा के प्रति अभिरूचि व अभिवृत्ति का अध्ययन''।

"A study of aptitude and attitude for Hindi Language in students of secondary level."

शोध अध्ययन के उद्देश्य – जीवन के सभी कार्य उद्देश्यपूर्ण होते है। उद्देश्य के बीना जीवन दिशाहीन हो जाता है जैसा कि बी.डी. भाटिया ने कहा है ''उद्देश्य के अभाव में अध्यापक उस नाविक के समान है। जो अपनी मंजिल को नही जानता और विद्यार्थी पतवार विहीन नौका के समान है जो लहरों के थपेडे खाकर किसी भी तट पर जा लगेगा''। अर्थात किसी भी कार्य की सफलता उसके निधारित किये गये उद्देश्यों का निर्धारण कार्य को गति प्रदान करती है। उद्देश्यों की स्पष्टता अनुसंधान कार्य को सरल व सफल बना देती है।

सम्बन्धित साहित्य का अर्थ एवं परिभाषा – साहित्य समीक्षा में दो शब्द है साहित्य और समीक्षा साहित्य शब्द परम्परागत अर्थ से विभिन्न अर्थ प्रदान करता है। यह भाषा के संदर्भ में प्रयोग किया जाता है। जैसे हिन्दी साहित्य, आंग्ल–साहित्य, संस्कृत साहित्य। इसकी विषय वस्तु के अंतर्गत गद्य काव्य, नाटक, उपन्यास, कहानी आदि आते है। अनुसंधान के क्षेत्र में साहित्य शब्द किसी विषय के अनुसंधान के विशेष क्षेत्र के ज्ञान की और संकेत करता है। जिसके अंतर्गत सै(ान्तिक व्यावहारिक और तथ्यात्मक शोध अध्ययन आते है। समीक्षा शब्द का अर्थ शोध के विशेष क्षेत्र के ज्ञान को व्यवस्थित करना है। एवं ज्ञान को विस्तृत करके यह दिखाना है कि उसके द्वारा किया गया अध्ययन इस क्षेत्र में एक योगदान होगा। साहित्य की समीक्षा का कार्य अत्यन्त सृजनात्मक एवं थकाने वाला है। क्योंक शोधकर्त्ता को अपने अध्ययन को युक्तिपूर्वक कथन प्रदान करने के लिए प्राप्त ज्ञान को अपने ढंग से एकत्र करना होता है।

गुड़ बार और स्केट्स के अनुसार :– योग्य चिकित्सक को औषधि के क्षेत्र में हुए नवीतम अन्वेषणों के साथ चलना चाहिए। स्पष्टतः शिक्षा शास्त्री के विद्यार्थी और शोधकर्त्ता को शौक्षिक सूचनाओं के साधनों और उपयोगों तथा उनके स्थापना से परिचित होना चाहिए।

भारत मे हुए शोध कार्य :–

1. प्रभाकर सिंह (1985) : ''हिन्दी भाषायी शिक्षकों के शिक्षण का कारक विश्लेषण''

उद्देश्य – सैकेण्डरी विद्यालयों के कार्यरत भाषायी शिक्षकों के शिक्षण कारक विश्लेषण करना तथा प्राप्त कारकों एवं कौशलों के खण्ड शिक्षण व्यवहारों का अभिज्ञान करना।

निष्कर्ष – शिक्षण प्रशिक्षण कार्यक्रम के प्रयोगात्मक भाग की प्रभावकता के लिए सूक्ष्म शिक्षण एक अत्यन्त ही महत्वपूर्ण योगदान प्रस्तुत करता है।

2. शर्मा आर (2009) : ''भोपाल में किया गया मातृभाषा के प्रति अभिवृत्ति का अध्ययन''

उद्देश्य – ग्रामीण व शहरी शिक्षकों की मातृभाषा के प्रति अभिवृत्ति का अध्ययन।

निष्कर्ष – ग्रामीण व शहरी शिक्षकों को मातृभाषा के प्रति अभिवृत्ति में सार्थक अंतर नही पाया गया।

विदेशों में हुए शोध अध्ययन –

1. Yong Yu. The Ohio state University 2010, "Attitude of learners towards Hindi A case of Chinese school students by.
   Objectice :
   - To investigate attitude of Chinese school students towards the Hindi Language.
   - To explore their purpose of learning Hindi.

   Findings :
   - The study finds that Chinese school students have positive attitude towards Hindi Languages.
2. R. Ravanane.(2010) : Interest towards Hindi of XI standard Students in trichy District.
   Objectice :
   - To investigate the difference of male and female due to their interest towards Hindi.
   - To investigate the difference of regin due to their interest towards Hindi.

   Findings :
   - There is no significant difference in interest towards mathematics of XI standard students in tricky district.

प्रस्तुत शोध के उद्देश्य –

1. माध्यमिक स्तर के सरकारी एवं गैर सरकारी विद्यालय के विद्यार्थियों की मातृभाषा के प्रति अभिरूचि का अध्ययन करना।
2. माध्यमिक स्तर के सरकारी विद्यालय के छात्रों का मातृभाषा के प्रति अभिरूचि का अध्ययन करना।
3. माध्यमिक स्तर के सरकारी विद्यालय की छात्राओं की मातृभाषा के प्रति अभिरूचि का अध्ययन करना।
4. माध्यमिक स्तर के गैर सरकारी विद्यालय के छात्रों की मातृभाषा के प्रति अभिरूचि का अध्ययन करना।
5. माध्यमिक स्तर के गैर सरकारी विद्यालय की छात्राओं की मातृभाषा के प्रति अभिरूचि का अध्ययन करना।
6. माध्यमिक स्तर के सरकारी एवं गैर सरकारी विद्यालय के विद्यार्थियों की मातृभाषा के प्रति अभिवृत्ति का अध्ययन करना।

7. माध्यमिक स्तर के सरकारी विद्यालय के छात्रों की मातृभाषा के प्रति अभिवृत्ति का अध्ययन करना।
8. माध्यमिक स्तर के सरकारी विद्यालय की छात्राओं की मातृभाषा के प्रति अभिवृत्ति का अध्ययन करना।
9. माध्यमिक स्तर के गैर सरकारी विद्यालय के छात्रों की मातृभाषा के प्रति अभिवृत्ति का अध्ययन करना।
10. माध्यमिक स्तर के गैर सरकारी विद्यालय की छात्राओं की मातृभाषा के प्रति अभिवृत्ति का अध्ययन करना।

शोध अध्ययन की परिकल्पनाएँ :–

1. माध्यमिक स्तर के सरकारी एवं गैर सरकारी विद्यालय के विद्यार्थियों की मातृभाषा के प्रति अभिरूचि में कोई सार्थक अन्तर नही होता है।
2. माध्यमिक स्तर के सरकारी एवं गैर सरकारी विद्यालय के छात्रों की मातृभाषा के प्रति अभिरूचि में कोई सार्थक अन्तर नही होता है।
3. माध्यमिक स्तर के सरकारी एवं गैर सरकारी विद्यालय की छात्राओं की मातृभाषा के प्रति अभिरूचि में कोई सार्थक अन्तर नही है।
4. माध्यमिक स्तर के सरकारी एवं गैर सरकारी विद्यालय के विद्यार्थियों की मातृभाषा के प्रति अभिवृति में कोई सार्थक अन्तर नही होता है।
5. माध्यमिक स्तर के सरकारी एवं गैर सरकारी विद्यालय के छात्रों की मातृभाषा के प्रति अभिवृत्ति में कोई सार्थक अन्तर नहीं होता है।
6. माध्यमिक स्तर के सरकारी एवं गैर सरकारी विद्यालय की छात्राओं की मातृभाषा के प्रति अभिवृत्ति में कोई सार्थक अन्तर नही होता है।

तकनीकी शब्दों का परिभाषीकरण –

1. माध्यमिक स्तर–राज्य सरकार द्वारा स्थापित शैक्षिक संस्थाओं से जिसमें माध्यमिक स्तर (9 से 10) पर दी जाने वाली शिक्षा से है
2. सरकारी विद्यालय–राज्य सरकार द्वारा स्थापित शैक्षिक संस्थाओं से है। जिसमें माध्यमिक स्तर की शिक्षा प्रदान की जाती है।
3. गैर सरकारी विद्यालय–गैर सरकारी संस्थाओं द्वारा स्वयं संचालित विद्यालय जिसमें विद्यार्थियों को शिक्षा प्रदान की जाती है।
4. विद्यार्थी–विद्यार्थी से तात्पर्य है विधा अर्जन करने वाला तथा नियमित विद्यार्थियों से है।
5. अभिरूचि–अभिरूचि व प्रवृत्ति है जिसमें हम व्यक्ति वस्तु या क्रिया की ओर ध्यान देते है। उससे आकर्षित होते है या संतुष्टी प्राप्त करते है।
6. अभिवृत्ति – अभिवृत्ति का अर्थ है वातावरण के कुछ पहलुओं के प्रति व्यक्ति के भावों विचारों तथा क्रिया की पूर्व प्रवृतियों को अभिवृत्ति कहते हैं।

शोध का परिसीमन : किसी भी शोध कार्य का विश्व संघीय और वैध परिणाम प्राप्त करने के लिए उस शोध का परिसीमन करना शोधार्थी के लिए आवश्यक हो जाता है। प्रस्तुत शोध समस्या का क्षेत्र व्यापक है इसलिए

क्षेत्रीय और व्यक्तिगत शोध की परिसीमाओं अर्थात समय, धन तथा साधन को दृष्टि में रखते हुए शोधार्थी के द्वारा अध्ययन की परिसीमाओं का निर्धारण निम्न प्रकार से किया जायेगा।

- प्रस्तुत अध्ययन का कार्य क्षेत्र कोटा जिले तक ही परिसीमित किया जायेगा।
- प्रस्तुत अध्ययन को कोटा जिलें के सरकारी व गैर सरकारी विद्यालयों तक ही सीमित रखा जायेगा।
- प्रस्तुत अध्ययन को माध्यमिक स्तर के विद्यालयों तक ही सीमित रखा जायेगा।
- प्रस्तुत अध्ययन को केवल मातृभाषा के प्रति अभिरूचि व अभिवृत्ति रखनें वाले विद्यार्थियों तक ही सीमित रखा जायेगा।

न्यादर्श एवं जनसंख्या : शोधकार्य में शोधकर्ता द्वारा कोटा शहर के दो सरकारी एवं दो गैर–सरकारी विद्यालयों के माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों का चयन सौद्देश्य न्यादर्श विधि से किया गया है। प्रस्तुत शोध कार्य में आंकड़ो को एकत्रित करने के लिए राजस्थान राज्य के कोटा जिले से 4 उच्च माध्यमिक विद्यालयों के 120 छात्र–छात्राओं को लिया जायेगा। जिसमे 30 छात्र–छात्राएँ शहरी सरकारी विद्यालय के उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यालयों एवं 30 छात्र–छात्राएँ ग्रामीण गैर सरकारी विद्यालय के उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यालयों में से लिए जायेंगे।

शोध विधि :– प्रस्तुत शोध में शोधकर्ता द्वारा ''सर्वेक्षण विधि'' का प्रयोग किया जायेगा।

शोध में प्रयुक्त उपकरण :– अनुसंधान हेतु प्रयोग में लाये गए उपकरण सामान्यतः दो प्रकार के होते हैं –

1. मानकीकृत उपकरण
2. स्वनिर्मित उपकरण

शोध में प्रयुक्त सांख्यिकी :– शोध में निम्न सांख्यिकी विधियों के प्रयोग किये जायेंगे :–

1. मध्यमान
2. प्रमाणित विचलन
3. टी–मूल्य

विश्लेषण एवं व्याख्या :

परिकल्पना 1 प्रतिशत माध्यमिक स्तर के सरकारी एवं गैर सरकारी विद्यालय के विद्यार्थियों की मातृभाषा के प्रति अभिरूचि में कोई सार्थक अंतर नही होता हैं।

सारणी संख्या 4.1

क्र.सं.	क्षेत्र	समूह	प्रतिदर्शन N	मध्यमान M	प्रमाणिक विचलन SD	टी परीक्षण	सार्थकता का स्तर
1.	अभिरूचि	सरकारी विद्यालय के विद्यार्थी	60	22.45	3.76	0.41	स्वीकृत
2	अभिरूचि	गैर सरकारी विद्यालय के विद्यार्थी	60	22.75	4.31		

स्वतंत्रता कोटि का मान $Df = (N_1+N_2-2)$

$(60+60-2) = 118$

0.5 स्तर पर टी की सार्थकता $= 2.00$

0.1 स्तर पर टी की सार्थकता $= 2.67$

1. सारणी संख्या 4.1 के अवलोकन से ज्ञात होता है कि माध्यमिक स्तर के सरकारी एवं गैर सरकारी विद्यालय के विद्याथियों की मातृभाषा के प्रति अभिरूचि का मध्यमान क्रमशः 22.45 व 22.75 है तथा प्रमाणिक विचलन 3.76 व 4.31 हैं।
2. मध्यमानों की सार्थकता जाँच करने पर माध्यमिक स्तर के सरकारी एवं गैर सरकारी विद्यालय के विद्यार्थियों का मातृभाषा के प्रति अभिरूचि का टी–मूल्य 0.41 प्राप्त हुआ। जो सार्थकता के स्तर 0.5 एवं 0.1 के टी–सारणी मूल्य क्रमशः 2.00 एवं 2.67 से कम हैं।

निष्कर्ष :

1. अतः सरकारी विद्यालय के विद्यार्थियों एवं गैर–सरकारी विद्यालय के विद्यार्थियों में मातृभाषा के प्रति अभिरूचि में सार्थक अंतर नही हैं।
2. अतः परिकल्पना स्वीकृत की जाती हैं।

आरेख संख्या 4.1 :– माध्यमिक स्तर के सरकारी एवं गैर सरकारी विद्यालयो के विद्यार्थियों की मातृभाषा के प्रति अभिरूचि का तुलनात्मक अध्ययन आरेख द्वारा प्रदर्शित।

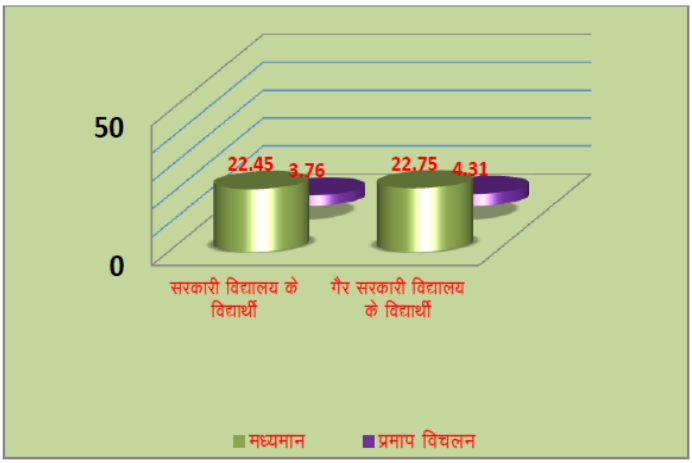

परिकल्पना–2 : माध्यमिक स्तर के सरकारी व गैर सरकारी विद्यालय के छात्रों की मातृभाषा के प्रति अभिरूचि में कोई सार्थक अंतर नही होता हैं।

सारणी संख्या 4.2

क्र.सं.	क्षेत्र	समूह	प्रतिदर्शन N	मध्यमान M	प्रमाणिक विचलन SD	टी परीक्षण	सार्थकता का स्तर
1.	अभिरूचि	सरकारी विद्यालय के छात्रों	30	21.9	4.053	0.39	स्वीकृत
2.	अभिरूचि	गैर सरकारी विद्यालय के छात्रों	30	22.3	3.769		

स्वतंत्रता कोटि का मान $Df = (N_1+N_2-2)$

(30$30&2) = 58

0.5 स्तर पर टी की सार्थकता = 2.00

0.1 स्तर पर टी की सार्थकता = 2.67

विश्लेषण एवं व्याख्या :–

1. सारणी संख्या 4.2 के अवलोकन से ज्ञात होता है कि माध्यमिक स्तर के सरकारी एवं गैर सरकारी विद्यालय के छात्रों की मातृभाषा के प्रति अभिरूचि का मध्यमान क्रमशः 21.9 व 22.3 हैं। तथा प्रमाणिक विचलन 4.053 व 3.769 हैं।
2. मध्यमानों की सार्थकता जाँच करने पर माध्यमिक स्तर के सरकारी एवं गैर सरकारी विद्यालय के छात्रों का मातृभाषा के प्रति अभिरूचि का टी मूल्य 0.39 प्राप्त हुआ है। जो सार्थकता के स्तर 0.5 एवं 0.1 के टी–सारणी मूल्य क्रमशः 2.00 एवं 2.67 से कम हैं।

निष्कर्ष :

1. अतः निष्कर्ष निकलता है कि कोटा शहर के माध्यमिक स्तर के सरकारी एवं गैर सरकारी विद्यालयों के छात्रों की मातृभाषा के प्रति अभिरूचि में कोई सार्थक अंतर नही पाया जाता हैं।
2. अतः परिकल्पना स्वीकृत की जाती है।

आरेख संख्या 4.2 : माध्यमिक स्तर के सरकारी एवं गैर सरकारी विद्यालयों के छात्रों की मातृभाषा के प्रति अभिरूचि का तुलनात्मक अध्ययन आरेख द्वारा प्रदर्शित।

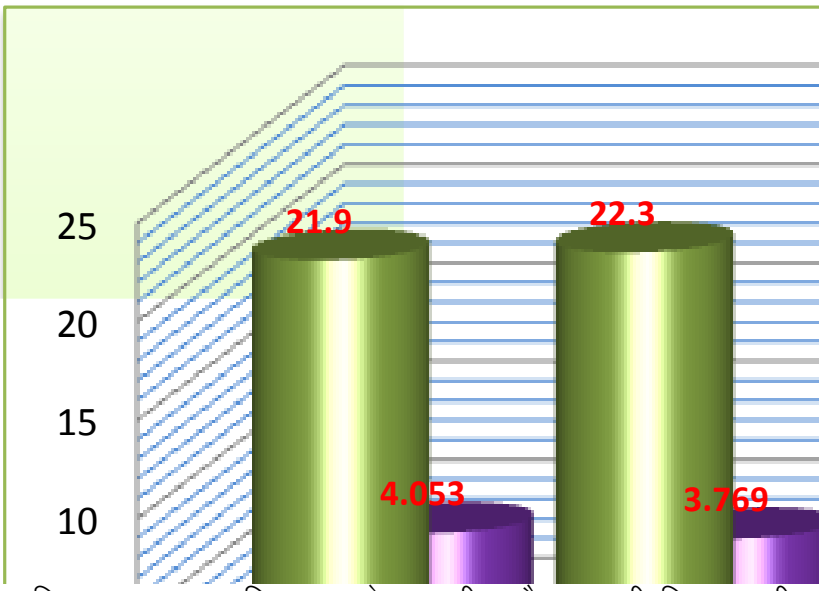

परिकल्पना–3 : माध्यमिक स्तर के सरकारी व गैर सरकारी विद्यालय की छात्राओं की मातृभाषा के प्रति अभिरूचि में कोई सार्थक अंतर नही होता हैं।

सारणी संख्या 4.3

क्र.सं.	क्षेत्र	समूह	प्रतिदर्शन N	मध्यमान M	प्रमाणिक विचलन SD	टी परीक्षण	सार्थकता का स्तर
1.	अभिरूचि	सरकारी विद्यालय के छात्राओं	30	21.1	4.14	1.66	स्वीकृत
2.	अभिरूचि	गैर सरकारी विद्यालय के छात्राओं	30	22.8	3.86		

स्वतंत्रता कोटि का मान $Df = (N_1+N_2-2)$

$(30+30-2) = 58$

0.5 स्तर पर टी की सार्थकता = 2.00

0.1 स्तर पर टी की सार्थकता = 2.67

विश्लेषण एवं व्याख्या :

1. सारणी संख्या 4.3 के अवलोकन से ज्ञात होता है। कि माध्यमिक स्तर के सरकारी एवं गैर सरकारी विद्यालय के छात्राओं की मातृभाषा के प्रति अभिरूचि का मध्यमान क्रमशः 22.1 व 22.8 हैं। तथा प्रमाणिक विचलन 4.14 व 3.86 हैं।

2. मध्यमानों की सार्थकता जाँच करने पर माध्यमिक स्तर के सरकारी एवं गैर सरकारी विद्यालय के छात्राओं का मातृभाषा के प्रति अभिरूचि का टी–मूल्य 1.66 प्राप्त हुआ है जो सार्थकता के स्तर 0.5 एवं 0.1 के टी–सारणी मूल्य क्रमशः 2.00 एवं 2.67 से कम हैं।

निष्कर्ष :

1. अतः निष्कर्ष निकलता है कि कोटा शहर के माध्यमिक स्तर के सरकारी एवं गैर–सरकारी विद्यालयों के छात्राओं की हिन्दी भाष के प्रति अभिरूचि मे कोई सार्थक अन्तर नही पाया जाता हैं।
2. अतः परिकल्पना स्वीकृत की जाती हैं।

आरेख संख्या 4.3 : माध्यमिक स्तर के सरकारी एवं गैर सरकारी विद्यालयों के छात्राओं की मातृभाषा के प्रति अभिरूचि का तुलनात्मक अध्ययन आरेख द्वारा प्रदर्शित।

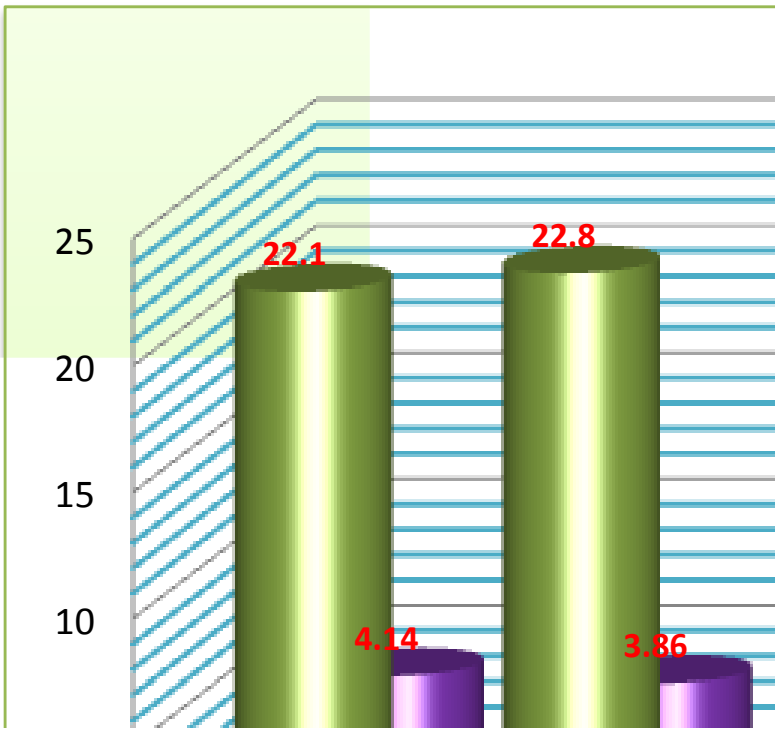

परिकल्पना 4 : माध्यमिक स्तर के सरकारी एवं गैर सरकारी विद्यालय के विद्यार्थियों की मातृभाषा के प्रति अभिवृत्ति में कोई सार्थक अंतर नही होता हैं।

सारणी संख्या 4.4

क्र.सं.	क्षेत्र	समूह	प्रतिदर्शन N	मध्यमान M	प्रमाणिक विचलन SD	टी परीक्षण	सार्थकता का स्तर
1.	अभिवृत्ति	सरकारी विद्यालय के विद्यार्थी	60	23.25	4.21	0.27	स्वीकृत
2.	अभिवृत्ति	गैर सरकारी विद्यालय के विद्यार्थी	60	23.05	3.85		

स्वतंत्रता कोटि का मान $Df = (N_1+N_2-2)$

(60$60&2) =118

0.5 स्तर पर टी की सार्थकता = 2.00

0.1 स्तर पर टी की सार्थकता = 2.67

विश्लेषण एवं व्याख्या :

1. सारणी संख्या 4.4 के अवलोकन से ज्ञात होता है कि माध्यमिक स्तर के सरकारी एवं गैर सरकारी विद्यालय के विद्यार्थियों की मातृभाषा के प्रति अभिवृत्ति का मध्यमान क्रमशः 23.25 व 23.05 है तथा प्रमाणिक विचलन 4.21 व 3.85 हैं।
2. मध्यमानों की सार्थकता जाँच करने पर माध्यमिक स्तर के सरकारी एवं गैर सरकारी विद्यालय के विद्यार्थियों का मातृभाषा के प्रति अभिवृत्ति का टी–मूल्य 0.27 प्राप्त हुआ हैं। जो सार्थकता के स्तर 0.5 एवं 0.1 के टी–सारणी मूल्य क्रमशः 2.00 एवं 2.67 से कम हैं।

निष्कर्ष :

1. अतः निष्कर्ष निकलता है कि कोटा शहर के माध्यमिक स्तर के सरकारी एवं गैर सरकारी विद्यालय के विद्यार्थियों की मातृभाषा के प्रति अभिवृत्ति में कोई सार्थक अंतर नही पाया जाता हैं।
2. अंतः परिकल्पना स्वीकृत की जाती हैं।

आरेख संख्या 4.4 : माध्यमिक स्तर के सरकारी एवं गैर–सरकारी विद्यालय के विद्यार्थियों की मातृभाषा के प्रति अभिवृत्ति का तुलनात्मक अध्ययन आरेख द्वारा प्रदर्शित।

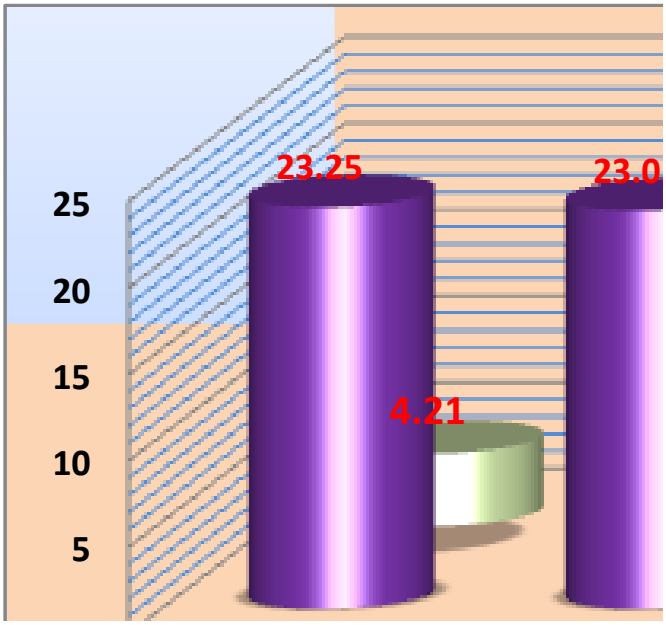

परिकल्पना 5 : माध्यमिक स्तर के सरकारी एवं गैर सरकारी विद्यालय के छात्रों की मातृभाषा के प्रति अभिवृत्ति में कोई सार्थक अंतर नही होता हैं।

सारणी संख्या 4.5

क्र.सं.	क्षेत्र	समूह	प्रतिदर्शन N	मध्यमान M	प्रमाणिक विचलन SD	टी परीक्षण	सार्थकता का स्तर
1.	अभिवृत्ति	सरकारी विद्यालय के छात्रों	30	22.2	4.09	0.097	स्वीकृत
2.	अभिवृत्ति	गैर सरकारी विद्यालय के छात्रों	30	22.3	3.99		

स्वतंत्रता कोटि का मान $Df = (N_1+N_2-2)$

(30$30&2) = 58

0.5 स्तर पर टी की सार्थकता = 2.00

0.1 स्तर पर टी की सार्थकता = 2.67

विश्लेषण एवं व्याख्या :

1. सारणी संख्या 4.5 के अवलोकन से ज्ञात होता है कि माध्यमिक स्तर के सरकारी एवं गैर सरकारी विद्यालय के विद्यार्थियों की मातृभाषा के प्रति अभिवृत्ति का मध्यमान क्रमशः 22.2 व 23.3 है तथा प्रमाणिक विचलन 4. 09 व 3.99 हैं।
2. मध्यमानों की सार्थकता जाँच करने पर माध्यमिक स्तर के सरकारी एवं गैर सरकारी विद्यालय के छात्रों का मातृभाषा के प्रति अभिवृत्ति का टी–मूल्य 0.097 प्राप्त हुआ हैं। जो सार्थकता के स्तर 0.5 एवं 0.1 के टी–सारणी मूल्य क्रमशः 2.00 एवं 2.67 से कम हैं।

निष्कर्ष :

1. अतः निष्कर्ष निकलता है कि कोटा शहर के माध्यमिक स्तर के सरकारी एवं गैर सरकारी विद्यालय के विद्यार्थियों की मातृभाषा के प्रति अभिवृत्ति में कोई सार्थक अंतर नही पाया जाता हैं।
2. अतः परिकल्पना स्वीकृत की जाती हैं।

आरेख संख्या 4.5 : माध्यमिक स्तर के सरकारी एवं गैर–सरकारी विद्यालय के छात्रों की मातृभाषा के प्रति अभिवृत्ति का तुलनात्मक अध्ययन आरेख द्वारा प्रदर्शित।

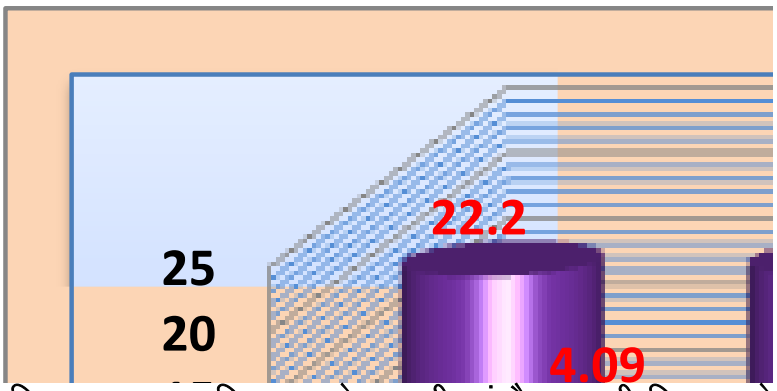

परिकल्पना 6 : माध्यमिक स्तर के सरकारी एवं गैर सरकारी विद्यालय के छात्राओं की मातृभाषा के प्रति अभिवृत्ति में कोई सार्थक अंतर नही होता हैं।

सारणी संख्या 4.6

क्र.सं.	क्षेत्र	समूह	प्रतिदर्शन N	मध्यमान M	प्रमाणिक विचलन SD	टी परीक्षण	सार्थकता का स्तर
1.	अभिवृत्ति	सरकारी विद्यालय के छात्राओं	30	22	3.96	0.3	स्वीकृत
2.	अभिवृत्ति	गैर सरकारी विद्यालय के छात्राओं	30	22.3	3.84		

स्वतंत्रता कोटि का मान $Df = (N_1+N_2-2)$

(30$30&2) = 58

0.5 स्तर पर टी की सार्थकता = 2.00

0.1 स्तर पर टी की सार्थकता = 2.67

विश्लेषण एवं व्याख्या :

1. सारणी संख्या 4.6 के अवलोकन से ज्ञात होता है कि माध्यमिक स्तर के सरकारी एवं गैर सरकारी विद्यालय के छात्राओ की मातृभाषा के प्रति अभिवृत्ति का मध्यमान क्रमशः 22 व 22.3 है तथा प्रमाणिक विचलन 3. 96 व 3.84 हैं।
2. मध्यमानों की सार्थकता जाँच करने पर माध्यमिक स्तर के सरकारी एवं गैर सरकारी विद्यालय के छात्राओं का मातृभाषा के प्रति अभिवृत्ति का टी–मूल्य 0.3 प्राप्त हुआ हैं। जो सार्थकता के स्तर 0.5 एवं 0.1 के टी–सारणी मूल्य क्रमशः 2.00 एवं 2.67 से कम हैं।

निष्कर्ष :

1. अतः निष्कर्ष निकलता है कि कोटा शहर के माध्यमिक स्तर के सरकारी एवं गैर सरकारी विद्यालय के छात्राओं की मातृभाषा के प्रति अभिवृत्ति में कोई सार्थक अंतर नही पाया जाता हैं।
2. अंतः परिकल्पना स्वीकृत की जाती हैं।

आरेख संख्या 4.6 : माध्यमिक स्तर के सरकारी एवं गैर–सरकारी विद्यालय के छात्राओं की मातृभाषा के प्रति अभिवृत्ति का तुलनात्मक अध्ययन आरेख द्वारा प्रदर्शित।

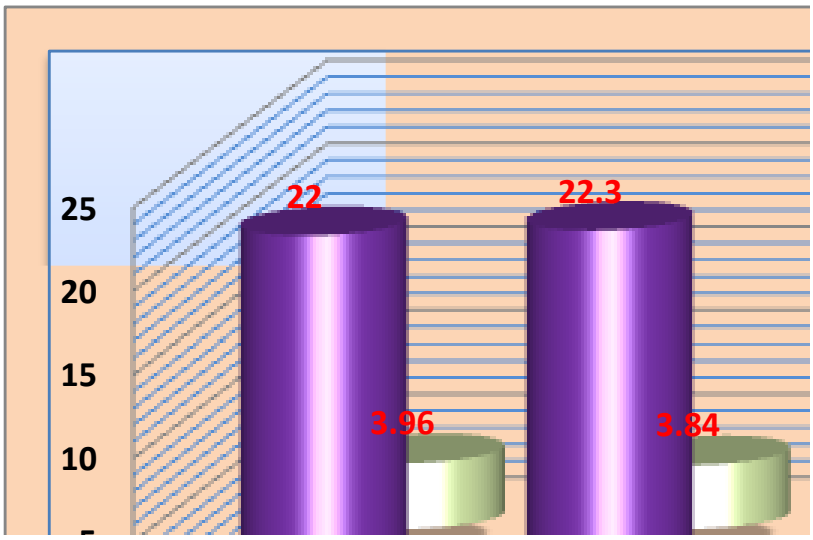

शैक्षिक निहितार्थ – कोई भी शोधकार्य तभी सफल माना जा सकता है जबकि वह शिक्षा के क्षेत्र में अथवा समाज और राष्ट्र के लिए ऐसा योगदान प्रस्तुत करता है। जो कि दूरगामी समस्याओं के समाधान के लिए आवश्यक हो। प्रस्तुत अध्ययन माध्यमिक स्तर के सरकारी एवं गैर सरकारी विद्यालय के विद्यार्थियों का मातृभाषा के प्रति अभिरूचि एवं अभिवृत्ति के तुलनात्मक अध्ययन को जानने की दृष्टि से एक सर्वेक्षण के रूप में किया गया है। अतः प्राप्त निष्कर्षो के शैक्षिक अनुप्रयोग निम्नलिखित हो सकते है।

1. विद्यालय के पाठ्यक्रम में मातृभाषा का भी स्थान निर्धारित करना चाहिए।
2. विद्यार्थियों में मातृभाषा के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण विकसित किया जाना चाहिए।
3. शिक्षको के द्वारा मातृभाषा के महत्त्व को बताया जाना चाहिए।
4. बालक की प्रथम पाठशाला उसका परिवार होता है। अतः उसकी प्राथमिक शिक्षा का आधार मातृभाषा ही होना चाहिए।
5. विद्यार्थियों को मातृभाषा के प्रति सकारात्मक अभिवृत्ति के साथ ही अध्ययन करना चाहियें।
6. प्रस्तुत शोध विद्यार्थियों की मातृभाषा के प्रति दृष्टिकोण सुधारने में समाज व शिक्षा जगत हेतु उपयोगी सिद्ध होगा।
7. शिक्षको व अभिभावकों के द्वारा मातृभाषा के प्रति बालकों का ध्यान केन्द्रित करना।
8. विद्यालय में समय समय पर मातृभाषा के अन्तर्गत विभिन्न क्रियाएँ जैसे–वाद विवाद प्रतियोगिता, निबन्ध प्रतियोगिता, व रंगमंच कार्यक्रम आदि कराना।
9. मातृभाषा के प्रयोग द्वारा अपनी संस्कृति व सभ्यता को बनाए रखना।
10. विद्यार्थियों का मौलिक विकास स्वतः ही निरन्तर चलता रहेगा यदि उनका अध्ययन स्वभाषा में हो।

भावी अनुसंधान के लिए सुझाव –

1. भावी शोध हेतु कोटा जिला व अन्य जिलों पर भी इस शोध कार्य को किया जा सकता है।
2. प्रस्तुत शोध कार्य केवल माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों पर किया गया है। यह अध्ययन शिक्षा के (उच्च माध्यमिक स्तर, महाविद्यालय) के विद्यार्थियों पर किया जा सकता है।
3. प्रस्तुत शोध केन्द्रिय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड (CBSE) व राजस्थान माध्यमिक शिक्षा बोर्ड (RBSE) के विद्यार्थियों के मध्य मातृभाषा के प्रति दृष्टिकोण का तुलनात्मक अध्ययन भी किया जा सकता है।

4. प्रस्तुत शोध केवल शहरी विद्यालयों के विद्यार्थियों पर ही किया गया है। यह अध्ययन शहरी व ग्रामीण विद्यालयों पर तुलनात्मक रूप से भी किया जा सकता है।
5. भावी शोध हेतु राजस्थान के अन्य संभागीय मुख्यालयों पर भी इस शोध कार्य को किया जा सकता है।

सन्दर्भ :

1. योगेन्द्र पीत (2014) : हिन्दी भाषा शिक्षण।
2. डा. रामशकल पाण्ड्ेय : हिन्दी भाषा शिक्षण।
3. डा. के. आय. सत्तिगेरी : नूतन हिन्दी शिक्षण।
4. श्रीवास्तव, डी.एन. (2005) : ''मनोवैज्ञानिक अनुसंधान एवं मापन'' विनोद पुस्तक, मंदिर आगरा।
5. श्रीवास्तव, डी.एन. (2005) व प्रीति वर्मा (1992) : ''मनौविज्ञान और शिक्षा में सांख्यिकी सत्र व संस्करण, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा।
6. वर्मा. जी. एस. : ''शिक्षक तकनीकी लॉयड बुक डिपो मेरठ।
7. कपिल. एस. के. (1982) : सांख्यिकी के मूल तत्व, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा।
8. पारसनाथराम एवं चांद, भटनागर (1966) : ''अनुसंधान परिचय लक्ष्मीनारायण चांद भटनागर।
9. सिद्धू के. एस (1985) : ''मैथड्स ऑफ रिसर्च इन एजुकेशन स्टरलिंग पब्किशर्स, नई दिल्ली।
10. शर्मा डॉ. संदीप कुमार एवं पारीक, श्रीमती अलका : ''शैक्षिक तकनीकी एवं कक्षा – कक्ष प्रंबधन शिक्षा प्रकाशन, जयपुर।
11. शर्मा, बी. एम. (1980) : ''शोध प्रविधि'' नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
12. Websites :
www.shodganga.com
https://books.google.co.in/
https://psychology.as.uky.edu

***

मोदी युग में भारत-चीन सम्बन्ध : एक समीक्षा

सरिता वर्मा *

प्रस्तुत आलेख ''मोदी युग में भारत–चीन सम्बन्ध'' में प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी के शासनकाल में भारत–चीन सम्बन्ध कैसे रहे हैं? इससे सम्बन्धित है। नरेन्द्र मोदी ने भारत–चीन सम्बन्धों को सुदृढता प्रदान करने के लिए कौन–कौन से समझौते व प्रयास किये, इसका उल्लेख इस आलेख में किया गया है। प्रस्तुत शोध आलेख उपयुक्त बिन्दुओं के आलोक में प्रस्तुत है।

भारत और चीन में प्राचीन काल से सांस्कृतिक और वाणिज्यिक सम्बन्ध रहे हैं। बौद्ध धर्म की जन्मभूमि भारत चीन का एक प्रकार से धर्मगुरू है। बौद्ध संन्यासी भारत से चीन गये और वहां शांति व अहिंसा के विचारों का प्रचार किया। चीन को अपनी स्वतन्त्रता के लिए एक भीषण संघर्ष करना पडा था जिससे भारत में उसके प्रति गहरी सहानुभूति उत्पन्न हो गयी थी। 1947 में भारत स्वतन्त्र हुआ और 1949 में चीन में केामिन्तांग सरकार के पतन के बाद साम्यवादी सरकार की स्थापना हुयी। नये चीन की स्थापना के बाद भारत चीनी गणराज्य को मान्यता देने वाला प्रथम गैर साम्यवादी देश बना।

भारतीय विदेश नीति के निर्माता पण्डित जवाहर लाल नेहरू चीन के प्रति गहरी सहानुभूति रखते थे और चीन के साथ मैत्री को असंलग्नता की नीति की आधारशिला मानते थे। चीन व भारत के बीच राजनयिक सम्बन्धों की औपचारिक स्थापना के बाद पिछले कई वर्षों में भारत व चीन के सम्बन्धों में अनेक उतार–चढ़ाव आये हैं। भारत व चीन की मैत्री में आने वाली कठिनाइयों का कारण दोनों देशों की सामाजिक व्यवस्थाओं व विचार धाराओं की भिन्नता है। भारत की राजनीतिक, आर्थिक व सामाजिक व्यवस्थायें चीनी साम्यवादी प्रणाली से भिन्न है। भारत की विदेश नीति शांतिपूर्ण सह अस्तित्व की है जब कि साम्यवादी चीन के इरादे आक्रामक साम्राज्यवादी और विस्तारवादी है। चीन एशिया में सबसे श्शक्तिशाली राष्ट्र का दर्जा प्राप्त करने के लिए 'येन केन प्रकारेण' की नीति अपनाता रहा है। एशिया में एकमात्र भारत ही है जो जनसंख्या, शक्ति और प्राकृतिक साधनों में चीन का प्रतिद्वन्द्वी बनने की क्षमता रखता है। चीन को यह कतई पसंद नहीं कि भारत उसका प्रतिद्वन्द्वी बनें।

---

* शोध छात्रा, का.सु. साकेत स्नातकोत्तर महाविद्यालय, अयोध्या (डॉ. राम मनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय, अयोध्या)

1950 के दशक में भारत चीन सम्बन्ध इतिहास के सबसे अच्छे काल में थे। विसैण्ट शैयब के अनुसार ''चीनियों के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध कायम रखने का जितना प्रयास नेहरू ने किया सम्भवता विश्व में उतना किसी ने नही किया।'' 1954 में भारत ने तिब्बत में चीन की प्रभुसत्ता को स्वीकार कर लिया तथा चीनी प्रधानमंत्री चाऊ एन लाई और भारत के प्रधानमंत्री पण्डित नेहरू ने पंचशील समझौते पर हस्ताक्षर किये। 1956 तक भारत चीन सम्बन्ध अच्छे रहे। किन्तु इसी वर्ष तिब्बत के खम्पा क्षेत्र में बड़े पैमाने पर चीनी शासन के विरूद्ध विद्रोह हो गया, जिसके पश्चात विद्रोह के समर्थक दलाईलामा ने भारत में शरण ले ली। इसी समय से भारत चीन सम्बन्धों में दरार आनी शुरू हो गयी थी। इधर दूसरी तरफ चीन सरकार ने सीमा विवाद भी शुरू कर दिया था। 1959 में चीनी सरकार ने कहा कि भारत और चीन के मध्य कभी सीमाओं का निर्धारण हुआ ही नहीं, और तथाकथित सीमाएं चीन के विरूद्ध षडयंत्र का परिणाम है।

1962 में चीन द्वारा भारत पर किया गया आक्रमण चीन का प्रथम विश्वासघाती कदम था। चीन इस आक्रमण के माध्यम से अपनी शक्ति का प्रदर्शन करना चाहता था। 1970 के दशक में भारत चीन सम्बन्धों में फिर से घनिष्ठता आयी। 1980 के दशक से 1990 के दशक के मध्य तक भारत चीन सम्बन्धों में सुदृढ़ता आयी। 1992 में भारतीय राष्ट्राध्यक्ष वेंकटरमन ने भारत चीन सम्बन्धों को गति प्रदान की। वर्ष 2003 में भारतीय प्रधानमंत्री श्री बाजपेयी ने चीन की यात्रा की तथा भारत चीन सम्बन्धों के विकास के लिए चतुर्मुखी सहयोग के घोषणा पत्र पर हस्ताक्षर किये। अप्रैल 2005 में चीनी प्रधानमंत्री बेन जियाबाओ ने भारत की यात्रा की तथा शानदार रूपक के जरिये दोनों देशों को दो पैगोडा बताया। जुलाई 2007 में भारत के प्रधानमंत्री श्री मनमोहन सिंह बने। मनमोहन के शासन काल में भारत चीन सम्बन्ध उतार चढ़ाव से भरे रहे। मनमोहन सिंह ने चीन की यात्रा की तथा दोनों देशों के बीच 21 वीं सदी के लिए साझा विजन जारी किया।

26 मई 2014 को श्री नरेन्द्र मोदी ने भारत के प्रधानमंत्री पद की शपथ ली । पडोसी देशों के साथ सम्बन्धों को सुदृढ़ करना मोदी की विदेश नीति की प्राथमिकता है। पडोसी देशों के साथ सम्बन्धों को सुदृढ़ करने के लिए मोदी ने जितनी यात्राएं मोदी जी ने की है, उतनी यात्राएं शायद ही किसी राजनेता ने की होगी। प्रधानमंत्री बनने के बाद नरेन्द्र मोदी और चीनी राष्ट्रपति शी जिनपिंग की पहली मुलाकात 15 जुलाई 2014 को ब्राजील में हुयी थी। इस मौके पर प्रधानमंत्री मोदी ने कहा था कि दोनों देशों के बीच सौहार्दपूर्ण माहौल दुनिया के सामने नजीर बनेगा। इस मौके पर दोनों देशों के बीच सीमा विवाद को हल करने पर भी सहमति बनी थी। सितम्बर 2014 में चीनी राष्ट्रपति शी जिनपिंग ने जब भारत की यात्रा की थी, तब हमारे प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने प्रोटोकाल तोडकर उनका भव्य स्वागत किया था। अहमदाबाद में साबरमती नदी के किनारे प्रधानमंत्री मोदी और

जिनपिंग एक झूले पर बैठे नजर आए थे। यह क्षण दोनों देशों के लिए यादगार क्षण था। इस यात्रा के दौरान दोनों देशों के बीच कुछ समझौते भी हुए थे। चीन ने भारत में 20 बिलियन डॉलर निवेश का वादा भी किया था। जिनपिंग की यात्रा भारत चीन सम्बन्धों के लिए अच्छी साबित हुयी।

मई 2015 में प्रधानमंत्री बनने के बाद नरेन्द्र मोदी ने पहली बार चीन की यात्रा की। प्रधानमंत्री की इस यात्रा से भारत चीन सम्बन्धों में नये आयामें की कल्पना की जा रही थी। इस यात्रा के दूरगामी परिणाम हुये। भारत और चीन के बीच 63 हजार करोड रूपये निवेश के 24 करार पर दस्तखत हुए, जिनमें से कुछ महत्वपूर्ण समझौते इस प्रकार है–––

1. भारत चीन थिंक टैंक की स्थापना।
2. पर्यटन के क्षेत्र में सहयोग।
3. अंतरिक्ष के क्षेत्र में सहयोग।
4. सिस्टर्स सिटीज की स्थापना।
5. रेलवे के क्षेत्र में सहयोग।
6. ट्रेड निगोशिएशन के लिए आपसी सहयोग बढाने मद्देनजर से कौसुलेटिव मेकेनिज्म तैयार किया जाएगा।
7. आयात के लिए सुरक्षित नियमों का निर्माण।
8. चीन की कम्युनिस्ट पार्टी के इंटरनेशनल डिपार्टमेंट के साथ भारतीय विदेश मंत्रालय का समझौता।
9. चीन की सरकारी प्रसारण कम्पनी सी सी टी वी और दूरदर्शन के बीच सहयोग।
10. चीन के सहयोग से अहमदाबाद में महात्मागांधी स्किल डेवलपमेंट इंस्टिट्यूट बनाया जाएगा।
11. भू विज्ञान के क्षेत्र में सहयोग।

जुलाई 2015 में प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी औरी चीनी राष्ट्रपति शी जिनपिंग की मुलाकात ब्रिक्स और शंघाई सहयोग संगठन के शिखर सम्मेलन के दौरान हुयी थी, किन्तु इस मुलाकात का कोई खास परिणाम नजर नहीं आया। जून 2016 में प्रधानमंत्री मोदी ओर चीनी राष्ट्राध्यक्ष की मुलाकात उजबेकिस्तान में परमाणु आपूर्तिकर्ता समूह में भारत के प्रवेश को लेकर चीन की आपत्तियों के बीच हुयी। चीन इस बात पर जोर देता रहा है कि परमाणु अप्रसार संधि पर हस्ताक्षर करने वाले देशों को ही एन एस जी में प्रवेश दिया जायेगा। भारत ने चीन की इस बात का विरोध किया तथा परमाणु अप्रसार संधि पर हस्ताक्षर करने से मना कर दिया है। परमाणु अप्रसार संधि भारत के हितों के अनुकूल नही है।

सितम्बर 2016 में चीन के हांगझाऊ में जी 20 शिखर सम्मेलन के दौरान प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी और शी जिनपिंग की मुलाकात में भारत ने पाक अधिकृत

कश्मीर से संचालित आतंकवाद का मुद्दा उठाया था और सामरिक हितों के लिए संवेदनशील होने की जरूरत बताई थी। जिनपिंग ने विवादित मुद्दों को रचनात्मक बात–चीत से हल करने पर जोर दिया था। अक्टूबर 2016 में गोवा के ब्रिक्स शिखर सम्मेलन के दौरान प्रधानमंत्री मोदी और चीनी राष्ट्रपति जिनपिंग के साथ द्विपक्षीय बैठक हुयी थी। जून 2017 में भारत शंघाई सहयोग संगठन का पूर्णकालिक सदस्य बना। इससे पहले भारत को पर्यवेक्षक देश का दर्जा प्राप्त था। भारत ने इस अवसर पर चीन का धन्यवाद किया था।

मोदी युग में भारत–चीन सम्बन्धों को गति मिली है। हालांकि चीन की आक्रामक व विस्तारवादी नीतियों ने भारत–चीन सम्बन्धों में बाधा डालने का काम किया है। जून 2017 में होने वाला डोकलाम विवाद चीन की महत्वाकांक्षा का ही परिणाम था। डोकलाम लगभग 250 किलोमीटर का पठारी इलाका है जो भूटान की सीमा में है, यह तिब्बत, भूटान और सिक्किम के त्रिभुज के कंधे पर स्थित है।

यह अत्यन्त महत्वपूर्ण सामरिक स्थल है। चीन वहां ऐसी सडकें बनाना चाहता था, जिस पर 40–40 टन के टैंक भी चल सकें। यदि इस पठार पर चीन का कब्जा हो जाता है तो भारतीय सीमाओं में घुसना चीन के बायें हाथ का खेल हो जायेगा। चीन चुंबी घाटी पार कर मिनटों में सारे उत्तर पूर्व के प्रातों (चिकेन नेक) को भारत से काट सकता था। भूटान का कहना था कि चीन डोकलाम में सडक निर्माण कर चीन 1988 और 1998 में हुए समझौतों का उल्लंघन कर रहा है। 1988 और 1998 में हुए समझौतें में तय हुआ था कि जब तक यह सीमा विवाद हल नहीं हो जाता, चीन यथास्थिति बनाये रखेगा। लेकिन चीन का कहना है कि 1890 में जो ब्रिटिश चीन एमझौता हुआ था उसमें यह चीन का क्षेत्र है। इसी कारण चीन भारत द्वारा किये गये हस्ताक्षेप को चीन की संप्रभुता का उल्लंघन मानता है।

डोकलाम पठार के मुद्दे पर चीन ने आक्रामक रवैया अपनाया था। वह भारत से कोई बात करने के लिए तब तक तैयार नहीं था जब तक कि भारत वहां से अपनी फौजें न हटा लेता। इसी विवाद के कारण चीन ने कैलाश मानसरोवर की तीर्थ यात्रा स्थगित कर दी। चीन का यह कदम भारतीयों की धार्मिक भावनाओं को ठेस पहुँचाने वाला था। चीनी सरकार के प्रवक्ताआ नें ऐसे बयान जारी किये थे मानो डोकलाम को लेकर चीन युद्ध शुरू कर देगा। जवाबी कार्यवाही में भारत के रक्षा मंत्री अरूण जेटली ने बहुत ही सराहनीय जवाब पेश किया। रक्षामंत्री जेटली ने कहा कि चीन इसको न भूले की यह 1962 नहीं, 2017 है। भारत अब 1962 वाला भारत नहीं रहा। इस पर चीनी प्रवक्ता ने 1962 में हुए भारत चीन युद्ध को साधते हुए अत्यन्त उत्तेजक बयान दे डाले। काफी लम्बे समय तक गतिरोध बने रहने के पश्चात भी इस विवाद का कोई उचित समाधान नही निकल पाया। लेकिन यह समस्या इतनी भी बडी नहीं थी कि भारत चीन के वर्षों पुराने सम्बन्धों पर नकारात्मक प्रभाव डाल सके। प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने इस समस्या का उचित

तरीके से निस्तारण करके भारत चीन सम्बन्धों को नई दिशा देने का प्रयास किया है।

जून 2017 में रूस पहुंचे प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने बडे गर्व से कहा कि विवाद के बावजूद भारत चीन सीमा पर 40 वर्षों से एक गोली नहीं चली। लेकिन सबसे बड़ी वास्तविकता यह है कि चीन भारत को एशिया में अपना प्रतिद्वन्द्वी नहीं बनने देना चाहता। डोकलाम में चीनी सेनाओं की घुसपैठ चीन की विस्तारवादी विदेश नीति का अहम हिस्सा था। चीन की यह रणनीति रही है कि वह अपने आप को सही सिद्ध करने के लिए तथ्यों के साथ छेडखानी करने से नहीं चूकता। ऐतिहासिक रूप से चीन का रवैया अपने पड़ोसी देशों के साथ अच्छा नही रहा है। फिर चाहे वह दक्षिण चीन सागर, पूर्व चीन सागर का मामला हो वह विवाद करता रहता है। वर्ष 1950 में माओ ने पांच अंगुल रणनीति अपनाई थी। इसमें तिब्बत को जहां चीन के दायें हाथ की हथेली का विजय चिन्ह तो लद्दाख नेपाल सिक्किम, भूटान और अरूणांचल प्रदेश को इसकी पांच अंगुली मानी गयी थी। इस प्रतीक से ही चीन की विस्तारवादी नीति का सहज ही अंदाजा लगाया जा सकता है। पिछले कई दशकों से चीन अपनी सैन्यशक्ति को लगातार बढ़ाता जा रहा है। चीन का मुख्य उद्देश्य भारत को विभिन्न तरीकों से कमजोर करना है। जम्मू कश्मीर में अक्साई चीन,अरूणांचल प्रदेश, सिक्किम, उत्तराखण्ड और हिमांचल प्रदेश में चीन द्वारा घुसपैठ की घटनाएं की जाती रही हैं।

जुलाई 2017 में नरेन्द्र मोदी और शी जिनपिंग की मुलाकात हैम्बवर्ग में हुयी। जी0–20 शिखर सम्मेलन के दौरान दोनों नेता मिले। इस सम्मेलन में प्रधानमंत्री मोदी ने डोकलाम का मुद्दा भी उठाया था। सितम्बर 2017 में ब्रिक्स देशों के सम्मेलन के दौरान चीनी राष्ट्रपति शी जिनपिंग और प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी के बीच मुलाकात और बातचीत हुयी थी।

अप्रैल 2018 में प्रधानमंत्री मोदी और राष्ट्रपति शी जिनपिंग की चीन के वुहान में शिखर सम्मेलन के दौरान मुलाकात हुयी। इस दौरान वैश्विक महत्व के मुद्दों पर विचारों का आदान प्रदान करने के लिए प्राथमिकताओं पर विस्तृत बातचीत हुई। जिनपिंग प्रधानमंत्री मोदी को हुवेई के म्यूजियम ले गये जहां चीनी कलाकारों ने भारत के प्रधानमंत्री के स्वागत में सांस्कृतिक कार्यक्रम किया था। 9 जून 2018 को प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी शंघाई सहयोग संगठन के शिखर सम्मेलन में भाग लेने गये थे इस दौरान उनकी राष्ट्रपति शी जिनपिंग से द्विपक्षीय वार्ता हुयी। इस वार्ता में दोनों देशों में ब्रम्हपुत्र नदी में जल सम्बन्धी जानकारी और चावल के निर्यात से सम्बन्धित समझौते हुए थे।

30 नवम्बर 2018 को प्रधानमंत्री मोदी और चीनी राष्ट्रपति जिनपिंग की मुलाकाल व्यूनस आयर्स में जी 20 शिखर सम्मेलन के दौरान हुई इस मुलाकात का कोई खास परिणाम नजर नहीं आया। जून 2019 मे दूसरी बार सत्ता में आने

के बाद प्रधानमंत्री मोदी और चीनी राष्ट्रपति जिनपिंग की मुलाकात किर्गिस्तान के विश्केक में हुयी थी। इस दौरान प्रधानमंत्री मेादी ने जिनपिंग को अक्टूबर में भारत आने का न्योता दिया और यात्रा का एजेण्डा तय किया। अक्टूबर 2019 में दोनों राजनेताओं की अनौपचारिक मुलाकात महाबलीपुरम में हुयी। बंगाल की खाडी के ऊपर समुद्र तट पर मोदी और जिनपिंग के बीच 6 घण्टे बैठक हुयी। इस दौरान दोनों देशों ने कई समझौतों पर बातचीत हुयी। अभी हाल में ही अप्रैल 2020 एलएसी के आस पास के इलाकों में चीनी सैनिकों ने घुसपैठ की कोशिशें शुरू कर दी थी। मई में उन्होंने पैंगोंग सो, गलवान घाटी और गोगरा–हॉट स्प्रिंग्स में अपने अस्थायी निर्माण कर लिये थे। भारतीय सेना ने जब इस पर आपत्ति जताई तो चीन ने वापस लौटने की बात तो कही पर गस्त के दौरान भारतीय सैनिकों को गलवान में चीनी सैनिकों के तम्बू गड़े मिले। इन्हें हटाने के दौरान ही दोनों देशों के सैनिकों के मध्य खूनी झडप हुई थी इस झडप में कुछ भारतीय व कुछ चीनी सैनिकों की जान चली गई । इस घटना के बाद भारत चीन सम्बन्धों में एक बार फिर से खटास आ गई है।

प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने केन्द्र की सत्ता में आने के बाद सम्बन्ध को बेहतर बनाने के लिए गर्म जोशी के साथ शुरूआत की थी। इसके बावजूद पिछले 6 सालों में चीन के साथ भारत के रिश्तों में उतार चढाव ही देखने को मिले हैं। विवादों के बावजूद दोनों देशों में बातचीत के द्वारा सम्मान पूर्ण हल के प्रयास जारी हैं। तथा इसके लिए समय–समय पर वार्तायें आयोजित की जा रहीं हैं।

कीवर्ड

आतंकवाद– अगर कोई व्यक्ति व कोई संगठन अपने आर्थिक राजनीतिक एवं विचारात्मक लक्ष्यों की प्रतिपूर्ति के लिए देश या देश के नागरिकों की सुरक्षा को निशाना बनाएं तो उसे आतंकवाद कहते हैं।

साम्राज्यवादी– साम्राज्यवाद वह दृष्टिकोण है जिसके अनुसार कोई महत्वाकांक्षी राष्ट्र अपनी शक्ति एवं गौरव को बढ़ाने के लिए अन्य देशों के प्राकृतिक और मानवीय संसाधनों पर अपना नियंत्रण स्थापति कर लेता है।

साम्यवाद– सामाजिक राजनीतिक दर्शन के अन्तर्गत आने वाली एक ऐसी विचारधारा है जो संरचनात्मक स्तर पर एक समता मूलक वर्ग विहीन समाज की स्थापना पर बल देता है।

परमाणु अप्रसार सन्धि– इसे एन पी टी के नाम से जाना जाता है। इसका उद्देश्य विश्वभर में परमाणु हथियारों के प्रसार को रोकने के साथ–साथ परमाणु परीक्षण पर अंकुश लगाना है।

यथास्थित– किसी बात या विषय की वह स्थिति जो किसी विशिष्ट समय में हो रही हो अथवा प्रस्तुत समय में हो।

परमाणु अपूर्तिकर्ता समूह– यह बहुत से देशों का एक समूह है। जो नाभिकीय निरस्त्रीकरण के लिए प्रयासरत है।

पंचशील– मानव कल्याण तथा विश्व शांति के आदर्शों की स्थापना के लिए विभिन्न राजनीतिक सामाजिक तथा आर्थिक व्यवस्था वाले देशों में पारस्परिक सहयोग के पांच आधारभूत सिद्वांत जिन्हें पंचशील कहते हैं।

गुटनिरपेक्ष आंदोलन– राष्ट्रों की एक अन्तर्राष्ट्रीय संस्था है जिन्होंने निश्चय किया है कि विश्व के वे किसी भी पावर ब्लाक के साथ या विरोध में नहीं रहेंगे।

सन्दर्भ :

1. यू. आई. घई – भारतीय विदेश नीति।
2. प्रभुदत्त शर्मा – अंतर्राष्ट्रीय राजनीति ।
3. डॉ. वी.एन.खन्ना – अंतर्राष्ट्रीय राजनीति साहित्य भवन प्रकाशन ।
4. बी.एल. फाडिया– अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति साहित्य भवन पब्लिकेशन आगरा 2006
5. उषा बाजपेयी– भारत चीन सम्बन्ध।
6. जे.एन. दीक्षित– भारतीय विदेश नीति प्रभात प्रकाशन नई दिल्ली 2012।
7. संजय कुमार, धीरेन्द्र द्विवेदी : भारत–चीन में संघर्ष और सहयोग
8. पुष्पेश पन्त– भारतीय विदेश नीति।

***

ढलान से उतरते हुए : एक संक्षिप्त आयाम

आशुतोष कुमार मिश्रा *

निर्मल वर्मा हिन्दी साहित्य की स्वाधीन चिंतन परम्परा के अग्रगण्य लेखक के रूप में उभरे। साहित्य और संस्कृति की वैचारिकी उनके लेखन के माध्यम से समृद्ध हुई। आधुनिक युग में वे भारतीय मनीषा को प्रतिष्ठित करने वाले साहित्यकार थे। यहाँ भारतीय मनीषा इसलिए महत्वपूर्ण है क्योंकि उन दिनों देश के बौद्धिक क्षितिज पर विभिन्न विदेशी विचारधाराओं का प्रभुत्व था। ऐसी स्थिति में उन्होंने जातीय (नेशनल) स्मृति के पुनर्वास का बीड़ा उठाया। यह वैचारिक चिन्तन परम्परा आचार्य रामचन्द्र शुक्ल तथा अज्ञेय की थी। इसे उन्होंने परिपुष्ट किया था।

निर्मल वर्मा का रचना संसार व्यापक ही नहीं गहरा भी है। उनके निबंध कला, साहित्य, धर्म, धर्मनिरपेक्षता, सभ्यता, भाषा, समाज, संस्कृति, पर्यावरण, औद्योगिकीकरण, ज्ञान–विज्ञान, परम्परा, इतिहास बोध, अतीत–स्मृति जैसे विषयों को अपने में समाहित किये हुए है। अतः उनके निबंधों से उनकी अवधारणाएँ, मान्यताएँ, तथा साहित्य व्यापक जीवन बोध आदि का परिचय मिलता है। निर्मल वर्मा के गहन चिन्तन पृष्ठभूमि में स्पष्ट इतिहास बोध होता है। उनमें एक चिंतक, संस्कृति ज्ञाता, परम्परा प्रेमी, कुशल अध्यापक दिखाई देता है। उनके निबंध में चिंतन परम्परा को अधिक बढ़ावा मिला है।

निर्मल वर्मा के निबंध संग्रहों में शामिल 'ढलान से उतरते हुए' नामक निबंध संग्रह उनकी चिंतन परम्परा का अमूल्य रत्न है। यह तीन खण्डों में विभाजित है जैसा कि वे खुद स्पष्ट करते हैं–''इसके निबंध अपने को सहज रूप से तीन खण्डों में विभाजित कर लेते है; किन्तु वह 'मन' क्या है, जहाँ से ये दोनों अपना मूलभूत चरित्र, स्वभाव और आग्रह ग्रहण करते हैं? इसका उत्तर देने के लिए मैंने अंतिम खण्ड में अपनी डायरी के कुछ अंश देने उपयुक्त समझे, जिन्हें मैं समय–समय 'रास्ते पर' जमा करता रहता हूँ। पता नहीं दूसरों के लिए वे कितना मतलब रखेंगे?

'ढलान से उतरते हुए' निर्मल वर्मा के वैचारिक निबंधों का संग्रह है। यही इस निबंध संग्रह का शीर्षक निबंध भी है इसीलिए यह बेहद महत्वपूर्ण निबंध है वैसे तो यह संस्मरणात्मक निबंध है लेकिन बीच–बीच में समय और समाज के वैचारिक परिदृश्य की बहुत ही सटीक टिप्पणियाँ भी हैं, ये निबंध में ढलान से उतरना एक मेटॉफर है, इसके माध्यम से कभी साम्यवाद के सपने को ऊँचाई पर प्रतिष्ठित करने वाले रूस के ढलान को

* शोधछात्र, जयप्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा पिन-841301 (बिहार)

दिखाया गया है, तो जाहिर सी बात है कि साम्यवाद 20 वीं सदी का सबसे बड़ा एवंसम्मोहनकारी सपना था। 20वीं सदी की ढलान तक आते–आते यह सपना खंडित हो जाता है। रूस जिस समाजवादी यथार्थ को प्रतिष्ठित करने निकला था वह खंडित होते हुए दिखता है, उन दिनों के रूस को देखकर लेखक को''कुछ ऐसा लगता था कि समाजवादी यथार्थवाद' का सिक्का सिर्फ साहित्य में ही चलता है, बाहर की दुनिया में उसका कोई मूल्य नहीं। साम्यवादी वैचारिकी के इस ढलान को लेखक ने वर्षों बाद भिक्षुओं की जमी देह और केमिकल्स से लिपटे लेनिन के मृत शरीर' की समक्षता के जरिये किया आस्था और अनास्था के सम्मिलन के माध्यम से लेखक ने बहुत अच्छे ढंगसे उजागर किया है। इसी क्रम का अगला निबंध 'शताब्दी के ढलते वर्षों में इसमें 20 वीं सदी से 21 वीं सदी में प्रविष्ट कर रहे आधुनिक मनुष्य की उत्कटता को उजागर करते हुए लेखक ने लिखा है– चिलचिलाती धूप में एक पागल सा आदमी दिखाई देता है जो तपते सूरज के नीचे जलती लालटेन लिए घूम रहा है। आधुनिक मनुष्य की निरर्थकता, एकाकीपन, दृष्टिहीनता का इससे बड़ा कोई दूसरा उदाहरण नहीं हो सकता।

बाद में 'शताब्दी के ढलते वर्षों में के नाम से उनका स्वतंत्र निबंध संकलन भी प्रकाशित हुआ। इस निबंध में 20 वीं सदी के अंतिम वर्षों का लेखा–जोखा होने के साथ ही इसमें साहित्य, कला, समाज, धर्म, संस्कृति, राजतंत्र आदि व्यापक अर्थों में मनुष्य के अनुभवों से एकात्म स्थापित किया है यहाँ उन्होंने मानव के भविष्य की चिंता करते हुए लिखा है– ष्क्या हम भारतीय संस्कृति को इस टूटन और बिखराव से बचा सकते है? मुझे लगता है कि आधुनिक औद्योगिकीकरण के थपेड़ों के बावजूद, चारों तरफ फैली गरीबी और दरिद्रता और आत्म–उन्मूलन के बावजूद आज भी यह सम्भव है कि हम इतिहास की घातक प्रक्रिया को बदल सकते है, उसे एक नितान्त नयी दिशा में मोड़ सकते हैं। अर्थात औद्योगिकीकरण की बढ़ती हुई आग से प्रकृति को बचाना तथा पर्यावरण संतुलन बनाये रखना है। समाज में बढ़ता सशस्त्रीकरण, अणुबमों एवं आण्विक शस्त्रों का निर्माण ये सारी वैश्विक समस्याएँ है। इसलिए निर्मल वर्मा बार–बार पवित्र परिवेश का जिक्र करते हैं। जिस परिवेश के अलावा आधुनिक मनीषा ने एक बिखराव व टूटन पर विमर्श किया है। इस निबंध में उन्होंने गाँधी जी को भी याद किया है, जिन्होंने बड़े साहस के साथ यथार्थ की ठोस जमीन पर उसकी समस्त व्यावहारिक संभावनाओं को उजागर किया है– 'गाँधी जी ने दोनों को प्रत्यक्ष को अप्रत्यक्ष से, दृश्य को अदृश्य से, बाह्य को अन्तर से जोड़करभारतीय अनुभव को पूरी समग्रता से जीने का प्रयास किया था। अर्थात् भारतीय संस्कृति के स्वप्न गाँधी जी के सत्य, अहिंसा प्रेम के साथ जुड़ें हैं, जो आधुनिक परिवेश को पवित्र परिवेश में परिवर्तित कर सकते हैं। इसमें 'कला और कलाकृति' शीर्षक पहले खण्ड का आरम्भिक नियंध है 'काल औरसृजन।' भोपाल में एक परिचर्चा हुई थी– श्काल और सृजन पर।

परिचर्चा के दौरान निर्मल वर्मा के भीतर अनेक जिज्ञासाएँ एवं शंकाएँ उठी थीं। परिचर्चा के सीमित समय के कारण अपने मंतव्य को स्पष्ट नहीं कर पाये। वे कहते हैं–'परिचर्चा के दौरान मेरे भीतर अनेक जिज्ञासाएँ और शंकाएँ उठीं थीं, लेकिन दो दिन की बातचित में उन्हें ठीक–ठीक शब्दों में निरूपित करना सम्भव नहीं था। बाद में मैंने कुछ नोट्स तैयार किए, जो काफी विश्रृंखलित और अधूरे हैं–उन्हें किसी भी अर्थ में परिचर्चा पर एक निष्कर्षात्मक टिप्पणी के रूप में नहीं लिया जाए। इसमें कला का सत्य, उपयोगिता, रहस्य, सार्थकता, अर्थ, नैतिकता, कला और सौंदर्य, कला और इतिहास आदि बिन्दुओं पर गम्भीर चिंतन किया है। हर कला अपने समय में कितना आतंकित रही, कला के इस सत्य को व्यापक फलक पर जाँचा–परखा है।

उपन्यास की मृत्यु और उसका पुनर्जन्म' निबंध में अन्य विधाओं के साथ उपन्यास की तुलना करते हुए उसके फॉर्म की बात करते हैं इस निबंध की विशेषता यह है कि लेखक ने उपन्यास की पीड़ा को व्यक्ति की प्रसव पीड़ा से जोड़ा है–'उपन्यास की तकलीफ बहुत कुछ व्यक्ति के जन्म होने की प्रसव पीड़ा से जुड़ी हुई थी। इसी निबंध में उपन्यास की सीमा का रेखांकन भी मिलता है। निर्मल वर्मा के विचारों में यूरोप के फ्लावेयर, डिकेन्स, दोस्तोएवस्की, टालस्टॉय आदि महान उपन्यासकारों का प्रभाव है। कहानी एक शुद्ध विधा?' निबंध में निर्मल वर्मा ने कहा है 'साहित्यिक विधाओं का चयन स्वेच्छाचारी ढंग से नहीं हो सकता, वह अनुभव की प्रकृति में ही निहित होता है। कोई लेखक अपने अनुभव को एक विधा से दूसरी विधा में अपनी मन–मरजी सेस्थानान्तरित नहीं कर सकता, क्योंकि ऐसा करने से अनुभव का जीवन्त स्फुरण ही नष्ट हो जाएगा। अतः लेखक अनुभव का श्फॉर्म' नहीं ढूँढता बल्कि अनुभव ही खास 'फॉर्म में लेखक के भीतर उदित होता है। कहानी एक शुद्ध विधा कैसे है? इस बात को निर्मल वर्मा ने स्पष्ट किया है– 'कहानी में शब्द न रपट की तरह सिर्फ माध्यम होते हैं, न कविता की तरह स्वायत्त होते हैं। उनके भीतर एक तनाव भरी चमक रहती है। एक कहानी बाहर कीदुनिया की रपट को अपने सत्य की भाषा में परिणत करती है। कला–विधा की पवित्रता–शुद्धता वास्तव में वह फॉर्म या रूप है, जिसमें लेखक का सम्पूर्ण दर्शन, कल्पनाजगत् और कथ्य शामिल है, कहानी का कथ्य छोटा हो या बड़ा हो किन्तु जिस 'फॉर्म में कहानी ने अपने सत्य को समेटा है, अपने रूप में मंडित किया है वह निश्चित ही कहानी की अद्वितीय विशिष्टता है। अपने विचारों के लिए उन्होंने कवि बॉदलेयर, पुश्किन, मेलर, मलामें, टालस्टॉय, नाबाकोब, माणिक बंधोपाध्याय, प्रेमचन्द आदि महान रचनाकारों की रचना विशिष्टता की भूमिका स्पष्ट की है।

कलाकृति और आलोचना की मर्यादा निबंध में कोई भी कलाकृति आलोचना के बाद कलाकार की सम्पत्ति न रहकर कैसे वह सार्वजनिक अनुभव बनती है यह स्पष्ट किया है। इसी के साथ आलोचना की शर्तों पर

भी विचार किया है–'समर्थ आलोचना की पहली शर्त यह है कि वह कलाकृति के अखण्डित और स्वायत्त यथार्थ को पहचान सकेय तो दूसरी शर्त यह भी है कि वह कलाकृति के बाहर फैले यथार्थ को भी एक सम्पूर्ण और अविभाज्य के रूप में स्वीकार सकेय साथ ही आलोचना की भाषा, आलोचक का दायित्व, कलाकृति के सत्य का मूल्यांकन कसौटी, सृजनात्मक आलोचना, कलाकृति और आलोचना आदि पहलुओं पर भी विचार किया है।

इस खण्ड के दो अन्य निबंध प्रेमचन्द की उपस्थिति और श्मलयज की मृत्यु पर शीर्षक तले उनकी रचनात्मक क्षमता को रेखांकित किया है। प्रेमचन्द की उपस्थिति में वर्षों बाद प्रेमचन्द की अंतिम रचनाओं की उपलब्धियों का विवेचन किया है। श्मलयज की मृत्यु पर में एक भावपूर्ण श्रद्धांजलि की अभिव्यक्ति है। 'विश्वास नहीं होता, कि अब हम चौकेंगे नहीं, स्तब्ध नहीं होंगे। यह सोचना असम्भव लगता है कि छोटे–छोटे अंतरालों के बीच अचानक प्रगट होने वाले मलयज अब एक कभी न खत्म होने वाले अंतराल में चुप रहेंगे

इस संग्रह का महत्वपूर्ण निबंध है– 'धर्म, धर्मतन्त्र और राजनीति। इस निबंध में धर्म, धर्मनिरपेक्षता, साम्प्रदायिकता को भारतीय संदर्भों में परिभाषित किया गया है। एक भारतीय के लिए धर्म को एक महज सम्प्रदाय के रूप में देखना नहीं बल्कि उनके धर्म का व्यापक अर्थ है। अर्थात् भारतीय मनुष्य को धर्म तथा धर्मबोध से सर्वथा अलग नहीं किया जा सकता है। इस प्रकार धर्म को भारतीय संदर्भ में विश्लेषित करते हुए वे प्रश्न करते है– 'हमारे धर्मतंत्र और लौकिक संसार के बीच जो इतनी गहरी खाई फैल गयी है, क्याइसे कभी नहीं पाटा जा सकता?' निर्मल वर्मा के लिए धर्म और राजनीति का संबंध आज केवल एक समाज–शास्त्रीय बहस न रहकर सम्पूर्ण मनुष्य जाति से जुड़ा है। उनके लिए महत्वपूर्ण प्रश्न यह नहीं कि एक राजनीति को धर्मावलंबी होना चाहिए या धर्मनिरपेक्ष। क्योंकि ये दोनों ही खंडित मानसिकता का बोध कराते हैं इस विभाजन को वे अर्थहीन व खंडित मानते हैं। क्योंकि इस विभाजन के फलस्वरूप ही मनुष्य की सम्पूर्णता बोध और प्रकृति पवित्रता दोनों ही अवमूल्यन की स्थिति में पहुंच जाते हैं। वे यहाँ भी गाँधी दर्शन से प्रभावित होते हैं– गाँधी जी ने 'हिन्द स्वराज' में आधुनिक सभ्यता के विकल्प में एक ऐसे समाज की परिकल्पना की थी, जहाँ स्वराज और स्वधर्म के बीच कोई अन्तर्विरोध नहीं रहता है।

सिंगरौली–जहाँ कोई वापसी नहीं निबंध में औद्योगिक विकास के नाम पर उजड़ें गाँवों के भयानक दर्द व चित्र सामने लाने की कोशिश है यहाँ उन्हें अनुभव होता है कि 'मनुष्य के विस्थापन के विरोध में पेड़ भी एक साथ मिलकर मूक सत्याग्रह कर सकते हैं, इसका विचित्र अनुभव सिर्फ सिंगरौली में हुआ।' यह 'अमझर' गाँव की कहानी है, जहाँ के लोगों को 'औद्योगिकीकरण; के झंझावत ने वहाँ से निर्वासित कर दिया हैं। प्रगति और विकास के नाम पर इतिहास लोगों को उन्मूलित करता है। इस प्रगति की

आँधी ने अमझर' गाँव के लोगों का सब कुछ नष्ट कर दिया–उनके आवास, संस्कृति, इतिहास, परम्परा आदि। किसी भी ग्रामीण अंचल या स्थान विशेष को औद्योगिकीकरण से कितनी निर्ममता से उजाड़ा जा सकता है, 'सिंगरौली' इसका ज्वलंत उदाहरण है। सिंगरौली रीवाँ राज्य के भीतर स्थित है। यह विंध्याचल एवं कैमूर के पहाड़ियों से घिरा है। इसका पुराना नाम श्सृंगावलीश पर्वतमाला से निकला है। ये चारों ओर घने जंगलों से परिव्याप्त है। अथाह प्राकृतिक सौंदर्य के बावजूद इसे 'काला पानी' माना जाता है। यहाँ लोग आने–जाने का जोखिम नहीं उठाते। यहाँ कुछ आदिवासी जातियाँ जैसे–कोल, पनिका, अगरिया आदि रहते थे। निर्मल वर्मा दिल्ली की 'लोकायन' संस्था की ओर से विकास के निरीक्षण के लिए गये थे। वे लिखते है– 'जिस तरह जमीन पर पड़े शिकार को देखकर आकाश के गिद्धों और चीलों का झुण्ड लग जाता है, वैसे ही सिंगरौली की घाटी और जंगलों पर ठेकेदारों, वन अधिकारियों और सरकारी कारिन्दों का आक्रमण शुरू हुआ। वे आवासीय विस्थापन से अधिक शोचनीय 'सांस्कृतिक विस्थापन' को मानते हैं–'बरसों जो एक साथ गाँव में रहे हैं वे देश के अलग–अलग कोनों में, नितांत अजनबी परिवेश में किस तरह अपने को अनाथ अकेले और निराश्रित पाते हैं।

इस खण्ड का अंतिम निबंध है–'क्यों भारतीय संस्कृति को जीवित रखना जरूरी है?' इसमें भारतीय संस्कृति की महत्ता व्याख्यायित हुई है। इसमें एक धर्मावलंबी भारतीय के लिए धर्म का क्या अर्थ है? 'सेक्युलॅरिज्म' और 'धर्मनिरपेक्षता का भारतीय संदर्भ में क्या अर्थ है आदि विषयों पर विवेचन व विश्लेषण है। 'रास्ते पर इस निबंध संकलन के अंतिम खण्ड का एक मात्र निबंध है। इसमें वर्माजी की डायरी के अंशों का संकलन है। इसमें उनके रचना कर्म से जुड़े सभी व्यक्तियोंके प्रति कृतज्ञता का भाव है। यह डायरी उनकी यात्राओं, यातनाओं और अनुभवों का चिंतन है। इसमें वे निर्जीव चीजें भी शामिल है जो अकेलेपन में उनका साथ निभाती है, उदाहरण स्वरूप पुरानी कापियाँ, ग्रामोफोन, फाउंटेनपेन, टाइमपीस, ऐश–ट्रे पुराना स्वेटर आदि। इस डायरी के हर पन्नों में हम उनसे जुड़ें लोगों से, रचनाओं से, रेस्तरा से, तथा उनके अकेलेपन व उनके विराट व्यक्तित्व से परिचित होते है। ढलान से उतरते हुए' भारतीय और पाश्चात्य रचनाकारों व विद्वानों के बहाने किया गया इतिहास, परम्परा, संस्कृति का प्रगट चिंतन है। सशस्त्रीकरण, औद्योगिकीकरण वपर्यावरण से सम्बन्धित संकटों की चिंता है तो दूसरे ओर उससे प्रभावित लोगों के प्रतिसहानुभूति और साथ ही प्रभावित करने वाले कारणों के प्रति आक्रोश भी है। यह पुस्तकभारतीय चिंतन परम्परा में अपनी विलक्षणता के फलस्वरूप महत्वमयी व गौरवपूर्ण स्थानरखता है।

सन्दर्भ :

1. ढलान से उतरते हुए (भूमिका), पृ. 7–8.
2. वही (ढलान से उतरते हुए), पृ. 175.
3. वही (ढलान से उतरते हुए), पृ. 168.
4. वही (शताब्दी के ढलते वर्षों में) पृ. 98.
5. वही (शताब्दी के ढलते वर्षों में) पृ. 124–125.
6. वही (शताब्दी के ढलते वर्षों में) पृ. 125.
7. वही (काल और सृजन) पृ. 13.
8. वही (उपन्यास की मृत्यु और उसका पुनर्जन्म) पृ. 25.
9. वही (कहानी : एक शुद्ध विधा?) पृ. 41.
10. वही (कहानी : एक शुद्ध विधा?) पृ. 42.
11. वही (कलाकृति और आलोचना की मर्यादा) पृ. 59.
12. वही (मलयज की मृत्यु पर) पृ. 89.
13. वही (धर्म, धर्मतंत्र और राजनीति) पृ. 135.
14. वही (धर्म, धर्मतंत्र और राजनीति) पृ. 141.
15. वही (सिंगरौली जहाँ कोई वापसी नहीं) पृ. 145.
16. वही (सिंगरौली जहाँ कोई वापसी नहीं) पृ. 147–148.
17. वही (सिंगरौली जहाँ कोई वापसी नहीं) पृ. 154.

***

मध्यकाल में हिन्दू महिलाओं की सामाजिक स्थिति

डॉ. किरण कुमारी *

युगों–युगों से भारतीय महिलाओं की स्थिति पुरूषों पर उनकी आर्थिक और वित्तीय निर्भरता की दयनीय कथा के अतिरिक्त कुछ भी नहीं रही है। महिलाओं की रक्षा के लिए बताये गए सभी कड़े नियमों के पीछे मुख्य रूप से मंशा यह रही है कि स्त्रियों की सच्चरित्रता बरकरार रखी जाय। इसमें संदेह की कोई गुंजाइश नहीं कि हिन्दुओं के लिए प्रमुख नैतिक नियम–निर्धारक एवं मनुस्मृति के प्रणेता मनु स्त्रियों को पिंजड़े में बंद चिड़ियाँ समझते थे और उन्हें पुरूषों के साथ गंभीर उत्तरदायित्वों में हिस्सा लेने के काबिल नहीं मानते थे और इस सीमित क्षेत्र में भी वैदिक युग के प्रतिकूल हिन्दू स्त्री अधिकारिणी नहीं मानी जाती थी।

सामान्यतः और निःसंदेह संतान में बच्चियों का जन्म इस प्रकार स्वागत योग्य न था जिस तरह कि बच्चों का। परिवार में बच्ची का जन्म एक अशुभ घटना मानी जाती थी। राजपूतों के कुछ वर्गों में हीन भाव और अपमान से बचने के लिए बच्ची के जन्म के तुरंत बाद इसे मार डाला जाता था क्योंकि इस प्रकार उनके विवाह के खर्च से बचा जा सकता था। यह और बाल–हत्या धर्म और मानवता के अनुसार संगत न थे। बेमेल–विवाह और बाल–विवाह उस युग के अन्य अभिशाप थे। हिन्दू राजा अपना हरम रखते थे, जिसमें विभिन्न जातियों, धर्मों, राष्ट्रीयताओं और रंगों की स्त्रियाँ बड़ी संख्या में थीं। इससे हमारी विचाराधीन–अवधि में हमारी महिलाएँ बाध्य होती थीं कि वे राजाओं की सांसारिक सुख की तीव्र इच्छा और क्षुधा शांत करे। बहु–विवाह और हरम उस समय की हिन्दू महिलाओं का अधः पतन के कारक बनें। जहाँ तक वस्त्रों और वेश–भूषा का सम्बन्ध है, हिन्दू महिलाओं की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति के अनुरूप इसमें भिन्नता थी। उच्च वर्गों की रूप–सज्जा और श्रृंगार–प्रसाधन प्रशंस्य थे। इस मामले में हमारी विचाराधीन–अवधि की महिलाएँ आज की महिलाओं से एक कदम आगे थीं। अभिजात वर्गीय परिवारों में पर्दा–प्रथा का कड़ाई के साथ पालन किया जाता था। वह बड़ों के प्रति स्त्रियों के सम्मान–भाव की द्योतक थी, पर हिन्दू समाज के निम्न वर्गों में इसका प्रचलन न था। इन वर्गों की महिलाएँ अपनी जरूरत के मुताबिक जहाँ–तहाँ जा सकती थीं। बाल–विवाह और कड़ी पर्दा–प्रथा के कारण हिन्दू स्त्रियों की शिक्षा और संस्कृति को गहरा आघात लगा। चहारदिवारी में बंदिनी–सा जीवन बिताने वाली महिलाएँ समाज से अपनी पृथकता के कारण शिक्षा से वंचित रह जाती थीं। समृद्ध

* इतिहास विभाग, वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा (बिहार)

वर्गों की निष्णात महिलाओं को, शायद निजी शिक्षकों से शिक्षा मिली होगी। फिर भी कुछ हिन्दू महिलाएँ शिक्षा और संगीत, नृत्य, चित्रकला, कविता आदि ललित कलाओं, वाद–विवाद में उत्तंग उच्चता तक पहुँचीं और चौंसठ कलाओं में महारत हासिल कर सकीं।

उक्त अवधि में विधवा की स्थिति अत्यन्त दयनीय थी। सामान्यतः ऐसा विश्वास था कि एक सदाचारी महिला, जिसने अपने पति की मृत्यु के बाद अपना चरित्र सदैव निष्कलंक रखा, मृत्यु के बाद स्वर्ग की अधिकारिणी होती है, भले ही उसे संतान न हो। ऐसा भी था कि यदि कोई स्त्री, जहाँ संतान की इच्छा के कारण अपने मृत पति के प्रति कर्त्तव्य से चूकती थी, इस संसार में अप्रतिष्ठा पाती एवं स्वर्ग में अपने मृत पति के सानिध्य से वंचित होती थी। हिन्दू समाज के उच्च वर्गों में सती–प्रथा प्रचलित थी। ''जौहर'' की परिपाटी केवल राजपूतों में थी जो अपनी महिलाओं के चरित्र पर आँच न आने देने के लिए ऐसा करते थे। सामाजिक और धार्मिक प्रथा के रूप में सती–परिपाटी हिन्दू समाज का अभिशाप थी और अंत में ब्रिटिश राज्य में इस पर प्रतिबंध लगा दिया गया और जहाँ तक जौहर का प्रश्न है, वह निःसंदेह बहादुरी का काम था पर वास्तव में अत्यधिक अमानवीय प्रथा थी।

उक्त अवधि में मुस्लिम राजा संगीत और ललित कलाओं के मर्मज्ञ संरक्षक थे। लड़कियाँ मंदिरों को देवदासियों के रूप में अर्पित की जाती थीं और उनकी संख्या बहुत ज्यादा थी। संगीत, नृत्य और अन्य ललित कलाओं में अपनी प्रवीणता के लिए वेश्याओं और गणिकाओं का समाज में सम्मान था। साथ ही, उक्त अवधि में वेश्याओं और गणिकाओं की संख्या बहुत ज्यादा बढ़ी जिसके कारण हिन्दू समाज बाल–विवाह एवं विवाहों की दयनीय स्थिति थी।

महिलाएँ परिवार, धर्म और सार्वजनिक जीवन के क्षेत्र में पहले पर्याप्त स्वतंत्रता और विशेषाधिकारों का उपभोग करती थीं पर ज्यों–ज्यों इतिहास–देवता के रथ के चक्र बढ़ते गए और शताब्दियों के बाद शताब्दियाँ बीतती गईं उनकी स्थिति में क्रमिक परिवर्तन और ह्रास आता गया। पर यदि समग्र रूप से देखा जाय तो हमारी विचाराधीन–अवधि में विधवाओं और वेश्याओं की दयनीय स्थिति सती–प्रथा और परदे के अभिशाप के अलावा सामन्यतः संतोषजनक थी। बलपूर्वक किसी स्त्री को सती होने के लिए मजबूर होने पर मुस्लिम शासकों ने कड़ी रोक लगाई पर जो स्वयं सती होना चाहती थीं, उसे इसके लिए अनुमति दी जाती थी। यह हिन्दू के स्त्री लोक के हित में मुस्लिम शासन का सर्वोच्च आदर्शपूर्ण योगदान था। यह बात और है कि कुछ मुस्लिम सम्राटों के इस रूख के बावजूद सती और जौहर–प्रथाओं का उन्मूलन न किया जा सका।

सन्दर्भ :

1. 'कविता कौमुदी' भाग–1, सम्पादक– राम नरेश त्रिपाठी, नवनीत प्रकाशन, बम्बई, अष्टम संस्करण, 1954.
2. चन्द बरदाई : कविराज मोहन सिंह, प्रकाशक साहित्य संस्थान, राजस्थान, विश्वविद्यापीठ, उदयपुर, प्रथम संस्करण।
3. ''पद्मावत'', प्रकाशक – साहित्य सदन, चिरगाँव, झांसी, वि.सं. 2012, अप्रैल, 1959, प्रथम संस्करण
4. डॉ. कमला गुप्ता : मध्यकालीन उत्तर भारत में हिन्दू महिलाओं की सामाजिक स्थिति (सन् 1206–1707 ई. तक), बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना, प्रथम संस्करण, जुलाई, 2008.
5. हुसैन, आगा मेहदी : दी राइज एण्ड फौल ऑव मुहम्मद बिन तुगलक, इन्सक एण्ड कं. 46, ग्रेट सेल, स्ट्रीट, लंदन, 1938.
6. वेंकटेश्वर एस. बी. : इंडियन कलचर थ्रू दी ऐजज, खंड–1, लौंगमेन्स, 1928.
7. सेन गुप्त, शंकर : फोक कल्चर इन इंडिया, इंडियन पब्लिकेशन, कलकत्ता, 1962.

***

दलित इतिहास के नये आयाम

जितेन्द्र कुमार *

डॉ० अम्बेडकर के अथक प्रयासों के बाद दलितों में काफी हद तक सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, शैक्षणिक व सांस्कृतिक चेतना जागृत हुई। उन्हें हर प्रकार के संवैधानिक अधिकार भी मिल गए। किंतु वास्तविक जीवन में इसे व्यवहारिक रूप नहीं मिल पाया और समाज में अस्पृश्यता, जाति भेद-भाव, ऊंच-नीच की भावना पहले जैसी ही बनी रही। डॉ. अम्बेडकर के बाद दलितों के नेता के रूप में मात्र जगजीवन राम थे जिन्होंने दलित आंदोलन को आगे बढ़ाने का काम किया। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी दलित जातियां उच्च जातियों की गुलामी से मुक्त नहीं हो पाई थीं। उच्च जाति के लोग अभी भी दलितों के घर का पानी तक नहीं पीते थे, यहाँ तक कि उनके घरों में काम करने वाले अस्पृश्य नौकर से कोई बर्तन छू जाने पर उस बर्तन को भी अपवित्र मान लिया जाता था। दलितों द्वारा परंपरागत सेवाएं जैसे चमारी, डंगारी आदि बंद किए जाने के प्रतिक्रिया स्वरूप जो कुछ भी सेवाएं या सुविधाएं उन्हें उच्च जातियों से मिलती थीं, बंद कर दी गई थीं और उन पर अत्यधिक अत्याचार भी किया जाने लगा था। उदाहरणार्थ ''उत्तरप्रदेश के वाराणसी जिले के ज्ञानपुर तहसील के थाना औराई के बेहड़ा गांव में 1972 ई. में चमार जाति की औरतों द्वारा सवर्ण जाति के घर बच्चा होने पर नाल न काटने (चमारी न करने पर) पर वहाँ के सवर्णों ने दलितों के मकानों में आग लगा दी जिससे कई दलितों की मृत्यु हो गई।'' डंगारी न करने पर दलितों को इसी तरह के दंड सवर्णों द्वारा दिया जाता था। उदाहरण के लिए ''उत्तर प्रदेश के इलाहाबाद के थाना सराय आकिल के जुगराजपुर में दलितों द्वारा मरे हुए पशुओं के न उठाने पर वहाँ के सवर्णों द्वारा दलितों के निकलने, बैठने व टट्टी-पेशाब करने पर रोक लगा दिया गया।'' ऐसी ही एक घटना ''उत्तर प्रदेश के बांदा जिले के सबेहा गांव में 5 अप्रैल 1974 ई. में घटी। यहाँ दलित शिक्षित युवकों द्वारा मरे मवेशी न उठाने पर गैर-दलितों ने गोलियों से उनकी हत्या कर दी थी।''

---

* शोध छात्र, राजनीतिशास्त्र विभाग, वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा (बिहार)

ब्राह्मण, दलितों के यहाँ पुरोहिती का कार्य नहीं करते थे। दलितों ने स्वयं अपनी सभी संस्कार कर लेने की परंपरा विकसित की। किंतु कुछ दलित जो धन संपन्न हो जाते और उनमें उच्च बनने की चाहत होती वे ही ब्राह्मणों को संस्कार कराने हेतु बुलाते, फिर भी ब्राह्मणों द्वारा उसमें किसी भी तरह के भेदभाव बरतने में कमी नहीं होती थी और ब्राह्मणों की निगाह में वे दलित ही बने रहते थे। वैसे तो सार्वजनिक (संवैधानिक) आधार पर अस्पृश्यता समाप्त कर दी गई थी। लेकिन व्यवहार में यह समाप्त नहीं हुई थी। उदाहरणार्थ, ''1960 ई. के दशक में आंध्र प्रदेश के दलित मुख्यमंत्री का अपमान करने के लिए ऊंची जाति के अधिकारी व मंत्री कटाक्षपूर्ण भाषा का इस्मेमाल करते थे। दलित मुख्यमंत्री को वे अक्सर 'एम.एम.' के नाम से संबोधित करते थे जिसका मतलब 'मिस्टर मिनिस्टर', जारन संतान तथा तथा तेलगू भाषा में 'मिस्टर माला' था। 'माला' आंध्र प्रदेश की दलित जाति थी।'' गाँवों में अस्पृश्यों की बस्तियां सवर्णों से पृथक थीं किंतु जनसंख्या बढ़ने के कारण ये दूरियां घटी जरूर थी लेकिन सीमाएं वही थीं। आंध्र प्रदेश, बिहार, हरियाणा, मध्य प्रदेश, तमिलनाडु, महाराष्ट्र, मैसूर, उड़ीसा, पंजाब, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, पश्चिमी बंगाल, दिल्ली, गोवा, हिमांचल प्रदेश आदि में कोई भी दलित होटलों व धर्मशाला में नहीं जा सकते थे।

दलितों की बहू-बेटियां पालकी में नहीं आ-जा सकती थीं और कोई दलित यदि सेएा करने का साहस करता तो उसे सवर्णों द्वारा प्रताड़ित किया जाता था। उदाहरणार्थ, ''टेहरी गढ़वाल जिले के कोटी ग्राम को जनवरी 1969 ई. में मोहन शिल्पकार (दलित) की बारात बहू को पालकी में बैठाकर आ रही थी। यह देखकर वहाँ के सवर्ण हिंदुओं द्वारा पत्थर मारकर बारातियों को लहूलुहान कर दिया गया तथा जुर्माना लेकर बारात के जाने की इजाजत दी थी।'' जब पहली बार भारत में उप-प्रधानमंत्री का पद निर्धारित किया गया तब इस पद के प्रबल दावेदार जगजीवन राम को उप-प्रधानमंत्री नहीं बनाया गया और मोरारजी देसाई को यह पद सौंप दिया गया तथा 1975 ई. में जगजीवन राम को प्रधानमंत्री बनाने के बजाय इमरजेंसी लगाना उचित लगा। ऐसे व्यवहार का एकमात्र कारण संभवत: जगजीवन राम का दलित होना था। योग्य होते हुए भी अस्पृश्यता, जाति-पांति एवं ब्राह्मणवाद के शिकार होने से जगजीवन राम भी

अपने को बचा नहीं पाए। अंतत: मजबूरी में जनवरी से जुलाई 1979 ई. तक कांग्रेस ने उन्हें उप-प्रधानमंत्री बनाया।

धर्म के नाम पर दलितों को पूजा स्थलों पर जाने की पाबंदी में कमी तो आई। किंतु छुआछूत का भेदभाव संपूर्ण भारत में किसी न किसी स्तर पर बना हुआ था। जब सवर्णों की कथा होती थी तो उस समय दलितों को वहाँ बैठने की मनाही थी ऐसे गांवों में जहाँ मदिरों की देखभाल के लिए अलग पुजारी होते थे वहाँ भी दलितों को भगवान की पूजा फाटक के बाहर से ही करनी पड़ती थी। मंदिरों में दलितों के प्रवेश संपूर्ण भारत के हर प्रांतों में वर्जित था किंतु यदि किसी तरह कोई दलित प्रवेश करने का साहस करता तो उन पर उच्च जाति द्वारा अत्याचार किया जाता था। वैसे तो बहुत से दलितों ने अपना अलग मंदिर बनाना प्रारंभ कर दिया था, फिर भी उच्च जाति के शिकार होने से अपने को बचा नहीं पाते थे क्योंकि हिंदू धर्म ग्रंथ जो समाज में ब्राह्मणादी रीति-रिवाजों को बढ़ावा दे रहे थे, उनमें विद्यमान थे। दलितों की आर्थिक स्थिति में कुछ सुधार अवश्य हुआ किंतु अभी भी बहुतायत लोगों को दोनों समय की रोटी बड़ी मुश्किल से मिलती थी। उनके नाम बंजर भूमि का मालिकाना तो मिला लेकिन उस पर कब्जा सवर्ण लोगों का ही था। वे अपनी जीविका हलवाही (दूसरों के खेतों पर हल चलाना) करके चलाते थे। भूमि के नाम पर अभी भी इनके पास कुछ नहीं था और यदि भूमि दलितों को मिली मिली थी तो सवर्णो को अच्छा नहीं लगा और उन पर अत्याचार करना शुरू कर दिये थे। उदाहरण के लिए, उत्तर प्रदेश के मैनपुर जिले के थाना जसराना के गाँव देवली में 18 नवंबर 1981 ई. को दलितों पर आक्रमण करके 24 व्यक्तियों को सवर्णों द्वारा भून डाला गया। कारण यह था कि 1975 ई. में दलितों को बीस सूत्रीय कार्यक्रम के अंतर्गत गांव सभा की भूमि दलितों को आवंटित की गई थी जिस पर वहाँ के ठाकुर काबिज थे और वे उसे छोड़ना नहीं चाहते थे।''

उच्च जाति के लोग दलितों को कम मजदूरी देकर काम कराते थे तथा दलितों द्वारा मजदूरी मांगने पर उन्हें प्रताड़ित भी करते थे। उदाहरण के लिए, ''उत्तर प्रदेश के वाराणसी जिले की चंदौली तहसील (अब जिला बन गया है) के गांव हड़ौरा में 1972 ई. में दलितों द्वारा मजदूरी मांगने पर ठाकुरों ने उस पर लाठी-डंडा द्वारा आक्रमण कर दिया तथा मौके पर आई पुलिस ने भी उन ठाकुरों का ही साथ दिया।'' दलितों से बेगार लेने की प्रथा समाप्त कर दी गई

थी। किंतु अभी यह प्रथा चलन में भी। उदाहरणार्थ, ''जून 1978 ई. में देश के 11 राज्यों में एक सर्वेक्षण द्वारा 1.04 लाख बंधुआ मजदूर पहचाने गए। दलितों को घरेलू खर्च तथा विवाह मृत्यु व अन्य सामाजिक एवं धार्मिक संस्कारों को पूरा करने के लिए साहूकारों से ऋण लेना पड़ता था। अनुसूचित जाति और जनजाति के आयुक्त की 21वीं रिपोर्ट के अनुसार अनुसूचित जातियों के आधे से अधिक परिवार ऋण ग्रस्त थे। अनुसूचित जाति एवं जनजाति के आयुक्त की 23वीं रिपोर्ट के अनुसार ग्रामीण इलकों में इन जातियों की सीमांत कृषकों में 75 प्रतिशत से 70 प्रतिशत परिवार कर्ज में डूबे हुए थे। स्वतंत्रता के बाद दलितों के आर्थिक विकास के कार्यक्रम बनाए गए और उन्हें कार्य रूप में परिणत भी किया गया। किंतु उसके परिणाम उतने उत्साहवर्धक नहीं थे जितने होने चाहिए थे। इस कार्य में नौकरशाही व्यवस्था बहुत ही निष्क्रिय थी। केंद्र की बहुत सी नौकरियों में अनुसूचित जातियों, जनजातियों का प्रतिनिधित्व बहुत ही अपर्याप्त था।

स्वतंत्रता के बाद भी दलितों का नौकरियों में प्रतिशत बहुत कम था। आरक्षण के अनुसार दलितों के लिए निर्धारित पदों पर नियुक्त्यां न करके उन्हें खाली रहने दिया गया बल्कि योग्य अभ्यार्थी का अभाव दिखाकर उन पर सवर्णो को नियुक्त करने का प्रयास किया गया। यहाँ तक कि सरकार भी इस दिशा में गंभीर नहीं थी।

राजनीति के नाम पर दलितों के पास अपना कुछ भी नहीं था और जब राजनीति में दलितों ने अपनी भागीदारी शुरू की तथा अपने अधिकारों की मांग की तो उसे उच्च जातियों द्वारा जातिवादी कहा गया। उत्तर प्रदेश व महाराष्ट्र में भारतीय रिपब्लिकन पार्टी या दलित पैंथर निम्न जातियों के संरक्षक के रूप में उभर कर सामने आई। किंतु दलित मत भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के साथ ही बना रहा। भारत में बहुत सी पार्टियाँ थीं और सभी पार्टियाँ दलितों के मत को पाना चाहती थीं। किंतु बाबू जगजीवन राम के कारण दलितों का काफी झुकाव कांग्रेस (ई) की ओर बढ़ने लगा था। बाबू जगजीवन राम के अतिरिक्त और कोई प्रभावशाली दलित नेता नहीं था। और दलितों में राजनीति के प्रति अपनी कोई विशेष सोच-समझ नहीं थी। भारतीय संविधान के अनुसार दलितों को राजनैतिक आधार पर समानता तो प्रदान कर दी गई थी किंतु उसके बाद भी पूरी राजनीति सवर्णो के ही हाथ में थी। इस समय दलित विरोधी राजनीति उभरी हुई थी जिसने अम्बेडकर विरोधी चेतना का विकास किया। इसका उद्देश्य निश्चित रूप

से परिवर्तनकारी (रेडिकल) दलित आंदोलन को रोकना था जो हिंदुत्व को बनाए रखने वाला गांधीवादी नेतृत्व था। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने जगजीवन राम को डॉ. अम्बेडकर के समानांतर राजनीति में उतारा था जो पूर्णत: गांधीवादी थे। इससे दलित राजनीति कांग्रेस का वोट बैंक बनकर रह गई और जगजीवन राम के साथ दलित वोट बना रहा।

सन्दर्भ :

1. परलुकर, वी.बी. : सलेक्शन फ्रॉम रेकर्डस ऑफ दी गवरमेंट ऑफ बंबई, खण्ड– 1, एशिया पब्लिशिंग हाउस, बंबई,
2. वसु, वी.डी. : ईस्ट इंडिया कंपनी के नियम के तहत भारत में शिक्षा का इतिहास, दिल्ली,
3. कबीर, एच. : नवीन भारत में शिक्षा, न्यूयार्क जॉर्ज एलेन और अनिविन, 1952.
4. श्रीनिवास, एम.एन. : आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन : वर्कले कॉली फोर्निया विश्वविद्यालय प्रेस, 1966.
5. शर्मा, रामशरण : शूद्रों का प्राचीन इतिहास, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पेपर बैंक संस्करण, 1992.
6. लाल, ए.के. : पॉलिटिक्स ऑफ प्रोवटी, ए स्टडी ऑफ बाउन्डेउ लेबर चेतना पब्लिकेशन, 1977.
7. गोयल, बी.एस. : डेवलपमेंट ऑफ एजुकेशन इन ब्रिटिश इंडिया, 1905–1929, पी.एच.डी. थेसिस, दिल्ली, वि.वि., 1969.
8. सिन्हा, अरुण : द अवेकनिंग इन भोजपुर – समीर सेन एवं अन्य (संपादित) नक्सलवारी एण्ड आफ्टर, कथा शिल्प, कलकत्ता, 1978.
9. वाटर्स, टी : ऑन युयान च्वांगस् टैवल्स इन इंडिया, टी रीज डेविडस तथा एस.डब्लू. बुशेल (सं.) 2 जिल्दे लंदन 1904:051.
10. वासुदेव उपाध्याय : सोसियो रिलीजियस कंडीशंस ऑफ नार्थ इंडिया (700–1200 ए.डी.), वाराणसी, 1964.

***

पशुयाग का संक्षिप्त परिचय

पंकज पाण्डेय *

''पशुना इज्या पश्विज्या'' जिस याग का सम्पादन पशु के द्वारा होता है, उसको पशुयाग कहते हैं। अब विचारणीय है कि याग और होम में क्या अन्तर है। ''यजति जुहोतीना को विशेषः? आचार्य कात्यायन के द्वारा पुष्ट होता है। ''तिष्ठद्धोमावषट्कार प्रदानायाज्या पुरोनुवाक्यावन्तोयजतयः'' उपविष्टहोमाः स्वाहाकार प्रदाना जुहोतमः'' श्रौत सूत्र के अनुसार याग में खड़ा होकर आहुति दिया जाता है। होता संज्ञक ऋत्विज जब वौषट्'' बोलता है तो अध्वर्यु संज्ञक ऋतिवज आहुति आहवनीयकुण्ड में प्रक्षेप करता है। एक देवता को बुलाने के लिए – जिस मन्त्र का प्रयोग है। उस मन्त्र की संज्ञा पुरोनुवाक्या हैं तथा जिस मन्त्र के द्वारा आहुति प्रदान की जाती है उसे याज्या कहते हैं तथा –

चतुर्भिश्च चतुर्भिश्च द्वाभ्यां पंचभिरेव।
हूयते च पुनर्द्वाभ्यां तस्मै यज्ञात्मने नमः।।
अनुब्रू३हि ओश्रावय अस्तु श्रौ३षट्'' यज।

ये यजामहे, बौ३षट्, इन शब्दों का प्रयोग याग पद वाच्य कर्मकाण्ड में होता है। यह यज्ञ का संक्षिप्त स्वरूप हुआ अब हमें यज्ञ का यजमान कौन बन सकता है इस विषय पर विचार करना आवश्यक है।'' हमकों बिना किसी तर्क के वर्णाश्रम मर्यादा के जितने भी विधि निषेध हैं उनको सांगोपांग मानकर शिरोधार्य करके ही हम यजमान शब्द पर विचार करते हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, त्रैवर्णिको को ही वेदाध्ययन में अधिकार प्राप्त है। ब्रह्मचर्य आश्रम के नियमों का पालन करते हुए अध्ययन समाप्त करने के बाद समावर्तन संस्कार करके विवाह काल में, आवराथ्याग्नि का ग्रहण करने के बाद ही श्रौताग्नि ग्रहण करने का नियम है उसके पहले आवसथ्याग्नि के नियम के विषय में पारस्कर गृह्यसूत्र में कहा गया है। आवसथ्याधानं दार काले दायाद्य काल वा एकेषाम् अथवा दायाद्य काले (पितृधन के विभाजन) के बाद आवसथ्याधान होता है। इस अग्नि को गृह्याग्नि भी कहते हैं। इसलिए आवसथ्य अग्नि ग्रहण करने के पश्चात्–सप्तपाक संस्थाओं का सम्पादन कर सकते हैं। **''सप्त पाक संस्था–औपासन होम, दैश्वदेव होम, पार्वण विधि, अष्टका, पिण्ड पितृयज्ञ, श्रवणाकर्म, शूलगव''** इत्यादि गृह्य सूत्रोक्त कर्मकाण्ड का सम्पादन आवासथ्य अग्नि में ही होता है। इसी अग्नि पर यजमान का भोजन भी बनता है यदि संयोगवश यजमान की मृत्यु हो जाती है तो, उसके पार्थिव शरीर का दाह संस्कार भी उसी औपासन अग्नि में किया जायेगा।

---

* शोध छात्र, वेद विभाग, सं.सं.वि.वि., वाराणसी।

यहाँ तक स्मार्ताधान की परिचर्चा हुई। अब श्रौत यागों का अनुष्ठान करने के लिये श्रौताधान लेना अतीव आवश्यक है। श्रौताग्नि लेने के बाद श्रौत याग करने का अधिकारी यजमान के हृदय में यदि पूर्ण श्रद्धा एवं दृढ़ विश्वास हर प्रकार के कष्ट सहन करने की शक्ति कौटुम्बिक अनुकूलता, राज्याश्रय, राज्य मान्यता पुत्रवत्ता कलत्र की अनुकूलता प्रभृति साधन–पूर्ण रूप में न हो तो वह श्रौत याग कर ही नहीं सकता उसका कारण यह है कि यह कोई नौकरी नहीं है कि, आज अधिकारी से पटरी बैठ रही है तो नौकरी कर रहे हैं और कल न पटी तो नौकरी छोड़ दी, यह तो श्रौत ही है। जिस दिन वह श्रौताग्नि का परिग्रह करता है। उसी दिन से सर्वात्मना श्रौत का हो जाता है। उसे प्रातःकाल और सायंकाल अग्निहोत्र हवन मध्याह्न में वैश्वदेव और शेष समय में अग्नि संरक्षण कार्य स्वं करना पड़ता है। प्रतिपक्ष दर्शपौर्णमास याग यथा समय आग्रहायण याग, प्रत्येक तीन महीने पर चातुर्मास्य याग के पर्व का अनुष्ठान प्रति अयनारम्भ पर निरूढ़ पशुबन्ध याग और प्रत्येक बसन्त ऋतु में सोमयाग करना आवश्यक है। ये हुए नित्ययाग, इसके सिवाय नैमित्तिक और काम्य याग भी वह करता है जो उसकी इच्छा अनुकूलता और आवश्यकता पर निर्भर है। उसे रात्रि के समय अग्निहोत्र शाला में रहकर अग्नि का संरक्षण करना पड़ता है। यह कोई लौकिक अग्नि तो है नहीं जिसके शान्त होने पर दूसरे अग्नि से काम लिया जा सके इसके शान्त होने पर तो आगे के सब अनुष्ठान रूक जाते हैं। उसी समय अरणी के द्वारा अग्नि मन्थन करना अनिवार्य हो जाता है। अग्नि मन्थन करना साधारण–सा काम नहीं है। इस कार्य के स्वयं परिश्रम करने पर भी अन्य कई सहायकों की आवश्यकता होती है। इतना होने पर भी कभी–कभी तो यह देखा गया है कि अनेक प्रहर और दिन बीत जाते है और अग्नि प्रकट नहीं होती। अग्निहोत्री तो नियम से बँधा हुआ है। उसे सब तक उसी अग्नि मन्थन कार्य में लगे रहना पड़ेगा जब तक अग्नि प्रकट न हो। प्रकट होने पर ही निश्चित समय पर उसका आगे का कृत्य हो सकता है, अन्यथा नहीं। इसलिए सर्वप्रथम अग्नि संरक्षण परमावश्यक है। यह नियम स्मार्त एवं श्रौत्राग्निन ग्रहण करने वाले यजमान के लिए है। अब पशु याग के विषय में चर्चा करते हैं। पशुयाग का अनुष्ठान प्रतिवर्ष वर्षा ऋतु में करना चाहिए। श्रावण और भाद्रपद मास के चार पर्वों में से किसी एक पर्व के दिन इसे करना विहित है अथवा अयनारम्भ के दिन भी इसे कर सकते हैं। एक वर्ष में दक्षिणायन और उत्तरायण संज्ञक दो अयन होते हैं। इन दो में से किसी एक अयनारम्भ के दिन इसका अनुष्ठान एक बार करना चाहिए यह इष्टि और यज्ञ उभयात्मक है। यदि आहिताग्नि का यह प्रथम याग हो तो मातृ पूजन, आभ्युदयिक श्राद्ध करना चाहिए, प्रातःकाल सूर्योदय से पूर्व इसका प्रारम्भ करना चाहिए यजमान संकल्प करके ऋत्विजों का वरण करें। वरण के अनन्तर यथाशक्ति उनका अर्चन करें। आहवनीय और दक्षिणाग्नि पर अग्नि का उद्धरण करें। यूप लेने जाने से पूर्व आज्य से आहवनीय में आहुति करें। पलाश वृक्ष को

सर्वाधिकार कर एक या चार अरत्नि का यूप बनावे और उत्तर वेदि से पूर्व में यूप गाड़ने के लिए एक गड्ढा खोदे यह गड्ढा यूप के पंचमांश जितना गहरा होना चाहिए। गड्ढे में जल से प्रोक्षण करके दर्भ बिछावे, हवन से बचे हुए आज्य को यूप में लगावे, चषाल में आज्य लगाकर यूप में पहनावें यूप काटने के समय से सुरक्षित प्रथम शकल को गर्त में छोड़े, यूप को खड़ा करें, गड्ढे में मिट्टी छोड़कर मैत्रावरुण दण्ड से भूमि को सम करे, यूप में तेहरी डोरी बाँधे, उसमें स्वरू खोंसे, शास्त्र सम्मत एवं पशु लक्षणों से युक्त छाग को लाकर यूप के पूर्व में उपस्थित करें, अरणी से अग्निमन्थन करके उत्तर वेदि पर अग्नि स्थापन करें। पशु उपाकरण–पशु के सींग से डोरी बाँधकर यूप में बाँधे, पशु का प्रोक्षण करके पोक्षणी का जल पिलावे पशु के हृदय पर प्रोक्षणी का जल छिड़कें। उत्तर वेदि के पश्चिम में बैठकर होता को बुलावें इध्म प्रैष और प्रयाज याग तक का कृत्य करें– दसवाँ प्रयाजयाग हो जाने पर प्रैष देकर प्रतिप्रस्थाता से शस्त्र मँगावें शस्त्र और स्वरू दोनों जुहू पर रखकर पशु के ललाट पर उनसे स्पर्श करें अध्वर्यु शमिता को शस्त्र दे। आग्नीध मिट्टी के पात्र में अग्नि ले पशुआज्य शामित्र स्थान, यूप, चात्वाल और आहवनीय अग्नि को लिये हुए परिक्रमा करें। **शामित्रशाला गमन**= आग्नीध्र में लिये हुए अग्नि को आहवनीय में छोड़कर पुनः आहवनीय में से अग्नि को लिये हुए शामित्रशाला के समीप जाये–आग्नीध्र के पीछे पशु की डोरी पकड़ कर शमिता चले– वपाश्रपणी से पशु का स्पर्श किये हुए प्रतिप्रस्थाता चले–प्रति प्रस्थाता के पीछे अध्वर्यु और उसके पीछे यजमान इस प्रकार सब लोग शामित्र शाला में जायें शामित्रशाला में जाने से पूर्व अध्वर्यू वेदि में से दो दर्भ उठावें और अधिग संज्ञक प्रैष करें – प्रैष के अनुसार होता अधिगु पाठ करें। अध्वर्यु शामित्रशाला में पशु के संज्ञपन के स्थान पर दर्भ रखें, शमिता को छोड़कर शेष लोग शामित्रशाला से बाहर जायें। बाहर आकर देव यजन में बैठें। पशु के संज्ञपन के समय शमिता को छोड़कर अन्य कोई भी व्यक्ति शामित्रशाला में न रहे और संज्ञपन कृत्य को न देखें अध्वर्यु देवता निमित्तक परिपशव्याहुति करे।

संज्ञपन प्रकार – शामित्रशाला में अध्वर्यु द्वारा रखे हुए दर्भ पर शमिता पशु को लेटावे, पशु का सिर पश्चिम की ओर पैर उत्तर की ओर रहने चाहिए। शमिता शास्त्रोक्त विधि से संज्ञपन कृत्य सम्पादित करे। संज्ञपन के समय पशु का शब्द न होना चाहिए। शमिता संज्ञपन कार्य सम्पन्न होने के अनन्तर अध्वर्यु को इसकी सूचना दें, अध्वर्यु नेष्टा को पशुशोधन के निमित्त पत्नी को ले आने का प्रैष करे, नेष्टा के कथनानुसार पत्नी शाला से पत्नी शामित्र शाला में आवे, पत्नी को लाते हुए नेष्टा पत्नी से मन्त्र वाचन करावे, पत्नी अपने साथ पान्नेजनी लेती आवे, पत्नी शामित्रशाला में पशु के निकट उदङ्मुखी बैठ कर पशु के मुख, नासिका, नेत्र, कान, नाभि, मेढ्र, पायु और पैरों को समन्त्रक जल छिड़के। अध्वर्यु पशु की नाभि को ऊपर करे पशु की नाभि प्रदेश के पास एक दर्भ रखें। दर्भ सहित पशु की त्वचा का छेदन करें।

दर्भ को पशु के रक्त में डुबोकर राक्षसों के निमित्त उत्कर में छोड़ दें। अनन्तर पशु की वपा निकाले। वपा को वपाश्रपणी पर फैलाकार प्रतिप्रस्थाता को दे। प्रतिप्रस्थाता चात्वाल पर वपा का प्रक्षालन करके शामित्र के अग्नि पर तपावे। अध्वुर्य वपा पर आज्य का अभिघार करे। जुह्वा में सुवर्ण खण्ड रखकर वपा रखे ऊपर से पुनः सुवर्ण खण्ड रखें। आश्रावण–प्रत्याश्रावणपूर्वक मैत्रा वरुण को मन्त्र पाठ का प्रैष करे, मैत्रा वरुण होता को प्रैष करे। वपायाग के अनन्तर वपाश्रपणी को आहवनीय के अग्नि पर छोड़ दें। ऋत्विजो सहित यजमान चात्वाल के निकट मार्जन करे।

पशु पुरोडाश – जिस देवता के निमित्त पशु होता है, उसी के निमित्त पिष्ट का पुरोडाश भी बनाया जाता है। यहाँ एक ऐन्द्राग्नि पुरोडाश पशु होने पर ऐन्द्राग्नि द्वादश कपाल पुरोडाश तैयार करना चाहिए।

अंनिष्कासन – शामित्रशाला में पशु के शरीर में से याग के निमित्त शमिता निम्नांकित अंगों को निकाले। ये अंग टूटने नहीं चाहिए, अपितु अखण्ड ही निकलने चाहिए। इन अंगों में वपा का परिचय पहले दिया जा चुका है। शेष अंगों का परिचय इस प्रकार है –

1. हृदय = आम फल के आकार जैसा
2. जिह्वा = रसना
3. क्रोड = वक्षस्थल
4. सव्यसक्थिपूर्वनडकम् = वामांस के निकट की प्रथम नलिका

5–6 पार्श्व= दोनों ओर की तेरह–तेरह पसलियों से सम्बद्ध,

7. यकृत = दक्षिण पार्श्वस्थ पित्ताधार स्वरूप
8. वृक्क
9. गुर्दा
10. गुद=मल प्रवहण
11. दक्षिण श्रोणि=दक्षिण कटि

इन उपर्युक्त ग्यारह अंगों के अवदान जुहू में रखे जाते हैं। एतदर्थ इन्हें जौहव अंग भी कहते है। ये ही प्रधान याग के उपयोगी हैं।

औपभृत अंग –

1. दक्षिण सक्थि पूर्वनङ्क= दक्षिणांस के निकट की प्रथम नलिका।
2. गुद तृतीयाणिष्ठम् = गुद का तृतीय सूक्ष्म भाग।
3. सव्य श्रोणिः – वामकटि

इन उपर्युक्त अंगों के अवदान उपभृत में रखने चाहिए। स्विष्टकृत याग में इनका उपयोग किया जाता है।

अन्य अवदान के अंग –

1. वर्षिष्ठ = गुद का स्थूल भाग उपयढ्ढोम में इसका उपयोग होता है।
2. वनिष्ठु = स्थूल अन्त्र। यह अपानरन्ध्र से सटा हुआ होता है। यह आग्नीघ्र को दिया जाता है।
3. जाघनी = पुच्छकाण्ड। इसका उपयोग पत्नीसंयाज में होता है।

4. क्लोम = फुफ्फुस। यह ब्रह्मा को दिया जाता है।
5. प्लीहा = शुक्तिकाकार। यह यजमान को दिया जाता है।
6. अध्यूध्नी = नलिका। यह होता को दी जाती है।
7. पुरीतत् = हृदयावरक। यह अध्वर्यु को दिया जाता है।

पशुबन्धयाग में उपर्युक्त क्लोम, प्लीहा, अध्यूध्नी और पुरीतत् का पशु शरीर में से ग्रहण वैकल्पिक है। ऐन्द्राग्नी याग में इसका ग्रहण निषिद्ध है। इस प्रकार जहाँ जितने पशु हों उनके अंग शेष अंश निष्कासन का यही क्रम समझना चाहिए। अंग निकालने का कार्य हो जाने पर ऊवध्य में छोड़ देना चाहिए। तदन्तर रक्त को भी राक्षसों के निमित्त ऊवध्य में छोड़ दें। हृदय को शूल में खोंसकर शामित्र के अग्नि पर तपावे। उखा में पानी भरकर अग्नि पर रखें। उसमें अंगों को छोड़कर अधिश्रृत करें।

शामित्रानुशासन – उखा में अंगों को छोड़ने के अनन्तर अध्वर्यु शमिता को निम्नांकित आदेश करें। अध्वर्यु–आँच पर रखे हुए अंगों में पकाते हुए तीन उबाल आवे। अनन्तर शूल में से हृदय को निकालकर उपा को अन्य अंगों के ऊपर रखना। शूल को जमीन पर न रखना। हवि का पाक सम्पन्न हुआ पूछने पर यदि पका हो तो केवल ''श्रृतम्'' शब्द का प्रयोग करना। न पका हो तो ''हे भगवन् इदानीमपि न श्रृतम्'' यह कहना। अनन्तर अध्वर्यु शमिता से प्रश्न करें। शमिता द्वारा ''श्रृतम् उत्तर न मिलने पर अध्वर्यु तद् देवानाम्'' कहे। अध्वर्यु पृषदाज्य से अंगों पर अभिधार करे। उखा को जमीन पर रखें। उखा से ऊपर की ओर तैरती हुई वसा को पात्र में निकाले। वशपात्र में अंगों को निकालकर रखें। अंगों पर प्राणदान (अभिघार) करे। अंगपात्रों को लाकर वेदि में आसादित करें। प्रतिप्रस्थाता अंगों का अवदान करते हुए मैत्रावरुण को प्रैष करें।

अंगावदान का विभाग – अंगों के अवदान कई प्रकार से विभक्त होते हैं। कुछ अंगों के अवदान संख्या में अधिक होते हैं और कुछ के कम। विशिष्ट यागों में इनकी न्यूनाधिकता भी कही है। कुछ का अवदान बाद में किया जायेगा। यहाँ उनका स्वरूप मात्र उपस्थित किया गया है। प्रतिप्रस्थाता अवदान करके अध्वर्यु को देता है और अध्वर्यु यथाविधि उन्हें पात्रों में रखता है। अवदान को सुवर्णखण्ड से सम्पुटित करना चाहिए।

अंगवदान विधि – अंगों के अवदान सावधानी से करना चाहिए। इनमें प्रधानरूप से जुहू में रखे जाने वाले अंगों के अवदान जौहव और उपभृत में रखे जाने वाले औपभृत कहे जाते हैं। तदितर अंगों के अवदान अन्यावदान संज्ञक समझने चाहिए। कुछ का सम्मर्शन किया जाता है।

ऐन्द्राग्न पशु का प्रधान याग – अध्वर्यु पुरोनुवाक्यापाठ करने के लिए होता को प्रैष देता है। पुनः जुहोति स्थान से प्रतिस्थाता वसा होम करता है। याज्यापाठ के बाद अध्वर्यु पृषदाज्य से प्रधान याग का सम्पादन करता है। उपभृद् में लिए हुए अवदान को जुहू में ले स्विष्ट कृत् करता है। वसा शेष से दिग् व्याघारण करता है। स्पर्श करके उडा भाग सम्पादित करके जाघनी

(अज पुच्छ से) पत्नी संयाज करके याग सम्बन्धी अवशिष्ट कर्मकाण्ड समाप्त करते हैं।

हमारा प्राचीन साहित्य पूरी तरह इस विषय का पोषक है। श्रौत यागों के द्वारा ही सृष्टि नियन्त्रित रहती है, क्योंकि प्राणी मात्र को खाद्य पदार्थ की आवश्यकता है। मानव के लिए अन्न की आवश्यकता है। अन्न की उत्पत्ति वृष्टि, भूमि, वायु, आतप (धर्म) और बीज से होती है। वृष्टि बादलों से होती है। मेघ निर्माण में धूम की आवश्यकता है। यहाँ धूम कहने से आधुनिक चिमनियों का धूम नहीं अपितु श्रौत स्मार्त याग का धूम अपेक्षित है। गीता में भगवान् कृष्ण कहते हैं –

अन्नाद् भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्न सम्भवः।
यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञःकर्म समुद्भवः।।

चक्रवर्ती सम्राट अश्वमेघ याग करके जिस पुण्य को प्राप्त करता है। उसी पुण्य को ब्राह्मण यजमान पशुयाग के द्वारा प्राप्त करता है।

''यावन्तमश्वमेधेनेष्ट्वा लोकं जयति तावन्त मेतेन जयति''

– (शतपथ ब्राह्मण)

***

भारत-मालद्वीव संबंधों का एक सुक्ष्मावलोकन

डॉ. एन.के. सोमानी *

मालदीव हिन्द महासागर में स्थित एक द्वीपिय देश है। जो मूंगे के आकार के छोटे–छोट द्वीपों से बना हुआ टापुओं का एक समुदाय है। इस समुदाय में 1192 द्वीप शामिल है, इनमें से केवल दो सो द्वीपों पर ही लोग बसे हुए हैं। शेष द्वीपों का उपयोग पर्यटन या कृषि के लिए किया जाता है। जो उत्तर–दक्षिण दिशा के बराबर 26 प्रवाल द्वीपों की दोहरी चेन के रूप में संगठित है। यह द्वीप इतने इतने छोटे है कि विश्व के कई मानचित्रों में मालदीव नजर ही नहीं आता। इसका क्षेत्रफल 90,000 वर्ग किलोमीटर है। साल 2018 तक मालदीव की जनसंख्या लगभग 5.16 लाख थी। क्षेत्रफल और जनसंख्या दोनों ही दृष्टि से मालदीव दक्षिण एशिया का सबसे छोटा देश है। इसकी समुद्रतल से औसत ऊंचाई 1.5 मीटर है। यह दुनिया का ऐसा इकलौता देश है, जो समुद्र तल की सबसे कम ऊंचाई वाले धरातल पर स्थित है।

मालदीव का इतिहास : कुछ विचारकों का मनना है कि मालदीव नाम संस्कृत के शब्द मॉलाद्विपा (द्वीपों का हार) से उत्पन्न हुआ हैं।[1] हालांकि किसी भी प्राचीन साहित्य में मालदीव शब्द का कोई उल्लेख नहीं मिलता है, परन्तु वैदिक समय में पारम्पररिक संस्कृत अवतरण 'सौ हजार द्वीप' (लक्शाद्वीपा) के बारे में चर्चा जरूर मिलती है। दरअसल, 'सौ हजार द्वीप' द्वीपों का अर्थ द्वीपों के एक ऐसे वर्ग समूह से लिया गया जिसमें एक साथ कई द्वीप शामिल हो।[2] मालदीव की भाषाई और सांस्कृतिक परम्परा तथा रीति –रिवाज के तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर कहा जा सकता है कि इस द्वीप पर सबसे पहले द्रविड़ जाति के लोगों ने आकर रहना शुरू किया। ऐतिहासिक तथ्यों से इस बात की भी पुष्टि होती है कि यहां आने से पहले द्रविड लोग केरल के दक्षिण–पश्चिम तट पर मछुवारों के रूप में निवास करते थे। इस क्षेत्र में इन्हें गिरावारू समुदाय के रूप जाना जाता था, जिन्हें प्राचीन तमिलों का वंशज भी कहा जाता है। ऐसा भी अनुमान है कि समुद्री विप्लव के कारण अक्सर होने वाले जान माल की हानि के कारण तमिलों ने लक्ष्यदीप व उसके आसपास के क्षेत्रों में बसना शुरू कर दिया। यहीं से मालदीव एक द्वीप समूह के रूप में स्थापित हुआ।

मालदीव की प्रारंभिक सभ्यता के अवशेषों का अध्ययन करने वाले सीलोन देशीय सर्विस के एक ब्रिटिश अधिकारी एच.सी.पी. बेल के अनुसार प्राचीन मालदीव के लोग थेरावदा (बौद्ध) धर्म को मानते थे। इस संबंध में कई पुरातात्विक अवशेष आज भी राजधानी माले के संग्राहलय में सुरक्षित

---

* असिस्टेंट प्रोफेसर, राजनीति-विज्ञान विभाग, एम.जे.जे. गर्ल्स कॉलेज, सूरतगढ

हैं। सम्राट अशोक के शासनकाल के दौरान मालदीव बौद्व धर्म के प्रचार–प्रसार का केन्द्र रहा। 12वीं सदी तक बौद्ध धर्म यहां का प्रमुख धर्म बना रहा। लेकिन बाद में यह धीरे–धीरे मुस्लिम राष्ट्र में बदल गया। मालदीव के संविधान में इस्लाम धर्म के अलावा अन्य किसी भी धर्म को मान्यता या पहचान नहीं है।

मालदीव का आधुनिक इतिहास : ब्रिटिश अधिराज्य (सूवरेन्टी) के पहले मालदीव पुर्तगालियों के अधीन था। उसके बाद मालदीव में डचों ने शासन किया। साल 1776 में सीलोन का शासन अंग्रेजों के हाथ में आ गया फलस्वरूप मालदीव भी ब्रिटिश साम्राज्य का हिस्सा बन गया। सन् 1798 ई. में मालदीव के सुल्तान ने सीलोन के गर्वनर को पत्र को लिखकर यथास्थिति बनाए रखने का आग्रह किया। सन् 1887 में सीलोन के गवर्नर और मालदीव के सुल्तान के बीच हुए समझौते के तहत मालदीव पर ब्रिटिश संप्रभुता को अधिकारिक रूप से स्वीकार कर लिया गया।

1960 से पहले लगभग 8 शताब्दियों तक मालदीव एक सल्तनत रहा है। कालांतर में 26 जुलाई 1965 को कोलबों में ब्रिटिश उच्चायुक्त के निवास पर आयोजित एक समारोह में मालदीव को पूर्ण राजनीतिक स्वतंत्रता देने का समझौता हुआ। इस समझौते पर महामहिम सुल्तान की ओर से इब्राहीम नासिर रंनाबदयी किलेगेफा तथा ब्रिटिश प्रधानमंत्री और महारानी की ओर से सर माइकल वॉकर ने हस्ताक्षर किए। नवबर 1968 में मालदीव पूर्ण गणराज्य के रूप में स्थापित हुआ। ब्रिटिश रॉयल नेवी द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान मालदीव के दक्षिणी द्वीपों का इस्तेमाल अपने सैन्य अड्डे के रूप में करती थी। द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान जापान का सिंगापुर और इंडोनेशिया में बढते प्रभाव के कारण ब्रिटेन ने गन द्वीप पर नौसैनिक अड्डे की स्थापना की। 1965 में मालदीव ब्रिटेन से स्वतंत्र हुआ और इसके बाद साल 1976 में ब्रिटिश सरकार ने **ईस्ट आफ स्वेज पॉलिसी** को ध्यान में रखते हुए ब्रिटिश रॉयल वायु सेना ने इस स्थान को खाली कर दिया। मालदीव की सहमति से अब वहां कई दशकों से भारतीय नौसेना की एक निगरानी चौकी हैं। अतः मालदीव की स्वतंत्रता का वास्तिवक इतिहास यहीं से शुरू होता हैं। बाहरी शक्तियों से स्वयं को सुरक्षित रखने के लिए सन 1987 में मालदीव ने ब्रिटेन के साथ एक समझौता किया, समझौते के तहत ब्रिटेन ने मालदीव को संरक्षण प्रदान किया।[3]

भारत–मालदीव संबंध : मालदीव के साथ भारत के सदियों पुराने व्यापारिक और सांस्कृतिक संबध रहे हैं। घनिष्ठ एवं मैत्रीपूर्ण पड़ौसियों के रूप में भारत और मालदीव के बीच मजबूत जातीय, भाषायी, सांस्कृतिक, धार्मिक एवं वाणिज्यिक संबंध है। यह भारत के लक्ष्यद्वीप समूह से महज 700 किमी दूर है।[4] मालदीव हिन्द महासागर में स्थित डियागोगार्सिया केवल 240 मील दूर स्थित है, जिसके कारण हिन्द महासागर की वर्तमान राजनीति में सामरिक रूप से मालदीव का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है।[5] मालदीव में सिंहली,

भारतीय आर्य एवं द्रवड़ि जाति कि लोग भी निवास करते है। इसकी राजधानी माले है। मालदीव की मुद्रा का नाम मालदीवियन रूफिया है। मालदीव की 60 प्रतिशत से अधिक जनसंख्या मत्सय उद्योग से जूडी हुई है।[6]

मालदीव फारस की खाड़ी, अदन की खाड़ी और मलक्का जलडमरू जैसे महत्वपूर्ण अंतराष्ट्रीय समुद्री जलमार्गो के निकट स्थित है। यही से चीन, जापान, दक्षिण कोरिया और भारत जैसे देशों को ऊर्जा की आपूर्ति होती है। भारत का करीब 95 फीसदी अंतरराष्ट्रीय व्यापार हिन्द महासागर के द्वारा ही होता है।[7] मालदीव एक ऐसे समुद्री मार्ग के बीच स्थित है जहां से दुनिया का दो–तिहाई तेल और मालवाहक जहाजों का आधा हिस्स गुजरता हैं। सच तो यह है कि मालदीव हिंद महासागर क्षेत्र में ऐसी जगह अवस्थित है, जहां वह भारत के इर्दगिर्द महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। भूतपूर्व प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपयी ने कहा था कि हम मित्र तो बदल सकते हैं, पड़ौसी नहीं। यह वक्तव्य मालदीव के महत्व को व्यक्त करता हैं।

साल 1965 में जब मालदीव ब्रिटिश आधिपत्य से मुक्त हुआ तो भारत दुनिया का पहला देश था जिसने इसे मान्यता प्रदान की। मालदीव में करीब 25000 भारतीय निवास करते हैं। यह मालदीव का दूसरा सबसे बड़ा विदेशी समुदाय है। मालदीव के पर्यटन उद्योग में भारत हर साल करीब छह फीसदी का योगदान करता हैं। 1966 में भारत ने मालदीव के साथ औपचारिक राजनयिक संबंध स्थापित किए। सही अर्थों में भारत–मालदीव के बीच राजनयिक संबंधों की शुरूआत साल 1972 में उस वक्त हुई जब भारत ने मालदीव में अपना दुतावास शुरू किया। भारत–मालदीव संबंधों को अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से निम्न चरणों में विभाजित किया जा सकता है।

प्रथम चरण (1972 से 1982 तक) : मालदीव के लिए भू–रणनीतिक दृष्टि से भूमिबंद्ध स्थिति जोखिम का एक बडा कारण है, जो हिंद महासागर के सैन्यीकरण तथा 1970 और 1980 के दशक में महाशक्तियों के बीच बढती प्रतिद्वंद्विता के चलते उच्च हो गया।[8] बाहरी शक्तियों के हस्तक्षेप के इसी भय के चलते मालदीव सन 1965 में ब्रिटिश उपनिवेश से आजाद होते ही भारत के साथ राजनयिक संबंधों में बंध गया। एक कमजोर और छोटा देश होने के नाते मालदीव आज भी भारत को अपनी सुरक्षा का महत्वपूर्ण स्रोत मानता है। दूसरी ओर भारत ने मालदीव द्वारा 1970 के दशक में अपनाई गई **'इंडिया फर्स्ट पॉलिसी'** का सम्मान करते हुए अपनी विदेश नीति में मालदीव को अहम स्थान दिया है।

सन 1976 में दोनों देशों ने **मध्य रेखा सिद्वात** को अपनाकर अपनी समुद्री सीमा को निर्धारित करने के लिए एक समझौता किया, जो उनके आपसी संबंधों को उल्लेखनीय तरीके से स्पष्ट करता हैं।[9] साल 1981 में भारत और मालदीव ने अपने आर्थिक ओर वाणिज्यिक संबंधों को नई

ऊंचाईया देने के लिए आवश्यक वस्तुओं के निर्यात से संबंधित एक अन्य समझौते पर हस्ताक्षर किए। बहुत छोटी शुरूआत के साथ लगातार आगे बढते हुए आज दोनों देश के बीच आज 700 करोड़ रूपये से अधिक का द्विपक्षीय व्यापार है।

द्वितीय चरण (1982 से 2002 तक): जुलाई 1982 में भारत–मालदीव संबंधों में उस वक्त तनाव उत्पन्न हो गया था, जब मालदीव के तत्कालीन राष्ट्रपति अब्दुल गयूम के भाई ने दावा कि भारत के लक्ष्यद्वीप का मिनिकाय द्वीप मालदीव का हिस्सा है। भारत सरकार की कड़ी आपत्ति के बाद मालदीव ने मिनिकाय द्वीप से अपना दावा वापिस लेकर तनाव को बढने से रोक लिया। पिछले कुछ वर्षो में भारत ने मालदीव को बड़े पैमाने पर सहयोग एवं सहायता देकर उसके अवसंरचना के विकास में बड़ी भूमिका निभाई है। साल 1986 में दोनों देशों के बीच पांच साल के आर्थिक एवं तकनीकी सहयोग समझौते पर हस्ताक्षर किए गए। इस समझौते के तहत भारत ने मालदीव में आर्थिक, तकनीकी और वाणिज्यिक सहायता का विस्तार किया।

साल 1988 में जब अब्दुल्ला लुतूफी नाम के विद्रोही नेता ने श्रीलंकाई विद्रोहियों की मदद से राष्ट्रपति मौमून अब्दुल गयूम को सत्ता से बेदखल करने की कार्रवाई की तो मालदीव ने भारत और अमेरिका सहित अंतरराष्ट्रीय समुदाय से मदद की गुहार लगाई। उस वक्त भारत की राजीव गांधी सरकार ने **'ऑपरेशन कैक्टस'** के तहत विद्रोहियों का सफाया कर गयूम सरकार की मदद की। भारत के इस सहयोग के लिए मालदीव ने अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भारत का आभार जताया।

जनवरी 1990 में माले में संपन्न भारत–मालदीव संयुक्त आयोग की पहली बैठक में भारत ने ग्रीन हाउस प्रभाव की रोकथाम करने तथा वहां के विदेश विभाग के कार्यालय हेतू सिविल सेवकों को प्रशिक्षण देने पर सहमति वक्त की। नवबंर 1990 में भारत के तत्कालीन प्रधानमंत्री चन्द्रशेखर सार्क के पांचवें शिखर सम्मेलन में भाग लेने के लिए दो दिन की यात्रा पर मालदीव गए। इसके बाद मई 1997 में तत्कालीन प्रधानमंत्री इन्द्रकुमार गुजराल ने मालदीव की यात्रा की। उन्होंने माले में आयोजित सार्क की नौंवी शिखर बैठक में भाग लिया तथा गुजराल सिद्वांत के आधार पर दोनों राष्ट्रों ने सहयोग के अनेक क्षेत्रों पर सहमति जतायी।

तृतीय चरण (2002 से 2012 तक): इतिहास इस बात का गवाह है कि जब भी मालदीव पर कोई प्राकृतिक आपदा या मानवीय विपदा आई है, भारत बिना वक्त गवाएं मालदीव की मदद के लिए उपस्थित हुआ है। 26 दिसंबर 2004 को आए विनाशकारी समुद्री तुफान सुनामी के कारण मालदीव को बड़ी क्षति उठानी पड़ी। एक अनुमान के अनुसार मालदीव को 400 मिलियन डॉलर का नुकसान हुआ जो उसकी कुल जीडीपी का 62 फीसदी से अधिक था। तुफान में 108 लोग मारे गए थे। उस वक्त भारत दुनिया का पहला

देश था जिसने मालदीव को भौतिक सहायता के अलावा 37 करोड़ रूपये की वितीय मदद प्रदान की थी।

साल 2006 में भारत ने मालदीव में आतंकवादियों और समुद्री लुटेरों के खिलाफ कार्रवाई के लिए हवाई जहाज आईएनएस तिलानचैंग उपलब्ध कराया था।[10] इसी प्रकार साल 2007 में समुद्री ज्वार से हुए नुकसान से उबरने के लिए भारत ने मालदीव को 10 करोड रूपये की सहायता राशि पहुंचाई। भारत के विदेशी इन्फ्रास्ट्रेक्चर अलांयस को मालदीव में 485 घरों के निर्माण का ठेका दिया है।

7 अगस्त 2008 को मालदीव में नया संविधान लागु होने के बाद बहुदलीय राष्ट्रपति के निर्वाचन का मार्ग खुला। संविधान लागु होने के बाद हुए चुनाव में लोकतांत्रिक पार्टी के मोहम्मद नशीद राष्ट्रपति निर्वाचित हुए। राष्ट्रपति नशीद के शपथ ग्रहण समारोह में भाग लेने के लिए भारत के उपराष्ट्रपति हामिद अंसारी ने 11 नवंबर 2008 को मालदीव की यात्रा।[11]

दिसंबर 2008 में नवनिर्वाचित राष्ट्रपति मोहम्मद नशीद ने भारत की राष्ट्रपति श्रीमति प्रतिभा देवी सिंह पाटील के निमंत्रण पर 23 से 25 दिसंबर 2008 तक भारत का राजकीय दौरा किया। उनके साथ उनकी पत्नी श्रीमति लैलाअली और एक उच्चस्तरीय व्यावसायिक प्रतिनिधि मंडल भी भारत आया। इस अवसर पर दोनों देश साझे लोकतांत्रिक मूल्यों, आर्थिक विकास तथा अंतरराष्ट्रीय मुददों पर समान विचारों के आधार पर अपने बहुफलकीय संबंधों को और मजबूत करने के लिए सहमत हुए।[12] यात्रा के दौरान उन्होंने प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहनसिंह से समुद्र की ओर से होने वाले हमलों को देखते हुए तटीय सुरक्षा बढाने की आवश्यकता पर बल दिया। इस यात्रा के दौरान दोनों देशों के बीच नागर विमानन क्षेत्रों में द्विपक्षीय सहयोग को बढाने हेतू दो समझौतों पर हस्ताक्षर किये गए।[13] साथ ही भारत ने मालदीव को 15 मिलियन कीमत की इलेक्ट्रोनिक वोटिंग मशीने देने की घोषणा की। भारत ने मालदीव को 100 मिलियन अमेरिकी डॉलर की अतिरिक्त ऋण सुविधा उपलब्ध करवाई। इसमें 50 लाख रूपये भारत से आयात करने के लिए था और बाकी 50 लाख रूपये बजटीय समर्थन के रूप में बढाया गया था।[14] साल 2009–10 में दोनों देशों के बीच व्यापार बढकर 396 करोड़ रूपये हो गया है। भारत की कुछ नीजि कंपनियां जैसे ताज ग्रुप, सुजलोन एनर्जी, जीआरएम इन्फ्रास्ट्रक्चर कंपनी ने 2010 में मालदीव में 25 मेगावाट के सोलर एनर्जी प्रोजेक्ट की स्थापना के लिए हस्ताक्षर किए।[15]

अगस्त 2009 में मालदीव द्वारा उसके एक द्वीप रिजार्ट पर आतंकवादियों के कब्जा किए जाने की आशंका जताए जाने के बाद भारत के रक्षा मंत्री ए.के. एंटनी तीन दिन की यात्रा पर मालदीव गए। यात्रा के दौरान भारत–मालदीव के बीच ग्राउंड रडार नेटवर्क स्थापित करने का समझौता हुआ । इस रडार का सीधा संपर्क भारतीय तट रक्षक कमाड से था। रक्षामंत्री के दौरे के बाद से भारतीय जंगी जहाज और डॉर्नियर विमान

समुद्री गश्त और सर्विलांस में मालदीव की मदद कर रहे हैं। इससे पूर्व भी भारत ने हाइड्रोग्राफिक सर्वे और अन्य सैनिक सहायता मालदीव को दी है।[16] अक्टूबर 2010 में मालदीव के राष्ट्रपति मोहम्मद नशीद राष्ट्रमंडल खेलों के उद्घाटन समारोह में भाग लेने के लिए भारत की यात्रा पर आए।

उच्चतम स्तरों पर नियमित संपर्को से भारत और मालदीव के बीच द्वीपक्षीय संबंध मजबूत हुए हैं। भारत के लगभग सभी प्रधानमंत्रियों ने मालदीव का दौरा किया है। मालदीव के आड्डू शहर में आयोजित सार्क की 17वीं शिखर बैठक (10–11 नवंबर 2011) में भाग लेने के लिए प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह ने मालदीव का दौरा किया। शिखर बैठक से इतर राष्ट्रपति नशीद से वार्ता के दौरान डॉ. मनमोहन सिंह ने मालदीव की सामरिक सुरक्षा और विकास में मदद की बात दोहराई। अक्टूबर 2012 में भारत ने घोषणा की कि माले में एक सुरक्षा अटैच बनाया जायेगा, वहां हेलिकॉप्टरों के साथ मालदीव के सुरक्षा अधिकारियों को प्रशिक्षण भी दिया जायेगा।[17]

चतुर्थ चरण : (2012 से अब तक) : साल 2012 राजनीतिक दृष्टि से मालदीव में उथल–पुथल वाला रहा। भारत समर्थक मोहम्मद नशीद की लोकतांत्रिक ढंग से चुनी हुई सरकार के विरूद्व जब प्रदर्शनों का सिलसिला शुरू हुआ तो नशीद सरकार ने भारत से सहयोग की उम्मीद की। भारत ने नशीद का सहयोग करने के बजाए मोहम्मद वहीद हसन की सरकार को न केवल मान्यता दी बल्कि हर तरह के समर्थन देने का वादा भी किया।[18]

मालदीव में सत्ता परिर्वतन के बाद भारत विरोधी भावनाओं का विस्तार होने लगा। मौजूदा राष्ट्रपति अबदुल्ला यामीन की कार्यशैली पूरी तरह से भारत विरोधी रही है। यामीन के बारे में यहां तक कहा जाता रहा है कि वह अपने देश में भारत की किसी भी तरह की भागीदारी पंसद नहीं करते हैं। यामीन सरकार ने भारतीयों को वर्क परमिट जारी करना बंद कर दिया था जिसकी वजह से वहां उन परियोजनाओं का काम प्रभावित हुआ, जिसमें भारत की भागीदारी थी।[19]

इसी तनाव और विवाद के बीच भारत के तत्कालीन रक्षामंत्री ए.के. एंटनी ने सिंतबर 2012 में तीन दिन की राजकीय यात्रा पर मालदीव गए। यात्रा के दौरान भारत ने मालदीव की राजधानी माले में एक रक्षा अधिकारी की नियुक्ति करने तथा मालदीव के हेलिकाप्टर चालकों और रक्षाकर्मियों को प्रशिक्षण देने का भी फैसला किया। इसके अलावा दोनों देश लक्ष्यदीप के आसपास के समुद्र में डकेती की घटनाएं रोकने हेतू साथ काम करने को राजी हुए। एंटनी ने वहां भारत के सहयोग से बनने वाली मैरीटाइम ट्रेनिंग अकादमी की आधारशिला भी रखी तथा भारत की मदद से बने सैन्य अस्पताल का उद्घाटन किया। इस दौरान भारत ने अपने अत्याधुनिक ध्रुव हैलीकाप्टर की तैनाती दो वर्ष के लिए 2014 तक बढाने का फैसला किया। भारत ने यह हैलीकाप्टर वर्ष 2010 में मालदीव को दिए थे।[20] दिसंबर 2014

में माले के सबसे बडे वाटर ट्रीटमेंट प्लांट के जनरेटर में लगी लाग से उत्पन्न जल संकट से निबटने के लिए मालदीव ने भारत सरकार से मदद की गुहार लगाई। भारत ने तत्काल मदद करते हुए हजारों टन पानी के साथ आईएनएस सुकन्या व आईएनएस दीपक को माले रवाना किया। भारतीय वायु सेना ने भी अपने एयरक्राफ्ट के जरिए सैंकड़ों टन पानी माले पहुंचाया। भारत के इस अभियान को **'ऑपरेशन नीर'** के नाम से जाना जाता है।[21]

इसके अलावा स्वास्थ्य मंत्री जेपी नड्डा ने जुलाई 2015 में मालदीव की स्वतंत्रता के स्वर्णजंयती समारोह मे भाग लेने के लिए प्रधानमंत्री के विशेष दूत के रूप में मालदीव की यात्रा की थी। वही मालदीव की तरफ से विदेशमंत्री दुन्या मॉमून ने फरवरी एवं नवबंर 2015 में भारत का दौरा किया। अप्रेल 2016 में राष्ट्रपति यामीन भारत के दौरे पर आए।

भारत–मालदीव संबंध उस वक्त और अधिक मजबुत हुए जब नवंबर 2018 में भारत के प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी नवनिर्वाचित राष्ट्रपति इब्राहिम मोहम्मद सोलिह के शपथ ग्रहण समारोह में भाग लेने के लिए मालदीव गए। 8 जून 2019 का दिन भी भारत–मालदीव संबंधों के लिए ऐतिहासिक दिन था, जब मालदीव ने भारत के प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी को मालदीव का सर्वोच्च सम्मान '**रूल ऑफ निशान इज्जुद्दीन**' प्रदान किया। इस अवसर पर प्रधानमंत्री मोदी ने राष्ट्रपति इब्राहिम मोहम्मद सोलिह को टीम इंडिया के खिलाड़ियों का हस्ताक्षर किया हुआ बल्ला भेंट किया। पीएम मोदी की इस यात्रा के दौरान भारत ने हाइडोग्राफी, हेल्थ सेक्टर, समुद्री मार्ग से पैसेंजर और कार्गो सेवाएं, कस्टम्स के क्षेत्र में क्षमता निर्माण ओर सिविल सेवा प्रशिक्षिण के क्षेत्र में सहयोग हेतू समझौता किया। दोनों देशों के बीच वाणिज्यिक और असैन्य जहाजों के आवाजाही के बारे में सूचना के आदान प्रदान के लिए व्हाइट शिपिंग इंफॉर्मेशन के विनियम हेतू समझौता हुआ है। यात्रा के दौरान मालदीव और केरल(कोच्चि) के बीच फोर सर्विसेज सेवा शुरू करने पर सहमति के साथ–साथ रूपे कार्ड लॉन्च किया गया। इसके अतिरिक्त भारत ने मालदीव की फ्राइडे मस्जिद के संरक्षण हेतू मदद का ऐलान किया। दुनिया की इकलौती मूंगा पत्थरों से निर्मित इस मस्जिद को मालदीव में हुकुरू मिस्की के नाम से भी जाना जाता है।

भारत और मालदीव के बीच नियमित उच्च स्तरीय वार्ताओं के आदान–प्रदान हेतू भारत के विदेशमंत्री डॉ.एस. जयशंकर और मालदीव के विदेशमंत्री अब्दुल्ला शाहिद के बीच 13 अगस्त 2020 को वचुर्अल बैठक आयोजित हुई। इस बैठक में दोनों देशों के द्विपक्षीय संबंधों की समीक्षा करते हुए कहा गया कि कोविड–19 जैसी वैश्विक महामारी भी दोनों देशों के द्विपक्षीय सहयोग को कम नहीं कर सकी। इस अवसर पर भारतीय विदेश मंत्री ने कहा कि मालदीव कोविड–19 से संबंधित सहयाता पाने वाले सबसे बड़ा लाभार्थी देश है।[22] नवंबर 2020 में भारत के विदेश सचिव

हर्षवर्धन श्रृंगला दो दिन की यात्रा पर मालदीव गए। इस दौरान दोनों देशों के बीच दो सहमति पत्रों पर हस्ताक्षर किए गए। एक समझोता ग्रेटर माले कनेक्टिविटी प्रोजेक्ट के लिए 10 करोड डॉलर के अनुदान के लिए है, तथा दूसरा खेल तथा युवा मामलों में सहयोग से संबंधित है।

निष्कर्षः भारत इस समय मालदीव के साथ लंबे और बेहतर संबंध कायम करने के निर्णायक बिन्दू पर खड़ा है। खास कर चीन के संदर्भ में। सामरिक दृष्टि से मालदीव चीन के लिए भी काफी अहम है। चीन ने उसे अपनी **'डेब्ट टेप डिप्लोमेसी'** में उलझा रखा है। वह अपने कुल ऋण का 60 फीसदी से अधिक चीन से लेता है, जो उसके बजट का 10 प्रतिशत है। एक अनुमान के अनुसार चीन का मालदीव पर 1.4 अरब डॉलर का कर्ज है। इसका अर्थ यह हुआ कि मालदीव के प्रत्येक नागरिक पर चीन का आठ हजार डॉलर का कर्ज बकाया है। साल 2016 में मालदीव ने चीन की एक कंपनी को **फेयदहू–फिनोलहू द्वीप** 50 वर्षों के लिए लीज पर दे दिया था। उपग्रहों के माध्यम से लिए गए चित्र बताते हैं कि चीन ने इस द्वीप की आस–पास की गहराई को पाटते हुए उसका आकार 85 हजार वर्ग मीटर से बढाकर एक लाख वर्गमीटर कर दिया है। उसकी योजना यहां एक सैन्य अड्डे के निर्माण की है। वह इस अड्डे का उपयोग परमाणु पनडुब्बिडयों के संचालन के साथ–साथ भारतीय पनडूब्बियों की जासूसी के लिए भी कर सकता है। हिंद महासागर के इस हिस्से में भारत के पास कोई नौ सैनिक अड्डा नहीं है।[23] निसंदेह, मालदीव में चीन का बढता प्रभाव हिंद महासागर में भारत के सुरक्षा हितों के लिए दीर्घकालिक खतरा बन सकता है। ऐसे में भारत को मालदीव को यह विश्वास दिलाना होगा कि वह **बिग ब्रदर्स सिंड्रोम** की गलतफहमी को त्यागकर इंडिया फर्स्ट की नीति को प्राथमिकता दे। भारत को भी इस बात का ध्यान रखना होगा कि हिंद महासागर क्षेत्र में केवल मालदीव ही ऐसा देश है, जिसके विश्वसनीय होने की उम्मीद भारत कर सकता है। इसलिए एक समृद्ध, लोकतांत्रिक और शांतिपूर्ण मालदीव न केवल भारत बल्कि पूरे क्षेत्र के हित में हैं।

सन्दर्भ :

1. जे. होगनडोर्न और एम. जॉनसन : द शेल मणी ऑफ द स्लेव ट्रेड पृ. सं. 20–22.
2. आप्टे, वामन शिवराम (1985) संस्कृत–अंग्रेजी शब्दकोश, मोतीलाल–बनारसी दास , नई दिल्ली 1985.
3. फडनीस–उर्मिलाः मालदीव वाइन्डस ऑफ चेन्डा इन ऐन एटाल स्टेट : साउथ एशियन पब्लिशर, नई दिल्ली, 1985 पेज 731.)
4. Rajeswari Pillai Rajagopalan, "India's Maldives Headache", The Diplomate, February 23, 2018.
5. उर्मिला–फडनीस एण्ड इलादत्तः मालदीव विण्ड एण्ड चेंज इन एन स्टाल स्टेट पृ. 2

6. उर्मिला–फडनीस एण्ड इलादत्तः मालदीव विण्ड एण्ड चेंज इन एन स्टाल स्टेट पृं. 58
7. Saji Abraham, China"s Role in the Indian Ocean: Its Implications on India"s National Security (Delhi: Vij Books India Pvt. Ltd, 2015), p.39.
8. अंतरराष्ट्रीय राजनीति अवधारणाएं, सिद्धांत तथा मुद्देः संपादन रूमकी बासू
9. अंतरराष्ट्रीय राजनीति अवधारणाएं, सिद्धांत तथा मुद्देः संपादन रूमकी बासू
10. Maldivian ship arrives in Vizag for refit, The Hans India, July 13, 2018
11. अपला,डी (2009) भारत और उसके पड़ोसीःखट्टे–मीठे अनुभव वर्ल्ड फोकस, नवंबर–दिसंबर, पृ. सं. 51
12. विदेश मंत्रालय भारत सरकार, मीडिया सेंटर, दिसबंर 25, 2008)
13. South Asia Cluster – Institute for Defence Studies and Analysis, 28 May, 2009,pp 12-13
14. South Asia Cluster – Institute for Defence Studies and Analysis, 28 May, 2009,pp 12-13
15. Chandramohan, Balaji (2009) " India Maldives and The India Ocean," IDSA Comments, Oct. 13
16. Ministry of External Affairs, Government of India, Annual Report, 2009
17. Kumar, Anannd (2012) "China Engagement with the Maldives: Impact on Security Environment in the Indian Ocean Region", Strategic Analysia, Vol. 36, No. 2, March)
18. Dikshit, Sandeep (2014) "India Hopes to Resolve Situations in Maldives", The Hindu, Feb. 14
19. एन.के. सोमानीः चिंता बढाते पाक–मालदीव संबंधः सच कंहु 14 जुलाई 2018
20. डॉ. आर.के. सिंहः अंतरराष्ट्रीय संबंधः मिश्रा ट्रेडिंग, वाराणासी, पृ. सं. 106.
21. Maldivian crises: Indian Navy's prompt First rsponse, Indian Navy, Dec 07,2014.
22. भारतीय विदेश मंत्रालय, 13 अगस्त 2020.
23. जिसकी हिंद महासागर में चलेगी, एशिया में उसी की तूती बोलेगीः राम यादव : 5 अगस्त 2020, सत्याग्रह।

***

वर्तमान समय में गांधी जी के राजनैतिक सिद्धान्त की प्रासंगिकता

डॉ. कान्तेश कुमार *

समकालीन विश्व समाज में बढ़ते आतंकवाद, हिंसा सामाजिक विषमता, आर्थिक असमानता, साम्प्रदायिकता, बेरोजगारी, पर्यावरण, प्रदूषण, राजनीतिक भ्रष्टाचार और मानवीय मूल्यों के ह्रास के संबंध में गांधी के राजनीतिक सिद्धांतों को देखना दिलचस्प रहेगा। महात्मा गांधी के आदर्श राज्य संबंधी विचार राजनैतिक चिन्तन तथा राजनैतिक दर्शन की एक मौलिक देन है। उनकी आदर्श कल्पना ऐसी राजनैतिक व्यवस्था की थी जिसमें मानव–समाज में सर्वोत्तम रामराज्य की कल्पना साकार हो सके। इसके लिए उन्होने ''अधिकतम से अधितम के कल्याण की जगह'' 'सबका अधिकतम कल्याण' के सिद्धान्त के आधार पर आदर्श राज्य की नींव रखने की बात की। विश्व के सभी वाद–उदारवाद, समाजवाद, अधिनायकवाद और राजतंत्र के प्रयोग के बाद आज संसार को जरूरत महसूस हो रही है कि गाधीवाद का प्रयोग करें। प्रचलित राजनैतिकवाद में समाजवाद मृतप्राय हो चुका है। आज के समय में उदारवाद, भ्रष्टाचार, भाई–भतीजावाद, सांप्रदायिकता, आतंकवाद, क्षेत्रियतावाद और अलगाववाद की समस्या से दुनिया जूझ रही है। आज वक्त आ गया है कि हम गांधी के राजनीतिक सिद्धान्तों को समझे और उसे प्रयोग में लाँए।

विगत बीसवीं शताबदी के राजनीतिक दर्शन में गांधी द्वारा प्रतिपादित गांधीवाद एक नवीन प्रयोग के रूप में माना जाता है, जो भैतिकवादी समाज की आध्यात्मिक विवेचना है। महात्मा गाांधी के राजनीति संबंधी विचारों के लिए गांधीवादी ' राजनीतिक दर्शन', गांधीवादी 'राजनीतिक विचारधारा', गांधीवाद जैसी संज्ञाएँ दी जाती हैं जिनसे यह प्रतीत होता है कि अन्य राजनीतिक दर्शनों की भांति इन्होंने भी राजनीति संबंधी कोई सिद्धांत पंस्तुत किया है। हालाँकि गांधीजी ने प्लेटो, अरस्तु एक्यूनांस अथवा रूसों की भांति कोई राजनीतिक दर्शन प्रस्तुत नहीं किया बल्कि भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के दौरान जो समस्या आयी उनके विषय में उन्होने विचार किया और अपने विचार विश्व के समक्ष रखे। इन्हीं विचारों को हम गांधीवादी विचारधारा अथवा गांधीवाद कहते हैं। यह सही है कि गांधी जी द्वारा लिखित समाग्री एक जगह संकलित न होकर यत्र तत्र बिखरी हुई है और मार्क्सवाद, उदारवाद और लेनिनवाद की तरह गांधीवाद नहीं है तथा एक जीवन–मार्ग के रूप में गांधीवाद में समसत विशिष्टताएँ हैं जो एक वाद के लिए आवश्यक होती हैं। इसका एक जीवन दर्शन है जिसके कुछ आधारभूत सिद्धान्त है जिनमे राष्ट्रीय व अन्तराष्ट्रीय समस्याओं के निराकरण

---

*

की एक विशिष्ट विचारधारा है और तकनीक का निर्माण किया गया है। एक जीवन मार्ग के रूप में दर्शन कहलाने के सभी गुण इसमें विद्यामान हैं। इस अर्थ में गांधीवाद का न केवल अस्तित्व है बल्कि वह एक ऐसी विचारधारा है जो मानवता को उस विनाश से बचा सकती है जिससे आज वह भयग्रस्त है।

उदारवाद, पश्चिमी समाजवाद, फेवियन सिन्डीकेट तथा श्रेणी समाजवाद से हटकर गांधीवाद अध्यात्म पर आधारित है। गांधी की ' रामराज्य' की परिकल्पना का लक्ष्य था '' धार्मिक कल्याणकारी और विकेंद्रित ग्राम स्वराज की' स्थापना करना। ईश्वर अथवा एक सर्वव्यापी आधारभूत आध्यात्मिक सत्ता में विश्वास गांधीवाद का मूल तत्व है। ईश्वर 'संपूर्ण विश्व में व्याप्त एक जीवन ज्योति है और उसे सच्चिदानन्द, ब्रह्म, राम अथवा केवल सत्य' कहा जा सकता हैं। गांधी का आदर्श राजराज्य इसी सत्ता की अभिव्यक्ति है। गांधी के अनुसार आदर्श अहिंसक समाज जिसे राज्यमुक्त समाज कह सकते हैं को प्राप्त करना मानव सभ्यता और संस्कृति का आदर्श है।

गांधीवाद की चर्चा के पहले हम विश्व में प्रचलित और मान्य राजनैतिक वादों की चर्चा करेंगें। गॉधी की समकालीन दुनिया के सामने उदारवाद (उधोगवाद) और समाजवाद के रूप में दो ही विकल्प दिखाई दे रहे थे, किन्तु गांधी के शब्दों में ''मुझे भय है कि उद्योगवाद मानव जाति के लिए अभिशाप बन जाने वाला है।'' यह आज की परिस्थिति में सत्य प्रतीत हो रहा हैं। पूँजीवाद व्यवस्था के कारण व्यक्ति और समाज का नैतिक पतन हुआ है। घोर भैतिकवादी और भोगवादी चेतना ने मनुष्य को पशु बना दिया है, आसुरी सभ्यता के कारण लोग असुर होते जा रहे हैं। यही कारण है कि दिनोदिन समाज में अन्याय, अत्याचार, शोषण, हत्या बलात्कार, भ्रष्टाचार, घोटाला, रिश्वत और कमीशनखोरी, व्यभिचार एवं नग्नता का तांडव नृत्य हो रहा है। शील, सदाचार, सद्भाव, सहयोग का भाव समाप्त हो गया है।

उदारवादी सिद्धान्तों पर आधारित राजनैतिक व्यवस्था की भी गांधीजी ने मुखलफत की है। गांधीजी ने पाश्चात्य लोकतांत्रिक राजनीतिक व्यवस्था की कटु भर्त्सना की क्योंकि उसमें अंतर्विरोध थे।[2] उसके अन्तर्गत पूँजीवाद का असीम प्रसार हुआ है जिसके फलस्वरूप दुर्बल जातियों का डटकर शोषण किया गया। कुछ लोकतांत्रिक राज्यों ने तो फासीवादी तरीके भी अपना लिये। ''लोकतंत्र का जो व्यावहारिक रूप हमें आज देखने को मिलता है वह शुद्ध नाजीवाद अथवा फासीवाद है। अधिक से अधिक वह साम्राज्यवाद की नाजीवाद अथवा फासीवादी प्रवृतियों को छिपाने का आवरण है।[3] उदारवादी व्यवस्था की सबसे आदर्श कही जाने वाली ब्रिटेन की व्यवस्था की गांधी जी ने जमकर आलोचना की। गांधी जी ने कहा ' जिसे आप पार्लियामेंटों की माता कहते है वह पार्लियामेंट तो बाँझ और वेश्या है। ये दोनों शब्द बहुत कड़े है तो भी अच्छी तरह लागू होते हैं। मैंने उसे बाँझ

कहा क्योंकि अब तक इस पार्लियामेंट ने अपने आप एक भी अच्छा काम नहीं किया। अगर उस पर जोर दबाव डालने वाला कोई न हो तो वह कुछ भी न करें ऐसा उस की कुदरती हालत है और वह वेश्या है क्योंकि जो मंत्रिमंडल उसे रखे उसके पास वह रहती हैं आज उसका मालिक एस्क्विथ है तो कल बालफर होगा और परसों कोई तीसरा।[4] उसके अनुसार संसदीय प्रजातंत्र में दलगत राजनीति कार्य करती है जिसमें जनता के प्रतिनिधि होते हैं परन्तु वास्तव में उनकी कर्त्तव्यनिष्ठा या तो अपने परिवार या अपने पार्टी तक ही सीमित रहती है। जनता के कल्याण के लिए वे कुछ नहीं कर पाते। ब्रिटिश प्रजातंत्र में सभी जनता के कल्याण का भार कुछ चुने हुए प्रतिनिधि ले लेते हैं। इसमें जनता प्रत्यक्ष रूप से कुछ भी हाथ नहीं बंटा पाती है। संपूर्ण जनता वास्तव में अपने कल्याण के लिए राज्य के प्रतिनिधियों का गुलाम हो जाती है, और उनका शोषण होता है। अतः गांधी की राय में यह पद्धति हिंसा से पूर्ण है। उसमें नाजीवाद और फासिस्टवाद की उपनिवेशवादी नीति को ढ़कने का बड़ा आवरण है। इनकी सभी संस्थाएँ अजनतांत्रिक हैं तथा हिंसा से पूर्ण हैं। अतः गांधी का यह विश्वास है कि प्रजातंत्र की आड़ में राजतंत्र और तानाशाही को पोषण मिलता है अतः ब्रिटिश प्रजातंत्र उपयोगी राज्य पद्धति नहीं है। गांधीजी का मानना था कि ''भारत का भविष्य पश्चिम के उस रक्त– रंजित मार्ग पर नहीं है जिस पर चलते– चलते पश्चिम अब खुद थक गया है। भारत का भविष्य तो सरल, धार्मिक जीवन द्वारा प्राप्त शान्ति के अहिंसक रास्ते पर चलने में ही है।[5] अगर आज हम अपने पाश्चात्य आधरित संसदीय प्रणाली को देखें तो उसकी स्थिति बेहाल है। अपने देश में चारों तरफ अराजकता का माहौल है जिससे उबरने का रास्ता केवल गांधीवाद में ही दिखता है।

अब हम गांधीवाद और मार्क्सवाद का तुलनात्मक अध्ययन करके देखते हैं। मार्क्स व गांधी दोनों पूंजीवाद के प्रखर विरोधी थे। किन्तु दोनो के विरोध के धरातल अलग–अलग थे। हालांकि गांधी और मार्क्स दोनों के राज्य संबंधी दृष्टिकोणों में अद्‌भुत साम्य है। दोनो ने राज्य का विरोध और उसके उन्मूलन का प्रयास किया है। यद्यपि दोनों का आक्रमण केन्द्र भिन्न रहे हैं, मार्क्स तथा मार्क्स के समकालीन समाजवादी जिस क्रान्तिकारी परिवर्तन की बात कर रहे थे उसका लक्ष्य राज्य तथा व्यक्तिगत संपति की संस्थाओं को समूल नष्ट कर समाजवाद की स्थापना करना था। गांधी वैसे समाजवाद के खिलाफ थे जो हिंसा पर आधारित हो और हिंसा के बल पर कायम रह सके। यंग इंडिया में गांधीजी ने लिख था '' बोलशेविक क्या है यह मैं अभी भी नहीं समझता। अब तक मैं इसका अध्ययन नहीं कर सका हूँ। मैं यह भी नहीं जानता कि भविष्य में यह रूस के लिए कल्याणकारी होगा या नहीं। चूँकि इसका आधार हिंसा तथा अनीश्वरवाद है इसलिए मुझे यह ग्राह्य नहीं है। शीघ्र सफलता के लिए हिंसात्मक साधन अपनाने में मेरा विश्वास नहीं है। जिन बोलशेविक दोस्तों का ध्यान मेरी ओर है उन्हे यह

समझना चाहिए कि अच्छे उद्देश्यों के प्रति चाहे मेरी जो सहानुभूति हो लेकिन मै सभी हिंसक साधनों का घेर विरोधी हूँ भले ही वे हिंसक साधन सर्वोत्तम लक्ष्य के लिए ही अपनाये गए हों।''[6] गांधीजी का विरोध व्यापक था। वह राज्य और संपत्ति की संस्थाओं को नष्ट करने की अपेक्षा उसका विकेन्द्रीकरण चाहते थे अर्थात् राज्य और संपत्ति के स्वरूप और व्यापकता को छोटी–छोटी इकाईयों में विभक्त करना चाहते थे। बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में समाजवाद के लिए जो सम्मोहन और जुनून था उतरार्द्ध में आकर तेजी से विनष्ट होता चला गया और आज समाजवाद राजनीतिक चिन्तन के हाशिये पर है। समाजवाद पर गांधजी की टिप्पणी से काफी लोगों को एतराज था किन्तु समाजवाद के पुराने पुरोधा ऐसी स्थिति में नहीं हैं कि **समाजवाद का बचाव कर सकें।**

गांधीवादी राजनैतिक सिद्धांत की विशेषता यह है कि यह पूंजीवादी और साम्यवाद के दोषों को दूर करता है। पूंजीवाद श्रमिकों का शोषण कर पूंजीपतियों के हितों का संरक्षण चाहता है। अतः पूँजीवादी व्यवस्था पूँजीपति के हित की व्यवस्था है। इसके विपरीत साम्यवादी व्यवस्था में श्रतिक हित के लिए पूँजीपतियों का शोषण किया जाता है। मजदूर का हित मालिक हित से बढ़कर है। इस प्रकार पूँजीवादी और साम्यवादी समाज की व्यवस्था एक दूसरे के विपरीत है, परन्तु दोनों में किसी न किसी वर्ग का शोषण है। सर्वोदयी समाज व्यवस्था में किसी का शोषण नहीं है। समाज का सच्चा हित तो दोनों का हित है, किसी एक का नहीं। इसलिए सर्वोदयी समाज समन्वयवादी सामाजिक व्यवस्था है जिसमें सभी व्यक्ति तथा सभी वर्ग का हित है। गांधी की यह व्यवस्था केवल भारतवर्ष के लिए न थी बल्कि समस्त संसार के लिए थी। वे समझते थे कि सारा मानव समाज एक वृहत् परिवार है और उसमें प्रेम, दया सहानुभूति आदि का स्थान होना चाहिए। राष्ट्रों में जो आपस में युद्ध होता है वह अमानुषी है और उसका अंत होना चाहिए।

गांधीजी की सर्वोदयी कल्पना का अहिंसा आधारित आदर्श समाज राज्यविहिन होने के साथ–साथ राजनीतिक और आर्थिक दृष्टिकोण से पूर्ण विकेन्द्रित भी था। गांधीजी ने विकेन्द्रीकरण पर जोर इसलिए दिया कि केन्द्रीकृत व्यवस्था और अहिंसात्मक समाज का साथ–साथ चलना असंभव है। स्मरणीय है कि अत्यधिक शक्ति के बिना केन्द्रीयकरण की व्यवस्था नहीं चल सकती है। राजनीतिक क्षेत्र में अब पाश्चात्य जगत में भी विकेन्द्रीयकरण की आवश्यकता तल्खी से महसूस की जा रही है। बहुलतावाद वस्तुतः विभिन्न ऐच्छिक समुदायों को अधिकतम स्वतंत्रता देने की एक अपील ही है आर्थिक क्षेत्रों में भी गांधी विकेन्द्रीकरण के हिमायती थे। गांधीजी के आर्थिक विकेन्द्रीकरण का तात्पर्य बड़े पैमाने पर उद्धोगों का उन्मूलन है और उनके स्थान पर कुटीर उद्योग धंधों की स्थापना है। गांधी के अनुसार आर्थिक क्षेत्र में सत्य एवं अहिंसा के सिद्धान्तो को प्रतिष्ठित करने तथा मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण को समाप्त करने का सर्वोत्तम

उपाय कुटीर उद्योग है। चरखा गांधीजी की एक बड़ी देन है। गांधीजी रेल, जहाज आदि आधुनिक सभ्यता के उपहारों के बिना रहने को तैयार थे। वे आधुनिक लौह सभ्यता को पाषण सभ्यता से अधिक उत्कृष्ट मानने को तैयार नहीं थे। गांधीजी के आदर्श राज्य में बड़े उद्योग नहीं होंगे, बड़े पैमाने पर विदेशी व्यापार नहीं होगा। उनके स्वदेशी के सिद्धांत का अभिप्राय पड़ोस में नये सरल तरीके से बनी सामग्रियों का उपयोग करना और अपनी आश्यकताओं को सीमित करना था। गांधीजी के सर्वोदयी आर्थिक विकेन्द्रीकरण के सिद्धान्त को आज एक प्रतिगामी कदम बतलाकर उसकी निंदा की जाती है। इसको सभ्यता की सुई को उल्टी दिशा में घुमाने की संज्ञा दी जाती है। लेकिन अगर आज के इस वैश्विक राजनीतिक तनाव, पर्यावरण, प्रदूषण, परमाणु युद्ध की संभावना आदि पर गौर करें तो यह कहने में कोई हर्ज नहीं होगा की मानव को आज बचाना है तो उघोगवाद के दुष्परिणामों को दूर करना होगा कि मानव को आज बचाना है तो उधोगवाद के दुष्परिणामों को दूर करना होगा और विश्व में शांति एवं सद्भावना की स्थापना के लिए तनाव शैथिल्य के लिए पर्यावरण की सुरक्षा तथा परमाणु विभीषिका को दूर करने के लिए राजनीति और अर्थनीति में सत्य, अहिंसा और विकेन्द्रीकरण को लाना ही होगा।

गांधीजी ने अपने राजनेतिक दर्शन में आदर्श सरकार कैसे स्थापित हो इस पर बहुत विचार किया है तथा इसके स्वरूप की रूपरेखा खींचनें का प्रयत्न किया। गांधी का आदर्श राज्य ग्रामीण गणतंत्रों का राज्य है। उनके अनुसार आत्म निर्भर ग्रामों में संरचित राज्य ही उपयुक्त राज्य है। उनके विचार में राज्यों के प्रचलित रूप में जो प्रतिनिधियों के द्वारा सरकार का गठन होता है उस व्यवस्था में व्यक्तियों तथा छोटे–छोटे गांवों की ओर से ध्यान हटा रहता है। एक देश का क्षेत्र बड़ा विस्तृत होता है और यह सम्भव नहीं होता कि एक केन्द्रीय सरकार दूर स्थित छोटे ग्रामों पर समुचित ध्यान दे पाये। उसके लिए यह भी सम्भव नहीं कि वैसे क्षेत्रों में सदा अभिरूचि ले सकें। अतः गांधीजी ने अनुशंसा की है कि इस संदर्भ में सबसे उपयुक्त यही प्रतीत होता है कि अपने दिन प्रतिदिन के कार्यो के लिए स्वायत्तशाषी बना दिया जाय। गांधी ने लिखा है कि ''ग्राम स्वराज्य की मेरी कल्पना यह है कि यह एक ऐसा पूर्ण प्रजातंत्र होगा जो अपनी अहम जरूरतों के लिए अपने–अपने पड़ोसी पर भी निर्भर नहीं करेगा और फिर भी बहुत दूसरी जरूरतो के लिए जिनमें दूसरों का सहयोग अनिवार्य होगा, वह परस्पर सहयोग से कर लेगा।''[7] इसी कारण गांधी कहते हैं कि हर ग्राम में दैनिक आवश्यकताओं के लिए आत्मनिर्भरता का विकास अनिवार्य है। भोजन, आवास, बुनियादी शिक्षा, स्वास्थ्य, सफाई आदि के लिए गांवों को अन्य पर निर्भर होने की आवश्यकता नहीं रहनी चाहिए। गांधी कहते हैं कि ''हर एक गॉव की अपनी नाटकशाला, पाठशाला और सभा भवन रहेंगे।पानी के लिए उसका अपना इंतजाम होगा, वाटर बॉक्स हेांगें जिनमें गॉव के लिए सभी

लोगों को शुद्ध पानी मिला करेगा। कुँओं और तालाबों पर गाँव का पूरा नियंत्रण रखकर यह कार्य किया जा सकता है, बुनियादी तालीम के आखिरी दर्जे तक शिक्षा सबके लिए लाजिमी होगा। जहाँ तक हो सकेगा गाँवों के सारे कार्य सहयेाग से किये जायेंगे, जात–पात और क्रमागत अस्पृश्यता जैसे भेद आज हमारे समाज में पाये जाते हैं, वैसे ग्राम समाज में बिल्कुल नहीं रहेंगे।[8] गांधी कहते हैं कि उन सभी कार्यो के सुचारू संचालन के लिए हर ग्राम में ग्राम पंचायत होनी चाहिए। गांधी पंचायतों को सीधा निर्धारित करते हुए कहते हैं कि उनका काम युद्ध कार्य निपस्त कानून बनाना नहीं है। अत्यधिक आवश्यकता पड़ने पर ही पंचायत को उस प्रकार के कार्यो में उलझना चाहिए। सामान्यतः पंचायत का कार्य है ग्राम में नैतिक भावनाओं को जाग्रत करना। ग्रामीण गणतंत्र का आधार नैतिक तथा सहयोग की भावना है, अतः पंचायत का मूल लक्ष्य इस प्रकार के आपसी विश्वास और सहयेाग को जगाये रखना है। हर अवस्था में पंचायत इस प्रकार के सहयोग की भावना को बढ़ाने का प्रयत्न करे, उस पर जो आधात की चेष्टा हो, उसका निराकरण करे। गांधीजी जानते थे कि ''सच्ची लोकशाही केन्द्रो में बैठे हुए बीस आदमी नहीं चला सकते। वह तो नीचे से हर एक गाँव के लोगो द्वारा चलायी जानी चाहिए।[9] महात्मा गांधी का आदर्श राज्य एक ऐसे समाज का चित्र प्रस्तुत करता हे जो अनगिनत गाँवों का बना होगा। गांधी अपने विश्वास में अटल थे कि भारत गॉवो का देश है। इसकी आत्मा गाँवों में बसती है इसलिए गाँवों की मुक्ति के बिना भारत की आजादी बेमानी है। गांधी का गाँव केवल भौगोलिक सीमा का नाम नहीं है यह एक जीवन्त सत्ता है। इसके सामूहिक अवचेतन में गाँव के युग–युग के सुख–दुख, मान–अपमान की स्मृतियाँ संचित रहती हैं। ''गांधी के हर गांव में पंचायत का राज होगा। उसके पास पूरी सत्ता एवं ताकत होगी। उसे इस हद तक तैयार करना होगा कि वह बाहरी हमले के मुकाबले से अपनी रक्षा करते हुए मर मिटने के लायक बन सके।[10] गांधीजी के नौतिक और आध्यात्मिक प्रयोगों को और आधुनिक विश्व में उनकी प्रासंगिता को समझने के लिए गांधीजी के सर्वोदय–सम्बन्धी विचारों और दर्शनों का समझना आवश्यक है। **गांधीजी रस्किन** की पुस्तक 'अन टू दि लास्ट' से बहुत प्रभावित थे। उन्होने इस पुस्तक का अनुवाद गुजराती भाषा में किया जो 'सर्वोदय' नाम से प्रकाशित हुआ। गांधीजी की दृष्टि में सर्वोदय व्यक्ति की नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यता से संचालित वह कार्य–पद्धति है जिसमें व्यक्ति समाज का अभिन्न अंग बनकर समाज के पूर्ण विकास के लिए कार्यरत होता है। गांधी का सर्वोदय प्रजातांत्रिक पद्धति से अगल आध्यात्मिक पद्धति का अनुसरण करता है। अपनी आत्मकक्षा में उन्होने लिखा है कि ''मैं सर्वोदय के सिद्धांतो को इस प्रकार समझता हूँ।''

1. सबकी भलाई में हमारी भलाई निहित है।

2. वकील और नाई दोनो के काम की कीमत एक सी होनी चाहिए क्योंकि आजीविका का अधिकारर सबको एक समान है।
3. सादा मेहनत– मजदूरी का किसान का जीवन ही सच्चा जीवन हैं।

पहली चीज मैं जानता था, दूसरी को मैं धुँधले रूप में देखता था, तीसरे का मैंने कभी विचार नहीं किया था। 'सर्वोदय' ने मुझे दीप की तरह दिखा दिया कि पहली चीज में दूसरी चीज समाई हुई है।[11] गांधी का सर्वोदय शब्द एक उत्कृष्ट और सर्वव्यापक भावना को अभिव्यक्त करता है। 'सर्वोदय' ऐसे वर्गविहीन, जातिविहिन और शोषणविहीन समाज की स्थापना करना चाहता है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति और समूह को अपने सर्वांगीण विकास के साधन और अवसर मिलें, यह क्रांति, अहिंसा और सत्य द्वारा ही संभव है। उनके अनुसार आदर्श समाज सर्वोदय के सिद्धान्त यानी सबका और सब प्रकार का उदय, उत्थान पर आधारित होगा। उपयोगितावादी नीति–दर्शन का मूल 'अधिक से अधिक' वयक्तियों का अधिक से अधिक सुख' जो प्रत्येक व्यक्ति के अन्दर सुख, प्राप्ति की इच्छा का समर्थन कर कभी किसी त्याग के लिए प्रेरक नहीं बनता। इसे अमान्य करते हुए सर्वोदय का लक्ष्य उनके अनुसार सभी का उत्थान और सभी का गुणात्मक उत्थान होगा।

गांधी का एक अन्य राजनीतिक विचार है सत्याग्रह। सत्याग्रह राजनीतिक चिन्तन और राजनीतिक सिद्धान्त तथा व्यवहार ही गांधीजी की सबसे बड़ी देन है। सत्याग्रह का शाब्दिक अर्थ है– सत्य का आग्रह अर्थात् सत्य पर अटल रहना। सत्याग्रह का अर्थ बिना किसी दुर्भावना और धृणा के धैर्यपूर्वक कष्ट उठाना और इसके द्वारा अपने विरोधियों को अपनी बात की सत्यता का विश्वास दिलाना है। एक सच्चा सत्याग्रही धोखा, छल– कपट जैसे अनैतिक उपाय के बदले प्रेम, सत्य और आत्मकष्ट का मार्ग अपनाने का प्रयास करता है। गांधीजी के अनुसार एक सत्याग्रही के अनुसार एक सत्याग्रही अपने विरोधी को कष्ट देने की शक्ति का मुकाबला अपने कष्ट सहने की शक्ति से करता है। गांधीजी इस बल का प्रयोग अंतिम अस्त्र के रूप में करना चाहते थे और उन्होने लिखा है कि चूँकि सत्याग्रह सीधी कार्यवाही के अत्यंत बलशाली उपयोगो में से एक है, इसलिए सतयाग्रही सत्याग्रह का आश्रय लेने से पहले और सब उपाय आजमाकर देख लेता है। इसके लिए वह सेवा और निरन्तर सत्ताधारियों के पास जायेगा, लोकमत को प्रभावित और शिक्षित करेगा, जो उसकी सुनना चाहते हैं उन सबके सामने अपना मामला शान्ति और ठंडे दिमाग से रखेगा और जब ये सब उपाय वह आजमा चुकेगा तभी सत्याग्रह का आश्रय लेगा।''[12] अंग्रेजो के खिलाफ इस हथियार का प्रयोग कर भारत को आजादी दिलाने में गांधीजी ने सफलता प्राप्त की और इस अस्त्र का प्रयोग करने वाले आधुनिक विश्व के प्रथम महामानव बन गए।

सत्य और अहिंसा सम्बन्धी गांधीजी के राजनैतिक चिंतन और विचार भी आधुनिक विश्व में गांधी की प्रासंगिकता के परिप्रेक्ष्य में कम

उल्लेखनीय नहीं है। गांधीजी ने जो भी नियम बनाए थे उनमें सत्य और अहिंसा का सर्वोच्च स्थान था। गांधीजी ने लिखा है ''सत्य ही परमेश्वर है यह सत्य का पद अथवा ऊँचा अर्थ हुआ। उसके ऊपर अथवा साधरण अर्थ में सत्य का मतलब है सत्य आग्रह, सत्य विचार, सत्यवाणी और सत्य कर्म।[13] ''इस पथ के अनुगमन द्वारा समाज में फैले असत्य, अन्याय और अधर्म का नाश होगा। गांधीजी के अनुसार जो व्यक्ति दूसरों को आधात पहुँचाता है वह सत्य का उल्लंधन करता है। इसलिए जीवन में अहिंसा का पालन करना सत्य के उपासक का सबसे बड़ा कर्त्तव्य है। गांधी ने अहिंसा को भी व्यापक दृष्टिकोण में लेते हुए लिखा है कि ''अहिंसा केवल आचरण का स्थूल नियम नहीं, बल्कि मन की वृत्ति है। जिस वृत्ति में कहीं भी दोष की गंध तक नहीं रहती, वह अहिंसा है।[14] साध्य और साधन सम्बन्धी गांधीजी के विचारों को जाने बिना आधुनिक विश्व में गांधीजी के राजनैतिक सिंद्धांतो की प्रासंगिकता को समझना कठिन है। सत्य और अहिंसा के प्रति आग्रह के साथ गांधीजी इस बात पर जोर देते हैं कि हमारे साधन हमारे साध्य के अनुरूप होने चाहिए। हमारा साध्य नैतिक हो केवल इतना प्र्याप्त नहीं है बल्कि साधन भी विशुद्ध और पवित्र होना चाहिए। गांधीजी का यह अटल विश्वास था कि अनैतिक साधन, साध्य की नैतिकता ओर पवित्रता को नष्ट कर देता है। हिंसा,छल– कपट और धोखा तथा षड्यंत्र का सहारा लेकर गांधीजी स्वराज तक लेने से इंकार करते थे। यह सर्वविदित है कि 1992 में चौरी चौरा हत्याकांड के कारण गांधीजी ने एकाएक और अचानक असहयोग आन्दोलन स्थगित कर दिया था, जबकि इस आन्दोलन ने ब्रिटिश सम्राज्य की नीव को हिलाकर रख दिया था और सफलता सामने दिखाई पड़ रही थी।

गांधीजी के रानैतिक विचारो और प्रयोगों का एक मूल तत्व 'धर्म' रहा है। गांधी के जीवन की समस्त क्रियाओं का प्रधान प्रेरक 'धर्म' था। उनका विश्वास था कि मानव– जीवन का अंतिम लक्ष्य ईश्वर की प्राप्ति है। उन्होने कहा था कि ''बहुत से धार्मिक व्यक्ति जिनसे मैं मिला हूँ, हृदय से एक राजनीतिक व्यक्ति हैं किंतु मै जो राजनीतिक वेश में रहता हूँ, हृदय से धार्मिक हूँ।'' गांधीजी की स्पष्ट धारणा थी कि धर्मविहीन राजनीति एक मौत का फंदा है जो आत्मा की हत्या कर देती हैं गांधीजी के अनुसार कोई भी लौकिक सभ्यता अधिक दिनों तक जीवित नहीं रह सकती यदि यह जीवन के उच्चतर मूल्यों का जो की मूलतः आध्यात्मिक हैं, अपने में आत्मसात् नहीं कर लेती। गांधीजी की सर्वोदयी विचारधारा के अनुसार सत्य की निष्काम खोज ही धर्म की सिद्धि केवल सत्य और प्रेम के द्वारा की जा सकती है। गांधीजी समस्त धर्मो में समानता पर विश्वास करते थे। गांधीजी सभी धर्मो को समान समझते थे। धर्म के साम्बन्ध में वह राज्य की भूमिका को नाकारते थे। उन्होने कहा ''अपने धर्म पर मेरा अटूट विश्वास है। मै उसके लिए अपने प्राण दे सकता हूँ। लेकिन वह मेरा निजी मामला है। राज्य को उसमें कुछ

लेना देना नहीं है। राज्य हमारे लौकिक कल्याण की, स्वास्थ्य, आवागमन, विदेशों से सम्बन्ध, करेंसी (मुद्रा) आदि की देखभाल करेगा, लेकिन हमारे या तुम्हारे धर्म की नहीं। धर्म हर एक का निजी मामला है।[15] ''गांधी धर्म निरपेक्ष राज्य में सभी धर्मो की धार्मिक स्वतंत्रता का समर्थन करते थे। उन्होने लिखा है 'हिन्दुस्तान उन सब लोगो का है, जो यही पैदा हुए हैं और पले हैं और जो दूसरे किसी देश का आसरा नहीं ताक सकते। इसलिए वह जितना हिन्दुओं का है उतना ही पारसियों इजरायलों, हिन्दुस्तानी इसाइयों, मुसलमानों और दीगर गैर–हिन्दुओं का भी है। आजाद हिन्दुस्तान में राज्य हिन्दुओं का नही बल्कि हिन्दुस्तानियों का होगा और उसका आधार किसी धार्मिक पंथ या संपद्राय के बहुमत पर नहीं बल्कि बिना किसी धार्मिक भेद–भाव के समूचे राष्ट्र के प्रतिनिधियों पर होगा।[16] गांधीजी ने संविधन को शासन संचालन की ईकाई के रूप में काफी अहमियत दी है। गांधीजी ने लिखा है कि ''मैं ऐसे संविधान की रचना करवाने का प्रयत्न करूँगा जो भारत को हर तरह की गुलामी और परावलम्बन से मुक्त कर दे। मैं ऐस भारत के लिए कोशिश करूँगा, जिसमें गरीब लोग भी यह महसूस करेंगे कि वह उनका देश है– जिसके निर्माण में उनकी आवाज का महत्त्व है।[17] इस संविधान पर निर्मित शासकों के अधिकार के संबन्ध में गांधी के विचार काफी नेक थे। उन्होने लिखा है कि ''राजाओं (शासकों) का फर्ज है कि रिआया के सच्चे सेवकों की तरह काम करें। वे किसी बाहरी सत्ता के दिए हुए हकों के बल पर राज नहीं करेगें और तलवार के जोर से तो कभी भी नहीं। वे सेवा से हासिल किए गए हक से और खुद को मिली हुई विशेष बुद्धि के हक से राज करेगे।''[18] गांधीवाद में पेशा, वर्ग लिंग या किसी दूसरे आधार पर भेद की कल्पना मान्य नहीं है और सबों के प्रति समानता और न्याय की बात निहित है। सामाजिक क्षेत्र के अन्तर्गत सर्वोदयी समाज का प्रमुख आधार 'समानता' को माना जाता है। यह इस बात की ओर संकेत करता है कि इस तरह के समाज में ऊँच–नीच का भेद नहीं होगा और शोषण और आर्थिक विषमताओं को बल देने वाले तत्व नहीं होगें। गोधीजी ने लिखा है कि ''प्रजातंत्र का अर्थ यह मै समझा हूँ कि इस तंत्र में नीचे से नीचे और ऊँचे से ऊँचे आदमी को आगे बढ़ने का समान अवसर मिलना चाहिए।[19] स्त्रियों की समानता को भी गांधीजी ने काफी अहमियत दी और उन्हे पुरूषों की भाँति पूर्ण आर्थिक और वैधानिक अधिकार का समर्थन किया है, ताकि समाज में दोनों का दर्जा बराबर हो सके।

निष्कर्षः गांधीवाद एक ऐसे आदर्श समाज की स्थापना पर बल देता है जिसमें व्यक्ति की स्वतंत्रता, समानता और गरिमा सुरक्षित हो तथा आपस में सभी के बीच प्रेम और सहयोग की भावना हो। इस तरह के समाज की आवश्यकता आज पूरे विश्व समाज को है। भारत जैसे विशाल आबादी वाले देश में जहाँ गरीबी बेकारी, महंगाई, अशिक्षा, स्त्रियों की असंतोषजनक स्थिति, भ्रष्टाचार जैसी समस्याएँ है वहाँ गांधीवादी की प्रासंगिकता और बढ़

जाती है। क्योंकि गांधीजी की सर्वोदय धारणा का उद्देश्य मानवमात्र का कल्याण है। मानवमात्र सुखी हो, उसका शारीरिक, मानसिक एवं नैतिक विकास हो यही सर्वोदय का मूलमंत्र है। गांधीजी के सपनों का सर्वोदय प्राणिमात्र का उदय है। गरीब, दीन–हीन, अकिंचन सबों का उदय है।

सन्दर्भ :

1. ग्राम स्वराज्य, गांधीजी संग्राहक, हरिप्रसाद व्यास, नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद, पृष्ठ–14
2. हरिजन, 31 मार्च 1946
3. हरिजन, मई 19,1940
4. हिन्द स्वराज, महात्मा गांधी, पृष्ठ 13, नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद
5. गांधी दर्शन , यशपाल जैन, पृष्ठ–39, सस्ता साहित्य, मण्डल प्रकाशन, कर्नात सर्कल, दिल्ली
6. यंग इडिया, 11 दिसम्बर 1942
7. हरिजन सेवक–2.7.1942
8. हरिजन 17.1.1947
9. मेरे सपनों का भारत : गांधीजी, नवजीवन प्रकाशन अहमदाबाद, पृष्ठ–101
10. वही– पृष्ठ–111
11. सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा– मो.क.गांधी, अनुवाद काशीनाथ त्रिवेदी, नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद, पृष्ठ–27
12. मेरे सपनों का भारत 'गांधीजी संग्राहक, नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद, पृष्ट–8
13. गांधी विचार दोहन 'कि.घ. मशाख्खवाला, नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद, पृष्ट–5
14. वही– पृष्ठ–6
15. मेरे सपनों का भारतःगांधीजी, नवजीवन प्रकाशन पृष्ठ–295
16. वही– पृष्ठ–295
17. यंग इंडिया– 10.9.1931
18. हरिजन सेवक–6.7.1937
19. यंग इंडिया–3.6.1926

***

रॉल्स का न्यायिक सिद्धांत : एक विश्लेषण

उमेश चन्द्र दीक्षित *
डॉ. रज्जन कुमार **

जॉन रॉल्स उदार परंपरा में एक अमेरिकी राजनीतिक दार्शनिक थे, जिनके न्याय के सिद्धांत के कारण आधुनिक काल में राजनीतिक दर्शन में पुनरुद्धार हुआ। उनके प्रसिद्ध कार्य में, न्याय का सिद्धांत में उन्होंने कहा कि एक अच्छे समाज को कई गुणों की विशेषता है। न्याय एक अच्छे समाज का पहला गुण है । हालांकि राजनीति विज्ञान में रॉल्स के सिद्धांत को विचार के विभिन्न स्कूलों द्वारा आलोचना की गई है। यह पत्र रॉल्स का सिद्धांत के विश्लेषण का प्रयास करता है।

परिचय : जॉन रॉल्स उदार परंपरा में एक अमेरिकी राजनीतिक दार्शनिक थे जिनके न्याय सिद्धांत ने आधुनिक काल में राजनीतिक दर्शन में रुचि को पुनर्जीवित किया। उदार परंपरा में उनकी सोच, और सामाजिक अनुबंध-विशेष रूप से जॉन की विधि का पालन किया गया न्याय के सिद्धांतों पर पहुंचने के लिए लोके के सिद्धांत का संस्करण पालन किया गया। *न्याय* का उनका सिद्धांत स्वतंत्र नागरिकों के समाज को समान बुनियादी अधिकारों के साथ सहयोग करती है समतावादी आर्थिक प्रणाली। उनका *राजनीतिक उदारवाद* का खाता वैध उपयोग को संबोधित करता है।

न्याय के सिद्धांत : जॉन रॉल्स ने अपने प्रसिद्ध कार्य ए थ्योरी ऑफ़ जस्टिस में कहा कि एक अच्छा समाज कई गुणों की विशेषता है। न्याय एक अच्छे समाज का पहला गुण है। दूसरे शब्दों में, न्याय आवश्यक है लेकिन एक अच्छे समाज की पर्याप्त स्थिति नहीं है। जो कि न्याय का तर्क देते हैं सामाजिक उन्नति और प्रगति के रास्ते में आने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए जिससे समाज का नैतिक पतन हो रहा है। एक न्यायपूर्ण समाज में, न्याय की सामाजिक संरचना के रूप में स्थापना की जाती है। इसलिए सभी राजनीतिक और विधायकों को पूरा करने के लिए न्याय की आवश्यकता डिजाइन किया जाना चाहिए

---

* अनुप्रयुक्त दर्शनशास्त्र विभाग, महात्मा ज्योतिबा फुले रूहेलखण्ड विश्वविद्यालय परिसर, बरेली, उ.प्र.

** विभागाध्यक्ष, अनुप्रयुक्त दर्शनशास्त्र विभाग, महात्मा ज्योतिबा फुले रूहेलखण्ड विश्वविद्यालय परिसर, बरेली, उ.प्र.

रॉल्स ने न्याय के अपने विचारों को निष्पक्षता के रूप में व्यक्त किया:-
पहला सिद्धांत : प्रत्येक व्यक्ति के पास समान बुनियादी स्वतंत्रता की पूरी तरह से पर्याप्त योजना के लिए एक ही अनिश्चित दावा है,जो योजना सभी के लिए स्वतंत्रता की समान योजना के अनुकूल है;
दूसरा चरण : सामाजिक और आर्थिक असमानताएं दो स्थितियों को संतुष्ट करती हैं:-
* उन्हें *अवसर, समानता की* शर्तों के तहत सभी लाइनों और पदों के लिए संलग्न किया जाना *है*
* वे समाज के सबसे कम-सुविधा वाले सदस्य (*अंतर*) के सबसे बड़े लाभ के लिए हैं।

राजनीतिक संविधान को डिजाइन करने के लिए समान बुनियादी स्वतंत्रता का पहला सिद्धांत है, जबकि दूसरा सिद्धांत मुख्य रूप से आर्थिक संस्थानों पर लागू होता है। पहले सिद्धांत की पूर्ति दूसरे सिद्धांत की पूर्ति पर प्राथमिकता लेता है, और दूसरे सिद्धांत की त्रुटि समानता के भीतर अवसर अंतर सिद्धांत पर प्राथमिकता लेता है। प्रथम सिद्धांत सभी नागरिकों के लिए पुष्टि करता है I परिचित बुनियादी अधिकार और स्वतंत्रताएं: अंतरात्मा की स्वतंत्रता और एसोसिएशन की स्वतंत्रता, भाषण की स्वतंत्रता और व्यक्ति की स्वतंत्रता, दौड़ के अधिकार, बड़े पद धारण करने, के अनुसार व्यवहार किया जाना कानून का शासन, और इसी तरह सिद्धांत इन अधिकारों और स्वतंत्रता को सभी नागरिकों को समान रूप से दर्शाता है। असमान अधिकारों से उन लोगों को लाभ नहीं होगा जिनके अधिकारों का कम हिस्सा मिलेगा, इसलिए न्याय के लिए सभी सामान्य परिस्थितियों में समान अधिकारों की आवश्यकता है।

रॉल्स का पहला सिद्धांत बुनियादी अधिकार और स्वतंत्रता, समान के महत्व के बारे में व्यापक आक्षेपों के साथ है। दो और सुविधाएँ इस पहले सिद्धांत को विशिष्ट बनाती हैं। पहले इसकी प्राथमिकता है:- मूल अधिकारों और स्वतंत्रता को अन्य सामाजिक वस्तुओं के खिलाफ व्यापार नहीं करना चाहिए। पहला सिद्धांत उदाहरण के लिए, एक नीति, जो कॉलेज के छात्रों को आधार पर छूट प्रदान करेगा रॉल्स के पहले सिद्धांत की दूसरी विशिष्ट विशेषता यह है कि *इसका उचित मूल्य की* आवश्यकता होती *है- राजनीतिक स्वतंत्रता* । राजनीतिक स्वतंत्रता मूल अधिकारों का एक सबसेट है, जो अधिकार से संबंधित है, कार्यालय, राष्ट्रीय चुनावों के परिणाम को प्रभावित करने का

अधिकार ।ये रॉल्स स्वतंत्रता के लिए आवश्यक है कि नागरिक न केवल औसत रूप से बल्कि समान रूप से समान हों। वह, नागरिक समान रूप से संपन्न और प्रेरित होने के लिए चुनाव, और उनके सामाजिक वर्ग की परवाह किए बिना कार्यालय को प्रभावित करने के समान अवसर होने चाहिए। यह उचित मूल्य प्रोविसो के लिए प्रमुख निहितार्थ हैं चुनाव कैसे वित्त पोषित और चलाए जाने चाहिए।

रॉल्स के न्याय के दूसरे सिद्धांत के दो भाग हैं। पहला भाग, अवसर की अखंडता- समान प्रतिभा वाले नागरिक और उनकी उपयोग करने की इच्छा रखने वालों के लिए समान शैक्षिक और आर्थिक अवसर हो चाहे वे अमीर या गरीब पैदा हों, इसका अर्थ है कि प्राकृतिक बंदोबस्ती और इच्छा को समान रूप से जन्म लेने वाले बच्चों में वर्गीकृत किया जाता है विभिन्न सामाजिक वर्गों, फिर किसी भी प्रकार के व्यवसाय के भीतर हमें यह जानना चाहिए कि लगभग एक चौथाई है उस व्यवसाय में लोग आय वितरण के शीर्ष 25% में पैदा हुए थे, एक चौथाई थे आय वितरण के दूसरे सर्वोच्च 25% में पैदा हुए, एक तिमाही दूसरे में पैदा हुए थे-सबसे कम 25%, और एक-चौथाई सबसे कम 25% में पैदा हुए थे। चूंकि मूल का वर्ग एक नैतिक रूप से है नागरिकों के बारे में मनमाने तथ्य, न्याय मूल के वर्ग को असमान मूल में बदलने की अनुमति नहीं देती है शिक्षा या सार्थक कार्य के लिए अवसर। दूसरे सिद्धांत का दूसरा भाग अंतर सिद्धांत है, जो नियंत्रित करता है- धन और आय का वितरण। ये सामानों के साथ असमानताएं कुल उत्पाद पैदा कर सकती हैं: उच्च मजदूरी प्रशिक्षण और शिक्षा की लागत को कवर कर सकता है, उदाहरण के लिए, और प्रोत्साहन प्रदान कर सकता है ऐसी जानकारी भरें जो मांग में अधिक हों। अंतर सिद्धांत की आवश्यकता है कि सामाजिक संस्थानों की व्यवस्था की जाए इसलिए धन और आय की कोई भी असमानता उन लोगों के लाभ के लिए काम करें जो सबसे खराब हों, अर्थात्, वित्तीय असमानताएं विशेष रूप से किस के कम से कम उन लोगों के सबसे बड़े लाभ के लिए हैं।

निष्कर्ष : विश्लेषण करने पर, रॉल्स के सिद्धांत की विविध आलोचनाओं के दुरुपयोग पर आधारित लगता है उनके सिद्धांत की व्याख्या। वास्तव में रॉल्स ने न्याय के विभिन्न मूल्य प्रणालियों को नियंत्रित करने का प्रयास किया है, इन मूल्य प्रणालियों के कुछ सिद्धांतों को एक दूसरे के साथ स्पष्ट रूप से माना जाता है। वास्तव में रॉल्स का सिद्धांत न्याय के अभिसरण का प्रतिनिधित्व

करता है- स्वतंत्रतावाद, समानतावाद और समानतावादवाद। पहले स्थान पर, रॉल्स एक मुक्तिदाता है क्योंकि मूल स्थिति में सहभागिता करने वाले पुरुषों की उनकी धारणा एक ऐसी स्थिति की परिकल्पना करती है, जहाँ प्रत्येक अपने स्वार्थ को अधिकतम करने की कोशिश कर रहा है। यह उदारवादी दृष्टिकोण के अनुरूप है। दूसरी बात, उसकी पहली न्याय का सिद्धांत स्वतंत्रता को प्राथमिकता देता है जिसे कोई अन्य लाभ के लिए प्रतिबद्ध नहीं किया जा सकता है। फिर रॉल्स एक समतावादी है क्योंकि वह सभी के लिए समान स्वतंत्रता प्राप्त करता है। इसके अलावा, वह जोर देकर कहते हैं कि आर्थिक बाधाओं को केवल तभी अनुमति दी जा सकती है जब वे सभी के लिए अखंड समानता की शर्त को पूरा करते हैं। फिर,वह नियम देता है कि योग्यता और प्रयास के लिए किसी भी इनाम को उस शर्त को पूरा करना चाहिए जो सबसे बड़ा लाभ देता है। मेधावी को कम से कम सुविधा वाले विशेषाधिकार को क्यों समायोजित करना चाहिए? यहां रॉल्स विभिन्न व्यक्तियों के बीच 'चेन कनेक्शन' के संचालन के सिद्धांत का आह्वान करता है। वह दर्शाता है कि क्रमिक रूप से अपने सबसे कमजोर हिस्सों को मजबूत करके समाज को मजबूत किया जा सकता है। विचार श्रृंखला रॉल्स को एक कम्युनिस्ट की छवि के बहुत करीब लाता है। उसके हाल में लेखन रॉल्स विशेष रूप से एक बहुलवादी या बहुसांस्कृतिक सामाजिक वातावरण में राजनीतिक स्थिरता के आश्वासन की समस्या से चिंतित लगता है। रॉल्स इस वर्तमान पूर्वाग्रह को जन्म देता है और उसका नया न्याय का सिद्धांत-अपनी दूसरी पुस्तक, पॉलिटिकल लिबरलिज्म में इसका सबसे पूर्ण विस्तार है।

संदर्भ :

[1] राजनीतिक सिद्धांत एक परिचय, राजीव भार्गव और अशोक आचार्य द्वारा साझा, प्रथम संस्करण, (2008) पियर्सन प्रकाशन

[2] राजनीतिक विचारक सुकरात से लेकर वर्तमान तक, डेविड बाउचर और पॉल केली द्वारा साझा, (2009) ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस

[3] पश्चिमी राजनीतिक विचार, ओ पी गौबा, (२०११) लक्ष्मी प्रकाशन

[4] पॉलिटिकल थ्योरी का एक परिचय, ओ पी गौबा, (२०१४) मैकमिलन पब्लिशर्स लिमिटेड

***

इक्कीसवीं सदी का लोक और भोजपुरी सिनेमा

डॉ. अमरेन्द्र कुमार श्रीवास्तव *
डॉ. अर्पिता कपूर **

सार संक्षेपः– *आज के समय में भोजपुरी भाषा और सिनेमा अपनी वैश्विक पहचान बना चुकी है। बीसवीं सदी के साठ के दशक में जिस तरह से भोजपुरी सिनेमा निर्माण के लिए डा0 राजेन्द्र प्रसाद ने प्रेरित किया, वह निरन्तर विकास के पथ पर अग्रसर है। आज भोजपुरी फिल्मों में भोजपुरी समाज के विभिन्न पक्षों का अंकन किया जा रहा है। लोक संगीत, लोक संस्कृति और लोक परम्परा के प्रति अगाध लगाव के परिणामस्वरूप भोजपुरी सिनेमा दुनिया भर में देखी जा रही है। भोजपुरी सिनेमा की सबसे बड़ी ताकत भोजपुरी भाषियों का अपनी भाषा और संस्कृति के प्रति अगाध लगाव है। गंगा भोजपुरी क्षेत्र के लोगों की जीवन धारा और जीवनदायिनी के प्रत्यक्ष रूप को भोजपुरी सिनेमा में विशेष स्थान दिया गया है। इक्कसवीं सदी की सूचना संचार क्रान्ति ने भोजपुरी फिल्मी के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।*

बीज शब्दः– संचार, लोकभाषा, लोक संस्कृति, रीति–रिवाजों, वैश्विक, अस्मिता।

भूमिकाः–साहित्य हमारी चित्तवृत्तियों का प्रतिबिम्बन करता है। हमारी चित्तवृत्तियों के भावों की अभिव्यक्ति में भाषा की महत्वपूर्ण भूमिका है। अभिव्यक्ति के स्तर पर देखें तो श्रव्य और दृश्य दोनों माध्यमों से साहित्य की अभिव्यक्ति होती है। दृष्य माध्यम से सामाजिक मनोभावों एवं परिस्थितियों के अंकन की परम्परा अत्यन्त प्राचीन काल से अब तक चली आ रही है। वर्तमान काल में दृष्य/श्रव्य माध्यम साहित्य के सम्प्रेषण का सषक्त माध्यम है। नाटकों से आरम्भ होने वाली परम्परा आज के तकनीकी समय में विभिन्न स्तरों पर हमारी सामाजिक स्थितियों एवं परिस्थितियों को अभिव्यक्ति प्रदान कर रही है। इस परम्परा में भारतीय सिनेमा के माध्यम से व्यापक सामाजिक सरोकारों का अंकन देखने को मिलता है।

भारतीय सिनेमा दुनियाभर में देखा और जाना जाता है। भारत में बोली जाने वाली बहुत सी भाषाओं में फिल्म निर्माण और फिल्मों के भाषान्तर की परम्परा चल रही है। इनमें सर्वाधिक फिल्में हिन्दी भाषा में निर्मित हो रही हैं। हिन्दी सिनेमा में भाषाई स्तर पर देखें तो अनेक प्रकार के प्रयोग हो रहे हैं। क्षेत्रीय आकांक्षाओं और यथार्थ की अभिव्यक्ति के कारण क्षेत्रीय भाषाओं और अन्य भारतीय भाषाओं के शब्दों और उनकी वाक्य–संरचना को

* असिस्टेंट प्रोफेसर, अमिटी लॉ स्कूल, अमिटी विश्वविद्यालय, उ.प्र.
** असिस्टेंट प्रोफेसर, अमिटी लॉ स्कूल, अमिटी विश्वविद्यालय, उ.प्र.

भी हिन्दी भाषा में स्थान मिलता रहा है। क्षेत्रीयता और राष्ट्रीय चेतना का सामंजस्य भारतीय परम्परा का मूल भाव है। इसी कारण आगे चलकर हिन्दी भाषा में सिनेमा के निर्माण के साथ–साथ अन्य भारतीय भाषाओं और बोलियों में सिनेमा निर्माण कार्य आरम्भ हुआ। सुचना–संचार क्रान्ति द्वारा यह भी संभव हुआ है कि देष या दुनिया के किसी भी क्षेत्र में रहते हुए हम अपनी मातृभाषा में फिल्में/समाचार/धारावाहिक इत्यादि देख सकतें हैं।

नयी सामाजिक परिस्थितियों और जीवन स्थितियों के परिणाम स्वरूप भोजपुरी भाषा में भी प्रचुर मात्रा फिल्मों का निर्माण आरम्भ हुआ। भोजपुरी में सिनेमा निर्माण की प्रक्रिया नयी संभावनाओं के द्वार खोले, जिसके परिणामस्वरूप भोजपुरी फिल्मों को विशेष ख्याति मिली। भोजपुरी फिल्मों के वर्तमान, भूत–भविष्य पर विचार करने से पूर्व भोजपुरी भाषा के गत और अनागत पर विचार करना श्रेयष्कर होगा।

भोजपुरी वर्तमान समय में एक ऐसी भाषा के रूप में विख्यात है जिसका तेजी से प्रसार हो रहा है। भोजपुरी शब्द का निर्माण विहार के प्राचीन नगर भोजपुर के आधार पर पड़ा। भाषाई परिवार के आधार पर देखें तो भेाजपुरी एक आर्यभाषा है। भेाजपुरी मुख्य रूप में विख्यात है जिसका तेजी से प्रसार हो रहा है।

भोजपुरी वर्तमान समय में एक ऐसी भाषा के रूप मे विख्यात है जिसका तेजी से प्रसार हो रहा है। भोजपुरी शब्द का निर्माण बिहार के प्राचीन नगर भोजपुर के आधार पर पड़ा। भाषाई परिवार के आधार पर देखे तो भोजपुरी एक आर्य भाषा है। भेाजपुरी मुख्यरूप से पश्चिम बिहार और पूर्वी उत्तर प्रदेष में बोली जाती है। व्यवहारिक रूप से भोजपुरी हिन्दी की एक उपभाषा है। हिन्दी की उपभाषा होने के कारण भोजपुरी अपनी शब्द–सम्पदा के लिए हिन्दी और संस्कृत की ऋणी है। अरबी/फारसी और उर्दू के शब्द भी भेाजपुरी में सामाजिक, सांकृतिक सम्मिलन के परिणाम स्वरूप हिन्दी में आ गये है।

भोजपुरी भाषा भारत में ही नहीं दुनिया भर में बोली एवं समझी जाती है। भोजपुरी भाषा को बोलने वाले लोग भारत के अतिरिक्त सूरिनाम, गुयाना, त्रिनिदाद, टोबैगो, फिजी और मारिसस में बहुसंख्यक के रूप में है। इन महाद्वीपों पर ब्रिटिश राज के समय में मजदूर के रूप में भेाजपुरी भाषी लोगों को ले जाया गया और वो लोग वहाँ जाकर बस गये ब्रिटिश औपनिवेश के समाप्त होने के बाद ये ही लोग अधिकारिक रूप से वहाँ शासन करने लगे। इस कारण भोजपुरी व्यापक स्तर पर बोली एवं समझी जाने लगी।

भोजपुरी भाषा की अनेक बोली शैलियाँ है। पश्चिमी बिहार की भोजपुरी पूर्वी उत्तर प्रदेष की भोजपुरी से नितान्त भिन्न हैं, इसी तरह वैश्विक स्तर पर बोली एवं प्रयोग की जाने वाली भोजपुरी की अलग–अलग शैलियाँ हैं। बानी और पानी बदलने की परम्परा भारतीय समाज में

कोश–कोश पर देखने को मिलती है। इसे शैली परिवर्तन या भाषा की विविध शैलियों में जाना एवं समझा जाता है। बिहार से निकलकर आज दुनियाँ के हर कोने में भोजपुरी बोली एवं समझी जा रही है। इस भाषा के प्रसार में भोजपुरी क्षेत्र के लोगों का है, जो जहाँ भी जाते हैं, वहाँ अपनी भाषा के साथ अनुराग रखते हैं और बोलते एवं प्रयोग करते हैं।

भोजपुरी भाषा आज वैश्विक स्तर पर अपनी पहचान बना चुकी है। इस पहचान के कारण भोजपुरी में बहुत सी फिल्में, धारावाहिक और अन्य मनोरंजक कार्यक्रमों का निर्माण और प्रसार वर्तमान समय में तेजी से हो रहा है। आज 21वीं सदी भोजपुरी सिनेमा एक मुकाम पर पहुँच चुकी है। इक्कीसवीं सदी के भोजपुरी सिनेमा का आज जो स्वरूप है, उसके निर्माण वीसवीं सदी उत्तरार्द्ध में आरम्भ तब हुआ जब बंबई में आयोजित एक फिल्मी समारोह में भारत के तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद ने लोगों से भोजपुरी में फिल्म बनाने का आह्वान किया।

सन् 1950 के वर्षांत में भारत के प्रथम राष्ट्रपति बंबई में आयोजित एक फिल्म समारोह में मुख्य अतिथि के रूप में संबोधित करते हुए कहा कि **''मैं जानता हूँ, यहाँ बैठे आप तमाम लोग फिल्मों से सम्बन्धित हैं, आप लोगों से मेरी भी एक मिन्नत है। शायद आप जानते होगें कि मेरी मातृभाषा भोजपुरी है, हालाँकि साहित्यिक तौर पर समृद्ध तो नहीं, लेकिन सांस्कृतिक विविधता में सनी बहुत ही प्यारी और संस्कारी बोली है। आप फिल्मकारों की पहल अगर इस ओर भी हो तो सबसे ज्यादा खुशी मुझे होगी।''**[1] उनके इस आह्वान से बिहार की सीमा पर स्थित गाजीपुर के निदेशक उनके पास पहुँचे और बोले– **''डॉ. समझी हम आजे से इ दिशा में प्रयत्नशील हो गइनी जा, रउवा शुभकामना करी।''**[2]

इस शुभकामना और प्रेरणा के ही परिणाम के स्वरूप में हम भोजपुरी सिनेमा के व्यापक और समृद्ध इतिहास और वर्तमान को देख एवं जान रहे हैं। धरती माई, बिहारी बाबू, विदेसियां, गंगा मईया तोहे पियरी चढाईबो, लागी नाहीं छूटे राम, दंगल आदि प्रमुख भोजपुरी फिल्में हैं। भोजपुरी के समान हीं अन्यभाषायें हैं– अवधी, ब्रजी, कन्नौजी, बुन्देली, मगही, बघेली, छत्तीसगढ़ी, मैथिली इत्यादि। लगभग इन सभी बोलियों को देवनागरी लिपि में लिखा जाता है, लेकिन भोजपुरी भाषा का विकास निरन्तर हो रहा है। इसका मुख्य कारण है कि भोजपुरी भाषा–भाषियों में अपनी भाषा के प्रति एक विशेष तरह का आकर्षण है। जो डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद के वक्तव्य में देखने को मिलता है।

1960 के दशक से आरम्भ हुआ भोजपुरी सिनेमा और मनोरंजन का सफर बदस्तूर जारी है। आज भारत हीं नहीं भारत के बाहर भी भोजपुरी चैनल देखे जा रहे। भोजपुरी के प्रमुख चैनल हैं– दिशुम टी0बी0, हंगामा टी0बी0, संगीत भोजपुरी, भोजपुरी सिनेमा टी0बी0 भास्कर, मुवी भोजपुरी, बी4यू भोजपुरी, महुआ टी0बी0 इत्यादि। इसके अलावा डी0डी0 बिहार, डी0

डी0 झारखण्ड, डी0डी0 उत्तर प्रदेश जैसे चैनलों के माध्यम से भी भोजपुरी सिनेमा एवं मनोरंजन के प्रसारण का कार्य किया जा रहा है।

20वीं सदी के अन्तिम दशक और 21वीं सदी के आरम्भिक दौर में भोजपुरी में फिल्मों के निर्माण में बहुत तेजी आयी है। भोजपुरी सिनेमा के महत्व के रेखांकित करते हुए महानायक अमिताभ बच्चन ने कहा है कि– **"हिन्दी के बाद शायद भोजपुरी ही एक ऐसी भाषा है, जो हिन्दुस्तान में सबसे ज्यादा बोली जाती है। इसलिए मैं अपनी ओर से विशेष बधाई देता हूँ और उम्मीद करता हूँ कि लोग भी भोजपुरी सिनेमा को प्रोत्साहित करेंगे।"**[3]

भोजपुरी सिनेमाके विकास में भोजपुरी भाषा ने अपना योगदान दिया। हिन्दी के बाद भोजपुरी ही एक भाषा है जिसका प्रसार निरन्तर हो रहा है। भोजपुरी भाषा के विकास और प्रसार में सर्वाधिक महत्वपूर्ण भूमिका भोजपुरी क्षेत्र के लोगों की जो अपने घर–परिवार से बाहर रहकर भी भिन्न भाषा परिवेष में रहते हुए भी अपनी भाषा के प्रति अनुराग बनाये हुए हैं। इसी अनुराग के परिणाम स्वरूप भोजपुरी भाषी अपने मनोरंजन के लिए भी अपनी भाषा को एक महत्वपूर्ण माध्यम के रूप में स्वीकार करते हैं।

भोजपुरी सिनेमा और भोजपुरी मे बनने वाले धारावाहिकों की सबसे बड़ी शक्ति भोजपुरी भाषीयों का अपनी भाषा के प्रति अनुराग ही है। भोजपुरी सिनेमाका विकास इक्कीसवीं सदी के आरम्भिक वर्षो में तेजी से हुआ, इसके विकास की पृष्ठभूमि 1960 के दशक में ही आरम्भ हो गयी थी। क्षेत्रीय भंगिमा के साथ–साथ क्षेत्रीय भाषा के प्रति रूझान हिन्दी सिनेमा में काफी समय से देखने को मिलता रहा है। रंगमंच और सिनेमा का अत्यन्त घनिष्ट संबंध है। रंगमंच का विकसित, परिष्कृत एवं परिमार्जित रूप ही सिनेमा है। हिन्दी सिनेमाके समान ही भोजपुरी सिनेमा को विकास की प्रक्रिया भी रंगमंच से ही होकर गुजरती है।

भोजपुरी रंगमंच से गुजरते हुए भोजपुरी सिनेमा आज एक मुकाम पर पहुँच चुकी है। अपनी विकास यात्रा में भोजपुरी सिनेमा अनेकानेक आरोह–अवरोह से गुजरते हुए वैष्विक फलक पर अपने आप को प्रतिष्ठत कर चुकी है। इक्कीसवी सदी में भोजपुरी सिनेमा का प्रसार सिने थियेटर के साथ–साथ टी0वी0 चैनल और मोबाइल तक पहुँच चुका है। भोजपुरी सिनेमा के वर्तमान स्वरूप के निर्माण में भोजपुरी क्षेत्र के लोगों का विषेष योगदान है। इस संबंध में विनय आनन्द का कथन है कि – "मै मुंबई का जरूर हूँ, लेकिन दिल से बिहारी हूँ, भोजपुरिया हूँ। मै भी चाहता हूँ कि भोजपुरी में मेरे दर्शक समाज के हर तबके के लोग बनें। इसके लिए सोच थोड़ी बदलनी पड़ेगी।"[4]

भोजपुरी सिनेमा में एक दौर ऐसा भी आया जब अश्लील फिल्मों का दौर आरम्भ हुआ, लेकिन आज भोजपुरी में ऐसी फिल्में बहुतायत बन रही हैं, जिन्हें हम अपने परिवार के साथ देख सकते हैं। 1979 में निर्मित 'बलम परदेशिया' ने भोजपुरी में सिने जगत में क्रान्ति की लहर पैदा कर दी।

अस्सी और नब्बे का दशक भोजपुरी फिल्मों के लिए सुनहरा दौर था। अत्यधिक तादाद की प्रमुख भोजपुरी फिल्में – हमार बेटवा (1990), भाई (1991), उधार की बेटी (1991), कजरी (1991), हो जाईद नैना चार (1992), राम जईसन भईया हमार (1993), कब अइहैं दूल्हा हमार (1993), बैरी कँगना (1993), जुग–जुगजिया मोरे लाल (1993), लागल चुनरी में दाग (1994), चल सखी दूल्हा देखी (1994) आदि हैं।

बीसवीं सदी में भोजपुरी सिनेमा का जो सफर आरम्भ हुआ, वह इक्कीसवीं सदीं में भोजपुरी सिनेमा का प्रसार तेजी से हुआ। आज भोजपुरी सिनेमा का कारोबार 2000 करोड़ से अधिक का है। 2003 में 'ससुरा बड़ा पइसावाला' का निर्माण हुआ, यह अब तक की सर्वाधिक कमाई वाली भोजपुरी फिल्म है। वर्तमान समय में निर्मित भोजपुरी फिल्में अपने सामाजिक सरोकारों और लालित्य पूर्ण संवादों के कारण उस समाज द्वारा भी स्वीकृत हो रही हैं, जिस समाज की मातृभाषा भोजपुरी नही है। यह हम भोजपुरी भाषियों की शक्ति ही है। भोजपुरी एक समृद्ध भाषा है और निरन्तर समृद्ध होती जा रही है। इसकी समृद्धि का आधार भोजपुरी क्षेत्र के लोगों द्वारा विष्वभर में आना –जाना और वहाँ रहकर भी अपनी भाषा को जीवन्त रखना भोजपुरी भाषा के प्रति अनिवार्य आकर्षण ही है।

भाषा और समाज का घनिष्ठ संबंध है। कोई भी भाषा तभी जीवित रहती है जब उसे व्यवहार करने वालों की संख्या निरन्तर बढ़ती रहे और उस भाषा में साहित्य रचा जा रहा हो। आज के समय भोजपुरी भाषा में फिल्मों के निर्माण के साथ–साथ अच्छे से अच्छे गीत एवं संवाद लिखे जा रहे है। यही भोजपुरी फिल्मों की सबसे बड़ी उपलब्धि है। भोजपुरी सिनेमा के महत्वपूर्ण सफर को रेखांकित करते हुए फिल्म समीक्षक अंशु त्रिपाठी ने लिखा है कि–

"अपने संघर्ष से अपनी जमीन बनाने वाले भोजपुरी सिनेमा ने अपने सफर में कई उतार–चढ़ाव देखें हैं। सन् 1962 से लेकर अबतक करीब ढाई सौ भोजपुरी फिल्में बन चुकी है। और इसका सफर अब भी जारी है। यद्यपि बीच में ऐसे दौर भी आये जब इस भाषा में फिल्में बननी बंद हो गयीं। फिर भी इसका सिलसिला रूका नहीं। .....वर्षो की एक लम्बी यात्रा तय करने के बाद भोजपुरी फिल्में आज उस सुखद ऐतिहासिक स्थिति में पहुँच गयीं है, जहाँ उसके सांस्कृतिक अस्तित्व और व्यवहारिक महत्व से कोई इंकार नही कर सकता।"[5] भोजपुरी समाज की अपनी सांस्कृतिक और धार्मिक मान्यता और आस्था है। इसका प्रभाव भोजपुरी सिनेमा पर इसी सांस्कृतिक आस्था का प्रभाव भोजपुरी फिल्मों के शीर्षक से भी द्योतित होता है– धरती मइया, गंगा मईया तोहे पियरी चढ़ाईबो, नदीया के पार, गंगा किनारे मेरा गांव, दुल्हा गंगा पार के, भैया दूज, बैरी सावन, बसुरिया बाजे गंगा तीरे, गंगया मैया करादे मिलनवा, गंगा और गोदना इत्यादि। अपनी धरती और प्रकृति के प्रति भोजपुरी सिनेमा की आस्था देखते ही बनती है।

गंगा और गांव की महत्ता भोजपुरी सिने जगत में आदि से लेकर अब तक देखने को मिल रही है। लोक जीवन और लोक संस्कृति के प्रति अगाध आस्था का भाव ही आज भोजपुरी फिल्म जगत को निरन्तर प्रगति के पथ पर अग्रसर किये हुए है।

लोक भाषा, लोक संस्कृति और लोक जीवन से भोजपुरी सिनेमा का सफर आरम्भ होता है। इक्कीसवी सदी में भी फिल्मों की विषय–वस्तु अधिकाषतः लोक जीवन और लोक संस्कृति ही है। बीसवीं सदी के आरम्भ से भोजपुरी सिने जगत में एक विशेष उत्साह देखने को मिलता है। 2003 में निर्मित मनोज तिवारी की 'ससुरा बड़ा पैसा वाला' ने अपने सरोकारों के कारण कमाई का नया कीर्तिमान स्थापित किया। यहाँ से भोजपुरी सिनेमा पुनर्जिवित होकर निरन्तर विकासवान है। 2003 से लेकर अब तक भोजपुरी सिनेमा में जो नयापन आया उसमें सूचना एवं संचार क्रान्ति का विशेष योगदान है। सन् 2009 भोजपुरी मनोरंजन जगत के विशेष महत्व का है।

इस वर्ष हमार टी0वी0 और महुआ टी0वी0 समेत अनेक भोजपुरी चैनल आये। भोजपुरी चैनल के साथ–साथ भोजपुरी फिल्म की ट्रेड मैगजीन भोजपुरी सिटी एवं भोजपुरी संसार समेत कई सिनेमाई पत्रिकाओं का प्रकाशन आरम्भ हुआ। इसके साथ–साथ देष के प्रतिष्ठित समाचार पत्रों में और न्यूज पोर्टल पर भी भोजपुरी मनोरंजन जगत से जुड़ी खबरों का प्रकाशन आरम्भ हुआ। इक्कीसवीं सदी में भोजपुरी एक भाषा के रूप में समृद्ध हुई ही है, इसके साथ–साथ सिने जगत में भी व्यापकता देखने को मिलता है।

इक्कीसवीं सदीं अपने आरम्भ से ही भोजपुरी सिनेमा के लिए बहुत उर्वर रहा है। या वह समय है जब भोजुपरी सिनेमा की ओर हिन्दी सिनेमा के नामी कलाकारों का रूझान बढ़ा। भोजपुरी फिल्मों में कार्य करने वाले प्रमुख नायक/नायिका है– अमिताभ बच्चन, अजय देवगन, लूही चावला, मिथुन चक्रवर्ती इत्यादि। धीरे–धीरे भोजपुरी सिनेमा में आय बढ़ी और आय बढ़ने के साथ–साथ भोजपुरी फिल्मों का बजट भी बढ़ा, और इसकी शूटिंग लंदन, मारिशस और सिंगापुर में भी होने लगी। इस दौरान हिन्दी फिल्मों के कई बड़े निर्माता–निर्देशक जैसे– सुभाष घई, सायरा बानो और राजश्री प्रोडक्शन आदि ग्रुप भोजपुरी फिल्में बनाने के लिए अग्रसर हुए। भोजपुरी भाषा और फिल्मों का विकास निरन्तर समानान्तर गति से होता रहा है। इसका प्रमुख कारण इसकी लोक के प्रति अगाध जुड़ाव ही है। लोक पर्व, लोक जीवन, लोक गीत, लोक रंग और लोक संस्कृति के रूप भोजपुरी फिल्मों में देखने को मिलती है। भोजपुरी सिनेमा वर्तमान समय में देश–देशान्तर में देखी जा रही है। इसे दृष्टिगत रखते हुए अंशु त्रिपाठी वर्तमान समय को भोजपुरी सिनेमा का स्वर्ण युग कहते हैं– **''भोजपुरी सिनेमा अपने विकास के स्वर्णिम युग में है। भोजपुरी समाज से इतर भी इसने अपना दर्शक वर्ग निर्मित किया है। बिहार और उत्तर प्रदेश के अलावा**

देश के अन्य भागों में भी भोजपुरी फिल्में देखी जा रहीं हैं। भोजपुरी सिनेमा के निर्माण में बृद्धि से उत्तर प्रदेश, बिहार के बहुत सारे सिनेमा घरों को जीवनदान मिल गया है, जो बंद होने के कगार पर आ गये थे। भोजपुरी सिनेमा ने उन सभी कलाकारों को कैरियर भी प्रदान किया, जो हिन्दी सिनेमा में अवसर तलाश कर रहे थे और जिनका कैरियर अपने ढलान पर था। भोजपुरी सिनेमा के सबसे सफल अभिनेता रविकिशन ने भी हिन्दी सिनेमा में असफल होने के बाद भोजपुरी का दामन था, जिसके बाद उन्होनें सफलता की ऊँचाइयाँ छुईं और भोजपुरी सिनेमा में सफल होने के वजह से ही हिन्दी सिनेमा में भी काम मिलना शुरू हुआ तथा एक अच्छे अभिनेता के रूप में उनकी पहचान बनी।"[6]

हिन्दी और भोजपुरी दोनों भाषाएं एक ही भाषा परिवार की हैं। दोनों भाषाओं में व्याकरणिक एवं शब्दावली के स्तर बहुतायत समनताएँ हैं। भोजपुरी भाषा हमेशा से हिन्दी भाषा एवं साहित्य को प्रभावित करती रही है। भोजपुरी साहित्यकारों ने हिन्दी सिनेमा को अनेक विषय–वस्तु प्रदान किया है। 1960 से आरम्भ हुआ भोजपुरी सिनेमा का सफर आज भी उत्तरोंत्तर विकासमान है। इक्कीसवीं सदीं में भोजपुरी सिनेमा के क्षेत्र में काफी प्रगति हुई है। अपनी माटी, अपनी भाषा और अपने लोगों के प्रति अगाध लगन एक महत्वपूर्ण कारण रहा। इसके साथ–साथ सूचना संचार की क्रान्ति ने भोजपुरी सिनेमा को उसके दर्शकों और आस्वादकों तक पहुँचाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

भोजपुरी सिनेमा के स्वरूप में जो भी विस्तार हुआ है उसका सबसे महत्वपूर्ण कारण इसकी मिठास और लोक संस्कृति मिठास और लोक संस्कृति के प्रति लगाव है। इक्कीसवीं सदी के भोजपुरी फिल्मों की महत्वपूर्ण विषेषताएँ निम्नलिखित है–

1. लोक जीवन का जीवन्त अंकन।
2. लोक गीतों एवं लोक धुनों का फिल्मांकन।
3. लोक संस्कृति के विविधता का अंकन और चित्रण।
4. भोजपुरी क्षेत्र में प्रचलित पर्वो एवं रीति–रिवाजों का अंकन।
5. भोजपुरी फिल्मों के माध्यम से भोजपुरी क्षेत्र की आकांक्षाओं को प्रस्तुत कर वैश्विक स्तर पर पहुँचाने में योगदान।
6. भोजपुरी सिनेमा का हमारी भाषाई और सांस्कृतिक अस्मिता के सरंक्षण में विशेष योगदान।

इक्कीसवीं सदीं में भोजपुरी सिनेमा ने सिने जगत में भी अपना विषेष स्थान बना लिया है। भोजपुरी सिनेमा जगत का तेजी से विकास हो रहा है। इस विकास का सबसे बड़ा कारण भोजपुरी क्षेत्र की समृद्ध सांस्कृतिक विरासत है। गंगा भोजपरी क्षेत्र की लाइफ लाइन है और यह जीवन धारा भोजपुरी फिल्मों का सषक्त आधार है। भोजपुरी भाषा की विषेषता के सन्दर्भ में हिन्दी सिनेमा के महानायक अमिताभ बच्चन का कथन

है कि– **''हिन्दी के बाद शायद भोजपुरी ही एक ऐसी भाषा है जो हिन्दुस्तान में सबसे ज्यादा बोली जाती है। इसलिए मैं अपनी ओर से बधाई देता हूँ और उम्मीद करता हूँ कि लोग भी भोजपुरी सिनेमा को प्रोत्साहित करेंगें। भोजपुरी सिनेमा को सबसे ज्यादा प्रोत्साहन भारत के प्रथम राष्ट्रपति बाबू डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद जी से मिला था। उसी क्रम में हमारे सिनेमा–जगत् के बहुत ही नामी हस्ती नजीर हुसैन साहब से भोजपुरी सिनेमा का बहुमूल्य योगदान प्राप्त हुआ। मैने स्वयं भी भोजपुरी सिनेमा में काम किया है, उम्मीद करता हूँ कि मेरी तरह और भी कलाकार भोजपुरी सिनेमा में काम करेंगे। जैसा कि मैं मानता हूँ, सिनेमा की भाषा एक होती है, वह चाहे हिन्दी में बने या भोजपुरी में– भावनाएँ तो एक ही होती है।''**[7]

निष्कर्षः– भोजपुरी सिनेमा और भाषा का उज्जवल भविष्य है। इक्कीसवीं सदी की सूचना संचार क्रान्ति ने भोजपुरी फिल्मों के विकास और प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। भोजपुरी सिनेमा और भाषा की व्यापकता आज वैश्विक स्तर पर देखने को मिल रही है। भोजपुरी टी0वी0 चैनल, रेडियों चैनल, पत्र–पत्रिकाओं द्वारा भोजपुरी क्षेत्र की सांस्कृतिक विरासत के सहेजने की दिशा में जो भी प्रयास हो रहे हैं उसका आरम्भ भोजपुरी फिल्मों से ही हुआ है। समग्रतः भोजपुरी सिनेमा आज एक विशिष्ट स्थान पर पहुँच चुका है, जिससे भोजपुरी क्षेत्र के लोगों को सांस्कृतिक, भाषाई समृद्धि के साथ–साथ आर्थिक स्तर पर भी लाभ हो रहा है।

सन्दर्भ :

1. रविराज पटेल (2015) भोजपुरी फिल्मों का सफरनामा, प्रभात पेपर बैक्स, नई दिल्ली, पृष्ठ
2. रविराज पटेल (2015) भोजपुरी फिल्मों का सफरनामा, प्रभात पेपर बैक्स, नई दिल्ली, पृष्ठ
3. रविराज पटेल (2015) भोजपुरी फिल्मों का सफरनामा, प्रभात पेपर बैक्स, नई दिल्ली, पृष्ठ बैक कवर।
4. रविराज पटेल (2015) भोजपुरी फिल्मों का सफरनामा, प्रभात पेपर बैक्स, नई दिल्ली, पृष्ठ 160
5. अंशु त्रिपाठी (2015) भोजपुरी सिनेमा का सफर, किताब गंज प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 51
6. अंशु त्रिपाठी (2015) भोजपुरी सिनेमा का सफर, किताब गंज प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 74'–75
7. रविराज पटेल (2015) भोजपुरी फिल्मों का सफरनामा, प्रभात पेपर बैक्स, नई दिल्ली, बैक कवर।
8. Bhojpuri Ethnologue, world Language (2009)
9. Hi.wikipedia.org/wiki/ भोजपुरी भाषा
10. Naidunia.com/enterainment/ballywood-top-higest-grorsing-bhojpuri-moviesof-all-time-2134467.

***

राष्ट्रीयता के प्रतीक एवं समाज के पथ प्रदर्शक : प्रेमचंद

डॉ. बंकटेश्वर नाथ *

सामाजिक पथ प्रदर्शक जिसने किसानों, मजदूरों की दुर्दशा, बेबसी, विद्यार्थियों, सामाजिक बंधनों मं तड़पती नारियों की वेदना, वर्ण व्यवस्था की कठोरता से संत्रस्त अछूतों की करूण पुकार को स्वर देकर समाज के सामने अपने साहित्य के माध्यम से उजागर करनेवाले ये साहित्यकार कोई और नहीं हिंदी के प्रथम मौलिक उपन्यासकार एवं युग प्रवर्तक मुंशी प्रेमचंद जी हैं।

हिन्दी के क्षेत्र में प्रेमचंद की कहानियों से एक नवीन युग का आरंभ हुआ। हिन्दी के क्षेत्र में आने के पूर्व उर्दू में लिखा करते थे। ''मैं मजदूर हूँ, जिस दिन न लिखूँ, उस दिन मुझे रोटी खाने का अधिकार नहीं है।'' महानतम उपन्यासकार यथार्थवाद कथाकार स्वयं को मजदूर की श्रेणी का मानने वाले इस लेखक का जन्म वाराणसी से छह किलोमीटर दूर एक छोटे से ग्राम में लमही में शनिवार 31 जुलाई 1880 को हुआ। इनके पिता अजायब राय और माता आनंदी थी। पिता डाकखाने में लिपिक थे और लोगों में मुंशी अजायब राय के नाम से जाने जाते थे। माता–पिता ने इनका नाम रखा घनपत राय और चाचा इन्हें प्यार से नवाब पुकारते थे। इनकी माता अक्सर बीमार रहती थी और पिता को उनकी दवा, दारू एवं सुश्रूषा से फुरसत नहीं मिल पाती थी। सात वर्ष के आयु में माँ के स्वर्गवास ने बालक घनपत राय के बचपन के जीवन रस को ही सोख लिया। कुछ समय बाद पिता अजायब राय ने दूसरा विवाह कर लिया और इस प्रकार बालक घनपत राय का मासूम बचपन विमाता के क्रोध, लांछन तथा हर समय की डांट की भेंट चढ़ गया। स्कूल की शिक्षा पूरी करने के बाद अनेक प्रकार के संघर्षों से गुजरते हुए उन्होंने बी.ए. की पढ़ाई पूरी की। इक्कीस वर्ष की उम्र में उन्होंने लिखना प्रारंभ किया। लेखन की शुरूआत उर्दू में नवाब राय नाम से किया और 1910 में उनकी उर्दू में लिखी कहानियाँ का पहला संकलन 'सोजे वतन' नाम से प्रकाशित हुआ। इस संकलन को ब्रिटिश सरकार ने जब्त करवा दिया। इसके बाद इनके जीवन में एक नया मोड़ आया। अपने लेखन का माध्यम उन्होंने हिंदी भाषा को बनाया और 'प्रेमचंद' नाम से लिखना शुरू किया। आगे चलकर यही नाम भारतीय कथा–साहित्य में अमर हुआ। प्रेमचंद ने 1920 तक सरकारी नौकरी की। इसी समय उपनिवेशवादी ब्रिटिश शासन के विरूद्ध पूरे देश में सत्याग्रह शुरू हुआ जिसका उनके मन पर गहरा असर हुआ और उन्होंने नौकरी से त्यागपत्र दे दिया। प्रेमचंद ने 1923 में सरस्वती प्रेस की स्थापना की और 1930 में 'हंस' नामक ऐतिहासिक पत्रिका का संपादन प्रकाशन शुरू किया। प्रेमचंद ने लगभग तीन सौ कहानियाँ लिखी।

उनकी अग्निधर्मा प्रथम कथाकृति 'सोजे वतन' देश–प्रेम और आजादी के दीवानों की शहादतें संदर्भित पाँच जलती हुई कहानियों का संकलन है। इनकी पंक्तियों से गुजरे हुए देश–माता के चरणों में अपने प्राणों की आहुति

---

* पूर्णियाँ

देने वाले की याद में हमारे मस्तक सहज ही नत–विनत हो जाते है। तत्कालीन क्रूर अंग्रेज शासक इसे वर्दाश्त न कर सके और बौखलाहट में 'सोजे वतन' पर जब्ती का नादिरशाही फरमान जारी कर दिया। साथ ही उसकी पाँच सौ प्रतियाँ जलाकर खाक कर दी गई। किंतु प्रेमचंद की कलम से निकलने वाले देश प्रेम एवं दलित संघर्ष का प्रवाह गतिमान हुआ, तो अविराम प्रखर से प्रखरतर होता गया। हो, तब वे 'नवाब राय' ने रहकर सम्पूर्ण रूप से हिन्दी के समर्पित कथाशिल्पी 'प्रेमचंद' हो गए।

मुझे प्यारे हिन्दुस्तान से किसी जालिम की सख्तियों और इंसाफ के जवर्दस्त हाथों ने अलग नहीं किया था। नहीं जालिम का जुल्म और कानून की सख्तियाँ मुझसे चाहे करा सकती है मगर मेरा वतन मुझसे नहीं छुड़ा सकती। जुडे हुए शब्दों को अलग करना व्यास कहलाता है। गूढ़ गंभीर सूत्रात्मक भावों और विचारों को पृथक–पृथक करके उनको फैलाकर, सीधी सरल भाषा में समझाने की दृष्टि से उनकी व्याख्या–सी कर देने वाली शैली। प्रेमचंद के उपरांत हिन्दी उपन्यास कई मोड़ो से गुजरता हुआ दिखाई पड़ता है, जिन्हें स्थूल रूप से तीन दशकों में बांटा जा सकता है 1950 ई0 तक के उपन्यास 1950 से 1960 तक के उपन्यास और साठोत्तरी उपन्यास प्रेमचंद जी में समाज के साथ व्यक्ति के व्यक्ति के एकीकृत होने के प्रश्न को अधिक महत्व दिया। कर्मभूमि में सलीम के द्वारा अमरकांत को गजल सुनना – आपको मेरी वफा याद आयी, खैर है, आज यह क्या याद आयी।

किन्तु अमरकांत का व्यथित हृदय गजल सुनने को तैयार ही नहीं है फिर भी कहा– नाजुक चीज है खूब कहा है। मैं तुम्हारी जबान की सफाई पर जान देता हूँ। आधुनिक हिंदी की सर्वाधिक महत्वपूर्ण विधा कहानी और उपन्यास को प्रतिष्ठित करने में अपने योगदान के लिए प्रेमचंद 'उपन्यास सम्राट' कहलाए। प्रगतिशील, मानवतावादी दृष्टि से पूर्ण उनकी कहानियाँ और उपन्यासों में भारतीय जनचेतना को सर्वाधिक प्रमाणित किया। प्रेम जब तक स्वार्थ पर टिका रहता है तब तक वह शत्रुता के बीज बोता है। सांस्कृतिक जीवन में धैर्य, दर्शन, नीति के साथ काम और साहित्य का भी महत्वपूर्ण स्थान है।

नेपथ्य से भारत दुर्दशा का कर्कश स्वर सुनकर भात को मूर्च्छा आ जाती है। ऐसा कौन कह सकता है कि अग्रेजी अलमदारी में हिन्दू न सुधरे। लिया भी तो अंग्रेजों से औमुन कुछ लिखे–पढ़े देश सुधारना चाहते हैं। एक चने से भाड़ फोडेंगे। ऐसे लोगों को हर तरह से खारिज न करके जितना जो बड़ा मेरा मित्र हो उसको उतना ही बड़ा मेडल और खिताब दी है। हमारी पालिसी के विरूद्ध उद्योग करते हैं, मूर्ख।'' एक ओर अंग्रेजी राज्य की प्रशंसा, दूसरी ओर उसका विरोध। इस प्रकार का विरोधाभास भारत के प्रत्येक अंचल के नवजागरण में मिलेगा। भारतीय उद्योगधन्धे को अंग्रेजों ने नष्ट किया यह तो सही है पर इसके लिए हमारी अकर्मण्यता कम उत्तरदायी नहीं है।

प्रेमचंद ने अपने उपन्यास ''कर्मभूमि'' के पात्र (चंद्रकांत) के माध्यम से अपने मन की वेदना को इस प्रकार प्रकट किया – ''बचपन वह आयु है जब इंसान को मुहब्बत की सबसे ज्यादा जरूरी पड़ती है। उस समय पौधे को तरी मिल जाए तो जिंदगी भर के लिए उसकी जड़े मजबूत हो जाती है। उनकी माँ

के देहान्त के पश्चात उनकी रूढ़ को खुराक नहीं मिली। यही भूख उनकी जिंदगी बन गई। अनगिनत पन्ने लिख–लिख कर फाड़ डाले जाते। इसी आयु में पुत्र के पांवों में अण्टधातु की बेड़ियाँ डाल पिता अजायब राय ने सदा के लिए अपनी आँखें मूंद लीं। घोर निर्धनता, पिता की अससमय मृत्यु उतरदायित्व के साथ–साथ बढ़ता खर्च। उनके पांव में जुते न थे, देह पर साबुन कपड़े न थे, महंगाई अलग थी। नौकरी के साथ साथ क्वींस कॉलेज में पढ़ते थे। फीस माफ थी। परीक्षा काफी नजदीक थी पर एक लड़के को पढ़ाने बांस फाटक जाना पड़ता। छह बजे तक पढ़ाकर पैदल घर पहुँचते–पहुँचते आठ बज ही जाते। सारे दिन की हाड़ तोड़ मेहनत रात को कुप्पी की रोशनी में बैठकर पढ़ना प्रायः पुनः आठ बजे घर से निकल जाना। उक्त कठिनाइयों के चलते द्वितीय श्रेणी में मैट्रिक पास किया। इण्टरमीडिएट में गणित विषय आवश्यक होने के कारण दो बार अनुर्त्तीण रहे। कुछ समय बाद जब गणित विषय वैकल्पिक बन गया तब कहीं परीक्षा देना संभव हुआ। विवशता में पाठ्यक्रम की पुस्तकें बेचते समय छोटे से स्कूल के प्रधानाचार्य ने इनकी कुशलता एवं लगन से प्रभावित होकर दस रूपये में सहायक अध्यापक नियुक्त किया। पुस्तकें चाटने का शौक उन्हें बचपन से ही था। सन 1904 तक प्रेमचंद 'जमाना' पत्रिका के एक प्रतिष्ठित लेखक के रूप में जानने लगे। सन् 1905–1920 तक जनसंपर्क की भाषा हिन्दी में लिखना प्रारंभ किया। इसी वर्ष उनकी कहानियों का संग्रह 'समरयात्रा' अंग्रेजों द्वारा आपत्तिजनक घोषित कर जब्त कर लिया गया। ईमानदान विनम्र एवं स्वाभिमान प्रेमचंद का वैवाहिक जीवन कफल न रहा। मूढ़, हठीली, झगड़ालु, अशिक्षित, आयु में बड़ी पत्नी से प्रेमचंद 1903 तक किसी तरह निर्वाह करने के बाद अलग हो गए और समाज में साहस का परिचय देते हुए शिक्षित बाल विधवा शिवरानी देवी से विवाह कर लिया। 1920 तक आते–आते धोंती, कुरता एवं गाँधी टोपी अपना ली। देशप्रेम के कमल कई बार अच्छी–अच्छी सरकारी नौकरियों को त्याग प्रेस चलाने का कष्टसाध्य कार्य अपनाया। स्वयं को कलम का सिपाही मानकर प्रेमचंद ने अपनी कलम द्वारा जनता में आजादी का अलख जगाने का बीड़ा उठाया और पत्नी शिवरानी देवी को क्रांतिकारी स्त्रियों के आंदोलन में शामिल होकर जेल जाने को प्रोत्साहित किया। प्रेमचंद देश की स्वतंत्रता को 'बहुजन सुखाय, बहुजन हिताय' मानते रहे।

प्रेमचंद जी का लगाव धरती से ज्यादा रहा। उनके उपन्यासों, कहानियों का विषय–वस्तु भारतीय जनजीवन से जुड़ी हुई है। 'निर्मला' में अनमेल विवाह की समस्या है तो 'रंगभूमि' में किसान और मजदूरों के शोषण–दमन की मार्मिक ढंग से वर्णित किया है। 'सेवा सदन' में वैश्यावृत्ति संबंधित समस्याएँ है तो 'रंगभूमि' में शोषक वर्ग के अत्याचार तथा शोषित वर्ग की वेवसी का मार्मिक चित्रण है, वहीं 'प्रेमाश्रम' में ग्रामीण जीवन की सजीव झलक देखने को मिलती है। इनके साहित्यिक निबंध कुछ विचार संग्रह में संकलित है। सामाजिक एवं राजनैतिक निबंधों का संग्रह 'विविध प्रसंग' नाम से तीन भागों में प्रकाशित है। इनकी प्रमुख कहानियाँ 'मान सरोवर' नाम से आठ भागों में संग्रहीत है।

गुलामी, शोषण, स्वार्थ, ढंभ, रूढ़ि, ढ़ोन, अत्याचार, अन्याय, वर्ण– व्यवस्था साधारण ग्रामीणों की लाचारी आदि सामाजिक बुराइयों की जड़ो को खोदने की हद तक अपनी लेखनी का प्रयोग निर्बाध एवं निर्भय होकर किया। समाज के पददलित, उपेक्षित, अपमानित कृषकों की आवाज लोगों तक पहुंचाई, उपेक्षिता, लांक्षिता, दबी, पर्दे में कैद असहाय नारी जाति की गरूण पुकार समाज के चप्पे–चप्पे में पहुंचाने का पावन कार्य किया। समाज की ऐसी कोई भी समस्या चाहे वह धनिकों से जुड़ी हो या निर्धनों से, बाबू वर्ग से जुड़ी हो या साधारण लिपिक अथवा चपरासी वर्ग से, कृषक से जुड़ी हो या जमींदार से, पारिवारिक समस्या हो या राजनैतिक अथवा सामाजिक, शोषक से जुड़ी हो या शोषित से, देशभक्त क्रांतिकारियों से जुड़ी हो या अंग्रेजी पिटठुओं से ऐसी कोई भी समस्या नहीं जिसने प्रेमचंद जी की लेखनी को छुआ न हो। तभी इन्हें धरती का लेखक कहा जाता है।

उनकी कहानियों एवं उपन्यासों के पात्र काल्पनिक पात्र की अपेक्षा साक्षात धरातल के पात्र है। जिनकी समस्याएँ गांव एवं शहर की वास्तविक है। इनकी रचनाएँ सरल, स्पष्ट, सहज, कलात्मक एवं यर्थावादी है जो इन्हें 'युगद्रष्टा साहित्यकार' का दर्जा देती हैं ये सामाजिकों की छोटी से छोटी, गूढ़ से गूढ़ समस्याओं को आत्मसात करके अपने पात्रों के माध्यम से उसे अनावृत्व करने में सफलतम रहे हैं। 'मंगलसूत्र' 'गोदान' आदि उपन्यासों का फिल्मांकन किया गया है। अपनी गरीबी दूर करने को प्रेमचंद फिमनगरी मुंबई गए, पर लेखनी के प्रति ईमानदारी, यथार्थवादिता के संकल्प होने तथा धनपतियों एवं मुंबई के रास न आने वाले प्रवास ने उन्हें अपने कर्मक्षेत्र 'प्रेस' में लौटने पर वाध्य किया। स्वास्थ्य दिन पर दिन गिरता जा रहा था, किन्तु उपन्यास सम्राट का समाज को कम से सम समय में अधिक से अधिक पठन–सामग्री उपलब्ध कराने का प्रण। खाना हजम नहीं कर पाते थे, पेट में पानी भर गया था, रक्त वमन करने लगे थे, दूध एवं फलों का रस तक पचाने में असमर्थ हो गए थे, पर लिखने की लालसा पूर्ण नहीं हो पा रही थी। पत्नी शिवरानी देवी की निरंतर सहायता करने पर भी 'मंगलसूत्र' के केवल चार अध्याय ही लिख पाए थे।

अपने बचपन मुहब्बत की भूख को असहाय निर्धन शोषित किसानों के दर्द को निर्धनता एवं रूढ़ियों में जकड़े जर्जर ग्रामीणों को उपन्यासों एवं कहानियों के पात्रों के माध्यम से जीवंत रखने वाला, अपनी लेखनी के माध्यम से देशभक्ति की अलख लगाने वाला, 'मजदूर लेखक' एवं कलम का सिपाही युद्रष्टा साहित्यकार 8 अक्टूबर, सन् 1936 को रात के पिछले पहर, मात्र 56 वर्ष की अल्पायु में संसार से विदा हो गए। यह वही वर्ष था जिसमें मैक्सिम गोर्की एवं शरत्चंद्र जैसे महान साहित्यकारों ने भी जीवन को अलविदा कहा था।

सन्दर्भ :

- प्रेमचंद : सोजे वतन, पृ. 36
- डॉ. प्रेमकांत टण्डन : आचार्य शुक्ल और चिन्तामणी पृ. 23
- डॉ. नगेन्द्र : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. 673
- प्रेमचंद : कर्मभूमि, पृ. 07
- सुरेश चन्द्र श्रीवास्तव : विभीषिका, पृ. 83.
- डॉ. विनय कु. चौधरी : जिन्दा तुम्हें कबीर मिलेगा, पृ. 05.
- बच्चन सिंह : हिन्दी नाटक, पृ. 34.

***

प्रेमचन्द-साहित्य में औद्योगीकरण का संदर्भ

डॉ. कविता राजन *

प्रेमचंद भारतीय समाज एवं अर्थव्यवस्था में ग्रामीण संस्कृति के पक्षधर थे। उनकी अधिकांश रचनाओं की पृष्ठभूम में गांव ही हैं, किन्तु उनकी कृतियां नगरों का भी ध्यान रखती हैं। प्रेमचंद ने गांव और शहर का प्रायः समानान्तर वर्णन करते हुए नगर की तुलना में ग्रामीण–व्यवस्था को अधिक मानवीय एवं उन्नत सिद्ध किया है। प्रेमाश्रम में राय कमलानन्द कुटीर उद्योगों की स्थापना के पक्ष में तर्क देते हुए कहते हैं– "निश्चय ही उनके (किसानों के) लिए जीवन–निर्वाह के अन्य साधनों का अवतरण होना चाहिए, नहीं तो उनका पारस्परिक द्वेष और संघर्ष उन्हें हमेशा जमींदारों का गुलाम बनाए रखेगा; चाहे कानून उनकी कितनी ही रक्षा और सहायता क्यों न करे। किन्तु यह साधन ऐसे होने चाहिए जो उनके आचार–व्यवहार को भ्रष्ट न करें। उन्हें घर से निर्वासित करके दुर्व्यसनों के जाल में न फंसायें, उनके आत्माभिमान का सर्वनाश न करें। और यह उसी दशा में हो सकता है जब घरेलू शिल्प का प्रचार किया जाए और वह अपने गांव में कुल और बिरादरी की तीव्र दृष्टि के सम्मुख अपना–अपना काम करते रहें।"[1]

प्रेमचंद औद्योगीकरण का विरोध नैतिक कारणों से करते हैं। प्रेमाश्रम के राय कमलानन्द इस संबंध में प्रेमचंद के विचारों का प्रतिनिधित्व करते हुए कहते हैं– "मैं नहीं चाहता कि वे (किसान) लाभ के वश अपने बाल–बच्चों को छोड़कर कम्पनी की छावनियों में जाकर रहें और अपना आचरण भ्रष्ट करें। अपने गांव में उनकी एक विशेष स्थिति होती है। उनमें आत्म–प्रतिष्ठा का भाव जाग्रत रहता है। बिरादरी का भय उन्हें कुमार्ग से बचाता है। कम्पनी की शरण में जाकर वह अपने घर के स्वामी नहीं, दूसरे के गुलाम हो जाते हैं और बिरादरी के बंधनों के बंधनों से मुक्त होकर नाना प्रकार की बुराइयां करने लगते हैं।"[2] प्रेमचंद में किसान–जीवन के प्रति एक प्रकार का 'रोमांटिक' भाव पाया जाता है। वे किसान जीवन को धर्म एवं नैतिकता की दृष्टि से उत्तम मानते हैं। इस प्रकार वे किसानों को मजदूर होते देखना पसन्द नहीं करते हैं। रंगभूमि का सूरदास कारखाने के लिए जमीन देने का विरोध इसी भाव से करता है। वह कारखाने के खुलने को किसानों पर विपत्ति का आना मानता है। वह कहता है– "भाई, खेती सबसे उत्तम है, बान उससे मद्धिम है; बस, इतना ही फरक है। बान को पाप क्यों कहते हैं, और क्यों पापी बनते हो? हां, सेवा निरधिन है और चाहो तो उसे पाप कहो। अब तक तो तुम्हारे ऊपर भगवान की दया है, अपना–अपना काम करते हो; मगर ऐसे बुरे दिन आ रहे हैं, जब तुम्हें सेवा और टहल

* एसोसिएट प्रोफेसर, सत्यवती महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

करके पेट पालना पड़ेगा, जब तुम अपने नौकर नहीं, पराये के नौकर हो जाओगे, तब तुममें नीति–धरम का निसा भी न रहेगा।"[3] सूरदास औद्योगिक उन्नति से होने वाले आर्थिक लाभों को स्वीकार करता है, किन्तु इस औद्योगिक विस्तार के साथ अनिवार्य रूप से फैलनेवाली अनैतिक कुरीतियों से वह अधिक भयभीत है। जब चतारी के राजा महेन्द्र कुमार सिंह मि. जॉनसेवक के कहने पर सूरदास से उसकी जमीन लेने के लिए उसे समझाते हैं और कारखाना बन जाने पर गांव वालों की आर्थिक उन्नति की तस्वीर पेश करना चाहते हैं तो वह साफ–साफ कहता है– "सरकार बहुत ठीक कहते हैं, मुहल्ले की रौनक जरूर बढ़ जायेगी, रोजगारी लोगों को फायदा भी खूब होगा। लेकिन जहां यह रौनक बढ़ेगी, वहां ताड़ी–शराब का भी तो परचार बढ़ जायगा, कसबियां भी तो आकर बस जायेंगी, परदेसी आदमी हमारी बहू–बूटियों को घूरेंगे, कितना अधरम होगा। दिहात के किसान अपना काम छोड़कर मजूरी के लालच से दौड़ेंगे, यहां बुरी–बुरी बातें सीखेंगे और अपने बुरे आचरण अपने गांव में फैलाएंगे, दिहातों की लड़कियां बहुएं, मजूरी करने आयेंगी और यहां पैसे के लोभ में अपना धरम बिगाड़ेंगी। यही रौनक शहरों में है। वही रौनक यहां हो जायगी।"[4] यहां तक 'सूरदास' का कारखाने के प्रति विरोध विशुद्ध रूप से नैतिक आग्रहों पर आधृत है। वह जानता है कि औद्योगिक विस्तार अनिवार्य है– उसे रोका नहीं जा सकता है, किन्तु वह कृषक–जीवन के प्रति भावात्मक लगाव और अपने रूढ़ नैतिक मानदण्डों से बाध्य है। उसके नैतिक मानदण्ड प्रेमचंद के ही नैतिक मानदण्ड हैं और प्रेमचंद अंत–अंत तक अपने इस मानदण्ड पर कायम रहे।

औद्योगीकरण के कारण मजदूरों के नैतिक पतन की ओर संकेत 'गोदान' में भी है। उद्योग–धंधे वस्तुतः पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के प्रतीक और साधन हैं। इस अर्थव्यवस्था में मजदूरों की दशा बुरी हो जाती है और उनका नैतिक पतन भी हो जाता है। 'मिलों' ने बस्तियों के जीवन में कोलाहल उत्पन्न कर दिया है। गांव का एक भोला–भाला युवक गोबर शहर आ गया है और खन्ना की 'मिल' में नौकरी करने लगा है। इसके बाद उसके पारिवारिक जीवन में व्यर्थता और विलगाव का बोध गहराने लगता है। उसे बड़े सबेरे उठकर 'मिल' में जाना पड़ता है और वहां वह दिनभर जी–तोड़ परिश्रम करने को बाध्य है। जब वह शाम में थका–मांदा घर आता है तो उसकी देह में जान नहीं रहती है। "घर पर भी उसे इससे कम मेहनत न करनी पड़ती थी; लेकिन वहां उसे जरा भी थकन न होती थी। बीच–बीच में वह हंस–बोल भी लेता था। फिर उस खुले हुए मैदान में उन्मुक्त आकाश के नीचे, जैसे उसकी क्षति पूरी हो जाती थी। वहां उसकी देह चाहे जितना काम करे, मन स्वछन्द रहता था। यहां देह की उतनी मेहनत न होने पर भी जैसे उस कोलाहल, उस गति और तूफानी शोर का उस पर बोझा–सा लदा रहता था।... सभी श्रमिकों की यही दशा थी।"[5] शारीरिक थकान और मानसिक अवसाद को मिटाने के लिए गोबर शराब का सहारा लेता है। जिस झुनिया के बिना उसे अपना जीवन अधूरा और सूना लगता था और जिसके

लिए उसने गांव–बिरादरी छोड़ दी थी, उसे ही अब वह अकारण गालियां देता एवं पीटता है।

प्रेमचंद–साहित्य में उद्योगों के बिछते हुए जाल और नई–नई औद्योगिक बस्तियों के प्रति जो चिंता और विरोध का भाव व्यंजित है, उसके मूल में धार्मिक–नैतिक दृष्टिकोण तो है ही, आर्थिक पक्ष भी एक महत्त्वपूर्ण कारण है। प्रेमचंद औद्योगीकरण के लाभों से परिचित हैं और उसकी ऐतिहासिक अनिवार्यता को भी समझते हैं, किन्तु इस नई सभ्यता के बहाने पूंजीवादी व्यवस्था का कसता हुआ शिकंजा और उसके परिणामस्वरूप बढ़ते हुए शोषण और अमानवीयता को वे अधिक महत्त्व देते हैं। वस्तुतः प्रेमचंद पूंजीवादी औद्योगिक नगरीय सभ्यता की तुलना में सामन्तवादी कृषि–सभ्यता को अधिक निकट मानते हैं। वे पूंजीवादी की क्रूरता और भावहीनता से बेजार हैं। पूंजीवाद निजी संबंधों को बिसार कर चलता है। सामन्तवाद पारिविाकरता का पोषक है, किन्तु पूंजीवाद स्वामी एवं श्रमिकों के बीच केवल व्यावसायिक संबंधों को ही स्वीकार करता है। प्रेमचंद का यह दृष्टिकोण प्रतिगामी नहीं, मानवता के मूल्यों को महत्त्व देने वाला है। यह पूंजीवाद के अमानवीय चेहरे को बेनकाब करता है। सामान्तवाद की पुनर्प्रतिष्ठा इसका लक्ष्य नहीं है। यह केवल मानवीय संबंधों की सहजता के संदर्भ में सामन्तवाद को पूंजीवादी से श्रेष्ठतर ज्ञापित करता है।

रंगभूमि की मुख्य समस्या औद्योगिक सभ्यता एवं कृषि–सभ्यता की टक्कर ही है। उपन्यास में जॉनसेवक और सूरदास क्रमशः औद्योगिक सभ्यता या पूंजीवाद तथा कृषि–सभ्यता या सामन्तवाद के प्रतिनिधि हैं। उस समय भारत की औद्योगिक प्रगति का एक चरण पूरा हो चुका था, किन्तु सामन्तवाद पर उसकी विजय नहीं हुई थी। रंगभूमि सामंतवाद और पूंजीवाद, नई औद्योगिक सभ्यता और प्राचीन कृषि–सभ्यता के इसी संघर्ष की गाथा है।"[6] प्रेमाश्रम के राय कमलानन्द औद्योगिक सभ्यता की तुलना में, अनेक त्रुटियों के बावजूद सामन्तवादी कृषि–सभ्यता की वकालत करते हुए एक एजेंट से, जो उनसे कम्पनी के हिस्से खरीदने का आग्रह कर रहा है, कहते हैं– "किसान कुली बनकर कभी अपने भाग्य–विधाता को धन्यवाद नहीं दे सकता, उसी प्रकार जैसे कोई आदमी व्यापार का स्वतंत्र सुख भोगने के बाद नौकरी की पराधीनता को पसन्द नहीं कर सकता। संभव है कि अपनी दीनता उसे कुली बने रहने पर मजबूर करे, पर मुझे विश्वास है कि वह इस दासता से मुक्त होने का अवसर पाते ही तुरंत अपने घर की राह लेगा और फिर उसे टूटे–फूटे झोपड़े में अपने बाल–बच्चों के साथ रहकर संतोष के साथ कालक्षेप करेगा।"[7] प्रेमचंद का मानना है कि यूरोप में औद्योगिक क्रांति का जो ज्वार उठा, उसका कारण यहां के किसानों की दयनीय दशा थी। भारत के किसानों की वैसी दशा नहीं है कि वे कृषि का मोह त्यागकर मजदूर बनने में प्रसन्नता का अनुभव करें। राय कमलानन्द के शब्दों में, "यूरोप में इंडस्ट्रियलिज्म (औद्योगिकता) की जो उन्नति हुई उसके विशेष कारण थे। वहां के किसानों की दशा उस समय गुलामों से भी गयी–गुजरी

थी, वह जमींदार के बन्दी होते थे। इस कठिन कारवास को देखते हुए धनपतियों की कैद गनीमत थी। हमारे किसानों की आर्थिक दशा चाहे कितनी ही बुरी क्यों न हो, पर वह किसी के गुलाम नहीं हैं। अगर कोई उन पर अत्याचार करे तो वह अदालतों में उससे मुक्त हो सकते हैं। नीति की दृष्टि से किसान और जमींदार दोनों बराबर हैं।"[8] प्रेमचंद का विचार है कि अगर ग्रामीण किसानों में शिक्षा का उचित प्रसार हो और उन्हें अपने अधिकारों के प्रति सचेत होने का अवसर मिले तो वे जमींदारों के अत्याचार से मुक्त हो सकते हैं और तब उनका जीवन औद्योगिक इकाइयों में कार्यरत और शहर के गंदी, संकीर्ण, घुटनभरी बस्तियों में बसने वाले मजदूरों की तुलना में स्वर्ग होगा। औद्योगिक इकाइयों में काम करने वाले मजदूरों को जीवन की उस स्वच्छन्दता का आनंद कभी नहीं मिल सकता जो गांव के उन्मुक्त वातावरण में रहने वाले किसान सहज ही प्राप्त करते हैं।

किसानों की तुलना में मजदूरों की दयनीय दशा का उल्लेख 'गोदान' में भी है। गोबर घर से भागकर जब शहर पहुंचता है तो वहां मजदूरी की टोह में गांव से आये हुए लोगों की बाढ़ देखकर दंग रह जाता है। "गोबर हैरान था, इतने आदमी नगर में कहां से आ गए? आदमी पर आदमी गिरा पड़ता था।... उस दिन बाजार में चार–पांच सौ मजदूरों से कम न थे। राज और बढ़ई और लोहार और बेलदार और खाट बुनने वाले और टोकरी ढोने वाले और संगतराश सभी जमा थे। गोबर यह जमघट देखकर निराश हो गया।"[90] गोबर की निराशा में उस संपूर्ण वर्ग की निराशा है जो गांव छोड़कर शहरों में रोजगार की तलाश में जाते हैं। लेखक का महत्त्वपूर्ण संकेत यह है कि "गांव में जो लोग किसान होने के नाते जमींदारों के आसामी हैं, वे ही हैसियत बिगड़ने पर या अन्य किसी कारण से गांव से निर्वासित होने पर जब नगरों में आते हैं तब उन्हें पूंजीपतियों के नौकर बनकर 'मजदूर' कहलाना पड़ता है।"[10]

प्रेमचंद यह भली–भांति समझते हैं कि पूंजीवादी व्यवस्था के प्रसार को रोका नहीं जा सकता है। यह युग की ऐतिहासिक अनिवार्यता है, किंतु इसके दुष्परिणामों का दिग्दर्शन कराना वे अपना कर्तव्य समझते हैं। रंगभूमि का सूरदास सामंतवाद पर पूंजीवाद की अंतिम विजय की ऐतिहासिक अनिवार्यता से अपरिचित नहीं है, किंतु वह अपनी पूरी शक्ति के साथ जमीन नहीं देने के संकल्प पर डटा हुआ है। वह कारखाने के खुलने को गांववालों के लिए विपत्ति का आगमन मानता है किन्तु इतिहास के विकास–क्रम की दृष्टि से उसकी विरोध मूलधारा से कटने की प्रतीति कराता है। कृषि सभ्यता पर उत्तरोत्तर हावी होने वाली औद्योगिक सभ्यता से सूरदास का संघर्ष 'युटोपिया' है, किन्तु इस 'स्वप्न' की भी महत्ता है। यह यथास्थिति के संरक्षण के आदर्श की स्थापना नहीं, जिजीविषा की प्रचण्डता की पहचान है। "रंगभूमि के सूरदास का महत्त्व इस बात में नहीं है कि वह किसी व्यवस्था की रक्षा के लिए संघर्ष करता है, उसका महत्त्व इस बात में है कि वह अन्याय को चुपचाप न सहकर उसका सक्रिय विरोध करता है।"[11]

प्रेमचंद पूंजीवाद और साम्राज्यवाद के आंतरिक संबंधों को भली–भांति जानते थे। साम्राज्यवादी शासन शोषण और आतंक के आधार पर टिका रहता है। पूंजीवाद भी मूलतः शोषणमूलक समाज–व्यवस्था है। वह अपने शोषण–कार्य को सुचारू रूप से चलाने के लिए साम्राज्यवादी शासन की आतंक–नीति की सहायता लेता है। प्रेमचंद ने रंगभूमि में साम्राज्यवादी शासन–व्यवस्था की आतंकमूलक नीति और पूंजीवाद की शोषणमूलक मनोवृत्ति का विशद् चित्रण किया है। अंग्रेजी राज्य का प्रतिनिधि क्लार्क साम्राज्यवादी शासन–व्यवस्था को इन शब्दों में व्यक्त करता है– "हमारा साम्राज्य तभी तक अजेय रह सकता है जब तक प्रजा पर हमारा आतंक छाया रहे... अगर साम्राज्य को रखना ही हमारे जीवन का उद्देश्य है, तो व्यक्तिगत भावों और विचारों का यहां कोई महत्त्व नहीं। साम्राज्य के लिए हम बड़े–से–बड़े नुकसान उठा सकते हैं, बड़ी–से–बड़ी तपस्याएं कर सकते हैं। हमें अपना राज्य प्राणों से भी प्रिय है और जिस व्यक्ति से हमें क्षति की लेशमात्र भी शंका हो, उसे हम कुचल डालना चाहते हैं, उसका नाश कर देना चाहते हैं, उसके साथ किसी प्रकार की रियायत, सहानुभूति, यहां तक कि न्याय–व्यवहार भी नहीं कर सकते।"[12]

पूंजीपति अपने लाभ के लिए उद्योगों की स्थापना करता है, किन्तु वह जनता के समक्ष इसे देशोद्धार या जनकल्याण का कार्य सिद्ध करना चाहता है। प्रेमचंद पूंजीवाद की इस मनोवृत्ति से पूर्णतः परिचित हैं। प्रेमाश्रम के राय कमलानंद को इसी कारण बड़ी–बड़ी व्यावसायिक संस्थाओं पर विश्वास नहीं है। एक कम्पनी का 'एजेंट' उनसे कम्पनी के हिस्से खरीदने का आग्रह करते हुए पूंजीवाद को प्रतिनिधि के रूप में व्यापार को देशप्रेम से जोड़ने का प्रयत्न करता है, "मैं आपकी सेवा में कम–से–कम पांच सौ हिस्सों की आशा लेकर आया था। जब आप ऐसे विचारशील सज्जन व्यापारिक उद्योग से पृथक् रहेंगे तो इस अभागे देश की उन्नति सदैव एक मनोहर स्वप्न ही रहेगी।"[13] सामन्तवर्गीय राय कमलानन्द जानते हैं कि देश में बड़े–बड़े उद्योगों की स्थापना से कुछ धनपतियों 'मनोहर स्वप्न' भले ही साकार होते हों, सामान्य जनता का उससे कुछ भी भला होने वाला नहीं है, अतः वे 'एजेंट' से साफ–साफ कहते हैं– "मैं ऐसी व्यापारिक संस्थाओं को देशोद्धार की कुंजी नहीं समझता। ...इसलिए कि सेठ जगतराम और मनचूर जी का विभव देश का विभव नहीं है। आपकी यह कम्पनी धनवानों को और भी धनवान बनायेगी, पर जनता को इससे बहुत लाभ पहुंचने की सम्भावना नहीं।"[14] प्रेमाश्रम में औद्योगीकरण की यह चर्चा अति संक्षिप्त रूप में प्रसंगवश आयी है, अतः वहां इसके दुष्परिणामों की विस्तृत समीक्षा नहीं हुई है। राय साहब ने उद्योगों की स्थापना से किसानों के मजदूर हो जाने पर चिंता व्यक्त की है और उनके धार्मिक एवं नैतिक पतन की आशंका प्रकट की है, पर उद्योगों के शोषणमूलक स्वरूप की व्याख्या वे नहीं कर सके हैं।

रंगभूमि में चूंकि विस्तार से औद्योगिक सभ्यता पर विचार हुआ है, अतः वहां पूंजीवादी मनोवृत्ति को अधिक स्पष्ट किया गया है। इस उपन्यास

में जॉनसेवक के आचरण से पूंजीवादी मनोवृत्ति का पता चलता है। वह अपने प्रभुत्व की स्थापना और अकूत मुनाफा कमाने के लिए 'सिगरेट' का कारखाना स्थापित करना चाहता है। इसके लिए वह येन–केन प्रकारेण सूरदास की जमीन हड़पना चाहता है। वह अपने व्यक्तिगत स्वार्थ को पूरा करने के लिए देश की उन्नति, बेकारी दूर करने आदि का दिवास्वप्न अन्य लोगों को दिखाता है। सूरदास से जमीन प्राप्त करने के लिए वह सब्ज़बाग दिखाते हुए कहता है– "यहां एक कारखाना खोलूंगा, जिससे देश और जाति की उन्नति होगी, गरीबों का उपकार होगा, हजारों आदमियों की रोटियां चलेंगी।"[15] देश और जाति की उन्नति का स्वप्न जब जॉनसेवक के कार्य में सफलता नहीं दिला पाता तो वह सूरदास के मुहल्ले वालों को व्यक्तिगत लाभ का लोभ दिखाता है। वह बजरंगी से कहता है कि कारखाना खुल जाने पर उसका नफा ही नफा है, "तुम अभी यहां मलाई–मक्खन बनाओ, तो लेगा कौन? जब यहां कारखाना खुल जायगा, तो हजारों आदमियों की बस्वी हो जायगी, तुम दूध की मलाई बेचागे, दूध अलग बिकेगा। इस तरह तुम्हें दोहरा नफा होगा। तुम्हारे उपले घर बैठे बिक जाएंगे।"[16] इसी प्रकार मुहल्ले वालों को कारखाना खुलने से होने वाले लाभों को गिनाता हुआ वह कहता है, "तुमळारी पान की दुकान है न? अभी तुम दस–बारह आने पैसे कमाते होगे। तब तुम्हारी बिक्री चौगुनी हो जायगी। इधर की कमी उधर पूरी हो जायगी। मजदूरों को पैसे की पकड़ नहीं होती; काम से जरा फुरसत मिली कि कोई पान पर गिरा, कोई सिगरेट पर दौड़ा। खोंचे वाले की खासी बिक्री होगी, और शराब–ताड़ी का पूछना ही क्या, चाहो तो पानी को शराब बनाकर बेचो। गाड़ीवालों की मजदूरी बढ़ जाएगी। अभी मोहल्ला चौक की भांति गुलजार हो जाएगा। तुम्हारे लड़के अभी शहर पढ़ने जाते हैं, तब यहीं मदरसा खुल जाएगा।"[17] पूंजीपति अपने हर स्वार्थ को परोपकर के सुनहले आवरण में लपेटकर प्रस्तुत करता है। इस प्रकार वह अपने कुत्सित मनोभावों एवं उद्देश्यों को गुप्त रखते हुए अपना हित–साधन करता है। राजा महेंद्र कुमार यद्यपि शासन के दबाव और अपनी पद–रक्षा के लिए पूंजीवादी जॉनसेवक की सहायता करना चाहते हैं और इसके लिए सूरदास जैसे निर्धन एवं असहाय व्यक्ति पर भी अत्याचार करने से नहीं चूकते हैं, किंतु वे अपने इस कृत्य को जनहित की आड़ में न्यायसंगत सिद्ध करना चाहते हैं। वे अपनी पत्नी इन्दु से कहते हैं, "लेकिन मैं नगर के मुख्य व्यवस्थापक की हैसयित से एक व्यक्ति के यथार्थ या कल्पित हित के लिए नगर के हजारों रुपये का नुकसान तो नहीं करा सकता। कारखाना खुलने से हजारों मनुष्यों की जीविका चलेगी, नगर की आय में वृद्धि होगी, सबसे बड़ी बात यह है कि उस अमित धन का भाग देश में रह जायगा जो सिगरेट के लिए अन्य देशों को देना पड़ता है।"[18] इस प्रकार राजा साहब यद्यपि पूंजीपति के समर्थन को सिद्धांत की ओट देना चाहते हैं, किन्तु असली बात उनके मुंह से निकल ही जाती है– "तुम जानती हो, मि. सेवक की यहां के अधिकारियों से कितनी राह–रस्म है।... अगर मैं उनकी इतनी सेवा न कर सका, तो

हुक्काम का विश्वास मुझ पर से उठ जायगा।"[19] इस तरह स्पष्ट है कि शोषण उद्योगपति और सबके सहायक साम्राज्यवादी किस प्रकार जनता का रक्त चूसने के लिए शिकारी बाघ की तरह सोने का कंकण दिखाते हैं। प्रेमचंद की सुनिश्चित धारणा है कि उद्योग लगाने से कुछ लोगों की आमदनी में और बाहरी चमक–दमक में भले ही वृद्धि हो जाए, किन्तु उससे सामान्य जनता का हित–साधन संभव नहीं है।

प्रेमचंद शहरी सभ्यता को श्रमिकों की दुर्गति से जोड़कर उसकी विगर्हणा करते हैं। शहर मजदूरों और उद्योगों के आश्रय–स्थल के रूप में वस्तुतः शोषण के भयानक केन्द्र हैं। पूंजीपतियों के द्वारा इन केंद्रों का निर्ममतापूर्वक संचालन होता है। मजदूर कम पैसों पर खटते हैं और पूंजीपतियों की निगाह केवल मुनाफे पर टिकी रहती है। रंगभेमि के जॉनसेवक और कुंवर भगत सिंह के वार्तालाप से इस वास्तविकता पर प्रकाश पड़ता है। जॉनसेवक कहता है– "मेरा सिद्धांत है, कम–से–कम खर्च और अधिक से अधिक नफा।"[20] वह 'मैनेजर' के लिए केवल 500 रुपये वेतन का प्रावधान रखता है, जबकि उसे मालूम है कि इस काम के लिए अन्यत्र 1000 रुपये आसानी से मिल सकते हैं। वह 'डाइरेक्टर' को केवल सफर का भत्ता–भर देना चाहता है। उस पर भी यह सब दिखावे के लिए है, क्योंकि वह अपने बेटे को 'मैनेजर' और स्वयं को 'डाइरेक्टर' बनाना चाहता है। उसकी इस इच्छा का वास्तविक लक्ष्य व्यापार नियंत्रण और प्रबंधन पर पूर्णाधिकार है। यह पूर्णाधिकार उसे मजदूरों के शोषण की सुविधा प्रदान करेगा। जॉनसेवक उत्तर भारत में उगते पूंजीवाद को भली–भांति मूर्त करता है। वह कुंवर साहब से कम्पनी के हिस्से तो बेचना चाहता है, किन्तु लाभांश कम ही देना चाहता है। इसीलिए वह कम्पनी का संभावित मुनाफा पहले पच्चीस प्रतिशत बताकर फिर बीस प्रतिशत बताने लगता है। उद्योगपति की इस शोषणमूलक मनोवृत्ति का परिणाम उद्योगों में कार्यरत मजदूरों की आर्थिक स्थिति पर पड़ता है और नगरों में बसे मजदूर नाकरीय पीड़ा झेलने का अभिशप्त होते हैं। रंगभूमि में जॉनसेवक का कारखाना अभी प्रारंभिक स्थिति में है, इसलिए वहां मजदूरों के शोषण एवं उनके प्रति अमानुषिक व्यवहारों का चित्रण नहीं हो सका है।

नगरों में बसने वाले औद्योगिक मजदूरों की आर्थिक दशा अच्छी नहीं होती है। वे जिस खुशहाल जिदंगी की उम्मीद में नगरों की ओर जाते हैं, वह उनके लिए मृगतृष्णा ही सिद्ध होती है। इसका कारण उद्योगों की दुरवस्था नहीं, पूंजीपतियों की शोषण नीति है। रंगभूमि का जॉनसेवक कम–से–कम खर्च और अधिक–से–अधिक मुनाफा के सिद्धांत का प्रतिपादन करता है वह प्रत्येक उद्योगपति का सिद्धांत होता है और इसका सबसे पहला प्रयोग वह मजदूरों पर करता है। वह मजदूरों को कम–से–कम पारिश्रमिक देना चाहता है और अधिक–से–अधिक काम लेना चाहता है। 'गबन' का सेठ करोड़ीमल इसी प्रकार का पूंजीपति है। देवीदीन खटिक उसकी शोषण–नीति का परिचय देते हुए कहता है– "उसे पापी कहना

चाहिए, महापापी। दया तो उसके पास से होकर भी नहीं निकली। उसकी जूट की मिल है। मजूरों के साथ जितनी निर्दयता इसकी मिल में होती है और कहीं नहीं होती। आदमियों को हंटरों से पिटवाता है, हंटरों से। चरबी मिला घी बेचकर इसने लाखों कमा लिये। कोई नौकर एक मिनट की भी देर करे तो तुरंत तलब काट देता है।"[21] इससे स्पष्ट होता है कि बड़ी–बड़ी मिलों के मजदूरों को पशुवत् जीवन बिताना पड़ता है और उनकी गाढ़ी कमाई से देश के थोड़े से पूंजीपति दिन–प्रतिदिन समृद्धिशाली बनते जाते हैं।

प्रेमचंद ने अपनी एक कहानी 'डामुल का कैदी' में मजदूरों के शोषण और उसके विरुद्ध उनके विद्रोह, उद्योगपतियों द्वारा श्रमिक–आंदोलन के दमन आदि का प्रभावशाली अंकन किया है। इससे उनके नगर–बोध, विशेषकर नगरों की श्रमिक–समस्या के प्रति उनकी संवेदनशीलता का ज्ञान होता है। इस कहानी के सेठ खूबचंद का स्वेदेशी 'मिल' देश की बहुत बड़ी 'मिलों' में से एक है। स्वदेशी आन्दोलन के कारण 'मिल' के माल की खपत इस बढ़ती हुई आमदनी के बावजूद 'मिल' के मालिक मजदूरी घटाने की सूचना देते हैं, क्योंकि अनाज कुछ सस्ता हो गया है। इस प्रस्तावित कटौती के विरुद्ध बजदूर गोपीनाथ के नेतृत्व में हड़ताल करते हैं। गोपीनाथ मजदूरों से कहते हैं– "मिल में अगर घाटा हो, तो हम आधी मजूरी पर काम करेंगे; लेकिन जब लाखों का लाभ हो रहा है, तो किस नीति से हमारी मजूरी घटाई जा रही है? हम अन्याय नहीं सह सकते। प्रण कर लो कि किसी बाहरी आदमी को मिल में घुसने न देंगे; चाहे वह अपने साथ फौज लेकर ही क्यों न आये। कुछ परवाह नहीं, हमारे ऊपर लाठियां बरसें, गोलियां चलें. ..।"[22] गोपीनाथ और दो अन्य व्यक्ति गिरफ्तार होते हैं। इस गिरफ्तारी से उत्पन्न उत्तेजना को शांत करने के लिए सेठ गोपीनाथ को अपने 'रिवाल्वर' की गोली का निशाना बना देता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि अत्यधिक लाभ होने पर भी उद्योगपति मजदूरों की मजदूरी घटाने के लिए किसी भी सीमा तक जा सकते हैं।

'गोदान' का पूंजीपति चंद्रप्रकाश खन्ना मजदूरी घटाने के बहाने ढूंढ़ता रहता है। वह अपने लाभ पर केंद्रित पूंजीवादी अर्थव्यवस्था का प्रामाणिक प्रतिनिधि है। प्रेमचंद ने इस व्यवस्था की बखिया उधेड़ते हुए ही लिखा है– "मिल के मालिकों को मजूरी घटाने का अच्छा बहाना मिल गया। ड्यूटी से अगर पांच की हानि थी, तो मजूरी घटा देने से दस का लाभ था।"[23] मजदूर हड़ताल के द्वारा इस व्यवस्था का विरोध करते हैं, किन्तु पूंजीपति उन्हें 'पागल' कर देते हैं। 'डाइरेक्टर' मजदूरी में कटौती की घोषणा कर देते हैं। वस्तुतः वे हड़ताल के कारण पुराने मजदूरों को हटाकर उनकी जगह आधी मजदूरी पर नये मजदूरों को रख देना चाहते हैं।"[24] इस हड़ताल से मजदूरों की हालत अत्यंत दयनीय हो जाती है, किन्तू पूंजीवादी मानसिकता वाले खन्ना को मजूरों की यह हड़ताल बिल्कुल बेजा मालूम होती है।"[25] उसका मानना है कि वह अपना स्वार्थ छोड़कर कम्पनी के

हिस्सेदारों का हित चाहता है। हिस्सेदारों के स्वार्थ की रक्षा करना वह अपना धर्म समझता है। उसका तर्क है– "मजूर केवल हाथ से काम करते हैं डायरेक्टर अपनी बुद्धि से, विद्या से, प्रतिभा से, प्रभाव से काम करता है। दोनों शक्तियों का मोल बराबर तो नहीं हो सकता। मजूरों को यह संतोष क्यों नहीं होता कि मंदी का समय है और चारों तरफ बेकारी फैली रहने के कारण आदमी सस्ते हो गए हैं। उन्हें तो एक की जगह पौन मिले तो संतुष्ट रहना चाहिए था।"[26] यह मानसिकता सभी पूंजीपतियों की होती है। स्वयं खन्ना का कहना है कि– "'बिजली'– संपादक ओंकारनाथ जो इस हड़ताल को इतनी हवा दे रहे हैं, अगर उनके पत्र की बिक्री बढ़ जाय और उन्हें पांच लाख का लाभ होने लगे तो वे 'अपने गुजारे भर' का रखकर सारी कमाई कार्यकर्त्ताओं में नहीं बांट देंगे। और मिर्जा खुर्शेद भी तो एक दिल लखपती थे। हजारों मजूर उनके नौकर थे। तो क्या वह अपने गुजारे–भर को लेकर सब कुछ मजूरों को बांट देते थे? वह उसी गुजारे की रकम में यूरोपियन छोकरियों के साथ विहार करते थे। बड़े–बड़े अफसरों के साथ दावतें उड़ाते थे, हजारों रुपयें महीने की शराब पी जाते थे और हर साल फ्रांस और स्विट्जरलैण्ड की सैर करते थे।"[27] मिस्टर खन्ना की मानसिकता और मिर्जा खुर्शेद की अतीत–वर्णन से स्पष्ट होता है कि नगरों के औद्योगिक जीवन से कैसा शोषण, कितना अत्याचार और कैसी असमानता है। जो दिन–रात श्रम करे उसे कुछ भी प्राप्त नहीं हो और उसकी गाढ़ी कमाई को पूंजीपति अपने भोग–विलास में व्यय करें, यह एक विडम्बनापूर्ण स्थिति है। मिल के मजदूर केवल शोषित ही नहीं, दयनीय जीवन जीने के लिए भी विवश है। डॉ. मेहता का यह वक्तव्य उक्त दयनीता का अच्छी तरह उद्‌घाटन करता है– "आपके मजूर बिलों में रहते हैं– गंदे, बदबूदार बिलों में– जहां आप एक मिनट भी रह जायें तो आपको कै हो जाय। कपड़े जो वह पहनते हैं, उनसे आप अपने जूते भी न पोछेंगे। खाना जो वह खाते हैं, वह आपका कुत्ता भी न खायेगा।"[28]

प्रतिकूल राजनीतिक स्थिति के बावजूद तत्कालीन श्रमिक आंदोलन से कई संभावनाओं का विकास हो रहा था। इस आंदोलन का मुख्य प्रतिफल संगठित सर्वहारा–वर्ग का उदय है। खन्ना की 'मिल' में लगी आग निराशा नहीं श्रमिक–वर्ग के गुस्से को रूपायित करती है। प्रेमचंद के नगरबोध के औद्योगिक पहलू की विशेषता है, कि "उन्होंने पूंजीपतियों में उदित पशुता की सार्थक पहचान की। उन्होंने यह काम ठोस ढंग से किया।... उनका मूल उद्देश्य था मनुष्य समाज पर औद्योगीकरण के बढ़ते प्रभावों का चित्र खींचना। उन्होंने संकेत दिया भी कि पूंजीवाद के प्रभाव से किस प्रकार पारिवारिक और मानवीय संबंधों में विघटन और ध्रुवीकरण हो रहा है।"[29]

इस प्रकार हम पाते हैं कि प्रेमचंद औद्योगीकरण को नगरों की एक समस्या के रूप में देखते हैं। उन्होंने इस यंत्र–संस्कृति के दुष्परिणामों को अपने उपन्यासों में स्पष्टता के साथ अभिव्यक्ति दी है। औद्योगीकरण के प्रतयक्षतः अनेक लाभ है और इससे हमारा जीवन आगे बढ़ा है। इसके

कारण देश की अर्थव्यवस्था और नागरिक जीवन में क्रांतिकारी परिवर्तन आया है, किन्तु प्रेमचंद ने इन लाभों की गणना नहीं की है। वे अर्थशास्त्री नहीं है। एक साहित्यकार के रूप में उन्होंने औद्योगीकरण के मानवीय पहलुओं पर ही अपना ध्यान अधिक केंद्रित किया है। प्रेमचंद का साहित्य वस्तुतः दलित मानवता की हिमायत का एक हथियार है, अतः उसमें उन्हीं पक्षों का चित्रण हुआ है जिनके प्रति लेखक की सहानुभूति है।

सन्दर्भ :

1. प्रेमचंद, प्रेमाश्रम, पृ. 90.
2. वही, पृ. 89.
3. प्रेमचंद, रंगभूमि, भाग–1, पृ. 32.
4. वही, पृ. 160.
5. प्रेमचंद, गोदान, पृ. 275, सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद, 1960.
6. डॉ. मोहन कुमार सिन्हा, प्रेमचंदयुगीन समाज, पृ. 169.
7. प्रेमचंद, प्रेमाश्रम, पृ. 89.
8. वही, पृ. 90.
9. प्रेमचंद, गोदान, पृ. 138, सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद, 1960.
10. गोदान गवेष्णा, पृ. 49, संपादक : कपिलदेव सिंह, पद्मनारायण और 'निशांत केतु', भारतीय–भवन, पटना, प्रथम संस्करण, 1970.
11. डॉ. इन्द्रमोहन कुमार सिन्हा, प्रेमचंदयुगीन भारतीय समाज, पृ. 170.
12. प्रेमचंद, रंगभूमि, भाग–2, पृ. 173.
13. प्रेमचंद, प्रेमाश्रम, पृ. 88.
14. वही, पृ. 89.
15. प्रेमचंद, रंगभूमि, भाग–1, पृ. 23.
16. रंगभूमि, पृ. 155, सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद, 1971.
17. वही, पृ. 155–156, 1971 ई.
18. रंगभूमि, पृ. 191, 1971 ई.
19. वही, पृ 192
20. प्रेमचंद, रंगभूमि, पृ. 64.
21. प्रेमचंद, गबन, पृ. 143.
22. प्रेमचंद, 'डामुल का कैदी', मानसरोवर, भाग–दो, पृ. 242, सरस्वती प्रेस इलाहाबाद–दिल्ली, 1983.
23. प्रेमचंद, गोदान, पृ. 279, 1960.
24. वही, पृ. 281.
25. प्रेमचंद, गोदान, पृ. 285, 1960.
26. वही, पृ. 285.
27. वही, पृ. 286.
28. वही, पृ. 287.
29. प्रेमचंद का पुनर्मूल्यांकन, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1988.

***

किशोरावस्था में छात्र-छात्राओं की समायोजन संबंधी समस्या का अध्ययन

*जया सिंह**

प्रस्तुत शोध अध्ययन का मुख्य उद्देश्य छात्र-छात्राओं की किशोरावस्था में समायोजन संबंधी समस्या का अध्ययन करना है। इस अध्ययन के लिए सर्वेक्षण विधि द्वारा कोटा जिले के कुल 100 *छात्रों को चुना जिसमें 50 छात्र एवं 50 छात्राएं हैं। आवश्यक जानकारी के संग्रह के लिए शोधकर्ता ने मापन उपकरण के रूप में प्रमाणित प्रश्नावली डॉक्टर के एन शर्मा द्वारा निर्मित प्रश्नावली का शोध में प्रयोग किया। अध्ययन के द्वारा निष्कर्ष प्राप्त हुए कि किशोरावस्था में छात्र-छात्राओं की सामाजिक एवं गृहसमायोजन की समस्या में कोई सार्थक अंतर नहीं है।*

मुख्य शब्द-किशोरावस्था, समायोजन।

प्रस्तावना- मनुष्य इस प्राणी जगत का सबसे जटिल प्राणी है और प्रत्येक मनुष्य की अपनी विभिन्न तरह की समस्याएं होती हैं। अतः इन समस्याओं का हल खोजना आवश्यक है। जीवन की इस प्रक्रिया में मानव इतना जटिल है कि उसे समझना बहुत कठिन कार्य है।

किशोरावस्था में छात्र छात्राओं का मस्तिष्क अधिकतम विकास को लगभग प्राप्त कर लेता है। वे अपने जीवन में सफलता प्राप्त करने के लिए निरंतर प्रयत्नशील रहते हैं तथा उपयुक्त साधन जुटाकर उनसे समायोजित होने के लिए निरंतर अग्रसर होते रहते हैं। बाह्य रूप से व्यक्ति के व्यवहारों के आधार पर ऐसा कहा जाता है कि सामान्य दृष्टि से पूर्ण स्वस्थ व्यक्ति मानसिक रूप से भी स्वस्थ होगा लेकिन वास्तविक रूप से यह तथ्य भ्रम पूर्ण है। अपने परिवेश से समायोजन करके ही वह स्वस्थ मानव बन सकता है।

संसार के छोटे-छोटे जीभ से लेकर मनुष्य तक को अपने परिवेश से बराबर संघर्ष करना पड़ता है। जिस तरह व्यक्ति को समाज व समाज के अन्य सदस्यों से परस्पर विश्वास एवं सहयोग के संबंध बनाना होता है, ठीक उसी तरह विद्यार्थियों को अपने अध्यापक एवं सहपाठियों से संबंध बनाना होता है।

प्रत्येक व्यक्ति की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि उसका समायोजन समाज और वातावरण से समुचित रूप से हो। अतः किशोरावस्था से छात्र-छात्राओं की यह समस्या वातावरण से, अपने सहयोगियों से, अपने समाज

* हितकारी सहकारी महिला शिक्षा प्रशिक्षण महाविद्यालय, धाकड़खेड़ी, आरामपुरा, कोटा-324009 (राज.)

से स्वास्थ्य से, अध्ययन विषयों से, विद्यालयों से, शिक्षकों से, अभिभावकों से, अपने मित्रों से, अपने परिवार के अन्य सदस्यों से संवेगात्मक एवं भावात्मक विचारों से यहां तक कि अपने आप से भी हो सकती है।

अध्ययन की आवश्यकता एवं महत्व -

आज के प्रतिभाशाली किशोर छात्र-छात्राएं वर्तमान राष्ट्रीय एवं भविष्य को प्रतिबिंबित करने वाला दर्पण है। कल का भारत इन्हीं किशोरों के हाथों में होगा देश की बागडोर अपने हाथों में देने के अधिकारी यह किशोर छात्र-छात्राएं अपने भावी जीवन की तैयारी जाने अनजाने ही कर रही हैं। जहां अभिभावक शिक्षक एवं समाज इन्हें स्वस्थ विकास एवं प्रगति की दिशा में देखकर हर्ष प्रफुल्लितहो जाते हैं वही कभी-कभी इन प्रतिभाशाली किशोर छात्र-छात्राओं में कुछ अवांछनीय परिवर्तन देखकर वे सिहर भी जाते हैं किशोरावस्था में छात्र-छात्राओं में होने वाले विभिन्न शारीरिक सामाजिक एवं संवेगात्मक परिवर्तनों के कारण भी अपने माता-पिता से अध्यापकों से सहयोगियों से समायोजन नहीं कर पाते हैं जिससे भी अपने आप को किसी कार्य के योग्य ना समझ कर कुंठा को अपने मन में घर बना लेते हैं।

किसी भी विषय के अध्ययन का अपना अलग ही महत्व होता है। किसी कार्य को करने के लिए पर्याप्त समय और प्रयास की आवश्यकता होती है क्योंकि किसी भी समस्या के निदान हेतुउसके बारे में जानकारी होना अति आवश्यक है। यदि व्यक्ति को अपनी समस्या से संबंधित विषय के बारे में कोई ज्ञान न हो तो वह विषय से संबंधित समस्या को सुलझाने का प्रयास नहीं कर सकता।

शोध का महत्व -

1. किशोर छात्र-छात्राओं का समायोजन संबंधी समस्याओं के कारणों का पता लग जाने पर हम उनकी कुंठा को समाप्त कर उनकी प्रतिभा को बढ़ा सकते हैं।
2. अध्ययन का महत्व शिक्षकों अभिभावकों व छात्रों के लिए महत्वपूर्ण होगा।

शोध शीर्षक- किशोरावस्था में छात्र-छात्राओं की समायोजन संबंधी समस्या का अध्ययन।

अध्ययन के उद्देश्य-

1. किशोरावस्था के छात्र-छात्राओं की समायोजन संबंधी समस्या का अध्ययन करना।

2. किशोरावस्था के छात्र-छात्राओं की गृह समायोजन संबंधी समस्या का अध्ययन करना।
3. किशोरावस्था के छात्र-छात्राओं की सामाजिक समायोजन संबंधी समस्या का अध्ययन करना।

परिकल्पनाएं-

1. किशोरावस्था के छात्र एवं छात्राओं की समायोजन की समस्या में सार्थक अंतर नहीं है।
2. किशोरावस्था के छात्र एवं छात्राओं की गृह समायोजन की समस्या में सार्थक अंतर नहीं है।
3. किशोरावस्था की छात्र एवं छात्राओं की सामाजिक समायोजन की समस्याओं में सार्थक अंतर नहीं है।

अध्ययन का सीमांकन- प्रस्तुत शोध अध्ययन की समय सीमा को देखते हुए शोधकर्ता ने कोटा नगर के माध्यमिक विद्यालयों के किशोर छात्र छात्राओं को अध्ययन के लिए चुना है। शोधकर्ता ने सातवीं एवं आठवीं कक्षा के छात्र छात्राओं को चुना जिनकी आयु 13 से 18 वर्ष के मध्य थी।

शोध प्रविधि- प्रस्तुत शोध हेतु सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है।

न्यादर्श- प्रस्तुत शोध कार्य के लिए शोधकर्ता ने न्यादर्श के रूप में कोटा नगर के विद्यालयों के कक्षा सातवीं व आठवीं कक्षा के छात्रों को चुना है जिनकी कुल संख्या 100 है जिसमें 50 छात्र एवं 50 छात्राएं हैं

शोध उपकरण-

शोधकर्ता ने सृजनात्मकता का परीक्षण की उत्तम प्रमाणित प्रश्नावली विभिन्न उत्पादन क्षमता (Divergent Production Ability) जो डॉक्टर के एन शर्मा (जयपुर) द्वारा निर्मित है का प्रस्तुत शोध में प्रयोग किया है।

परिकल्पना-

1. किशोरावस्था के छात्र एवं छात्राओं की समायोजन की समस्या में सार्थक अंतर नहीं है।

क्रम संख्या	समूह (Group)	न्यादर्श संख्या N	मध्यमान M	मानक विचलन S.D.	मानक त्रुटि SED	टी अनुपात t-Ratio	df	सार्थकता स्तर	परिणाम
1.	छात्र	50	40.52	6.11	1.34	1.36	98	0.05	सार्थक अंतर नहीं है
2.	छात्राएं	50	42.34	7.26				1.98	

उपरोक्त सारणी से स्पष्ट है कि छात्र एवं छात्राओं का मध्यमान क्रमशः 40.52 तथा 42.34 है df 98 के लिए .05 सार्थकता स्तर पर t का मान 1.98 या

अधिक होना चाहिए जबकि आंकड़ों के विश्लेषण के बाद t का मान 1.36 प्राप्त हुआ है। ऐसी स्थिति में शून्य परिकल्पना स्वीकृत हो जाती है। अतः हम कह सकते हैं कि किशोरावस्था के छात्र-छात्राओं के समायोजन में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

2. किशोरावस्था के छात्र एवं छात्राओं की गृह समायोजन की समस्या में सार्थक अंतर नहीं है।

क्रम संख्या	समूह (Group)	न्यादर्श संख्या N	मध्यमान M	मानक विचलन S.D.	मानक त्रुटि SED	टी अनुपात t-Ratio	df	सार्थकता स्तर	परिणाम
1.	छात्र	50	8.68	2.54	0.49	0.94	98	0.05	सार्थक अंतर नहीं है
2.	छात्राएं	50	9.14	2.38				1.98	

उपरोक्त सारणी से स्पष्ट है कि छात्र एवं छात्राओं का मध्यमान क्रमशः 8.68 तथा 9.14 है df 98 के लिए 0.05 सार्थकता स्तर पर t का मान 1.98 या अधिक होना चाहिए जबकि आंकड़ों के विश्लेषण के बाद t का मान 0.94 प्राप्त हुआ है। ऐसी स्थिति में शून्य परिकल्पना स्वीकृत हो जाती है। अतः हम कह सकते हैं कि किशोरावस्था के छात्र-छात्राओं की गृह समायोजन में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

3. किशोरावस्था की छात्र एवं छात्राओं की सामाजिक समायोजन की समस्याओं में सार्थक अंतर नहीं है।

क्रम संख्या	समूह (Group)	न्यादर्श संख्या N	मध्यमान M	मानक विचलन S.D.	मानक त्रुटि SED	टी अनुपात t-Ratio	df	सार्थकता स्तर	परिणाम
1.	छात्र	50	12.14	2.57	0.51	0.90	98	0.05	सार्थक अंतर नहीं है
2.	छात्राएं	50	12.60	2.61				1.98	

उपरोक्त सारणी से स्पष्ट है कि छात्र एवं छात्राओं का मध्यमान क्रमशः 12.14 तथा 12.60 है df 98 के लिए .05 सार्थकता स्तर पर t का मान 1.98 या अधिक होना चाहिए जबकि आंकड़ों के विश्लेषण के बाद t का मान .90 प्राप्त हुआ है। ऐसी स्थिति में शून्य परिकल्पना स्वीकृत हो जाती है। अतः हम कह सकते हैं कि किशोरावस्था के छात्र छात्राओं की सामाजिक समायोजन में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

निष्कर्ष-

सारणी क्रमांक 1 के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि छात्राओं का समायोजन छात्रों की अपेक्षा थोड़ा बेहतर है परंतु सार्थकता ज्ञात करने पर कोई

सार्थक अंतर नहीं पाया गया अर्थात छात्र-छात्राओं का समायोजन समान रूप से होता है।

सारणी क्रमांक 2 के आधार पर यह कह सकते हैं कि छात्राओं का गृह समायोजन छात्रों की अपेक्षा थोड़ा बेहतर है परंतु इनकी सार्थकता ज्ञात करने पर कोई अंतर सार्थक अंतर नहीं पाया गया अर्थात छात्र-छात्राएं गृह स्तरपर समान रूप से समायोजित होते हैं।

सारणी क्रमांक 3 के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि छात्राओं का सामाजिक समायोजन छात्रों की अपेक्षा थोड़ा बेहतर है परंतु इनकी सार्थकता ज्ञात करने पर कोई सार्थक अंतर नहीं पाया गया अर्थात छात्र-छात्राएं सामाजिक स्तर पर समान रूप से समायोजित होते हैं।

शैक्षिक निहितार्थ- शिक्षा की दृष्टि से किशोरावस्था एक बहुत ही महत्वपूर्ण अवस्था है। किशोरावस्था में ही छात्र-छात्राएं गृहस्तर पर, सांवेगिक स्तर पर, सामाजिक स्तर पर, शैक्षिक स्तर पर तेजी से परिपक्व बनते हैं। अतः शिक्षा में शोध की उपयोगिता यह है कि किशोर व छात्र-छात्राओं का समायोजन स्तर उपरोक्त क्षेत्रों में किस प्रकार सुधारा जाए। इसके लिए मनोवैज्ञानिकों ने अपने विचार व्यक्त किए हैं-

1. शारीरिक एवं स्वास्थ्य शिक्षा की व्यवस्था की जानी चाहिए जिससे किशोर छात्र-छात्राएं अपने स्वास्थ्य का भी ध्यान रख सके।
2. छात्रों के मानसिक स्तर को ध्यान में रखकर शिक्षा की व्यवस्था की जाए।
3. पाठ्य सहगामी क्रियाएं भी करवानी चाहिए।
4. प्रस्तुत शोध किशोरावस्था के छात्र-छात्राओं के समायोजन स्तर को बढ़ाने में मददगार सिद्ध होगी।

भावी अनुसंधान हेतु सुझाव-

1. ग्रामीण किशोर छात्रों एवं शहरी किशोर छात्रों के समायोजन का तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है।
2. आदिवासी व शहरी किशोर छात्रों के समायोजन का तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है।
3. सामान्य विद्यालय और आवासीय विद्यालय के छात्रों के समायोजन स्तर का तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है।
4. सरकारी विद्यालय और निजी विद्यालय के छात्रों की समायोजन का तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची-

अग्रवाल जी.के.-सामाजिक सर्वेक्षण एवं सांख्यिकी आगरा बुक स्टोर आगरा द्वितीय संस्करण 1983s

कपिल एच.के.-अनुसंधान विधियां भार्गव बुक हाउस आगरा बारवा संस्करण 2006

गुप्ता एस.पी.- उच्चतर शिक्षा मनोविज्ञान, शारदा पुस्तक भवन इलाहाबाद संशोधित एवं परिवर्धित संस्करण 2010

गुप्ता एस.पी.-आधुनिक मापन एवं मूल्यांकन शारदा पुस्तक भवन इलाहाबाद संशोधित एवं परिवर्धित संस्करण

पी.डी. पाठक- शिक्षा मनोविज्ञान अग्रवाल पब्लिकेशन आगरा 240वा संस्करण

सिंह एस. पी.-सांख्यिकी सिद्धांत एवं व्यवहार हैचंद एंड कंपनी लिमिटेड नई दिल्ली

सिंह अरुण कुमार-शिक्षा मनोविज्ञान मोतीलाल बनारसीदास पुनःमुद्रण 2013

सिंह लाल साहब-मापन मूल्यांकन एवं सांख्यिकी साहित्य प्रकाशन आगरा धोती संस्करण 1995

***

प्रसन्न मन-स्वस्थ्य तन

डॉ. हरिपति सहाय कौशिक *

जीवन एक अवसर है, श्रेष्ठ बनने का, श्रेष्ठ करने का और श्रेष्ठ पाने का, किन्तु आज की व्यस्तता व तनावपूर्ण जिन्दगी में प्राणी मात्र के लिए हँसना व हँसाना बहुत दुर्लभ हो गया है। पूर्व काल में जब एक समय में एक कार्य करने की जीवनशैली थी तब मनुष्य प्रत्येक कार्य बड़े ही उत्साह व प्रसन्नता से कर लेता था और दीर्घ काल तक स्वस्थ रहकर अपनी आयु का सदुपयोग करता था, किन्तु बदलते परिवेश व वातावरण में आजकल कोई भी व्यक्ति कई कार्यों को एक साथ ही पूर्ण करता दिखाई देता है, जिससे वह तनावग्रस्त होकर घर परिवार व समाज में व्यस्तता का प्रतिबिंब सा दिखाई देता है।

मानव अपने मन का स्वयं दर्पण है, प्राणी मात्र के सुन्दर स्वास्थ्य से उसकी मनोवृत्ति व मनोदशा का प्रगाढ़ सम्बन्ध होता है। विभिन्न विद्वानों का मानना है कि कोई भी रोग व्यक्ति के शरीर में नहीं बल्कि उसके मस्तिष्क में उत्पन्न होता है। इसलिए शारीरिक स्वस्थता के लिए मानसिक स्वस्थता अत्यावश्यक है। हमें अपने उत्तम स्वास्थ्य के लिए अपने मन–मानस को स्वस्थ रखना होगा।

मानसिक स्वस्थता व प्रसन्नता के लिए आवश्यक है हमेशा प्रसन्नचित्त रहना। उदासीन व्यक्तियों से खुशमिजाज लोग ज्यादा स्वस्थ रहते है। यदि लोग हँसना, मुस्कुराना सीख जायें तो उनके स्वास्थ्य व स्वाभाव में भी परिवर्तन सम्भव है।

आपका स्वास्थ्य कैसा है? यह किसी के पूँछने पर, आपके कर्म अच्छे होने पर भी यदि आप द्वारा दृढ़ता के साथ ''बहुत अच्छा'' कहा जाय तो निश्चित ही आप पर व पूँछने वाले पर जादू जैसा प्रभाव हो जायेगा। आप भी सचमुच स्वस्थ अनुभव करेंगें और अच्छे होने पर भी दवी जवान से ''किसी तरह जी रहा हूँ'' या ''ठीक ही हूँ'' जैसा दो चार बार कहना पड़े तो निश्चित ही आप का अच्छा स्वास्थ्य भी कमजोर या गिरा सा लगने लगेगा।

जिस प्रकार हमारे ऊपर शारीरिक रोगों का प्रभाव पड़ता है उसी प्रकार क्रोध, आशंका, चिन्ता, भय आदि मानसिक रोगों का प्रभाव हमारें मुख मण्डल पर पड़ता है लेकिन इनकी दवा हमारें पास ही होती है और वह है हँसना, मुस्कुराना व प्रसन्नचित्त रहना।

जिन्दगी एक संघर्ष है, इसे आप कर्म युद्ध मानते है या मनोरंजन का साधन, यह तो व्यक्ति विशेष की सोच पर निर्भर करता है। किन्तु कठिन

---

* प्रधानाचार्य, संस्कृत विद्यापीठ बमनुवां, टहरौली, झांसी (उ.प्र.)

से कठिन कार्यों, को विषम से विषम परिस्थितियों को आप मुस्कुराकर भी अनुकूल बना सकते है। हँसना, रोना, गाना, गुनगुनाना यह मानव के आंतरिक भावों को प्रदर्शित करते है। यदि आप स्वयं मुस्कुराकर किसी को क्षण भर की खुशी दे सके तो वह उसके लिए अविस्मरणीय पल होगा। आज कल लोगों में विशेष या रिजर्व प्रकृति का दिखने की प्रवृत्ति सी बन गई है। जो प्रायः हँसना और हँसाना भूल ही गये। हँसना/मुस्कुराना ऐसा आभूषण है, जिसका न तो कोई मूल्य है और न ही इसमें किसी प्रकार का व्यय है। इसलिए हँसने की, मुस्कुराने की आदत बनाना चाहिए। हमेशा खुश रहने की कोशिश करनी चाहिए। हम जितने ज्यादा सकारात्मक होंगें, जितने सात्विक व सहज होंगे उतने ही प्रसन्न व स्वस्थ रहेंगें। हमें दूसरे की खुशी चाहिए तो उसे मुस्कुराहट देनी होगी। अनुभव करिये जिससे आप मुस्कुराकर बात करेंगें वह भी आप से मुस्कुराकर अवश्य बात करेगा। जब सबसे मिलने पर या बात करने पर आप हँसी और मुस्कुराहट को अपने चहरे पर लायेंगें तो एक दिन हँसना मुस्कुराना आपका स्वभाव बन जायेगा। आप की ऊर्जा बढ़ जायेगी। हम इस संसार में घूमने के लिए आये है रहने के लिए नहीं, यह जीने की कला सीखनी होगी। तभी हम जीवन को सुन्दर ढंग से हँसते मुस्कुराते जी पायेंगें। उम्मीद एक ऐसी ऊर्जा है जिससे जिन्दगी का कोई भी हिस्सा रोशन किया जा सकता है। इसलिए घर–परिवार व समाज को सुन्दर बनाने के लिए हमें अपनी मनोवृत्तियों को सुन्दर बनाना होगा। क्योंकि मन की सोच सुन्दर हो तो सारा संसार सुन्दर लगता है। आइये हम सब उम्मीद से भरी हर एक नई सुबह का मुस्कुराकर स्वागत करें।

***

भारत में कृषक आत्महत्या

डॉ. दयाशंकर सिंह यादव *

भारत में कृषि काफी हद तक मानसून पर आधारित है मानसून की असफलता किसानों के जीवन की सबसे बड़ी त्रासदी है। मानसून के असफल होने के कारण किसानों की फसलों पर उसका बुरा प्रभाव पड़ता है जिसका सीधा असर उत्पादन पर पड़ता है। इसमें सबसे अधिक नगदी फसलों के किसानों को उठाना पड़ता है और भारत में नगदी फसलों का नष्ट होना कृषक आत्महत्या का सबसे प्रमुख कारण माना जाता है। इस में मानसून की विफलता के साथ सूखा] सही दाम की कमी] ऋण का किसानों पर अत्यधिक बोझ आदि परिस्थितियां एवं बैंकों] बिचौलियों तथा महाजनों से लिया गया कर्ज का बोझ किसानों की आत्महत्या का कारण बनती है। भारत में कृषि को अर्थव्यवस्था का रीढ़ माना जाता है। 2019-20 में जीडीपी में कृषि की हिस्सेदारी 17.8% थी जो 2020&21 में बढ़कर 19.9 प्रतिशत होने का अनुमान है। दूसरी तरफ 2011 की जनगणना के अनुसार देश की कुल जनसंख्या का 61.5% हिस्सा ग्रामीण भारत में निवास करता है और कृषि पर निर्भर है। नाबार्ड की एक रिपोर्ट के अनुसार देश में 10.07 करोड़ परिवार खेती पर निर्भर है यह संख्या देश के कुल परिवारों की 48% है।

1990 में अंग्रेजी के प्रमुख अखबार द हिंदू में बी- साईनाथ की एक रिपोर्ट छपी थी जिसमें उन्होंने बताया था कि किसानों द्वारा नियमित आत्महत्याएं की जा रही हैं जो महाराष्ट्र के विदर्भ क्षेत्र में हो रही थी। जो विदर्भ के कपास उत्पादक किसानों ने की थी। महाराष्ट्र के राज्य अपराध लेखा कार्यालय द्वारा जारी आंकड़ों को देखने पर पता चलता कि पूरे महाराष्ट्र में कपास और अन्य नगदी फसलें पैदा करने वाले किसानों का आत्महत्या दर अधिक है। आत्महत्या की दृष्टि से 2009 सबसे खराब वर्ष रहा है। इस दौरान भारत के अपराध लेखा कार्यालय ने 17368 किसानों की आत्महत्या का आंकड़ा दिया। जिसमें महाराष्ट्र] कर्नाटक] आंध्र प्रदेश] मध्य प्रदेश और छत्तीसगढ़ में सबसे ज्यादा कृषक आत्महत्या हुई। देश के कुल कृषक आत्महत्या का 62% (10765) केवल इन्हीं पांच राज्यों में था। राष्ट्रीय अपराध लेखा कार्यालय द्वारा जारी

* सहायक प्रोफेसर, समाजशास्त्र, सकलडीहा पी. जी. कालेज, सकलडीहा, चंदौली

आंकड़ों के अनुसार 1995 से 2011 तक 17 वर्षों में 750860 किसानों ने आत्महत्या की। 30 दिसंबर 2016 को जारी एनसीआरबी की रिपोर्ट एक्सीडेंटल डेथ्स एंड सुसाइड इन इंडिया 2016 के अनुसार वर्ष 2015 में कृषि क्षेत्र से जुड़े 12602 ने आत्महत्या की यानी औसतन हर 41 मिनट में हमारे देश में कहीं न कहीं एक किसान आत्महत्या करता है। 2014 में 12360 तथा 2013 में 11772 कृषकों ने आत्महत्या की थी।

2 जनवरी 2020 को राष्ट्रीय आपदा अपराध लेखा कार्यालय द्वारा सत्र 2017 के कृषि क्षेत्र में आत्महत्या से संबंधित आंकड़ों का प्रकाशन किया जिसमें बताया गया कि 2017 वर्ष में कृषि में शामिल 10655 लोगों ने आत्महत्या की जो 2013 के बाद का सबसे कम आंकड़ा है 10655 में लोगों में 5955 कृषक और 4700 खेतिहर मजदूर थे सन् 2017 में आत्महत्या के सभी मामलों में कृषक आत्महत्या दर 8.2% है जिसमें सबसे अधिक आत्महत्या ए महाराष्ट्र में 34.7% कर्नाटक 20.3% मध्य प्रदेश 9% तेलंगाना 8% और आंध्र प्रदेश में 7.7% हुई किसान आत्महत्या का लगभग 80% आत्महत्या ए इन्हीं पांच राज्यों में हुए पिछले 20 वर्षों में किसान आत्महत्या लगातार जारी है जो सरकार के संस्थान संज्ञान में है और संज्ञान में होने के बावजूद भी आत्महत्याओं का सिलसिला घटा नहीं इन कृषक आत्महत्याओं में एक चिंताजनक बात यह देखने में आ रही है कि जिन किसानों ने आज से 20 साल पहले आत्महत्या की थी उनकी भावी पीढ़ियां भी उसी रास्ते पर चल रही है और देखने में यह आ रहा है की किसान मौजूदा व्यवस्था के हाथों मजबूर होकर आत्महत्या कर रहा है जबकि नीति नियंता ओं द्वारा अभी तक ठोस कारण बताने में असमर्थता ही ही मिल रही है जिन किसानों पर पूरी दुनिया का पेट भरने की जिम्मेदारी है और इस कार इनको वे बखूबी निभा रहे हैं वही आज अपनी स्थिति से तंग आकर आत्महत्या करने को मजबूर हैं और आत्महत्या कर रहे हैं दूसरी तरफ सरकारी उदासीनता के कारण आत्महत्या करने वाले कृषकों के परिवार को भरण-पोषण की समस्या का सामना करना पड़ रहा है अब प्रश्न यह उठता है कि इतनी बड़ी संख्या में किसान आत्महत्या क्यों कर रहा है इसके पीछे कुछ कारण नजर आता है जिसमें प्रमुख दया से कर्ज और प्राकृतिक आपदाएं हैं।

किसानों द्वारा कृषि कार्य के लिए दो तरह से ऋण लिया जाता है जिसमें पहला सरकारी बैंकों से लिया जाने वाला कर्ज तथा दूसरा स्थानीय साहूकारों द्वारा लिया जाने वाला कर्ज इन दोनों क्षेत्रों से किए जाने वाले कर्ज के आधार पर जब किसान अपनी खेती का कार्य करता है और फसल का उत्पादन उसके अनुरूप नहीं होता है होता और फसल का उचित लागत के आधार पर उचित उत्पादन नहीं प्राप्त होता तो वह घाटे में चला जाता है यानी उसको उसकालागत भी नहीं प्राप्त होता तो वह ऋण जाल में फंस जाता है इसका कारण यह है कि किसान जिस कर्ज को अच्छी फसल की उम्मीद में लेता है लेकिन नुकसान होने की स्थिति में ब्याज के नाम पर निरंतर किस्त चुकाने पर मजबूर होता है और लिया गया कर्ज अर्थात मूलधन यथावत बना रहता है अगर विदर्भ क्षेत्र की बात करें जहां किसानों द्वारा सबसे अधिक आत्म हत्याएं की गई हैं उस क्षेत्र में स्थानीय साहूकारों द्वारा दिया जाने वाला कर्ज एक बहुत बड़े व्यवसाय के रूप में उभर कर सामने आया है जो सरकार के नाम नाक नीचे चोरी छुपे खूब फल फूल रहा है इन साहूकारों के कर्ज के चंगुल में फंसने के बाद किसानों को बाहर निकलना मुश्किल हो जाता है इसके उदाहरण को एक दैनिक समाचार पत्र में छपी खबर के आधार पर देखते हैं विदर्भ में एक कपास उत्पादक द्वारा साहूकार से ₹3000 का कर्ज लिया जिसने जिस जिसे न चुका पाने की स्थिति में उसे आत्महत्या करने पर मजबूर होना पड़ा लेकिन जब उसकी पड़ताल की गई तो पता चला कि उक्त किसान द्वारा वह कर्ज 3 साल पहले लिया गया था जिसके ब्याज की किस्त वह 3 साल से चुका रहा था जबकि मूलधन यथावत बना रहा और यही मूल धन वापस मांगने के लिए किसानों के परिवार को वह बेइज्जत किया गया जिस से दुखी होकर किसान ने आत्महत्या कर ली अर्थात उस किसान की मर्यादा आहत हुई और उसको अपनी मर्यादा रक्षा के लिए आत्महत्या को मजबूर होना पड़ा।

फरवरी 2020 महीने में राजस्थान की एक 35 वर्षीय कृषक के आत्महत्या की खबर दैनिक पत्र में छपा था जो बैंक का ऋण न चुका पाने की स्थिति के कारण आत्महत्या कर ली जिस पर स्टेट बैंक आफ इंडिया का 5:30 लाख का कर्ज था ऐसी अनेक उदाहरण हमको देश में देखने को मिलते हैं कि बैंकों के कर्ज न चुका पाने के कारण किसानों को लोकार्स के लोक लाज के कारण आत्महत्या जैसे आत्मघाती कदम उठाने पर मजबूर होना पड़ता है दूसरी तरफ जमीन विवाद के कारण भी कुछ कृषकों ने आत्महत्या की।

भारत में कृषकों के आत्महत्या करने की प्रमुख कारणों में कृषि जोतों का छोटा होना भी प्रमुख है सन 1960 61 में भू स्वामित्व की इकाई का औसत आकार 2.3 हेक्टेयर था जो 2002 2003 में घटकर 1.06 हेक्टेयर रह गया हाल ही में एक आंकड़े द्वारा इस बात का खुलासा हुआ कि 30 फ़ीसदी ग्रामीण आबादी भूमि इन है जिसका कारण यह है कि छोटी जोत के किसान खेती छोड़ कर दैनिक मजदूर बन चुके हैं क्योंकि खेती करना उनके बस का नहीं है उस छोटी जोत से उनका और उनके परिवार का पेट नहीं भरता तथा खेती करना भी महंगा हो चुका है और जो किसान खेती करते भी हैं वे परंपरागत अन्न उत्पादन को छोड़कर नकदी फसलों यथा कपास गन्ना आदि उप जाने लगे हैं उसका परिणाम आज हम सभी के सामने हैं अर्थात विदर्भ के किसानों द्वारा की आत्महत्या ए जो कपास का उत्पादन करते हैं पहले यह किसान देसी वीडियो द्वारा कपास उत्पादक करते थे बाद में बीटी काटन नामक क पास आया और इसके द्वारा तीन गुना अधिक उत्पादन की बात कही गई परंतु बीटी काटन के बीच विदेशी बीज से काफी महंगे मूल्य पर उपलब्ध होते हैं और इन्हीं महंगी बीज के लिए ही किसान कर्ज लेता है किंतु फसल के खराब होने पर वह कर्ज नहीं चुका पाता और परिणाम आत्महत्या के रूप में सामने आता है।

मौसम की अनिश्चितता और जलवायु परिवर्तन के कारण सूखा और बाढ़ का भी सामना किसानों को करना पड़ता है और इन्हीं प्राकृतिक आपदाओं का बार बार उत्पन्न होना फसल को बर्बाद कर देता है और फसल बर्बादी के कारण कृषक के अनुमान के अनुरूप उत्पादन ना होने के कारण किसानों पर अतिरिक्त बोझ पड़ता है और कृषकों की आय निरंतर गिरती जाती है जिसका असर उनके स्वास्थ्य पर भी पड़ता है बीमारी की स्थिति में वह महंगा इलाज कराने में असमर्थ होता है महंगे इलाज की अपेक्षा आत्महत्या करना उसे ज्यादा सही लगता है मानसिक चिंता के कारण वह बुरे वक्त वाले समस्याओं में भी वह फस जाता है जैसे शराब पीना अन्य नशे का सेवन करना इन्हीं मादक पदार्थों के सेवन के भावेश में वह कभी कभी आत्महत्या भी कर लेता है किसानों की आत्महत्या के लिए सरकार की दोषपूर्ण आर्थिक नीतियां भी जिम्मेदार हैं जिसका प्रभाव कृषि क्षेत्र में दिखने लगा है अधिकतर किसानों से सुनने को मिल जाता है कि अब खेती घाटे का सौदा बन गई है।

विदर्भ में हुए आत्महत्याओं पर विचार के लिए महाराष्ट्र सरकार तथा केंद्र की सरकार द्वारा कई कमेटियां बनाई गई और बाद में मनमोहन सिंह सरकार ने विदर्भ के किसानों के लिए 110 अरब के

अनुदान की घोषणा की गई मोदी सरकार ने भी 2022 तक किसानों की आय दुगनी दोगुना करने की घोषणा कर चुकी है लेकिन अनेक सरकारी प्रयासों का जमीनी हकीकत कुछ और ही बयां करता है अगर हमारी नीति नियंता गंभीरतापूर्वक इन आत्महत्याओं पर लगाम लगाना चाहते हैं तो उन्हें किसानों को कम कीमत पर फसल बीमा जीवन बीमा तथा स्वास्थ्य सुविधाएं प्रदान करने के साथ किसान आयोग का गठन जैसे मुद्दे पर गंभीरता से विचार करना चाहिए दूसरी तरफ हमारे देश के किसान कृषि वैज्ञानिकों को ऐसे बीच विकसित करना चाहिए जो मौसम के प्रतिकूल होने पर भी उत्पादन दे सके स्वामीनाथन आयोग की सिफारिश लागू करना तथा किसानों के तकनीकी प्रबंधन और विपणन को अधिक शुभम बनाते हुए सभी कृषकों तक सर्व सुलभ कराना कराना होगा।

अतः हम निष्कर्ष तक आ सकते हैं कि अगर कृषक और कृषि क्षेत्र उपेक्षित होगा तो कृषक आत्महत्याओं को नहीं रोका जा सकता ग्रामीण क्षेत्र के लोग जिनके जीवन का आधार ही कृषि है उनके लिए वर्तमान आधुनिकता और विकास का कोई मतलब नहीं रह जाता अगर देश का किसान अन्य उत्पादन करना कम करता है तो यह पूरे देश के लिए एक चिंता का विषय बन जाएगा जिसका सभी देशवासियों पर प्रभाव पड़ेगा अतः सरकारों नीति नियमों शोधार्थियों वैज्ञानिकों आदि को कृषि से जुड़ी समस्याओं पर समय रहते ध्यान देना पड़ेगा अन्यथा हम कृषक आत्महत्या को नहीं रोक सकते।

सन्दर्भ :

1. बहुवचन संपादक अरविंदक्षण 12627 संयुक्त महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय वर्धा।
2. ज़ीन्यूज़ 19 अगस्त 2020 शीर्षक हर महीने 70 किसान कर रहे हैं आत्महत्या।
3. डॉ विजय शिंदे का आलेख आधारहीन किसानों का खेती से पलायनमुठमाती।
4. Farmer suicide rates Shor AVN the raised dwara P Sainath The Hindu 21 October 2013.
5. कृषक जीवन संघर्ष और आत्महत्या द्वारा संतोष कुमार राय राष्ट्रीय सहारा 2 दिसंबर 2017।
6. हमारे किसान आत्महत्या क्यों करते हैं द्वारा पुलकित भारद्वाज सत्याग्रह 1 मई 2020

***

कनिष्क के देवत्त्व की अवधारणा

डॉ. स्वस्तिक सिंह *
डॉ. मीनाक्षी सिंह **

मौर्य साम्राज्य के पतन के बाद उत्तर भारत की राजनीतिक एकता का जो बिघटन प्रारम्भ हुआ वह दो सौ वर्षों से अधिक समय तक चलता रहा परन्तु कुषाणों ने उस एकता को अंशतः पुनः प्रतिष्ठित किया और समभवतः एक शताब्दी से अधिक समय तक बनी रही। कुषाण प्रशासन के अध्ययन के मुख्य स्रोत्र अभिलेख और अधिक सीमा तक सिक्के हैं। वच बास्तव में मौर्योत्तर काल में राज्यवस्था पर अर्थशास्त्र तथा स्मृतियों के विचारों और आदर्शों का प्रभाव पड़ा।[1] यद्यपि कुषाण मध्य ऐशियाई थे, परन्तु वे भारत में एक लम्बी अवधि तक शासन करने आए। ऐसा सोचना गलत नहीं होगा कि बहुत सीमा तक वे भारतीय राजनीतिक विचारों से प्रभावित थे। सफलतापूर्वक शासन करने के लिए कुषाण शासकों को 'धर्म' अथवा देश के विधान का पालन करना पड़ा। वास्तव में न तो कुजुल कदफिसस ने, न ही वीम कदफिसस ने और न ही कनिष्ठ अथवा उसके उत्तराधिकारियों ने राजकीय अभिलेख जारी किए। ऐसी स्थिति में, सम्भवतः, अर्थशास्त्र–स्मृति परम्परा मध्यएशियाई कनिष्क को प्रभावित करने में असफल नहीं हुई। कनिष्क भी उस परम्परा से प्रभावित हुआ होगा। उसे भली–भाँति में राजा और समुदाय, राज्य और समाज तथा राजनीति और धर्म के माध्यम से सम्बन्धों को अर्थशास्त्र स्मृति के विचारों के अनुरूप अपने को ढालना पड़ा होगा।

कुषाण राज्य का उद्भव दण्ड के प्रयोग से हुआ था। प्रथम, प्रारम्भिक इतिहास के अनुसार, यू–ची की सर्वोच्च सैन्य शक्ति से पराजित होने के बाद ही शक, सम्भवतः, कि–पिन चले गए। द्वितीय, वैदिक आर्यो[2] की भाँति, यू–ची ने निवासित देश के कुछ जातिय प्रान्तों में बाँट दिया जो अक्सर आंतरिक कलह एवं संघर्ष में व्यक्त रहते थे। तृतीय, कुजुल कदफिसस जैसे शक्तिशाली व्यक्ति ने कुषाण साथियों की सहायता से ताहिया के पाँच प्रान्तों को अपने नियंत्रण में कर लिया। यू–ची जाति की विभिन्न शाखाओं के मध्य चले आ रहे लम्बे संघर्ष का यह अंतिम समाधान था। इस प्रकार दण्ड द्वारा स्थापित राज्य को दण्ड द्वारा बनाए रखा। सैनिक अधिकारियों जैसे 'दण्डनायकों' और 'महादण्डनायकों' का उल्लेख कनिष्क के लेखों में मिलता है। कनिष्क के अभिलेखों में दण्डनायक शब्द का विभिन्न रूपों में अधिक उपयोग हुआ। कनिष्क ने भारत की पारम्परिक चतुरंगिणी

* असिस्टेंट प्रोफेसर, प्राचीन इतिहास, जी.एस.एस. पी.जी. कॉलेज, कोयलसा, आजमगढ़
** एसोशिएट प्रोफेसर, प्रा.भा.इ. संस्कृति एवं पुरातत्त्व, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

सेना के स्वरूप को कहाँ तक परिवर्तित किया, इसकी स्पष्ट जानकारी नहीं है। वास्तव में कुषाण कुशल घुड़सवार थे। मथुरा से प्राप्त कनिष्क की मूर्ति से स्पष्ट है कि बूट और पतलून पहिने कनिष्क जैसे घुड़सवार की आवश्यक वेश भूषा थी। सिक्कों पर अंकित कनिष्क बटनदार कोट, पतलून तथा बूट पहिने, बायें हाथ में शूल तथा दाहिने हाथ में अंकुश है, कमर से तलवार लटक रही है। उसकी वेश–भूषा स्पष्टतः सैनिक की है। अतः कहा जा सकता है कि कनिष्क के प्रशासन का आधार दण्ड था। दुर्भाग्यवश हमें न तो कनिष्क की सेना की संख्या बल के बारे में कोई जानकारी नहीं है और न उसके संगठन तथा वितरण के सम्बन्ध में कुछ ज्ञात है।

राज्य की प्रारम्भिक अथवा प्रागैतिहासिक उत्पत्ति के विषय में इतिहासकारों तथा राजनीतिक लेखकों द्वारा विभिन्न सिद्धांतों का प्रतिपादन किया गया है। भारत में संगठित सरकार के प्रारम्भिक स्वरूप को राजतंत्रात्मक माना गया है। ब्राह्मण तथा महाकाव्य परम्पराओं में राजा की दैवी उत्पत्ति को प्रदर्शित किया गया है।[3] राज्य की दैवी उत्पत्ति के सिद्धांत के विकास में और वृद्धि हुई जब कुषाणों ने भारतीय भू–भागों पर विजय प्राप्त की।

दैवी उत्पत्ति के सिद्धान्त के अनुसार, ईश्वर ने अपनी असीमित बुद्धि द्वारा राज्य उत्पन्न किया और राजा इस पृथ्वी पर उसकी शक्तियों को प्राप्त कर उसका प्रतिनिधि है। कनिष्क के शासन काल में कुषाण राज्य की सीमायें पश्चिमोत्तर से लेकर पूर्वी भारत तक विस्तृत थीं। देशज कुषाण शासक की सैनिक शक्ति के अधीन थे। उनकी धार्मिक भावनाओं का अभिलेखों तथा सिक्कों द्वारा प्रचारित दैवी उत्पत्ति द्वारा शोषण किया गया। सौभग्यवश कुषाणों के लिए राज्य शास्त्र पर प्रकाश डालने वाले ब्राह्मण तथा बौद्ध ग्रन्थों से राजा के देवत्त्व पर प्रकाश पड़ता है। विदेशी शासन के अन्तर्गत यदि भारतीय को कोई कष्ट था भी तो भी उसकी अभिव्यक्ति किसी भी रूप में कनिष्क कालीन साहित्यिक तथा अभिलेखीय साक्ष्यों में नहीं हुई है।

कुषाण नरेश के पास अप्रतिबन्धित शक्तियाँ थीं, कनिष्क के अभिलेख उसे 'देवपुत्रस्य' कहते हैं, जिससे राजा की दैवी उत्पत्ति की अवधारणा के अस्तित्व तथा राजा की शक्ति के विकास की सूचना प्राप्त होती है।[4] कनिष्क के सिक्कों पर अंकित दैवी चिन्हों से भी दैवी उत्पत्ति के सिद्धान्त की पुष्टि होती है। इन सिक्कों पर ज्वालाएँ[5], बादल,[6] प्रभामण्डल[7] अंकित हैं। षाओ नानो षाओ लेख वाले सिक्कों पर राजा के शीर्ष के पार्श्व में प्रभामण्डल तथा राज्य के कंधों से प्रज्वलित ज्वालाएँ अंति हैं। कुछ सिक्कों पर राजा बादलों से निकलते हुए अंकित किया गया है।[8] ये विशेषताएँ कनिष्क के देवत्व को पुष्ट करती है।

अशोक की 'देवानाम प्रिय' तथा कनिष्क की 'देवपुत्र' उपाधियाँ तथा मनु का 'महती देवता' सिद्धान्त भारत में राजा की शक्ति के क्रमागत विकास को प्रदर्शित करता है। मनु का कथन है कि जब राज्य विहीन प्राणी भयवश

होकर विभिन्न दिशाओं में बिखर गए तब ईश्वर ने सभी क रक्षा के लिए राज्य की उत्पत्ति की।[9] इस उद्देश्य के लिए इन्द्र, वायु, यम, सूर्य, वरूण, चन्द्र तथा कुबेर आदि के अंगों को लेकर राज्य का निर्माण किया।[10] मनु ने पुनः कहा है कि चूँकि राजा के शरीर का निर्माण इन देवताओं के अंशों से हुआ है, इसलिए वह अन्य प्राणियों के यश से अधिक था तथा वह सूर्य की भाँति नेत्रों और हृदयों को जलाता है, न ही पृथ्वी पर कोई व्यक्ति उसे घूर सकता है, विचार में भी बालक राजा का तिरस्कार नहीं करना चाहिए क्योंकि मनुष्य के रूप में वह महान देवता है।[11]

कनिष्क के सिक्कों पर दैवीकरण के चिन्ह तथा अभिलेखों तथा सिक्कों में प्रयुक्त ऊँची उपाधियों के प्रयोग निःसंदेह राज्य की उत्पत्ति के दैवी सिद्धान्त में विश्वास को विश्वास प्रदर्शित करते है। राजा को दैवी स्वरूप प्रदान करने से सम्भवतः विकेन्द्रीकरण की शक्तियों को किसी सीमा तक रोका जा सकता था।[12] कनिष्क बौद्ध था, फिर भी उसने 'देवपुत्र' उपाधि धारण करके अपने को देवता के रूप में प्रतिष्ठित करने का प्रयत्न किया। राजा का ऐसा दैवीकरण, दीघनिकाय में प्रतिपादित राजत्व की उत्पत्ति का विषय बौद्ध सिद्धांत से असंगत था और प्रारम्भिक ब्राह्मणवादी सिद्धांतों के अनुरूप नहीं था।[13] यद्यपि वैदिक काल में राज्य का देवत्व कोई व्यापक रूप में मान्य नहीं था। परन्तु परवर्ती काल में अर्थशास्त्र में राज्य की सत्ता को मजबूत बनाने के लिए धार्मिक हथकंडों का सहारा लिया गया है, लेकिन राज्य के देवत्व का ध्यान नहीं दिया गया है।[14] अशोक को उसके अभिलेखों में देवानंप्रिय (देवताओं का प्रिय) कहा गया, इसको कहलाने में वह गौरव का अनुभव करता था। इस उपाधि को उसके पौत्र दशरथ ने भी कायम रखा।[15] मौर्योत्तर काल में इस उपाधि का प्रयोग समाप्त हो गया, इसके स्थाना पर एक अन्य उपाधि देवपुत्र का प्रचलन हुआ। इस उपाधि का उल्लेख 21 ब्राह्मी (ल्युडर्स लिस्ट के अनुसार) और 3 खरोष्ठी कोनों की लिस्ट के अनुसार अभिलेखों में हुआ है और ऐसा प्रतीत होता है कि कनिष्ठ को अपने पूर्ववर्ती राजाओं की भाँति देवपुत्र उपाधि उतनी ही प्रिय थी जितनी कि देवानांप्रिय उपाधि अशोक को।

सर्वप्रथम सिलवा लेवी ने कुषाणकालीन महायानी बौद्ध ग्रन्थ 'सवर्णप्रभासोत्तम सूत्र' की ओर ध्यान आकर्षित किया है, जिसमें कुषाण राजाओं द्वारा अपनाई उपाधि देवपुत्र के सैद्धांतिक औचित्य सिद्ध करने का प्रयास किया गया है।[16] बौद्ध ग्रन्थ में प्रश्न पूछा जाता है कि मनुष्य रूप में उत्पन्न राजा देव क्यों कहा जाता है और उसे देव पुत्र संज्ञा से क्यों अभिहित किया जाता है ?[17] उत्तर में कहा गया है कि मनुष्य के रूप में उद्भूत होने के पूर्व वह देवों के बीच रहता था और चूँकि जिन तत्वों से उसका निर्माण हुआ उन तत्वों में तैंतीस देवताओं में से प्रत्येक ने योगदान किया, इसलिए वह 'देवपुत्र' कहलाता है।[18]

मनुस्मति, महाभारत के शांतिपर्व तथा सुवर्णप्रभासोत्तम सूत्र में राजा की दैवी उत्पत्ति के सम्बन्ध में कुछ समानताएँ मिलती हैं। सुवर्णप्रभासोत्तम सूत्र की भाँति मनु ने राजा के लिए देवपुत्र का प्रयोग नहीं किया है परन्तु वह कहता है कि उसमें आठ देवों के गुणों का समावेश है[19], और राजा यदि बालक हो तो भी उसकी अवहेलना नहीं करनी चाहिए।[20] शांति पर्व के अनेक श्लोक, मनु के श्लोकों के समान हैं तथा जिसमें राजा की उत्पत्ति के सम्बन्ध में सुवर्णप्रभासोत्तम सूत्र के ढंग पर ही प्रश्न पूछा गया है कि मूल राजा को ईश्वर का वंशज कहा गया है।[21] ये तीनों ग्रन्थ, जिसमें एक बौद्ध परम्परा और दो ब्राह्मण परम्परा के हैं, राजा को ऐसा दैवी रूप प्रदान करते हैं जो पहिले कभी नहीं प्रदान किया गया था। अतः ऐसा सम्भव प्रतीत होता है कि तीनों को प्रेरणा कुषाण कालीन स्थिति से मिली होगी। परन्तु कनिष्क को देवपुत्र कहा जाना भारतीय परम्परा के अनुरूप नहीं था, अतः अन्य समकालीन अथवा परवर्ती भारतीय राजाओं ने इसे ग्रहण नहीं किया।

एफ.डब्ल्यू. टॉमस का समर्थन करते हुए यू.एन. घोषाल का मत है कि देवपुत्र कुषाण राजाओं की राजकीय तौर पर ग्रहण की गई उपाधि नहीं थी, अपितु प्रजा द्वारा उनके नामों के साथ सम्मान के भाव से जोड़ा गया विशेषण था।[22] लेपी के आधार पर टॉमस ने कहा कि देवपुत्रों का उल्लेख पूर्ववर्ती साहित्य में भी हुआ है और देवपुत्र देवदेताओं के वर्ग का नाम था।[23] परन्तु रामशरण शर्मा के अनुसार, यदि पूर्ववर्ती साहित्य में इस शब्द का प्रयोग 'देवता का पुत्र' या 'देवताओं के वर्ग' के अर्थ में हुआ है, तो इसका अर्थ यह नहीं लगाया जा सकता है कि कुषाण राजा एक विशेष अर्थ में इसका प्रयोग कर ही नहीं सकते थे। सुवर्णप्रभासोत्तम सूत्र में देवपुत्र उपाधि का जो औचित्य सिद्ध किया गया है तथा राज्य व्यवस्था के इसी काल के आस–पास लिखे गए ग्रन्थों में जिस तरह राजा की दैवी उत्पत्ति समझााने का प्रयत्न किया गया है उससे ऐसा निष्कर्ष लगाया जा सकता है कि इसका प्रयोग कुषाण राजाओं के देवत्व पर जोर देने के लिए किया जाता था। टॉमस ने यह भी कहा कि कुषाण सिक्कों पर महाराज और राजापतिराज जैसी उपाधियाँ तो प्राप्त होती है, किन्तु देवपुत्र नहीं, अतः वह कुषाणों की राजकीय उपाधि नहीं हो सकती है। ऐलन के आधार पर वह मानते हैं कि कुजुल कर कफस (कदफिसस द्वितीय) के एक सिक्के पर कनिंधम ने जिस शब्द को देवपुत्र पढ़ा है, वह गलत है।[24] ध्यान देने की बात है कि स्थानाभाव के कारण सिक्के पर सभी उपाधियाँ सम्मिलित नहीं की जा सकती। टॉमस ने जितने अन्य तर्क[25] दिए हैं, उनका खण्डन करते हुए रामशरण शर्मा ने कहा है कि कुषाण अभिलेखों में अन्य उपाधियों के साथ देवपुत्र का भी उल्लेख हुआ है और इसलिए इस पर अन्य उपाधियों से भिन्न दृष्टि से विचार नहीं किया जा सकता है।[26] इस आलोक में हम कह सकते हैं कि देवपुत्र कनिष्क की राजकीय उपाधि थी। तीसरी सदी के एक ग्रन्थ में, जिसका चीनी में 392 ई. में अनुवाद हुआ, भारत के राजा और यूची

के राजा को भी 'स्वर्ग पुत्र' कहा गया है और तीसरी शताब्दी के ही एक चीनी स्रोत में भी यूची राजाओं को 'स्वर्गपुत्र' कहा गया है।[27] अतः स्पष्ट है कि कनिष्क की राजकीय उपाधि देवपुत्र थी। यह उपाधि केवल कनिष्क समूह के उन राजाओं के सन्दर्भ में ही प्रयुक्त हुई है जिन्होंने पहली शताब्दी के उत्तरार्द्ध में पश्चिमोत्तर भारत से पार्थियनों को खदेड़ा था। पार्थियन राजाओं ने एक उपाधि अपनाई थी जिससे पता चलता है कि वे देवता को अपना पिता मानते थे। स्रोत चाहे सामी हो या यूनानी, परन्तु इसमें कोई संदेह नहीं है कि पहली शताब्दी के पूर्वार्द्ध के दो पार्थियन राजाओं, फरैटिस द्वितीय तथा फरैटिस तृतीय ने, जो कुषाणें के ठीक पूर्ववर्ती राजा थे, यह उपाधि धारण की थी।[28] स्पष्ट है कि जब प्रारम्भिक कुषाण राजाओं ने पार्थियनों को जीता तब कनिष्क तथा उसके उत्तराधिकारियों ने पार्थियन उपाधियों तथा पार्थियन राज्य, दोनों को अपना लिया। समकालीन स्रोतों से स्पष्ट है कि कालांतर में इस उपाधि का प्रयोग महत्वपूर्ण राजनीतिक हथियार की तरह होने लगा।[29] राज्याधिकारी तो स्वाभवतः राजनीतिक उपाधियों के प्रयोग को ही प्राथमिकता देगा। प्रसिद्ध प्रयाग प्रशस्ति में भी अन्य उपाधियों के साथ देवपुत्र का उल्लेख हुआ है तथा उल्लेखनीय है कि इसका प्रारूप समुद्रगुप्त के राज कवि हरिषेण ने किया था। वह दैवपुत्र षाहि षाहपुषाहि' अभिव्यक्ति द्वारा प्रच्छन्न संकेत कुषाणों की ओर करता है। निःसंदेह, देवपुत्र उपाधि की कल्पना का भाव राजा के देवत्व से है जिसे सिक्को पर अंकित अर्द्ध दैवी अंकनों द्वारा प्रदर्शित किया गया है।

पुरो भाग पर कनिष्क के साथ देवत्व के चिन्ह, प्रभामण्डल, कंधों से प्रज्वलित ज्वालायें, बादलों से उदित होते राजा की आकृति आदि, सामान्यतः पृष्ठ भाग पर अंकित देवी–देवताओं के अंकन से सम्बन्धित है। ड्राउइन के अनुसार, देवत्व के चिन्हों की हेलेनिस्टिक विशेषताएँ हैं।[30] परन्तु उनकी भारतीय विशेषतायें कम आश्चर्यजनक नहीं हैं। फिर भी कुषाण सिक्कों पर देवत्व के चिन्हों को एक राजतंत्रात्मक सिद्धांतों के प्रतिमा वैज्ञानिक अभिव्यक्ति की स्थापना के रूप में विचार किया जाए तो ऐसा कोई कारण नहीं है कि क्यों देवपुत्र कुषाण नरेशों की आधिकारिक उपाधि स्वीकार करें, जैसा कि एफ.डब्लू. टॉमस[31] तथा पालि जातक टीका (II, पृ. 261) से सूचित होता है कि कभी–कभी शब्द 'देव' (ईश्वर) तथा 'देवपुत्र (देव च नाम देवपुत्र) एक समान हैं। कुषाणों ने जान बुझकर राजा को देवता सदृश पूजा करने के लिए उपाए अपनाए जैसा कि पेशावर रेलीक्यूरी[32] के ढोल पर सूर्य और चन्द्र के मध्य कनिष्क की आकृति प्रदर्शित की गई है।

कुषाणों ने मृत राजाओं की देवता तुल्य मूर्तियों की स्थापना के लिए देवकुलों का निर्माण आरम्भ किया। विमकदफिसस की विशाल प्रतिमा पर उत्कीर्ण अभिलेख में देवकुल शब्द आया है।33 इसके अतिरिक्त हुविष्क के शासन काल में उसके पितामह के देवकुल के जीर्णोद्वार का भी उल्लेख प्राप्त होता है।[34] पुनः इन अभिलेखीय साक्ष्यों के अलावा कुषाणकाल में

देवकुल के अस्तित्व की जानकारी मथुरा पुरातात्त्विक संग्रहालय में मूर्तियों के संघ में कनिष्क की प्रतिमा के साथ उसके पूर्वज वीमकदफिसस तथा कुषाण क्षत्रप चष्टन की प्रतिमायें प्राप्त होती हैं।[35] अधिक सम्भावना है कि ये मूर्तियाँ देवकुल में स्थापित करने के लिए रही हों। भास के प्रतिमानाटक के आधार पर माना गया है कि देवकुल में मृत राजा के सम्मान में उसकी प्रतिमा प्रतिष्ठित की जाती थी।[36] इसी नाटक के आधार पर कहा गया है कि यह कोई पूजा स्थल नहीं, अपितु लौकिक प्रयोजनों के लिए बनाया गया मंदिर था।[37] क्योंकि नाटक में इस मंदिर की न अपनी कोई ध्वजा बताई गई है, न कोई दिव्यशस्त्रास्त्र और न अन्य अनेक प्रतीक उपादान जो साधारण मन्दिर से जुड़े होते है।[38] यहाँ भास की तिथि पर निर्भर है कि क्या देवकुल स्थापना की प्रथा भारत में प्रचलित थी और कुषाणों ने उसे अपनाया था। यह सुझाव दिया गया है कि कालीदास चतुर्थ शताब्दी में हुए थे और अक्सर उनके पूर्वजों की तिथि का उल्लेख उनकी कृतियों में हुआ है। अतः भास को द्वितीय–तृतीय शताब्दी में रखने का प्रयास किया गया है।[39] भाषा विज्ञान के आधार पर भास को अश्वघोष का उत्तराधिकारी मानकर प्रथम शताब्दी में रखा जाता है।[40] ऐसी स्थिति में देवकुल निर्माण की प्रथा से, सम्भवतः भास अनुप्राणित रहे हों। परन्तु दूसरी ओर भास की तिथि प्राक्–कौटिल्य तिथि मानी गई है तथा उन्हें चतुर्थ शताब्दी ई0पू0 में रखा गया है।[41] यदि तर्क की इस दिशा में हम सोंचे तो स्वीकार करना पड़ेगा कि कुषाणों ने देवकुल प्रथा को प्राक् मौर्यकाल से भारतीयों से अपनाया और न कि रोमनों से जैसा कि सामान्यतः विद्वानों ने माना है।[42] एक अनुमान के अनुसार, यह प्रथा कुषाणों ने टाइबार तट पर रोमवासियों से ग्रहण ही होगी।[43] परन्तु मृत राजा की पूजा का प्रचलन प्राचीनकाल मेसोपोटामिया में था और मिस्र में भी जहाँ फराओं की प्रतिमाओं को रखने के लिए समाधि मन्दिर बनाए जाते थे। सम्भवतः रोमन लोगों ने यह प्रथा अपने इन पूर्ववर्ती मिस्री राजाओं से ही सीखी और बाद में व्यापारिक सम्पर्क के फलस्वरूप यह प्रथा कुषाणों ने अपनायी। यह भी तर्क दिया गया है कि भास को कौटिल्य का पूर्ववर्ती मानकर उसके आधार पर यह कहना गलत होगा कि यह प्रथा यहाँ प्राक् मौर्य काल में भी प्रचलित थी[44] तथा कुषाणों ने इसे अपना लिया। कौटिल्य ने 'देवपितृ पूजा' का उल्लेख किया है,[45] परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि पूर्वजों की प्रतिमाओं की पूजा की जाती थी। पुनः कौटिल्य ने मृत राजाओं की पूजा को स्पष्ट नहीं किया है। स्पष्ट है कि कुषाण इस प्रथा को भारत में लाए, जिनकी कई प्रतिमाएँ आज भी उपलब्ध हैं। सम्भव है कि पार्थियनों के मर्त्य राजा के स्मरणोत्सव मनाने की प्रथा से कुषाणों ने सीखा होगा।[46] बी0 राउलैण्ड के अनुसार, शैलीगत दृष्टिकोण से पार्थियनों द्वारा अनुप्राणित कुषाणों की सम्भावना अधिक है।[47] पुनः यह भी अनदेखी नहीं करना चाहिए कि कुषाणों ने अपने सिक्कों पर कभी–कभी राजा की आकृति अंकित करने की विधि को पार्थियनों से सीखा होगा। समकालीन राजवंशों के सिक्कों के

मध्य 'एक वेदिका पर आहुति डालते राजा' की विधि के निरीक्षण से आलोकित होता है कि समान प्रकार आर्सासिड वंश के पार्थियन राजाओं के निश्चित सिक्कों पर मिलता है।[48] वर्ष 41 के आरा अभिलेख उपर्युक्त साख्यों की पृष्ठभूमि में, कुछ संकेत होता है। इस अभिलेख में रोमन राजकीय उपाधि 'कैसर' वासिष्की पुत्र कनिष्क के नाम के साथ उत्कीर्ण है। सम्भवतः इससे ऐसा प्रतीत होता है कि एक स्थिति में कुषाण रोमन राजत्व की अवधारणा से प्रभावित थे।

कौटिल्य के अर्थशास्त्र[49] में उल्लिखित 'देवपितृ पूजा' से दैवीकरण तथा मृत राजाओं की पूजा की तुलना की गई है।[50] जैसा कि गणपति शास्त्री तथा हरिप्रसाद शास्त्री आदि अनेक विद्वानों ने भास की तिथि प्राक्–कौटिल्यीन स्वीकार की है, इसी के साथ ही कौटिल्य द्वारा उल्लिखित पितृ–पूजा को प्राचीन परम्परा के आधार पर ऐसा माना जा सकता है कि देवकुल की प्रथा प्रारम्भिक काल से ही भारत में प्रचलित रही थी। ऐसी स्थिति में इस सम्भावना को बल मिलता हे कि कुषाणों ने इस प्रथा को भारत से अपनाया होगा।

देवकुल स्थापित करने की प्रथा देवपुत्र उपाधि के अनुरूप थीं और ये दोनों बातें कुषाण राजाओं के दैवीकरण में सहायक सिद्ध हुईं। कनिष्क के सिक्कों पर राजा की जो आकृतियाँ मिलती हैं, उसे प्रभामण्डलयुक्त दिखाया गया है। जैसी कि उपर्युक्त विवेचना की गई है कि उसके कन्धों से ज्वालाएँ प्रस्फटित हो रही हैं, उसे बादलों से उदित होते प्रदर्शित किया गया है। हमें ज्ञात है कि प्रभामण्डल विशेष रूप से कनिष्क के सिक्कों पर अंकित देव प्रतिमाओं में दिखाया गया है।[51] इसलिए कनिष्क ने अपने दैवी उद्भव का संकेत देने के लिए अपने सिक्कों पर अपनी प्रतिमाओं को प्रभामण्डल, बादलों या ज्वालाओं से विभूषित रूप में अंकित करवाया।

जब राजाओं को धर्मग्रन्थों में देव कहा गया है, तो समाज में इसके महत्व की प्रशंसा की जाती है। राजा के कार्यों की तुलना, सामान्यतः देवताओं से की जाती है।[52] महाभारत के शांतिपर्व[53] में कहा गया है कि राजा वेण को उसकी निरंकुशता के लिए ऋषियों ने उसे मार डाला था। नारद ऐसे स्मृतिकार हुए हैं, जिन्होंने राजा की असीमित निरंकुशता का समर्थन करते हुए कहा है कि ऐसे निरंकुश राजा की गुण और योग्यता की परवाह किए बिना उसकी आज्ञाओं का पालन करना चाहिए, परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि कुषाण राजा कनिष्क ने यद्यपि देवत्व का दावा किया, परन्तु उसपे सम्भवतः, दैवी अधिकार अथवा निरंकुश शक्ति को थोपने का प्रयास नहीं किया। वह बौद्ध धर्मालम्बी था, देवत्व के प्रयास से उसने अपनी स्थिति को शासितों की आँखों में ऊँचा किया। राजकीय सत्ता की वृद्धि करने के पक्ष में, अधिक सम्भावना है, कनिष्क ने विकेन्द्रीकरण की शक्तियों को, जो मौर्योत्तर काल में प्रारम्भ हो गई थी को भरसक नियन्त्रित कर सके। इंग्लैण्ड में दैवी अधिकार के आधार पर शक्तिशाली राजनीतिक प्रभुसत्ता की

स्थापना हुई थी, परन्तु कनिष्क ने दैवी अधिकार के स्थान पर दैवी उत्पत्ति के सिद्धान्त द्वारा एक मजबूत राजकीय अधिकार स्थापित करने का प्रयास किया। सच्चे अर्थों में भारतीय शासकों की भाँति उसने तानाशाही की स्थापना करने की कभी भी कोशिश नहीं की। आवश्यक रूप से उसकी राजनीतिक शक्ति की कमजोरी सिद्ध नहीं होती।[54] कौटिल्य के अर्थशास्त्र[55] में राजा की अलौकिक शक्तियों के प्रचार हेतु चतुर तरीकों का उल्लेख हुआ है कि उसका देवताओं के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध था। विजय प्राप्त करने की अभिलाषा रखने वाले राजा को अपने दैवी स्वरूप के द्वारा शत्रु राज्य की जनता को प्रभावित करना चाहिए, ताकि बिना कठिनाई के उनकी स्वामिभक्ति को प्राप्त कर सके। लोग जो पहिले से ही विजेता के अधीन हो गए थे, दृढ़ता से राजा के राजभक्त बने रहकर, राजा को 'स्वर्गपुत्र' मानते रहे। कनिष्क के सिक्कों पर उसकी अर्द्ध दैवी आकृतियाँ तथा देवपुत्र उपाधि का धारण करना, भारत में विजित लोगों की धार्मिक भावनाओं को दोहन करने के उद्देश्य से थी।

सन्दर्भ :

1. बी. चट्टोपाध्याय : कुषाण स्टेट एण्ड इण्डियन सोसायटी, कलकत्ता, 1975, पृ. XXVII.
2. तुलना कीजिए, आर.सी. मजूमदार तथा ए.डी. पुसनकर द्वारा सम्पादित, दि वैदिक ऐज, लन्दन 1951, पृ. 252 तथा आगे
3. के.पी. जायसवाल : हिन्दू पॉलिटी, बंगलोर, 1968, पृ. 184–85.
4. एपिग्राफिया इण्डिका, (ए.इ.), 1, पृ. 381, संख्या 1, पृ. 391, संख्या 19, ए.इ., 8 पृ. 179 या आगे, ए.इ., 9, पृ.–239 तथा आगे, ए.इ. 19, पृ. 96 तथा आगे आदि
5. बी. चट्टोपाध्याय : दि ऐज ऑफ दि कुषाणाज–ए न्यूमिस्मेटिक स्टडी, कलकत्ता, 1979, पृ. 58
6. उपर्युक्त, पृ. 136, पी. गार्डिनर, ब्रिटिश म्यूजियम कटालाग ऑफ क्वायन्स ऑफ दि ग्रीक ऐण्ड सीथिक, किंग्स ऑफ बैक्ट्रिया एण्ड इण्डिया, लन्दन, 1886, फलक XXVI, 16
7. बी. चट्टोपाध्याय, वहीं, पृ. 137
8. उपुर्यक्त, पृ. 66
9. मनुस्मृति, सम्पादक जी.एन. झा, कलकत्ता, 1924–26, दि लाज आफ मनु, सम्पादक, एफ. मैक्समूलर, अनुवादक जी. बूलर सैकरेड बुक ऑफ दि ईस्ट, जिल्द, XXV, दिल्ली, 1996, 7/3.
10. मनुस्मृति, उपर्युक्त, 7/4.
11. मनुस्मृति, उपुर्यक्त, 7/5,6
12. रामशरण शर्मा : प्राचीन भारत में राजनीतिक विचार एवं संस्थाएँ, नई दिल्ली, 2007, पृ. 293.

13. उपुर्यक्त
14. उपुर्यक्त
15. उपुर्यक्त
16. रामशरण शर्मा द्वारा उद्धृत, वही, पृ. 293.
17. वी.सी.लॉ. वाल्यूम II, 313 में एफ.डब्ल्यू. टामस द्वारा उद्धृत
18. रामशरण शर्मा द्वारा उद्धृत, वही, पृ. 293, पादटिप्पणी संख्या 60, पृ. 301
19. मनुस्मृति, वही, 7/7.
20. उपुर्यक्त, 7/8.
21. महाभारत, कलकत्ता संस्करण, सम्पादक एन शिरोमणि और अन्य, अनुवादक के. एम. गांगुली, प्रकाशक पी.सी. राय, कलकत्ता 1884–96, शांतिपर्व, चित्रशाला प्रेस, पूना, 1932, अध्याय 59.
22. रामशरण शर्मा द्वारा उद्धृत, वही, पृ. 293 पादटिप्पणी 65, के.एन. शास्त्री, दि मौर्याज एण्ड सातवाहनाज, बम्बई, 1957, पृ. 345.
23. बी.सी.लॉ. वाल्यूम II, 306–10.
24. उपर्युक्त, 307.
25. विस्तुत तर्कों के लिए देखिए रामशरण शर्मा, वही, पृ. 294–295.
26. रामशरण शर्मा, वही, पृ. 295.
27. बी.सी.लॉ. वाल्यूम II, 314–15.
28. उपर्युक्त, 319.
29. तुलना कीजिए, रामशरण शर्मा, वही, पृ. 296.
30. इंडियन एंटीक्यूरी, 1903, पृ. 427.
31. बी.सी.लॉ. वाल्यूम II, पृ. 308.
32. बी. चट्टोपाध्याय : कुषाण एण्ड इण्डियन सोसाइटी, कलकत्ता, 1975, पृ. 69.
33. आर्कियालोजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया, एनुवल रिपोर्ट, 1924, पृ. 397 तथा आगे।
34. डी.आर. साहनी : जर्नल ऑफ रॉयल एसियाटिक सोसाइटी, 1924, पृ. 402.
35. बी. चट्टोपाध्याय, वही, पृ. 70.
36. डी.आर. साहनी, वही, पृ. 402–403.
37. जर्नल ऑफ बिहार एण्ड ओरिसा रिसर्च सोसाइटी, 1923, पृ. 98–99.
38. उपर्युक्त, 1919, पृ. 98–99.
39. आर.सी. मजूमदार तथा ए.डी. पुसालकार द्वारा सम्पादित दि एज ऑफ इम्पीरियल यूनिटी, बम्बई, पृ. 261.
40. बी. चट्टोपाध्याय, वही, पृ. 70.
41. बी.आर.आर. दीक्षितार, काणे कम्मेमोरेशन, वाल्यूम, पृ. 165–167.
42. जर्नल ऑफ रायल एसियाटिक सोसायटी, 1924, पृ. 402.
43. जर्नल ऑफ बिहार एण्ड ओरिसा रिसर्च सोसायटी, 1919, पृ. 559.

44. एच.सी. राय चौधरी, पालिटिकल हिस्ट्री ऑफ एण्शियंट इण्डिया, पंचम संस्करण, कलकत्ता, 1950, पृ. 5.
45. जर्नल ऑफ बिहार एण्ड ओरिसा रिसर्च सोसायटी, 1919, पृ. 560.
46. बी. चट्टोपाध्याय, वही, पृ. 71.
47. बी. चट्टोपाध्याय द्वारा उद्धृत, वही, पृ. 71, 273, आर्ट एण्ड आर्किटेक्चर ऑफ इण्डिया, पृ. 85.
48.ब्रोथ, पार्थियन क्वायन्स इन ब्रिटिश म्यूजियम, फलक XXVII, 21, फलक, XXIX, 9, 10
49. आर. शामशास्त्री (सम्पादक), अर्थशास्त्र ऑफ कौटिल्य, तृतीय संस्करण, मैसूर, 1924, अनुवादक आर. शामशास्त्री, तृतीय संस्करण, मैसूर, 1924
50. एच.सी. चौधरी, वही, पृ. 517.
51. एम.ई. ड्रइन, दि निम्बस एण्ड साइन्स डिफिकेशन ऑन दि क्वायन्स ऑफ दि इण्डो–सीथियन किंग्स, रिव्यू न्यूमिस्मेटिक, 1901, पृ. 154–66, अनुवाद इण्डियन एण्टीक्यूरी, 1903, पृ. 427.
52. बी.के. सरकार : पोलिटिकल इन्स्टिट्यूशंस, एण्ड थ्योरीज ऑफ दि हिन्दूज, कलकत्ता, 1939, पृ. 179 तथा आगे।
53. शान्तिपर्व, चित्रशाला प्रेस, पूना, 1932, अध्याय 59.
54. आर.एस. शर्मा, वही, पृ. 181.
55. अर्थशास्त्र, XIII 1

***

मुगल कालीन भारतीय सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन की संश्लेषणात्मक प्रवृत्ति

डा. सुरेश कुमार महतो *

मध्यकालीन भारत में इस्लाम और हिन्दू धर्म के आपसी सम्पर्क से सांस्कृतिक जीवन के क्षेत्र ने एक समन्वित परम्परा का विकास हुआ जिसका प्रभाव जीवन के विभिन्न क्षेत्र में पड़ा और एक समन्वित सांस्कृति परम्परा का विकास हुआ। मुगलकालीन सामाजिक जीवन के अध्ययन में समाज की संरचना की महत्त्वपूर्ण है। हिन्दू समाज में पूर्ववत् जाति पर आधारित विभाजन बने रहे। भक्ति आन्दोलन के प्रभाव में जाति–प्रथा का खण्डन करने वाले सन्तों का प्रभाव अत्यंत सीमित रहा और जाति–प्रथा की जटिलता में कोई उल्लेखनीय कमी नहीं आई। मुस्लिम समाज का स्वरूप भी पूर्ववत् रहा। केवल विदेशी मुसलमानों में ईरानियों की संख्या और प्रभाव में उल्लेखनीय वृद्धि हुई। यह प्रक्रिया अकबर के समय में आरंभ हुई। हब्शियों और अरबों का महत्त्व पूर्व काल की तुलना में बहुत कम हो गया। 18वीं शताब्दी तक मुगल सामन्तों में दो वर्ग ही मुख्य रूप से महत्त्वपूर्ण रह गए थे। ये थे भारतीय मुसलमान और तूरानी। इस काल की दरबारी गुटबंदियों और षड़यंत्रों में इन दोनों की भूमिका विशेष महत्व रखती है।[1]

मुगलकालीन सामाजिक और आर्थिक जीवन की जानकारी अधिक संतोषजनक मात्रा में उपलब्ध है। इसका मुख्य कारण विदेशी विशेषकर यूरोपीय यात्रियों के वृतान्त है जो इस संदर्भ में बहुमूल्य सूचनाओं के स्रोत है। अन्य रचनाएँ भी विशेषकर सूफी संतों से सम्बन्धित स्रोत, सम्राटों की आत्म–कथाएँ, साहित्य रचनाएँ आदि भी सामाजिक जीवन की जानकारी प्रदान करने के अत्यन्त सहायक रही है सामाजिक जीवन के क्षेत्र में सल्तनतकालन और मुगलकालीन परिस्थितियाँ बहुत भिन्न नहीं थी मगर आर्थिक जीवन के क्षेत्र में मुगलकाल में विशेष प्रगति हुई । मुद्रा प्रणाली का विका हुआ औद्योगिक उत्पादन में वृद्धि हुई और विदेश व्यापार का भी विस्तार हुआ।[2]

समाज में महिलाओं की स्थिति पहले की तुलना में सुधरी थी। मुगल काल में अनेक विदुषी और प्रभावशाली महिलाओं की चर्चा मिलती है, जो हिन्दू और मुस्लिम दोनों ही वर्गों से सम्बन्धित थी। जैसे जहाँआरा, नूरजहाँ, गुलबदन बेगम, चाँदबीबी, दुर्गावती और ताराबाई परन्तु समान्यतः महिलाओं को अनेक असुविधाओं का सामना करना पड़ता था। जैसे पर्दा प्रथा, बहु विवाह, बाल विवाह, सती प्रथा, बाल हत्या आदि। अकबर द्वारा

* पूर्व शोध छात्र (इतिहास), ल. ना. मि. वि. वि., दरभंगा

समाज में सुधार के प्रयास किये गए। उसने स्त्री शिक्षा को प्रोत्साहन दिया। बहुविवाह एवं सती का प्रचलन रोका और विवाह के लिए निम्नतम आयु निर्धारित करने के आदेश दिये। परन्तु ये प्रयास बहुत सफल सिद्ध नहीं हुए।[3]

दूसरी ओर दासों की स्थिति सल्तनतकाल की तुलना में गिरावट आयी। दासों को अब मात्र सेवक के रूप में अथवा घरेलू काम–काज के सहायक के रूप में प्रयोग किया जाने लगा। उन्हें प्रशासनिक अथवा सैनिक पदों पर नियुक्ति वस्तुतः बन्द हो गयी। स्वाभाविक रूप से समाज में उनकी स्थिति में गिरावट आयी।[4]

हिन्दु और मुस्लिम समाज के बीच सम्पर्क से एक मिली–जुली परम्परा का आरम्भ हुआ। रहन–सहन के ढ़ंग, खान–पान, वेश–वूषा, त्योहार एवं उत्सव आदि में एक मिली जुली परम्परा विकसित हुई।[5] मुगलकाल में इस समन्वयवादी परम्परा का दरबारी जीवन से भी घनिष्ठ सम्पर्क रहा। अकबर द्वारा राजपूत शासक के प्रति मैत्रीपूर्ण नीति अपनाने और वैवाहिक सम्बन्धों की स्थापना से शासक वर्ग के जीवन में भी समन्वय आया और मुगल दरबार के नीति–रिवाज पर राजपूत परम्परा का प्रभाव पड़ा। बाद में मुगल परम्परा ने राजपूत शासक वर्ग के बीच दरबारी जीवन को भी प्रभावित किया। मुगलकाल में कला एवं संस्कृति का अधिक विकास हुआ। इस काल की सांस्कृतिक गतिविधियाँ अनुकरणीय है।[6]

संगीत के क्षेत्र में भी अकबर के दरबार में ईरानी एवं भारतीय परम्परा का समावेश हुआ। यूँ तो सलतनत काल से ही भारतीय एवं ईरानी संगीत का आपसी सम्पर्क और एक दूसरे पर प्रभाव देखने को मिलता है किन्तु इसका प्रभाव सूफी–संतों और जनसाधारण तक ही सीमित था। शासक वर्ग के स्तर पर दिल्ली के सुल्तानों ने कभी संगीत को प्रश्रय एवं प्रोत्साहन नहीं दिया। अकबर पहला शासक था। जिसने संगीत को दरबारी शिष्टाचार का अभिन्न अंग बनाया और दरबारी संगीतज्ञों की नियुक्ति की। उसके दरबार में अनेक विख्यात संगीतज्ञ थे जिनकी सूची आइनें अकबरी में उपलब्ध है और जिनमें सबसे प्रसिद्ध नाम तानसेन का है। यह माना जाता है कि अमीर खुसरो द्वारा ईरानी और भारतीय संगीत के समन्वय का जो प्रयास आरम्भ हुआ था वह तानसेन के साथ परिपूर्ण हो गया और नयी राग–रागिनियाँ प्रचलित हुई जो न तो पूर्णतः ईरानी थी और न पूर्णतः भारतीय।[7]

साहित्य के क्षेत्र में अकबर के शासनकाल की विशेषता एक अन्य दृष्टिकोण से है। इस काल में भारत में फारसी भाषा और साहित्य का अत्याधिक विकास हुआ। यहाँ तक कि भारत में फारसी रचनाएँ ईरान की फारसी रचनाओं से अधिक उत्कृष्ट स्तर पर पहुँच गयी। हिन्दी भाषा एवं साहित्य के दृष्टिकोण से भी अकबर का शासनकाल उल्लेखनीय रहा। इसी काल में तुलसीदास को जगत प्रसिद्ध रचना ''रामचरितमानस'' लिखी गयी।

यद्यपि तुलसीदास का अकबर के दरबार से कोई सम्बन्ध नहीं था फिर भी अकबर के शासन काल की उदार परम्पराओं ने हिन्दी भाषा के विकास का उपयुक्त वातावरण बनाया। अकबर के दरबार में भी हिन्दी के कुछ प्रसिद्ध कवियों को हम पाते हैं, इनमें एक महत्त्वपूर्ण नाम अब्दुलरहीम खानखाना का है जिनके दोहे आज भी हिन्दी भाषा में विशिष्ट स्थान रखते है।

हम यह कह सकते है कि अकबर का शासनकाल सांस्कृति जीवन में उल्लेखनीय प्रगति का काल था। अकबर ने राष्ट्रीय एकीकरण की जो नीति अपनाई उसके फलस्वरूप यह अनिवार्य हो गया था कि हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच एक समन्वित परम्परा का विकास किया जाय इस उद्देश्य प्राप्ति के लिए अकबर स्थापत्य कला, चित्रकला, संगीत एवं साहित्य के क्षेत्रों में एक समन्वित परम्परा के विकास की नीति अपनाई।[8]

मुगलकाल में एतिहास लेखन के क्षेत्र में उल्लेखनीय प्रगति हुई। इस विषय पर अपने–अपने अंदाज से बहुत विद्वानों द्वारा अध्ययन किया गया है। इस संदर्भ में मुगल शासकों द्वारा आत्मकथा लिखने के उदाहरण भी हमें मिलते है। मुगलों के पूर्वज तैमूर द्वारा अपने जीवन की मुख्य घटनाओं को लिखा गया था जो ''मल्फूजाते तैमूरी'' के नाम से प्रसिद्ध है। भारत के संदर्भ में बाबर ने अपनी आत्मकथा ''तुजुकेबाबरी'' तुर्की भाषा में लिखी, जिसका फारसी अनुवाद ''बाबरनामा'' कहलाता है। इसमें बाबर के जीवन की मुख्य घटनाओं का वर्णन मिलता है। यद्यपि इसमें बाबर के भारतीय जीवन का वर्णन संक्षिप्त है, इसका महत्त्व बहुत अधिक है। इसमें बाबर के आक्रमण के समय की राजनीतिक परिस्थितियों का वर्णन है। यहाँ के महत्त्वपूर्ण शासक और उनके आपसी संबंध यहाँ के लोगों का रहन–सहन, जलवायु, भुगोल आदि के संबंध में बाबर की टिप्पणियाँ महत्त्वपूर्ण है। जहाँगीर की आत्मकथा ''तुजुके जहाँगीरी'' फारसी भाषा में लिखी गई है। इसकी सहायता से जहाँगीर के शासनकाल की महत्त्वपूर्ण और विवादास्पद घटनाओं को समझा जा सकता है। इसके अतिरिक्त जहाँगीर के व्यक्तित्व को समझने में भी यह रचना सहायक सिद्ध हुई है।[9]

उपरोक्त रचनाओं के अतिरिक्त सामान्य इतिहासकारों की भी अनेक रचनाएँ इस काल में लिखी गई। इनमें निजामुद्दीन बख्शी की ''तबकाते अकबरी'', हिन्दू खाँ फरिश्ता की ''गुल्शने इब्राहीमी'', अब्दुल कादिर बदायूनी की ''मुन्तखबुत्त्वारीखा'', मुहम्मद सालहे की ''अगले सालहे'' और खफी खाँ की ''मुन्तखबुल्लुबाब'' अधिक प्रसिद्ध है। 'तबकाते अकबरी' भारत के सामान्य इतिहास की कहानी प्रस्तुत करती है। जिसमें पूर्व–मुगल काल की शामिल है परन्तु मुख्य रूप से अकबर के शासनकाल का इतिहास है। इसमें दक्षिण भारतीय अभियानों का वर्णन नहीं है। क्योंकि इसके पूर्व ही निजामुद्दीन की मृत्यु हो गई। बदायूनी की रचना भी सामान्य इतिहास से संबंधित है परन्तु इसे एक विशेष कारण से लिखा गया था। बदायुनी अकबर की धार्मिक सहिष्णुता की नीति में असंतुष्ट था और उसने इसी की आलोचना अपनी

रचना में की है। ''गुल्शने इब्राहीमी'' भी सामान्य इतिहास से संबंधित रचना है परन्तु इसका विशेष महत्त्व दकनी रियासतों के इतिहास के संदर्भ में है। खफी खाँ की रचना भी सामान्य इतिहास की रचना है परन्तु इसका विशेष महत्त्व औरंगजेब के शाासनकाल की घटनाओं के लिए है। दकन में मुगल–मराठा संघर्ष और शिवाजी के व्यक्तित्व एवं चरित्र के संबंध में भी यह रचना महत्त्वपूर्ण जानकारी प्रस्तुत करती है। ''अमले सालेह'' में शाहजहाँ के शासनकाल का विस्तृत इतिहास प्रस्तुत किया गया है और इसके साथ समकालीन मंसबदारों, अधिकारियों, विद्वानों और सूफियों आदि का विवरण भी सम्मिलित है।[10]

दरबारी इतिहासकारों और सामान्य इतिहासकारों की रचनाओं को यदि तुलना की जाए तो यह स्पष्ट हो जाता है कि दरबारी रचनाएँ मुख्यतः प्रशस्ति के रूप में हैं, जबकि सामान्य रचनाओं में शासकों की आलोचना भी की गई है दोनों के मिले जुले अध्ययन से शासकों का एक संतुलित और निष्पक्ष मूल्यांकन संभव है। दूसरी बात यह है कि सामान्य इतिहासकार मुख्यतः उलेमा वर्ग के प्रतिनिधि थे और उनका दृष्टिकोण संकीर्णता से प्रभावित था /दरबारी इतिहासकार इस दोष से मुक्त थे और उनकी रचनाएँ धर्मान्धता की भावना से मुक्त है।[11]

उपरोक्त साहित्य के अतिरिक्त आधुनिक समय में भी सर जे0एन0 सरकार (1960) मुगलकालीन भारत; सर जे. एन. सरकार (1992), मुगल प्रसाशन, बेनी प्रसाद (1976) ''हिस्ट्री ऑफ जहाँगीर; बी. पी. सक्सेना (1976), हिस्ट्री ऑफ शाहजहाँ; अबुल अजीज (1972), मानसबदारी सीस्टम ऑफ मुगल आरमी, अजीज अहमद (1964), स्टडीज ऑफ इस्लामिक कलचर इन दि इण्डियन इनभरीरीमेंट, पीयरसी ब्राउन (1924), इण्डियन पेंटि अण्डर मुगल आदि विद्वानों ने भी मुगल समाज के सम्बन्ध में अध्ययन किया है। इन अध्ययनों में मुगलकालीन सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन को समेकित रूप में नहीं अध्ययन किया गया है। इस कमी को पूरा करना प्रस्तुत शोध का मुख्य उद्देश्य है।

प्रस्तुत आलेखा के अन्तर्गत मुगल कालीन सामाजिक एवं सांस्कृतिक विकास के विभिन्न क्रम एवं स्तर को वैज्ञानिक पद्धति से विस्तृत व्याख्या प्रस्तुत किया गया है। इसके अन्तर्गत हमें इस तथ्य को स्पष्ट किया गया है कि सामाजिक विकास के क्रम में मुगलकालीन समाज के मस्तिष्क पर किस हद तक सांस्कृतिक चेतना का विकास हुआ और वे कहाँ तक सांस्कृतिक चेतना के विकास में अपने युग प्रभावों से परवर्ती समाज को प्रभावित कर रहे है तथा किस हद तक सामाजिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक सहिष्णुता के निर्माण राष्ट्रभक्ति के निर्धारण एवं कार्यान्वयन के क्षेत्र में अपनी भूमिका निभाते है।

प्रस्तुत आलेख का मुख्य उद्देश्य मुगलकालीन सामाजिक एवं सांस्कृति जीवन का मूल्यांकन करना तथा परवर्ती समाज पर उसके प्रभाव

का परीक्षण करना है। आज के उग्रवादी एवं आतंकवादी युग में तत्कालीन सामाजिक समरसता एवं धार्मिक सहिष्णुता की स्थिति महत्त्वपूर्ण है। अतः यह अध्ययन आज प्रासंगिक है।

मुगलकालीन शिक्षा का सबसे अधिक महत्वपूर्ण तत्व सामाजिक पहलू है। मुगल शासकों ने इसका अन्वेषण ही नये शोषण–मुक्त विपमता–रहित समाज की रचना के लिये किया था। व्यवहारिकता के आधार पर शिक्षा देने से समाज से ऊँच–नीच का भेद समाप्त हो जाता है। समाज की यह रूढ़ भावना कि बौद्धिक कार्य श्रेष्ठ और शारीरिक कार्य हीन है। बौद्धिक कार्य करने वाले भी शारीरिक कर्म करते है और शारीरिक श्रम करने वालों को भी बौद्धिक कार्य करने का अवसर मिलता है जिससे समाज में एक प्रकार की क्रांति उत्पन्न हो जाती है। ज्ञान और कर्म को अलग–अलग करने से समाज में अनावश्यक वर्ग–भेद उत्पन्न होते हैं। परन्तु जब ज्ञान और शरीर–श्रम को आपस में जोड़ दिया जाता है तो सम्मान और सुविधा की दृष्टि से सभी बराबर हो जाते है। ऐसे समाज में शोषण के लिए स्थान नहीं रह जाता। इस प्रकार मुगलकालीन सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन पद्धति आने वाले समय के लिए एक मिशाल के रूप में हैं। अतः आधुनिक समय में इस पर अध्ययन, मनन, चिंतन एवं शोध ज्ञान के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण हैं। इस प्रकार प्रस्तुत आलेख ज्ञान के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण योगदान साबित हुआ है। आज के उग्रवाद तथा आतंकवाद के युग में सामाजिक समरसता तथा धार्मिक सहिष्णुता की शिक्षा निश्चय ही युवकों को ज्ञान वृद्धि में सहायक सिद्ध हुआ है।[12]

मुगलकाल में शासकों द्वारा अपने शासनकाल का अधिकृत इतिहास लिखने की परम्परा आरंभ हुई और इस प्रकार दरबारी इतिहास की रचना आरंभ हुई। इस नये प्रयोग का श्रेय अकबर को दिया गया। उसने अपने शासनकाल की घटनाओं का प्रमाणिक वृतांत लिखने का अबुल फजल को आदेश दिया। यह रचना ''अकबरनामा'' कही जाती है। इसमें प्राचीन काल से अकबर के शासनकाल तक का इतिहास वर्णित है। प्रथम अंक में अकबर के पूर्वगामी शासकों का इतिहास मिलता है और दूसरे अंक में अकबर के शासनकाल की मुख्य घटनाओं की विस्तृत और विश्वसनीय विवरण मिलता है। अकबर के शासन के अन्तिम दिनों में अबुल फजल की हत्या के कारण यह विवरण अधूरा रह गया था जिसे इनायतुल्लहा ने तकमील अकबरनामा लिखकर पूरा किया। अकबरनामा में प्रस्तुत जानकारी पूर्णतः विश्वसनीय है क्योंकि यह अधिकृत सूचनाओं पर आधारित है। अकबर के महत्वपूर्ण शासनकाल के इतिहास का अध्ययन इस रचना के बिना संभव नहीं। इस रचना की एकमात्र त्रुटि यह है कि इसका लेखक अतिश्योक्तिपूर्ण ढ़ंग से सम्राट के गुणों की प्रशंसा करता है और उसका सारा ध्यान राजदरबार और शासकवर्ग पर ही केन्द्रित है। हमें यह याद रखना चाहिए कि किसी भी शासक के आदेश पर लिखी गई रचना प्रशस्ति के रूप में ही हो सकती है।

अकबर के शासनकाल में अन्य रचनाएँ भी लिखी गई जिनकी सहायता से दरबारी इतिहासकार के विवरण की सत्यता को परखा जा सकता है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि अठारहवीं शताब्दी मुगल साम्राज्य के पतन की साक्षी है। इस दौरान केन्द्रीय सत्ता कमजोर पड़ गई और बंगाल, मालवा, राजस्थान, पंजाब आदि सूबों के गर्वनर स्वायत्त हो गए। समय–समय पर मराठों, सिखों, अफगानों, जाटों और अन्य युद्ध लोलुप वर्गों की लूटपाट और मारकाट ने राज्य को कमजोर कर दिया।

सन्दर्भ :

1. अब्दुल जीज (1972), द मानसबदारी सिस्टम एण्ड द मुगल आर्मी, दिल्ली।
2. एस नुरूल हसन (1964) :'रेवून्यू एडमिनिस्ट्रेशन ऑफ द जागीर ऑफ सहसराम बाई फरीद (शेरशाह), इण्डियन हिस्ट्री कांग्रेस।
3. नोमन अहमद सिद्दीकी (1966) : 'नेचर ऑफ द सायर जिहात टेक्सेज', 'इण्डियन हिस्ट्री कांग्रेस,
4. अबुलफजल, अकबरनामा (अंग्रेजी अनु.) एच. बेवरिज , भाग 1– 3 ।
5. अबुलफजल, आइने अकबरी (अंग्रेजी अनु.) एच. ब्लोकमेन, भाग–1, एच. एस. जेरीट (रिवाइज्ड जे. सरकार) भाग– 1, एवं 2
6. इब्न बतूता, रिहेला (1953) : तुगलक कालीन भारत, भाग 1 एवं 2
7. अमीर खुसरो, मिफताहुल फुतूह , खलजीकालीन भारत
8. जहाँगीर, तुजुके जहाँगीरी, ए रोजर्स एण्ड एच. बेवरिज, भाग–1 एवं 2
9. खाफी खाँ (1952) : मुन्तखबुल्लुबाव,कलकता भमसैन, तारीख दिलकुशा,
10. बेनी प्रसाद (1976) : हिस्ट्री ऑफ जहाँगीर, इलाहाबाद
11. ए. एल. श्रीवास्तव (1972) : अकबर द ग्रेट, 3 वॉल, आगरा
12. इरफान हबीव (1982) : एटलस ऑफ द मुगल इम्पायर, नई दिल्ली।

***

समकालीन पर्यावर्णीय समस्याओं के निदान में बौद्ध दर्शन की प्रासंगिकता

संजय सिंह *

वर्तमान वैश्विक परिपेक्ष्य में देखा जाय तो मानव के लिए सबसे बड़ी वैश्विक समस्या पर्यावरण का नुकसान हीं है। आज के दौर में पर्यावर्णिक समस्याओं के कारण मानव न केवल असाध्य रोगों से ग्रसित होता चला जा रहा है, अपितु सम्पूर्ण मानव जीवन हीं संकटग्रस्त हो गया है। वायु प्रदुषण, जल प्रदूषण, मृदा प्रदूषण, घ्वनि प्रदूषण आदि ऐसे हीं तत्व है जो हर प्रकार से मानव जीवन को खतरे में डाल रहे है। आज मानव अपनी तृष्णा के कारण न केवल अपने भौतिक सुखों में अपार वृद्धि कर रहा है अपितु वह अपने लिए नित नए समस्याओं को भी उत्पन्न कर रहा है। जिसमें वायु प्रदूषण से होने वाले रोग, जल प्रदूषण से होने वाले रोग, मृदा प्रदूषण के कारण मृदा पर उपजने वाली फसलों के कारण रोग आदि आज आम बात हो चुकी है। वहीं अत्यधिक परिवहन के साधन के आगमन से मानव न केवल घ्वनि प्रदूषण का सामना कर रहा है अपितु मानव जीवन में इसके कारण एक और नयी समस्या उत्पन्न हो रही है और वह समस्या है मानव के मानसिक असंतुलन की समस्या। यह मानसिक असंतुलन की समस्या लोगों में विचारशीलता की कमी के अलावा उसमें अनैतिका की भावना का भी विकास करता है जो अनैतिकता उसे अपराध करने के लिए विवश कर देती है। आज दौर में लगभग सभी मनोवैज्ञानिक इस बात से सहमत हैं कि मानव की अधिकांश मानसिक समस्या की जड़ उसके आस–पास के परिवेश के अलावा उसके आस–पास की प्राकृतिक पर्यावरण भी है।

आज के दौरे में हम असंतुलित जीवन चर्चा से भी पड़ेसान है। इसकी मूल वजह यह है कि हमने अपने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अपने लिए सस्याएं खुद पाल रखी है। यदि हमारा प्राकृतिक पार्यावरण समस्याग्रस्त हुआ है तो उसके कसूरवार हम खुद हीं है। क्योंकि हमने अपनी भौतिक जीवन के लक्ष्यों की पूर्ती के लिए आवश्यकता से अधिक प्रयास करने प्रांरभ कर दिये है और यह प्रयास हमने मानव जीवन के हर क्षेत्र के साथ–साथ पर्यावरण के भी क्षेत्रों में किया है। ऐसे में हमने स्वयं हीं अतिवादिता अपना कर अपने जीवन के लिए आवश्यक प्राकृतिक पर्यावरण को संकट में डाला है।

वर्तमान परिपेक्ष्य को देखा जाय तो बौद्ध धर्म हीं वह महानतम धर्म है जो इसे हर प्रकार के पर्यावरण के संकट से उबार सकता है। बौद्ध धर्म के दर्शन में वह मूल तत्व दिया है जो हमें हर प्रकार के संकट से उबारने में हमारी मदद करता है। बौद्ध धर्म के दर्शन में अष्टांगिक मार्ग का महत्वपूर्ण

---

* नेट, जे.आर.एफ., शोध छात्र, प्राचीन इतिहास, वीर, बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर

स्थान है। यह मार्ग ने केवल हमारे जीवन को संतुलित एवं संयमित करता है, अपितु इसके माध्यम से हम अपने आस–पास के प्राकृतिक पर्यावरण को भी संतुलित कर सकते है। बौद्ध अष्टांगिक मार्ग की व्याख्या से पूर्व तृष्णा को हीं मानव जीवन के समस्त संकटों का आधार बताया गया है। वस्तुतः तृष्णा के हीं दमन के लिए अष्टांगिक मार्ग के अनुगमन की सलाह दी गयी है।

बौद्ध दर्शन के अनुसार यदि तृष्णा की व्याख्या की जाय तो तृष्णा है 'असीम अनंत इच्छाएं' जो कभी पूर्ण नहीं हो सकती। इसमें मानव जीवन में एक इच्छा के समापन के बाद दूसरी इच्छा प्रकट हो जाती है, ऐसे में बौद्ध दर्शन हमें बताता है कि हम हर प्रकार से तृष्णा का दमन करें। क्योंकि तृष्णा हीं हमारे भीतर अतिवादिता का समावेश कर देता है तथा अतिवादिता के कारण हम मूल भूत आवश्यकता से अधिक प्राप्त करने के चक्कर में अपने आस–पास के संसाधनों का विनाश कर डालते है। इन संसाधनों में भौतिक तथा अभौतिक दोनों प्रकार के संसाधन शामिल है। इन भौतिक तथा अभौतिक संसाधनों के अंधाधुन प्रयोग के कारण हमारा जीवन हर प्रकार से संकटग्रस्त हा जाता है जिसमें हमारा पर्यावरण भी शामिल है।

अतः हमें यदि अपने में संयमशीलता लानी है तो हमें हर प्रकार से अष्टांगिक मार्ग का अनुसरण करना होगा जिसमें हमारा पर्यावरण संतुलित तथा सुरक्षित रहे। बुद्ध के द्वारा बताए गये अष्टांगिक मार्ग हैं :–

1. सम्यक् दृष्टि 2. सम्यक् संकल्प 3. सम्यक् वाक्
4. सम्यक् कर्मात् 5. सम्यक् आजीव 6. सम्यक् व्यायाम
7. सम्यक् स्मृति 8. सम्यक् समाधि।

इस अष्टांगिक मार्ग का पहला मार्ग सम्यक् दृष्टि हमें वस्तुओं के वास्तविक स्वरूप का ध्यान करने की शीख देता है। यदि ऐसा किया जाय तो हम वास्तविक तौर पर इस श्रृष्टि के समस्त तत्व को पहचान कर सकेंगे, जिससे हमारी कई तरह की समस्याओं का अंत हो जाएगा। हममें विचारशीलता, विवेकशीलता आ जाएगी तथा हम उत्तम दृष्टिकोण से समस्याओं को देख सकेंगे। व्यवहारिक तौर पर कहा जाय तो उत्तम दृष्टि हमारे भीतर उन भावनाओं का समावेश करता है जिसके कारण हम अपने आस–पास के तत्वों को बेहतर तरीके से देख सकते हैं। यह हमारे निर्णयन क्षमता में भी गुणात्मक बदलाव ला सकता है जिससे हम अपने प्रकृतिक पर्यावरण के प्रति भी विचारशील हो सकते हैं।

संम्यक् संकल्प हमें आसक्ति, द्वेष तथा हिंसा से युक्त करता है। द्वोष तथा आशक्ति हमें मानसिक रूप से कमजोड़ तथा बीमार बनाता है। ऐसी परिस्थिति में हम वह कर बैठते है तो हमारे जीवन के अनुरूप वहीं हैं और यही हमें मानसिक असंतुलन की अवस्था तक भी पहुचा देता है जिससे हमारा भौतिक पर्यावरण नकारात्मक रूप से प्रभावित होता है। दूसरी तरफ हिंसा मानव जीवन को हीं नहीं अपितु पर्यावरण के नुकासन का सबसे बड़ा

कारण है। हम अपनी मानसिक इच्छा की पूर्ति के लिए मानव के साथ हिंसा करते हैं तो वहीं धर्म की पूर्ति तथा जीभ के स्वाद के लिए जीवों की हत्या करते हैं। जहाँ तक प्रश्न है जीवों की हत्या का तो उससे पर्यावरण को सबसे महत्वपूर्ण तंत्र पारिस्थितिकी तंत्र बिगड़ जाता है। क्योंकि हर जीव एक निहित आहार श्रृंखला से जुड़ा है और यदि हम अपने लाभ के लिए हिंसा के मार्ग पर चल कर इस श्रृंखला में समस्या उत्पन्न करते है, तो इसका प्रत्यक्ष तथा परोक्ष दोनों प्रकार का नुकसान हमें उठाना पड़ता है। यह नुकसान पर्यावरण के असंतुलन के रूप में भी देखने को मिलता है। वहीं मानव के साथ हिंसा तो सवर्थो वर्जित है। बौद्ध धर्म की बात की जाय तो बौद्ध धर्म हमेशा हीं अहिंसा के मार्ग पर चलने की सलाह देता है। यदि हम बौद्ध धर्म के द्वारा बताए गय अहिंसा के मार्ग पर चलते हैं तो निश्चित रूप से इससे मानव जाति का उत्तम कल्याण हो सकेगा इसके साथ–साथ हम जीवों की हत्या को होकर अपने पर्यावरण को भी सुरक्षित तथा बेहतर बना सकेंगे।

अष्टांगिक मार्ग का सम्यक् कर्मांत भी हमें इसी बात की सीख देता है कि हम अहिंसा के कर्म का निर्वाह करें। इसके अलावा सम्यक् कर्मांत हमें दान, दया तथा सत्य की भी सीख देता है। हमारे भीतर यदि दान, दया तथा करूणा का समावेश हो जाय तो हम निश्चित तौर पर अपने आस–पास के जीवन के तत्वों के प्रति उत्तम चिंतन वाले हो सकते हैं। वहीं बौद्ध दर्शन का सम्यक् वाक् हमें संयमित बायन की सलाह देता है। जिससे हम वैचारिक तथा मानसिक अतिवादिता के शिकार होने से बनते है। यही मानसिक अतिवादिता हमें पर्यावरण के नाश करने की सर्वप्रेरणा देता है।

सम्यक् आजीव हमें सदाचार के नियमों के अनुकूल आजीविका अपनानें की सलाह देता है। व्यवाहारिक तौर पर देखा जाय तो हम सम्यक आजीव के विषय में काफी हद तक असंतुलित अवस्था से गुजरते है। हम अपनी अजिविका को बढ़ाना के चक्कर में अक्सर पर्यावरण की अनदेखी करते है। जैसा कि वर्तमान समय में अनेक ऐसे प्रमाण मिलें है जिसके माध्यम से यह सिद्ध हुआ है कि बड़े–बड़े उद्योगपति अपने उद्योग के विस्तार के दौरान पर्यावरण का काफी हद नुकसान करते है। इसके अलावा वे पर्यावरण के प्राकृतिक नियमों तथा सरकारी नियमों की भी अनदेखी करते है। इसके अलावा मध्यम उद्योग तथा अन्य शिल्पकार भी ऐसा हीं करते है। यदि हम बौद्ध दर्शन के सम्यक् आजीव का अनुशरण करें तो इससे हम विकास की अवस्था में शतत्पोषणीय विकास तथा विकास की धरणीयता दोनो को एक साथ लेकर श्रृष्टि को खतरे से उबार सकते हैं।

सम्यक् स्मृति हमें मिथ्या की धारणा से उबरने में हमारी सहायता करता है। ऐसे में हम इसकी सहायता से जीवन की वास्तविका को समझ सकते है तथा जीवन के लिए मानव जीवन में विकास के पथ को आलोकित कर सकते है। जब हम सत्य तथा मिथ्या में भेद कर लेंगे तो निश्चित तौर

यह हम पर्यावरण के मूल तत्व को भी अपना लेंगे। ऐसे में पर्यारण के संरक्षण का मार्ग बेहतर हो जाएगा। सम्यक् समाधि हमारे चित् को एकाग्र कर हमें वास्तविकता के प्रति आलंबित होने को प्रेरित करता है तथा वास्तविकता है कि हम पर्यावरण की यदि रक्षा नहीं करते है तो यह हमारे लिए सबसे बड़ी समस्या बन जाएगी।

निष्कर्ष : निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि हम मानव को हर हाल में अपने पर्यावरण की रक्षा करनी चाहिए ताकि हमारा मानव जीवन बना रहे। जहाँ तक पर्यावरण के रक्षा का प्रश्न है तो पर्यावरण की रक्षा का सबसे पथ हमें बौद्ध धर्म प्रदान करता है। बौद्ध धर्म वास्तविक तौर पर मानव को प्रकृति के साथ जुड़े रहने की प्रेरणा देता है। यह जीव हत्या सहित समस्त प्रकार के अहिंसा को निषेध करता है जिससे हमारे पृथ्वी का पारास्थितिकी संतुलन बेहतर हो जाता है। वहीं अष्टांगित मार्ग के माध्यम से हम न केवल अतिवादिता से बचते हैं अपितु अपने जीवन को उत्तम मार्ग पर ले जाने तथा पर्यावरण संरक्षण के चितन के प्रति प्रतिबद्ध होते है। अष्टांगिक मार्ग हमें अति भैतिक वादिता से तो बचाता हीं है इसके अलावा हमारे भीतर अहिंसा, करूणा मानसिक संतुलन आदि का समावेश करता है जिसकी वजह से हम पर्यावरण के प्रति उत्तम चिंतन की तरफ आकृष्ट होकर स्वयं को पर्यावर्णीय संकट से उबारते हैं।

सन्दर्भ :

1. अग्रवाल, वाशुदेवशरण : भारतीय कला एवं संस्कृति, साहित्य भवन प्रयागराज, 1960.
2. कुमार, अनन्त : बुद्धकालीन राजगृह, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना, 1974.
3. झा, आदित्य चंद्र : प्राचीन भारत का इतिहास, दीपगंगा प्रकाशन, पटना, 2013.
4. विंटरनिज, मोरिण : हिस्ट्री ऑफ इंडियन लिटरेचर, भाग–1, मोतीलाल, बनारसी दास प्रकाशन, नई दिल्ली, 1996.
5. श्रीवास्व के.सी. : प्राचीन भारत का इतिहास एवं संस्कृति, यूनाइटेड बुक डीपे, प्रयागराज, 1991.
6. झा, द्विजेन्द्र नारायण एवं श्रीमाली, कृष्णमोहन : प्राचीन भारत का इतिहास (संपादित), हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली, 2001.
7. सेन, भागचन्द्र : बौद्ध संस्कृति का इतिहास, आलोक प्रकाशन नागपुर, 1972.

***

विद्यार्थी जीवन में प्रबन्धन का महत्व

डॉ. रवि प्रकाश गुप्ता *

प्रत्येक व्यक्ति, समूह अथवा संगठन सफलता प्राप्त करना चाहता है। सफलता के नियम कमोबेश एक से ही रहते हैं, चाहे वह निजी जीवन हो या संगठन। विद्यार्थी के लिए करना चाहता है, लेकिन आज के प्रतियोगितापरक वातावरण में सफलता प्राप्त करना दिन–प्रतिदिन कठिन होता जा रहा है। सफलता प्राप्त करने के तमाम तरीके बताए जाते रहे हैं, जैसे– सुनिश्चित लक्ष्य, साधनों का सही आकलन एवं समन्वय, समय प्रबन्धन, कठिन परिश्रम, पूर्ण समर्पण, जूझने का जज्बा आदि।

प्रस्तुत लेख में लोकप्रशासन के POSTCORB सिद्धान्त को संक्षेप में जानने का प्रयास किया जाएगा। यह भी जानने का प्रयास किया जाएगा कि क्या POSTCORB सिद्धान्त के विविध आयामों को निजी जीवन में सफलता प्राप्त करने के नियमों से सम्बद्ध किये जा सकते हैं? अन्त में निजी अनुभव को इस उद्देश्य से विद्यार्थियों से साझा किया जाएगा कि विद्यार्थी अपने जीवन में सफलता प्राप्त करने के कुछ सूत्र प्राप्त कर सकें।

लूथर गुलिक लोक प्रशासन के एक विशेषज्ञ एवं सिद्धान्तकार थे। लोक प्रशासन को परिभाषित करते हुए गुलिक ने कहा था कि ''लोक प्रशासन विज्ञान का वह भाग है जो सरकार से सम्बन्धित है और इसलिए उसका सम्बन्ध कार्यपालिका से है।'' लोकप्रशासन के क्षेत्र के अमेरिकी राजनीति वैज्ञानिक लूथर गुलिक के मुख्य कार्यपालिका के कार्यों को POSTCORB फार्मूले के द्वारा स्पष्ट करने का प्रयास किया। इस फार्मूले का प्रत्येक शब्द किसी न किसी गतिविधि को अभिव्यक्त करता है। लूथर POSTCORB सिद्धान्त को हम निम्ज प्रकार से जानते हैं–

P	Planning	योजना निर्धारित करना
O	Organinsing	संगठन
S	Staffing	कर्मचारियों की व्यवस्था करना
D	Directing	निर्देश देना
Co	Co Ordinating	समन्वय करना
R	Reporting	रिपोर्ट या प्रतिवेदन
B	Budgeting	बजट बनाना

योजना निर्धारित करना : योजना का तात्पर्य किसी लक्ष्य की प्राप्ति के लिए रूपरेखा तैयार करना है।

* एसोसिएट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान, पं. दीनदयाल उपाध्याय राजकीय महिला बालिका विद्यालय, सेवापुरी, वाराणसी

संगठन के समान ही निजी जीवन में भी सफलता प्राप्ति के लिए लक्ष्य को निर्धारित करना प्राथमिक एवं सर्वाधिक महत्वपूर्ण चरण माना जाता है। निजी जीवन में हमारी सफलता को सुनिश्चित करने में लक्ष्य की स्पष्टता का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान होता है। हम जीवन में छोटे बड़े लक्ष्यों को सदैव निर्धारित करते रहते हैं। जीवन में सफलता के लिए लक्ष्य निर्धारण अत्यन्त महत्वपूर्ण होता है क्योंकि लक्ष्य निश्चित होते ही समस्त शक्तियाँ लक्ष्य की दिशा में मुड़ जाती है। सबसे कठिन कार्य होता है कि हम लक्ष्य का निर्धारण कैसे करें? लक्ष्य निर्धारण हेतु आत्मनिरीक्षण (Introspection) सहायक हो सकता है। स्वयं की प्रकृति, स्वभाव, रुचियों आदि के अनुरुप लक्ष्य निर्धारण करना चाहिए। तीरन्दाजी में भारत के लिए ओलम्पिक पदक लाने वाले एवं वर्तमान में भारत सरकार में राज्यमंत्री कर्नल राज्यवर्धन सिंह राठौर ने कहा है कि वही लक्ष्य निर्धारित करना चाहिए जो स्वयं के स्वभाव एवं रुचि के अनुरूप हो। परिवार, मित्र, सहयोगियों एवं समाज के विरोधी होने के बावजूद यदि आप ऐसा करने में समर्थ होते हैं तो आप निरन्तर नए–नए शिखरों को हासिल करते जाएंगे। स्वयं के स्वभाव एवं रुचि की पहचान एक मुश्किल कार्य है लेकिन जीवन में सुख, शांति एवं असफलता का सबसे प्रमुख कारण माना जाता है। लक्ष्य के सुनिश्चित न होने के कारण हमारे समय, श्रम एवं धन का अपव्यय होता है अतः सुनिश्चित होना चाहिये।

लक्ष्य अल्पकालीन एवं दीर्घकालीन होते हैं। अल्पकालीन लक्ष्यों की प्राप्ति पर ही दीर्घकालीन लक्ष्यों की प्राप्ति निर्भर करती है। कितने समय में हम किस लक्ष्य को प्राप्त करेंगे, यह सुनिश्चित करना महत्वपूर्ण होता है। लक्ष्य प्राप्ति में समय प्रबन्धन का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान होता है। समय योजना का अभिप्राय है कितने समय में कौन से लक्ष्य प्राप्त किए जायेंगे? लक्ष्यों का निर्धारण कितनी सूझ–बूझ से किया गया है इसका पता इसी से चलता है कि अल्पकालीन लक्ष्यों की प्राप्ति समय से हुई अथवा नहीं। अल्पकालीन लक्ष्यों की प्राप्ति पर ही दीर्घकालीन लक्ष्यों की प्राप्ति निर्भर करती है। यदि अल्पकालीन लक्ष्यों की प्राप्ति सुनिश्चित समय में की गई तो अपनी योजना पर आगे चलना चाहिए अन्यथा पुनः विचार करना चाहिए।

यहाँ पर एक और अवधारणा महत्वपूर्ण हो जाती है जो लक्ष्य प्राप्ति में अत्यन्त महत्वपूर्ण होती है और वह है– रणनीति। लक्ष्य प्राप्ति करने के लिए रणनीति बनायी जाती है। लक्ष्य का निर्धारण तो सूझ–बूझ कर करना चाहिए जिससे जल्दी–जल्दी परिवर्तन नहीं करना चाहिए। लेकिन लक्ष्य की प्राप्ति के लिए अपनी रणनीति की समीक्षा निरन्तर करते रहना चाहिए एवं उसमें परिवर्तन भी करते रहना चाहिए। समय बीतने एवं सफलता प्राप्त होने के साथ ही सही रणनीति बनाने की क्षमता भी व्यक्ति में स्वतः विकसित हो जाती है।

संगठन बनाना : संगठन का निर्माण करना द्वितीय चरण होता है। संगठन बनाने का उद्देश्य प्रशासकीय ढाँचे को इस प्रकार संगठित करना है, ताकि प्रशासकीय कार्यों का उचित ढंग से विभाजन किया जा सके।

निजी जीवन में भी सफलता के लिए समस्त साधनों को संगठित करना जरूरी होता है। इसे हम संसाधनों को व्यवस्थित करना या 'Organise' करना भी कह सकते हैं। संसाधनों में हमें अपने वित्तीय एवं भौतिक संसाधनों का सही आकलन करना चाहिए। सफलता प्राप्ति के लिए यह एक अत्यन्त महत्वपूर्ण पक्ष है लेकिन संकल्प, दृढ़ इच्छा शक्ति एवं लक्ष्य के प्रति समर्पण से प्रायः अनेक सफल लोगों ने समस्त बाधाओं को पार किया है। तत्पश्चात् हमें अपनी क्षमताओं एवं कमियों का आकलन करना चाहिये। क्षमता के दो आयाम होते हैं– बाह्य एवं आन्तरिक। हमारी योग्यता क्या है? हमारे सकारात्मक एवं नकारात्मक पक्ष कौन–कौन से हैं? हमारे शक्तिशाली एवं कमजोर पक्ष कौन–कौन से हैं। पूर्व में किये गये प्रयासों के परिणाम क्या रहे हैं एवं हमारी उपलब्धियाँ एवं असफलताएँ कौन–कौन सी रही हैं, जैसे प्रश्नों के उत्तर हमें सही मार्ग की ओर ले जाने में सहायक होंगे। अपने परिवेश (पारिवारिक, आर्थिक, सामाजिक आदि) में सहायक एवं विरोधी लोगों एवं परिस्थितियों की पहचान में सफलता प्राप्ति के लिए आवश्यक होती है। आन्तरिक क्षमताओं से अभिप्राय संकल्प, मनोबल, आत्मविश्वास, इच्छा–शक्ति, समर्पण आदि से है।

यहाँ पर ध्यान देना आवश्यक है कि वाह्य एवं भौतिक संसाधन आन्तरिक क्षमता एवं सफलता में सीधा सम्बन्ध होता है। प्राथमिक रूप से तो बाह्य एवं भौतिक संसाधन ही सफलता के लिए ज्यादा महत्वपूर्ण होते हैं। किन्तु ज्यों ज्यों हमारी आन्तरिक क्षमता एवं संकल्प में वृद्धि होती जाती है, वैसे–वैसे सफलता एवं वाह्य एवं भौतिक संसाधनों के पारस्परिक सम्बन्ध कमजोर होते चले जाते हैं। एक समय ऐसा भी आता है कि संकल्प ही सफलता को लाने वाला प्रमुख कारक हो जाता है। अन्य समस्त कारक काफी सीमा तक गौण हो जाते हैं। लेकिन प्राथमिक रूप से एक विद्यार्थी को भौतिक संसाधनों के मध्य संतुलन बनाना ज्यादा उपयुक्त होगा।

कर्मचारियों की भर्ती करना : संगठन में सुयोग्य कर्मचारियों की भर्ती पर संगठन की सफलता काफी हद तक निर्भर करती है।

निजी जीवन में सफलता के लिए सुयोग्य व्यक्तियों, सही संस्थाओं, सही मार्गदर्शक, सही एवं पर्याप्त सहायक सामग्री आदि का चयन अत्यन्त महत्वपूर्ण होता है। सफल प्रतियोगियों के साक्षात्कार में प्रायः यह पढ़ने, सुनने को मिलता है कि सही सामग्री का चयन, सुनिश्चित योजना एवं कड़े परिश्रम से सफलता प्राप्त होती है। यहाँ सही एवं गलत की पहचान अत्यन्त कठिन होती है। प्रायः हमारे जीवन में स्वाभाविक रूप से मित्र, माता–पिता, रिश्तेदार, पड़ोसी अध्यापक ही हमें सलाह देते हैं। सलाह सदैव सफल लोगो की माननी चाहिए क्योंकि सही मार्गदर्शन तो सफल व्यक्ति ही दे सकता है।

यह आवश्यक नहीं होता है कि हमारे शुभचिंतक हमारे सही मार्गदर्शक साबित हों अतः सही मार्गदर्शन के लिए सदैव सही व्यक्ति का चुनाव करना चाहिए। सही एवं समुचित सुझाव वही दे सकता है जो सफल हो।

निर्देशित करना : सही निर्देशन के लिए कुशल नेतृत्व आवश्यक माना जाता है। कुशल नेतृत्व न केवल समुचित एवं सही दिशा में समूह को प्रेरित करता है बल्कि समूह में उत्साह एवं ऊर्जा का संचार भी कर सकता है। नेतृत्वकर्ता लक्ष्य, उसे प्राप्त करने के मार्ग, मार्ग की कठिनाईयों एवं कठिनाईयों के समाधान को पूरी स्पष्टता से देख सकता है।

निजी जीवन में भी वही व्यक्ति अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है जो अपने लक्ष्य एवं उसको प्राप्त करने के मार्ग में आने वाली कठिनाईयों को जानता हो। कठिनाईयों का मार्ग में आना बेहद स्वाभाविक है। कठिनाईयों के प्रति हमारा रवैया कैसा है, इस पर ही सफलता एवं असफलता निर्भर करती है। यदि कठिनाइयों के लिए हम परिवार, मित्र, समाज, धन, भाग्य या किसी भी अन्य परिस्थिति को जिम्मेदार ठहराते हैं तो हमारी सफलता की संभावना कम हो जाती है लेकिन यदि हम कठिनाइयों को दूर करने के प्रयास करते हैं तो समाधान मिल ही जाता है। इसीलिए किसी ने कहा है कि ''सफल न होना मात्र इसे ही स्पष्ट करता है कि सफलता का प्रयास पूरे मनोयोग से नहीं हुआ है।''

जब हम आगे जाने का निर्णय कर लेते हैं, तो कितनी ही योजना, एवं तैयारी हो यह निश्चित है कि अनपेक्षित समस्याएँ एवं कठिनाइयाँ आएंगी ही। ऐसी स्थिति में हमारा दृष्टिकोण अत्यन्त महत्वपूर्ण हो जाता है। किसी भी समस्या के प्रति हम समाधान की दृष्टि रखते हैं, तो निश्चित ही मार्ग मिल जाता है, किन्तु यदि समस्या के प्रति शिकायती रवैया रखते हैं तो यह सुनिश्चित है कि सफलता हमसे निरन्तर दूर होती चली जाएगी। किसी ने सच ही कहा है कि ''यदि हम समाधान का हिस्सा नहीं हैं तो हम स्वयं एक समस्या हैं।''

अतः स्वयं में नेतृत्व के गुणों को विकसित करने का प्रयास करना चाहिए। ये गुण विपरीत परिस्थितियों में मार्ग निकालने की प्रवृत्ति होने, जुझारूपन, कभी भी हार न मानने, स्वयं व अपने लक्ष्य पर विश्वास होने से स्वतः विकसित होते जाते हैं।

समन्वय करना : कार्य के विभिन्न भागों को परस्पर सम्बन्धित करना अथवा उनमें समन्वय स्थापित करना होता है। समन्वय का अभिप्राय अपने समय, साधन, परिस्थितियों को इस प्रकार नियोजित करना है कि हम अपने निर्धारित लक्ष्य को प्राप्त कर सकें।

निजी जीवन में हमें सदैव यह ध्यान रखना चाहिए कि हमारी प्रत्येक गतिविधि किसी न किसी प्रकार के लक्ष्य की ओर ले जाने वाली होनी चाहिए। सफलता के लिए कठोर निर्णय भी लेने पड़ें तो उसे लेने में संकोच नहीं करना चाहिए। सूर्य की रोशनी को केन्द्रित करके जिस प्रकार

अग्नि उत्पन्न की जा सकती है, ठीक इसी प्रकार अपने समय, साधनों–संसाधनों एवं परिस्थितियों का उचित समन्वय करके लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है।

प्रतिवेदन : संगठन में रिपोर्ट लेना एक अत्यन्त महतवपूर्ण चरण माना जाता जिससे कि कार्य की प्रगति, उसकी दिशा आदि को जाना जा सके एवं तदनुरूप आवश्यक बदलाव किए जा सकें।

निजी जीवन में भी कार्य प्रारम्भ कर देना तो महत्वपूर्ण होता ही है लेकिन समय–समय पर कार्य की समीक्षा भी करनी आवश्यक है। प्रायः हम जैसा सोचते हैं ठीक वैसे परिणाम प्राप्त नहीं होते हैं। यदि हम स्वयं की पड़ताल निश्चित अन्तराल पर करते रहेंगे तो समय रहते ही अपने प्रयास एवं उसके परिणाम का सही आकलन एवं जरुरत के मुताबिक बदलाव भी कर सकेंगे। इसे हम एक सामान्य से उदाहरण से समझ सकते हैं। किसी नए मित्र के घर का पता पास होने के बावजूद चौराहे, तिराहे या किसी दोराहे पर रुक कर आने–जाने वाले किसी भी व्यक्ति से पूछते हैं कि अमुक स्थान कहाँ है। नए स्थान का पता हम इसीलिए पूछते हैं कि यह सुनिश्चित किया जा सके हम सही दिशा में हैं अथवा नहीं। यदि हम निर्धारित दिशा से थोड़ा भी अलग हुए तो हमारा समय, श्रम, धन आदि व्यर्थ चले जाएंगे। अतः लक्ष्य प्राप्ति के लिए निश्चित अन्तराल पर अपने द्वारा किए गए कार्यों की समीक्षा अत्यन्त आवश्यक चरण है।

बजट बनाना : संगठन में लक्ष्य की प्राप्ति के लिए बजट का प्रावधान एक अनिवार्य पक्ष है। संसाधनों को एकत्रित करना, कर्मचारियों के वेतन आदि की व्यवस्था बिना बजट आवंटन के संभव नहीं है।

निजी जीवन में भी सफलता प्राप्ति के लिए न्यूनतम साधन–संसाधन आवश्यक होते हैं। लक्ष्य निर्धारण के साथ–साथ हमें उसकी प्राप्ति के लिए आवश्यक बजट का आकलन भी कर लेना चाहिए। कितने एवं कैसे साधनों की कब आवश्यकता होगी इसको सुनिश्चित करना अत्यन्त आवश्यक माना जाता है। ऐसा करना हमें यथार्थवादी बनाए रखता है। लेकिन तमाम महान व्यक्तियों के जीवन से हमें ज्ञात होता है कि साधनों के अभाव में भी लक्ष्य की स्पष्टता, दृढ़ संकल्प, विपरीत परिस्थितियों से जूझने की प्रवृत्ति, हार न मानने का जज्बा एवं स्वयं पर विश्वास जैसे गुणों से सफलता पायी जा सकती है। ऐसे अनेकानेक उदाहरण हमें इतिहास के पन्नों में एवं अपने आसपास आसानी से मिल जाएंगे।

इस सबके अलावा व्यक्ति अपने सुविधाजनक एवं परिचित वातावरण में ही रहना चाहता है, लेकिन सफल लोगों के अनुभवों से स्पष्ट हुआ कि नए के प्रति सदैव सकारात्मक होना चाहिए। जीवन निरन्तर प्रतिपल नया होता है। पुराने एवं नए के बीच चुनाव करना हो तो हमें स्वयं को सदैव उसके स्वागत के लिए तैयार रखना चाहिए। साथ ही साथ समाधान की भी तैयारी होनी चाहिए कि हम उसका सामना कैसे करेंगे? नई चुनौतियों का

सामना करने की तैयारी का तात्पर्य साधनों से है। परिस्थितियों के बदलने के साथ ही पुराने उपकरण या साधन प्रासंगिक एवं उपयोगी नहीं रह जाते हैं और वे नई चुनौतियों का सामना करने में प्रभावी नहीं रहते। जब ऐसा नहीं होता है तो हम स्वयं को असफल मानकर निराशा में डूबने लगते हैं। अतः हमें निरन्तर अद्यतन या Updated रहना चाहिए।

एक निजी अनुभव : लूथर गुलिक के POSTCORB सिद्धान्त के सैद्धान्तिक पक्ष का पढ़ना–पढ़ाना तो होता रहा लेकिन सुनिश्चित लक्ष्य, साधनों–संसाधनों का सही एवं सार्थक उपयोग, सकारात्मक प्रतियोगिता, सीखने एवं अपनाने की प्रवृत्ति से बदलाव एवं परिवर्तन कैसे लाया जा सकता है इसका एक निजी अनुभव आपके साथ बाँटना उचित समझता हूँ।

अब यहाँ मैं अपने अनुभव को लूथर गुलिक के संगठन POSTCORB सिद्धान्त के साथ जोड़ने का प्रयास करने की कोशिश करूंगा। सेमीनार कांफ्रेस आदि में पावरप्वाइंट प्रजेन्टेशन को देखना एवं कभी कभी अनिवार्य होने पर प्रस्तुतीकरण देना भी अच्छा लगा था। फिल्मों की तरह रंगीन एवं शानदार प्रस्तुतियाँ निश्चित ही अच्छी लगती थीं एवं भीतर यह सन्देह नहीं था कि यह माध्यम शिक्षण को नए आयाम देगा। किन्तु किसी भी कार्य को प्रारम्भ करने की शुरूआती हिचक सहज ही होती है जो निश्चित ही मेरे सामने भी थी। लेकिन गीता मैडम के लगातार प्रेरित करने से हिचक समाप्त हो गयी। छात्राओं/विद्यार्थियों के लिए भी यह सबक महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। वे आपको सकारात्मक दिशा की ओर भी ले जा सकते हैं। या असफलता की ओर भी ले जा सकते हैं। यहाँ प्राचीन राजनीतिक चिन्तकों कौटिल्य आदि विचारकों के सप्तांग राज्य का सिद्धान्त स्वतः ही जेहन में आ जाता है जहाँ वे मित्र को राज्य का एक प्रमुख अंग बताते हैं। अपने सहयोगियों एवं मित्रों के चुनाव में सावधानी रखनी चाहिए। यदि आप प्रगति की दिशा में अग्रसर नहीं हो रहे हैं, तो सावधानी से जाँच कीजिए कि आपके आस–पास किन लोगों का प्रभाव ज्यादा है एवं विचार कीजिए कि आप कैसे अपने परिवेश में परिवर्तन कर सकते हैं।

अब यहाँ एक और बात आपके सामने स्पष्ट करना जरूरी समझता हूँ और वह यह कि हमारे आस–पास ही सकारात्मक एवं नकारात्मक लोग एवं परिवेश दोनों होते हैं। आप स्वयं यह जान सकते हैं कि आपके आस–पास का वातावरण एवं लोग कैसे हैं? यदि आप जीवन में दिन–प्रतिदिन विकसित होते जा रहे हैं तो समझिये कि आपके मित्र एवं परिवेश सकारात्मक है। यदि इसके विपरीत हो रहा है तो निश्चित ही आपको सावधान हो जाना चाहिए। सकारात्मक एवं प्रेरक लोग हमारे आस–पास ही होते हैं। उन्हें खोजने के लिए कोई दूर की यात्रा नहीं करनी पड़ती है। यह छात्राओं/विद्यार्थियों के साथ हम अपने अनुभव के आधार पर कह सकते हैं कि आपके सहेली या मित्र ही आपके लिए प्रेरक का कार्य कर सकते हैं क्योंकि जब हम छात्राओं के टेस्ट की कापी देखते हैं तो एक ही

कक्षा के विद्यार्थियों के परफॉरमेंस में भारी अंतर देखने को मिलता है। आपको शायद कभी भी पता न चल पाये कि जिन मित्रों के साथ आप प्रतिदिन कॉलेज आते हैं या जिनके पास प्रतिदिन बैठते हैं, वे ही हमारे जीवन में परिवर्तन ला सकते हैं, किंतु हम ऐसा नहीं कर पाते हैं। हम अपनी अनेकानेक कमियों एवं गलतियों को उनकी ही सहायता से दूर कर सकते हैं किन्तु हम स्वयं को किसी से कम नहीं समझते हैं। हमारा अहंकार किसी से कुछ पूछने की अनुमति नहीं देता है। हम सीखने की सदैव तैयारी नहीं रखते हैं। यह सदैव ध्यान रखना चाहिए कि सफल एवं असफल व्यक्ति में मात्र इतना ही अंतर होता है कि असफल व्यक्ति छोटी–छोटी बाधाओं को ही बड़ा मानकर रूक जाता है और सफल व्यक्ति बड़ी से बड़ी बाधाओं को भी अपने लक्ष्य के मार्ग की सीढ़ियाँ बना लेता है। वह हमारा दृष्टिकोण ही है, जो हमारे जीवन को निर्मित करता है। क्योंकि कहा गया है कि ***'जैसी दृष्टि, वैसी सृष्टि'।***

सन्दर्भ :

- गुप्ता, एस.पी. : आधुनिक पुस्तक मापन एवं मूल्यांकन : शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद
- पाण्डेय, एवं श्रीवास्तव : शिक्षा मनोविज्ञान, भारतीय एवं पाश्चात्य दृष्टि, टाटा मैकग्रा हिल्स, नई दिल्ली

***

डॉ. श्रीरंजन सूरिदेव का अनुवाद साहित्य

वर्षा रानी *

सारांश

एक श्रेष्ठ अनुवादक डॉ0 श्रीरंजन सूरिदेव अपने जीवन काल में हिन्दी–संस्कृत की अनेक किताबों का लेखन और सम्पादन किया । सन 2017 में भारत के राष्ट्रीय पुरस्कार से सम्मानित होने वाले श्रीरंजन सूरिदेव जी शाकद्वीपीय समाज के गौरव है । इनकी जीवनी सभी प्रेरणास्रोत है । ये हिंदी, संस्कृत, प्राकृत और जैन साहित्य के प्रख्यात विद्वान है। इन्होंने प्राकृत से हिंदी, प्राकृत से संस्कृत, संस्कृत से हिंदी भाषा में अनेक ग्रंथों का अनुवाद किया। इन्हें प्रमुख हैं– वसुदेवहिण्डी, अगडदत्त कहा, धूर्ताख्यान, सिहांसन बतीसी, वेताल पचीसी उपासक दशा सूत्र (सप्तक जैनांग) आदि।

कुंजिका : अनुवाद, साहित्य, हिन्दी, संस्कृत, पंक्तियाँ, कविता, सिहांसन बतीसी आदि।

परिचयः शोध विस्तार : डॉ0 श्रीरंजन सूरिदेव ने अनुवाद के क्षेत्र हिंदी साहित्य में अपनी अहम भूमिका निभाई है। जो बहुत ही महत्वपूर्ण और ख्यातिपूर्ण हुए हैं। हिन्दी क्षेत्र में इन्होंने अनुवाद साहित्य को आगे बढ़ाया है। कई भाषाओं के विद्वान होने के कारण इन्होंने कई भाषाओं में अनुवाद भी किया है। 'सिंहासन बत्तीसी (संस्कृत) और 'वसुदेवहिण्डी' एवं 'धूर्ताख्यान' (प्राकृत) के साथ–साथ संस्कृत और प्राकृत के अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रंथों का हिंदी–अनुवाद प्रस्तुत कर इन्होंने हिंदी की जो सेवा की है, वह बहुत ही सराहनीय है।[1] अनुवाद कार्य में अनुवादक की भूमिका बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। वास्तव में देखा जाए तो अनुवादक का कार्य मूल रचनाकार से भी अधिक कठिन होता है। अनुवादक अपनी भूमिका तभी अच्छी तरह निभा सकता है जब वह अनुवाद के लिए भाषा के पाठ का ध्यानपूर्वक अध्ययन करता है। आज के वैज्ञानिक युग में अनुवाद बहुत महत्त्वपूर्ण हो गया है। हमें दूसरे देशों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चलने में अनुवाद की अहम भूमिका होती है। दूसरे देशों की विज्ञान क्षेत्र में, सामाजिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्र में हुई प्रगति की जानकारी लेने में अनुवाद ही माध्यम होता है। विश्व की कुछ श्रेष्ठ कृतियों को अनुवाद के कारण ही सम्मान मिला। रविन्द्रनाथ टैगोर की 'गीतांजली' को नोवेल पुरस्कार उनके द्वारा किए गए अनुवाद कार्य पर ही मिला। राष्ट्रीय एकता में भी अनुवाद की विशेष भूमिका होती है। दुनिया के जिन देशों में विभिन्न जातियों एवं संस्कृतियों का मिलन हुआ है, वहाँ

* शोधार्थी, हिन्दी विभाग, मगध विश्वविद्यालय

सामाजिक संस्कृति के निर्माण में अनुवाद की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। साहित्य के अध्ययन में भी अनुवाद की आवश्यकता होती है। साहित्य में अनुवाद का महत्व तो आज व्यापक हो गया है। अन्तर्राष्ट्रीय साहित्य के अनुवाद से ही दुनिया के विभिन्न भाषाओं में लिखे गए साहित्य में ज्ञान का विपुल भण्डार छिपा हुआ है। दुनिया के विभिन्न भाषाओं के अनुवाद के द्वारा ही तुलनात्मक साहित्य के अध्ययन में साहायता मिलती है। अतः हम कह सकते है कि जीवन के हर क्षेत्र में अनुवाद की आवश्यकता है।

'वसुदेवहिण्डी : भारतीय जीवन और संस्कृति का वृहत्कथा' वस्तुतः यह पुस्तक जैन कथा साहित्य में लिखी हुई है। किंतु डॉ0 श्रीरंजन सूरिदेव ने अति विशिष्ट परिश्रम के बल पर मूल पाठ के साथ हिंदी–अनुवाद देते हुए इसका नया संस्करण प्रस्तुत किया। हिंदी अनुवाद का यह नया संस्करण बहुत ही चर्चित और मशहूर हुआ। इसी कथा ग्रंथ पर इन्हें पीएच0डी0 की उपाधि प्रदान की गई। यह कथा ग्रंथ डॉ0 श्रीरंजन सूरिदेव का शोध प्रबंध है जो प्राकृत जैन शोध–संस्थान, वैशाली से प्रकाशित है। हिंदी में अनुवाद होने के कारण लोगों के बीच यह बहुत चर्चित हो गई है। पाठक इसे बड़े स्नेह और आदर के साथ पढ़ते हैं।[2] पाठक को इसका हिंदी अनुवाद समेलन में कोई परेशानी नहीं होती है। इस कथा ग्रंथ में श्रीकृष्ण के पिता वसुदेव (जैन मान्यतानुसार) बीसवें कामदेव हैं। उनका चरित जैन साहित्य में रोचक एवं व्यापक रूप में वर्णित हैं। इस प्रकार की रचनाओं में 'वसुदेवहिण्डी' का अपना विशिष्ट स्थान है। 'वसुदेवहिण्डी' का अर्थ होता है– वसुदेव की यात्रा। इस ग्रंथ में कृष्ण के पिता वसुदेव के भ्रमण की रोचक एवं प्रभावपूर्ण कथाएँ संकलित हैं। यह कथा साहित्य वृतान्त साहसिक एवं श्रृंगारी बातों से भरा है। वास्तव में इसमें काम–कथाओं पर आधारित धर्म–कथाएँ 'वसुदेवहिण्डी' प्राकृत कथा साहित्य का गौरव ग्रंथ माना जाता है।

'सिंहासन बत्तीसी' भी डॉ0 श्रीरंजन सूरिदेव का एक अनोखा अनुवाद साहित्य है। वस्तुतः यह बाल उपयोगी कहानी है। इसकी पूर्व संस्करण संस्कृत में लिखित है। जिसे बच्चे आसानी से नहीं पढ़ सकते हैं। सूरिदेव जी ने इन संस्कृत की कहानियों का हिंदी में अनुवाद कर एक सराहनीय कार्य किया। कुछ बाल कहानियाँ संस्कृत में रहने के कारण उपेक्षा का शिकार हो रहा था। लेकिन इन्होंने सबका हिंदी अनुवाद कर बाल साहित्य को समृद्ध किया ओर अनुवाद साहित्य को भी आगे बढ़ाने का प्रयास किया।

'सिहांसन बतीसी' की कथा भी बहुत ही रोचक आनंदपूर्ण है। आचार्य बदलेव उपाध्याय के अनुसार इसके रचयिता जैन क्षेमकर मुनि हैं। इसकी दो पुस्तक मिलती है– उतरी और दक्षिणी। दक्षिण भारत में यह 'विक्रमचरित' और पूर्वोत्तर भारत में 'विक्रमार्कचरित' के नाम से प्रसिद्ध है। मूल कथा यह है कि राजा भोज जमीन से गड़े हुए विक्रमादित्य के सिंहासन

को उखाड़ते हैं। जिसमें बत्तीस पुतलियाँ लगी हुई है। ये पुतलियाँ सिंहासन में चार चांद लगा रही थी। राजा भोज जब–जब इस सिहांसन इस सिंहासन पर बैठने की कोशिश करते हैं।[3] पुतलियाँ उन्हें इस पर बैठने से रोकती है। वह उन्हें राजा विक्रम की पराक्रम कथा सुनाकर इस सिंहासन पर बैठने के लिए अयोग्य सिद्ध करती है। इसमें बतीस पुतलियों द्वारा कही, गई राजा विक्रम की बतीस कहानियाँ संकलित हैं।

'सिंहासन बतीसी' की कहानियाँ बहुत ही रोचक एवं प्रभावपूर्ण है। यह कहानी पाठकों के मन में एक अमिट प्रभाव छोड़ जाती है।

डॉ0 श्रीरंजन सूरिदेव व्यस्कों के अतिरिक्त बालकों के लिए कई संस्कृत की कहानियों को हिंदी में अनुवाद कर एक नया कृतिमान हासिल किया। जिसमें 'बेताल पचीसी' का भी संस्कृत से हिंदी में अनुवाद किया है। उपेक्षा का शिकार हो रहे इस बाल कहानी को इन्होंने अपने परिश्रम से हिंदी अनुवाद कर बालोपयोगी बना दिया। इसमें रचित हर कहानी कुछ नया सीख देता है।[4] वेताल पचीसी में पचीस कहानियों का संग्रह है। इसकी प्रत्येक कहानी का अनुवाद बच्चे आसानी से पढ़ एवं समझ लेते हैं। आज यह बाल कहानी पुस्तक पाठकों के बीच काफी लोक प्रिय पढ़ने योग्य बना हुआ है।

'सिंहासन बतीसी' कहानी में डॉ0 श्रीरंजन सूरिदेव अनुवाद के माध्यम से यह बताया है कि जो राजा विक्रमादित्य के समान रहेगा वही उस सिंहासन पर बैठ सकेगा। इस पूरी किताब में बतीस पुतलियों द्वारा कही गई राजा विक्रमादित्य की बतीस कहानियों का वर्णन है। पहली पुतली कहानी कह कर राजा भोज से यह कहती है कि अगर आप में राजन राजा विक्रमादित्य जैसी शूरता, उदारता, बल और स्वभाव है तो ही इस सिंहासन पर बैठ सकते हैं। राजा ने पुतली को अपने वीर सब कुछ कह सुनाया। किंतु पुतली राजा कि बात सुनकर बोली हे राजन्। तुम्हारे लिए यह अनुचित है कि तुम अपने ही मुँह से अपनी बड़ाई करते हो। सज्जन तो पराए दोषों को कहता है व अपने गुणों को नहीं।

इस पंक्ति के माध्यम से डॉ0 श्रीरंजन सूरिदेव ने यह बताया है कि इंसान को कभी भी अपनी बड़ाई या प्रसन्नता नहीं करनी चाहिए। जो व्यक्ति सज्जन होते हैं वे न तो दूसरे का अवगुण और ना हिं अपने गुणों का बखान करते हैं। अपने अनुवाद को माध्यम से बच्चों के लिए सिख भरा हुआ संदेश दिए हैं। उन्होंने यह भी लिखा है कि आयुर्वल धन की सीमा, घर के दोष, अपसी मंत्रणा (झगड़ा) औषध प्रयोग, संगम दान मान और अपमान इन नौ बातों को हमेशा दूसरे से गोपनीय रखना चाहिए।

दूसरी पुतली बोली राजन अगर आप में, सचमुच शूरता, उदारता, बल और स्वभाव है तो निःसंकोच बैठिए। वह भी एक कहानी सुनाती है। किंतु कहानी सुनने के बाद राजा अपने को मौन रखते हैं।[5] पुतली कहती है राजा विक्रमादित्य एक ब्राह्मण के मनोरथों को पूरा करे। राजा ने अपने लिए

कुछ भी नहीं मांगा। पुतली ने राजा से कहा– राजन् आप में ऐसा धैर्य है तो आप सिंहासन पर बैठिए।

इस पंक्ति के माध्यम से डॉ0 श्रीरंजन सूरिदेव बच्चों को यह कहना चाहते हैं कि व्यक्ति को धैर्यवान होना चाहिए। गरीब, दुखियों की मदद करने वाला इंसान हमेशा आगे बढ़ता है। अपने अनुवाद के माध्यम से यह भी कहा है कि व्यक्ति को उदार होना चाहिए। उदारता इंसान में सहज गुण होती है कृत्रिम नहीं। जिस प्रकार चम्पा, फूल में गंध, मोती में चमक, और गन्ने में मिठास सहज भाव रहती है। ठीक उसी प्रकार उत्तम व्यक्ति में सहज भाव से उदारता पाई जाती है। अनुवाद के माध्यम से डॉ0 श्रीरंजन सूरिदेव ने यहाँ बहुत बड़ी बात कही है। इस पुस्तक का अनुवाद सही मायने में अनोखा है। यह पुस्तक सिर्फ बच्चों के लिए ही नहीं वरन् व्यस्कों को भी आनंदित करेगी। अनुवाद के प्रत्येक शब्द में भाव उनकी प्रतिभा की ललक मिलती है। साहित्य में अनुवादक का बहुत बड़ा योगदान होता है। इसके बिना साहित्य आगे नहीं बढ़ सकता है। अनुवाद एक लिखित विधा है। जिसे करने के लिए कई साधनों की जरूरत पड़ती है। शब्द कोश, संदर्भ ग्रंथ, विषय विशेषज्ञ के बिना कभी भी अनुवाद कार्य पूरा नहीं किया जा सकता है। अनुवाद करने की कोई समय सीमा नहीं होती है। इच्छानुसार अनुवादक इसे कई बार शुद्धिकरण के बाद पूरा कर सकता है। अनुवाद में अनुवादकों को कमोवेश समान समस्याओं का सामना करना ही पड़ता है। अनुवादक के लिए अनुवाद करना आसान नहीं होता।

तीसरी पुतली के माध्यम से अनुवादक डॉ0 श्रीरंजन सूरिदेव ये कहना चाहते हैं कि व्यक्ति को परोपकारी भी होना चाहिए। जो अकारण सारे संसार का उपकार करते हैं वे इस लोक में सच्चे अर्थ में सुजन है। वे ही पुरूष सुजन, सुघन, कृति और सुखी हैं जो परोपकार की भावना से जीते हैं।

पाँचवीं पुतली द्वारा कही गई बात का अनुवाद करते हुए कहते हैं कि पुरूष को परोपकारी, धैर्यवान और उदार रहना चाहिए। यह इंसान को तरक्की में मदद करता है। अहम की भावना अपने अंदर नहीं पनपने देना चाहिए। जिस तरह राजा की आज्ञा का उल्लंघन बिना शस्त्र का ही वध के समान हो जाता है। ठीक उसी प्रकार पुरूष के अंदर अहम का आना भी पतन का कारण बन जाता है।

एक दिन राजा भोज पुनः उत्सुक मन से ज्यों ही सिंहासन के पास गए नौवीं पुतली दोनो से आग्रह करती हुई बोली राजन अगर आप में राजा विक्रमादित्य के समान उदारता और वीरता है तो ही इस सिंहासन पर बैठिए। राजा भोज उत्सुकता के साथ कहानी सुनाने को कहते हैं। इस कहानी के माध्यम से अनुवादक डॉ0 श्रीरंजन सूरिदेव ने विद्या के महत्त्व पर प्रकाश डाला है। अपने अनुवादक के माध्यम से बच्चों को इसका महत्व बताना चाहते हैं। इनके अनुसार विद्या ही मनुष्य के लिए सौन्दर्य है। अत्यंत

गुप्त धन है जिसे कोई पकड़ या छीन नहीं सकता है। विद्या ने केवल योग प्रदान करती हैं, अपितु यश और सुख भी देती है।[6] विद्या गुरूओं का भी गुरू है। विदेशों में विद्या ही बन्धु के समान सहायक है। विद्या ही आराध्य देवता है। जो असली राजा होता है विद्या की ही कदर करते हैं धन की नहीं। जो व्यक्ति विद्याहीन होते हैं उन्हें पशुओं के समान माना जाता है। विद्याहीन मनुष्य बड़े कुल में पैदा होकर भी कोई विशेष बड़प्पन नहीं पाता और अकुलीन होकर भी जो विद्वान बनता है उसकी सर्वत्र पूजा होती है। उसका मान हर जगह होता है।

''विद्या नाम नरस्य रूपमधिकं प्रच्छन्नगुप्तं धनं
विद्या योगकरी यश : सुखकरी विद्या गुरूणां गुरूः।
विद्या बन्धुजनों विदेशगमने विद्या परं दैवतं
विद्या राजसु पूज्यते न हि धनं विद्याहीनः पशुः।।
किं कुलेन विशालेन विद्याहीनस्य वेहिनः।
अकुलीनोडपि यो विद्वान सर्वैरेश स पूज्येत।।

उसी क्षण पुनः दूसरी पुतली सिंहासन पर बैठने से रोककर राजा भोज से कहती है– आप में विक्रमादित्य जैसा उदारता और धीरता है तो ही इस सिंहासन पर बैठ सकेगें। राजा भोज पुतली द्वारा कहानी सुनकर मौन रह जाते हैं।

इसी तरह आगे की पुतली ने एक कहानी सुनाया–राजा विक्रमादित्य ने अपना राज्य भार मंत्रियों को छोड़ भ्रमण पर निकल पड़े। भ्रमण करते हुए वे एक घने जंगल में पहुँच गए। जहां एक भयानक राक्षस रहता था। राजा अपनी बुद्धि और गुण से इस राक्षस को अपने वश में कर लिए। राजा ने राक्षस को समझाते हुए कहा कि– यदि तुम मेरे ऊपर प्रसन्न हो तो आज से मनुष्य का भक्षण करना छोड़ दो। जिस प्रकार तुम्हें अपनी जान प्यारी है, उसी प्रकार सभी प्राणियों को अपनी–अपनी जान प्यारी होती है। इसलिए मृत्युभय से सभी प्राणियों को जीवन दान देना चाहिए। इस संसार सागर में मरणशील प्राणी बराबर जन्म मृत्यु और बुढ़ापे के दुःख से परिचित रहता है। फिर भी वह मृत्यु से डरता है। यानि जीवन सभी को प्यारा होता है मृत्यु नहीं हर मनुष्य को मर जाने की संभावना से जैसा दुःख होता है, उसे अनुमान के द्वारा कोई भी नहीं बता सकता।

जन्ममृत्युजरादुःखैनित्यं संसार सागेह।
किलश्यन्ति जन्तवो घोरे मत्योस्त्रस्यन्ति मृत्युतः।।
मरिष्यामीति यद् दुःखं पुरूषस्योपजायते।
शकयते नानुमानेन तद्वक्तु केनचित् क्वचित।।

इसलिए तुम दूसरे के जीवन को अपने जीवन की तरह मानकर उसकी रक्षा करो।

शोध प्रविधि : प्रस्तुत शोध–लेख में द्वितीयक स्रोतों के माध्यम से ऐतिहासिक, सैद्धांतिक विश्लेषणात्मक, तुल्नातम्क, सामाजिक एंव नवीन व्यवहारिक

पद्धतियों को अपनाते हुए शोध–लेख को मौलिकता प्रदान करने का प्रयास किया गया है । इस शोध कार्य हेतु आवश्यक सामाग्री डॉ0 श्रीरंजन सूरिदेव का अनुवाद साहित्य से संबंधित पुस्तकालयों इंटरनेट एंव शोध संस्थानों आदि में उपलब्ध साधनों के अलावा आधुनिक संदर्भ–ग्रंथों से एकत्र किया गया है । इस संदर्भ पर आधारित पुस्तकों के अलावा विभिन्न आयोगों के प्रकाशनों आत्मलेखो, समाचार पत्र–पत्रिकाओं, इत्यादि के लेखन सामाग्री संग्रहित कर विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत है।

निष्कर्ष – इस प्रकार हम देखते हैं कि श्रीमद्भगवदगीता का श्रीधरी टीका (संस्कृत) का हिन्दी अनुवाद डॉ० श्रीरंजन सूरिदेव ने बड़े ही सरल और सुन्दर ढंग से किया है। संस्कृत श्रीधरी टीका का एक–एक शब्द अर्थ इन्होने समझाया है। जिसके कारण यह सरल और सुबोध हो गया है। पाठकों को भी पढने और समझने में कोई परेशानी का सामना नहीं करना पड़ेगा। श्रीमद्भगवद्गीता का श्रीधरी टीका को हिन्दी अनुवाद के कारण इसे नयी पहचान मिली। जो डॉ० श्रीरंजन सूरिदेव का अनुवाद क्षेत्र में एक सराहनीय कार्य है। इनके इस कार्य को हिन्दी साहित्य का अनुवाद क्षेत्र सदा आभारी रहगेा। ये हिन्दी साहित्य के लिए वरदान साबित हुए कहना न हागेा। हिन्दी साहित्य क्षेत्र में इनके संस्कृत श्रीधरी टीका का हिन्दी अनुवाद में सदा स्मरणीय रहेगा।

संदर्भ :

1. डॉ० सुरेन्द्र प्रसाद जमुआर, सम्पादक, बिहार के रचना कर्मियों की साहित्यिक यात्रा, प्रकाशक मेधा बुक्स, दिल्ली संस्करण 2004 पृ0 43
2. वही, पृ0 44
3. वही, पृ0 49
4. वेद प्रताप गर्ग, सम्पादक सारस्वत पुरुष डॉ० श्रीरंजन सूरिदेव, प्रकाशक डॉ० श्रीरंजन सूरिदेव अमृत पर्व समिति, पटना संस्करण, 2003 पृ0 11
5. वही, पृ0 16
6. आलोचना और साक्षात्कार : डॉ० श्रीरंजन सूरिदेव, आलोचना साहित्य 'प्रकाशकः धारिका पब्लिकेशन, दिल्ली 85, प्रथम संस्करण, 2008, पृ0 61

***

भारतीय संस्कृति एवं उसकी विशेषताएँ

डॉ. उमेश कुमार सिंह *

संस्कृति और सभ्यता दोनों एक ही वस्तु के दो पहलू हैं। संस्कृति आत्मा है तो सभ्यता शरीर। सभ्यता, उसकी स्थूल और आविष्कार की दिशा की ओर तो संस्कृति उस विकार के चिन्तन, सूक्ष्म शालीन, सुन्दर तत्व की ओर संकेत करता है– दोनों मनुष्य की सामूहिक प्रेरणा और विजय के परिणाम हैं जो आनन्द प्राप्ति की दिशा में सतत की जा रही है। इसी को और स्पष्ट करते हुए रामधारी सिंह दिनकर के शब्दों में कहा जा सकता है– 'संस्कृति ऐसी चीज है जिसे लक्षणों से तो हम जान सकते हैं किन्तु उसकी परिभाषा नहीं दे सकते। कुछ अंशों में यह सभ्यता से भिन्न गुण है। अंगरेजी में कहावत है कि सभ्यता वह चीज है जो हमारे पास है, संस्कृति वह गुण है जो हममे व्याप्त है।'' मोटर, महल, सड़क, हवाई जहाज, पोशाक और अच्छा भोजन तथा इनके समान सारी स्थूल वस्तुएँ संस्कृति नही सभ्यता के समान है। परन्तु पोषाक पहनने और भोजन करने की जो कला है वह संस्कृति की चीज है।[1]

1. संस्कृति का स्वरूप

संस्कृति शब्द 'सम्' उपसर्गपूर्वक 'कृ' धातु में 'क्तिन्' प्रत्यय लगने से निर्मित होता है जिसका शाब्दिक अर्थ है– परिष्कृत अथवा संस्कारित क्रिया–कलाप। संस्कृति शब्द अपेक्षाकृत परवर्ती है। उसके पूर्व इसी अर्थ में 'कृष्टि' शब्द का प्रयोग मिलता है जो 'कृष्' धातु से व्युत्पन्न है। यह कर्षण अथवा अन्नोत्पादन का पर्याय है। इस अर्थ में यह 'कल्चर' (Culture) के अत्यन्त सन्निकट है जो लैटिन शब्द 'क्लटरे' से निष्पन्न है जिसका अर्थ है– कर्षण, उत्पादन, संवर्धन आदि। उल्लेखनीय है कि संस्कृति, कृष्टि एवं कल्चर को पूर्णतया पर्याय मान लेना उचित नहीं प्रतीत होता।[2] प्रसिद्ध समाजशास्त्री सोरोकिन ने विशिष्ट प्रतिभा एवं मानव की नैतिक, बौद्धिक एवं आध्यात्मिक उपलब्धियों के समुच्चय को 'संस्कृति' कहा है। टाइलरकृत संस्कृति की सुप्रसिद्ध परिभाषा है, 'संस्कृति अथवा सभ्यता वह इकाई है जिसमें ज्ञान, विश्वास, कला, नैतिकता, कानून, रीतिरिवाज एवं समाज के सदस्य के रूप में मनुष्य के द्वार अर्जित सभी योग्यताएँ सम्मिलित हैं।[3] इस परिभाषा में टाइलर ने संस्कृति और संस्कृति के अभिव्यक्तिकरण के सभी पक्षों को समाहित कर लिया है। प्रो. गोविन्दचन्द्र पाण्डे ने संस्कृति को तत्त्वतः एक मूल्य व्यवस्था के रूप में स्वीकार किया है जिसका ज्ञान संकेतगोचर (आत्मबोध या आदर्शबोध) के विवेचन से होता है। यह

* असिस्टेन्ट प्रोफेसर, प्राचीन इतिहास, पुरातत्व एवं संस्कृति विभाग, देवेन्द्र पी.जी. कॉलेज, बिल्थरा रोड, बलिया

संकेतगोचर अथवा आदर्शबोध अपने अभिव्यक्तिकरण के लिए जिन माध्यमों का आश्रय ग्रहण करता है, वही सभ्यता के अंग बन जाते हैं। इसीलिए गोविन्द चन्द्र पाण्डे ने संस्कृति के दो पक्षों की ओर इंगित किया है– सामाजिक परम्परा के रूप में संस्कृति में स्थूल ऐतिहासिकता होती है और अनन्त मूल्यानुसंधान को व्यक्त करने के लिए उसमें परमार्थ की ओर एक क्रमबद्ध उपसर्पण के सनातन इतिहास का संकेत प्राप्त होता है।'[4] गोविन्द चन्द्र पाण्डे ने संस्कृति में इसी दूसरे पक्ष को ही प्रमुख तत्त्व माना है। उनके शब्दों में, 'देवशक्ति की ओर उन्मुख भाव से त्यागपूर्वक कार्यसम्पादन ही सम्यक् कृति या संस्कृति है।' प्रो. पाण्डे की इस संक्षिप्त किन्तु अर्थगर्भित परिभाषा में ईशोपनिषद् के 'ईशावास्यमिदं सर्वम्' से लेकर गीता के 'निष्काम कर्मयोग' तक की यात्रा के सभी तत्त्वों का समावेश मिलता है। अधिकांश विचारक मूल्यों को संस्कृति में अंतर्भूत करते हैं,[5] मैकाइवर ने संस्कृति के विषय में यह विचार किया है कि 'जो हम हैं वह संस्कृति है और जो हमारा है वह सभ्यता है।'[6] इस कथन में मैकाइवर ने भारतीय विचारकों की भाँति परम सत्ता की खोज एवं प्राप्ति को ही संस्कृति माना है क्योंकि 'हम' का अस्तित्व उस परमसत्ता के बिना नहीं हो सकता। 'हमारा' से तात्पर्य इस भौतिक जगत से है, यद्यपि भारतीय परम्परा में 'हमारा' को 'ईशावास्यमिदं सर्वम्' के रूप में परिभाषित करके संस्कृति के उच्चतम स्तर की कामना की गयी है।

3. भारतीय संस्कृति

विश्व की प्रत्येक संस्कृति विशिष्ट भौगोलिक परिस्थितियों की पैदाइस होती है और उसमें विकसित सांस्कृतिक आदर्श एवं जीवनमूल्य उसकी आवश्यकता और प्राथमिकता हुआ करते हैं। तात्पर्य यह है कि विश्व की विभिन्न संस्कृतियाँ भिन्न–भिन्न भौगोलिक परिवेश में उत्पन्न होती हैं और उन भौगोलिक परिवेशों की प्राथमिकता और आवश्यकता उसमें परिलक्षित होती है। पुनः देश–काल–परिस्थिति सापेक्ष प्राथमिकताएँ बदलने पर उनके जीवन मूल्यों में भी परिवर्तन आते हैं। भारतीय संस्कृति भी इसका अपवाद नहीं है। भारत एक विशाल देश है। इसका भौगोलिक परिवेश वैविधयपूर्ण है। यदि यह उत्तर में हिमालय की उत्तुंग चोटियों से घिरा है तो पूर्व, दक्षिण एवं पश्चिम में समुद्र से घिरा है। यह भौगोलिक परिवेश विश्व मानचित्र पर इसे एक विशिष्ट पहचान देता है। पुनः इसका आन्तरिक भू–भाग भी वैविध्यपूर्ण है। उत्तर–पश्चिम, उत्तर एवं उत्तर–पूर्व में ऊँची श्रेणियाँ हैं तो मध्य भाग में विन्ध्य, अरावली और सतपुड़ा की पहाड़ियाँ हैं। पश्चिमी एवं पूर्वी किनारे पर पश्चिमी घाट एवं पूर्वी घाट की पर्वतमालाएँ हैं। इसके मध्य भाग में कहीं रेगिस्तानी मैदान है तो गंगा–यमुना, कृष्णा–कावेरी, गोदावरी–नर्मदा के हरे भरे मैदान भी हैं। इस वैविध्यपूर्ण भौगोलिक परिवेश में वैविध्य–पूर्ण जीवन–पद्धतियाँ भी दृष्टिगोचर होती हैं। नस्लीय, जातीय, भाषायी एवं धार्मिक विविधताएँ अन्य महत्वपूर्ण तथ्य हैं। उपरोक्त विशिष्ट

परिवेश में 'वसुधैव कुटुम्बकम' की अवधारणा से प्रभावित भारतीय संस्कृति का आविर्भाव हुआ। निस्सन्देह, उदारता, सहिष्णुता और अहिंसा से प्रभावित हिन्दू जीवन–पद्धति ने वर्तमान भारत का निर्माण किया। इस पर यहूदी, पारसीक, इस्लाम, ईसाइयत धर्मों के साथ पाश्चात्य समाज की जीवन–पद्धति जैसी बाह्य शक्तियों का भी प्रभाव पड़ता है। यह प्राचीन काल से लेकर अद्यावधि पर्यन्त, समय–समय पर परिवर्तित हुए जीवन–मूल्यों को आत्मसात कर संबल लेती रही है और कदाचित् भावी परिवर्तनों को भी आत्मसात् कर स्वस्थ और समृद्ध होती रहेगी। भारतीय संस्कृति में ऐसे अनेक जीवन–मूल्यों को प्रतिष्ठा मिली जिसने इसमें उत्तरजीविता, जिजीविषा और स्थायित्व को बढ़ावा दिया।

यह ध्यातव्य है कि भारतीय विचारक महान दूर द्रष्टा रहे हैं। उनके लिए दार्शनिक चिन्तन मात्र बुद्धि–विलास या बाल की खाल निकालना नहीं रहा है। उनके बौद्धिक चिन्तन का लक्ष्य जीवन की समस्याओं का समाधान करना एवं अच्छे जीवन की रूपरेखा तय करना रहा है। इसी परिप्रेक्ष्य में उन्होंने मानव जीवन का साध्य भी सुनिश्चित किया और उसकी प्राप्ति की कार्य–योजना और क्रियाविधि भी निर्धारित किया। उनकी दृष्टि में जीवन का साध्य है– पुरुषार्थ–सिद्धि अर्थात् जीवन में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की उपलब्धि। इन्हें मानव जीवन का चार स्तम्भ (Four pillars) कह सकते हैं। इस चतुवर्ग–व्यवस्था में मोक्ष सर्वोच्च पुरुषार्थ (Summum Bonum) है जो व्यक्ति को दुःखों से मुक्ति का आश्वासन देता है। शेष तीन पुरुषार्थ (धर्म, अर्थ और काम), जो 'त्रिवर्ग' के रूप में आख्यात हैं, व्यक्ति के समक्ष आदर्श लौकिक जीवन का मानदण्ड रखते हैं। इससे जहाँ एक ओर व्यक्ति की नैतिक एवं आध्यात्मिक उन्नति का मार्ग प्रशस्त होता है वहीं समाज में अनायास एक आदर्श सामाजिक व्यवस्था का मार्ग प्रशस्त होता है त्रिवर्ग में अर्थ और काम सांसारिक एवं मानसिक प्रवृत्तियाँ हैं। काम संसार की मूलभूत और प्रथम प्रवृत्ति है। अर्थ इस प्रवृत्ति की सिद्धि का साधन है। धर्म के द्वारा अर्थ और काम का नियंत्रण होता है। इसके द्वारा इन प्रवृत्तियों के अनुशासित एवं मर्यादित अनुशासन पर बल है। त्रिवर्ग का सन्तुलन सेवन अभ्युदय की सिद्धि का साधन है।

भारतीय मनीषियों ने पुरुषार्थ–सिद्धि के लिए प्रस्तावित कार्य–योजना एवं क्रिया–विधि के अन्तर्गत आश्रम–व्यवस्था एवं वर्ण–व्यवस्था का विधान किया। स्पष्ट है कि भारतीय विचारकों की दृष्टि में व्यक्तिगत जीवन एवं सामाजिक जीवन में अवियोज्य सम्बन्ध है। यद्यपि आश्रम–धर्म वैयक्तिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है और वर्ण–धर्म सामाजिक दृष्टि से, किन्तु इनमें पूर्ण अलगाव नहीं है। आश्रम–व्यवस्था के द्वारा व्यक्ति के साथ उसकी वैयक्तिक उन्नति की व्यवस्था की गयी है और एक स्वस्थ सामाजिक व्यवस्था के निर्माण पर बल दिया गया। वर्णव्यवथा द्वारा मूलतः सामाजिक व्यवस्था की रूपरेखा तय की गयी जिसमें प्रत्येक व्यक्ति की पात्रता और

योग्यता के आधार पर कार्य विभाजन किया गया। इसके द्वारा ऐसी सामाजिक व्यवस्था की रूपरेखा तैयार की गयी जिसमें व्यक्ति की वैयक्तिक उन्नति के साथ स्वस्थ सामाजिक व्यवस्था की स्थापना होती है।

भारतीय समाज अनेकता में एकता की अवधारणा पर आधारित है जो भारतीय संस्कृति में प्राथमिक मूल्य बन कर उभरा। भारत में प्राचीन काल में महात्मा बुद्ध, महावीर स्वामी, आचार्य शंकर और रामानुजाचार्य से लेकर मध्य युग में कबीर, तुलसी, सूफी सन्तों ने आधुनिक युग में महात्मा गांधी, विवेकानन्द, श्री अरविन्दो, एम.एन. राय तथा स्वतंत्रता सेनानियों ने समय–समय पर इसी जीवन–पद्धति को मान्यता दिया है। कदाचित् भारतीय संविधान निर्माताओं ने इसी जीवन–मूल्य के आलोक में समान नागरिक संहिता (Uniform Civil Code) बनाने का प्रस्ताव किया है। भारतीय संविधान के प्रत्येक महत्वपूर्ण अनुच्छेद में उपरोक्त अवधारणा प्रतिबिम्बित होती है। इसका परिणाम यह हुआ कि भारतीय समाज का एक समावेशी चेहरा उभरा जिसके आधारभूत तत्व हैं– शांतिपूर्ण सह–अस्तित्व, सहिष्णुता और उदारता का भाव।

विदित हो कि भारत का एक वैविध्यपूर्ण भौगोलिक परिवेश है। परिणामतः भारत में एक वैविध्यपूर्ण समाज अस्तित्व में आया। भारत में सामाजिक जीवन के विविध पक्षों में विविधता दिखाई देती है। 'भिन्नरूचिर्हि लोकः', भारतीय समाज इस जीवन दर्शन को स्वीकार करता है। भारतीय संस्कृति निरन्तर प्रवाहमान जीवन दर्शन है, इसीलिए इसे 'सनातन संस्कृति' के रूप में पहचाना जाता है। भारत में आर्यों के आगमन के साथ आर्येतर जातियों के मिलन से जो संस्कृति उत्पन्न हुई वही भारत की बुनियादी संस्कृति बनी। यह संस्कृति प्रारम्भ से ही सामासिक और समन्वयशील रही है और इसका क्रमशः विकास हुआ है। इस संस्कृति में समन्वयन तथा नये उपकरणों को पचाकर आत्मसात् करने की अद्‌भुत योग्यता रही है। इसी प्रवृत्ति ने भारतीय संस्कृति को जीवन्त एवं गतिशील बनाए रखा। इसने सातत्य को बनाये रखते हुए भी परिवर्तन को अंगीकार किया, यद्यपि सातत्य एवं परिवर्तन परस्पर विरोधी प्रवृत्तियाँ हैं। इसी प्रवृत्ति ने भारतीय संस्कृति में उत्तरजीविता पैदा किया। अपनी सर्वसमावेशी प्रकृति के कारण इसने बाह्य प्रभावों के प्रासंगिक तत्वों को भी स्वीकार करने में संकोच नहीं किया। इतिहास गवाह है कि भारत अति प्राचीन काल से एक सांस्कृतिक इकाई अवश्य रहा है, यद्यपि यह एक राजनीतिक इकाई कभी–कभी रहा है। भारत में भौगोलिक, धार्मिक, भाषायी, नस्लीय, जातीय विविधता अवश्य है, इसके बावजूद इस विविधता की पृष्ठभूमि में सांस्कृतिक एकता है। प्राचीन काल में यातायात एवं दूर–संचार की असुविधा के बावजूद भारतीय मनीषियों के विचारों ने विविधता में निहित एकता को सुदृढ़ किया है। आस्तिक एवं नास्तिक दोनों वर्गों के विचारकों ने इस एकता को मूर्त रूप देने का प्रयास किया है।

भारतीय संस्कृति अनुशासित जीवन दर्शन को स्वीकार करती है। इसने कर्मवाद एवं आत्मसंयम का मूलमंत्र स्वीकार करके जीवन में संयम पर बल दिया। इसने इस बात पर बल दिया कि मनुष्य बुद्धि एवं वासनाओं का एक पुतला है। जीवन की सार्थकता वासनात्मक जीवन जीने या वासनाओं की आत्यन्तिक तृप्ति में नहीं है, बल्कि बुद्धि के नियंत्रण में वासनाओं की तृप्ति या विवेकपूर्ण जीवन जीने में है। भारतीय मनीषियों ने कर्मवाद और आत्मसंयम पर बल देकर व्यक्ति से संयमी जीवन जीने की, सन्मार्ग पर चलने की अपेक्षा किया। उल्लेखनीय है कि भारतीय संस्कृति ऐहिक जगत् को एकमात्र वास्तविकता नहीं मानती है। यह ऐहिक जगत् के अतिक्रमण (परे) पर बल देती है। इसी परिप्रेक्ष्य में इसने जीवन के आधार पर जगत् के अतिक्रमण और आत्म स्वरूप के वास्तविक ज्ञान पर बल दिया।

भारतीय संस्कृति में उपरोक्त आदर्शों एवं जीवन–मूल्यों में स्थायित्व पैदा किया। भारतीय संस्कृति की धारा अक्षुण्ण है और यह मानव सभ्यता के उषः काल से ही देश–काल–परिस्थिति–आवश्यकता के अनुरूप नवीन तत्त्वों को समेटते हुए निर्बाध रूप से आगे बढ़ रही है। उल्लेखनीय है कि विश्व की अनेक परवर्ती संस्कृतियाँ (असीरियन, सुमेरियन, बेबीलोनियन, रोमन आदि) आज इतिहास की वस्तु और अतीत की कथामात्र होकर रह गयी हैं। किन्तु अनेक विपरीत झंझावातों, विदेशी आक्रमणों–प्रत्याक्रमणों के बावजूद यदि भारतीय संस्कृति में स्थायित्व है तो इसका कारण उपरोक्त जीवन–मूल्यों की स्वीकृति ही है।

भारतीय संस्कृति की विशेषताएँ

भारतीय संस्कृति मूलतः हिन्दू संस्कृति है, या यूँ कहें कि वैदिक संस्कृति है जो मूलतः सिन्धु संस्कृति है। इस पर अनेक संस्कृतियों के आघात प्रघात हुए। अनेक आघातों एवं प्रत्याघातों को सहन करने के पश्चात भी भारतीय संस्कृति की अपनी विशेषताएँ ज्यों की त्यों है। इस पर अनेक संस्कृतियों का प्रभाव भी पड़ा है। इसका समन्वयक रूप उपेक्षणीय नहीं है, फिर भी मूल आत्मा तो भारतीय ही है। इसे गंगा–जमुनी संस्कृति का नाम भी दिया जाता है जिस प्रकार गंगा अपने मूल प्रवाह के साथ–साथ अन्य नदियों को भी अपने में समेट लेती है उसी प्रकार यह संस्कृति समय के साथ अन्य संस्कृतियों को भी अपने में समाहित कर एक नया स्वरूप प्रदान करती है जो अपने मूल स्वरूप को बचाये रखते हुए अन्य संस्कृतियों के उत्कृष्ट तत्वों को शामिल कर लेती है।

भारतीय संस्कृति के ऊपर अनेक आघात हुए, फिर भी यह संस्कृति अपने मूल रूप में अवश्यमेव विद्यमान रही है। अनेक विद्वानों ने इस पर अपने विचार व्यक्त किये हैं, मुख्य रूप से देखा गया तो भारतीय संस्कृति में निम्न लिखित विशेषताएँ हैं।

1. अमरता– यह संस्कृति देश के उत्थान–पतन, उसकी आंतरिक उथल–पुथल, विदेशियों के प्रबल आक्रमण, विभिन्न राजनीतिक एवं पराजय

क्रांतियों के मार्ग से प्रभावित रहने पर भी अपने मूलरूप में विद्यमान है। भारत देश में बाहर से अनेक जातियाँ आयी तथा सबने इस देश के ऊपर अपना–अपना प्रभाव छोड़ा है और वे सभी जातियाँ भारत देश की संस्कृति से प्रभावित रही है। इतने आघातों के पश्चात्य भी भारतीय संस्कृति अविकल रूप में तथा अपने मूल रूप में ज्यों की त्यों रही है। उसमें परिवर्तन भी आया, तो वह परिवर्तन नहीं रहा, वह उसका एक अंग बन गया है। अपने मूल तत्व को न छोड़ना इसमें ही उसकी अमरता दृष्टिगत होती है।

2. सार्वजनिकता– भारतीय संस्कृति में अनेक संस्कृतियों का योग होने से सबके द्वारा प्रशंसनीय है। इस संस्कृति को आसानी से ग्रहण किया जा सकता है। भारतीय संस्कृति में वैदिक कालीन संस्कृति, रामायण कालीन संस्कृति, महाभारतकालीन संस्कृति, बौद्धकालीन संस्कृति, जैन कालीन संस्कृति, मुगलकालीन संस्कृति, अंग्रेज कालीन संस्कृति आदि का योग है। भारतीय संस्कृति ने इन सभी को अपनाया है। इन सभी को अपनाने से ही वह सबके द्वारा प्रशासनीय है। इसलिए भारतीय संस्कृति को आसानी से ग्रहण किया जा सकता है।

3. सर्वांगीणता– भारतीय संस्कृति का निर्माण करने में सभी वर्गों और आश्रमों के लोगों का योगदान रहा है। इसमें जीवन के चारों वर्गों, धर्म–अर्थ, काम और मोक्ष का सफल समन्वय है। इस प्रकार भारतीय संस्कृति में आशावादिता दृष्टिगत होती है। अनेक संस्कृतियों एवं जातियों के मिलन से भारतीय संस्कृति में जो एक विश्वसनीयता उत्पन्न हुई है, वह संसार के लिए सचमुच वरदान है। पूरा संसार भारतीय संस्कृति का प्रशंसक रहा है।

4. आध्यात्मिकता– भारतीय संस्कृति आध्यात्मिक रही है। आत्मा के द्वारा परमात्मा का आनन्द प्राप्त करना आध्यात्मिकता का लक्ष्य होता है। ऐसे अध्यात्मपरायण लोगों के सामने राजा भी नतमस्तक होता था। मोक्ष की प्राप्ति हो जाने पर सांसारिक व्याधियों से मुक्ति मिल जाती है। इस संसार में पुनः आकर जीव को भोगना नहीं पड़ता है। सम्पूर्ण जीवनभर अपनी शक्ति एवं ज्ञान का सदुपयोग करते हुए मानव मोक्ष को कैसे प्राप्त करता है, यह भारतीय संस्कृति का आध्यात्मिक पक्ष है। क्योंकि मोक्ष मानव का अंतिम लक्ष्य है।

5. धर्मप्रधानता– 'धर्म' शब्द का अर्थ 'धृ' धातु से बना है और इसका शाब्दिक अर्थ है– वह जो किसी को धारण करे अतः प्रत्येक वस्तु, मनुष्य और समाज जिन नियमों पर आधारित कर्म करते हैं, उनको धर्म कहा जा सकता है। साधारणतः धर्म–पालन का अर्थ कर्तव्य पालन माना जाता है। भारत में भौतिक और आध्यत्मिक दोनों पक्षों का सुन्दर मेल किया गया है। इस मेल को मिलानेवाला धर्म है। इसी कारण यहाँ धर्म में कट्टरता का अभाव पाया जाता है।

6. प्राचीनता– इस संस्कृति के कई विशिष्ट एवं प्रमुख अंगों का विकास– ई. सा.से. कई शताब्दी पूर्व हो गया था। दूसरे देशों में जब बर्बरता व्याप्त थी,

उस समय इस देश में संस्कृति प्रखर रूप में व्याप्त थी। इराक की सबसे पुरानी जाति पर वैदिक सभ्यता और संस्कृति का प्रभाव है। वैसे तो मिश्र, यूनान और बेबीलेन की सभ्यताओं को प्राचीन मानते हैं, परन्तु वैदिक सभ्यता उससे भी प्राचीन है। इस प्रकार की भारतीय संस्कृति का प्राचीनतम रूप न सिर्फ विद्यमान है अपितु वह फल फूल भी रही है और अपने प्राचीन स्वरूप को वर्तमान के साथ समायोजित करते हुए अक्षुण्ण है।

7. सर्व व्यापकता– भारतीय संस्कृति में भारत में ही नहीं बल्कि फारस, चीन, साइबेरिया क्षेत्र से लावा और बोर्नियों के द्वीपों तक और प्रशान्त सागरीय द्वीपों तक अपने विश्वासों, कथाओं आदि का प्रचार एवं प्रसार किया है। संस्कृति का एक दूसरे के ऊपर बहुत असर पड़ता है। परिणाम स्वरूप भारतीय संस्कृति का चीन, तिब्बत, लंका, जापान, बर्मा, नेपाल, युरोप आदि स्थानों में प्रभाव पड़ा हुआ है।

8. त्याग– मानव जीवन की सफलता त्याग के द्वारा हो सकती है, भोग के द्वारा नहीं। पाश्चात्य संस्कृति की तरह भोग का उपदेश न देकर योग का उपदेश भारतीय संस्कृति देती है। त्याग एक महामंत्र है। गीता में निस्वार्थ कर्म का विधान है। त्याग से ही सभी सुखी रह सकते हैं। इसलिए आज भी समस्त विश्व में योग साधना का प्रभाव भारतीय संस्कृति के कारण ही है। जैन धर्म बौद्ध धर्म यहाँ तक कि गांधीवाद भी त्याग की महानता पर बल देता है। हमारे देश में त्यागियों को विशेष श्रद्धा के साथ याद किया जाता है।

9. तपोवन– भारतीय संस्कृति में तपोवन का स्थान इसलिए अधिक है क्योंकि जन–कोलाहल से दूर शान्त एवं रमणीय स्थान आत्मिक उन्नति के लिए आवश्यक हैं। यह भारतीय संस्कृति की अपनी विशेष विशेषता है। कोलाहल से दूर रहकर शांत एवं रमणीय स्थान में ही गौतम बुद्ध को आत्मिक उन्नति एवं ज्ञान की प्राप्ति हुई थी। इसलिए तपोवन का होना जरूरी है। यह एक तरफ तो पर्यावरण एवं प्रकृति की रक्षा से मानव को जोड़ता है तो दूसरी ओर उसकी आध्यात्मिक उन्नति का मार्ग प्रशस्त करता है।

10. चिंतन की स्वतंत्रता– चिंतन की स्वतंत्रता के कारण देश में श्रुति, स्मृति, बौद्ध, दर्शन, चार्वाक–दर्शन, अद्वैत–दर्शन, विशिष्ट–द्वैत–दर्शन, शुद्ध द्वैत–दर्शन, द्वैता–दर्शन आदि कितने दर्शनों एवं मत–मतांतरों का जन्म हुआ। भारतीय संस्कृति की यह अन्यतम विशेषता है जो अपने विरोधियों को भी फलने–फूलने का मौका देती है यहाँ तक कि नास्तिक विचारकों को भी सहृदयता से भी सुनती है और उनका आदर भी करती है। भारत के प्रत्येक नर–नारी को चिंतन का अधिकार प्राप्त हुआ और मनमुटाव का परित्याग कर आत्म–विश्वास में लीनता की भावना आई। स्वतंत्रता मनुष्य का जन्म सिद्ध अधिकार है, हमारे मनुष्य इसे भली–भाँति जानते थे। इसलिए उन्होंने भारतीय संस्कृति में इसका विधान किया है।

11. परलोक तथा पुनर्जन्म में विश्वास– भारतीय संस्कृति की इस विशेषता के फलस्वरूप बहुत से लोगों ने गलत काम करने से अपने को रोका है

क्योंकि कर्मफल और उसके परिणाम व्यक्ति को जन्म–जन्मान्तर तक भोगने पड़ते हैं। स्वाभाविक रूप से प्रत्येक व्यक्ति इस कर्मफल से मुक्ति के लिए सद्कर्मों की ओर उन्मुख होता है। किसी भी व्यक्ति के ऊपर नियंत्रण के अभाव होने पर वह उच्छृंखल हो जाता है। इसलिए यह परलोक तथा पुनर्जन्म की भावना लोगों को उचित मार्ग की ओर उत्प्रेरित करती है। परलोक तथा पुनर्जन्म में विश्वास के फलस्वरूप बहुत लोगों ने गलत काम से अपने को रोका है। यह भारतीय संस्कृति की अपनी विशेषता है।

12. आश्रम व्यवस्था– भारतीय संस्कृति में आश्रम व्यवस्था की स्थापना की गई है। मनुष्य की आयु को 100 वर्ष मानकर उसे चार भागों में विभक्त किया गया है। पच्चीस वर्ष तक की अवस्था को ब्रह्मचर्य, पचास वर्ष तक की अवस्था 'गृहस्थ' पचहत्तर वर्ष तक की अवस्था को 'वानप्रस्थ' और 75 से 100 तक संन्यास के अंतर्गत रखा गया है। इस प्रकार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शुद्र वर्गों में सामाजिक कर्मों को विभक्त करके अपनी रुचि के अनुसार अपने व्यक्तित्व के विकास का अवसर जन–समुदाय को प्रदान किया गया है।

13. समन्वयवादिता– भारतीय संस्कृति सभी संस्कृतियों का समन्वय रूप प्रस्तुत करती है। भारतीय संस्कृति की पचन शक्ति बड़ी प्रबल है। इसने सबको अपने में पचा लिया है। वेद का पवित्र उद्देश्य है कि, हे मानव! तुम दूसरे मानवों के साथ मिलकर चलो। तुम्हारा भाषण, तुम्हारा मनन और चिंतन मिलकर ही दूसरों की भावनाओं के साथ अपनी भावनाओं को मिलाते हुए तुम संसार के अनेक पदार्थों का उपयोग करो। इसमें सभी धर्म या सभी जाति का समानता से आदर किया गया है।

14. देवपारायणता– यहाँ के लोग अपने से अलग ईश्वर की सत्ता में विश्वास करते रहे हैं। धर्म का सच्चा रूप ईश्वर को किसी रूप में भी मानने को तैयार है। भारतीय धारणा के अनुसार ब्रह्म (सर्व देवमयम) सर्वोच्च सत्य है। जिस ब्रह्मा से मनुष्य उत्पन्न हुआ है उसी में उसे लय होना है। भारतीय महामानवों ने इसी सत्य को 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के रूप में स्वीकार किया है; और' 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की यह धारणा इसी देव परायणता के बलपर पनपी और प्रबल हुई है।

15. सहिष्णुता– इसी गुण के कारण यह संस्कृति अब तक जीवित है। ऋग्वेद में एक सद् विप्रा बहुधा वदान्ति का वर्णन किया गया है। गीता में श्री कृष्ण ने भी इस पर जोर दिया है। जैन–धर्म तथा बौद्ध धर्म भी इस सिद्धान्त को मानते है। सम्राट अशोक अपने 'द्वादश शिला–अभिलेख' में इसे सुगम और सुन्दर रूप में लोगों के सम्मुख प्रस्तुत किया है। भारत के ही नहीं बल्कि विदेश के भी विवादग्रस्त लोग भारत में शरण लेते रहे हैं।

भारतीय संस्कृति विश्व की एक प्रतिष्ठित एवं वैशिष्ट्यपरक संस्कृति है। इसे सनातन संस्कृति (चिर–नवीन संस्कृति) के रूप में पहचान प्राप्त है। प्राचीन काल से ही अनेक बाह्य जातियाँ भारतीय समाज में घुल–मिल गयीं तथा आर्य एवं आर्येतर जातियों के मिलन से अस्तित्व में आयी भारतीय

संस्कृति का हिस्सा बन गयी। यदि इसके पीछे कोई कारण है तो वह है भारतीय संस्कृति का उदार, उदात्त, सहिष्णु एवं सर्वसमावेशी चेहरा। कालान्तर में इस्लाम एवं ईसाई धर्म के अनुयायी भी आये और वे भी भारतीय संस्कृति के अंग बन गये। वास्तव में भारतीय संस्कृति अपनी सहिष्णुता के लिए आख्यात रही है। इसमें परस्पर विरोधी तत्त्वों, सिद्धान्तों और वृत्तियों को समेट कर एक सूत्र में गूँथने का प्रयास दिखाई देता है। विपरीत विश्वासों, रीतिरिवासों, साधनाओं, उपासना–पद्धतियों एवं सामाजिक प्रबन्धनों को इसमें स्थान प्राप्त है। उल्लेखनीय है कि भारत एक भौगोलिक क्षेत्र ही नहीं है। बल्कि यह विभिन्न सोच, विचारधाराओं और संस्कृतियों का मिलन है। विभिन्न संस्कृतियों, धर्मों, विश्वासों, भाषाओं, और नस्लीय जातियों ने इसे खास बनाया है। सहिष्णुता हमें ताकत देती है। हम किसी से सहमत हों या असहमत, भारतीय संस्कृति के बहुलवादी स्वरूप को नकार नहीं सकते। असहिष्णुता समाज में बिखराव, टकराव, भय एवं अविश्वास को बढ़ाती है और समाज की प्रगति में बाधक बनती है। भारत की आत्मा बहुलवाद और सहिष्णुता में बसती है। इतनी व्यापकता एवं विविधता से भारतीय संस्कृति का एक विशेष चित्र हमारे मन में बनता है।

सन्दर्भ :

1. रामधारी सिंह दिनकर– संस्कृति के चार अध्याय, पृ. 651–652.
2. शिवशंकर त्रिपाठी, राष्ट्र चिन्तन : सांस्कृतिक इतिहास दृष्टि, पृ. 7.
3. सोराकिन पृ. 5–6.
4. गोविन्द चन्द्र पाण्डेय : वैदिक संस्कृति, पृ. 120.
5. वही, पृ. 129.
6. बाटमोर, सोशियोलॉजी, पृ. 129, पाद टिप्पणी 2 पर उद्धृत।

***

वेश्यावृत्ति : एक अवधारणा

मीनाक्षी शुक्ला *
प्रोफेसर चंद्रशेखर पांडेय **

सृजन ब्रह्मांड की एक मौलिक प्रक्रिया है। उत्पत्ति, स्थिति एवं संहार तीन मूल प्रक्रियाएं हैं, और सम्भवतः समष्टि की प्रक्रियाओं में सबसे मौलिक वर्गीकरण भी। "एकोऽहम्बहुस्यामः" की स्पृहा ही इसका मूल है। सृष्टि प्रक्रिया साधारणतः दो रूपों में परिलक्षित होती हैं।

1. लैंगिक सृष्टि 2. अलैंगिक सृष्टि

लैंगिक सृष्टि में, उत्पत्ति के मूल में दोनों लिंगों के प्राणियों का समागम आवश्यक है। सामान्य प्रक्रियाओं के दृष्टिकोण से दोनों लिंगों के प्राणी स्वतंत्र विचरण एवं जीवनचर्या हेतु अनिर्भर होतें हैं। सृजन प्रक्रिया को छोड़कर उन्हें जीवन–निर्भरता हेतु समागम की आवश्यकता नहीं होती। सहनिवास भी जीवन रक्षा एवं सह–आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए ही होता है। सृजन की इस मूलभूत आवश्यकता जिसे समागम या मैथुन क्रिया में सम्बोधित किया जा सकता है, हेतु दोनों लिंगों के प्राणियों को निकटतम आने एवं प्रक्रिया करने की आवश्यकता होती है। इस हेतु दोनों में प्रबल आकर्षण, मनोवृत्ति एवं उत्साह का होना आवश्यक होता है। उत्पन्न सन्तान के पालन–पोषण एवं आनुवंशिक क्रमबद्धता को चिन्हित करने हेतु विवाह संस्था का जन्म हुआ। जोड़ों के बीच वफादारी विवाह संस्था के मूल में रही। जीवों के मानसिक स्तर के उत्कर्षापकर्ष के अनुसार यह प्रतिबद्धता परिलक्षित होती है।

(ज्ञानिनो मनुजाः सत्यं किं तु ते न हि केवलम्।।49।।
यतो हि ज्ञानिनः सर्वे पशुपक्षिमृगादयः।
ज्ञानं च तन्मनुष्याणां यत्तेषां मृगपक्षिणाम् ।। 50।।
मनुष्याणां च यत्तेषां तुल्यमन्यत्तथोभयोः।
ज्ञानेऽपि सतिपश्यैतान् पतङ्गाञ्छावचञ्चुषु।।51।।
कण मोक्षादृतान्मोहात्पीड्यमानानपि क्षुधा।
मानुषा मनुजव्याघ्र साभिलाषाः सुतान् प्रति।।52।।
लोभात्प्रत्युपकाराय नन्वेतान् किं न पश्यसि।
तथापि ममतावर्त्ते मोहगर्ते निपातिताः।।53।।)1

दुर्गा सप्तशती : प्रथम अध्याय

(ऋषि बोले– ।।46।।महाभाग! विषय मार्ग का ज्ञान सभी प्राणियों को है।। 47।। इसी प्रकार विषय भी सबके लिए अलग–अलग है, कुछ प्राणीदिन में

* शोध छात्रा, सिद्धांत दर्शन आयुर्वेद संकाय, आई.एम.एस., काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी
** प्रोफेसर, सिद्धांत दर्शन आयुर्वेद संकाय, आई.एम.एस., काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी

नहीं देखते और दूसरे रात में ही नहीं देखते।।48।। तथा कुछ जीव ऐसे हैं जो दिन और रात्रि में भी बराबर देखते हैं। यह ठीक है कि मनुष्य समझदार होते हैंय किंतु केवल वही ऐसे नहीं होते।।49।। पशु, पक्षी और मृगआदि सभी प्राणी समझदार होते हैं। मनुष्यों की समझ भी वैसी ही होती है,जैसी उन मृग और पक्षियों की होती है। तथा जैसी मनुष्य की होती है वैसी ही उनमृग पक्षी आदि की होती है। यह तथा अन्य बातें भी प्रायः दोनों में समान ही है। समझ होने पर भी इन पक्षियों को तो देखो, ये स्वयं भूख से पीड़ित होते हुए भी बच्चों की चोंच में कितने चाव से अन्न के दाने डाल रहे हैं। नरश्रेष्ठ! क्या तुम नहीं देखते कि यह मनुष्य समझदार होते हुए भी लोभवश अपने किए हुए उपकार का बदला पाने के लिए पुत्रों की अभिलाषा करते हैं?)

अपने सृजन सहगामी तथा सृजित सन्तति के प्रति आकर्षण एवं चिंता मोह का कारण बनीं। सृजन हेतु समागम की प्रक्रिया के तीन प्रमुख सोपान वर्गीकृत किये जा सकते हैं –

1. सृजन हेतु उत्कट इच्छा, 2. आकर्षण, 3. उत्साह।

1. सृजन हेतु उत्कट इच्छा प्रत्येक जीवधारी में प्राकृतिक रूप से रहती है। सृजन प्रक्रिया में उनकी स्वयं की मृत्यु का भय भी उन्हें इससे विचलित नहीं कर पाता। अन्य जीवों में यह शरीर के भीतर चलने वाले प्राकृतिक,जैव–रासायनिक परिवर्तनों के सापेक्ष घटित होती है, परंतु मनुष्यों में यह उनकी व्यक्तिगत या सामाजिक व्यवस्थाओं से भी प्रभावित होती है।
2. सृजन की प्रक्रिया के भागीदार विपरीत लिंगों में परस्पर आकर्षण भी प्राकृतिक घटक है, जिसे मनुष्य में नियमित करने का प्रयत्न भी किया जाता है और इसे श्रृंगार का नाम दिया गया।
3. सृजन की प्रक्रिया हेतु तद्विषयक उत्साह अनिवार्य है।उत्साह की कमी नपुंसकता को जन्म देती है। उत्साह– उत्कटता ,सृजन प्रक्रिया का मूल भाव है, परंतु जब यही उत्साह अनियंत्रित हो जाता है, तो सब में कामुकता ही दृष्टिगोचर होने लगती है और यहीं से वासना का सृजन होता है। सृजन की आवश्यकता के अतिरिक्त भी मैथुनेच्छा इसका प्रधान लक्ष्य होता है।

अत्यधिक अनियंत्रित अवस्था में यह व्यक्ति, काल एवं परिस्थितियों का भी उल्लंघन करने का प्रयत्न करती है। देश, जाति, प्रक्रिया एवं योनि–भेद का भी अतिक्रमण करने में संकोच नहीं करती। शासकीय दंड एवं सामाजिक प्रतिबंधों से परिहार की इच्छा में प्रभावशाली व्यक्तियों, (स्त्री एवं पुरुष) ने सामाजिक एवं न्याय व्यवस्था में अपने मनोनुकूल परिवर्तन करने का प्रयास किया। बहु–विवाह की प्रथा का जन्म हुआ, परंतु सामाजिक व्यवस्थाओं से तालमेल की अनुपस्थिति में, संबंधित को अपने काम–वासनाओं की पूर्ति में साधन के रूप में प्रयुक्त करने की मनोदशा ने गणिका को जन्म

दिया। यह व्यवस्था दोनों लिंगों में दृष्टिगत होती है, परंतु पुरुष की जैव–वैज्ञानिक लाभ की परिस्थितियों ने इसे एक पक्षीय बना दिया। स्त्री गर्भवती होने के बाद तथा संतति–उत्पत्ति एवं लालन–पालन के क्रम में निबद्ध होने के कारण सीमित लाभ ले सकी, परंतु पुरुष इन सबसे स्वतंत्र रहा। शारीरिक बल की प्रधानता भी एक प्रमुख कारण रहा हैपर सत्य यह भी है कि पुरुष के प्रबल आकर्षण के परिप्रेक्ष में स्त्री ने अपने सौंदर्य का मूल्य समझना व लगाना भी प्रारंभ कर दिया, जिससे पूर्ण गणिका–चरित्र जीवंत हो गया।

आयुर्वेद ग्रंथ चरक संहिता में स्त्री को समस्त इंद्रियों के विषय एवं सर्वश्रेष्ठ वाजीकर के रूप में माना जाता है। स्त्री के प्रति समस्त इंद्रियों का आकर्षण विभिन्न रूपों में परिलक्षित होता रहा है। यह केवल संतानोत्पत्ति–विषयक मैथुन तक सीमित न रह कर सभी इंद्रियों के विषय–सौंदर्य दृग्राह्यता, श्रवण–प्रियता (गायन), शरीर सौष्ठव एवं लयबद्ध संचालन (नृत्य) आदि अनेक विधाओं को जन्म देने लगा। इसी मनोनुकूलता का प्रबल आकर्षण स्त्री–पुरुष के अनेकानेक संबंधों की जननी बनी तथा महान त्याग से लेकर सती प्रथा की उत्पत्ति में कारण बना। इसी इच्छा की सबसे दुष्ट परिणति बलात्कार के रूप में हुई।

यौन विषयक आकर्षणों एवं क्रियाओं का परस्पर सहयोगात्मक रुप विवाह एवं विक्रियात्मक रूप गणिका उत्पत्ति का प्रधानतम कारण बना। स्त्री शरीर एवं मन से संपादित होने वाले अनेक चरित्र यथा पुत्री, बहन, माता, सखी आदि की तरह एक चरित्र गणिका का भी है, जहां वह अपने स्त्रियोचित गुणों का मूल्य प्राप्त करने लगती है। स्त्रियोचित से तात्पर्य उन गुणों से है,जो पुरुषों में प्राप्य नहीं है। इस चरित्र को विवशता, स्वेच्छा या प्रलोभन से निर्वहन करते हुए वह नारी या मनुष्य जीवन के अन्य उपादानों का निर्वाह करती है जो उसे उसके आजीविका विषयक मूल चरित्र से अतिरिक्त महत्व प्रदान करते हैं।

हिंदी साहित्य में अनेक गणिका वेश्या या नगरवधू चरित्रों का वर्णन है अपने अजीब का विषय या तक निमित गुणों यथा रूप, गायन, नृत्य, कला के अतिरिक्त वीरता, त्याग, देशप्रेम, उत्तम मंत्रणा विद्यानुराग आदि अनेक अवदान भी इनके द्वारा समाज को प्रदत्त है।

सन्दर्भ :

1. दुर्गासप्तशती

***

भारतीय योग दर्शन का महत्वपूर्ण स्वरूप

डॉ. प्रशांत कुमार उपाध्याय *

''योगः कर्मसुकौशलम्''

– श्रीमद् भागवतगीता

सारांश– *योग दर्शन में योग शब्द का अर्थ एक अलग और विशेष अर्थ लगाया जाता है। वहॉ पर योग को एक साधना के रूप में बताया जाता है। इस साधना में अपनी चित्त वृत्तिय का विरोध कर आत्म–संयम के द्वारा चित्त को वृत्ति–शून्य कर देना ही ''योग'' है। चित्त वृत्तियों और वासनाओं के विरोध के लिए कुछ उपाय भी है। उनके लिए योग अत्यन्त आवश्यक है। अतः दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि शरीर और चित्त ही क्रिया अथवा अभ्यास ''योग'' है, जिसके करने से एक विशेष प्रकार की सिद्धि प्राप्त होती है।*

पतजंलि कृत योगसूत्र में 'योग' का अर्थ 'जोड़ना' कभी नहीं लगाया जाता हैं, जिससे किसी एकत्व का निर्माण होगा। पतंजलि के अनुसार 'योग' का अर्थ केवल मात्र 'प्रयत्न' है। योग के शब्दों में योग का अर्थ पुरूष तथा प्रकृति के बीच एक वियोग है। यह वियोग एक प्रकार की विशेष खोज है, जिसके द्वारा 'अतीन्द्रिय अहम्' की पहचान होती है। अतः योग का अर्थ प्रयत्न और कठिन परिश्रम के साथ भी संबंधित किया जाता है।

योग शब्द का प्रयोग इन्द्रियों तथा मन के निग्रह के लिए भी किया जाता है। उपनिषदों तथा गीता में कहा गया है कि सांसरिक दुःख तथा पाप से छुटकारा पाने के लिए हमें आध्यात्मिक एकत्व प्राप्त करना चाहिए। इस एकत्व में दो की कोई भावना नहीं रह पाती है। दो का अंतिम रूप 'एक' हो जाता है। इस वास्तविकता की चेतना ही 'योग' है।

कुंजी शब्द– योग, मन, इन्द्रिय, भावना, आत्म–संयम।

प्रस्तावना– योग शब्द का व्यवहार अनेक अर्थो में किया जाता हैं। साधारण रूप में इसका अर्थ है – क्रियाविधि। कभी–कभी योग का व्यवहार संयोजित करने के लिए किया जाता है।

शाब्दिक अर्थ के अनुसार ''योग'' को समाधि कहते हैं। समाधि शुद्ध भावना के साथ आत्मा का और परामात्मा का एक मिलन है। अतः आत्मा का परमात्मा में लीन हो जाना अथवा किसी जीव का ईश्वर में मिल जाना योग कहलाता है। इस मिलन के लिए मानव को कामना, वासना, आसक्ति आदि

* सहा. प्राध्यापक, शिक्षा संकाय, महर्षि यूनिवर्सिटी ऑफ मैनेजमेंट एड टेक्नोलॉजी, मंगला बिलासपुर (छ.ग.)

सभी प्रकार के संस्कारों को छोड़ देना पडता है। ऐसा करने के बाद ही आत्मा को शुद्ध रूप से पहचाना जा सकता है।

योग दर्शन में योग शब्द का अर्थ एक अलग और विशेष अर्थ लगाया जाता है। वहॉ पर योग को एक साधना के रूप में बताया जाता है। इस साधना में अपनी चित्त वृत्तियों का विरोध कर आत्म–संयम के द्वारा चित्त को वृत्ति–शून्य कर देना ही ''योग'' है। चित्त वृत्तियों और वासनाओं के विरोध के लिए कुछ उपाय भी है। उनके लिए योग अत्यन्त आवश्यक है। अतः दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि शरीर और चित्त ही क्रिया अथवा अभ्यास ''योग'' है, जिसके करने से एक विशेष प्रकार की सिद्धि प्राप्त होती है।

पतजंलि कृत योगसूत्र में 'योग' का अर्थ 'जोड़ना' कभी नहीं लगाया जाता हैं, जिससे किसी एकत्व का निर्माण होगा। पतंजलि के अनुसार 'योग' का अर्थ केवल मात्र 'प्रयत्न' है। योग के शब्दों में योग का अर्थ पुरूष तथा प्रकृति के बीच एक वियोग है। यह वियोग एक प्रकार की विशेष खोज है, जिसके द्वारा 'अतीन्द्रिय अहम्' की पहचान होती है। अतः योग का अर्थ प्रयत्न और कठिन परिश्रम के साथ भी संबंधित किया जाता है।

योग शब्द का प्रयोग इन्द्रियों तथा मन के निग्रह के लिए भी किया जाता है। उपनिषदों तथा गीता में कहा गया है कि सांसरिक दुःख तथा पाप से छुटकारा पाने के लिए हमें आध्यात्मिक एकत्व प्राप्त करना चाहिए। इस एकत्व में दो की कोई भावना नहीं रह पाती है। दो का अंतिम रूप 'एक' हो जाता है। इस वास्तविकता की चेतना ही 'योग' है।

योग दर्शन के गुरू पतंजलि मुनि के अनुसार मानवीय प्रकृति के अलग–अलग तत्वों के नियन्त्रण द्वारा पूर्णता अथवा मोक्ष की प्राप्ति के लिए नियम के साथ किये जाने वाला अभ्यास अथवा विधिपूर्ण प्रयत्न ही 'योग' है। पतंजलि का कहना है कि भौतिक शरीर मनुष्य की इच्छा शक्ति और मन का नियन्त्रण में लेना जीवन के आदर्श के लिए बहुत आवश्यक है।

योग शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत की युज् धातु से हुई है, जिसका अर्थ युक्त करना, जोड़ना है मिलाना है आत्मा से परमात्मा से मिलाने वाली क्रियाओं का नाम योग है।

– ''योगश्चित्तवृत्ति निरोधः'' (योग सूत्र)

अर्थात् मन की वृत्तियों (रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और ध्वनि के लोभ में भागने का रोकना ही योग है। इस प्रकार चित्त की चंचलता का दम नही योग है।

– ''योगः कर्मसुकौशलम्'' (श्रीमद्भागवतगीता)

अर्थात् प्रत्येक कार्य को कुशलता से सम्पन्न करना ही योग है।

– ''योग वह पुरातन पद्य है जो व्यक्ति के अंधेरे से प्रकाश में लाता है।''

(डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन्)

''योग उस साधना प्रणाली का नाम है जिसके द्वारा जीवात्मा तथा परमात्मा की एकता का अनुभव होकर परमात्मा के साथ आत्मा का संयोग होता है।''

(स्वामी शिवानन्द सरस्वती)

''हम सभी अनन्त शक्ति के स्वामी है। योग हमें इसी शक्ति के रहस्य से परिचित कराता है।''

(योगी राम चरक)

इन सभी विशेषताओं के आधार पर कह सकते है कि योग एक ऐसा साधन है या ऐसा मार्ग है जिस पर चलकर व्यक्ति अपनी शक्तियों और सामर्थ्य में वृद्धि करता हुआ जीवन में पर्याप्त सुख एवं संतोष अनुभव करता है तथा जीवन के पास लक्ष्य मोक्ष प्राप्ति की ओर अग्रसर होता रहता है।

योग का इतिहास – योगाभ्यास का प्रमाणिक चित्रण लगभग 3000 ई. पू. सिन्धु घाटी सभ्यता के समय के मोहरों और मुर्तियों में मिलता हैं। योग प्रमाणिक ग्रंथ ''योगसूत्र'' 200 ई. पू. योग पर लिखा गया पहला सुव्यवस्थित ग्रंथ है। हिंदू, जैन और बौद्ध धर्म में योग का अलग–अलग तरीकों से वर्गीकरण किया गया हैं। इन सबका मूल वेद और उपनिषद ही रहा हैं। पहली बार 200 ई. पू. पातंजलि ने वेद में बिखरी योग विद्या का सही–सही रूप में वर्गीकरण किया। पातंजलि के बाद योग का प्रचलन बढ़ा और यौगिक संस्थानों, पीठों तथा आश्रमों का निर्माण होने लगा, जिसमें केवल राजयोग की शिक्षा–दीक्षा दी जाती थी।

भारत के प्रसिद्ध योग गुरू –

- **महर्षि महेश–** योगी इन्होने भावातीत ध्यान तकनीक को आगे बढाया कहां जाता है कि इन्होने तकनीकी 5 मिलियन से ज्यादा लोगों को सिखाई है। यह मंत्र ध्यान को एक रूप है जिसे बंद ऑखों से किया जाता है। महर्षि महेश योग ने शंकराचार्य की मौजुदगी में रामेश्वर में 10 हजार बाल ब्रम्हचारियों को अध्यात्मिक योग और साधना की दीक्षा दी थी।
- **तिरूमलई कृष्णमाचार्य–** आधुनिक युग के पिता के नाम से जाने जाते है। इसके साथ हट योग के पुनरूत्थान के श्रेय भी जाता है। वो मुख्य रूप से हीलर और आयुर्वेद और योग के ज्ञान को मिलाकर स्वास्थ्य को बहाल करने के लिये जाने जाते थे।
- **बी.के.एस. आयंगर–** को पंजतलि योग और आयंगर योग के लिये जाना जाता है वो दुनिया के मशहूर सबसे महत्वपूर्ण शिक्षकों में से एक थे।
- **बाबा रामदेव–** जिन्हें आज योग के दुनिया में सारे लोग जानते है। इन्हें योगा को नई पहचान दिलाने एवं घर–घर पहुंचाने के नाम से जाना जाता है।

- **आर्ट ऑफ लिविंग फाउंडेशन के संस्थापक श्री श्री रविशंकर–** अध्यात्म गुरू के नाम से जाने जाते है। उनका कहना कि कनार्टक में भद्र नदी के किनारे उन्होने 10 दिनों के मौन के बाद उन्होने योग सीखा और सिखाना शुरू किया गया।
- **के. पट्टाभि जॉदस–** का योग अष्टांग के रूप में लोकप्रिय है। कोरूंता नाम के प्राचीन योग पर आधारित है।

विश्व योग दिवस – अंतर्राष्ट्रीय योग दिवस 21 जून को मनाया जाता हैं। यह दिन वर्ष का सबसे लंबा दिन होता हैं। और योग भी मनुष्य को दीर्घ जीवन प्रदान करता है। पहली बार यह दिवस 21 जून 2015 को मनाया गया, जिसकी पहल भारत के प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने 27 सितम्बर 2014 को संयुक्त राष्ट्र महासभा में अपने भाषण से की थी जिसमें उन्होंने कहा – ''योग भारत की प्राचीन परंपरा का एक अमूल्य उपहार है यह दिमाग और शरीर की एकता का प्रतीक है मनुष्य और प्रकृति के बीच सामंजस्य है विचार, संयम और पूर्ति प्रदान करने वाला है तथा स्वास्थ्य और भलाई के लिए एक समग्र दृष्टिकोण को भी प्रदान करने वाला है। यह व्यायाम के बारे में नही है, लेकिन अपने भीतर एकता की भावना, दुनिया और प्रकृति की खोज के विषय में हैं। हमारी बदलती जीवन–शैली में यह चेतना बनकर, हमें जलवायु परिवर्तन से निपटने में मदद कर सकता है। तो आयें एक अंतर्राष्ट्रीय योग दिवस को गोद लेने की दिशा में काम करते हैं।''

– नरेंद्र मोदी, संयुक्त राष्ट्र महासभा

जिसके बाद 21 जून को ''अंतर्राष्ट्रीय योग दिवस'' घोषित किया गया। 11 दिसम्बर 2014 को संयुक्त राष्ट्र में 177 सदस्यों द्वारा 21 जून को ''अंतर्राष्ट्रीय योग दिवस'' को मनाने के प्रस्ताव को मंजूरी मिली। प्रधानमंत्री मोदी के इस प्रस्ताव को 90 दिन के अंदर पूर्ण बहुमत से पारित किया गया, जो संयुक्त राष्ट्र संघ में किसी दिवस प्रस्ताव के लिए सबसे कम समय हैं।

योग का महत्व– हमें अवगत है बच्चें एवं किशोरों में अतिरिक्त उर्जा होती है जिसके कारण वे हमेशा गतिशील और शरारते करते रहते है परन्तु किशोरावस्था में आजकल पढ़ाई–लिखाई का बोझ इस कदर दबाव दे रहा है जिससे बच्चों की अल्हण मस्ती गायब सी होती जा रही है। जिसके कारण बच्चों के स्वभाव में तनाव, कुन्ठा, अवसाद ग्रसित होते जा रही है। किशोरों की इन समस्याओं से बचने एवं इनके अतिरिक्त उर्जा को सही दिशा प्रदान करने में योग महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है और आज की भागदौड़ भरी जिंदगी में मानसिक व शारीरिक रूप से थका देने वाली रहती है। किशोरावस्था में जो बच्चें योग से संबंधित क्रियाओं में सलंग्न है उनमें स्पष्ट रूप से शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक एवं आध्यात्मिक चिंतन, मनन सही दिशा की ओर अग्रसर होते जा रहे है। जो बदलाव योग के माध्यम से हो रहे है उसको किशोर भी भलिभांति आत्म अनुभव कर रहे हैं और योगा की ओर उनका झुकाव होते जा रहा है।

योग का लक्ष्य– अच्छा स्वास्थ्य जीवन की सबसे बड़ी पूँजी है। इसी कारण यह कहावत है कि 'पहला सुख निरोगी काया' अर्थात् जीवन का सबसे बड़ा सुख रोग रहित शरीर और सुखी मन का होना है। अपने अप में पूरी तरह खरी उतरती है।

सामान्य दृष्टि से विचार किया जाये तो निम्न बातों से अच्छे स्वास्थ्य के निर्धारक अथवा अवयवों में शामिल किया जा सकता है जो कि योग का प्रमुख लक्ष्य भी हैं –

– मानसिक शक्तियों की सजगता तथा क्रियाशीलता।
– ज्ञानेन्द्रियों एवं कर्मेन्द्रियों की सजगता एवं सामर्थ्य।
– उचित आहार–विहार तथा विश्राम एवं नींद।
– अनावश्यक चिन्ता, भय तथा संवेगों की अस्वाभाविक अभिव्यक्ति का शिकार न होना।
– रोगाणुओं से लड़ने की पर्याप्त क्षमता का होना।
– शारीरिक और मानसिक अस्वस्थ्यता का शिकार न होना।
– शरीर और मन के अस्वथ्य होने पर उनका यथासम्भव भली–भांति उपचार हो सकना।
– हड्डियों एवं मॉसपेशियों की मजबूती लचीलापन तथा क्रियाशीलता।
– शरीर के सभी संस्थानों – पाचन संस्थान, रक्त परिभ्रमण संस्थान, विजातीय द्रवों को बाहर निकालने (उत्सर्जन) संस्थान, श्वसन संस्थान, नाड़ी संस्थान आदि की उचित कार्य प्रणाली।
– शरीर की ऊँचाई में वृद्धि तथा भार पर पर्याप्त नियंत्रण रख सकने में समर्थ रहना।
– शरीर का सुन्दर, सौष्ठव, स्फूर्तिजन्य और बलशाली होना।
– योग के तापक्रम को सहज और सामान्य बना रहना।
– अपने स्वास्थ्य के प्रति पूर्ण आश्वस्त, आत्मविश्वास तथा उचित मनोबल का स्वामी होना।

किसी भी व्यक्ति को उसके स्वास्थ्य संबंधी उपरोक्त आधारभूत बातों को ग्रहण कराने में योग क्रियाएँ तथा साधना सभी दृष्टि से अति उपयोगी सिद्ध हो सकती है। इस प्रकार योग स्वास्थ्य संबंधी आवश्यकताओं की पूर्ति में सहायता पहुँचाने संबंधी योगदान को संक्षेप में निम्न प्रकार व्यक्त किया जा सकता है –

योग साधना व्यक्ति को उचित भोजन, खान–पान तथा उन्हें ग्रहण करने के उचित तरीकों से परिचित कराती है। योगियों का भोजन एवं खान–पान बहुत ही सात्विक, पौष्टिक एवं रोगाणुशील होता है। अतः इस प्रकार के खान–पान एवं भोजन व्यवस्था को अपनाने से व्यक्ति को अपने शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य को ठीक बनाये रखने हेतु सन्तुलित, संयमित एवं पौष्टिक भोजन मिलता रहता है।

योग साधना शरीर की आन्तरिक सफाई में अमूल्य योगदान देती है। शरीर के बाहरी सफाई तो पानी–साबुन आदि से धोकर साफ कर लेते है परंतु भीतरी सफाई इनसे नहीं हो सकती है। शरीर के विजातीय द्रव्यों को पसीने, मलमूत्र इत्यादि के द्वारा बाहर किया जा सकता है। योग क्रियाएँ इस प्रकार के विसर्जन कार्यों में पर्याप्त कुशलता ला देती है। नेति, धौति, वस्ति, नौलि, कपालभाति और यौगिक क्रियाओं की सहायता से शरीर को उसी तरह धोकर, मॉजकर शुद्ध और स्वच्छ किया जा सकता है जैसा कि किसी बर्तन को मिट्टी या साबुन से धोकर मॉजकर किया जाता है। स्पष्ट है कि इस प्रकार के आन्तरिक अंगों की सफाई को स्वस्थ्य रखने संबंधी आवश्यकता की पूर्ति काफी महत्वपूर्ण योगदान दे सकती है। इन क्रियाओं के माध्यम से शरीर के अनावश्यक मल व विकार (जो शरीर में जमा रहकर या तो रोग पैदा कर सकते है अथवा शरीर की कार्यक्षमता में बाधा खड़ी कर सकते है) आसानी से बाहर निकलकर शरीर को चुस्त, क्रियाशील एवं रोगुमक्त बनाये रखने में सहायक सिद्ध होते है।

योग साधना शरीर की ही आंतरिक सफाई में सहयोगी नहीं होती बल्कि मन की शुद्धता तथा सफाई में भी इसका विशेष योगदान रहता है। यम तथा नियम की अनुपालना करने से अपने मन पर नियंत्रण कर ले तथा इन्द्रियों पर अंकुश रखने का प्रशिक्षण पाते है। योग साधना उन्हें अपने संवेगों पर उचित नियंत्रण स्थापित करने में भी मदद देती है तथा उनके मन और इन्द्रियों को पर्याप्त रूप से नियंत्रित, संयमित, शान्त एवं स्वस्थ बनाये रखने में भी आवश्यक सहायता प्रदान करती है। मन के दूषित विचार अनावश्यक चिन्ता, भग्नाशा, उद्वेग तथा विकारों को जितने अच्छे ढंग से योग साधना द्वारा दूर किया जा सकता है उतना और किसी साधन द्वारा नहीं किया जा सकता है। श्वास को स्थिर एवं शान्त बनाये रखकर प्राणायाम एवं शिथिलीकरण के द्वारा शरीर और मन को पूर्ण विश्राम देने का कार्य मनोविकारों से मुक्ति दिलाने में जो लाभ पहुंचाता है उसका कोई सानी नहीं है। इसी दृष्टि से अगर मानसिक स्वास्थ्य एवं संवेगात्मक परिपक्वता को ठीक बनाये रखना है तो उनके लिए योग साधना से बढ़कर और कोई अच्छा साधन हो ही नहीं सकता है।

अन्य ग्रंन्थों एवं धर्मों में योग –

- **हिन्दू धर्म और योग–** मूलतः योग का वर्णन सर्वप्रथम वेदों में ही हुआ है लेकिन यह विद्या वेद के लिखे जाने से 15000 ईसा पूर्व के पहले से प्रचलन में थी, क्योंकि वेदों की वाचिक परंपरा हजारों वर्ष से चली आ रही थी। अतः वेद विद्या उतनी ही प्राचीन है जितना प्राचीन ज्योतिष या सिंधु सरस्वती सभ्यता है। वेद, उपनिषद, गीता, स्मृति ग्रंथ और पुराणों में योग का स्पष्ट उल्लेख मिलता है। योग की महिमा और यज्ञों की सिद्धि के लिए उसकी परमावश्यकता बतलायी गयी है। इसी सिद्धांत को ऋक् संहिता में स्पष्ट उल्लेख पाया जाता है।

यस्मादूते न सिध्यति यज्ञो विपश्चितश्चन।
स धीनां
योगमिन्वति।।– (ऋक् संहिता मंडल 1, सूक्त 18, मंत्र 7)

अर्थात योग के बिना विद्वान का कोई भी यज्ञकर्म नहीं सिद्ध होता, वह योग क्या है सो चित्तवृत्ति निरोधरूपी योग या एकाग्रता से समस्त कर्तव्य व्याप्त हैं, अर्थात सब कर्मों की निष्पत्ति का एकमात्र उपाय चित्तसमाधि या योग ही है।

- **यहूदी धर्म और योग** – हजरत मूसा ने कुछ यम–नियमों के पालन पर जोर दिया था। मूसा की दस आज्ञाएं (टेन कमांडमेंट्स) यहूदी संप्रदाय का आधार है। यह वेद और योग से ही प्रेरित हैं। यहूदी, ईसाई और इस्लाम की मूल आध्यात्मिक उपासना में योग ही है।
- **जैन धर्म और योग** – जैन धर्म का योग से गहरा नाता है। उपरोक्त लेख में योग के अंग यम और नियम ही जैन धर्म के आधार स्तंभ है। जैन धर्म में पंच महाव्रतों का बहुत महत्व है – 1. अहिंसा (हिंसा न करना), 2. सत्य, 3. अस्तेय (चोरी न करना), 4. ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह (धन का संग्रह न करना)।

  गृहस्थ अणुव्रती होते हैं, मुनि महाव्रती।
- **पारसी धर्म और योग** – महात्मा जरथुस्त्र भी एक योगी ही थे। पारसी धर्म का वेद और आर्यों से गहरा नाता है। अत्यंत प्राचीन युग के पारसियों और वैदिक आर्यों की प्रार्थना, उपासना और कर्मकांड में कोई भेद नजर नहीं आता। वे अग्नि, सूर्य, वायु आदि प्रकृति तत्वों की उपासना और अग्निहोत्र कर्म करते थे।

योग के प्रकार –

- **शीर्षासन** – सिर के बल किए जाने की वजह से इसे शीर्षासन कहते हैं। इससे पाचनतंत्र ठीक रहता है साथ ही मस्तिष्क में रक्त संचार बढ़ता है, जिससे की स्मरण शक्ति सही रहती है।
- **सूर्य नमस्कार** – सूर्य नमस्कार करने से शरीर निरोग और स्वस्थ होता है। सूर्य नमस्कार की दो स्थितियां होती हैं– पहले दाएं पैर से और दूसरा बाएं पैर से।
- **कटिचक्रासन** – कटि का अर्थ कमर अर्थात कमर का चक्रासन। यह आसन खड़े होकर किया जाता है। इससे कमर, पेट, कूल्हे को स्वस्थ रखता है। इससे कमर की चर्बी कम होती है।
- **पादहस्तासन** – इस आसन में हम अपने दोनों हाथों से अपने पैर के अंगूठे को पकड़ते हैं, पैर के टखने भी पकड़े जाते हैं। चूंकि हाथों से पैरों को पकड़कर यह आसन किया जाता है इसलिए इसे पादहस्तासन कहा जाता है। यह आसन खड़े होकर किया जाता है।

- **ताड़ासन** – इससे शरीर की स्थिति ताड़ के पेड़ के समान रहती है, इसीलिए इसे ताड़ासन कहते हैं। यह आसन खड़े होकर किया जाता है। इस आसन को नियमित करने से पैरों में मजबूती आती है।
- **विपरीत नौकासन** – नौकासन पीठ के बल लेटकर किया जाता है, इसमें शरीर का आकार नौका के समान प्रतीत होती है। इससे मेरुदंड को शक्ति मिलती है। यौन रोग व दुर्बलता दूर करता है। इससे पेट व कमर का मोटापा दूर होता है।
- **हलासन** – हलासन में शरीर का आकार हल जैसा बनता है, इसीलिए इसे हलासन कहते हैं। इस आसन को पीठ के बल लेटकर किया जाता है। हलासन हमारे शरीर को लचीला बनाने के लिए महत्वपूर्ण है।
- **सर्वांगासन** – इस आसन में सभी अंगो का व्यायाम होता है, इसीलिए इसे सर्वांगासन कहते हैं। इस आसन को पीठ के बल लेटकर किया जाता है। इससे दमा, मोटापा, दुर्बलता एवं थकान आदि विकार दूर होते है।
- **शवासन** – शवासन में शरीर को मुर्दे समान बना लेने के कारण ही इस आसन को शवासन कहा जाता है। यह पीठ के बल लेटकर किया जाता है और इससे शारीरिक तथा मानसिक शांति मिलती है।
- **मयूरासन** – इस आसन को करते समय शरीर की आकृति मोर की तरह दिखाई देती है, इसलिए इसका नाम मयूरासन है। इस आसन को बैठकर सावधानी पूर्वक किया जाता है। इस आसन से वक्षस्थल, फेफड़े, पसलियाँ और प्लीहा को शक्ति प्राप्त होती है।
- **पश्चिमोत्तनासन** – इस आसन को पीठ के बल किया जाता है। इससे पीठ में खिंचाव होता है, इसीलिए इसे पश्चिमोत्तनासन कहते हैं। इस आसन से शरीर की सभी मांसपेशियों पर खिंचाव पड़ता है। जिससे उदर, छाती और मेरुदंड की कसरत होती है।
- **वक्रासन** – वक्रासन बैठकर किया जाता है। इस आसन को करने से मेरुदंड सीधा होता है। इस आसन के अभ्यास से लीवर, किडनी स्वस्थ रहते हैं।
- **मत्स्यासन** – इस आसन में शरीर का आकार मछली जैसा बनता है, इसलिए यह मत्स्यासन कहलाता है। यह आसन से आँखों की रोशनी बढ़ती है और गला साफ रहता है।
- **सुप्त–वज्रासन** – यह आसन वज्रासन की स्थिति में सोए हुए किया जाता है। इस आसन में पीठ के बल लेटना पड़ता है, इसिलिए इस आसन को सुप्त–वज्रासन कहते है, जबकि वज्रासन बैठकर किया जाता है। इससे घुटने, वक्षस्थल और मेरुदंड को आराम मिलता है।

- **वज्रासन** – वज्रासन से जाघें मजबूत होती है। शरीर में रक्त संचार बढ़ता है। पाचन क्रिया के लिए यह बहुत लाभदायक है। खाना खाने के बाद इसी आसन में कुछ देर बैठना चाहिए।
- **पद्मासन** – इस आसन से रक्त संचार तेजी से होता है और उसमें शुद्धता आती है। यह तनाव हटाकर चित्त को एकाग्र कर सकारात्मक ऊर्जा को बढ़ाता है।

विद्यालयों में योग शिक्षा पाठ्यक्रम – आज योग की उपादेयता को समझते हुए शासन ने प्राथमिक, पूर्व माध्यमिक एवं उच्चतर माध्यमिक स्तर तक की कक्षा–1 से 12वीं तक के लिए योगशिक्षा पाठ्य पुस्तकों के निर्माण का दायित्व राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् को सौंपा है। विद्यालयों में योग शिक्षा के द्वारा विद्यार्थियों के मन, बुद्धि व चित को पुष्ट करने के साथ–साथ शारीरिक विकास पर भी बल दिया जा सकेगा।

- **प्राथमिक स्तर** – बच्चों के उम्र के अनुरूप योगासनों का अभ्यास कराया जावेगा,साथ ही व्यक्तिगत स्वच्छता परिवेशीय स्वच्छता, नियमितता, वाणी व्यवहार, राष्ट्रीय प्रेम एवं स्वावलम्बन के मूल्यों को संस्कारित किया जावेगा।
- **पूर्व माध्यमिक स्तर** – प्राणायाम, ध्यानमुद्रा, शरीर, मन व आत्मशक्ति के विकास हेतु छात्रों के स्तर के अनुरूप आसनों का अभ्यास कराया जावेगा। साथ ही सामाजिक, राष्ट्रीय प्रेम, कर्तव्यपालन, पारस्परिक सहयोग, जीवन संघर्ष के लिए सक्षम बनाना पर्यावरण जागरूकता एवं भारतीय संस्कृति के प्रति आदर भावों आदि मूल्यों को भी विकसित किया जावेगा।
- **उच्चतर स्तर** – की कक्षाओं में उपर्युक्त मूल्यों एवं आसनों के अभ्यास के साथ कुछ कठिन एवं उपयोगी आसनों का अभ्यास कराया जावेगा। सभी आसनों का पूर्वाभ्यास भी कराया जावेगा। प्राणायाम के साथ तीन बंधों का अभ्यास भी कराया जावेगा। साथ ही शाश्वत जीवन मूल्य, समाज के प्रति जागरूकता, अस्तेय, दैनिक जीवन मे समता, सहयोग, सामाजिक, कुरीतियां के प्रति जागरूकता, धर्म, जाति, भाषा, लिंग के पूर्वाग्रह से दूर होना, नशीले पदार्थों का त्याग, विश्वबंधुत्व की भावना, पर्यावरण सजगता के साथ वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास किया जावेगा।

इस तरह योगाभ्यास से जीवन मूल्यों को व्यवहारगत बनाने के साथ–साथ विद्यार्थियों के मन, बुद्धि व हृदय में रूपान्तरण कर चरित्र को उदात्त बनाया जायेगा।

निष्कर्ष– योग एक चमत्कार है और अगर इसका अभ्यास किया जाये तो आपके पूरे जीवन का मार्गदर्शन होगा, यह तनाव और चिन्ता का प्रबंधन करने में भी सहायता करता है। योग का असर शक्ति, शरीर में लचीलेपन और आत्म विश्वास विकसित करने में मदद करता है। यह स्वास्थ्य जीवन

शैली तथा बेहतर जीवन जीने में सहायता करता है। योग वह क्रिया है जिसके अन्तर्गत शरीर के विभिन्न भागों को एक साथ लाकर शरीर, मस्तिष्क और आत्मा को संतुलित करने का कार्य करता है। योग ही आजकल के भाग दौड़ की जिंदगी में स्वस्थ रहने के लिए सबसे अच्छा साधन है।

यह शरीर और मन पर नियंत्रण करने के लिए बेहतर वातावरण प्रदान करता है।

सन्दर्भ :

1. सिंह, धर्मवीर एवं सिंह डॉ. जयप्रकाश (2017), ने, व्यक्ति एवं राष्ट्र के उत्थान में योग का महत्व का अध्ययन किया है
2. जोशी, अनिरूद्ध ''शतयु'' (2016), योग का महत्व
3. यादव, विपिन कुमार (2019), माध्यमिक स्तर के छात्रों के योग अभ्यास का उनके मानसिक स्वास्थ्य पर प्रभाव का अध्ययन, लघुशोध प्रबंध
4. कुमार, के. (2013), किशोरों की बुद्धिमत्ता और कल्याण पर योगिक हस्तक्षेप का प्रभाव, राष्ट्रीय योग सप्ताह, बच्चों के लिए योग
5. कुट्स, ए. और शर्मा, एन. (2009), तनाव के संबंध में अकादमिक प्रदर्शन पर योग का प्रभाव, योग की अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका
6. प्रकाश, ओम एवं नायक, डॉ. पी.के. (2018), ने उच्चत्तर माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य पर योग शिक्षा के प्रभाव का अध्ययन अध्ययन किया है।
7. प्रसाद, डॉ. विनोद (2009), नौटियाल योग द्वारा मानसिक आरोग्यता की अवधारणा।
8. त्रिवेदी, इंद्राणी (2016), ने मानसिक स्वास्थ्य पर योगाभ्यास का प्रभाव का अध्ययन किया है। शोध सारांश इंटरनेशनल जर्नल ऑफ अप्लाइड़ रिसर्च में प्रकाशित हुआ

***

सीमान्त बांग्ला का सामान्य परिचय : एक अध्ययन

नीलू कुमारी *

सीमान्त बांग्ला के नाम से हम यहाँ जिस भाषा की बात कर रहे हैं, वह कुरमाली भाषा ही है, जिसे राढ़ बोली के नाम से भी कई विद्वानों ने इंगित किया है। राढ़ बोली का अर्थ है – बंगाल के पश्चिमी सीमान्त क्षेत्र के भू–भाग में 'कुड़माली लोकभाषा' के रूप में प्रचलित भाषा। यही कालान्तर में राढ़ी बोली अथवा झारखंडी बांग्ला के नाम से प्रचलित हुई और जिसे सीमान्त बांग्ला के नाम से भी जाना जाता है। वर्त्तमान समय में इसे सीमान्त क्षेत्र के भाषाविद्, समाजसेवी इसे झारखंडी बांग्ला ना मानकर आंचलिक कुरमाली के रूप में स्वीकृति देते हैं। ब्रिटिश शासन काल में कुरमाली साहित्य में 'ड़' और 'र' दोनों का उच्चारण होने लगा। अंग्रेजों द्वारा 'ड़' के स्थान पर 'र' का प्रयोग किया जाने लगा। किसी राज्य ने 'र' को अधिक अपनाया तो किसी ने 'ड़' को, वहीं झारखंड में दोनों का प्रयोग मिलता है। परंतु सीमान्त बांग्ला में 'ड़' का ही प्रयोग मिलता है। एक साक्षात्कार के दौरान डॉ॰ राजश्री माहातो का कहना है, "कुरमाली सीमान्त क्षेत्र की भाषा है, जिसे झारखंडी बांग्ला नाम दिया गया है। वर्त्तमान समय में इसे अस्वीकार करते हुए आंचलिक कुरमाली के रूप में लोक स्वीकृति प्राप्त हो रहा है।"

इसी सीमान्त बांग्ला के नाम के साथ डॉ॰ सुधीर कुमार करण का कहना है, "एदेर कथा वाद दिले सीमान्त बांगलाउ थाके ना, सीमान्त संस्कृति उ थाकेना।"[1] अर्थात् सीमान्त बांग्ला के कुरमी कुरमाली संस्कृति के धारक एवं वाहक हैं। इनको छोड़ दिया जाए तो सीमान्त बांग्ला की संस्कृति नहीं बचेगी, क्योंकि सीमान्त बांग्ला कुरमाली संस्कृति के धनी हैं।

धीरेन्द्र नाथ साहा ने "झारखंडी लोक भाषार गान" में लिखा है, "एइ सीमान्त भूमिर जनभाषा कुड़मालि भाषा पश्चिम प्रयन्तो सीमान्तेर समग्र साहित्य चेतनार युक्ति उ एइ भाषाते"[2] अर्थात् पश्चिम सीमान्त बांग्ला का साहित्य विकसित हुआ है कुरमाली भाषा में।

सुधीर कुमार करण अपने एक और पुस्तक में लिखते हैं, "मानभूम, धलभूम, झाड़ग्रामे जे परिसरे कुरमी महतो एवं भूमिज जनजातिर बास, से अंचलेर भाषा के झारखंडी नामे चिह्नित करा जेते पारे, जदिय आसलते सीमान्त राढ़िरेइ अंश विशेष।"[3] अर्थात् मानभूम, धलभूम, झाड़ग्राम में बसे कुरमी महतो एवं भूमिज जनजातियाँ निवास करती हैं। झारखंडी भाषा बोलते हैं, जो असल में सीमान्त राढ़ि भाषा का अंश विशेष है।

इसी प्रकार सुभाष बंदोपाध्याय के शब्दों में, "पश्चिमी सीमान्त अर्थात राढ़ अंचले बांकूड़ा, पुरूलिया एवं मेदिनीपुर जिला लोक साहितेर

---

* शोधार्थी, जनजातीय एवं क्षेत्रीय भाषा विभाग, राँची विश्वविद्यालय, राँची

सनखोनी।"[4] अर्थात् पश्चिमी सीमान्त बांग्ला अर्थात् राढ़ अंचल के बांकूड़ा, पुरूलिया एवं मेदिनीपुर जिला में लोक साहित्य के खान हैं।

यहाँ हम जानते हैं कि सीमान्त बांग्ला और जिस राढ़ि बोली की बात हो रही है, वह अंचलों और गाँवों में कुरमी जाति द्वारा बोली जाने वाली भाषा कुरमाली है, जिसे विद्वानों ने अलग–अलग नामों से अभिहित किया है।

भौगोलिक क्षेत्र : सीमान्त बांग्ला जो कि कुरमाली भाषा है, वह केवल छोटानागपुर तक ही सीमित नहीं है, बल्कि सीमान्त उड़ीसा में क्योंझर, बोनई–बामड़ा, मयूरभंज, सुंदरगढ़, सीमान्त पश्चिम बंगाल के अंतर्गत पुरूलिया, दक्षिण–पश्चिम मिदनापुर, बांकुड़ा, मालदा, पश्चिम दिनाजपुर के सीमावर्त्ती इलाके जो झारखंड से सटे हैं एवं छोटानागपुर के राँची, हजारीबाग, बोकारो, गिरिडिह, धनबाद, सिंहभूम एवं संथाल परगना में इस भाषा का विस्तार है।

अध्यापक धीरेन्द्र नाथ साहा के कथनानुसार, "भौगोलिक दिक थेके झारखंडी सुधु राढ़ेर–पष्चिम–सीमान्तेर उपभाषा मात्र।"[5] अर्थात् भौगोलिक दिषा के अनुसार झारखंडी सिर्फ राढ़ पश्चिम सीमान्त की उपभाषा मात्र है।

अध्यापक धीरेंद्र नाथ शाहा की पुस्तक ''भाषातत्व उ भारतीय आर्य भाषा'' में झारखंडी उपभाषा के विस्तार में उल्लेखित है, "बंगाल के दक्षिण–पश्चिम सीमान्त में 2500 वर्ग मील तक झारखंडी उप भाषा के विस्तार क्षेत्र को बताया गया है। अन्यान्य भाषा, उपभाषा के अनुसार ये क्षेत्र सीमा राजनैतिक सीमा से स्वतंत्र हैं। उत्तर बिहार के संथाल परगना के कुछ अंष आरंभ होकर समग्र धनबाद एवं दक्षिण में उड़ीसा मयूरभंज के उत्तरांष, पष्चिम राँची जिला के बुंडु–तमाड़, पूर्व में बंगाल के नवगठित पुरूलिया (लुप्त नाम मानभूम), मेदिनीपुर पर्यंत सीमा के झाड़ग्राम–गिधनी–शिलदा–बेलपहाड़ी एवं वीरभूम–वर्द्धमान के कतकांश को छूते हुए झारखंडी उपभाषा मंडल गठित होता है। इचाडिह–चाण्डिल से घाटशिला–बहरागोड़ा पर्यन्त स्वर्णरेखा नदी के दीर्घ विस्तृत क्षेत्र में अवस्थित समस्त ग्राम अंचलों में झारखंडी उपभाषा व्यवहार में प्रचलित है। भाषा की तरफ से उत्तर–पश्चिम जहाँ नागपुरी भाषा की सीमा का अंत होता है, वहीं से झारखंडी उपभाषा की सीमा शुरू होती है एवं पश्चिम में राढ़ि उपभाषा आकर यह शेष होती है।"[6]

यहाँ झारखंडी उपभाषा, सीमान्त बांग्ला, सीमान्त राढ़ि ये सभी नामकरण कुरमाली भाषा के लिए ही दिये गए हैं। क्योंकि जिन भौगोलिक क्षेत्रों में इस भाषा–संस्कृति के लोग पाए जाते हैं, वो कुरमी जाति के ही लोग हैं, और इन्हीं के कारण इनके साथ निवास करने वाली अन्य जातियों के लोग भी इस संस्कृति के धारक हो गए हैं।

भाषा–भाषी : सीमान्त बंगाल के क्षेत्रों में कुरमी जाति के साथ–साथ भूमिज, संथाली, मुण्डा, हो, पहाड़िया एवं अन्य जातियाँ निःसंदेह रूप से प्राचीन काल से रह रहे हैं। यद्यपि प्राचीन गाँवों के नाम, नदी के नाम, पौधे, फल–फूल और फसल, देव–देवी एवं यहाँ की भाषा बोलियों में कई देषी

शब्द आस्ट्रिक, द्रविड़ियन उस आदिम युग के भाषा–भाषियों के प्रभाव व प्रभुत्व को दर्शाते हैं। 'सिंहभूम' नाम को कोई–कोई आदिवासी लोग सूर्य देवता 'सिंगबोंगा' के साथ जोड़ते हैं एवं मानभूम शब्द को द्रविड़ गोष्ठी के 'मल्ली' उपजाति के साथ जोड़ते हैं। कुरमियों के साथ रहने वाली दूसरी जाति एवं जन–जातियों ने अपनी मातृभाषा के साथ–साथ कुरमाली भाषा को अपनी द्वितीय भाषा के रूप में अपनाया है। जंगल महल क्षेत्र में रहने वाले कुरमियों के ये साथी संथाल–संथाली, मुण्डा–मुण्डारी, खड़िया–खड़िया के साथ–साथ कुरमाली भाषा को भी बोलते हैं, किंतु कुरमाली भाषा–संस्कृति की प्रतिनिधित्व करने वाली जाति कुरमी–महतो वर्ग है। मानभूम में इनकी संख्या अधिक है एवं धलभूम में भी इनके बसने की संख्या अत्यधिक पाई जाती है। इनके उद्‌भव के विषय में विद्वानों में मतभेद है। भारतीय भाषा सर्वेक्षक ग्रियर्सन का मत है कि "अपनी कोई भाषा का व्यवहार करते हैं, जो आजकल झारखंडी बांग्ला व कुड़माली भाषा के रूप में प्रतिस्थापित हो गई है।"[7]

दिनचर्या के काम संथाली, मुण्डा, भूमिज से मिलती–जुलती प्रतीत होती है, किंतु उनके साथ पूरी तरह मिश्रित नहीं है। क्योंकि इनके (कुरमियों के) देवता भूत–भूता हैं, जिनमें कुदरा, काबरा, गाँव–भूत, बाघुत, गोरैया आदि हैं। इनके सामाजिक व धार्मिक आचार–अनुष्ठान, टोटेम, शारीरिक आकृति, ग्रामीण संगठन रीति में संथालों के साथ अत्यधिक मेल है। निःसंदेह कुरमी आदिम काल की प्राचीन जाति है, जो संथालों के समकालीन रही होगी। दीर्घकालीन समय से अन्य संप्रदाय और सह–अस्तित्व के कारण इनमें परिवर्त्तन और इनकी प्राचीन जीवन–धारा काफी परिवर्त्तित हुई है, परंतु अभी भी इनकी भाषा–संस्कृति को बचाने की दृढ़ इच्छा तथा जहाँ शहरीकरण नहीं पहुँच पाया है, वहाँ इनके प्राचीन स्वरूप को देखा जा सकता है। जो क्षेत्र शहरीकरण के प्रभाव में आ चुके हैं, वहाँ भले ही अन्य संस्कृति का कुछ अंष मिलता हो, परंतु कुरमाली संस्कृति अभी भी अपने विशिष्ट गुणों व अपने नेग–नेगाचार के साथ प्रतिष्ठित है। इन्होंने अपनी प्रकृति से जुड़े संस्कारों को नहीं छोड़ा है। आज भी कई स्थानों में इनकी आदिम संस्कृति ही प्रचलित है, जो ब्राह्मणवाद अथवा आर्य संस्कृति से पूर्णतः मुक्त है। आज भी विवाह, जन्म, मृत्यू जैसे संस्कार पाहन/महतो ही संपन्न कराते हैं या फिर घर के बड़े–बुजुर्गों के निर्देशन में संपन्न होते हैं। कुरमी द्वारा बोली जाने वाली मानभुईयां बांग्ला को विद्वानों ने महतो भाषा कहा है। यहाँ ध्यान देने की बात है कि महतो भाषा कुरमी जन–समुदाय के व्यवहार में है, जो कुरमाली भाषा ही है। कुरमियों की तरह ही एक और जाति है– कोइरी, जो साग–सब्जी का उत्पादन करती है तथा कुरमियों के आस–पास ही इनका निवास होता है, कहीं–कहीं पर इनकी पदवी भी महतो है। मुण्डा, मानकी व मांझी की तरह ही महतो शब्द कुरमियों के ग्राम–प्रधान अथवा प्रधान/प्रमुख का सूचक है। अर्थात प्राचीन समय में ये शब्द पदवी की तरह व्यवहार में लाए जाते थे, परंतु वर्त्तमान में ये सारे पदनाम वाले शब्द नाम के अंत में

जुड़कर जाति–सूचक की तरह हो चले हैं, यद्यपि सिर्फ इसके द्वारा किसी विशिष्ट जाति का बोध नहीं होता क्योंकि कुरमी, अहिर, कुम्हार, तेली, कोइरी आदि भी अपने नाम के साथ 'महतो' शब्द का व्यवहार करते हैं। कंसावती, गुआरी, दामोदर, खरकई, स्वर्णरेखा जैसी नदियों के किनारे कृषि योग्य अंचलों में कुरमियों की जनसंख्या अभी भी अत्यधिक है।

कुरमियों की तरह भूमि व कृषि के साथ संपर्क में रहने वाली एक और जाति है – 'बागाल'। ये जाति गो–पालन का काम करती है, तो कहीं चरवाहे का। इनकी संख्या भी कुरमाली भाषी क्षेत्र में चाहे वह झारखंड हो या सीमान्त बंगाल, कम नहीं है। इनकी दो शाखाएँ जिसमें 'अहिरा बागाल' के नाम से भी अपने को दर्शाते हैं। धलभूम व मानभूम के अहिरा गीतों में तथा कपिला मंगल के गीतों में इनका नाम आता है। अतः यह जाति भी कुरमाली भाषा–संस्कृति से जुड़ी हुई है। इन्हीं के साथ बाउरी, कुम्हार जाति के लोग भी निवास करते हैं। मानभूम के मध्य दक्षिणांचल में कुम्हारों का निवास है। बढ़ई (छुतार), घासी, डोम, पालकी ढोने वाली जातियाँ भी मौजूद हैं, जो कुरमाली संस्कृति के नेग–नेगाचारों को पूर्ण करने हेतु सहायक का काम करते हैं। अतः ये जनसमूदाय भी कुरमियों के नेग–नेगाचार में सहायता हेतु कुरमाली भाषा का उपयोग करते हैं। यहाँ जितनी भी जाति व जनजातियाँ निवास करती हैं, वे सभी कुरमी के नेग–नेगाचार को भी वहन करते हैं। यहाँ ग्राम, वन, पहाड़, पेड़–पौधों तथा जीव–जंतुओं को मानते और पूजा करते हैं। टोटेम इनके देवी–देवताओं में आते हैं, जिनकी रक्षा तथा पूजा करते हैं, जिसे एक प्रकार से गोत्र अथवा गुष्ठि कहा जा सकता है। ये गोत्र पेड़–पौधों, जीव–जंतुओं के नाम से होते हैं, जिनकी ये रक्षा करते हैं। अन्य जनजातियों के अपेक्षा कुरमियों के 81 गुष्ठि (गोत्र) हैं, जो कि इनके आदिम जनजाति होने की पहचान है। उदाहरणस्वरूप –

गुष्ठि	**सम्मान / पूजा**
सांखुआर	शंख
बंसीरियार	बांस
पुनरियार	पोई साग
कटियार	रेशम का कीड़ा

इसी प्रकार पेड़–पौधों की पूजा हेतु अनुष्ठान हैं, जैसे– करम पूजा, जितिया, जावा, महुआ बिहा, आम बिहा, केला बिहा। इसके अलावे ग्राम देवता जिसे गराम थान व देशालु थान कहा जाता है, उसी प्रकार संथाल, मुण्डा व भूमिजों का 'जाहेर थान' ग्राम देवता का नाम होता है। गाँव की सीमा क्षेत्रों में बहुत पुराने साल, महुआ, कुसुम, झांकड़ा के स्थल को देव–भूमि कहा जाता है, जिनका नाम है – जाहेर व जाहिरा। इन स्थानों में मिट्टि के हाथी–घोड़े देवता के प्रतीक स्वरूप रखे जाते हैं, जहाँ वर्ष में एक

बार परंपरानुसार मुर्गी, कबुतर, हंस, बत्तख या पाठा (छोटा बकरा) बलि के रूप में दिया जाता है।

इनके अलावा विभिन्न प्रकार के उत्सव मौजूद हैं, जिनमें टुसू, करम, जावा, जितिया इत्यादि। कृषि–जन्य त्यौहारों में गो–पूजा, जिसे बांदना/सोहराई कहा जाता है। रोहिन, गमा, चितउ (चेइत परब/कुढ़ा खावा), माघ उत्सव होते हैं। झारखंड से अधिक कुरमाली भाषा के झूमर, रसिक व लेखक सीमान्त बांग्ला के कुरमाली भाषी क्षेत्र में पाए जाते हैं। इनके नृत्य–गायन समूह झारखंड आकर कुरमाली भाषा के लोकगीतों के मध्य झूमर, झींगा–फुलिया, टुसू, अहिरा गीत–नृत्य तथा नाचनी–नाच, काठी–नाच, पांता–नाच, छउ–नाच का प्रदर्शन करते हैं। इन नृत्य समूहों में सिर्फ कुरमी जाति के लोग ही सम्मिलित नहीं होते बल्कि इनके साथ रहने वाली अन्य जातियाँ भी भाग लेती हैं।

विशेषताएँ : झारखंड में कुरमाली भाषा की जो विशेषताएँ हैं, वो सभी सीमान्त बांग्ला के कुरमाली भाषा में भी है। कुछ क्षेत्रों में ध्वनिगत असमानताएँ हो सकती हैं, परन्तु संयुक्ताक्षर का प्रयोग यहाँ भी नहीं होता। इसे समझने हेतु कुछ शब्दों तथा वाक्यों के उदाहरण इस प्रकार से हैं –

बांग्ला	**कुरमाली**	**हिन्दी**
तुमि	तएँ	तुम
तुमार	तर	उसका
अंधकार	आंधार	अंधकार
अरा	अरा	वे
आगुन	आइग	आग
आजके	आइज	आज
एसो	आउ	आव

कुछ रिश्तेदारों के नाम जो कुरमाली भाषियों के बीच ज्यादा प्रचलित हैं, जैसे –

बंगला	**कुरमाली**	**हिन्दी**
	सांघात	भैया का साला या बहन का देवर
	सांघातिन	भैया की साली या बहन की ननद
काकी माँ	काकी/छुटु मांञ	चाची
काकू	काका/छुटु बा	चाचा
दादू	आजा/बुढ़ा बा	दादा
दीदा	नानि माइ/दुदु माइ	नानी
ठाकुर माँ	आजि/बुढ़ि गउ	दादी
पिसी	फुफु	बूआ/फुआ
पिसा	फुफा	फुफा
जामाई बाबू		बहनोई/मेहमान

दादा बाबू	बहनोइ/भांटू	जिजाजी
बोउदि	भौजी	भाभी
जेठु	गुंगु बाप	बड़े पिताजी
जेठी मा	गुंगु माइ	बड़ी माँ

इस प्रकार हम सीमान्त बांग्ला में कुरमाली शब्द भंडार को देखते हैं तो झारखंड तथा सीमान्त बांग्ला के कुरमाली भाषा में इन शब्दों और वाक्यों का प्रयोग समान रूप से रोजमर्रा के जीवन में किया जाता है। झारखंड के कुरमाली भाषा और सीमान्त बांग्ला जो कुरमाली भाषा है, इसमें व्याकरणिक समानताएँ समान रूप से हैं। यहाँ हम बोल सकते हैं कि कुरमाली भाषा में बांग्ला का प्रभाव किंचित मात्र है तथा कुरमाली आज भी बांग्ला भाषा से अलग अपनी विशिष्ट गुणों को बचाकर रखी हुई है। कुरमाली के ऐसे अनेकों शब्द अभी भी विद्यमान हैं। ये सभी शब्द स्पष्ट रूप से प्रकट हों इसके लिए कई सामाजिक संगठन, भाषाविद् तथा शोध छात्र निरंतर कार्य कर रहे हैं।

कुरमाली का व्याकरण शब्द भंडार अपना स्वतंत्र अस्तित्व रखता है। यह बंगला का अपभ्रंश नहीं है। यहाँ उदाहरणों में स्पष्ट किया गया है – बंगला में अधिक उम्र के लड़के–लड़कियों के लिए अविवाहित शब्द का उपयोग होता है, वहीं कुरमाली में थुभड़ि/खुभड़ि लड़की तथा थुभड़ा/खुभड़ा लड़के के लिए व्यवृत्त है। उसी प्रकार छोटा पहाड़ बंगला में बोला जाता है तो कुरमाली में इसे टुंगरी कहते हैं। गुंगा–गुंगी के शब्द बंगला में हैं, इसे कुरमाली में कोंका–कोंकी कहते हैं। इसी प्रकार के अनेक शब्द हैं जो बंगला से भिन्न हैं। इस प्रकार कुरमाली भाषा का अपना स्वतंत्र अस्तित्व है।

सन्दर्भ :

1. डॉ. सुधीर कुमार करन : सीमान्त बांग्लार लोकयान, प्रकाशक ए मुखर्जी एण्ड कंपनी प्रा. लि. कलकत्ता, पृ.सं. 33, वर्ष 1971
2. डॉ. मनोरंजन महतो, संपादन, कुड़मि कुड़माालि पत्रिका, पृ.सं. 95.
3. डॉ. सुधीर कुमार करन : सीमान्त राढ़ी उ. झारखण्डी बांग्ला ग्रामीण शब्दकोष, पृ.सं. VII
4. सुभाष बंदोपाध्याय : पश्चिम सीमान्त बंगेर लोकसाहित, प्रकाशक साहित्य प्रकाश, कलिकाता नय, पृ.सं. 22,
5. अध्यापक धीरेन्द्रनाथ साहा : झारखण्डी बांग्ला उपभासा, प्रकाशक राँची विश्वविद्यालय, राँची, पृ.सं. 33, वर्ष 1983
6. अध्यापक धीरेन्द्रनाथ साहा : भाषातत्व उ भारतीय आर्य भाषा, प्रकाशक किरणमयी देवी, नरसिंहगढ़, धलभूमगढ़, सिंहभूम, पृ.सं. 216, वर्ष 1971.
7. अध्यापक धीरेन्द्रनाथ साहा : झारखण्डी बांग्ला उपभासा, प्रकाशक राँची विश्वविद्यालय, राँची, पृ.सं. 23, वर्ष 1983

***

महादेवी महीयसी का स्त्री-विमर्श : भारतीय परिप्रेक्ष्य में विशेष

डॉ. शिखा तिवारी *

स्त्री–लेखन का इतिहास यद्यपि अंधकार में रहा परंतु भारतीय स्त्रियाँ अपूर्व गौरव और गरिमा से सम्पन्न रही हैं इसलिए पूरे संसार में भारतीय स्त्री की अपनी छवि रही है चाहे वह सौन्दर्य में चाहे तार्किकता में, चाहे मेहनत, सेवा में अथवा वैदुष्य में, चाहे वीरता में अथवा साहस और त्याग में किसी भी क्षेत्र में भारतीय वीरांगनाएं कम नहीं रहीं यदि उन्हें उपयुक्त अवसर मिला तो उन्होंने अपना दमखम दिखाया है। परन्तु भारतीय परिप्रेक्ष्य में शोषण, दमन, अत्याचार, घरेलू हिंसा, पारिवारिक हिंसा, दहेज–प्रताड़ना, बलात्कार और मौत के घाट तक उतार देना भारतीय परिवारों में होता आया है इसलिए 'स्त्री–जन्म' को धिक्कारते हुए कोई स्त्री का जन्म तक नहीं पाना चाहता।

स्त्री लेखन के इतिहास को लिपिबद्ध कर पाना बड़ा ही कठिन कार्य रहा। डॉ. सुमन राजे जी ने ''हिन्दी साहित्य का आधा इतिहास'' लिखकर यह कमी पूरी की है। स्त्री लेखन शुरू होता है थेरीगाथाओं से यद्यपि उनसे पहले ऋग्वेद युग में रोमशा, लोपामुद्रा, यमी वैवस्वती, पौलीमीशची, विश्ववरा, अपाला, घोषा, सूर्या, शाश्वती, ममता उशिज आदि ऋषिकाओं के नाम मन्त्रदृष्टा के रूप में प्राप्त होते हैं। संस्कृत–प्राकृत में विज्जका, शीला, भट्टारिका, शशिप्रभा, रेवा, रोहा आदि प्रकाण्ड विदुषियों के नाम आते हैं।

भक्तिकाल में मीरा बाई, आण्डाल, अक्क महादेवी, लल्लद्येद, महदम्बा, मोल्लि आदि विद्रोहिणी साधिका कवयित्रियाँ और आधुनिक युग में सुभद्रा कुमारी चौहान, महीयसी महादेवी, बुन्देल बाला, उषा देवी मित्रा आदि। इसके अलावा लोककथाओं में लोकनायिकाओं द्वारा स्त्री के दुख–सुख का गायन वृहद रूप से हुआ है। आधुनिक काल में बहुस सी महिला लेखिकाएं, कवयित्रियाँ और विदुषी स्त्रियाँ दिन–प्रतिदिन लेखन कार्य में संलग्न हैं जैसे– अमृता प्रीतम, शिवानी, उषा प्रियंवदा, मन्नू भण्डारी, ममता कालिया, कृष्णा सोबती आदि।

आधुनिक कालीन विदुषी महिलाओं में महीयसी महादेवी वर्मा का नाम विश्व प्रसिद्ध है। महीयसी महादेवी स्वयं ऋषिका थीं और उनका जीवन त्याग की मिसाल है। वो मीराबाई को बहुत मानती थीं और मीरा जयन्ती का संयोजन करती थीं। 'प्रयाग महिला विद्यापीठ' की उपकुलपति, उ.प्र. विधान परिषद की सदस्या होने के अलावा उन्होंने अनेक पुरस्कार और उपाधियाँ ग्रहण कीं। उन्होंने स्वार्थ का नहीं सादगी और त्याग का रास्ता अपनाया।

---

* एसोसिएट प्रोफेसर (हिन्दी), डी.सी.एस.के.पी.जी.कालेज, मऊ

''उन्होंने 'स्त्री–शिक्षा' का अलख जगाया। जब गाँवों में स्कूल नहीं थे तब 'प्रयाग महिला विद्यापीठ' के माध्यम से बालिकाओं को 'व्यक्तिगत परीक्षा' की सुविधा दे बालिकाओं के हित में कितना बड़ा काम किया था, इसका अनुमान आज नहीं लगाया जा सकता। पाठ्यक्रम की दृष्टि से पहली बार किसी भी भारतीय भाषा में पहली बार विद्या–विनोदिनी परीक्षा में हिन्दी पाठ्यक्रम में केवल महिलाओं का काव्य–संकलन स्वीकृत किया और स्वयं प्रकाशित भी कराया।''[3]

छायावादी कवि प्रसाद, पंत, निराला, महादेवी की समूची दृष्टि एकदम अलग थी। स्त्री के प्रति इनकी सोच भी अलग थी। इन लोगों ने स्त्री को मानवी माना और उसके जीवन के विविध आयामों को खोला। देवी, माँ, सहचरी, प्राण आदि सम्बोधन दिए। उसे बन्धु का दर्जा दिया और जीवन में उसकी अर्थवत्ता को स्वीकारा। इस दौर में 'स्त्री–अस्मिता' के गौरव को लेखन जगत में बरकरार रखने वाली अत्यन्त संवेदनशील स्त्री चिन्तक, कवयित्री, लेखिका, प्रोफेसर, चित्रकार, अनुवाद और गद्य लेखिका के रूप में महादेवी जी का नाम आता है। 'आधुनिक मीरा' और 'हिन्दी के विशाल मन्दिर की सरस्वती' तक की उपाधियों से अलंकृत महादेवी जी अपार पाण्डित्य और वैदुष्य की धनी थीं। आचार–व्यवहार में उतनी ही सादगी, सच्चाई और पवित्रता। महादेवी जी की कविताएँ, लेख, निबन्ध–रचनाएँ, रेखाचित्र और बाल साहित्य हिन्दी–साहित्य की अनमोल निधि है। इस लेख में उनके स्त्री–विमर्श के (भारतीय सन्दर्भ) विषय में थोड़ा प्रकाश डालूंगी कि उन्होंने इस बारे में क्या सोचा पढ़ा और लिखा। महादेवी जी कहती हैं– साहित्य–सृजन अपने सृष्टा के लिए जीवन है या जीवनयापन का साधनमात्र। साहित्य युग–सापेक्ष है या निरपेक्ष। साहित्य के श्रेय और प्रेय की परीक्षा किसे दृष्टि में रखकर की जाए, आदि–आदि प्रश्न ऐसे हैं, जिनके समाधान जीवन की समग्रता में ही प्राप्त हो सकते हैं, उसे अंशतः देखने में नहीं।

–साहित्य और साहित्यकार, निबन्ध : महादेवी वर्मा – महादेवी : संचयन पुस्तक : सं. निर्मला जैन, पृ. 255, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं. 2018

विश्व इतिहास में प्राचीन काल से आधुनिक काल तक समय बदल गया परन्तु स्त्री के प्रति लोगों की मान्यता, अवधारणा और विचार नहीं बदले यद्यपि आज स्त्रियों ने अपने सामर्थ्य से अपने आप का काबिल सिद्ध किया है परन्तु अभी भी वे दुरवस्था में हैं। यूरोप के तथाकथित सभ्य देशों में भी स्त्री पुरूष के मनोरंजन का साधन और बल का प्रतीक है। किस राजा के अंतःपुर में कितनी स्त्रियों का संख्याबल है यह बताता है कि वह राजा कितनी शक्तिशाली है। वह मनोरंजन, विलासिता और वंशवृद्धि के साधन के अतिरिक्त और कुछ नहीं मानी जाती थी। टर्की में वधू का पिता उसके वर को अधिकार–स्वरूप चाबुक देते थे जो नवदम्पत्ति की शय्या के ऊपर टांगा जाता था। जबकि भारतीय स्त्री देवत्व का भाव लेकर घूमती थी।

'नारीवाद' आधुनिककाल का चर्चित विषय है जिस पर कई दशकों से विचार हो रहा। यह खुशी की बात है कि इस पर विचार तो शुरू हो गया। नारी–शोषण के बारे में विश्व इतिहास काले पन्नों से रंगा हुआ है।

भारत में इस विषय में पहली बार लिपिबद्ध बात करने वाली महादेवी वर्मा जी ने 'श्रृंखला की कड़ियां' पुस्तक लिखी। महादेवी जी की पुस्तक भारतीय परिप्रेक्ष्य में बड़ी महत्वपूर्ण है। यह सन् 1982 में प्रकाशित हुई। इसमें नारी–विषयक सामाजिक निबन्ध हैं। इस संकलन में महादेवी जी के महत्वपूर्ण निबन्ध छपे हुए हैं। इनमें कुछ विचार बिन्दुवार यहाँ निर्दिष्ट हैं। महादेवी कहती हैं–

''वेदकालीन समाज में पुरूष ने नवीन देश में फैलने के लिए संतान की आवश्यकता के कारण और अनाचार को रोकने के लिए विवाह को बहुत महत्व दिया और सन्तानदात्री होने के कारण स्त्री भी अपूर्व गरिमामयी हो उठी। उसे यज्ञ जैसे धर्मकार्यों में पति का साथ देने के लिए सहधर्मिणीत्व और गृह की व्यवस्था के लिए गृहणीत्व का श्लाघ्य पद भी प्राप्त हुआ परन्तु धार्मिक और सामाजिक दृष्टि से उन्नत होने पर भी आर्थिक दृष्टि से वह नितान्त परतंत्र हो रही।''

हमारे यहाँ प्राचीन काल से स्त्री की महिमा है, यहाँ तक कि ''यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता'' तक कहा गया। वह चढ़–बढ़ कर हर धार्मिक कार्य में भाग लेती, उसका भी यज्ञोपवीत होता, वह भी गुरूकुल जाती, वह भी अपनी इच्छा से तपस्विनी या ब्रह्मचारिणी अथवा गृहिणी बने परन्तु फिर भी उसे आर्थिक दृष्टि से स्त्री की स्थिति प्राचीन समाज में और अब तक वैसी ही है। अब जाकर कुछ आर्थिक रवायतें सरकारों ने अधिनियम बनाकर की हैं। परन्तु भारतीय स्त्री की स्थिति आदिम युग की परवशता और पूर्ण विकसित समाज के नारीत्व की गरिमा का विचित्र सम्मिश्रण है। वह अपने भरण–पोषण पर पुरूष पर ही निर्भर है चाहे वो पिता, पति, पुत्र किसी भी रूप में क्यों न हों।

भारतीय स्त्री के परिप्रेक्ष्य में यही गूढ़ तथ्य है। स्त्री अपनी और पुरूष की तुलना करती है तो जो अन्तर पाती है उसी के कारण अपने को दयनीय समझती है। वह अत्यधिक कोमल, अत्यधिक संवेदनशील और अति सुकुमार। स्त्री ने सामूहिक रूप से जितना पुरूष जाति को दिया उतना उससे पाया नहीं। महादेवी कहती हैं कि हमारे भारतीय समाज की विडम्बना यह है कि यहाँ जैसे ही कन्या का जन्म हुआ, माता–पिता का ध्यान उसके विवाह की कठिनाईयों की तरफ गया। वह कानी, कुबड़ी, राजयक्ष्मा पीड़ित, कुरूप कैसी भी क्यों न हो अच्छे–बुरे किसी उपाय से छल से, लालच से, क्रय–विक्रय से अपनी बच्ची के पत्नीत्व का साधन करेंगे क्योंकि यही एकमात्र उसके भरण–पोषण का साधन मात्र है।

''भारतीय स्त्री का जीवन राजनीतिक अधिकारों तथा आर्थिक स्वतन्त्रता से वंचित रहा साथ ही उसकी सामाजिक स्थिति भी स्पृहणीय

नहीं रही। उसके जीवन का प्रथम लक्ष्य पत्नीत्व तथा अन्तिम मातृत्व समझा जाता रहा है। यदि हम कटु सत्य सह सकें तो लज्जा के साथ स्वीकार करना होगा कि समाज ने स्त्री को जीविकोपार्जन का साधन निकृष्टतम दिया है।''[5]

पिता, पति और पुत्र के रूप में भरण–पोषण के लिए भारतीय स्त्री सदैव पुरूष की मुखापेक्षी है।

महादेवी जी का कहना है कि यद्यपि स्त्री के विकास की चरम सीमा उसके मातृत्व में हो सकती है पर स्वेच्छा से परवशतापूर्वक नहीं। उसे अपनी शारीरिक और मानसिक शक्ति के अनुसार ही यह भार लेना चाहिए, अन्यथा नहीं। उसके जन्म के साथ उसके विवाह की चिन्ता न करके उसकी रूचि के अनुकूल कला, उद्योग–धन्धे और शिक्षा का द्वार खुला रखना चाहिए और कन्या को 'स्वावलंबिनी' बनाना चाहिए। जब वह सही समझे तब अपनी शक्ति और इच्छा से अपना जीवनसंगी चुने। उस पर पुरूष परोपकार समझकर उसका भार न ढोता रहे। 'सहयात्री' का अर्थ है जिसका साहचर्य काम्य है न कि जिसका साथ रहना भार और परेशानी बन जाए।

''इस विवशता के कारण ही वे किसी पुरूष की सहयोगिनी नहीं समझी जातीं। सत्य भी है, बन्दी के पैर की बेड़ियां साथ रहने पर भी क्या सुखद संगिनी की उपाधि पा सकेंगी? प्रत्येक पुरूष पत्नी के रूप में स्त्री को अंगीकार करते समय अनुभव करता है मानो यह कार्य व केवल परोपकार के लिए कर रहा है। उन्हें न स्वयंवर में वरमाला पाना है, न अप्रतिम पराक्रम द्वारा प्रतिद्वंद्वियों को परास्त कर अपने आपको वरण–योग्य प्रमाणित करना है और न विशेष विद्या–बुद्धि का परिचय देना है केवल उन्हें जीवन भर के लिए एक सेविका की सेवाएं स्वीकार कर लेनी हैं इसके बदले में चाहे जो माँग लें तो भला इस बंधन को वे महत्वपूर्ण क्यों समझें? वो भी तब जब दर्जनों विवाह–योग्य कन्याओं के पिता अधिक से अधिक धन देकर अपनी रूपवती, गुणवती, शिक्षित पुत्रियों को दान देकर कृतार्थ हो जाना चाहते हैं। ऐसा विवाह यदि ''स्त्रीत्व का कलंक'' न समझा जावे तो क्या समझा जावे।''[6]

यहाँ महादेवी जी ने एकदम यथार्थ सत्य को उघाड़कर रख दिया है। हम आम जीवन में भी देखते हैं कि किसी व्यक्ति की यदि पत्नी मर गई तो अभी वह यद्यपि जलाई भी नहीं गई अन्य कन्याओं के पिता शगुन की थाली लेकर दौड़ने लगे। 'लक्ष्मी का स्वागत' एकांकी में यह समस्या दिखाई भी गई है। हमारा पूरा समाज विवाह व्यवस्था के इर्द–गिर्द ही घूमता है और बच्चों का पालन–पोषण संस्कार सब इस संस्कार की नींव ही लालच और तृष्णा दिखाई देती है यद्यपि हर जगह यह लागू नहीं होता। भारतीय मुस्लिम समाज में स्थितियाँ और भी भयानक हैं।

एक तर्क यहाँ पर यह भी दिया जाता है कि स्वावलम्बन के साधनों से युक्त स्त्री गृहिणी के कर्त्तव्य को हेय समझेगी। अतः गृह में अराजकता उत्पन्न होगी – भ्रान्तिमूलक धारणा सिद्ध हो चुकी है। स्त्री का जो कुछ है वह उसका मातृत्व ही है। इसलिए बहुत थोड़ी होंगी जो अपने बच्चों को अरक्षित छोड़कर द्रव्य–उपार्जन करें। यहाँ महादेवी जी पाश्चात्य देशों की स्त्रियों और भारतीय स्त्रियों में साफ अन्तर पाती हैं वे कहती हैं–

''स्त्री वहाँ आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न हो चुकी है, अतः सारे सामाजिक बन्धनों पर उसका अपेक्षाकृत अधिक प्रभुत्व कहा जा सकता है। उसे पुरूष के मनोविनोद की वस्तु बने रहने की आवश्यकता नहीं है। अतः वह चाहे तो परंपरागत रमणीत्व को तिलांजलि देकर सुखी हो सकती है। परन्तु वह तो श्रृंगार के संख्यातीत उपकरण, रूप को स्थिर रखने के इतने कृत्रिम साधन, आकर्षित करने के उपहास–योग्य प्रयास आदि से वह आकर्षक तो रही परन्तु विकृति को चली गई। नारी का रमणीत्व नष्ट नहीं हो सका चाहे उसे गरिमा देने वाले गुणों का नाश हो गया हो।''[7]

अर्थात् पाश्चात्य स्त्री श्रृंगार और भोग का साधन अधिक हो गयी और स्त्रीत्व का मूल गुण– दया, ममता, उदारता, लज्जा, श्री, स्मृति, कीर्ति, श्रद्धा, विश्वास आदि गुणों का लोप हो गया। वह रंगीन खिलौने के समान आकर्षक हो गयी। प्रेमचन्द्र जी के शब्दों में बाहर से तितली और अन्दर से मधुमक्खी बन गई।

महादेवी जी कहती हैं ''यदि वह पुरूष के समकक्ष आना चाहती है तो उसे सभी क्षेत्रों में कठिन से कठिन परिश्रम करना होगा और जीवन–यापन में आवश्यक प्रत्येक वस्तु को अपने स्वेदकणों से तौलकर स्वीकार करेगी न कि अपने रूप और वय के ही पाथेय लेकर संसार यात्रा पर आगे बढ़ती रहेगी।''[8]

तभी वह मनोविनोद का सुन्दर साधन नहीं बल्कि गरिमामयी विधात्री के ऊँचे आसन पर अधिष्ठित होगी।

महादेवी जी याद करती हैं भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन को जब उथल–पुथल के युग में भारतीय स्त्री ने अपने अभूतपूर्व होने का शक्तिशाली प्रमाण दिया, उनकी कोरी भावुकता छिन्न–भिन्न हुई और उनके स्त्रीत्व से शक्तिहीनता का लांछन दूर हो गया। उन्होंने यह दिखा दिया कि वे गतिहीन नहीं हैं बल्कि किसी भी क्षेत्र में पुरूष के साथ पग से पग मिलाकर चल सकती है।

कृपाण और कंकण का अद्‌भुत संयोजन रानी लक्ष्मीबाई, रानी आहिल्याबाई और अनेक भारतीय स्त्रियाँ जो वीरता की मिसाल कायम करते हुए अपना नाम अमर कर गई हैं, उनके जीवन में मिलता है। महादेवी जी के शब्दों में – ''जागृति–युग की उपासिकाओं के जीवन भी इस त्रुटि से रहित नहीं रहे। उन्होंने अपनी दृष्टि का एक ही केन्द्र बना रखा है, अतः उन्हें अपने चारों ओर के संदिग्ध वातावरण को देखने का न

अवकाश है न प्रयोजन। ऐसा कोई त्याग या बलिदान नहीं जिसका उद्‌गम नारीत्व न रहा हो अतः केवल त्याग के अधिकार को पाने के लिए अपने ऐसा रूक्ष बना लेने की कोई आवश्यकता न जान पड़ेगी।''[9]

महादेवी जी यह भी कहती हैं कि मनुष्य को केवल संघर्ष की कला ही नहीं जीने की कला भी आनी चाहिए क्योंकि संघर्ष जीवन का आदि हो सकता है अन्त नहीं। संघर्षहीन जीवन ही जीवन है। क्रान्ति की अग्रदूती और स्वतन्त्रता की ध्वजा–धारिणी नारी का कार्य जीवन के स्वस्थ–निर्माण में शेष होगा, केवल ध्वंश में नहीं। क्योंकि स्त्री यदि दुर्गा काली है तो सरस्वती, लक्ष्मी और पार्वती भी स्त्री ही तो है।

परन्तु महीयसी महादेवी जी ने अपने निबन्धों में स्त्री को इस प्रकार देवी की पदवी देने से मना किया है, उसका माखौल भी उड़ाया है। वे कहती हैं–

''साँझ और घड़ियाल के स्वरों में धूप–दीप के मध्य अपने पूजागृह में अंधबधिर के समान बैठा हुआ देवता यदि एकाएक उठकर हमारी पूजा–स्तुति का निरादर कर हमारे सारे गृह पर अधिकार जमाने को प्रस्तुत हो जावे तो हम वास्तव में संकट में पड़ सकते हैं। हमारी पूजा–अर्चा की सफलता के लिए यह परम आवश्यक है कि हमारा देवता हमारी वस्तुओं पर हमारा ही अधिकार रहने दे और वही स्वीकार करे जो हम देना चाहते हैं। इसके विपरीत होने पर तो हमारी स्थिति भी विपरीत हो जाएगी। भारतीय स्त्री के सम्बन्ध में यही सत्य है। उसे बहुत आदर–मान मिला, उसके गुणानुवाद गाए गए, उसकी ख्याति दूर–दूर देशों तक पहुँची परंतु मन्दिर के देवता के समान ही सब उसकी मौन जड़ता में ही अपना कल्याण समझते रहे। उसके अत्यधिक श्रद्धालु पुजारी भी उसकी निर्जीवता को ही देवत्व का प्रधान अंश मानते रहे और आज भी मानते हैं।''[10]

वास्तव में भारतीय स्त्री ने जड़ता के अभिशाप को वरदान मान लिया। वह भूल गई कि वह मानवी भी है। उसके दुख–सुख उसके हृदय कारागार में ही बन्द रह गए और वह उसके संस्कार–जनित विश्वासों के कारण उसके अस्तित्व की सदा–सर्वदा उपेक्षा होती रही। वह स्वयं अपना मूल्य नहीं पहचानती। व्यक्तिगत अधिकारों और उनकी रक्षा के साधनों के विषय में तो कहना ही व्यर्थ होगा। समाज ने उसकी निश्चेष्टता को भी उसके सहयोग और सन्तोष का सूचक ही मान लिया।

महादेवी जी भारतीय स्त्री की दुरवस्था का मुख्य कारण प्रमुखतः ''अर्थ के विषम विभाजन'' को ही मानती हैं। वे लिखती हैं–

''समाज ने स्त्री के सम्बन्ध में अर्थ का ऐसा विषम विभाजन किया है कि साधारण श्रमजीवी वर्ग से लेकर सम्पन्न वर्ग की स्त्रियों तक की स्थिति दयनीय ही कही जाने योग्य है। वह केवल उत्तराधिकार से ही वंचित नहीं हैं वरन् अर्थ के सम्बन्ध में सभी क्षेत्रों में एक प्रकार की विवशता के बंधन में बंधी हुई हैं। कहीं पुरूष ने न्याय का सहारा लेकर और कहीं अपने

स्वामित्व की शक्ति से लाभ उठाकर उसे इतना अधिक परावलंबी बना दिया कि वह उसकी सहायता के बिना संसार पथ पर एक पग भी आगे नहीं बढ़ सकती।''[11]

इसी कारण वह पतित से पतित या क्रूर से क्रूर पुरूष की मलिन छाया में भी वह अपने जीवन का गौरव पालती है। भारतीय स्त्रियाँ पतिहीन अवस्था में अपने को निराधार पाती हैं और समाज में भी ऐसी स्त्रियाँ सम्मान की बजाय अपमान ही पाती हैं। महादेवी जी हर कहीं स्त्री की आर्थिक स्वतंत्रता की पैरोपकार हैं। ऐसा न होने पर वे विद्रोह का संकेत भी देती हैं। स्वयं उनके शब्दों में –

''आज की बदली हुई परिस्थितियों में स्त्री केवल उन्हीं आदर्शों से सन्तोष न कर लेगी जिनके सारे रंग उसके आँसुओं से धुल चुके हैं, जिनकी सारी शीतलता उसके सन्ताप से उष्ण हो चुकी है। समाज यदि स्वेच्छा से उसके अर्थ–सम्बन्धी वैषम्य की ओर ध्यान न दे उसमें परिवर्तन और संशोधन की आवश्यकता न समझे तो स्त्री का विद्रोह दिशाहीन आंधी जैया वेग पकड़ता जाएगा और तब एक निरन्तर ध्वंस के अतिरिक्त समाज उससे कुछ न पा सकेगा ऐसी स्थिति न स्त्री के लिए सुखकर है न समाज के लिए सृजनात्मक।''[12]

हमारे संविधान ने हमें समानता, शिक्षा और समान कार्य के लिए समान वेतन के अलावा बहुत सी सुविधाएँ और हर मामले में रियायत दी है आवश्यकता है उसको समझने, जानने और स्वयं को योग्य बनाने की। स्त्री–शिक्षा की अधिकाधिक आवश्यकता है। समाज के अंधविश्वास और पूर्वाग्रहों को भी तोड़ने की महती आवश्यकता है।

सन्दर्भ :

1. समर्पण : हिन्दी साहित्य का आधा इतिहास : डॉ. सुमन राजे, नई दिल्ली, प्र.सं. 2011
2. वही, पृ. समर्पण
3. वही पृ. 262
4. महादेवी संचयिता : सं निर्मला जैन : वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं. 2018, पृ. 318
5. वही, पृ. 309
6. वही, पृ. 313
7. वही, पृ. 301
8. वही, पृ. 302
9. वही, पृ. 307
10. वही, पृ. 321–22
11. वही, पृ. 324
12. वही, पृ. 324–25

***

संगीत एवं धर्म : एक विश्लेषण

डॉ. शशि शुक्ला *

धर्म जहाँ शुभ गुणों को ग्रहण कर अशुभ गुणों का त्याग किया जाए वही धर्म है। धर्म का केवल एक सिद्धान्त है कि मानव को सभ्य संस्कारित, सुशिक्षित प्राणी बनाना, एक दूसरे के प्रति दया, सेवा, आदर एवं विचारशीलता की भावना सिखाना। धर्म एक विश्वास एवं संकल्प अर्थात् व्यवहारिक प्रक्रिया है, भावना, बुद्धि, क्रिया की त्रिवेणी है और यह कहना अनुचित नहीं होगा कि धर्म मनुष्य की अध्यात्मिक अनुभूति है। भौगोलिक स्थिति के अनुसार सभी विचारधाराओं में उनकी धार्मिक परम्पराओं में धर्म का स्थान सर्वोपरि है। हर धर्म की मान्यताएं, रीति रिवाज अलग–अलग भले ही हों लेकिन उद्देश्य एक ही है, और उद्देश्य ही चरम अवस्था को यदि हम अध्यात्म की संज्ञा दें तो गलत नहीं होगा।

यदि चाणक्य ने कहा, 'सुखस्य मूलं धर्मः' तो रत्नाकर में शारंगदेव ने कहा, उस गीत की महत्ता को कौन कह सकता है जो धर्म अर्थ काम मोक्ष का एकमात्र साधन है ''तस्य गीतस्य महात्म्यं के प्रसंशितुमीशते''। हमारी सांस्कृतिक विरासत में अध्यात्मिक उपासना में संगीत की भूमिका सर्वोपरि रही है। धर्म का कला से संबन्ध घनिष्ठ रहा है और संगीत भी एक ऐसी कला है जहाँ धार्मिक अभिव्यक्ति सदैव से सभी धर्मों में संगीत की आधारभूमि मानी गयी। प्रत्येक धर्म में क्रिया–कलाप, पर्व–त्योहार, मनोरंजन में संगीत का समन्वय भली प्रकार दिखायी देता है। गायन, वादन, नृत्य कर मनुष्य अपने भावों का व्यवहार दर्शाता है। संगीत के स्वर, ताल और उपयुक्त लय में बद्ध रचना भाव विभोर करती है। विभिन्न धर्मों में, धार्मिक कृत्यों में संगीत का औपचारिक व अनौपचारिक रूप विद्यमान ही रहा है और भारतीय परम्परा में तो भगवान कृष्ण ने गीता में भी कहा – नाहं वासमि बैकुण्ठं योगिनां हृदये न च। मद्भावत्या यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद।

'ज्ञानं कोटि गुणं ध्यानं, ध्यान कोटि गुणं श्रुते' धर्म और संगीत की चर्चा करें तो देखते है कि लगभग सभी धर्मों में स्वर का माध्यम लेकर अपने धर्म के समक्ष प्रवचन, धार्मिक संदेश आदि का धर्मगुरू विस्तारण करते हैं, क्योंकि इस माध्यम से यह प्रक्रिया द्वारा संप्रेषण प्रभावपूर्ण हो जाता है। धर्म शब्द का अर्थ आत्मिक शांति, आत्मविकास, आत्ममंथन, आत्मशुद्धि है जिसकी परिणिति अध्यात्म के माध्यम से परमानन्द प्राप्ति के साथ–साथ ईश्वर की प्राप्ति है। संगीत इस प्राप्ति का सोपान है इसमें कुछ भी अत्युक्ति नहीं। संगीत की एक जाति है, एक धर्म है, एक भाव है और वह है अपने भावों

---

* एसोसिएट प्रोफेसर, सा.रा.म. महाविद्यालय, बरेली

की अभिव्यक्ति में लीन होकर साधना एवं तपस्या कर अपने ईष्ट की आराधना कर अपना अभीष्ट प्राप्त करना।

संगीत एक नादमयी विद्या है। वैदिक काल से ही स्वतः ही धर्म से जुड़ी है। हमारे वेद और वेदों में सामवेद संगीत की प्राचीनता सिद्ध करता है। गीता में कृष्ण ने व्यक्त किया भी है – ''वेदानां सामवेदो अस्मि'' वेदों में मैं सामवेद अर्थात संगीत हूँ। इस प्रकार वेद अर्थात अध्यात्म और अध्याय से ईष्ट का सानिध्य। संगीत की सत्ता ईश्वरीय सत्ता से अलग नहीं की जा सकती जहाँ ईश्वर की सत्ता है वहाँ धर्म है। सभी धर्मों का उद्देश्य अपने अभीष्ट की प्राप्ति है। स्वरों के माध्यम से गेयता ओर गेयता से ईष्ट की प्राप्ति होती है। संगीतात्मकता, रसात्मकता, कलात्मकता के साथ अभिव्यक्ति और मुखरित हो उठती है क्योंकि चित्तवृत्तियों के विश्रान्ति प्राप्त हो जाती है।

चार धर्म में हिन्दू भजन, आरती, कीर्तन आदि के माध्यम से धार्मिक भावना के आत्मसात करते हैं और यही भावना का संप्रेषण भी करते हैं, तो मुसलमान कव्वाली, सूफी विचार धारा जो धार्मिकता से प्रेरित है उसे अरबी, फारसी संगीत के सम्मिश्रण से प्रसार करते रहे। सिखों के वाणियों का गायन अनेक रागों पर आधारित होते सुना जा सकता है तो चर्च में ईसाई धर्म में कैरेल्स के माध्यम से अपनी भावनाओं को व्यकत करते हुए देखा जा सकता है। सभी का उद्देश्य एक ही है, ईष्ट का सानिध्य और आनन्द की प्राप्ति। कोई जाति या धर्म मानव की भावनाओं के अंकुरण में बाधक नहीं बन सकता। कला मानव के चेतन एवं अचेतन मन से बोध होने की अवस्था का स्वरूप प्रदान करती है। संगीत का सीधा सम्बन्ध हृदय से है। जहाँ भाव केन्द्र तक असर डालने में अन्य कोई माध्यम नहीं पहुँचता। संगीत के स्वर किसी धर्म विशेष की अभिव्यक्ति नहीं बल्कि व्यक्ति विशेष की अभिव्यक्ति है हाँ यह अवश्य कहा जा सकता है कि भावाभिव्यक्ति के अपने तरीके हो सकते हैं। हमारे साथ की पंचविधि एवं सप्तविधि उपासना में संगीत का महत्व दिखाई देता है तो सूफियों ने संगीत की स्वरावलियों से आकर्षित होकर अरबी–फारसी के नक्श, कव्वाली, तराना, कौल, कल्बाना, ख्याल आदि को स्वीकार किया।

ईस्लाम धर्म के प्रवर्तक हजरत मोहम्मद थे। मोइद्दीन चिश्ती 1186 ई. में सूफी मत के प्रचार प्रसार में प्रमुख भूमिका मानी जाती रही है। जहाँ सूफी परम्परा और चिश्ती परम्परा का विकास हुआ जिसमें फारसी और अरबी का मिश्रण कर अपनी मर्यादाओं के साथ अनेक शैलियों की रचनायें की जिसमें कव्वाली को प्रमुख स्थान दिया। जिसका प्रमाण वर्तमान में हम सबके समक्ष है कि आज भी कव्वाली सुनते ही श्रोता झूम उठते हैं। स्वरों का, गायकी का आनन्द ही यही है कि सुनते ही सभी रूढ़ियों के बंधनों से युक्त होकर तन्मयता और एकाग्रता से संगीत कला का आनन्द लिया जाए। किसी धर्म का कोई पक्षपात नहीं रह जाता। संगीत कला का उद्देश्य भी यही है।

15वीं शताब्दी में गुरूनानक देव जी द्वारा गुरुबानी की रचना हुई जिसमें संगीत की रचनाओं को ही धर्म के प्रचार और प्रसार का माध्यम बनाया। सेवा, त्याग, मानवता समाज सुधार का संदेश जन–जन तक प्रसारित किया जिसका प्रभाव आज भी प्रमाण स्वरूप हमारे समक्ष है। प्रत्येक गुरुबानी को रागों में बद्ध कर राग एवं ताल का नाम देते हुए गुरुग्रंथ साहब को संपादित किया। गुरू ग्रन्थ साहिब में छः गुरुजनों एवं अनेक भक्तों की पवित्र वाणी का संकलन संगीत विद्या के प्रति निष्ठा एवं ज्ञान को दर्शाता है। सिख धर्म की आत्मा उसके कीर्तन में निवास करती है और यही संगीत की प्रतिष्ठा स्थापित करती है। भारतीय परम्परा में 16 संस्कारों में संगीत का स्वरूप विद्यमान है तो सिख धर्म में भी जन्म से लेकर मृत्यु तक जितने संस्कार हैं, सभी में कीर्तन का विशेष महत्व दिखाई देता है। नामदेव, गुरूतेग बहादुर गुरुनानक देव, गोरुगोविन्द सिंह आदि ऐसे भक्त सिख धर्म में संगीत के माध्यम से धार्मिक भावना का प्रचार–प्रसार करते रहें।

दृष्टिपात करें तो जैन धर्म एवं बौद्ध धर्मों में जैन साहित्य, जैन आगामों से सम्बन्धित ग्रन्थों में संगीत के महत्व की पराकाष्ठा है तो बौद्ध धर्म के धार्मिक अनुष्ठानों में भी संगीत की अनिवार्यता दृष्टिगत होती है। बौद्ध धर्म मनोरंजन के रूप में संगीत का प्रयोग निम्न कोटि में रखता था, यह शायद उनका संगीत के प्रति सम्मान भाव व्यक्त करने की एक भावना रही हो। जैन धर्म में असि मसि वाणिज्य शिल्प कला आदि षट् कर्मों के निर्देश दिये गये है जिसमें कला को प्रथम स्थान दिया गया है। जैनाचार्यों ने चित्तवृत्तियों को संयमित करने साधन कला को बताया है। भाव शब्दों में व्यक्त करना और स्वरों में व्यक्त करना, दोनों का असर अलग–अलग होता है।

आवश्यक नहीं कि स्वर लहरियों के साथ–साथ वाद्यों का प्रयोग आवश्यक हो तभी भावमुखरता सम्पन्न होती है। इस्लाम धर्म में 'मिलाद' की महफिल रबीउल– अव्वल की महीनें में होती है जिसे हम 'ईद–उल–मिलाद' का महीना कहते हैं। इसमे वाद्यों का प्रयोग वर्जित है। 'मिलाद' में मुहम्मद साहब की प्रशंसा, नूर के वर्णन सम्बन्धी, मदीना–मुनव्वरा सम्बन्धी बैठकें होती हैं। चूँकि संगीत वह दिव्य कला है जहाँ स्वर लहरियाँ मनोगत मापों को आधार मानकर रोचकता पैदा करती है। उन्हें अपने इष्ट के सानिध्य का आभास दिलाती है।

भावमय, उत्साहमय, सभी भावनाओं में स्वर प्रबल माध्यम है। शान्तिपूर्वक ईष्ट की भक्ति, प्रिय के प्रति श्रृंगार भावना, देश के प्रति उत्साहपूर्ण प्रेम भावना की अभिव्यक्ति सभी में संगीत की प्रबल सत्ता है, और संगीत की सत्ता ईश्वर की सत्ता से अलग नहीं की जा सकती, जहाँ ईश्वर की सत्ता है वहाँ धर्म है। प्रार्थना के रूप में ईश्वर की प्राप्ति, ईष्ट के प्रति स्वयं का आभार–व्यक्त करने की प्रक्रिया संगीत के माध्यम से, और यही भाव सभी धर्मों को माला के रूप में पिरोता हुआ संगीत कहलाता है। नाद सभी धर्मों में अभिव्यक्ति का माध्यम बनते हुए समग्रता में एकता का

संचार करते हैं और क्यों न इसी एकता को हम धर्म की संज्ञा देकर वसुधैव कुटुम्बकम की भाव गंगा में विलय होकर रसानन्द की प्राप्ति करें।

पाकिस्तान के गज़ल गायत गुलाम अली खाँ साहब के वक्तव्य जो मुझे बहुत सार्थक लगा– ''लोग पूछते हैं कि मैं संगीत के जरिये से क्या कहना चाहता हूँ। मैं समझता हूँ, हर कला अपने आप में एक उस परवरदिगार का पैगाम है जिसे ''वो'' फनकार को इसलिये देता है कि उस पैगाम को अधिक से अधिक लोगों तक पहुँचा सके।''

संदर्भ :

1. ओशो – नानक सूर संगीत एक धुन
2. डा. शर्मा महेश – भारतीय धर्म एवं संस्कृति
3. प्रो पटेल नीलेश भाई– बुद्ध और बौद्ध धर्म
4. ओशो – जीवन संगीत (ध्यान साधना पर प्रवचन)

***

भारत एवं इस्लामिक आतंकवाद

डॉ. अशोक कुमार सिंह *

भारत सदैव से ही शांति का पक्षधर रहा है। सैन्य आक्रामकता द्वारा शांति पाने की आकांक्षा उसकी कभी नही रही है। मानव समाज कल्याण में ही शांति, समृद्धि, विकास और सर्वहित का दर्शन दिया है। शांति की यह परिभाषा और व्याख्या भारत की रही है, उसका ही परिणाम यह हुआ कि लगभग कई सौ वर्षों तक भारत को 'दासत्व' की स्थिति में रहना पड़ा। दासत्व की स्थिति पुनः उत्पन्न न होने पाये इसके लिए भारतीय जनमानस को एक तरफ जहाँ अपने चिंतन में सुधार करना होगा वही दूसरी तरफ सुरक्षा के प्रति जो भाग्यवाद की स्थिति रही उसके प्रति भी नये सिरे से समीक्षात्मक चिन्तन करना होगा। विश्व स्तर पर यह मान्यता है कि अभेद्य–सुरक्षा व्यवस्था से ही शांति को पाया जा सकता है तब भारत को भी विश्वमान्यता से पृथक होकर अपने को नहीं देखना चाहिए क्योंकि अभेद्य सुरक्षा से ही राष्ट्रहित सम्भव है।

सामरिक और सुरक्षा की दृष्टि से भारत के समक्ष हाल के वर्षों में चुनौतियाँ और भी बढ़ गई है और जब कि शीत युद्ध की समाप्ति के उपरान्त उसमें कमी आनी चाहिए थी लेकिन शीत युद्ध की समाप्ति का लाभ भारत को नहीं मिला, बल्कि सोवियत संघ के विघटन से भारत के प्रतिरक्षा एवमं सामाजिक हितो को धक्का अवश्य लगा। इस्लामिक आतंकवाद जिस तरह से सिर उठाया है और इस आतंकवाद को जैसा समर्थन पाकिस्तान व उसके साथियों से मिल रहा है वह भारत के लिए बहुत बडी चुनौती है। यह आतंकवाद उसी मजहबी रूढिवाद की देन है जिसके तहत आज से लगभग कई सौ वर्ष पहले भारत पर पश्चिम और मध्य एशिया से आक्रमण होने प्रारम्भ हो गये थे, जिससे भारत को पराधीनता की एक लम्बी यातना भोगनी पड़ी थी। ये राष्ट्र आतंकवाद, उग्रवाद एवं धर्मान्धता से दूर बने रहें इसी में भारत की प्रतिरक्षा तथा सामरिक हित निहित है।[1] ''भारतीय मनीषियों को यह अच्छी तरह से समझ लेना चाहिए कि इस्लामी आतंकवाद बहुत तेजी से अपनी जड़ें विश्व में फैला रहा है। इस आतंकवाद की पृष्ठभूमि में है, इस्लाम की कट्टरवादिता और रूढ़िवादिता। इन कट्टरपंथियों का यह विश्वास है कि केवल युद्ध के माध्यम से ही इस्लाम को आगे बढ़ाया जा सकता है और उसका प्रभुत्व विश्व पर कायम किया जा सकता है। यह अजीब बात है कि भारत जिसने इस्लाम के कट्टरपंथियों की इस बर्बर युद्ध प्रियता को झेला है, वह भी इस्लामी आतंकवाद के प्रति पूर्ण सजग नहीं है। उसे यह भली

---

* रीडर, रक्षा एवं स्त्रात्जिक अध्ययन विभाग, आर.आर.पी.जी. कालेज अमेठी, जनपद-अमेठी।

भाँति पता है कि कट्टरपंथियों की इस युद्ध प्रियता ने ही इस्लामिक आतंकवाद को जन्म दिया है।''[2]

''वास्तविकता तो यह कि इस्लाम का जो मूलभूत भातृभाव प्रधान दर्शन है उसमें आतंकवाद के लिए कोई स्थान नहीं है, लेकिन इस सच्चाई को आतंकवादी या उग्रवादी समझने को तैयार नहीं है। उनकी मान्यता यह है कि इस्लाम को बढ़ाने व उसका प्रसार करने के लिए कट्टरता और आतंकवाद जैसे उपाय ही सार्थक साबित हो सकते है। इन्ही आतंकवादियों ने इस्लाम के नाम पर बहुत ही खतरनाक लडाई, कहीं प्रत्यक्ष और कहीं छद्म (Proxy) रूप से मानवता के विरुद्ध छेड़ रखी है। इस लडाई का उद्देश्य यही है कि विश्व में इस्लाम का जो कट्टरवादी पक्ष है उसका वर्चस्व स्थापित हो इस विचार धारा का सर्वाधिक पोषण पाकिस्तान द्वारा किया जा रहा है।[3]'' 14 अगस्त सन् 1947 को जब पाकिस्तान का निर्माण हुआ उस समय पाक के निर्माता कट्टरवादी और रूढ़िवादी तो थे लेकिन आतंकवाद को अपना समर्थन प्रदान करेंगे ऐसा किसी ने सोचा भी नहीं था।'' जुलाई 1977 के बाद से ही अन्तर्राष्ट्रीय इस्लामिक राजनीति में पाकिस्तान सक्रिय हिस्सा लेना प्रारम्भ किया पाक के तत्कालीन तानाशाह राष्ट्रपति जनरल जियाउल हक ने अपने आपको इस्लाम का सच्चा समर्थक बताते हुए पाक को इस्लामी गढ़ के रूप में प्रस्तुत किया और कहा कि पाक इस्लाम की रक्षा के लिए हर जेहाद में भाग लेगा। इसी के साथ ही वहां जमायते इस्लामी सरीखी आतंकवादी संस्थाओं को वहां शरण मिली और उसका प्रयोग भारत के विरूद्ध किया जाने लागा। वैसे पाकिस्तान को इस्लामिक अर्न्तराष्ट्रीय राजनीति में प्रवेश का पूरा अवसर तब मिला जब अफगानिस्तान पर सोवियत संघ ने अपने प्रभुत्व में लेने के लिए सैनिक हस्तक्षेप किया जिसके चलते वहां के बहुत से शरणार्थी सीमा रेखा को पार करके पाक में प्रवेश कर गये। वे शरणार्थी ही आज इस्लामी आतंकवाद की सबसे बड़ी शक्ति है। इन्हीं शरणार्थियों को पाक में प्रशिक्षण दिया गया और मुजाहिदीन के रूप में विश्व के समक्ष प्रस्तुत किया गया। पाक के साथ ही सऊदी अरब, अफगानिस्तान, लीबिया, ईरान आदि देशों में यह मुजाहिदीन सक्रीय है। इन मुजाहिदीनों का प्रयोग पाक ने भारत के साथ अनेक बार किया है और अभी भी उसका प्रयोग कर रहा है।

इस्लामी आतंकवाद से केवल भारत ही त्रस्त नहीं है बल्कि विश्व के उन तमाम राष्ट्रों को सीधी चुनौती मिल रही है, जिनका विश्वास साम्प्रदायिक सौहार्द और उदारवाद पर है। लोकतंत्र और उदारवाद का सर्वाधिक लाभ इस्लामी आतंकवाद ने उठाया है। इस्लामी आतंकवाद अनेक देशो और विशेष रूप से भारत के विरुद्ध छद्म युद्ध छेड़ रखा है, वैसे तो इससे भारत लगभग 30 वर्षों से जूझ रहा है लेकिन पिछले 20 वर्षों से भाड़े के आतंकवादियों ने भारत की कानून व्यवस्था को सीधी चुनौती दी है जिससे कश्मीर में शांति एवं चयन गायब हो गया है। विगत कुछ वर्षों से

यह आतंकवाद यूरोप और अमेरिका को भी त्रस्त कर रहा है और आज अमरीका इसके विरूद्ध दृढ़ता से खड़ा हो चुका है। लेकिन दुर्भाग्य यह है कि अमेरिका इस संदर्भ में भारत की कोई सहायता करने के लिए तैयार नहीं है। इस आतंकवादियों के हौसले इतने बढ़ गये है कि उन्होंने अन्य देशो के उग्रवादी या आतंकवादी संगठनों से समझौता कर लिया जिससे विश्व के अनेंक राष्ट्रों के हितों को चोट पहुंचा रहे है। केवल तालिबान जैसे आतंकवादी संगठन को विश्व के लगभग 45 देशों में जाल बिछा हुआ है। आने वाले समय में इस्लामी आतंकवाद का सर्वाधिक खतरा सतत भारत और अमरीका को रहेगा। भारत का हित इसी में है कि वह किसी भी प्रकार से अमेरिका को इस बात के लिए तैयार कर ले कि इससे के लिए एक संयुक्त रणनीति बनायी जाय। पूर्वी अफ्रीका स्थित अमेरिकी दूतावासों को विस्फोट से ध्वस्त कर दिये जाने के बाद से अमेरिका इस्लामी आतंकवाद को बहुत गम्भीरता से लेने लगा है लेकिन भारत के मामले में चुप्पी साध लेता है चाहे क्लिंटन प्रशासन रहा हो या जार्ज बुश प्रशासन सूडान और अफगानिस्तान के आतंकवादी अड्डों को नष्ट करने के लिए स्पष्ट रणनीति तो बनायी गयी लेकिन पाकिस्तान के आतंकवादी अड्डों को ध्वस्त करने के लिए कोई रणनीति नहीं बनाई गई है, जबकि सर्वाधिक आतंकवादी प्रशिक्षण केन्द्र पाक में है।

शायद अमेरिका यह समझता है कि इस्लामी आतंकवाद के जो प्रशिक्षण केन्द्र पाक में है वहाँ केवल उन आतंकवादियों को ही प्रशिक्षण दिया जाता है जो भारत में घुसपैठ करके वहां समस्या उत्पन्न कर रहे है। निःसंदेह अमरीका का यह भ्रम है। यही कारण है कि इस्लामिक आतंकवाद से लड़ने के मामले में आज भारत अलग–थलग पड़ा हुआ है। आज भारत को अपनी कूटनीति एवं विदेशनीति में विशेष परिवर्तन करने होगे और अपनी समस्याओं का समाधान स्वयं करना होगा। हमारी समस्या आतंकवाद नहीं, बल्कि पाकिस्तान है। जब तक पाकिस्तान का रवैया नहीं बदलेगा तब तक कश्मीर समस्या रूपी आतंकवाद बना रहेगा क्योंकि कश्मीर रूपी आतंकवाद की समस्या बनाकर रखना अगर पाक के लिए आवश्यक है तो भारत की भौगोलिक और सांस्कृतिक तथा भावनात्मक अखण्डता के लिए जरूरी है कि कश्मीर समस्या रूपी आतंकवाद को समाप्त किया जाय। यह सिद्ध है कि कश्मीर में पाकिस्तानी आतंकवाद वहां के कुछ गुमराह और बेरोजगार युवकों की हताशा या उन्माद के कारण नहीं है, बल्कि एक सुनियोजित रणनीति के अर्न्तगत इसका पालन पोषण और संवर्द्धन किया जा रहा है। आज देश वासियों को आशा है कि जब किसी परम्परागत राजनीति के स्थान पर किसी वैकल्पिक राजनीतिक नेतृत्व में सरकार का गठन होगा तो पाक अधिकृत कश्मीर सहित इस्लामिक आतंकवाद समाप्त होगा और तब संसद में लिए गये संकल्पो का क्रियान्वयन होगा और भारत माता का खंडित मुकुट पुनः अखण्ड हो जायेगा।

सन्दर्भ :

1. श्री नरेन्द्र मोहन : प्रतिरक्षा और सामरिक नीति, (रक्षा अध्ययन एवं विश्लेषण संस्थान, नई दिल्ली), प्रथम संस्करण, 1999, पृ. 63.
2. डॉ. बाबूराम पाण्डेय : राष्ट्रीय सुरक्षा के मूलाधार, प्रथम संस्करण–1993, पृ. 27.
3. प्रे. लल्लन जी सिंह : भारतीय युद्ध कला, प्रथम संस्करण–2004, पृ. 27.
4. रक्षार्थ पत्रिका : पीस रिसर्च सोसाइटी का अर्द्ध वाषिक प्रकाशन (वर्ष–2001, अंक–2) पृ. 31.
5. डॉ. डी.एन. सिंह : राष्ट्रीय सुरक्षा और प्रतिरक्षा
6. कमल सिंह : विश्व प्रसिद्ध आतंकवादी संगठन (फैमिली बुक्स प्रा.लि., दरियागंज, नई दिल्ली।

***

भोटांतिक पशुचारकं (उत्तराखण्ड) एवं डोकपा पशुचारकों (तिब्बत) के मध्य प्राचीन व्यापार पद्धति - 'गमग्या'

डॉ. विनोद सिंह फरस्वान *

भोटांतिक पशुचारकों के आदि काल में ही तिब्बत, चीन और देश के अन्य भागों से व्यापारिक सम्बन्ध थे। इस तथ्य के ऐतिहासिक प्रमाण महाभारत, हर्षचरित, वृहत्संहिता, आदि में दृष्टिगत होते हैं। इसके अतिरिक्त ग्रीक इतिहासकारों द्वारा भी तिब्बत से पशुचारकों के व्यापार से आयातित वस्तुओं का उल्लेख किया गया है। तिब्बत के साथ पशुचारकों के साथ व्यापार हर्ष क शासन काल तक तो निर्वाध गति के साथ होता था, परन्तु हर्ष की मृत्यु के बाद तिब्बत में भोत्तु राज्य की स्थापना के पश्चात परिस्थिति में कुछ परिवर्तन आया। सन् 1670 में कुमायूँ के चन्द शासक बाजवहादुर के चन्द के तिब्बत अभियान के पश्चात व्यापार पुनः अनुकूल परिस्थिति में आ गया।

उत्तरी भारत तथा पश्चिमी तिब्बत के मध्य व्यापारिक अन्तः सम्बन्धों में भी पशुचारक समुदाय की स्थिति अत्यधिक महत्वपूर्ण थी। प्रथम शताब्दि में कुणिन्दो द्वारा कुषाणों का आधिपत्य स्वीकार किये जाने के बाद भारत और मध्य एशिया के व्यापारिक मार्गों पर लुटेरों और आक्रमणों के उत्पात कम होने के साथ–साथ पशुचारकों से तिब्बत व्यापार को बहुत प्रोत्साहन मिला। उस समय भी भारत–तिब्बत व्यापार की बस्तुओं में ऊन, समूर की खालें, कस्तूरी, सुहागा, चंवर की पूंछ, तिब्बती नमक, तिब्बती कुत्तों तथा हिमालय क्षेत्र की महत्वपूर्ण जडी–बूटियों को शामिल किया जाता था। भ्रमण कारी व्यापारी सर्दियों में निचली मैदानी घाटियों में आ जाते थे तथा गर्मियों में तिब्बत तक की उंची चोटियों तक जाते थे। वस्तुतः पशुचारकों की आजीविका का प्रमुख आधार ही व्यापार रहा है। पशुचारकों की अर्थव्यवस्था तिब्बत एवं नेपाल के साथ व्यापार पर आधारित रही है। परिवर्तनकारी ग्रामवासी, उंटधुरा, दारमा, ख्याला, लिपु–लेख, लिम्यालेख, नीति, माणा, आदि गिरीद्वारों से होकर तिब्बत की व्यापारिक मण्डियों तक पंहुचते थे।

भोटांतिक पशुचारकों का तिब्बत से व्यापार करने का ढंग अति रोचक था। प्रत्येक भोटांतिक का तिब्बत में अपना एक 'मुससे' या व्यापारिक मित्र होता था जो उस भोटांतिक की व्यापारिक वस्तुए जौ, फाफड़, अन्न, गुड़ वस्त्र आदि खरीदता था। तथा उसके बदले में भोटांतिक को अपनी व्यापारिक वस्तुऐं नमक, सुहागा, और ऊँन आदि देता था। भोटांतिक और डोकपा(तिब्बती) पशुचारकों की यह मित्रता कई पीढ़ियों तक चलती थी। और वे पारिवारिक मित्र भी होते थे।

प्राचीन काल में भोटांतिक प्रदेश और तिब्बत के बीच 'सिंगच्याद' प्रथा से व्यापार होता था। जो व्यक्ति व्यापारिक मित्रता जोड़ना चाहते थे, वे किसी छोटी लकड़ी के दो टुकड़े करके अपने पास रख लेते थे। छल कपट का संशय होने पर

---

* संविदा प्राध्यापक, इतिहास विभाग, राजकीय महाविद्यालय, गैरसैंण, चमोली, उत्तराखण्ड

ये लकड़ी के टुकड़े साक्षी या प्रमाण माने जाते थे, इसके अलावा देव मूर्ती या धर्म पुस्तक सिर पर रखकर व्यापारिक मित्रता की प्रतिज्ञा की जाती थी।

औपनिवेशिक समय में भूटांतिक पशुचारकों एवं डोकपा पशुचारकों के बीच प्रचलित व्यापार पद्धति को गमग्या– व्यापार पद्धिति कहा जाता था। गमग्या उस प्रतिज्ञा पत्र का नाम है। जो दोनो मित्रों के बीच व्यापार आरम्भ करने के लिये लिखा जाता था। यह दो फीट लम्बे और चार इंच चौड़े पहाडी कागज पर गढ़वाली तथा तिब्बत (हूणदेश) की भोट भाषा में लिखा जाता था।

इनमें मित्रों के नाम, पते और मित्रता के नियम लिखे जाते थे, भोटांतिक पशुचारक इस पर हस्ताक्षर करता था और तिब्बती (हूणिया) मुस्से(व्यापारिक मित्र) अपनी मोहर लगाता था। साक्षी के लिये एक छोटी सी लकड़ी और एक छोटे से पत्थर को तोड़कर उनका एक–एक टुकड़ा दोनो मित्र अपने पास रख लेते थे। मित्र मित्रता करते समय सुलजी–मुलजी की परम्परा थी। इसके अन्तर्गत दोनो मित्र एक ही प्याले से छंग(जौ की मदिरा) या छा(चाय) पीते थे। भोटांतिक अपने मुस्से को एक स्वेत कपड़ा या रुमाल या विशेष प्रकार की पगड़ी देता था और इस समय व्यापारिक वस्तुओं की अदला–बदली भी की जाती थी। एक बार 'गमग्या' लिख लेने पर पीढ़ियों तक मित्रता चलती थी।

इसी प्रकार तिब्बती मुस्से भी अपने भोटांतिक मित्र के घर पहुँचता था। तो उसका 'खम्–जम्' से स्वागत अभिवादन किया जाता था, इस अवसर पर मुस्से अपने भोटांतिक मित्र को समूण (याददाश्त हेतु दिया गया उपहार) भेट के रुप में छुरा–खुद (सूखे मट्ठे का चूरा तथा घी–गुड़ मिली मिठाई) देता था। मुस्से की लायी हुई वस्तुओं के बदले निश्चित दर पर अन्न आदि दिये जाते थे तथा पुरानी प्रथा के अनुसार मेंढें की ऊन का मूल्य केवल आठ आना दिया जाता था। मुस्से के लौटने के समय उसे भी समूण के रुप में मिश्री, छुहारे, बादाम, और खाजा (भुने चाँवल) दिये जाते थे।

घोष यात्रा एवं बुग्यालों (चारागाह) में अपने पशुधन की रक्षा हेतु भोटांतिक और खड़वाल पशुचारक पशुझुंण्डों के साथ भोटिया कुत्ते भी रखते थे। सुअर, भालू, और ब्याघ्रों द्वारा पशुधन पर हमला किये जाने पर ये अपने प्राण देकर भी उनकी सुरक्षा करते थे। ये दिन भर सोते है। और रात भर पशुझुंण्ड की रक्षा हेतु तत्पर रहते है। इन भोटिया कुत्तों की ख्याति दूर–दूर तक फैली थी। रोमन वासी अपने कुत्तों की नस्ल सुधारने के लिये भारत–तिब्बतीय (भोटिया) कत्तों को आयात करते थे।





सोलहवीं सदी में गढ़वाल में अजयपाल ने और कुमायूँ में चन्द नरेशों ने भोटांतिक प्रदेश पर अपनी सत्ता स्थापित कर ली थी। फिर भी भोटांतिको का सामाजिक नियंन्त्रिण बुढेरों द्वारा ही होता था। पश्चिमी तिब्बत में गूगा और दापा के सरदार तथा लुटेरें बार–बार भोटांतिक प्रदेश पर छापे मारकर अवैध वसूली किया करते थे। जिसे रोकने के लिये गढ़ नरेश अजयपाल, सहजपाल, मानशाह, श्यामशाह, फतेहशाह तथा कुमायूँ नरेश बाज बहादुर के दापा नरेश से युद्ध हुए थे। मानशाह ने दापा नरेश काकुवा मोर को पराजित करके उसे कर देने तथा लूटमार बन्द करने हेतु विवश किया था। कुछ तिब्बतीय ग्रंथों के आधार पर कतिपय विद्वानों का अनुमान है कि आठवीं–नौवीं शताब्दीयों में हिमालय की ऊपरी घाटियों पर तिब्बत का अधिकार हो गया था, किन्तु भारतीय इतिहास में इसकी पुष्टि नही होती है। सम्भवतः तिब्बतीय लुटेरों द्वारा निरंन्तर भोटातिक क्षेत्र पर छापे मारे जाने से यह भ्रान्ति उत्पन्न हुई होगी।

1803 ई. में यह क्षेत्र गोरखों के आधीन हुआ एवं 1815 ई. में इस प्रदेश पर ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन की स्थापना हो गयी थी। 1850 ई. के बाद भोटांतिकों का व्यापार प्रर्याप्त शिथिल हो चुका था और वे केवल नमक, सुहागा, ऊन, ऊनी वस्त्र चंवर, बाज पक्षी, कस्तूरी, गुच्छी, च्यों, जड़ी–बूटियाँ, चमड़ा, और कपड़ा रंगने के लिये छालें, गोद, मोम , शहद, बिरोजा, अखरोट, भोजपत्र, हुक्के की नलियों और बाँसुरीयों के लिये रिंगाल आदि बेचकर आजीविका चलाते थे।

भोटांतिक तथा खड़वाल पशुचारक सुविधानुसार हल्दी, लाल मिर्च, अदरख कत्था, लाख, भांग के वस्त्र, चमड़े के सामान, पहाड़ी कागज, व्याघ्र, हिरन, और उदबिलाऊ की खाले तथा अच्छी किस्म का तंम्बाकू 'भमाकू' लकड़ी और बांस के बर्तनों , तांबे की गागरों और खुखरीयों आदि का व्यापार करते थे। तिब्बत से वह चीन की चाय को दूमा में भरकर आयात करते थे और उसे नजीबाबाद, देहरादून और हरिद्वार की मंडियों में बेचते थे।

एटकिंसन के अनुसार– भारत–तिब्बतीय व्यापार में सामान्यतः नमक एवं सुहागे का विनिमय खाद्यानों के द्वारा किया जाता था। किन्तु भारतीय मुद्रा भी तिब्बतीय मंडियों में स्वतंन्त्रता पूर्वक स्वीकार की जाती थी। तिब्बत का नकतांग(टंका) भारत की अठन्नी के बराबर समझा जाता था किन्तु कालान्तर में चीनी डालर (ध्यांग) का प्रचलन होने से भोटांतिक पशुचारकों को इसके लिये तीन भारतीय रुपयों को देना पड़ता था।

अतः स्पष्ट होता है कि पशचारक समुदाय को एक व्यापारी समुदाय के रूप में पहचाना जाता था। जिनका व्यापार अर्न्तराष्ट्रीय स्तर पर प्रवर्जन प्रक्रिया के रूप में देखा जाता है। ये लोग ऋतु परिर्वतन के साथ अपना व्यापार तिब्बत जैसे ठण्डे व उंचे प्रदेशों में तथा भारत के निचले व हिमालय से लगे मैदानी भागों से किया करते थे। वे ही भारत तथा तिब्बत की सीमा से लगे क्षेत्रों के एकमात्र व्यापारी हुआ करते थे।

पशुचारक समुदाय के तिब्बत से व्यापार के एकाधिकार के चलते वे गढ़वाल तथा कुमायूँ में सबसे अधिक सम्पन्न थे। वाल्टन ने लिखा है कि गढ़वाल के उत्तरी छोर पर जो पशुचारक निवास करते हैं वे अन्य गढ़वालियों की अपेक्षा खाद्य, वस्त्र, आवास एवं अन्य भौतिक साधनों से सम्पन्न हैं।

वास्तव में यह कथन सत्य ही प्रतीत होता है। क्योंकि भ्रमणकारी व्यापारी होने के कारण पशुचारक शरद ऋतु में तिब्बत से आयातित माल को हिमालय की तलहटियों से लगे मैदानी व मोटर मार्गों से जुडे घनी आवादी वाले व्यापारिक केन्द्र जिनमें कुमायूँ एवं गढ़वाल मण्डलों के जौलजीवी, बागेश्वर व गौचर में लगने वाले व्यापारिक मेले तथा गढ़वाल क्षेत्रों में अन्य स्थानों पर लगने वाले सांस्कृतिक मेलों में अपना सामान बेचा करते थे। इन अवसरों पर वे स्वयं निर्मित तथा तिब्बत एवं नेपाल से आयातित ऊनी वस्त्रों जैसे पंखी, शाल, पाखले, थलाम, दन, कालीन, स्वेटर तथा जडी–बूटियां का विक्रय करते थे।

इन मेलो में जो प्राय एक महीने तक चलते थे बाहरी व्यापारिक वर्ग तथा स्थानीय पर्यटक भी कुछ न कुछ खरीदने व निर्यात करने अवश्य आया करते थे। इसके अतिरिक्त सम्पूर्ण शरद काल में विभिन्न कस्बों तथा गढ़वाल की मण्डियों में

भी पशुचारक व्यापारी स्वनिर्मित ऊनी वस्तुओं व तिब्बत से आयातित माल को बेचा करते थे और उससे प्राप्त धन तथा वस्तुओं से पुनः तिब्बत की मण्डियों में आपूर्ति कर जाने वाली वस्तुओं को भी जुटा लिया करते हैं।

आज भी सूदूर क्षेत्रों में पशुचारकों के परम्परागत आवास, उनके परम्परागत सोने, चांदी के आभूषण, खाने–पीने के चांदी के मडे बर्तन इस तथ्य की पुष्टि करते हैं कि वे अतीत में अधिक अर्थ सम्पन्न रहे होंगे। विकट भोगोलिक परिवेश में रहते हुये भी पशुचारक समुदाय एक सक्षम कुशल व्यापारी वर्ग रहा है। व्यापार को अपनाने के पीछे इस समुदाय के चाहे जो भी व्यक्तिगत अथवा पैतृक कारण रहे हों लेकिन इतना तो निर्विवाद सत्य है कि कृषि तथा अन्य व्यवसायों के अनुकुल न होने के कारण ही उन्हें व्यापार को ही अपनाना पडा।

सन् 1962 ई. के बाद तिब्बत से व्यापारिक सम्बन्ध विच्छेद हो जाने के बाद पशुचारक समुदाय के समक्ष जीविका की समस्या विकराल रूप से उभरकर सामने आयी। लेकिन कर्मठ, परिश्रमी, चतुर, एवं साहसी पशुचारक समुदाय ने जहां एक ओर स्वयं भेड–पालन व ऊन उद्योगों को जीवित रखने का प्रयास किया है, वहीं दूसरी ओर उन्होंने अपने शीतकालीन तथा ग्रीष्म कालीन आवासों की जलवायु के अनुरूप कृषि कार्य को तुलनात्मक रूप में अधिक बडे पैमाने पर सम्पन्न करना आरम्भ किया है।

फलतः ऊंची–ऊंची पर्वत श्रेणियों के ढलानों पर सीढी नुमा खेतों का क्षेत्रफल बढ़ता चला गया तथा शरद कालीन आवासों में उपलब्ध भूमि का अधिक से अधिक कृषि उपयोग होने लगा। अधिक ऊंचाई वाले क्षेत्रों में फाफर, ओगल, उवा, चीणा, आलू, चौलाई, गेंहु, जौ, मंडुवा, भटट, मादूरा, उडद, तथा मौसमी सब्जियों का उत्पादन किया जाने लगा है। प्रायः ऊंचे बर्फीले क्षेत्रों में अर्थात ग्रीष्म कालीन आवासीय क्षेत्रों में वर्ष भर दो फसलें उगाई जाती हैं।

20वीं सदी के छठे दशक में पशुचारक समुदाय की गिरती आर्थिक स्थिति को देखते हुये, इसमें सुधार करने तथा पशुचारकों के बहुमुखी विकास हेतु सरकार द्वारा कुछ सराहनीय कदम उठाये गये। सन् 1967 ई0 में पशुचारक समुदाय को जनजाति में शामिल किया गया। सरकार द्वारा लिये गये इस सृजनात्मक एवं कल्याणकारी निर्णय से पशुचारकों के सामाजिक तथा आर्थिक जीवन में विकास का एक नया अध्याय जुड गया। अनुसुचित जनजाति का दर्जा दिये जाने से जहां उन्हें विभिन्न क्षेत्रों में विकास हेतु विभिन्न सुविधाएं प्रदान की गई, वहीं कृषि कार्यों को सम्पादित करने के लिए उन्हें अनुदान प्रदान किये गये। जिससे कृषि और उससे जुडे व्यवसाय उनके आर्थिक जीवन में कुछ सुधार लाया जा सके। लेकिन शासन की इन कृषि विकास सम्बन्धी योजनाओं का इस समुदाय को विशेष लाभ नहीं हो पाया है, क्योंकि भौगालिक जलवायु एवं अन्य प्रकृतिक कारण सदैव कृषि पैदावार के मार्ग में बाधक रहे हैं।

पशुचारकों के जीविका के अन्य व्यवसाय ऊनी वस्त्र उद्योग पर भी प्रतिकूल प्रभाव पडा है। पूर्व में पशुचारक समुदाय की जीविका का प्रमुख स्रोत ऊनी वस्त्र उद्योग रहा है। तिब्बत से व्यापार बन्द होने से पूर्व इन्हें तिब्बत से सस्ता व अच्छी किस्म का कच्चा ऊन प्राप्त हो जाया करता था। स्ट्रेची ने लिखा है कि

तिब्बत व्यापार में ऊन का व्यापार पशुचारकों के आर्थिक जीवन का प्रमुख आधार है। परन्तु तिब्बत से व्यापार बन्द हो जाने पर इनके सामने सबसे बडी बाधा कच्चे माल की पैदावार हो गई।

परन्तु फिर भी उनकी उत्कृष्ट कारीगरी के नमूने अभी यदा–कदा देखने को मिल जाते हैं। क्योंकि इस कारीगरी को जीवित रखने तथा जीविकोपार्जन के एक प्रमुख उपयोगी स्रोत के रूप में इसके अस्तित्व को बनाये रखने के लिए स्वयं पशुचारक समुदाय तथा शासन द्वारा सत्त प्रयत्न किये जा रहे हैं।

फिर भी शासन द्वारा पशुचारक क्षेत्रों में विभिन्न जगहों पर जिला उद्योग केन्द्रों की स्थापना करके ऊनी वस्त्र उत्पादन हेतु पशुचारकों के लिए प्रशिक्षण केन्द्रों की व्यवस्था की गयी है, साथ ही ऊनी वस्त्रों में मुख्य रूप से हथ–करघा पर काम करने, डिजायन देने तथा बुनाई का प्रशिक्षण दिया जा रहा है। प्रशिक्षण प्राप्त कुछ व्यक्ति इन्हीं उद्योगों में मजदूरी पर कार्य कर रहे हैं तथा कुछ अपना व्यवसाय भी चला रहे हैं। इसके अतिरिक्त बाजार की अनुपलब्धता के कारण पशुचारकों द्वारा तैयार ऊनी वस्त्रों का सही पारिश्रमिक भी इन्हें नहीं मिल पाता, जिससे कि इस उद्योग से पशुचारक समाज का मोह भंग हो रहा है।

सन्दर्भ :

1. भण्डारी, जे. एस. : वॉडर लैण्ड कम्युनिटी आफ इण्डिया,
2. लोकोक्ति–स्वरू पुमच्चरी तिगछाकू, माटी यामच्छरी रा छाकू
3. नागेन्द्र, एस.पी. : कान्सेप्ट आफ रिच्चुवल इन मार्डन सोशियॉलाजिकल थ्योरी
4. मजमूदार, आर.सी. : रेसेज एण्ड कल्चर ऑफ इण्डिया
5. रायपा, रतन सिंह–शौका सीमावर्ती जनजाती
6. एटकिंसन, ई.टी. : हिमालयन डिस्ट्रिक्ट गजेटियर, खण्ड–1, खण्ड–2,खण्ड–3
7. राहुल, राम–हिमालयन वॉडर लैण्ड
.8. विष्ट, बी.एस. : उत्तराखण्ड की भोटिया जनजाति
9. डबराल, शिवप्रसाद–उत्तराखण्ड के
10. वाल्टन, एच.जी. : ब्रिटिश गढ़वाल गजेटियर
11. मुखर्जी, आर.के. : इण्डियन शिपिंग
12. सांकृत्यायन, राहुल– गढ़वाल,
13. मजूमदार और पुसालकर–द वैदिक ऐज
14. विलियम्स, जे.पी.सी. : हिस्टोरिकल एण्ड स्टैटिकल मैमियैर ऑफ देहरादून,
15. बैकेट, जे.ओ.वी. : गढ़वाल सैटलमेन्ट रिपोट
16. पौ, ई.के. : गढ़वाल सेटलमेन्ट रिपोर्ट
17. डबराल, शिव प्रसाद–उत्तराखण्ड का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास, भाग–8,
18. जौहरी, सीताराम : आवर वॉडर लैण्ड
19. पांगती, धनसिह : नवीन भूगोल, जिला पिथौरागढ

***

मुरिया जनजाति बस्तर अंचल में गोटुल प्रथा के इतिहास का एक अध्ययन

डॉ. भावना खरे *
शोभाराम डेहरिया **

(1) प्रस्तावना :– भारत के इतिहास में अनेकता में एकता ही भारतीय संस्कृति है। और उस अनेकता में मूल रूप से निश्चित रूप से हमारे भारत के विभिन्न प्रदेशों में विभिन्न राज्यों में विभिन्न जिलों में, विभिन्न क्षेत्रों में कई जनजातियां विद्यमान है। ये जनजातियां विभिन्न क्षेत्रों में रहते हुए अपनी संस्कृति,परंपराएं अपने रीति–रिवाज, अपनी भाषाएं, का इतिहास एवं अनेकों विशिष्टताओं को संजोए हुए है। भारतीय सस्कृति को एक विशिष्ट संस्कृति का रूप देने में अपना एक महत्वपूर्ण स्थान रखती है।

अध्ययन कर्ताओं द्वारा बस्तर अंचल के नारायणपुर जिला में निवासरत मुरिया जनजातीयों की गोटूल प्रथा का अध्ययन किया गया है। वर्तमान में गोटूल संस्था का कार्य सीमित या नही के बराबर हो गया। गोटूल प्रथा विवाह संस्था के रुप में कार्य करती थी ओर प्रतातांत्रिक तरीके से विवाह की स्वतंत्रता बस्तर में सदियों के मुरिया जनजाति के युवक युवतियों को देती थी।

(2) घोटूल शब्द :– गोटुल एवं घोटुर दोनों शब्दों का प्रयोग इस हेतु किया गया है **डॉ बिजय बघेल** अपनी पुस्तक में लिखते है कि, **''बस्तर अंचल की नारायणपुर तहसील में गोंड़ जनजाति की एक शाखा मुरिया जनजाति निवास करती है। इस जनजाति की अनेक विशेषताओं में से सर्व प्रमुख है, इसकी संस्था गोटुल। जिसे अधिकांश लेखक भ्रमवश घोटुल लिखा है, वास्तव में यह गोटुल है।''**

बस्तर अंचल का अध्ययन करने वाले अमेरिकन लेखक **एल्विन** अपने वृहदकार ग्रंथ में **घोटुल (Ghotul)** शब्द का उपयोग किया है। परन्तु वास्तव में यह गोटुल संस्था है।

(3) गोटुल की उत्पत्ति : गोटुल की उत्पत्ति के बारे में गंगाले के मतानुसार – गोटुल शब्द गो + टुल इन शब्दों से मिलकर बना है। गो माने गोंगा अर्थात दुख एवं क्लेश निवारण शक्ति और टुल माने ठिया या ठाना जिसका अर्थ स्थल कहा जाता है। इस तरह गोटुल का अर्थ गोंगा स्थल अर्थात विद्या स्थल होता है।

(गंगाले चंद्रलेखा– लेख पहाड़ी कुमार लिंगो का गोटुल तत्वसान गोंडवाना सगा जनवरी 1987)

---

* प्रभारी अध्ययन केन्द्र 484, छपारा, अटल बिहारी वाजपेयी हि.वि.वि. भोपाल।

** सहायक प्राध्यापक एवं पूर्व विभागाध्यक्ष (समाज कार्य), बस्तर विश्वविद्यालय जगदलपुर, छत्तीसगढ़

अध्ययन क्षेत्र का परिचयः– मध्यप्रदेश से पृथक राज्य के रुप में छत्तीसगढ भारत का 26 वां राज्य के रुप में 1 नवम्बर 2000 को अस्तित्व में आया। छत्तीसगढ़ राज्य वैसें भी आदिवासी बहुल्य क्षेत्र है साथ ही जब बस्तर अंचल या संभाग का नाम आता है, बस्तर अंचल सामाजिक अध्ययनकर्ता व शोधार्थियों को बस्तर के जनजातीय संस्कृति एवं परम्पराओं को देश विदेश में अलग पहचान मिली है एवं बृहद इतिहास बस्तर अंचल का है। यहां अधुनिक इतिहासकारों एवं समाज वैज्ञानियों के लिए अध्ययन की असीमित संभावनाएँ।

बस्तर शांति और सादगी के साथ अपने भोले–भाले पन के लिए जाना जाता है। आदिवासी संस्कृति के साथ ही कलाकृतियॉ बस्तर की बहुत ही मशहूर है। आदिवासी नृत्य, ढोल नगाड़े, पहनावा, खानपान, भाषा एवं आदिवासी समाज की व्यवस्था में कई परम्परागत संस्था लोकतंत्रीक तरीके से कार्य करते आयी है। नारायणपुर बस्तर अंचल का आदिवासी बहुल्य जिला है यहां की मुरिया जनजाति में प्राचीन काल से गोटूल प्रथा का इतिहास रहा है। जिसका वर्णन प्राचीन काल के इतिहासकार एवं समाजशास्त्रीयों द्वारा किया गया है।

उपकल्पनाः–

(1) मुरिया जनजाति में गोटूल प्रथा/संस्था के इतिहास का अध्ययन करना।
(2) मुरिया जनजाति में सामाजिक मान्यता का होती है।
(3) गोटूल प्रथा युवक युवतियों के विवाह की लोकतांत्रिक व्यवस्था है।
(4) गोटूल संस्था समाप्ति की कगार में है।

(1) मुरिया जनजाति का एक परिचय :– बस्तर अंचल के नारायणपुर तहसील के गौंड जनजाति की एक शाखा ''मुरिया'' जनजाति निवास करती है। बस्तर अंचल छत्तीसगढ़ राज्य के विभिन्न क्षेत्रों में अनेक जनजातियों का सांस्कृतिक समागम है। जिसमें से एक है मुरिया जनजाति जो कि अपनी एक विशिष्ट पहचान रखती है।

मुरिया जनजाति सामान्यतः बस्तर अंचल के नारायणपुर एवं कोंडागांव तहसील में निवास करने वाली एक अपना विशेष महत्व रखने वाली रखने वाली जनजाति है। मुरिया जनजाति एक समझदार सबसे सुसंस्कृत सभ्य जनजाति मानी जाती है। ये कला एवं संगीत के प्रेमी होते है।

(2) वेरियर एल्विन के अनुसार :– मुरिया शब्द की उत्पत्ति 'मु' अर्थात 'पलास' का वृक्ष या 'मुर' अर्थात मुर अर्थात् मुल शब्द से हुई है एल्विन को इस बात पर आश्चर्य हुआ है कि पलास वृक्ष से मुरिया को क्यों जोड़ा गया, पलास न तो मुरिया लोगों की पहचान है न कोई विशेष महत्व यह वृक्ष मुरिया क्षेत्र में बहुलता में मिलता भी नहीं है। ''मुर'' का मूल अर्थ या स्थायी अर्थ महत्व नहीं रखता है। (एल्विन वेरियर – द मुरिया एण्ड देयर घोटुल) बस्तर के मुरिया अंचल में निवास करने वाली मुरिया जनजाति अपनी

उत्पत्ति के विषय में बताती है कि– बस्तर के राजाओं ने गोंडों को नांझी मुखिया बनाया और हमें मुखिया नाम से संबोधित करते थे, यही मुखिया शब्द प्रचलन में धीरे–धीरे आते–जाते मुरिया शब्द में बहल गया।

(3) गोटुल का कार्य :– गोटुल अविवाहित मुरिया जनजाति के युवक युवतियों व बालक बालिकाओं का एक संगठन है। जो रात्रि में सामुहिक चयन स्थल के रूप में प्रयुक्त होता है। जहां किस्से–कहानियॉ, गीतों, खेल–खेल, में मुरिया विरासत और जीवन मूल्यों की जानकारी ही जाती है।

कुमार चंद घोटुल के बारे में अपना मत व्यक्त करते है कि, घोटुल में शारीरिक संबंधों की स्वच्छंता हो ऐसा नहीं है। मन पसंद जोड़ियां अपने अपने ठिकानों पर यौन तुष्टि करती हो वह थोथी, मिथ्या, झूठी, सुनी सुनाई और मनगढ़न्त कहानी है। (कुमार चंद, घोटुल एक जीवंत सामाजिक संस्था नव भास्कर रायपुर दीपावली विशेषांक –1990)

(4) घोटुल की उद्देश्य :–

(1) यौन संबंध की जानकारी से पृथक रहना।
(2) उचित शिक्षा दिलाने हेतु।
(3) सामाजिक की शिक्षा देना।
(4) सेवाभाव जागृत करना।
(5) जीवन साथी चुनने का लोकतांत्रिक तरीका में सहायक।

(5) घोटुल के प्रकार :– एल्विन ने घोटुल के दो प्रकार बताये है–

(1) जोड़ीदार घोटुल।
(2) मुडी बदलने वाला या अदल–बदल गोटुल।

(1) जोड़ीदार घोटुल :'– एक लड़का किसी निशिचत 1 लड़की से संबंध बनाता है और प्रतिरात्रि वह उसके साथ सोता है।

(2) मुडी बदलना :– कोई 1 लड़का किसी एक लड़की के साथ 3 रात्रि से अधिक व्यतीत नहीं कर सकता। लेकिन नारायणपुर अचंल के सर्वेक्षण से यह स्पष्ट रूप से परितात हुए। इस प्रकार के गोटुल है ही नहीं।

(6) घोटुल के पदाधिकारी :–

(1) मांझी (2) दीवान (3) कोटवार (4) सिलेदार

(7) घोटुल की गतिविधियॉ :– गोटुल की गतिविधि 2 भागों में विभाजित है–

(1) नियमित (2) वार्षिक

(1) नियमित :– गोटुल एक सतत चलने वाली संस्था है। प्रतिदिन यही समागम होता है। गोटुल मुरिया जनजातियों का सर्वोप्रिय है।

(2) वार्षिक गतिविधि :– नियमित के अलावा गोटुल की वार्षिक गतिविधि भी होती है– 1. विवाह 2. जातरा 3. हलकी नृत्य 4. दीवाड नृत्य 5. पूरा कोलांग 6. होखा नृत्य 7. गोंडी नृत्य।

गोटुल का महत्व :– नारायणपुर अचंल में गोटुल संस्था की जड़े बहुत ही गहरी जमी हुई है। इस संस्था की उत्पादकता ही इसकी निरस्तता का कारण रही है। यह संस्था मुरियों को अपने भैंसों के सींग और उड़द दाल

जैसे प्रिय है वास्तव मे गोटुल मुरिया जनजाति समाज का सामा. सास्कृतिक एवं अन्य मूल्यों की जीवन्नता की प्राण वायु की तरह महत्वपूर्ण है।

निष्कर्ष –: किसी भी जाति, जनजाति की संस्कृति, रीतिरिवाज, परंपराएं अपने आप में एक विशिष्ट महत्व रखती है। इसी प्रकार मुरिया जनजाति की घोटुल प्रथा भी महज नाम नहीं है, बल्कि एक समाज, एक जातीय एक सांस्कृतिक आस्मिता का आधार स्तंभ है। एक प्रतिनिधि संस्था, जो कई शताब्दियों से इस जनजातीय समाज का महत्वपूर्ण ही नहीं बल्कि हदय स्थल है जहां लोकतांत्रिक तरीके से विवाह के लिए योग्य युवक युवती अपने जीवन साथी तय करते है यहां समस्त मूल्यों का संचार होता है। गोटुल को मात्र मनोरंजन करने वाली, खेलकूद, नृत्य, संगीत संस्था मानकर अपने कर्तव्यों का इति श्री नहीं किया जाना चाहिए बल्कि विविध पक्षों से गोटुल की स्वच्छता को अनिवार्यतः स्वीकार किया जाना चाहिए एवं इसके अस्तित्व की सदैव रक्षा की जानी चाहिए।

सन्दर्भ :

1. डॉ. विजय बघेल : छत्तीसगढ की मूरिया जनजाति का सांस्कृतिक इतिहास, शताक्षी प्रकाशन रायपुर, 2018.
2. हसनैन नदीम, (2004) : "जनजाति भारत", जवाहर पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली।
3. जी.आर मदन : समाज कार्य, विवेक प्रकाशन, दिल्ली।
4. बाजपेयी, डॉ. एस.आर. : सामाजिक अनुसंधान तथा सर्वेक्षण, किताब घर, कानपुर–2007, पृ. 233.
5. बी.के. श्रीवस्तव : इतिहास, साहित्य भवन, 2012.
6. महाजन डी एण्ड महाजन के (2011) : "जनजाति का समाज का समाजशास्त्र", विवेक प्रकाशन जवाहर नगर दिल्ली–7.
7. उपाध्याय वी.एस. पाण्डेय जी (2002) : "जनजाति विकास", मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी भोपाल।

***

प्रतिज्ञायौगन्धरायण में भावाभिव्यक्तियाँ : एक संक्षिप्त अध्ययन

डॉ. नमिता अग्रवाल *

सम्पूर्ण प्राणियों में भाव विद्यमान होते हैं और भावों की ही सर्वत्र पूजा होती है– ''भावो सर्वत्र पूज्यते''। इस संसार में भावाभिव्यक्तियाँ अनेकधा अनुभूयमान होती हैं। कहीं पर प्रेम के भाव अनुभूयमान होते हैं, तो कहीं पर माधुर्य के, तो कहीं पर क्रोध आदि के भाव मनोगत होते हैं।

प्रतिज्ञायौगन्धरायण महाकवि भास का राजनीतिक ग्रन्थ है। भाव के विषय में कहा जाता है कि वे भावनाओं के कवि हैं। प्रतिज्ञायौगन्धरायण में त्याग, प्रेम, क्षमा, स्नेह, औदार्य, पतिव्रतत्व, पितृ प्रेम, स्वामिभक्ति आदि भाव दृष्टिगत होते हैं। राजनीति को रसविहीन व संवेदनहीन माना जाता है। ऐसी नीरस पृष्ठभूमि को आधार बनाकर महाकवि ने प्रस्तुत ग्रन्थ में अपने वर्णन कौशल से अनेक भावों की अभिव्यक्तियाँ की हैं। यौगन्धरायण ऐसा पात्र है जिसमें देशभक्ति की भावना कूट–कूट कर भरी पड़ी है। उदयन को जब बन्दी बनाया जाता है तो यौगन्धरायण उन्हें मुक्त कराने की भावना से प्रतिज्ञा करता है– ''यदि शत्रुबलग्रस्तो ... नास्मि यौगन्धरायणः''।[1]

स्वामिभक्त यौगन्धरायण में आवेश की भावना सहजरूपेण परिलक्षित होती है। जब उदयन बन्दी बना लिया जाता है तब यौगन्धरायण उनके साथ रहने का इच्छुक रहता है– ''रिपुनगरे ... श्लाधनीयम्''।[2] सेवक में अपने स्वामी के प्रति कैसी निष्ठा व कर्तव्यपरायणता होनी चाहिए, उपर्युक्त स्थल में देखने योग्य है।

प्रतिज्ञायौगन्धरायण में पारिवारिक भावना भी पूर्णरूपेण भावित है। द्वितीय अंक में ऐसा उल्लेख मिलता है कि महासेन व अंगारवती अपनी पुत्री वासुवदत्ता के परिणय हेतु चिन्तित दिखते हैं। राजा बादरायण से पुत्री वासवदत्ता के लिए सुयोग्य वर की चाह अभिव्यक्त करता है।[3] इसी प्रसंग में राजा का कथन है कि पुत्री का सुख उसके भाग्य पर निर्भर करता है, इससे भाग्यवादी भावना स्पष्ट होती है– ''कन्याया वरसम्पत्तिः ... चान्यथा''।[4]

पुत्री के पाणिग्रहण से पिता को कहीं संतुष्टि मिलती है तो कहीं उसके वियोग से दुख की प्राप्ति होती है– ''अदत्तेत्यागता ... मातरः''।[5] प्रतिज्ञायौगन्धरायण में वात्सल्य भावना के अनेक उदाहरण मिलते हैं, वासवदत्ता के प्रति रानी अंगारवती का वात्सल्य भाव भारतीयों की वात्सल्य भावना का आदर्श है। भारतीयों में ऐसी अवधारणा है कि हर पुत्री का विवाह गुणी व्यक्ति के साथ हो, जल्दबाजी में किये गये निर्णय ठीक नहीं होते। रानी, राजा से कहती है कि पुत्री का विवाह तो अनिवार्य कार्य है, किन्तु

---

* एसोसियेट प्रोफसर, संस्कृत, अतर्रा पी.जी.कालेज, अतर्रा बाँदा (उ.प्र.)

विवाहोपरान्त वियोग अत्यन्त पश्चाताप कारक होता है– ''अभिप्रेत में ... सन्तापयति''।[6]

पुत्री के विवाह के सन्दर्भ में प्रायः प्रत्येक घर में यह चर्चा होती है कि पुत्री को ऐसे वर के हाथ में सौपा जाय, जिससे वह आजीवन सुखी रहे, ऐसी ही भावना भावित है।[7] जब बन्दी वत्सराज के युद्ध में घायल होने की सूचना महासेन को मिलती है तो वह करूणामयी भावना से युक्त होकर उनकी चिकित्सा की व्यवस्था करता है।[8]

प्रतिज्ञायौगन्धरायण की पृष्ठभूमि मूलतः राजनीति है, फिर भी इसमें सौन्दर्य बोध भी जगह–जगह प्रस्फुटित होता है। इस नाटक में सौन्दर्यबोध मुख्यतः उदयन के स्वरूप तथा यौगन्धरायण के कार्यशैली पर आधृत है। राजनीति के हृदयहीन पद पर सौन्दर्यबोध स्वाभाविक रूप में चित्रित है।[9] इस नाटक में प्राकृतिक सौन्दर्य–बोध नागवन तक वर्णित है।[10]

नागवन में हंसक द्वारा घटित घटना भी पर्याप्त सौन्दर्य की भावना से ओत–प्रोत है।11 उदयन के सौन्दर्य का वर्णन जब यौगन्धरायण करता है तो वह सौन्दर्य भावना का एक अनूंठा चित्रण होता है।[12]

प्रतिज्ञायौगन्धरायण में प्राकृतिक भावाभिव्यक्तियाँ भी परिलक्षित होती हैं। महाकवि भास प्राकृतिक चित्रणों के सिद्धहस्त कवि हैं। प्राकृतिक–चित्रण की दृष्टि से प्रस्तुत नाटक में अल्प वर्णन उपलब्ध होते हैं। मेरी दृष्टि में नागवन के वर्णन में ही प्राकृतिक चित्रण है।[13]

संस्कृत भाषा अपनी सूत्रात्मक शैली के लिये प्रसिद्ध है। इस भाषा में स्वभावतः कोमल व माधुर्य गुण समाहित रहते हैं। इस भाषा का सम्बन्ध जब प्रतिभा सम्पन्न कवि के साथ होता है तो उसमें भाव–प्रकाशन की क्षमता बढ़ जाती है। यही बात महाकवि भास व प्रतिज्ञायौगन्धरायण के साथ भी दृष्टिगत होती है। भास की कोमलकान्त पदावलि जब प्रतिज्ञायौगन्धरायण के साहचर्य में आती है तो भावगाम्भीर्य से सराबोर अनेक सूक्तियाँ परिलक्षित होतीं हैं, जिनमें से कुछ को इस प्रकार प्रदर्शित किया जा सकता है[14]–

''मार्गारब्धाः सर्वयत्नाः फलन्ति'',
''स्नेहदुर्बलं मातृहृदयम्'',
''दुहितुः ... हि मातरः'',
''अनागतार्था ... निवृत्तिः'',
''नीते रत्ने भाजने को निरोधः'',
''कृतापराधस्य हि सत्कृतिर्वधः''

सन्दर्भ :

1. प्रतिज्ञायौगन्धरायण, 1/16.
2. प्रतिज्ञायौगन्धरायण, 1/14.
3. यौगन्धरायण, 2/4.
4. प्रतिज्ञायौगन्धरायण, 2/5.

5. प्रतिज्ञायौगन्धरायण, 2/7.
6. व्याख्याकार डॉ. गंगाधर राय : प्रतिज्ञायौगन्धरायण, द्वितीय अंक, पृ. 52.
7. व्याख्याकार डॉ. गंगासागर राय : प्रतिज्ञायौगन्धरायण, द्वितीय अंक, पृ. 54.
8. व्याख्याकार डॉ. गंगासागर राय : प्रतिज्ञयौगन्धरायण, द्वितीय अंक, पृ. 66.
9. व्याख्याकार डॉ. गंगासागर राय : प्रतिज्ञायौगन्धरायण, 1/16
10. व्याख्याकार डॉ. गंगासागर राय : प्रतिज्ञायौगन्धरायण, पृ. 15.
11. व्याख्याकार डॉ. गंगासागर राय : प्रतिज्ञायौगान्धरायण, पृ. 15–16.
12. व्याख्याकार डॉ. गंगानागर राय : प्रतिज्ञायौगन्धरायण, पृ. 1–8
13. प्रतिज्ञायौगन्धरायण प्रथम अंक, पृ. 15.
14. प्रतिज्ञायौगन्धरायण– 1/18, 1/32, 2/49, 3/2, 4/11, 4/22.

सहायक ग्रन्थ सूची :

1. डॉ. गंगासागर राय : प्रतिज्ञायौगन्धरायण, चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, प्रथम संस्करण, 1994.
2. आचार्य बल्देव उपाध्याय : भास नाटक चक्रम (द्वितीय भाग), चौखम्भा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी।
3. बलदेव उपाध्याय : संस्कृत आलोचना, हिन्दी समिति सूचना विभाग, उ.प्र.
4. श्रीनिवास शास्त्री : दशरूपकम्, साहित्य भण्डार, मेरठ।
5. ए.बी.कीथ, भाषान्तरकार, डॉ. उदयभानु सिंह : संस्कृत नाटक, (द्वितीय संस्करण), मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली, 1971.

***

लैंगिक असमानता के पर्यावरणीय प्रभाव : जनपद लखीमपुर खीरी विशेष सन्दर्भ में

*डॉ. विष्णु कुमार शुक्ल**

महिलाओं का पर्यावरण से संसाधन विदोहन एवं साथ ही पर्यावरण के संरक्षण से प्रत्यक्ष सम्बन्ध है। भारत जैसे विकासशील देशों में अभी भी अधिसंख्य जनसंख्या अपनी आजीविका हेतु प्राथमिक कार्यों (कृषि) पर निर्भर है जिसमें महिलाओं की उत्पादन में विशिष्ट भूमिका रहती है। अधिकतर कृषि का मेहनतकश कार्य महिलाओं द्वारा ही संपादित किया जाता है। पशुओं का चारा–पानी का प्रबन्ध, उनका रखरखाव, दूध निकालना, घर में भोजन पकाने के लिए जलाने की लकड़ी का प्रबन्ध या उपले जुटाना, इसके अतिरिक्त अनाज को साफ करने व भंडारण करने में भी महिलाओं की प्रमुख भूमिका रहती है। घरों में निकलने वाले कूड़े, जैविक या ठोस अपशिष्ट के निस्तारण की व्यवस्था भी महिलाओं को ही करनी होती है। इसी प्रकार अधिकतर फुटकर व्यापार में महिलाएं संलग्न रहती हैं तथापि निर्णय लेने में महिलाओं की भूमिका नगण्य रहती है।

प्रस्तुत अध्ययन उत्तर प्रदेश के क्षेत्रफल की दृष्टि से सबसे बड़े जनपद लखीमपुर–खीरी पर आधारित है जो कि उ.प्र. के तराई क्षेत्र में अवस्थित है और प्रदेश के गन्ना उत्पादक का एक महत्वपूर्ण जनपद हैं

अध्ययन क्षेत्र का परिचय–

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि– भारत–नेपाल सीमा पर स्थित जनपद लखीमपुर–खीरी उत्तर प्रदेश का सबसे बड़ा जिला है। इसकी प्रशासनिक राजधानी लखीमपुर शहर है। लखीमपुर–खीरी जनपद लखनऊ मण्डल का एक हिस्सा है जिसका कुल क्षेत्रफल 7,680 वर्ग किलोमीटर है। भारत सरकार ने 2001 जनगणना के आंकड़ों के आधार पर लखीमपुर–खीरी को अल्पसंख्यक बाहुल्य जिले के रूप में नामित किया है, जो इसे जीवन स्तर और सुविधाओं में सुधार करने के लिए जरूरी सहायता की आवश्यकता के रूप में पहचान करता है। शहरी विकास मंत्रालय द्वारा प्रकाशित सर्वेक्षण–2010 में लखीमुपर को स्वच्छता के मामले में भारत का दूसरा सबसे कम रैंकिंग वाला शहर बताया है। दुधवा राष्ट्रीय उद्यान जनपद लखीमपुर–खीरी में है और यह उत्तर प्रदेश का एकमात्र राष्ट्रीय उद्यान है। इसमें बाघ, तेंदुए, दलदल हिरण, हेपीड खरगोश और बंगाली फूलों सहित दुर्लभ और लुप्तप्राय प्रजातियों का आवास है। वर्तमान प्रदेश सरकार इस उद्यान को राष्ट्रीय पक्षी उद्यान के रूप में भी विकसित कर रही है।

भौगोलिक स्थिति– 7680 वर्ग कि.मी. मैं फैले लखीमपुर–खीरी जनपद की सीमाएं उत्तर में नेपाल राज्य, पश्चिम में शाहजहाँपुर और पीलीभीत, पूर्व में

* असि.प्रो. (अर्थशास्त्र), सी.जी.एन. (पी.जी.) कॉलेज, गोला गोकर्णनाथ-खीरी।

बहराइच तथा दक्षिण में हरदोई और सीतापुर जनपदों से घिरी हैं। विश्व के मानचित्र पर यह जनपद 27.60 व 28.60 डिग्री उत्तरी अक्षांश तथा 80.34 व 81.30 डिग्री पूर्वी देशान्तर के मध्य स्थित है। अपनी उर्वरता शक्ति के लिए अनोखे भू–क्षेत्र वाले इस जनपद में फैले शारदा नहरों के जाल तथा राजकीय व निजी नलकूप इस जिले को श्रेष्ठ सिंचन क्षमता उपलब्ध कराते हैं। भौगोलिक दृष्टि से इस जिले को दो उप–सम्भागों में विभाजित किया जा सकता है। प्रथम उप संभाग गांजर अथवा तराई क्षेत्र है, जो शारदा नदी के उत्तर व घाघरा नदी के मध्य में है, दूसरा उप–संभाग उपरहर है जो शारदा नदी के दक्षिण में स्थित है।

खीरी जनपद के अन्तर्गत घाघरा, कौडियाला, सरयू, शारदा, गोमती, कठिना, मोहाना, उल्ल, सरायन तथा चौका नदी है। जिले की छोटी–बड़ी नदियों की कुल लम्बाई 1533 कि.मी. है, जिसमें से मुख्य नदियों की लम्बाई 1033 कि.मी. है। तहसील धौरहरा शारदा नदी व घाघरा नदी के बीच स्थित होने के कारण अगस्त–सितम्बर माह में बाढ़ से प्रभावित रहता है। निघासन व लखीमुपर तहसील का भी कुछ भाग बाढ़ से प्रभावित रहता है। जनपद खीरी में पहाड़ों की संख्या शून्य है।

जनांकिकी विशेषताएं– वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार लखीमपुर–खीरी जिले की जनसंख्या 4,021,243 है। यह भारत में इसे 56वीं रैंकिंग देता है (कुल 640 जिलों में)। जिले में जनसंख्या घनत्व 523 व्यक्ति प्रतिवर्ग कि.मी. है। 2001–2011 में दशकानुसार वृद्धि दर 25.38% है। खीरी में लिंग अनुपात में 100 पुरूषों के लिए 894 महिलाएं हैं और साक्षरता दर 60.56% है। इसके अतिरिक्त यहाँ 11.46% शहरी आबादी निवास करती है। यहाँ हिन्दी के अतिरिक्त बोली जाने प्रमुख भाषा अवधी है। जनपद में धर्मानुसार जनसंख्या में 77.41% हिन्दू, 19.1% इस्लाम, 2.63% सिक्ख व 0. 86% अन्य धर्मों के लोग निवास करते हैं।

शोध प्रविधि– प्रस्तुत शोध प्रविधि व्यष्टिपरक विश्लेषण पर आधारित है। अध्ययन का उद्देश्य जनपद में लैंगिक असमानता के पर्यावणीर्य प्रभावों का अघ्ययन करना है।

सम्पूर्ण अध्ययन क्षेत्र से समंको के संकलन हेतु प्राथमिक एवं द्वितीयक समंको का प्रयोग किया। प्राथमिक समंको में ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों महिलाओं एवं शिक्षाविदों तथा पर्यावरण विद्वानों से साक्षात्कार व प्रश्नावली को शामिल किया, जबकि द्वितीयक समंको हेतु सरकारी/अर्द्धसरकारी अध्ययनों व रिपोर्टों का प्रयोग किया गया। निष्कर्षों को ज्ञात करने हेतु केन्द्रीय प्रवृत्ति की मापों, सह सम्बन्ध तथा प्रतीपगमन व विषमता आदि अवधारणाओं का प्रयोग किया गया।

सामाजिक असमानता एवं भेदभाव का प्रखर स्वरूप प्रायः प्रत्येक देश व समाज में लैंगिक असमानता के रूप में परिदृश्य होता है। भारत में स्वतंत्रता के 75 वर्षों के पश्चात् आज भी हमारे समाज में बेटे के जन्म पर

खुशी मनायी जाती है और यदि बेटी का जन्म होता है तो हम शान्त हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त महिलाओं का समाज में निचला स्तर होने के कारणों में अत्यधिक गरीबी और शिक्षा की कमी भी है। गरीबी और शिक्षा की कमी के कारण ही महिलाएं कम वेतन पर घरेलू कार्य करने या प्रवासी मजदूरों के रूप में कार्य करने के लिए मजबूर होती हैं। महिलाओं को न केवल असमान वेतन या अधिक कार्य कराया जाता है बल्कि उनके लिए कम कौशल की नौकरियाँ ही उपलब्ध होती हैं, जिनका वेतन बहुत कम होता है। यह लिंग के आधार पर असमानता का एक प्रमुख रूप बन गया है।

भारत सहित उन सभी देशों में जहाँ सभी नागरिक साक्षर नहीं हैं, इसमें महिला निरक्षरों की प्रमुखता रहती है। फलस्वरूप पर्यावरण अवक्रमण के स्रोत, प्रक्रिया, प्रतिफल आदि के प्रति महिलाओं में चेतना या योगदान भी निम्नस्तरीय होती है। अधिकतर महिलाएँ अपने कार्यों को परम्परागत या रूढ़िवादी ढंग से ही सम्पादित करती रहती हैं।

महिलाओं पर एक अन्तर्राष्ट्रीय अध्ययन के अनुसार राष्ट्रों एवं समुदायों के अन्तर्गत महिलाएं प्रायः अनेक प्रकार की आर्थिक एवं सामाजिक असमानता से ग्रस्त रहती हैं। महिलाएँ ही समाज तथा परिवार में हिंसा तथा राष्ट्रों के मध्य संघर्ष की स्थिति में निर्दोष परन्तु प्रथम शिकार बनती हैं।

भारत में लैंगिक असमानता के कारण तथा प्रकार– लिंग असमानता को सामान्य शब्दों में इस प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है कि लैंगिक आधार पर महिलाओं के साथ भेदभाव। समाज में परम्परागत रूप से महिलाओं को कमजोर जाति वर्ग के रूप में माना जाता है। वह पुरूषों की अधीनस्थ स्थिति में होती है। वह घर व समाज दोनो में शोषित, अपमानित, अक्रमित और भेदभाव से पीड़ित होती है। महिलाओं के विरूद्ध भेदभाव का यह अद्भुत प्रकार विश्व के सभी देशों में प्रचलित है। जबकि भारत में इस भेदभाव का स्तर अत्यधिक ऊँचा है।

भारतीय समाज में लिंग असमानता का मूल कारण इसकी पितृसत्तात्मक व्यवस्था में निहित है। **समाजशास्त्री प्रो0 सिल्विया वाल्वे** के अनुसार– ''पितृसत्तात्मकता सामाजिक संरचना की एक ऐसी प्रक्रिया और व्यवस्था है, जिसमें पुरूष स्त्री पर अपना प्रभुत्व जमाता है, उसका दमन करता है और उसका शोषण करता है।

पितृसत्तात्मक व्यवस्था ने अपनी वैधता और स्वीकृति हमारे धार्मिक विश्वासों, चाहे वह हिन्दू, मुस्लिम या किसी धर्म से ही क्यों न हो से प्राप्त की है। लड़की को बचपन से शिक्षित करना आज भी एक बुरा निवेश माना जाता है इसलिए अच्छी शिक्षा के अभाव में वर्तमान में नौकरियों में कौशल मांग की शर्तों को पूरा करने से असक्षम हो जाती है। यद्यपि 10वीं व 12वीं कक्षाओं में लड़कियों का परीक्षा परिणाम लड़कों से बेहतर होता है। लेकिन उसके बाद माता–पिता लड़कियों की शिक्षा पर अधिक व्यय नहीं करते, जिससे वे नौकरी व रोजगार प्राप्त करने में पिछड़ जाती हैं। इसके

अतिरिक्त पोषण में भी लड़कियों के साथ भेदभाव किया जाता है। खाना बनाने की सम्पूर्ण जिम्मेदारी भले ही महिलाओं की हो लेकिन उन्हें खाने को केवल वही सामान मिलता है जो पुरूषों के खाने के बाद बच जाता है। जो दोनो रूपों गुणवत्ता व पौष्टिकता में निम्नस्तरीय है, जो उनके खराब स्वास्थ्य का प्रमुख कारण है। महिलाओं में रक्त की कमी के कारण होने वाली बीमारी एनीमिया अत्यधिक होती है। इसी प्रकार बच्चों को जन्म देते समय कुपोषण के कारण माँ व बच्चे पर कुपोषण का प्रभाव स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है, जिसका प्रभाव अन्य जनाकिंकीय घटकों मातृत्व, शिशु मृत्युदर आदि पर भी पड़ता है।

लैंगिक असमानता भारत की विभिन्न वैश्विक लिंग सूचकांकों में खराब रैकिंग को प्रदर्शित करती है–

1. यू.एन.डी.पी. के लिंग असमानता सूचकांक–2014 के 152 देशों की सूची में भारत की स्थिति 127वें स्थान पर है। यह सूचकांक चार प्रमुख क्षेत्रों में लैंगिक अंतर की जांच करता है, जिसमें भारत की स्थिति इस प्रकार है–

	प्रमुख संकेतक	विश्व में स्थान
a-	आर्थिक भागीदारी और अवसर	1341
b-	शैक्षिक उपलब्धियाँ	1261
c-	स्वास्थ्य और जीवन प्रत्याशा	1411
d-	राजनीतिक सशक्तिकरण	151

इस प्रकार वैश्विक सूचकांक लिंग समानता में भारत की स्थिति अत्यन्त निराशाजनक है केवल राजनीतिक सशक्तिकरण में भारत का कार्य संतोषजनक है। शेष सूचकांकों में सुधार के लिए अधिक प्रयास की आवश्यकता है।

2. लैंगिंक असमानता के सांख्किीय घटकों में भी भारत की स्थिति चिन्ताजनक है जिनमें–

(a) कन्या भ्रूण हत्या और बाल कन्या हत्या सबसे अमानवीय व शर्मनाक है। प्रसव पूर्व निदान की तकनीक (विनियमन और दुरूपयोग निवारण) अधिनियम–1994 के बावजूद आज लिंग परीक्षण व गर्भपात अपने उच्च स्तर पर है। मैकुफर्सन के एक शोध अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि भारत में लगभग प्रतिवर्ष 1,00,000 अवैध गर्भपात कन्या भ्रूण के कराये जाते हैं।

(b) वर्ष 2011 की जनगणना के दौरान एक खतरनाक प्रवृत्ति यह आयी कि लिंग अनुपात (0 – 6) आयु वर्षक 919 है जो वर्ष 2001 से 8 अंक कम था जिससे स्पष्ट होता है कि लिंग परीक्षण के उपरान्त गर्भपातों की संख्या में वृद्धि हुई है।

(c) स्त्री–पुरूष अनुपात के सम्बन्ध में अच्छा संकेत है कि 2001 में 933 के तुलना में 2011 में 943 हो गया लेकिन यह अभी भी महिलाओं के पक्ष में नहीं है।

(d) साक्षरता दर के सम्बन्ध में भी इसमें काफी असमानता है। 2011 में जहाँ पुरूषों की साक्षरता दर 82.14 प्रतिशत थी वहीं महिलाओं की साक्षरता दर 65.46 प्रतिशत है वहीं 6–14 वर्ष के आयु वर्ग के बालक–बालिका को निःशुल्क शिक्षा के अधिकार के बावजूद 40 प्रतिशत से अधिक बालिकाएं 10वीं करने के बाद स्कूल नहीं जाती हैं।

पर्यावरणीय प्रभाव– महिलाओं को जिनकी संवेदनशीलता व देखरेख की क्षमता निःसंदिग्ध है, चाहें वह बच्चों के पोषण का दायित्व हो या पर्यावरण सहेजने का, शिक्षा, सहभागिता, अधिकार से प्रवंचित करके वहनीय विकास (Sustainable Development) की कल्पना करना बेमानी है। हम निम्न बिंदुओं द्वारा महिलाओं पर पर्यावरणीय प्रभाव को रेखांकित कर सकेंगे–

1. महिलाएं बचपन से ही गृह कार्य जैसे खाना बनाने के लिए लकड़ी का प्रयोग करती रही हैं जिससे उन्हें छोटी उम्र से ही हृदय रोग की बीमारी की संभावना अधिक रहती है चूंकि उसी परिस्थितियों में बच्चों की परवरिश भी करनी होती है जिससे उनके दमा, कैंसर आदि बीमारियों के कारण उनकी असमय मृत्यु भी हो जाती है। इसके लिए हमें खाना बनाने के लिए वैकल्पिक ऊर्जा पर ध्यान देना होगा। यह सुखद है कि भारत सरकार ने इस सम्बन्ध में 'उज्जवला योजना' प्रारम्भ की है जिसका लाभ महिलाओं को मिलेगा। साथ ही हमारा पर्यावरण भी संतुलित रहेगा।
2. स्वतंत्र भारत में प्रथम वन नीति 1952, वन संरक्षण अधिनियम–1980 में महिलाओं की भूमिका का कोई उल्लेख नहीं किया गया है। 1988 की राष्ट्रीय वन नीति में महिलाओं के महत्व को स्वीकारा गया है और उनकी वनों पर निर्भरता, वनों को लेकर ज्ञान, वन प्रबन्धन में उनकी सक्रिय भागीदारी को समझा गया और यह सोच बनी कि महिलाओं की भागीदारी से ही हम लक्ष्य को प्राप्त कर सकते हैं। 1995 में राष्ट्रीय वन नीति कार्यक्रम में वन समितियों में महिलाओं को 33 प्रतिशत आरक्षण की व्यवस्था की गयी किन्तु यह देखा गया कि संयुक्त वन प्रबन्धन कार्यक्रम और वन समिति में महिलाएं केवल नाम के लिए हैं उन्हें इनकी जानकारी नहीं है। पुरूषों के वर्चस्व वाले समाज में महिला का प्रतिनिधित्व उसका पति करता है।
3. वर्तमान समय में पर्यावरण का पर्याय महिला ही है। घर के कार्यों से लेकर जानवरों की देखभाल, चूल्हे की लकड़ी आदि सभी की व्यवस्था की चिन्ता महिला ही करती है। ये वे बड़ी आवश्यकताएं हैं जो पारस्थितिकी के उत्पाद हैं। इनकी सुरक्षा की चिन्ता हमेशा महिलाओं को ही रहती है। ये कभी पुरूषों के विषय नहीं बन पाये। देश का

पर्यावरण गांव में पलता है और इसकी सबसे बड़ी कड़ी महिला ही है। इस समय पूरे देश में दो बड़ी समस्याएं हैं, प्रथम पानी तथा द्वितीय जलाने की लकड़ी। और ये दोनो ही पर्यावरण और वनों के पहले उत्पाद हैं। देश का कोई ऐसा भाग नहीं है जहाँ यह सब महिलाओं के दायित्वों से सीधे न जुड़ा हो। इसलिए इनकी खराब स्थिति इनकी सबसे बड़ी चिंता रहती है। इसलिए पुरूष प्रधान समाज में बिगड़ते पर्यावरण का हल बड़ा मुद्दा नहीं बन पाया क्योंकि उनका रूझान गांव से बाहर के धंधों में रहता है। महिलाओं का सीधा दायित्व घर–गांव है। इसलिए उनका कष्ट भी हवा, पानी, वनों से सीधा जुड़ा होता है।

4. इतिहास इस बात का साक्षी है कि जंगल बचाने के लिए बड़ा आन्दोलन चिपको महिलाओं की देन था, जिसमें उन्होंने अपनी घास–लकड़ी की लड़ाई तो लड़ी ही, साथ ही अपने बल अधिकार व वनों के योगदानों के प्रति भी उतनी संजीदगी दिखाई थी। इस आन्दोलन में पर्यावरण और पारिस्थितिकी संतुलन में महिलाओं ने जोरदार उपस्थिति दर्ज की और देश के कानूनों को नयी दिशा दी। इसी प्रकार नर्मदा बांध के विरोध में मेघा पाटेकर की मुहिम से हमें पर्यावरण के प्रति महिलाओं की जागरूकता का पता चलता है।

सच तो यह है कि यदि पर्यावरण को सुरक्षित रखना है तो इसमें महिलाओं की भागीदारी पर नये सिरे से सोचना होगा क्योंकि नदी, जंगल, मिट्टी देश में ही पलते–बढ़ते हैं वैसे भी कुछ वन और नदियों का अस्तित्व ही महिलाओं के प्रताप से है। पुरूष की प्रवृत्ति साधनों के उपयोग की होती है जबकि महिलाओं की प्रवृत्ति इनके सरंक्षण की होती है। महिला के हित पर्यावरण संरक्षण योजना को महत्व देकर व स्थानीय आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर ही हम पारिस्थितिकी संरक्षण कर पायेंगे। बिगड़ते पर्यावरण का दोष पुरूष प्रधान समाज की लोलुप और विलासी प्रवृत्ति का है। दूसरी ओर महिलाएं प्रकृति को समझने की अधिक क्षमता रखती हैं क्योंकि पृथ्वी, प्रकृति और महिला ही लिंग का बोध कराती है और एक ही तरह का दायित्व भी तीनों निभाती हैं। यह दायित्व है दूसरों के दुःखों के लिए अपने आप को समर्पित करने का। इसलिए हमें महिला केन्द्रित पर्यावरण संरक्षण पर चिंतन करना चाहिए ताकि विकराल होती इस समस्या का समाधान हो सके। नोबेल पुरस्कार विजेता प्रो0 अर्मत्य सेन एवं जोसेफ स्टीग्लीज क्रमशः महिलाओं को मात्र शिक्षा, स्वास्थ्य एवं सशक्तिकरण के लाभार्थी नहीं वरन अभिकर्ता की भूमिका प्रदान करने तथा समाज के प्रत्यावर्तन की वकालत करते हैं।

निष्कर्ष– निष्कर्ष के रूप में हम कह सकते हैं कि यदि लैंगिक असमानता को कम नहीं किया गया तो हमें पर्यावरण विनाश के गम्भीर परिणाम भुगतने पड़ेंगे चूंकि इस सम्बन्ध में सरकार की भूमिका से अधिक जनसहभागिता की भूमिका है। इसलिए जब तक पुरूषों एवं महिलाओं के सामूहिक प्रयासों से लिंग असमानता की समस्या का समाधान नहीं किया जायेगा, और हम सभी

अपनी सोच व कार्यों की वास्तविकता के साथ परिवर्तन नहीं करेंगे तब तक हम आधुनिक समाज की ओर अग्रसर नहीं हो सकेंगे।

सतत् विकास का उद्देश्य भी लैंगिक असमानता को दूर करना है। इसमें यह माना गया है कि महिलाएं पर्यावरण के सबसे नजदीक हैं तथा पर्यावरण संरक्षण में अहम भूमिका निभाती हैं परन्तु वर्तमान में विकास नीतियों में उनको कोई स्थान ही नहीं दिया गया जिसका सीधा प्रभाव पर्यावरण विनाश रहा है। सततशीलता की मांग पर्यावरण नारीवादी आन्दालनों के केन्द्र में है। भारत में चिपको आन्दोलन, पश्चिवामी घाट के एपिको आन्दोलन तथा नर्मदा बचाओ आन्दोलनों ने यह प्रदर्शित किया है कि विकास नीतियों में नारियों की आवश्यकताओं पर ध्यान नहीं दिया गया है। जंगल के ठेकेदार तटीय क्षेत्रों में मछली पकड़ने की आधुनिक मशीनें, आधुनिक वन प्रबन्ध, व्यापारिक फसलें, लुप्त होते प्राकृतिक संसाधन महिलाओं के आधारभूत परम्परागत अधिकारों को छीनते जा रहे हैं। यह विकास प्रक्रिया अन्ततः पर्यावरण विनाश को प्रोत्साहन दे रहा है।

जब तक पर्यावरण आन्दोलनों में महिलाओं की सहभागिता एवं जागरूकता नहीं होगी तब तक समाज को इसका समुचित लाभ नहीं मिल पायेगा क्योंकि महिलाएं न केवल आधी आबादी का भाग हैं अपितु उत्पादन में उनकी महती भूमिका है।

सन्दर्भ :

- R.N. Bhattacharya : Enviornmental Economics
- Gender, School and Society : उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी।
- Environmental Economics (Theory & Practice) : निल हैनली, ब्रेन ह्वाइट
- डॉ. संजय गुप्ता : सामाजिक क्षेत्र एवं पर्यावरणीय अर्थशास्त्र (हरीश विश्वविद्यालय प्रकाशन, गोल्डेन पैलेस, आगरा – 282003)
- डॉ. जे.पी. मिश्र : विकास एवं पर्यावरण का अर्थशास्त्र (साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा)।
- डॉ. वी.सी. सिन्हा : विकास एवं पर्यावरणीय अर्थशास्त्र, (साहित्य भवन प्रकाशन, आगरा)
- भारतीय शिक्षा शोध पत्रिका : (विभिन्न अंक) (भारतीय शिक्षा शोध संस्थान, निरालानगर, लखनऊ)
- वी.पी. गुप्ता तथा एच.आर. स्वामी : भारत में आर्थिक पर्यावरण : (मलिक एण्ड कम्पनी (प्रकाशन), जयपुर)।
- विभिन्न समाचार पत्र एवं पत्रिकाएं।
- डिस्ट्रिक्ट गजेटियर।
- सांख्यिकीय पत्रिका : जनपद लखीमपुर–खीरी।

***

श्री अरविन्द का आध्यात्मिक राष्ट्रवाद

डॉ. अर्चना सिंह *

श्री अरविन्द भारतीय पुनर्जागरण और भारतीय राष्ट्रवाद की एक महान विभूति थे। रोम्या रोलाँ ने अरविन्द को 'भारतीय विचारकों का सम्राट' एवं 'एशिया तथा यूरोप की प्रतिभा का समन्वय' कहा है। फ्रेडरिक स्पजलबर्ग ने उन्हें 'हमारी इस वसुन्धरा का मार्ग–दर्शक नक्षत्र और हमारे युग का पैगम्बर' कहा है। राष्ट्रीय आन्दोलन की गूढ़ और आध्यात्मिक महत्व देने, उसके सामने पूर्ण स्वराज का प्रेरणाप्रद आदर्श रखने, भारत के विशिष्ट सांस्कृतिक परम्परा के तेज में नव जीवन अनुप्राणित करने, स्वतंत्रता के आदर्श की प्राप्ति के लिए एक राजनीतिक योजना तैयार करने तथा सारे आन्दोलन को अन्तर्राष्ट्रीय और मानव–एकता के आदर्श के मुख्य प्रसंग में रखने का सर्वाधिक श्रेय उन्हीं को है।[1]

श्री अरविन्द ने राजनीति और आध्यात्मिकता के समन्वय का आदर्श रखा। उनका विश्वास था कि भारतीय आध्यात्मवाद और यूरोपीय भौतिकवाद के बीच सामंजस्य हो सकता है लेकिन यह एक ऐसे दर्शन की सृष्टि करके ही सम्भव हो सकता है जिसमें पदार्थ (भूत, द्रव्य) तथा आत्मा दोनों के महत्व को स्वीकार किया जाए। उनके मत में परम सत् एक आध्यात्मिक तत्व है। बाह्य जगत वास्तविक सत्ता की वास्तविक सृष्टि है, वह कल्पना की मनोगत सृष्टि नहीं है और न शून्य अथवा विराट अनस्तित्व है। इसलिए पदार्थ अथवा जीवन के स्वत्व दावों का निषेध करना उचित नहीं है। पदार्थ भी आवरणयुक्त आत्मा ही है। ब्रह्माण्ड के विकास हेतु आत्मा अपनी चेतना का निःशेषतः परिसीमन करके अचेतन का रूप ग्रहण कर लेता है। अचेतनता से ही विकास का क्रम आरम्भ होता है और उत्तरोत्तर द्रव्य, जीवन तथा चित्त उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार अरविन्द ने द्रव्य तथा आत्मा का तत्वशास्त्रीय समन्वय कर दिया है। यही आध्यात्मिकता और भौतिकता का समन्वय है जो कि उनके राष्ट्रवाद का आधार है। यद्यपि अरस्तू और हीगेल ने भी दार्शनिक समन्वय का प्रयत्न किया है, किन्तु अरविन्द के अनुसार उन दार्शनिकों का विचार कोरा बौद्धिक है जबकि उनका विचार मनुष्य की आध्यात्मिक चेतना के विकास में पूर्ण सत्य के रूप में साक्षात्कृत किया जा सकता है। इस सन्दर्भ में उन्होंने 'The Life Divine' में लिखा है कि, "Since, then, we admit both the claim of the Pure Spirit to manifest in us its absolute Freedom and the claim of Universal Matter to be the mould and condition of our manifestation, we have to find a Truth that can

* एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, राजनीति विज्ञान विभाग, श्री अग्रसेन कन्या पी.जी. कॉलेज, वाराणसी।

entirely reconcile these antagonists and can give to both their due portion in life and their due justification in thought."[2]

राजनीतिक दार्शनिक के रूप में अरविन्द ने इतिहास में आध्यात्मिक नियतिवाद की ऊपर से निष्प्रयोजन और प्रायः परस्पर विरोधी प्रतीत होने वाली घटनाओं के मूल में ईश्वर की शक्तियाँ ही काम कर रही हैं। इतिहास ब्रह्म की क्रमिक पुनराभिव्यक्ति है। विपिनचन्द्र पाल की भाँति उन्हें भी भारतीय पुनरुत्थान के मूल में ईश्वर की इच्छा दिखाई दी। एक रहस्यवादी की तरह उन्होंने घोषणा की कि भारतीय राष्ट्रवाद के मूल में ईश्वर है और वही आन्दोलन का वास्तविक नेता है। उनके अनुसार ब्रिटिश अधिकारी भारतीय जनता का जो दमन, उत्पीड़न और अपमान कर रहे हैं वह भी ईश्वरीय योजना का ही अंग है। ईश्वर भारतीयों को आत्म निग्रह की शिक्षा देने के लिए स्वयं इन तरीकों का प्रयोग कर रहा है। इस प्रकार का दैवी न्यायवाद भगवद्गीता के विचारों तथा जर्मन प्रत्ययवाद के समन्वय का प्रतीक है।

अरविन्द का विचार था कि भारत का पुनर्जागरण तथा राष्ट्रीय महत्ता साधारण जनता की शक्तियों को जगा कर ही प्राप्त की जा सकती है। यदि जनता अपने प्रति किये गये पुरातन अन्यायों के सम्बन्ध में सचेत हो जाये तो उसमें महान शक्ति का संचार हो सकता है। उनका मानना था कि कांग्रेस के उदारवादी नेता आमूलचूल राष्ट्रवादी नहीं थे वे सामाजिक तथा राजनीतिक विकास के अवयवी नियमों से पूर्णतः अनभिज्ञ थे। अरविन्द का मत था कि मात्र नागरिक सेवा के लिए भारत तथा इंग्लैण्ड में साथ–साथ परीक्षाएँ, विधान परिषदों का परिवर्द्धन, न्यायपालिका तथा कार्यपालिका का पृथक्करण आदि माँगें पुनर्जागृत तथा प्रबुद्ध भारत को राजनीतिक आन्दोलन के अग्रिम मोर्चे पर लाने में असमर्थ है। जरूरत इस बात की थी कि भारत के शिक्षित मध्य वर्ग की ईर्ष्या, ढोंग, कायरता आदि मनोवैज्ञानिक विकृतियों पर विजय प्राप्त की जाए। अरविन्द ठोस कार्य में विश्वास करते थे। उन्हें साधारण जनता में आत्म चेतना जाग्रत करने में विशेष रुचि थी।

यह भी सत्य है कि अरविन्द को राष्ट्रवादियों की इस कार्य प्रणाली में विश्वास नहीं था जो देश को पाश्चात्य सभ्यता के रंग में रँगना चाहती थी। वे इस बात को मानते थे कि सामाजिक विकास व्यक्ति तथा समाज के स्वधर्म के नियमों के अनुसार होना चाहिए किन्तु वे समाज के किसी वर्ग के उत्पीड़न की अनुमति कभी भी देने के लिए तैयार नहीं थे। उन्होंने एक लेख में लिखा है,

"Nationalism is simply the passionate aspiration for the realization of the Divine Unity in the nation… In the ideal of Nationalism which India will set before the world, there will be an essential equality between man and man, between caste and caste,

between class and class… We are intolerant of autocracy because it is the denial in politics of this essential equality… While we insist on recognizing the nation into a democratic unity politically we recognize that the same principle of reorganization ought to and inevitably will assert itself socially; even if, as our opponents choose to imagine, we are destrous of confining its working to politics, our attempts will be fruitless, for the principle once realized in politics, must inevitably assert itself in a society."[3]

अरविन्द के लिए उनका राष्ट्र केवल एक भौगोलिक सत्ता या प्राकृतिक भूमि खण्ड मात्र नहीं था। उन्होंने स्वदेश को माँ माना। इसीलिए उन्होंने दासता की बेड़ियों में जकड़ी भारत माँ को स्वाधीन करने की माँग की। उनका कथन है कि, ''राष्ट्रीय मुक्ति का प्रयत्न एक परम पवित्र यज्ञ है, जिसमें बहिष्कार, स्वदेशी, राष्ट्रीय शिक्षा और अन्य कार्य छोटी–बड़ी आहुतियाँ हैं। इस यज्ञ का सुफल स्वतंत्रता है जिसे हम देवी भारत माता को अर्पित करेंगे।''[4]

अरविन्द ने राष्ट्रवाद को धार्मिक और आध्यात्मिक धरातल पर प्रतिष्ठित किया। अपने एक भाषण में उन्होंने कहा, "Nationalism is not a mere political programme, nationalism is a religion that has come from God."[5]

इस प्रकार राष्ट्रवाद को ईश्वरीय आदेश और प्रेरणा बताकर अरविन्द ने राष्ट्रवाद को एक नवीन दृष्टि दी। उन्होंने देशवासियों को बताया कि आत्मा में ही शाश्वत शक्ति का निवास है और उसे जगाने पर यानी आन्तरिक स्वराज्य प्राप्त कर लेने पर हमें सामाजिक दृढ़ता, बौद्धिक महत्ता, राजनीतिक स्वतंत्रता, विश्व पर प्रभावकारिता, सबकुछ स्वतः ही प्राप्त हो जायेगा। अरविन्द के आध्यात्मिक राष्ट्रवाद को स्पष्ट करते हुए J. Ramsay Macdonald (जे. रैम्जे मैक्डोनाल्ड) ने लिखा है कि, "Aurobindo Ghosh has made the connection between his devout Hinduism and his strenuous nationalism clear. Man has to fulfil God, he has written, and that is only possible by fulfilling himself, this again being possible only through nationality. On this religious connection rests his belief in Swadeshi and his desire to see the English predominance in India ended."[6]

प्रश्न उठ सकता है कि अरविन्द ने ऐसे समय में पूर्ण स्वतंत्रता का नारा क्यों दिया जबकि यह विचार ही नितान्त अव्यावहारिक और असाध्य माना जाता था? इसका उत्तर है, पहली बात तो यह कि अपने आदर्शवादी और आध्यात्मिक दृष्टिकोण के अनुसार वे मातृभूमि को दैवी माता समझते थे और उनकी मुक्ति के लिए शक्ति भर संघर्ष करना उनकी सन्तानों का परम कर्त्तव्य मानते थे। दूसरी बात यह कि उनका विचार था कि भारत का स्वतंत्र होना केवल उसी के हित में नहीं, बल्कि सम्पूर्ण मानव जाति के हित

में था।[7] उनका विश्वास था कि भारत 'राष्ट्रों के गुरु' के रूप में अपनी पूर्व निश्चित भूमिका तब तक नहीं निभा सकता जब तक वह परतंत्र है। अतः पहली आवश्यकता यह है कि भारत स्वतंत्र हो। इसीलिए उन्होंने उदारवादी नेताओं की तरह छोटे–छोटे सुधारों को महत्व न देकर पूर्ण राजनीतिक स्वतंत्रता को भारतीयों का लक्ष्य घोषित किया।

अरविन्द की राष्ट्रीयता का दृष्टिकोण पूर्ण रूप से नवीनता लिए हुए था। उनका राष्ट्रवाद संकुचित नहीं था बल्कि उसका व्यापक विश्वव्यापी आधार था। वे कहा करते थे कि ''राष्ट्रवाद मानव के सामाजिक तथा राजनीतिक विकास के लिए आवश्यक है। अन्ततोगत्वा एक विश्व संघ के द्वारा मानव की एकता स्थापित होनी चाहिए और इस आदर्श की प्राप्ति के लिए आध्यात्मिक नींव का निर्माण मानव धर्म तथा आन्तरिक एकता की भावना के द्वारा ही किया जा सकता है।''[8]

अरविन्द ने एक स्वतंत्र विश्व संघ की धारणा व्यक्त की पर वे इस बात को भी स्वीकार करते हैं कि यह संघ पूर्ण रूप से एक जैसा नहीं हो सकता। स्वयं आत्म निर्णय के सिद्धान्त पर आधारित इस प्रकार का संघ विविधताओं पर आधारित होगा। उसमें सामान्य सामंजस्यपूर्ण जीवन के नियम को सर्वोच्चता मिलेगी ताकि मानव जाति के आदर्श एकीकरण का स्वप्न भली–भाँति पूरा हो सके। एकीकरण की इस व्यवस्था में मनुष्यों को स्थान, जाति, संस्कृति, आर्थिक सुविधा आदि के अनुसार अपने–अपने समूह बनाने का अधिकार होगा, लेकिन ये स्वतंत्र समूह अपने व्यक्तिगत स्वार्थों या लाभों की पूर्ति में ही नहीं लगे रहेंगे, बल्कि सम्पूर्ण मानव जाति की हित साधना उनका लक्ष्य होगा। उन्ही के शब्दों में, ''अन्तिम परिणाम एक विश्व राज्य की स्थापना ही होना चाहिए। उस विश्व राज्य का सर्वोत्तम रूप स्वतंत्र समूहों का ऐसा संघ होगा जिसके अन्तर्गत हर प्रकार की पराधीनता, बल पर आधारित असमानता और दासता का विलोप हो जायेगा। उसमें कुछ राष्ट्रों का स्वाभाविक प्रभाव दूसरों से अधिक हो सकता है किन्तु सबकी प्रस्थिति समान होगी।''[9] उनका कहना है कि यदि एक परिसंघ का निर्माण किया जाए तो विश्व राज्य के इकाई राष्ट्रों को सबसे अधिक स्वतंत्रता उपलब्ध हो सकेगी, किन्तु उससे विघटनकारी तथा विकेन्द्रीकरण की प्रवृत्तियों को पनपने का अधिक अवसर मिल सकता है। अतः संघ व्यवस्था ही सबसे अधिक वांछनीय होगी।

इस प्रकार राजनीतिक चिन्तन को अरविन्द का मानव एकता और विश्व राज्य का सिद्धान्त महत्वपूर्ण योगदान है। इससे पहले अरस्तू जैसे राजनीति वैज्ञानिक ने, उससे भी लगभग दो हजार वर्ष बाद हीगल ने भी इस प्रकार का आदर्श नहीं रखा। अरस्तू नगर–राज्य के इर्द–गिर्द घूमता रहा और हीगल ने भी राष्ट्र राज्य को ही विकास की प्रक्रिया में सामाजिक संगठन का सर्वोच्च और अन्तिम रूप बताया।

निःसन्देह श्री अरविन्द भारतीय राष्ट्र के निर्माताओं में से एक थे। वे प्रथम व्यक्ति थे जिन्होंने भारत के लिए खुलेआम पूर्ण स्वाधीनता की माँग रखी। आध्यात्मिक राष्ट्रवाद का आदर्श रखा। उन्होंने स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए आवश्यक होने पर शक्ति प्रयोग के सिद्धान्त को उचित ठहराते हुए यथार्थवादी राजनीति और रणनीति का परिचय दिया। स्वाधीन भारत में विश्व कल्याण के दर्शन किये। राष्ट्र की एकता से भी आगे बढ़ कर उन्होंने 'अन्तर्राष्ट्रीयता' और 'मानव की एकता' की बात की। अन्त में, हम डॉ. कर्ण सिंह के शब्दों में कह सकते हैं कि, ''श्री अरविन्द वर्तमान भारत के बड़े निर्माताओं में गिने जा सकते हैं क्योंकि राष्ट्रीय स्वातंत्र्य के उस प्रासाद की नींव डालने में उन्होंने महान योग दिया, जिसे महात्मा गाँधी और अन्य नेताओं ने बाद में निर्मित किया।''[10]

सन्दर्भ :

1. डॉ. कर्ण सिंह : भारतीय राष्ट्रीयता का अग्रदूत, थामसन प्रेस (इण्डिया) लिमिटेड प्रकाशन विभाग नई दिल्ली, पृ. 180–181.
2. श्री अरविन्द : द लाइफ डिवाइन, श्री अरविन्दों आश्रम पब्लिकेसन्स डिपार्टमेण्ट पाण्डिचेरी, 1955, पृ. 26.
3. 'वन्दे मातरम्' नामक पत्रिका में प्रकाशित लेख।
4. डॉ. कर्ण सिंह, वही, पृ. 80.
5. श्री अरविन्द : स्पीचेज (Speeches), पाण्डिचेरी, 1952.
6. जे. रैम्जे मैक्डोनाल्ड, द अवेक्नींग ऑफ इण्डिया. सागवान प्रेस, 2015
7. डॉ. कर्ण सिंह, वही, पृ. 87.
8. विश्वनाथ प्रसाद वर्मा : आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तन, लक्ष्मी नारायन अग्रवाल, आगरा, 1971, पृ. 256.
9. वही, पृ. 257.
10. डॉ. कर्ण सिंह, वही, पृ. 181.

***

सुरेन्द्र वर्मा के नाटकों में मिथकीय परिवेश

सारिका यादव *

हिन्दी में मिथक शब्दों को 'मिथ' के समानार्थी शब्द के रूप में प्रयोग किया गया है। इस शब्द की व्युत्पति यूनानी के 'माइथोस' लैटिन के 'मिथस' से हुयी है। अतः मिथक के अर्थ के लिये भी मिथ के अर्थ का ही आधार लिया जाना चाहिये। मिथ का मूल अर्थ कथा–मात्र है।

मिथ या मिथक का शाब्दिक अर्थ है– परम्परागत, पौराणिक या लोकविश्वास–मूलक संदर्भ। अतः मिथक ऐसे शब्द हैं जिनके पीछे विश्वास की शक्ति या पूर्वधारणा निहित होती है। यद्यपि मिथक मूलतः किसी प्राचीन आख्यान या चरित नामक की कथा वर्णिती का आधार लेकर ही कथा का विषय बनता है। तथापि वह अपनी उद्‌भावना में नवीन होता है। वह अतीत के उपकरण के रूप में प्रस्तुत होकर मात्र कथा इतिहास या इतिवृत्त ही नहीं प्रस्तुत करता वरन आधुनिकता के पूरे आवरण में झांकता हुआ शाश्वत दृष्टि प्रस्तुत करता है। आज का कथाकार जनजीवन को नई दिशा प्रदान करने के लिये मिथक का आधार लेकर समग्र जीवन की नई व्याख्या प्रस्तुत करता है। प्राचीन और नवीन को समन्विति देते हुए कथा में नई दृष्टि को समाविष्ट करता है। क्योंकि आदिम युग में जो विचार, परम्परा या दृष्टिकोण जीवन के प्रति या मानव ने विश्वास, आस्था और नैतिकता के रूप में जिसे स्वीकार कर लिया– भले ही उसका कोई प्रामाणिक या ऐतिहासिक साक्ष्य नहीं है। उसे संवेदना के स्तर पर लोक स्वीकृति मिल जाती है।

मिथक की कथा घटनाएं, पात्र एवं चरित्र अपने प्रतीक रूप में उस सत्य से साक्षात्कार कराते हैं। जिसके लिये कवि या रचनाकार ने मिथक का प्रयोग किया है। यदि हम मिथक रचनाकार और इतिहासकार की तुला करे तो पाते हैं कि एक तो उसका वर्णन करता है जो घटित हो चुका है। (इतिहासकार) और दूसरा उसका जो घटित हो सकता है। (पुराख्यानकार या मिथक रचनाकार)।

मिथक सोद्‌देश्य होते हैं, इनके माध्यम से मनुष्य जीवन का कोई भीर हस्य सुलझाने का प्रयास किया जा सकता है। प्रश्न यह खड़ा होता है कि मनुष्य ने अपनी भावाभिव्यक्ति के लिये मिथक का माध्यम क्यों अपनाया? वह अपनी अभिव्यक्ति के लिये किसी अन्य माध्यम की तलाश भी कर सकता था। क्योंकि मिथक सामूहिक अचेतन से उपजा मानव मस्तिष्क के वैचारिक पक्ष की ही प्रस्तुति नहीं करता, वरन मानव हृदय की (सहज विश्वास और

---

* शोधकत्री, लालबहादुर शास्त्री स्नातकोत्तर महाविद्यालय, पं. दीनदयाल उपाध्याय नगर, चंदौली से सम्बद्ध मानविकी संकाय, हिन्दी तथा आधुनिक भारतीय भाषा विभाग, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी

आस्था के स्तर पर) भावनाओं को प्रकट करने का एक सशक्त और सीधा माध्यम है। इसके द्वारा व्यक्त भावनाएं हृदय पर सीधे प्रभाव डालकर विषय सत्य काके आत्मसात कराती है।

मानव एक सामाजिक प्राणी है। बालक जन्म लेते ही परिवार का सदस्य बनता है फिर स्वतः ही वह समाज का अंग बन जाता है। वह जिस समाज में रहता है वहां के परिवेश से प्रभावित होता है। उसी समाज के रहन–सहन, खान–पान, वेश–भूषा, आचार–विचार, भाषा तथा संस्कृति को वह धारण करता है और इस तरह वह अपने परिवेश को जीता है। परिवेश से तात्पर्य 'कोई ऐसी वस्तु जो चारों ओर से घेरकर किसी वस्तु की रक्षा करती है।'[1] साहित्यकार परिवेश से ही अपनी कृति का आधार ग्रहण करते हैं, रचना में उसका पुनर्निर्माण कर पुनः परिवेश का सृजन करता है। किसी भी रचनाकार की रचना तभी सहज, सफल तथा प्रभावशाली बनती है जब वह अपने पात्रों व पात्रों के परिवेश को अच्छी तरह चित्रित करता है।

साठोत्तरी नाटककारों में सुरेन्द्र वर्मा जी प्रतिष्ठित नाटककार है। इन्होंने कुल सात नाटकों का सृजन किया है। सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक, 'आँठवां–सर्ग', 'द्रौपदी', 'सेतुबंध', 'नायक–खलनायक–विदूषक', 'शकुंतला की अंगूठी' 'छोटे सैयद, बड़े सैयद'।

सुरेन्द्र वर्मा ने अपने बहुचर्चित नाटक 'द्रौपदी', 'सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक', 'सेतुबंध', 'नायक–खलनायक–विदूषक' तथा 'आठवाँ सर्ग' में मिथकीय परिवेश का आधार ग्रहण किया है।

यद्यपि नाटककार का मूल उद्देश्य शासक तथा शासन तंत्र के संबंध में मनुष्य की अस्मिता के खोज की छटपटाहट, दाम्पत्य संबंधों के परिप्रेक्ष्य में आधुनिक संवेदना को अभिव्यक्ति प्रदान करना है। सुरेन्द्र वर्मा ने अपने नाटकों के पात्रों के नाम उनकी वेश–भूषा, उनकी भाषा आदि सभी पक्षों की प्रस्तुति के लिये मिथकीय परिवेश के उदाहरणों को ही ग्रहण किया है।

'सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक' में सजावट के दृश्य चशक, वाद्य यंत्र, मदिरापान, मंगलकलश आदि शब्दों के प्रयोग में मिथकीय परिवेश के भाव के ही द्योतक है। राजा ओक्काक, शीलवती, प्रतोष, मल्ल राज्य समस्त कथानक मिथकीय है। अतः मिथकीय आधार पर कुछेक बहुत तीखे समकालीन जीवनानुभव इस नाट्य–कृति में रेखांकित हुए है।''[2]

प्रतीकात्मकता मिथक का एक अनिवार्य गुण माना जाता है, यदि मिथक के प्रतीक प्रत्येक संदर्भ में नवीनता ग्रहण न करें, वे तो फिर रूढ़ि बन जाते हैं और नवीनता ग्रहण शक्ति के बल पर मिथक अर्थवान हो उठते हैं। 'सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक' में ओक्काक के भीतर द्वन्द, द्वेष, पीड़ा, दुःख आदि का भाव लगातार संचारित होता है। वह कहता है– 'ओहः चारों जागेंगे सारी रात ..... चक्रवाक ..... मैं ..... कुमुदनी और चन्द्रमा– .....।'[3]

इसी प्रकार 'सेतुबन्ध' का कथानक गुप्त काल (ईसा पूर्व) के वाकाटक राजा प्रवरसेन और राजमाता प्रभावती को आधार बनाकर लिखा गया है। यह नाटक मिथकीय परिवेश पर आधारित है। नाटक के प्रमुख पात्र प्रवरसेन, प्रभावती, चन्द्रगुप्त, कालिदास इन चरित्रों के जीवन को आधार बनाकर प्रस्तुत कथावस्तु मिथकीय परिवेश का ही सृजन करता है, 'मेघदूत' के प्रसंग में इसका स्पष्ट प्रमाण देखा जा सकता है, यथा–

'प्रवरसेनः उसमें एक रत्नमंजूषा भी थी, कौतूहलवश उसे खोला तो ..... विभावतीः (आशंका से) क्या था, उसमें? (प्रवर सेन स्थिर दृष्टि .....) यह तो मेघदूत की.....प्रवरसेनः प्रति नहीं, पाण्डुलिपि ..... ।'[4]

नाटक में प्रयुक्त गुप्तकालीन प्रदेशों के नाम अश्वमेध यज्ञ, मिथकीय परिवेश की हीसर्जना करते हैं। 'नायक खलनायक विदूषक' में भी प्रयुक्त परिवेश मिथकीय है। नाटक के समस्त पात्र कपिंजल, पुष्पभूति, कुमारभट्ट, सूत्रधार अन्य सभी के नाम संधि सम्बन्धी दृश्य, युद्ध तथा भाषा शैली सभी मिथकीय परिदृश्य के ही उदाहरण है। युद्ध और संधि की शर्त को दर्शाता हुआ यह उदाहरण मिथकीय परिवेश का अच्छा उदाहरण है। सूत्रधारः महाराज युद्ध के लिये तैयार नहीं थे। उन्हें डर था कि कहीं ..... (अर्थपूर्ण ढंग से खासता है।)

''सूत्रधारः मांग है कि बीच करोड़ स्वर्णमुद्राएं इतने ही मूल्य के हीरे–मोती, मूंगे–मरकत, दस–सहस्र वनायु, घोड़े ..... सीप, शंख और गल्वर्क के चषक .....''।[5] राज्य विशेष से इतनी मांग मिथ्य काल में ही होता था, अतः सुरेन्द्र वर्मा ने अपने नाटकों में मिथकीय परिवेश का चित्र सफलतापूर्वक किया है।

सामाजिक, क्रियाकलापों, संस्थाओं सम्बन्धी धारणाओं को भी हम मिथक की ही श्रेणी में रखते हैं। विवाह एक संस्था है और लोक विश्वास पर आधारित है, यही कारण है कि इसका अपना एक महत्व है। सुरेन्द्र वर्मा के नाटक 'आठवां सर्ग' में इसका स्पष्ट उदाहरण देखा जा सकता है। उदाहरण के लिये– प्रियंगुमंजरी कहती है– ''वह आठवें सर्ग के पृष्ठ खोलेगा..... और मेरे भवन के अन्तःपुर के शयनागार के बन्द द्वार खुलने लगेंगे। ..... मेरे बिल्कुल निजी अनुभव मेरी नितान्त व्यक्तिगत अनुभूतियां इस तरह उजागर हो जायेंगी, जैसे किसी प्रदर्शनी में रखी हो।''[6]

आज मिथक को आदि–संस्कृतिगत विश्वास और आस्था के उत्पादक, नैतिकता के वाहक धार्मिक अनुष्ठानों की सफलता के साक्षी और केवल कथा नहीं अपितु जीवन के यथार्थ के वास्तविक दस्तावेज के रूप में स्वीकार किया गया है, इस तरह मिथक एक सामाजिक आवश्यकता को पूरा करता है।

सुरेन्द्र वर्मा जी ने जिस प्रकार अपने नाटकों में मिथकीय प्रयोग किया है, वह अन्य नाटककारों की अपेक्षा एक नया और सफल प्रयास कहा जा सकता है। सुरेन्द्र वर्मा जी ने कथावस्तु मंचीय शिल्पगत, मिथकीय तथा

भाषागत असंगत आदि विषयों पर गहराई से चिंतन कर अपने नाटकों को लिखा है। जिन्हें समय–समय पर सफलतापूर्वक मंचित भी किया गया है। इन्होंने यथार्थ पर आधारित आज के युवा वर्ग की स्वच्छंद यौन संबंधी भावनाओं, आधुनिक युग के परिवर्तित तौर–तरीके, महानगरीय जीवन से प्रभावित व्यक्ति के टूटन, वैवाहिक समस्या, साहित्यकार की प्रतिबद्धता, स्त्री–पुरूष के काम संबंधी आदि सभी मुद्दों को मिथक का आधार ग्रहण करते हुए प्रासंगिक रूप में प्रस्तुत किया।अतः हम कह सकते हैं कि सुरेन्द्र वर्मा ने ऐतिहासिक, पौराणिक कथानक को लेकर मिथकीय प्रयोग के माध्यम से तत्कालीन ऐतिहासिक और पौराणिक स्थितियों को आधुनिकता के सांचे में ढालने का सफल प्रया किया है।

सन्दर्भ :

1. नवल जी : नालंदा विशाल, शब्द सागर, पृ. 803
2. सुरेन्द्र वर्मा : 'सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक' मुख पृष्ठ, भीतर
3. सुरेन्द्र वर्मा : 'सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक', पृ. 45
4. तीन नाटक सेतुबन्ध, सुरेन्द्र वर्मा, पृ. 22.
5. सुरेन्द्र वर्मा : तीन नाटक, नायक–खलनायक–विदूषक, पृ. 42
6. सुरेन्द्र वर्मा : आठवां सर्ग, पृ. 33–34.

***